

कल्याण

VOL. 40

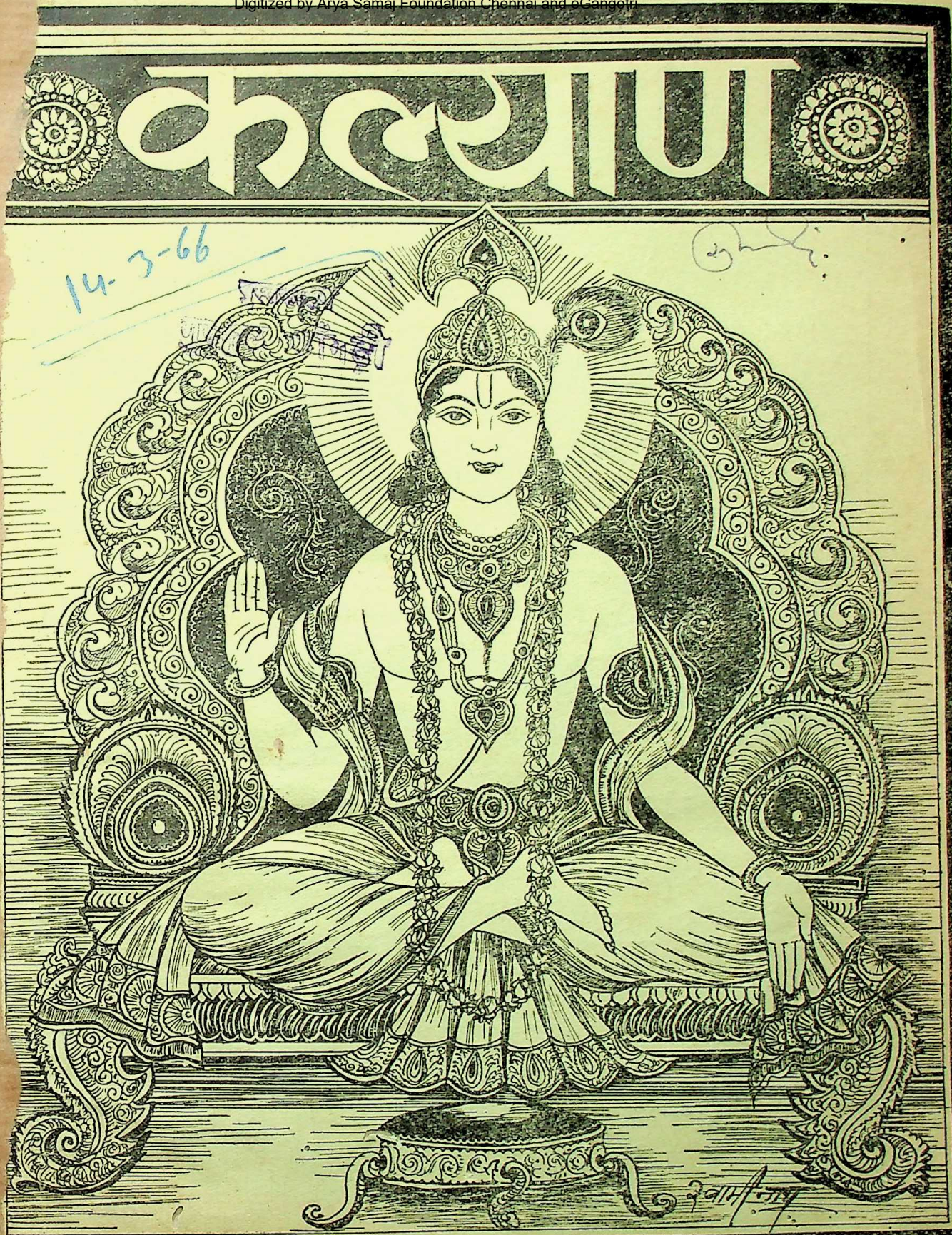
1966

C. M. Y. LIB.
HARIDWAR



110325

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-सौन्दर्य-शौर्य-निधि भगवान् श्रीराम [कविता] ... ७०१	...
२-कल्याण ('शिव') ... ७०२	...
३-जीव और भगवान् (पूज्यपाद अनन्त श्रीविभूषित स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराजका प्रसाद; प्रेषक-पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ... ७०३	...
४-सभी कर्मोंका नाम यज्ञ है (स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके एक भाषणका सार) ... ७०४	...
५-हमसे दूर रहें (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम० ए०, पी-एच्० डी०) ... ७१३	...
६-मधुर ... ७१६	...
७-अधर्म जो धर्म जान पड़ता है (श्रीसुदर्शनसिंहजी) ... ७१७	...
८-पुराणोक्त धर्म (प्रो० डा० श्रीबालकृष्ण मोरेश्वर कानिटकर एम० ए०, पी-एच्० डी०, एल्-एल्० बी०) ... ७१९	...
९-जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता (श्रीगुरु रामप्यारेजी अग्निहोत्री) ... ७२२	...
१०-शम-सम्पन्न (शान्त) [कहानी] (श्री 'चक्र') ... ७२५	...
११-श्रीमद्वल्लभाचार्यजीकी धर्मभावना (संकलन- कर्ता-श्रीगोपालदासजी झालानी) ... ७२९	...
१२-परम धर्म [कविता] ... ७३०	...
१३-पुष्टिमार्ग और धर्म (बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री, साहित्यरत्न) ... ७३१	...
१४-धर्म और सुख-शान्ति (श्रीराजमंगलनाथजी त्रिपाठी एम० ए०, एल्-एल्० बी०, साहित्याचार्य) ... ७३३	...

कल्याण, सौर फाल्गुन २०२२, फरवरी १९६६

विषय	पृष्ठ-संख्या
१५-सब काम प्रभुकी पूजा हैं ! (श्रीखुनाथजी महापात्र, एम० ए०) ... ७३४	...
१६-अधर्मसे समूलनाश (संकलित- मनुस्मृति ४। १७०-१७२) ... ७३५	...
१७-सफलता पानेके कुछ साधन (स्वामी श्रीरामतीर्थजीका संदेश; प्रेषक-श्री- तिलकराजजी गोस्वामी एम० ए०) ... ७३६	...
१८-कौआ चले जब हंसकी चाल (श्रीकौटिल्यजी उदियानी) ... ७३७	...
१९-सबमें भगवान् समझकर सबकी सेवा करो [कविता] ... ७३८	...
२०-कुमारी शुक्लाके पुनर्जन्मका वृत्तान्त (श्रीप्रकाशजी गोस्वामी, शोध-सहायक) ७३९	...
२१-क्या बढ़ा और क्या बढ़ रहा है ? (संग्राहक और प्रेषक-श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश' साहित्यरत्न) ... ७४१	...
२२-धर्म और समाज (महाकवि पं० श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस') ... ७४२	...
२३-श्रीकृष्णप्रेम वैरागी (श्रीमाधव आशिष) ७४५	...
२४-तुलसीके शब्द (डाक्टर श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम० ए०, डी० लिट्०) ... ७४६	...
२५-निष्पाप मन [कविता] (विद्यावाचस्पति डाक्टर श्रीहरिशंकरजी शर्मा, डी० लिट्०) ७५३	...
२६-सूर्योपासना और उपवास (श्रीशम्भूनाथजी वि० वाशिसकर) ... ७५४	...
२७-वैज्ञानिक और भक्त (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन) ७५६	...
२८-उदात्त संगीत [कविता] (डा० श्रीवलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०) ... ७५८	...
२९-पढ़ो, समझो और करो ... ७५९	...

चित्र-सूची

१-अभयदाता श्रीकृष्ण	(रेखाचित्र) ... मुखपृष्ठ
२-सौन्दर्य-शौर्य-निधि भगवान् श्रीराम	(तिरंगा) ... ७०१

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिल्लिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चिन्-आनंद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ४५ पै०
विदेशमें ५६ पै०
(१० पैसे)

सम्पादक-—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री

CG In Public Domain Gurukul Kangri Collection, Haridwar
मुद्रक-प्रकाशक-—मोतीलाल जालान, गीताप्रस, गोरखपुर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-सौन्दर्य-शौर्य-निधि भगवान् श्रीराम [कविता] ७०१	
२-कल्याण ('शिव') ७०२	
३-जीव और भगवान् (पूज्यपाद अनन्त श्रीविभूषित स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराजका प्रसाद; प्रेपक-पं० 'श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ७०३	
४-सभी कमौका नाम यज्ञ है (स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके एक भाषणका सार) ७०४	
५-हमसे दूर रहें (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ७१३	
६-मधुर ७१६	
७-अधर्म जो धर्म जान पड़ता है (श्रीसुदर्शनसिंहजी) ७१७	
८-पुराणोक्त धर्म (प्रो० डा० श्रीबालकृष्ण मोरेश्वर फानिटकर एम्० ए०, पी-एच्० डी०, एल्-एल्० बी०) ७१९	
९-जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता (श्रीगुरु रामप्यारेजी अग्निहोत्री) ७२२	
१०-शम-सम्पन्न (शान्त) [कहानी] (श्री 'चक्र') ७२५	
११-श्रीमद्ब्रह्मभार्यजीकी धर्मभावना (संकलन- कर्ता-श्रीगोपालदासजी झालानी) ७२९	
१२-परम धर्म [कविता] ७३०	
१३-पुष्टिमार्ग और धर्म (बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री, साहित्यरत्न) ७३१	
१४-धर्म और सुख-शान्ति (श्रीराजमंगलनाथजी त्रिपाठी एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, साहित्याचार्य) ७३३	

कल्याण, सौर फाल्गुन २०२२, फरवरी १९६६

विषय पृष्ठ-संख्या

१५-सब काम प्रभुकी पूजा हैं ! (श्रीधुनाथजी
महापात्र, एम० ए०) ... ७३४

१६-अधर्मसे समूलनाश (संकलित-
मनुस्मृति ४। १७०-१७२) ... ७३५

१७-सफलता पानेके कुछ साधन (स्वामी
श्रीरामतीर्थजीका संदेश; प्रेषक-श्री-
तिलकराजजी गोस्वामी एम० ए०) ... ७३६

१८-कौआ चले जब हंसकी चाल
(श्रीकौटिल्यजी उदियानी) ... ७३७

१९-सबमें भगवान् समझकर सबकी सेवा
करो [कविता] ... ७३८

२०-कुमारी शुक्लाके पुनर्जन्मका वृत्तान्त
(श्रीप्रकाशजी गोस्वामी, शोध-सहायक) ७३९

२१-क्या बढ़ा और क्या बढ़ रहा है ?
(संग्राहक और प्रेषक-श्रीवल्लभदासजी
विन्नानी 'व्रजेश' साहित्यरत्न) ... ७४१

२२-धर्म और समाज (महाकवि पं०
श्रीशिवरत्नजी शुक्ल 'सिरस') ... ७४२

२३-श्रीकृष्णप्रेम वैरागी (श्रीमाधव आशिष) ७४५

२४-तुलसीके शब्द (डाक्टर श्रीहरिहरनाथजी
हुक्कू, एम० ए०, डी० लिट्०) ... ७४६

२५-निष्पाप मन [कविता] (विद्यावाचस्पति
डाक्टर श्रीहरिशंकरजी शर्मा, डी० लिट्०) ७५३

२६-सूर्योपासना और उप्रःपान (श्रीशम्भूनाथजी
वि० वाशिसकर) ... ७५४

२७-वैज्ञानिक और भक्त (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन) ७५६

२८-उदात्त संगीत [कविता] (डा०
श्रीवलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०) ... ७५८

२९-पढ़ो, समझो और करो ... ७५९

चित्र-सूची

१-अभयदाता श्रीकृष्ण
२-सौन्दर्य-शौर्य-निधि भगवान् श्रीराम

(रेखाचित्र) ... मुखपृष्ठ
(तिरंगा) ... ७०१

<p>वार्षिक मूल्य</p> <p>भारतमें रु० ७.५०</p> <p>विदेशमें रु० १०.००</p> <p>(१५ शिल्लिङ्ग)</p>	<p>जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्त-आनन्द भूमा जय जय ॥</p> <p>जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥</p> <p>जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥</p>	<p>साधारण प्रति</p> <p>भारतमें ४५ पै०</p> <p>विदेशमें ५६ पै०</p> <p>(१० पेंस)</p>
--	--	---

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक-~~डॉ. प्रो. डा. सुरेश चन्द्र~~ जाल्मन, जीता प्रेस, गोरखपुर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्ब्रह्मर्षिराजर्षिभिर्विदुश्चैरपि बन्धते स जयतादृमो जगद्धारमः ॥

वर्ष ४० }

गोरखपुर, सौर फाल्गुन २०२२, फरवरी १९६६

{ संख्या २
पूर्ण संख्या ४७१

सौन्दर्य-शौर्य-निधि भगवान् श्रीराम

रामचन्द्र मुखकंज मनोहर भक्त-भ्रमर मन-हारक ।
मंगल मूल मधुर मंजुल मृदु दिव्य सहज सुख-कारक ॥
नित्य निरामय निर्मल अबिरल ललित कलित सुभ सोभित ।
पाप-ताप-मद-मोह-हरन, मुनि-मन-सुचि-करन सुलोभित ॥
नील स्याम-तनु, धनु कर सोहत, बरद हस्त भय नासत ।
सुमन-माल-सुरभित, मुक्ता-मनि-हार लसत, द्युति भासत ॥
पीत वसन सौंदर्य-सौर्य-निधि, भाल तिलक अति भ्राजत ।
अखिल भुवनपति, सुषमा-श्री लखि, काम कोटि-सत लाजत ॥

कल्याण

याद रखो—काम, लोभ, धनोपार्जनमें ही लगे रहना, तृष्णा, असंतोष, परिग्रह, स्तेय, असत्य भाषण, निन्दा, बहुत बोलना, परचर्चा, क्रोध, हिंसा, निर्दयता, चिन्ता, शोक, अहंकार, अभिमान, मद, प्रमाद, इन्द्रियों की दासता, मनकी गुलामी, कुसंगति और भजनका अभाव—ये चौबीस बड़े दोष हैं।

याद रखो—१. काम ज्ञानको हरण करके पापमें प्रवृत्त करता है; २. लोभसे बुद्धि मारी जाती है; ३. धनोपार्जनकी नित्य प्रवृत्तिसे मनुष्य असुर बन जाता है और धर्म, शान्ति, निर्भयता, सुख उसके जीवनसे चले जाते हैं; ४. तृष्णा सदा नवीन बनी रहकर जलती रहती है; ५. असंतोष सदा मनुष्यको अभावका अनुभव कराता हुआ दुखी रखता है; ६. परिग्रहकी वृत्ति सदा नयी-नयी चीजें बटोरनेकी चिन्तासे ग्रस्त रखती है; ७. स्तेय (चोरी) दूसरेका धन—स्वत्व अपहरण करनेका पाप कराता रहता है; ८. असत्य भाषणसे वाणीका तेज नष्ट हो जाता है और लोगोंमें विश्वास उठ जाता है; ९. निन्दासे परदोष-दर्शनकी प्रवृत्ति होती, पराये पापोंका संग्रह होता तथा जिनकी निन्दा होती है, उनसे द्वेष-वैर बढ़ता है; १०. बहुत बोलनेसे वाणी-बलका क्षय होता और व्यर्थ समय नष्ट होता है; ११. परचर्चासे समय नष्ट होनेके साथ ही निन्दा-स्तुतिकी आदत पड़ती तथा राग-द्वेष बढ़ता है; १२. क्रोध मनुष्यको बेहोश करके राक्षस बना देता है; १३. हिंसा महापाप है और हिंसा करनेवालेकी सब हिंसा करते हैं; १४. निर्दयता मनुष्यको खूंखार पशु और पिशाच बना देती है; १५. चिन्ता हृदयमें सदा चिता-सी बनी धधकती तथा धधकाती रहती है; १६. शोकसे मनुष्य मोहग्रस्त होकर कर्तव्यशून्य हो जाता है;

१७. अहंकार समस्त बन्धनोंका मूल है—शरीर तथा नामका अहंकार जीवको जन्म-मृत्युके चक्रमें घुमाता है; १८. अभिमान झूठे बड़प्पनकी सृष्टि करके दूसरोंका अपमान करवाता और नये-नये कलह-क्लेशकी सृष्टि करता है; १९. मद मनुष्यको बेहोश कर देता है—यह एक बुरा नशा होता है—जैसे धन-मद, पद-मद, विद्यामद, जाति-मद, बुद्धिमद आदि; २०. प्रमादसे मनुष्य करने-योग्य कार्यका त्याग कर देता है और न करनेयोग्यको करने लगता है; २१. प्रमाद ही मृत्यु है; इन्द्रियोंकी दासता मन-बुद्धिकी पवित्रताको नष्ट करके उसे दुष्कर्मोंमें लगाती तथा बाहरी एवं भीतरी शक्तिका नाश करती है; २२. मनकी गुलामीसे मनुष्य उच्छृङ्खल होकर कुमार्गगामी होता और नित्य अशान्तिका भोग करता है; २३. कुसङ्गतिसे मनुष्यका सब ओरसे पतन हो जाता है, कुसङ्गसे जीवन बिगड़ जाता है और मनुष्य चिरकालतक नरकयन्त्रणा-भोगका साधन बटोरता रहता है और २४. भजनका अभाव तो मानव-जीवनको ही व्यर्थ कर देता है।

याद रखो—मानव-जीवन मिला ही है—भगवान्‌का भजन करनेके लिये। अतएव उपर्युक्त दोषोंसे बचते हुए भगवान्‌का भजन करो। सत्सङ्गतिके साथ भजनमें प्रवृत्ति हो जानेपर ये दोष अपने-आप हटने-मिटने लगते हैं। भगवान्‌के भजनमें ही मानवकी मानवता है।

याद रखो—भजन उसे कहते हैं—जिसमें जीवन-के सारे कार्य भगवान्‌की सेवाके लिये होते हैं। मनसे भगवान्‌का चिन्तन तथा वाणीसे भगवान्‌के नाम-गुणोंका जप-कीर्तन-कथन करते हुए शरीरके द्वारा होनेवाले प्रत्येक कर्मसे भगवान्‌की ही पूजा-सेवा करनी चाहिये।

‘शिव’

जीव और भगवान्

(पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराजका प्रसाद)

अद्वैत-मतानुसार 'जीव' विष्णु ही है—'विष्णुर्वि-
कल्पोज्झितः ।' श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

स एष जीवो विवरप्रसूतिः

प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ।

(११ । १२ । १७)

यहाँ जीवका अर्थ 'परमेश्वर' ही है; * क्योंकि वही सबको जिलाता है । 'पराभिध्यानात्' आदि ब्रह्मसूत्रके अनुसार भी जीवका अन्तर्यामीके साथ अविच्छेद्य सम्बन्ध है । उसीसे जीवका जीवन चलता है, अतः वह जीवका जीव और प्राणका प्राण कहा जाता है—

स उ प्राणस्य प्राणः । (केनोपनिषद् १ । २)

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम् ।

(कठोपनिषद् १ । २ । १३, श्वेताश्वतरोपनिषद् ६ । १३)

भगवान् श्रीहरि प्राणोंके प्राण हैं, वे ही जीवोंके सच्चे जीव हैं—

हरिर्हि साक्षाद् भगवान् शरीरिणा-

• मात्मा ह्यषाणामिव तोयमीप्सितम् ॥

(श्रीमद्भा० ५ । १८ । १३)

भगवान् श्रीकृष्ण आत्माओंके सच्चे आत्मा हैं—

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।

जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥

(श्रीमद्भा० १० । १४ । ५५)

भगवान् श्रीराम ही जीवोंके जीव हैं—

सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः ।

श्रियाः श्रीश्च भवेद्दश्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमाक्षमा ॥

* (क)—'एषः—अपरोक्षः, जीवयतीति जीवः—परमेश्वरः ।'

(श्रीधरस्वामिकृत भागवतभाषार्थदीपिका ११ । १२ । १७)

(ख)—जीवयतीति जीवः—परमेश्वरः—

(अन्वितार्थप्रकाशिका व्या०)

(ग)—जीवः, जीव प्राणधारणे धातोः प्रकृष्टानन्द-
लक्षणस्य हरेर्विशेषाधिष्ठानत्वात् तन्नामा ब्रह्मा,
प्राणेन विष्णुना, घोषेण वेदात्मिकया प्रकृत्या
लक्ष्म्या च सह गुहां—रुद्रादीनां हृदयगुहां प्रविष्टः ।

(श्रीविजयचक्रवर्तकृतपदरत्नावली)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः

(वाल्मीकिरामायण अयोध्याकाण्ड ४४ । १५-१६)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज भी कहते हैं—

प्राण प्राण के जीव के जिव सुख के सुख राम ।

(रामचरितमानस, अयोध्या० २९०)

राम प्राण प्रिय जीवन जी के । स्वारथ रहित सखा सबही के ॥

आभासवादके अनुसार भी जैसे सूर्यादिके बिना उनका आभास सम्भव नहीं, वैसे ही सच्चिदानन्दकन्द प्रभुसे विशिष्ट जीवकी स्थिति सम्भव नहीं हो सकती । जैसे सूर्यादिके आभासोंके मूल हेतु सूर्यादि हैं, वैसे ही जीवके मूलभूत जीवन सच्चिदानन्दकन्द प्रभु ही हैं ।

अवच्छेदवादानुसार महाकाश भगवान्का एवं घटाकाश जीवका स्वरूप है । जैसे महाकाशके बिना घटाकाशकी स्थिति सम्भव नहीं, वैसे ही ईश्वर बिना जीवका जीवन सम्भव नहीं । आचार्य श्रीरामानुजके मतानुसार नीलोत्पलमें उत्पलसे जैसे नीलिमाका, रक्तोत्पलमें उत्पलसे रक्तिमाका अभेद्य सम्बन्ध है, वैसे ही जीवेश्वर-सम्बन्ध है ।

सम्बन्ध भी सहज एवं कृत्रिम भेदसे दो प्रकारका कहा गया है । पर यहाँ नीलकमलका नीलिमाके साथ सम्बन्ध अकृत्रिम—सहज है । श्रीनिम्बार्कादिके मतानुसार भी 'सुवर्णकुण्डल'में जैसे सुवर्णभिन्न कुण्डल नहीं है, वैसे ही जीवात्मसम्बन्ध है । इसीलिये भगवद्वियोगका क्लेश ही वास्तविक क्लेश है । भगवत्-मिलन भजन-स्मरणका सुख ही वास्तविक सुख है ।

वाल्मीकिरामायणमें आता है कि जब भगवान् श्रीराम वनमें चले गये तो अवधनिवासियोंका कष्ट सीमा पार कर गया । उन दिनों किसी वन्ध्याको पुत्र-लाभ हो गया था, कुछ प्रोषितभर्तृकाओंके पतिका भी आगमन हो गया और उन्हें प्रियतमसम्मिलनका संयोग उपलब्ध हुआ था, कुछ दरिद्रोंको विपुल धनागम भी हुआ था, किंतु ऐसा अलभ्य-लाभ होनेपर भी उन्हें तनिक सुखका बोध न हुआ । वन्ध्याको पुत्रप्राप्ति अथवा प्रोषितभर्तृकाका

प्रियतम पतिके संयोगका आनन्द असाधारण तथा अत्युत्कृष्ट माना गया है। पर वह सब राम-वन्धासके कारण—श्रीराम-वियोग-जनित क्लेश इस उत्कृष्ट आनन्दकी अपेक्षा इतना अधिक बढ़ गया था कि उस महान् दुःखसागरमें इस असाधारण श्रेष्ठ सुखका पता भी न चला—लेशमात्र भी अनुभव न हो सका—

नष्टं दृष्ट्वा नाभ्यनन्दन् विपुलं वा धनागमम् ।

पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाभ्यनन्दत ॥

गृहे गृहे रुदत्यश्च भर्तारं गृहमागतम् ।

व्यगर्हयन्त दुःखार्त्ता वाग्भिस्तोत्रैरिव द्विपान् ॥

(वाल्मीकिरामायण २ । ४८ । ५-६)

किमधिकं, पशु-पक्षियोंने भी अपना खाना-पीना-पिलाना बंद कर दिया था—

व्यसृजन् कवलान् नागा गावो वत्सान् न पाययन् ।

पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाभ्यनन्दत ॥

(वाल्मीकिरामायण २ । ४१ । १०)

सभी कर्मोंका नाम यज्ञ है

(स्वामीजी श्रीराममुखदासजी महाराजके एक भाषणका सार)

गीताजीके श्लोकोंसे तो यही बात सिद्ध होती है कि सब कर्मोंका नाम यज्ञ है। कैसे होती है, इसपर विचार किया जाता है। यज्ञोंका विशेष वर्णन आता है, गीताके चौथे अध्यायके २४ वें श्लोकसे ३१-३२ श्लोकोंतक। यज्ञोंका प्रकरण शुरू होता है चौथे अध्यायके २३वें श्लोकसे। उसमें भगवान् कहते हैं—

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।

यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥

इसमें बतलाया गया है कि यज्ञके लिये आचरित सम्पूर्ण कर्म सर्वथा विलीन हो जाते हैं। अर्थात् वे शुभाशुभ फलका उत्पादन नहीं करते, फलदायक—बन्धनकारक नहीं होते। जन्म देनेवाले नहीं होते। कर्मोंकी प्रविलीनताका यही अर्थ है।

इस बातको दूसरे ढंगसे भगवान् कहते हैं तीसरे अध्यायके ९ वें श्लोकमें—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।

अन्यत्र कर्म बन्धनदायक होता है ।

अर्थात् यज्ञके अतिरिक्त जो भी कर्म होते हैं, वे सभी होते हैं, उन्हींको 'द्वययज्ञ' कहा गया है। इसी प्रकार

किसी सामान्य राजपुत्रके वियोगसे ऐसा दुःख सम्भव नहीं है। इस संतापका एकमात्र कारण यही है कि श्रीराम प्राणोंके प्राण, जीवके जीव और सुखके सुख हैं—जो आनन्दसिन्धु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक्य प्रकासी ॥ सो सुखधाम राम अस नाश्या। अखिल लोकदायक विश्रामा ॥ सुख-स्वरूप रघुवंसमनि मंगल मोद-निधान ।' (इत्यादि)

अतः जीवको इस 'दुःखालय' (गीता अ० ८) 'अनित्यसुखम्' (गीता ३ । ३४) लोक—संसारसे सुख मिलनेकी आशा छोड़, भगवद्भजन-भगवत्प्राप्ति-सम्मिलन-से ही सुख-प्राप्तिके प्रयत्नमें लग जाना चाहिये। इसीमें सच्ची बुद्धिमत्ता है।

अप्रकाशित ('गोपीगीत' श्लोक १८ के 'त्वत् स्पृहात्मनां' पदके प्रति बृहद् व्याख्यानका एक पृष्ठ) ।
(प्रेषक—श्रीजानकीनाथ शर्मा)

बन्धनकारक होते हैं। केवल यज्ञार्थ कर्म बन्धनकारक नहीं होते। उपर्युक्त दोनों ही जगह 'यज्ञ' शब्द आया है। चौथे अध्यायके २४ वें श्लोकसे भगवान् कहते हैं—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥

चौदह यज्ञोंका उल्लेख किया गया है इस प्रकरणमें, जिनमें 'प्राणायाम'का नाम भी आया है—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।

प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

(४ । २६)

अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति ।

ऊपर 'जुह्वति' किया दी गयी है। आगे और भी क्रियाएँ बतायी गयी हैं। जैसे उसी अध्यायके २८ वें श्लोकमें भगवान् कहते हैं—

द्रव्ययज्ञस्तपोयज्ञा

योगयज्ञस्तथापरे ।

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥

दान-पुण्य आदि जितने भी कर्म पैसोंसे या पदार्थोंसे सिद्ध

जिसमें इन्द्रियोंका, मनका, शरीरका संयम किया जाय; उस तपस्याको भी 'यज्ञ' कहा गया है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—पातञ्जलयोगके ये आठ अङ्ग तथा हठयोग, लययोग, मन्त्रयोग आदि जो अन्य योग हैं, उन्हें भगवान् ने 'योगयज्ञ' कहा है। स्वाध्याय अर्थात् वेदोंका पाठ, स्मृतियोंका पाठ, इन सबका मनन—इन सबका नाम भगवान् ने 'स्वाध्याय-यज्ञ' रखा। तथा इनके द्वारा जो समझ होती है, इतना ही नहीं, किसी भी बातको गहराईसे समझनेको 'ज्ञानयज्ञ' कहा गया है। इन सबको भगवान् ने 'यज्ञ' नामसे अभिहित किया है। इस यज्ञके प्रकरणका उपसंहार करते हैं भगवान् चौथे अध्यायके ३२ वें श्लोकमें—

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।

कर्मजान् विद्धि तान् सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥

इस श्लोकमें यज्ञोंको कर्मजन्य बताया गया है। इसके पूर्ववर्ती श्लोकमें श्रीभगवान् कहते हैं—

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।

—जो बात भगवान् ने ४ वे अध्यायके २३ वें श्लोकमें कही थी—

यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ।

—उसीका उपसंहार एक प्रकारसे वे चौथे अध्यायके ३१वें श्लोकमें करते हैं—'यज्ञशिष्ट अमृतका भोजन करनेवाले सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।' इसी प्रकार तीसरे अध्यायके १३ वें श्लोकमें देखिये—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिञ्चिदैः ।

'यज्ञशेष भोजन करनेवाले सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाते हैं।' अब देखिये—सब पापोंसे मुक्त हो जाना, सम्पूर्ण कर्मोंका लीन हो जाना और यज्ञसे ब्रह्मकी प्राप्ति—ये तीनों एक ही बात है; सबका तात्पर्य एक ही निकलता है। तीसरे अध्यायके नवें और तेरहवें एवं चौथे अध्यायके तेईसवें और इकतीसवें—इन चारों ही श्लोकोंमें यज्ञका फल बताया गया है—परमात्म-तत्त्वकी प्राप्ति, सम्पूर्ण पापोंका नाश और संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद। अतः जितने भी उपाय परमात्माकी प्राप्तिके हैं, वे सब-के-सब गीतामें 'यज्ञ' नामसे अभिहित हुए हैं—यह बात सिद्ध हो गयी उपर्युक्त विवेचनसे। बीचमें द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ, प्राणायामयज्ञ आदि सभी यज्ञोंकी चर्चा आ गयी। दान,

तप, होम, तीर्थसेवन, व्रत—ये सब-के-सब 'यज्ञ' शब्दके अन्तर्गत आ गये—यह मानना ही पड़ेगा।

चौथे अध्यायके ३२ वें श्लोकमें यह कहकर कि 'वेदकी वाणीमें बहुतसे यज्ञोंका विस्तारसे वर्णन हुआ है'—भगवान् ने दहरादिकी उपासनाका भी 'यज्ञ' शब्दमें अन्तर्भाव कर दिया, जिनका वर्णन गीतामें नहीं है; अपितु उपनिषद्में आया है। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

'इन सबको तू कर्मोंसे उत्पन्न जान'—'कर्मजान् विद्धि' और इस प्रकार जाननेसे तू मुक्त हो जायगा—'एवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे'।

चौथे अध्यायके १५वें श्लोकमें श्रीभगवान् कहते हैं—

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि सुमुक्षुभिः ।

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥

यहाँ भी भगवान् ने कर्मपर जोर दिया है। उपर्युक्त श्लोकमें 'एवं ज्ञात्वा'से इस बातकी जाननेकी बात जो कही गयी है, वह जिस प्रसङ्गसे कही गयी है, वह प्रसङ्ग चौथे अध्यायके १३वें श्लोकमें आता है। जो इस प्रकार है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

यहाँ भी 'कर्म'शब्द आया है। यहाँ कर्मकी बातपर ध्यान देना चाहिये। कर्ममात्रका नाम 'यज्ञ' है—यह बात अब बतलायी जाती है। चौथे अध्यायके १३वें श्लोककी अवतारणा हुई है उसी अध्यायके नवें श्लोकसे। नवें श्लोकमें भगवान् कहते हैं—'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'—मेरा जन्म-कर्म दिव्य है। वह कर्म दिव्य क्यों है? अपने कर्मोंकी दिव्यताका प्रकरण भगवान् ने चलाया है १३वें श्लोकसे और जन्मकी दिव्यता भगवान् ने कही है चौथे अध्यायके छठे श्लोकसे। वहाँ उन्होंने जन्मकी दिव्यताके साथ अपने जन्मका हेतु बताया और कहा कि 'मेरा जन्म-कर्म दिव्य है, इस बातको जो जानता है, वह मुक्त हो जाता है।' चौथे अध्यायके १३वें श्लोकमें श्रीभगवान् कहते हैं—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥

'चातुर्वर्ण्यकी जब मैंने रचना की, तब यह मेरा कर्म हुआ; पर सृष्ट करते हुएको भी तू अकर्ता जान।' इसके बाद वे कहते हैं—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।

इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥

‘मुझे कर्म बाँधते नहीं और मेरी कर्मफलमें कोई स्पृहा नहीं है—इस प्रकार जो जान लेता है, वह कर्मोंसे नहीं बँधता ।’ इस प्रकार भगवान् ने अपना कर्म बताया और यह भी बताया कि जो उनके कर्मोंका रहस्य जान लेता है, वह बँधता नहीं है । वह क्यों नहीं बँधता ? इसके दो हेतु बताये गये हैं । ‘तस्य कर्तारमपि मां विद्धि अकर्तारम्’—‘उन कर्मोंके कर्ता मुझको तू अकर्ता समझ ।’ इस कथनसे तात्पर्य यह निकला कि ‘भगवान् का कर्तृत्व अभिमानरहित है ।’ साथ ही ‘न मे कर्मफले स्पृहा’ कहकर वे बताते हैं कि ‘उनमें कर्मफलकी इच्छा नहीं होती ।’ जिस कर्ममें कर्तृत्वका अभिमान न हो और फलकी इच्छा न हो, वह कर्म बन्धनकारक नहीं होता, यह सिद्धान्त है । इसलिये भगवान् कहते हैं—‘इति मां योऽभिजानाति’ जो कोई भी मुझे ऐसा जान लेता है, वह ‘कर्मभिर्न स बध्यते’—‘कर्मसे वह नहीं बँधता ।’ मेरी तरह कर्तृत्व-अभिमान और फलासक्तिसे रहित होकर कोई भी कर्म करेगा, वह भी नहीं बँधेगा । इस प्रकार भगवान् ने अपने कर्मोंकी दिव्यता बतायी । जो कर्म बाँधनेवाले हैं वे ही कर्म मुक्तिदायक हो जायँ, यह दिव्यता है कर्मोंकी । इसीलिये कर्मयोगके प्रसङ्गमें भगवान् ने दूसरे अध्यायमें कहा है—‘योगः कर्मसु कौशलम्’—‘कर्मोंमें योग ही कुशलता’ है । ‘योग’ किसका नाम है ? ‘समत्वं योग उच्यते’—‘समताको ही योग कहा जाता है ।’ यह समता कैसे प्राप्त होती है ? ‘संगं त्यक्त्वा’ और ‘सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा’—मनुष्य आसक्तिका त्याग करे और सिद्धि-असिद्धिमें सम हो जाय, तब समता आती है । समताका नाम ही योग है और योग ही कर्ममें कुशलता है । जो कर्म बाँधनेवाले हैं, वे ही मुक्ति देनेवाले हो जायँ—यही कर्मोंकी कुशलता है । इसीलिये कहा गया है—

इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ॥

कुछ लोग कहते हैं कि जबतक मुमुक्षा उत्पन्न न हो तभीतक कर्म करना है और मुमुक्षा उत्पन्न हो जानेपर मनुष्यको चाहिये कि वह संन्यास ले ले और कर्मोंका त्याग कर दे । यह अद्वैत-वेदान्तकी प्रक्रिया है । पर चौथे अध्यायके पंद्रहवें श्लोकमें भगवान् कहते हैं—

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।

‘मुमुक्षु पुरुषोंने भी ऐसा जानकर कर्म किया है ।’ ‘कर्म किया है, कर्मोंका त्याग नहीं ।’

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।

‘इसलिये तू कर्म ही कर ‘कर्मैव कुरु’ ।’ इस प्रकार भगवान् ने यहाँ कर्म करनेपर ही जोर दिया । फिर चौथे अध्यायके १६ वें श्लोकमें वे कहते हैं—

किं कर्म किमक्रमैति क्रवयोऽप्यत्र मोहिताः ।

तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्षयसेऽशुभात् ॥

‘कर्म क्या है, अकर्म क्या है’—इस बातको लेकर बड़े-बड़े पण्डित भी मोहमें पड़ जाते हैं । अब मैं तुझे वह कर्म कहूँगा, जिसे जानकर तू बन्धनसे मुक्त हो जायगा ! इस प्रकार १६वें श्लोकसे उपर्युक्त प्रसङ्गका उपक्रम करके उपसंहार करते हैं उसी अध्यायके ३२वें श्लोकमें । १६वें श्लोकमें उन्होंने जो बात कही—‘यज्ज्ञात्वा मोक्षयसेऽशुभात्’ वही बात चौथेके ३२वेंमें उपसंहार करते हुए कही गयी है—‘एवं ज्ञात्वा विमोक्षयसे ।’ इसी कर्मके अन्तर्गत यज्ञ हैं । जितने भी शुभकर्म हैं, उन्हीं सबका नाम है—‘यज्ञ’ और इन्हीं कर्मोंके द्वारा भगवान् के पूजनकी बात कही गयी है । अठारहवें अध्यायके ४६वें श्लोकमें—‘स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।’ पूजाका ही नाम यज्ञ है । इस प्रकार जितने भी कर्म हैं वे सब-के-सब यज्ञ हैं । ‘यज्ञ’ शब्दके अन्तर्गत जितने भी कर्तव्य-कर्म हैं, वे सब भी आ गये । अब जरा ध्यान देकर विचार करें—‘यज्ञ’ शब्दका क्या अर्थ होना चाहिये ? गीताके अनुसार यज्ञ आदि जितने भी शुभकर्म हैं, सब-के-सब ‘यज्ञ’ शब्दके अन्तर्गताती हैं । इसी ‘यज्ञ’ शब्दका चतुर्थी विभक्तिमें रूप होता है ‘यज्ञाय’—यज्ञके लिये । ‘यज्ञार्थ’का भी वही अर्थ होता है जो ‘यज्ञाय’का है । तीसरे अध्यायके ९वें श्लोकमें आया है—‘यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।’ यज्ञार्थ कर्मको छोड़कर अन्य सभी कर्म बन्धनकारक होते हैं । ‘यज्ञार्थ कर्म’का अर्थ है—यज्ञके लिये किये जानेवाले कर्म । चौथे अध्यायके २३वें श्लोकमें कहा है—‘यज्ञायाचरतः’ यज्ञके लिये कर्म करनेका अर्थ है—कर्मके लिये कर्म करना अर्थात् लोकसंग्रहके लिये कर्तव्यमात्र करना । फलकी इच्छा, आसक्ति, कामना, कर्तृत्व-अभिमान आदि कुछ भी नहीं रखना । भगवान् कहते हैं तीसरे अध्यायके २०वें, २१वें श्लोकोंमें—‘लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि ।’ इसके बाद वे २२वें श्लोकमें कहते हैं—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥

‘मेरे लिये न तो कोई कर्तव्य शेष है और न प्राप्तव्य ही कुछ बाकी है; तो भी मैं कर्ममें प्रवृत्त होता हूँ।’ इसका अर्थ यह हुआ कि केवल कर्तव्य-बुद्धिसे, लोक-संग्रहकी दृष्टिसे लोक-शिक्षाके लिये कर्म किये जाने चाहिये। अपना कोई स्वार्थ न रहे, कोई कर्तृत्व-अभिमान नहीं, ममता नहीं, आसक्ति नहीं, विषमता नहीं, किसी प्रकारकी कोई इच्छा नहीं, कोई आग्रह नहीं एवं कहीं कोई लगाव नहीं। निर्लिप्त होकर जो कर्म किये जाते हैं, वे सब कर्म ‘यज्ञ’ हो जाते हैं। कर्म किया जाय यज्ञार्थ—यज्ञके लिये ही; लोकपरम्परा सुरक्षित रखना ही उसका उद्देश्य हो, लोगोंका पतन न हो—इसी भावसे कर्म किया जाय, वह होगा ‘यज्ञार्थ कर्म’। यज्ञ शब्दका यह तात्पर्य निकला।

अब दूसरी दृष्टिसे देखिये कि ‘यज्ञ’ शब्दका क्या अर्थ होना चाहिये। गीताके चौथे अध्यायमें जो ‘यज्ञ’ शब्द आया है, उसी यज्ञके विषयमें अर्जुनने सत्रहवें अध्यायके प्रारम्भमें एक बात पूछी है—

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।

तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥

‘शास्त्रविधिका त्याग करके जो यजन करते हैं उनकी निष्ठा कौन-सी है?’ जितने यज्ञ होते हैं सब-के-सब शास्त्र-विधिसे सम्पन्न होते हैं—‘कर्मजान्विद्धि तान्सर्वान्’। ‘एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे’—वे यज्ञ वेदवाणीमें कहे गये हैं। वेदवाणीमें कहे गये अर्थात् शास्त्रोंमें उनका विधान किया गया है। परंतु अर्जुनके प्रश्नमें शास्त्रविधिके त्यागपूर्वक यजनकी बात कही गयी है। इसीपर यह प्रश्न उठाया गया है कि शास्त्रविधिका उल्लङ्घन करके जो यजन करते हैं, उनकी निष्ठा कौन-सी होगी! शास्त्रविधिके त्यागका फल तो विपरीत होना चाहिये और यजन-यजनका फल उत्तम होना चाहिये। दोनोंके सम्मिलित परिणामस्वरूप उनकी निष्ठा कौन-सी होगी—यही प्रश्न अर्जुनके मनमें उठा, जिसका उत्तर भगवान् ने दिया है सत्रहवें अध्यायके चौथे श्लोकमें। वैसे तो सत्रहवाँ अध्याय पूरा इस प्रश्नके उत्तरके रूपमें है, पर यज्ञके विषयमें उत्तर दिया गया है चौथे श्लोकमें—

यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ।

प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥

इससे यह सिद्ध हो गया कि सात्त्विक, राजस, तामस तीन तरहकी निष्ठा उनकी होती है। पूजा होती है देवताओंकी। प्रश्न यह होता है कि ‘यजन्ते’ द्वारा जिनके पूजनकी बात कही गयी है, वे देवता कौन हैं और उनका यजन क्या है? इनमेंसे पहले प्रश्नका उत्तर उपर्युक्त श्लोकमें यह दिया गया है कि सात्त्विकोंके पूजनीय सात्त्विक देवता हैं; राजस पुरुषोंके पूजनीय यक्ष-राक्षस और तामस पुरुषोंके पूजनीय प्रेत और भूतगण हैं। इनमें जो सात्त्विक आराधक हैं वे क्या करते हैं तथा राजस-तामस आराधक क्या करते हैं? इसका उत्तर चौदहवें अध्यायमें विस्तारसे दिया गया है—तथा उनकी गति चौदहवें अध्यायके १८ वें श्लोकमें कही गयी है। विस्तारमें जानेकी यहाँ आवश्यकता नहीं है। बादमें सातवें श्लोकसे भगवान् इसका प्रकरण प्रारम्भ करते हैं। भगवान् कहते हैं—आहार तीन तरहका होता है। परंतु उसके प्रकारोंका उल्लेख करते हुए वे यह नहीं कहते कि उक्त आहार कौन-कौनसे हैं, प्रत्युत यह बतलाते हैं कि सात्त्विक, राजस एवं तामस लोगोंके प्रिय लगनेवाले आहार कौन-कौनसे हैं। यहाँ यह प्रश्न होता है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया? इसका उत्तर यह है कि अर्जुनने शास्त्रविधि-को छोड़कर श्रद्धापूर्वक यजन करनेवालोंकी निष्ठा पूछी थी। इसपर भगवान् सत्रहवें अध्यायके तीसरे श्लोकमें कहते हैं—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥

अन्तःकरणके अनुसार श्रद्धा होती है, ऐसी दशामें श्रद्धासे ही उसकी निष्ठाका पता लगेगा। उसकी यजन-क्रिया और श्रद्धासे ही उसकी पहचान होगी। शास्त्रविधि तो उसने छोड़ दी, अतः उसकी कसौटी लगेगी नहीं। ऊपर कहा गया है कि श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है और जैसी जिसकी श्रद्धा होती है, वैसा ही वह होता है—इस न्यायसे श्रद्धावान् पुरुष भी तीन ही तरहके होंगे। श्रद्धा होती है अन्तःकरणके अनुरूप। इसलिये तीन ही तरहके आहार उन्हें रुचिकर होंगे। जो किसी भी प्रकारकी पूजा—उपासना नहीं करते, उनकी निष्ठाका पता लगेगा उनके आहारसे। पूजा चाहे कोई न करे, आहार तो वह करेगा ही। उसीसे उसकी निष्ठाकी पहचान हो-जायगी। इसीलिये भगवान् आहारकी बात कहते हैं—‘आहारस्त्वपि सः स्य त्रिविधो भवति प्रियः’। कुछ लोग कहते हैं कि सत्रहवें अध्यायके ७ वें श्लोकमें तीन प्रकारके आहारका वर्णन है,

परंतु वास्तवमें यह बात है नहीं। भगवान्ने आहारके साथ 'प्रिय' शब्द दिया है। 'प्रिय' शब्द इसलिये दिया गया है कि आहार मनुष्यको जैसा प्रिय होता है, वैसी ही उसकी प्रकृति होगी और जैसी उसकी प्रकृति है, श्रद्धा है, निष्ठा है, वैसा ही आहार उसे प्रिय लगेगा। आहारकी प्रियतामें आहारका वर्णन तो स्वतः हो गया। सात्त्विक पुरुषोंको सात्त्विक आहार प्रिय लगता है; राजस पुरुषोंको राजस एवं तामस पुरुषोंको तामस आहार प्रिय लगता है। अन्तःकरण आहारके अनुरूप बनता है। सातवें श्लोकके पूर्वार्द्धमें आहारकी बात कहकर फिर उत्तरार्धमें यज्ञ, तप तथा दानके तीन भेद किये हैं। यहाँ यह प्रश्न होता है कि आहारके साथ भगवान्ने यज्ञ, तप और दानकी बात क्यों छेड़ी? आहारकी चर्चा तो आयी थी परीक्षाके लिये। इसका उत्तर यह है कि अर्जुनने अपने मूल प्रश्नमें यजन-पूजन करनेवालोंके विषयमें पूछा था। यजनके अन्तर्गत दान और तप भी आ जाते हैं। इसीलिये आगे चलकर सत्रहवें अध्यायके २३वें श्लोकमें भगवान् कहते हैं—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।

ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥

परमात्माके नाम हैं—ॐ, तत् और सत्। ब्राह्मणोंको, वेदोंको, यज्ञोंको जिस परमात्माने बनाया उसी परमात्माके ये नाम हैं। यज्ञकी क्रिया सम्पन्न करनेवाले ब्राह्मण, यज्ञकी विधि बतानेवाले वेद और यजनकी क्रियाका नाम यज्ञ। परमात्माने इन तीनोंको रचा, इसीलिये सत्रहवें अध्यायके २४वें श्लोकमें भगवान् कहते हैं—

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।

प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥

(१७।२४)

अतएव 'हरिः ॐ' इस प्रकार उच्चारण करके ही यज्ञानुष्ठान प्रारम्भ करना चाहिये एवं इसी प्रकार ब्रह्मवादी पुरुष करते आये हैं। इसके बाद भगवान् कहते हैं—

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।

दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥

(१७।२५)

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।

प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥

(१७।२६)

भगवान्के नामोंका उल्लेख यहाँ इसलिये किया गया कि यज्ञ-दान-तपमें कोई अङ्ग-वैगुण्य रह जाय या कोई कमी रह जाय तो परमात्माके नामोच्चारणसे उसकी पूर्ति कर दी जाय; क्योंकि परमात्मासे ही यज्ञ पैदा हुए, परमात्मासे ही ब्राह्मण पैदा हुए और वेद भी प्रकट हुए परमात्मासे ही। इनमें कोई कमी रहेगी तो इन सबके मूल परमात्माका नाम लेनेसे उसकी पूर्ति हो जायगी। अठारहवें अध्यायके ५वें श्लोकमें भी इन्हीं तीन शुभ कर्मोंका उल्लेख हुआ है—

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

कहीं-कहीं शुभकर्मोंकी संख्या चार भी कही गयी है, जैसे आठवें अध्यायके २८वें श्लोकमें वेदाध्ययन, यज्ञ, तप और दान-चारका नाम आया है। कहीं-कहीं पाँचका भी उल्लेख हुआ है—जैसे ग्यारहवें अध्यायके ४८वें श्लोकमें—'न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरग्नैः।' वेद, यज्ञ, दान, तपके अतिरिक्त पाँचवीं क्रिया भी आ गयी। नवें अध्यायके २७वें श्लोकमें वेदाध्ययनके साथ भोजनका उल्लेख हुआ है—'यदश्नासि' कहकर इस प्रकार शुभकर्मोंके नामपर कहीं छःका, कहीं पाँचका, कहीं चारका, कहीं तीनका और कहीं केवल एक यज्ञका ही निर्देश भगवान्ने किया है। एक यज्ञके उल्लेखसे सम्पूर्ण शुभ कर्मोंका उल्लेख हो गया। 'यत्करोषि'के अन्तर्गत चारों वर्णोंके जीविकोपयोगी कर्म भी आ गये, जिनका वर्णन श्रीभगवान्ने १८वें अध्यायके ४१वें श्लोकसे प्रारम्भ करके ४२वें श्लोकमें ब्राह्मणके कर्म, ४३वेंमें क्षत्रियके एवं ४४वेंमें वैश्यके तथा शूद्रके कर्म बताये हैं। और फिर ४५वें श्लोकमें उन कर्मोंसे होनेवाली सिद्धिका उल्लेख किया है—'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।' जो सिद्धि यज्ञोंसे बतायी गयी, वही यहाँ वर्णोचित कर्मोंसे बतायी गयी है और उसकी प्राप्तिका प्रकार ४६वें श्लोकमें कहा गया है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

(१८।४६)

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य'से कर्मद्वारा पूजाकी बात आयी।

तब ये कर्म यज्ञरूप ही हुए न ?

माताएँ रसोई बनायें और ऐसा मानें कि मैं इस रूपमें भगवान्‌का पूजन कर रही हूँ, तो रसोई बनाना भी भगवान्‌का पूजन हो जायगा। मनुजी महाराजने रसोई बनानेकी क्रियाको भी 'यज्ञ' कहा है। मनुजी महाराजने लिखा है कि स्त्रीका पतिदेवके घरमें जाना ही उसका गुरुकुल-वास है। कारण, पति ही उसका एकमात्र गुरु है—'पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्।' वहाँ रसोई बनाना उसके लिये है—'अग्निहोत्र।' अग्निहोत्र ही यज्ञ है। इसी प्रकार विद्यार्थी अपने अध्ययनको यज्ञ मान सकता है। निष्काम भावसे तथा शुद्धरीतिसे किये गये सांसारिक सभी कार्य 'यज्ञ'रूप होते हैं। आयुर्वेदका जाननेवाला केवल जनताके हितके लिये वैद्यका काम करे तो उसके लिये वही यज्ञ है। इस प्रकार गीताके अनुसार कर्तव्यमात्र ही यज्ञ—भगवान्‌का पूजन बन जाता है। अवश्य ही कर्ममात्र भगवान्‌का पूजन तब होगा जब आप उसे भगवान्‌की पूजाके लिये करें। परंतु यदि भाव आपका वैसा नहीं होगा तो 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः।' जो जैसी श्रद्धावाला होगा, उसकी निष्ठा वैसी ही होगी। आप रुपयोंके लिये व्यापार करेंगे तो आपको रुपया मिलेगा, आपका किया हुआ व्यापार यज्ञ नहीं होगा; क्योंकि आपकी वैसी श्रद्धा नहीं, वैसा भाव नहीं है। जहाँ आपका वैसा भाव होगा वहीं आपका कर्म यज्ञ बन जायगा।

अब अपने विचार करें कि यज्ञ क्या है और देवता क्या हैं? देवता तो हुए यज्ञका फल देनेवाले उसके अधिष्ठाता देवता। अब उनका यज्ञके द्वारा पूजन करना है, तो पूजन आहुतिके द्वारा भी होता है और कर्तव्य-कर्मोंके द्वारा भी। कर्तव्य-कर्मोंके द्वारा पूजन सब कोई कर सकते हैं। मनुष्य है मध्यलोक—मर्त्यलोकका निवासी। स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताललोक—इन तीन लोकोंके समुदायका नाम है—त्रिलोकी। त्रिलोकीके मध्यमें रहनेवाला है—मनुष्य। भगवान्‌ने मनुष्यको मध्यमें निवास इसीलिये दिया है कि वह देवताओंकी भी तृप्ति कर सकता है और नरक एवं अधोलोकोंमें रहनेवालोंकी भी तृप्ति कर सकता है। सबका तर्पण होता है। द्विजातिलोग देवताओंका तर्पण करते हैं, ऋषियोंका तर्पण करते हैं, पितरोंका तर्पण करते हैं, भूत-प्राणियोंका तर्पण करते हैं तथा भूत, प्रेत, पिशाच आदि योनियोंमें गये हुए बान्धवोंका तर्पण करते हैं। जिनके वंशमें कोई

नहीं रहा, उनका भी तर्पण करते हैं। इस विषयमें तर्पणकी विधि देखें। जिनके कोई जल देनेवाला नहीं, उनका भी तर्पण करते हैं। साँप-बिच्छू आदि जितने अधोगतिमें गये हुए जन्तु हैं, जितने मध्यगतिको प्राप्त हैं और जितने ऊर्ध्व-गतिमें गये हुए हैं, सबको यहाँतक कि ऊँचे-से-ऊँचे भगवान्‌को भी तर्पण करते हैं। समुद्रको तर्पण करते हैं। समुद्रमें जल कम है क्या, जो जलसे उसकी तृप्ति की जाय? तात्पर्य यह कि मध्यमें रहनेवाला यह मनुष्य सम्पूर्ण लोकोंके जीवोंको तृप्त करता है। इस प्रकार सबको तृप्त करनेका अधिकार भगवान्‌ने मनुष्यको दिया है। वह त्रिलोकीके जीवोंको ही नहीं, भगवान्‌को भी तृप्त करता है। भगवान्‌की भी भूख-प्यास मिटानेवाला यदि कोई है तो वह मनुष्य ही है। भगवान्‌ नवें अध्यायके ३४ वें श्लोकमें कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

'मुझमें मन लगा, मेरा ही भजन कर, मेरा पूजन कर और मुझे ही नमस्कार कर।' यहाँ यह प्रश्न होता है 'भगवान्‌को भी भूख लगती है क्या?' 'हाँ' क्यों, उनमें भी कोई कमी है?' 'हाँ'—विनोदकी-सी बात है। जीव जो अधोगतिमें जा रहे हैं, यही भगवान्‌में कमी है। सारा संसार मिलकर भगवान्‌का स्वरूप है। अतः जो अधोगतिमें जाते हैं, उतना अङ्ग भगवान्‌का ही तो अधोगतिमें जाता है। यही भगवान्‌की भूख है। भगवान्‌ कहते हैं—'तू अपना सब कुछ मेरे अर्पण कर दे तो तेरा कल्याण हो जाय और मेरा काम बन जाय।' इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि भगवान्‌की तृप्ति भी मनुष्य कर सकता है। जीव-जन्तुओंकी तृप्ति तो वह करता ही है। भगवान्‌ तो यहाँतक कहते हैं कि 'भक्त मुझे बेच दे तो मैं विक्रि जाता हूँ।' 'मैं तो हूँ भगतनको दास, भगत मेरे मुकुटमणि।' ऐसी दशामें बताइये कि भक्त भगवान्‌के इष्ट हैं कि नहीं? अर्जुनको भी भगवान्‌ अठारहवें अध्यायके ६४वें श्लोकमें कहते हैं—'इष्टोऽसि मे ददमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।' तू मेरा इष्टदेव है। जीव भगवान्‌को इष्ट मानता है। भगवान्‌ कहते हैं—'तू मेरा इष्ट है।' जो भगवान्‌को अपना मन सौंप देता है, उसे भगवान्‌ अपना इष्ट मान लेते हैं, उसका आज्ञापालन करते हैं। रामावतारमें भगवान्‌ कहते हैं—'मैं सीताका त्याग कर सकता हूँ, समुद्रमें कूद सकता हूँ, अग्निमें प्रवेश कर सकता हूँ, परंतु पिताकी आज्ञा भंग करनेकी मुझमें शक्ति

नहीं। यह मनुष्य चाहे तो भगवान्‌का माँ-बाप बन जाय, भगवान्‌का दास बन जाय, भगवान्‌का भाई-बन्धु बन जाय, भगवान्‌की स्त्री बन जाय, भगवान्‌का बच्चा बन जाय, भगवान्‌का शिष्य बन जाय या गुरु बन जाय। अपने कुटुम्बसे ही तो आप राजी होते हैं। भगवान्‌का सम्पूर्ण यह मनुष्य बन सकता है। यह भगवान्‌का सब कुछ बन सकता है। भगवान्‌ उसे वही बना लेंगे और वैसी-की-वैसी मर्यादा उसके साथ निभायेंगे। वे उसके सुपुत्र बन जायेंगे। भाई भी बनेंगे तो असली। सुपुत्र-सत्पति-सन्माता सब कुछ बन जायेंगे भगवान्‌। शिष्य बने तो श्रेष्ठ चेला बनेंगे भगवान्‌। वसिष्ठजीके चेला श्रीराम थे ही। विश्वामित्रजीका चरण वे चाँपते ही थे। वे जहाँ जो भी बनते हैं, स्वाँग पूरा उतारते हैं। भगवान्‌का सब कुछ मनुष्य बन सकता है, इतना बड़ा अधिकार मनुष्यको भगवान्‌ने दिया है।

अब उसके लिये कहते हैं—‘यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।’ इसके पूर्व ८ वें श्लोकमें कहा—‘नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।’ नियत कर्म कर और न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। ‘अकर्मणः ते शरीरयात्रापि न प्रसिद्धयेत्।’ कुछ नहीं करेगा तो तेरा निर्वाह भी नहीं होगा, जीवन भी नहीं चलेगा। कर्म करनेसे ही होगा। साथ ही शास्त्रोंमें यह भी कहा है कि कर्मोंसे जन्तु बँधता है। ‘कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते।’ यह ध्यान देनेकी बात है कि यहाँ ‘जन्तु’ शब्दका प्रयोग हुआ है। जन्तु शब्दका स्वारस्य यह है कि जन्तु (जानवर) ही बन्धनमें आते हैं, मनुष्य नहीं। मनुष्य बँधता है सकाम-कर्म करके, स्वार्थबुद्धिसे। ऐसे मनुष्यको जन्तु ही समझें। गीता भी कहती है—‘अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।’ जो स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर मोहमें फँसे हुए हैं, वे मनुष्य थोड़े ही हैं, वे तो जन्तु हैं—भले ही उनकी आकृति मनुष्य-की-सी क्यों न हो। ‘यद् यद्धि कुरुते जन्तुस्तत् तत् कामस्य चेष्टितम्।’ जानवरकी सारी चेष्टाएँ कामयुक्त—स्वार्थप्रेरित होती हैं। कामनासे ही कर्म बन्धनकारक होता है।

इसलिये भगवान्‌ कहते हैं—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

जो कर्म परमात्माकी प्रसन्नताके लिये, लोकसंग्रहके लिये, सब लोगोंके उद्धारके लिये, आसक्ति, स्वार्थ और कामनाको त्याग कर किया जाता है, वह बाँधता नहीं है। यही है ‘यज्ञ’।

इसके अगले श्लोकमें भगवान्‌ कहते हैं—‘सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।’ सृष्टिके आदिमें प्रजापति ब्रह्माने यज्ञोंके साथ प्रजाओंको उत्पन्न किया। यहाँ ‘प्रजाः’ शब्दके अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—सभी आ जाते हैं। ‘प्रजाः’ शब्दके साथ ‘सहयज्ञाः’ विशेषणको देखकर यह शङ्का होती है कि यज्ञमें सबका अधिकार तो है नहीं, फिर भगवान्‌ ने सारे प्रजाजनोंके साथ यह विशेषण क्यों लगाया? इसका उत्तर यही है कि यहाँ उस यज्ञकी बात नहीं है, जिसमें सबका अधिकार नहीं। यहाँ ‘यज्ञ’का व्यापक अर्थ—‘कर्तव्य-कर्म’ लेना चाहिये। ‘यज्ञ’का इसी अर्थमें प्रयोग समझना चाहिये। ‘स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य’ द्वारा भगवान्‌ने आगे चलकर यही बताया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—सभी अपने-अपने कर्मद्वारा उनका पूजन करें। इसी कर्तव्य-कर्मरूप यज्ञके साथ प्रजाकी सृष्टि करके प्रजापतिने कहा—इसके द्वारा तुम सबकी वृद्धि करो और यही तुम्हारी इष्टकामनाकी पूर्ति करनेवाला हो—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष्ट वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥

परंतु साथ ही भगवान्‌ कहते हैं—‘इष्टकामनाके साथ, अपना सम्बन्ध मत जोड़ना।’ तुम यज्ञके द्वारा देवताओंका पूजन करो। गीता अध्याय २ श्लोक ४५ में भगवान्‌ अर्जुनको ‘निर्योगक्षेम आत्मवान्’ बननेको कहते हैं और ९वें अध्यायके २२ वें में कहते हैं—‘योगक्षेमं वहाम्यहम्’ ‘तुम्हारे योगक्षेमका वहन मैं करूँगा, तू उसकी चिन्ता छोड़ दे।’ इसी प्रकार यहाँ भी वे कहते हैं—‘देवताओंका तुम पूजन करो पर देवताओंसे कुछ चाहो मत। देवता तुम्हारा काम करें पर यह तुम उनसे चाहो मत। चाहनेसे सम्बन्ध जुड़ जाता है। चाहयुक्त कर्म हो जाता है ‘तुच्छ’। उदाहरणके लिये गीताका विवेचन किया हमने, भिक्षा दे दी आपने, दोनोंका काम हो गया। पर गीताका विवेचन किया हमने और उसके साथ यह स्वार्थका सम्बन्ध जोड़ लिया कि गीताकी बात सुनानेसे हमें रोटी मिल जायगी तो हमारा यह काम तुच्छ हो जायगा। किसी भी क्रियाके साथ स्वार्थका सम्बन्ध जोड़ लेनेसे वह क्रिया तुच्छ हो जाती है, निष्फल हो जाती है, बन्धनकारक हो जाती है। कोई पूछे—‘परम श्रेय कैसे होगा?’ उत्तर है ‘अपने कर्तव्यका पालन करो; परंतु लोकहितके लिये। उससे अपने स्वार्थका सम्बन्ध मत जोड़ो।’

क्या बतायें सज्जनो ! आप सब काम करते हैं । घरोंमें वहनें, माताएँ, भाई, बच्चे, छोटे-बड़े सब काम करते हैं; परंतु बड़ी भारी भूल होती है यह कि आसक्ति, कामना और स्वार्थके साथ हमलोग सम्बन्ध जोड़ लेते हैं; किंतु उससे लाभ कुछ नहीं होता । लौकिक लाभ भी नहीं होता; फिर अलौकिककी तो बात ही क्या है ? इच्छावालेको लोग अच्छा भी नहीं कहते । कहते हैं—‘अमुक बड़ा स्वार्थी है, पैटू है, चट्टू है ।’ उसके चाहनेपर हम कौन-सा अधिक दे देंगे ? उल्टा कम देंगे । स्वार्थका सम्बन्ध रखनेवालेको अधिक देना कोई नहीं चाहता । किसी साधु-ब्राह्मणको कुछ देंगे तो त्यागी देखकर ही देंगे या भोगी-रागी समझकर देंगे ? घरमें भी रागीसे, भोगीसे वस्तु छिपायी जाती है । जो रागी नहीं होगा, उसके सामने वस्तु बेरोक-टोक आयेगी । रागीको वस्तु मिलनेमें भी बाधा लगेगी और कल्याणमें तो महीती बाधा लगेगी ही । इसके विपरीत अपना कर्तव्य समझकर सेवा करोगे तो सेवा तो मूल्यवती होगी और वस्तु अनायासमें मिलेगी । आराम मुफ्तमें मिलेगा । मान-सत्कार-बड़ाई मुफ्तमें मिलेगी । पर चाहोगे तो कैस जाओगे । यह बात गीता ग्रन्थि खोलकर बताती है । तुम जो काम करो, इस रीतिसे करो । तीसरे अध्यायके १०-११-१२ में भगवान् कहते हैं—

• सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥

इस यज्ञसे वृद्धिको प्राप्त हो । यज्ञके द्वारा पूजित देवता तुम्हारी उन्नति करेंगे । अपने-अपने कर्तव्यद्वारा सृष्टिमात्रको सुख दो । इससे विश्व-ब्रह्माण्डका, प्राणिमात्रका हित होगा । स्वार्थ, ममता, आसक्ति छोड़कर कामना एवं कर्तृत्व-अभिमानका त्याग करके कर्तव्य-कर्म करनेसे सृष्टिमात्रको शान्ति मिलती है, सृष्टिमात्रका उद्धार होता है, कल्याण होता है, हित होता है । कितना बड़ा उपकार होता है केवल कामना छोड़नेसे । जो-जो कर्तव्य-कर्म करते हो, उसे किये जाओ, अकर्तव्य तो करो नहीं और कर्तव्य-कर्ममें कामना-आसक्ति न करो तो सारे संसारका हित होगा, सबका कल्याण होगा । ‘श्रेयः परमवाप्स्यथ’ । जो दूसरोंको उनका हिस्सा न देकर अकेला खाता है, वह चोर है—‘स्तेन एव सः ।’

श्रीभगवान् कहते हैं—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।

भुङ्क्ते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

यज्ञशेष खानेवाले सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो अपने लिये पकाते हैं वे पापी पापका ही भक्षण करते हैं— निरा पाप खाते हैं । मनुष्यमें स्वार्थबुद्धि जितनी अधिक होगी, उतना ही बड़ा पापी वह होगा । एक बात और है । यज्ञ जो किया जाता है, उसमें होम मुख्य है—आहुति देना मुख्य है ।

अन्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।

आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥

अग्निमें दी हुई आहुति सूर्यनारायणकी किरणोंको पुष्टि पहुँचाती है और वे किरणें पुष्ट होकर जल खींचती हैं और वह जल मेघ बनकर बरसता है । उस वर्षासे जगत्की तृप्ति होती है । इससे भी यही बात प्रकट होती है । शुभ कर्म करनेसे देवताओंकी संतुष्टि होती है । आप यदि अपने माता-पिताकी आज्ञाको मानकर शुभ कर्म करेंगे तो इससे माता-पिता प्रसन्न होंगे ही । उनकी प्रसन्नता क्या सामान्य अर्थ रखती है ? वह बड़ी मूल्यवान् निधि है । इसी प्रकार यदि आप अपने शास्त्रोंकी मर्यादाका पालन करेंगे तो इससे क्या ऋषि-मुनि-देवता आपसे प्रसन्न नहीं होंगे ? यही है यज्ञके द्वारा उनका पूजन । उनका पूजन किस प्रकार होगा— यह भी भगवान् बतलाते हैं ?

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥

प्राणी जितने भी पैदा होते हैं, वे अन्नसे होते हैं । अन्न होता है पर्जन्यसे—वर्षासे और वर्षा यज्ञसे होती है । यज्ञ किससे होता है ? ‘यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।’ यज्ञ कर्मसे निष्पन्न होता है । कर्म होता है वेदसे । वेद प्रकट होते हैं अक्षर परमात्मासे । इसलिये भगवान् कहते हैं—

अतस्त्वदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।

ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥

(१७ । २३)

सबका मूल है परमात्मा, परमात्मासे प्रकट हुए वेद । वेदोंने वतायी क्रियाकी विधि । क्रियासे कर्म किया ब्राह्मणोंने अर्थात् प्रजाने । उन कर्मोंसे हुआ यज्ञ, उस यज्ञसे हुई वर्षा । वर्षासे हुआ अन्न; अन्नसे हुए प्राणी और उन्हें प्राणियोंमेंसे मनुष्योंने यज्ञ किया । यज्ञ पशु-पक्षी तो करनेसे

रहे । ये वृक्ष, घास और पहाड़ यज्ञ थोड़े ही कर सकते हैं ? मनुष्य ही कर सकते हैं । इस प्रकार यह सृष्टि-चक्र चल पड़ा । वह परमात्मा सर्वगत ब्रह्म नित्य यज्ञमें प्रतिष्ठित है । परमात्माकी सर्वगतताके विषयमें भगवान् कहते हैं—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना । (१।४)

‘अव्यक्तरूपसे मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ ।’

इसपर शंका होती है कि भगवान् जब सर्वगत हैं, तब उन्हें केवल यज्ञमें नित्य प्रतिष्ठित क्यों कहा ? क्या वे अन्यत्र नित्य प्रतिष्ठित नहीं हैं ? वे तो सभी जगह नित्य हैं । फिर यज्ञमें क्या विशेषता है ? इसका उत्तर यह है कि यज्ञमें परमात्मा प्राप्त होते हैं । जमीनमें सर्वत्र जल है, पर वह मिलता है कुँएमें, सब जगह नहीं मिलता । पाइपमें सब जगह जल भरा रहता है, पर वह मिलता है वहाँ, जहाँ कल लगी होती है । सब जगह जल है नहीं, ऐसी बात हम थोड़े ही कह सकते हैं । पर सर्वत्र वह मिलता नहीं । इसीलिये सर्वगत ब्रह्मको नित्ययज्ञमें प्रतिष्ठित कहा गया है । यज्ञ कौन-सा ? कर्तव्य-कर्ममात्र, जो निष्कामभावसे किया जाय, वही ‘यज्ञ’ है ।

अब देखिये, यज्ञकी परिभाषा ध्यानमें आ गयी । और उस यज्ञमें परमात्मा मिलते हैं यह बात भी समझमें आ गयी । उस यज्ञके विषयमें भगवान् कहते हैं—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।

(गीता ३।१३)

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।

(गीता ४।३१)

तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभान् ॥

(गीता ४।१६)

इसलिये कोई परमात्माकी प्राप्ति करना चाहे तो वह यज्ञ करे । जो यज्ञ नहीं करता उसके विषयमें भगवान् कहते हैं—

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥

(गीता ३।१६)

उपर्युक्त चक्रका जो अनुवर्तन नहीं करता, इसके अनुसार नहीं चलता, उसके लिये भगवान् ने तीन विशेषण दिये हैं—‘अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ।’ ‘अघायु’ कहनेका तात्पर्य यह है कि उसकी आयु, उसका जीवन निरा पापमय । गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी कहा है—

‘जीवत जड़ नर परम अभागी’ । वे परम अभागे हैं ।

‘जीवत सब सम चौदह प्राणी’—वे जीते ही मुर्देके समान हैं जो भगवान् की दिशामें नहीं चलते । उनकी आयु अधरूप है । कहा है—

पर निंदा पर द्रोह रत पर धन पर अपवाद ।

ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद ॥

ऐसे लोग नररूपमें राक्षस हैं । मनुष्यको खा जाय वह राक्षस । उनके लिये दूसरा विशेषण दिया है—‘इन्द्रियाराम’ । केवल इन्द्रियोंको सुख पहुँचाना—भोग भोगना, सुस्वादु भोजन खाना, सुन्दर दृश्य देखना, कोमल वस्तुओंका स्पर्श करना, आलस्यसे सोना—यही है इन्द्रियारामता । तीसरी बात कहते हैं—‘मोघं पार्थ स जीवति’ वह संसारमें व्यर्थ ही जीता है । यह हुई सभ्यताकी भाषा । तात्पर्य है कि वह मर जाय तो अच्छा । उसका न जीना ही अच्छा है । श्रीगोस्वामीजीने कह दिया—‘कुंभकरन सम सोवत नीके’ । यह तो सोया रहे तभी अच्छा । अभिप्राय यह कि ऐसे लोग पृथ्वीपर भाररूप ही हैं—पृथ्वीने कहा मुझे भार वनस्पतिका नहीं है, पहाड़ोंका नहीं है, मुझपर भार तो उसका है, जो भगवद्भक्तिसे हीन है—‘भगवद्भक्तिहीनो यस्तस्य भारः सदा मम’ । उसका मुझपर सदा भार है । उपर्युक्त सृष्टिचक्रका जो अनुवर्तन नहीं करता, भगवान् कहते हैं—‘उसका जीवन भाररूप है ।’ सृष्टिचक्रका अनुवर्तन क्या है—यह ऊपर बता ही दिया गया । निष्काम भावसे या भगवान् की पूजाके भावसे अपने कर्तव्यका तत्परतासे पालन करना ही सृष्टिचक्रका अनुवर्तन है । जिसका, जहाँ जो कर्तव्य-कर्म है, वह उस कर्मको करे । साथमें कर्तृत्वाभिमान न हो, ममता न हो, आसक्ति न हो, कामना न हो, पक्षपात न हो, विषमता न हो । ये सब विषरूप हैं । सिंगीमोरा, संखिया है, कुचिला है, भिलावा आदि जो जहर हैं, उन्हें भी वैद्यलोग शुद्ध करके औषधरूपमें प्रयोग करते हैं । उनसे रोग दूर होते हैं । उनका जहर यदि बना रहे तो उससे मनुष्य मर जाता है । आसक्ति, कामना, पक्षपात, विषमता, अभिमान, स्वार्थ आदि सब कर्मोंमें जहररूप हैं । इस जहरके भागको निकाल देनेसे हमारे कर्म महान् अमृतमय होकर जन्म-मरणको मिटा देनेवाले बन जायेंगे । कैसी बढ़िया बात है ! गीता हमें यही सिखाती है !

हमसे दूर रहें

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच० डी०)

हमारे पास कौन रहे ? हमसे क्या दूर रहे ? इन प्रश्नों-ने भारतीय विचारकोंको सदा उलझनमें डाला है ।

हमसे क्या दूर रहे ? इस प्रश्नपर हमारे मनीषियोंने बहुत सोचा है, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणसे विचार किया है, विषयके हर पहलूपर मन्थन किया है । यह उत्तर मानव-जीवनकी प्रगति और विकासके लिये उपयोगी है ।

हमसे दूर वे चीजें रहें, जो हमारा अहित करती हैं; वे दुर्गुण दूर रहें, जो हमारे मन, शरीर और आत्माको हानि पहुँचाते हैं; वे व्यक्ति दूर रहें, जो अपने सङ्गसे हमारे अंदर दोष उत्पन्न करते हैं । हमारी खराब आदतें, बुरा स्वभाव, क्लेश, रोग, शोक, चिन्ता और द्वेष हमसे दूर रहें; क्योंकि ये सब अस्वास्थ्यकारी और हानिकारक हैं । वे कौन-कौन-से विषय हैं जो हमसे दूर रहें ? हमारे शास्त्र कहते हैं—

हमसे वे लोग दूर रहें !

संसारमें असंख्य व्यक्ति हैं, भिन्न-भिन्न रंग, रूप, रुचि, स्वभाव और मानसिक विकासके हैं; पृथक्-पृथक् आदर्श और उद्देश्यवाले हैं; रहन-सहन और आदतोंमें अलग-अलग हैं । ये व्यक्ति बाहरसे सब एक-से ही लगते हैं, पर मन, बुद्धि और स्वभावसे बिल्कुल भिन्न हैं । इनके आचरणमें जमीन-आसमानका अन्तर है । कुछसे आपके जीवनमें नया उत्साह और उन्नतिके लिये नवप्रेरणा मिलती है, दूसरोंसे कोई कुरुचि या विषैली आदत मिल सकती है । अतः अच्छे-बुरे, ऊँचे-नीचे, उन्नतिशील और पतनोन्मुख आदमियोंकी पहचान बड़ी जरूरी है । आप अच्छे विचार और शुभ संकल्पोंवाले व्यक्तियोंके सत्संगमें रहें और इनसे बचें—

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान् मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।

भतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नोदुरिताय धायीः ॥

(ऋग्वेद १ । १४७ । ५)

अर्थात् आप उन व्यक्तियोंसे सदैव दूर रहें, जो दूसरोंकी निन्दा और परछिद्रान्वेषणमें ही लगे रहते हैं; क्योंकि

उनके साथ रहनेसे अपना स्वभाव भी वैसा ही त्रुटिपूर्ण बन जाता है ।

ऐसे व्यक्ति सदा दूसरोंकी कटु आलोचना और खराबियाँ निकालनेमें ही लगे रहते हैं । उनमें नैतिक, सांसारिक, व्यापारिक और आत्मिक कोई भी लाभ नहीं होता । उनके सङ्गसे पर-दोष-दर्शनकी क्षुद्र तथा नीच प्रवृत्ति बढ़ती है ।

हम जैसे लोगोंके साथ दिन-रात रहते हैं, गुतरूपसे उनके विचार और आदतें भी ग्रहण करते जाते हैं । गुण-अवगुण सब संक्रामक हैं । इसलिये निन्दा करनेकी क्षुद्र प्रवृत्तिवाले व्यक्तियोंसे सदा बचना चाहिये ।

अज्ञानियों और मूढ़ जनोंसे दूर रहें !

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे ।

अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥

(ऋग्वेद १ । १५८ । ६)

अर्थात् अज्ञानी व्यक्ति (अपनी मूढ़ता, अज्ञानता, संकुचितता और अत्यज्ञताके कारण) लोभातुर होकर रोग-शोकसे दुःख पाते हैं, किंतु धर्मनिष्ठ पुरुष ज्ञान और विज्ञान बढ़ाकर स्वयं बन्धनमुक्त रहते हैं तथा दूसरोंको भी संसार-सागरसे पार ले जाते हैं ।

अज्ञानसे अदूरदर्शिता उत्पन्न होती है । अविकसित व्यक्तिकी दर्शन-पद्धति संकुचित रहती है । वह उन चीजोंको अनावश्यक महत्त्व देता है, जिनका वास्तवमें साधारण-सा स्थान है । अज्ञानी लोग गुण, कर्म और स्वभावके स्थान-पर पूर्वपुरुषों और माता-पिताके द्वारा अर्जित सम्पत्तिसे मनुष्यकी उच्चता-नीचता परखते हैं । वे अपनी भेड़ चालसे समझदार आदमियोंको भी गुमराह करते हैं ।

नादान दोस्तसे समझदार दुश्मन ज्यादा अच्छा है; क्योंकि हमें सदा उससे चौकन्ना रहना पड़ता है ।

हम साधु पुरुषोंके ही साथ रहें !

आप समझदार, विद्वान्, शान्त और संतुलित रहनेवाले व्यक्तियोंके ही साथ रहें, जिससे आपको सुरुचि और

सद्गान मिले, उसीका सत्संग करें। झगड़ा लू और उत्तेजक स्वभाववालोंसे दूर रहें।

मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाऽविष्यवे रिपवेदुच्छुनायै ।
मा दध्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन् परा दाः ॥
(ऋग्वेद १ । १८९ । ५)

याद रखिये, इस समाजमें आपके चारों ओर अच्छे-बुरे सभी प्रकारके आदमी हैं। यहाँ मङ्गल मृदु स्वभाववाले सज्जन पुरुष भी हैं और बाध, सर्प, बिच्छू आदि हिंसक विषैले जीवजन्तु भी बड़ी संख्यामें छिपे हुए हैं। बल्कि ये दूसरी कोटिमें विषैले व्यक्ति अधिक हैं और आपको परेशान करनेका मौका ढूँढ़ते रहते हैं।

इसलिये समझदार मनुष्यको चाहिये कि इन असाधुओंसे बचकर साधु-पुरुषोंका साथ करे, शुभ कर्मोंको ही ग्रहण करे और दुष्कर्मोंसे दूर रहे।

हमारे कर्मका कभी नाश नहीं होता। कल्याणकारी धर्म-कर्म, दूसरोंकी सेवा और सहायता, पुण्य-कार्य सदा ही देर-सवेर फलदायक होते हैं। इस लोक और परलोकमें धर्म-को ही सबसे श्रेष्ठ कहा है। बुद्धिमान् धर्मसे बढ़कर किसी-को बड़ा नहीं कहते—

धर्म एव कृतः श्रेयानिह लोके परत्र च ।
तस्माद्धि परमं नास्ति यथा प्राहुर्मनीषिणः ॥

धार्मिक प्रवृत्तिवाले व्यक्तियोंके साथ रहिये। उनसे आपको जीवन और जगत्-सम्बन्धी उत्तमोत्तम रहस्य प्राप्त होंगे। उनके आचरण, वाणी, कर्मसे आपके उन्नतिशील जीवनको प्रेरणा प्राप्त होगी।

आयुर्नसुलभं लब्ध्वा नावकर्षेद् विशांपते ।
उत्कर्षार्थे प्रयतेत नरः पुण्येन कर्मणा ॥

यह दुर्लभ आयु पाकर मनुष्यको कभी पाप-कर्म नहीं करना चाहिये। समझदार व्यक्तिको सदा ही पुण्यकर्मोंसे अपनी और समाजकी उन्नतिके लिये कार्य करना चाहिये।

हम कटुवचन बोलनेवालोंसे दूर रहें !

कुवाणीका प्रयोग करनेवाले, सदा दूसरोंको गाली देने या कुवचनोंका प्रयोग करनेवाले असभ्य व्यक्तियोंसे दूर रहना चाहिये। ये लोग पशु-तुल्य होते हैं और मनुष्य-

की सबसे बड़ी विभूति वाणीका दुरुपयोग करते हैं।

गाली या अश्लील भाषाका प्रयोग करनेवाला व्यक्ति अंदरसे पशु-प्रवृत्तियोंमें ही जकड़ा रहता है। गाली समाजके लिये अहितकर है। अंदर छिपे हुए पाप और दुष्ट वासनाको प्रकट करनेवाला दोष है।

सदा निन्दा, क्रोध तथा कटुवचनोंका प्रयोग करनेवाले मानसिक दृष्टिसे बीमार हैं। वे कुछ भी कर बैठते हैं। उनसे हम सदा दूर ही रहें।

मा नो निदे च वक्तव्यैर्यो रन्धीररावणे ।

त्वे अपि क्रतुर्मम ॥

(ऋग्वेद ७ । ३१ । ५)

हे परमेश्वर ! जो मनुष्य कठोर और निन्दनीय वचन बोलते हों, उनसे हम सदैव दूर रहें। कठोरता, रूक्षता, कर्कशता इत्यादि वृत्तियोंसे हमारा कोई सरोकार न हो। हमारे सब कार्य आपको ही समर्पित हों अर्थात् हम सदैव शुभकर्म ही करें।

रूक्षता और कर्कशता आसुरी प्रवृत्तियाँ हैं। ये उस कठोरताकी प्रतीक हैं जो असभ्य और दानवी प्रकृतिके व्यक्तियोंमें पायी जाती हैं।

आप सरस और प्रेममय रहें। पीड़ित और दुःखितके लिये सदा आपका हृदय खुला रहे।

यो मा पाकेन मनसा
चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता
असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥
(ऋग्वेद ७ । १०४ । ८)

अर्थात् मिथ्यावादी और असत्य भाषण करनेवाले झूठे व्यक्तिसे दूर रहना ही अच्छा है।

झूठा व्यक्ति जब दूसरोंको धोखा दे सकता है, तो वह आपका कैसे सगा बन सकता है? जीवनके सैकड़ों कार्य हैं, जो झूठके कारण हानिप्रद हो सकते हैं। एक झूठको छिपानेके लिये वह दस नये और अधिक बड़े झूठ बोलता है। इसलिये दो-तीन बार परख करनेके बाद झूठका सङ्ग त्याग देना ही लाभदायक है।

झूठेका व्यवहार कपटपूर्ण एवं स्वार्थमय होता है। वह स्वार्थसाधनके लिये मित्र तथा सम्बन्धियोंसे भी विश्वासघात कर सकता है। स्वार्थी और कपटीसे सावधान रहें।

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न
तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।

यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि
प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥

(ऋग्वेद १० । ७१ । ६)

आपको अपनी जीवनयात्रामें ऐसे व्यक्ति मिलेंगे, जो अपने स्वार्थसाधनके लिये किसीसे मित्रता कर लेते हैं। फिर जब उनका अपना काम निकल जाता और स्वार्थ सिद्ध हो जाता है, तो उसे त्याग देते हैं। ऐसे कपटी लोगोंसे एक बार धोखा खाकर सावधान हो जाना चाहिये और फिर कभी उनका विश्वास नहीं करना चाहिये। ऐसे धोखेबाजोंको निन्दा और अपयशका भागी बनना पड़ता है।

स्वार्थी और कपटी मनुष्य हमसे दूर रहें। जो दूसरोंका अहित ही सोचते हैं और जिनसे जीवनके उत्थानकी प्रेरणा नहीं मिलती, वे शुष्क और हृदयहीन हमसे दूर रहें।

• आततायीका प्रतिरोध करना चाहिये

जिन दुष्टोंसे देशको हानि होती है और जो अपने क्षुद्र स्वार्थोंके लिये धोखा देनेसे नहीं चूकते, उनसे हम दूर रहें।

मातृभूमिके प्रति विश्वासघात करनेवाले, स्वयं अपने ही बन्धु-बान्धवोंका अपकार करनेवाले मुखोंसे हम बचते रहें।

हमारे समाजमें तोड़-फोड़, भेद-भाव, कलह और विद्वेष फैलानेवाले असामाजिक तत्व हमारे पास न आयें।

यदि नो गां हंसि यद्यश्चं यदि पूरुषम्।

तं त्वा सीसेन विध्यामो यथानोऽसौ भवीरहा ॥

(अथर्ववेद १ । १६ । ४)

जो हमारे गाय आदि पशुधनोंको नष्ट करता है, वह दण्डनीय है। अर्थात् जो मानवीय हितोंका अतिक्रमण करे और असामाजिक काम करे, उसका वीरतापूर्वक प्रतिरोध करना चाहिये।

समाजके हितमें ही हम सबका, व्यक्ति और परिवारका हित समाया हुआ है। अतएव समाजविरोधी प्रवृत्तियोंको सदा ही रोकना उचित है। समाजके हर व्यक्तिको शिक्षा, विकास एवं उन्नति करनेका पूर्ण और समान अवसर मिलना चाहिये।

यः सप्तनो योऽसप्तनो यश्च द्विषन् छपाति नः।

देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥

(अथर्ववेद १ । १९ । ४)

अर्थात् वह समाजकी तोड़-फोड़ करनेवाला, जो हमारे ऊँचे नैतिक हितोंको नष्ट करना चाहता है, उसे हम नष्ट कर दें। दुष्ट पुरुषोंसे सदैव आत्मरक्षा करनी चाहिये। बुरे लोगोंको ठीक पहचान न कर पानेसे ही प्रायः लोगोंका अहित होता है। इसलिये भले-बुरेका विवेक सदैव बनाये रहें।

व्याघ्रं दत्ततां वयं प्रथमं जम्भयामसि।

आ दुष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ॥

(अथर्ववेद ४ । ३ । ४)

अर्थात् दुष्ट स्वभाववाले हिंसक जन्तुओं-जैसी राक्षसी प्रवृत्तियोंवाले चोर, बदमाशोंको नष्ट करना धर्म है। समाजमें इस प्रकारके लम्पट, चोर, हिंसा, वैर, स्वार्थ-साधनके रोगों और दोषोंका सदैव निवारण करके रहना चाहिये।

हमारे समाजमें मनुष्यके रूपमें अनेक हिंसक पशु और राक्षस चल-फिर रहे हैं। इनकी बाहरी सूरत तो मनुष्यों-जैसी है, पर अंदरसे ये धिनौनी पशुवृत्तिसे भरे हुए हैं। जैसे बिच्छूकी आदत डंक मारनेकी है तथा साँपका काम डँस लेना है, ऐसे ही ये दुष्ट व्यक्ति समाजके लिये हानिकर हैं। हम इनसे सावधान रहें ! बचते रहें।

मनुष्योंके हाथों जो असुरता फैल रही है, वह हमसे दूर रहे। भौतिकताकी चकाचौंधमें आध्यात्मिकता भुला न दी जाय। धर्मको व्यावहारिक बनानेकी आज सर्वाधिक आवश्यकता है। विज्ञान बढ़े, पर मानवीय संस्कार भी कम न हों।

मधुर

अनीखी राधा-माधव-प्रीति ।

नहीं वासना तनिक, एक बस,

प्रियतम-सुख-रस-रीति ॥

नहिं भ्रम, नहीं मोह,

नहिं बंधन, नहीं मुक्तिकी चाह ।

नहीं पाप, नहिं पुन्य,

पुन्य-रस-सागर भर्यौ अथाह ॥

जीवन कौ नहिं हेतु अन्य कछु,

नहिं मरजादा-सेतु ।

फहरि रह्यौ नित अमित

प्रेम को पावन मंगल-केतु ॥

सुद्ध सुभाव अनन्य प्रीति-रस,

नहिं बिभिचारी भाव ।

नित्य मिलन में नित्य मिलन को

सुचि सुख, सुचितम चाव ॥

नित्य नवीन विमल गुण-दरसन,

निरगुन रति निष्काम ।

नित नव चित्त-बित्तहर, बाढ़त

सुचि लावन्य ललाम ॥

नहीं भोग, नहिं त्याग,

नहीं कछु राग, नहीं बैराग ।

दोउनमें दोउन के सुखहित

छाय रह्यौ अनुराग ॥

दोउ प्रवीन, दोउन के मन की

जानत दोऊ बात ।

दोउ सेवत नित, सेवा-हित

नित दोऊ नित ललचात ॥

नित्य एकरस, एकप्राण दोउ,

नित्य एक ही टेक ।

नित्य मिलन कौ आतुर,

नित मिलि रहे, न न्यारे नेक ॥

श्रीराधा-माधवका (प्रियतम प्रेमास्पद श्रीभगवान् और प्रेमी भक्तका) प्रेम विलक्षण है । उसमें कहीं भी तनिक भी किसी प्रकारकी कोई वासना नहीं है । वह तो बस, एकमात्र प्रेमास्पदको तथा प्रेमीको सुख प्राप्त करानेकी रसमयी रीति है । उस पवित्र प्रेममें न कहीं कोई भ्रम या संदेह है, न किसी भी प्रकारका मोह है, न्यारे (पृथक्) नहीं हैं ।

न कोई मायाका बन्धन है और न मुक्तिकी चाह है । न वहाँ पाप है न पुण्य है (अपने लिये अपना कोई कर्म ही नहीं है) । वहाँ तो बस, एक पवित्र प्रेमरसका अथाह समुद्र भरा है । (उस अथाह पवित्र प्रेमसागरमें सब कुछ डूबकर पवित्र प्रेमस्वरूप बन गया है ।) वहाँ न तो कर्तव्यपालन और अकर्तव्य-त्याग अथवा भुक्ति-मुक्तिरूप जीवनका कोई दूसरा हेतु है और न किसी मर्यादाका सेतु (विधि-विधानका बन्धन) ही है । वहाँ तो बस, अपरिमित पवित्रकारी प्रेमका नित्य निरन्तर मङ्गलमय ध्वज फहरा रहा है । वहाँ शुद्ध सुन्दर भावमय अनन्य प्रेम-रस है, कोई भी व्यभिचारी भाव नहीं है । वहाँ नित्य मिलनका नित्य पवित्र सुख है और उस नित्य मिलनमें ही नित्य मिलनका पवित्रतम चाव (लालसा) है । वहाँ परस्पर नित्य नवीन निर्मल गुण दिखायी देता है, तथापि वह प्रेम नित्य निर्गुण है—गुणरहित, गुणकी अपेक्षासे शून्य है । वह निष्काम है—उसमें किसी प्रकारकी भी कामनाकी लेश-गन्ध-कल्पना नहीं है । उस पवित्र प्रेममें प्रेमास्पदका, प्रेमीका तथा प्रेमका पवित्रतम सौन्दर्य नित्य नया-नया बढ़ता ही रहता है, जो परस्पर चित्तरूपी धनका अपहरण करनेवाला है । वहाँ न भोग है और न त्याग है, न किसी प्राणी-पदार्थमें राग है और न किसीमें वैराग्य है, वहाँ तो बस, दोनोंमें दोनोंको सुख पहुँचानेके लिये एक पवित्रतम अनुराग छया है । दोनों ही बड़े चतुर हैं, दोनों ही दोनोंके मनकी बात जानते हैं । (दोनोंके मन एक ही हैं ।) दोनों ही नित्य दोनोंकी सेवा करते हैं और दोनों ही नित्य सेवाके लिये नित्य ललचाते रहते हैं । दोनों नित्य एकरस हैं, दोनों नित्य एकप्राण हैं, दोनोंकी नित्य एक ही टेक है, दोनों ही नित्य मिलनके लिये आतुर हैं और दोनों ही नित्य मिल रहे हैं—कभी तनिक भी, तनिक-से कालके लिये भी किसी भी भावसे न्यारे (पृथक्) नहीं हैं ।

अधर्म जो धर्म जान पड़ता है

विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा च्छलः ।

अधर्मशास्त्राः पञ्चमेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत् त्यजेत् ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । १५ । १२)

अनेक बार ऐसा होता है कि मनुष्य कोई कार्य धर्म समझकर करना चाहता है; किंतु वह उसके लिये धर्म होता नहीं है। ऐसा भ्रम कहाँ-कहाँ होता है, इसके लिये देवर्षि नारदने अधर्मकी पाँच शाखाएँ बतलायी हैं—विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा और छल ।

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ।

अपनी योग्यता, रुचि, सामाजिक परिस्थितिके अनुसार जो अपना धर्माचरण एवं साधनका अधिकार है, उसमें निष्ठा—टढ़ताका होना ही गुण कहा गया है। उसके अनुसार आचरण ही अपने लिये धर्म है।

धर्मबाधो विधर्मः स्यात् ।

अपने धर्माचरणमें, अपने साधनमें जो बाधा डालता हो, वह अपने लिये विधर्म है। भले वह आचरण वह साधन बहुत श्रेष्ठ हो, बहुत श्रेष्ठजन उसका आचरण भले करते हों, शास्त्रोंमें भले ही उसकी बहुत प्रशंसा हो; किंतु यदि वह अपने अधिकार-प्राप्त धर्ममें बाधा देता है तो अपने लिये वह अधर्म है।

उदाहरणके लिये देश-रक्षाके लिये सीमापर नियुक्त सैनिक हैं। उनका धर्म है सतत सावधानीपूर्वक देशकी रक्षा करना और यदि शत्रु आक्रमण करे तो उसपर पूरी शक्तिसे आघात करना। शत्रुने आक्रमण किया और उसी समय कोई शत्रुका गुप्तचर साधुका वेश बनाकर देशके सैनिकोंको उपदेश करे—‘अहिंसा परमो धर्मः’ तो यद्यपि अहिंसा परम धर्म है, यह बात ठीक है और यह बात भी ठीक है कि अहिंसाकी महिमा संतों तथा शास्त्रोंने बहुत गायी है; किंतु उस समय सैनिकोंके शत्रुपर आघात करने-रूप स्वधर्ममें बाधक होनेके कारण अहिंसा उन सैनिकोंके लिये उस समय विधर्म होनेसे अधर्मकी शाखा है।

अर्जुन युद्धक्षेत्रमें पहुँचकर जब कहने लगे—

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।

धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥

(गीता १ । ४५)

तब अर्जुनके लिये यह युद्ध-त्यागका भाव ‘विधर्म’ ही था। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने गीताका उपदेश करके अर्जुनको उसके वास्तविक कर्तव्यपर स्थिर किया।

देश, काल, पात्र तथा अवस्थाके अनुसार व्यक्तिके धर्मसम्मत कर्तव्यका निश्चय होता है। इस प्रकार निश्चित हुए कर्तव्यमें जो कोई भी भाव या कार्य बाधक होता हो, वह धर्म जान पड़े, तब भी समझना चाहिये कि यहाँ अधर्म धर्म जान पड़ता है। यह विधर्म है और अधर्मके समान ही त्याज्य है।

परधर्मोऽन्यचोदितः ।

अपने अधिकारप्राप्त कर्तव्यमें तो कोई बात बाधा नहीं देती और उसका विधान भी शास्त्रमें है। अच्छे सत्पुरुष उसका अनुष्ठान-आचरण भी करते हैं। लेकिन उसका विधान अपनेसे भिन्न अधिकारीके लिये, भिन्न परिस्थितिके लिये किया गया है। ऐसी अवस्थामें भी उसका आचरण अधर्म ही है; क्योंकि वह परधर्म है। जो स्वधर्म नहीं है, वह दूसरेके लिये धर्म हो तो भी अपने लिये अधर्म ही है।

अश्वमेध अथवा राजसूय यज्ञ है तो यज्ञ ही। यज्ञ ब्राह्मणके किसी कर्ममें बाधा नहीं देता। लेकिन इन यज्ञोंको करनेका अधिकार मूर्धाभिषिक्त राजाको ही है। इसलिये कोई ब्राह्मण इन्हें करने लगे तो यह उसके लिये अधर्म होगा। इसी प्रकार बृहस्पतिसव नामक यज्ञका विधान ब्राह्मणके लिये है। कोई क्षत्रिय उसे करे तो यह उसके लिये अधर्म होगा।

लौकिक उदाहरण लीजिये इस सम्बन्धमें। न्यायाधीशकी अपेक्षा कई वकील कानूनके अच्छे ज्ञाता होते हैं। कोई न्यायाधीश न्यायालयमें किसी दिन अनुपस्थित हो, कोई बड़ा वकील खाली हो, उस दिन उसके पास कोई भी मुकदमा न हो, ऐसी दशामें वह बिना अधिकारियोंकी अनुमतिके न्यायाधीशकी कुर्सीपर बैठकर उस दिनका न्यायाधीशका कार्य करने लगे तो सरकार उसे पुरस्कार देगी या दण्ड ? वह अपराधी माना जायगा या परोपकारी ? यदि वह पागल ही नहीं सिद्ध हुआ तो अपराधी ही माना जायगा।

इसलिये धर्माचरणमें सर्वोपरि महत्ता विधानकी है।

जिसके लिये जिस परिस्थितिमें जो विधान किया गया है, उसके लिये उस परिस्थितिमें वही धर्म है। दूसरेके लिये जो विधान है अथवा अपने लिये ही भिन्न स्थितिके लिये जो विधान है, वह दूसरी स्थितिमें अपनाया जानेपर परधर्म हो जानेके कारण अधर्म हो जाता है।

एक ही व्यक्ति आज गृहस्थ है तो गृहस्थके लिये जो धर्माचरणका विधान है, वह उसका स्वधर्म है। लेकिन कल वह संन्यासी हो जाता है तो गृहस्थ-धर्म उसके लिये परधर्म बन जायगा और संन्यासीके लिये वर्णित धर्माचरण उसके लिये स्वधर्म हो जायगा।

ग्रहण लगा हो तो देवपूजन नहीं करना चाहिये, यह विधान है। ग्रहण लगा हो तो देव-पूजन करना अधर्म होगा; क्योंकि देव-पूजनका विधान भिन्न परिस्थितिके लिये है। लेकिन ग्रहण न लगा हो तो भी उपर्युक्त विधानकी बात करना भी अधर्म ही होगा।

उपधर्मस्तु पाखण्डो दम्भो वा।

उपमा अथवा उपधर्म है पाखण्ड। धर्माचरण करते तो हैं नहीं; किंतु प्रदर्शित ऐसा करते हैं कि बहुत धर्माचरण कर रहे हैं। यहाँ दम्भ तथा पाखण्ड दोनोंका नाम विशेष तात्पर्यसे लिया गया है। धर्माचरणका केवल दिखावा करना, यह पाखण्ड है और धर्माचरण करना किंतु मनमें उसके द्वारा किसी अधर्मेच्छाकी पूर्ति रखना दम्भ है। दम्भ पाप है, यह सर्वविदित है। दम्भी धर्मका दिखावा करता है, इसीसे दम्भको उपमा—धर्मके समान लगनेवाला अधर्म कहा गया है। यह उपधर्म—धर्म न होकर भी धर्मको उपक्रान्त करनेवाला है।

शब्दभिच्छलः।

शास्त्रमें जो आदेश हैं, उनके शब्दोंका ठीक तात्पर्य जानते हुए भी उनका उससे भिन्न अर्थ करके उसके अनुसार आचरण करना धर्मके साथ छल करना है और यह अधर्म है। यह काम सर्वसाधारण प्रायः नहीं करते। जो शास्त्रके विद्वान् पण्डित हैं, वही प्रायः शास्त्रके वचनोंका अन्यथा अर्थ करके अपनी दुर्बलता छिप्राने तथा समर्थित करनेका प्रयत्न करते हैं। जैसे—‘देवं मधु समर्पयेत्’ इसका

सीधा सरल अर्थ है कि देवताको शहद चढ़ावे; किंतु कोई आचारहीन सुरापी ‘मधु’का अर्थ शराब करे और कहे कि ‘इस देवताको सुरा चढ़ती है’ तो यह छलरूप अधर्म हुआ।

यस्त्विच्छया कृतः पुम्भिराभासो ह्याश्रमात् पृथक्।

अपने वर्णाश्रम-धर्मसे भिन्न किसी भी आचरणको अपनी इच्छासे अपना लेना आभास—धर्माभास कहा जाता है और धर्माभास भी अधर्म ही है।

मैंने हरद्वारके एक कुम्भमें रोड़ियोंमें एक नंगे व्यक्तिको देखा था। उसने पूरे शरीरमें विष्टा पोत रखी थी और दो पत्थर लेकर बजा रहा था। वह दूसरोंको भी जनेऊ उतारकर ऐसा ही करनेका उपदेश कर रहा था। पुलिस बुलाकर उसे मेलाक्षेत्रसे हटाना पड़ा। कलियुगके प्रभावसे आज-कल बहुत-से धर्माभास चल पड़े हैं। मनमाना आचरण धर्म नहीं है। शास्त्रविहित कर्मका नाम ही ‘धर्म’ है। यह बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिये।

यहाँ उदाहरणके लिये कुछ थोड़ी बातें ऐसी दी जा रही हैं जो धर्म समझकर की जाती हैं; किंतु अधर्म हैं।

स्त्रियाँ पति-परिवारको त्यागकर साधुओंके आश्रममें बिना अभिभावकके रहें और भजन-साधनका प्रयत्न करें, यह अधर्म ही है।

पतिकी सेवा-श्रद्धा त्यागकर, उसकी अवमानना करके किसी गुरुकी सेवा स्त्री करे तथा पतिसे पूछे बिना, उसकी अनुमतिके बिना, पतिसे छिपाकर या पतिको रुष्ट करके गुरुको धन या अन्य पदार्थ स्त्री भेंट करे, तो यह अधर्म है।

छोटे बच्चोंको, अवयस्क युवकोंको साधु-दीक्षा देना अधर्म है।

बिना ही वैराग्यके माता-पिता तथा परिवारकी सेवा त्यागकर आरामके लिये साधु बनकर कहीं किसी आश्रममें जा बसना अधर्म है।

भगवद्भजनमें चित्त न लगता हो और सांसारिक सुख-भोगकी इच्छा हो तो उसे पूर्ण करनेके लिये साधु-वेश धारण करना अधर्म है।

साधु, संत, महोपदेशक समझकर श्रद्धालुजन जो धन देते हैं, उसे अपना स्वत्व मानकर देहके सुखोपभोगमें व्यय करना अधर्म है।

—सु०

पुराणोक्त धर्म

(लेखक—प्रो० डा० श्रीबालकृष्ण मोरेश्वर कानिटकर, एम्० ए०, पी० एच्० डी०, एल्० एल्० बी०)

किसी भी समाजकी उन्नति और सामाजिक स्वास्थ्य, उस समाजकी धर्मभावना और श्रद्धाके ऊपर अवलम्बित रहता है। धिन्वन्नात् धर्मः। शान्तिका कारण धर्म होता है। यही धर्मका लक्षण माना गया है। महाभारतमें भगवान् वेदव्यासने कहा है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

‘धर्मका सार-सर्वस्व सुनना चाहिये और सुनकर मनमें धारण करना चाहिये। जो-जो बातें अपनेको न जँचें—प्रतिकूल जान पड़ें, उनका आचरण हमें दूसरोंके प्रति नहीं करना चाहिये।’ यही सच्चा धर्म है।

इस धर्मके आचरणका प्रमाण, स्मृतिने निम्नलिखित रीतिसे दिया है—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

कोई बात धर्मके अनुकूल है या विरुद्ध—इसकी परीक्षा चार प्रमाणोंद्वारा की जाती है। श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपने मनके, सदसद्विवेक-बुद्धिके पटने योग्य बातको धर्मानुकूल मानते हैं। कविकुलगुरु कालिदासकी शकुन्तलामें दुष्यन्तके मुँहसे ये शब्द निकले थे—

सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।

इसका अर्थ इस प्रकार है। हम अपने नित्य संकल्पमें कहते हैं—‘श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तसकलफलप्राप्त्यर्थ’ इत्यादि। इस स्थलमें पुराणोक्त फल देनेवाले पुराणोक्त धर्म कौन-से हैं, यह संक्षेपमें विचारणीय है।

‘धारणाद्धर्ममित्याहुः’, ‘धर्मो रक्षति रक्षितः’, ‘धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा’, ‘आचारप्रभवो धर्मः’—इत्यादि वचन सुप्रसिद्ध हैं। पुराणोंमें जो श्रेष्ठ आचार वर्णित है, उसे देखनेपर पुराणोक्त धर्म क्या है, यह सहज ही ज्ञात हो जाता है। प्रातःकाल शय्यासे उठनेके बाद रात्रिमें पुनः शयन करनेतक सबके आचरणीय आचार पुराणोंमें वर्णित हैं।

शयन-त्याग, करवन्दना, पृथ्वी-वन्दना, ईश-स्मरण, स्नान, संध्या, आसन, प्राणायाम, जप, देवपूजा, नाम-

संकीर्तन, वैश्वदेव, गोघ्रास, अतिथि-पूजन, काकवलि, भोजन, ईश-चिन्तन, ईश-दर्शन, सायं प्रार्थना, शयन आदि नित्य-आचार पुराणोंमें कथित होनेके साथ-साथ तीर्थयात्रा, व्रत, उपवास, दान, श्राद्धकर्म, परोपकार, इष्ट और पूर्व-कर्म आदि नैमित्तिक आचार बतलाये गये हैं। गो-सेवा, गो-पूजन, तुलसी-पूजा, अश्वत्थ-पूजा, प्रतिमा-पूजा, यन्त्र-पूजा, देवोत्सव आदिका समावेश भी पुराणोक्त धर्ममें है। माता-पिताकी सेवा, स्त्रीके लिये पति-सेवा और गुरुपूजाका पुराणोक्त धर्मोंमें विशेष और निराला स्थान है।

आचार-धर्मके विषयमें भविष्यपुराणकार कहते हैं—

आचारो भूतिजनन आचारः कीर्तिवर्द्धनः।

आचाराद् वर्द्धते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

इसका अनुसरण करके हम शयन-त्याग करते ही भूमिकी, लक्ष्मीकी, सरस्वतीकी, जगन्निन्यन्ताकी भक्तिपूर्वक वन्दना करते हैं।

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।

करमूले तु गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम् ॥

मनकी शुद्धिके लिये पहले शरीरकी शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। मलमूत्र-विसर्जन कर्मके आचारको बतलाते हुए कूर्मपुराण कहता है—

निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः।

प्रावृत्य तु शिरः कुर्याद् विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥

दाहिने कानपर यशोपवीत रखकर और सिरको वस्त्रसे ढककर मल-मूत्र-विसर्जन करे।

दन्तधावनके लिये दातौन कैसे हों ?—यह कूर्म-पुराणमें कथित है, तथापि दन्तधावनके महत्त्व और उसकी आवश्यकता वराहपुराणमें इस प्रकार दी गयी है—

दन्तकाष्ठमखादित्वा यस्तु मामुपसर्पति।

सर्वकालकृतं कर्म तेन चैकेन नश्यति ॥

दातौन बिना किये जो पूजा-अर्चनाके लिये मेरे पास आता है, उसके सब दिनके किये कर्म-निष्फल हो जाते हैं।

शयन-त्याग करनेपर पृथ्वीको प्रणाम करते हैं—

समुद्धवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।

विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे ॥

समुद्ररूपी वस्त्र और पर्वतरूपी स्नान धारण करनेवाली हे विष्णुपति ! पृथ्वीदेवि ! (मैं दिनभर तुम्हारे ऊपर चलनेवाला हूँ) तुम मेरे पाद-स्पर्शको क्षमा करो ।

इसके उपरान्त स्नानका विचार स्कन्दपुराणके मतसे इस प्रकार है—

उदयात्प्राक् चतसस्तु घटिका अरुणोदयः ।

तत्र स्नानं प्रशस्यं स्यात् स वै पुण्यतमः स्मृतः ॥

सूर्योदयसे चार घड़ी पूर्व अरुणोदयके समय स्नान करना अत्यन्त प्रशस्त और पुण्यप्रद होता है ।

यह स्नान शीतल जलसे करना अतिशय हितप्रद है । परंतु यह सदा सबको मिलना सम्भव नहीं है । अतः स्नानमें काम्यस्नान और नित्यस्नान—ये दो भेद माननेपर काम्य अथवा नैमित्तिक स्नान ठंडे पानीसे ही करना चाहिये । नित्य स्नान शीतल अथवा उष्ण जलसे अपने इच्छानुसार कर सकते हैं । कूर्मपुराणमें लिखा है कि प्रातःस्नानसे पापी मनुष्य भी पवित्र हो जाता है ।

केवल एक वस्त्र धारण करके आहार और देवार्चन न करे । सदा श्वेत वस्त्र धारण करे । रंगीन वस्त्र न पहने । जिस वस्त्रसे मल-मूत्र त्याग किया जाता है, वह अपवित्र हो जाता है । स्त्रीप्रसङ्गसे वस्त्र दूषित हो जाता है । ऐसे वस्त्र पानीसे धो लेनेपर शुद्ध होते हैं ।

तदनन्तर तिलक-धारण, भस्म-लेपन आदि क्रिया करे, ऐसा पुराणोंमें कहा गया है । स्कन्दपुराणके ब्रह्मोत्तरखण्डमें भस्मधारण करनेका माहात्म्य अनेक प्रकारसे वर्णित है । शिवपुराणमें भी भस्मधारणका माहात्म्य आया है । बृहज्जाबालोपनिषद्में यह श्लोक आया है—

तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।

येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना चृतम् ॥

जिस ब्राह्मणने मस्तकपर भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण किया है, उसने सर्वशास्त्रोंका अध्ययन तथा श्रवण कर लिया; क्योंकि—

भासते भिन्नभावानामपि भेदो न भस्मनि ।

स्वस्वभावस्वभावेन भस्म भर्गस्य वल्लभम् ॥

विविध प्रकारकी वस्तुएँ भस्मीभूत होनेपर एक स्वरूप हो जाती हैं । इस कारण सब वस्तुओंकी एकरूपता भस्मात् होनेपर प्रतिपादित होती है । इसलिये यह शिवको अतिप्रिय है । इतना ही नहीं, बल्कि—

ये भस्मधारणं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति मानवाः ।

तेषां नास्ति विनिर्माक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥

जो मनुष्य भस्म धारण किये बिना कर्म करता है, उसको कोटि जन्मतक संसारसे छुटकारा नहीं होता । इसी प्रकार तिलकधारणका महत्त्व अनेक पुराणोंमें वर्णित है । पद्मपुराण कहता है—

यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।

व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं बिना कृतम् ॥

ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किये बिना किया हुआ यज्ञ, दिया हुआ दान, की हुई तपस्या, किया हुआ होम, किया हुआ वेदाध्ययन, पितृतर्पण आदि सारी क्रिया निष्फल हो जाती है ।

और गरुडपुराणमें कहा है—

नित्यं ललाटे हरियन्त्रसंयुतो

यसं न पश्येद् यदि पापसंवृतः ॥

नित्य गोपीचन्दनका तिलक ललाटपर करनेवाला पुरुष यदि पापी भी हो तो भी यमराज उसके पास नहीं जाता ।

रुद्राक्ष और तुलसीमाला धारण करनेके विषयमें इस प्रकारके वचन पुराणोंमें हैं । शिवपुराण, विघ्नेश्वरसंहितामें और स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें रुद्राक्ष-धारणकी विधि दी हुई है तथा नारदपुराण (बृहन्नारदीय, स्कन्दपुराण) आदिमें तुलसीमाला धारण करनेका विचार है ।

इसके अतिरिक्त सब पुराणोंमें प्रायः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान आदिकी रीति और महत्त्व वर्णित है । प्राणायाम करके जप करने अथवा पूजा करके जप करनेके वचन मिलते हैं ।

देवपूजन-विधि और आचारसम्बन्धी विभिन्न देवताओंकी विशेष विधियाँ सब पुराणोंमें आयी हैं । उनमें स्कन्दपुराण, वायुपुराण, पद्मपुराण, नारदपुराण, ब्रह्मपुराण, वामनपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराणमें ये विधियाँ विशेषरूपसे कही गयी हैं । आरती, धूप-दीप, नैवेद्य, मन्त्र-पुष्प आदि सब प्रकारके पूजा-पर्याय सब ग्रन्थोंमें वर्णित हैं । पूजाकी समाप्तिके समयका यह सुप्रसिद्ध श्लोक श्रीमद्भागवतमें है—

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा ॥

इत्यादि ।

तीर्थयात्रा, क्षेत्रमहिमा, व्रत, एकादशी, शिवरात्रि,

वैशाखमाहात्म्य, कार्तिकमाहात्म्य, माघमाहात्म्य आदि विषय

तो पुराणोंमें हैं ही। गोसेवा, गोपूजन, गोमाहात्म्य—स्कन्द, पद्म, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणोंमें आये हैं।

गां च स्पृशति यो नित्यं स्नातो भवति नित्यशः।

सर्वे देवाः स्थिता देहे सर्वतीर्थमयी हि गौः॥

—इस अर्थके श्लोक सर्वत्र मिलते हैं।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिस्तथैव च।

गवां पञ्च पवित्राणि पुनन्ति सकलं जगत्॥

ऐसा स्कन्दपुराण कहता है—गोमूत्र, गोवर, दूध, दही और घी—ये गायसे प्राप्त होनेवाली पाँच पवित्र वस्तुएँ हैं, ये सर्व जगत्को पावन करती हैं।

श्राद्ध भी भारतीय धर्माचरणका एक आधार है। पितृपूजा हमारा मुख्य धर्म है। इसके विषयमें सारे पुराणोंमें विवेचना की गयी है। माता-पिताका पूर्ण आदर-सत्कार करना हमारे पुराण सिखलते हैं। गुरु और देवताकी अपेक्षा माता-पिताको पुराणोंने श्रेष्ठ माना है; क्योंकि वे स्वयं बालकके गुरु और देवता हैं। इसी प्रकार स्त्रियोंका पति देवता है। पति ही उनका गुरु है। पतिसेवा ही उनका धर्मकृत्य और पातिव्रत्य है। यही पुराणोंकी शिक्षा है।

गूलर और वट आदि वृक्षोंके विषयमें भी ऐसी ही धर्मभावना है। मत्स्यपुराणमें लिखा है—

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो हृदः।

दशहृदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥

एक वापी खुदानेमें दस कुएँ खुदानेका पुण्य होता है। एक तालाब खुदवानेमें दस वापी खुदवानेका पुण्य होता है। दस तालाब खुदवानेका पुण्य एक पुत्र प्राप्त करनेपर होता है और दस पुत्र प्राप्त करनेका पुण्य एक वृक्ष लगानेपर होता है।

पुत्रवान्को स्वर्गकी प्राप्ति होती है और पुत्रहीन अधोगतिको प्राप्त होता है, ऐसा हमारे धर्मशास्त्र कहते हैं; क्योंकि उसके बिना पितरोंको तृप्त कौन करेगा? पितरोंकी तृप्ति ही मानव-जीवनकी सार्थकता है। इसके लिये स्कन्दपुराणमें सात प्रकारके पुत्रोंका वर्णन है। उसमें वृक्षकी गणना भी पुत्रोंमें की गयी है।

कूपस्तडागमुद्यानं मण्डपं च प्रपा तथा।

जलदानमन्नदानमश्वत्थारोपणं तथा।

पुत्रश्चेति च संतानं सप्त वेदविदो विदुः॥

कूप-तडाग, बाग-बगीचा, आराम-मण्डप, पनसला, जलदान, अन्नदान और पीपल रोपना और पुत्र—ये

सात संतान वेदज्ञ कीर्ति प्राप्त करने हैं। हम भारतीयोंका परम धर्म है परमेश्वर-पदकी प्राप्ति—उस मूलशक्तिके साथ एकरूप होना। इसके लिये समस्त प्राणिजात तथा समस्त वस्तुओंको समत्व-बुद्धिसे देखना मुख्य साधन है। भागवतकार लिखते हैं—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

जो सब प्राणी और पदार्थको आत्मस्वरूप तथा भगवान्में निवास करता हुआ मानता है, वही भागवतोत्तम है। स्कन्दपुराणमें नारदजी धर्मवर्त्मा राजासे कहते हैं—हे राजा!

श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत्।

सर्वस्वं जीवितं चापि दद्यादश्रद्धया यदि॥

नामुयात्स फलं किञ्चिच्छ्रद्धधानस्ततो भवेत्।

श्रद्धया साध्यते धर्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः॥

यदि कोई श्रद्धाके बिना अपना सर्वस्व, यहाँतक कि अपना प्राण भी दे दे तो उस दानका फल उसे नहीं मिलेगा। अतएव सबसे पहले श्रद्धा रखनेकी शिक्षा लेनी चाहिये; क्योंकि श्रद्धासे ही धर्म सिद्ध होते हैं, महती धनराशिसे धर्मकी सिद्धि नहीं होती। नारदपुराणमें यह श्लोक आया है—

श्रद्धापूर्वाः सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदाः।

श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुल्यते हरिः॥

श्रद्धापूर्वक आचरण करनेसे सब धर्म सिद्ध होते हैं, श्रद्धा इच्छित फल प्रदान करती है। श्रद्धासे सब कुछ सिद्ध हो जाता है, और क्या, श्रद्धासे भगवान् श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं।

श्रद्धावाँलभते धर्मं श्रद्धावानर्थमाप्नुयात्।

श्रद्धया साध्यते कामः श्रद्धावान्मोक्षमाप्नुयात्॥

श्रद्धासे पुरुषको धर्मकी प्राप्ति होती है, उसको धन मिलता है, श्रद्धासे मनोवाञ्छित फल मिलता है और तो क्या, श्रद्धासे मोक्षतक मिल जाता है। और श्रद्धासे ही भक्ति उत्पन्न होती है। हमारे लिये ईश्वरके चरणोंमें भक्ति दृढ़ होना बड़े भाग्यकी बात है; क्योंकि भक्तिसे ही श्रेष्ठतम कल्याण प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवतमें श्रीभगवान् सुचक्रन्दसे कहते हैं—

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः।

अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम्॥

भक्तिके बिना वासनाका नाश नहीं होता, अतएव शान्ति नहीं मिलती अर्थात् परम कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती। आत्यन्तिक भक्तिके द्वारा भगवच्चरणारविन्दकी प्राप्ति होती है। ऐसा महामुनि कपिल भागवतमें कहते हैं—

• एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥

भगवान्का नाम-संकीर्तन भक्तियोगके आचारका एक भाग है; क्योंकि कलियुगमें जीवोंके उद्धारका यही एक मार्ग खुला हुआ है। इस नाम-संकीर्तन-युक्त भक्तिधर्मके आचरणके लिये मत्स्यपुराण इस प्रकार कहता है—

परांश्च सिद्धांश्च परं च देवं परं च मन्त्रं परमं हविश्च ।
परं च धर्मं परमं च विश्वं त्वामाहुर्ग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥
ब्रह्माजी नृसिंह भगवान्से कहते हैं—“परम श्रेष्ठ सिद्ध पुरुष, परम देव—देवता, सर्वश्रेष्ठतम मन्त्र, आहुतिके पदार्थ, सर्वश्रेष्ठ धर्म और सर्वविश्व—हे पुराण-पुरुषोत्तम ! सब कुछ तुम ही कहलाते हो ।

इस प्रकार पुराणोंमें आदर्श सनातन वैदिक धर्मका ही रूप स्थित होकर बढ़ा है और शाश्वत स्वरूपमें प्रसरित हुआ है ।

जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता

(लेखक—श्रीगुरुरामप्यारेजी अग्निहोत्री)

गत वर्ष सं० १०, पृष्ठ १२५६ पर प्रकाशित लेखमें मैंने पूर्णस्वर और रिक्तस्वरका उल्लेख किया है। यहाँपर पूर्णस्वर और रिक्तस्वरका निर्णय करना आवश्यक है। पूर्णस्वर चन्द्रस्वरके साथ सम्पन्न होता है। चन्द्रस्वरकी गतिपर ही पूर्णस्वर और चन्द्रस्वर बनते हैं। इसी प्रकार सूर्यस्वरमें भी पूर्णस्वर और रिक्तस्वर बना करते हैं। शिवस्वरमें पूर्ण और रिक्त दोनों स्वरोंका अभाव होता है।

पूर्णस्वर—चन्द्रस्वरका वेग जब सामने, बाँयें और ऊर्ध्वाकिर होता है तब पूर्णस्वरकी निष्पत्ति होती है। पूर्णस्वरकी निष्पत्तिमें ही चन्द्रस्वर स्वभावतः सामने, बाँयें और ऊपरकी ओर गतिमान् होता है। इनके अलावा अन्य गतियोंमें चन्द्रस्वरका प्रवाह रिक्तस्वरका निर्माण करता है। इसी प्रकार सूर्यस्वरका प्रवाह दाहिने, नीचे अथवा चक्करदार पीछेकी ओर मुड़ता हुआ पूर्णस्वरकी निष्पत्ति करता है। इनके अलावा सूर्यस्वरके विभिन्न प्रवाह रिक्तस्वर कहे जाते हैं। पूर्णस्वरमें प्रारम्भ किया गया कोई भी काम पूर्णताको प्राप्त होता है; किंतु रिक्तस्वरमें किया गया कार्यारम्भ कभी भी पूर्णताको नहीं प्राप्त होता और उसमें अनेक विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं।

इस तरह कार्यारम्भमें पूर्णस्वरका विचार करना परमावश्यक है। रिक्तस्वरमें किसी कार्यका विचार करना अपूर्णताका द्योतक है, चाहे वह शुभस्वरमें ही क्यों न प्रारम्भ किया जाय। कार्यसिद्धिके लिये कभी-कभी प्रश्नकर्ता भी अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है। यदि प्रश्नकर्ता जिज्ञासाकी दृष्टि करनेवालेके स्वरप्रवाहकी अनुसंधान करता है

तो प्रश्नकर्ताके सभी कार्य सिद्ध होते हैं और यदि बंद स्वरकी ओरसे प्रश्न किया जाता है तो कभी भी पूर्णताको प्राप्त नहीं होता। यदि दोनों स्वरोंके प्रवाहमें सम्मुख होकर कोई प्रश्न कार्यकी सिद्धिके लिये करता है तो कार्यकी पूर्णताकी आशा बँधती है, किंतु पूर्णता नहीं प्राप्त होती। जिज्ञासाकी पूर्ति करनेवालेका यदि पूर्णस्वर चलता हो और उस समय कोई कार्यसिद्धिका प्रश्न करता है तो प्रश्नकर्ताका कार्य सिद्ध होता है और इसके विपरीत कार्यका प्रारम्भ अनिष्टकारी होता है। इस तरह प्रश्नका विषय दो रूपोंमें स्पष्ट होता है। एक तो स्वाभाविक स्वरप्रवाहमें और एक पूर्णस्वर अथवा रिक्तस्वरके रूपमें; किंतु परीक्षकको यह ध्यान रखना चाहिये कि स्वाभाविक स्वरप्रवाह भी या तो पूर्णस्वरमें होगा या रिक्तस्वरमें। जिनको पूर्णस्वर और रिक्तस्वरका ज्ञान नहीं है, उनको प्रश्नका समाधान स्वाभाविक स्वरप्रवाहके माध्यमसे ही करना चाहिये। अभ्यास परिपक्व हो जानेसे पूर्ण और रिक्तस्वरका ज्ञान सहज ही हो जाता है।

अपने पूर्व स्वरोदयकी महत्ताके भूमिका-लेखमें मैंने लिखा था कि साधारणतः शरीरके बाहर वायुका प्रवाह बारह अंगुल होता है। इस प्रवाहकी साधना ही महान् है। योगीजन इस प्रवाहपर ही अभ्यास करते थे और जैसे-ही-जैसे अभ्यासकी गति अनुशासित हो जाती थी, उन्हें सिद्धि प्राप्त हो जाती थी। बाह्य स्वरप्रवाहकी गति संतुलित रखनेमें बहुत बड़े अभ्यास और योग्य गुरुकी आवश्यकता होती है। बिना गुरुके इसमें पारंगत होना सबसे कठिन और दुष्कर है। यह विषय लिखकर नहीं समझाया जा सकता; प्रत्युत

योग्य गुरुके आभ्यासिक शिक्षणसे ही इसकी पुष्टि होती है। इसमें स्वरप्रवाहपर पूर्ण विजय प्राप्त करनी होती है। स्वर-प्रवाहमें विजय प्राप्त करना साधारण गृह-कार्यमें रत प्राणियोंकी शक्तिसे परे है। इसका अभ्यास योगियों एवं गृह-कार्यसे विरक्त पुरुषोंके द्वारा ही सम्भव है। यदि स्वरप्रवाहपर नियन्त्रण किया जा सका तो उसे संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

निष्कामताके लिये स्वरप्रवाह एक अंगुल कम यानी ग्यारह अंगुल होना चाहिये। बारह अंगुलसे जिसने अपना स्वरप्रवाह अभ्यासद्वारा ग्यारह अंगुल कर लिया है उसे निष्कामताकी सिद्धि होती है। काम और वासनापर विजय पानेके लिये साधारण स्वरप्रवाह ग्यारह अंगुल होना चाहिये। सर्वथा आनन्दमय बन जानेके लिये स्वरप्रवाह स्वाभाविक स्वरप्रवाहसे दो अंगुल कम यानी दस अंगुल मात्र होना आवश्यक है। जिस किसीने अभ्याससे अपने साधारण स्वरको दस अंगुलमें ही नियन्त्रित कर दिया है; उसे संसार आनन्दमय हो जाता है। उसे सांसारिकताके दुःख-दैन्यका किञ्चिन्मात्र भी अनुभव नहीं होता और न उसपर मायावी जगत्का प्रभाव ही पड़ता है। माया ही तो दुःख और दैन्यका प्रधान साधन है। साधारण स्वरप्रवाहको तीन अंगुल कम करनेपर अर्थात् साधारण स्वरका नियन्त्रण नौ अंगुल हो जानेपर सभी कार्योंकी सिद्धि अपनी इच्छा मात्रसे हो जाती है। स्वर-साधक एक स्थानपर बैठा हुआ अपनी इच्छाओंकी पूर्तिको साकार रूप दे देता है। ऐसे स्वर-नियन्त्रणका अभ्यासी संसारमें कभी भी निरुत्साहित अथवा अपने मनोरथोंकी सिद्धिमें असफल नहीं होता।

साधारण स्वर-प्रवाहको चार अंगुल कम करनेपर अर्थात् आठ अंगुलका स्वरप्रवाही वाणीका सिद्धिदाता हो जाता है। जो भी वह बोलता है, सत्य और सिद्धिका पोषक होता है। ऐसा अभ्यासी बहुत कम बोलता है और जो बोलता है, प्रत्यक्ष फलदाता होता है। उसकी वाणी असत्यमें कभी परिवर्तित नहीं होती। स्वरप्रवाह पाँच अंगुल कम करनेपर यानी जब स्वर-साधकका स्वर बोहर केवल सात ही अंगुल प्रवाहित होता है तब वह एकान्तमें बैठा हुआ भी विभिन्न स्थानोंमें होनेवाले दृश्योंको प्रत्यक्ष देखनेवाला हो जाता है। दूर-से-दूर स्थानोंका वह प्रत्यक्षदर्शी बन जाता है। उसे कहीं आने-जानेकी आवश्यकता नहीं होती, प्रत्युत उसकी इच्छामात्रसे सभी दृश्य उसके सम्मुख आ जाते हैं।

हिमालयकी अज्ञात गुफामें बैठा हुआ वह स्वरका अभ्यासी इंग्लैंड और अमेरिकामें होनेवाले दृश्योंको प्रत्यक्ष देख सकता है।

साधारण स्वर-प्रवाहको छः अंगुल कम करनेपर अर्थात् साधारण स्वर-प्रवाह छः अंगुल नियन्त्रित हो जानेपर स्वर-साधकको आकाशगामी बना देता है। महावीर हनुमान्को वायुपुत्र इसीलिये कहा गया है कि वे स्वरोदयके पूर्ण ज्ञाता थे। वाल्मीकीय रामायणमें उनके आकाशमार्गद्वारा जानेका जो वर्णन किया गया है उससे स्पष्ट है कि वे इसी स्वर-प्रवाहके अभ्याससे आकाशमें उड़ सके थे। महावीर हनुमान् स्वरोदयके पूर्ण ज्ञाता थे और उन्होंने स्वर-साधनाकी शक्तिसे जो भी कार्य किया था, वह आज भी आश्चर्यजनक कहा जाता है। हनुमान्जीको सभी स्वर-साधना सुलभ थी और यही कारण था कि संसार आज भी उनकी शक्तिका पूजक बना हुआ है।

सात अंगुल स्वर-प्रवाह कम करनेवाला शीघ्रगामी हो जाता है अर्थात् जिसका साधारण स्वरप्रवाह पाँच अंगुल नियन्त्रित हो जाता है वह इच्छामात्रसे कहीं भी आ-जा सकता है। वह दुर्गम स्थानोंतकमें पूर्ण वेगसे गतिमान् होता है। उसे किसी यानकी आवश्यकता नहीं होती। यह एक देव-शक्ति है जो किसी भाग्यवान्को ही प्राप्त होती है और वह भी योग्य गुरुके सहयोग और अभ्याससे। आठ अंगुल स्वर-प्रवाह कम करनेपर अर्थात् साधारण स्वरप्रवाह चार अंगुल करनेपर अष्टसिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं तथा नौ अंगुल स्वर-प्रवाह कम करनेपर यानी साधारण स्वर-प्रवाहकी गति तीन अंगुल नियन्त्रित होनेपर नौ निधिकी प्राप्ति होती है। महात्मा भरद्वाज इन दोनों स्वर-प्रवाहोंके पूर्ण ज्ञाता थे और इन्हींके बलपर उन्होंने भरतका राजसी सत्कार किया था।

स्वर-प्रवाह दस अंगुल नियन्त्रित करनेपर अर्थात् जब साधारण स्वर-प्रवाह केवल दो अंगुल ही बाह्य प्रगति करता है तब प्राणी सांसारिकतासे उठकर ब्रह्मक्रोडितक पहुँच जाता है। उसे कोई भी दैवीशक्ति अप्रभावित नहीं कर सकती। वह देवतुल्य हो जाता है। उसका जीवन-मरण उसकी इच्छापर निर्भर हो जाता है। ग्यारह अंगुल स्वर-प्रवाह रोकनेपर अर्थात् जब स्वर-प्रवाह केवल एक ही अंगुल बाह्य प्रगति करता है, तब स्वरोदयका नियन्त्रक छायारहित हो जाता है। भौतिक शरीर रहते हुए भी अदृश्य हो जाता है। उसकी गति सर्वत्र हो जाती है। वह इच्छानुसार कहीं भी प्रगति कर सकता है।

आकाश-पातालका भी वह भ्रामक बन जाता है। ऐसी गति किसीको प्राप्त हुई है, इसके उदाहरण नहीं हैं सिवा वीर हनुमान्के। इसके आगे केवल अंदर-ही-अंदर स्वर-प्रवाह हो अर्थात् स्वर-प्रवाह केवल अन्तरात्मा में ही हो, यह दुर्लभ गति है। इस गतिवाला केवल ब्रह्म होता है। साँस लेता हुआ भी साँस न लेनेके समान होता है। 'सोऽहं ब्रह्म' ऐसी संज्ञा हो जाती है। वही ब्रह्म है, वही सृष्टि-कर्ता और संहारक होता है। इस तरह वायुप्रवाहका निरोध और उसका अभ्यास विश्वकी दुर्लभ प्रगति है। इसका अभ्यास श्रेष्ठ गुरुकी महान् कृपापर निर्भर है।

स्वर-प्रवाहका संस्थापन और उसकी क्रमिक अवरोध गति महान् आश्चर्यजनक है। यह तभी सम्भव है जब स्वरोदयमें ही अपने जीवनको समर्पित कर दे। लौकिकताका प्रकरण केवल कुछ ही अभ्यासोंपर आधारित है; किंतु उसकी परिपक्वावस्था महान् कौतूहलजनक है। जो केवल स्वरोदयके थोड़े ही अभ्यास या लेखोंपर आधारित सिद्धान्तोंका आश्रय लेकर लाभान्वित होना चाहते हैं। यह केवल उनकी मृगतृष्णा है। यह निर्विवाद है कि स्वरोदयका साध्य अभ्यास भी महान् फलदायी होता है। मेरे पास स्वरोदयकी महत्तापर पाँच सौसे ऊपर ऐसे पत्र प्राप्त हुए हैं, जिनमें कुछोंको छोड़कर बहुतोंने इसे केवल जादू ही माना है और केवल कुछ ही अभ्याससे वे अपनी सारी कल्पनाएँ साकार कर लेना चाहते हैं। मुझे भी उपर्युक्त स्वरोदयके नियन्त्रणका अभ्यास नहीं है और वह इसलिये कि इस विषयका आजतक कोई योग्य गुरु मिला ही नहीं; हाँ, इस सम्बन्धकी जानकारी अवश्य है।

स्वर-प्रवाहका यह नियन्त्रण ही प्राणविधि है और इसीपर सारा संसार आधारित है। आजके युगमें यह प्राण-विधि अभ्याससे परे-सी हो गयी है; किंतु कभी इसका अस्तित्व और अभ्यास था, जिसके उदाहरण हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें भरे पड़े हैं और अज्ञानवश हम उन्हें कल्पनात्मक मान लेते हैं। अभ्यासार्थीके लिये कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

जीवनमें चन्द्रस्वर, सूर्यस्वर और शिवस्वर ही प्रधान हैं। इन्हींके अभ्याससे जीवनकी सिद्धि होती है। जैसा कि पहलेके लेखमें लिखा जा चुका है कि प्रातःकालका चन्द्रस्वर और संध्याकालका सूर्यस्वर माना गया है। कभी-कभी हमें

अन्तर पड़ जाता है और विषमता आ जाती है। यदि जान-बूझकर स्वर-प्रवाह न बदला जा सके तो मध्याह्नकालमें तथा आधी रातके बाद ये स्वर अपनेहीसे सुव्यवस्थित हो जाते हैं। यह है स्वरकी स्वाभाविक साधना।

स्वर-प्रवाहके आधारपर प्राचीनकालमें युद्धका एक विशेष प्रकरण माना जाता था; किंतु आजके विज्ञान-युद्धकी समक्षतामें इस प्रकरणका कोई महत्त्व नहीं है। अस्तु, इस विषयपर लिखना भी व्यर्थ ही है। प्राचीनकालमें युद्धके प्रकरण आजकलकी तरह न थे। युद्ध-प्रस्थान आदिके समय स्वर-प्रवाहका प्रमुख स्थान था और इसीके आधारपर जय-पराजयकी व्यवस्था निर्भर थी, किंतु आजके विज्ञान-युगमें स्वर-प्रवाहकी यह गणना सर्वथा हास्यास्पद ही होगी। इसीलिये इस विषयपर कुछ लिखना भी ठीक नहीं है।

चन्द्र और सूर्यस्वर दोनोंकी संज्ञा जीवस्वर है। जो प्राणी दिनभर प्राणवायुके माध्यमसे सूर्यस्वरका अवरोध करता है और सूर्यास्तके पश्चात् उसे छोड़ता है, वह दीर्घजीवी होता है। लगातार रात्रिमें चन्द्रस्वर तथा दिनमें सूर्यस्वरका अवरोधक योगी होता है। जिस किसीका एक ही स्वर बिना परिवर्तनके चौबीसों घंटेतक चलता रहता है, उसके जीवनकी अवधि केवल तीन वर्ष होती है। जिसका सूर्यस्वर लगातार अड़तालीस घंटेतक चलता रहता है, उसकी आयु दो वर्षकी होती है। कोई भी स्वर अगर लगातार बहत्तर घंटेतक बिना परिवर्तनके चलता रहता है, वह केवल एक वर्षतक ही जीवित रहता है। दिनमें सूर्यस्वर और रातमें चन्द्रस्वरका प्रवाहक छः महीनेकी आयुवाला होता है। लगातार सोलह दिनोंतक सूर्यस्वरका प्रवाहक एक महीनेके अंदर मृत्युको प्राप्त होता है। इसी प्रकार लगातार चन्द्रस्वरका प्रवाहक भी एक ही महीने जीता है। इसलिये स्वर-परिवर्तन आवश्यक होता है और उसके प्रयोग एवं अभ्याससे मृत्युसे रक्षा भी होती है।

रोगीका संदेशवाहक यदि लाल, जोगिया (भगवा) अथवा काला वस्त्रधारी हो, दूटे दाँतवाला हो, सिर बिना बालके हो, तेल लगाये हो, रस्सी या डोरी साथमें लिये हो, भिखारी हो अथवा अन्य कोई अपशकुनवाली चीजें लिये हो तो उसे देखते ही स्वरज्ञानका परीक्षक रोगीके मृत्युका संकेत समझ ले और यदि कहीं संदेशवाहक स्वरज्ञानके परीक्षक-के पास न हो (नाकके सिरे से स्वर-प्रवाह न होता हो)

की ओर स्थित होकर रोगीके विषयमें प्रश्न करे तो समझना चाहिये कि रोगी तभीतक जिंदा रह सकता है जबतक कि संदेशवाहक लौटकर नहीं जाता ।

इस तरह स्वर-ज्ञानसे अनेकानेक गूढ़ विषयोंकी जानकारी

होती है । स्वर-ज्ञानके साथ-साथ तत्त्वज्ञान भी आवश्यक है । तत्त्वज्ञानके बिना स्वरज्ञानकी पूर्णता नहीं होती । ऐसे बहुत-से विषय हैं जो तत्त्वज्ञानके साथ मिलकर स्वरज्ञानकी पूर्णता करते हैं । स्वरप्रवाहमें ही तत्त्वोंका विश्लेषण होता है ।

राम-सम्पन्न (शान्त)

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

रामो मन्त्रिष्ठता बुद्धेः ।

आज जब अणु-शक्तिचालित यान समुद्रके वक्ष और उसके अन्तरालको चीरते अबाध गतिसे चल रहे हैं, उस समयकी स्थितिकी कल्पना भी कठिन है, जब वाष्पचालित एंजिनका आविष्कार नहीं हुआ था । समुद्री यान तब भी थे और वे सुदूर देशोंकी यात्राएँ करते थे । उन्हें कहा तो जहाज ही जाता था; किंतु वे बहुत विशाल नौकाएँ होती थीं, जो अनेक-अनेक पाल तान कर चलती थीं ।

‘क्या आप मुझे शाकद्वीपके मण्णार प्रदेशमें उतार देंगे?’ एक भारतीयने फ्रांसके समुद्री जहाजके कप्तानसे जब यह प्रार्थना की, तो कप्तान चकित रह गया । यह उस फ्रांसीसी जहाजकी बात है जो प्रथम बार भारत पहुँचा था । पुर्तगाली उससे बहुत पहले आ चुके थे । भारतकी यात्रा करके, यहाँके बहुमूल्य वस्त्र लेकर वह जहाज लौटने जा रहा था । फ्रांसकी सुन्दरियाँ उस समय भारतीय कलापूर्ण अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्रोंपर प्राण देती थीं ।

‘शाकद्वीप?’ कप्तान तथा उसके साथी टूटी-फूटी हिंदी बोल-समझ लेते थे । इसके बिना भारतीय-प्रवास व्यर्थ होता । लेकिन इस युवककी बात कप्तानकी समझमें नहीं आयी थी । वह यह भी नहीं समझ पाता था कि यह युवक यात्रा क्यों करना चाहता है; क्योंकि भारतीय व्यापारियोंके अतिरिक्त अन्य वर्णके लोग समुद्र-यात्रासे बचना चाहते थे और यह युवक व्यापारी नहीं लगता था ।

‘आप उसको दक्षिण करके ही स्वदेश जायँगे ।’ युवकने बतलाया । उस समय स्वेज नहर तो थी नहीं । योरोपीय व्यापारीके लिये सम्पूर्ण अफ्रिका घूमकर ही भारत आना पड़ता था । भारतीय व्यापारियोंने बहुत पहलेसे एक मार्ग बना रक्खा था । मिस्र वे पहुँचते थे समुद्रके द्वारा और

वहाँसे स्थल पार करके भूमध्यसागरमें; किंतु यह मार्ग जलदस्युओंसे पूर्ण था और इससे यात्रा अथवा व्यापार उनके लिये ही सम्भव था जो अरब तथा मिस्रके कई शासकोंकी मित्रता पहलेसे प्राप्त कर चुके हों ।

‘आप क्या करेंगे यहाँ उतरकर?’ कप्तानने नकशा निकाल लिया था । युवकने उसे ध्यानपूर्वक देखकर अफ्रिका महाद्वीपके पश्चिमी तटपर एक स्थान अँगुलीसे सूचित किया और कप्तानके नेत्र आश्चर्यसे फैल गये—‘यह मनुष्यमक्षी प्राणियोंकी निवासभूमि है । घोर वन, और उसमें सुनते हैं कि शैतान अपनी पूरी सेनाके साथ रहता है । सिंह, रीछ, अजगर, गुरिल्ले, सात फुटवाले दैत्याकार मनुष्य और इन सबसे भयानक बौने—वहाँ तो पूरी सेना लेकर हमारा सम्राट् भी उतरनेका साहस नहीं करेगा और आप एकाकी हैं ।’

‘आप जिसे पृथ्वी कहते हैं, वह सप्तद्वीपवती भूमिके जम्बूद्वीपका भरतखण्ड मात्र है । उसे शाकद्वीप तो मैं आपके संतोषके लिये कहता हूँ ।’ युवककी बात कप्तानकी समझमें तो क्या आती, आजके बड़े-से-बड़े भूगोलज्ञकी समझमें नहीं आनी है । वह कह रहा था—‘मैं सूर्यवंशमें उत्पन्न क्षत्रिय हूँ । मेरे पूर्वज समस्त भूमण्डलके सम्राट् महाराज मरुत्तने वहाँ युगान्तव्यापी महायज्ञ किया था । उनकी उस पावन यज्ञस्थलीके दर्शन करके मैं वहाँ एक अनुष्ठान करना चाहता हूँ । भारतमें सूर्यवंशी सम्राटोंकी यज्ञभूमियोंपर अपनी श्रद्धाञ्जलि मैंने अर्पित कर ली है ।’

यहाँ आपको मैं इतना बतला दूँ कि युवकका गन्तव्य ‘मण्णार’ अब भी है । वह कांगोंके पश्चिमी समुद्रतटके समीप पड़ता है । अब उसे ‘मस्नार’ कहते हैं । सुना है कि वहाँ भूमिमें कुछ नीचे बहुत बड़े भू-भागमें भस्म मिलती

है। उस भागके निवासी अब भी अपनी सात फीटकी ऊँचाई-के कारण विश्वके सबसे लंबे मनुष्य माने जाते हैं।

‘हम अपना जहाज वहाँ नहीं ले जायेंगे।’ यूरोपमें कांगोंके उस प्रदेशके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियाँ फैली थीं। कप्तान अपने बहुमूल्य सामग्रीसे भरे जहाजको किसी संकटमें डालना नहीं चाहता था। ‘आपको बिना किसी शत्रुताके मौतके मुखमें डालनेका पाप मैं नहीं करूँगा।’

‘आप मेरी चिन्ता मत करें। मौत काँपती है उन श्रीनारायणसे। यम उनके पुत्र हैं और मैं तो उन दण्डधरका भी वंशज हूँ।’ युवकने सूर्यकी ओर नेत्र उठाये तो अद्भुत तेज एवं विश्वाससे उसका मुख दीप्त हो उठा। ‘आप मुझे दूर समुद्रमें एक छोटी नौका भी न दे सकें तो तटतक तैरकर चले जानेकी भी शक्ति मुझमें है। मुझे केवल वहाँ समुद्रमें उतारनेके लिये ले चलें। आपको इसका पारिश्रमिक प्राप्त होगा।’

‘नहीं, इसकी आवश्यकता हमें नहीं है।’ कप्तानने वे स्वर्णमुद्राएँ उठा लेनेका युवकसे आग्रह किया, जो उसने कप्तानके आगे डाल दी थीं। ‘हमें आपके इस आदरणीय देशकी मित्रता चाहिये। फ्रांस साहसी दृढ़निश्चयी शूरोंका सम्मान करना जानता है। आप हमारे अतिथि होकर जहाज-पर चलेंगे। समुद्रतटतक जहाज तो नहीं जायगा; किंतु एक छोटी नौकामें हमारे नाविक तटतक उतार आयेंगे। तटपर आप सुरक्षित उतर जायँ, केवल इतना हम कर सकते हैं।’

× × ×

अद्भुत अतिथि था यह भारतीय युवक भी। वह अपने साथ ढेर लाया गट्टरोंके और कई बड़े पात्र जल भरवाये उसने। कप्तानको इससे पता लगा कि भारतीय नदी गङ्गाका जल महीनों स्वयं स्वच्छ, सुरक्षित रहता है। यूरोपसे भारततक आनेमें जहाजके लोगोंको पीनेके पानीका बड़ा कष्ट हुआ था। यद्यपि अफ्रिकाके केप अन्तरीपपर तथा दो और स्थानोंपर जल उन्होंने लिया था; किंतु वह मार्गमें सड़ गया। उस कृमि पड़े जलको छानकर पीनेपर भी अनेक नाविक रोगी हुए। दुर्गन्धित जल वैसे भी विवशताके कारण ही पीना पड़ता था। कप्तानने जहाजका पूरा जल फेंक दिया और गङ्गाजल अपने पात्रोंमें भी उसने भरवाया। युवक प्रसन्न हो गया—‘गङ्गाजलमें स्पर्शदोष नहीं होता।’

जहाजपर वह अपने साथ लाये गट्टरोंमेंसे सूखे मेवे खाता था। चना, गेहूँ, मूँग भिगाकर चबा लेता था। उसके मेवोंमें जहाजके प्रत्येक सदस्यका दैनिक भाग था; किंतु उसने कप्तानकी कोई वस्तु नहीं ली। उसका व्यवहार ऐसा था जैसे जहाजके दूसरे सब लोग अतिथि हों और वह स्वयं अतिथेय हो। कप्तानने कई बार अपने लोगोंमें कहा—‘भारतीय अतिथ्य करनेमें अपनी तुलना नहीं रखते, यह हमने सुना था; किंतु वे अपने सभी सद्गुणोंमें देवताओंसे भी बड़े हैं, यह हमें अनुभव नहीं होता, यदि हम इस युवकका साथ न पाते।’

महीनों लगते थे यात्रामें। स्नेह, सौजन्य, सरलताकी मूर्ति वह युवक सबका अत्यन्त सम्मान-भाजन हो गया था। जहाजपर भी वह तीन समय स्नान करता था। यूरोपके उस समयके उन नागरिकोंको भले वे सुसभ्य शालीन फ्रांसके नागरिक हों, युवककी यह संध्या-पूजा समझमें नहीं आती थी। किंतु जब वह जहाजपर दोनों हाथोंमें जलपात्र उठाकर सूर्यके सम्मुख खड़ा होता था, उसके मुखकी वह उद्दीप्त भंगिमा, वह भव्य शान्ति ऐसी थी कि कप्तान और नाविक प्रायः नियमसे उस समय उसे देखने डेकपर आ जाते थे। जब वह अपना न समझमें आनेवाला स्तवन समाप्त करके घूमता, एक साथ सब उसे अभिवादन करते। यह क्रम अपने-आप बन गया था और क्यों बना था, इसे कोई जानता नहीं था।

× × ×

‘अब क्या होगा?’ अकस्मात् वायु सर्वथा बंद हो गया। जहाजके पाल अपने आधारके साथ सीधे झूल गये। जहाज पूरे सात दिन समुद्रसे लगभग एक स्थानपर ही स्थिर रहा तो कप्तानने जहाजके सभी लोगोंको एकत्र किया। वह उनके साथ योजना बनाने लगा था—‘कोई नहीं जानता कि पवन कब प्रारम्भ होगा। महीने-दो-महीने अथवा उससे भी अधिक। अनेक जहाजोंके यात्रियोंके समान अन्न-जलके अभावमें हमारे भाग्यमें भी मरना है या नहीं, कैसे कहा जा सकता है। ऐसी अवस्थामें आजसे सबको सीमित जल तथा आहार मिलेगा। हम अधिक-से-अधिक दिन विपत्तिका सामना करनेको अभीसे तैयार होंगे!’

सबने स्थितिकी गम्भीरता समझ ली थी। किसीके लिये कुछ कहनेको नहीं था। अन्तमें कप्तानने कहा—‘एक बात हमें विशेष रूपसे ध्यानमें रखनी है। भारतीय युवक फ्रांसका सम्मान्य अतिथि है। वह अब जादे जितना दृढ़ करे, उसके

मेवे कोई नहीं स्वीकार करेगा । उसको पानीका अभाव अनुभव नहीं होना चाहिये ।'

भारतीय युवक इस बैठकमें नहीं था । होता भी तो फ्रेंच वह समझ नहीं सकता था । उसे बड़ा बुरा लगा तब जब प्रातःकाल उसके मेवे स्वीकार करना एक ओरसे नाविकों-ने बंद कर दिया । वह झल्लाया पहुँचा कप्तानके कक्षमें— 'आपने मेरा सामूहिक बहिष्कार कर दिया है ? अन्ततः मुझ-से अपराध क्या हुआ ?'

'आप देख रहे हैं कि जहाज सात दिनसे समुद्रमें स्थिर है । हमें कबतक पड़े रहना होगा, कौन कह सकता है ?' कप्तानके नेत्र भर आये थे । 'आप हमारा भोजन स्वीकार नहीं करते । यह विपत्तिका समय सबके भोजनको अधिक-से-अधिक सुरक्षित रखनेका है ।'

'ओह ! मेरा ध्यान ही नहीं गया कि जहाज स्थिर रहनेसे हम विपत्तिमें पड़ गये हैं ।' युवक गम्भीर हो गया । 'जहाँ एक भी क्षत्रिय है, विपत्तिसे बचानेका दायित्व उसपर होता है । वायुको चलना पड़ेगा । वह न भी चले, आप सबको आहार तो मैं दे ही सकता हूँ ।'

'आपके मेवे और अन्न सबको कितने दिन भोजन देंगे ?' कप्तानको लगा कि युवक अभी परिस्थिति समझ नहीं रहा है ।

'आप सब मत्स्यभोजी हैं और मैं अपना धनुष साथ लाया हूँ । सागरमें जलचरोंका अभाव नहीं है । भारतीय लक्ष्यवेध आपने देखा नहीं होगा ।' युवकने उसी गम्भीरतासे कहा । 'किंतु वायुको चलना चाहिये ।'

वह मुड़ा और डेकपर आ गया । कुतूहलवश ही कप्तान उसके पीछे आया । युवकने दोनों हाथ उठा दिये भगवान् सूर्यकी ओर मुख करके । उसके मुखसे सस्वर श्रुतिके मरुत्-स्तवनके मन्त्र उच्चरित होने लगे । उसके मुखकी अरुणिमा गाढ़-से-गाढ़तर होती गयी ।

'भारतीय अद्भुत शक्ति रखते हैं ।' सुना तो सबने था; किंतु आज सबने देखा । जहाजके नाविक डेकपर थोड़ी देर ही रह सके । वायुमें गति आ गयी थी । पाल तन गये थे । सबको अपने कार्यपर पहुँचना आवश्यक हो गया । जहाज पूरे वेगसे लक्ष्यकी ओर चल पड़ा था ।

× × ×

विपत्ति अकेली नहीं आती । केवल दो सप्ताहकी यात्रा

सकुशल चली उस सप्ताह भर एक स्थानपर स्थिर रहनेके पश्चात् । अचानक रात्रिमें जहाजपर खतरेका विगुल बजने लगा । भाग-दौड़ने युवककी निद्रा भंग कर दी । वह कक्षसे बाहर आया । नाविक दौड़ रहे थे । पाल सब कुछ क्षणोंमें उतार दिये गये । जल तथा भोजनके भारी पात्र जंजीरोंसे जकड़ दिये गये । प्रत्येक कक्षमें नाविकोंने जाकर हर छोटी-बड़ी वस्तुको कहीं बंद किया अथवा बाँधा । युवकके कक्षमें भी यही हुआ । लेकिन यह सब क्या हो रहा है, युवक समझ नहीं सका । इस समय किसीको उसकी ओर ध्यान देनेका अवकाश नहीं था और युवक उन लोगोंकी पुकार तथा ध्वराहट-भरे वाक्य समझ नहीं पाता था । वह कक्षसे निकलकर डेकपर आ गया ।

पूर्णिमाकी उज्ज्वल चन्द्रिकामें उल्लसित सागर—उसमें उत्ताल तरंगें उठ रही थीं । युवकके लिये डेकपर निरावलम्ब खड़े रहना सम्भव नहीं रहा । उसने एक पालके दण्डको पकड़ लिया । उसे नाविकोंकी व्याकुलता समझनेमें देर नहीं लगी । दूर क्षितिजतक उठता, उबलता उदधि घोर गर्जन करता उमड़ा आ रहा था । उसे समुद्रीय तूफानका अनुभव भले न हो, विपत्तिका स्वरूप शात हो गया । जहाजकी प्रत्येक वस्तु क्यों बन्धनमें रक्खी गयी, यह भी वह समझ गया । उत्ताल लहरोंपर उछलते जहाजमें कोई खुली वस्तु तो वेगसे टकराती, लुढ़कती विनाशका ही साधन बनेगी । वह मनुष्योंको मार सकती है । सामग्री नष्ट कर सकती है । जहाज-को तोड़ दे सकती है ।

'हे भगवन् !' जहाजमें प्रायः लोग कातर प्रार्थना करनेमें लगे थे । वह साधारण आँधी नहीं थी । अकल्पित तूफान था । जहाज किसीके नियन्त्रणमें नहीं रह गया था । वह क्रिधर जा रहा है, कोई बताने नहीं सकता था । सब भयभीत, सब अस्तव्यस्त और सब किसी-न-किसी खंभे अथवा दृढ़ आधारको दोनों भुजाओंमें जकड़े बैठे थे । जहाज उछलता था, झटके लगते थे और लगता था कि भुजाएँ उखड़ जायँगी ।'

'नारायण ! तुम्हीं रुद्र हो । तुम्हारा यह ताण्डव—बड़ा भव्य है यह तुम्हारे पावनपदोंकी गति प्रभु !' किसीको अवकाश नहीं था कि देखे कि भारतीय युवक क्या कर सकता है ।

'आप कुछ कर सकते हैं ?' कप्तान किसी प्रकार समीप आया युवकके ओर उसने प्रार्थना-कातर स्वरमें कहा ।

पर्वताकार तरङ्ग—लगाता था कि जहाज अब डूबा । कप्तानने अपने सब लोगोंको जहाजमें आये जलको निकालनेमें लगा दिया था ।

‘मैं ! मुझे कुछ करना चाहिये ! आप जो आदेश दें !’ युवक चौंका । उसे लगा कि कप्तान उसे भी जल निकालने-जैसे काममें लगाना चाहता है ।

‘इस अकल्पित तूफानसे जहाजकी रक्षाके लिये आप अपनी अद्भुत शक्ति काममें लें तो कदाचित् हम सबका जीवन बच जाय ।’ कप्तानको ऐसी अवस्थामें भी इस शान्त, सुप्रसन्न युवकका मुख देखकर आशा हो गयी थी ।

‘हम उस अनन्तशायीके अङ्गमें हैं । वह तनिक क्रीड़ा कर रहा है । उसकी क्रीड़ामें आप सहयोग करेंगे ?’ युवक अपनी धुनमें पूछ गया ।

‘अवश्य !’ कप्तानने केवल इतना समझा कि युवक कुछ करना चाहता है और उसे सहयोगकी अपेक्षा है ।

‘जहाजकी दिशा नियन्त्रित कीजिये । उसे मेरे निर्दिष्ट मार्गपर चलने दीजिये ! वह लीलामय जो लीला दिखलाना चाहता है, उसे देखनेमें हम कातर क्यों हों ?’ युवक उठ खड़ा हुआ । उसने एक हाथसे स्तम्भ पकड़ा और एकसे दिशा-निर्देश करना प्रारम्भ किया ।

‘कप्तान ! रोको उसे । भारतीय पागल हो गया है ।’ नाविकोंके तीनों नायक एक साथ दौड़े आये थे । ‘वह जहाजको भयंकर भँवरकी ओर ले जा रहा है ।’

‘जहाजको यदि कोई बचा सकता है तो वही बचा सकता है । जहाज वैसे भी डूबेगा ही, अतः उसके आदेशका पालन होना चाहिये ।’ कप्तानके स्वरमें वज्रकी दृढ़ता थी । ‘तुम उसके मुखको नहीं देखते ?’

सचमुच उस युवकके मुखपर जो शान्ति, जो निश्चिन्तता, जो प्रसन्नता थी, वह दूसरेको भी निश्चिन्त कर देती थी । कप्तान भी काँप गया जब ठीक मीलोंतक चक्कर काटते भ्रमरमें जहाज डाल देनेका संकेत युवकने किया; किंतु उसका आदेश पालन करना ही था ।

‘अब आपका जहाज सिन्धुसुताके स्नेहसे सुरक्षित है !’ भारतीय युवक घूमा कप्तानकी ओर ।

‘ओह ! तो आप सागरीय-ज्ञानके भी महापण्डित हैं ।’ कप्तान बढ़कर गलेसे लिपट ही गया । समुद्रमें जहाँ उच्छ्वल लहरें उठती हैं, वे आगे उमड़कर एक स्थानपर जलके

नीचेसे लौटती हैं । इस स्थानको समुद्रकी पछाड़ कहते हैं । यह स्थान परिवर्तित होता रहता है; किंतु वहाँ समुद्रका जल स्थिर शान्त होता है । जहाज इस समय समुद्रकी पछाड़में पहुँचकर स्थिर, निश्चल खड़ा था । चारों ओर हाहाकार करती, क्षितिजको छूती लहरें अब उठती रहीं, जहाजमें केवल हल्का कम्पन ही होना सम्भव था । अनुभवी कप्तानने देख लिया था कि अब तूफान शान्त होनेतक उसे खुले समुद्रमें ऐसा स्थान मिल गया है जो किसी भी सुरक्षित बन्दरगाहसे अधिक सुरक्षित है ।

‘आपकी इस अखण्ड शान्तिका रहस्य क्या है ?’ कप्तान युवकको आदरपूर्वक अपने कक्षमें ले आया था । उसने बहुत विनम्र होकर पूछा—‘समुद्रीय-ज्ञान आपने कहाँ उपलब्ध किया ?’

‘मेरी यह सर्वप्रथम समुद्र-यात्रा है । समुद्रसे मेरा कोई परिचय नहीं ।’ युवक सरल स्वरमें कह रहा था । ‘किंतु समुद्रशायी श्रीहरि मेरे अपने हैं, यह मैं जानता हूँ । सृष्टिके संचालकपरसे दृष्टि मत हटने दो, महाप्रलय भी तुम्हारी शान्तिको कम्पित करनेमें असमर्थ रहेगी ।’

× × ×

कोई नहीं चाहता था कि युवक उस अरण्यके भयावह तटपर उतरे, किंतु उसे उतरना ही था । छोटी नौकापर उसे तटतक छोड़ने स्वयं कप्तान गया ।

उसके बाद कोई नहीं जानता कि उस युवकका क्या हुआ । पीछे कांगोके बेलजियम प्रशासकको बन्धु जातियोंके एक प्रमुखने एक दिन कहा था—‘एक भारतीय योगी हमारे यहाँ एक रात्रि रहा था । पता नहीं, उसमें क्या था कि गुरिल्लोंके दलका सरदार उसके पैरोंके पास सबरे आ बैठा । वह गुरिल्लोंके साथ उत्तर चला गया ।’

मिखमें एक भारतीय व्यापारीको एक तरुण मिला एक दिन । व्यापारीने उसके भारत पहुँचानेकी व्यवस्था कर दी । व्यापारीको लगा कि तरुण कुछ विक्षिप्त हो गया है; क्योंकि सम्पूर्ण अफ्रिका महाद्वीपको केवल धनुष लेकर पैदल पार करनेकी बात तो व्यापारीकी समझसे कोई विक्षिप्त ही कर सकता है । इसपर वह युवक उस जातिके मांसाहारी, दारुणतम गुरिल्लोंको अपना सहायक बतलाता था, जिनकी दहाड़ सुनकर सिंह भी पूँछ दबाकर दुबकनेका स्थान ढूँढ़ते दीखते हैं ।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजीकी धर्मभावना

श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणने श्रीमद्भागवतकी अपनी श्री-सुबोधिनी टीकामें स्थान-स्थानपर जीवनके अनेक तथ्यों तथा धर्माचरणके नियमोंका मनोवैज्ञानिक आधारपर विश्लेषण करते हुए निरूपण किया है, जिनमें उच्चतम विचारों तथा सिद्धान्तोंका स्वारस्य निहित है। श्रीसुबोधिनीमें आप श्री-की ऐसी सूक्तियाँ अनन्त हैं। धर्मभावनासे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ सूक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

व्याजेन करणं धर्मो न भवति ।

(भा० १० । ७५ । १८)

व्याज (वहाने) से किया हुआ कर्म धर्म नहीं है। तत्र रुचिश्चेद्भगवति साधनत्वेन तदापि न धर्मत्वम् ।

(भा० १ । २ । ६)

साधनके रूपमें यदि भगवान्में रुचि हो—अर्थात् भगवान् असुक अर्थ प्राप्त करा देंगे, ऐसे हेतुसे यदि उनमें रुचि हो—तो वह धर्म नहीं है।

पुत्रादिकामनया क्रियमाणो धर्मो धर्म एव न भवति । फलस्याविद्याकार्यत्वेन दुःखरूपत्वात् । (भा० १ । २ । ७)

पुत्रादिकी कामनासे किया हुआ धर्म, धर्म ही नहीं; क्योंकि ऐसे फल अविद्याके कार्य होनेसे दुःखरूप हैं।

भगवत्कर्माणि धर्मरूपाणि । तानि मनसा भावितानि मनोयज्ञा भवन्ति, कीर्तितानि वाग्यज्ञाः, श्रुतानि ज्ञानयज्ञाः ।

(भा० २ । ५ । ७)

भगवान्के कर्म धर्मस्वरूप हैं—मनके द्वारा भावना करनेसे वे मनोयज्ञ होते हैं, कीर्तन करनेसे वाणीयज्ञ तथा श्रवण करनेसे ज्ञानयज्ञ होते हैं।

यावद्देहोऽयम्, तावद्गुणाश्रमधर्मा एव स्वधर्माः, भगवद्धर्मादयोऽपि विधर्माः परधर्मा वा । यदा पुनरात्मानं जीवं मन्यते संघातव्यतिरिक्तम्, तदा दास्यं स्वधर्मः, अन्ये वर्णाश्रमादयोऽपि परधर्माः । यदा पुनर्भगवद्भावं प्राप्तास्तदा अलौकिकधर्मा एव ऋषभादिष्विव गोचर्यादयः स्वधर्माः, अन्ये परधर्माः । (भा० ३ । २९ । २)

जबतक यह देह है (अर्थात् मैं देह हूँ) ऐसी समझ है) जबतक वर्णाश्रमके धर्म ही उसके स्वधर्म हैं और भगवद्धर्म आदि परधर्म अथवा विधर्म हैं, परंतु जब जीव अपनेको संघातसे पृथक् मानता है तब भगवान्का दास्य उसका

‘स्वधर्म’ है और दूसरे वर्णाश्रम आदि परधर्म हैं तथा जब जीव भगवद्भावको प्राप्त कर लेता है, तब ऋषभदेव जिस तरह गोचर्या आदि करते थे, वैसे अलौकिक धर्म ही जीवके स्वधर्म होते हैं और अन्य सब परधर्म होते हैं।

बहिर्मुखा हि धर्मशास्त्रज्ञाः शारीरमेव धर्मं स्वधर्ममाहुः, न त्वात्मधर्मं भगवद्धर्मं वा । यतस्तेऽनात्मविदः ।

(भा० १० । २६ । ३२)

धर्मशास्त्र जाननेवाले बहिर्मुख व्यक्ति शरीरके धर्मको ही स्वधर्म कहते हैं, परंतु आत्माके धर्म अथवा भगवद्धर्मको वे स्वधर्म नहीं कहते; क्योंकि वे आत्माको नहीं जानते।

धर्मफलमधर्मो न सहते यथाऽऽमयो गुरुभोजनम् ।

(भा० १० । ७१ । ५३)

जिस प्रकार रोग भारी भोजनको सहन नहीं कर सकता, उसी तरह अधर्म धर्मके फलको सहन नहीं करता।

धर्मो धर्मिमूलस्तद्विरोधेन कर्तव्यः, धर्मिविचारो धर्मादप्यधिकः । (भा० १० । २६ । ३२)

धर्मका मूल ‘धर्मो’ (भगवान्) हैं, इसलिये ‘धर्मो’ का विरोध न हो, इस प्रकार ‘धर्म’ करना चाहिये। धर्मोका विचार ‘धर्म’से भी अधिक (मुख्य) है।

धर्मकीर्तिविरोधे धर्मो रक्षणीयः ।

(भा० १० । ७३ । ३३)

धर्म और कीर्तिका विरोध हो, वहाँ धर्मकी रक्षा करनी चाहिये।

यथा विक्षिप्तेन्द्रियस्य न शारीरो धर्मः फलाय, नाप्यैन्द्रिय-धर्मो विक्षिप्ते मनसि तथा भगवद्विमुखस्य न कोऽपि धर्मः सिद्ध्यति । यदि देहाद्यनुरोधेन, लोकानुरोधेन वा देहादि-लोकानां बाधकत्वाद्वा, भगवदादरं न कुर्यात्, तदा तेषामेव दोषो भवेत् । भगवांश्च तानेव दण्डयेत्.....स्वत एव यदि भगवन्तं न मन्येत, तस्य सर्वनाशो भवेत् । (भा० ३ । १३ । १३)

जिस प्रकार विक्षिप्त इन्द्रियवाले मनुष्यको शारीरिक धर्म फल नहीं देता, अथवा विक्षिप्त मन होनेपर इन्द्रिय-धर्मसे फल नहीं होता, उसी प्रकार यदि जीव भगवद्विमुख है तो उसका कोई धर्म सिद्ध नहीं होगा। यह देह आदिके अनुरोधसे या लोकके अनुरोधसे या देहादि और लोकमें बाधक होनेसे भगवान्का आदर न किया जायगा तो वह

उन्हींका (देह, लोक आदिका) दोष होगा और भगवान् उन्हींको दण्ड देंगे और यदि जीव स्वयं ही भगवान्की अवगणना करता है तो उसका सर्वनाश होता है ।

भगवदनुवृत्तिव्यतिरेकेण कृतेनान्येन धर्मादिना न कृतित्वं भवति । (भा० १ । ११ । ७)

भगवान्की अनुवृत्ति (भगवत्परता या भगवदभिमुखता) के बिना किये हुए अन्य धर्म आदिसे कृतार्थता नहीं होती ।

भगवदनुवृत्तिकृतो धर्मः फलदायी न भवेत् ।
(भा० ३ । १९ । ५)

भगवान्ने अङ्गीकार न किया हो, ऐसा धर्म फल देनेवाला नहीं होता ।

अत्यन्तधर्मकर्तापि भूतद्रोहं चेत्कुर्यात् तदा शं न लभेतैव । सर्वं धर्मं बाधित्वा द्रोहः स्वफलमेव प्रयच्छति ।
(भा० १० । ४१ । ४७)

अत्यन्त धर्म करनेवाला भी यदि प्राणियोंका द्रोह करता है तो उसे सुख सर्वथा नहीं मिलेगा । ऐसा द्रोह सर्वधर्मोंका बाध करके केवल अपना फल ही देगा ।

धर्मस्य चान्तःकरणपरितोषः फलम् । तदभावे धर्मः श्रमः ।
(भा० १ । ४ । २६)

अन्तःकरणका संतोष—यह धर्मका फल है, उसके अभावमें धर्म श्रम है ।

अन्तमें श्रीवल्हभाचार्यजीके षोडश ग्रन्थोंमेंसे एक उद्धरण नीचे दिया जाता है जिसमें एक ही श्लोकमें धर्मका सम्पूर्ण तथ्य निहित किया हुआ पाया जाता है—

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिपः ।
स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन ॥

सर्वदा सर्वभावसे ब्रजाधिपति श्रीकृष्णका भजन करें, केवल यही हमारा धर्म है—कहीं भी और कभी भी अन्य कोई धर्म नहीं है । यहाँ 'सर्वदा' पद देकर कहा है कि हमारी भक्ति सतत धारा-प्रवाहवत् अविच्छिन्न हो । 'सर्वभावेन' पदद्वारा बताया है कि हम सर्वत्र भगवद्भाव रखें, भगवदतिरिक्त कुछ नहीं है यह समझें ।

'ब्रजाधिप' श्रीकृष्णका भजन कहा है जिसका आशय है कि कंसारि श्रीकृष्ण या वासुदेव श्रीकृष्ण नहीं, परंतु ब्रजके अधिपति—ब्रजजन, यशोदा, गोपीजन आदि निःसाधन भक्तोंके अनुग्रहकर्ता, उनमें स्वप्रेम एवं निरोधकी सिद्धि करनेवाले लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी उन्हींकी तरह अहैतुकी भक्ति करें । 'भजनीयः' पदमें ('भज' धातुका अर्थ सेवा होता है, अतः) सेवा करनेका आशय है । इस सेवामें आधिदैविक रूपसे परमतत्त्व यशोदोत्सङ्ग-लालित, श्रीकृष्णकी, आध्यात्मिकरूपसे ब्रह्मतत्त्वकी एवं आधिभौतिक रूपसे प्राणिमात्रकी सेवाका समावेश होता है ।

(संकलनकर्ता—श्रीगोपालदास झालानी)

परम धर्म

एकमात्र प्रभुकी सेवा कर्तव्य-कर्म है ।
नित्य निरंतर प्रेमपूर्ण, बस, परम धर्म है ॥
सकल इन्द्रियोंसे तन-मनसे मतिसे नित ही ।
वनती रहे सदा सेवा यह चिरवाञ्छित ही ॥
रहे न कभी तनिक इच्छा आराम-भोगकी ।
रहे न वाञ्छा तनिक मोक्ष, निज सुख-संयोगकी ॥
रहे एक बस, प्रेम-सुधा-रस-आस्वादन ही ।
सर्वधर्ममस्तक-मणि यह, हरि-आराधन ही ॥

पुष्टिमार्ग और धर्म

(लेखक—बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री, साहित्यरत्न)

धर्मकी परिभाषा जहाँ बड़ी ही जटिल है, वहाँ बड़ी सरल भी है। इसपर प्राचीन कालसे लेकर अर्वाचीनकाल तकके विद्वानोंने, आचार्योंने, संतों, भक्तोंने विचार किया है और वे धर्मका स्वरूप क्या है, इस निर्णय या तथ्यपर पहुँचे हैं। पुष्टिमार्गके प्रवर्तक जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्यने भी लोककी स्थिति, लोकमर्यादा, लोकव्यवहारको देखते हुए विभिन्न शास्त्रोंका सम्यक् पर्यालोचन कर धर्मके सम्बन्धमें अपना सिद्धान्त स्थिर किया है और पुष्टिमार्गको धर्मसे ओतप्रोतकर लोककल्याणार्थ उसे प्रकट किया है।

धर्मके सम्बन्धमें श्रीमद्वल्लभाचार्यने महर्षि कणादके 'अभ्युदय, निःश्रेयस' तथा श्रीमनुकथित धृति आदि दस धर्म तथा स्मृतिकार श्रीयाज्ञवल्क्यकथित श्रुति-स्मृति-सदाचार स्वात्मप्रिय तथा सत्यसंकल्प—आदि धर्मके लक्षणोंपर विचार करनेके बाद दृढ़ता एवं पूरी निष्ठाके साथ वेद-शास्त्र, भगवद्गीता, व्याससूत्र, श्रीकृष्णद्वैपायनकी समाधि-भाषा श्रीमद्भागवत-महोदधिमें अवगाहन किया। आचार्यको भागवतके धर्मविषयक सिद्धान्त बहुत ही प्रिय लगे। उनमें आपने अपने हृदयका सामञ्जस पाया। भक्ति-साधनाको एक आश्रय मिला, जीवनके लिये उन्हें संवल उपलब्ध हुआ।

श्रीमद्भागवतमें—

धर्ममूलं हि भगवान् सर्ववेदमयो हरिः ।
स्मृतं च तद्विदां राजन् येन चात्मा प्रसीदति ॥
सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥
संतोषः समदृक् सेवा ग्राग्येहोपरमः शनैः ।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिशलक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥

(७।११।७—१२)

‘सर्ववेदरूप या देवमय भगवान् ही धर्मविषयक प्रमाण हैं। वेदोंके जाननेवाले पुरुषोंकी स्मृतियाँ भी प्रमाण हैं। जिससे अन्तःकरण प्रसन्न हो हे राजन् ! वह भी प्रमाण है। सत्य, दया, तप, पवित्रता, सहनशीलता, योग्यायोग्य-विवेक, मनोनिग्रह, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दान, यथोचित जप, सरलता, संतोष, महत्पुरुषोंकी सेवा, धीरे-धीरे प्रवृत्ति-के कर्मसे निवृत्ति, मनुष्योंकी निष्फल जाति-क्रियाओंका विचार, मौन, देहात्माका अनुसंधान, अन्नादिकोंमेंसे दूसरे प्राणियोंका यथोचित विभाग, सर्वप्राणिमात्रमें देवबुद्धि, भगवान्का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, पूजा, नमस्कार, दासभाव, सखाभाव, आत्मसमर्पण—ये धर्मके तीस लक्षण सभी मनुष्योंके पालन करने योग्य हैं, जिससे हे राजन् ! सर्वात्मा हरि प्रसन्न होते हैं।’

श्रीव्यासजीकी उक्तियोंसे अपने पुष्टिमार्गके संचालनमें महाप्रभुको बड़ा बल मिला। उन्होंने अपने सम्प्रदायके लिये पूर्ण विचारके साथ उपर्युक्त चार शास्त्रोंको चार स्तम्भ बनाकर पुष्टिमार्गका या शुद्धाद्वैतका भव्य भवन निर्माण किया।

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ।

समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥

(निबन्ध)

वेद, श्रीकृष्णवाक्य (भगवद्गीता), व्याससूत्र और समाधि-भाषा (श्रीमद्भागवत)—ये चार ही मुख्य प्रमाण हैं।

इसकी दृढ़तामें पुष्टिमार्गके आचार्यश्रीवल्लभने एक बोधणा और भी की—

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीत-

मेको देवो देवकीपुत्र एव ।

मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि

कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥

(निबन्ध)

देवकीके पुत्रके द्वारा गायी गयी गीता ही एक शास्त्र है, देवकीके पुत्र ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही एक देव हैं,

उनके सुमधुर नाम ही मन्त्र है और उनकी सेवा ही जीवका कर्म है ।'

अन्तमें पूर्ण निष्कर्ष या साररूपमें आचार्यने यह सिद्ध किया कि जीवमात्रका हरिदास होना ही वास्तविक सत्य धर्म है और उसीको सभीके समक्ष प्रकट किया—

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिपः ।

स्वस्वामेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन ॥

(चतुःश्लोकी)

‘सर्वदा सर्वभावसे ब्रजाधिप श्रीकृष्णका भजन करना ही, उनकी उपासना-सेवा करना ही धर्म है, किसी कालमें और किसी देशमें श्रीकृष्णकी भक्तिके अतिरिक्त दूसरा कोई धर्म नहीं है ।’

एवं सदा स्वकर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति ।

प्रभुः सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत् ॥

(चतुःश्लोकी)

‘हमें तो सेवारूप स्वधर्मका पालन करना चाहिये । प्रभु स्वयं अपना कर्तव्य जो कि हमारे प्रति करना है पूर्ण करेंगे । श्रीप्रभु सब कुछ करनेमें समर्थ हैं । हमें निश्चिन्त होकर रहना चाहिये । हमारा सारा योगक्षेम उन्हींके ऊपर है ।’

यदि श्रीगोकुलाधीशो हृतः सर्वात्मना हृदि ।

ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ॥

(चतुःश्लोकी)

‘यदि श्रीगोकुलके अधिपति श्रीकृष्णको सम्पूर्ण रूपमें सब प्रकारसे हृदयमें धारण कर लिया तो फिर लौकिक और वैदिक फलोंसे हमें क्या प्रयोजन है ?’

अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः ।

स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः ॥

(चतुःश्लोकी)

‘अतएव सब प्रकारसे सदैव श्रीगोकुलेश्वरके चरणकमलोंका स्मरण और भजन त्याग करनेयोग्य नहीं है । इस प्रकारकी मेरी (श्रीवल्लभाचार्यकी) सम्मति है ।’

इससे आचार्यने सिद्ध कर दिया कि जीवका हरिदासत्व

ही ‘स्वधर्म’ है । इसमें सभी वैष्णवाचार्योंकी भी सम्मति है । श्रीमद्भागवतके निर्दिष्ट धर्म एक-एक करके हरिदासमें प्रवेश कर जाते हैं, मनु-उपदिष्ट धर्मोंका भी हरिदासमें स्वतः समावेश हो जाता है ।

इसीसे प्रारम्भसे लेकर पुष्टिमार्ग धर्म-पालनका अत्यधिक आग्रही है । इसका सेवाक्रम, वात्सल्यभावकी उपासना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । नामस्मरण, ब्रह्मसम्बन्ध (आत्मसमर्पण) परम उपादेय है । वैष्णवोंका दैनिक जीवन, आचार-व्यवहार, रहन-सहन, वेश-भूषा सभी धर्मके साथ जुड़े हुए हैं । गोपालन, संकीर्तन, समाजसेवा, पतितोद्धार, एकता, देश-सेवा आदि धर्मोंको यह किसी-न-किसी रूपमें अपनाये हुए है । धर्मका व्यापक रूप इसमें देखनेको मिलता है ।

वस्तुतः जिस प्रकार ईश्वर व्यापक है, उसी प्रकार धर्म भी है । पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशमें कोई ऐसा पदार्थ नहीं जिसमें धर्म न हो । स्थलचर, जलचर, नभचर एवं अन्यत्र कहीं निवास करनेवाला ऐसा जीव नहीं जिसमें धर्म न हो, किंतु वातावरण, परिस्थिति, देश-काल, पर-संसर्गके अनुसार उसके निज धर्ममें परिवर्तन आ जाता है । वस्तुका रूप बदल जाता है, जैसे जलका हिमरूपमें हो जाना । समय-समयपर मनुष्य भी भ्रान्त होकर भौतिकवादकी या मायाकी मृग-मरीचिकामें फँसकर प्रमादवश अपने शाश्वत धर्मका महत्त्व न समझ दूसरेके धर्मको स्वीकार कर लेता है, उसका कृत्रिम आनन्द लेने लगता है । यही स्वभावजन्य विकृति उत्तरोत्तर बढ़कर मानवको दानव बना देती है—उसे पथभ्रष्ट कर देती है । उसकी बुद्धि अधर्मसे आवृत हो जाती है । वह अपने निज स्वरूपको भूलकर दूसरे ही प्रकारके लोक-विरोधी जन-हानिकारक आचरण करने लगता है । ऐसी स्थितिको सुधारनेके लिये भगवान् स्वयं या महापुरुषोंके रूपमें अवतार लेते हैं ।

भगवान्ने गीतामें यह भी घोषणा की है कि—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

अतः सभीके लिये हरिदासत्व स्वीकार कर इस युगके कष्टोंसे निवृत्ति पाना श्रेयस्कर है । यही परम धर्म है ।

धर्म और सुख-शान्ति

(लेखक—श्रीराजमंगलनाथजी त्रिपाठी एम्० ए०, एल्०-एल्० बी०, साहित्याचार्य)

भारतीय जीवन-दर्शन और संस्कृतिका अनादिकालसे आजतक एक विशिष्ट उद्देश्य रहा है। प्राचीन वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंसे लेकर भगवान् एवं आधुनिक महापुरुषोंके जीवन-दर्शनको यदि सूक्ष्मरूपसे देखा जाय तो उनमें एक आश्चर्यजनक एकरूपता दिखायी देगी। देश, काल, वय, बुद्धि और शक्तिके अनुसार भैषज्य धर्मोपदेश और धर्माचरण करते हुए अक्षय सुख और शान्ति प्राप्त करना और कराना सबके जीवनका लक्ष्य था।

धर्म क्या है? अक्षय सुख और शान्ति क्या है? इन विषयोंपर भारतीय ऋषि-मुनियोंने गहन विवेचन किया है। धर्मकी विविध व्याख्याएँ की गयी हैं। महानारायणोपनिषद्में लिखा है—

धर्मेण पापमपनुदति, धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्, तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति।

अन्य जितनी व्याख्याएँ हैं उन सबका तत्त्वार्थ यही है कि धर्म मनुष्यको अक्षय शान्ति प्रदान करता है। धर्म ब्रह्मका स्वरूप ही है। जो धर्मविद् है, वह ब्रह्मविद् है। कहा गया है, 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'। गोस्वामीजीने इसी तत्त्वको 'जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई' कहकर सहजभावमें प्रकट किया है। यह ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करना ही वास्तविक सुख है। 'यो वै भूमा तत्सुखम्' अपरिच्छिन्न आत्मज्ञान ही वास्तविक सुख है। परंतु इस सुखकी प्राप्तिमें बाधक मोह, ममता और अज्ञानसे कैसे मुक्ति मिले? शास्त्र कहता है—

ईश्वरानुग्रहादेव

पुंसामद्वैतवासना ।

आजके युगमें पाश्चात्य दर्शन और संस्कृतिके प्रभावसे ईश्वर और धर्म दोनों ही विविध तर्क, वितर्क और कुतर्कके विषय बने हुए हैं। मलिन बुद्धिके कारण भगवान्का अस्तित्व ही संदिग्ध हो गया है। मैले दर्पणमें मुँह नहीं दिखायी देता तो यह कहना कि 'मुख नहीं है'—कुतर्क ही तो है। भगवान्को जाननेके लिये, भगवान्का अनुग्रह प्राप्त करनेके लिये, बुद्धिकी शुद्धि आवश्यक है—

बुद्धिप्रसादाच्च शिवप्रसादाद् गुरुप्रसादात् पुरुषस्य मुक्तिः।

यज्ञ, तप और दान—धर्मके तीन स्कन्ध माने गये हैं। मनुष्य श्रवण, मनन और निदिध्यासनद्वारा धर्मस्कन्धोंका प्रतिपादन करता हुआ बुद्धि-शुद्धि कर सकता है। बुद्धि-शुद्धिके द्वारा इन्द्रियोंको संयममें रखकर वेदशास्त्रप्रतिपादित कर्मोंको करता हुआ वह मोक्षपदका अधिकारी होता है। श्रुति कहती है—'यज्ञो वै विष्णुः'। यज्ञस्वरूप विष्णुके प्रीत्यर्थ कर्मके द्वारा मनुष्य ईश्वरानुग्रह प्राप्तकर कर्मबन्धनसे मुक्त होकर तर जाता है, आत्मवित् हो जाता है। ऐसा मनुष्य दूसरोंके लिये भी आदर्श बनता है। 'स्वयं तीर्णः परान् तारयति' जो भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म नहीं कर सकता, वह इन्द्रियजन्य आकर्षणमें अवश्य आयेगा। 'बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति'—यह सिद्ध सत्य है। बुद्धिमान् और मूर्ख दोनों कर्म करते हैं, किंतु उनके विचारोंमें अन्तर होता है। मूर्ख आसक्तिके साथ कर्म करता है, बुद्धिमान् आसक्तिरहित, अहंकाररहित होकर समत्वभावसे आत्मशुद्धिके लिये कर्म करता है। यही मनुष्यका धर्म है। मनुस्मृति कहती है—'वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः' यम-नियमपूर्वक निरलस होकर वेदोक्त कर्म तयतक करने चाहिये, जबतक संसारसे निर्वेद न प्राप्त हो और भगवान्की कथाके श्रवण-मननमें श्रद्धा न उत्पन्न हो जाय। श्रीमद्भागवतमें भगवान्का कथन है—

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।

मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥

भागवती कथामें श्रद्धा होनेपर मनुष्यके सब काम भगवदर्थ ही होते हैं और भगवान् भक्तके दीर्घकालके पापोंको नष्ट कर देते हैं। भक्त भगवान्के साथ एकात्मता प्राप्त करता है। उसके मोह-शोक सब नष्ट हो जाते हैं। श्रुति कहती है—'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' इसी स्थितिको भूमा सुख, अपरिच्छिन्न आनन्द, ब्राह्मी स्थिति और शिवत्व कहते हैं। इसी शिवत्वका भान होनेपर आत्यन्तिक शान्तिकी प्राप्ति होती है।

ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ।

(श्वे० उप०)

सब काम प्रभुकी पूजा हैं !

(लेखक—श्रीरघुनाथजी महापात्र, एम्० ए०)

मुझसे बराबर पूछा जाता रहा है कि 'आपसे इतना काम कैसे हो जाता है ?' 'इतना' इस अर्थमें कि 'इतने प्रकारके और कुछ ही समयमें कई प्रकारके या एक ही कामकी अत्यधिकता।' और मैंने प्रत्येकका उत्तर दिया है कि मेरे लिये प्रत्येक कार्य प्रभुकी पूजा है। काम केवल काम नहीं है, उसका उद्देश्य है, केन्द्र है—'प्रभुकी उपासना' और यही कारण है कि मेरे द्वारा इतना काम—यदि तथ्य और सत्यता ऐसी है—वह करा लेता है। मैं स्वयं ऐसा कर पाता हूँ यह कहना एक बड़ी भूल होगी।

वस्तुतः पूजाकी भावनाके आ जानेपर कार्य सात्त्विक हो जाता है और उसके सम्पादनकी प्रेरणामें राग-द्वेष, कलह-विवाद आदिको स्थान न मिलकर एक सुन्दर प्रकारकी शान्ति एवं भीतरी शक्ति काम करती है। सात्त्विक कार्योंकी खूबी यह है कि उनसे सफलता-असफलताके कारण मनोवेगमें किसी प्रकारका विकार नहीं होता, सम-स्थिति रहती है। पूजाकी भावना जोड़ लेनेसे कार्यमें सुन्दरता, सुचारुता, स्थायित्व आदि गुणोंका समावेश अपने-आप हो जाता है। निश्चित है कि क्षुद्र-सा काम भी उच्चस्तरका हो जाता है तथा उसमें अनिर्वचनीय आनन्दकी प्राप्ति भी होती है।

उदाहरणके लिये शरीरको साफ रखनेकी बात ही लें। 'शरीरको साफ मत रखो'—ऐसा कोई भी नहीं कहेगा; किंतु जबतक उस भावनाके प्रति मानसिक स्थितिका झुकाव न रहेगा, तबतक सफाई केवल दिखानेकी हो जायगी। क्या यही कारण नहीं है कि मेरे बहुत-से बहन-भाई विशेषतः जाड़ोंमें नहानेका बहाना भर कर लेते हैं, ऊपरी सजावटसे यह जता देना चाहते हैं कि उन्होंने स्नान कर लिया है, जब कि शरीरकी गंदगी ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। हममेंसे अधिकांश अंदरके कपड़े गंदे पहनते हैं। अच्छी प्रकार शरीरको साफ नहीं रखते; इस कारण नहीं कि उन्हें सफाई पसंद नहीं, वरं इसलिये कि वे आलस्यके फेरमें पड़ जाते हैं; किंतु इसमें यदि पूजाकी भावना जोड़ ली जाय तो यह आत्मप्रवृत्ति नहीं टिकेगी। प्रभुकी पूजा, आध्यात्मिकताकी भावनाके सामने प्रवृत्ति, छल-कपट, मोह, लोभको स्थान ही कहाँ ? संसारमें ऐसे उदाहरण

मिलते हैं जहाँ बाहरी पूजा भी जीवनकी तारक बन गयी है—वाल्मीकि इसके अन्यतम उदाहरण हैं। वरके दैनिक जीवनमें बहुत-से कार्य हमें करने पड़ते हैं, जिन्हें या तो हम झुंझलाकर करते हैं या मनोयोगरहित, जैसे कि हम कैदी हैं। जब कार्य करना ही है, तब उसमें कष्टकी भावना क्यों ? घरको झाड़-बुहारकर साफ रखना, पुस्तकोंको फटनेसे रोकनेके लिये उनकी हिंफाजत करना, लोटा या बर्तनोंको मलना, कपड़ोंको फाँचना, नहाना आदि सब कार्य स्वाभाविक हैं, उनके लिये मन मारकर चेष्टा करनेकी भावनाको त्यागकर प्रभुकी पूजा या सेवाकी भावनासे उन्हें करना चाहिये। इससे कार्य सरल हो जाता है और दुश्चिन्ताएँ भी नहीं रहतीं। कोई कार्य हमें नहीं आता, तो यह सोचकर कि यह कार्य प्रभु हमसे कराना नहीं चाहते, उसमें हाथ न लगाना अच्छा है; किंतु जब करना ही पड़े, तब तो वह प्रभुकी इच्छा है, वे स्वयं अपनी पूजा हमसे कराना चाहते हैं, जिससे हमारी भलाई हो। यों सोचकर ऐसे अवसरोंको छोड़ना नहीं चाहिये। ये ही जीवनको सँवारते हैं।

मेरी दृष्टिमें पूजा कोई एकाध घंटेकी आराधना जप-कीर्तन, मन्दिर-गमनकी प्रक्रिया ही नहीं है, वरं वह प्रत्येक पलमें, प्रत्येक कार्यमें प्रभुकी झलक मिलनेमें है। मुझे एक बात याद आ रही है। मेरी माताजी प्रतिदिन पूजा करती हैं—घंटों बैठती हैं, व्रत, उपवास, त्योहारोंका ताँता लगा रहता है। मुझे भी हँसी-मजाकके लिये खूब समय मिल जाता है तथा मैं उन्हें कहा करता हूँ 'माँ, तुम्हारे ठाकुर ही सब गड़बड़ी कर रहे हैं, वे ही तुम्हें हमारी सेवासे विमुख रखते हैं। देखो न ! मैं तो यहाँ जीवित भगवान् खड़ा हूँ और तुम मूर्ति पूज रही हो। एक दिन उन्हें ले जाकर पोखरेमें डुबा आऊँगा, तो सब ठीक हो जायगा।' कभी-कभी मुझे उनकी पूजाका अवसर मिलता तो मैं माँसे कहता—'देखो भाई ! यदि तुम्हारे ठाकुरजीको आज नहाना-खाना और आराम करना हो तब चलें। मेरे साथ तालाबमें नहावें, फिर मेरे साथ साथ दें रसोई बनानेमें। तब कहीं भोजन मिलेगा। यह क्या कि खटोलेपर बैठे-बैठे आलसी बने रहते हैं। मैं दो-चार दिनोंमें ही सब दण्ड-बैठक करवा दूँगा।' तब माँ कहती—'तुम्हारी

पूजा-सेवा तो मैं रोज ही हर पल करती रहती हूँ, एक-दो घंटे इन्हें भी कर दूँ तो क्या ? और जाओ लिवा जाओ नहानेके लिये, कहो खाना बनानेके लिये—सब तो वही कर रहे हैं तुम्हें दिखता न होगा ।' यह सब सुनकर मैं गद्गद हो जाता हूँ । माँके लिये हर काम पूजा है, मैंने सब उन्हांसे सीखा है ।

प्रत्येक वस्तुकी पूजा उनके उचित संरक्षण तथा उपयोगसे है । वस, भावनाकी समता चाहिये । ऊपरी व्यवहारमें समता कैसे हो सकती है ? जहाँ जूतेकी पूजा उसे साफ रखने, उसपर रंग लगा उसको चमकाने तथा पैरोंमें पहनकर उपयोग करनेमें है, वहीं कलमकी पूजा उससे सुन्दर तथ्योंको लिखनेमें है । यही भगवद्भक्ति भी है । निश्चित है कि जो व्यक्ति इस भावनासे अपने सब काम करता है तथा जो बिना इस भावनाके करते हैं; उनमें रहन-सहन, खान-पान, मानसिक स्थिति, विचार, व्यवहार आदिकी दृष्टिसे एक बड़ी खाई होगी । सच तो यह है कि आध्यात्मिक भावनाके बिना भौतिक रहन-सहन भी विषमय हो जाता है, उसमें जीवनका आनन्द मिलनेके बदले जीवनका बोझ ढोना पड़ता है तथा प्रसन्नता तो दूर उलटे अशान्ति ही मिलती है ।

हमारा प्रत्येक कार्य प्रभुमय हो, पूजामय हो । हमारा

वैठना प्रभुका आसन हो, स्नान करना प्रभुको स्नान कराना हो, पहनना उन्हें ही पहनाना हो, सजना उन्हें ही सजाना हो, धूमना उनकी ही प्रदक्षिणा हो, प्रकाश करना उनके लिये दीप जलाना हो ताकि दूसरे स्पष्टतः उन्हें देख सकें; हमारा भोजन करना उन्हें भोजन कराना हो आदि-आदि । यदि ऐसा हो जायगा तब जो चीज प्रभुको दी न जा सकेगी, उसे हम भी ग्रहण नहीं कर पायेंगे तथा अनेकों शारीरिक, मानसिक और आन्तरिक दुःखोंसे, दुश्चिन्ताओंसे स्वभावतः मुक्ति पा जायेंगे । ऐसा इसलिये होगा कि अखाद्य ग्रहण न करेंगे, अवस्त्र न पहनेंगे, दुर्वचन न बोलेंगे, अपठनीय न पढ़ेंगे, कुत्सित न देखेंगे, न सुननेयोग्य न सुनेंगे, न स्पर्श करनेयोग्य स्पर्श न करेंगे, अपशब्द न कहेंगे और न अश्लील सोचेंगे । इन्हीं कारणोंसे ही तो हमारी प्रगति रुकी हुई है । हम आरामके नामपर रोग-कलह, राग-द्वेष, भय-विषाद काम-क्रोध, लोभ आदिको बुलावा देते हैं और सबसे दुःखकी बात तो यह है कि इन्हें ही हमने आज संस्कृति-सभ्यता समझ रक्खा है । इन बातोंकी क्या प्रभु-पूजाकी भावनासे कोई तुलना है ? तब जब हमारा सुख-सूत्र हमारे हाथोंमें हो, हम दुःख क्यों पायें, यदि पायें भी तो दोष दूसरोंको क्यों दें ?

अधर्मसे समूल नाश

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम् । हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥
न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् । अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ॥
नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव । शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥

(मनुस्मृति ४ । १७०—१७२)

जो अधर्म करता है, झूठ ही जिसका धन है (जो झूठके द्वारा धन कमाता है) और जो दूसरोंको पीड़ा पहुँचाता है, वह इस लोकमें सुखको नहीं प्राप्त होता (दिन-रात जलता ही रहता है) । अधर्ममें लगे हुए पापियोंके (सुख-समृद्धिका) शीघ्र ही विपर्यय (नाश एवं उन्नतिकी जगह अवनति, सुखकी जगह दुःख होते) देखकर मनुष्य धर्मपालनमें कष्ट सहता हुआ भी कभी अधर्ममें प्रवृत्त न हो । किया हुआ अधर्म (कभी-कभी सुख-भोगका प्रारम्भ होनेपर) भूमि या गौके समान तत्काल फल नहीं देता, किंतु धीरे-धीरे फलकी ओर बढ़ता हुआ अन्तमें उस अधर्म करनेवालेकी जड़ ही काट देता है ।

सफलता पानेके कुछ साधन

(स्वामी श्रीरामतीर्थजीका संदेश)

[महान् विभूति स्वामी रामतीर्थ प्रायः अपने प्रवचनों में कहा करते थे कि व्यक्तिकी इच्छाएँ ही उसके दुःख-का कारण होती हैं। सच्चा आनन्द तभी प्राप्त होता है जब मनुष्य अपनी इच्छाओंपर विजय पा लेता है। स्वामीजीने इच्छाओंको त्यागकर अनन्त सुखको प्राप्त कर लिया था। वे अपनेको 'राम बादशाह' कहा करते थे। अमेरिकामें एक बार आपने कहा था—'संसारका सारा धन रामका है, उसे किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, वह सम्राटोंका सम्राट् है।' स्वामीजीके शब्दकोषमें 'असम्भव' शब्दके लिये कोई स्थान नहीं था। व्यक्ति जीवनमें किस प्रकार सफलता प्राप्त कर सकता है, इसके लिये उन्होंने कुछ साधन बताये हैं। स्वामीजीके शब्दोंमें वे इस प्रकार हैं—]

परिश्रम—

दीपकके आलोकका रहस्य इस बातमें निहित है कि वह अपने आलोकको बनाये रखनेके लिये अपनी बाती एवं तेल जलाता रहता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने शरीरका तेल जलाते हैं अर्थात् कठिन परिश्रम करते हैं, वे निश्चय ही जीवनमें सफलता प्राप्त करते हैं। हमें सदैव स्मरण रखना चाहिये कि संघर्ष ही जीवन है और निष्क्रियता मृत्युका दूसरा नाम है। सरोवरके स्थिर जल और कलकल करती प्रवाहित नदीके जलमें कितना अन्तर होता है। प्रवाहित नदीका जल निर्मल, आकर्षक एवं स्वादिष्ट होता है, जब कि सरोवरका स्थिर जल मलिन, दुर्गन्धयुक्त एवं स्वादरहित। यदि आप जीवनमें सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो नदीकी भाँति निरन्तर आगे बढ़ते रहिये। परिश्रम ! परिश्रम !! परिश्रम !!! यही सफलताका प्रथम मन्त्र है।

त्याग एवं बलिदान—

जीवनमें सफलता प्राप्त करनेके लिये हृदयमें त्याग दूर रखिये। निर्भय व्यक्ति असम्भवको सम्भव बना

एवं बलिदानकी भावना होनी चाहिये। यदि आप कुछ पाना चाहते हैं तो देना सीखिये। एक बीजको एक विशाल वृक्ष बननेके लिये अपने-आपको मिटना पड़ता है। सम्पूर्ण आत्म-बलिदानका परिणाम फल होता है।

गहरी लगन—

किसी लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये व्यक्तिमें गहरी लगन-का होना आवश्यक है। अपने-आपको पूरी तरह भूलकर कार्यमें खो जाइये। निश्चय ही आपको कार्यमें सफलता मिलेगी। यदि आप विचार कर रहे हैं तो स्वयं विचार बन जाइये। यदि आप कार्य कर रहे हैं तो स्वयं कार्य बन जाइये। सफलता आपके पाँव चूमेगी।

स्नेह एवं सहानुभूति—

दूसरोंके प्रति आपके हृदयमें स्नेह एवं सहानुभूति होनी चाहिये। जब आप किसीको प्यार देंगे तो दूसरा भी आपपर प्यार लुटायेगा। स्नेह देना और स्नेह पाना सफलताका चौथा सिद्धान्त है।

प्रफुल्लता—

प्रत्येक दशामें प्रसन्नचित्त रहना सफलताका पाँचवाँ सिद्धान्त है। आपके खिलते हुए मुखपर मुसकराहट देखकर मुझे प्रसन्नता होती है, आप मुसकराते हुए पुष्प हैं। आप मानवताके मुसकराते हुए अङ्कुर हैं, आप प्रफुल्लताके प्रतीक हैं और मैं चाहूँगा कि आप जीवनके अन्तिम क्षणतक प्रसन्नचित्त रहें। कार्यके लिये कार्य करिये। भूत एवं भविष्यकी चिन्ता किये बिना पूरी लगनसे कार्य करिये। निश्चय ही इस प्रकारकी चित्तवृत्ति आपको हर समय प्रफुल्लता प्रदान करेगी।

निर्भयता—

भीरुता मृत्युके समान है। अतः इससे अपनेको दूर रखिये। निर्भय व्यक्ति असम्भवको सम्भव बना

सकता है। आपकी साहसपूर्ण दृष्टि शेरतकको वशमें कर सकती है। बड़े-से-बड़े शत्रुको शान्त कर सकती है। हिमालयके घने वनोंमें मैंने भ्रमण किया है। चीते, रीछ, भेड़िये-जैसे खूँखार जानवरोंसे सामना हुआ है। परस्पर नजरें मिली हैं, किंतु वे बिना कोई हानि पहुँचाये मेरे पाससे निकल गये हैं। याद रखिये—निडरता एवं साहसके सामने बड़ी-से-बड़ी आपत्ति भी नहीं टिक सकती।

आत्मविश्वास—

सफलताका मूलधार आत्मविश्वास एवं आत्म-निर्भरता है। यदि कोई मुझसे सफल-जीवनकी परिभाषा पूछे तो मेरा उत्तर होगा आत्मविश्वास एवं आत्मज्ञान। भगवान् उन्हींकी सहायता करते हैं जो अपनी सहायता आप करते हैं। व्यक्ति स्वयं भगवान् है, यह सिद्ध किया जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है।

[प्रेषक—श्रीतिलकराजजी गोस्वामी एम्० ए०]

कौआ चले जब हंसकी चाल

(लेखक—श्रीकौटिल्यजी उदियानी)

पूर्वमें लालिमा बिखेरते हुए सूर्य उदय हुआ। कुछ शुद्ध श्वेतवर्णयुक्त मानसरोवरके राजहंस दीर्घ यात्रासे थके-चुके एक वृक्षके नीचे विश्रान्तिके उद्देश्यसे आ बैठे। डालपर एक कौआ बैठा था। हंसोंको वहाँ विश्रान्ति पाते देख वह काँव-काँव करके फुदकने लगा—‘अरे, तुम कौन हो ? यहाँ क्यों विश्राम कर रहे हो ? यह वृक्ष क्या तुम्हारे बापका है, जो आते ही पसर गये ?’

परंतु हंस आरामसे बैठे थकान उतारते रहे। उन्होंने कौएकी बातका कोई उत्तर नहीं दिया और न उसकी उद्दण्डताका बुरा ही माना।

उत्तर प्राप्त न कर कौआ फिर तेजीसे काँव-काँव करने लगा—‘अरे, बोलते क्यों नहीं हो, मुँहमें क्या वाणी नहीं है ?’

मन्द-मन्द मुसकराते हुए हंसोंने परस्पर संकेतकी भाषामें न जाने क्या बातचीत की। आखिर कौएके कर्कश स्वरसे छुटकारा पानेके लिये एक हंस बोल ही पड़ा—‘हम मानसरोवरके राजहंस हैं। दीर्घ पथकी यात्रासे बेहद थक गये हैं; इसलिये कुछ समयके लिये यहाँ बैठकर विश्रान्ति ले रहे हैं। आप चिन्ता न करें, हम शीघ्र ही यहाँसे चले जायेंगे।’

‘तो कुछ उड़ना-उड़ाना भी जानते हो, या यों ही इतने बड़े पंख लिये बैठे हो ?’ कुछ देर रुककर कौएने घमंडसे पूछा। अपनी वाचालताके कारण बात तो उसको किसी-न-किसी तरह जारी रखनी ही थी।

लगता था, हंस काफी थके थे। वह कौएकी ओर टकटकी लगाये अवाक् बैठे रहे। उसकी बातका उन्होंने इस बार भी कोई उत्तर नहीं दिया।

वाचाल कौआ भी जल्दी हार माननेवालोंमेंसे न था। तुरंत उसने अपना स्थान त्यागा और वृक्षके आसपास उड़ने लगा। हंस उसके व्यवहारसे मन-ही-मन हँस रहे थे और टकटकी बाँचे उसकी नादान हरकतको निरख रहे थे। कौएको यह सब बहुत बुरा लगा—‘इस प्रकार घूर-घूरकर क्यों देख रहे हो ? उड़ना जानते हो, तो आ जाओ मैदानमें।’

इस बार भी हंसोंमेंसे किसीने कुछ उत्तर न दिया और न कोई प्रतिस्पर्धालिये ही आगे आया। सब गुमसुम पड़े रहे, शायद इस आशामें कि बेवकूफ बकबकाकर अपने-आप बुप हो जायँगा।

कौएने भी अपना आखिरी अल्ल फेंका। उन्हें धिक्कारते हुए वह बोला और डालकी ओर अपना रुख मोड़ दिया—‘धीरे-धीरे तो लैन्डगीले हों। लज्जा

नहीं आती, इतने बड़े पंख लेकर भी उड़ना नहीं जानते ! अगर हिम्मत है, तो अब भी आ जाओ मैदानमें । देख लेता हूँ कि कितने पानीमें हो ?

कौएको पुनः डालपर बैठते देख आखिर एक हंस मन्द-मन्द मुसकराता हुआ सामने आ ही गया और व्याज-स्तुतिके स्वरमें बोला—‘भाई ! तुम्हें तो अनेकों प्रकारकी उड़ानें आती हैं; उतनी तो मैं नहीं जानता, पर एक उड़ान मैं अवश्य जानता हूँ । चाहो तो आ जाओ ।’

‘छि: छि:, केवल एक ही ।’ कौआ हंसको लज्जित करनेके उद्देश्यसे बोला । ‘तब तुम मेरे सामने क्या उड़ सकोगे ?..... अच्छा चलो, तुम्हारी एक ही उड़ान देख लेता हूँ ।’

प्रतिस्पर्धा आरम्भ हुई । कौआ वेगपूर्वक और हंस अपनी स्वाभाविक मन्द गतिसे आकाशमें उड़ने लगा । नदीकी तरङ्गोंके ऊपर उड़ान आरम्भ थी । दोनों अनवरत बड़ी दूरतक उड़ते चले गये । दूर, बहुत दूरतक; मानो दिगन्तको ही लँघ डालेंगे । आखिरकार अस्वाभाविक गतिसे चलनेवाला कौआ थककर चूर-चूर हो गया । उसकी साँस फूलने लगी । अपनी स्थितिको छिपानेकी नीयतसे वह हंससे बोला—‘अब

तो तुम थक गये माछूम होते हो । तभी तो मन्दगतिसे चल रहे हो । चलो लौट चले ।’

कौएकी दुर्दशा हंससे छिपी न रह सकी । वह उसकी क्षण-क्षण मन्द पड़ती जा रही गति बड़े ध्यानसे निरख रहा था । यही तो समय था उसे मजा चखानेका । बहुत ही शान्त स्वरमें हंसने कौएको उत्तर दिया—‘तुम मेरी चिन्ता मत करो, अपना सँभालो । मैं तो अभी दसगुना और चल सकता हूँ । चले चलो अब तो ।’

कौआ बार-बार कोई-न-कोई बहाना बनाकर वापस हो जानेके लिये कहता; परंतु हंस अपनी बातपर अन्ततक अड़ा रहा । वह वापस जानेके लिये नहीं माना । थककर चूर-चूर हुए कौएका दम फूलने लगा । पंख पानीकी सतहका आलिङ्गन करते हुए भीग गये । हंसको बिना प्यासके नीर पीते हुए कौएपर दया आ गयी और तत्काल उसे अपनी पीठपर बिठाकर वह वृक्षकी ओर चल पड़ा । वृक्षके नीचे पहुँचकर कौआ काँव-काँव करता हुआ हंसकी पीठसे उड़कर डालपर जा बैठा और उसने हंसोंपर चिरक दिया ।

कुछ समय पश्चात् राजहंस अपनी लक्ष्य-दिशाकी ओर चल पड़े ।

(संस्कृतकी एक लोककथापर आधारित)

सबमें भगवान् समझकर सबकी सेवा करो

रहो सदा पर-हित-निरत, करो न पर-अपकार ।
सबके सुख-हितमें सदा, समझो निज उपकार ॥
सबमें हैं श्रीहरि बसे, यह मन निश्चय जान ।
यथाशक्ति सेवा करो सबकी, तज अभिमान ॥
हरिकी ही सब वस्तु हैं, हरिके ही मन-बुद्धि ।
हरिकी सेवामें लगा, करो सभीकी शुद्धि ॥

कुमारी शुक्ला के पुनर्जन्मका वृत्तान्त

(लेखक—श्रीप्रकाशजी गोस्वामी, शोध-सहायक)

पश्चिमी बंगालके कम्पा नामक गाँवमें मार्च १९५४ में श्री के० एन० सेन गुप्ताके यहाँ एक कन्याका जन्म हुआ; जिसका नाम शुक्ला रखा गया। जब यह कन्या लगभग डेढ़ सालकी हुई और उसने बोलना प्रारम्भ ही किया तो पाया गया कि वह प्रायः लकड़ीकी एक चौखटको या फिर अपने तकियेको मीनू कहकर उनसे खेला करती थी। शुक्लाके और बड़े होनेपर जब-जब उससे पूछा जाता कि 'यह मीनू कौन है' तो उसका उत्तर होता कि 'मेरी बेटी'। उसके पश्चात् शनैः-शनैः उसने मीनूके बारेमें विस्तारसे बताना प्रारम्भ कर दिया और अपने पिछले जन्मके पतिके बारेमें बहुत-सी बातें बतायीं। ये बातें बताते वक्त जब-जब भी उसके पतिका जिक्र आता तो शुक्ला उसे 'वह' कहकर ही सम्बोधित करती। उसने बताया कि मीनू, मीनूके पति और उसके देवर खेत और करुण भाटपाड़ामें रथतला नामक स्थानके रहनेवाले थे। भाटपाड़ा कम्पासे ११ मीलकी दूरीपर कलकत्ता जानेवाली सड़कपर स्थित है।

गुप्ता-परिवारको कम्पा गाँवके बारेमें मालूम अवश्य था, किंतु उन्हें भाटपाड़ाके रथतला गाँवके बारेमें किसी प्रकारकी सूचना न थी और न उन व्यक्तियोंके बारेमें उन्हें मालूम था जिनकी चर्चा कुमारी शुक्ला किया करती थी। शुक्लाके अंदर भी भाटपाड़ा जानेके प्रति लालसा बढ़ रही थी और वह कहने लगी थी कि यदि उसके परिवारवाले उसे न ले जा सके तो एक दिन वह स्वयं वहाँ चली जायगी। वह यह भी विश्वासके साथ कहने लग गयी थी कि यदि उसे रथतला ले जाया जाय तो निश्चित रूपसे अपनी ससुरालका रास्ता बतला सकेगी।

सन् १९५९ की गर्मियोंमें जब शुक्ला पाँच सालकी हुई, तब अपने परिवारके कुछ सदस्योंके साथ वह भाटपाड़ा गयी। वहाँ शुक्लाने, आगे रहकर सभीको

अपनी ससुरालका रास्ता बताया तथा वहाँकी कई वस्तुओंके बारेमें जानकारी दी तथा बहुतसे सम्बन्धित व्यक्तियोंको सहजरूपसे पहचान लिया। इस यात्राके बाद श्रीचक्रवर्ती तथा पाठक-परिवारके कुछ लोग कम्पा गाँवमें शुक्लाके घर आये और दोनों परिवारोंमें सम्पर्क स्थापित हुआ। अपने पूर्वपति श्रीहरिधन चक्रवर्ती तथा अपनी पुत्री मीनूसे मिल लेनेके बाद शुक्लाके मनमें उनके साथ रहनेकी तीव्र इच्छा जाग्रत हो गयी और जब कभी किसी कारण हरिधन चक्रवर्ती उससे मिलने नहीं आ पाते तो शुक्लाको बड़ा क्लेश होता।

शुक्लाके वृत्तान्तकी कुछ महत्वपूर्ण बातें

शुक्लाके स्मरणके अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष हैं उसके द्वारा अपने परिवार, मकान तथा पति एवं पुत्रीके बारेमें विस्तृत जानकारी देना। शुक्ला अपने पति श्रीहरिधन चक्रवर्तीके साथ सिनेमा जानेकी बातका अत्यन्त स्पष्ट-रूपसे स्मरण करती है। शुक्लाके वृत्तान्तमें इस बातका महत्व इसलिये है कि अपनी पूरी जिंदगीमें उसके लिये सिनेमा देखनेका यह पहला और आखिरी अवसर ही था। उसे सिनेमा भेजनेके पक्षमें उसके ससुरालवाले नहीं थे; क्योंकि जब वे लौटकर आये थे तो उसकी सौतेली सासने उसे अत्यन्त बुरा-भला भी कहा था।

मिस्टर पाल मामलेकी विस्तृत जानकारीके लिये जब शुक्लाको रथतला ले गये तो शुक्लाने बिना किसी हिचकके अपनी ससुरालका रास्ता पहचान लिया था। यद्यपि यह रास्ता सीधा था, फिर भी रास्तेके अंदर बहुत-सी गलियाँ थीं और एक ही तरहके बहुत-से मकान थे, लेकिन सीधा अपने उस मकानमें ही पहुँच जाना इस बातका स्पष्ट संकेत था कि शुक्लाकी अतिरिक्त चेतनामें पूर्वजन्मकी स्मृति थी। लेकिन शुक्ला जब अपनी ससुरालके करीब पहुँची थी तो उस मकानको देखकर एकबारगी वह ठिठक भी गयी थी; किंतु

इसका कारण तो यह था कि मनाकी मृत्युके बाद मकानका मुख्य दरवाजा बंद करवा दिया गया था और उसे एक तरफ भी करवा दिया गया था। इस प्रकार शुक्लाका पशोपेशमें पड़ना संगत था। मकानमें पहुँचते ही उसने सबसे पहले अपने पूर्वजन्मके श्वशुर श्रीयुत अमृतलाल चक्रवर्तीको पहचानकर शर्मसे आँखें झुका ली थीं। मीनूको देखकर तो उसकी आँखोंमें आँसू भर आये थे। इसके बाद शुक्लासे जब बीस-तीस आदमियोंकी उपस्थितिमें यह पूछा गया कि क्या वह अपने पतिको पहचान सकती है तो उसने सहोरूपमें पहली ही बारमें हरिधन चक्रवर्तीको 'मीनूके पिता' कहकर पहचाना था। एक भारतीय पत्नीके लिये अपने पतिको सम्बोधित करनेका यही तरीका है। उसके बाद शुक्लाने खेतूको मीनूके चाचा कहकर तथा करुणको 'दूमी' यानी छोटे देवर कहकर सम्बोधित करके सभीको आश्चर्यमें डाल दिया था। घरमें करुणको 'दूमी' कहकर कोई नहीं बुलाता था, सभी उसे 'कुटी'के नामसे ही बुलाते थे। इस तरह शुक्लाने यहाँ एक ऐसी महत्त्वपूर्ण बातको उजागर किया था जिसे परिवारके लोगतक करीब भूल चुके थे। उसके पश्चात् अपनी सौतेली सास तथा अपने चचेरे भाई दिलीप पाठकको भी शुक्लाने पहचाना।

इसके बाद जब शुक्लाने मनाकी सिंगर-मशीन देखी और उसपर हाथ रक्खा तो उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। मना इसी मशीनसे कपड़े सीनेका काम करती थी। जब शुक्ला वहाँसे लौटने लगी तो एक रुपया अपने पिताजीसे लेकर उसने मीनूको दिया जिससे वह 'मिठाइयाँ और गुड़िया खरीद ले।

इस अवसरके कुछ दिनों बाद एक दिन शुक्लाको खबर मिली कि मीनू भाटपाड़ामें बीमार पड़ी है। यह सूचना पानेपर वह रोने लगी और बार-बार मीनूके पास भाटपाड़ा ले जाये जानेका आग्रह करने लगी। रातभर वह मीनूकी चिन्तामें बेचैन रही। सुबह वहाँ

ले जाये जानेके बाद जब उसने देखा कि मीनूकी तबीयत कुछ ठीक है, तब उसे शान्ति मिली।

इसी तरह एक दिन पाठक-परिवारकी स्त्रियोंने शुक्लाके यहाँ जाकर बहुत-सी बातें उससे पूछीं, मसलन कि उसके पतिको कौन-सा खाना सबसे अधिक प्रिय था तो शुक्लाने कहा था कि 'झीना-मछली'। जाँच करनेपर यह बात सही पायी गयी थी। यह पूछनेपर कि मृत्युके समय मनाने मीनूको किसके सहारे छोड़ा था तो उसने बताया कि भाभीके। मीनूके अलावा किसी अन्य संतानके बारेमें पूछे जानेपर उसने बताया था कि मीनूसे पहले भी उसके एक लड़का हुआ था लेकिन उसकी जल्दी ही मृत्यु हो गयी थी। उस समय उसकी अवस्था एक साल और तीन महीनेकी थी। उसने पाठक-परिवारकी स्त्रियोंको अपने हरिधन चक्रवर्तीके साथ खरगपुरके कलानन्दामें रहनेके बारेमें भी बताया था।

अपनी एक अन्य महत्त्वपूर्ण भाटपाड़ाकी यात्राके दौरानमें शुक्लाने पीतलके उन कलशोंको भी पहचाना था। जिनमें वह पानी लाया करती थी और उस स्थानको भी बताया जहाँ वह रसोई बनाती थी। इस यात्राके बाद शुक्लाका वहाँ आना-जाना इसलिये बंद हो गया; क्योंकि उसके कारण हरिधन चक्रवर्ती तथा उनकी पत्नीमें उसीको लेकर झगड़ा शुरू हो गया था।

परामनोविज्ञान-विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर पूर्वाग्रहरहित होकर वैज्ञानिक रीतिसे पूर्वजन्मकी समस्याके व्यावहारिक पक्षका अध्ययन कर रहा है। पूर्वजन्मकी घटनाकी वैज्ञानिक जाँच हो सके इसके लिये यह आवश्यक है कि पाठकोंद्वारा ऐसी घटनाओंकी अधिक-से-अधिक जानकारी विभागको भेजी जाय। पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पतेपर किया जा सकता है—

डा० हेमेन्द्रनाथ बनर्जी, संचालक, परामनोविज्ञान-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर, राजस्थान।

क्या बढ़ा और क्या बढ़ रहा है ?

[विकास कितना ! विनाश कितना !]

(संग्राहक और प्रेषक—श्रीवल्लभदासजी विन्नानी 'व्रजेश' साहित्यरत्न)

रेल, तार, टेलीफोन, नहर, पुल, सड़कें, मोटर, बस, ट्रक, टैक्टर, हवाई जहाज, बिजली, बड़े-बड़े मकान । संस्थाएँ, यूनियनें, स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, सभासमितियाँ, व्याख्यानवाजी, समाचार-पत्र ।

अदालतें, पंचायतें, मुकदमे, पुलिस, अपराध, चोरी, डकैती, ठगी, बेईमानी, मार-पीट, झगड़े, खून ।

अस्पताल, औषधालय, दवाइयोंके कारखाने, विषमय दवाइयाँ, रोग, रोगी, आसक्ति, कामना, क्रोध, लोभ, अभिमान, असत्य, छल-कपट, दंभ, द्वेष, वैर, अधिकार-लिप्सा, लालसा, अश्रद्धा, संदेह, आलस्य, प्रमाद, आडम्बर, दिखावा, अपवित्रता, फैशन, शौकीनी, विलासिता, आरामतलबी, अकर्मण्यता, मँहगी, बेकारी, भुखमरी !

गंदा साहित्य, गंदे गाने, गंदे चलचित्र, गंदे चित्र, गंदे पोस्टर और विज्ञापन, गंदे क्लब, गंदा वातावरण और गंदे विचार ।

भौतिकवाद, भोगवाद, जनतन्त्र-समाजवाद तथा साम्यवादके नामपर व्यक्तिवाद, हिंसावाद ।

अध्यात्म तथा ईश्वरमें उपेक्षा, धर्म तथा परलोकमें अविश्वास, धर्म-निरपेक्षताके नामपर अधार्मिकता, सुधारके नामपर अनर्गल आचरण ।

स्वेच्छाचार, अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, मिथ्याचार, व्यभिचार, चोर-पूजा, व्यभिचार-पूजा, अनाचार-पूजा ।

स्वार्थपरता, शोक, भय, विषाद, चिन्ता, डाह, कूटनीति, धोखेबाजी, दल, दलबंदी, अव्यवस्था, अनुशासनहीनता, उच्छृङ्खलता, खण्डता, मनमाने विवाह, तलाक ।

हिंसा, पशु-पक्षी-हत्या, विज्ञान तथा औषधनिर्माणके लिये हिंसा, हिंसाके बड़े-बड़े कारखाने, उद्योगके नामपर बड़ी-बड़ी हिंसाकी योजनाएँ ।

अभक्ष्य-भोजन, अपेय पान, मद्यपान, उच्छिष्ट भोजन, दिखाऊ सफाई, अशुद्धि, साबुन, तेल, पाउडर, क्रीम, स्नो, लिपटिक ।

धर्मनिन्दा, शास्त्र-निन्दा, ईश्वर-निन्दा, देवनिन्दा, ब्राह्मणनिन्दा, पूर्वज-निन्दा, अपनी सभ्यता-संस्कृतिके प्रति अश्रद्धा, गुरुजनोंकी अवज्ञा, माता-पिताका अनादर, सम्मान्योंका अपमान, अपूज्योंकी पूजा, पति-पत्नीमें कलह-द्वेष ।

प्रान्तजनित राग-द्वेष, भाषा-जनित राग-द्वेष, जाति-जनित राग-द्वेष, वाद-जनित राग-द्वेष, सम्प्रदाय-जनित राग-द्वेष, दल-जनित राग-द्वेष ।

मिलें, कारखाने, व्यापार-केन्द्र, बाजार, सरकारी उद्योग, छोटे-छोटे उद्योग, उद्योगोंका सरकारीकरण ।

लोभवृत्ति, चोर-बाजारी, रिश्वतखोरी, वस्तुओंमें मिलावट, धोखादेही, सरकारी महकमे, अधिकारी-कर्मचारी, शासनव्यय, कर्तव्यविमुखता, कामचोरी, सिनेमा, रेडियो, नाच-गान, कन्याओं और तरुणियोंका संस्कृति तथा कलाके नामपर नाच-गान, निर्लज्जताकी प्रवृत्ति, कुवासनाको प्रोत्साहन ।

धन, धन-लिप्सा, धनमदान्धता, धन-संग्रहवृत्ति, धनी-द्वेष, फिजूलखर्ची ।

सभी कार्योंमें सरकारी हस्तक्षेप, टैक्सोंकी सीमारहित भरमार, फलतः उनसे बचनेके लिये मिथ्याचारमें प्रवृत्ति !

विज्ञान, विनाशक शस्त्रास्त्र, प्रकृति-विजयकी प्रवेष्टा !

धर्म और समाज

(लेखक—महाकवि पं० भीश्वरलालजी शुक्ल 'सिरस')

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।

(वैशेषिकदर्शन २)

जिससे अभ्युदय (तत्त्वज्ञान) और मोक्ष मिले वही धर्म है ।

प्रश्न—इससे सिद्ध होता है कि धर्म तत्त्वज्ञान और मोक्षके लिये आवश्यक है, लोककार्यके लिये उसकी आवश्यकता नहीं है ।

उत्तर—नींवके बिना विशाल भवनका निर्माण नहीं हो सकता । बिना रससंयुक्त मूलके फल-फूलयुक्त वृक्षकी परिस्थिति नहीं रह सकती । उसी प्रकार बिना धर्मके किसी भी लौकिक कार्यमें चिर सफलता नहीं मिल सकती । 'धर्म' विजलीके लिये 'लोक' विजलीघर है और नगर ऊर्ध्वलोक है । लोक ही तो धर्मकी उत्पत्तिका स्थान है ।

प्रश्न—धर्म है क्या पदार्थ, जो जीवनमें अनिवार्य माना जाता है ?

उत्तर—जैसे शरीरमें प्राण, पवनमें गमनशक्ति, वैसे ही मानवसमाजके लिये धर्म है ।

पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुका राज्य धर्मनिरपेक्ष था; क्योंकि उसके राज्यमें अनेक धर्मावलम्बी थे और वे एक दूसरेके साथ स्व-धर्मको श्रेष्ठतम मनानेके लिये लड़ते-झगड़ते थे; तब शासकने निश्चय किया कि धर्मका कारण ईश्वर है । उसके न माननेसे धर्मका कोई नाम न लेगा; अतः उसकी ऐसी ही राजाशा प्रचलित हो गयी । परिणाम यह हुआ कि उसके राज्यमें जलप्लावन, दुर्मिक्ष, महान् अनर्थता, संक्रामक रोग, अग्निकाण्ड, राजविग्रह, कलह आदि फैल गये, जिससे प्रजा महान् पीड़ित हुई ।

प्रश्न—शासकने परस्पर विग्रह बचानेके लिये धर्मपालनको बंद किया था । उसका विचार तो शुद्ध था; फिर राज्यमें ऐसे उपद्रव क्यों हुए ?

उत्तर—यदि किसी मनुष्यका श्वास लेना बंद कर दिया जाय तो क्या वह जीवित रह सकेगा ? इसी प्रकार एक धर्म ही है, जो सब तत्त्वोंका संचालन करता है और जहाँ वह धर्म नहीं रहता, वहाँ तत्त्वोंकी गति अनियमित हो जाती है । इसीसे अनेक प्रकारके उपद्रव होते हैं । इतना ही नहीं, मनुष्यका स्वभाव रजोगुणी और तमोगुणी हो जाता है ।

जिससे उसके हृदयमें कामादि षट् विकारोंका पूर्ण विकास हो जाता है ।

प्रश्न—इंग्लैंड और अमेरिका भी धर्मनिरपेक्ष राज्य हैं । वे तो बड़े सुखी कहलाते हैं ?

उत्तर—उन दोनों देशोंका शासन क्रिश्चियन धर्मानुसार होता है । इंग्लैंडमें जब बादशाह गद्दीपर बैठता है तब कंटेनवरीका बड़ा पादरी सबसे पहले बादशाहके सिरपर राजमुकुट धरकर उसका अभिषेक करता है । प्रत्येक सेनामें एक धर्माचार्य नियत रहता है, जो ईसाई-धर्मानुसार ईश्वरकी प्रार्थना योद्धाओंसे कराता है । विगत महासमरमें गिर्जाघरोंमें ईश्वरकी प्रार्थना विजयार्थ की जाती थी । अमेरिका भी ईसाई-धर्मानुसार शासन करता है ।

जब श्रीनेहरूजी प्रथम अमेरिका पधारे थे, तो वहाँके प्रेसीडेंटने भेंट करनेके समय बाइबिलकी पुस्तक समर्पित की थी कि वह देश धार्मिक है ।

पार्लामेन्टके सदस्योंको ईश्वरकी शपथ लेनी पड़ती है ।

प्रश्न—वहाँ ईसाई-धर्म एक है, उनको सुविधा है, परंतु जिन देशोंमें अनेक विभिन्न धर्मावलम्बी हों, उनके प्रशासकोंके लिये बड़ी कठिनता है, किस धर्मको मानें किसको न मानें । जिसको न मानें, उसके अनुयायी विरोधी बन जायेंगे । इसलिये वे किसी भी धर्मको नहीं मानना ही उत्तम समझते हैं ।

उत्तर—जिस धर्मके माननेवाले अधिक लोग जिस राज्यमें होते हैं, वहाँका वही राजधर्म होता है । इंग्लैंड-अमेरिकामें सहस्रों अन्यधर्मावलम्बी हैं । उनके धर्ममें हस्तक्षेप नहीं किया जाता । उसीके साथ राजधर्म ईसाई है ।

प्रश्न—विभिन्न सम्प्रदायोंके अनुगामी परस्पर लड़ने-झगड़ने लगते हैं, इसके बचावके लिये धर्म-निरपेक्षताका सहारा शासन लेता है ।

उत्तर—सम्प्रदायके नामसे जो लोग बिचकते हैं वे स्वयं सम्प्रदायसे दूर नहीं हैं । मानव-समाजका प्रत्येक समुदाय (Group) मत अथवा धर्मके नामसे पुकारा जाता है, उससे सम्बन्धित सारा मानव-समाज है और सम्प्रदायको

होवा समझनेवाले भी तो किसी मतके ही होंगे। तब वे भी साम्प्रदायिक अवश्य हैं।

प्रत्येक धर्म (मत) में विभिन्न समुदाय होते हैं। उन्हींको सम्प्रदाय कहते हैं। जैसे हिंदूधर्ममें वैष्णव, शैव, शाक्त, रामानन्दी, रामदासी आदि हैं। उसी प्रकार अन्य मतोंमें भी विभिन्न सम्प्रदाय हैं। ऐसे किसी आचार्यने दूसरे सम्प्रदायवालेसे लड़नेका विधान नहीं बनाया, वरं सबसे प्रेम करनेका उपदेश दिया है।

सम्प्रदायका पर्याय शब्द आम्नाय है और आम्नाय वैशेषिकमें वेदके लिये आया है।

तद्वचनाद् आम्नायस्य प्रामाण्यम् । (वैशेषिक २)

वेदमें धर्मका निरूपण किया गया है। अतः उसकी सिद्धि निर्भान्त स्वतःप्रमाण वेदसे होती है।

श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायस्त्रयी.....आम्नायः सम्प्रदायः इत्यमरः।

गुरुपरम्परासे प्राप्त उपदेशका नाम सम्प्रदाय है।

सम्प्रदाय तो धर्मसे सम्बन्धित है और धर्म ईश्वरकी प्राप्ति का ज्ञान देता है, तब सम्प्रदायका क्या दोष है, जिसके नामसे मनचले नकलची हवामें उड़नेवाले लोग बिगड़ते हैं ? मार्गमें लम्बी रस्सी पड़ी हो, यात्री उसे साँप समझे और वह भागे तब उसके पैरमें ठेस लग जाय और उसे कष्ट हो तो ऐसा उसके अज्ञानसे ही तो हुआ। रस्सी न हिली न डोली।

जितने आस्तिक मत हैं, सब एक ईश्वरके माननेवाले हैं, सबकी शिक्षा सत्य, प्रेम, परोपकार एवं मिलाप करनेकी है। गाय, भैंस, घोड़ा, गधा, हिरन आदि पशुगण अपना समाज बनाये वनमें एक साथ चरते हैं; परंतु मनुष्य अन्य धर्मावलम्बीको उसी ईश्वरका प्रेमी नहीं मानता, जिसकी भक्ति-भावमें वह लगा है; क्योंकि वह अपने ईश्वरको अपने ही अल्प मतका स्वामी समझता है। शेष अन्य मतवालोंका कोई दूसरा ईश्वर मानता होगा। यदि ऐसा नहीं है तो विभिन्न जड़ पशुओंमें तो मिलाप रहे और सज्जन मनुष्य एक-दूसरे मतवालोंके साथ ईर्ष्या और द्वेष क्यों रखे।

प्रश्न—मनुष्य तो चेतन जीवोंमें श्रेष्ठ है। उसको ऐसा अज्ञान क्यों होता है ? पहाड़ पत्थररूप है, प्रस्तरकी कठोरतासे उसपर तृण भी नहीं जम पाता। दूसरी ओर मैदानमें सब वृक्षावली और कहीं शून्य स्थल ऊसर है जहाँ तृण भी

नहीं जमता। अतः पशु आदिमें सीमित ज्ञान है और मनुष्यमें दोनों प्रकारके गुणावगुण हैं।

उत्तर—जैसे किसी नदीके एक तटपर सबन विविध अमरावली स्थित है और दूसरे तटमें बाढ़का ढेर और बिना घासका सूखा मैदान है। अर्थात् मनुष्यके ज्ञानके दो विभाग हैं—अविद्या और विद्या। अविद्या संसारका प्रदर्शन करती है और विद्या परमार्थका। जिन देशोंका उद्देश्य सांसारिक उन्नति ही है वे जल-जन्तुके समान हैं। वे समुद्र अथवा अन्य जलाशयमें ही रहना चाहते हैं।

प्रश्न—समुद्र और अन्य जलाशयका क्या मतलब है ?

उत्तर—समुद्ररूपी गृहस्थी है और अन्य जलाशय अगृहस्थ कुटीचर हैं।

प्रश्न—तब कोई अज्ञानके बाहर नहीं जा सकता।

उत्तर—कच्छप सर्प, भैंस जीव, जल और थल दोनोंमें रहते हैं, विशेषकर भैंस थलमें और गौरूपमें जलमें रहती है। हृदयमें काम-क्रोधादिका शमन हो जाता है, तब विद्याका विकास होता है।

प्रश्न—सांसारिक ऐश्वर्य-प्राप्ति का कारण पुण्य ही समझना चाहिये ? अतएव यूरोप-निवासी ऐश्वर्यसम्पन्न हैं, तो वे पुण्यवान् हैं।

उत्तर—एक बहुत-से तल्लोंका मकान है, नीचेके तल्लेमें जो निवास करते हैं, उनको स्वच्छ वायु नहीं मिलती और जो ऊपर बहुत-से खिड़कियोंवाले कमरोंमें निवास करते हैं उनको ताजी हवा मिलती है और वे दूरतक देख सकते हैं। दूसरा उदाहरण—संशय-निवृत्तिके लिये दिया जाता है कि मेघ-वर्षणसे छोटे-से गड्ढेके चुहुलीमें किंचित् पानी भर जाता है। कुछ कालतक उसमें रहता है फिर सूख जाता है। और झीलमें विशेषरूपसे पानी है, वह गड्ढेके पानीकी तरह शीघ्र सूखता नहीं है। जिनका पुण्य सांसारिक सुखके लिये है, उनका संसार-सुख-भोगमें ही सारा पुण्य समाप्त हो जाता है और जो निष्काम पुण्य किया जाता है उससे लोक और परलोक दोनोंमें सुख होता है। जैसे कटहलमें ऊपर भी फल लगते हैं और भूमिके भीतर भी।

प्रश्न—तब हम यूरोपवालोंको पुण्यशील क्यों न मानें ?

उत्तर—उन्होंने केवल मन, तन और बुद्धिसे श्रम करके

कथित पुण्य संचय किया, जिसका फल सांसारिक ऐश्वर्य है, जिसके पीछे दुःख लगा है। वे रजोगुणी हैं। भोग-विलास ही उनका सब कुछ है। परंतु भोग तामसकी ओर प्रगति करता है और तामसका अन्त नाश है। यही कारण है कि अणुबम और क्षेप्यास्त्रादि बनाकर वे सृष्टि-संहार करनेको प्रस्तुत हैं।

यूरोपनिवासी तो अभी चन्द्रलोकतक भी नहीं पहुँच पाये। परंतु भारतके पूर्वकालमें नहुष-रावणने तो स्वर्गपति इन्द्रको निकालकर स्वर्गपर विजय प्राप्त की थी। परंतु उनका भी पतन बुरी तरहसे हुआ; क्योंकि वे सांसारिक वासनासे बद्ध थे। यूरोपवालोंने ही धर्मनिरपेक्षताकी नींव डाली थी और उसका कारण था कि किसी पूर्वकालमें वहाँ धर्माचार्य पोप ही सम्राट्के रूपमें माने जाते थे। इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस, इटली, रूस आदि देशोंके राजागण पोपके मण्डलेश्वर थे।

पोपने अनुचित रूपसे राजाओंको दबाया, परिणाम यह हुआ कि सब राजाओंने पोपको पराजित किया और उनको कुछ एकड़ भूमि देकर सब स्वतन्त्र हो गये तथा जिस धर्मने उनको पोपके पराधीन किया था, उसको प्रशासनमें नहीं आने दिया। धर्मनिरपेक्ष शासन चलाया।

परंतु भारतमें किसी कालमें भी धर्माचार्योंने भूलकर भी राज्याधिकारकी ओर दृष्टि नहीं डाली। हाँ, शासकोंको धर्माचरण करनेके लिये उनके मन्त्री चाणक्यकी भाँति कुटियामें चने चबाकर राजा और प्रजाको धर्माचरणमें निरत अवश्य रक्खा। अपनेको त्यागके खूँटेमें बाँधकर राजा-प्रजाको लोक तथा परलोकका सुख प्रदान किया। तब उनके राज्यमें न अकाल, न जलप्लावन, न संक्रामक रोग—त्रिविध व्याधियाँ नहीं थीं। जहाँ धर्म-सूर्य उदय होकर प्रकाश करता है वहाँ अधर्म-अन्धकार नहीं रह सकता।

प्रश्न—जलप्लावनादि और धर्मसे क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर—जब धर्म पञ्च तत्त्वोंका घटाव-वढ़ाव कर सकता है, तब जितने उपद्रव भूमि और आकाशमें होते हैं, वे सब धर्मसे ही सम्बन्धित हैं।

प्रश्न—हम इसे कैसे मान लें जब धर्मका सम्बन्ध कथित ईश्वरसे है, जिसकी स्थितिका कोई प्रमाण नहीं। तब धर्म ही क्या वस्तु है ?

उत्तर—जो वस्तु वर्तमान होती हो, उसीको स्वीकार

तथा अस्वीकार किया जाता है। अस्वीकार 'नहीं' शब्दसे किया जाता है। यदि ईश्वरकी स्थिति नहीं है तो उसकी 'नहीं' कैसे की जा सकती है; क्योंकि जो वस्तु वर्तमान है उसकी 'नहीं' की जाती है। जैसे किसीने कहा कि छाता यहाँ नहीं है, तो इससे छाताका होना माना गया। सम्भव है वह स्थानान्तरमें हो, परंतु है वह अवश्य; क्योंकि 'नहीं' की नहीं, कभी नहीं की जा सकती। 'नहीं' शब्द उसी पदार्थके लिये प्रयोगमें आता है जो वर्तमान है। वह चाहे स्थानान्तरमें हो अथवा कालान्तरमें। है वह अवश्य। अतः ईश्वर नहीं है—कर्ताका ऐसा कथन निर्मूल है। जब छाता घाम और मेघ-जलसे बचाता है तब उसकी डंडी उसके साथ अवश्य होगी। उसी प्रकार ईश्वर है तो धर्म भी है। यदि किसीको धर्मसे द्वेष है तो उसके पूर्वजन्मके संस्कारसे ऐसी प्रवृत्ति है।

अदृष्टाच्च । (वैशेषिक १३)

अर्थात् पूर्वजन्मके संस्कारवश राग और द्वेष होते हैं।

इच्छाद्वेषपूर्विका धर्माधर्मप्रवृत्तिः ।

(वैशेषिक १५)

अर्थात् धर्म और अधर्ममें प्रवृत्ति इच्छा (राग) और द्वेषयुक्त होती है। राग और द्वेषका सम्बन्ध बुद्धिसे है।

अध्यवसायो बुद्धिः । (सांख्य १४)

निश्चयात्मक ज्ञानका नाम बुद्धि है और अध्यवसाय नाम निश्चयका है। उस निश्चयको ही बुद्धि कहते हैं।

तत्कार्यं धर्मादि । (सांख्य १५)

उस बुद्धिके कार्य धर्मादि हैं और मूर्ख पुरुषोंकी बुद्धिमें अज्ञानादि प्रचल होते हैं।

श्रद्धारूपी पक्की सड़क और त्वरित वाहनरूपी धर्मके साथ जीवनमें जो अग्रगमन करता है, वह अभीष्ट स्थानमें पहुँच जाता है। जिस मनुष्यमें धर्म नहीं, वह कटे हुए कनकौखी (पतंग) के समान इधर-उधर चञ्चल मनकी गति-के अनुसार मारा-मारा फिरता है।

प्रश्न—यदि धर्म रजोगुणी और तमोगुणी समुदाय भी मानते हैं और दोनों संसारकी ओर झुके हैं तो इससे क्या धर्मका शुद्ध रूप नहीं रह जाता ?

उत्तर—गङ्गाजल घटमें रक्खा है। जवतक वह घटमें है पवित्र है। परंतु जब वह अपवित्र स्थान नावदानमें पड़ गया; तब वह अपवित्र हो गया। उसी प्रकार तामसी-राजसी धर्म अधर्मके रूपमें परिणत हो जाता है; तब वह धर्म नहीं रह जाता।

प्रश्न—राजाज्ञासे सब कार्य होते हैं; किंतु प्रजाको ही सब दुःख भोगने पड़ते हैं ?

उत्तर—कण्टकाकीर्ण पथमें नेत्रोंकी असावधानीसे काँटा लगनेसे पैरोंको कष्ट होता है; उसी प्रकार राजाकी असावधानीसे कण्टकाकीर्ण पथ चुना गया और उसपर चलानेमें भी असावधानी ही रही। जैसे नेत्र और पैर एक शरीरके अङ्ग

हैं, उसी प्रकार राजा-प्रजा भी अभिन्न हैं। एक दूसरेके सुख-दुःख एक ही हैं।

प्रश्न—सारा कष्ट प्रजा क्यों सहन करती है ?

उत्तर—मेव वरसनेसे पहले वृक्षकी चोटीपर पानी जाता है; वहाँसे सरकर नीचे शाखा और वृक्षके धड़में पहुँचता है। चोटी तो सूख जाती है; परंतु धड़में आर्द्रता कई दिनों तक रहती है। उसी प्रकार बादल तो वरसकर छुट्टी पा जाते हैं; परंतु भूमिगत नद-नदी, तड़ागमें पानी भरा रहता है। तात्पर्य यह कि जो निम्न स्थान है उसीको सारा भार सहन करना पड़ता है। दूसरी ओरसे विचार किया जाय तो उच्चको भी कष्टसे मुक्ति नहीं मिलती। वज्रके गिरनेपर चोटीको ही उसका प्रहार सहन करना पड़ता है। आटेके साथ घुन भी पिस जाता है !

श्रीकृष्णप्रेम वैरागी

(लेखक—श्रीमाधव आशिष)

श्रीश्रीकृष्णप्रेम वैरागी, भूतपूर्व प्रोफेसर रोनाल्ड निक्सन-का गत सन् १९६५, १४ नवम्बरको नैनीतालमें गोलोकवास हो गया। जन्मसे वे एक अंग्रेज थे। वे १९२१ में भारत आये थे और एक विश्वविद्यालयमें उन्होंने कई वर्षोंतक अध्यापन-कार्य किया था। उनकी गुरु, श्रीश्रीयशोदा माईने उन्हें वैष्णव-संन्यासधर्मकी दीक्षा दी। उनके साथ वे अलमोड़ा जिलेमें रहने लगे, जहाँ उन लोगोंने 'उत्तर वृन्दावन' नामक एक आश्रममें एक मन्दिरका निर्माण किया और श्रीराधा-कृष्णकी प्रतिष्ठा की। वहाँ वे थोड़े-से शिष्योंके साथ मृत्यु-पर्यन्त ३५ वर्षतक रहे, जहाँ ६५ सालकी उम्रमें उनका देहावसान हुआ।

उनके असाधारण जीवनने पर्याप्त अभिरुचि पैदा की; क्योंकि जिस समय उन्होंने संन्यास लिया, ऐसे बहुत कम विदेशी थे जिन्होंने भारतीय आदर्शोंके प्रति खुलकर सहानुभूति रखते हुए ब्रिटिश सरकारकी आपत्तिका सामना करनेका साहस किया। जिन्होंने ऐसा किया उनमेंसे भी कुछ ही श्रीकृष्ण-प्रेमकी भाँति भारतीय संस्कृतिको पूर्णतया आत्मसात् कर सके। यदि उनकी चमड़ी गोरी और आँखें नीली न होती तो कोई भी उनके जन्मस्थानका अनुमान नहीं लगा सकता था। बातचीत, व्यवहार और भावनासे वे पूर्णतया भारतीय हो गये थे। जिस सरलतासे उन्होंने यह कार्य कर दिखाया उसे कुछ लोग पूर्वसंस्कारका परिणाम मानते थे। यद्यपि उन्हें

भलीभाँति पता नहीं था कि संस्कारोंके क्या अर्थ होते हैं और वे किस प्रकार प्रस्थापित होते हैं। जिस गुरुको उन्होंने प्राप्त किया वे वैष्णव प्रवृत्तियोंवाले एक बंगाली ब्राह्मण-परिवारकी थीं। उपदेश ग्रहण करनेमें उन्होंने उस देशकी सम्पूर्ण सांस्कृतिक पृष्ठभूमिको अपना लिया, जिसमें उस शिक्षाका उद्भव हुआ था। वही वह भूमि थी जिसमें तुलसीके पौधेका विकास हुआ था। ब्राह्मण और म्लेच्छके बीच साधारणतया प्रचलित किसी रूढ़िवादी भेद-भावके बिना वे गुरु-परिवारके एक अन्तरंग सदस्य स्वीकृत कर लिये गये। उन्होंने बुद्धिवादी दर्शनके साथ स्थानीय प्रचलित विश्वासोंको और स्पष्ट यथार्थ मान्यताओंके साथ संकुचित पूर्वाग्रहोंको अंगीकृत किया। उन्होंने माँके स्तनसे एक शिशुकी भाँति बिना तर्कबुद्धिसे उस सम्पूर्ण मूल्यवान् भारतीय जीवन-दर्शनका पान किया, जिसे क्रमशः उन्होंने समझा और ग्रहण किया।

रोनाल्ड हेनरी निक्सनका जन्म १८९८ ई०में १० मईको चेलटेनहम इंग्लैंडमें हुआ था। उनके पिता चीनी मिट्टीके बर्तनोंके विशेषज्ञ थे और चीनी मिट्टी तथा शीशेके बर्तनका व्यापार करते थे। उनकी माँ एक ईसाई वैज्ञानिक डाक्टर थीं, जिन्होंने उनका लालन-पालन शाकाहारीके रूपमें किया। उन्हें सोमसेटमें टान्टनके एक स्कूलमें भेजा गया। वहाँ उन्होंने किंग्स कालेज कैम्ब्रिजसे,

जहाँ उनके पिताके चाचा सीनियर फेलो थे, Exhibition in science की छात्रवृत्ति प्राप्त की। स्कूलके बाद पहले वे चालकके रूपमें Royal Flying corps में सम्मिलित हुए और १९१७ में उन्होंने फ्रांसमें लड़ाकू विमान उड़ानेका काम किया। सेना भंग होनेके बाद वे केम्ब्रिज गये; परंतु विषय परिवर्तनकर विज्ञानकी जगह Mental and Moral Science Tripos से १९२१ में डिग्री प्राप्त की।

केम्ब्रिजमें पढ़ते समय वे मैडम ब्लैवत्सकीकी थियोसोफी और बौद्धधर्मसे परिचित हुए। इन अभिरुचियोंका अनुशीलन करते समय उनकी कई लोगोंसे मित्रता हुई, जिनमेंसे बादमें दो उनके साथ भारत आये। उनके परम मित्र दिलीपकुमार राय भी उस समय केम्ब्रिजमें थे, यद्यपि उनकी वहाँ कभी भेंट नहीं हुई।

भगवान् बुद्धकी एक विशिष्ट प्रतिमासे प्रेरित होकर उन्होंने विचार किया कि मनुष्यनिर्मित यह बुद्ध-प्रतिमा मानव-हृदयके जिस शक्ति-सामर्थ्यको अभिव्यक्त कर रही है उस प्रकारका शक्ति-सामर्थ्य चाहे इतिहासमें कभी किसीको न मिला हो, पर जीवनमें उतारा जा सकता है। उनका मन भारतकी ओर फिरा, जहाँ बुद्धकी कथाने जन्म लिया था। सन् १९२१ में कैनिंग कालेजमें उन्होंने प्राध्यापकका पद प्राप्त किया जो बादमें लखनऊ विश्वविद्यालयके रूपमें परिणत हुआ, जिसके डा० जी० एन० चक्रवर्ती प्रथम उपकुलपति रहे।

डा० चक्रवर्ती एक प्रमुख थियॉसॉफिस्ट थे, जो शिकागोके सर्वधर्म-सम्मेलनमें (Parliament of Religions) सोसाइटीके प्रतिनिधि थे, जहाँ स्वामी विवेकानन्दने अपना प्रसिद्ध भाषण दिया था। श्रीमती वीसेंट उनका बड़ा आदर करती थीं और श्रीवर्द्धम कीटलेके वे गुरु-तुल्य थे। जब रोनाल्ड निक्सन लखनऊ पहुँचे, उन्हें उपकुलपतिके अतिथि-भवनमें अस्थायी रूपसे ठहराया गया। अभिरुचियोंमें पर्याप्त एकरूपता अनुभव कर डा० चक्रवर्तीने उन्हें वहीं ठहरनेके लिये आमन्त्रित किया। वे चक्रवर्ती-परिवारके एक अति प्रिय प्रायः अङ्गीकृत सदस्य हो गये।

निक्सन अपनी अभिरुचियों और सहानुभूतियोंके कारण सरकारी अधिकारियोंके ऐंग्लो इंडियन समाजसे अलग रहते थे। जिन लोगोंके बीच उन्हें शेष जीवन बिताना था

और स्वतन्त्रताके पश्चात् जिस देशके नागरिक हो गये, उन दोनोंकी वेश-भूषा, व्यवहार, भाषा, धर्म तथा दर्शनको अपनाकर उन्होंने क्रमशः भारतीय दृष्टिकोणसे एकत्व स्थापित कर लिया। यदि उन्हें उपकुलपति महोदयका व्यक्तिगत संरक्षण प्राप्त न होता और उपकुलपतिकी गवर्नर सर हरकोर्ट बटलरसे मैत्री न होती तो इसमें संदेह है कि ब्रिटिश अधिकारी-वर्ग ऐसे व्यवहारको सहन करता। जो भी हो, सहयोगियोंसे उनकी अच्छी निमी। उन्हें अपने छात्रोंकी मित्रता प्राप्त हुई जो उनकी जितनी प्रशंसा उनकी मोटर साइकिलकी तेज गतिके लिये करते, उतनी ही उनके अध्यापन, मैत्री-भावना और उनके भारतीय भावना अपनानेके कारण करते थे।

यद्यपि उनके मस्तिष्कपर बौद्ध-धर्मका प्रभाव रहा, पर वे किसी विचार-प्रणाली या धर्मकी अपेक्षा प्रत्यक्ष धार्मिक अनुभूतिवाले व्यक्तिकी यत्र-तत्र खोज करते रहे। उन्हें विष्कुल आशा नहीं थी कि उनकी भेंट अभिलषित व्यक्तिसे उसी परिवारमें होगी जहाँ वे भाग्यसे पहुँच गये थे। उन्हें केवल धीरे-धीरे अनुभव हुआ कि श्रीमती चक्रवर्ती, जिन्हें कुछ लोग 'लखनऊकी प्रथम महिला' कहते थे, विशिष्ट यौगिक अनुभूति और आध्यात्मिक स्तरवाली महिला थीं।

मोनिका चक्रवर्ती गाजीपुरनिवासी रायबहादुर गगन-चन्द्र रायकी पुत्री थीं, जिनके घरमें स्वामी विवेकानन्दका आतिथ्य-सत्कार किया गया था। जब वे गगनबाबूके गुरु पौहारी बाबाके दर्शनके लिये प्रयत्नशील थे, अपनी निवास-अवधिमें विवेकानन्दजीने मोनिकाकी कुमारीरूपमें कुमारी-पूजा की थी। वह भी बादमें एक गुरुकी खोज करती रहीं और इस क्रममें अनेक तत्कालीन लोगोंसे मिलीं, लेकिन कोई उनके पतिके समान सिद्ध नहीं हुआ, जिनसे उन्होंने दीक्षा ग्रहण की।

श्रीष्मावकाशमें चक्रवर्ती-परिवारके साथ अलमोड़ामें रोनाल्ड निक्सन हिंदी पाठके रूपमें सस्वर श्रीमद्भागवतका पारायण करते। उन्हें लगा कि श्रीमती चक्रवर्तीकी टिप्पणियाँ और व्याख्या उस व्यक्तिकी जैसी थीं, जिनकी दृष्टिमें श्रीकृष्ण सर्वथा प्रत्यक्ष थे। उन्होंने कहा कि यद्यपि श्रीकृष्णको इन आँखोंसे कोई नहीं देख पाता था, लेकिन मोनिकाकी दृष्टिमें श्रीकृष्ण सदैव ठीक बगलके कमरेमें वर्तमान होते। निक्सनने दीक्षाकी प्रार्थना की; परंतु वह इन्हें इस महत्त्वपूर्ण

शर्तके साथ प्राप्त हुई कि चाहे जो हो वे इस पथपर दृढ़ रहेंगे और अनेक भावी साधकोंके समान मनकी हर नयी तरङ्गपर निष्ठामें परिवर्तन नहीं लायेंगे।

बुद्धकी प्रतिमामें उन्होंने जिस सिद्धिका दर्शन किया था वह थी जीवनसे मुँह मोड़कर स्थिर बैठ जानेके रूपमें। अब श्रीकृष्ण-कथामें भी उन्होंने उसी सिद्धिका दर्शन किया; किंतु यहाँ उस सिद्धिको जिस मूर्तिने हस्तगत कर रखा था वह एक साथ ही राजनीतिज्ञ, योद्धा, मित्र एवं प्रेमीके रूपमें व्यवहार करती हुई हिचकना नहीं जानती थी। एक समय ऐसा आया जब कि वे दिलीपरायको लिख सके—‘दिलीप, ईश्वरकी शपथ है, श्रीकृष्णके चरण तुम्हारे चरणोंसे कहीं अधिक वास्तविक हैं।’

जब १९२६ में डा० चक्रवर्ती अवकाश प्राप्तकर बनारस चले गये। उस समय रोनाल्ड निक्सनके लिये उनकी गम्भीर सलाह एक ओर लखनऊमें विश्वविद्यालयकी सुरक्षित नौकरी और दूसरी ओर काशी हिंदू-विश्वविद्यालयमें अल्पवेतनवाले छोटे पदके बीच, जहाँ वे अपने आध्यात्मिक गुरु लोगोंसे निकट सम्पर्क बनाये रखते, कठिन चुनाव-कार्यमें सहायक हुई। उन्होंने बादवालेको चुना और जब एक वर्ष बाद डाक्टरोंने श्रीमती चक्रवर्तीको पहाड़ जानेकी सलाह दी, उन्होंने नौकरी छोड़ दी और अपनी गुरु श्रीमती चक्रवर्तीके साथ हो लिये। १९२८ में श्रीमती चक्रवर्तीने वैष्णव संन्यासधर्मका पवित्र व्रत लिया और श्रीयशोदामाई नाम रखा। कुछ ही दिनों बाद रोनाल्ड निक्सनने उनसे संन्यासकी दीक्षा और श्रीकृष्णप्रेम नाम प्राप्त किया। गेरुआ वेशमें, मुँडे सिर, चोटी, वैष्णव तिलक और पैरोंमें खड़ाऊँसहित वे आदर्श वैष्णव-संन्यासी हो गये।

एक वर्षतक श्रीकृष्णप्रेमने गुरु और अपने लिये अलमोड़ा-नगरमें भिक्षावृत्ति की और साथ ही श्रीयशोदामाई-कीश्रीकृष्ण-मन्दिर बनवानेकी चिरकालीन इच्छाकी पूर्तिके लिये स्थान ढूँढ़ते रहे उन्हें प्रायः ७००० फीट ऊँचाईपर अन्तः-प्रदेशमें वन तथा कृषियोग्य मिश्रित कुछ एकड़ भूमि मीर-टोलामें मिली। वहाँ १८ मीलकी पगडंडीके रास्तेसे केवल अतिदृढ़व्रती यात्रीके अतिरिक्त अन्योके लिये उन लोगोंतक पहुँचना बड़ा कठिन था। वे लोग १९३० में वहीं बस गये, मैदानोंमें यदा-कदा आते। ३५ वर्ष बाद मृत्युपर्यन्त श्रीकृष्ण-प्रेम वहीं रहे। आश्रम और आश्रमका जीवन-केन्द्र १९३१ बना और श्रीराधाकृष्णकी प्रतिष्ठा हुई। शोपडियाँ बनीं, एक

स्कूल जिसमें यशोदा माई स्वयं गाँवके बच्चोंको पढ़ातीं, साधारण चिकित्साके लिये एक औषधालय, जिसके प्रबन्ध और चलानेका दायित्व श्रीकृष्णप्रेमके कैम्ब्रिजके मित्र मेजर आर० डी० अलेक्जंडर आई० एम० एस० ने उठाया जो आश्रममें ‘आनन्दप्रिय’ नामसे सम्मिलित हुए और बादमें संन्यास ग्रहण कर श्रीहरिदास हो गये। श्रीयशोदा माईकी सबसे छोटी पुत्री संन्यासिनी होकर श्रीकृष्णार्पित माई बननेके पहिले जिस स्वनिर्मित भवनमें रहती थीं, उसमें पुस्तकालयकी स्थापना हुई। भवनोंके चारों ओर और बीच-बीचमें बगीचे खिल उठे और एक तरफ छोटा-सा खेत था जिससे आश्रमकी अनेकों साधारण आवश्यकताओंकी पूर्ति होती थी।

अपने गुरुकी देख-रेखमें यशोदा माईके गोपाल श्रीकृष्ण-प्रेमने हिंदू-परम्पराके कठोर अनुशासन—जैसे गुरु-सेवा, आत्मसंयम, ध्यान, शास्त्रोक्त विधिसे मूर्ति-पूजा और अध्ययनका पालन किया। बनारस आनेके बाद वे संस्कृत पढ़ते थे, गुरुसे बंगला या हिंदीमें बात करते। उन्होंने बंगला-कीर्तन सीखा। हर्षोन्मादकी स्थितिके उनके सोल्लासगीत अनेक सम्भ्रान्त श्रोतागणको प्रभावित कर देते। उनकी रचनाओं—विशेषकर The Yoga of the Bhagavadgita और The Yoga of the Kathopanishad के कारण भारतीय विचार-दर्शन और प्राचीन ज्ञानके व्याख्याताके रूपमें उनकी बड़ी प्रसिद्धि हुई।

आश्रमका दैनिक जीवन ऐसी वैष्णव-संस्थाकी पद्धतिके अनुरूप होता, जिसमें मूर्तिकी पूजाके आवश्यकतानुसार जीवनका प्रत्येक पक्ष प्रातःकालसे सायंकालतक नियन्त्रित रहता। वास्तविक सेवा वृन्दावन-स्थित श्रीराधारमण-मन्दिरके आचार्य श्रीबालकृष्ण गोस्वामीके द्वारा बतायी गयी पद्धतिसे होती, जिनसे श्रीयशोदा माईने वैष्णव दीक्षा प्राप्त की थी और बादमें वेश-आश्रय ग्रहण किया। जब श्रीयशोदा माई अति बीमार होकर ठाकुरजीका भोग बनानेमें असमर्थ हो गयीं, श्रीकृष्णप्रेमने उनसे भोजन बनाना सीखा और श्रीकृष्णार्पित माईकी मृत्युके बाद पाकशालाका भार उठाया और स्वयं शिष्यों तथा आश्रमके अतिथियोंकी आवश्यकताओंका ध्यान इतनी कुशलतासे रखते कि साधारण भोजन एक सुन्दर भोज-जैसा लगता।

मीरटोलामें मित्रों और शिष्योंका एक छोटा समूह रहता था। वहाँ कभी बहुत लोग नहीं रहे। परम विनम्र होनेपर भी श्रीयशोदा माई बहुतसे अम्यर्थियोंको, जो समझते कि जीवनकी कठिनाइयोंकी अपेक्षा आश्रम सुविधाजनक स्थान है या वहाँ

अवकाशप्राप्त वृद्ध लोगोंको निवास मिलना चाहिये, प्रोत्साहन नहीं देती थीं। सड़ककी कठिनाइयोंके कारण शुरूमें अतिथि नहीं आते, लेकिन उधरसे कैलाश जानेवाले साधुओंकी आव-भगत की जाती थी। केवल कुछ विशेष अवसरोंपर जब श्रीकृष्णप्रेम मैदानमें उतरते, उन्हें विचित्र प्रश्न करनेवाले लोग घेर लेते। वे लोग उनके पूर्ण समर्पणके द्वारा प्राप्त ज्ञान और अन्तर्दृष्टिकी अपेक्षा उनके भूतकालके महत्त्वहीन जीवनके विवरण और रहन-सहनके ढंगमें अधिक रुचि लेते थे। इस कारण वे प्रदर्शनसे दूर रहते और प्रोफेसर निकसनके सम्बन्धमें पूछ-ताछ करनेवालोंको कह देते कि वे बहुत पहले गुजर चुके हैं। एक बार वृन्दावनमें एक अपरिचितने उनसे सड़कमें उनके जन्मस्थानके सम्बन्धमें पूछा। उन्होंने उत्तरमें पूछा, 'सही अथवा गलत स्थान?' आदमीने कहा, 'निश्चय ही सही स्थान।' वृन्दावनकी भूमिकी स्पर्शकर उन्होंने कहा, 'यह'। आदमीने यह जानकर कि वे पकड़में आ गये हैं फिर पूछा, 'तब झूठा ठिकाना कौन-सा है?' उन्होंने उत्तर दिया 'जब आप सत्य जान गये तो झूठ जाननेसे क्या प्रयोजन?' और हँसकर चल दिये। १९४४ में श्रीकृष्णप्रेमके कंधोंपर आश्रमका भार छोड़कर श्रीयशोदा माई गोलोक सिधारीं। उनकी गुरुके भस्मावशेषोंको रखनेके लिये एक समाधि-मन्दिर निर्माण किया गया और आश्रमका जीवन पूर्ववत् चलने लगा; लेकिन वर्षोंकी निष्ठापूर्ण सेवा और अनुशासनने अपनी प्रभाव दिखाया। उनकी बढ़ती हुई अवस्थाके साथ-साथ उनकी धार्मिक अनुभूतियोंमें गहराई आती गयी, जिसका परिणाम उनके दृष्टिकोणकी सर्वव्यापकतामें हुआ जो उनके प्रारम्भिक वर्षोंमें परिलक्षित होनेवाली संकुचिततासे सर्वथा भिन्न थी। उनका व्यवहार बुद्धिवादी होकर भी कोमल होता गया और जिसका परिचय उनके स्नेह-युक्त हार्दिक सत्कारसे मिलता था जो वे भारत तथा विदेशोंसे आनेवाले आगन्तुकोंका किया करते थे, जिनकी संख्यामें नयी मोटर-सड़क बन जानेके कारण दिनों-दिन वृद्धि होती गयी।

अब आश्रमके बाह्य जीवनसे भी श्रीकृष्णप्रेमके स्वभावमें हुए आन्तरिक परिवर्तनोंका बोध होता था; क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक मार्गका तत्त्व समझ लिया था और उन्हें बाहरी परम्परागत प्रतीकोंकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रही। ऐसा लगता था मानो आत्माने दूसरी बार परन्तु गूढ़तर संन्यास लिया हो। उनके शिष्यों तथा स्वयंके लिये प्रत्येक अनावश्यक

वस्तु आश्रमसे हटा दी गयी, जिस तरह उन्होंने अपने मानससे अनावश्यक बौद्धिक धरौंदोंको निकाल दिया था। अपनी मृत्युके १० वर्ष पूर्व ही उन्होंने आश्रम तथा उसके संचालनके लिये १९२९में बनाये गये ट्रस्टका कार्य-भार अपने शिष्योंमेंसे एकको सौंप दिया था। उन्होंने कहा, 'मैं साधू हो गया हूँ।' कुछ लोग उनके इसलिये आलोचक हो गये; क्योंकि उनकी दृष्टिमें उनके द्वारा आचरित परम्परागत और कर्मकाण्डी मार्ग हेय स्तरका था। कुछ अन्य लोग इसलिये आलोचना करते थे कि उन्होंने अपने गुरुद्वारा स्थापित आश्रमकी पद्धतिमें परिवर्तन ला दिया था। वे किसी दूसरेकी बातकी परवा नहीं करते थे और उनके प्रत्येक कार्य उनके गुरुकी वाणीसे नियन्त्रित होते, चाहे वे प्रकट रूपमें बोलती हों या हृदयमें प्रेरणा देती रही हों।

जो भी उनके पास आया, चाहे वह किसी कौतूहलको लेकर अथवा आन्तरिक मार्गकी खोजमें—सभी उनकी आत्माके दीप्तिमान् विश्वासके सम्पर्कसे स्वयंमें शक्तिका अनुभव करते थे। उन्हें उनके मार्गका अनुसरण करनेवाले आत्मीय मित्रों तथा अनुयायियोंका जो सम्मान और स्नेह प्राप्त हुआ, वह उनके भूतपूर्व प्रोफेसर, पुस्तक-लेखक तथा कभीके कर्मकाण्डी होनेके कारण नहीं मिला। जिस प्रकार मनुष्यको रहना चाहिये, वे रहे। और अपने लिये किसी सुविधाकी माँग नहीं की। बात करते समय ऐसे बात करते जैसे अपने हृदयसे दूसरोंके हृदयोंसे बात करते हों। मनुष्य-स्वभावकी आन्तरिक गहराइयोंको भेदती हुई उनकी नीली आँखें, झूठको धूलि धूसरित कर देनेवाले उनके तीखे प्रश्न, उनकी विनोदप्रियता, प्रेरणादायक वार्तालाप, मुक्तहस्त प्रेम-वितरण स्मृतिमें सँजोने योग्य हैं। सर्वाधिक स्मरणीय प्रायः दिखायी पड़नेवाला उनके आत्माका प्रकाश था, जिसका केन्द्रीय आलोक उनके स्वभावके अनेक पहलुओंको महत्त्व प्रदान करता था।

एक लम्बी और कष्टदायक बीमारीके, जिसको उन्होंने बिना किसी शिकायतके सहन किया, बाद १४ नवम्बर १९६५ की प्रातःकाल नैनीतालमें उनका गोलोकवास हुआ। कुछ ही घंटोंमें उनका शव पनुआनौला लाया गया जो मीरटोला जानेवाली मोटर-सड़कपर सबसे निकटका स्थान था। परन्तु कार पहुँचनेसे पूर्व ही समाचार, पहुँच चुका था और निकटवर्ती ग्रामोंके एक सौसे कुछ अधिक व्यक्ति पहले

ही वहाँ एकत्रित थे जो दण्डेश्वर वनमें स्थित खुले और शान्त स्थानतक कुछ मील शवको अपने कंधोंपर ले जानेके अधिकारका प्रेमपूर्वक आग्रह करने लगे । वहाँ उन्होंने सुगन्धित देवदारके लट्टोंसे उनकी चिता तैयार की; क्योंकि वे उनके बीच ३५ वर्षतक रहे थे और उन सबके मनमें उनके लिये बड़ा आदर था ।

एक भारतीय मित्रने एक उपयुक्त संस्मरण लिखा है, 'मेरे लिये वे असम्भव चरित्रके मूर्तिमान् प्रतीक थे, जिन्होंने जीवनको अर्थ और गौरव प्रदान किया ।'

श्रीकृष्णप्रेमको तो अब भौतिक आवासकी आवश्यकता नहीं रही; परंतु गुरुके लिये बनाया गया आश्रम, जहाँ उन्होंने उनकी मृत्युपर्यन्त सेवा की और जहाँ उन्होंने अपने आध्यात्मिक मार्गका इतने वर्षोंतक अनुसरण किया, वह उनके सुदीर्घ शिष्योंके लिये सजीव केन्द्र बना हुआ है, जिनको बदलेमें, उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञानके मार्गमें दीक्षित किया । उनकी आन्तरिक उपस्थितिके संरक्षणमें वे सब उनके द्वारा सिखाये गये मार्गपर बढ़ते चले जा रहे हैं ।*

तुलसीके शब्द

(लेखक—डाक्टर श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम्० ए०, डी० लिट०)

कविता कला है और कलाका संसार संकेतभरा संसार है । कलाकार हमको शब्दोंसे नहीं कहता, वह शब्दोंसे कहलवाता है । कविके शब्दोंमें अर्थ ही केवल नहीं है, इशारे भी हैं । बाह्य रूप देखकर, शब्दार्थ समझकर कलाकारका पूरा अर्थ कोई नहीं समझ सकता; क्योंकि कलाकार कुछ और भी कहता है जो कृतिके बाह्य रूपके, शब्दार्थके परे है । एक स्थानपर अयोध्याकाण्डमें मानसकार कहते हैं—

एक निमेष बरस सम जाई । एहि विधि भरत नगर निअराई ॥

टीकाकारोंने इसका अर्थ यों किया है कि भरतजीका एक निमेष एक वर्षके समान बीत रहा था । इस प्रकार भरतजी नगरके निकट पहुँचे ।

शब्दोंका अर्थ तो यह हो गया । परंतु कविवरका सम्पूर्ण अर्थ यह नहीं है । श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीका इन शब्दोंद्वारा कुछ और भी कहनेका अभिप्राय है । यदि ऐसा न होता तो वे यहाँ 'भरत' शब्दका प्रयोग न करते । वे यह कह देते कि दूत दोनों कुँवरोंको लेकर अयोध्याजी

पहुँचे । और कविवर 'नगर निअराई' भी न कहते । वे दूसरे शब्दोंका प्रयोग करते । वे इस पंक्तिके उत्तरार्धको यों भी कह सकते थे—

पहुँचे नगर निकट सब लोगा ।

और तब भी लोग यही अर्थ करते कि भरतादि सब नगरके निकट पहुँचे । परंतु कविवरका आशय केवल यह कहना नहीं है कि दोनों राजकुँवर नगरके निकट पहुँचे । वे यहाँ यह कहना चाहते हैं कि यद्यपि रथ बहुत तेजीसे चल रहा था—

चले समीर बेग हय हाँके ।

—फिर भी भरतजीको ऐसा लगा कि नगरतक उसे पहुँचते-पहुँचते बड़ी देर लगी—बहुत देरमें नगरके पास रथ पहुँचा । वास्तवमें तो सामान्यतः जो समय रथको अयोध्याजी पहुँचनेमें लगता उससे आज बहुत कम समय लगा; क्योंकि गुरु वशिष्ठजीकी दूतोंको आज्ञा यह थी कि बहुत जल्दी जाओ और बहुत जल्दी वापिस आओ । थोड़े भी इसलिये विशेष

* श्रीकृष्णप्रेमजीसे उनके संन्यास-ग्रहणसे पूर्वका ही मेरा बहुत निकटका प्रेमका सम्बन्ध था । वे सच्चे भक्त-हृदयके महानुभाव थे । पाश्चात्यभूमिमें जन्म होनेपर भी वे भारतीय संस्कृतिके स्वरूप थे और सच्चे अर्थमें परम वैष्णव थे । भक्तिके परमोज्ज्वल मधुररसके बड़े सूक्ष्म ज्ञाता थे और भगवद्वाणी गीताके मर्मज्ञ विद्वान् थे । उनके जानेसे भारतीय वैष्णव-संस्कृतिके एक पाश्चात्य जगत्-ज्ञात संतका ऐसा अभाव हो गया, जिसकी पूर्ति सम्भव नहीं । आशा है उनके भावुक शिष्यवर्ग उनका पदानुसरण कर उनकी भक्ति-परम्पराको अक्षुण्ण रखेंगे ।

'कल्याण'में उनके कई महत्त्वपूर्ण ऐसे लेख प्रकाशित हो चुके हैं, जो केवल 'कल्याण' के लिये ही लिखे गये थे, जिनमें एक लेख तो उन्हींकी लिखी अविकल हिन्दीमें छपा गया था । उन लेखोंको हम पुस्तकाकार भी प्रकाशित करना चाहते हैं ।

प्रकारसे तेज गये-आये । वे 'समीर वेग' से चले; परंतु भरत-जीकी चिन्तामग्न मानसिक दशाके कारण उनको यह लगा कि अयोध्या पहुँचनेमें बड़ी देर लगी । भरतजीकी मानसिक दशाकी ओर संकेत करनेके लिये यहाँ 'भरत'का नाम आया है और 'नगर निअराई' पहले स्थानपर अर्थात् 'नगर' और बादमें पास आना 'निअराई' कहकर कविवरने इस ओर इशारा किया है कि भरतजीको ऐसा लगा कि सामान्यतः जो समय अयोध्याजीतक आनेमें लगता उससे इस बार अधिक समय लगा ।

कविवर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकी यह विशेषता है कि वे आने या जाने या पहुँचनेकी गतिको एक विशेष संकेतद्वारा इङ्गित करते हैं ।

प्रसंग किष्किन्धाकाण्डका है । सीताजीकी खोजमें प्याससे व्याकुल हनुमानादि वानर जब एक गुप्त विवरमें जाते हैं, तब वे देखते हैं—

मंदिर एक रुचिर तहँ वैठि नारि तप पुंज ।

इस 'नारि तप पुंज'ने वानरोंसे सब वृत्तान्त सुनकर निश्चय किया—

मैं अब जाव जहाँ रघुराई ।

तदुपगन्त—

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा ।

करुणानिधान प्रभुके पास पहुँचकर उनकी 'अनपायनी भगति' प्राप्त करके—

बदरीबन कहूँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस ।

इस प्रसंगमें 'नारि तप पुंज' के जानेका उल्लेख है । एक बार उसने श्रीरघुनाथजीके पास जानेका निश्चय किया, दूसरी बार उसका श्रीरघुनाथजीके पास जाना कहा गया, तीसरी बार उसका 'बदरी बन' जाना कहा है । तीनों बार बात जो है वह जानेकी ही है ।

परंतु—

मैं अब जाव जहाँ रघुराई ।

और—

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा ।

—मैं जानेकी गतिमें शीघ्रताका संकेत है लेकिन—

बदरीबन कहूँ सो गई ।

—मैं जानेकी गतिमें धीरेपनका संकेत है । यह बात है भी ठीक; क्योंकि श्रीरघुनाथजीकी आज्ञापर ही वह जानेका संकेत है ।

दूर होना कौन चाहेगा और अगर परिस्थितिबश दूर होना पड़ा तो चाल धीमी होनी स्वाभाविक है ।

अब प्रश्न यह है कि वह कौन-सा संकेत है जिसके द्वारा गति-परिवर्तनकी सूचना कविवर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी हमें देते हैं ।

बात बहुत सीधी है ।

मैं अब जाव जहाँ रघुराई ।

और—

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा ।

—इन दोनों पंक्तियोंमें जानेकी क्रियाका उल्लेख पहले है और जानेके स्थानका उल्लेख बादमें । पहली पंक्तिमें 'जाव' जो क्रिया है वह पहले कही है और 'जहाँ रघुराई' जो स्थान-सूचक शब्द हैं वे क्रियाके बादमें आये हैं । दूसरी पंक्तिमें 'गई' पहले है, जानेकी क्रियाका उल्लेख पहले है और जाने-के स्थानका—'जहाँ रघुनाथा'का उल्लेख बादमें है । जहाँ इस प्रकारसे बात कही गयी है उसका आशय यह है कि जाने-की गति सामान्य गतिसे शीघ्रतर है ।

एक अन्य प्रसंगमें कविवर कहते हैं—

फरकत अधर कोप मन माहीं । सपदि चले कमलापति पाहीं ॥

यहाँ क्रोध-भरे नारदजी 'सपदि चले' भगवान् के पास तेजीसे चले । इसलिये चलनेकी क्रिया 'चले' पहले कही और जानेका स्थान 'कमलापति पाहीं' बादमें कहा है ।

लंकाकाण्डमें कविवर कहते हैं—

सर पैठत कपि पद गहा मकरी तब अकुलान ।

मारी सो धरि दिव्य तनु चली गगन चढ़ि जान ॥

—यह मकरी 'दिव्य तनु' पाकर तेजीसे 'जान' में बैठकर ऊपर उड़ गयी । 'चली गगन' । यहाँ चलनेकी क्रिया 'चली' का उल्लेख पहले है और पहुँचनेके स्थान- 'गगन'का उल्लेख बादमें किया है; क्योंकि प्रसंग शीघ्र गतिका है ।

इसी प्रकार—

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला । गई गगन सो सकति कराला ॥

यहाँ भी जानेकी क्रिया 'गई' का उल्लेख पहले है और जानेके स्थान 'गगन' का उल्लेख बादमें है । यह उस कराल

नीचे कुछ और उदाहरण दिये जाते हैं, जिनमें पहले क्रियाका और उसके बाद स्थानका उल्लेख होनेसे कविवरका शीघ्र गतिकी ओर संकेत है।

गई सती जहँ प्रभु सुखधामा ।

उनको प्रभुकी परीक्षा लेनेकी उत्कण्ठा थी; इसलिये सतीजी जल्दी-जल्दी गयीं ।

समाचार सुनि तुहिन गिरि गवने तुरत निकेत ।

घबराहटके मारे हिमाचल तुरंत घर गये ।

गई संभु पहिं मातु भवानी ।

कहीं 'भल अवसर' हाथसे निकल न जाय इसलिये जल्दीसे पार्वतीजी महादेवजीके पास गयीं ।

सिधि सब सिय आयसु अकनि गई जहाँ जनवास ।

सीताजीकी आज्ञाका शीघ्रतिशीघ्र पालन करनेके लिये सब सिद्धियाँ जहाँ जनवासा था, वहाँ जल्दीसे चलीं ।

जाउँ राम पहिं आयसु देहू । एकहिं आँक मोर हित एहू ॥

भरतजी बहुत वेचैन हैं । वे चाहते हैं कि अविलम्ब वे श्रीरघुनाथजीके पास पहुँच जायँ । इसलिये 'जाउँ राम पहिं' कहा 'राम पहिं जाउँ' नहीं कहा ।

जैहिं सुनि विनय मोहि जु जानी । आवहिं बहुरि राम रजधानी ॥

भरतजी चाहते हैं कि एकदम जल्दी श्रीरघुनाथजी अयोध्याजीको लौट आयें । इसलिये पहले 'आवहिं' कहा बादमें 'रजधानी' कहा ।

उपर्युक्त उदाहरणोंमें यह निष्कर्ष निकलता है कि कविवर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी जब साधारण गतिसे शीघ्रतर गतिका संकेत करते हैं तब जहाँ स्थानका भी स्पष्टीकरण है वहाँ जाने-आनेकी क्रियाको पहले लिखते हैं और जाने-आनेके स्थानका इस क्रियाके बाद उल्लेख करते हैं । इसके विपरीत जब वे स्थानका उल्लेख पहले करते हैं और जाने-आनेकी क्रियाका उल्लेख बादमें करते हैं तो इसका आशय यह होता है कि गति साधारण है अथवा साधारणसे मन्द है, धीमी है । इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

बदरी वन कहँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस ॥

यहाँ 'नारि तप पुंज' के बदरीवन जानेका वर्णन है । इस स्थानपर मन्दगतिये जानेका संकेत है; क्योंकि जानेके स्थान

'बदरीवन'का उल्लेख पहले है और जानेकी क्रिया 'गई' इसके बाद आयी है । 'प्रभु अग्या धरि सीस' वह गयी तो परंतु धीमे-धीमे गयी ।

इस संकेतका एक सुन्दर दृष्टान्त अरण्यकाण्डमें मिलता है । शोभासिन्धु खरारि श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सूपनखाका यह हाल हुआ कि—

होइ बिकल सक मनहि न रोकी ।

और वन-ठनके, मटक-मटककर हाव-भाव दिखलाती हुई बड़ी अदासे धीमे-धीमे—

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई । बोली बचन बहुत मुसुकाई ॥

अनुपम कलाकार कविवर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने इसके मटक-मटककर मन्द चालसे जानेका शब्दोंद्वारा वर्णन नहीं किया; परंतु पहले जानेका स्थान 'प्रभु पहिं' और इसके बाद जानेकी क्रिया 'जाई' को लिखकर इसकी मंदगतिकी ओर संकेत कर दिया है ।

करुणानिधान प्रभु परम कौतुकी हैं । मायापतिसे सूपनखा माया कर रही है ! प्रभुने कहा—'देखो, वह रहा मेरा भाई ।' 'लघु' कहकर, छोटी उम्रका कहकर और 'कुमार' कहकर प्रभुने लक्ष्मणजीके प्रति सूपनखाका लोभ बढ़ा दिया और फिर 'सीतहिं चितइ' प्रभुने यह बात कही कि मैं अपने सम्बन्धमें तो क्या कहूँ । वस, अब तुम स्वयं ही समझ लो ! सीताजीकी ओर कौतुकी कृपालाके देखनेका यही भाव था । यह सुनते ही सूपनखा लक्ष्मणजीके पास गयी । लेकिन उन्होंने जो उसको बातें कहीं, उनसे वह खिसिया गयी और सोचमें पड़ गयी । जब सूपनखा लक्ष्मणजीके पाससे श्रीरघुनाथजीके पास लौटकर आयी तो खिसिआहटके मारे उसमें पहलेवाला उत्साह नहीं रहा, उसकी चाल धीमी हो गयी और वह धीरे-धीरे प्रभुके पास आयी—

तब खिसिआनि राम पहिं गई ।

सूपनखाके इस प्रकार सोचमें पड़े हुए धीमे-धीमे जानेका संकेत कविवरने 'राम पहिं गई' कहकर दिया है जहाँ जानेका स्थान 'राम पहिं' पहले कहा है और जानेकी क्रिया 'गई' का उल्लेख बादमें हुआ है । इसी प्रकार जब शंकर भगवान्के पास रति जाती है—

रोदति बूदति बहु भौंति करुना करति संकर पहिं गई ।

तब कविवर 'गई संकर पहिं' नहीं कहते हैं बल्कि रोदति बूदति बहु भौंति करुना करति संकर पहिं गई ।

‘संकर पहि’ और इसके बाद जानेकी क्रिया ‘गई’ देखकर हम यह समझ लें कि रतिकी चाल धीमी है ।

लंकाकाण्डमें मन्दोदरी आदि रानियाँ रावणको तिलाञ्जलि देनेके पश्चात्—

भवन गईं रघुपति गुन गन वरनत मन माहिं ।

यहाँ ‘भवन गई’ कहकर कविवरने इनकी मन्द चालका संकेत किया है; क्योंकि यहाँ पहले जानेके स्थान ‘भवन’का उल्लेख है और तदुपरान्त जानेकी क्रिया ‘गई’ दी गयी है ।

श्रीरघुनाथजीकी परीक्षा लेनेके लिये सतीजी चलीं तो बड़े उत्साहसे परंतु जब श्रीरघुनाथजीने उन्हें सादर प्रणाम किया और—

कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतू । विपिन अंकलि फिरहु केहि हेतू ॥
तब—

राम वचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु ।

सती समीत महेस पहिं चलीं हृदयें बड़ सोचु ॥

‘अति संकोचु’ और ‘बड़ सोचु’ और भयके कारण सतीजीका पाँव उधर जल्दी उठ नहीं रहा था जिधर वटवृक्षकी छाँहमें शिवजी विराजमान थे । इस धीमी सोचभरी चालकी ओर कविवरने ‘महेस पहिं चलीं’ कहकर संकेत किया है जहाँ जानेके स्थान ‘महेस पहिं’ का उल्लेख पहले है और जानेकी क्रिया ‘चलीं’ इसके बाद कही है ।

पुत्रेष्टियशके अन्तमें ‘हवि’ देकर अग्नि देवता जब अदृश्य हो गये तो कविवर कहते हैं कि—

तबहिं रायें प्रिय नारि बोलाई । कौसल्यादि तहाँ चलि आई ॥

ये प्रिय रानियाँ विशेष प्रकारसे सुमुखि सुलोचनी और गजगामिनी थीं, शोभाका भार ही सँभालना इनके लिये बहुत था; अतएव जब ये आयीं तो मन्थर-गतिसे आयीं, रानियोंकी चालसे आयीं । ‘तहाँ’ अर्थात् आनेके स्थानको पहले कहकर और इसके बाद ‘आई’ कहकर कविवरने इनकी इस मन्द गतिकी ओर संकेत किया है ।

मुनि विश्वामित्रजीके साथ दोनों कुँवर जा रहे हैं । मार्गमें गङ्गाजी पड़ती हैं ।

गाधि सूनु सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥

गङ्गाजीके पृथ्वीपर आनेकी कथा बड़ी लम्बी है । अन्य रामायणोंमें इसका विस्तृत वर्णन है । कैसे श्रीहर्मिके चरणोंसे निकलकर गङ्गाजी भूलोकपर आयीं, इसका सविस्तर वर्णन विश्वामित्रजीने किया । इस धीरे-धीरे—

लोकमें आनेकी सविस्तर कथाका संकेत कविवरने ‘महि आई’ कहकर किया है जिसमें आनेके स्थान ‘महि’का उल्लेख पहले है और आनेकी क्रिया ‘आई’ बादमें लिखी है ।

भरतजी अनुजसहित ननिहालसे अवध आ चुके हैं । मातासे उनकी भेंट हो चुकी है । अपनी कार्यकुशलताकी कहानी जिससे भरतजीको राज्य प्राप्त करवाया था और जिसमें—

मैं मन्थरा सहाय विचारी ।

माता कैकेयी भरतजीको अवतक सुना चुकी होंगी, यह सोचकर उसकी प्रतिक्रिया देखने—

तेहि अवसर कुबरी तहँ आई ।

इस समय मन्थरा यहाँ एक मनोवैज्ञानिक प्रेक्षककी भाँति सजग होकर धीमे-धीमे आयी । इसकी चालकी गति ‘तहँ आई’ से स्पष्ट है जिसमें आनेका स्थान ‘तहँ’ पहले लिखा है और आनेकी क्रिया ‘आई’ बादमें है जो मन्द गतिका संकेत है ।

रानी कैकेयी किसी उद्वेगमें, किसी क्षणिक उत्तेजनावश कोपग्रहमें नहीं गयीं । मन्थराने—

रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हैसि कपट प्रबोधु ।

कहिसि कथा सत सवति कै जेहि विधि बाढ़ विरोधु ॥

और चलते-चलते अन्तिम शिक्षा यह दी—

काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु ।

इसलिये कैकेयी रानी बड़े पक्के निश्चयसे ‘काजु सँवारेहु’ के लिये सजग होकर, दृढ़संकल्प होकर कोपभवनमें गयीं । यह अडिग निश्चय और संकल्पकी दृढ़ता उनकी मन्द चालसे स्पष्ट है—

कोपभवन गवनी कैकई ।

कविवरने जानेके स्थान ‘कोपभवन’ का उल्लेख पहले किया है और जानेकी बात ‘गवनी’ बादमें कहकर रानीकी इस मन्द गतिसे हमें सूचित किया है ।

अब इस बातको दूसरे रूपसे विचार कीजिये ।

‘अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं’ पवनसुत और ‘भूधराकारसरीरा’ वाले कुम्भकर्णका युद्ध हो रहा है । कुम्भकर्णका शरीर कैसा वज्र-सा कठोर है, यह इस बातसे अनुमान किया जा सकता है कि—

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा । करहिं भालु कपि एक एक बारा ॥
कुम्भकर्णका शरीर इतना मजबूत था कि गज अर्क फलनिको मारबो ॥

जब हनुमान्जी और कुम्भकर्ण लड़ते हैं तो एक दूसरेको घूँसा मारते हैं। फलस्वरूप दोनों पृथ्वीपर गिर जाते हैं। हनुमान्जीके घूँसेसे कुम्भकर्ण धरतीपर गिर जाता है, कुम्भकर्णके घूँसेसे हनुमान्जी भूमिपर गिर पड़ते हैं। परंतु कुछ अन्तर है। कविवर कहते हैं—

तब मारतसुत मुठिका हन्यो । परयो धरनि न्याकुल सिर धुन्यो ॥
पुनि उठि तेहि मारेउ हनुमंता । घुर्मित भूतल परेउ तुरंता ॥

कविवरकी शब्दावलीपर विचार कीजिये। हनुमान्जीने कुम्भकर्णको घूँसा मारा। वह ‘परयो धरनि’। यहाँ गिरनेकी क्रिया ‘परयो’ पहले कही और गिरनेका स्थान ‘धरनि’ को क्रियाके बादमें कहा। इसका अर्थ कविवर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकी सांकेतिक भाषामें यह हुआ कि घूँसा लगते ही फौरन उसी क्षण कुम्भकर्ण पृथ्वीपर गिर गया। अब कुम्भकर्णके घूँसेका फल क्या हुआ? कविवर कहते हैं कि हनुमान्जी ‘भूतल परेउ’ भूमिपर गिर गये। यहाँ गिरनेका स्थान ‘भूतल’ पहले लिखा है और गिरनेकी क्रिया ‘परेउ’

बादमें। कविवरके इस प्रकारके लिखनेका अर्थ यह है कि हनुमान्जीको भूमिपर गिरनेमें देर लगी। बहुत देर तो नहीं लगी। पहले चक्कर आया फिर गिरे। गिरे तो जल्दी ही—‘परेउ तुरंता’—परंतु फिर भी कुम्भकर्णके समान घूँसा लगते ही तत्क्षण ही नहीं गिर गये। इस प्रकार बड़ी सूक्ष्म रीतिसे कविवरने हनुमान्जीका कुम्भकर्णसे अधिक बलवान् होना हमें संकेतद्वारा बतलाया है। कुछ टीकाकार कहते हैं कि यहाँ श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने हनुमान्जी और कुम्भकर्णको एक दूसरेके घूँसेसे गिरना दिखाकर दोनोंको समान बलवाले दिखाया है। परंतु ऐसी बात नहीं है। यह टीकाकारोंकी अपनी समझ है; क्योंकि वे अनुपम कलाकार कविवर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीके सूक्ष्म संकेतको समझ नहीं पाये।

उपर्युक्त उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि आने-जाने-चलने-गिरनेकी शीघ्र अथवा मन्द गतिका संकेत शब्दोंद्वारा नहीं बल्कि शब्दोंके आगे-पीछे करनेसे कविवर हमको प्रदान करते हैं।

(क्रमशः)

‘निष्पाप मन’

(रचयिता—विद्यावाचस्पति डाक्टर श्रीहरिशंकरजी शर्मा, डी० लिट्०)

पर, पाप न आए, हे प्रभु, मेरे मनमें !
सम्पति भर-पूर कमाऊँ, चाहे सर्वस्व गँवाऊँ,
सुख हो या दुःख उठाऊँ, जुग जिऊँ, अभी मर जाऊँ,
नगरीका नागर बनूँ, वसूँ या वनमें—

पर, पाप न आए, हे प्रभु, मेरे मनमें !
परिवार भले ही छोड़े, जन-जनता नाता तोड़े,
सत्ता सब तीत निचोड़े, सौभाग्य-स्नेह मुख मोड़े,
कष्टोंका कोप रहे कितना ही तनमें—

पर, पाप न आए, हे प्रभु, मेरे मनमें !
दुखियोंके दुःख निवारूँ, पतितोंपर प्रेम प्रसारूँ,
बल सदा सत्यका धारूँ, बन भीरु न हिम्मत हारूँ,
हो जरा-जीर्ण तन, या उमंग यौवनमें,

पर, पाप न आए, हे प्रभु, मेरे मनमें !
अन्याय-अनीति मिटाऊँ, सेवा-सन्मार्ग सुझाऊँ,
सद्भाव-सुधा वरसाऊँ, शुचिता-समता सरसाऊँ,
यश हो या अपयश मिले मुझे जीवनमें,
पर, पाप न आए, हे प्रभु, मेरे मनमें !

सूर्योपासना और उपःपान

(लेखक—श्रीशम्भूनाथजी वि० वाशिसकर)

विश्वके समस्त देशोंपर यदि दृष्टिपात किया जाय तो विदित होगा कि सभी जगह किसी-न-किसी रूपमें उपासना करनेकी प्रथा प्रचलित है। उपासनाका अर्थ होता है—अपनी समस्त मानसिक क्रियाओंको एक स्थानपर अपने मनमें एकत्रित कर अपने अभीष्टकी साधना करना। पूजा करने-वाले दो श्रेणियोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। पहली श्रेणीमें वे लोग हैं जो नित्यप्रति पूजन करते हैं तथा दूसरी श्रेणीमें वे हैं जो खास-खास विशेष त्यौहारोंपर पूजन करते हैं। किंतु दोनों श्रेणियोंके पुजारियोंमें बहुत कम ऐसे लोग हैं जो उपासनाका वास्तविक अर्थ जानते हैं। जनसाधारणमें परम्परागत प्रथाको सुचारु रूपसे संचालित करते रहनेकी ही भावना प्रधानतः पायी जाती है। जिस प्रकार शारीरिक क्रियाशील शक्तियोंको दीर्घकालतक सुरक्षित रखनेके लिये अनवरत कठिन परिश्रमके उपरान्त आरामकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मानसिक क्रियाओंको भी कुछ कालके लिये शान्ति देना नितान्त आवश्यक होता है और वह शान्ति पूजन अथवा उपासनासे ही प्राप्त की जा सकती है। मानसिक क्रियाओंको हम दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। वे मानसिक क्रियाएँ जो चेतनावस्थामें होती हैं तथा दूसरी वे जो अचेतनावस्थामें होती हैं। अतएव मनुष्यकी मानसिक क्रियाएँ किसी-न-किसी रूपमें सदैव होती रहती हैं, उसे कुछ कालके लिये विश्राम देकर आत्माको परमात्माके रूपमें मिला देना ही उपासनाका यथार्थ रूप है। उसके लिये मनुष्यको कठिन परिश्रम करना पड़ता है और उसके लिये हमारे यहाँके ऋषियोंने पूजन या उपासनाके कुछ नियम आविष्कार किये थे और वे नियम बहुत ही महत्त्वपूर्ण थे।

×

×

×

हमारे यहाँके ऋषिगण समुद्रतटों, नदीके किनारों तथा जंगलोंमें आश्रम बनाकर उपासना किया करते थे। वे लोग अद्वैतवादी होते थे। उन्हें अपनी आत्माको निर्विकार तथा आत्मरूप बनाकर परमात्मामें लीन होनेमें किसी माध्यमकी आवश्यकता नहीं होती थी। वे प्रकृतिके पुजारी होते थे तथा उन्हीं वस्तुओंकी उपासना करते थे जिनके द्वारा उनका यथार्थ उपकार होता था। वे अपनी

उपासनाकी पद्धतियोंको केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखते थे, वरं अपने आश्रमोंद्वारा उसका प्रचार कर जनताका भी कल्याण करते थे। वह समय सहस्रों वर्ष पूर्वका था; किंतु जबसे भारतवर्षमें विदेशियोंने शासन आरम्भ किया, तभीसे अध्यात्मवादका नाश होना आरम्भ हुआ तथा मनुष्योंमें धनलोलुपता, स्वार्थपरता, मिथ्यावादिता, चरित्रहीनता आदि जडवादी अवगुणोंका समावेश होना आरम्भ हुआ। इस तथ्यका ज्ञान जब हमारे ऋषियोंको हुआ, तब उन्होंने द्वैतवाद अर्थात् अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये किसी माध्यमकी आवश्यकताका अनुभव किया और इस तथ्यको दृष्टिगत रखते हुए मूर्तिके रूपमें भगवान् या देवताओंकी पूजाका आविष्कार हुआ।

×

×

×

आजतक सभ्यसमाज सूर्योपासनाके महत्त्वको न तो जानता ही है और न मानता ही है; वल्कि जो लोग सूर्योपासना करते हैं, उनकी भखौलतक उड़ाता है; किंतु आज हम भले ही इस विषयकी जानकारी न रखते हों, लेकिन पाश्चात्य देशके विद्वान् आज इसके महत्त्वके अनुसंधानमें लगे हुए हैं, जिसका हमारे यहाँके पूर्वजोंने आजसे युगों पहले ही अनुसंधान कर लिया था। पाश्चात्य चिकित्सा-विशारदोंका मत है कि सूर्य हमारा रक्षक है। हमारी जीवन-शक्तिके लिये सूर्यकी रश्मियोंमें 'अल्ट्रा वायलेट रे' नामकी किरणोंकी बहुत ही आवश्यकता है। ये किरणें बाल-रविसे निकली हुई रश्मियोंमें पायी जाती हैं। इनसे हमारी जीवनी शक्तिका विकास होता है और इसीलिये प्रातर्भ्रमण स्वास्थ्यके लिये बहुत ही लाभदायक माना गया है। केवल भारतीय विद्वानोंने ही नहीं, वल्कि पाश्चात्य विद्वानोंने भी इसका प्रतिपादन किया है—

Early to bed and early to rise,
Makes a man healthy, wealthy
and wise.

सो जाता जो शीघ्र ही; उठता शीघ्र सुजान।
स्वास्थ्य, समृद्धि, सुबुद्धिको पाता वह मतिमान॥

सूर्यरश्मियोंसे हमारा शारीरिक लाभ

सूर्यरश्मियोंसे हमारे शरीरके जीवाणु पाये जाते हैं।

इनमें एक रोगकारक तथा दूसरे रोगनाशक हैं। रोगकारक जीवाणु सूर्यकी रश्मिमें अपना जीवन नहीं रख सकते तथा क्रमशः उनकी क्रियाशील शक्तियोंका ह्रास होता जाता है। रोगकारक जीवाणुओंकी वृद्धिमें कार्बन-डाई-आक्साइड—अन्धकारपूर्ण स्थान, नम जमीन बहुत ही महत्वपूर्ण सहयोग देता है। यदि आप किसी कमरेको एक लंबे असेंके लिये बंद कर दें तो कुछ समयके पश्चात् उस स्थानसे एक अप्रियकर दुर्गन्ध आने लगेगी तथा जाले वगैरह पड़ जायेंगे, जो स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत ही नुकसान पहुँचानेवाले हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्यके जीवनके लिये सूर्यकी रश्मियाँ नितान्त आवश्यक हैं। इसके द्वारा मनुष्य शक्ति, बल तथा नीरोगता भी प्राप्त करता है। यही कारण है कि महलोंमें रहनेवाले धनियोंकी अपेक्षा कड़ी धूपमें काम करनेवाले किसान कहीं अधिक सुखी तथा नीरोग होते हैं। यही तक नहीं, वरं प्राकृतिक चिकित्साके अन्तर्गत एक विभाग है, जिसे सूर्यकिरण-चिकित्सा वा वर्ण-चिकित्सा कहते हैं। कुछ बोलचालमें, जो कि विभिन्न रंगोंकी होती हैं, जल भरकर उनमें सूर्यकी रश्मियाँ एकत्रित की जाती हैं तथा उस जलके द्वारा विभिन्न रोगोंकी चिकित्सा की जाती है। सिर्फ भारतवर्षमें ही नहीं, बल्कि विदेशोंमें भी 'क्रोमोपैथी' के नामसे यह चिकित्सा काफी लोकप्रिय है। आप दूधको यदि सूर्यकी रश्मियोंमें रख दें तथा कुछ समयके पश्चात् अणुवीक्षण-यन्त्रद्वारा निरीक्षण करें तो आप देखेंगे कि उनमें कुछ क्रीड़े-से रेंग रहे हैं। ये भी स्वास्थ्यके लिये बहुत ही लाभदायक हैं। इनके द्वारा रोगकारक जीवाणु शीघ्र ही नष्टप्राय हो जाते हैं। उपर्युक्त कथनसे यह सिद्ध हो जाता है कि सूर्यकी रश्मियोंसे हमारा बहुत कुछ शारीरिक उपकार होता है और यदि हम पूर्वजोंके मतानुसार सूर्यकी उपासना करें तो मानसिक लाभके साथ-ही-साथ शारीरिक लाभ भी प्राप्त हो सकता है। हमारे यहाँके महात्मागण पूजा एवं उपासनाके समय ताम्रपात्रका व्यवहार करते थे। यों तो यह बात मामूली है; किंतु गौर करनेपर ज्ञात होगा कि इसके व्यवहारके पीछे भी एक वैज्ञानिक तत्त्व कारण है।

×

×

×

विज्ञानके जानकार सभी व्यक्ति जानते हैं कि विद्युत्की उत्पत्ति आकाशसे होती है। यदि पावर-हाउसमें जाकर देखा जाय तो आप देखेंगे कि सभी विद्युत्-ग्राह्य यन्त्र तँबेपर

आधारित है। अर्थात् तँबेमें विद्युत्को आकर्षित करनेकी शक्ति प्रचुर मात्रामें पायी जाती है और यदि प्राचीन महलोंका निरीक्षण किया जाय तो वहाँपर भी महलोंके उच्च स्थानपर आपको एक तँबेकी छड़ गड़ी हुई दिखायी देगी ताकि उसपर विद्युत्का कोई असर न हो। इतने प्रमाणोंपर भी यदि विश्वास न हो तो हमारे महर्षियोंद्वारा उपःपानके बताये हुए तरीकेको अमलमें लाते हुए यदि नित्य उपःपान करें तो कुछ ही दिनोंमें इसका महत्व अपने-आप आपकी समझमें आ जायगा।

×

×

×

एक सूखे काठपर तँबेके वर्तनमें जल भरकर रात्रिको (खासकर शीतकालमें जब कि ओस गिरती हो) किसी पतले कपड़ेसे ढककर रख दें और उस जलको प्रातः सूर्योदयके साथ पी लिया जाय। इससे प्रथमतः तो सर्दी मालूम हो सकती है किंतु क्रमशः अभ्यास हो जानेपर कुछ नहीं होगा। इसके द्वारा शरीरमें बल, स्फूर्ति आदिका अनुभव होगा। इस जलको पीते समय काष्ठपादुका (खड़ाऊँ) का व्यवहार अवश्य करना चाहिये और इस बातका ध्यान भी रखना बहुत ही आवश्यक है कि जिस तख्तेपर पानी रक्खा गया हो और जो खड़ाऊँ पहना गया हो उसमें लोहेका व्यवहार किसी भी रूपमें नहीं किया गया हो। अन्यथा इसका सारा असर समाप्त हो जायगा। साथ ही यदि नंगे पैर खड़े होकर भी आप इस पानीको पीयेंगे तो भी इसका असर कुछ अंशोंमें कम हो जायगा।

हंसोदक

यह एक विशेष पद्धतिसे सूर्यकिरणोंको एकत्रित किया हुआ पानी है। इसका शरीरके अवयवोंपर अपना एक खास महत्व है। इसकी विधि इस प्रकार है—एक चौड़े मुँहवाले कम ऊँचाईवाले वर्तनमें शुद्ध पानी भरकर केलेके पत्तेसे ढक दिया जाय। केलेका पत्ता न मिले तो किसी दूसरे हरे रंगके पत्तेसे उस वर्तनको ढक देना चाहिये और उसे सूर्यकी रश्मियोंमें दिनभर रखना चाहिये। फिर उसी पानीको रातभर ओसमें रखकर दूसरे दिन इसका व्यवहार किया जाना चाहिये। यह स्वास्थ्यके लिये बहुत ही उपकारी है। यह जल पिया भी जा सकता है (थोड़ी मात्रामें) अथवा इससे स्नान भी किया जा सकता है। स्नानके लिये यह थोड़ा-सा पानी दूसरे साधारण पानीमें मिलाकर ही स्नान करना चाहिये।

उपर्युक्त तथ्योंको दृष्टिगत रखते हुए यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि प्रातःकालीन सूर्योपासना तथा उपःपान मनुष्यकी जीवनीशक्तिपर अपना खास महत्त्व रखता है और यदि आजके फैशनेबुल व्यक्ति 'वेड टी' (विस्तरकी चाय) के स्थानपर उपःपानका अभ्यास डालें तो निश्चित रूपसे उनकी जीवनीशक्तिका उत्थान होगा ।*

वैज्ञानिक और भक्त

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

‘मैं वाष्पको वशमें करनेका प्रयत्न करता हूँ । इसकी शक्तिके द्वारा ही लौहपथी, जलयान और बड़े-बड़े पुतलीवर चलाये जाते हैं ।’

‘इससे भी एक महान् शक्ति है, मैं उसे वशमें करनेका प्रयत्न करता हूँ ।’

‘अच्छा, आप विद्युत्की बात कर रहे हैं ?’

‘उससे भी महान् ।’

‘आपका अभिप्राय आणविक शक्तिसे है ?’

‘उससे भी कहीं अधिक महान् ।’

‘इससे ऊपर किसी शक्तिका मुझे ज्ञान नहीं । आप कुछ थोड़ा बहुत मुझे बतला दें तो बड़ी कृपा होगी ।’

‘क्या वाष्प, विद्युत् तथा आणविक शक्ति भी कभी मानवको वशमें करनेका प्रयत्न करती है ?’

‘नहीं, ये शक्तियाँ जड़ हैं । मैं आपका आशय समझ गया । आप कहना चाहते हैं कि मानवीय शक्ति वाष्प, विद्युत् एवं आणविकशक्तिसे कहीं अधिक महान् है; क्योंकि मानव न केवल अपनी ही शक्तिसे लाभ उठाता है बल्कि प्रकृतिकी समस्त शक्तियोंपर नियन्त्रण करके उनसे भी लाभ उठानेमें सफल होता है । निःसंदेह मानवीय शक्ति सब शक्तियोंसे ऊपर है ।’

‘परंतु उसे तो आपने वशमें नहीं किया । जबतक मानवीय शक्ति नियन्त्रणमें न आये तबतक आपकी ये सब शक्तियाँ वाष्प, विद्युत् एवं आणविक कब विश्वका विनाश कर बैठें, कहा नहीं जा सकता ।’

‘उसे भी नियन्त्रणमें लानेका प्रयत्न हो रहा है, परंतु अभीतक सफलता प्राप्त नहीं हुई । क्या आप कोई ऐसा उपाय बतला सकते हैं ?’

‘एक सर्वोपरि सत्ता और है । उसे वशमें लानेका प्रयत्न

करें तो वाष्प, विद्युत् और आणविक शक्तिके साथ-साथ सारी मानवीय शक्ति भी आपके नियन्त्रणमें आ जायगी ।’

‘उसे मैं जानना चाहता हूँ ।’

‘वह शक्तिका अक्षय भण्डार है, जहाँसे जड़ और चेतन दोनों शक्ति प्राप्त करते हैं । समग्र शक्तियोंका मूल स्रोत है—जिसका द्वार बंद हो जानेपर वाष्प अपनी उष्णता छोड़ देता है और विद्युत्का प्रवाह रुक जाता है ।’

‘मेरा किसी ऐसी सत्तामें विश्वास नहीं ।’

‘इसमें तो विश्वास है कि सारी प्रकृतिके पीछे एक ही तत्त्व है ।’

‘यह तो विज्ञानसिद्ध है ।’

‘तो क्या फिर यह सम्भव नहीं कि सारे प्राणियोंके पीछे भी एक ही तत्त्व हो और फिर इन जड़ और चेतनके पीछे भी एक ही तत्त्व हो और वह एक मूल तत्त्व चेतन ही हो सकता है, जड़ नहीं ।’

‘हम चेतनकी उत्पत्ति भी जड़से ही मानते हैं । अतः जब यह सिद्ध हो गया कि सारे जड़के पीछे एक ही तत्त्व है तो प्रकारान्तरसे यही सिद्ध समझें कि सारे जड़ और चेतनके पीछे एक ही तत्त्व है । आप उसे चेतन मानते हैं, हम जड़ ।’

‘जब जड़से चेतन हो सकता है तो चेतनसे जड़ भी । चुम्बकसे विद्युत् उत्पन्न हो सकता है तो विद्युत्से चुम्बक भी । अब देखना है कि सृष्टि मूलमें जड़ है या चेतन । स्वयं डार्विनके अनुसार जीवधारियोंके शरीरमें जो-जो भी परिवर्तन हुए हैं, वे उनकी कामनाके अनुसार ही हुए हैं और कामना केवल चेतनमें ही होती है, जड़में नहीं । यदि मूल तत्त्व जड़ होता तो सृष्टिमें न निर्माण होता, न प्रलयके पश्चात् पुनः निर्माण; न विकास, न पतन । यह काल स्थिर रहता और चक्र-जैसा घूमता नहीं ।’

‘यह प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं । आपकी बात न तो इन्द्रिय-गम्य है और न बुद्धि-गम्य ही ।’

* जो सज्जन उपर्युक्त विधिके अनुसार उपःपान अथवा हंसोदक जलका व्यवहार कर रहे हों अथवा इसे पढ़कर करें वे इस विषयमें अपने व्यक्तिगत अनुभव यदि लेखकको सूचित करें तो लेखक अनुगृहीत होगा । लेखकका पता है—३ पथरियाहट्टी स्ट्रीट, कलकत्ता ६.

‘परंतु श्रद्धागम्य है। इन्द्रियोंकी सीमा है। सम्पूर्ण सत्य इन्द्रियगम्य नहीं। आज भी पृथ्वीका अपनी धुरीपर घूमना, अनेक सूर्योंका होना तथा सूर्यसे भी बड़े तारोंका होना केवल बुद्धिगम्य है, इन्द्रियगम्य नहीं। बुद्धिकी भी सीमा है। जिस प्रकार सम्पूर्ण सत्य इन्द्रियगम्य नहीं, उसी प्रकार सम्पूर्ण सत्य बुद्धिगम्य भी नहीं। प्रकृतिने मनुष्यको श्रद्धा अकारण ही नहीं दी।’

‘श्रद्धा अन्ध भी तो होती है।’

‘बुद्धि भी अन्ध होती है। क्या संसारमें कुबुद्धि और कुमति-जैसी कोई वस्तु नहीं है? सभी तथ्य एक साथ ही श्रद्धा, बुद्धि और इन्द्रियगम्य नहीं हो जाते। इन्द्रियाँ भी सारी-करी-सारी एक साथ ही किसी वस्तुको ग्रहण नहीं कर पातीं। रात्रिमें दूरसे आती हुई गाड़ीका पहले प्रकाश दिखलायी देता है, फिर गड़गड़ाहट सुनायी देती है; क्योंकि प्रकाशकी गति शब्दसे तीव्र है। इसी प्रकार श्रद्धाकी गति बुद्धिसे कहीं अधिक तीव्र है। ईश्वर बुद्धिके लिये अगम्य है, बुद्धिके विरुद्ध नहीं। वह पहले श्रद्धामें आता है, फिर बुद्धिमें और फिर इन्द्रियगोचर भी हो जाता है। बुद्धिके द्वारा लाख प्रयत्न करनेपर भी वह श्रद्धासे हटाये नहीं हटता। रूपका उदाहरण आपके सामने है।’

‘ईश्वरको नहीं माना जाय तो क्या हानि है? इस आस्थाके बिना भी तो धन-वैभव, स्त्री-पुत्र, अधिकार-सत्ता सब कुछ प्राप्त हो सकता है और हो रहा है।’

‘स्त्रीका प्राप्त होना ही सब कुछ नहीं, पुंस्त्व भी चाहिये। स्वादिष्ट भोजन ही ध्येय नहीं, उसे पचानेकी शक्ति भी चाहिये।’

‘हमारे पास पुंस्त्व भी है और हमारी जठराग्नि भी प्रबल है।’

‘परंतु आपके पास तृप्ति नहीं। अनेक भोग भोगकर भी आप तृष्ट नहीं। यही आवश्यक नहीं कि हमारे पास धन, स्त्री और वैभव तथा उन्हें भोगनेकी शक्ति हो। यह भी आवश्यक है कि हम उन्हें पाकर तृप्तिका अनुभव करें। हमारा सुख और ऐश्वर्य प्रेम और सद्भावनाको जन्म दें। ईर्ष्या, विवशता और द्रोहको नहीं। और यह सब आस्तिकता अथवा अभ्यात्मके बिना सम्भव नहीं। क्या कभी आप परलोकके विषयमें भी कुछ सोचते हैं।’

‘मैं परलोकमें विश्वास नहीं रखता। शरीरके साथ-ही-साथ चेतनका भी नाश हो जाता है।’

‘कामना कारण है, शरीर कार्य। कार्यके नष्ट होनेपर कारण नष्ट नहीं हुआ करता। अपितु, वह दूसरे कार्योंको जन्म देता रहता है। मृत्युकालमें भी कामना नष्ट होती हुई नहीं देखी जाती। जबतक ऐसी कामनाएँ हैं जो शरीरके बिना पूर्ण नहीं हो सकतीं, तबतक एक शरीर छूटनेपर दूसरा शरीर प्राप्त होता रहेगा। जिन कामनाओंकी पूर्ति मानवशरीरमें सम्भव नहीं, उनकी पूर्तिके लिये यह जीवात्मा पशु, पक्षी, नारकीय तथा देवयोनिके शरीर प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है और जब कोई कामना नहीं रहती तो यह मुक्त होकर अपने आनन्दमय रूपको प्राप्त हो जाता है। शरीर कामनाओंकी पूर्तिके लिये ही तो चाहिये। जब कोई कामना नहीं, तो किसी भी शरीरमें बद्ध होनेकी क्या आवश्यकता है?’

‘मुक्तिकी अपेक्षा यदि सभी जीवोंको सुखी करनेका आप प्रयत्न करें तो कहीं अधिक अच्छा हो।’

‘मृत्युका दुःख क्या कोई दुःख नहीं है? उस दुःखको मिटानेका प्रयत्न क्या जीवोंको सुखी करना नहीं है? मृत्युके भयके कारण ही लोग धर्मयुद्ध और वलिदानसे डरते हैं, आततायियोंसे घबराते हैं और समाजमें अनैतिक आचरण एवं अन्यायको सहन करते रहते हैं। मृत्युका कष्ट ही इष्ट-वियोगको जन्म देता है। इसकी आशङ्का ही मनुष्यको दीन-हीन और विक्षिप्त तक कर देती है। यदि कोई ऐसा मार्ग निकाल लिया जाय कि मरते समय किसी भी प्रकारका कष्ट न हो, वह आनन्दकी वस्तु बन जाय तो क्या आपकी समझमें संसारके कष्टोंमें कोई कमी नहीं होगी? और इसका उपाय है आस्तिकवाद अथवा अध्यात्म। इस आस्थाका अभ्यास कि परमात्मा जो कुछ करता है, कल्याणके लिये ही करता है, मृत्यु भी कल्याणके लिये आती है। अथवा अनासक्ति, जिसकी स्त्री-पुत्र, धन-वैभव किसीमें भी कोई आसक्ति नहीं रही, उसे उनसे विछुड़ते समय कोई कष्ट नहीं होता। जिसकी कोई कामना नहीं होती, उसे शरीर छोड़नेमें कोई कष्ट नहीं होता। शरीरकी आवश्यकता केवल कामनाओंकी पूर्तिके लिये ही है। आप लोक-परलोक एवं मुक्तिको मत मानिये, परंतु यदि आप चाहते हैं कि मरते समय प्राणी कष्टका अनुभव न करें, जीवनके इस बड़े दुःखपर भी वे विजय प्राप्त कर सकें तो आपको वही मार्ग अपनाना होगा जो मुक्तिमार्गपर चलने-वालोंके लिये बतलाया गया है।’

उदात्त संगीत

(रचयिता—डा० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र एम० ए०)

(१) वीणाके स्वर

अन्तरके तारोंपर जब झनकारें होतीं,
तब एक नई-सी गूँज काव्य बन आती है।
जब व्यथा छेड़ती तार, करुण कूजन करती,
जब छूती उन्हें उमंग, पिकी तब गाती है ॥१॥

रोना अभावके साथ, भावके साथ हँसी;
करुणाका भी उद्देश्य अभाव मिटाना है।
मन जब अभावको जीत भावपर टिकता है,
खिलता तब जीवन-सत्य उमंगी गाना है ॥२॥

जब भाव नियम, अपवाद अभाव कहाता है,
तब हास और संगीत नियम हैं जीवनके।
जो सच्चे अर्थोंमें हैं जीना चाह रहे,
वे स्वामी हो लें प्रथम उमंगोंके धनके ॥३॥

बूँदें नभकी शीतलता ले जगपर आतीं,
दूर्वा बढ़ जगकी हरियाली दिखलाती है।
दोनोंकी मस्ती विहगोंकी लयसे मिलकर,
सायं-प्रातःके स्वरके साज मिलाती है ॥४॥

आरोही स्वर है सुख, तो दुख अवरोही स्वर,
चैतन्य-जगत् आनन्द-राग यों गाता है।
इस वृन्द वाद्यमें तू भी तो सम्मिलित मनुज,
फिर अपनी वीणा क्यों बेसुरी बजाता है ॥५॥

पशुओंके संस्कारोंकी वात निराली है,
भैंसोंने कब वीणाके स्वरका सुख माना।
पर मानव किस निश्चयसे यह कह सकता है,
'मैंने तो भार-चहन ही जीवन-क्रम जाना' ॥६॥

पशु भी तो चिन्ताहीन बिता देते जीवन,
उनमें संतोषी भाव शान्ति निज भरता है।
वे भी सहयोगी मित्र बने रह सकते हैं,
फिर मनुज व्यग्रतानलमें क्यों जल मरता है ॥७॥

किसने रोका है उसे कि वह न शान्ति भोगे,
किसने उसकी शाहंशाहीको कैद किया।
वह आप समझता है बँधुवा बेचारा हूँ,
अपनी शह देकर खुद अपनेको मात दिया ॥८॥

ऊँचे चढ़कर यदि वह अपनी वीणा छेड़े,
उसको तो वह स्वर-लहरी मस्त बनायेगी।
पर निश्चय ही उन मस्त तरंगोंमें बहकर,
नीचेकी दुनिया भी प्रशान्ति पा जायेगी ॥९॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

ईमानदारी

करीब १० साल पहलेकी बात है। उड़ीसाकी एक फर्म श्रीनन्दराम हुनतरामकी कटक शाखामें महावीरप्रसाद नामका एक व्यक्ति रोकड़ियाका काम करता था और उस समय मैं था वहाँ अकाउंटेंट। एक दिन रोकड़में ५०० रु० कम हो गये। उसने डरते-डरते मुझसे कहा कि 'मैं तो मारा गया, आज रोकड़में ५०० रुपये घट रहे हैं।' मैंने उसे सान्त्वना देते हुए कहा कि 'कहाँ जायेंगे? नोटोंकी गिनतीमें या रोकड़के जोड़में कहीं भूल रह गयी होगी।' उसने तथा मैंने मिलकर रोकड़के जोड़की अच्छी तरह जाँच कर ली तथा नोट भी गिन लिये एवं उस दिन जिन लोगोंको भुगतान दिया गया था, उनसे भी पूछ-ताछ कर ली गयी। कहीं भी पता नहीं चला। रोकड़-घटतीका मामला सेठजीके कानोंमें तो पहुँचना ही था। वे रोकड़ियापर लाल-पीले हुए। बादमें कहा-सुनी करनेपर उन्होंने तय किया कि २५० रुपये बट्टा-खातामें डाल दिये जायँ और २५० रुपये रोकड़ियासे वसूल किये जायँ, जिससे वह भविष्यमें गलती न करे। इस घटनाके कुछ दिन पश्चात् ही रोकड़िया छुट्टी लेकर अपने घर चला गया। उसकी जगह दूसरा रोकड़िया रखवा गया, उसका नाम था रामावतार। उपर्युक्त घटनाके करीब चार मास पश्चात् रामावतार एक दिन रोकड़ मिला रहा था। गोडरेजकी तिजोरीके दराजमें रखे नोटोंको गिननेके लिये न्यों ही उसने दराज बाहर निकालकर अलग रखवा, दराजके नीचेके हिस्सेमें एक दबा हुआ १०० रुपयेका नोट उसे दिखायी दिया। फिर उसने दराजके नीचे हाथ डालकर टटोला तो सौ-सौ रुपयेके चार नोट और निकले। दराजको कभी भी बाहर नहीं निकाला जाता था। उस दिन संयोगवश रोकड़ियाके मनमें न जाने क्या जँची, उसे बाहर निकाल लिया। झटपट रोकड़ मिलाकर वह सेठजीके पास पहुँचा और पाँचों नोट उनके हाथमें ठहराकर बोला कि 'ये नोट तिजोरीकी दराजके नीचे मिले हैं।' सेठजीको पहले तो आश्चर्य हुआ, बादमें समझ गये कि ये रुपये वे ही हैं जो महावीरप्रसादसे कम हुए थे। रखते-निकालते समय रुपये दराजके नीचे चले गये। यदि दराज पूरा बाहर न निकाला जाता तो रुपये वहीं पड़े रहते और न जाने कब किसके

हाथमें पड़ते? यदि इस रामावतारके मनमें वेईमानी आ जाती तो यह इन रुपयोंको हड़प सकता था।

सेठजीने रामावतारकी ईमानदारीपर प्रसन्न होकर उसे उनमेंसे २५० रुपये देना चाहा, लेकिन उसने यह कहकर 'यह तो मेरा फर्ज था, मुझे इसके लिये इनाम नहीं चाहिये'—लेनेसे इन्कार कर दिया।

—पूर्णन्दु भालचन्द्रका

(२)

गुणग्राहकता

वली मैनेजर साहेबका पुराना स्वामिभक्त नौकर था। गत छन्वीस वर्षोंसे वह पूरी वफादारीके साथ लगातार सेवा कर रहा था। साहेबका बहुत विश्वासी था और उनकी व्यक्तिगत कार वही चलाता था।

वह वली आज हवेलीसे आकर गाड़ीको पोर्चमें खड़ी रखनेके बदले गैरेजमें ले गया और गाड़ीमेंसे उतरते ही जब उसने गाड़ीकी पिछली सीटपर बैठी हुई साहेबकी पत्नीको देखा तो उसको क्षोभ हुआ। तुरंत ही गाड़ीमें बैठकर वह गाड़ीको पोर्चमें ले आया। मैनेजर महोदयकी पत्नीको इससे कुछ आश्चर्य तो हुआ, पर वे इतनी सौम्य स्वभावकी तथा प्रौढ़ थीं कि उक्त घटनाको कोई महत्त्व न देकर गाड़ीसे उतरते ही सीधी बँगलेमें चली गयीं।

परंतु वली? वलीने आज यह पहली भूल की थी। उसके पश्चात्तापका पार नहीं था। वह गाड़ी गैरेजमें रखकर सदाकी तरह चाभी नायकको सौंपकर घर चला गया। साहेबके आफिस जानेके समय भी वली नहीं आया। स्कूल और कालेज जानेवाले साहेबके बच्चोंको भी कोई दूसरा ही ड्राइवर पहुँचाकर आया। बार-बार गैरहाजिर रहनेवाले नौकरके लिये तो इसमें कोई नयी बात नहीं, पर वलीके सम्बन्धमें तो यह बिल्कुल नयी बात थी। बँगलेमें वली-ही-वली चर्चा होने लगी। संभ्याको जब साहेब लौटे तब तो चर्चाका विषय केवल वली ही हो गया। साहेबकी पत्नीने जब सबेरेकी घटना सुनायी तब पहले तो साहेब खूब ही लाल-पीले हो गये और वलीको चाहे जहाँसे पकड़ लानेका आदेश दे दिया। परंतु साहेबकी बुद्धिमती पत्नीने वली-जैसे विश्वासी सेवकपर उससे बिना पूछे-ताछे जल्दीमें कोई कार्रवाई नहीं करनी चाहिये—ऐसा उनसे वचन ले लिया।

वली आया। अपराधी वली आया। वलीको बँगलेकी सीढ़ियोंपर चढ़ते देख साहेबके क्रोधकी सीमा नहीं रही। पत्नीने यह परख लिया और उन्होंने पतिसे पुनः वचन माँगा। साहेब कुछ नहीं बोले। खड़े होकर वे बगलके दूसरे कमरेमें चले गये और जल मँगाकर पीया।

इसी बीच वली दीवानखानेमें आ गया और साहेबकी पत्नीके चरणोंके पास बैठ गया, मानो ढेर हो गया। इसी समय साहेब वहाँ आ गये।

‘वली!’ इस अधिकारभरी आवाजसे वली काँप गया। वह खड़ा हो गया और साहेबके पैर पकड़ने जा ही रहा था कि उन्होंने उसे हाथोंमें थाम लिया और जैसे बाप बेटेसे मिलते हैं, वैसे वे उससे मिले। वली खुले मनसे रो पड़ा। जोर-जोरसे रो पड़ा। इधर मैनेजर साहेबकी आँखोंसे भी आँसू बह चले। वलीको खूब रोने दिया। उसका हृदय हल्का न हो जाय तबतक भरपेट रोने दिया। फिर उसे अपने पास बैठाया, जल पिलाया और स्वयं भी स्वस्थ हुए।

यह दृश्य अद्भुत था। अत्यन्त ही कड़े और तेज माने जानेवाले अधिकारीको एक नौकरसे, केवल चपरासीकी श्रेणीके नौकरसे आत्मीयताके साथ इस प्रकार मिलते और भरे हृदयसे रोते देखकर सबने उन अधिकारीमें महान् गुणकी खोज की।

‘वली! बोल, बोल, मेरे अपराधी तू मुझे क्या सजा करता है। पचीस-पचीस वर्षोंतक केवल तुझसे मैंने सेवा ली, पर कभी तेरे सुख-दुःखकी मनकी बात नहीं पूछी। मैं अपराधी हूँ। आज तू सजा दे, खुले मनसे, खुले हृदयसे, बिना कुछ दया किये मुझे सजा दे।’ साहेबने कहा।

वली क्या बोलता? साहेबकी पत्नी तो चुपचाप खड़ी अपने पतिकी महत्ता देखकर चकित ही हो रही थीं। फिर भी उन्होंने वलीसे पूछा—‘वली! क्या बात है?’ और वलीने रोते-रोते कहा—‘मैं बाल-बच्चेवाला आदमी हूँ। पत्नीकी बीमारीके कारण कुछ कर्ज हो गया था। अतः नौ सौ रुपयोंमें घरको गिरवी रखवा था। महाजन अपने रुपये वसूल करनेके लिये कोर्टकी मारफत कुर्की ले आया। रुपयोंकी व्यवस्था न होनेके कारण आज मुझे अपने बाप-दादेका पुराना घर खाली करना था। इसी उपाधिके कारण मैं कर्तव्यसे चूक गया था।’

साहेब खड़े हो गये और बगलके कमरेमें जाकर चेक-बुक ले आये एवं सादे चेकपर सही करके उन्होंने अपने सेक्रेटरीको बुलाकर कहा कि ‘अभी कोर्टमें जजके पास जाकर जितनी रकम हो इस चेकमें भर दो और रुपये तुरंत कोर्टमें जमा करके, इसे अपने बाप-दादेका घर न छोड़ना पड़े, इसकी व्यवस्था करो। कदाचित् घर छोड़ दिया हो तो अपने खर्चसे इसके सामानको फिर घरमें पहुँचा दो, जिससे आजकी रात भी वली अपने बाप-दादेके घरमें ही रह सके। इसकी तुरंत व्यवस्था करो।’ यों कहकर सेक्रेटरीको विदा किया और खड़े होकर वलीपर पिताकी-सी अमृतभरी दृष्टि डालते हुए वे अपने कामपर चले गये। ‘अखण्ड आनन्द’

—हरिप्रसाद के. आचार्य

(३)

परहितव्रती सज्जन

[क]

बात है अवोहर (पंजाब) की। फूलचन्द बड़ई मेरे पड़ोसमें रहता था। अच्छा कारीगर था। परिश्रमसे काम करके पाँच-सात रुपये प्रतिदिन कमाकर अपने वृद्ध पिता, वृद्धा माता और पागल भाईका भरण-पोषण करता था। सन् १९४७ के देशविभाजनके दंगेमें बम लगा और सारा शरीर घायल हो गया। अस्पतालमें पहुँचते ही डाक्टरने दाहिना हाथ काटकर उसका जीवन बचा लिया।

अब वह बड़ईका काम नहीं कर सकता था। पड़ोसमें गोरखपुरके दो शास्त्री रहते थे। उनकी शरण पकड़ी और उन्होंने उसे दयाका पात्र समझकर पढ़ाना आरम्भ कर दिया। हिंदी-परिचय, हिंदी-कोविद, हिंदी-रत्न, हिंदी-भूषण और फिर प्रभाकरकी परीक्षा भी क्रमशः बायें हाथसे लिखते हुए उसने पास कर ली।

उस समय म्युनिसिपल हाईस्कूलमें लाला बेलीरामजी मुख्याध्यापक थे, उनको हिंदी-प्रभाकर-उत्तीर्ण व्यक्तिकी आवश्यकता थी। दया करके फूलचन्दको यह पद दे दिया और अस्सी रुपये मासिकपर वह काम करने लगा। वृद्ध माता-पिताको श्रवणकुमार मिल गया। दो वर्ष काम करनेके बाद O. T. स्पेशल ट्रेनिंगका सर्टिफिकेट भी मिल गया; परंतु सिविल सर्जनने Unfit कर दिया। नौकरीसे अलग होना पड़ा। बेचारे वृद्धोंका सहारा हूट गया। कई दिनोंतक

घरमें भोजन नहीं बना, सभी बैठकर रोते रहे। शास्त्रियोंको पता चला तो उन्होंने फूलचन्दको साथ लेकर पंजाबके हेल्थ आफिसर सरदार जगदीशसिंहजीके पास पटियाला राजेन्द्र हास्पिटलमें जाकर उन्हें सारी कहानी सुनायी। सरदारजीके नेत्रोंसे झड़ी लग गयी। उन्होंने देखा फूलचन्दने बायें हाथसे लिखकर अनेक परीक्षाएँ पास की हैं, इन्स्पेक्टर और हेडमास्टरके Remark अच्छे हैं। वार्षिक परीक्षाका परिणाम अच्छा है। केवल दाहिना हाथ नहीं है। शेष अंग सभी ठीक हैं। स्वास्थ्यमें कोई खराबी नहीं है। इससे उन्होंने समर्थन किया और फूलचन्दकी अपील स्वीकार करके उसे मेडिकल सर्टिफिकेट दे दिया और सिरपर हाथ फेरकर कहा—'बेटा! जाओ, मौज करो। जब कभी मेरी सेवाकी आवश्यकता पड़े, लिख भेजना।' फूलचन्दको नौकरी वापस मिल गयी। वृद्धोंका सहारा पुनरुज्जीवित हो गया। बेचारे प्रातःकाल उठकर सरदार जगदीशसिंहके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं। यद्यपि अब सरदारजी इस दुनियामें नहीं हैं, परंतु उनका यश आज भी खुले कण्ठोंसे गाया जाता है। बादमें तो सरदार साहबकी ऐसी अनेक घटनाओंका पता लगा कि आपने सैकड़ों अपाहिजों और दीन-दुखियोंका उद्धार किया है। धन्य हैं—ऐसी परमात्माकी विभूतियाँ।

[ख]

मेरी पत्नीके पेटमें रसौली हो गयी। परदेश था, न कोई आगे न पीछे। गोदमें ढाई सालका बालक। ग्रीष्मावकाशमें पत्नीको मिशन अस्पताल फिरोजपुरमें दाखिल करा दिया। डाक्टरोंने इंजेक्शन लानेको लिखकर दिया। न रहनेका कोई स्थान था और न कहीं कोई परिचय ही। बच्चेको कंधेपर उठाया। कड़ी धूपमें दो मील चलकर छावनी पहुँचा। एक सज्जन अपने द्वारपर खड़े थे। नम्रतासे डाक्टरकी दूकान पूछी। सज्जनने मुझे बुलाया और बैठनेको कहा—'मैं शिक्षक रहा था। साथ ही समयपर इंजेक्शन भी पहुँचाना था। परंतु सज्जनने आग्रहपूर्वक बैठाकर मीठा शर्बत पिलाया और साथमें डाक्टर तक गये भी। २१) रुपयेमें इंजेक्शन मिला। लेकर दूसरे डाक्टरके पास गये, १४) रुपयेमें पुनः खरीदा। तीसरे, चौथे और पाँचवें डाक्टरतक गये और अन्तमें डेढ़ रुपयेमें टीका खरीदकर मुझे तो वापस कर दिया, परंतु मुझसे २१) १४) १२) ७) रुपयोंवाले इंजेक्शनोंको लेकर वापस कर दिया। सायंकाल धर्मशालामें

आये और मुझे सारे रुपये लौटाकर सेवा पूरी। मैंने रहनेके लिये स्थान चाहा। दूसरे दिन धर्मशालाके मालिकसे स्वीकृति ला दी। मुझे वहाँ तीन मास रहना पड़ा, परंतु बिना बदलेके इन उपकारी सज्जनके द्वारा मुझे अनेक प्रकारकी सुविधाएँ प्राप्त हुईं। वे सज्जन ये श्री बी० एन० कौशल, स्टेट बैंकके अकाउंटेंट। बादमें पता चला कि इन सज्जनने अपने नौकरीके बादवाले समयको केवल परोपकारके लिये सुरक्षित रख छोड़ा है और सदा इसी खोजमें रहते हैं कि कोई ऐसे व्यक्ति हों, जिनका अटका हुआ काम इनसे हो सके। धन्य हैं ऐसे दयामय परमात्माके वन्दे परहितव्रती सज्जन! इन्हींका जीवन सफल है।

—शंकरप्रसाद त्रिपाठी 'शास्त्री'

(४)

सहृदयताका एक ज्वलन्त दृष्टान्त

लगभग तीन वर्ष पूर्वकी घटना है।

मेरा स्थानान्तर अजमेर जिलेके एक कस्बेसे राजस्थानके एक अन्यत्र बड़े कस्बेमें हो गया था। इस बीचमें मुझे अपने मुख्य निवासस्थान उदयपुर जाना आवश्यक था। अतः मैं अपना सारा सामान लादकर अजमेर स्टेशनसे सीधे ही उदयपुरके डिब्बेमें बैठ गया। रात्रिके ग्यारह बजे ट्रेन खाना हुई। दूसरे दिन १० बजे उदयपुर पहुँचना था।

मेरे पासवाली सीटपर एक अन्य सज्जन बैठे थे, जिन्हें चित्तौड़ स्टेशनपर उतरना था। वे भी अपने परिवारसहित अजमेरसे चित्तौड़ जा रहे थे। उनके साथ भी काफी सामान था।

रात्रिके बारह बजेके लगभग पुस्तक पढ़ते-पढ़ते मुझे झपकी आ गयी। ट्रेनके हिचकौलों एवं डिब्बेके पंखेकी ठंडी हवाने मुझे निद्रालोकमें पहुँचा दिया। सुबह उठा तो साढ़े सात बज रहे थे।

मावली जंक्शन आ गया था। नित्यकर्मसे निवृत्त हो मैंने अपने सामानकी सँभाल की तो यह देखकर दंग रह गया कि मेरा एक सूटकेस गायब था। उसमें मेरे दो सौ रुपये नकद, मूल्यवान् कपड़े, कुछ साहित्यिक लेख एवं पुस्तकें थीं। मुझे नकद रुपये चले जानेका उतना दुःख नहीं था, जितना कि साहित्यिक लेखोंके चले जानेका। सारे परिश्रमपर पानी फिर गया था। सारे डिब्बेमें सूटकेसकी तलाश की, सह-यात्रियोंसे भी पूछा, पर कुछ पता नहीं चला।

हारकर मैंने रेलवे-पुलिसको भी सूचना दी; पर सब व्यर्थ रहा। दस बजे ट्रेन उदयपुर पहुँची। खिन्न मनसे सामान तौंगेपर लदकर घर पहुँचा।

दूसरे दिन ईश्वरकी कृपासे एक चमत्कारिक घटना हुई। एक अपरिचित व्यक्ति सूटकेस हाथमें लिये मेरे मकानपर आये। सूटकेस मेरा ही था। उन्होंने मुझे एक पत्र दिया। उसमें लिखा था—

‘प्रिय महोदय! क्षमा करना। चित्तौड़ स्टेशनपर जल्दीमें मेरे परिवारके व्यक्तियोंने आपके सूटकेसको मेरा समझकर डिब्बेसे उतार लिया। घर पहुँचनेपर मुझे पता चला कि यह सूटकेस तो मेरा नहीं है। पर उस समयतक ट्रेन जा चुकी थी इसलिये वापस स्टेशन आना भी व्यर्थ था। सूटकेसपर आपका पता लिखा था। अतएव मैं यह सूटकेस अपने विश्वसनीय आदमीके हाथ आपके पास भेज रहा हूँ; इसे ले लें। पहुँचकी रसीद इसे अवश्य दे दें। इस अपराधके लिये हमें क्षमा भी करें।’ नीचे सहायत्रीके हस्ताक्षर थे। मैंने सूटकेस खोलकर रुपये गिने, पूरे थे। लेख, पुस्तकें एवं कपड़े सब यथावत् पड़े थे। सहायत्रीकी इस आदर्श सहृदयताकी मैं जितनी प्रशंसा करूँ, कम है।

आजके इस कलुषित और अनैतिक युगमें सहृदयता, ईमानदारी और तत्परताके ऐसे उदाहरण कम ही मिलते हैं।

—प्रा० श्याममनोहर व्यास एम्० एस्०सी०

(५)

गरीब कन्याके विवाहका पुण्य

एक अमेरिकन समाचार-पत्रके महिलाविभागकी सम्पादिका अपने कार्यालयमें बैठी सम्पादनकार्य कर रही थी। इसी बीच एक गरीब प्रौढ़ विधवा स्त्री आयी और उसने कहा—‘मेरी एकमात्र कन्याका विवाह है, मुझे उसका विज्ञापन देना है, पर मैं छपाईके पैसे दे सकूँ, ऐसी स्थिति नहीं है; क्या आप लेख-विभागमें विवाहके विवरणको समाचारके तौरपर छाप देंगी?’

दयालु सम्पादिका उस अपनी एकमात्र पुत्रीका विवाह करनेवाली विधवा माताकी भावनाको समझ गयी और उसने कहा—‘अच्छी बात है, लिखाइये—आपको क्या छपवाना है?’

विधवा माता पुत्रीके होनेवाले विवाहके ठाट-बाट, साज-

शृंगार और भेंट-सौगातमें मिलनेवाली मूल्यवान् वस्तुओंका वर्णन करने लगी। उसे सुनकर सम्पादिकाने कलम नीचे रखकर पूछा—‘आप तो गरीब हैं, फिर यह सब क्या लिखा रही हैं?’

विधवा माताको चोट लगी और वह गलगली होकर बोली—‘मेरी लड़की तो यह सब देख भी नहीं पायेगी। पर वह बेचारी जब अपने विषयमें अपने प्रिय समाचारपत्रमें यह सब पढ़ेगी तो उसको कितनी ज्यादा खुशी होगी। वह इस अंकको घरमें सँजोकर रखेगी और उसके बेटे-बेटी और फिर उनके बेटे-बेटी कभी भविष्यमें इसे पढ़ेंगे तो उनको कितना गौरव प्राप्त होगा।’

भावके आवेशमें माताकी आँखोंमें आँसू भर आये।

सम्पादिकाकी आँखें भी गीली हो गयीं। उसने कलम उठाकर अपने मनसे ही लिखना शुरू किया। बहुत सुन्दर वर्णन लिखा। उसमें विवाहके ठाट-बाट और कन्याको मिली हुई भेंट-सौगातका आकर्षक विवरण था। फिर उसने टेलीफोन उठाया और अपने स्नेही बन्धुओं, सज्जनों और अच्छे स्वभावकी महिलाओंसे अनुरोध किया कि—‘आपके पास विवाहकी जो सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ पड़ी हैं, उनको लेकर इस लड़कीके विवाहमें भेंट देने पधारिये।’ फिर उसने उस गरीब मातासे कहा—‘यह वर्णन हमारे समाचारपत्रमें सबका ध्यान खींचनेवाले ढंगसे छपा जायगा और इसमें जैसा वर्णन है ठीक उसीके अनुसार आपकी कन्याका विवाह भी होगा।’

आभारके वश होकर माता भावकी अतिशयतासे रो पड़ी।

और सचमुच, सम्पादिकाकी मानवताने इस गरीब विधवा माताकी एकमात्र पुत्रीका विवाह ऐसे ठाट-बाटसे करवा दिया और उसकी ऐसी सुन्दर खबरें दूसरे समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित हुई कि उस कन्या और उसकी भावी संतानके लिये भी यह घटना गौरवरूप बन गयी। ‘अखंड आनन्द’

—यशवत कडीकर

(६)

दैवी दृष्टि

मेरे पिताजी श्रीएस० डी० बहुगुणा एम्० ए०,

एल्-एल्० वी०, जो मणिपुरमें शिक्षा-विभागके डाइरेक्टर पदसे रिटायर्ड हुए। पंद्रह साल पहले जब वे उड़ीसा-में डिप्टी डाइरेक्टर थे, उन्होंने उस समयका अपना एक अनुभव सुनाया, जो इस बातका प्रमाण है कि मनुष्य जैसा करता है, वैसा ही पाता है। जब उनके विशेष वेतनवृद्धि- (Crossing of efficiency bar) का समय आया तब सरकारसे स्वीकृति आनेमें कई महीनोंका विलम्ब हो गया, जिसका कोई कारण नहीं था। उन्हें इसकी कोई चिन्ता न थी; क्योंकि वे सोचते थे अपने-आप आदेश आ ही जायगा। उनको मालूम हुआ कि फाइल मिनिस्टर साहबके कागजोंके ढेरमें कहीं पड़ा है। वे इनको अक्सर सरकारी कामसे मिलते भी रहते थे, परंतु इन्होंने कभी उनसे अपने बारेमें नहीं कहा। इसी बीच एक दिन सरकारी डाकके साथ, जो इनके ही पास आती थी, इन्होंने एक लंबी रिपोर्ट देखी जो गवर्नरके नाम किसीकी भेजी हुई थी और गवर्नरके दफ्तरसे वह डाइरेक्टर साहबके पास रिपोर्टके लिये भेजी गयी थी। इन्होंने कुछ पंक्तियाँ पढ़ीं, जिससे मालूम हुआ कि उसमें सारी शिकायतें ही लिखी हैं और सबसे पहले उन्हें अपना ही नाम मिला। रिपोर्ट कई पन्नोंकी होनेके कारण उनको खयाल हुआ कि वह कई अफसरोंके बारेमें होगी, पर जैसे-जैसे ये आगे पढ़ते गये इनको और किसीका भी नाम नहीं मिला और इस रिपोर्टमें शायद ही रिपोर्ट लिखनेवालेने कोई दोष इनपर लगानेमें छोड़ा हो।

ये अभीतक अपनेको अच्छा आदमी समझते थे। पर यह सब पढ़कर इनको आश्चर्य तो हुआ ही, साथ ही अपनेपर हँसी भी खूब आयी। इन्होंने इस रिपोर्टको और चिद्धियोंके साथ दफ्तरमें उसपर यह लिखकर भेज दिया कि यह एक दिलचस्प लेख है। ये घर गये। कुछ समय बाद इनको खयाल हुआ कि इनका विशेष वेतनवृद्धिका फाइल तो मिनिस्टर साहबके कागजोंमें पड़ा ही हुआ है और यह रिपोर्ट आयी है, ऊपरवाले लोग सोच सकते हैं कि अगर पाँच प्रति सैकड़ा भी यह रिपोर्ट सत्य हो तो कम-से-कम वेतनवृद्धिके फाइलका अभी और देरतक पड़ा रहना ठीक ही होगा। इससे दफ्तरमें भी कुछ अफवाह चलेगी।

ये सोचने लगे कि ऐसा क्यों हुआ, इनसे किसी कार्यमें बड़ी भूल तो हुई नहीं थी कि जिसका यह ईश्वरीय दण्ड हो। इन्हें खयाल आया कि इनके दफ्तरमें एक फाइल है, जिसमें

करीब डेढ़ सौ अध्यापकोंकी तरक्कीका दो सालसे धक्का-पकका हुआ है।

कारणसे मामला रुका हुआ है। इन्होंने सोचा कि इन्हें अब उस फाइलके पीछे पड़ जाना है और जबतक उस फाइलको पूरा नहीं कर लेंगे, अपने मामलेके बारेमें नहीं सोचेंगे।

वह रिपोर्ट तो फिर उनके पास आयी ही नहीं, साधारण तरीकेसे तो उनसे कुछ पूछा जाना चाहिये था; परंतु डाइरेक्टर साहबने बिना उनसे कुछ पूछे ही अपनी रिपोर्ट सरकारको भेज दी होगी; क्योंकि वे इनके कामसे बड़े संतुष्ट थे। शायद डाइरेक्टर साहबको उस नामका कोई व्यक्ति ही नहीं मिला, जिस नामसे रिपोर्ट भेजी गयी थी और उन्होंने अनुमान कर लिया होगा कि यह काम किसी असंतुष्ट अफसरका ही होगा।

करीब एक महीनेमें इन्होंने अध्यापकोंकी तरक्कीवाला वह फाइल पूरा करके डाइरेक्टर साहबके पास भेज दिया और उस दिन बड़े खुश होकर घर गये। सुबहकी डाकमें, क्या देखते हैं कि इनके विशेष वेतनवृद्धिका आदेश मौजूद है। तर्कसे तो कोई कह सकता है कि यह एक चान्सकी बात हुई, लेकिन है बात चिन्तनीय और महत्त्वपूर्ण।

इनका विश्वास है कि कोई अदृश्य शक्ति हमारे भलाई एवं बुराईके कार्योंको बराबर निरीक्षण कर रही है और हमें उसका न्यायोचित बुरा एवं भला फल दे रही है।

ये कहते हैं कि हरेक व्यक्तिको वह चाहे किसी पद पर हो, ऊँचे या नीचे—अपने दैनिक कार्यमें ऐसे अवसर नहीं चूकने चाहिये जिनसे उसकी आत्माको संतोष मिले। यह संतोष लाख दो लाख दान देकर ही नहीं होता। इनका खयाल है कि भलाईका छोटा-से-छोटा कार्य भी बड़े महत्त्वका होता है।

एक दफ्तरका बाबू भी अपने कामको यदि मन लगाकर और ईमानदारीसे करता है तो उसका पद ईश्वरीय दृष्टिमें उतना ही ऊँचा होगा, जितना बड़े-से-बड़े अफसरका। इनका एक अरदली कई सालतक रहा जो इनके दफ्तरके कमरेके सामने बैठा रहता था। वह अपने कर्तव्यका बड़ा पक्का था। ये कभी-कभी दफ्तरमें बैठे सोचा करते कि ईश्वरके सामने शायद इस अरदलीका पद इनसे ऊँचा ही होगा।

—सत्यप्रकाश बड़गुना

(७)

राम-रक्षास्तोत्रका चमत्कारी प्रभाव

आध्यात्मिक जीवनके लिये राम-रक्षास्तोत्रके २९ वें सर्गके विशेषाङ्कमें प्रकाशित राम-

रक्षा-स्तोत्र' को मैंने गत आश्विनके नवरात्रमें, उल्लिखित विधिके अनुसार सिद्ध किया। तदनन्तर इसका प्रयोग मैं कई अवसरोंपर कई व्यक्तियोंपर कर चुका हूँ। इसके चमत्कारी प्रभावसे मैंने अपने परिवारके सदस्यों-को तो विविध रोगोंके प्रकोपसे बचाया ही है, साथ ही अपने शिक्षक-बन्धुओं तथा शिष्योंको भी विविध प्रकारके रोगोंके उपचारमें इस स्तोत्रके प्रभावसे पर्याप्त सहायता प्रदान की है। मैं दन्तपीड़ा, उदर-पीड़ा, विच्छूका काटना, ज्वरका वेग आदिपर इसका प्रयोग कर चुका हूँ तथा प्रत्येक अवसर-पर इसके प्रयोगसे पूर्ण सफलता मिली है। इसके तत्काल चमत्कारी प्रभावको देखकर सम्बन्धित व्यक्ति, जिनपर मैंने इसका प्रयोग किया है, बड़े चकित तथा प्रफुल्लित हुए हैं। मेरा 'कल्याण'के प्रेमी पाठकोंसे अनुरोध है कि वे भी इस स्तोत्रसे अधिक-से-अधिक संख्यामें स्वयं लाभ उठावें तथा दूसरे दीन-दुखी व्यक्तियोंको भी उनके कष्ट मिटानेमें समुचित सहायता प्रदान करें।

—हरीसिंह वर्मा बी० ए०, साहित्यरत्न एस० जी० एस०

जू० हा० स्कूल मोहकमपुर (पटा)

(८)

मधुमेहकी अचूक दवा

जिन भाइयों या माता-बहनोंको मधुमेह (डायबेटीज) का रोग हो, वे सहदेई (सहदेवी) नामक पौधेको खोदकर ले आवें। फिर उसकी जड़को अलग निकालकर एक तोला एक पाव जल (ताजा या बासी) के साथ ऐसा पीस ले कि जिसमें वह जलके साथ एकदम घुल-मिलकर एक हो जाय। उसे सुबह-शाम दोनों समय पी लिया जाय। तीस दिनोंमें रोग नष्ट हो जाता है। यह अचूक औषध है। इससे पेटकी खराबियाँ, रक्तदोष, ज्वर आदि रोगोंसे छुटकारा पानेमें भी लाभ होता है।

—परसराम

(९)

दो अनुभूत योग

(क)

मुँहमें अजीर्णके कारण या अन्य किसी कारण जो छाले हो जाते हैं, जिन्हें मुखव्रण भी कहते हैं। भोजन करते समय

कष्ट प्रतीत होता है। उसके लिये चमेलीके अच्छे साफ पत्ते लेकर धीरे-धीरे मुँहमें लेकर चबायें जिससे पत्तोंका रस भली-भाँति छालोंसे लग जाय। इसी तरह ३-४ दिन करें। दिनमें केवल एक बार पत्ते चबाना पर्याप्त है। इसके लिये कोई समय निर्धारित नहीं है। अवश्य लाभ होगा, यह मेरा स्वानुभूत योग है।

(ख)

हाथकी अँगुली या अँगूठेमें जो एक कठिन शोथ हो जाता है, जिसे नौधेरा या बिस्कुटी भी कहते हैं। उसके लिये साँपकी काँचली लेकर उसे शुद्ध शहदसे एक तरफ लपेट लें, फिर उसे पीड़ित अँगुलीपर अच्छी तरह चिपका दें, तत्कालकी उठी बिस्कुटी उसी दिन शान्त हो जायगी। यदि दो-चार दिन पुरानी हो तो एक-दो दिन यही प्रयोग करें। प्रत्येक दिन नयी-नयी काँचली उसी तरह शहदमें लपेटकर लगावें। श्रीहरिकी कृपासे अवश्य लाभ होगा, अनुभूत योग है। ॐ।

—वैद्य भगवतीप्रसाद शर्मा

(१०)

पशुओंके खुरहा रोगकी सफल चिकित्सा

गत मार्च मासमें मेरी मैसको 'खुरहा' नामकी बीमारी हो गयी। इस बीमारीके कारण मैस चल नहीं पाती थी। उसके खुरमें कीड़े पड़ गये थे। मैंने कई दवाइयाँ कीं, पर आराम नहीं हुआ। अन्तमें अर्जुनके उन दस नामोंका स्मरण हो आया, जिनमें पशुरोग-नाशकी क्षमता है। मैं गुग्गुलु तथा दशाङ्ग धूपकी धूनी देनेके साथ-साथ दस नामोंको पढ़ता जाता था। दस नामोंको एक छोटे-से कागजमें लिखकर नये कपड़ेमें एक नारियलके साथ उस कागजको लपेटकर मैसके कोठेमें बाँध दिया। वस, इसके दूसरे ही दिन मेरी मैस ठीक हो गयी। नामके इस अद्भुत चमत्कारको देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गया। अर्जुनके वे दस नाम ये हैं—

१. अर्जुन, २. फाल्गुन, ३. जिष्णु, ४. किरीटी,
५. श्वेतवाहन, ६. बीभत्सु, ७. विजय, ८. कृष्ण,
९. सव्यसाची और १०. धनञ्जय।

—पं० पदुमलाल त्रिपाठी

* अर्जुनः फाल्गुनो जिष्णुः किरीटी श्वेतवाहनः । बीभत्सुर्विजयः कृष्णः सव्यसाची धनञ्जयः ॥

श्रीहरि:

गीताप्रेसकी पुस्तकोंकी नवीन मूल्य-तालिका

गीताप्रेसकी स्थापना सस्ते मूल्यपर सर्वकल्याणकारी साहित्यके प्रकाशनार्थ हुई थी और आरम्भसे ही इसी उद्देश्यको सामने रखकर प्रकाशन-कार्य किया जा रहा है। यह बड़े संतोषकी बात है कि गीताप्रेसके प्रति, उसके द्वारा प्रकाशित साहित्यके प्रति, देशके सभी क्षेत्रोंमें अत्यन्त स्नेह तथा आत्मीयतापूर्ण सद्भावना है। वस्तुतः गीताप्रेस सभी सद्भावनायुक्त देशवासियोंकी अपनी चीज है। गीताप्रेसका साहित्य उच्चश्रेणीका होनेके साथ ही सस्ता होनेके कारण भी सर्वप्रिय है। एक बार लगभग २३ वर्ष पूर्व जब कागजोंके दाम बड़े थे, गीताप्रेसकी पुस्तकोंका मूल्य ५० प्रतिशत बढ़ाया गया था, परंतु परिस्थिति सुधरनेपर पुनः मूल्य घटा दिया गया था। इधर कई वर्षोंसे लगातार प्रायः सभी चीजोंकी कीमत उत्तरोत्तर बढ़ रही है और सभी प्रकारके खर्चें बेहद बढ़ते जा रहे हैं। खर्च घटनेकी अभी कोई सम्भावना नहीं दिखायी देती। इसीलिये इच्छा न होनेपर भी प्रेसकी पुस्तकोंके मूल्यमें कुछ वृद्धि की गयी है। इस मूल्य-वृद्धिमें भी कई पुस्तकोंका मूल्य नहीं बढ़ाया गया है, कईका बहुत ही कम बढ़ाया गया है। शेष पुस्तकोंका जो मूल्य बढ़ाया गया है, वह भी वास्तवमें आजके पुस्तक-जगतमें लागत मूल्यको देखते बहुत ही कम है। इतनी सस्ती पुस्तकें शायद ही अन्य कहींसे उपलब्ध होती हों। यह भी तब किया गया है जब कि गतवर्ष प्रयत्न करनेपर भी प्रेसको लगभग ढाई लाख रुपये घाटा सहन करना पड़ा है। यों घाटा देते रहनेसे प्रेसके कार्य-संचालनमें बड़ी बाधा आनेकी प्रत्यक्ष सम्भावना देखकर ही बाध्य होकर कुछ थोड़ी-सी मूल्य-वृद्धि करनी पड़ी है। गीताप्रेसके साहित्यप्रेमी सभी महानुभावोंसे निवेदन है कि वे इसके लिये क्षमा करें और इसका सहर्ष स्वागत करें। साथ ही इस साहित्यके विशेष अध्ययन तथा प्रचार-प्रसारके लिये प्रयत्नशील होकर गीताप्रेसके पवित्र कार्यसम्पादनमें विशेष बल तथा उत्साह प्रदान करें। पुस्तकोंकी वर्तमान मूल्य-तालिका नीचे दी जा रही है। यह मूल्यवृद्धि दिनांक ४ फरवरी १९६६से की गयी है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस

दिनांक ४ फरवरी १९६६ से गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकोंके दामोंकी नयी सूची

क्र. न. पै.		क्र. न. पै.		क्र. न. पै.	
गीता-तत्त्वविवेचनी	४.००	गीता केवल भाषा	०.३०	श्रीशुक-सुधासागर मोटा टाइप	
गीता श्रीधरी	२.५०	गीता पञ्चरत्न	०.२५	(केवल भाषा)	२५.००
„ सजिल्द	३.००	गीता छोटी भाषाटीका	०.२०	भागवत महापुराण सटीक	
गीता बड़ी	१.२५	„ सजि०	०.३५	(दो खण्डोंमें)	२०.००
गीता मझोली सजिल्द	१.००	गीता ताबीजी मूल	०.२०	भागवत-सुधासागर	
गीता गुटका सजिल्द	०.७५	गीता मूल विष्णुसहस्र-		(केवल भाषा)	१०.००
गीता माहात्म्यसहित मोटे		नामसहित अजिल्द	०.१२	श्रीप्रेम-सुधासागर	
अक्षरोंमें अजिल्द	१.१०	गीताव्याकरणम्	१.२५	(दशम स्कन्ध)	४.५०
„ सजिल्द	१.५०	गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका		भागवत मूल मोटा टाइप	७.५०
गीता मोटे अक्षरवाली	०.६०	उपदेश और परिचय	१.२५	भागवत केवल मूल गुटका	३.००
„ सजि०	१.००	गीतादैनन्दिनी १९६६	०.७५	श्रीभागवतामृत	२.००
गीता मूल मोटा टाइप	०.३१	„ „ सजि०	०.९०	भागवत एकादश स्कन्ध	१.२५
„ सजि०	०.५६			„ सजि०	१.६५

महाभारत भाषाटीका	गीता-भवन चित्र-दर्शन	२.००	रामायण बालकाण्ड सटीक	१.२५
पहला खण्ड	वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र)	२.५०	„ अयोध्याकाण्ड सटीक	०.९०
(आदि, सभापर्व)	ईशादि नौ उपनिषद्	२.५०	„ अरण्यकाण्ड मूल	०.२०
महाभारत दूसरा खण्ड	छान्दोग्योपनिषद्	५.००	„ „ सटीक	०.३०
(वन और विराटपर्व)	बृहदारण्यकोपनिषद्	६.५०	„ किष्किन्धाकाण्ड सटीक	०.१५
महाभारत तीसरा खण्ड	ईशावास्योपनिषद्	.२५	„ सुन्दरकाण्ड सटीक	०.३०
(उद्योग और भीष्मपर्व)	केनोपनिषद्	.६०	„ लङ्काकाण्ड मूल	०.२५
महाभारत चौथा खण्ड	कठोपनिषद्	.७०	„ „ सटीक	०.६०
(द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक और स्त्रीपर्व)	प्रश्नोपनिषद्	.५५	„ उत्तरकाण्ड सटीक	०.६०
महाभारत पाँचवाँ खण्ड	मुण्डकोपनिषद्	.५५	मानस-रहस्य	१.५०
(शान्तिपर्व)	माण्डूक्योपनिषद्	१.२५	„ सजि०	१.९०
महाभारत छठा खण्ड	तैत्तिरीयोपनिषद्	१.००	मानस-शंका-समाधान	०.६०
(अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहणपर्व)	ऐतरेयोपनिषद्	.४५	विनय-पत्रिका सटीक	१.२५
महाभारत मूल भाग १	श्वेताश्वतरोपनिषद्	१.०५	„ सजि०	१.६५
(आदि, सभा, वनपर्व)	ईशावास्योपनिषद्	.१०	गीतावली सटीक	१.२५
महाभारत मूल, भाग २	आध्यात्मरामायण	४.००	„ सजि०	१.६५
(विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोणपर्व)	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सटीक (दो खण्डोंमें)	२०.००	कवितावली	०.६५
महाभारत मूल, भाग ३	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (केवल भाषा)	१३.००	दोहावली	०.६०
(कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्तिपर्व)	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (केवल मूल)	९.००	रामाज्ञा-ग्रन्थ	०.४५
महाभारत मूल, भाग ४	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड मूल	१.००	श्रीकृष्ण-गीतावली	०.३५
(अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक, स्वर्गारोहणपर्व)	श्रीरामचरितमानस मोटा टाइप सटीक बृहदाकार	१८.००	जानकी-संगल	०.२५
महाभारतकी नामानुक्र.	श्रीरामचरितमानस मोटा टाइप सटीक	८.५०	पार्वती-संगल	०.१५
महाभारतकी परिचय	श्रीरामचरितमानस मझला सटीक	४.००	वैराग्य-संदीपनी	०.१५
श्रीजैमिनीयाथमेधपर्व सटीक	श्रीरामचरितमानस मोटा टाइप केवल मूल पाठ	५.००	बरवै रामायण	०.१५
हरिवंश पुराण	श्रीरामचरितमानस मूल पाठभेद	३.७५	हनुमान-बाहुक	०.१३
सनत्कुजातीय शांकरभाष्य हिंदी अनुवादसहित	रामायण मूल मझला	२.००	सूर-विनय-पत्रिका	१.१०
विष्णु-पुराण	श्रीरामचरितमानस (मूल-गुटका)	०.९०	„ सजि०	१.५०
माक्सववाद और रामराज्य	रामायण बालकाण्ड मूल	०.६२	सूर-रामचरितावली	०.८५
श्रीसधा-माधव-चिन्तन			„ सजि०	१.२५
			श्रीकृष्णबालमाधुरी	१.१०
			„ सजि०	१.५०
			श्रीकृष्ण-माधुरी	१.२५
			„ सजि०	१.६५
			अनुराग-पदावली	१.२५
			„ सजि०	१.६५
			श्रीरामकथामन्दाकिनी	२.००
			प्रेम-योग अजित	१.९०
			अमर-गीत	१.९०

ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	१.५०	तत्त्व-चिन्तामणि भाग २	१.००	सूक्तिसुधाकर	.७५
„ सजि०	१.९०	„ सजि०	१.४०	„ सजि०	१.२०
मानसिक दक्षता	१.२५	„ भाग ३	.८०	विदुरनीति	.७०
„ सजि०	१.७५	„ सजि०	१.२०	स्तोत्ररत्नावली	.६५
श्रीगोविन्दवैभवम्	१.२५	„ भाग ४	.९५	„ सजि०	१.००
„ सजि०	१.६५	„ सजि०	१.३५	सुखी जीवन	.६५
शरणागति-रहस्य	१.१०	„ भाग ५	.९५	सत्सङ्गसुधा	.६५
उत्तराखण्डकी यात्रा	२.५०	„ सजि०	१.३५	सती द्रौपदी	.६५
विष्णुसहस्रनाम शंकर-भाष्य	१.१०	„ भाग ६	१.००	प्रेम-सत्सङ्ग-सुधा-माला	.६५
श्रीदुर्गासप्तशती मूल भोटा टाइप	१.२५	„ सजि०	१.४०	भगवच्चर्चा भाग १	.६०
„ सजि०	१.६५	„ भाग ७	१.२५	„ सजि०	१.००
श्रीदुर्गासप्तशती, मूल	०.६५	„ सजि०	१.६५	„ भाग २	.६०
„ सजि०	१.००	तत्त्व-चिन्तामणि गुटका साइज—		„ सजि०	१.००
श्रीदुर्गासप्तशती (सटीक)	१.००	„ भाग १ „ सजि०	.६०	„ भाग ३	.९०
„ सजि०	१.२५	„ भाग २ „ सजि०	.७०	„ सजि०	१.३०
योगप्रदीप	७.५०	„ भाग ३ „ सजि०	.६०	„ भाग ४	.९५
पातञ्जलयोगदर्शन (सटीक)	.९०	„ भाग ४ „ सजि०	.७५	„ सजि०	१.३५
„ सजि०	१.२५	„ भाग ५ „ सजि०	.७०	„ भाग ५	.९०
प्रेमदर्शनम्	.९०	श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली—		„ सजि०	१.३५
कबुसिद्दान्तकौमुदी	.९०	„ खण्ड १	१.१५	„ भाग ६ (पूर्णसमर्पण)	.९०
भक्तियोगका तत्त्व	१.२५	„ सजि०	१.५५	„ सजि०	१.३०
आत्मोद्धारके साधन	१.२५	„ खण्ड २	१.४०	लोक-परलोकका सुधार	
कर्मयोगका तत्त्व	१.२५	„ सजि०	१.८०	„ भाग १	.४५
महत्त्वपूर्ण शिक्षा	१.००	„ खण्ड ३	१.२५	„ भाग २	.४५
„ सजि०	१.५०	„ सजि०	१.६५	„ भाग ३	.६०
परम साधन	१.००	„ खण्ड ४	.८५	„ भाग ४	.६०
„ सजि०	१.५०	„ सजि०	१.२५	„ भाग ५	.६०
मनुष्य-जीवनकी सफलता	१.००	„ खण्ड ५	१.००	श्रीभीष्मपितामह	.५५
„ सजि०	१.५०	„ सजि०	१.४०	नित्यकर्म-प्रयोग	.५५
परमशान्तिका मार्ग	१.००	आशाकी नयी किरणें	१.५०	जीवनका कर्तव्य	.५५
„ सजि०	१.५०	अमृतके घूँट	१.२५	पढ़ो, समझो और करो	.४५
ज्ञानयोगका तत्त्व	१.००	आनन्दमय जीवन	१.००	बढ़ोंके जीवनसे शिक्षा	.४५
„ सजि०	१.५०	स्वर्ण-पथ	.९०	पिताकी सीख	.४५
प्रेमयोगका तत्त्व	१.००	एक छोटा पानी	.९०	उपनिषद्के चौदह रत्न	.४५
„ सजि०	१.५०	सत्सङ्गके बिखरे मोती	.९०	रामायणके आदर्श पात्र	.४५
मनुष्यका परम कर्तव्य	१.००	एक महात्माका प्रसाद	.९०	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा	.४५
तत्त्व-चिन्तामणि १	.७५	संत-बाणी	.७५	नारी-शिक्षा	.४५
„ सजि०	१.१५	„ सजि०	१.२०	तत्त्व-विचार	.४५

(४)

विवेक-चूडामणि	.४०	भगवान कृष्ण भाग १	.४०	ध्यान और मानसिक पूजा	.२५
भवरोगकी रामबाण दवा	.३५	" " भाग २	.४०	प्रार्थना	.२५
प्रेम-दर्शन (भक्तिसूत्र)	.३५	बाल-चित्रमय तुलसीला	.४०	मानव-धर्म	.२५
उपयोगी कहानियाँ	.४०	बाल-चित्रमय चैतन्य-लीला	.४०	आदर्श नारी सुशीला	.२५
खोखी कहानियाँ	.४०	श्रीकृष्णजन्माष्टमी-महोत्सव	.३०	आदर्श आतृ-प्रेम	.२५
भक्त-भारती	.५५	भगवान राम भाग १	.३०	दयालु और परोपकारी	
भक्त नरसिंह मेहता	.४५	" " भाग २	.३०	बालक-बालिकाएँ	.२५
भक्त बालक	.४०	बाल-चित्र-रामायण १	.३०	वीर बालिकाएँ	.२५
भक्त नारी	.४०	" " २	.३०	दैनिक कल्याण-सूत्र	.२५
भक्त-पञ्चरत्न	.४०	भगवानूपर विश्वास	.३०	श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ श्लोकोंपर	
आदर्श भक्त	.४०	गीता-द्वार	.३०	विवेचन	.२५
भक्त-ससरत्न	.४०	लीला-चित्र-मन्दिर-दोहावली	.३०	श्रीराधा-माधव-रस-सुधा सटीक	.२०
भक्त-चन्द्रिका	.४०	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	.३०	" " गुटका मूल	.१०
भक्त-कुसुम	.४०	सती सुकला	.३०	गीता-निबन्धावली	.२०
प्रेमी भक्त	.४०	आरती-संग्रह	.३०	साधन-पथ	.२०
प्राचीन भक्त	.६०	महाभारतके आदर्श पात्र	.३०	अपरोक्षानुभूति	.२०
भक्त-सरोज	.४५	सत्सङ्ग-माला	.३०	मनन-माला	.२०
भक्त-सुमन	.४५	बालकोंकी बातें	.३०	गङ्गासहस्रनाम सटीक	.२०
भक्त-सौरभ	.४०	सच्चे ईमानदार बालक	.३०	श्रीलक्ष्मीनृसिंहसहस्रनामस्तोत्रम्	.२०
भक्त-सुधाकर	.६०	वीर बालक	.३०	श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम् स०	.१८
भक्त-महिलारत्न	.५५	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक	.३०	भारतमें आर्य बाहरसे नहीं आये	.१८
भक्त-दवाकर	.५५	आदर्श चरितावली (भाग १)	.३०	बालकके गुण	.२८
भक्त-रत्नकर	.५५	" " (भाग २)	.३०	आओ बच्चो तुम्हें बतायें	.२०
भक्तराज हनुमान्	.३५	" " (भाग ३)	.३०	बालकोंकी बोलचाल	.२०
सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	.३५	" " (भाग ४)	.३०	बालककी दिनचर्या	.१५
प्रेम भक्त उद्धव	.२५	संस्कृति-माला (भाग १)	.२५	बालकोंकी सीख	.१५
महात्मा विदुर	.२०	" " (" २)	.३०	बालकके आचरण	.१५
भक्तराज ध्रुव	.२५	" " (" ३)	.३५	नवधा भक्ति	.१५
परमार्थ-पत्रावली भाग १	.३०	" " (" ४)	.४५	बाल-शिक्षा	.१५
" भाग २	.३०	" " (" ५)	.४५	भरतजीमें नवधा भक्ति	.१५
" भाग ३	.६०	" " (" ६)	.४५	गीताभवन-दोहा-संग्रह	.१५
" भाग ४	.६०	" " (" ७)	.६५	गणेशसहस्रनामस्तोत्रम्	.१५
अध्यात्मविषयक पत्र	.६०	" " (" ८)	.६५	श्रीराधिकास० ना० स्तोत्र	.१५
शिक्षाप्रद पत्र	.६०	हिंदी बाल-पोथी शिशु-पाठ		भजन-संग्रह प्रथम भाग	.१५
कल्याण-कुञ्ज भाग १	.३०	" (भाग १)	.३०	" द्वितीय भाग	.१५
" भाग २	.३५	" (भाग २)	.३०	" तृतीय भाग	.१५
" भाग ३	.४५	" (भाग ३)	.४०	" चतुर्थ भाग	.१५
बाल-चित्रमय कृष्ण-लीला भाग १	.४५	" (भाग ४)	.४५	" पञ्चम भाग	.१५
" भाग २	.४५			बाल-प्रश्नोत्तरी	.१२

(५)

स्वास्थ्य, सम्मान, सुख	.१२	सच्चा सुख और उसकी		परलोक और पुनर्जन्म	.०४
स्त्री-धर्मप्रश्नोत्तरी	.१२	प्राप्तिके उपाय	.०८	अवतारका सिद्धान्त	.०४
नारी-धर्म	.१२	श्रीभगवन्नाम	.०८	सत्सङ्गकी कुछ सार बातें	.०३
गोपी-प्रेम	.१२	श्रीमद्भगवद्गीताका		विवाहमें दहेज	.०४
मनुस्मृति दूसरा अध्याय	.१२	तात्त्विक विवेचन	.०८	श्रीकार्पण्यपञ्जिकास्तोत्र	.०४
तर्पण-विधि	.१२	भगवत्तत्त्व	.०८	मोहमुद्गर	.०४
गजेन्द्रमोक्ष	.१२	संध्योपासनविधि		रामरक्षास्तोत्र	.०४
ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	.१२	(मन्त्रानुवादसहित)	.०८	सौभाग्याष्टोत्तरशतनाम-	
विष्णुसहस्रनाम सटीक	.१२	रामायण सुन्दरकाण्ड	.०८	स्तोत्रम्	.०४
श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्	.१२	श्रीनारायणकवच	.०८	संध्या	.०४
सीतासहस्रनामस्तोत्रम्	.१२	अमोघशिवकवच	.०८	बलिवैश्वदेवविधि	.०४
गायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्	.१२	गीतामें विश्वरूप-दर्शन	.०८	बलपूर्वक देवमन्दिर-प्रवेश	
शिवसहस्रनामस्तोत्रम्	.१२	शिवमहिम्नःस्तोत्र	.०७	और भक्ति	.०४
श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्	.१२	गीतोक्त कर्मयोग, भक्तियोग		गोवध भारतका कलङ्क	.०४
श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्	.१२	और ज्ञानयोगका रहस्य	.०७	गायका माहात्म्य	.०४
श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्	.१२	मनुष्य सर्वप्रिय और		कुछ विदेशी वीर बालक	.०४
शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्र	.१२	सफल जीवन कैसे बने ?	.०७	सुगम उपासना	.०४
भीष्मस्तवराज सटीक	.१२	संत-महिमा	.०७	दोहावलीके ४० दोहे	.०४
वर्तमान शिक्षा	.१२	श्रीरामगीता	.०७	चतुःश्लोकी भागवत	.०४
गीता पढ़नेके लाभ	.१२	विष्णुसहस्रनाम मूल	.०७	पातञ्जलयोगदर्शन मूल	.०३
रासलीलाका रहस्य	.१२	वैराग्य	.०७	नारद-भक्ति-सूत्र	.०३
मनको वश करनेके उपाय	.१०	शारीरकमीमांसादर्शन	.०७	धर्म क्या है ?	.०३
श्रीसीताके चरित्रसे आ. शि.	.१०	हरेरामभजन २ माला	.०७	दिव्य सन्देश	.०३
ईश्वर	.१०	,, १४ माला	.४०	श्रीहरिसंकीर्तन-धुन	.०३
मूलरामायण	.१०	विनय-पत्रिकाके		त्यागसे भगवत्प्राप्ति	.०३
रामायण-मध्यमा-परीक्षा		पंद्रह पद (सार्थ)	.०४	ईश्वर दयालु और	
पाठ्यपुस्तक	.१०	सीतारामभजन	.०५	न्यायकारी है	.०३
दीन-दुखियोंके प्रति कर्तव्य	.०८	भगवान् क्या हैं ?	.०४	प्रेमका सच्चा स्वरूप	.०३
विनय-पत्रिकाके बीस पद (सार्थ)	.०८	भगवान्की दया	.०४	हमारा कर्तव्य	.०३
हनुमानचालीसा	.०८	गीतोक्त सांख्ययोग और		महात्मा किसे कहते हैं ?	.०३
शिवचालीसा	.०८	निष्कामकर्मयोग	.०४	ईश्वरसाक्षात्कारके लिये	
बाल-अमृत-वचन	.०८	सेवाके मन्त्र	.०४	नामजप सर्वोपरि	
गङ्गालहरी	.०८	प्रश्नोत्तरी	.०४	साधन है	.०३
सामयिक चेतावनी	.०८	सत्यकी शरणसे मुक्ति	.०४	चेतावनी	.०३
सिनेमा विनाशका साधन	.०८	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	.०४	कल्याण-प्राप्तिकी कई	
आनन्दकी लहरें	.०८	व्यापारसुधारकी आवश्यकता		युक्तियाँ	.०३
गोविन्द-दामोदर-स्तोत्र	.०८	और व्यापारसे मुक्ति	.०४	श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव	.०३
श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश	.०८	स्त्रियोंके कल्याणके कुछ		शोकनाशके उपाय	.०३
ब्रह्मचर्य	.०८	घरेलू प्रयोग	.०४	तीर्थोंमें पालन करने योग्य	
हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप	.०८	ज्ञानयोगके अनुसार		कुछ उपयोगी बातें	.०३
		विविध साधन	.०४	जीवनमें उतारनेकी सोलह	
				बातें	.०३

भगवद्भक्ति	.०३	Gems of Truth		The Divine Message	.०7
लोभमें ही पाप है	.०१	Part—I	1.00	What is Dharma ?	.०7
गजल गीता	.०१	Gems of Truth		मानस-पीयूष	
ससंश्लोकी गीता	.०१	Part—II	1.00	” खण्ड १	१.००
संकटनाशनगणेशस्तोत्रम्	.०१	Bhagavadgita		” ” २	१२.००
पैकेट नंबर १, कुल		(With English		” ” ३	१३.००
पुस्तक १४	१.०१	translation)	.35	” ” ४	१४.००
पैकेट नंबर २, कुल		(with cloth-bound)	.50	” ” ५	८.५०
पुस्तक ६	.३५	Gopis' Love for		” ” ६	१४.००
पैकेट नंबर ३, कुल		Sri Krishna	.35	” ” ७	१०.५०
पुस्तक १७	.६७	Way to God-		चित्रावली १५×२०	३.५०
पैकेट नंबर ४, कुल		Realization	.35	” ११×१४॥	२.५०
पुस्तक १४	.३६	Divine Name and		” ७॥×१०	१.६५
सात बातें	.३०	Its Practice	.25	कल्याण चित्रावली नं० १	१.३१
The Philosophy of		Wavelets of Bliss	.15	” नं० २	१.३१
Love	1.25	The Immanence		” नं० ३	१.३१
		of God	.15	” नं० ४	१.३१
		What is God ?	.15		

गीताभवन-स्वर्गाश्रम-सत्सङ्गकी सूचना

ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजीकी लोककल्याणकारिणी लगन एवं उनकी मङ्गल-प्रेरणाके फलस्वरूप वर्षोंसे ऋषिकेशकी तपोभूमि गीताभवन-स्वर्गाश्रममें श्रीगङ्गाजीके पुनीत तटपर प्रतिवर्ष सहस्र-सहस्र नर-नारी सत्सङ्गका पवित्र लाभ उठाते थे। विधिके विधानसे इस बार श्रीजयदयालजी हमलोगोंके बीच नहीं हैं और न उनके रिक्त स्थानकी पूर्ति करनेवाले ही उन-जैसे कोई सज्जन उपलब्ध हैं। तथापि यथासाध्य यथाबुद्धि उनका पदानुसरण करना कर्तव्य समझकर इस बार भी सदाकी भाँति ऋषिकेश गीताभवनमें सत्सङ्गके आयोजनका विचार किया गया है। सबसे प्रार्थना है कि प्रतिवर्षकी भाँति ही सत्सङ्गी महानुभाव तथा माताएँ-बहिनें अधिकाधिक संख्यामें सत्सङ्गके पवित्र उद्देश्यसे ऋषिकेश पधारें। भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारकी चैत्र शुक्ल पक्षमें श्रीरामनवमीके बाद ही वहाँ पहुँचनेकी बात है। उसी समय श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजी महाराज भी पधार सकते हैं। श्रद्धेय स्वामीजी श्रीशरणानन्दजीसे भी प्रार्थना की गयी है तथा अन्यान्य महात्मागण भी पधारनेवाले हैं। सदाकी भाँति ही यह नम्र निवेदन है कि सत्सङ्गमें पधारनेवालोंको ऐश-आराम या केवल जलवायुपरिवर्तनकी दृष्टिसे न जाकर सत्सङ्गके उद्देश्यसे ही जाना चाहिये तथा वहाँ यथासाध्य नियमित तथा संयमित साधकजीवन बिताते हुए सत्सङ्गमें अधिक-से-अधिक भाग लेना चाहिये।

नौकर-रसोइया आदि यथासम्भव साथ लाने चाहिये। स्वर्गाश्रममें नौकर-रसोइया मिलना कठिन है। स्त्रियाँ पीहर या ससुरालवालोंके अथवा अन्य किन्हीं सम्बन्धीके साथ वहाँ जायँ, अकेली न जायँ एवं अकेली जानेकी हालतमें कदाचित् स्थान न मिल सके तो कृपया दुःख न करें। गहने आदि जोखिमकी चीजें साथ नहीं रखनी चाहिये। बच्चोंको वे ही लोग साथ ले जायँ जो उन्हें अलग डेरेपर रखनेकी व्यवस्था कर सकते हों; क्योंकि बच्चोंके कारण स्वाभाविक ही सत्सङ्गमें विघ्न होता है। खान-पानकी चीजोंका प्रबन्ध यथासाध्य किया जा रहा है; यद्यपि इस बार बड़ी कठिनाता है; परन्तु दूधका प्रबन्ध होना कठिन है।

12-4-00



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-ध्यानमय भगवान् शिव [कविता] ...	७६५
२-कल्याण ('शिव') ...	७६६
३-भगवत्प्राप्ति (अनन्तश्रीविभूषित स्वामी- जी श्रीकरपात्रीजी महाराज) ...	७६७
४-भ्रम अनादि और सान्त है (ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका पुराना लेख) ...	७६८
५-गणपति और गणतन्त्र (श्रीपीताम्बरा- पीठ-संस्थापक श्री १००८ स्वामीजी महाराज, दतिया) ...	७६९
६-तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु (बालयोगी स्वामी परमानन्द सरस्वती एम्० ए०) ...	७७०
७-तन्त्राभ्यासकी स्थूल रूपरेखा (स्वामीजी श्रीप्रत्यगात्मानन्दजी सरस्वती; अनुवादिका-श्रीप्रेमलता शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यशास्त्राचार्य, संगीतालंकार) ...	७७३
८-चार पुरुषार्थोंमें धर्मकी प्रधानता आवश्यक (डा० श्रीसुदर्शनसिंहजी) ...	७७८
९-१०८ की संख्याका गौरव, महत्त्व और रहस्य (स्वामीजी श्रीविद्यानन्दजी सरस्वती एवं महंत श्रीदीनबंधुदासजी) ...	७८०
१०-आत्मदान [पुराण-कथा] (श्री 'चक्र') ...	७८४
११-मृत्युसे न डरें ! (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ...	७८८
१२-सबमें भगवान् देखकर सबका सम्मान- हित करो [कविता] ...	७९०
१३-समाज-शास्त्रकी भारतीय व्याख्या (श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा) ...	७९१

कल्याण, सौर चैत्र २०२२, मार्च १९६६

विषय	पृष्ठ-संख्या
१४-आत्मोत्थानका प्रथम सोपान—सरलता (श्रीअगरचन्द्रजी नाहटा) ...	७९५
१५-धामे उलझते ही गये (श्रीरामनाथजी सुमन) ...	७९७
१६-सर्वत्र सब तुम्हीं हो [कविता] ...	८००
१७-भावी [कहानी] (श्रीकृष्णगोपाल माथुर) ...	८०१
१८-जीवन-त्रिवेणी (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') ...	८०४
१९-सृष्टि-संवत्सर—वैदिक ऋषियोंके अनु- सार तथा आधुनिक विज्ञानके अनुसार (श्रीवनश्यामसिंहजी गुप्त) ...	८०५
२०-कबीरके काव्यमें भ्रष्टाचार-उन्मूलनकी शिक्षा (श्रीगोवर्धनलालजी पुरोहित, एम्० ए०, बी० एड्०) ...	८०६
२१-सुरेशके पुनर्जन्मका वृत्तान्त (श्रीप्रकाश- जी गोस्वामी) ...	८०८
२२-रामवाद भारतीय संस्कृतिकी अद्भुत अनुभूति (श्रीजगतनारायणजी निगम) ...	८१०
२३-परम आदर्श राम [कविता] ...	८११
२४-संततिनिरोध (श्रीराजेन्द्रदासजी जैन) ...	८१२
२५-जीवन सफल कैसे हो ? [कविता] ...	८१३
२६-प्रभु-कृपासे घोर अनर्थसे रक्षा (प्रसिद्ध नेत्र- चिकित्सक डा० श्रीपुरुषोत्तम गिरिधर) ...	८१४
२७-श्रीगायत्री-रामायण (पं० श्रीजानकी- नाथजी शर्मा) ...	८१६
२८-समर्पण और स्वीकृति (श्रीनरेशचन्द्र- जी मिश्र) ...	८१८
२९-उदात्त संगीत [कविता] (डा० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र एम्० ए०) ...	८२१
३०-पढ़ो, समझो और करो ! ...	८२२

चित्र-सूची

१-वीणापाणि सरस्वती

२-ध्यानमय भगवान् शिव

(रेखाचित्र) ... मुखपृष्ठ

(तिरंगा) ... ७६५

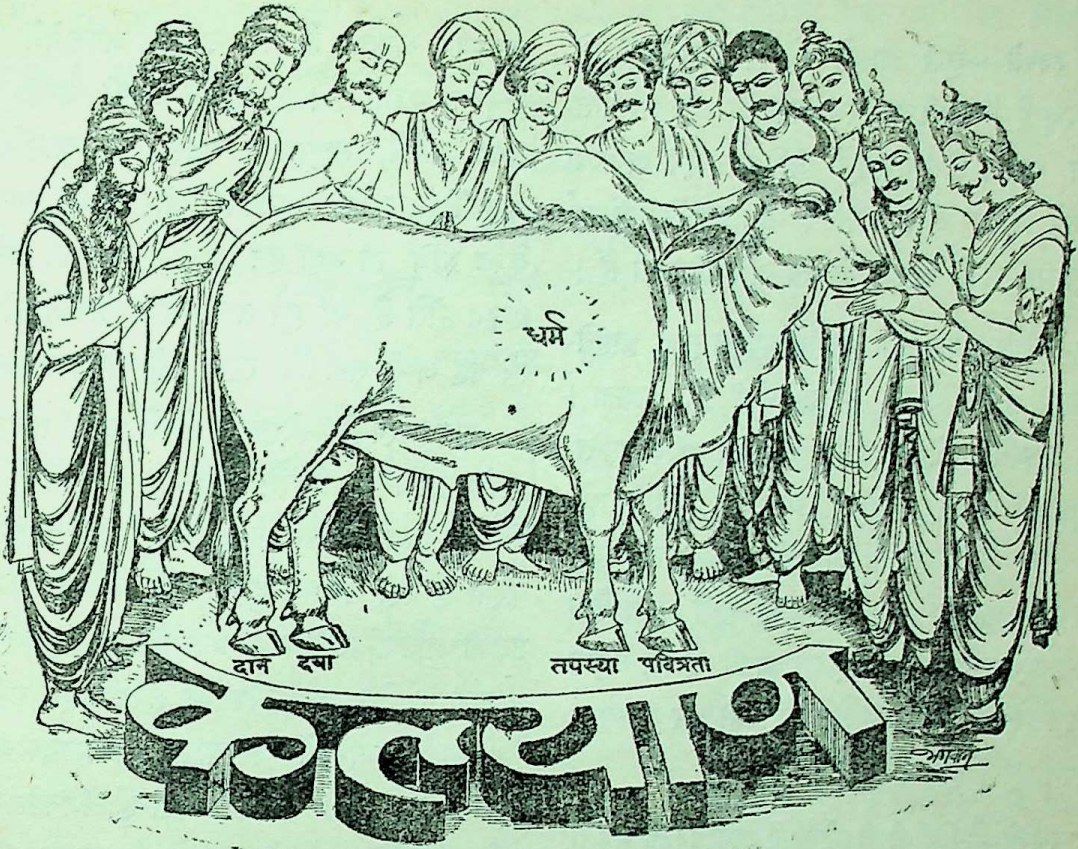
वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिल्लिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ७५ पैसे
विदेशमें ५६ पैसे
(१० पैसे)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्पनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
सुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्ब्रह्मर्षिराजर्षिर्भिर्विदूश्चद्रैरपि वन्द्यते स जयताद्वर्मा जगद्धारणः ॥

वर्ष ४० }

गोरखपुर, सौर चैत्र २०२२, मार्च १९६६

{ संख्या ३
पूर्ण संख्या ४७२

ध्यानमय भगवान् शिव

नित्य सच्चिदानन्द सदाशिव भालचन्द्र शुचि सौम्य सुरूप ।
सर्प-रत्न-मणि कुसुम-माल-मण्डित-गल, पिङ्गल जटा अनूप ॥
नेत्रत्रय, त्रिपुण्ड्र शोभित, कटि-भुजग, हरण मन्मथ मद-गर्व ।
ऋक्ष-चर्म-परिधान ध्यानमय वनतरु तले सुशोभित शर्व ॥

कल्याण

याद रक्खो—सुख चाहते हो पर पाते नहीं हो, इसका कारण है चित्तकी अनवरत अशान्ति और अशान्ति-का प्रधान कारण है भगवान्में अविश्वास एवं अनास्था तथा भोगोंमें विश्वास और आस्था । भोग प्राकृतिक पदार्थ हैं, जो स्वाभाविक ही अपूर्ण, अनित्य और विनाशी हैं ।

याद रक्खो—प्राकृतिक भोगोंसे शान्ति-सुख चाहने-वाला किसी भी स्थितिमें संतुष्ट नहीं हो सकता । आवश्यक प्राकृतिक भोग-पदार्थोंके अभावमें तो अशान्ति-दुःख होता ही है, परंतु ज्यों-ज्यों प्राकृतिक भोग-पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, त्यों-ही-त्यों भोगोंकी आवश्यकता, उन्हें प्राप्त करनेकी कामना—इच्छा बढ़ती चली जाती है । इतनी अनावश्यक आवश्यकताएँ बढ़ जाती हैं कि मनुष्य क्षणभरके लिये भी शान्तिका अनुभव नहीं कर सकता । शान्ति बिना सुख होनेका नहीं ।

याद रक्खो—जितनी ही भोगोंकी आवश्यकता बढ़ती है, उतनी ही उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा तथा चेष्टा होती है और भोग-कामनासे मनुष्यका विवेक ढक जाता है । तब वह विवेकभ्रष्ट होकर सहस्रों पथोंसे तथा बड़ी तीव्र गतिसे अधःपतनकी ओर जाता है ।

याद रक्खो—विवेक-भ्रष्ट मनुष्य परिणामको भूल जाता है; किसका क्या फल होगा, यह सोचनेकी उसकी बुद्धिमें शक्ति नहीं रह जाती; वह सहज ही उन दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाता है, जिनको वह स्वयं कभी बुरा समझता था और जो उसके जीवनको दुष्कर्ममय बना देते हैं ।

याद रक्खो—जब बुद्धि भ्रष्ट होती है तब मनुष्य-को सभी कुछ विपरीत दिखायी देने लगता है, उसकी बुरी चीजोंसे,—बुरे कामोंसे केवल वृणा ही नहीं निकल जाती, वह उन्हें अपने कार्यकी सफलताके लिये

आवश्यक मानता है, वरं उनको अपना देनेमें गौरवका अनुभव करता है । इस दशामें उसकी अच्छी चीजोंमें, अच्छे कामोंमें, सत्पुरुषोंके सङ्गमें, सत्-स्थानोंमें, अच्छी बातचीतमें, अच्छे अध्ययनमें और अच्छे वातावरणमें केवल रुचि ही नहीं हट जाती—ये सब उसे व्यर्थ माने होते हैं, वरं बुरे तथा त्याज्य प्रतीत होने लगते हैं; वह अच्छे सम्पर्कमें रहना ही पसंद नहीं करता ।

याद रक्खो—ऐसा अच्छेको बुरा तथा बुरेको अच्छा माननेवाला विपरीत-बुद्धि मनुष्य दुःखोंसे छूटनेके लिये अनवरत विचार करता है, कर्म करता है पर करता है वही जिससे दुःख और भी बढ़ जाते हैं । उसकी अनियन्त्रित मन-इन्द्रियाँ निरन्तर सुखकी मिथ्या आशासे दुःखोत्पादक विषयोंके सेवनमें ही लगी रहती हैं । उसके जीवनमें अन्धकार, दुश्चिन्ता, अशान्ति, अधर्म आदि बढ़ते ही चले जाते हैं, जिनके मारे वह भौतिक असफलतामें तो मृत्युसे भी बढ़कर यन्त्रणाका अनुभव करता ही है, सफलतामें भी उसकी दुष्पूरणीय भोग-कामना उसकी दुश्चिन्ता, अशान्ति, अधर्म और अविश्वासको बढ़ाती रहती है । इसी अशान्त, चिन्तामय तथा पापमय स्थितिमें उसकी आयुके दिन पूरे होते जाते हैं और वह मृत्युकालमें भी सैकड़ों-सहस्रों दुश्चिन्ताओं और दुर्भावनाओंमें फँसा हुआ बड़ी ही भयानक पीड़ाका अनुभव करता हुआ पापका बोझ साथ लिये मर जाता है ।

याद रक्खो—इस प्रकार मरनेवाले जीवकी बड़ी दुर्गति होती है, उसे बार-बार दुःख-ताप तथा अज्ञानमय आसुरी योनिकी प्राप्ति होती है और तदनन्तर भीषण नरकयन्त्रणा भोगनी पड़ती है । मनुष्य-जीवनका यह परिणाम बड़ा ही भयानक तथा सर्वथा अवाञ्छनीय है ।

याद रक्खो—मनुष्य-जीवनकी सफलता इसीमें है

कि मनुष्य मानव-जीवनके असली उद्देश्य भगवत्प्राप्तिका स्थितिको प्राप्त करे। यह होगा भोगोंके प्रति वैराग्य लाभ करे—यह सारी अशान्ति, सारी चिन्ता और सारे और अनास्था होनेपर तथा भगवान्में अनुराग तथा दुःखोंसे सर्वथा छूटकर परमानन्दमय चिन्मय भगवत्- विश्वास होनेपर।

‘शिव’

भगवत्प्राप्ति

(अनन्तश्रीविभूषित स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

प्रायः लोग पूछा करते हैं कि क्या भगवत्प्राप्ति इसी जन्ममें हो सकती है। ऐसा एक ही जन्ममें हो सकता है या अनेक जन्मोंमें, इसका कोई नियम नहीं है। किंतु जभी भगवान्के प्रति प्रेमका गाढ़ उदय हो जाता है, भगवान् तभी मिल जाते हैं।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना ॥

अनेक जन्मों तक भी यदि प्रेमका संचार न हो, तो भगवान् नहीं प्राप्त होते, प्रेम प्रकट हो जानेपर भगवान् एक ही जन्ममें मिल जाते हैं। जिस समय भक्त भगवान्से मिलनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित होकर स्वाध्याय, ध्यान आदिको प्राप्त होता है, उस समय भगवान्को अवश्य प्रकट होना पड़ता है। आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्माराम, परम निष्काम भगवान् परम स्वतन्त्र हैं, तथापि भक्तप्रेममें पराधीन होना उनका एक स्वभाव है। अनुभवी लोगोंने कहा है—

अहो चित्रमहो चित्रं चन्दे तत्प्रेमबन्धनम्।

यद्वद्धं मुक्तिदं मुक्तं ब्रह्म क्रीडाभृगीकृतम् ॥

‘अहो ! कोई निर्गुण निर्त्रिकार ब्रह्मको, कोई सगुण-साकार ब्रह्मको भजते हैं, परंतु मैं तो उस प्रेमबन्धनको भजता हूँ, जिससे वैधर अनन्त प्राणियोंको मुक्ति देनेवाला, स्वयं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त ब्रह्म भक्तोंका खिलौना बन जाता है।’ जिस समय भक्त भगवान्के बिना न रह सके, उस समय भगवान् भी भक्तके बिना नहीं रह सकते। जैसे पंखरहित पतंग-शावक अपनी

माँको पानेके लिये व्याकुल रहते हैं, जैसे क्षुधार्त वत्सतर (छोटे गोकस) माँका दूध चाहते हैं, किंवा परदेश गये हुए प्रियतमसे मिलनेके लिये प्रेयसी विषण्ण होती है, हे कमलनयन ! मेरा मन आपको देखनेके लिये वैसे ही उत्कण्ठित होता है—

अजातपक्षा इव मातरं स्वगाः

स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।

प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा

मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥

(श्रीमद्भागवत ६।११।२६)

इस प्रकारकी सौत्कण्ठ भक्त-प्रार्थनासे भगवान् द्रुत होकर भक्तसे मिलनेको दौड़ पड़ते हैं।

हाँ, यह ठीक है कि भगवत्सम्मिलनकी ऐसी उत्कण्ठा, सरल नहीं है; किंतु जन्म-जन्मान्तरों, युग-युगान्तरोंके पुण्यपुञ्जसे ही भगवान्में उत्कट प्रीति प्राप्त होती है। इसलिये उपनिषद्ोंने कहा है कि ब्राह्मणादि अधिकारी लोग यज्ञ, तप, दान और अनशनादि सत्कर्मोंसे उन परम तत्त्व भगवान्को जाननेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न करते हैं—

तमेतमात्मानं ब्राह्मणा यज्ञेन दानेन तपसाऽना-
शकेन विविदिषन्ति।

जब उस परम तत्त्वकी जिज्ञासा ही उत्पन्न करनेमें अनेक जन्मोंके सत्कर्मोंकी अपेक्षा होती है, तब स्पष्ट है कि जिसे भगवत्सम्मिलनकी उत्कट कामना है, जिसे भगवान्के न मिलनेसे महती व्याकुलता है, वह केवल इसी जन्मका सत्कर्मा नहीं, अपितु पहले जन्मोंसे भी

उसका इस सम्बन्धमें प्रयत्न चल रहा है। इस दृष्टिसे ध्रुवकी जन्मान्तरीय तपस्याओं तथा—

बहुनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ।

—इत्यादि वचनोंकी संगति लग जाती है। प्रेमके उत्कट हो जानेपर उसी क्षण भगवान्का दर्शन होता है। फूल तोड़नेमें विलम्ब हो सकता है, किंतु उस समय भगवान्के मिलनेमें किञ्चित् भी विलम्ब नहीं होता। भगवान् प्राणियोंके अन्तरात्मा, सर्वसाक्षी हैं, उनको पानेमें कौन कठिनाई ?—

कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरे-

रूपासने स्वे हृदि छिद्रवत्सतः ।

—इत्यादि बातोंकी भी संगति लगती है। भगवत्प्राप्ति-

में अत्यन्त प्रयत्न करनेकी अपेक्षा बतलानेके लिये शास्त्रों-ने भगवान्को अत्यन्त दुर्लभ कहा है, निराशा मिटाकर उत्साह बढ़ानेके लिये भगवान्को अत्यन्त सुगम भी कहा है—

दूरात्सुदूरे अन्तिकात् तदु अन्तिके च ।

भगवान् दूर-से-दूर और समीप-से-समीप हैं ।*

भ्रम अनादि और सान्त है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका पुराना लेख)

आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप होनेके कारण ज्ञानकी प्राप्ति करनी नहीं पड़ती और न उसकी प्राप्तिमें कोई परिश्रम या यत्नकी ही आवश्यकता है। किसी अप्राप्त वस्तुको प्राप्त करनेमें परिश्रम और यत्न करना पड़ता है। परंतु यहाँ तो केवल नित्यप्राप्त ब्रह्ममें जो अप्राप्तिका भ्रम हो रहा है, उस भ्रमको मिटा देना ही कर्तव्य है। वास्तवमें यह भ्रम ब्रह्मको नहीं है। यह भ्रम उसीमें है जो इस संसारके विकारको नित्य मानता है। वास्तवमें तो ब्रह्ममें भूल न होनेके कारण उसे मिटानेके लिये परिश्रम करना भी एक भ्रम ही है, परंतु जबतक भूल है तबतक भूलको मिटानेका साधन करना चाहिये, अवश्य ही उन लोगोंको, जो इस भूलमें हैं। जो इस भूलको मानता

है उसके लिये तो यह अनादि कालसे है। ऐसा कहा जाता है कि अनादिकालसे होनेवाली वस्तुका अन्त नहीं होता। पर यह ठीक नहीं; क्योंकि भूल तो मिटनेवाली ही होती है, यदि भूल है तो उसका अन्त भी आवश्यक है। यदि ऐसा माना जाय कि सान्त नहीं है तो फिर किसीको भी 'प्राप्ति' नहीं हो सकती। इसलिये यह अनादि और सान्त अवश्य है। यदि यह माना जाय कि यह भूल अनादिकालसे नहीं है, पीछेसे हुई है तो इसमें तीन दोष आते हैं—प्रथम तो 'प्राप्त' पुरुषोंका पुनः भूलमें पड़ना सम्भव है, दूसरे सृष्टिकर्ता ईश्वरपर दोष आता है और तीसरे नये जीवोंका बनना सम्भव होता है। इस हेतुसे यह अनादि और सान्त ही सिद्ध

* श्रद्धेय अनन्तश्री स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराज जाने-माने हुए तत्त्वज्ञ विद्वान् महात्मा हैं। इनके सद्ग्रन्थोंके प्रकाशनार्थ कलकत्तेमें एक 'भक्ति-सुधा-साहित्य-परिषद्' नामक संस्था स्थापित हुई है, जिसका महान् उद्देश्य है सनातनधर्मावलम्बी जनताकी धार्मिक भावनाको दृढ़ करनेके लिये धार्मिक साहित्य प्रकाशित कर धर्मके निगूढ़ तत्त्वोंको प्रकाशमें लाना। योग, भक्ति, ज्ञान, प्रेम आदिके प्रचारद्वारा देशकी प्राचीन सर्वकल्याणकारी संस्कृतिको जाग्रत् रखना। उसी संस्थाके द्वारा श्रीस्वामीजीके भगवान्की लीला-सम्बन्धी तथा अन्यान्य धर्म एवं साधनाविषयक महत्त्वपूर्ण निवन्धोंका संग्रह—'भक्ति-सुधा' नामसे तीन खण्डोंमें प्रकाशित हुआ है। ये तीनों ही खण्ड अत्यन्त उपयोगी हैं। पुस्तकोंके प्राप्त करनेका पता है—श्रीबाबूलालजी गनेड़ीवाल, १४५ काटन स्ट्रीट, कलकत्ता ७। यह लेख 'भक्ति-सुधा'के प्रथम खण्डसे उद्धृत है।—सम्पादक

होती है। वास्तवमें कालकी कल्पना भी मायामें ही है; क्योंकि ब्रह्म तो शुद्ध और कालातीत है।

वेद, शास्त्र और तत्त्ववेत्ता महापुरुषोंका भी यह कथन है कि एक शुद्ध-बोध-ज्ञानस्वरूप परमात्मा ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है; परंतु किसी भी व्यक्तिके द्वारा संसार असत् है, यह कहा जाना उचित नहीं; क्योंकि वास्तवमें यों कहना बनता नहीं। संसारको असत् माननेसे संसारके रचयिता सृष्टिकर्ता ईश्वर, विधि-निषेधात्मक शास्त्र, लोक-परलोक और पाप-पुण्य आदि सभी व्यर्थ ठहरते हैं और इनको व्यर्थ कहना

या मानना अनधिकारकी बात है। जिस वास्तविकतामें शुद्ध ब्रह्मके अतिरिक्त अन्यका आत्यन्तिक अभाव है उसमें तो कुछ कहना बनता नहीं, कहना भी वहीं बनता है कि जहाँ अज्ञान है और जहाँ कहना बनता है वहाँ सृष्टिके रचयिता, संसार और शास्त्र आदि सब सत्य हैं और इन सबको सत्य मानकर ही शास्त्रानुकूल आचरण करना चाहिये। सात्त्विक आचरण और भगवान्-की विशुद्ध भक्तिसे अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर जिस समय भ्रम मिट जाता है, उसी समय साधक कृतकृत्य हो जाता है। यही परमात्माकी प्राप्ति है।

गणपति और गणतन्त्र

(व्याख्याकार—श्रीपीताम्बरापीठ-संस्थापक श्री१००८ स्वामीजी महाराज, दतिया)

मन्त्र—गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ।

शब्दार्थ—हे गणोंके स्वामी ! हम सब आपका आह्वान करते हैं। आप सभी प्रिय वस्तुओंके प्रिय स्वामी हैं, इस रूपसे भी हम आपको बुलाते हैं; सम्पूर्ण रत्न आदि ऐश्वर्य पदार्थोंके स्वामी भी आप ही हैं; मेरे आप वासस्थानके समान आश्रयदाता हैं या सभी आपत्तियोंसे रक्षा करनेसे आच्छादनस्वरूप हैं। इसलिये गर्भमें छिपी हुई रहस्यकी बातोंको आप व्यक्त करें, जिससे हम उन्हें जान सकें; क्योंकि आप उनके जानकार हैं।

व्याख्या—‘गण’ शब्द संख्यावाची होनेसे अनेक समुदायके समूहोंका बतानेवाला है। सृष्टिके पहिले एक अद्वैततत्त्व होनेसे उसके लिये ‘गण’ शब्दका प्रयोग नहीं हो सकता। सृष्टिकालमें अनेकता होनेसे उसी अर्थमें ‘गण’ शब्दका प्रयोग समुचित है। मनुष्योंका समुदाय, पशुओंका समुदाय, पक्षियोंका समुदाय, वृक्ष-लतादिका समुदाय आदि गण शब्दसे लिये जा सकते

हैं। तथापि ज्ञानप्रधान प्राणी मनुष्य है, उसीका उपदेश-में अधिकार होनेसे मन्त्रमें मनुष्यगणका ही ग्रहण है। लौकिक एवं पारमार्थिक स्वार्थ मनुष्य गणतन्त्रके द्वारा प्राप्त करे। इसीलिये मन्त्रद्रष्टा ऋषिने उपदेश किया है। एक उक्ति इस विषयमें प्रसिद्ध है—

समुदायो ह्यर्थवान्, तस्यैकदेशो निरर्थकः ।

अर्थात् ‘समुदाय या गण ही अर्थवान् है, उसका एकदेश निरर्थक है।’ इसलिये सार्वजनिक स्वार्थसिद्धिके लिये गणतन्त्रकी योजना ही सर्वश्रेष्ठ है। एक व्यक्तिका स्वार्थ सार्वजनिक स्वार्थके बराबर नहीं हो सकता, इसलिये अधिक लोगोंका स्वार्थ ही श्रेष्ठ है और उसका साधन गणतन्त्र है। देश-कालकी परिस्थितिके अनुसार गणोंमें कई प्रकार हो सकते हैं। उन सभी भेदोंको यथार्थरूपमें समन्वय करके प्रजाको श्रेयमार्गकी ओर ले चलनेवाला ही यथार्थ ‘गणपति’ हो सकता है। गणपति-को जनता ही चुन सकती है, इसलिये मन्त्रमें ‘हवामहे’ यह बहुवचनका प्रयोग किया गया है। वह गणपति प्रियोंका प्रिय होना चाहिये। अपने व्यक्तिगत स्वार्थको

जनताके स्वार्थमें मिला देनेवाला होना चाहिये। तभी वह प्रियपति हो सकता है। पदलिप्ता एवं क्षुद्र स्वार्थ-के वशीभूत यदि राष्ट्रपति होगा तो उस गणतन्त्रका पतन हो जायगा। इतिहासके देखनेसे यह ज्ञात होता है कि जब कभी ऐसा हुआ है तब उसका कारण उस देशके राष्ट्रपति या राजाकी दुर्बलता ही इसमें प्रधान हेतु रही है। जिस गणपतिके शासनमें धन-धान्यकी समृद्धि होती है, प्रजा सभी सुखोंसे सम्पन्न रहती है, वही 'निधिपति' शब्दका अधिकारी है। संक्षेपमें इन तीनों विशेषणोंसे एक राष्ट्रके राष्ट्रपतिमें जितनी आवश्यक बातें हैं, उन्हें मन्त्रद्रष्टा ने बता दिया है। प्रजाकी रक्षाके लिये समय-समयपर जो रहस्यमयी बातोंको सोचता एवं कार्यान्वित करता है तथा प्रजाका पूर्ण विश्वासी है, वही 'गगराज' है। सभी राजनीतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक बातोंके अनेक ज्ञानसे युक्त होनेसे जो 'लम्बोदर' है,

प्रजाके चारों पुरुषार्थोंका साधक होनेसे जो 'चतुर्भुज' है, जो एकदन्तरूप एक सत्य निश्चयकी निष्ठावाला है, राष्ट्रके धिक्वसकरूप शत्रुओंको जो मूषककी तरह दबाकर रखता है, वह राष्ट्रपति सबसे प्रथम पूजित होता है। भौतिक, दैविक आदि विघ्नोंका लौकिक एवं शास्त्रीय उपायोंके द्वारा जो नष्ट करनेमें समर्थ हो, उसे 'विघ्नहर'-की उपाधि दी जाती है।

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः।

—इस मन्त्रमें गण एवं गणपतिको नमस्कार किया गया है।

यह मन्त्र कर्मकाण्डियोंने श्रीगौरीपुत्र गणेशकी पूजा-में लगाया है। अश्वमेधयज्ञमें इसे अश्वकी स्तुतिमें उक्कट, महीधर भाष्यकारोंने लिखा है। तपश्चर्यासे वेद-मन्त्रोंके अनेक अर्थ हो जाते हैं। यहाँपर 'गणतन्त्र'का यह अर्थ अधिक संगत होनेसे लिखा गया है।

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

(लेखक—बालयोगी स्वामी परमानन्द सरस्वती एम्० ए०)

मनुष्यके शरीरमें सभी कुछ महत्त्वज्ञ है—श्वकी छोटी-से-छोटी अँगुली भी अपना महत्त्व रखती है, परन्तु मनका महत्त्व सर्वाधिक है। इसकी विलक्षण शक्तियाँ हैं। मनुष्यका सुख और दुःख, बन्धन और मोक्ष मनके ही अधीन है। संसारमें कोई ऐसा स्थल नहीं जो मनके लिये अगम्य हो, मन सर्वत्र जा सकता है, एक पलमें जा सकता है। चक्षुरादि इन्द्रियाँ जहाँ नहीं पहुँच सकतीं, जिसे नहीं देख सकतीं, मन वहाँ जा सकता है, उसे ग्रहण कर सकता है। जिस आत्म-ज्ञानसे शोकसागरको पारकर नित्य निरतिशय सुखका अनुभव किया जा सकता है। वह मनके ही अधीन है। मन ही आत्मसाक्षात्कारके लिये नेत्रवत् है। श्रुति भी कहती है—'मनसैवानुदृष्टव्यम्'। संसारमें हम जो भी उत्कर्ष प्राप्त करते हैं, उनके मुख्य हेतु हैं हमारी स्वस्थ और सक्षम ज्ञानेन्द्रियाँ। कानोंसे सुनायी न देता हो, आँखोंसे दिखायी न देता हो तो कोई कितना भी कुशाग्रबुद्धि क्यों न हो, कैसे विद्या प्राप्त करेगा? विज्ञान और कलाके क्षेत्रमें कैसे और क्या वैशिष्ट्य सम्पादन

करेगा? अर्थोपार्जन भी कैसे करेगा? ऐसा व्यक्ति तो संसारमें दीन-हीन ही रहेगा। अपनी जीवनयात्राके लिये भी वह दूसरोंपर आधारित होकर भारभूत ही होगा। अतः इस सत्यसे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि हमारे उत्कर्षके प्रथम और महत्त्वपूर्ण साधन हैं हमारी स्वस्थ और सक्षम ज्ञानेन्द्रियाँ। परन्तु यह नहीं भूलना चाहिये कि इन्द्रियोंका प्रवर्तक है मन। यदि मन असहयोग कर दे तो स्वस्थ और सक्षम इन्द्रियाँ भी अपने विषयको ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं रह जायेंगी। जब इन्द्रियोंका प्रवर्तन-निवर्तन मनपर आधारित है और कर्मसम्पादन इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिके अधीन है तथा अभ्युदयकी प्राप्ति सम्यक् कर्मसम्पादनपर आधारित है, तब यह अपने-आप स्पष्ट हो जाता है कि हमारा अभ्युदय मनके शुभसंकल्पयुक्त होनेपर निर्भर है। इसलिये मन्त्र-द्रष्टा ऋषि प्रार्थना करता है—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुसस्य तथैवेति।

दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

(शुक्लयजु० ३४।१)

मेरा वह मन धर्मविषयक संकल्पवाला (शिवसंकल्प) हो, मनमें कभी पापभाव न हो, जो जाग्रदवस्थामें देखे-सुने दूरसे दूरस्थलतक दौड़ लगाता है। (दूरमुदैति) और सुषुप्तावस्थामें पुनः अपने स्थानपर लग जाता है। जो ज्योतिस्वरूप (देव) आत्माको ग्रहण करनेका एकमात्र साधन होनेसे ('देव') कहा जाता है। जो भूत, भविष्य और वर्तमान तथा विप्रकृष्ट और व्यवहित पदार्थोंको भी ग्रहण करनेमें समर्थ है (दूरंगमम्-दूरगामी) तथा विषयोंको प्रकाशित करनेवाली इन्द्रियों (ज्योतियों) का एकमात्र प्रकाशक (ज्योतिरेकं) अर्थात् प्रवर्तक है।

मनके ही निर्मल उत्साहयुक्त और श्रद्धावान् होनेपर बुद्धिमान् यज्ञ-विधिविधानज्ञ कर्मपरायण जन यज्ञोंकी सब क्रियाओंको सम्पन्न करते हैं। मेधावी पुरुष बुद्धिके सम्यक् प्रयोगसे वेदादि सच्चाइयोंका प्रामाण्य समझ सकते हैं। न्याय और मीमांसा आदि दर्शनशास्त्रोंकी प्रक्रियाका गाढ़ अनुशीलन कर अप्रामाण्यकी सब शंकाओंको दूरकर अपने हृदयमें दृढ़तापूर्वक यह निश्चय कर सकते हैं। वेदादि शास्त्र अपने विषयमें (धर्म और ब्रह्मके विषयमें) निर्विवाद प्रमाण हैं। अङ्गोंसहित वेदोंका अध्ययन करके विविध फलोंका सम्पादन करनेवालेके विधि-विधान और अनुष्ठानकी सम्पूर्ण प्रक्रियाको भी सीख सकते हैं। परंतु यह सब कुछ होनेपर भी प्रत्यक्ष यज्ञमें प्रवृत्ति तथा आवश्यक क्रियाओंका सम्पादन तभी हो सकता है, जब मन निर्मल, श्रद्धोपेत तथा उत्साह-युक्त हो। वैदिक क्रियाओंकी ही भाँति सभी लौकिक कर्म भी मनके ही प्रसन्न रहनेपर ठीक प्रकारसे किये जा सकते हैं। अतः हम और किसी भी बातकी अपेक्षा कर दें, पर मनको प्रसन्न कर रखनेके लिये तो हमें विविध प्रकारके उपाय करने ही पड़ेंगे। समग्र क्रियाकलाप मनकी अनुकूलतापर निर्भर है। हम एक-आध बार भले ही मनकी अपेक्षा कर दें, परंतु हम सदा ऐसा नहीं कर सकते। मनको सदा खिन्न रखकर हम अपना जीवन भी नहीं चला सकते। मनको भगवान् स्वयं अपनी 'विभूति' बतलाते हैं—'इन्द्रियाणां मनश्चास्मि' (गीता १०।२२) 'इन्द्रियोंमें मैं मन हूँ।' अतः मन पूज्य है। हमें उसकी पूजा करनी ही पड़ेगी, उसका रुख देखना ही पड़ेगा। इसीलिये ऋषि दूसरी ऋचासे प्रार्थना करता है—

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विद्येषु धीराः।
पदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥
(शुक्लजु. १४।२)

जिस मनके स्वस्थ और निर्मल होनेपर मेधावी पुरुष (मनीषिणः) यज्ञमें कर्म करते हैं। (कर्माणि कृण्वन्ति) मेधावी जो कर्मपरायण हैं (अपसः अपस्विनः) तथा यज्ञसम्बन्धी विधिविधान (विद्येषु) में बड़े दक्ष हैं (धीराः धीमन्तः) तथा जो मन संकल्प-विकल्पोंसे रहित हुआ साक्षात् आत्मरूप ही है। (यदपूर्वं अपूर्वमनपरमबाह्यं) इत्यादि श्रुति इन लक्षणोंसे आत्माका ही लक्ष्य कराती है। और पूज्य है (यक्षम्) जो प्राणियोंके शरीरके अंदर ही स्थित है (अन्तःप्रजानां) वह मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो।

प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके माध्यमसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान-वस्तु मनके द्वारा ही उत्पन्न होता है। सामान्य और विशेष दोनों प्रकारके ज्ञानोंका जनक मन ही है। क्षुधा और पिपासा इत्यादिकी पीड़ासे मन जब अत्यन्त व्यथित हो जाता है, तब बुद्धिमें कुछ भी ज्ञान स्फुरित नहीं हो पाता। ज्ञान ही मनुष्यकी विशेषता है। ज्ञानके ही बलसे वह मर्त्यलोकके अन्य जीवोंसे श्रेष्ठ बना, उनका शिरमौर बना। ज्ञानकी ही वृद्धि कर उसने अतुल सुख और सम्पत्ति प्राप्त की। ज्ञानके ही द्वारा उसने पशुओंकी अपेक्षा अपने जीवनको मधुर बनाया। मोक्ष भी आत्मज्ञानसे ही प्राप्त किया जाता है। उस ज्ञानका जनक यह मन ही है।

हमारी जीवनयात्रा निष्कण्टक नहीं। अनेक विघ्न-बाधाएँ इसमें उपस्थित होती हैं। अभ्युदय और उत्कर्षका कोई मार्ग अपनाओ, वह निरापद नहीं होगा। कठिनाइयाँ और क्लेश हमारे सामने आयेंगे ही। यदि हम उन कठिनाइयोंको जीतनेमें समर्थ नहीं तो मार्गपर आगे प्रगति नहीं कर सकते। यदि प्रगति अभीष्ट है तो कठिनाइयोंसे संवर्ष करके उनपर विजय प्राप्त करना होगा। इसके लिये धैर्य चाहिये। थोड़ी-थोड़ी कठिनाइयोंमें अधीर हो जानेवाले व्यक्ति तो कोई उद्यम नहीं कर सकते। कार्य उद्यम करनेसे सिद्ध होते हैं, मनोरथमात्रसे नहीं। अतः सफलतारूप प्राप्ति का एक मुख्य स्तम्भ धैर्य है। धैर्य मनमें ही अभिव्यक्त होता है। अतः धैर्यका उत्पादक होनेसे जलमे जीवन कहनेकी भाँति मनको ही धैर्यरूप कहा गया है। मनके बिना कोई भी लौकिक-वैदिक कर्म सम्पादित नहीं किया जा सकता। अतः तीसरी ऋचासे ऋषि कामना करता है—

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्नऽमृते किंच न कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥
(शुक्लयजु० ३४ । ३)

जो मन प्रज्ञान अर्थात् विशेषरूपसे ज्ञान उत्पन्न करने-
वाला है तथा पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला (चेतः)
सामान्य ज्ञानजनक है, जो धैर्यरूप है, सभी प्राणियोंमें (प्रजासु)
स्थित होकर अन्तर्ज्योति अर्थात् इन्द्रियादिको अथवा
आभ्यन्तर पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला है एवं जिसकी
सहायता और अनुकूलताके बिना कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो
सकता । मेरा वह मन शुभसंकल्पवाला हो ।

चक्षुरादि इन्द्रियाँ केवल उन पदार्थोंको ग्रहण कर सकती
हैं, जिनसे उनका साक्षात् सम्बन्ध हो; पर मन अप्रत्यक्ष
पदार्थोंको भी ग्रहण करनेमें समर्थ है । चतुर्थ ऋचासे ऋषि
यही भाव व्यक्त करता है—

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥
(शुक्लयजु० ३४ । ४)

जिस मनके द्वारा यह सब भलीप्रकार जाना जाता है,
ग्रहण किया है (परिगृहीतम्), भूत, भविष्यत् और वर्तमान-
सम्बन्धी सभी बातोंका परिज्ञान होता है (भूतं भुवनं
भविष्यत्), जो मन शाश्वत है—संकल्प-विकल्पसे रहित
हुआ आत्मारूप ही है (अमृतेन शाश्वतेन), जिस श्रद्धायुक्त
और स्वस्थ मनसे सप्त होताओंवाला अग्निष्टोम यज्ञ (अग्निष्टोममें
सप्त होता होते हैं) किया जाता है (तायते-विस्तार्यते),
मेरा वह मन शुभसंकल्पवाला हो ।

हमारा जितना भी ज्ञान है, वह सब शब्दराशियों ओत-
प्रोत है । शब्दानुगमसे रहित लोकमें कोई ज्ञान उपलब्ध
नहीं होता । जैसे आत्माकी अभिव्यक्ति शरीरमें होती है, वैसे ही
ज्ञानकी अभिव्यक्ति शब्दरूप कलेवरमें ही होती है । वे शब्द
मनमें ही प्रतिष्ठित होते हैं । मनके स्वस्थ होनेपर उनकी
स्फूर्ति होगी और मनके व्यग्र होनेपर वे स्फुरित नहीं होंगे ।
छान्दोग्य उपनिषद्में कहा गया है—‘अन्नमयं हि सोम्य
मनः’ (हे सोम्य ! मन अन्नमय है ।) इस सत्यका अनुभव
करानेके लिये शिष्यको कुछ दिनोंतक भोजन नहीं दिया
गया । भोजन न मिलनेसे जब वह बहुत कृश हो गया, तब
उसे पढ़े हुए वेदको सुनानेके लिये कहा गया । वह बोला
कि, ‘इस समय वह पढ़ा हुआ कुछ भी मनमें स्फुरित नहीं

हो रहा है ।’ अनन्तर उसे भोजन कराया गया । भोजनसे
तृप्त होनेपर उसके मनमें वह पढ़ा हुआ वेद स्फुरित हो
गया । इस अन्वय और व्यतिरेकसे यह भी सिद्ध होता है
कि ज्ञानकी प्रतिष्ठा और स्फूर्ति मनमें ही होती है । यदि
मन प्रसन्न है तो ज्ञान-सम्पादन और विचार-विमर्श सफल
होंगे । यदि वह व्यग्र और अधीर हो रहा है तो यह कुछ
भी कार्य सफल न होगा । अतः मनका निर्मल और प्रसन्न
होना सबसे अधिक महत्त्वका है । इसीलिये पाँचवाँ ऋचासे
ऋषि प्रार्थना करता है—

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥
(शुक्लयजु० ३४ । ५)

जिस मनमें ऋक्, यजुः और सामरूप वेदत्रयी प्रतिष्ठित
है, ठीक उसी प्रकार जैसे रथचक्रनाभियोंमें चक्के-अरे, जिस
मनमें प्राणियोंका लोकविषयक ज्ञान (चित्तम्) पटमें तन्तुकी
भाँति ओत-प्रोत है—मेरा वह मन शुभसंकल्पवाला हो ।

बुद्धिमान् जन जानते हैं कि मन ही मनुष्यको सब जगह
भटकाता रहता है । यही आग्रह करके उन्हें किसी मार्गमें
प्रवृत्त करता है अथवा उससे निवृत्त करता है । नयन और
नियमन मनके ही अधीन है । यदि मन पवित्र संकल्पवाला
होगा तो उत्तम स्थानपर ले जायगा और असत् प्रवृत्तियोंसे
इसका नियमन करेगा । यदि मन पाप संकल्पोंसे आक्रान्त होगा
तो मनुष्यको बुरे मार्गमें लगाकर उसके विनाश और दुर्गति-
का कारण बन जायगा । छठीं ऋचासे ऋषिने यही बात
कहकर मनके पवित्र होनेकी प्रार्थना समाप्त की है—

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽमीशुभिर्वाजिनऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥
(शुक्लयजु० ३४ । ६)

जैसे कुशल सारथि (सुषारथिः) चाबुक हाथमें लेकर
घोड़ोंको (अश्वान्) जिधर चाहता है ले जाता है (नेनीयते)
वैसे ही जो मन मनुष्योंको (मनुष्यान्) जिधर चाहता है
ले जाता है तथा जिस प्रकार सुसारथि बागडोर हाथमें
लेकर (अमीशुभिः) घोड़ोंको अपने मनचाहे स्थानपर
ले जाता है (वाजिनः-नेनीयते) वैसे जो मन मनुष्योंको ले
जाता है, जो प्राणियोंके हृदयमें प्रतिष्ठित है (हृत्प्रतिष्ठम्),
शरीरके वृद्ध होनेपर भी जो वृद्ध नहीं होता, जो अत्यन्त
वेगवान् है (जविष्ठम्), मेरा वह मन शुभसंकल्पवाला हो ।

दो दृष्टान्त देकर बतलाया कि 'मन शरीरका नयन और नियमन दोनों करता है। शरीरके शिथिल होनेपर भी मनका वेग कम नहीं होता है। अत्यन्त वेगवान् होनेसे जल्दी बशमें नहीं आता है।' विगड़ उठे तो बलवान् होनेसे

व्यक्तिको बुरी तरह झकझोर देता है। यदि मन शुद्ध और पवित्र बन जाय तो हमारे जीवनकी धारा बदल जायगी और हमारी समस्त शक्तियाँ मङ्गलमय कार्योंमें ही लगेगी।

तन्त्राग्नायकी स्थूल रूपरेखा

(स्वामीजी श्रीप्रत्यगात्मानन्दजी सरस्वती)

[अनुवादिका—श्रीप्रेमलता शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यशास्त्राचार्य, संगीतालंकार]

[मार्च १९६५ में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयमें एक बृहत् तन्त्र-सम्मेलन आयोजित किया गया था। उक्त सम्मेलनके अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामीजी श्रीप्रत्यगात्मानन्द सरस्वतीका संस्कृत-भाषण सम्मेलनके उद्घाटनके अवसरपर पढ़ा गया था और उसकी सुदृढ प्रतिष्ठा वितरित की गयी थी। इस भाषणका परिवर्धित संस्करण स्वामीजीने अगस्त १९६५ में प्रकाशित कराया था। उसीका हिंदी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है।—अनुवादिका]

यहाँ संयोजित तन्त्र-सम्मेलनमें मङ्गलाचरणके उपलक्ष्यमें तन्त्र-आग्नायिके मौलिक आधारपटका स्थूल रेखाङ्कन प्रस्तुत है। परिनिष्ठित सिद्धान्तोंपर आधारित होनेपर भी तन्त्रागमोंकी व्यवहार-सम्बन्धी योग्यता मुख्यतया साधनोपायोंके निर्देशक शास्त्रोंके रूपमें ही है। साधन-शास्त्रोंमें भी श्रीगुरु-तत्त्वका मुख्यरूपेण व्यपदेश है; क्योंकि सभी साधन-मार्गोंमें श्रीगुरु ही साधकोंके एकमात्र सहाय, शरण्य एवं सुहृत् हैं। इसीसे श्रीगुरुपादुकाको लक्ष्य करके 'जपसूत्रम्'* नामक ग्रन्थमें हमने यह श्लोक लिखा है—

भारं कर्मापित्तमतिगुरुं घोरतादिप्रवृद्धं
मग्नासुर्वीमिव पयसि यो लीलयाप्युद्दिधीर्षुः ।
धत्ते बीजं श्रुतिपथचरं वर्चसे चात्ममन्त्रं
क्लेशव्यूहच्छिदुरुत्तमस्वभृच्छ्रीगुरुः पञ्चमूर्तिः ॥

'गम्भीर चिन्ताशील दार्शनिक हैं, वैदिक और तान्त्रिक सिद्धान्त एवं साधनपद्धतिके मर्मज्ञ हैं, आधुनिक विविध विज्ञान और गणितशास्त्रके तत्त्वविद् हैं, प्राच्य और प्रतीच्य एवं प्राचीन और नवीन उभय भावधारके साथ सम्यक् परिचित हैं, तीक्ष्णदर्शी, विश्लेषण-पटु एवं लिपिकुशल सुलेखक हैं—सर्वोपरि वे स्वयं साधन-पथके विचित्र अनुभवसम्पन्न चरणशील पथिक हैं। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह शास्त्रमूलक है एवं महाजनोके अनुभव और सद्भुक्ति-द्वारा समर्थित है। अतएव उनके ग्रन्थका अनन्य-साधारण महत्त्व है।'

* 'जपसूत्रम्' पूज्यपाद स्वामीजीद्वारा रचित अपूर्व ग्रन्थराज है जिसमें 'जप' का अप्रतिम शास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। मूलग्रन्थ संस्कृतमें है और सूत्र-कारिका-शैलीमें लिखा गया है। सूत्र-संख्या ५२२ और कारिका-संख्या २०५९ है। मूलग्रन्थपर स्वयं स्वामीजीने अतिविस्तृत बंगला-भाष्य भी लिखा है। भाष्य-सहित मूलग्रन्थ बंगलामें ६ खण्डोंमें प्रकाशित है, जिसकी कुल पृष्ठसंख्या २०५० है। स्वामीजीके आदेशानुसार इस अनुपम ग्रन्थको व्यापक क्षेत्रमें सुलभ बनानेके लिये इसका हिंदी-अनुवाद प्रस्तुत भाषणकी अनुवादिकाद्वारा किया जा रहा है। मूल सूत्र-कारिकाको देवनागरी अक्षरोंमें टिप्पणीसहित एक जिल्दमें एवं भाष्य-सहित पूरे ग्रन्थको स्वतन्त्ररूपसे ६ खण्डोंमें प्रकाशित करनेकी योजना है।

महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराजके शब्दोंमें 'जपसूत्रम्' के ग्रन्थकार—

ग्रन्थके सम्बन्धमें उनका यह वाक्य पूर्णतया यथार्थ है—
'स्वानुभूति, सद्भुक्ति और वर्तमान वैज्ञानिक सिद्धान्तके साथ शास्त्रीय सिद्धान्तका ऐसा अपूर्व सम्बन्ध करनेका यत्न मैंने और कहीं भी नहीं देखा है। ...' ग्रन्थकर्ताने ग्रन्थ लिखा है अवश्य, किन्तु वे लिपिकरनात्र हैं। उनकी पूत लेखनीको निमित्तरूपसे ग्रहण करके विश्वगुरुने ही कालोपयोगी आकारमें इसके द्वारा आत्मप्रकाश किया है। जो लोग परमपथमें प्रविष्ट हैं अथवा प्रविष्ट होनेके इच्छुक हैं, वे लोग आन्तरिकताके साथ यदि इस ग्रन्थोक्त तत्त्व-मालाका मनन कर सकेंगे तो अवश्य उपकृत होंगे, ऐसा मेरा बृहद् विश्वास है।'

प्रलय-पयोधिजलमें डूबती हुई धराका भार वहन करनेके लिये और रसातलसे उसका उद्धार करनेके लिये श्रीभगवान्ने वराहशरीर ग्रहण किया था। वह (उस रूपका) परिग्रहण तो देश-कालादि अनेक विशेषणोंसे अवच्छिन्न था; किंतु श्रीगुरुद्वारा घनीभूत कृपाकी ही मूर्तिका परिग्रह वैसा नहीं है; यह तो अस्त न होनेवाले सूर्यके समान अथवा सदा बहनेवाले महासमीरणके समान सर्वत्र सर्वदा होता ही रहता है। जीव-पर अनादिकालसे, जन्म-जन्मान्तरोंमें किये हुए कर्मों एवं तदनुसार प्राप्य फलोंका अतिशय गुरु भार है और वह भी घोर एवं मूढरूपवाले रजस् एवं तमस् गुणोंद्वारा सदा प्रचुरमात्रामें बढ़ता ही रहता है। इसी भारसे जीव भी अतिशय प्रवृद्ध संसार-सागरमें अधिकाधिक डूबता जाता है। इस भारको वहन करके लीलासे ही यानी अनायास जीवका उद्धार करनेकी इच्छावाला श्रीगुरुसे इतर कोई नहीं है, इससे श्रीगुरुका वराहरूपसे नित्य क्रियाशील रहना सूचित होता है।

प्रलय होनेपर वेदशब्दराशिके रूपमें सृष्टि-बीजका धारण मीनावतारमें श्रीभगवान् करते हैं, यह प्रसिद्ध ही है। श्रद्धायुक्त शिष्योंके श्रुतिपथमें बीजमन्त्र-प्रदानके द्वारा श्रीगुरु उनके क्लेश-कर्म-विपाकाशयरहित अभ्युदय-निःश्रेयस्-प्राप्तिरूप नित्य अव्यय जन्मके प्रति बीजप्रद पिता ही होते हैं। तथा च, जैसे समुद्र-मन्थनके समय श्रीभगवान्ने कूर्मरूपसे मन्थन-दण्डको अपनी पीठपर धारण किया था, वैसे ही आत्मामें रत, ब्रह्मवर्चसुके अभिलाषी शिष्योंके आत्म-मन्थन-दण्डको धारण करनेमें उदार, अशेष-महिमा-सम्पन्न श्रीगुरु सदा ही समर्थ होते हैं अर्थात् उस दण्डको धारण करते हैं। अतः परम भागवत प्रह्लादके भय-निरसनके लिये जैसे श्रीभगवान्ने नृसिंहरूपमें आविर्भूत होकर वज्राधिक तीक्ष्ण नखस्पर्शसे हिरण्यकशिपुके दुर्दान्त वक्षको विदीर्ण किया था, उसी प्रकार अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेश—इन अतिभयावह पञ्चक्लेशोंके भयसे आर्त जीवोंके दारुण भवभयको श्रीगुरु समूल, सविपाक उखाड़ फेंकते हैं, विनष्ट कर डालते हैं। पुनश्च—जैसे वामनावतारमें भगवान्ने तीन पग भूमिकी भिक्षाके व्याजसे बलिके यज्ञको प्रकृष्टरूपेण पूर्ण किया था, वस्तुतः सफल बनाया था, वैसे ही शिष्योंसे प्रयास-प्रपत्ति-समापत्ति-रूपिणी त्रिपाद्-भिक्षा माँगकर श्रीगुरु शिष्योंके जपादि यशोंको सफल बनाते हैं, परिपूर्णताको प्राप्त कराते हैं। उनका यह कार्य अथवा स्वभाव कभी पहले था अथवा भविष्यमें कभी होगा, ऐसा नहीं, भूत-भव्यादि कालावधिसे

व्याप्य, सीमित नहीं, अतएव नित्य है, वे सदा-सर्वदा ऐसे ही हैं। इस प्रकारकी श्रीगुरुकी पञ्चावतार-समवेत नित्य रहनेवाली परम-अनुग्रहस्वरूपिणी मूर्ति है। ऐसे उन परम कृपालु श्रीगुरुदेवको नमस्कार है।

तन्त्रविधानोंमें मन्त्र ही मुख्य मन्त्री है। मन्त्रोंके चैतन्योद्बोधनके लिये एवं उनके समर्थ विनियोगके लिये मन्त्रोंका भी सविशेष उपयोग है। 'ओङ्कार एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्' इस श्रुतिप्रमाणसे ओङ्कार ही समस्त वाच्य-वाचकका कारणभूत है, यह सिद्ध होता है। इसीसे ओङ्काररूपी परम रहस्यमय तनुधारी विनायककी स्तुतिमें हमने 'जपसूत्रम्' में यह श्लोक लिखा है—

ऊर्ध्वशुण्डमधःशुण्डं द्विधा व्यावृत्तशुण्डकम् ।
सर्गविसर्गसंधीशं नौम्योङ्कारविनायकम् ॥
उच्चैः शुण्डः प्रभवति पुरः सर्वसम्भाव्यसृष्ट्यै
शुण्डश्चाधः प्रकृतिविलयद्योतकाश्चर्यलिङ्गम् ।
व्यावृत्तौ द्वावध उपरि वा सेतुसंधी च शुण्डौ
श्वासावाखू कुशलशरणस्तारमूर्त्तिर्गणेशः ॥

श्रीगजवदनका शुण्ड ही तो परम-रहस्यमय संकेत है। ओङ्कार भी शुण्डाकृति है, इसी बलसे उक्त संकेत उपलब्ध होता है। शुण्डके भी चार प्रकारके विन्यासकी कल्पना की जा सकती है। ऊर्ध्वविन्याससे सर्ग, अधोविन्याससे विसर्ग और ऊर्ध्व-अधः द्विधा व्यावृत्त विन्यासोंसे क्रमशः सर्ग-विसर्ग-सन्धियोंका संकेत मिलता है। श्रीविनायकका वाहन मूषक भी नासाविवरचारी वायु (प्राण) रूपसे ओङ्कारकी व्यावृत्तिका निर्वाह करता है, ऐसा सुज्ञजनोंको समझ लेना चाहिये। पश्वजपा रूपसे आयुके मूलको निरन्तर काटते हुए भी अजपाजप रूपसे यह मूषक मन्त्र-जपकर्ताओंकी सिद्धिका उत्तम निर्वाहक होता है, यह भी जान लेना चाहिये। प्राण और अपानकी व्यस्त-विप्रमताको छोड़कर उनकी समस्त समताका आश्रयण करना चाहिये, ऐसा भगवान्का भी वचन है— 'प्राणापानौ समौ कृत्वेति'। उपनिषद्दोंके समान ही तन्त्रोंमें भी साधन-वीर्य-समापत्तिके लिये चर्या-भाव-तत्त्वज्ञानरूपिणी तीन प्रत्यङ्गाराओंका संगति-सम्मेलन अवश्य करना होगा। 'विद्यया श्रद्धया उपनिषदा वा वीर्यवत्तरं भवति' इस छान्दोग्य श्रुतिके अनुसार। इसी कारण भावसे अनुप्राणित, गुरु-देवता-मन्त्र-यन्त्र-उपासना-रूपिणी अङ्ग-वैकल्यादिसे रहित साधना आगमसाधनोंमें विशेषरूपसे समुपदिष्ट है। अतएव

भाव-निष्ठा-सहकृत उपासनाके गौरव-ख्यापनके लिये निम्न श्लोक श्रीविश्वनाथ-अन्नपूर्णा-युगलके अद्वैत-सामरस्यके प्रकाशनके लिये उनके श्रीपादारविन्दोंमें निवेदित है—

क्षीरोदार्णवमन्थनात् समभवत् पीयूषसंदोहनं
श्रीरूपेण तु तस्य वण्टनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ।
संजातं गरलं स्वकण्ठकुहरे घृत्वापि मृत्युञ्जये
मन्नाथे शशिशेखरे सुषमता नित्यैव विश्वेश्वरे ॥

सुस्पष्ट अर्थके और अधिक स्पष्टीकरणकी आवश्यकता नहीं है। तब भी अमृत एवं गरल दोनोंका ही सामरस्य अथवा सुषमता चन्द्रमौलि, नीलकण्ठ, मृत्युञ्जय भगवान् श्रीशङ्करमें है, यह भी प्रत्यग् दृष्टिसे देखना होगा। मृत्युरूप कालकूटको अपने कण्ठमें धारण करके भी मृत्युञ्जय, ये ही मस्तकपर सोमार्धकला (अमृतस्वरूपिणी)को धारण करके मृत्युञ्जय मन्त्रको जपनेवालोंको मृत्युसे अमृतकी ओर ले जाते हैं। एवं एक बार जिन्होंने अमृत पाया है, उनका अमृतसे वियोग नहीं करते (योगक्षेम वहन करते हैं)।

‘मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ।’

—इस प्रकार शिव-भालस्थ चन्द्रकला ही—

‘स्वधां दुहाना अमृतस्य धाराम् ।’

—इस श्रौतमन्त्रका लक्ष्यार्थ है। और भी जो श्रीचण्डीस्तोत्रमें—

‘अर्धमात्रा स्थिता नित्या ।’

—इस श्लोकपादद्वारा लक्षित है, वह शङ्करभाल-विभूषण-रूपिणी सोमार्धकला ही है। अतः वह सोमार्धकला ही निखिल रहस्यमञ्जुषाके उद्घाटनमें प्रवीण कुञ्जी है, ऐसा हम मानते हैं। तन्त्राभ्यासोंमें क्रिया, ज्ञान, योग, उपासना, भुक्ति, मुक्ति प्रभृति समस्त द्वन्द्वोंके सुषम सामञ्जस्यपूर्ण समन्वय सम्मेलनका ही विधान है। ‘विषमप्यमृतायते’ ‘भोगोऽपि योगायते’ इत्यादि उक्तियोंद्वारा तन्त्रशास्त्रका अनन्य साधारण वैशिष्ट्य ही जाना जाता है।

येनैव विषखण्डेन त्रियन्ते सर्वजन्तवः ।

तेनैव विषखण्डेन भिषग् वारयते रुजम् ॥

—ऐसा शास्त्रमें कहा भी है। आगमोंके प्रवक्ता भगवान् श्रीशङ्करमें विष-पीयूषका सम्मेलन है, मूलतः इन दोनोंका सामरस्य भी सुस्पष्टतया परिलक्षित होता है। निम्नलिखित श्लोकद्वारा वही समझना चाहिये—

यच्छम्भोरहिभूषणं शिरसि वा कण्ठे मृशं राजते
तत्पाशेन विषं गले च विधृतं गोपायिता स्वर्धुनी ।
विज्ञानं नयतामृतेन हि यथा भालेन्दुमूर्ध्वं मृते-
गङ्गां विष्णुपदोद्भवां किमितरद् येनाहिराशीविषः ॥

सिरपर अथवा गलेमें सुशोभित नाग-भूषण भी पाशरूप होकर विषको शंकर-कण्ठमें धारण करता है। इसी पाशके द्वारा जटा-जालमें स्वर्धुनी छिपा ली जाती है। सम्यक् योग-क्षेमके लिये लोगोंको उसी विज्ञानका समाश्रय लेना चाहिये जो ऋतके पथसे मृतिके पार सुधा-संदोह-सार श्रीशंकरके भालेन्दुकी ओर ले जाता है एवं जटामात्रमें छिपी हुई उन गङ्गाकी ओर भी ले जाता है जो गङ्गा स्वयं विष्णुपादोद्भवा होनेपर भी, जो ‘तद् विष्णोः परमं पदम्’ है, उसकी एकमात्र ध्रुव-पथप्रदर्शिनी हैं। शिवके मुखोंसे विनिःसृत जो आगम-वाणी है, वही यह अध्यात्मगङ्गा है। हर-जटा-जालमें छिपी हुई वह (गङ्गा) मध्यमावाक् हैं, जो समस्त वाणियोंकी धुरी हैं। स्फोटस्वरूपिणी अनाहतनादके अक्षपर टिकी हुई उस (गङ्गा) का आश्रयण करके ही निखिल वाक्स्पन्दोंकी द्विविधा वृत्ति होती है—स्थूल एवं सूक्ष्मा। विशेष-अविशेष भेदोंसे सूक्ष्मा भी द्विधा विभक्त है। स्थूल वैखरी है और सूक्ष्म पश्यन्ती एवं परा है। विशेषकी अपेक्षा अविशेषमें कारणता है—इस न्यायसे परा ही समस्त वाणियोंकी समुचित कारण है, यह ज्ञात होता है। हर-जटा-जाल आदि है, यह ज्ञात होता है। हर-जटा-जाल आदिके रूपकका अनुसरण करके हम कहते हैं कि प्रजापतिके कमण्डलुमें विधृत, निखिलसृष्टिमें समर्थ, वेदराशिरूपा वह पश्यन्ती है। विष्णुका जो परमपद है, वहाँ उत्पन्न हुई एवं नित्य स्थित रहनेवाली, अशेष-विशेष स्पन्दनोंकी आधारभूता, व्योमके समान अनभिव्यक्त विशेष शब्द-स्पन्दसामग्री (समष्टि) परा है। सगरकुल-तिलक भगीरथके तपसे, उन्हींके द्वारा बजाये गये शङ्खकी ध्वनिका अनुसरण करती हुई जो यहाँ भूतलपर अवतरित हुई, वह वैखरी है। ‘गं’ का अर्थ है मुख्यप्राण अर्थात् नादब्रह्म। उसे जो प्राप्त करती अथवा कराती है, वह है ‘गङ्गा’। वही फिर शिव-शक्तिके सामरस्य-विज्ञानकी जननी होती है। ऐसे अन्य विज्ञानका क्या प्रयोजन, जो सर्वकी भौति लोकके भय और क्षयका कारण बने। इससे आगम-विज्ञानकी जड़ विज्ञानादिसे विलक्षणता भी सूचित होती है। दोनोंमें प्रयोगविधान सामान्य होनेपर भी प्रयोगतन्त्रका भेद एवं लक्षितव्य अर्थका भेद है, यह

विचारणीय है। इन दो भेदोंके कारण ही एकके द्वारा अमृतत्वका सनातन पथ प्रवर्तित किया गया और दूसरेमें बाह्य-इन्द्रिय-सम्बन्धी भोग-उपकरणोंकी बहुलतासे सृष्टिके सामर्थ्यका गौरव होनेपर भी लोकके महाविनाशका भय ही क्रमशः वर्धमान है। प्रयोग-विज्ञानोंकी बाह्य भोग्य-संग्रहकी सुविधा अथवा परीक्षासे लब्ध तत्त्वों एवं तथ्योंका चमत्कारित्व उनके उपादेयत्वके प्रतिपादनके लिये पर्याप्त नहीं है; क्योंकि मुख्य पुरुषार्थके निर्वाहकत्वसे ही समस्त प्रयोगोंकी अर्थ-प्रतिपत्तिही व्यवस्था की गयी है। तथापि तन्त्रप्रयोगोंमें समीक्षा-परीक्षा-जन्य प्रत्यय (ज्ञान) का भी प्रामाण्य गौरव (महत्ता) है ही; यही आगमविज्ञानका आधुनिक बाह्य-विज्ञानादिसे साजात्य है; (इनके) यथासम्भव पारस्परिक उपकारित्वकी भी सुज्ञोद्धार उपेक्षा न होनी चाहिये। तान्त्रिकवाद पदे-पदे प्रत्यय (ज्ञान) को प्रस्तुत करता है, यह याद रखना चाहिये।

अन्तिम गन्तव्य (लक्ष्य) के ध्रुव एवं एक होनेपर भी सरल-कुटिल नाना मार्गोंके अनुसरणमें आनन्द लेनेवाली मानव-रुचियाँ भिन्न-भिन्न होनेके कारण मार्ग, चर्या, आचारादिमें भेद है ही। परंतु परिनिष्ठित सिद्धान्तोंके विनिर्णयमें संगति-समन्वय ही होना चाहिये, अनुपपत्ति-विप्रतिपत्तियाँ नहीं, ऐसी शंका हो सकती है। इसके उत्तरमें हम कहते हैं कि सैद्धान्तिक विषयोंमें जो विप्रतिपत्तियाँ दिखायी देती हैं, वे आभासमात्र हैं, मौलिक तत्त्वपर आधृत अथवा मौलिक तत्त्वोंके आधारको विषय बनानेवाली नहीं है। इस प्रसङ्गमें यह श्लोक है—

तन्त्राग्रायमहाधिक्कुक्षिकलनाद् गम्भीरतत्त्वालया-
न्नपुण्यान्निरमायि सूरिभिरियं सिद्धान्तमुक्तावली ।
साक्षादागमसूत्रिता प्रतिपदं स्वप्रत्ययग्रन्थिता
मेरुर्ग्रहि सामरस्यमुभयोः सा नः श्रियै शोभताम् ॥

सुगम्भीर तत्त्वोंके आलय तन्त्राग्राय-महोदधिके तलसे मुक्ता चयन करके प्राचीन विद्वानोंने यह सिद्धान्तमुक्तावली बड़ी ही निपुणतासे बनायी है। साक्षात् आगम ही इस मालाका अखण्ड (कभी न टूटनेवाला) स्वर्ण-सूत्र है। ये सिद्धान्तमौक्तिक प्रतिपद स्वप्रत्ययसे ही ग्रथित हैं। आगम और निजप्रत्यय (स्वानुभव) का सामरस्य-रूपी क्रौस्तुभमणि इस मालाका मध्यमेरु है। वह वरमाळा चिरकाल तक हमारे कल्याणके लिये, विसंवाद-विब्रण्डादि विडम्बनाओंके लिये

नहीं, सुशोभित हो। इसीसे शैव-शाक्त-वैष्णवादि निखिल सम्प्रदायोंको लक्ष्य करके उदात्त-गम्भीर यह आगमशङ्ख निनादित होता है—‘संगच्छध्वं संवदध्वं’ ‘समानी व आकूतिः’ इत्यादि।

पूर्वाचार्योंने आपातविरोधपरिहारपूर्वक आगमके सिद्धान्तों एवं आचारादिका समन्वय-साधन किया है। उनका वह महान् अवदान अपनी महिमासे ही प्रतिष्ठित है, उसमें मन्दमति, अर्वाचीन मुझ-जैसोंकी प्रवृत्तिका क्या महत्त्व है? यहाँ यह श्लोक उल्लेखनीय है—

वेलायामुपलेषु यस्य चयनं तस्मै वरान् मौक्तिकान्
धत्ते किं जलधिर्न मन्दमतये गोपायिता मञ्जुषा ।
श्रीरामेण समुद्रवन्धनकृतौ केषां महान् वोद्यमः
केषां वा सिकताविलिसवपुषां दीनाल्पसेवारजः ॥

अशेष अगाध रत्नाकरके तुल्य आगमशास्त्रोंमें पूर्ण-प्रज्ञा-प्रसूत जो रत्न विराजमान हैं, सागरकी गम्भीर जल-राशिमें अवगाहन करके उनके उद्धारमें अतिचतुर, विशारदी बुद्धि ही समर्थ होती है; कुण्ठा-कार्पण्यादि दोषोंसे उपहत-स्वभाववाली नहीं। तथापि श्रद्धा एवं आकूति (भाव) से सेवा करनेकी इच्छावाले मन्दमतियोंकी भी दीन अत्यल्प सेवाको तन्त्रेश्वरीदेवी भुवनेश्वरी कृपापूर्वक ग्रहण कर लेती हैं। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा जब समुद्रपर सेतु बाँधा गया, तब नल-नीलादि कपि-प्रवरोंका महान् उद्यम सब लोगोंने देखा, किंतु नन्हों गिलहरियोंने रेतमें लोटकर अपने अङ्गमें लिपटी रेतको ही सेतुस्थानपर झाड़कर जो सेवाभाव दिखाया, लोककी दृष्टिमें न पड़नेपर भी उसके द्वारा श्रीरामका महान् प्रसादानुग्रह उत्पन्न हुआ। अतः भाव एवं आकूति रहनेपर लघु सेवा भी महान् बन जाती है। ‘भावग्राही जनार्दनः।’

अधुना हम आगमोंके प्राचीनत्व-अर्वाचीनत्व आदिके विचारमें उत्साह नहीं लेते और हमारी बुद्धि उसके लिये अवकाश भी नहीं पाती। पूर्णप्रज्ञामें नित्य ही प्रतिष्ठित होनेसे यहाँ देश-कालादिका अवच्छेद नहीं प्रसक्त होता, ऐसा हम मानते हैं।

आगमविद्याओं पर विदेशियों और किन्हीं-किन्हीं भारतीयोंने अनजाने ही जो कलङ्क-विलेपन (अर्थका अनर्थ) किया है, उस कलङ्कको धोनेके लिये एवं आगमविद्याओंके विश्व-भरमें प्रचारके लिये महामति ‘सर जॉन बुडरफ़’* महोदयका

* स्वामी प्रत्यगात्मनन्दजी ‘सर जॉन बुडरफ़’ (अर्थ

एवं उनके प्रयत्नों तथा प्रेरणाओंसे अनुप्राणित आगमानु-संधान-समितिका जो महान् प्रयत्न है, वह हमलोगोंद्वारा चिरकृतज्ञतासे विशेषरूपेण स्मरणीय है।

यह तन्त्रविद्या अतिगहन-रहस्य-रत्नोंमें भरी मञ्जूषा है। दुस्तर, विचित्र, सुविशाल तन्त्राम्नाय-पयोधिके मन्त्र-यन्त्र-तन्त्रोंके अतिगहन रहस्यरूपी गम्भीर तलको कौन जानता है? और कौन उसके पार जा सकता है? अतः शिव ही सब कुछ जानते हैं एवं जनाते हैं, शिवा ही उसके पार जाती हैं एवं पार करवाती हैं। उन शिव-शिवा-युगलको नमस्कार है। यहाँ ये दो श्लोक उद्धृत हैं—

त्रिवेण्यम्भसि योगेषु स्नपनं चेद्विशुद्धये ।
वेदागमपुराणाख्यत्रिवेण्यां तत्प्रबुद्धये ॥
मन्त्रेषु यन्त्रतन्त्रेषु निष्णातश्चेद् भवेद् वशी ।
दृष्टे परावरे तत्त्वे स एव स्याच्छिवः स्वयम् ॥

अतः समस्त साधनोंका शेषगम्य परम चरम लक्ष्य, नदियोंके लिये समुद्रके सहश एक ही है और वह है अशेष-विशेष शक्तियोंके विलास-विवर्त्त आदिका अपने नित्य-शुद्ध-बुद्ध अधिष्ठानरूप स्वरूपमें अवस्थान।

जैसे माँ कालिकामें—

सा काली निहपाधिः शुद्धनिलये शान्ते नरीनृत्यते
कैवल्यं विद्धाति निर्गुणतया द्वैतं मरीमृज्यते ।
ब्रह्मास्मीत्यवबोधखड्गमहसा मिथ्याजनीन् प्रत्ययान्-
नास्ते ब्रह्मणि सर्वमेव दधती चेच्छिद्यमाना स्वयम् ॥

(जपसूत्रम्)

अच्छा, यही परमोपेय हो, किंतु इस परमोपेयका परमोपायभूत साधन क्या है यह बताओ—वह है सम्पूर्ण भावसे उस एककी शरणागति; क्योंकि समस्त साधनोंकी समुद्रमें नदियोंके समान उन भगवान्में ही निर्वाध, निःशेष समाप्ति है, वहींपर ये परिपूर्णतया चरितार्थ होते हैं। इस भावार्थका यह श्लोक है—

अध्यारोपापवाद्वा त्वयि निगमयतः शुद्धनैर्गुण्यमात्रं
जन्माद्यस्यादिलिङ्गैस्त्वयि च निविशते ज्ञानशक्त्यादिकात्स्न्यम् ।

सिद्धः संधानशेषात् त्वयि च मधुरिमा प्रेम्णा आत्यन्तिकोऽपि
कुर्या गोविन्दनाथाच्युतचरणदृशो नो धियस्त्वां प्रपन्नाः ॥

(जपसूत्रम्)

वेदान्त-विचारमें अध्यारोप एवं अमवाद नाम्नी जो दो प्रसिद्ध रीतियाँ हैं, उनके द्वारा परब्रह्ममें शुद्ध नैर्गुण्य-मात्रत्वका साधन करना अभिप्रेत है, वह साधित हो। 'जन्माद्यस्य यतः' इत्यादि ब्रह्मसूत्रद्वारा उपन्यस्त लिङ्गोंसे निरतिशय सार्वज्ञादि-गुणवान् होना भी ब्रह्मवस्तुमें अवाधित-रूपसे निविष्ट है। 'एतत् सर्वस्य मधु' 'प्रियः पुत्रात्' 'आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्' 'रसो वै सः' इत्यादि श्रौत प्रमाणों-द्वारा एवं स्वारसिक अनुभवके बलसे उसमें परमप्रेमास्पदत्वके साथ-साथ आनन्दमयत्व भी बिना किसी विरोधसे ज्ञात होता है। एवं साधिष्ट प्रमाण-बलसे यद्यपि हे भगवन् ! तुममें निर्विशेष-सविशेष-सर्वाधिक रसमत्त्व आदि भावोंका समस्त विवादोंके निरासपूर्वक निगमन हो सकता है, तथापि हे गोविन्द ! हे नाथ ! एकमात्र तुम्हारे अच्युत श्रीचरणोंकी शरणागतिके बिना उस धामकी परम समावृत्ति असम्भव है, अतः केवलमात्र तुम्हारे प्रति निवेदन-परक बुद्धियोग हमें दो; क्योंकि गीतामें 'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते' ऐसी मोहकीचको पारकर निकल भागनेकी इच्छावाले हम-जैसोंके उत्तरणके लिये सुदृढ़ सेतु-स्वरूपिणी तुम्हारी तारकवाणी है। तुम्हारे कृपा-कण-रूपी धनसे अतिरिक्त, साधन-वैयर्थ्यके परिहारपूर्वक साधन-सार्थक्यकी सिद्धिके लिये गमनका कोई मार्ग नहीं है।

उपसंहारमें यहाँ संयोजित सम्मेलनमें प्रयोज्यमाण समस्त वागर्थ-प्रतिपत्तिसे योग्य प्रेरणा हममें भरनेके लिये, शौर्य एवं माधुर्यके चरम सीमारूप श्रीराम-कृष्णजी हम प्रार्थना करते हैं—

कालिन्दीरोधसीशो ललितसुरगिरां वेणुगीतैर्हरियः
शैलान् विद्रावयन्तैः प्रकटयति परां वाचमोङ्कारयन्निम् ।
सम्यक् संधानशूरो गमयति निधनं राववो यो दशास्यं
प्रत्यक्चैतन्यमूर्ती वचसि विहरतामत्र तौ रामकृष्णौ ॥

(जपसूत्रम्)

पवेलॉन) के प्रमुख गुरु-सहयोगी रहे हैं। विदेशीय सज्जनोंके नानसे प्रकाशित ग्रन्थोंका व्यापक प्रचार होगा, इस दृष्टिसे स्वनाजाने अपने अमूल्य सहयोगको लोक-लोचनसे प्रायः गुप्त ही रक्खा है—अनुवादिका।

चार पुरुषार्थों में धर्मकी प्रधानता आवश्यक

आजका समाज अर्थाश्रित है। आज प्रत्येक वस्तुका, प्रत्येक क्रियाका सहत्व रूपोंमें आँका जाता है। धनकी आधार-शिलापर इस समय सम्पूर्ण विश्वकी सामाजिक व्यवस्थाका भवन खड़ा है। आज जितने वाद हैं, वे पूँजीवाद हों या साम्यवाद, सबके विचारका आधार अर्थ है। सब आर्थिक व्यवस्थापर ही समाज चलेगा, यह मानकर तब आर्थिक व्यवस्थाके ढाँचेके सम्बन्धमें विचार करते हैं।

मनुष्यके चार पुरुषार्थ माने गये हैं। चार ही तत्त्व ऐसे हैं, जिनके लिये मनुष्यका उद्योग केन्द्रित होता है—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। इनमेंसे मोक्ष किसी सामाजिक व्यवस्थाका आधार नहीं बन सकता; क्योंकि मोक्ष व्यक्तिको अन्तर्मुख करता है, वह वैयक्तिक रूपसे प्राप्त होता है और उसमें भेदका निषेध है। जब कि समस्त सामाजिक व्यवस्था भेदके आधारपर चलती है। मोक्षके साधकके लिये कहा गया—

‘गुणदोषद्वन्द्वोऽपि, गुणस्तु भयवर्जितः।’

‘गुण यह उभय न देखिअ, देखिअ सो अविवेक।’

गुण और दोष देखना ही दृष्टिका दोष है, यह तथ्य मानकर जो चलेगा, उसके द्वारा समाजकी व्यवस्था कैसे होगी ? समाज-व्यवस्था तो गुणका स्थापन तथा दोषका निवारण करनेके लिये होती है।

एक श्रद्धेय महापुरुष हैं। उनके समीप एक मित्रको लेकर गया। मित्रने प्रणाम करके प्रार्थना की—‘मेरे कल्याणका कुछ साधन बतानेकी कृपा करें।’

वे बोले—‘प्रभो ! आप मुझसे क्यों यह लीला करते हैं ? मुझमें उपदेश देनेकी वासना कहीं होगी, इसीलिये आप ऐसा कहते हैं। अन्यथा आप तो आनन्दधन श्रीकृष्ण हैं। आपकी कृपासे ही तो मेरा कल्याण सम्भव है।’

सर्वत्र भगवद्दर्शन करनेवाले महापुरुषके मुखसे ऐसी ही बात सुननेकी मुझे आशा थी। लेकिन समाजमें तो साधक जिज्ञासु हैं। उनको मार्गदर्शक भी चाहिये। ऐसे महापुरुषकी उपस्थिति ही जगत्के लिये परम मङ्गलकारी है, यह ठीक है; किंतु समाजकी व्यवस्था ऐसे महापुरुषोंसे नहीं चलती।

पामर, विषयी, साधक और सिद्ध—ये मनुष्योंकी चार श्रेणियाँ हैं। पामरोंको समाजकी व्यवस्था दे दी जाय तो वे यहाँ नरक बना देंगे। उन्हें तो पाप करनेमें सुख मिलता है। अतः उन्हें प्रशसित किया जाना चाहिये। वे प्रशासक नहीं हो सकते। साधक एकान्तदृष्टि होता है। उसकी दृष्टि

केवल साधनपर होती है। वह दूसरोंके पचड़ेमें पड़ना नहीं चाहता। अतः समाज-व्यवस्थासे वह दूर भागता है। सिद्ध महापुरुष हैं। वे समदर्शी हैं। उनके लिये न कोई बुरा, न अच्छा। उनसे समाज-व्यवस्था होनेसे रही। अतः समाजके ठीक व्यवस्थापक विषयी अर्थात् धर्मानुसार प्राप्त विषयभोगोंका सेवन करनेवाले लोग ही हो सकते हैं। वही समाज या संस्थाके ठीक संचालनके योग्य अधिकारी हैं। समाज-व्यवस्थाके संचालकोंके सम्बन्धमें हम इस बातको यदि ध्यानमें रखें तो हमें यह निर्णय करनेमें कठिनाई नहीं होगी कि समाज-व्यवस्थाका मूलधार क्या होना चाहिये।

मोक्ष—पुरुषार्थ समाज-व्यवस्थाका आधार नहीं बन सकता। यह बात समझना बहुत कठिन नहीं है; क्योंकि मोक्ष है निर्गुण, निर्विकार, निर्विषय, अद्वैत सत्तासे एकात्मताकी अनुभूति। उसमें व्यवहार नहीं है। अतः उसका साधक व्यवहारसे उपरत निवृत्तिमार्गसे चलकर ही उसे पाता है।

काम—पुरुषार्थको समाज-व्यवस्थाका आधार बनाया नहीं जा सकता। कामाश्रित समाज तो पशुओंका, पिशाचोंका समाज होगा। संसारमें कामोपभोगकी कोई सीमा नहीं है। विश्वमें पदार्थ असीम नहीं हैं। उनकी सीमा है और मनकी कामना संतुष्ट होना जानती नहीं है। अतः आप मनुष्यकी आवश्यकता-पूर्तिकी बात भले कर सकते हैं, किंतु उसकी कामना-संतुष्टिकी बात सोच पाना तो सुष्टिकर्ताके भी वशकी बात नहीं। इसलिये काम पुरुषार्थको समाज-व्यवस्थाका आधार बनानेकी बात सोची ही नहीं जा सकती।

अर्थ—के आधारपर बना समाज आज है ही। कठिनाई यह है कि अर्थ सार्वभौम पुरुषार्थ नहीं है। यह केवल अपवादरूप पुरुषार्थ है। धनके लिये ही धनोपार्जन करनेवाले थोड़े ही लोग संसारमें होते हैं। खाने-खर्चनेका नाम नहीं, बस बैंकोंमें रकम बढ़ती जाय—ऐसे अर्थ-पुरुषार्थी होते तो हैं; किंतु अपवादरूप। अर्थका प्रयोजन है—भोग अथवा धर्म। धन कमाया जाता है अपने तथा अपने लोगोंकी सुख-सुविधाके लिये अथवा दान, सेवा, परोपकार, यज्ञादिके लिये।

आजका अर्थके आधारपर चलनेवाला समाज प्रायः काम-पुरुषार्थियोंके हाथमें पड़ गया है। आज जो समाजके संचालक, प्रशासक, व्यवस्थापक हैं, उनको अर्थ चाहिये ऐन्द्रियिक सुखोपभोगके लिये। अर्थको दूसरोंके भी सुखोपभोगका ही साधन वे मानते हैं। इस प्रकार अर्थका माध्यम होनेपर भी

समाज-व्यवस्थाका मूलसूत्र आज कामके हाथमें है और कामना-में है क्रोध, द्वेष, संघर्ष, हिंसा स्पर्धा, भय, लोभ आदि। आज समाजमें सर्वत्र इन्हीं दुर्गुणोंका प्राधान्य देखा जा सकता है।

अर्थ क्या है ? मनुष्यके श्रमका प्रतीक। सोने-चाँदी या कागजके टुकड़ेका नाम अर्थ नहीं है। मनुष्य श्रम करके एक उत्पादन करता है। इस उत्पादनका नाम अर्थ है। विभिन्न मनुष्योंके उत्पादनका विनिमय करनेके लिये धातु या सिक्केको माध्यम बनाया गया है। मनुष्यका उत्पादन ही मूल-रूपमें अर्थ है।

प्रत्येक मनुष्यमें उत्पादन-क्षमता नहीं होती। वृद्ध, रोगी तथा अनेक अवस्थाओंमें स्त्रियाँ अनुत्पादक वर्गमें हैं। कलाजीवी, शिक्षक, सैनिक आदि अनेक वर्ग ऐसे हैं जो स्वयं उत्पादन नहीं करते। वे उत्पादकोंकी किसी आवश्यकताकी पूर्ति करते हैं। इस प्रकार अनुत्पादक परोपजीवी-वर्ग मनुष्य-संख्याका एक बहुत बड़ा भाग है। यह भाग इतना बड़ा है कि उत्पादक-वर्गकी संख्या उसके एक तिहाईसे भी कम है।

उत्पादनमें लगे मनुष्योंकी उत्पादन-क्षमता भी समान नहीं होती। मनुष्योंकी शारीरिक शक्ति, परिस्थिति तथा उन्हें प्राप्त होनेवाले साधनोंमें बहुत अन्तर रहता है। एक व्यक्ति आज जितना श्रम कर पाता है, उतना श्रम बीस वर्ष बाद नहीं कर सकता। इस प्रकार अर्थके उत्पादनमें सब समान श्रम करें, ऐसा नियम कभी बन नहीं सकता। शारीरिक श्रमकी अपेक्षा अर्थके उत्पादनमें बुद्धिकी महत्ता बहुत अधिक है और मनुष्योंमें बौद्धिक तारतम्य शारीरिक शक्तिकी अपेक्षा बहुत ही अधिक है।

सब मनुष्य अर्थके उत्पादक नहीं हैं। जो उत्पादक भी हैं, उनकी शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमतामें बहुत न्यूनाधिकता है। दूसरी ओर मनुष्य उत्पादक हों या न हों, सबके मन लग-भग समान रूपसे (मोक्षके विवेकी साधकों तथा सिद्धपुरुषोंको छोड़ दें तो) भोगलिप्सु हैं। सभी उच्चतम इन्द्रियसुख-सुविधाएँ चाहते हैं। यह दूसरी बात है कि अपनी हीन परिस्थितिके कारण उनकी कामनाने अभी एक सीमातक जाना ही सीखा है। अवसर मिलनेपर वे किसी दूसरेसे कम महत्त्वाकाङ्क्षी सिद्ध नहीं होंगे। ऐसी अवस्थामें अर्थको सामाजिक व्यवस्थाका आधार बनाकर कोई भी वाद परस्पर स्पर्धा, संघर्ष, असंतोषको दूर कर सकेगा, इसकी कोई सम्भावना नहीं है।

केवल धर्म-पुरुषार्थ ऐसा है जो समाजको स्पर्धा, संघर्ष तथा अशान्तिसे रहित व्यवस्था दे सकता है। ऐसा समाज काल्पनिक नहीं है। प्राचीन भारतीय समाजकी व्यवस्था धर्मपर आधारित थी। आजके विवेचक यदि अपनी दृष्टिपर पड़ा अर्थके प्राधान्यका चश्मा उतारकर देखें तो उन्हें रामायण, महाभारत तथा पुराणोंमें समाज-व्यवस्थाकी आधारशिलाके रूपमें धर्म दिखायी देगा।

अर्थका उपार्जन किसलिये ? इसका उत्तर होना चाहिये धर्मके लिये, दूसरोंकी सेवा-सहायताके लिये। प्राचीन भारतका हिंदू-गृहस्थ प्रार्थना करता है भगवान्से—

‘अतिथिर्मे भूयात् !’

‘अतिथि प्राप्त हों सुखे ! उनकी सेवाका सुखे सुश्रवसर मिले।’ अर्थका संग्रह किया जाता था यज्ञके लिये—त्यागके लिये। प्रतिस्पर्धा चलती थी कि किसके द्वारपर नित्य कितने अतिथि आते हैं, कौन कितने यज्ञ करता है, किसने कितने कूप, सरोवर, धर्मशालाएँ बनवाईं अथवा अन्नसत्र खुलवाये ? इस प्रतिस्पर्धामें सात्त्विक सुख और जनहित था।

धर्म संयम सिखलाता है। मन तथा इन्द्रियोंका संयम और त्यागके लिये वस्तुपरिग्रह। प्रत्येक व्यक्ति जब अपने उपभोगको यथासम्भव सीमित करना चाहता है, अपनी आवश्यकताएँ धटानेमें गौरव मानता है और दूसरोंकी सेवाके लिये श्रम करता है, तब समाजमें स्वयं पदार्थोंका बाहुल्य हो जाता है। असंतोषको अवकाश नहीं रहता। अभावग्रस्त-के सौ सहायक निकल पड़ते हैं। इस प्रकार सुखी, शान्त, सम्पन्न समाज तो धर्माश्रित समाज ही बन सकता है।


जहाँ सबको अधिक-से-अधिक सुख-सुविधा, अधिक-से-अधिक उपभोगके पदार्थ अपेक्षित हैं और कम-से-कम श्रम करनेकी इच्छा है, वहाँसे कंगाली, असंतोष, भ्रष्टाचार, अशान्ति और संघर्षको कैसे दूर किया जा सकता है ? आज तो समाज-व्यवस्थाके मूलमें ही दुःख तथा अशान्तिके बीज हैं !


भोगपरायणताका त्याग किये बिना मनुष्य सुखी नहीं हो सकता। अतः यदि मनुष्यको सुख-शान्ति अभीष्ट है तो उसे अपने वैयक्तिक जीवनसे ही नहीं, सामाजिक जीवनसे भी भोगपरायणता, पदार्थ-संग्रहवृत्ति अर्थात् अर्थ तथा कामको तिरस्कृत-उपेक्षित करना होगा और धर्मको समाजकी व्यवस्थाका मूलधार बनाना पड़ेगा। जीवनमें धर्मकी प्रतिष्ठा, धर्मको सम्मान देकर ही हम सुख-शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। —सु०

१०८ की संख्याका गौरव, महत्त्व और रहस्य

(लेखक—स्वामीजी श्रीविद्यानन्दजी सरस्वती)

हिंदू-धर्म और हिंदूशास्त्रोंमें १०८ की संख्याकी बड़ी मान्यता है। पूजा-पाठमें १०८ की गिनती पवित्र मानी जाती है और १०८ दानेकी माला भी जपके लिये पवित्र समझी है। विरक्त संत-महात्माओं और संन्यासियों आदिको भी श्री १०८ से विभूषित और सम्बोधित किया जाता है और अनेक अन्य स्थानोंपर भी, जहाँ किसी बड़ी शुभसूचक संख्याके प्रयोगका अवसर आता है तो १०८ की संख्या अथवा उसके गुणितकी कोई संख्या काममें लयी जाती है। प्रतिदिनकी श्वासकी संख्याका जप भी २१६०० माना जाता है जो कि १०८ की संख्याका २०० गुणा है। उपनिषदोंकी संख्या भी एक सहस्रसे ऊपर होनेके कारण प्रमाणित उपनिषदोंकी संख्या १०८ ही नियत की गयी है, जिनके नाम मुक्तिकोपनिषद्में दिये हुए हैं। अतः इस १०८की संख्यामें उसकी पवित्रता, गौरव और महत्त्वका कोई रहस्य छिपा हुआ है, जो अन्वेषणीय है।

हिंदू-धर्म और शास्त्रोंमें स्वस्तिक  चिह्नकी

भाँति एक अन्य  पञ्चशिख चिह्नका भी प्रयोग देखनेमें आता है। दोनों चिह्नोंके प्रयोगमें पूज्यभाव, मान्यता और शुभ-सूचनाके लक्षण समान रूपमें पाये जाते हैं। पञ्चशिख चिह्नको पञ्चानन भी कहते हैं परंतु पञ्चशिख अथवा पञ्चानन नाम स्वस्तिक चिह्नके नामके समान प्रसिद्ध नहीं हैं; तथापि उसका प्रयोग अनेक धार्मिक स्थानों, मन्दिरों, पुस्तकों एवं फर्मोंके व्यापारचिह्नोंमें देखनेमें आता है।

इस चिह्नकी आकृतिमें पाँच शिखाएँ और पाँच बाहरको खुले हुए मुख हैं; इसलिये इसको पञ्चशिख और पञ्चानन चिह्न कहते हैं। इन दोनों नामोंके बड़े पवित्र और गौरवसम्पन्न होनेका यह प्रमाण है कि जगद्विख्यात महर्षि कपिलके प्रशिष्यका नाम, जिनके सांख्यदर्शनपर सूत्र भी हैं, पञ्चशिखाचार्य रक्खा जाना उनकी दार्शनिक योग्यता एवं आध्यात्मिक उत्कर्षका सूचक माना जाता है। सिंहके लिये भी पञ्चशिख शब्दका प्रयोग होता है। इसी चिह्नसे सम्बन्धित होनेके कारण पञ्चानन शब्दकी महिमा भी बड़े गौरव और

आध्यात्मिक महत्त्वकी है। शिवजीके पाँच मुख माननेसे उनके परमशक्तिशाली अनन्तवीर्य और अमित-विक्रम होनेका भाव प्रदर्शित होता है। पञ्चशिख और पञ्चानन शब्द समस्त पशुओंके राजा मृगेन्द्र (सिंह) के लिये भी प्रयुक्त होते हैं और पञ्चानन शब्द सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्चके भावमें—यथा विद्यापञ्चानन, तर्कपञ्चानन आदि शब्दोंमें भी प्रयुक्त होता है। गीतामें श्रीकृष्णको उनके विश्वरूपमें कालानलनिभ व्यातानन कहकर उन्हें कालरूप बतलाया है। सृष्टिके संहारक होनेके कारण शिवजीके लिये भी पञ्चानन शब्दका प्रयोग उपयुक्त ही है। इस चिह्नमें भी पाँचों मुख व्यातानन ही हैं, जो बाहरकी ओर समस्त दिशाओंमें खुले हुए हैं। शिवजीके पाँच मुख नहीं थे और न सिंहके पाँच मुख होते हैं, जिससे उनको वाच्यार्थमें पञ्चानन कहा जाय और न सिंहकी पाँच शिखाएँ होती हैं, जिससे उसे पञ्चशिख कहा जाय। ये शब्द आलंकारिक भावमें उनके लिये प्रयुक्त हुए हैं और उनके गौरवके सूचक हैं। अतः इस गौरवके आधारको जानना आवश्यक है, जिसे कि यह चिह्न ही पूर्णतया सिद्ध करता है।

संक्षेपतः इस चिह्नका निर्माण भीतर और बाहर दोनों ओर १०८ अंशके कोणोंपर निर्भर है और यह चिह्न सृष्टिकी रचनाका सूचक है। १०८ अंशके रेखाचित्रके अतिरिक्त और किसी अन्य संख्याके अंशोंके कोणवाले रेखाचित्रसे सृष्टिके निर्माणका रूप प्रदर्शित नहीं हो सकता, जैसा कि आगे दिखलाया गया है। अतः १०८की संख्याका महत्त्व है।

सृष्टिकी रचनामें पञ्चीकरण

सृष्टिकी रचनाके आधार पाँच तत्त्व—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश अपनी पृथक्-पृथक् मूलावस्थामें तो सूक्ष्म और अव्यक्त हैं, परंतु सृष्टिकी रचनाके लिये उनका परस्पर सम्मिश्रण होता है जिसे पञ्चीकरण कहते हैं। इसके द्वारा प्रत्येक तत्त्वमें पाँचों तत्त्वोंके अंश आकर वे तत्त्व इन्द्रियगोचर व्यक्त रूप धारण कर लेते हैं। यह सृष्टि ईश्वरकी प्रकृतिका साकार और सगुण रूप है, जिसके द्वारा निराकार और निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार हुआ करता है। सृष्टिकी

रचनाका इतना बड़ा महत्त्व होनेके कारण सृष्टिकी रचनाके उपादान-कारण पञ्चतत्त्वोंके पञ्चीकरणका महत्त्व और भी अधिक है; क्योंकि समस्त विराट् इस पञ्चीकरणके आधारपर ही ठहरा हुआ है। प्रलयमें इस पञ्चीकरणका ही लय हो जाता है और पुनः सृष्टिके उदयके लिये पुनः पञ्चीकरणकी आवश्यकता होती है। पञ्चशिख अथवा पञ्चानन चिह्न इसी पञ्चीकरणका प्रतीक है। अतः इसका महत्त्व, गौरव और मान्यता स्वयं सिद्ध है।

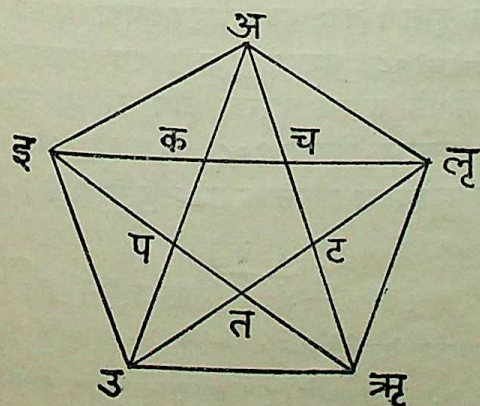
पञ्चीकरणका स्वरूप

पञ्चीकरणद्वारा प्रत्येक तत्त्वमें पाँचों तत्त्व रहते हैं। वे पाँचों तत्त्व किस-किस अनुपातमें एक दूसरेमें रहते हैं, इस सम्बन्धमें अनेक सम्मतियाँ हैं, जिनमें दो प्रधान हैं। एक तो यह कि प्रत्येक तत्त्वके २५ भाग होकर २१ भाग तो अपनेमें रहते हैं और शेष चारमेंसे एक-एक भाग अन्य चारों तत्त्वोंमें चला जाता है। दूसरी सम्मति यह है कि प्रत्येक तत्त्वका आधा भाग अपनेमें रहता है और शेष आधे भागके चार भाग होकर $\frac{1}{2}-\frac{1}{2}$ (एक बटा आठ-एक बटा आठ) प्रत्येक अन्य तत्त्वमें जा मिलता है।

किसी अनुपातसे भी हो, सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक तत्त्वमें प्रधान बड़ा अंश तो अपना रहता है और अल्पांश दूसरे तत्त्वोंके उसमें आ मिलते हैं। पञ्चीकरणका पिछला प्रकार जिसमें अपना आधा अंश रहता है, अधिकतर लोकमान्य और प्रसिद्ध है।

पञ्चशिख चिह्नकी उत्पत्ति

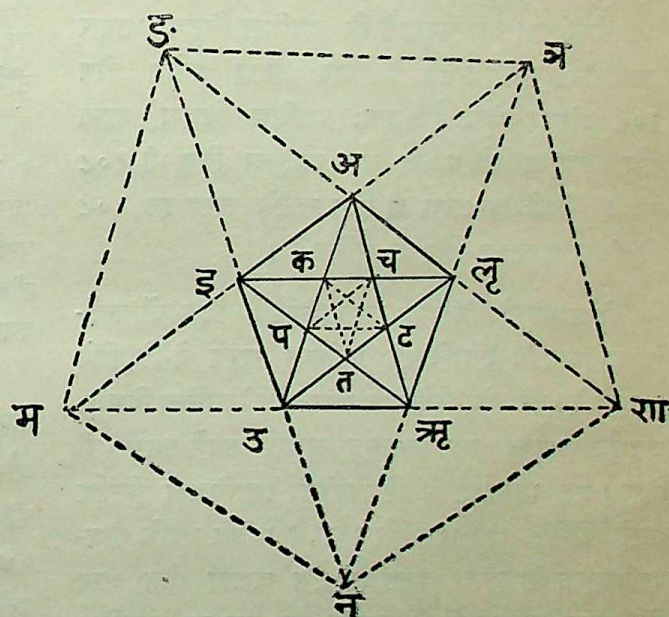
इस पञ्चीकरणकी विधिको रेखाचित्रद्वारा प्रदर्शित करनेसे पञ्चशिख चिह्नका आविर्भाव होता है। तदर्थ अ इ उ ऋ ल को पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाशका प्रतीक मानकर उनके पाँच स्थान नियत करें। जैसे कि—



मा० ३—

इनमेंसे प्रत्येक तत्त्वके एक अंशको काली रेखाओंद्वारा उसके निकटस्थ दाँयें-बाँयें दो तत्त्वोंसे मिला दें। इस मिलानसे एक अ इ उ ऋ ल पञ्चभुज-क्षेत्रका निर्माण हो जाता है। पुनः जब उनमेंसे प्रत्येक तत्त्वका एक अंश अपने सामनेके शेष दो-दो तत्त्वोंसे मिलता है जैसे कि ऊपरके चित्रमें दिखाया गया है तो अ इ उ ऋ ल पञ्चभुज क्षेत्रके भीतर क च ट त प एक अन्य पञ्चभुज क्षेत्रका निर्माण हो जाता है और उसकी प्रत्येक भुजापर एक-एक शिखा अ इ उ ऋ ल बिन्दुओंतक विस्तृत होकर एक पञ्चशिख आकृतिका निर्माण हो जाता है। इस प्रकार यह पञ्चशिख चिह्न पञ्चतत्त्वोंके पञ्चीकरणका प्रतीक बन जाता है। उसी पञ्चशिख चिह्नके बाहरकी ओर अ च ल, ल ट ऋ, ऋ त उ, उ प इ और इ क अ पाँच व्यावृत्त मुखाकार कोणोंका निर्माण हो जाता है, जिससे कि वही पञ्चशिख रेखाचित्र पञ्चानन अथवा पञ्चमुख चिह्न बन जाता है।

इस रेखाचित्रसे एक रहस्य और प्रकट होता है कि जिस प्रकार हमने अ इ उ ऋ ल को पञ्चतत्त्व मानकर क च ट त प पञ्चभुज-क्षेत्र और उसकी शिखाओं तथा बहिःकोणोंके निर्माण-द्वारा एक पञ्चशिख और पञ्चानन चिह्न प्राप्त किया, उसी



प्रकार यदि हम क च ट त प को पञ्चतत्त्वोंका प्रतीक मानकर वहाँपर पञ्चीकरणकी विधिके अनुसार रेखाएँ खींचें जैसे कि उसके भीतरकी बिन्दुओंकी रेखासे प्रकट होता है तो क च ट त प के भीतर भी एक नवीन पञ्चभुजक्षेत्र तथा पञ्चशिख और पञ्चाननके रेखाचित्र बन जायेंगे। और इसी प्रकार यदि अ इ उ ऋ ल से बाहर पञ्चीकरणकी विधिके

अनुसार रेखाएँ खींचें तो उसके ऊपर भी जैसा कि बाहरकी ओर बिन्दुओंकी रेखाओंसे प्रकट होता है ङ ज ण न म एक पञ्चभुज-क्षेत्र एवं तत्सम्बन्धी एक पञ्चशिख और एक पञ्चानन रेखाचित्रका उदय हो जाता है। और यदि इसी प्रकार एकके भीतर एक और एकके बाहर एक लगातार पञ्चीकरणकी विधिपूर्वक रेखाचित्र बनाते जाइये तो अनन्त संख्यामें पञ्चीकरणके प्रतीक पञ्चशिख और पञ्चाननके चिह्नोंका निर्माण होता चला जायगा। यह प्रमाण इस तथ्यका है कि पाञ्च-भौतिक पञ्चीकरण और उसके द्वारा निरन्तर अनादि और अनन्त सृष्टिका निर्माण होता रहता है। अतः पञ्चशिख कहे अथवा पञ्चानन चिह्न जिसका आकार निम्न प्रकार है—



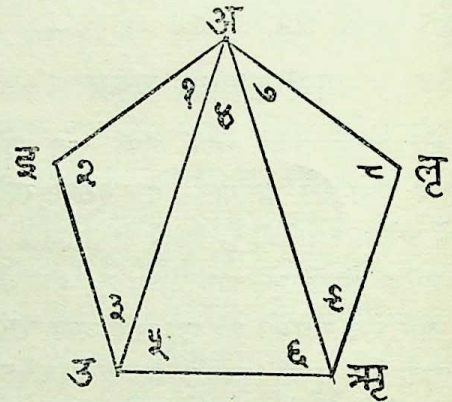
वह अनादि और अनन्त सृष्टिकी रचनाका प्रतीक होनेके कारण अत्यन्त पूज्य, पवित्र, शुभसूचक और श्रेयस्कर माना जाता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि पञ्चशिख चिह्नका आधार पञ्चकोणीय पञ्चभुज-क्षेत्र है और उसका प्रत्येक कोण १०८ अंशका होता है। अतः पञ्चशिख चिह्नका महत्त्व और गौरव जाननेके पश्चात् यह पञ्चशिख चिह्न भी १०८ अंशके कोणके आधारपर ही स्थिर रहनेके कारण इस १०८ की संख्याका महत्त्व और भी अधिक है।

रेखागणितके विज्ञानद्वारा यह स्पष्ट है कि पाँचों तत्त्वोंके पञ्चीकरणको रेखाचित्रके प्रतीकका स्वरूप देनेके लिये पञ्चभुज रेखाचित्रके अतिरिक्त अन्य कोई रेखाचित्र त्रिभुज, चतुर्भुज, षड्भुज तथा सप्तभुज आदिके रूपमें समर्थ नहीं होता। यह भी स्पष्ट है कि प्रत्येक रेखाचित्रका निर्माण उसके कोणोंके अंशोंपर निर्भर रहता है। जिस अंशके कोणपर पञ्चभुज रेखाचित्र बनता है, उस अंशका कोण अन्य किसी रेखाचित्रका नहीं हो सकता। अतः पञ्चभुज रेखाचित्र जो कि भूतपञ्चीकरण और सृष्टिकी रचनाका एकमात्र प्रतीक है उसका तथा उसके परिणामस्वरूप पञ्चशिख चिह्नके कोणका महत्त्व और गौरव निराला ही है। इसीलिये उस कोणके अंशकी संख्या समस्त सृष्टिकी रचनाका मूलधार होनेके कारण अपने महत्त्व और गौरवका अद्वितीय और अनुपम स्थान रखती है।

यह कोण १०८ अंशका किस प्रकार होता है

यहाँ पञ्चभुज-क्षेत्रसे अभिप्राय ऐसे पञ्चभुज-क्षेत्रसे है जिसकी समस्त भुजाएँ समान हों और उसके फलस्वरूप उससे बने समस्त आन्तरिक कोण भी समान होंगे। अब प्रत्येक कोणके अंश निकालनेके लिये एक समान पञ्चभुज-क्षेत्र अ इ उ ऋ ल खींचे—



इसको अ उ और अ ऋ दो रेखाओंद्वारा अ इ उ, अ उ ऋ, और अ ऋ ल तीन त्रिभुजोंमें बाँट दें। इस प्रकार अ इ उ ऋ ल पञ्चभुज-क्षेत्रके पाँचों कोण उक्त तीनों त्रिभुजोंके कोणोंमें विभाजित होकर तीनों त्रिभुजोंके कोणोंमें परिणत हो गये अर्थात् त्रिभुज अ इ उ के कोण १, २, ३ और त्रिभुज अ उ ऋ के कोण ४, ५, ६ एवं त्रिभुज अ ऋ ल के कोण ७, ८, ९ ने मिलकर १+४+७ ने पञ्चभुज-क्षेत्रका एक कोण, २ ने दूसरा कोण, ३+५ ने तीसरा कोण, ६+९ ने चौथा कोण और ८ ने पाँचवाँ कोण बना दिया।

एक त्रिभुजके तीनों कोण १८० अंशके होते हैं अतः तीनों त्रिभुजोंके समस्त कोण $१८० \times ३ = ५४०$ अंशके हुए और यही योग अ इ उ ऋ ल पञ्चभुज-क्षेत्रके पाँचों समान कोणोंका हुआ। अतः इस पञ्चभुज-क्षेत्रका प्रत्येक कोण $५४० \div ५ = १०८$ अंशका हुआ। इस पञ्चभुज-क्षेत्रके प्रत्येक कोणके साथका बाहरका कोण भी जो पञ्चाननके प्रत्येक आननका कोण है १०८ अंशका है। अतः १०८ की संख्याका इतना आदर, सम्मान और महत्त्व है।

(२)

[लेखक—महंत श्रीदीनबंधुदासजी]

भारतीय-संस्कृतिमें १०८ अङ्कका बड़ा महत्त्व है। मालाके दाने १०८ रखे जाते हैं। अपनेसे पूज्योंके नामके पूर्व

१०८ लिखा जाता है। इस १०८ के अङ्कमें माया एवं ब्रह्मतत्त्वका गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है।

० शून्य—इसमें ० शून्य पूर्णब्रह्मका द्योतक है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

१ अङ्क—व्यापक एक ब्रह्म अविनासी।

सत चेतन घन आनंदरासी ॥

उस सर्वशक्तिमान्की एकताको प्रकट करता है।

एकमेवाद्वितीयम्। एकं सद्भिन्ना बहुधा वदन्ति। एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।

८ अङ्क—यह मायाका द्योतक है, यदि हम ८ के पहाड़े-के गुणकोंके गुणनफलको जोड़ें तो उसके योगमें घटत-वृद्धत होती रहेगी। यही हाल मायाका है, वह निरन्तर घटती-वृद्धती रहती है। यथा—

$$८ \times १ = ८$$

$$८ \times २ = १६ = १ + ६ = ७$$

$$८ \times ३ = २४ = २ + ४ = ६$$

$$८ \times ४ = ३२ = ३ + २ = ५$$

$$८ \times ५ = ४० = ४ + ० = ४$$

$$८ \times ६ = ४८ = ४ + ८ = १२ = १ + २ = ३$$

$$८ \times ७ = ५६ = ५ + ६ = ११ = १ + १ = २$$

$$८ \times ८ = ६४ = ६ + ४ = १० = १ + ० = १$$

$$८ \times ९ = ७२ = ७ + २ = ९$$

$$८ \times १० = ८० = ८ + ० = ८$$

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि जहाँ ब्रह्म-स्वरूप अङ्क १ व ० शून्य आया, वहींपर माया विलीन हो गयी और वही अङ्क एक आ गया। इसके बाद फिर माया अङ्क प्रारम्भ हो गया।

ब्रह्मतत्त्व—इसी प्रकार यदि १०८ को जोड़ दिया जाय (१+०+८) तो ९ परिणाम आयेगा। यदि ९ के पहाड़ेके गुणकोंके गुणनफलको जोड़ें तो परिणाम ९ ही रहेगा। न तो वह घटेगा, न बढ़ेगा, इस प्रकार ब्रह्म न तो घटता है, न बढ़ता है। यथा—

$$९ \times १ = ९$$

$$९ \times २ = १८ = १ + ८ = ९$$

$$९ \times ३ = २७ = २ + ७ = ९$$

$$९ \times ४ = ३६ = ३ + ६ = ९$$

$$९ \times ५ = ४५ = ४ + ५ = ९$$

$$९ \times ६ = ५४ = ५ + ४ = ९$$

$$९ \times ७ = ६३ = ६ + ३ = ९$$

$$९ \times ८ = ७२ = ७ + २ = ९$$

$$९ \times ९ = ८१ = ८ + १ = ९$$

$$९ \times १० = ९० = ९ + ० = ९$$

आद्याशक्ति एवं ब्रह्म—सीताराम एवं राधाकृष्ण नामका बीजगणितकी भौति मूल्याङ्कन (Find the value of) निकालें तो भी परिणाम १०८ आयेगा; क्योंकि सीता एवं राधा शक्तिस्वरूप हैं। एवं राम और कृष्ण ब्रह्म-स्वरूप। यथा—

{ अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ ऋ ॠ अं अः
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४

{ क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ ।

{ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

{ ट ठ ड ढ ण । त थ द ध न ।

{ ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०

{ प फ ब भ म । य र ल व ।

{ २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९

{ श ष स ह । क्ष त्र ज्ञ ।

{ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६

अब यदि उपर्युक्त वर्णमालाकी क्रम-संख्याके अनुसार सीता-राम एवं राधा-कृष्णके वर्णोंका मान निकालें तो निम्न परिणाम उपलब्ध होंगे—

सीताराम

= सीता + राम

= [स+ई+त+आ] + [र+आ+म]

= [३२+४+१६+२] + [२७+२+२५]

= (५४) + (५४)

= १०८

राधाकृष्ण

= राधा + कृष्ण

= [र+आ+ध+आ] + [क+ऋ+ष+ण]

= [२७+२+१९+२] + [१+११+३१+१५]

= (५०) + (५८)

= १०८

इस प्रकार १०८ अङ्क आद्याशक्ति एवं ब्रह्म दोनोंका द्योतक है।

सीताराममय सब जग जानी। करौ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

आत्मदान

[पुराण-कथा]

(लेखक—श्री 'चक्र')

विद्याधराधिप जीमूतकेतुके कुमार जीमूतवाहन परिभ्रमण करने निकले थे । उस दिन अमरावतीकी ओर न जाकर उन्होंने दूसरी दिशा अपनायी । उत्ताल तरङ्गोंसे क्रीड़ा करता अमित विस्तीर्ण नीलोदधि उनको सदा ही परमाकर्षक प्रतीत हुआ है । सृष्टिमें अनन्तके तीन ही प्रतीक हैं—उदधि, आकाश और उत्तुङ्ग हिमगिरि । इनमें भी आकाश नित्य दृश्य होनेसे कदाचित् ही किसीके मनमें कोई प्रेरणा दे पाता है; किंतु उत्ताल तरङ्गमान सागर तथा हिमाच्छादित उत्तुङ्ग शृङ्गके समीप पहुँचकर प्राणी अपनी अल्पताका अनुभव सहज कर पाता है । उसका अहंकार शिथिल हो जाता है वहाँ ।

जीमूतवाहन चले जा रहे थे आकाशमार्गसे । अकस्मात् उनकी दृष्टि रमणक द्वीपपर पड़ी । सुविस्तीर्ण वह मनोहर द्वीप और उसमें क्रीड़ा करते नागकुमार; किंतु विद्याधर राजकुमारके लिये इसमें कोई आकर्षण नहीं था । उन्हें चौंकाया था एक विचित्र दृश्यने । द्वीपके बहिर्भागमें पर्याप्त दूर एक अन्तरीप चला गया था सागरगर्भमें और उसके लगभग छोरपर एक उज्ज्वल शिखर दीख रहा था ।

‘रमणकपर तो कोई उच्च पर्वत नहीं है । यह हिम-शिखर यहाँ और इतना उज्ज्वल ! अपने मूलभागसे ऊपरतक उज्ज्वल यह पर्वत ! इस नागालयके निवासियोंने यहाँ कोई रजतगिरि बनाया है !’ जितना ही ध्यानसे उसे देखा, जिज्ञासा उतनी बढ़ती गयी । जीमूतवाहन उतर पड़े वहाँ ।

‘हे भगवान् !’ कोई भी उस दृश्यको देखकर विह्वल हो उठता और जीमूतवाहन तो अव्यन्त सदय

पुरुष थे । वे स्तम्भित, चकित, भयातुर स्तब्ध खड़े रह गये । वहाँ कोई पर्वत नहीं था । वह पर्वताकार दीखता अस्थिपञ्जरोका अकल्पित अम्बार था वहाँ । अखण्ड कङ्काल और उनमें मेद, मांस, स्नायुका लेश नहीं । जैसे किसीने सावधानीसे खच्छ करके वे सहस्र-सहस्र कङ्काल वहाँ एक क्रमसे सजाये हैं ।

‘क्या है यह ? क्यों हैं ये अस्थियाँ यहाँ ?’ उस अस्थिपर्वतके ऊपरी भागके कङ्काल ऐसे लगते थे जैसे उन्हें अभी कुछ सप्ताह पूर्व ही वहाँ रक्खा गया है । लेकिन पूछें किससे ? उस अशुभ स्थानके आसपास कोई प्राणी नहीं था । लगभग पूरा अन्तरीप नीरव निर्जन पड़ा था ।

रमणक द्वीप नागालय है । असंख्य नाग निवास करते हैं वहाँ । अनेक सिरधारी भयङ्कर विषधर नागोंकी वह भूमि—उसपर दूसरे प्राणी न पाये जायँ यह स्वाभाविक था । पशु-पक्षी वहाँ सकुशल रह नहीं सकते और समुद्रावेष्टित उस पाषाणभूमिमें क्षुद्र पिपीलिकादिका प्रवेश नहीं । लेकिन रमणकद्वीप नाग-निवास है, सर्पावास नहीं । वहाँ पृथ्वीके साधारण सर्प पहुँच नहीं सकते । जन्मसिद्ध इच्छानुरूप रूप धारण करनेवाली उपदेव जाति नाग वहाँ रहती है । उसके नगर हैं, भवन हैं, समाजव्यवस्था है । नागपुरुष विषधर, सहज सर्पशरीरी हैं, यदि वे अपनी सिद्धिका उपयोग करके कोई अन्य रूप धारण न किये हों ।

जीमूतवाहन उस अन्तरीपसे द्वीपके मध्यभागकी ओर बढ़े । उन विद्याधरके लिये नागजातिसे कोई भय नहीं । यह उपदेव जाति तो मित्र है उनके पिताकी,

और शत्रु भी होती तो उनका सिद्धदेह विषसे प्रभावित होनेवाला तो नहीं है ।

‘क्या है वहाँ अन्तरीपके अन्तिम भागमें ?’ जो पहला नाग मिला, उससे ही जीमूतवाहनने पूछ लिया ।

‘वहाँ ?’ नाग-तरुणने एक बार दृष्टि उधर उठायी और उसके नेत्र भर आये । उसका मुख कान्तिहीन हो गया । उसने बड़े खिन्न स्वरमें कहा—‘हममें कोई उस अशुभ स्थानकी चर्चा नहीं करता । उस ओर मुख करनेसे भी हम बचते रहते हैं । लेकिन उसका आतङ्क हममेंसे सबके सिरपर सदा रहता है ।’

‘ऐसी क्या बात है वहाँ ?’ जीमूतवाहनने अपना परिचय नहीं दिया; किंतु वे इस द्वीपके अतिथि हैं, यह उन्होंने सूचित कर दिया ।

‘आज पूर्णिमा है । स्वर्णवर्णा मृत्युपक्षी आज वहाँ उतरेगा और एक नागके शरीरका अस्थिपञ्जर उस पर्वतपर और बढ़ जायगा ।’ उस नाग-तरुणने व्यथित स्वरमें बतलाया । ‘आजके दिन आप उस ओर जानेकी भूल न करें ।’

‘स्वर्णवर्णा मृत्युपक्षी !’ जीमूतवाहन कुछ सोचते खड़े रहे । अब उन्हें स्मरण आया कि इस द्वीपमें कहीं उन्होंने पीतरंग नहीं देखा है । वस्त्र, भित्तियाँ तथा अन्य सब स्थान इस रंगसे रहित हैं । पूरे द्वीपमें जैसे पीले रंगको अशुभ मानकर बहिष्कृत कर दिया गया है ।

‘स्वर्णवर्णा मृत्युपक्षी क्या ?’ अब भी कोई बात समझमें नहीं आयी थी । मस्तक उठाया तो वह नाग-तरुण जा चुका था । किसी वृद्ध नागसे ही यह पहेली सुलझ सकती है ।

‘विनताका पुत्र गरुड़ है हमारा आतङ्क । प्रत्येक पर्वपर उसके लिये बहुत-सी खाद्यसामग्री लेकर किसी-न-किसीको अन्तरीपके अन्तमें स्थित उस महावृक्ष-के समीप जाना पड़ता है । वह वैनतेय सामग्रीके साथ

उसको लानेवालेको भी उदरस्थ कर लेता है । प्रहरभर पश्चात् वह अस्थिराशिके ऊपर उसके कङ्कालको उगलकर उड़ जाता है ।’ वड़ी कठिनाईसे वृद्ध नागने रुक-रुककर क्रोध, क्षोभ तथा पीड़ाके स्वरमें यह बतलाया ।

‘आपलोग यह सब क्यों करते हैं ?’ जीमूतवाहनने पूछा ।

‘अपनी जातिको समूल नष्ट होनेसे बचानेके लिये ।’ वृद्ध बोल रहा था । ‘गरुड़ अमर है । वह निश्चित सृष्टिके नायक श्रीनारायणका अनुग्रहभाजन, उनका वाहन है । समस्त सुर-असुर एक साथ होकर भी समरमें उससे पराभव ही पायेंगे । उसका रोषभाजन बनना स्वीकार करे, ऐसा सृष्टिमें कोई नहीं । वह पहले संख्याहीन नागोंका स्वेच्छा-विनाश करता था । यह तो हमारे उस वंश-शत्रुकी उदारता ही है कि पर्वपर केवल एक बलिका वचन लेकर उसने हमारी जातिको जीवित छोड़ रक्खा है ।’

‘वैनतेय श्रद्धा-सम्मान-भाजन हैं समस्त प्राणियोंके यह तो सत्य है ।’ जीमूतवाहनने स्वीकार किया । ‘श्रीहरिके उन प्रमुख पार्षदकी अवमानना कोई सदाशय करना नहीं चाहेगा ।’

‘हम सब अपनी आदि माताके सहज सपत्नी-द्वेषका दण्ड भोग रहे हैं । इसमें गरुड़को दोष कैसे दिया जा सकता है ?’ वृद्धने कहा । ‘केवल शतैकशीर्षा कालियने एक बार साहस किया था । व्यर्थ था उसका औद्धत्य । विनतानन्दनके वामपक्षका एक आघात ही बड़े कष्टसे वह सह सका । कालिन्दीके सौमरिप्रशप्त हृदमें शरण न ली होती उसने तो उसका वंश उसी दिन नष्ट हो गया था । लेकिन श्रीकृष्णकी कृपा—उनके चरणचिह्नोंसे अङ्कित मस्तक, वह अब गरुड़से निर्भय हो गया है । आज पर्वका दिन है । उन हिरण्यवर्णके गगनसे अवतरण-कालमें द्वीपपर खञ्जन्द घूमता केवल कालिय देखा जा सकता है । यद्यपि गरुड़ने अपने आश्वासनको

भंग कभी नहीं किया; किंतु हममें किसीका साहस उनको दूरसे देखनेका भी नहीं है ।’

‘अतीतमें कुछ भी हुआ, अब इसे विरमित होना चाहिये ।’ जीमूतवाहन जैसे अपने-आपसे कुछ कह रहे हों, ऐसे बोल रहे थे । ‘नागमाता कद्रूने देवी विनताके साथ छल किया । माताके अनुरोधपर नाग भगवान् सूर्यके रथाश्वोंकी पूँछमें लिपट गये । दूरसे अश्वोंकी श्वेत पूँछ श्याम जान पड़ी । देवी विनता अपने वचनों—स्पर्धाके नियममें पराजित होकर पुत्रके साथ नागमाताकी दासी हो गयीं । माता तथा स्वयंको इस दास्यभावसे मुक्त करनेके लिये अमृत-हरण करनेमें वैनतेयको जो श्रम करना पड़ा, सुरोंसे जो उनके सम्मान-भाजन थे, संग्राम करना पड़ा और दास्यकालमें नागोंने उनको वाहन बनाकर उनका तथा उनकी माताका बार-बार तिरस्कार करके जो अपराध किया, उससे नागोंपर उनका रोष सहज स्वाभाविक था ।’

‘हम गरुड़को दोष नहीं देते ।’ वृद्ध नागने दुःख-भरे स्वरमें कहा । ‘गरुड़ अन्न अथवा फलका आहार करनेवाला प्राणी तो है नहीं । उसे जब जीवाहार ही करना है, सृष्टिके प्रतिपालकसे अपने शत्रुओंको आहार-के रूपमें प्राप्त करनेका वरदान लिया उसने । हम तो अपने पूर्वपुरुषोंके अपकर्माका प्रायश्चित्त कर रहे हैं । अनन्त कालतकके लिये यह प्रायश्चित्त हमारी जातिके सिर आ पड़ा है ।’

‘ऐसा नहीं । संतानोंको सदा-सदाके लिये पूर्वपुरुषोंके अपराधका दण्डभाजन बनाये रक्खा जाय, यह उचित तो नहीं है ।’ जीमूतवाहनने गम्भीर स्वरमें कहा । ‘गरुड़ इतने निष्ठुर नहीं हो सकते । वे यज्ञेशवाहन—मुझे उनकी उदारतापर विश्वास है ।’

‘हतभाग्य नागोंके अतिरिक्त विश्वमें सबके लियेवे उदार हैं ।’ वृद्ध नागने दीर्घ श्वास ली ।

‘आज पर्व-दिन है । किसको जाना है आज गरुड़की बलि बनकर ?’ जीमूतवाहनने कुछ क्षण सोचकर पूछा ।

‘द्वीपमें उस आवासमें आज क्रन्दनका अविराम स्वर उठ रहा है ।’ वृद्धको यह बतलानेमें बहुत क्लेश हुआ । वह वहाँसे एक ओर चला गया । लेकिन उसने जो बता दिया था, उस संकेतसे उस अभिशापग्रस्त आवास-को ढूँढ़ लेना कठिन नहीं था ।

‘बेटा ! तुम युवक हो । अभी तुम्हारे आमोद-प्रमोदके दिन हैं । तुम मुझे जाने दो । इस वृद्धके बिना भी तुम इस परिवारका पालन कर सकते हो ।’ एक वृद्ध नाग उस परिवारमें रोते-रोते पुत्रसे अनुनय कर रहा था ।

‘मैं जाऊँगी । मेरे न रहनेसे परिवारकी कोई हानि नहीं । अब मैं आपकी संतानोंकी रक्षामें शरीर देकर धन्य बनूँ, इतनी अनुमति दें ।’ वृद्धा नागिनने नेत्र पोंछ लिये ।

‘मातः ! गरुड़को नारी-बलि कभी भेजी नहीं गयी । कोई नाग-परिवार इतना कापुरुष नहीं निकल अबतक कि किसी नारीको मृत्युके मुखमें भेजकर अपनी रक्षा करना चाहे । गरुड़को भी ऐसी बलि कदाचित् ही स्वीकार होगी । उन्होंने यदि इसे अपनी प्रवञ्चना अथवा अपमान माना तो सम्पूर्ण जाति विपत्तिमें पड़ जायगी । पिताकी सेवामें पुत्रका शरीर लगे, यह पुत्रका परम सौभाग्य आज मुझे मिल रहा है । मैं इसे नहीं छोड़ूँगा ।’ युवक नागमें कोई व्याकुलता नहीं थी । पूरे परिवारमें वही स्थिर, धीर दीख रहा था ।

‘यह अवसर आप सब आज मुझे देंगे ।’ अचानक उस आवासमें पहुँचकर जीमूतवाहनने सबको चौंका दिया ।

‘आप ? आप कोई हों, हमारे अतिथि हैं ।’ पूरा परिवार एक साथ सम्मानमें उठ खड़ा हुआ । ‘दयाधाम !

आप हमारी परीक्षा न लें। यह तो हमारी पारिवारिक समस्या है।'

‘मुझे आपका कोई सत्कार स्वीकार नहीं। मैं अतिथि हूँ और आपसे गरुड़के पास उनकी बलि-सामग्री ले जानेका अवसर माँगने आया हूँ।’ जीमूत-वाहनके स्वरमें दृढ़ निश्चय था। ‘आप मुझे निराश करेंगे तो भी मैं वहाँ जाऊँगा। आप मुझे रोक नहीं सकते।’

‘अतिथिकी ऐसी माँग कैसे स्वीकार की जा सकती है?’ बड़े धर्मसंकटमें पड़ गया वह नाग-परिवार। जीमूतवाहन आसनतक स्वीकार नहीं कर रहे थे। अन्त-में उनका आग्रह विजयी हुआ। वे जायँगे ही, यह जानकर अत्यन्त अनिच्छा होनेपर भी नाग-परिवारको उनकी बात माननी पड़ी। यद्यपि वह युवक जीमूतवाहन-के साथ उस अन्तरीपके अन्तिम छोरतक गया। रमणक द्वीपमें आज पहली बार एक साथ दो व्यक्ति उस बलि-स्थानतक पहुँचे थे। जीमूतवाहनने बहुत आग्रह करके किसी प्रकार युवकको लौटा दिया।

आकाशमें गरुड़के पक्षोंसे उठता सामवेदकी ऋचाओं-का संगीत गूँजा और उन तेजोमयका खर्गिम प्रकाश दिशाओंमें फैल गया। सम्पूर्ण धरा और सागरका जल जैसे खर्णद्रवसे आर्द्र हो उठा। उच्च अस्थिराशि खर्ण-वर्णा बन गयी। जीमूतवाहन इस छटाको मुग्ध नेत्रोंसे देख रहे थे। भय-कम्पका उनमें लेश नहीं था।

एक बार प्रचण्ड वायुसे सागर क्षुब्ध हुआ और तब गरुड़ उतर आये महातरुके समीप अन्तरीपपर। उन्होंने बलि-सामग्री प्रथम भोजन करना प्रारम्भ किया। उन्हें भी आश्चर्य था—‘नाग मानवाकारमें आया, यह तो उसकी सिद्धि और इच्छा; किंतु यह है कैसा? यह न रोता है, न भयभीत है और न व्याकुल ही दीखता है।’

क्षुधातुर गरुड़के समीप अधिक विचार करनेका अवकाश नहीं था। बलि-सामग्री शीघ्र समाप्त करके उन्होंने जीमूतवाहनको समूचा निगल लिया और उड़कर अस्थि-पर्वतके ऊपर बैठ गये। भोजनके पश्चात् वे विश्राम करके नागदेहका कङ्काल उगलकर तब जाया करते हैं।

‘महाभाग! तुम कौन हो?’ गरुड़ने बड़ी व्याकुलता अनुभव की। उन्होंने कण्ठ इधर-उधर घुमाया। अस्थि-समूहसे उड़कर नीचे आये। लगता था कि उन्होंने कोई तप्त लौह निगल लिया है। जीमूतवाहनको उन्होंने झटपट उगल दिया और पूछा—‘तुम नाग नहीं हो सकते। तपस्वी ब्राह्मण अथवा भगवद्भक्त, जीव-दया-सम्पन्न पुरुष ही अपने तेजसे मेरे भीतर ऐसी ज्वाला उत्पन्न कर सकता है। अनजानमें हुआ मेरा अपराध क्षमा करो! मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूँ?’

जीमूतवाहनका सर्वाङ्ग गरुड़के जठर-द्रवसे लयपथ हो रहा था। उनके शरीरमें कई खरोंचें थीं; किंतु वे अविचलित, स्थिर शान्त स्वरमें बोले—‘आप परम पुरुष-के कृपाभाजन, परम कारुणीक यदि इस क्षुद्र विद्याधर-पर प्रसन्न हैं तो आजसे इस नागद्वीपके निवासियोंको अभय दें।’

‘महाभागवत, दयाधर्मके धनी जीमूतवाहन!’ गरुड़-ने अब उन्हें पहचान लिया था। ‘तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। तुम्हें प्रसन्न करके तो मैं अपने आराध्यका प्रसाद प्राप्त करूँगा। तुम निश्चिन्त बनो! अब इस द्वीपपर गरुड़ नहीं उतरेगा।’

वैनतेय गरुड़ ही नहीं, कोई सर्पाहारी गरुड़ पक्षी भी उस द्वीपपर फिर कभी नहीं उतरा।

[महाकवि अश्वघोषके ‘नागानन्द’के किञ्चित् आधारपर]

मृत्युसे न डरें !

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्. ए०, पी-एच्. डी०)

आप वृद्ध होते जा रहे हैं और मृत्युकी काली छाया अपने ऊपर छायी देखकर डरे-डरे-से रहते हैं। न जाने किस दिन हम यह जीवन-लीला समाप्त कर चल बसें—यही गुप्त भय आपको निरन्तर परेशान कर रहा है।

मृत्युका भय मनुष्यके लिये सबसे अधिक विक्षुब्ध करनेवाला भय है। बहुत-से व्यक्ति तो इस सीमातक संतुष्ट रहते हैं कि प्रतिक्षण, प्रतिपल कल्पनामें मरा करते हैं।

भर्तृहरिके मतानुसार संसारके प्रायः सभी विषयों, सांसारिक सम्बन्धों—पुत्र-पुत्री, जमीन-जायदादके प्रति अति लगाव, मोह-बन्धनको भयका मूल कारण माना गया है।

अपनी हीनताके बोधके साथ-साथ भी मनुष्यके मनमें नाना प्रकारके काल्पनिक भय उठकर उसे परेशान करते रहते हैं। बहुत-से भय तो ऐसे हैं जिन्हें वास्तवमें डर कहा जा सकता है, पर बहुत-से तो व्यर्थके ही होते हैं।

कोई अशुभ या किसीकी मौतका समाचार सुनकर मृत्युकी बात सोचना और घबरा जाना एक प्रकारका डरपोकपन है, जिसे त्याग देना चाहिये। भय-जैसे मनोविकारके वशीभूत होकर हमेशा दुश्चिन्ताओंमें फँसे रहना मनकी एक कमजोरी है, जिसका त्याग करना आवश्यक है।

आप जिन आशङ्काओंसे व्यर्थ ही भयभीत होते हैं, वास्तवमें वे आपके जीवनमें कभी भी आनेवाली नहीं हैं। मनुष्यका शरीर सौ वर्षोंतक निष्कण्ठक और पूर्ण स्वस्थ रहनेके लिये बना है। बहुत-से व्यक्ति आज भी

ऐसे हैं, जो दीर्घ आयुमें भी सुखकी साँस ले रहे हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

सोवियत संघके सबसे बड़े व्यक्तिको भारत-निमन्त्रण

आगराका एक समाचार है। सोवियत संघके सबसे बृद्ध व्यक्ति शिराली फरजाली मुस्लिमोरको भारतकी दस दिनोंकी यात्राके लिये निमन्त्रित किया गया है। मुस्लिमोर इस समय १५९ वर्षकी लंबी आयुके पुरुष हैं। वे आज भी सोवियत संघके अजरबेजान गणराज्यमें रहते हैं। मुस्लिमोरकी इस यात्राका सारा खर्च व्यय-समितिद्वारा वहन किया जायगा। समिति आगरामें उनके सम्मानमें एक अभिनन्दन-समारोहका आयोजन भी करेगी।

१४० वर्षकी आयुमें भी श्रम

मास्को सोवियत समाचार एजेन्सी 'तास'ने बताया है कि काकेशियाके एक पहाड़ी गाँवमें एक सौ चालीस वर्षकी आयुका एक मुसलमान गड़रिया है जो इस आयुमें भी नित्य प्रातःकाल अपने बागमें कुछ शारीरिक श्रम करता है। वृद्धका नाम है—नासरबाबा मुस्तफायेव और वह दक्षिणी रूसके अजरबेजान क्षेत्रका सबसे बूढ़ा व्यक्ति है। नासरबाबाकी दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि उसके गाँव, तागिरजालमें जितने निवासी हैं, वे सब लगभग नासरबाबाके ही वंशज हैं। प्रतिदिन बिस्तर छोड़कर नासरबाबा ईश्वरका भजन (अल्लाहकी इबादत) करते हैं और फिर मधुर दूध और मक्खनमिश्रित रोटी का नाश्ता कर अपने बागमें श्रम करने चले जाते हैं। जीवनके एक सौ दस साल उन्होंने भेड़ोंकी रखवाली करने, घूमने-फिरने, जंगलकी खुली हवामें विचरण करने

और सक्रिय जीवन जीनेमें व्यतीत किये हैं । उनके आहारमें दूधसे बनी चीजों और सूखे मेवोंकी प्रधानता रहती है ।

फिर आप कम-से-कम सौ वर्षतक जीनेकी तो बात सोचें ।

एक सौ बीस वर्षकी आयु पायी

बैरिया (बलिया) समीपस्थ गाँव जमातपुरके बाबू सरवनसिंहकी मृत्यु लगभग १२० वर्षकी आयुमें हो गयी । गाँवमें आप अन्ततक खूब शारीरिक कार्य करते रहे । अपने खेत और कृषि-कार्योंमें उनकी पूरी दिलचस्पी रही ।

एक सौ बारह वर्षीय तपस्वी स्वयंप्रकाशको श्रद्धाञ्जलियाँ

देहरादूनका एक समाचार है—

एक सौ बारह वर्षीय तपस्वी स्वामी स्वयंप्रकाशके प्रति, जिनका निर्वाण हालमें हरिद्वारमें हुआ, रविवारको एक सभामें श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की गयीं । स्थानीय साधु-बेला उदासीन-आश्रममें आयोजित इस सभामें स्वामी कृष्णानन्द-जीने कहा कि 'स्वामी स्वयंप्रकाशने हरिद्वारमें ८० वर्षों-तक अनार्योंको पढ़ाया और बदलेमें कभी किसीसे एक पैसा भी नहीं लिया ।'

देहरादूनके स्वामी रामतीर्थ मिशनके प्रधान स्वामी गोविन्दप्रकाशजीने अध्यक्ष-पदसे कहा कि 'स्वयंप्रकाशजी-के चले जानेसे ऐसा लगता है कि मानो विद्वानोंका विद्युत्-केन्द्र समाप्त हो गया ।'

एक सौ एक वर्षकी आयु

पटनाका एक समाचार है—

दुमका अनुमण्डलके शुम्भेश्वरनाथ धौनी गाँवके संस्कृत-संजीवन पुस्तकालयके संस्थापक श्रीरामेश्वर पाठककी माता (स्थानीय हिंदी-साहित्य-सेवी श्रीरत्नसूरिदेव मूलनाथ

राजकुमार पाठककी पितामही) का देहावसान एक सौ एक वर्षकी उम्रमें उनके अपने ग्राम स्थित घरपर गत २७ मार्च १९६५ को हो गया ।

फिर आपको जल्दी मरनेकी बात सोचनेसे क्या लाभ है ।

११७ वर्षीय वृद्धद्वारा साइकिल सीखनेका प्रयास

रेवती (बलिया) मझोवा ग्रामके कन्हई गिरिके टोलमें ११७ वर्षीय एक वृद्ध द्वारा साइकिल चलानेकी कला सीखनेके प्रयासके समाचार मिले हैं । कहा जाता है कि उक्त व्यक्ति इस आयुमें भी काफी बलिष्ठ और नवयुवकोंके समान फुर्तीसे कार्य करता दिखायी देता है ।

आप व्यर्थ ही वृद्धावस्थासे डर रहे हैं । आप सोचिये, अभी आपको बहुत जीना है । आपका जीवन बहुत लम्बा है । केवल उचित खान-पान, निश्चिन्त मन, ईश्वराराधन, भजन-पूजन और मानसिक शान्तिकी आवश्यकता है । आप अपनी रुचिका कोई श्रमपूर्ण कार्य करते रहिये और मनको प्रसन्न रखिये ।

मृत्युका भय त्याग दीजिये

मृत्यु जब आयेगी, देखा जायगा । फिलहाल तो मृत्युका भय बिल्कुल अपने मनसे निकाल दीजिये । अपने तथा जगत्के कल्याणकी सैकड़ों बातें हैं, जिनमें आप दिलचस्पी ले सकते हैं और जिंदगीका आनन्द बढ़ा सकते हैं ।

याद रखिये—

जीवितं च शरीरं च आत्मना सह जायते ।

उमे सह विवर्धते उमे सह चिन्श्यतः ॥

(महा० शान्ति० २३१ । ९)

अर्थात् जन्मके साथ ही शरीर और जीवन सत्तामें आ जाते हैं । दोनोंकी वृद्धि साथ-साथ होती है और दोनोंका नाश भी साथ-साथ हो जाता है ।

भूतानां निधनं निष्ठा स्रोतसामिव सागरः ।

नैतत् सम्यग् विजानन्तो नरा मुह्यन्ति वज्रधृत् ॥

(महा० शान्ति० २३१।११)

हे इन्द्र ! प्राणधारियोंकी अन्तिम स्थिति निधन (मृत्यु) है । वह कभी-न-कभी आयेगी ही । उसके लिये चिन्तित होना क्या ? जैसे नदियोंकी यात्राका अन्तिम पड़ाव समुद्र होता है, वैसे ही इस जीवनका अन्तिम छोर मृत्यु है । जो मनुष्य इस तत्त्वको भली प्रकार नहीं जानते, वे ही शोकातुर हो मोहको प्राप्त होते हैं ।

अदर्शवादापतिताः पुनश्चादर्शनं गताः ।

स्नेहस्तत्र न कर्त्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्ध्रुवम् ॥

(महा० अनु० २४४।१२)

हम कहाँसे आये हैं, यह हमें ज्ञात नहीं, हम कहाँ चले जायँगे, इसका भी हमें कोई पता नहीं । अतः जबतक जीवन चले, चलने देना चाहिये और व्यर्थ ही संसारके पदार्थोंमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उनका वियोग तो एक दिन होना ही है ।

यदि कोई सगा-सम्बन्धी बिछुड़ गया है, तो दुखी

मत रहिये । किसी प्रकार उसे भूलनेकी कोशिश कीजिये । कहा है—

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।

समेत्य च व्यपेयातां तद्वज्ज्ञातिसमागमः ॥

(महा० अनु० २४४।११)

जैसे नदीमें बहती हुई एक लकड़ी अन्य लकड़ियोंके साथ मिल जाती है । मिलकर कुछ देरसे इकट्ठी बहती हुई अलग-अलग हो जाती हैं, उसी तरह बन्धु-बान्धवोंका समागम तथा बिछोह है ।

ऐश्वर्यं धनधान्यं च विद्यालाभस्तपस्तथा ।

रसायनप्रयोगाद्वै न तरन्ति नरान्तकौ ॥

(महा० अनु० २४४।५४)

सम्पत्ति, धन-धान्य, विद्याप्राप्ति, तप, रसायनके प्रयोग-से मानव बुढ़ापे और मृत्युसे छुटकारा नहीं पा सकता । फिर व्यर्थ ही क्यों डरें !

जन्म होनेपर ही मृत्यु साथ लग जाती है । जन्मके साथ ही मृत्यु जुड़ी हुई है । मोक्षके तत्त्वको जाने बिना मनुष्य चक्रके समान जन्म-मरणमें घूमता रहता है । अतएव मृत्युकी चिन्ता छोड़ मोक्षके प्रयत्नमें लगना चाहिये ।

सबमें भगवान् देखकर सबका सम्मान-हित करो

पुत्र पितामें देखे ईश्वर, पिता पुत्रमें भी भगवान् ।
पत्नी पतिमें देखे ईश्वर, पति पत्नीमें भी भगवान् ।
मालिक नौकरमें प्रभु देखे, नौकर मालिकमें भगवान् ।
गुरु देखे शिष्योंमें ईश्वर, शिष्य सभी गुरुमें भगवान् ।
प्रजा नृपतिमें देखे ईश्वर, राजा प्रजारूप भगवान् ।
शूद्र विप्रमें देखे ईश्वर, विप्र शूद्रमें भी भगवान् ।
जिससे जिसका, जो कुछ भी हो, जगमें दूर-निकट संबन्ध ।
तदनुरूप व्यवहार करे, पर प्रभुदर्शनका हो अनुबन्ध ॥
करे न कभी किसीका कोई भर-मद-मोह अहित-अपमान ।
करें सभी हित-मान सभीका सबमें सदा देख भगवान् ॥

समाज-शास्त्रकी भारतीय व्याख्या

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

अपनी विदेशी यात्राओंमें जब कभी अवसर मिला, मैंने अपने व्याख्यानोंमें बार-बार यह कहनेकी धृष्टता की थी कि सभ्यताकी दौड़में मनुष्यका जीवन कभी सुखी नहीं हो सकता; यदि वह समाज, समाजके गठन, समाजमें कर्तव्य तथा शासनके कार्यकी उस व्याख्याको न अपना ले, जिसे हजारों वर्ष पूर्व हमारे ऋषि-मुनि तथा साधु-संत प्रतिपादित कर गये हैं।

प्राचीन भारतमें समाज-शास्त्रकी कोई भावना थी भी; ऐसी शंका यदि विदेशी प्रकट करते तो दुःख न होता; पर खेद तो इस बातका है कि समाज-शास्त्रके भारतीय विद्वान् भी इस विषयमें इतने अनजान हैं कि वे भी नहीं स्वीकार करते कि 'हमारे देशमें कभी समाज-शास्त्रकी कल्पना की गयी थी।' आज समाज-शास्त्रका बड़ा जोर है। हजारों भारतीय छात्र बी० ए०, एम्० ए० में समाज-शास्त्र लेकर परीक्षा पास करते हैं। पश्चिमके बड़े-बड़े विद्वान् जैसे आगस्ट काम्ती, बेबेल, पार्सन्स, स्पेंसर, दुर्खीम, मिल, मैकडुवर—इन सबके विचारोंसे ये परिचित होते हैं। थोड़ा-बहुत गाँधीजीके विचार भी वे जान लेते हैं। पर, भारतके समाज-शास्त्रसे वे एकदम कोरे होते हैं।

पश्चिमीय समाज-शास्त्रियोंकी पश्चिमीय वातावरणकी विचारधारासे ओतप्रोत होनेके कारण वे भारतकी परम्परा तथा परिपाटीसे इतने अनभिज्ञ होते हैं कि उनके द्वारा हमारे देशके समाजकी सेवा कितनी कम हो रही है, यह वर्तमान सामाजिक विघटनसे ही स्पष्ट है। जबतक हम अपने देशकी भावना तथा मर्यादा नहीं समझेंगे, हमसे समाज-सेवा क्या होगी? सरकारी स्कूली पाठ्यक्रममें तथा कालेजोंके पाठ्यक्रममें भी भारतीय समाज-शास्त्रको कोई स्थान नहीं है। 'कल्याण' में 'भारतीय साम्यवाद' पर एक सुन्दर लेख छपा था; उससे उन लोगोंकी आँखें खुल जानी चाहिये जो केवल 'कार्ल मार्क्स' से ही परिचित हैं। उससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आजकी 'हाय-हाय' तथा चिन्ताका निदान भारतीय साम्यवाद है।

उसी प्रकार आज विश्वव्यापी सामाजिक रोगका निदान भी भारतीय समाज-शास्त्र है। आवश्यकता इस बातकी है कि

हम उसकी रूपरेखा जाननेकी चेष्टा करें। उसे तिरस्कारकी दृष्टिसे न देखें। उसे समझकर विश्वके सामने रखें।

नीचे मैं अपने देशके समाज-शास्त्रके उत्कृष्ट सिद्धान्तोंको दे रहा हूँ और विश्वभरके समाज-शास्त्रियोंको चुनौती देता हूँ कि इससे ऊँचा, ठोस, सर्वग्राही सिद्धान्त किसीने न कहा है और न कोई आगे कहनेका साहस कर सकेगा।

हमारे देशमें हजारों वर्षसे जिस समाज-शास्त्रकी रचना की गयी थी तथा जिनके सम्बन्धमें स्पष्ट आदेश दिये गये थे, उनका दिग्दर्शन नीचेकी पंक्तियोंसे हो जायगा—

मनुका उपदेश

(मनुस्मृति अध्याय ४)

अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिस्तं समास्थाय त्रिप्रो जीवेदनापदि ॥

(श्लोक २)

ब्राह्मणको चाहिये कि किसी प्राणीको बिना कष्ट पहुँचाये अर्थात् शिलोञ्छ-वृत्तिसे या इसके अभावमें दूसरेको थोड़ा कष्ट देकर अर्थात् याचना-वृत्तिसे निरापद अवस्थामें जीवन-निर्वाह करे।

संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।

संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ (१२)

जिसे सुखकी इच्छा हो, वह परम संतोष धारण कर मनको किसी ओर बहकने न दे; क्योंकि संतोष सुखका और असंतोष दुःखका मूल है।

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।

वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन् विचरेदिह ॥ (१८)

उम्र, क्रिया, धन, विद्या और कुल—इनके अनुरूप वेष, वचन और बुद्धिका व्यवहार करता हुआ सांसारिक जीवन व्यतीत करे।

शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना ।

संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ॥ (३२)

जो संन्यासी या ब्राह्मण या ब्रह्मचारी अपने हाथसे भोजन नहीं बनाते, गृहस्थको चाहिये कि उन्हें यथाशक्ति अन्न दें।

सम्बन्धके अनुरोधसे अन्य प्राणियोंके लिये भी यथाशक्ति अपने पासके अन्न-जलका विभाग करना चाहिये ।

(मनुस्मृति अध्याय ११)

वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या शिशुः सुतः ।

अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुब्रवीत् ॥ (१)

जिसके माता-पिता वृद्ध हों, स्त्री पतिव्रता हो और पुत्र नन्हा-सा हो, उसे सैकड़ों अपकर्म करके भी उन सबका पालन-पोषण करना चाहिये । यह मनुने कहा है ।

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः सम्प्रयच्छति ।

स कृत्वा प्लवमात्मानं संतारयति तावुभौ ॥

(१९)

जो मनुष्य अकर्मियोंसे धन लेकर सत्कर्मियोंको देता है, वह अपनेको जहाज बनाकर उन दोनोंको दुःख-समुद्रसे पार करता है ।

याज्ञवल्क्यका कथन

(याज्ञवल्क्यस्मृति—आचाराध्याय)

भ्रान्तसंवाहनं रोगिपरिचर्या सुरार्चनम् ।

पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानवत् ॥

(२०९)

यके हुए व्यक्तिको शय्या, आसन आदि देकर उसके भ्रमका हरण करना, यथाशक्ति औषध आदि दानसे रोगियोंकी परिचर्या, विष्णु आदि देवका गन्धमाल्यसे पूजन, द्विजोंके चरणोंका धोना और उनके ही उच्छिष्टका मार्जन—ये सब पूर्वोक्त गोदानके तुल्य जानने चाहिये ।

अन्यायेन नृपो राष्ट्रात् स्वकोशं योऽभिवर्धयेत् ।

सोऽचिराद्विगतश्रीको नाशमेति सबान्धवः ॥

(३४०)

जो राजा अन्यायसे अपने कोषको बढ़ाता है, वह थोड़े ही कालमें लक्ष्मीसे हीन होकर बान्धवोंसहित नष्ट हो जाता है ।

(याज्ञवल्क्यस्मृति—व्यवहाराध्याय)

गणद्रव्यं हरेद् यस्तु संविदं लब्धयेच्च यः ।

सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद् विप्रवासयेत् ॥

(१८७)

जो मनुष्य समुदायके द्रव्यको चुराता है और संविदको लौंघता है, उसके सब धनको छीनकर अपने देशमेंसे निकाल दे ।

कर्तव्यं वचनं सर्वैः समूहहितवादिनाम् ॥

(१८८)

समूहवालोंके मध्यमें जो समूहके हितको कहें, उनके वचनको सब करें ।

समूहकार्यं आयातान् कृतकार्यान् विसर्जयेत् ।

सदानमानसत्कारैः पूजयित्वा महीपतिः ॥

(१८९)

समूहकी कार्यसिद्धिके लिये जो अपने समीप आये हों और उन्होंने अपना कार्य कर लिया हो तो दान, मान, सत्कारसे उनका पूजन करके वह राजा विसर्जन करे ।

समूहकार्यप्रहितो यल्लभेत तदर्पयेत् ॥

(१९०)

राजाके पास समूहके कार्यार्थ महाजनोंके भेजे हुए जो-जो सुवर्ण, वस्त्र आदि राजासे मिले, वह बिना याचनाके ही महाजनोंको स्वयं निवेदन कर दें ।

भर्मज्ञाः शुचयोऽलुब्धा भवेयुः कार्यचिन्तकाः ।

कर्तव्यं वचनं तेषां समूहहितवादिनाम् ॥

(१९१)

वेद और स्मृतिमें कहे धर्मके ज्ञाता बाह्य और भीतरसे शुद्ध धनके निर्लोभी हों, कार्योंके विचारकर्ता, समूहके हितवादी हों, उनका वचन आदरसे सब मनुष्य मानें ।

चरकसंहितामें उपदेश

सत्यं भूते दया दानं बलयो देवतार्चनम् ।

सद्वृत्तस्यानुवृत्तिश्च प्रशमो गुप्तिरात्मने ॥

(चरकसंहिता, विमानस्थान, अध्याय ३)

सत्य बोलना, प्राणियोंपर दया करना, दान करना, देवताओंका पूजन करना ।

धार्मिकैः सात्त्विकैर्नित्यं सहास्यां वृद्धसम्मतैः ॥

सात्त्विक और वृद्ध-सम्मत पुरुषोंके साथ नित्य उठना-बैठना ।

इत्येतद् भेषजं प्रोक्तमायुषः परिपालनम् ।

आयुकी रक्षाके लिये ये पूर्वोक्त उपाय औषध-रूपमें कहे गये हैं ।

महाभारतमें उपदेश

ज्ञातिसम्बन्धिभिन्नाणि व्यापन्नानि युधिष्ठिर ।

समभ्युद्धरमाणस्य दीक्षाश्रमपदं भवेत् ॥

(महाभारत शान्ति० ६६।८)

हे युधिष्ठिर ! जो अपने जाति, बान्धव, सम्बन्धी और

मित्रोंको विपत्तिसे बचाते हैं, उनको वानप्रस्थ आश्रमका पुण्य प्राप्त होता रहता है।

बालवृद्धेषु कौन्तेय सर्वावस्थं युधिष्ठिर ।
अनुक्रोशक्रिया पार्थ सर्वावस्थं पदं भवेत् ॥

(२०)

हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! सारी अवस्थाओंमें बालक, वृद्ध आदि सबके ऊपर जो दया करता है, वह सब आश्रमोंके फलका देनेवाला है।

काले विभूति भूतानामुपहारस्तथैव च ।
अहंयन् पुरुषव्याघ्र साधूनामाश्रमे वसेत् ॥

(३०)

हे पुरुषव्याघ्र ! जो राजा समयपर प्राणियोंको धन, दान और उपहार देता है, वह साधुओंसे सेवित सारे आश्रमोंके फलका अधिकारी बन जाता है।

महाभारत शा० अ० ५६

आदावेव कुरुश्रेष्ठ राज्ञा रत्ननकाभ्यया ।
दैवतानां द्विजानां च वर्तितव्यं यथाविधि ॥

(१२)

हे कुरुश्रेष्ठ ! सबसे प्रथम राजाको प्रजारत्ननके निमित्त देवता और द्विजोंकी यथाविधि पूजा करनी चाहिये।

दैवतान्यर्चयित्वा हि ब्राह्मणांश्च कुरुद्वह ।
भानृण्यं याति धर्मस्य लोकेन च समर्च्यते ॥

(१३)

हे कुरुवंशश्रेष्ठ ! जब राजा देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा कर लेता है तो वह धर्मसे उन्नत हो जाता है, जिससे उसकी लोकमें बड़ी पूजा होती है।

भवितव्यं सदा राज्ञा गर्भिणीसहधर्मिणा ।
कारणं च महाराज शृणु येनेदमिष्यते ॥

(४४)

राजाको सर्वदा गर्भिणी स्त्रीके समान सहनशील होना चाहिये। हे महाराज ! इस विषयमें जो उपपत्ति है, वह आप सुनो।

यथा हि गर्भिणी हित्वा स्वं प्रियं मनसोऽनुगम् ।
गर्भस्य हितमाधत्ते तथा राज्ञाप्यसंशयम् ॥

(४५)

जिस तरह गर्भिणी अपने मनको प्रिय लगनेवाली वस्तुका परित्याग कर देती है और गर्भके बालकका हित करती रहती है।

वर्तितव्यं कुरुश्रेष्ठ सदा धर्मानुवर्तिना ।
स्वं प्रियं तु परित्यज्य यद्यल्लोकहितं भवेत् ॥

(४६)

उसी तरह राजाको भी सर्वदा धर्मानुसार बर्ताव करना चाहिये। राजा भी अपने हितकारी कामोंको छोड़कर प्रजाके हितके लिये कार्य करें।

मार्कण्डेयपुराणमें उपदेश

तुषाङ्गारास्थिशीर्णानि रजोवस्त्रादिकानि च ।

नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञः पथि चैवं तथा भुवि ॥

(मार्कण्डेयपुराण ३४।२५)

भूसी, भस्म, हड्डी, अपवित्र मिट्टी तथा धूलि और अपवित्र वस्त्रपर न बैठें। विद्वान्को चाहिये कि बिना आसन-के पृथ्वी एवं मार्गपर भी न बैठें।

पन्था देयो ब्राह्मणानां राज्ञो दुःस्नातुरस्य च ।

विद्याधिकस्य गुर्विण्या भारतेत्य यत्रियसः ॥

(३४।३७)

ब्राह्मण, राजा, दुःखी व्यक्ति तथा बीमारको रास्ता दे देना चाहिये। विद्वान्, गर्भिणी स्त्री तथा जिसके सिरपर बोझा हो एवं शिशुको भी रास्ता दे देना चाहिये।

मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपान् मायिनस्तथा ।

न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गांश्च नोपहासेन दूषयेत् ॥

(३४।४६)

मूर्ख, पागल, मद्य आदि व्यसनोंका सेवन करनेवाले, कुरूप तथा जिनके अङ्ग-भङ्ग हो, एवं जिनके अङ्ग अधिक हों (जैसे किसीके छः अँगुलियाँ हैं) और जो मायावी हों, उनकी हँसी नहीं उड़ानी चाहिये।

गुरुणामासनं देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ।

अनुकूलं तथाऽऽलापमभिवादनपूर्वकम् ॥

(३४।३२)

गुरुओंको आसन देना चाहिये तथा उठकर उनका सत्कार करना चाहिये। प्रणाम करनेके बाद अनुकूल बातचीत करनी चाहिये।

तथानुगमनं कुर्यात्प्रतिकूलं न संलपेत् ॥

(३४।३२)

गुरुका अनुगमन करना चाहिये, गुरुके विरुद्ध बात नहीं कहनी चाहिये।

श्रीमद्भागवतके उपदेश

समुद्धरन्ति ये विप्रं सीदन्तं मत्परायणम् ।

तानुद्धरिष्ये नचिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥

(११।१७।५४)

जो लोग विपत्तिमें पड़े, कष्ट पा रहे मेरे भक्त ब्राह्मणको विपत्तियोंसे बचा लेते हैं, उन्हें मैं शीघ्र ही समस्त आपत्तियोंसे उसी प्रकार बचा लेता हूँ, जैसे समुद्रमें डूबते हुए प्राणीको नौका बचा लेती है।

सर्वाः समुद्धरेद् राजा पितेव न्यसनात् प्रजाः ।
आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥
(११।१७।४५)

राजा पिताके समान सारी प्रजाका कष्टसे उद्धार करे—
उसी प्रकार जैसे गजराज दूसरे गजोंकी रक्षा करता है और
धीर होकर स्वयं अपने आप अपना उद्धार करे।

एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ।
विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिन्द्रेण सह मोदते ॥
(११।१७।४६)

जो राजा इस प्रकार प्रजाकी रक्षा करता है, वह सारे
पापोंसे मुक्त होकर अन्त समयमें सूर्यके समान तेजस्वी
विमानपर चढ़कर स्वर्गलोकमें जाता है और इन्द्रके साथ
सुख भोगता है।

सीदन् विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत् ।
खड्गेन वाऽऽपदाक्रान्तो न श्ववृत्त्या कथंचन ॥
(११।१७।४७)

यदि ब्राह्मण अध्यापन अथवा यज्ञ-यागादिसे अपनी
जीविका न चला सके तो वैश्यवृत्तिका आश्रय ले ले और जब-
तक विपत्ति दूर न हो जाय, वैसा ही करे; यदि बहुत बड़ी
आपत्तिका सामना करना हो तो तलवार उठाकर क्षत्रियोंकी
वृत्तिसे भी अपना काम चला ले, परंतु किसी भी अवस्थामें
नीचोंकी सेवा, जिसे श्वानवृत्ति कहते हैं, न करें।

कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमादयेत् कुटुम्ब्यपि ।
विपश्चिन्तश्चरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥
(११।१७।५२)

गृहस्थ पुरुष कुटुम्बमें आसक्त न हो। बड़ा कुटुम्ब
होनेपर भी भजनमें प्रमाद न करे। बुद्धिमान् पुरुषको यह
बात भी समझ लेनी चाहिये कि जैसे इस लोककी सभी वस्तुएँ
नाशवान् हैं, वैसे ही स्वर्गादि परलोकके भोग भी नाशवान्
ही हैं।

पद्मपुराणमें उपदेश

भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति ।
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ ॥

जो भूमिको लेता है और जो भूमिको देता है, वे दोनों
ही पुण्य करते हैं तथा निश्चय ही स्वर्ग जाते हैं।

प्राचीन भारतीय समाज-शास्त्रके ये अनमोल रत्न सिद्ध करते
हैं कि प्राचीन भारतमें धर्मके साथ सामाजिक कर्तव्यका मेल
मिला देनेसे मानव-जीवनकी मर्यादा निश्चित कर दी गयी थी
तथा आजके समाजकी समस्याओंका त्याग तथा धर्मके
मार्गद्वारा उचित उपाय निकाल दिया गया था।

वैदिक मन्त्र

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वं संजानाना उपासते ॥
(ऋ० १०।१९१।३)

आप सब परस्पर प्रेमसे मिल करके काम करें, परस्पर
प्रेमसे बोलें, मनका विचार प्रेमसे जानें, आचार-उच्चारमें
सबसे एकता करें। प्राचीन समयमें ज्ञानीजन परस्पर प्रेमसे
मिलकर सब काम करते थे, आप सब वर्तमान समयमें
ऐसा करें।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ॥
(यजु० २६।२)

हम जिस प्रकारसे क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय, क्या वैश्य,
क्या शूद्र, क्या आत्मीय, क्या अनात्मीय—किसीसे भी अकल्याण
वाक्य प्रयोग न करें।

समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥
(ऋ० १०।१९१।४)

आप सबके संकल्प एक हों, आप सबके हृदय—
एक हों, आप सबकी मनोवृत्तियाँ एक हों, आप सब परस्पर
सुन्दर सहायतासे काम करनेवाले हों।

समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः
समानेन वो हविषां जुहोमि ॥
(ऋ० १०।१९१।३)

आप सबका विचार एक हो, आप सबकी सभा एक विचारवाली हो, आप सबका मन-संकल्प एक हो, आप सबका कर्तव्य-निश्चय एक हो। आप सबको एक होनेकी और एकमतसे कार्य करनेकी हम आज्ञा करते हैं।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा

भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिः

व्यशेम देवहितं यदायुः॥

(शु० य० सं०)

हे यजन करनेवाले यजमानोंके पालक देवताओ ! दृढ़ कर-चरणादि शरीर वा पुत्रादिसे युक्त होकर तुम्हारी स्तुति

करते हुए कानोंद्वारा कल्याणयुक्त अनुकूल वार्त्ताको सुनें, नेत्रोंसे कल्याणको देखें और देवताओंके उपासनायोग्य जीवनको प्राप्त करें।

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।

तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥

(प्रसिद्ध शान्ति-पाठका मन्त्र)

परमात्मा हम दोनोंकी साथ-साथ रक्षा करें। हमारा साथ-साथ पालन करें। हम साथ-साथ विद्यासम्बन्धी सामर्थ्य प्राप्त करें। हमारा अध्ययन किया हुआ तेजस्वी हो। हम द्वेष न करें।

यह है सच्चा समाज-शास्त्र।

आत्मोत्थानका प्रथम सोपान—सरलता

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

भारतीय मनीषियोंने आत्मा-परमात्मा एवं धर्म-अधर्मके सम्बन्धमें जितना गम्भीर चिन्तन किया है उतना चिन्तन अन्य किसीने नहीं किया। दीर्घकालीन कठोर साधनाद्वारा उन्होंने जो अनुभव किया उसे सबके कल्याणके लिये अधिकाधिक प्रचलित भी कर दिया। इसीलिये भारत अध्यात्म-प्रधान या धर्मप्रधान देश कहलाया। आज भी विश्वको भारत सबसे अधिक और उच्च कोई विचारधारा दे सकता है तो वह अध्यात्मकी ही दे सकता है। विश्वमें अधिकांश देश एवं धर्म तो आत्माको ही नहीं मानते, फिर पाप और पुण्यपर गम्भीर चिन्तन वे करें ही क्यों ?

भारतीय ऋषि-मुनियोंने आत्माको शुद्ध और शाश्वत माना है। वर्तमानमें आत्माकी जो अवस्था है वह तो अशुद्ध है, इसीलिये ऐसी अवस्था किन कारणोंसे आयी और कैसे आत्माके शुद्ध और मूल-स्वरूपको प्राप्त किया जा सकता है, इस विषयमें काफी विचार किया गया और अन्तमें जिन कार्योंके द्वारा आत्माको विशुद्ध और निर्मल बनाया जा सकता है उन्हें अपनानेपर जोर दिया गया। हमारे दुःखोंका कारण पाप या अधर्म है। और वास्तविक सुख तथा आनन्द धर्मसे मिल सकता है। धर्मके अनेक प्रकार हैं पर मूल भावना सबकी एक ही है।

धर्मके अनेक प्रकार बतलाये गये हैं। उनमें दस विशेष

प्रसिद्ध हैं। जैन और जैनेतर ग्रन्थोंमें निम्नोक्त दस प्रकारके धर्म बतलाये गये हैं—

संयमः सूनृतं शौचं ब्रह्मार्किचनता तपः।

क्षान्तिर्मादवमृजुता मुक्तिश्च दशधा स तु॥

(हेमचन्द्ररचित योगशास्त्र, प्रकाश ४।१३)

सेव्यः क्षान्तिर्मादवमार्जवशौचे च संयमत्यागौ।

सत्यं तपो ब्रह्मार्किचन्यानीत्येष धर्मविधिः॥

(प्रशमरति, श्लोक १६७)

जैनेतर—

मनुस्मृति और पद्मपुराणमें भी धर्मके दस प्रकार बतलाये हैं। यद्यपि नामोंमें कुछ भिन्नता है—

वृत्तिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते।

अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्॥

(मनुस्मृति ६।१२-१३)

अथाहिंसा क्षमा सत्यं ह्रीः श्रद्धेन्द्रियसंयमः।

दानमिज्या तपो ध्यानं दशकं धर्मसाधनम्॥

(पद्मपुराण ६९।५)

इस संसारमें प्राणी दुःख पा रहे हैं उसका कारण कर्मों-का बन्ध माना गया है और कर्मबन्धके दो मुख्य कारण

हैं—राग और द्वेष । संसार-वृद्धि चार कषायोंके कारण होती है—क्रोध, मान, माया और लोभ । इनमेंसे क्रोध और मानका समावेश द्वेषमें और माया तथा लोभका रागमें किया जाता है । इन कषायोंकी कलुषितताने ही आत्माके मूल शुद्ध स्वभावको आवृत कर रक्खा है । जबतक राग-द्वेष एवं कषायों-से छुटकारा नहीं मिलता, तबतक आत्माका परमात्मस्वरूप प्रकट नहीं हो सकता । कषायोंके विरोधी क्षमादि गुणोंकी ही धर्मकी संज्ञा दी गयी है । इसलिये स्थानाङ्गसूत्रमें धर्म-प्राप्तिके चार उपाय बताये हैं । क्षमा, मृदुता, (नम्रता), (निरभिमानता), ऋजुता (सरलता) और निर्लोभता । योगशास्त्र और प्रशमरति आदि ग्रन्थोंमें वर्णित धर्मोंके दस प्रकारोंमें भी इन चारोंका समावेश किया ही गया है । वैसे तो इन चारों धर्मोंके उपायोंको अपनानेकी बड़ी आवश्यकता है । पर यदि एक-एक धर्मको भी ठीकसे अपनाया जाय तो क्रमशः चारों धर्मोंका विकास होता चला जायगा । जहाँतक मैंने विचार किया है—इन चारोंमें ऋजुता या सरलता ही धर्मका पहला सोपान विदित होता है । सरल व्यक्तिको स्वभावतः ही क्रोध कम आता है । अभिमान नहीं होता और संतोष रहता है । ऋजुता या सरलता शब्द ही बहुत सुन्दर है । वक्रता, टेढ़ापन ही वास्तवमें अपनेको मलिन करनेका एक बड़ा कारण है । भीतर कुछ और बाहर कुछ दूसरा दिखावा जिस व्यक्तिके होता है, वास्तवमें धर्मकी आराधनाका वह पात्र नहीं है । वह धर्म नहीं करता, ढोंग करता है । स्वयंको अच्छे बनानेकी भावना उसमें उतनी प्रबल नहीं होती, जितनी दूसरोंको अच्छा बतलाने या दिखानेकी भावना होती है । कपट-वृत्ति आत्माको निर्मल और विशुद्ध नहीं बनने देती । वह एक ऐसी मलिनता है जिसके दूर हुए बिना आत्मिक निर्मलता प्राप्त हो ही नहीं सकती । प्रशमरतिमें आचार्य उमापतिने कहा है—

जानार्जवो विशुध्यति धर्ममाराधयत्यशुद्धात्मा ।

धर्माद्वते न मोक्षो मोक्षात्परं सुखं नान्यत् ॥

अर्थात् ऋजुता या सरलताके बिना मनुष्यकी आत्मा शुद्ध नहीं हो सकती । अशुद्धात्मा धर्मका आराधन नहीं कर सकती । धर्मके बिना मोक्ष नहीं मिलता और मोक्षके बिना सुख नहीं । अर्थात् मोक्ष या शुद्धताका प्रधान कारण ऋजुता या सरलता ही है ।

सरलता आत्माकी स्वाभाविक वृत्ति है । माया या कपट बाह्य असत्-दर्शा है, उसे प्रयत्नपूर्वक करना पड़ता है ।

सत्य और सरलताका सीधा एवं घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा कपटका और झूठका घनिष्ठ सम्बन्ध है ही । इसीलिये अठारह पाप-स्थानकोंमें झूठ और माया दोनोंका समावेश होनेपर भी माया मृषावादको अलगसे फिर स्थान दिया गया है । वास्तवमें सम्यक्त्व भी सत्यपर ही आधारित है । वस्तुका जैसा स्वरूप है वैसा ही प्रतीतिमें अनुभव होना 'सम्यक् दर्शन' है और मोक्षमार्गका पहला पाया सम्यक् दर्शन ही माना जाता है । उसके बिना ज्ञान और चरित्र, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र नहीं कहलाते । सत्य और सरलता दोनों एक सिक्केके दो पहलू हैं । सत्यका अर्थ है जो जिस रूपमें है उसे उसी रूपमें जानना और सरलताका अर्थ है जैसा भीतर है वैसा ही बाहर होना । वर्तमानमें ऋजुता बहुत ही कम दिखायी-देती है और छल-कपटका विस्तार हो रहा है । आजकल दुर्भाग्यवश साधारणतया यही माना जाने लगा है कि छल-कपट एवं झूठके बिना संसारका व्यवहार नहीं चलता । पर वास्तवमें बात तो यह है कि सत्य और सरलताके बिना संसार नहीं चल सकता । यदि हम एक-दूसरेपर विश्वास न करें तो सारा व्यवहार ठप्प हो जायगा । यदि सभी व्यक्ति झूठे और कपटी हो जायें तो संसारका विनाश अवश्य-म्भावी है । सरलताका अभिप्राय भोलापन या समझसे रहित होना नहीं है, माया-छल-झूठ या कपटसे रहित होना है ।

महाभारतमें सरलताको ही धर्म बतलाते हुए कहा है—सरलता (आर्जव-निष्कपटता) ही धर्म है और कपट ही अधर्म है । सरल मनुष्य ही धर्मात्मा हो सकते हैं ।

मनीषि आचार्यने सत्य और सरलताके सम्बन्धमें बतलाते हुए कहा है—'सत्यको पाना तो बहुत सरल है । बस, एक ही शर्त है कि हमारा हृदय सरल हो । सरल हो जाओ और तुम पाओगे कि सत्य तो तुम स्वयं ही हो । हृदयकी सहजता और सरलताको प्राप्त कर लेना ही धर्म है ।'

माया-कपट, छल-प्रपञ्चसे आज हमारी आत्मामें कलुषितताकी काई जम गयी है । इसीसे आत्मोत्थान नहीं होता । सरलता या निष्कपट-वृत्ति आज दुर्लभ होती जा रही है । दिखावा-ढोंग ही अधिक नजर आता है । इसीलिये आत्म-कल्याणके इच्छुक सज्जनोंका ध्यान आकर्षित करनेके लिये यह निवेदन किया गया है ।

धागे उलझते ही गये !

(लेखक—श्रीरामनाथजी सुमन)

[१]

बचपनमें वह बहुत बीमार रहता था; बाल-यकृत (इन्फण्टाइल लीवर) सूखा आदि भयानक रोगोंसे आक्रान्त । माँ उसे गोदमें रखे और थपथपाते रातें बिता देती थी । वह उसे लिये कहाँ-कहाँ नहीं फिरी—देवी-देवता मनाये गये; ग्रह-शान्ति की गयी; संत-महात्मा-ओंके आशीर्वाद प्राप्त किये गये; डाक्टर-वैद्यकी सेवा-अर्चना हुई । मतलब, रात-दिन वर्षोंकी अनवरत देख-रेख और सार-सँभालके बाद वह कुछ पनपने लगा और पनप गया ।

पिताने साधोंसे उसे पाला; उमंगोंपर उसे दुलराया—दिलका प्यार दिया, पढ़ाया-लिखाया, जो साधन उनके बसमें न थे, वे भी जुटाये—इसलिये कि उसका समुचित विकास हो; वह बड़ा होकर नाम करे; समाजके काम आये । माताने उसे निष्ठा दी; पिताने संस्कार दिये, सुविधाएँ दीं । माँने उसे प्यारकी दीक्षा दी; पिताने उसे जीवनके मूल्योंके प्रति दृष्टि दी । सामान्य, शिष्ट गृहस्थ; दोनोंके मनमें भविष्यकी बड़ी उमंगें थीं, बड़ी आशाएँ थीं, बड़े सपने थे ।

उसे ऊँची शिक्षा दी गयी । समय आनेपर अच्छे घरमें शादी हुई । पढ़ी-लिखी बहू आयी । माँने ललककर बहूको कलेजेसे चिपटा लिया । बहिन भाभी पानेकी उमंगों और अपने ही सपनोंमें सिमटी-सिमटी फूली न समायी । छोटे भाई स्नेहका उपहार पानेकी कल्पनाओंमें खो गये । मित्रोंने बधाइयाँ दीं, पार्टियाँ हुई, उपहार आये, दान-दक्षिणा दी गयी, स्वागत-सत्कारके बाद आगत विदा हो गये । लोगोंने कहा—बड़ी अच्छी शादी हुई है । किसी बातकी कमी नहीं दिखायी पड़ी ।

परंतु कुछ ही महीने बीते थे कि घरमें एक छोटी-सी दरार दिखायी पड़ी; उसे सीमेंटसे जोड़नेका

प्रयत्न भी किया गया परंतु प्रयत्नोंके बाद भी वह न जुड़ सकी । दिन-दिन उसका मुँह खुलता गया—वह बढ़ती गयी । बहूकी भयोंपर बल आया; विषका ज्वार उठा; भ्रुकुटियाँ तनीं और फिर दरार बोल उठी । पहिले एक जिह्वासे; फिर शत-शत जिह्वाओंसे । अपनी शक्तिसे अधिक, साधोंसे दिये ससुरालके गहनोंपर बहूका व्यंग छा गया, 'इन हवाई गहनों'के आगे मैकेके ठोस गहने रखे गये । सासके कलेजेमें एक खोंच लगी, परंतु हँसकर वह उस वेदनाको पी गयी । यह भी व्यर्थ गया । एक-न-एक बात निकलने लगी । धागेमेंसे धागा निकलता गया और वे सब परस्पर उलझते गये । यहाँतक कि बहूका मुँह खुल गया । वह शब्दोंको चबाकर बोलने लगी । उमंगोंसे भरी सासका कलेजा बैठ गया !

परंतु अब भी आशा थी । डोर कटी न थी । जिस बच्चेको माँने अपने खूनसे बनाया है और अपने सुख-आरामका एक-एक कण देकर पाला है, वह तो उसका है ? उसकी वेदना, उसके त्याग, उसके आशीर्वादका मूल्य वह तो लगायेगा ? वह तो अपनी आत्मा है ? परायी लड़की न समझे, वह तो समझेगा ?

पिताके कानमें बातें आतीं । वे सहम जाते क्षणभरके लिये; फिर एक झटकेमें, प्रयत्नपूर्वक उन्हें दूर फेंक देते जैसे कम्रलपर पड़ी बूँदें झटकार दी जाती हैं । कभी सिहरकर आँखें मूँद लेते; सुनकर भी न सुनते, देखकर भी न देखते । 'सब ठीक हो जायगा, समयकी बात है ।'

शुरूमें ऐसा लगा भी कि सब ठीक हो जायगा । लड़केने पत्नीको कोई समर्थन नहीं दिया । परंतु धीरे-धीरे वह भी खीझने लगा । दो बातें पत्नीको सुना देता । फिर पत्नीके साथ माँको भी सुनाने लगा । अब वह 'तुमलोग' और 'हमलोगों'के स्वरमें बात करता

था । मतलब यह कि उसके मनकी जड़ें, जो पैतृक गृहके अंदर थीं, अब कटने लगीं । फिर रात-दिनकी चिक-चिकके आगे उसने कंधे डाल दिये । कहता बहुत कुछ; कहता क्या, भुनभुनाता । परंतु पत्नीसे दृढ़तापूर्वक उसने कभी नहीं कहा कि 'मैं माता-पिता-से अलग नहीं हो सकता और तुम्हें इन्हींके साथ रहना होगा ।' स्वभावतः अपना नया घर बनानेकी बहूकी हौस बढ़ती गयी और पतिकी इस शिथिलताके कारण उमंगों एवं आशाओंसे भरे घरपर अविश्वास, संदेह और निराशाकी अंधियारी छा गयी—ऐसी अंधियारी जिसका कहीं ओर-छोर नहीं, कहीं आदि-अन्त नहीं !

और आज वही माँका लड़ला है कि माँको भूल गया है; बिल्कुल भूल गया है । आता है, जाता है परंतु माँसे बोलता नहीं । बहूने, अपनी समझसे मैदान मार लिया है । वह विजय-गर्वसे फूल गयी है । माँ अपने ही लड़केके मुँहसे 'माँ' शब्द सुननेके लिये तरस रही है । छटपटा-छटपटाकर रह जाती है । टूट गयी है; अंदर-बाहर सब ओरसे टूट गयी है । जीती है परंतु मरी हुई है । ओठ हँसना भूल गये हैं; आँखों-का प्रकाश झड़ गया है ।

लड़केकी, भाईकी एक जमानेकी दुलारी-प्यारी बहिन सहमकर रह गयी है—जैसे उसकी चञ्चलताके पगोंमें किसीने भारी पत्थर बाँध दिये हों । जो थिरकती थी, वह डगमगाती चलती है । कलकल हँसीके सोते सूख गये हैं । कोई मनुहार नहीं, कोई आग्रह-अपेक्षा नहीं । कली खिलनेके पहिले ही, तुषारपातमें मुर्झा गयी है ।

दो भाई थे । जीते हैं, हँसते हैं, खाते-पीते हैं किंतु उनका जीवन सहज स्रोतोंसे कटकर अलग हो गया है । वे होकर भी नहीं हैं । विच्छिन्न हैं, विखण्डित हैं, अपने लिये हैं । बल्कि अपने लिये भी नहीं हैं । दूसरोंसे जुड़ नहीं पाते । परिणीताके रूपमें स्त्रीसे डर गये हैं । जैसे उनके जीवनपर एक प्रेतकी

छाया हो, जो उठते-बैठते, चलते-फिरते, बोलते-चालते उन्हें विवश, अस्वाभाविक रख रही हो ।

और पिता ? केवल अपने काममें सिमिटकर रह गये हैं, कामके अतिरिक्त और कुछ उनके लिये नहीं है । काम ही उनका एकमात्र भोग है । वे हैं और काम है, काम और वे हैं । चलना है, चलते जा रहे हैं । मंजिलकी चाह नहीं; पगोंमें कहीं पहुँचनेकी उमंग नहीं । उन्हें कहीं जाना नहीं है, कहीं पहुँचना नहीं है । फिर भी चलना है और चलना है । अपने ही दुःखोंके बोझसे स्त्री कटकर, थककर पीछे रह गयी है । पुत्र न कभी साथ थे, न हैं और कन्या कब साथ दे सकती थी ? बस, अकेले चले जा रहे हैं और चले जा रहे हैं । एक भयावनी, लम्बी, एकाकी यात्रा, जहाँ कोई साथी नहीं है, परंतु अपेक्षाएँ सबकी हैं ।

बहुत दिनोंसे मैं इस दुःखान्त नाटिकाको देखता आ रहा हूँ । धागे बराबर उलझते ही गये हैं । एक घरके अनेक बनते मैंने देखे हैं, किंतु एक ही घरमें खण्डित अनेक टूटे घरोंकी यह मर्मवेदना-भरी पुकार हृदय बेध देती है । एक रुदन है—निरन्तर रुदन जो घुटा-घुटा-सा है और फूटते-फूटते रह जाता है । चीत्कार और उद्गार भी नहीं,—एक आहत, मौन, सिसकियोंका खंडहर । वहाँ प्रवेश करते ही एक अजब सन्नाटा छू जाता है, लगता है यहाँ हाड़-मांस आशा-उमंगोंसे भरे आदमी नहीं, प्रेरित प्रेत-छायाएँ चल-फिर रही हैं । यहाँकी हवा बोझिल है, एक-एक साँस भारी है; दम घुटता है ।

एक सामान्य, सरल, जवान उमंगोंवाला लड़का एक आत्मविस्मृता नारीके अस्त्रोंका शिकार हो गया । सारा घर उसमें जल गया । एक छोटा हरा-भरा संसार राख हो गया !

(२)

जब-जब इस दुर्घटनाकी याद करता हूँ, रोंगटे खड़े

हो जाते हैं और मेरे स्मृति-पटपर बौद्ध जातककी एक कथा उभर-उभर आती है। श्रावस्ती नगरीकी बात है। एक सदाचरणशील युवक। मातृभक्त। पिता मर गये तो उसने अपना जीवन माँके लिये समर्पित कर दिया। सुबहसे राततक, उसके उठनेसे सोनेतक, उसका सब काम स्वयं करता। माँ मनमें मगन होती परंतु पुत्रके कष्ट-दुःखपर उसका जी भर-भर आता। वह चाहती थी कि पुत्र ब्याह कर ले; बहू घर आ जाय तो उसकी भी सेवा होगी और पुत्रको भी आराम मिलेगा। एक दिन उसने ब्याहके लिये बड़ा आग्रह किया और बोली—‘बहू मेरी सेवा करेगी और तुझे अन्य काम करनेका समय मिल जायगा।’

परंतु लड़का था समझदार। नहीं चाहता था कि कोई आकर उसकी मातृ-सेवाका यज्ञ खण्डित कर दे। उसने कहा—‘मैं तो अपने कल्याणके लिये तुम्हारी सेवा करता हूँ। कोई दूसरा वैसा कैसे कर पायेगा ?’ माँने बहुत समझाया, कहा—‘यही परम्परा है, तुम ऐसा न करोगे तो संतति-शृङ्खला समाप्त हो जानेसे कुलका लोप हो जायगा।’ परंतु पुत्र दृढ़ रहा। उसने गृहस्थीके जंजालमें पड़नेसे इन्कार किया; बोला—‘जबतक तुम जिओगी, तुम्हारी सेवा करूँगा। तुम्हारे देहावसानके बाद परिव्राजक हो जाऊँगा।’

परंतु प्रत्येक माँके मनमें ललक होती है पुत्रका विवाह करनेकी। जैसे एक दिन वह इस घरमें लायी गयी थी और उसकी सासने उसका स्वागत किया था, सिखाया-पढ़ाया था और फिर समय आनेपर यह घर सौंपकर चली गयी थी, वैसे ही इस घरकी जीवन-शृङ्खला बनाये रखनेवाली एक परिणीता ले आने और सिखा-पढ़ाकर कालान्तरमें उसके हाथ पुत्र तथा गृह छोड़ जानेकी चिरन्तन साध उसके मनमें भी थी। इसलिये माँ रोज कहती; पुत्र रोज इन्कार करता। यहाँतक कि एक दिन पुत्रकी स्वीकृतिके बिना ही अपना कर्तव्य समझ

उसने विवाह कर दिया; समान गुणधर्मशील एक पुत्रवधू ले आयी। पुत्र उसके साथ रहने लगा; जीवन बिताने लगा परंतु माँकी सेवाकी ओरसे जरा भी उदासीन नहीं हुआ। बहूने पतिका रुख देखकर सासकी निष्ठापूर्वक सेवा की और उसकी दुलारी बन गयी। परंतु ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, उसने देखा कि पतिमें उसके प्रति जितनी आसक्ति है, माँके प्रति भक्ति उससे कहीं अधिक है। बस, सामान्य नारीकी ईर्ष्याने कलेजेमें करवट ली। उसने निश्चय किया कि उनका मन माँकी ओरसे फेर देगी। इसके लिये बड़ा मायाजाल फैलाया, तरह-तरहसे पतिके मनपर अपना जादू स्थापित करनेकी चेष्टा की और जब उसे विश्वास हो गया कि उसके प्रति पति अनुरक्त हो चले हैं तब उसने बड़े कौशलसे अपना विष-वाण चलाया और प्रकट कर दिया कि वह अपनी खूबसूरत सासके साथ न रहेगी; या तो वह रहेगी या सास रहेगी; दोनों इस घरमें न रह सकेंगे।

परंतु पतिके मनका अनुमान लगानेमें उसने भूल की थी, जो सदाशय तरुण गृहिणीके प्रति अपना कर्तव्य पालन करते हुए भी, माँके प्रति पहिले-जैसी ही भक्ति रखता था। उसने सहज भावसे उत्तर दिया—‘यदि यही होना है तो तू चली जा; क्योंकि तरुण होनेके कारण तू कहीं भी अपना पालन-पोषण कर सकती है, जब मेरी जरा-जीर्ण माँ वैसा करनेमें असमर्थ है। उसका तो मैं ही अवलम्ब हूँ इसलिये तू अपने मायके जा सकती है।’

पतिकी दृढ़ताने पत्नीकी आँखें खोल दीं। वह डर गयी। सोचा—‘इनकी दृढ़ मातृभक्तिको तोड़नेमें मैं असमर्थ हूँ। यह हर्गिज माँको नहीं छोड़ेंगे और मैं मायके लौट जाती हूँ तो सदाके लिये पतिसे वियुक्त होकर विधवा-सा जीवन बिताना होगा।’ इसलिये पहलेकी तरह सासकी सेवा कर उसकी एवं पति दोनोंकी प्रिया बने रहनेमें ही कल्याण है और सासके

प्रति उसका आचरण पुनः अनुकूल हो गया । घर टूटते-टूटते बच गया ।

(३)

दोनों उदाहरणोंपर विचार करते हैं, तो लगता है कि दूसरा पहलेका उत्तर है । पहले घरमें पतिकी शिथिलताके कारण पत्नीके हृदयकी ईर्ष्याका एक बूँद विष दिन-दिन गुणित और घनीभूत होता गया; यहाँतक कि हलाहल हो गया और उस छोटे-से पनपते संसारको उसने सदाके लिये नष्ट कर दिया, जब कि दूसरा घर पतिकी दृढ़ताके कारण बच गया और पत्नीके मनका संचित विष पतिके सघन मातृप्रेमके अमृतमें घुल-मिलकर अमृत हो गया ।

मैं यह नहीं कहता कि सदा ही ऐसा होता है और सभी पत्नियाँ पतिकी दृढ़तासे बदल जाती हैं । अपने स्वभाव एवं संस्कार तो होते ही हैं किंतु यह भी सत्य है कि सौमें नब्बे पत्नियाँ, अपनी सहज समझके कारण पतिकी रुख देखकर ही चलती या अपनेको ढालती हैं । इसलिये थोड़ी-सी दृढ़ता एवं विवेकसे बहुत-से घर नष्ट होनेसे बच सकते हैं । मैं यह भी नहीं कहता कि सब सासों दूधकी धुली होती हैं या सब बहुएँ अपने तन-

मनमें साहीके काँटे छिपाये हुए ही आती हैं । दोष एवं गुण सबमें होते हैं, परंतु प्रत्येक सुशील पत्नी इतना तो समझ ही सकती है कि जो पति उसे मिला है वह उसकी पुश्तैनी या एकमात्र जायदाद नहीं है; उसकी रचना, निर्माण एवं पालन-पोषणमें उसके सास-ससुरने असीम कष्ट सहे हैं; असीम उत्सर्ग किया है; पति उसके हाथमें उसके सास-ससुरका ही दान है और प्रत्येक संततिको विचार करनेपर मानना ही होगा कि माँके त्यागका प्रतिदान कभी पूरा नहीं होता । इसी प्रकार उसे समझना चाहिये कि उसमें पिताकी आत्माका अवतरण है; बहिनके स्नेहने उसका अमृतसे अभिषेक किया है; भाइयोंकी श्रद्धा उसे अभेद्य कवच प्रदान करती है और गृह मानवकी सामाजिकताका, व्यक्तिकी विराटताका प्रथम चरण है, जिसे मिटाकर मानव इकाईकी सुखद यात्रा सम्भव ही नहीं है ।

पहले उदाहरणमें जहाँ धागे उलझते ही गये हैं, तहाँ दूसरेमें उलझते धागे सुलझते गये हैं । अब यह आपके विवेकपर निर्भर है कि आप किस उदाहरणके अनुसरणका निश्चय करते हैं ।

सर्वत्र सब तुम्हीं हो

प्रकृति, पुरुष, परमात्मा तुम ही, माया, शुद्ध ब्रह्म तुम ही ।
जगदीश्वर भगवान् तुम्हीं, हो सर्वान्तर्यामी तुम ही ॥
दिव्यलोक-वैकुण्ठ तुम्हीं हो, हो कैवल्य मोक्ष तुम ही ।
देव तुम्हीं हो, दानव तुम ही, हो सुरलोक-नरक तुम ही ॥
आश्रय तुम्हीं, अनाश्रय तुम ही, दुःख तुम्हीं हो, सुख तुम ही ।
वैभव तुम्हीं, गरीबी तुम ही, कीर्ति तुम्हीं, अकीर्ति तुम ही ॥
मान तुम्हीं, अपमान तुम्हीं हो, स्तुति तुम्हीं, निन्दा तुम ही ।
जन्म तुम्हीं, बीमारी तुम ही, तुम ही जरा, मृत्यु तुम ही ॥
किसी रूपमें मिलो, मिलोगे मुझको सदा एक तुम ही ।
रक्खो कहीं मुझे, नित भरे रहोगे वहाँ एक तुम ही ॥

भावी

[कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपाल माथुर)

(१)

कथा प्रारम्भ करनेके पूर्व कथावाचकजीने बड़े ही मधुर एवं उच्चस्वरमें यह मङ्गलाचरण नेत्र मूँदकर ध्यान करते हुए गाया—

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् ।
बटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि ॥

भगवान् मनमोहनके बालस्वरूपका यह मनमोहक मङ्गलाचरण सुनकर श्रोताओंमें स्तब्धता छा गयी । इसके पश्चात् पण्डितजीने 'शबरीके बेरोंका मधुर स्वाद' प्रसंग-पर प्रेम और करुणासे पूरित कथा सुनाना आरम्भ किया, जिसे अनूठी शैलीमें सुनाते-सुनाते स्वयं पण्डितजीकी आँखोंसे अतिरल अश्रुधारा बह चली और इसी भाँति श्रोताओंके नेत्रोंसे भी प्रेमाश्रुओंकी झड़ी लग गयी । जैसे-तैसे इस परम कारुणिक प्रसंगको समाप्तकर पण्डितजीने प्रवचन करना शुरू किया—“जीवन क्षणभंगुर है, पानीका बुदबुदा है, वायुका झोंका है । प्राण-पखेरू उड़ते तनिक भी विलम्ब नहीं होता । 'हंस' निकल जानेपर तन, कफन, मिट्टी-गिट्टी सब एक समान हैं । इसीसे कहा है कि जबतक श्वास आता-जाता रहे, तबतक भगवान्का भजन प्रत्येक श्वासके साथ करते रहो । यही मानव-जीवनका सार है । अनेक पुण्योंके फलसे मनुष्यशरीर प्राप्त हुआ है । इसे व्यर्थके सांसारिक प्रयत्नोंमें नष्ट करके परलोक मत बिगाड़ो और निरन्तर भक्तिभावके साथ अपनी जिह्वासे 'हरिः शरणम्' की रट लगाते रहो ।”

कथावाचकजीने उपर्युक्त सार-तत्त्वको भलीभाँति समझानेके पश्चात् हारमोनियम बाजेपर एक भक्तिपूर्ण गान मधुर स्वरमें गाकर सुनाया—

‘क्षणभंगुर मानुषकी कलिका,

‘कल प्रातः को जाने खिली ना खिली ।

रट ले हरि नाम अरी रसना,

फिर अंत समयमें हिली ना हिली ॥’

नीरव निशीथके शान्त वातावरणमें यह मधुर गान गूँज गया और श्रोता भी मुग्ध हो गये । कोई ध्यानसे सुनकर आनन्द-मग्न हो रहा था, कोई अपना जीवन व्यर्थ बीत जानेका पश्चात्ताप कर रहा था, तो कोई पण्डितजीकी अपेक्षा सीने-कलाकारोंकी प्रशंसा करते हुए संसारकी असारताको भूले हुए था । निश्चिन्ततासे बातें इस प्रकार हो रही थीं, मानो जीवन पत्थर, लोहा और फौलादकी नींवपर टिका हुआ है—इसे कैसे कोई आँच आ सकती है ! ‘पण्डितजी जीवनके सुख-भोग छुड़ाने और हमें अकर्मण्य बनानेके लिये खाली राम-राम रटनेका निरर्थक उपदेश देना ही जानते हैं—’

पर उपदेस कुसल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥

(तुलसी)

विदेशोंको देखिये, उनके आविष्कारोंने, थोड़े विनाशके साधनोंको छोड़कर, ऐश-आराम भोगनेके साधन कितने अधिक बढ़ा दिये हैं ! इनकी गुपचुपसे कथा-श्रवणके आनन्दमें बाधा आती देख कुछ श्रोताओंने इन्हें धीमी मृदुवाणीमें मना किया, तो भी इनकी काना-फूसी चलती ही रही ।

उधर गायन समाप्त करके कथावाचकजीने कीर्तन कराना शुरू किया—

शिवजीके डमरूसे निकला रघुपति राघव राजाराम ।

शबरीके बेरोंसे निकला पतितपावन सीताराम ॥’

पहली कड़ी पुरुषवर्ग और दूसरी कड़ी नारीवर्ग बोलता था । तन्मय होकर सभी श्रोता तालियाँ बजा-

बजाकर आनन्दमग्न हो कीर्तन कर रहे थे। पास ही सड़कपर मोटर, ताँगा, गाड़ी, साइकल एवं पथिकोंका आना-जाना जारी था। किंतु कीर्तनकी धुनमें मस्त होनेसे किसीको खप्पनमें भी यह भान नहीं था कि अभी-अभी एकाएक कैसी क्या भयंकर दुर्घटना होनेवाली है, जिससे सबके मनसूबे मनहीमें रह जायँगे। इसीसे कहा है—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब ।
पलमें परलय होयगी, फेर करैगो कबब ॥

विपत्ति पहले सावधान करके नहीं आती। भवितव्यताको कोई टाल नहीं सकता। गोखामी तुलसीदास-जीने स्पष्ट चेतावनी दे दी है—

तुलसी जस भवितव्यता, तैसी मिले सहाय ।
आपु न आवे ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय ॥

ऐसा ही हुआ अनभ्र-वज्रपात उस समय। एक सामानसे भरा बड़ा ट्रक सड़कपर जाते-जाते एकदम श्रोताओंकी ओर मुड़ गया। उसे अपनी ओर आते देख सभी श्रोता भयसे अरे-अरे करते हुए बचावकी चेष्टा करने लगे। इतनेमें ही वह लोगोंको कुचलता हुआ निकल गया। श्रोताओंमें चिल्लाहट, करुणक्रन्दन, कराहट और भारी भगदड़ मच गयी। सभी अँधेरी रात्रिमें ऊबड़-खाबड़ गर्त, नाले, नाली, राह-कुराहमें गिरते-पड़ते फँसते भागे। कई अधिक घायल हो गये थे। इनमें वे श्रोता भी थे, जो अभी-अभी 'सब तज हरि भज' के उपदेशपर ध्यान न देकर कथावाचकजीकी हँसी उड़ा रहे थे और अब 'हाय राम हाय राम' कर रहे थे। खबर पाते ही पुलिसने आकर अपना काम शुरू किया। विपत्तिग्रस्त लोगोंके द्वारा गद्गद कण्ठसे आर्त्त-स्वरमें श्रीभगवान्से रक्षा करनेकी प्रार्थना की जा रही थी। करुणा-वरुणालय, अशरण-शरण दीनबन्धु भगवान् सबका आर्त्तनाद सुनते ही हैं। इनका भी सुना और तत्काल उनकी प्रेरणासे परिजन, पुरजंन, खजन,

पड़ोसी, पथिक, स्वयंसेवक दौड़े आये। घायलोंको अस्पताल भेजा गया। उपचारमें डाक्टर, वैद्य, हकीम, जर्हाह तन-मनसे जुट गये। दर्शकोंकी भीड़ लग गयी। वे भी यथायोग्य सेवामें लग गये। कोई कह रहा था—ड्राइवरको भारी दण्ड दो, नशेमें पागल था—संतुलन सँभालता कैसे। कोई ज्ञानीजन होनहारको बलवान् समझकर कह रहे थे—'प्रभुके सभी विधान अच्छेके लिये होते हैं।' कथावाचकजीका यह भजन सबको याद आ रहा था—

क्षणभंगुर मानुषकी कलिका,
कल प्रात को जाने खिली ना खिली ।
रट ले हरिनाम अरी रसना,
फिर अंत समयमें हिली ना हिली ॥...

इस अघट-घटनासे दुखित हो कथावाचक हरिहरराम-जीने पीड़ितोंकी सेवा-सम्हाल करनेमें पूरा योग दिया और कथाकी आयी सारी भेट इस कार्यमें लगा दी। इसके अतिरिक्त उन्होंने पासके ग्रामोंमें प्रयत्न करके कथाका आयोजन कराया। उनके आकर्षक व्यक्तित्व, कथा कहनेकी सुन्दर शैली एवं भगवदनुरागपर मुग्ध होकर भक्तजनोंने बड़े प्रेमभावसे कथाएँ करायीं। वहाँसे भी जो भेटस्वरूप धन प्राप्त हुआ, उसको पण्डितजीने घर न ले जाकर दुखी घायलोंकी सेवा-शुश्रूषामें सहर्ष व्यय कर दिया।

(२)

'बेटा मुन्ना ! तुम्हारे पिताजी अभीतक भोजनार्थ नहीं आये। मुझे प्रतीक्षा करते-करते साँझ हो गयी। जल्दी उनको बुलाकर लाओ—जहाँ हों, वहाँसे खोजकर।'।

डा० गुलजारीलालका निजी अस्पताल बड़े पैमानेपर चलता था। आय खूब थी। वे अपना मुख्य कर्तव्य समझकर बड़ी ईमानदारीके साथ अमीर-गरीब सबका समानभावसे इलाज करते थे। प्रभुने 'हाथमें यश' दे

रक्खा था, जिससे अधिकांश रोगी नीरोग हो जाते थे। आज वे ट्रक-दुर्घटना-ग्रस्त पीड़ितोंकी सेवा-शुश्रूषा करने-में भूखे-प्यासे प्रातःकालसे ही लगे थे। घरपर पत्नी धवरा रही थी। उसने अपने पुत्रको पतिकी खोज करने-को भेजा।

वे आये, बोले—‘प्रिये ! तुम बहुत धवरा गयीं। मैं क्या अबोध बालक था, जो गुम हो जाता ? जानती हो, अनेक श्रोताओंपर कथा सुनते, ट्रक फिर जानेसे कुहराम मचा हुआ है, उनके धायोंकी मरहम-पट्टी कर सेवा करना मेरा पहला कर्त्तव्य है।’

‘सेवा ? ‘पहले पेट-पूजा फिर काम दूजा’ यह कहावत आप सदैव कहा करते हैं। मालूम है, आजकी कितनी आय मारी गयी ? सब रोगी आपकी प्रतीक्षा करते-करते निराश हो लौट गये।’ पत्नीने झल्लाकर कहा।

‘देखो प्रिये ! सेवाके अवसर प्रभु-कृपासे ही प्राप्त होते हैं। और भी सेवा-परायण चिकित्सक वहाँ पहुँचे हैं।’ इस प्रकार पत्नीको बोध देते हुए थोड़ा-सा भोजन जल्दी-जल्दी गलेके नीचे उतारकर गुलजारीलाल तुरंत धायलेंके बीच जा पहुँचे और अपने कार्यमें तत्परतासे गुट गये—जैसे अपने ही परिजनोंकी सेवा-शुश्रूषा कर रहे हों।

दूसरे दिन भी पत्नी जब झल्लायी तब वे गम्भीरभावसे उसे समझाने लगे—‘तुम मुझे कर्त्तव्यसे विमुख करनेपर तुली हो ? डाक्टरकी पत्नी होकर तुम्हें कर्त्तव्यका भान नहीं—केवल धनका लोभ है। पीड़ितोंकी कराह सुनोगी तो तुम्हारा भी रोम-रोम सेवाके लिये आतुर हो जायगा। ऐसे कारुणिक दृश्यको सामने देखकर वही डाक्टर अपनी पत्नीके पास मौन साधे घरपर बैठा रहेगा, जिसके हृदयमें दया नहीं, जिसे कर्त्तव्यका ज्ञान नहीं और जो केवल स्वार्थ-साधनमें ही मस्त होगा। सुनो, सेवाके कई प्रकार हैं—तड़पते रोगीका तन-मन-धन लगाकर

सहानुभूतिके साथ रोग मिटा देना, निराशको आशान्वित बना देना, निरपराधको बचाना, किसीकी आपसी शत्रुता मिटा देना, अनाथ एवं निराश्रितोंको आश्रय देना; लुटेरों, डाकुओं, चोरों, ठगों, उठायीगीरों, धोखेवाजोंसे किसीकी रक्षा करना, अभावग्रस्तकी आर्थिक सहायता करना, असहाय छात्रको सहायता दिलाना, स्मारकरूपमें विद्यालय, धर्मशाला, गोशाला, औषधालय, आतुरालय, देवालय, कुएँ, बावली, प्याऊ आदि बनवाकर उनके संचालनका उत्तम प्रबन्ध करा देना, अन्न-वस्त्रका गुप्त दान देना—इस प्रकार सेवाके अनेक कार्य हैं। इनके करनेसे मानव-हृदयपर ऐसा उत्तम प्रभाव पड़ता है कि उसमेंसे स्वार्थपरता, छल, कपट, असत्य, अन्याय, अप्रेम, अपवित्रता आदि दुर्गुण निकलकर सद्गुणोंकी वृद्धि और भाव-शुद्धि होती है। ‘सत्यं शिवं सुन्दरम्’में अभिरुचि बढ़ती है, जिससे मानव लोकप्रिय तो बनता ही है, पर उसका भगवत्प्रेम दृढ़तर बन जाता है। ऐसे ‘सर्वभूत-हिते रताः’ मानवोंका समाज व्यक्ति, समष्टि, देश, जाति, धर्म और स्वयंको उन्नत करनेमें समर्थ होकर समझने लगता है कि ये सब कार्य भगवत्सेवास्वरूप ही हैं।’

डाक्टर गुलजारीलालने आगे कहा—‘परंतु प्रिये ! हम तो ये सब नहीं कर सकते। हमारी रोजी-रोटी तो रोगियोंकी चिकित्सासे पैसा कमाकर चलती है। किंतु इसी पेशेमें यदि हम थोड़ा-सा उदार बनकर निस्स्वार्थ सेवाभावसे रोगियोंका—दुखियोंका रोग-शोक-दुःख मिटानेमें लग जायँ तो परमात्मा भी हमसे प्रसन्न होगा और यदि इतना भी हम नहीं कर सके, तो हमारी कमाईको, और विशेष रूपसे हमारी मानवताको धिक्कार है ! फिर तो हमारी संज्ञा ‘अनकीट’ और ‘पृथ्वीका भारी भार’ ही होनी चाहिये। अब तो यह सब तथ्य तुम समझ गयी हो न ?’

श्रीमती जसोमतीके स्त्री-सुलभ-भावुक चित्तपर पतिके समझानेका उत्तम प्रभाव पड़ा। वे भलीभाँति जान गयीं कि पीड़ितोंकी सेवा-टहल करना चिकित्सक ही नहीं, प्रत्येक मानवका प्रमुख धर्म है। उन्होंने पतिके साथ सेवा-कार्यार्थ चलनेकी इच्छा प्रकट की। डा० गुलजारीलाल बोले—‘सहर्ष चलो। नारी तो करुणा, प्रेम, दया और कष्टसहिष्णुताकी मूर्ति होती है। राष्ट्रकवि श्रीगुप्तजीने नारीके लिये वाक्य कहकर नारीके मातृत्वमय कोमल भावोंको साकार-सा बना दिया है। मेरा विश्वास है कि मेरी अपेक्षा तुम चौगुनी सेवा कर सकोगी।’ इतना कहकर डा० गुलजारीलाल अपनी पत्नीको दुर्घटनाग्रस्त क्षेत्रमें साथ ले गये और वहाँ दोनों पति-पत्नी घायलोंकी सेवामें जुट गये।

× × ×

कुछ समय बीत जानेपर सब व्यक्ति चंगे हो गये। सबने चिकित्सकोंका सच्चे हृदयसे आभार माना और

मनमें दृढ़ धारणा बना ली कि ‘हमारे इन चिकित्सक महानुभावोंका जब कभी कोई भी कठिन-से-कठिन काम पड़ेगा तो हम तन-मन-धन लगाकर सहर्ष एवं सोत्साह उसे करेंगे। चाहे उस कार्यको सम्पन्न करनेमें हमें कितनी ही परेशानियोंका सामना अथवा रात-दिन अथक परिश्रम करना पड़े; क्योंकि इन्होंने हमें जीवन-दान दिया है।’

उपर्युक्त विचार अति श्रेष्ठ और उच्च श्रेणीकी भावनासे पूरित है। वास्तवमें लोकोपकारकी लाट्सा-से लगनके साथ सेवा करनेका ऐसा ही सर्वोत्तम और अमिट प्रभाव पीड़ित मानवोंके अन्तःकरणपर होता है। प्रत्युपकारके ये उच्चतम भाव मनमें स्वतः उपजते हैं। इनको उपजानेमें किसी प्रेरणाकी आवश्यकता नहीं होती। इन भावोंको वही जानता है, जो किसीके उपकारसे उपकृत हो चुका होता है। दूसरा मानव इन श्रेष्ठ सद्भावोंको नहीं जान पाता।



जीवन-त्रिवेणी

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त ‘हरि’)

नानात्वमें एकत्वका विशुद्ध बोध ज्ञान है। नानात्वमें एकत्वकी सहज अनुभूति प्रेम है। इसी बोध एवं अनुभूतिकी भित्तिपर स्थित सतत सर्वभूतहित-रतता कर्म है।

जीवनमें ज्ञान, प्रेम तथा कर्मकी त्रिधाराओंको एक-रस, एक-रूप तथा एक-नाम होकर बहने दो। जीवनके एक एक क्षणको.....क्षणके एक-एक कणको इनका संगम-स्थल बनने दो। फिर इस त्रिवेणीमें लोक-परलोककी सुध बिसाए, एकचित्त होकर नित्य स्नान करो। स्नान क्या, समा जाओ सदा-सदाके लिये इसमें और फिर देखो चमत्कार। सहज परम-पदमें प्रतिष्ठित होओगे। परमधाममें प्रवेशके लिये अयाचित ही पासपोर्ट प्राप्त होगा। परम प्रियतम स्वयं गले आ लगेँगे। नितान्त जीवन-कृतकृत्यता चरण-चेरी बनी तुम्हारे पीछे-पीछे फिरेगी।

बोलो और क्या चाहिये ?



सृष्टि-संवत्सर—वैदिक ऋषियोंके अनुसार तथा आधुनिक विज्ञानके अनुसार

(लेखक—श्रीधनश्यामसिंहजी गुप्त)

महर्षि दयानन्दने अपनी पुस्तक ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिकाके वेदोत्पत्ति-विषयके खण्डमें सृष्टिकी उत्पत्तिका समय १९,६०८,५२९,७६ वर्ष अंकित किया है। उसके लिये उन्होंने वैदिक प्रमाण भी उपस्थित किये हैं और प्रत्येक आर्य (हिंदू) गृहस्थ जो संकल्प करता है, उस संकल्पके मन्त्रका भी ऋषिने उद्धरण करके सिद्ध किया है कि यह हमारी सर्वविदित बात है। यहाँतक कि न केवल वर्षकी ही गणना की जाती है, किंतु मास, पक्ष, वार और पल-विपलकी भी गणना होती है। संकल्पका मन्त्र निम्न प्रकार है—

श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टा-विंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुक-संवत्सरायनर्तुमासपक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्ते अत्रेदं कृत्यं क्रियते।

इसमें गणितके अनुसार जितने पारिभाषिक शब्द हैं, उनकी कालावधि निश्चित है। यथा—कुल १४ मन्वन्तर हैं, उनमें ६ बीत चुके हैं और सातवाँ चल रहा है। इस सातवें मन्वन्तरका नाम वैवस्वत है। चार युग हैं—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—जो सभी जानते हैं। प्रत्येक युगकी अलग-अलग काल-गणना है। चार युगका एक चतुर्युगी होता है। २७ चतुर्युगी बीतनेके पश्चात् यह २८ वीं चल रही है। इस प्रकार गणना करनेपर इस वर्ष सृष्टि-संवत्सर १९,६०८,५२०,२२ हुआ। लेख लंबा न हो, इसलिये मन्वन्तर आदिकी कालावधियोंकी गणना नहीं की गयी है। जो इसे भी देखना चाहते हों, वे महर्षिकृत ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिकाके उचित पृष्ठोंको देख सकते हैं।

अब यह देखना है कि वर्तमान विज्ञानविशारदोंकी नवीनतम खोजसे सृष्टि-संवत्सरकी गणना कितनी होती है और उनकी खोजके साधन क्या-क्या हैं।

वाइबिल आदि धर्मग्रन्थोंके अनुसार तो सृष्टि-संवत्सरकी

बात छोड़नी ही पड़ेगी; क्योंकि इनकी वैज्ञानिक खोजके साथ तनिक भी तुलना नहीं की जा सकती।

जबतक नवीनतम साधन रेडियो एक्टिविटीका आविष्कार नहीं हुआ था, तबतक वैज्ञानिकोंकी बातें भी मनगढ़न्त कल्पनामात्र थीं। १८वीं सदीमें फ्रांसके विज्ञानवेत्ता श्रीवफ्फनने पृथ्वीके तापमानके आधारपर उसकी आयु ७० हजार वर्ष मानी थी।

किंतु अब इस विषयमें विज्ञान प्रायः पूर्णतातक पहुँच गया प्रतीत होता है। सृष्टि-संवत्सरकी खोजमें दो मुख्य बातें हैं, जो अचूक हैं। यूरेनियम, थोरियम, पोटेसियम आदि रेडियो एक्टिव धातुओंका हास (डिके) तथा सीसा (लेड) में परिवर्तित होना। इस परिवर्तनकी गति सभी अवस्थाओंमें एकरस है, चाहे ताप, परिणाम या दबाव कुछ भी हो।

पृथ्वीके अन्तस्तापकी गणना तथा चट्टानोंकी बनावट एवं समुद्री जलमें लवण-घोल आदिका भी सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन किया गया है।

इन सभी बातोंके अध्ययनसे अब विज्ञानवेत्ता इस परिणामपर पहुँचे हैं कि सृष्टि-संवत्सरका काल लगभग दो अरब वर्ष है। यह काल वैदिक ऋषियोंद्वारा घोषित कालके बिल्कुल अनुरूप है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जिस अनुसंधानके लिये वैज्ञानिकोंने जटिल उपकरणोंके प्रयोगसे पचासों वर्ष लगाकर भी लगभग दो अरब वर्ष निश्चित किया, वहाँ हमारे ऋषियोंने 'लगभग' शब्दका प्रयोग न करके वास्तविक कालकी गणना कैसे की होगी ?

इस सम्बन्धमें भगवद्गीताके दो श्लोक मुझे याद आते हैं—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

योगस्थ ऋषियोंको विश्वका सम्पूर्ण ज्ञान साक्षात्कार हो जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं । 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'—ऋषि केवल मन्त्रज्ञाता नहीं, साक्षात्

देखनेवाले होते हैं । ज्ञानचक्षुसे केवल जाननेवाले नहीं होते । इसमें कुछ भूल भी हो सकती है । परंतु योग-चक्षुसे साक्षात् दर्शन होता है, जिसमें भूल होनेकी कुछ भी गुंजाइश नहीं होती ।

कबीरके काव्यमें भ्रष्टाचार-उन्मूलनकी शिक्षा

(लेखक—श्रीगोवर्धनलालजी पुरोहित, एम० ए०, बी० एड०)

आजकल भ्रष्टाचार मुख्य चर्चाका विषय बना हुआ है । देशके चोटीके नेता इसी उधेड़-बुनमें लगे हुए हैं कि इसे कैसे समाप्त किया जाय ? इस विनाशकारी तत्त्वके खतरेसे देशके विचारक तथा समाज-सुधारक सर्वदासे सजग रहे हैं । यों भ्रष्टाचारकी ठीक-ठीक व्याख्या करना कठिन है । समाज-विरोधी प्रत्येक कार्य-को यह संज्ञा दी जा सकती है । सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया जाय तो अनुचितरूपसे धन कमानेकी लालसाको भ्रष्टाचार कह सकते हैं । धन-लोलुपता, जो भ्रष्टाचारका पर्याय ही है । सभी धर्मोंमें धन-लोलुपताको भ्रष्ट-कार्य बताया गया है । परंतु खेद है कि आजकी शिक्षामें जीवनको निखारनेवाले धार्मिक तत्त्वोंका समावेश नहीं है । यही एक प्रधान कारण है कि आज हम अनुचित-रूपसे धन कमाकर दिन-प्रति-दिन भ्रष्ट होते जा रहे हैं ।

यदि हम अनैतिकरूपसे धन-संचय करना छोड़ दें तो समाज तथा सरकारके भयंकर सिरदर्दको दूर कर सकते हैं । अपने परिश्रमसे जो मिल जाय, उसीसे अपना निर्वाह कर लेना भ्रष्टाचार-रोगकी रामबाण ओषधि है । महात्मा कबीरने यही समझकर धन-लोलुपताको सभ्यसमाजके लिये वातक बताया । उन्होंने अपनी साखियोंमें सरल तथा संयत जीवनपर अधिक-से-अधिक जोर दिया—

कहा चुनावै मेड़ियाँ, लंबी भीति उसारि ।

वर तो साढ़े तीन हाथ, घना तो पौने चारि ॥

कबीर साहेब कहते हैं कि 'हे मानव ! तू विशाल

भव्य महल बनानेमें क्यों लगा है ? अन्त समयमें तेरे लिये तो साढ़े तीन हाथका घर (कब्र) पर्याप्त है । अधिक लंबा है, तो पौने चार हाथ स्थान तेरे लिये बहुत है ।' चोरवाजारी तथा घूसखोर जो बड़े-बड़े महल बना रहे हैं, उनको स्पष्ट चुनौती है ।

सहज मिले सो दूध सम, माँगा मिले सो पानि ।

कह कबीर वह रक्त सम, जामें खैंचातानि ॥

कबीर साहेब इस तथ्यको स्वीकार करते हैं कि जीवन-यापनके लिये धनकी आवश्यकता होती है, परंतु वही धन पवित्र है जो सहजरूपसे परिश्रमद्वारा अर्जित किया गया हो । माँगनेसे मिलनेवाला पैसा पानी-के समान है । परंतु जो धन घृणित साधनोंसे दूसरोंका शोषण करके प्राप्त किया जाता है, वह रक्तके समान है । सम्पत्ति जीवन-यापनका साधनमात्र है, साध्य नहीं ।

साइँ इतना दीजिये, जामें कुटुंब समाय ।

मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥

धन इतना ही पर्याप्त है, जिससे कुटुम्बका भरण पोषण हो सके तथा आनेवाले अतिथि भूखे नहीं लौटें । इससे अधिक धन भ्रष्ट जीवनमें ही सहायक होता है ।

रूखा सूखा खाइ के, ठंडा पानी पीव ।

देख बिरानी चोपड़ी, मत ललचावै जीव ॥

कबीर साहेब कहते हैं कि अपने परिश्रमसे जितना मिले, उसीमें संतुष्ट होना चाहिये । दूसरोंके विलास जीवनको देखकर मनको नहीं ललचाना चाहिये ।

नहीं
योग
कुल

ऐसी गति संसारकी, ज्यों गाड़की ठाट ।
एक पड़ा जेहि गाड़में, सबै जाहि ते बाट ॥

पास-पड़ोसके धन-वैभवको देखकर हमयोग भी अनुचित ढंगसे धन कमानेका प्रयास करते हैं । हमें भ्रष्टाचारियोंका अन्यानुकरण नहीं करना है । अपने विवेक-संसारके सही मूल्योंको पहिचानना है ।

कबीर साईं मुझको, रूखी रोटी देय ।
चुपड़ी माँगत में डरूँ, रूखी छान न लेय ॥

जीवननिर्वाहके लिये जो मिल जाय, उसीमें संतोष करनेसे मनकी पवित्रता बनी रहती है । अधिक प्रलोभन करनेसे कभी-कभी मूल आवश्यकताओंसे भी वञ्चित होना पड़ता है । सड़ा लगानेवाले इसके मुक्त-मोगी हैं ।

आधी तो रूखी भली, पूरी तो संताप ।
जो चाहेगा चोपड़ी तो, बहुत करेगा पाप ॥

जीवन-यापनके लिये जो अपने परिश्रमसे मिले, वह श्रेष्ठ है । इससे अधिक प्राप्त करनेमें मानसिक दुःखोंको आमन्त्रित करना है । यदि हम बहुत ही अधिक प्राप्त करनेका प्रयास करेंगे तो हमें अनेक भ्रष्ट कार्योंका सहारा लेना पड़ेगा । बिना अनाचारके बहुत अधिक धन एकत्रित करना सम्भव नहीं है ।

चलो चलो सब कोइ कहै, बिरला पहुँचे कोय ।
एक कनक और कामिनी, दुर्गम बाटी दोय ॥

सभी लोग आत्मोन्नतिकी बात करते हैं । परंतु कुल ही व्यक्ति आत्मोन्नति कर सकते हैं । आत्मोन्नतिके कार्यमें दो बड़ी बाधाएँ हैं—एक स्वर्णके प्रति लालसा, दूसरी अत्यधिक काम-वासना ।

जुआ चोरी मुखबरी, व्याज बूस पर-नार ।
जो चाहे दीदारको तो एती वस्तु बिसार ॥

कबीर साहेब स्पष्ट रूपसे घोषित करते हैं कि 'ईश्वरको प्राप्त करनेके लिये हमें जुआ, चोरी, परनिन्दा, व्याज, रिश्त तथा परस्त्रीको तिलाञ्जलि देनी पड़ेगी ।' अनुचितरूपसे धन कमानेपर स्पष्ट प्रहार किया गया है ।

तू मन जानें आवरे, मेरा है सब कोय ।
पिंड प्रानसे बँधि रहा, सो अपना नहिं होय ॥

दुनियाभरकी दौड़त बटोरकर रखनेवालोंको स्पष्ट चेतावनी देते हुए कबीर कहते हैं—संसारका कुल भी अपना नहीं है । हे मूर्ख मानव ! शरीरमें ही प्राण निवास करता है । वह भी शरीरको छोड़कर कहीं-का-कहीं चला जाता है । तब व्यर्थमें ही लालची क्यों बनता है ?

गौंठी दास न बाँधई, नहिं नारी से नेह ।
कह कबीर ता साधुकी, हम चरननकी खेह ॥

कबीर साहेब कहते हैं कि 'जो साधु या सज्जन धन-संग्रह नहीं करता और व्यभिचारसे कोसों दूर रहता है, हम उसके चरणोंकी धूल हैं ।'

माखी गुड़में गई रही, पंख रह्यो लिपटाय ।
हाथ मले औ सिर धुनें, लालच बुरी बलाय ॥

लालच ही भ्रष्टाचारका पर्यायवाची शब्द है । यह बहुत ही बुरी वस्तु है । मक्खी भी हमें यही शिक्षा दे रही है कि लालच करना बहुत बुरा है ।

इस तरहकी अनेकों सांख्यिकाँ कबीर साहेबने समाज-के आचरणको शुद्ध करनेके लिये लिखीं । हमें यह निर्विवादरूपसे मानना पड़ेगा कि धनके प्रति अत्यधिक लालसा ही भ्रष्टाचार है । हमारे धर्मशास्त्रोंमें लोभको पापका पिता बताया गया है । अतः यदि भ्रष्टाचारको मिटाना है तो हमें शिक्षा तथा धर्मद्वारा धन-लोलुपता-को समाजके मानससे निकालना होगा । इसके अतिरिक्त और कोई कारगर उपाय नहीं हो सकता ।

भ्रष्टाचार मिटानेके मानवीय उपायोंपर हमारे संत-महात्माओंने अपनी लेखनीसे अत्यधिक प्रकाश डाला है । यदि इन उपायोंको स्वीकार नहीं किया गया तो इसका दूसरा विकल्प आधुनिक साम्यवाद दिन-प्रति-दिन फैल रहा है । भ्रष्टाचारका मूल कारण धन-लोलुपता है । यदि हम इससे दूर नहीं रहे तो साम्यवादी शासनमें हमें पशु बननेके लिये तैयार रहना चाहिये ।

सुरेशके पुनर्जन्मका वृत्तान्त

(लेखक—श्रीप्रकाशजी गोस्वामी)

अपनी मृत्युके एक दिन पूर्व बेमुला (लंका) के निवासी सुरेश मैतृमूर्तिने घोषणा कर दी थी कि मैं कल रातको मर जाऊँगा और उसके दूसरे दिन दशा सुभरनेके वावजूद भी रातके समय उसका देहावसान हो गया । कहा जाता है कि रुग्णावस्थामें ही सुरेशको यह भान हो गया था कि उसकी मृत्यु यदि उसी बीमारी-से हो गयी तो उसका पुनर्जन्म उत्तरी भारतमें कहींपर होगा । उसकी मृत्युके दो वर्ष बाद सुरेशके गुरुभाई श्रीआनन्द नेत्राय मद्रास आये और वहाँके एक सुप्रसिद्ध ज्योतिषीसे सुरेशके पुनर्जन्मके विषयमें पृच्छ-ताछ की । ज्योतिषीने बताया कि सुरेशका पुनर्जन्म बिहारमें हो गया है । इन ज्योतिषी महोदयने यह भी बताया कि इस जन्ममें सुरेशके पिताका नाम रमेशसिंह हैं तथा माताका नाम सावित्री हैं और यह भी बताया कि सुरेश निश्चय ही उन्हें मिल जायगा ।

इतनी सूचना प्राप्त करनेके बाद श्रीआनन्द नेत्रायने बिहारमें जन्मे एक ऐसे बालककी खोजबीन करनी आरम्भ कर दी, जिसका व्यौरा उपर्युक्त वर्णनसे मेल खाता हो । लेकिन बिहार-जैसे प्रान्तमें यह पता लगा लेना आसान काम नहीं था । इसलिये उन्होंने बुद्धगयाके एक भिक्षुको इस सम्बन्धमें पत्र लिखा । भिक्षुने भी बालकका पता लगानेकी पूरी कोशिश की, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली ।

सन् १९५८ में आनन्द नेत्राय मनीलामें एक धार्मिक परिषद्की बैठकमें भाग लेकर वर्मासे कलकत्ता होते हुए बुद्धगया आये । वहाँपर वे अपने एक मित्र भिक्षु सोमानन्दसे मिले और उसके समक्ष उन्होंने सारी घटनाका जिक्र किया । वहाँपर उन्हें एक पथ-प्रदर्शक-द्वारा यह राय भी दी गयी कि पुलिस-दफ्तरके रिकार्डसे

शायद उन्हें बिहारमें कहीं जन्मे सुरेश नामक बालकके बारेमें पता लग सकता है । तदनन्तर पुलिस-रिकार्डमें उसकी छानबीन शुरू हुई ।

वहाँ यह देखकर उनको एक आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता हुई कि ज्योतिषीके बताये अनुसार ही पुलिस-दफ्तरके जन्म-रजिस्टरमें सुरेश बल्द रमेशसिंहका नामाङ्कन तीन वर्ष पूर्व जन्मे एक बालकके रूपमें हुआ था । पुलिसवालोंने उनको दया नामक जगहमें इस सम्बन्धमें विस्तृत जानकारी होनेके बारेमें बताया । वहाँ जानेपर मादूम हुआ कि यह परिवार बुद्धगयासे १० मीलकी दूरीपर जतिया नामक गाँवमें निवास करता है, इस सूचनाके तुरन्त बाद एक ब्राह्मणके लड़केको जतियामें यह जानकारी प्राप्त करनेके लिये भेजा गया । उस लड़केने यह सूचना भेजी कि उपर्युक्त परिवारके सम्बन्धमें चाही गयी सारी जानकारी वहाँपर उपलब्ध है ।

इसके बाद आनन्द नेत्राय सोमानन्द और एक गाइडको लेकर जतिया आये । जतिया गाँवमें प्रवेश करनेसे पूर्व एक किसानने उन्हें बता दिया था कि वहाँके निवासी किसी अजनबीको गाँवमें नहीं आने देते । इसके वावजूद भी जब वे गाँवमें पहुँचे तो उन्होंने देखा कि १०-१५ व्यक्ति लाठियाँ लेकर घटनास्थलपर पहुँच गये हैं । वे लोग यह कह रहे थे कि यदि वे ब्राह्मण या क्षत्रिय हैं, तभी उन्हें गाँवमें आने दिया जायगा । बालकके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेका अपना उद्देश्य जब आनन्द नेत्रायने उन्हें बताया तो वे लोग और भी नाराज हुए । उन्होंने समझा कि यह साधु शायद बच्चेको भगा ले जानेके लिये ही वहाँ आया है । इसलिये जब आनन्द नेत्रायने उनके समक्ष भविष्य-वाणीकी बात कही तो उन्होंने उनसे भविष्यवाणीकी

किताब भी माँगी । शुरू-शुरूमें गाँववालोंको किसी प्रकार भी संतुष्ट नहीं किया जा सका । इसके बाद यह बतानेपर कि वे लंकामें एक बहुत बड़े प्रोफेसर हैं और बहुत दूरसे केवल इसी बातका पता लगानेके लिये वहाँ आये हैं तो वे लोग कुछ संतुष्ट हुए । लेकिन इसके बावजूद भी आनन्द नेत्राय बालक सुरेशसे नहीं मिल पाये और उन्हें वैसे ही वहाँसे लौट आना पड़ा ।

दूसरे दिन बालकके पिता खुद बुद्धगया आये और उन्होंने आनन्द नेत्रायसे अपने व्यवहारके लिये क्षमायाचना की । उन्होंने उस समय यह भी कहा कि यदि वे चाहें तो लौटकर बालक सुरेशसे निस्संकोच रूपसे मिल सकते हैं । किंतु इस बार अधिक समय न होनेसे आनन्द नेत्राय यह कहकर लंका लौट गये कि बालकको उसके पूर्वजन्मकी माताजीसे मिलाना उचित रहेगा ।

अगली बार १९६० में जब आनन्द नेत्राय फिर बुद्धगया आये तो रमेशसिंहने ही आकर उन्हें यह सूचना दी कि बालक सुरेश लंकामें अपनी माँके विषयमें बताने लगा है तथा यह भी बताता है वहाँ उसके एक गुरुभाई भी हैं जो चश्मा पहनते हैं । सुरेश उनसे कई बार लंका ले जाये जानेके लिये भी आग्रह कर चुका है । इस सूचनापर आनन्द नेत्राय रमेशसिंहके साथ जतिया आये और वहाँ उन्होंने पहली बार सुरेशसे भेंट की । सुरेशने जैसे ही उन्हें देखा, कहा जाता है कि उसकी आँखोंमें आँसू आ गये । लेकिन आनन्द नेत्राय बहुत देरतक कठोर ही बने रहे और उन्होंने सुरेशके साथ एक पराये बच्चेकी ही तरह व्यवहार किया । किंतु अधिक समयतक वे स्वयं भी अपने आपको रोक नहीं पाये और उन्होंने अत्यन्त आत्मीय भावसे सुरेशको अपने पास बुला लिया । सुरेश आकर तत्काल ही उनकी गोदीमें बैठ गया । तब सुरेशको उन्होंने अपनी एक घड़ी दिखायी । उसे

देखकर खुशीसे उछलते हुए सुरेशने कहा कि यह तो उसीकी घड़ी है । वास्तवमें यह घड़ी उसीकी थी । उसके बाद वहाँपर आनन्द नेत्रायके साथ बालक सुरेशका फोटो भी लिया गया । इससे पहले सुरेशको देखकर आनन्द नेत्रायने यह भी बताया था कि उसके चेहरेकी बनावट काफी मात्रामें पूर्वजन्मके उसके भाईसे मिलती है ।

बालक सुरेशके वृत्तान्तके सम्बन्धमें कुछ महत्त्वपूर्ण बातें

अपनी मृत्युसे पहले सुरेश मैतृमूर्तिको इस बातकी पूर्व जानकारी हो जाना कि उसका पुनर्जन्म उत्तर भारतके किसी प्रान्तमें होगा और इस घटनाका बादमें सही निकल आना निश्चय ही मनोज्ञानसे सम्बन्धित किसी अभूतपूर्व अनुभवके होनेको सिद्ध करता है ।

मद्रासके एक सुप्रसिद्ध ज्योतिषीका सुरेशके पुनर्जन्मके सम्बन्धमें ५००० वर्ष पूर्व लिखी एक पुस्तकके हवालेसे यह बताना कि उत्तर भारतमें विहार प्रान्तमें उसका फिर जन्म हुआ है और उसके माता-पिताका नाम अमुक-अमुक है और उन तमाम बातोंका अक्षरशः सत्य निकल आना भारतीय विज्ञानकी इस मामलेमें आश्चर्यजनक जानकारीको विश्वके सम्मुख बड़े ही शक्तिशाली ढंगसे प्रस्तुत करता है ।

इन सब बातोंके आधारपर ही आनन्द नेत्रायका खोजके लिये निकल पड़ना और अन्तमें इनसे सम्बन्धित सत्यका साक्षात्कार कर लेना बहुत ही रोमाञ्चक तथा विशिष्ट घटना ही कही जायगी । इसके अतिरिक्त भी इस घटनाका जो एक और महत्त्वपूर्ण पहलू है वह यह कि सुरेशके जीवनमें भविष्यमें होनेवाली घटनाओंकी जानकारी भी ककयारनाडी नामक पुस्तकको देखकर जिस प्रकार दी गयी है, आगे आनेवाले समयमें वे अपना परीक्षण स्वयं होंगी । हमें यही देखना

हैं कि क्या दस सालकी अवस्था प्राप्त कर लेनेके साथ ही सुरेश बौद्धधर्ममें दीक्षित हो जायगा। आदि-आदि।

परामनोविज्ञान-विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर पूर्वाग्रहहित होकर वैज्ञानिक रीतिसे पूर्वजन्मकी घटनाओंकी खोज और अध्ययन कर रहा है। इन घटनाओंकी वैज्ञानिक जाँच हो सके, उसके लिये यह

आवश्यक है कि पाठकोंद्वारा ऐसी घटनाओंकी अधिकाधिक जानकारी विभागको भेजी जाय। इस सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पतेपर किया जा सकता है—

डा० हेमचन्द्रनाथ वनजो
संचालक, परामनोविज्ञान-विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर, राजस्थान

रामवाद भारतीय संस्कृतिकी अद्भुत अनुभूति

(लेखक—श्रीजगतनारायणजी निगम)

जीवनके एक उस विशेष आदर्शको हम रामवादकी संज्ञा दे सकते हैं जिसमें श्रीरामका तत्त्वपूर्ण मनुष्यत्व मानवके इहलौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदयके हेतु एक दिशाकी ओर इङ्गित करता है। हम जितने भी ऊँचे आदर्श मनुष्यकी कल्पना कर सकते हैं, श्रीरामके व्यक्तित्वमें उसे यथार्थ पाते हैं। यह आदर्श अपनेमें सर्वथा सम्पूर्ण है; क्योंकि इसका स्रोत-रूप राम-चरित्र अत्यन्त सरल, नीति-बोधक और प्रत्येक क्षेत्रमें मर्यादासे युक्त है।

श्रीरामके जीवन-चरित्रका यह आदर्श अनेक धाराओंमें प्रवाहित होता-सा लगता है। वे अवतार माने गये हैं, किंतु सदैव जनताके हृदयपर उनके मनुष्यत्वने अधिक गहरा प्रभाव छोड़ा है। राम जो कुछ भी हों, सर्वप्रथम वे एक आदर्श मानव हैं, जिनमें मानवताके समीप वाञ्छनीय तत्त्व स्पष्टरूपसे विद्यमान हैं। वे एक योग्य और कर्तव्यपरायण पुत्र हैं जो कठिन-से-कठिन क्षणोंमें भी पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य करनेके लिये तत्पर हैं। वाल्मीकि-रामायणमें श्रीरामने कहा है कि 'आज्ञाके बिना पिताका कार्य-सम्पादन करनेवाला पुत्र उत्तम है और आज्ञा पानेपर जो पिताका कार्य करता है वह मध्यम पुत्र है तथा जो आज्ञा पानेपर

भी उसका पालन नहीं करता वह तो मलस्वरूप है।' ऐसा कहकर उसे कार्यान्वित कर देनेमें श्रीरामके गम्भीर अन्तःकरणका सुन्दर परिचय मिलता है।

जीवनके भौतिकवादी पहलूको सर्वथा स्वीकार करते हुए भी श्रीराम किसी भी प्रकारके मोह अथवा महत्वाकाङ्क्षासे मुक्त थे। उनके चरित्रपर मनन करनेसे जीवनके प्रति घृणा कदापि नहीं उत्पन्न होती, बल्कि एक दिव्य-प्रेमकी भावना उदय होती है। श्रीरामकी गाथा स्वार्थपरतासे दूर है। राजतिलकके अवसरपर अकेले राज्य स्वीकार करनेमें उन्हें बड़ा अनौचित्य प्रतीत होता है। पिताकी आज्ञासे वे राज्याभिषेकका प्रस्ताव स्वीकार तो कर लेते हैं, किंतु उनके हृदयमें भावना यही है कि मैं एक प्रथमात्र पूरी कर रहा हूँ, वास्तवमें राज्य तो भाइयोंका है। इस अवसरपर भरत और शत्रुघ्नके अनुपस्थित होनेपर लक्ष्मणसे वे कहते हैं—

सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।
जीवनं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये ॥

'भाई सौमित्रे ! तुम (लोग) वाञ्छित भोग और राज्यफलका भोग करो, मेरा यह जीवन और राज्य तुम्हारे ही लिये है।'

श्रीरामके दाम्पत्य-जीवनके उदाहरणसे इस तथ्यकी पुष्टि हो जाती है कि संयम और परोपकारकी भावनासे युक्त गृहस्थ-आश्रम ही सत्र आश्रमोंमें श्रेष्ठ है। उन्होंने गृहस्थ जीवनकी स्थापना धर्मके ऊपर की और व्यक्तिगत भोगकामनादिसे मुक्त होकर इसे ऐसा बना दिया कि विवेक, आत्मत्याग, शान्ति, प्रसाद एवं कर्तव्यपरायणताके गुण स्पष्ट परिलक्षित हो गये।

श्रीरामकी प्रतिभा उनके राजनीतिक जीवनमें भी पूर्णरूपसे उभरी है। यही नहीं, उसमें समाजवादी विचारधारके समुचित तत्त्व भी पर्याप्त अंशमें मौजूद हैं। प्रत्येक प्राणीकी बिना भेदभावके रक्षा उनके राजभावका एक विशेष गुण है। वाल्मीकिजी लिखते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

प्रजाराधन राजाका मुख्य कर्तव्य है। इस मार्गमें आनेवाली सभी बाधाओंको हटाना, भले ही वे निकटतम सम्बन्धियोंके कारण हों, श्रीरामने अपना लक्ष्य बनाया था और सीता-परित्याग तो उन्होंने केवल सिद्धान्तों-पर अडिग रहनेके लिये ही किया। 'उत्तर रामचरित'में भवभूतिने उनसे कहलवाया है—

स्नेहं दयां च प्राणं च अपि वा जानकीमपि ।

आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

सत्य-संधता और शरणागत-वत्सलताके साथ-साथ राजनीतिक दूरदर्शिताके प्रसङ्गोंमें भी हम उन्हें देख पाते हैं। सभी प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखनेवाले श्रीराम अत्याचारियों एवं राक्षस-प्रवृत्तिके मनुष्योंको दण्ड देनेमें कभी नहीं चूके। श्रीरामके बालि-वध आदि अनेक कृत्योंकी यदि हम वर्तमान भारत एवं विश्वकी परिस्थितियोंके संदर्भमें विवेचना करें तो उनकी आवश्यकता और उपयोगिता स्वतः ही सिद्ध हो जाती है। सर्वत्र ईश्वरके अंशको देखनेवाला भारतीय सदासे ही शान्तिका इच्छुक है। किंतु वह ऐसी शान्ति नहीं चाहता, जिससे युगों-युगोंसे प्रतिष्ठित उसकी मान-मर्यादा-को कोई धक्का पहुँचे। श्रीरामके पुनीत आदर्शको सामने रखकर हम शान्ति-प्रतिष्ठापन एवं जनकल्याणके लिये उचित बल-प्रयोग भी कर सकते हैं।

रामवाद हमें जीवनसे प्रेम करना सिखाता है, यह हमारे मानस-पटलपर एक त्यागकी भावना भी जाग्रत करता है। जीवनके प्रारम्भसे अन्ततकके सभी अङ्गोंका उचित मार्गनिर्देशन भी हमें इस सिद्धान्तके अन्तर्गत मिलता है। रामवाद मानवके सर्वतोमुखी विकासका एकमात्र साधन है। यही भारत तथा विश्वकी असंख्य उलझनोंके अन्तके लिये एक सफल सिद्धान्त है।

परम आदर्श राम

मात-पिता-गुरु-भक्ति, एकपत्नीव्रत भावन ।

भ्रातृप्रेम शरणागतवत्सलता मनभावन ॥

परम मधुर सौन्दर्य काम-शतकोटि-लजावन ।

त्याग, शान्ति, वैराग्य, ज्ञान मुनि-चित्त लुभावन ॥

शौर्य-नीति-बल-तेज शुचि उपजावत मन हर्ष है ।

दुष्ट दलन, सेवक सुहृद राम परम आदर्श हैं ॥

संततिनिरोध

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

‘मैं संततिनिरोधका विरोधी हूँ इसलिये कि इससे कुमारियों और विधवाओंमें व्यभिचार बढ़ेगा ।’

‘व्यभिचारकी ओर जानेमें जो अनेक भय हैं, उनमेंसे एककी कमी हो जायगी; परंतु जो सदाचार एवं संयमकी ओर भयके कारण नहीं, उसे कल्याणकारी समझकर अग्रसर होते हैं, उन्हें संततिनिरोधसे क्या भय है ?’

‘मैं संततिनिरोधका विरोधी हूँ इसलिये कि इसका प्रचार अधिकांशतः शिक्षितों और समाजके उच्च वर्गोंतक ही सीमित है । संततिनिरोधसे भारतमें उच्चवर्गका अनुपात और घट जायगा और मैं संततिनिरोधका विरोधी हूँ इसलिये कि यह केवल हिंदुओंतक ही सीमित है । मुसल्मान इसे स्वीकार नहीं करते, जिसका फल कुछ दिनोंमें जाकर यह होगा कि आज जो जनमत-संग्रहकी माँग केवल काश्मीरतक सीमित है, कुछ दशकों पश्चात् कच्छ, केरल एवं असमसे भी उठेगी ।’

‘यह संततिनिरोधका व्यावहारिक पहलू है सैद्धान्तिक नहीं । यदि हम अपना संततिनिरोध-अभियान इस प्रकारसे चलायें कि उसमें अशिक्षित, निम्नवर्ग एवं मुसल्मान भी आ जायें तो फिर आप हमारा विरोध नहीं करेंगे ?’

‘मैं संततिनिरोधका विरोधी हूँ इसलिये कि यह प्रकृतिविरुद्ध है । यदि संततिनिरोधमें ब्रह्मचर्यका आश्रय लिया जाय तो मैं इसका प्रबल समर्थक हूँ, अन्यथा घोर विरोधी । प्रकृतिकी कोई भी चेष्टा निरुद्देश्य नहीं है । उस चेष्टापूर्तिमें जो तृप्ति अथवा आनन्दका अनुभव होता है, वह प्रकृतिकी ओरसे मिलनेवाला पुरस्कार है । संततिनिरोधके कृत्रिम

उपायोंद्वारा हम प्रकृतिको ठगनेका प्रयत्न करते हैं जैसा कि पाचनशक्ति निर्बल पड़ जानेपर जिह्वालोषण रोगी हलवा चबा-चबाकर थूक देते हैं । भोजनका उद्देश्य है शरीरकी पुष्टि । यदि वह उद्देश्य पूर्ण नहीं होता तो केवल स्वादके लिये भोजन करना कहाँतक कल्याणकारी है ? सभी वासनाएँ बीभत्स हैं । काम-वासना तो संसारकी बीभत्सतम वासना है परंतु एक पवित्र उद्देश्यसे जुड़कर वासनाएँ अपनी बीभत्सताको खोकर सुन्दर रूप धारण करती हैं । वासनाओंको उनके पवित्र उद्देश्यसे हटाकर केवल भोगके लिये वासना रहे, इसमें हम मनुष्यको अधःपतनकी ओर ले जा रहे हैं । पति-पत्नी, माता-पिता एवं संतान ही नहीं, मनुष्य-मनुष्यके बीच घृणा उत्पन्न करनेमें सहायक हो रहे हैं । जीवनमें कोई भी कहीं भी पवित्र लक्ष्यविहीन व्यक्ति सम्मानका पात्र नहीं हो सकता । केवल भोगके लिये जीनेवाले व्यक्तिका यदि हम सम्मान करना भी चाहें तो भी नहीं कर पाते । मानवप्रकृति ही कुछ ऐसी बनी है ।’

‘संयमका मार्ग ठीक है, परंतु जिनसे संयम नहीं पल सकता, वे क्या करें ?’

‘वही जो तुम पशुओंसे कराना चाहते हो । कैसे विचित्र करुणासागर हो तुम, मनुष्योंके लिये तो चाहते हो वे कामभोग करते रहें और उनके संतान न हों; क्योंकि तुम्हारा स्वार्थ इसीमें है । अपने स्वार्थके लिये तुम मनुष्यकी संयमसम्बन्धी अशक्तताकी दुहाई देते हो, दूसरी ओर चाहते हो कि पशु बिना कामभोगके ही संतान देते रहें; क्योंकि तुम्हारा स्वार्थ इसीमें है । इसीमें तुम्हारी समता और प्राणिमात्रकी करुणा छिपी हुई है । पशुओंको तो इतने भी काम-

भोगकी अनुमति नहीं देते जो उनका प्राकृतिक अधिकार है और कृत्रिम इंजेक्शनके द्वारा उनसे संतानपर संतान लिये जाते हो और मनुष्यको काम-भोगके लिये एकदम निर्बाध छोड़ना चाहते हो !

‘व्यावहारिक पक्षको समझो । विश्वकी जनसंख्या द्रुत गतिसे बढ़ती जा रही है और यदि इसी प्रकारसे बढ़ती रही तो एक दिन मनुष्यको पृथ्वीपर खड़े होनेके लिये भूमि और साँस लेनेके लिये वायु भी नहीं मिल सकेगी । संयमका मार्ग श्रेष्ठ है, मैं मानता हूँ । बिना एक पैसा व्यय किये संतति-निरोध भी होता है और जन-स्वास्थ्य भी सुधरता है परंतु जनता संयमके मार्गपर चल नहीं पाती । संयमसे समस्या सुलझती नहीं ।’

‘जब एक मार्ग श्रेष्ठ और निरापद है तो उसपर जनता चल क्यों नहीं पाती ?’

‘क्योंकि वह मार्ग अत्यन्त कठोर है ।’

‘क्या चाँदमें जाने और वायुमें उड़नेसे भी अधिक कठोर है । जब तुम्हारा विज्ञान जल, थल और नभके बीहड़-से-बीहड़ मार्गपर चलना सर्वसुलभ कर सकता है तो संयमके मार्गपर चलना क्यों नहीं ? क्या तुम्हारा विज्ञान बाह्य प्रकृतिपर ही विजय प्राप्त करना सिखलाता है, अपने ऊपर नहीं ? क्या तुम्हारे पास ऐसे साधन नहीं हैं जो तुम काम, क्रोध और लोभको

पछाड़ सको । यदि नहीं हैं तो सुनो—इस संतति-निरोधी सम्यताका विनाश निश्चित है । विश्वका इतिहास बतलाता है कि जो विज्ञान आत्मविजयकी ओर अग्रसर होता है, वह उस विज्ञानको पछाड़ देता है जिसने केवल जड़ प्रकृतिपर ही विजय प्राप्त करना सीखा है । त्रेताके महापण्डित रावणने प्रकृतिकी सभी शक्तियोंपर विजय प्राप्त कर ली थी । उसका आर्थिक विकास चरम सीमापर था । परंतु वह नष्ट हो गया अयोध्याके दो कुमारों-के सामने । अयोध्या तो सोनेकी नहीं थी । अयोध्यामें तो पुष्पक विमान नहीं था, परंतु वहाँ थी कामजयी प्रजा, रावण-जैसी कामलोलुप नहीं ।’

‘यह सब तो ठीक है, पर आजका मनुष्य शगल है आनन्दके पीछे ।’

‘और तुम्हारे विज्ञानमें काम-भोगके अतिरिक्त आनन्दका और कोई मार्ग नहीं । बाबा आदमके समयमें जो आनन्दका मार्ग था, वही आज भी है । यह है तुम्हारी प्रगतिशीलता । यही नहीं, आनन्दके अनेक स्रोतोंको तुमने सुखा दिया है । परिवार, समाज, साहचर्य आदि थे । सब आनन्दके क्षेत्र नष्ट होते जा रहे हैं । ध्रुव-प्रदेश और चन्द्रमाकी खोज होती जा रही है । चन्द्रमा और शुक्रमें जानेवाले वैज्ञानिको ! खोजो कि काम-भोगके अतिरिक्त जीवनमें आनन्दके और भी कुछ साधन हो सकते हैं या नहीं ?’

जीवन सफल कैसे हो ?

मन वशमें हो इन्द्रियनिग्रह सत्य अहिंसा शुद्धाचार ।
सर्वभूतहितरतता हो, हो त्यागयुक्त सारे व्यवहार ॥
हो वैराग्य भोग-विषयोंमें, हो प्रभुस्मृतिमें दृढ़ आसक्ति ।
पल-पल बढ़ती रहे निरन्तर प्रभुपद-कमलोंमें अनुरक्ति ॥
देख सदा सर्वत्र श्याम मुखकमल नेत्र-मन हों वड़भाग ।
जीवन सफल बने पाकर श्रीहरिमें शुचि अनन्य अनुराग ॥

प्रभु-कृपासे घोर अनर्थसे रक्षा

[परमपिता प्रभु किस प्रकार सुबुद्धि और सुप्रेरणा देकर अपने दासों और सेवकोंकी समयपर रक्षा करते हैं ।]

(लेखक—प्रसिद्ध नेत्रचिकित्सक डा० श्रीपुरुषोत्तम गिरिधर)

यह घटना अभी पिछले पाकिस्तानके साथ होनेवाले युद्धके दिनोंकी है जब कि पंजाबमें स्थान-स्थानपर पाकिस्तानके छातावाहक जासूस उतरकर तोड़-फोड़की कार्रवाइयाँ कर रहे थे ।

यहाँ भिवानीमें 'नागरिक सुरक्षा-समिति'की ओरसे स्थानीय वाटर-वर्क्स एवं बिजलीघर आदि स्थानोंकी रक्षाके लिये 'राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ'के स्वयं-सेवक उत्साहपूर्वक सारी-सारी रात वहाँ पहरा देते थे कि कोई पाकिस्तानी जासूस वाटर-वर्क्समें तोड़-फोड़ न कर जाय अथवा जलमें विष न मिला दे ।

एक रात्रिको वाटर-वर्क्सपर जाकर स्वयं-सेवकोंको सँभालनेकी ड्यूटी मेरी लगा दी गयी ।

कृष्णपक्षकी नितान्त काली चौदसकी रात्रि थी— हाथको हाथ नहीं सुझायी देता था । मैं रातको ११ बजेके लगभग घरसे निकला । साथमें एक-दो महाजन भाई और भी थे, हम वाटरवर्क्सपर पहुँचे । द्वारपर स्वयं-सेवक पहरा देते हुए मिले । फिर विशाल जल-कुण्डोंपर भी स्वयं-सेवक अपनी-अपनी ड्यूटीपर मिले ।

निश्चय किया कि तीनों विशाल जलकुण्डोंकी परिक्रमा की जाय । तीनों एक लाइनमें होनेवाले लंबे-चौड़े जलकुण्डोंके एक ओरसे जाकर जब हम दूसरी ओरसे वापस लौट रहे थे तो मुझे रास्तेमें दाहिनी ओर झाड़ियोंमें लंबा-सा कुछ सफेद-सफेद दिखायी पड़ा । मैंने साथियोंसे पूछा कि 'यह क्या है ?' वे बोले कि 'कोई वाटर-वर्क्सका पत्थर होगा ।' मैंने कहा कि 'इतना बड़ा सीधा-सा पत्थर नहीं हो सकता, देखो जाकर यह क्या है ?' मेरा इतना कहना था कि सफेद वस्तुके पीछेसे एक आदमीने निकलकर हमारे एक साथीको

दबोच लिया और उसे गिरानेका यत्न करने लगा । मैंने समझ लिया कि पाकिस्तानी जासूस है । झट मैंने अपना रिवाल्वर निकाला, सेफ्टी खोलकर उसे तान लिया और कड़ककर कहा कि 'हट जाओ, वरना मैं गोली मारता हूँ ।' अब मैं गोली मारूँ भी तो किसको, अँधेरी रात थी, कुछ दिखायी भी नहीं देता था और समझ भी नहीं पड़ रहा था । यों ही गोली छोड़ देनेसे अपने ही किसी आदमीको लग सकती थी ।

अब मेरा तो कड़ककर इतना कहना था कि उसी ओरसे एक और किसीने तुरंत निकल मुझे ही दबोच लिया । मेरे दोनों हाथ उसकी बाँहोंमें जकड़े गये । रिवाल्वर उसके शरीरसे लग नहीं रहा था । नहीं तो, मैं गोली उसे मार ही देता । वह आदमी मुझे नीचे पटकनेका यत्न करने लगा । मैंने देखा कि यदि नीचे गिर गया तो यह यवन पाकिस्तानी मुझे छुरा आदि कुछ-नकुछ भोंक ही देगा । मैंने भी प्रभुका स्मरण करके और अचकचाकर जोर जोर लगाया तो वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और मैं उसकी छातीपर सवार हो गया । रिवाल्वर मेरे हाथमें ही था और मेरा हाथ भी अब आजाद था । मैं अब रिवाल्वरकी गोली उसकी छाती, पेट अथवा उसके सिरमें धुसेड़ सकता था कि इतनेमें मेरे मस्तिष्कमें बिजलीकी तरह यह विचार आ गया कि अब यह जासूस नीचे काबूमें तो आ ही गया है, इसे अब जीवित पकड़ लेना चाहिये । विचारका आना था कि मैं जोर-जोरसे आवाजें देने लगा कि 'आओ रे इसे पकड़ें— आ जाओ रे आ जाओ'—अब चिल्लानेकी ओर मेरा ध्यान जो गया तो स्वतः ही मेरी पकड़ कुछ ढीली हो गयी और वह मेरे नीचेसे निकलने और मुझे गिरानेका

यत्न करने लगा । मैंने चिल्लाना बंद करके उसे दृढ़तासे पुनः धर दबाया तो उसका साँस घुटने लगा और वह बोला कि 'बस जी, अब बहुत हो गया अब जाने दीजिये ।' मैंने समझा कि आत्मसमर्पण कर रहा है । मैंने कड़ककर पूछा 'बताओ तुम कौन हो' तो वह बोला कि 'मैं इन्हींमेंसे एक स्वयंसेवक हूँ ।' धत् तेरे की—मैंने तुरंत उसे छोड़ दिया और उस महान् प्रभुका धन्यवाद—लाख-लाख धन्यवाद करने लगा, जिसने ठीक समयपर मुझे यह सुबुद्धि और सुप्रेरणा देकर मेरी और उसकी रक्षा की कि उसे जीवित पकड़ना चाहिये, अन्यथा यदि कहीं उस समय मेरे मस्तिष्कमें यह विचार आ जाता कि यह पाकिस्तानी मुसलमान जासूस है, हमारे वाटर-वर्क्सके जलमें विष मिलाने आया है, इसे गोली ही मार देनी ठीक है तो मैं अवश्य ही उसकी छाती या सिरमें गोली मार देता और फिर इसका क्या भयंकर परिणाम होता सो तो भगवान् ही जानते हैं । ऐसे समयके उत्तेजित मस्तिष्कमें सोचने-समझने या विचार करनेकी शक्ति तो होती नहीं जो विचार विद्युतवत् मस्तिष्कमें आ जाय, हाथ तुरंत वैसे कर ही देते हैं । यदि प्रभु उस समय मुझे ऐसी सुबुद्धि और सुप्रेरणा न देते तो अनर्थ और अत्याचार ही हो जाता ।

मैं साठ वर्षकी अवस्थाका और वह स्वयंसेवक पचीस-तीस वर्षका युवा । यदि प्रभु मुझे शक्ति न देते और मैं नीचे और वह ऊपर आ जाता तब भी मैं निश्चय रूपसे बस चलते उसको बिना किसी विचारके गोली मार ही देता; पर प्रभु तो अपने दासोंकी समयपर रक्षा करते ही हैं ।

स्वयंसेवक मेरे साहसकी परीक्षा ले रहे थे और वह सफेद वस्तु एक तनी हुई सफेद चादर थी । झाड़ियोंमें जिसके पीछे दो स्वयं-सेवक मुझे दबोचनेके लिये छिपे बैठे थे ।

कई वर्ष पूर्व ठीक इसी प्रकार प्रभुने एक बार पहले भी ठीक समयपर मुझे सुप्रेरणा और सुबुद्धि देकर मेरी रक्षा की थी । वह इस प्रकार कि—

मैं अपने अस्पतालके कमरेमें रोगी देख रहा था कि अपने वाम पार्श्ववाली पासकी खिड़कीसे बाहर खड़ा हुआ एक फौजी जवान दिखायी दिया, उसके हाथमें उसकी फौजी राइफल थी । मैंने खिड़कीसे ही उसके हाथसे वह राइफल ले ली और उससे पूछा कि 'ठीक है न ?' वह बोला कि 'ठीक है बिल्कुल' । मैं संतुष्ट हो गया ।

अब मेरा तात्पर्य तो पूछनेका यह था कि 'यह राइफल ठीक है न, भरी हुई तो नहीं है ?' और उसका उत्तर 'बिल्कुल ठीक है' का तात्पर्य उसके अनुसार यह था कि 'हाँ भरी-भराई है ।'

अब राइफल की नालीका मुख उस फौजी सिपाहीकी छातीकी ओर था और मेरी अँगुली उसके घोड़ेपर—मैं उस घोड़ेको अँगुलीसे दबाना ही चाहता था, प्रत्युत आधा तो दबा ही चुका था कि मेरे मस्तिष्कमें प्रभुने यह प्रेरणा दी कि एक बार इसे खोलकर देख तो लें, कहीं भरी हुई न हो । मैंने तुरंत खोलकर देखा तो सचमुच उसमें गोली भरी हुई थी । यदि ठीक समयपर एक सेकंड पूर्व मुझे प्रभु यह बुद्धि और प्रेरणा न देते तो गोली उस फौजी जवानकी छातीके पार हो जाती और पीछे फिर क्या होता, यह विचारते ही रोमाञ्च होता है ।

मैं दोनों अवसरोंपर उस महान् पिताका धन्यवाद करते नहीं थका । मैं पाठकोंसे प्रार्थना करता हूँ कि इन दोनों सत्य घटनाओंसे प्रेरणा लें और गायत्रीमन्त्रका दैनिक जप किया करें । 'धियो यो नः प्रचोदयात्' समयपर प्रभु अवश्य प्रेरणा देकर रक्षा करते रहेंगे । शान्ति !

श्रीगणेशाय नमः

ॐ तत् १-१-१-ॐ तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।
 नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥
 स १-३०-२४-स हत्वा राक्षसान् सर्वान् यज्ञज्ञानं रघुनन्दनः ।
 ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा ॥ २ ॥
 वि १-६७-१२-विश्वामित्रः स धर्मात्मा श्रुत्वा जनकभाषितम् ।
 वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥ ३ ॥
 तुर् २-१५-१९-तुष्टावाप्य तदा वंशं सुमन्त्रः स विशाम्पतेः ।
 शयनीयं नरेन्द्रस्य तदासाद्य व्यतिष्ठत ॥ ४ ॥
 व २-३९-१५-वनवासं हि संख्याय वासांस्याभरणानि च ।
 भर्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वशुरो ददौ ॥ ५ ॥
 रे २-६७-३४-राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम् ।
 राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ॥ ६ ॥
 णि २-९९-२५-निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम् ।
 उदजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम् ॥ ७ ॥
 यं ३-११-४३-यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महामुनिम् ।
 अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महामते ॥ ८ ॥
 भर् ३-४३-१८-भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो ।
 सृगरूपमिदं व्यक्तं विस्मयं जनयिष्यति ॥ ९ ॥
 गो ३-७२-१७-गच्छ शीघ्रमितो वीर सुग्रीवं तं महाबलम् ।
 वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाद्य राघव ॥ १० ॥
 दे ४-२२-२०-देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये ।
 सुखदुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ॥ ११ ॥
 व ४-४३-३२-३३-वन्द्यास्ते च तपःसिद्धास्तपसा वीतकल्मषाः ।
 प्रष्टव्या चैव सीतायाः प्रवृत्तिर्विनयान्वितैः ॥ १२ ॥
 स्य ५-४-१-स निर्जित्य पुरीं लङ्कां श्रेष्ठां तां कामरूपिणीम् ।
 विक्रमेण महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः ॥ १३ ॥
 धी-५-२६-३९-धन्या देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
 मम पश्यन्ति ये नाथं रामं राजीवलोचनम् ॥ १४ ॥

१. इस श्लोकमें प्रायः बहुत पाठभेद मिलता है । २. पाठभेद—नन्दितन्यास्ततः । ३. पा० भे०—कपिसत्तमः ।

म-५-५३-२६—२७-मङ्गलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।

उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ॥१५॥

हि ६-१०-२७-हितं महार्थं मृदु हेतुसंहितं व्यतीतकालायतिसम्प्रतिक्षमम् ।

निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥१६॥

धि ६-४१-६८-धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठः सम्प्राप्तोऽयं विभीषणः ।

लङ्कैश्वर्यमिदं श्रीमान् ध्रुवं प्राप्नोत्यकण्टकम् ॥१७॥

यो-६-५९-१३९-यो वज्रपाताशनिसंनिपातान्न चुक्षुभे नापि चचाल राजा ।

स रामवाणाभिहतो भृशार्तश्चचाल चापं च मुमोच वीरः ॥१८॥

यो ६-७२-११-यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः ।

तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम् ॥१९॥

नः ६-९३-२६-न ते ददृशिरे रामं दहन्तमरिवाहिनीम् ।

मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना ॥२०॥

प्र ६-११६-२४-प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ।

बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥२१॥

चो ७-१६-२६-चालनात्पर्वतेन्द्रस्य गणा देवस्य कम्पिताः ।

चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम् ॥२२॥

द ७-३४-४१-दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादनभोजनम् ।

सर्वमेवाविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर ॥२३॥

यात् ७-६६-१-यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत् ।

तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम् ॥२४॥

अथवा (यावदावर्तते चक्रं यावती च वसुन्धरा ।

तावत् त्वमिह लोकस्य स्वामित्वमवधारय ॥)

इदं रामायणं काव्यं गायत्रीबीजसंयुतम् ।

त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं ब्रह्मलोके महीयते ॥

(ऊपरके अन्तिम श्लोकमें) महर्षि वाल्मीकिका रामायण गायत्री-बीजमय कहा गया है । प्रसिद्ध है कि रामायणके २४ हजार श्लोक गायत्रीके २४ अक्षरोंपर प्रतिष्ठित हैं । प्रत्येक सहस्रके बाद दूसरे (गायत्र्यक्षरपर ही पुनः नये) गायत्री-बीजमय श्लोक उपलब्ध होते हैं । यहाँ ऊपर संख्यासहित उन्हीं श्लोकोंको दिखलाया गया है । कुछ विद्वानोंने इसके अन्य रूप भी दिये हैं; पर वे जँचे नहीं । पाठकोंके अनुरोधपर इस युक्ततम एवं युक्तिसंगत-क्रममय-गायत्री रामायणको ही यहाँ छपा गया है । (पं० श्रीजानकीनाथशर्मा)

समर्पण और स्वीकृति

(लेखक—श्रीनरेशचन्द्रजी मिश्र)

जनस्थानके नर-नारी भाव-विभोर हो उठे । नगरके श्रेष्ठतम विद्वान् ब्राह्मणश्रेष्ठ श्रीपति प्रयागकी तीर्थयात्रा-पर जा रहे थे । तीर्थराजकी पावन त्रिवेणी-धाराने वैभव-शाली श्रीपतिको आकर्षित किया था । माघ मासके पुण्यदिवस निःशुभ आ रहे थे और जगत्को प्रकाशका दान करनेवाले सूर्यदेव मकर राशिमें प्रवेश करनेवाले थे ।

आचार्य श्रीपतिने प्रयाग-यात्राके लिये विधिवत् संकल्प लिया । धन-वैभवकी उन्हें कमी न थी । यात्रा प्रारम्भ करनेके पूर्व वे नगरमें यज्ञ, होम, दीन-सत्कार और गुरुजनोंकी पूजा कर रहे थे । उनकी तीर्थयात्रामें हाथी, घोड़े, गाड़ी एवं दास-दासियोंका विशाल समूह सज रहा था । यात्राका पुण्य-लाभ परिवारको भी करानेके लिये उन्होंने अपनी सहधर्मिणी और ज्येष्ठ पुत्र तथा पुत्रवधूको भी साथ ले लिया था ।

ब्राह्मणश्रेष्ठ श्रीपतिने यात्राके पूर्व अपरिग्रहका संकल्प लिया था—नगरके राजमार्गोंपर घोषणा की गयी कि तीर्थयात्रापर जा रहे श्रीपति कोई दान स्वीकार न करेंगे ।

और आचार्य श्रीपतिकी तीर्थयात्राका विशाल आयोजन जनस्थानके नागरिकोंको श्रद्धासे विह्वल बना रहा था ।

आचार्यके विशाल भवनसे सटी एक झोपड़ी थी । इसमें रहता था जय । वह जातिका नाई था । दिन-भर वह जनस्थानके नागरिकोंके बालपर कैची चलाता, इसके साथ ही उसकी जिह्वाकी कैची भी चला करती । क्षौर करनेवाले ग्राहक उसकी बाचालताकी कैचीसे अधिक प्रभावित होते ।

आचार्य श्रीपति प्रयागयात्राके लिये विघ्नहरण गणेशका स्मरणकर रथपर बैठनेवाले थे कि जयने उनके चरण पकड़ लिये ।

‘कौन, जय !’ आचार्य श्रीपतिने उसकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—‘इतनी भोर कैसे निकल पड़े ?’

‘आपसे न्याय माँगने आया हूँ, महाराज !’

‘न्याय !’ चौंक पड़े श्रीपति ।

‘हाँ, देव ! आप पड़ोसीको छोड़कर अकेले तीर्थ-यात्रापर जा रहे हैं ।’ जयकी जीभकी कैची चलने लगी । ‘आप स्वयं मुक्त होकर अपने चरणोंमें पड़े इस क्षुद्रको भवसागरमें ही रहने देना चाहते हैं । क्या यह आप-जैसे उदारमना द्विजश्रेष्ठके लिये उचित है ?’

हँस पड़े श्रीपति, ‘तुम भी चलो, बन्धु ! मुझे प्रसन्नता होगी, किंतु.....’

‘किंतु, क्या महाराज !’

‘मैंने तो नियम-विधानसे तीर्थ-यात्राकी व्यवस्था की, अपरिग्रहका संकल्प लिया । पर तुम एकाएक चलनेको प्रस्तुत हो गये ।’

जयने श्रीपतिका चरण न छोड़ा, उसके जवानकी कैची और तेज हो गयी । ‘आपके विधानकी विशालता सारे नगरकी तीर्थ-यात्राके लिये पर्याप्त है प्रभो ! रही संकल्पकी बात ! सो, मैं भी व्यवसाय-त्यागका व्रत लेता हूँ । तीर्थयात्राके बीचमें जीविकाकी चिन्ता नहीं करूँगा ।’

हँस पड़े श्रीपति, ‘सुन्दर, बहुत सुन्दर । यह हुआ तुम्हारा अपरिग्रह । यह मेरे अपरिग्रहसे कम नहीं ।’

और उन्होंने प्रयागयात्रामें जयको भी साथ ले लिया ।

× × ×

आचार्य श्रीपतिका यात्रा-दल त्रिवेणीतटपर पहुँचा तो सूर्यकी अन्तिम इंगूरी किरणें गङ्गा-यमुनाकी लहरियों को भेंटकर विदा ले रही थीं । आचार्य श्रीपतिको मार्गमें अप्रत्याशित रूपसे विलम्ब हो गया था । वेणीमाधवके

दरबारमें पहुँचकर वे बिना स्नान, ध्यान और दान-पुण्य कर लिये जल भी कैसे ग्रहण करते ?

रथ रोके गये, सेवक दौड़ाया गया । तीर्थ-पुरोहित और कर्मकाण्ड करानेवाले ब्राह्मण तो मिल गये, किंतु नाई नहीं मिल सका । सूर्यास्तके बाद सभी नाई अपने-अपने घर चले गये थे ।

आचार्य श्रीपतिके सामने समस्या खड़ी हो गयी । तीर्थराजमें आकर मुण्डन कराये बिना सारा कर्मकाण्ड व्यर्थ होता । विवश होकर वे जयकी ओर घूम पड़े, 'आयुष्मन् ! क्या तुम मेरी सहायता करोगे ?'

आचार्य जो सहायता चाहते थे, नाई जयसे वह छिपी न थी । वह हाथ जोड़कर बोला—'यह शरीर आपकी सेवामें समर्पित है देव ! जो धर्मविहित है, जो करणीय है, उसे करनेको मैं सदा प्रस्तुत हूँ ।'

आचार्य अस्तव्यस्त स्वरमें बोले—'करणीय तो है । क्षौर तुम्हारा व्यवसाय है और हम तुमसे मुण्डन कराना चाहते हैं ।'

जयने नम्रतासे आचार्यके चरण पकड़ लिये—'क्षौर करना मेरा व्यवसाय अवश्य है किंतु इस तीर्थयात्रा-में यह धर्मविरुद्ध होगा ।'

आचार्यने प्रलोभन दिया—'देखो जय ! तुम स्वयं तो व्यवसाय-बुद्धिसे हमारा क्षौर मत करो, तुम इसे धर्मबुद्धिसे करो ।'

जयने आश्चर्यसे माथेपर हाथ रख लिया—'तो मैं क्षौरद्वारा आपके ऊपर उपकार करूँ क्या ? आप इसके लिये मुझे शुल्क देनेका आग्रह न करेंगे ?'

आचार्य हँस पड़े—'यह कैसे सम्भव है ? तीर्थमें बिना दक्षिणा क्षौर करानेसे पुण्य नष्ट होगा । मैं तुझे अपनी ओरसे सोनेकी कटोरी, छुरा और पुत्रकी ओरसे सोनेकी कैंची दूँगा ।'

जयका स्वर कठोर हो आया—'जिस प्रकार शुल्क दिये बिना आपका पुण्य नष्ट होगा, उसी प्रकार शुल्क

लेनेसे मुझे पाप होगा देव ! मैं निर्वन हूँ, रंक हूँ किंतु संकल्पका आग्रही हूँ ।'

'सुनो तो जय !'

'क्षमा करें आचार्य ! निर्वनकी प्रतिज्ञा, उसकी भावना और भक्ति ही उसका धन है । मैं आपका क्षौर करके माधवराजको क्या उत्तर दूँगा ?'

आचार्य गम्भीर हो आये—'सोच लो जय ! मुझसे मिले सोनेको दान देकर तुम तीर्थयात्राका पुण्य कमा सकते हो ।'

'मेरे पास जो है, मैं उसीको देकर मुक्ति-लाभ करूँगा ।' जय दृढ़ स्वरमें बोला । 'संकल्पसे भ्रष्ट होकर कमाये सोनेका दान मेरे पुण्यमें बढ़ती नहीं करेगा ।' श्रीपति मौन हो गये, उन्होंने सेवक भेजकर नगरसे नाई बुलवाया । क्षौर, स्नान और पूजनके बाद दानकी बारी आयी । जनस्थानके वैभवसम्पन्न गृहपतिने ब्राह्मणों-को स्वर्ण, अन्न, वस्त्र, गाय आदि चौरासी प्रकारके दान दिये । संगमके पवित्र तटकी हवा श्रीपतिके दान-वैभवसे सुरभित हो उठी । उनकी सहधर्मिणी और पुत्र तथा पुत्रवधूने भी दोनों हाथों धन लुटाया ।

तब आयी नापित जयकी बारी । कर्मकाण्ड वह भी करवा चुका था । तीर्थपुरोहित उससे द्रव्यकी आशा लगाये बैठे थे । वह उठकर रथमें गया । उसने एक पोटली निकाली और तीर्थपुरोहितके पास लौटा, 'मुझ अकिंचनके पास यही है, यही मेरा सर्वस्व है । कृपया स्वीकार करें भूदेव !' कहकर उसने अपनी पोटली पुरोहितकी ओर बढ़ा दी ।

पुरोहितने ललचायी दृष्टिसे पोटलीकी ओर देखा—'क्या है इसमें ?'

'मेरा सर्वस्व ।'

पुरोहितने पोटली खोली—अंदर थी क्षौरकी एक पेटिका । उसमें थे छुरे, कैंचियाँ, शीशा, कंघा, कटोरी और नहन्नी ।

पुरोहितने झटकेसे पोटली बाढ़पर पटक दी, 'शूद्र ! पातकी !! क्या मैं नाई हूँ जो क्षौरके उपकरण दानमें दूँगा ।'

अकिंचन जय एक क्षणको स्तब्ध रह गया । तब उसने बाढ़में पड़े छुरे, कैंचियोंको उठाया और पोटली बाँधकर तीर्थपुरोहितकी ओर बढ़ाता बोला—'देव ! मैं दीन-हीन और कुछ नहीं दे सकता । इसे ही स्वीकार करें ।'

'रख-रख—इसे अपने ही पास रख । तूने क्षौर-सामग्री देकर ब्राह्मणका अपमान किया है । माधवराज तेरे इस उपहासका फल देंगे ।'

'उपहास नहीं—यह भावना है देव ! अकिंचनके पास तो केवल भावना होती है ।'

'मुझे तेरी यह भावना स्वीकार नहीं ।' कहकर तीर्थपुरोहित चला गया ।

जय तब बारी-बारी संगमतटके प्रत्येक तीर्थपुरोहित-के पास गया और क्षौरकी पोटली लेनेकी विनती करने लगा, पर उसकी प्रार्थना किसीने स्वीकार न की ।

वह लौटकर आचार्य श्रीपतिके पास आ खड़ा हुआ । हतप्रभ चेहरे और विवर्ण नेत्रोंसे वह गङ्गा-यमुनाकी सितासित धाराको निहारने लगा ।

श्रीपति उपालम्भ-भरे स्वरमें बोले—'देखा, जय ! मैं पहले ही कह रहा था । तुमने मेरा अनुरोध मानकर क्षौर किया होता—तुम्हारी कैंचियाँ और छुरे सोनेके होते तो ब्राह्मण उन्हें स्वीकार कर लेते ।'

'परंतु क्यों, ऐसा क्यों देव ? दानका महत्त्व सोने और लोहेसे है या हृदयकी निष्ठासे ?'

'यह तो तुम उन्हीं तीर्थ-पुरोहितोंसे पूछो आयुष्मन् !'

'उनसे क्यों पूछूँ, क्यों पूछूँ उनसे ? जयने फफकते हुए पोटली कछारमें फेंक दी, मैं तो तीर्थराजसे पूछूँगा—मैं माधवराजसे पूछूँगा । दान की हुई वस्तु लौटायी

नहीं जा सकती । यदि मेरी भावना अकलुष है, मेरी निष्ठा सत्य है तो प्रभु स्वयं इस दानको स्वीकार करेंगे ।'

'और यदि वे नहीं स्वीकार करें ?'

'तो मैं प्राण त्याग दूँगा—मैं शरीरपात करूँगा—यह मेरा दूसरा संकल्प है ।'

—कहकर जय पागलोंकी तरह गङ्गातटकी ओर दौड़ गया । तीन दिनतक वह सुध-बुध भूलकर रोता, कल्पता संगम-तटपर पड़ा रहा । कभी वह ध्यानस्थ बैठ जाता, कभी उठकर दौड़ने लगता । कभी वह संगमके जलमें स्नान करने लगता ।

चौथे दिन एक वृद्ध ब्राह्मण, जो वखोंसे दीन लगता था, उसके पास आया 'जय माधवराज, तुम कुछ उद्विग्न दीख रहे हो यजमान !'

जय फफक पड़ा । उसने अपनी सारी व्यथा बतलायी और बोला, 'मैंने अपना सर्वस्व दे दिया पर पुरोहितोंने उसका तिरस्कार कर दिया । मेरी तीर्थयात्रा व्यर्थ हो गयी ।'

ब्राह्मण हँस पड़ा, 'कहाँ है तुम्हारा सर्वस्व, मुझे दान कर दो । मैं तो सब कुछ ले लेता हूँ ।'

'क्या सच देव ?'

'हाँ, हाँ ! तुम देकर स्वयं देख लो ।' ब्राह्मणके झुरीदार चेहरेपर आभा छिटक आयी ।

जय पागलों-सा उस ओर दौड़ पड़ा, जहाँ उसने पोटली फेंकी थी । किंतु पोटली अब वहाँ नहीं थी । जयने कछारका कोना-कोना छान मारा, पर पोटलीका कहीं पता न चला ।

वह लौटकर ब्राह्मणके चरणोंमें गिर पड़ा और टूटते स्वरमें बोला, 'दुर्भाग्य मेरे पीछे पड़ गया है । दान स्वीकार करनेवाले मिले तो पोटली ही खो गयी ।'

ब्राह्मणने उसे उठाया, 'घबराओ मत, चलो मैं भी देखूँ । कहाँ फेंकी थी पोटली ।'

दोनों कछारमें ढूँढ़ने लगे । तभी ब्राह्मण जयके पास आया । उसने एक पोटली उसे दिखाते हुए कहा, 'देखो यह तो नहीं है ?'

'हाँ, हाँ यही है, कहाँ मिली आपको ?' जयने आप्रहपूर्वक पोटलीको हृदयसे लगा लिया ।

'यह तो मेरे पास तीन दिनसे है ।' ब्राह्मण रहस्यपूर्ण हँसी हँस पड़ा ।

'तीन दिनसे ?'

'हाँ, इसे तो मुझे जय नामक एक नाईने दिया था ।'

जय आश्चर्यसे आँखें फाड़कर पूछ बैठा, 'आप कौन हैं देव ?'

'मैं वही हूँ, जिसे तुम पुकार रहे हो ।'

और एक ही क्षणमें संगमकी पवित्र बालुका-राशिपर आश्चर्यकी सृष्टि हो गयी । वृद्ध ब्राह्मण अन्तर्धान हो

गया और उसके स्थानपर शङ्ख, चक्र, गदाधारी वेणीमाधव साक्षात् प्रकट हो गये !

विस्मय-विमुग्ध जय भगवान्‌के चरणोंमें लोट गया,

'प्रभु आप ?'

'हाँ क्स ! मैंने तेरा दान स्वीकार कर लिया था, किंतु तू दुखी था, अतएव मैं स्वयं उसे तेरे हाथसे स्वीकार करने आया हूँ ।'

'मैं धन्य हो गया तीर्थराज !'

'धन्य तू नहीं, मैं हुआ क्स ! तेरा दान अबतक मुझे भेंट किये गये सभी दानोंसे श्रेष्ठ है—यह मुझे श्रीपतिके स्वर्णाभूषणोंसे भी अधिक प्रिय है ।'

और दीनबन्धु माधवने अकिंचन जयको अपने वरद

हस्तसे कृतार्थ कर दिया । उसका दान स्वीकार कर उन्होंने उसकी भावनाको अमर बना दिया ।

उदात्त सङ्गीत

(२) शिवशंकर महादेव

क्यों विलासिताको आवश्यकता मान मान
मानव-जीवनका जीवन-मान घटाते हो ।
अपनी असीम इच्छाओंके बढ़ते बन्धन
क्यों अपने हाथों और बढ़ाते जाते हो ? ॥ १ ॥

नर-नरमें कैसा बैर ? बैर तब होता है,
जब काम, क्रोध, मद, मोह सामने आते हैं ।
विजयी वह है, जिसके सम्मुख ये छिपे शत्रु
अपनी छापाकारी ही आप भुलाते हैं ॥ २ ॥

एकाकी कौन ? विभुत्व जब कि सर्वत्र यहाँ
सकरेपनमें जो हैं, वे ही एकाकी हैं ।
जो भेद-भावके भेदी हों यह भेद लखें
अणिमा पर भी महिमाएँ अयुत भुजाकी हैं ॥ ३ ॥

सम्मान मिले हैं तो अपमान मिलेंगे ही,
प्रत्येक प्रातः संध्याको न्योत बुलाता है ।
पर जो काली रातोंका जहर पचा जाये,
वह ही शिवशंकर महादेव कहलाता है ॥ ४ ॥

—डा० बलदेवप्रसाद मिश्र

पढ़ो, समझो और करो

(१)

करनीका फल हाथोंहाथ

घटना उस समयकी है जब मैं सारोठकी प्राथमिक शालामें अध्यापक था। बाबू ओमप्रकाशजीके विवाहकी बारात उदयपुरसे रतलाम जा रही थी। सभी बड़े-बूढ़े लोग ओमप्रकाशजीके साथ द्वितीय श्रेणीमें थे। पर मैं आमोद-प्रमोदमें सुविधाकी दृष्टिसे कॉलेजके विद्यार्थियोंके साथ तीसरी श्रेणीके एक डिब्बेमें सवार हुआ। ट्रेन चली और हमलोगोंके आमोद-प्रमोदकी निरंकुश धारा भी बड़े वेगसे चलने लगी। मैं कोट-पेन्टमें था ही, मिलिट्री बूट पहने था। छोटा-सा डंडा हाथमें लिये नकली थानेदार बन गया। यद्यपि हमलोगोंका डिब्बा खाली था, पर किसी भी यात्रीको मैंने डंडेके जोरसे अंदर नहीं आने दिया। जो आते, उन्हें यह कहकर कि 'डिब्बा रिजर्व है, मैं थानेदार हूँ।' डॉट-फटकार देता। बेचारे यात्री करुणदृष्टिसे मेरी ओर देखते हुए चले जाते। प्रत्येक स्टेशनपर मेरा यही दानवी रूप प्रकट होता।

मावली स्टेशनपर २० मिनट गाड़ी ठहरी। तमाम बरातियोंने खूब मेवा-मिष्ठान्न खाया-पीया। हमलोग डिब्बेमें सवार होने लगे तब दो व्यापारियोंने बड़ी विनम्रतासे अंदर आनेके लिये आज्ञा माँगी। मैंने कहा—'दरवाजेके पास खड़े रहना।' उन बेचारोंने स्वीकार कर लिया। वे अंदर आ गये और हमलोग अपने गाने-बजानेमें लग गये। ट्रेन छूटने ही वाली थी कि एक ग्रामीण आदमी अपनी पत्नी-बच्चेके साथ गाड़ीमें सवार होनेको आगे बढ़ा। व्यापारियोंने उसको रोका, पर उसने जबरदस्ती अपनी स्त्री और बच्चेको अंदर ढकेल दिया और वह स्वयं आनेकी चेष्टा करने लगा। मैंने उसे डाँटा। उस बेचारेने गिड़गिड़ाकर कहा—'बाबूजी! मैं खिड़कीके पास खड़ा रहूँगा। आपका कुछ भी नहीं बिगड़ेगा।' मैंने उसकी प्रार्थनाको अपनी शानके खिलाफ समझा और धक्का देकर उसे बाहर निकाल दिया। ट्रेन चल दी। उसकी स्त्री और बच्चे रह गये और वे रोने-बिलखने लगे। वह बेचारा चलती ट्रेनमें पीछेवाले डिब्बेकी खिड़कीका हेण्डल पकड़कर लटकता हुआ चला। दूसरे स्टेशनपर उन

लोगोंका मिलाप हुआ। हमलोगोंका आमोद-प्रमोद वैसे ही चलता रहा।

कपासन स्टेशनसे दस मील अगले स्टेशनपर रतलाम पहुँचनेके लिये खंडवावाले डिब्बेमें जाकर बैठनेको काका साहबने आदेश दिया। इतनेमें ट्रेन चल दी। अब मैं जिस डिब्बेमें बैठने जाता, वहीं मुझे धक्के और फटकार मिलती। एक डिब्बेमें मैं चढ़ा ही था कि मुसाफिरोंने मुझे धक्का दिया और मैं नीचे गिर पड़ा। रेलने गति पकड़ी और वह तेजीसे चल दी। निराश, अनजान, अपरिचित क्षेत्र, रात्रिके १० बजेका समय—मेरी बुरी हालत थी। ट्रेन मेरे सामने ही मेरे साथी बरातियों और दूल्हेको लेकर चल दी। मैं पागल-सा खड़ा देखता रहा। निराश होकर मैं स्टेशनमास्टर साहबसे मिला। उन्होंने मेरी मूर्खतापर खेद प्रकट करते हुए रेलकी पटरी-पटरी वापस कपासन पहुँचकर रात्रिको किसी ट्रकके द्वारा चित्तौड़ पहुँचनेका परामर्श दिया। मैं रोता हुआ पटरी-पटरी पैदल चलकर दो बजे रातको कपासन पहुँचा। थककर चूर हो गया। अपने अपराधके लिये पश्चात्ताप करता और रोता हुआ बार-बार भगवान्से क्षमा-याचना करता रहा। कपासनके चौराहेपर लगभग एक घंटे रोते हुए प्रतीक्षा करनेके बाद एक बस आयी। वह किसी बारातको लेनेके लिये चित्तौड़ होकर निम्वाहेड़ा जा रही थी। मैंने दीन शब्दोंमें बसवालेसे प्रार्थना की और बसवालेने कृपा करके मुझे बैठा लिया। चित्तौड़ पहुँचे ही थे कि अजमेर-वाली ट्रेन रतलाम जानेके लिये खड़ी थी। जल्दी-जल्दी रतलामका टिकट लिया। टिकटका मूल्य ४) ५० पैसे था। दस रुपयेका नोट दिया। जल्दीमें वापस पैसे लेना भूल ही गया। किसी तरह रतलाम पहुँचा, पर कन्यापक्षवालोंका पता मैं जानता नहीं था। संभ्याको विवाह होनेवाला था। समयपर पहुँचना आवश्यक था। मैंने पहले कभी देखा नहीं। घंटों फिर खड़ा रहा। आँखोंमें आँसू, मुँहमें रामका नाम और अपनी करनीका पश्चात्ताप ! मैं अलग एक तरफ खड़ा था। ताँगेवाले आते और मेरी कहानी सुनकर मजाक उड़ाते हुए चले जाते। एक बूढ़े ताँगेवालेने ३) किरायेपर यह स्वीकार किया कि 'अरोड़ा परिवारका प्रत्येक घर देखकर मैं आपको वहाँ पहुँचा दूँगा।'।

प्रायः पूरे रतलामकी परिक्रमा करके शामके चार बजे मैं बारातवालोंके पास पहुँचा। सारे बराती लोग बड़े चिन्तित थे। मेरे पहुँचनेपर उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई और बच्चोंको प्रसाद बाँटा गया।

मैं सोचने लगा कि एक घंटेकी नकली थानेदारीका, गरीबोंको दुःख देनेका, यात्रियोंका हक छीननेका और उनके साथ दुर्व्यवहार करनेका भगवान् ने मुझे तत्काल ही व्याज-सहित पूरा बदला दे दिया। अतः यदि कोई असली थानेदार जो मानवताको भूलकर अत्याचार करते होंगे और जो लोग रेल चढ़ते यात्रियोंसे दुर्व्यवहार करते होंगे, पता नहीं उनकी क्या दशा होगी? मुझे इस घटनासे बड़ी शिक्षा मिली। तबसे मैंने डंडा रखना छोड़ दिया। उस दिनसे मेरे व्यवहारमें विनम्रता आ गयी। तबसे मैं अब कहीं भी जाता हूँ तो दूसरे यात्रियोंकी सुख-सुविधाका ध्यान रखता हूँ। उनको आराम पहुँचानेकी पूरी चेष्टा करता हूँ। भगवान् का मङ्गलमय विधान समीक्षा मङ्गल करता है। मुझ अपराधीको भगवान् ने दण्ड देकर मेरा बड़ा मङ्गल किया। मेरी इस घटनासे सबको यह सीखना चाहिये कि किसीके साथ दुर्व्यवहार करनेका फल बहुत बुरा हुआ करता है।

—गणेशलाल रावल कल्लाजीवाला (अध्यापक)

(२)

ग्रामीण अशिक्षित स्त्रीकी समयोपयोगी सूझ

भापा-आन्दोलनको लेकर बम्बई शहरमें भयंकर दंगा हो रहा था। चारों तरफ गुंडोंकी बदमाशी जोरोंपर थी। उस समय इस शहरके कुछ लोगोंने मिलकर एक 'संरक्षण-समिति'का संगठन किया और २४ घंटेके पेट्रोलिंग (चौकी-पहरे) की व्यवस्था की। स्वयं-सेवकोंको अपने वचावके लिये सरकारकी मंजूरीसे लाठियाँ दी जाती थीं। मोटरकी पिछली सीटपर नौकरदार लाठियोंका एक बड़ा गट्टर रखते मैं विल्लेपार्ले जल्दी पहुँचनेके लिये तेजीसे गाड़ी चला रहा था। रास्तेमें एक रेलवे क्रॉसिंग पड़ती थी। दंगेका समय, सूतसान रास्ता, मोटरमें मैं अकेला आदमी और पिछली सीटपर लाठियोंका पुलिंदा—अतः रेलवे क्रॉसिंगपर रुकना न पड़ जाय और तुरंत उसे पार कर जाऊँ—इस आशासे गाड़ीकी गति और तीव्र करके मैं क्रॉसिंगके फाटकतक पहुँच गया, परंतु दुर्भाग्यवश मेरे वहाँ पहुँचते ही फाटक

बंद हो गया। अब तो आधा घंटा यहाँ रुकना पड़ेगा—इस डरसे मेरे हाथ-पाँव ढीले होने लगे।

उधरसे जाते-आते दंगाइयोंकी नजर मेरी मोटरकी तरफ पड़ती और वे पीछे रखे लाठियोंके ढेरको देखकर धीरे-धीरे फुसफुसाते हुए क्रोधमरे नेत्रोंसे मेरी ओर घूरते थे। एक बार तो मनमें आया कि मोटर छोड़कर भाग जाऊँ।

उसी समय एक पिछड़ी जातिकी अनपढ़ मछलीमार स्त्री उधरसे आ निकली। वह मेरी विकट स्थितिका अनुमान लगाकर विना बुलाये ही मेरे पास आकर बोली—'भाई साहब! ऐसे दंगेके समय इस प्रकार खुले आम लाठियाँ लेकर आप यहाँ रुक रहे हैं? दंगा करनेवाले देखेंगे तो अवश्य ही आपको मार-पीटकर सब लाठियाँ लूट ले जायेंगे। इस प्रकार यहाँ खड़े रहकर तो आप विपत्तिको स्वयं आमन्त्रित कर रहे हैं।'।

मैंने नम्रतासे उसको सारी बातें समझायीं। इसी बीच लाठी-पत्थरोंसे सज्जित दंगाइयोंका एक टोला दिखायी पड़ा। उन्हें देखते ही मेरे तो होश गुम हो गये; पर वह चतुर सावधान बहिन तुरंत सारी परिस्थिति समझ गयी और चटसे मोटरका दरवाजा खोलकर मेरी बगलकी सीटपर आकर बैठ गयी। तबतक दंगाइयोंका टोला नजदीक आ पहुँचा और उनमेंसे एक व्यक्तिने कड़कड़ाती आवाजमें पूछा—'ये लाठियाँ किसकी हैं और कहाँ ले जायी जा रही हैं?'।

उस बहिनने झटसे जवाब दिया—'ये लाठियाँ तो मछलियोंका बोझा उठानेवाली काँवड़ें बनानेके लिये हम कुरला ले जा रहे हैं। किसीको मारनेके लिये नहीं।'।

अपनी ही जातिकी एक स्त्रीके मुँहसे यह बात सुनकर उनको विश्वास हो गया और अपनी ही समझकी भूल थी—इस प्रकार आपसमें बातें करते-करते वे लोग चले गये।

सौभाग्यसे उसी समय फाटक खुल गया और रेलवे-क्रॉसिंग पार करके हमलोग सकुशल अपने स्थानपर पहुँच गये। 'तुम्हारी समयोपयोगी सूझके कारण मैं मार खाते-खाते बच गया' यों कहते हुए मैंने उस बहिनका बहुत ही आभार माना और कहा—'खड़ी रहो, मैं तुम्हें मोटरसे बर

पहुँचा आऊँ ।' पर मेरे शब्द मेरे मुँहमें ही रह गये और वह बहिन चली गयी । (अखण्ड आनन्द)

—शान्तिलाल बोले

(३)

गरीबीमें ईमानदारी

भ्रष्टाचार और अनीतिके इस युगमें कभी-कभी प्रतीत होता है कि सदाचार और ईमानदारी नामकी कोई चीज ही इस दुनियामें नहीं है; पर कभी-कभी जीवनमें ऐसी घटना घटित हो जाती है, जिससे यह प्रकाशमें आता है कि दुनियामें अब भी (दालमें नमकके बराबर ही सही) सदाचारी एवं ईमानदार व्यक्ति वर्तमान हैं और उन्हींके बलपर यह दुनिया पतनके गड्ढेमें गिरनेसे बची हुई है । ऐसी ही एक घटनाका विवरण नीचे दिया जा रहा है जो देखनेमें बहुत छोटी-सी प्रतीत होती है, पर जिसका आदर्श बहुत ही उच्च है ।

घटना बहुत पुरानी नहीं है; इसी १९६५ की है । मेरे पिताजीकी कटपीसके कपड़ेकी साधारण-सी दूकान है । दूकान उस मार्गपर है जो मुख्य बाजारको जाता है; अतः उत्सव एवं पर्व आदिके अवसरपर काफी चहल-पहल रहती है ।

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी बड़े मंगलके मेलेके शुभ अवसरपर बाजारमें काफी चहल-पहल थी । दोपहरमें भीड़ थोड़ी कम रही; पर शाम होनेपर हजारों लोग हनुमान्जीके दर्शन करनेको जा रहे थे और दर्शन करके लौट भी रहे थे । हमने भी अपनी दूकान नित्यसे जरा अच्छे ढंगसे सजायी थी । ज्यों-ज्यों शाम होती जाती थी, दूकानपर भीड़ बढ़ती जाती थी । दूकानपर मैं और भाई साहब, दो ही व्यक्ति थे—पिताजी कहीं गये हुए थे । थोड़ी देर बाद भीड़ जरा कम हो गयी और मैं बैठकर सुस्ताने लगा । तभी देहाती-सा लगने-वाला एक वृद्ध पुरुष आया और उसने मुझसे पूछा—‘आपके पास पटरा (अंडरवियरका कपड़ा) है ?’

मैंने उसे डेढ़ रुपये मीटरके भावका पटरा निकालकर दिखाया तो वह बोला—‘भाई ! जरा सस्तावाला दिखाओ । मैं गरीब आदमी भला इतना महँगा कपड़ा कैसे पहन सकता हूँ ?’

मैं हँसा और बोला—‘बाबा ! सब चीजोंके दाम तो

तेज हो रहे हैं; फिर भला कपड़ा कैसे सस्ता रहेगा ?’ फिर भी मैंने उसे सस्तावाला पटरा दिखलाया और उसके पसंद आनेपर, साढ़े चार रुपयेका चार मीटर पटरा उसे दे दिया ।

तभी दो-एक ग्राहक और आ गये और मैं उनसे बात करने लगा । इस बीच उस वृद्ध मनुष्यने एक नोट मुझे दिया और मैंने सीधे उसे गल्लेमें डाल दिया ।

नये आये ग्राहकोंको हमारी दूकानका कपड़ा पसंद नहीं आया और वे शीघ्र ही चले गये । तब मैंने गल्ला खोला और उसमेंसे साढ़े पाँच रुपये निकालकर उस वृद्ध मनुष्यको दे दिये । रुपये अपने हाथमें लेते ही वह मुझे ऐसे देखने लगा, जैसे मैंने कोई भयंकर भूल कर डाली हो ।

मैंने उसे थोँ घूरते हुए देखा तो कहा, ‘क्यों बाबा ! क्या बात है ? तुमने दस रुपयेका नोट ही तो दिया था ?’

‘नहीं, मैंने दसका नोट नहीं दिया था ।’ उसने गम्भीर होकर कहा ।

‘फिर क्या सौ रुपयेवाला नोट दिया था ?’ मैंने कुछ व्यंगके साथ मजाकके लहजेमें पूछा ।

‘नहीं बाबू !’ वह मुसकराया । ‘न तो मैंने दसका नोट दिया था और न सौका ही । मैंने तो पाँचका नोट दिया था ।’

‘ऐं ! क्या कहते हो ?’ मेरा मुख आश्चर्यसे खुला रह गया और उसने मेरे हाथमें पाँचवाला नोट वापस थमा दिया । फिर बोला, ‘हाँ बाबू ! मैंने पाँचका ही नोट दिया था ।’

मुझे उस धनसे गरीब और हृदयसे धनी व्यक्तिके मनमें ईमानदारीकी ऐसी भावना देखकर आश्चर्यसे अधिक हर्ष हुआ और मैं उससे, उसके परिवार-सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछने लगा ।

पूछनेपर पता चला कि वह गाँवका एक गरीब किसान है जो खेती-बारी करके अपने परिवारका खर्च चलाता है । उसके पुत्र तो एक भी नहीं है, पर दो पुत्रियाँ अवश्य हैं जिनके विवाहके लिये (पैसा अर्थात् धन बचानेके लिये) ही वह काफी किफायतशारीसे पैसे खर्च करता है ।

मैंने जब पूछा, ‘बाबा ! जब तुम्हें पैसेकी इतनी अधिक जरूरत है तो फिर तुमने वह नोट रख क्यों नहीं लिया ?’

वह तो मेरी गलतीसे तुम्हें मिला था; तुमने उसके लिये बेईमानी थोड़े ही की थी ।' इसपर उस व्यक्तिने जो कहा वह समस्त मानव-जातिके लिये एक अनुकरणीय शिक्षा है ।

उसने कहा, 'याद रखो वाबू ! बेईमानीकी शुरुआत चाहे जिधरसे हुई हो, पर उससे लाभ उठानेवाला बेईमान ही कहा जायेगा । बेईमानीका पैसा कभी भी हजम नहीं होता । तुमने जितना भी बेईमानीमें पाया है, उसका कई गुना तुमसे छूटकर रहेगा—इसे मैं जीवनमें भली प्रकार परख चुका हूँ । बेईमानीसे धन कमाकर मिठाई खानेकी अपेक्षा ईमानदारीकी सूखी रोटी खाना ज्यादा अच्छा है ।'

मैंने उसे मन-ही-मन हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर नमस्कार करते हुए कहा—'धन्य हो बाबा आप, जो इस गरीबीमें भी ईमानदारी नहीं छोड़ते हो । तुम्हीं लोगोंके बल-पर तो यह दुनिया टिकी है ।'

—कुमार 'स्वदेशी'

(४)

देवताकी कृपा

करीब ३० वर्ष पहलेकी सच्ची घटना है । मेरे पिताजी उस समय दाण्डेर जिला पूनामें रहते थे । शनिवारका दिन था । दुपहरके १२ बजे थे । वे मण्डीमें साग-सब्जी लेने गये थे । रास्तेमें एक भयानक पत्थरपर गिर पड़े । बहुत चोट लगी । लोगोंने उन्हें पहिचाना और घर ले आये । इस दुर्घटनामें उनका एक पैर टूट गया । घरमें मेरी फुआजी थीं और उन्हींपर सारी जिम्मेदारी थी । पिताजी उठ नहीं सकते थे । इसलिये उनकी शौच-क्रिया आदि सब विस्तरमें ही होती थी । एक साल हो जानेपर घरके सभी लोग तंग आ गये और पिताजीकी देखभाल करनेमें टालमटोल करने लगे और उन्हें डाँटने लगे ।

पिताजीका मानसिक कष्ट बहुत बढ़ गया । उन्हें जीना भाररूप प्रतीत होने लगा और उन्होंने आत्महत्या करनेकी बात सोची । पैरसे चल नहीं सकते थे । इसलिये आत्महत्याका कोई साधन उन्हें नहीं मिल रहा था । एक दिन रातके ११ बजे आत्महत्याकी बात उनके मनमें बड़े जोरोंसे आयी । विस्तरके पास एक रस्सी पड़ी थी । उन्होंने पासकी खिड़कीकी छड़से उसका एक छोर बाँधकर दूसरा अपने

गलेमें लगाया । वे श्रीभैरवनाथजीके बड़े भक्त थे । उनको भैरवनाथजीकी स्मृति हुई । उन्होंने प्रार्थना की; इतनेमें भैरवनाथजी दिखायी दिव्ये और उन्होंने इनके गलेकी रस्सी निकाल दी और कहा—'बेटा ! तू मेरा उपासक है । आज रविवार मेरा दिन है । आजके दिन मैं अपने भक्तोंको मुँहमाँगी चीज दिया करता हूँ । तू मेरा भक्त होकर आत्म-हत्या करने क्यों जा रहा है ?'

पिताजीने बड़ी दीनतासे कहा—'महाराज ! इतने दिनोंसे मेरी जो दुर्दशा हो रही है, उसे आप जानते ही हैं । मेरा पैर अब ठीक होनेसे रहा, फिर मैं जीकर दूसरोंको क्यों तकलीफ दूँ । अब इस दुनियामें मेरा जीना बेकार है ।' इसपर भैरवनाथजीने कहा—'बेटा ! तेरा यह पूर्व-जन्मके प्रारब्धका भोग था । अब यह समाप्त हो गया । इस बीमारीसे तू जल्दी अच्छा हो जायगा ।' पिताजी कहने लगे—'आज ही रातको मैं अच्छा हो जाऊँ तब तो आपकी बात सत्य है ।' भैरवनाथजी बोले—'देख, तेरी इच्छा पूरी होगी ।' इसके बाद भैरवनाथजी अन्तर्धान हो गये । अन्तर्धान होनेके समय एक साँप आया और उन्होंने साँपको आशा दी कि 'तुम इसके शरीरमें लिपट जाओ और प्रातःकाल होते ही छोड़कर मेरे पास चले आना ।' पिताजीके शरीरसे साँप लिपट गया । प्रातःकाल होते ही साँप शरीर छोड़कर चला गया और आश्चर्य कि उनका पैर पूर्ववत् ठीक हो गया ।

इस आश्चर्यजनक घटनाकी बात सारे गाँवमें फैल गयी । लोग उन्हें देखने आने लगे । तभीसे पिताजी प्रत्येक रविवारको श्रीभैरवनाथकी पूजा करते हैं और वहाँसे भस्म लाकर घरमें बखेर देते हैं । तबसे आजतक उनको किसी बड़ी बीमारीने नहीं सताया ।

—बालकृष्ण रघुनाथ सुपेकर, पूना

(५)

त्यागका महत्त्व

लगभग पच्चीस-तीस वर्ष पहलेकी बात है । श्रीरामानन्दजी बहुत अच्छे-सफल व्यापारी थे । उनकी पहली पत्नीसे जनार्दन नामक एक पुत्र था । पत्नीके मर जानेपर उन्होंने दूसरा विवाह किया था; उसके मोहनलाल नामक एक पुत्र

था। मोहनलालकी माँ जनार्दनसे बड़ा द्वेष रखती थी और अपने पुत्र मोहनलालपर स्नेह। उसका वह मोहभरा स्नेह इतना बढ़ा हुआ था कि उसके कारण वह औचित्य और सत्यको सर्वथा भूल गयी और दिन-रात जनार्दनकी बुराई करने, उसे डाँटने-डपटनेमें लगी रहती। मोहनलालके मनमें भी उसकी माँने विष भर दिया था, अतएव वह भी बात-बातमें अपने बड़े भाई जनार्दनका अपमान करता, उसको गालियाँ बकता और सदा अनुचित व्यवहार करता। जनार्दनका स्वभाव बड़ा अच्छा था। वह विमाताके द्वारा डाँट-फटकार तथा छोटे भाई मोहनलालके द्वारा गाली-अपमान सहकर भी सदा पिता-माताकी सेवा करता और सदा-सर्वदा छोटे भाई मोहनलालके सुख-हितमें लगा रहता। बदलेमें कभी कुछ नहीं करता-कहता। बड़ी नम्रताके साथ पिताकी आज्ञाके एक-एक अक्षरका पालन करता, उनकी रुचिके अनुसार चलता और घरका तथा व्यापारका सारा कार्य निःस्वार्थ बुद्धिसे सावधानीके साथ सँभालता। इससे पिता उसपर बड़े प्रसन्न थे।

श्रीरामानन्दजीकी पत्नी अपने पतिका मन खराब करनेके लिये झूठी-झूठी बातें गढ़कर सदा-सर्वदा जनार्दनकी शिकायत किया करती। पर रामानन्दजी हँसकर टाल देते। पर जब उसकी तथा उसके पुत्र मोहनलालकी दुर्नीति अत्यन्त बढ़ गयी और वे जनार्दनपर तरह-तरहके झूठे लाञ्छन लगाने लगे, तब रामानन्दजीके मनमें भी कुछ विपरीत भाव उत्पन्न हो गया। इधर मोहनलालका चरित्र भी गिर गया। माँके पास उसके पतिकी दी हुई सम्पत्ति थी, जनार्दनकी माँका गहना भी उसीके पास था। माँ मोहवश मोहनलालको धन देती और वह उसे असत्कार्योंमें उड़ा देता। उसके संगी-साथी भी सब दुराचारी लोग ही जुट गये थे। जनार्दन बहुत नम्रतासे समझाता, पर मोहनलाल उससे उलटे लड़ने लगता और मोहग्रस्त उसकी माँ भी जनार्दनको झिड़ककर कहती कि 'तुम मेरे बेटेको समझाने-टोکنेवाले कौन होते हो, तुम उससे द्वेष रखते हो, तुम्हें उसका सुख सुहाता नहीं.....।' जनार्दन चुपचाप सब सुन लेता। इन सब बातोंसे श्रीरामानन्दजीका मन और विगड़ गया और उन्होंने सारी सम्पत्ति जनार्दनको देनी चाही। जनार्दनने नम्रतासे अस्वीकार करते हुए अपनी विमाता तथा भाई मोहनलालके प्रति पिताके मनमें स्नेह-सहानुभूति जगानेका प्रयत्न किया।

पर रामानन्दजी अपने मनमें निश्चय कर चुके थे। अतएव उन्होंने जनार्दनको बिना बताये वकीलके यहाँ जाकर एक वसीयतनामा बनाकर रजिस्ट्री करवा दिया। वसीयतनामामें श्राद्धादिकी कुछ रकमके अतिरिक्त मोहनलाल और उसकी माताको दस हजार रुपये नगद तथा एक सौ रुपये मासिक वृत्ति एवं चार कमरेका एक छोटा-सा घर दिया गया। मोहनलालकी पत्नीका स्वभाव अच्छा था, इसलिये उसे दस हजार रुपये अलग दिये थे। शेष सब मकान, जमीन, जायदाद तथा नगद आदि मिलाकर लगभग बीस लाखकी सारी सम्पत्ति तथा व्यापारका सारा अधिकार जनार्दनको दिया गया था।

श्रीरामानन्दजीने वसीयतनामा विश्वासी वकीलके पास रखकर यह कह दिया कि 'मेरी वृद्धावस्था है, कभी भी देहावसान हो सकता है। मृत्युके पहले किसीसे कुछ नहीं कहना है। पर मृत्युके बाद ही वसीयतनामामें अनुसार कुछ कर देना है।' उन्होंने उन वकीलसाहेबको तथा अपने एक हितैषी बन्धुको वसीयतनामामें अनुसार कार्य सभ्य करानेका अधिकार दे दिया।

कुछ समयके बाद ही रामानन्दजीकी मृत्यु हो गयी। इस बीचमें मोहनलालने माँके अनुचित लाड़-प्यारके कारण सारी सम्पत्ति छुटा दी। अभावकी दशामें कुछ होश भी आया और अपनी बुरी करनीपर बहुत हल्का-सा पश्चात्ताप भी जगा। श्राद्धादिके बाद वकील तथा उन हितैषी बन्धुने वसीयतनामामें बात कहकर उसके अनुसार लिखा-पढ़ी करा दी। इससे मोहनलाल और उसकी माँको बड़ा दुःख हुआ और उसमें भी ज्यादा दुःख हुआ जनार्दनको। जनार्दनकी पत्नी भी बड़ी सहृदय देवी थी, उसको भी बड़ा दुःख हुआ। मोहनलालकी स्त्रीका स्वभाव बहुत अच्छा था। वह अपने जेठानी तथा जेठमें बड़ी श्रद्धा रखती थी और उस जेठानीके प्रति बड़ा आदर था। जनार्दनकी पत्नी भी उससे बड़ा स्नेह करती थी। एक दिन जनार्दनकी पत्नीने अपने भरे नेत्रोंसे अपने पतिसे कहा—'मोहनलालजी, उनकी माँ और पत्नी बड़े ही दुखी हैं। क्या हुआ जो उनसे गलत हुई, घरकी सम्पत्तिमें तो उनका उतना ही अधिकार है जितना हमलोगोंका है। अब हम सुखी रहें, धन-वैभव

सम्पन्न रहें और मोहनलालजी तथा उनकी माता-पत्नी दुःख भोग करें, यह बड़ा अनुचित है। इधर उनका व्यवहार भी ठीक है। आप इसपर विचार करें और सारी सम्पत्तिका आधा-आधा बँटवारा कर दें। मुझे उनका दुःख सहा नहीं जाता।

पत्नीकी बात सुनकर जनार्दन गद्गद हो गया। उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। उसने कहा—‘मैं धन्य हूँ जो भगवान् ने कृपा करके मुझे तुम-जैसी साध्वी पत्नी दी है। मैं तो स्वयं यही चाहता था। वरं मेरे मनमें तो आती है कि बँटवारा क्यों हो, एक ही घर रहे। सारी सम्पत्ति उनकी ही रहे। हमलोग सँभाल और सेवा करते रहें। हमलोग आज ही माँके पास चलें। आशा है वे हमारी प्रार्थना सुन ही लेंगी।’

जनार्दन पत्नीको साथ लेकर विमाताके पास गया। मोहनलाल और उसकी पत्नी भी वहीं थीं। जनार्दनने रोकर माँसे क्षमा माँगी और माँसे कहा—‘माताजी! मुझे आप अपना नौकर समझें, भाई मोहनलाल और आप सब सँभालें। मैं और आपकी यह बहू सेवा करती रहेगी।’ और भी बहुत-सी बातें हुईं। मोहनलालकी स्त्री तो शुद्धहृदया थी ही, जेठ-जेठानीके इस व्यवहारसे वह तो आत्मविस्मृत-सी हो गयी। मोहनलालकी माँ तथा मोहनलालका हृदय भी सहसा बदल गया। मोहनलालने भाई जनार्दनके पैर पकड़ लिये, उसकी माँ भी पैरपर गिरने लगी, तब जनार्दनने उसको रोक दिया और उसके पैर पकड़कर रोते हुए कहा, ‘माँ! मेरे निमित्तसे ही आपको इतना दुःख हुआ है, इसके लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ और आशीर्वाद भी। आप मुझे अपना नालायक बेटा समझकर पालिये, पोसिये, मातृ-स्नेह दीजिये।’ जनार्दनकी स्त्रीने पैर पकड़कर क्षमा माँगी।

त्याग करते कौन रोकता है? जनार्दनने अपना स्वत्व त्याग दिया। घर ज्यों-का-त्यों रह गया। जनार्दन और मोहनलाल दोनों एक दूसरेसे स्नेह करते हुए सुखपूर्वक रहने लगे। इतना प्रेम बढ़ा कि सब एक-दूसरेको सुखी देखनेमें ही आनन्दका अनुभव करने लगे। त्यागकी अपार महिमा है। त्यागसे प्रेम होता है और प्रेममें ही आनन्द है। स्वार्थसे द्वेष होता है और द्वेषसे विविध दुःखोंका समूह

छा जाता है। त्यागसे शत्रु भी मित्र बन जाता है और स्वार्थसे मित्र भी शत्रु! धन्य है त्यागके महत्त्वको।

—बालमुकुन्द जोशी

(६)

आज भी यह स्थिति है

बड़े सुबह ही मैं गाड़ीमें बैठ गया था। अन्ततः गातें ही चल रही थीं। गाड़ीमें बैठकर मैं पुस्तक पढ़ने लगा। दो-एक स्टेशन जानेके बाद अचानक ही याद आया कि टिकिट लेना तो रह ही गया है। मनमें बड़ी परेशानी-सी हो गयी। पकड़े जानेकी नहीं, अपितु अपनी ऐसी इस भूलके कारण। अतः दूसरे स्टेशनपर उतरकर मैंने टिकिट खरीद ली।

मेरे सामनेके पाटियेपर एक जवान बैठा था। बड़े सुन्दर कपड़े पहने था और थोड़ी-थोड़ी देर बाद ही नयी सिगरेट जला रहा था। उसने भी कहा ‘मुझे भी अगले स्टेशनपर टिकिट ले लेनी है।’

‘क्यों? क्या आप भी भूल गये हैं?’

‘नहीं, मुझे तो गार्ड टिकिट देगा।’

‘आप कहाँसे बैठे थे?’

‘धंधुकासे’ उस भाईने जवाब दिया।

‘पर अब आपको गार्ड धंधुकाकी टिकिट कहाँसे देगा?’

‘यह तो हमारा रोजका धंधा है। मुझे प्रायः अहमदाबाद जाना पड़ता है और एक रुपया दे देनेपर गांधीग्राम स्टेशनपर गार्ड या टी० टी० मुझे बाहर निकाल देते हैं।’

‘आप क्या काम करते हैं?’

‘मैं रेवन्यू-विभागमें नौकरी करता हूँ।’

‘आप सरकारी अधिकारी होकर इस प्रकारका काम करते हैं, यह उचित नहीं प्रतीत होता; क्योंकि आप बिना टिकिट मुसाफिरी करते हैं इससे रेलवेको नुकसान उठाना पड़ता है।’

‘तो क्या टी० टी० रुपया न ले? वह लेता है तभी तो मैं देता हूँ?’

‘यह बात सच्ची है, पर सरकारने हर स्टेशनपर टिकिट खरीदनेके लिये खिड़की बना रखी है, वहाँ टिकिट मिलती है फिर किसलिये आप ऐसा करते हैं?’

‘वह लेता है, अतः हम देते हैं ।’

‘पर इस प्रकार रिश्त देनेका कोई कारण नहीं, सिवा इसके कि आप अपना रुपया बचानेके लिये देशके एक रुपयेका नुकसान करते हैं । खैर, इन सब बातोंको छोड़कर आप अगले स्टेशनपर टिकिट ले लें’—मैंने मुझाव दिया ।

‘आप यह कहनेवाले कौन होते हैं ?’ उन भाईने जरा रोवसे कहा ।

पास बैठे हुए एक व्यापारीजैसे भाईने कहा—‘यार छोड़ो न ये व्यर्थकी बातें, आप कोई टिकिट-चेकर तो हैं नहीं ?’

‘बात सही है, मैं टिकिट-चेकर नहीं हूँ, पर यह देशकी गाड़ी है, अतः मेरी भी है । इसको नुकसान होता है तो वह मेरे देशका नुकसान है । मैं हर डिब्बेमें जाकर यह चेकिंग तो नहीं करता कि किसके पास टिकिट है और कौन बिना टिकिट ही यात्रा कर रहा है, पर यदि कोई बिना टिकिट गाड़ीमें बैठा हो और इसका पता मुझे लग जाय तो सच्ची बात कहनेका तो मुझे अधिकार है ही ।’

यहाँ पीछेकी पटरीपर बैठे एक सज्जनने कहा—‘ये खद्दरवाले हैं ।’

‘भाई, इसमें खद्दरवालेका प्रश्न नहीं, जो सत्य हो, वह कहना तो मेरा कर्तव्य है ।’

यों जब दूसरोंकी सह मिली तब पहला युवक भी कुछ अधिक जोशमें आ गया, सिगरेटका धूँआँ उड़ाते हुए उसने कहा—‘जाइये, जो करना हो, कर लीजिये ।’

मेरे मनमें इस युवकके प्रति जरा भी द्वेष नहीं था, मनमें यही दुःख था कि ‘सरकारी अधिकारी होकर जब ये एक रुपयेके लिये यों करते हैं, तब अपने अन्य व्यवहारोंमें तो न जाने क्या करते होंगे ।’ अतः मैंने हड़तासे कहा—‘देखिये, आप समझते हैं यह बात ठीक नहीं है । आप इतना तो कहेंगे न कि मैंने इस टी० टी०को धंधुकासे अहमदाबाद तक बिना टिकिट मुसाफिरी करनेके लिये एक रुपया दिया है । मैं अगले स्टेशनपर जाकर शिकायत करूँगा ।’

दूसरा स्टेशन आते ही वे भाई नीचे उतरे । पीछेवाले डिब्बेमें टी० टी० थे । मैंने पास जाकर कहा—‘इन भाईके पास टिकिट नहीं है और ये कह रहे हैं कि इन्होंने आपको एक रुपया दिया है और ये हमेशा ही इसी प्रकार बिना टिकिट मुसाफिरी करते हैं ।’

‘अरे मिस्टर ! इस तरहकी झूठी बात आप क्यों करते हैं ? आपने किसको रुपया दिया है ? आप जानते हैं कि अभी आपकी यह शिकायत की जाय, आपकी क्या दशा होगी ? लाइये टिकिटके पैसे—’

अब ये भाई टिकिटके पैसे निकालने लगे । सामनेसे गाड़ी आ रही थी—इसलिये यह गाड़ी अभी रुकनेवाली थी । मैं अपने डिब्बेमें आ गया । ऊपरवाली सीटपर एक युवक लेटा हुआ था । उसने पूछा—‘टिकिट दिलवा दी ?’

‘वे स्वयं ले लेंगे ।’

‘आप दिलवा दें तब बात ।’

‘भले आदमी, आप सोये-सोये ऐसी बातें कर रहे हो, जरा उतरकर मेरे साथ तो चलते ।’

‘मुझे ऐसी सेवा नहीं करनी है । यह तो आपके जिम्मे है ।’

मैं अपनी जगहपर बैठकर पुस्तक पढ़ने लगा । जब गाड़ी चलनेका समय हुआ तब वह युवक भी ऊपर आया । उसका चेहरा जरा उतरा हुआ था । मेरे देखनेसे उसे शोभ न हो, अतः मैं पुस्तकमें मुँह धुसाये पढ़नेमें लगा रहा । उस युवकने लगभग पाँच सिगरेट और फूँक डाली । मेरे मनमें आया, इस प्रकार घूस देकर जो रुपया, सवा रुपया बचाया जाता होगा, वह सिगरेटके धुएँमें ही चला जाता होगा, यदि यह कुटेव ही न हो तो ऐसा बुरा काम क्यों करना पड़े !

गांधीग्राम आ गया । हम सब साथ ही नीचे उतरे । उस भाईने बड़े संकोचके साथ मुझसे छिपाकर टिकिट दे दी । (अखण्ड आनन्द)

—नवलभाई शाह

परमार्थका सरगम

(परमार्थ-साधनकी सुन्दर कथाएँ और पद)

आकार डबल-क्राउन, पृष्ठ-संख्या १०४, मूल्य पैंतालीस पैसे, डाकखर्च १५ पैसे

जीवन एक संगीत है। शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार जो ठीक गाता है, उसका मन जैसे प्रफुल्लित हो उठता है, उसी प्रकार जो मानव अपने जीवनको समस्वर बना लेता है, उसीका जीवन सफल माना जाता है।

इस पुस्तिकामें प्रकाशित आठ कथा-कहानियाँ संकलित की गयी हैं। इन आठों कहानियोंका पठन, श्रवण, मनन एवं तदनुरूप जीवन बनानेसे यह जीवन संगीतमय हो सकता है। इस संग्रहके अन्तमें ३३ पद भी जोड़ दिये गये हैं, इनमेंसे संख्या २६से ३१ तकके पदोंका अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है।

रस और भाव

(श्रीराधा-माधव-प्रेमतत्त्व)

(श्रीराधा-जन्माष्टमी सं० २०२२ पर रात्रिको हनुमानप्रसाद पोद्दारका गोरखपुरमें प्रवचन)

आकार डबल-क्राउन, पृष्ठ-संख्या २४, मूल्य पंद्रह पैसे, डाकखर्च ८ पैसे

गीताप्रेसकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

निम्नलिखित स्थानोंपर गीताप्रेसकी निजी दूकानें हैं, जहाँ 'कल्याण', 'कल्याण-कल्पतरु'के ग्राहक भी बनाये जाते हैं—

कलकत्ता—श्रीगोविन्दभवन-कार्यालय; पता—नं० १५१, महात्मा गाँधी रोड।

दिल्ली—गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; पता—२६०९, नयी सड़क।

पटना—गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; पता—अशोक-राजपथ, बड़े अस्पतालके सदर फाटकके सामने।

कानपुर—गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; पता—नं० २४/५५, बिरहाना रोड।

वाराणसी—गीताप्रेस, कागज-एजेंसी; पता—५९/९, नीचीबाग।

हरिद्वार—गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; पता—सब्जीमंडी, मोतीबाजार।

ऋषिकेश—गीताभवन; पता—गङ्गापार, स्वर्गाश्रम।

दिल्ली, कानपुर, गोरखपुर, हरिद्वार, वाराणसी—इन पाँच जगहोंपर हमारे स्टेशन-स्टाल भी हैं।

पुस्तकोंका आर्डर यहाँ देनेके पहले अपने शहरके पुस्तक-विक्रेताओंसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। विक्रेतागण प्रायः हमारी पुस्तकोंपर छपे हुए दामोंपर ही पुस्तकें बेचते हैं; क्योंकि उन्हें कमीशन, यथाधिकार विशेष कमीशन तथा रेलभाड़ा यहाँसे दिया जाता है। अतः उनके यहाँसे लेनेपर आपको भारी डाकखर्च एवं समयकी बचत हो सकती है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

‘कल्याण’के आजीवन-ग्राहक बनिये और बनाइये

[आपके इस कार्यसे गीताप्रेसके सत्साहित्य-प्रचार-कार्यमें सहायता मिलेगी]

(१) प्रतिवर्ष ‘कल्याण’का मूल्य भेजनेकी बात समयपर स्मरण न रहनेके कारण वी० पी० द्वारा ‘कल्याण’ मिलनेमें देर हो जाती है, जिससे ग्राहकोंको क्षोभ हो जाता है; इसलिये जो लोग भेज सकें, उन्हें एक साथ एक सौ रुपये भेजकर ‘कल्याण’का आजीवन ग्राहक बन जाना चाहिये ।

(२) जो लोग प्रतिवर्ष सजिल्द विशेषाङ्क लेना चाहें उन्हें १२५ रुपये भेजना चाहिये ।

(३) भारतवर्षके बाहर (विदेश) का आजीवन ग्राहक-मूल्य अजिल्दके लिये १२५ रुपये या दस पौंड और सजिल्दके लिये १५० रुपये या बारह पौंड है ।

(४) आजीवन ग्राहक बननेवाले जबतक रहेंगे और जबतक ‘कल्याण’ चलता रहेगा, उनको प्रतिवर्ष ‘कल्याण’ मिलता रहेगा ।

(५) मन्दिर, आश्रम, पुस्तकालय, मिल, कारखाना, उत्पादक या व्यापारी-संस्था, क्लब या अन्यान्य संस्था तथा फर्म भी आजीवन-ग्राहक बनाये जा सकते हैं ।

चेक या ड्राफ्ट ‘मैनेजर, गीताप्रेस’ के नामसे भेजनेकी कृपा करेंगे ।

पुराने विशेषाङ्कोंमेंसे अब केवल चार प्राप्य हैं

१—हिंदू-संस्कृति-अङ्क

पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, मू० रु० ६.५०, डाकव्ययसहित ।

२—मानवता-अङ्क

पृष्ठ ७०४, चित्र बहुरंगे ३९, दोरंगा १, इकरंगे १०१, रेखाचित्र ३९, मू० रु० ७.५०, डाकव्ययसहित ।

३—संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क (दूसरा संस्करण)

पृष्ठ ७०४, चित्र बहुरंगे १७, दोरंगा १, सादे १२ तथा रेखा-चित्र १३८, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्द रु० ८.७५ ।

४—संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराण (भगवान् श्रीकृष्णकी विभिन्न रोचक लीलाओंसे सम्बन्धित)

पृष्ठ ७०४, चित्र बहुरंगे ३९, दोरंगा १, सादे ६ और रेखा-चित्र १२०, मू० रु० ७.५०, सजिल्द रु० ८.७५ ।

व्यवस्थापक—‘कल्याण’, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

‘कल्याण’ नामक हिंदी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

फार्म चार—नियम-संख्या—आठ

१—प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर

२—प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक

३—मुद्रकका नाम—मोतीलाल जालान

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

४—प्रकाशकका नाम—मोतीलाल जालान

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

५—सम्पादकका नाम—(१) हनुमानप्रसाद पोद्दार

(२) श्रीचिम्मनलाल गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री

दोनोंका राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय

दोनोंका पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

६—उन व्यक्तियोंके नाम—श्रीगोविन्दभवनकार्यालय,

पते जो इस समाचार-पत्रके मालिक हैं और

जो इसकी पूँजीके

भागीदार हैं ।

(श्रीगोविन्दभवनकार्यालय, पता—नं० १५१, महात्मा गाँधी रोड, कलकत्ता (सन् १८६० के विधान २१ के अनुसार रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था))

मैं मोतीलाल जालान, इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं ।

दि० १ मार्च १९६६

मोतीलाल जालान
प्रकाशक



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-वनके विचित्र बटोही [कविता] ...	८२९
२-कल्याण ('शिव') ...	८३०
३-सर्वकामप्रद श्रीकृष्ण-कर-सरोरुह (पूज्य-पाद अनन्तश्रीविभूषित स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराजका प्रसाद; प्रेषक-श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ...	८३१
४-उद्धोधन [कविता] (डा० श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम') ...	८३३
५-वैज्ञानिकका ईश्वराविष्कार (आत्मलीन आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय) ...	८३४
६-प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय (ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका एक पुराना लेख) ...	८३७
७-कर्मचारियोंके तथा उद्योगसंचालकोंके कर्तव्य (पूज्य श्रीस्वामीजी श्रीराममुख-दासजी महाराजके विचार) ...	८३९
८-वेद और यज्ञ (याज्ञिकसम्राट् पं० श्री-वेणीरामजी शर्मा गौड, वेदाचार्य) ...	८४१
९-मैत्रो ब्राह्मण उच्यते (पं० श्रीजानकी-नाथजी शर्मा) ...	८४३
१०-मित्र [कविता] ...	८४४
११-भक्तवत्सल [पुराण-कथा] (श्री 'चक्र') ...	८४५
१२-विशुद्ध प्रेमैकलभ्य [कविता] ...	८४८
१३-मधुर ...	८४९
१४-राधा स्वतन्त्र, विजयी और बलवान् वीर कौन है ? [कविता] ...	८५०
१५-मन्त्र—एक अतीन्द्रिय विज्ञान (श्री-गोविन्दजी शास्त्री) ...	८५१
१६-आर्य-संस्कृतिकी आत्मा 'सत्य' (प्रो० श्रीप्रेमनन्दनरायजी, एम्० ए०) ...	८५४

कल्याण, सौर वैशाख २०२३, अप्रैल १९६६

विषय	पृष्ठ-संख्या
१७-मनके ये राक्षस भी मृत्युका कारण बन सकते हैं (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ...	८५८
१८-तुलसीके शब्द (डॉ० श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम्० ए०, डी० लिट्०) ...	८६२
१९-वर्तमान समयका बड़ा पाप—मिलावट करना (श्रीताराचन्द्रजी पांड्या) ...	८६६
२०-दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्री-गोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव) ...	८६८
२१-हे मनमोहन ! टेक निभा दो [कविता] (श्रीदानविहारीलालजी शर्मा 'शरण') ...	८७२
२२-ज्ञानकी लौ अज्ञानका काजल (प्रेषक-श्रीकृष्णमुनिजी प्रभाकर) ...	८७३
२३-अद्भुत हृदय-परिवर्तन (श्रीश्रीरामजी शर्मा 'राम') ...	८७४
२४-संत जैमलदासजी और उनके पद (डॉ० शालिग्रामजी गुप्त) ...	८७६
२५-छोटे बालककी अद्भुत प्रकारसे रक्षा (श्रीज्वालाप्रसादजी शर्मा, सी० ओ० डी०, आगरा) ...	८७८
२६-संस्कारी कुत्ते (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ...	८७९
२७-अभिलाषा [गद्य-काव्य] (डॉ० श्रीगोपाल-जी स्वर्णकिरण एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ...	८८२
२८-आजकी दुर्दशा और उसके नाशका उपाय [कविता] ...	८८३
२९-सारथक मृत्यु (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ...	८८४
३०-पढ़ो, समझो और करो ...	८८५
३१-आराध्यसे [गद्य-काव्य] (श्रीबालकृष्णजी बलदुआ, बी० ए०, एल्-एल्० बी०) ...	८९२

चित्र-सूची

- १-मोहन और मुरलीपर सुग्ध गौ माता
२-वनके विचित्र बटोही

- (रेखाचित्र) ... मुखपृष्ठ
(तिरंगा) ... ८२९

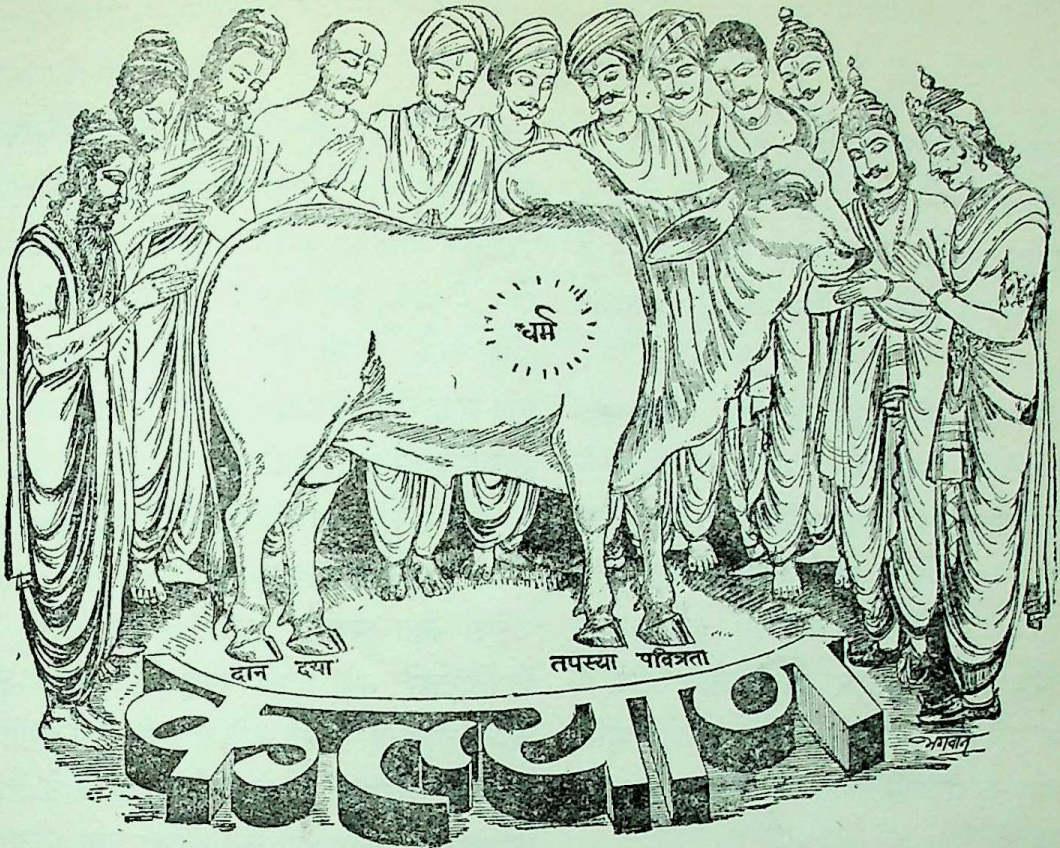
वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिल्लिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पति । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण
भारतमें ४५
विदेशमें ५५
(१० पैस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर



लोके यस्य पवित्रतौभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्ब्रह्मर्षिराजर्षिर्भिर्विद्वद्भिरपि वन्द्यते स जयताद्वर्मो जगद्धारणः ॥

वर्ष ४० }

गोरखपुर, सौर वैशाख २०२३, अप्रैल १९६६

{ संख्या ४
पूर्ण संख्या ४७३

वनके विचित्र बटोही

मधुर मृदु सुंदर राजकुमार ॥
स्यामल गौर किसोर बंधु दोउ सुचि सुषमा आगार ।
कटि तूनीर, तीर धनु कर महुँ धीर वीर सुकुमार ॥
जटा जूट मंडित, मुनि पट, उर-चाहु बिसाल उदार ।
चले जात पथ, पग बिनु पनही रूप-सील-भंडार ॥
उभय मध्य राजति श्रीजानकि सोभामई अपार ।
अति निर्मल देखत मन उमगत श्रद्धा-सरिता-धार ॥
बुझति पिय सौँ चकित, कथा बन की, करि हृदय बिचार ।
हेरि हेरि सियतनु समुझावत प्रिया, भरे हिय प्यार ॥
लखन सकुचि सोचत सिय-हिय की बात, न पावत पार ।
धन्य ते, जिन निरखे इन्हीं, भरि नैन सकल सुखसार ॥

कल्याण

याद रखो—वास्तविक हित उसीका होता है और उसीको परिणाममें सच्चे सुखकी प्राप्ति होती है जो सदा-सर्वदा दूसरोंके हितकी बात सोचता-करता है और सदा दूसरोंको सुखी बनानेके लिये ही प्रयत्नशील रहता है ।

याद रखो—जो पुरुष दूसरोंके हित-सुखका सम्पादन अपना कर्तव्य समझेगा, स्वाभाविक ही उसके अन्तःकरणमें त्याग, दया, सहानुभूति, सेवा, संयम तथा शुद्ध सदाचारके भावोंका उदय तथा संवर्धन होता रहेगा; और जितना-जितना वह इन शुद्ध भावोंके अनुसार क्रिया करनेमें तत्पर होगा, उतना-उतना ही उसके इन पवित्र भावोंमें अधिकाधिक उत्कर्ष, शुद्धि, शक्ति तथा उल्लासमयी धाराका प्रवाह तीव्ररूपसे बहने लगेगा ।

याद रखो—जिसके पास जो कुछ होता है, वह न चाहनेपर जगत्को सहज ही वही देता है, गुलाब सुगन्धका वितरण करेगा और मल दुर्गन्धका—स्वभावसे ही और जिन वस्तुओंका जितनी दूरतक अधिक विस्तार होगा, उन्हींका अन्य लोगोंमें भी—उतनी ही दूरतक प्रभाव होगा । लोग वैसे ही बनने लगेंगे । अतएव जिनके हृदयमें सद्भावोंका भण्डार है उनके द्वारा सदा सत्कर्म होते हैं, उन्हींका अन्य लोगोंमें भी प्रचार, प्रसार तथा विस्तार होता है—उनसे फिर दूसरोंमें । इस प्रकार अपना तथा जगत्के लोगोंका सहज ही कल्याण होता है । इसी प्रकार इसके विपरीत दुर्भावों तथा दुष्क्रियाओंसे अपना तथा जगत्के अन्य लोगोंका निश्चित अहित होता है ।

याद रखो—प्राणिमात्र सुख चाहता है और वस्तुतः हित ही सच्चा सुख है, इसलिये अपना हित चाहनेवालेको चाहिये कि वह जब-जब अपने हितकी बात सोचे—करे, तब-तब यह ध्यान रखे कि इससे

दूसरे प्राणियोंका अहित तो होना ही नहीं चाहिये, पर उनका हित निश्चित होना चाहिये; क्योंकि जिस कार्यके परिणाममें दूसरोंका अहित होता है, उससे अपना हित होता ही नहीं; और जिससे दूसरोंका परिणाममें हित होगा उससे अपना हित निश्चय ही होगा । अतएव सुख चाहते हो तो अपने प्रत्येक विचार तथा कर्मके द्वारा दूसरोंका हित सोचो, हित करो ।

याद रखो—जो दूसरोंके हित-साधनको ही अपना हित समझकर कर्म करता है, सभी लोग सहज ही उसका हित चाहने लगते हैं । अतः उसके सुहृदों, हितचिन्तकों तथा सच्चे बन्धुओंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है । सभी ओरसे उसे सहानुभूति, सेवा, सुहृदता, सद्भावना, सुरक्षा आदि मिलते रहते हैं । फलतः वह स्वयं शान्तिका मूर्तिमान् प्रासाद बन जाता है और उससे सम्पर्कमें रहनेवालोंको भी शान्तिका परम लाभ होता है । जहाँ शान्ति है, वहीं सुख है; जहाँ अशान्ति है, वहीं दुःख है । अशान्तिके लिये सुख कहाँ ? 'अशान्तस्य कुतः सुखम् ।'

याद रखो—जहाँ दूसरोंके हितके लिये त्याग है, वहीं यथार्थ प्रेमका उदय होता है । त्याग प्रेमसे मिलता है और प्रेमसे त्याग बढ़ता है । यों उत्तरोत्तर त्याग और प्रेममें होड़-सी लग जाती है और इससे एक त्यागमय विशुद्ध परम निर्मल परम मधुर भावोंका सुख-सागर लहरा उठता है, जिसमें अवगाहन करके, जिसके एक बूँदका आस्वादन करके भी मनुष्य अपूर्व सुखका अनुभव करता है ।

याद रखो—किसीको अपना बनाना हो, मित्र बनाना हो, सुहृद् बनाना हो, तो उसके अपने बनो, उसके मित्र बनो और उसके सुहृद् बनो । यही सबपर सात्त्विक विजय प्राप्त करनेका साधन है—इसीकी जगत्को आवश्यकता है और यही परहितका भाव

जब भगवत्पूजा बन जाता है, तब प्रत्येक प्राणीके साथ सुख-शान्तिमय तो वीतता ही है, मानव-जीवनके परम होनेवाले प्रत्येक सद्व्यवहारसे उस प्राणीके रूपमें तथा चरम लाभ भगवत्प्राप्तिसे भी वह सुसम्पन्न हो अभिव्यक्त भगवान्की पूजा होती है और फलतः जीवन जाता है। कृतार्थ हो जाता है उसका जन्म-जीवन !

‘खिव’

सर्वकामप्रद श्रीकृष्ण-कर-सरोरुह

(पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराजका प्रसाद)

‘कल्याण’के मत द्वितीय अङ्कमें भगवान्को प्राणोंका प्राण, सुखका सुख, चेतनाओंकी चेतना और सर्वप्रेरक कहा गया था। आचार्य श्रीरामानुजके अनुसार प्राणीका सारा सुख-सौभाग्य भी परम पुरुषायत्त ही है। वे ‘परास्तु तच्छ्रुतेः’ (वेदान्त० २।१।२४) सूत्रको ही सिद्धान्त सूत्र मानते हैं। उपनिषदोंमें भगवान्का नाम ‘सर्वकाम’ है। भागवतमें वे ‘सर्वकामवरास्पद’ (२।६।६) कहे गये हैं तथा गोपियोंके अनुसार वे ‘कान्त कामद’* भी हैं। अर्थात् प्राणियोंकी सम्पूर्ण कामनाओंके ही दाता हैं। कहा जाता है कि कभी-कभी प्राणी-पदार्थोंके प्रति उत्कट कामना जाग्रत होने-पर कुछ भी ज्ञान-विज्ञान,† लाख समझाना-सुझाना भी

कारगर नहीं होता। गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा ही है—

ममता रत सन ग्यान कहानी ।

अति लोभी सन बिरति बखानी ॥

और उस कामनाकी पूर्ति प्राणी यदि स्वयं कर लेता है तो कामना और मड़कती तथा विस्तृत होती है—

न जानु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णवर्त्मव भूय एवाभिवर्धते ॥

(यनु० २।२१५; नारदपरि० उपनि० ३।३७; श्रीमद्भागवत ९।१९।१४; ब्रह्मपुराण २२।४०; पद्मपुराण १।१९।२६३; विष्णुपुराण ४।१०।२३; लिङ्गपुराण ६७।१७, ८६।२४; महाभारत १।७५।५०, ३।२।३६ इत्यादि)

भोगाभ्यासमनु विवर्धन्ते रागाः कौशलानि चेन्द्रियाणाम् ।

(योगभाष्य २।१५)

बुझे न काम अग्नि तुलसी कहूँ

बिषय भोग बहु बी तें ।

अतः भगवत्साक्षात्कार—भगवत्-शरणागति ही एकमात्र इसकी सच्ची दवा है ।

भगवत्-साक्षात्कारद्वारा समस्त कामनाओंकी पूर्तिके साथ-साथ उनके हेतुओंका भी उन्मूलन हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज लिखते हैं कि विभीषण जब भगवान् राघवेन्द्र रामचन्द्रकी शरण आये थे तब उनके मनमें भोगेच्छा—साम्राज्येच्छा भी थी,*अतः

* उर कछु प्रथम बासना रही ।

* कामं ददाति इति कामदम् ।

अथवा—

कामं ददाति कृष्णयति इति कामदम् ।

इसकी व्याख्या आगे की जायगी—

यद् दुर्लभं यदप्राप्यं मनसो यन्न गोचरम् ।

तदप्यप्रार्थितं ध्यातो ददाति मधुसूदनः ॥

(गरुडपुराण १।२२२।१२)

† इसी प्रकार काकशुशुण्डिके मनमें प्रभुके सगुण रूप-दर्शनकी तीव्र लालसा थी। मुनि उन्हें ज्ञान-विज्ञान दे रहे थे; पर वह ज्ञान-विज्ञान उनकी तीव्र लालसा—कामनाके सम्मुख असह्य हो रहा था—

बिबिध भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदयें न आवा॥
सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं खुराया॥
भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब मुनिहउँ निर्गुन उपदेसा॥
(इत्यादि)

भगवान्ने उन्हें देखते ही—सम्मुख होते ही—‘लङ्केश’
पदसे ही सम्बोधित किया—

कहु लंकेस सहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥
(रामचरितमानस)

‘बोलि लंकेस कहि, अंक भरि भेंटि प्रभु,

तिलक दियो दीन-दुख-दोष-दरिद-दरन ।’

(गीतावली ५।४३।४)

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं । मोर दरसु अमोघ जग माहीं ॥

अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमन इष्टि नभ भई अपारा ॥

रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड ।

जरत बिभीषनु राखेउ दीन्हेउ राजु अखंड ॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ इस माथ ।

सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥

अस प्रभु छाबि भजहि जे आना । तेनर पडु बिजु पूछ बिधाना ॥

‘महावीरचरित’ नामक नाटकमें अवभूति तो यहाँतक
लिखते हैं कि दर्शनके पूर्व बिभीषणने भगवान् रामके
पास एक निवेदन-पत्र भेजा था और भगवान् उस पत्र-
को ही देखकर बोल उठे थे—‘अरे बरस लक्ष्मण !
महा लंकेश्वर महाराज बिभीषणको इसके उत्तरमें अब
क्या संदेश भेजा जाय ?—’

‘वत्स ! किं संदिश्यतामेवंवादिनः प्रियसुहृदो
लङ्केश्वरस्य महाराजबिभीषणस्य ।

(महावीरचरित० ४।९)

अतः अर्थार्थी भक्त भी आदरणीय ही हैं और
उन्हें भगवान्ने कुछ समझ-बूझकर ही—

आतों जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।

—में जिज्ञासुसे भी ऊपर तथा ज्ञानीके पास ही
रक्खा है । अतः भगवान् तथा उनके हस्तारविन्द
कामद हैं ।*

* गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज भगवान्के करकछको—

‘कल्पलताहु की कल्पलता बर, कामदुहाहु की कामदुहा हैं ।’

(गीतावली ७।१३)

—कहते हैं । कवितावली ७।११५ में वे लिखते हैं—

कनक कुधर केदार, बीज सुंदर सुर मनिबर ।

सींचि कामधुकु धेनु सुधामय पय विपुदतर ॥

करसरोरुहं कान्त कामदं

शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ।

(श्रीमद्भागवत १०।३२।५)

अथवा ‘कामदम्’का दूसरा अर्थ है—कामको खण्डन-
निर्मूलन करनेवाला—

‘कामं द्यति खण्डयति’—दो अवखण्डने (४।
४०)—इति ‘कामद करपङ्कज’ क्योंकि भोग-कामना-
लिप्सा रहते हुए स्वप्नमें भी सुख-शान्ति नहीं रहती और
रामभजन—रामकृपाके बिना कामका सम्पूर्णमूलन भी
नहीं होता—

काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ।

राम भजन बिनु मिटहिँ कि कामा ।

थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥

—इत्यादि

तब लगी हृदयँ बसत खल नाना । काम क्रोध मत्सर अभिमाना ॥

जब लगी उर न बसत रघुनाथा । धरें आप सायक कटि भाषा ॥

तब लगी बसत जीव उर माहीं । जब लगी प्रभु प्रताप रचि नाहीं ॥

तब लगी कुसल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन बिचाम ।

जब लगी भजत न राम कहँ, लोकधाम तजि काम ॥

अब मैं कुसल भिटे भय भारे । देखि राम पद कमल तुम्हारे ॥

त्वत्साक्षात्करणाद्वाद्दुःखानन्दान्धितस्य मे ।

सुखानि गोप्यदायन्ते ब्रह्मणोऽपि जगद्गुरोः ॥

तीरथपति अंकुर सरूप, जच्छेस रच्छ तेहि ।

मरकतमय साखा-सुपत्र, मंजरि सुलच्छ जेहि ॥

कैवल्य सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिष ।

कह तुलसीदास रघुवंसमनि तौ कि होहिँ तुव कर सरिष ॥

और—

रामचंद्र करकंज कामतरु बामदेव हितकारी ।

समन सकल संताप पाप रुज मोह मान मद माया ।

×

×

×

जेहि कर कमल कठोर संभु धनु भंजि जनक संसय मेखो ।

इत्यादि कहते हैं—

प्रातःस्मरण-पद्यमें भी कहा है—

प्रातः स्मरामि रघुनाथकरारविन्दं

रक्षोगणाय मयदं वरदं निजेभ्यः ।

यद्राजसंसदि विभज्य महेशचापं

सीताकरग्रहणसमयमाप

सद्यः

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।
(गीता २।५९)

अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार कर लेनेपर उस दिव्य
मुखानुभूतिके सामने संसारके सभी भोग—तुच्छ, निश्चयेन
अत्यन्त तुच्छ, नीरस, विकृत तथा घृणित प्रतीत होने लग
जाते हैं । भगवद्विज्ञानयुक्त प्राणीको भोग रोगके
समान दीखने लग जाते हैं—

भोगा भवमहारोगा बन्धवो दृढबन्धनम् ।
अनर्थार्थार्थसम्पत्तिरात्मनाऽऽत्मनि शाम्यताम् ॥
(योगवासिष्ठ ६।२।४०।४)

भोग रोग सम भूषण भारु । जन्म जातना सरिस संसारु ॥
तजेउ भोग जिमि रोग लोग अहि गनु जनु ।
(पार्वतीमङ्गल)

तजत बसन जिमि जन बड़भागी ॥
(रामचरितमानस २।३२३।८)

विषमिध विषयादीन् मन्यमानो दुरन्तान् ।
(महोपनिषद्)

विषं विषयवैषम्यं न विषं विषमुच्यते ।
जन्मान्तरघ्ना विषया एकदेहहरं विषम् ॥
(योगवासिष्ठ १।२९।१३)

किं तज्जपेन तपसा मौनेन च व्रतेन च ।
सुरार्चनेन दानेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हतम् ॥

(श्रीमद्भागवत ११।१४।३०, ११।२६।१३;
महाभारत अनु० ३८।४०; नारदपुराण ७।८; ब्रह्मवैवर्त-
पुराण ब्रह्म० १६।९०; शिवपुराण वाय० १७।२९;
पद्मपुराण सुष्टिखण्ड १९।३५२-५३; पातालखण्ड ९५।
१४ इत्यादि)

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥
(कठोप० २।३।१४; भागवत ७।१०।९)

अतः भगवद्विज्ञान—भगवत्सान्निध्य ही परम

श्रेयस्कर है ।
(अप्रकाशित गोपीगीत—१ श्लोक ५ वाँ, 'कामद' शब्दकी
व्याख्याका एक अंश), (प्रेषक—श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

उद्बोधन

अधम मन ! बन ईश्वर-विश्वासी ।
जिसके साथ रहे तू निर्भय, मिटे अभंग उदासी ॥ १ ॥
रूप-रहितके रूप सभी हैं मञ्जुल महिमाभासी ।
पग-पगपर प्रतीति देते हैं किसलय कुञ्ज-विकासी ॥ २ ॥
हीरक-द्यतिले ओस-कर्णोंमें अंकित भाल-विभासी ।
विकच सुमन बिखराते वन-वन वदन-सुहास-छटासी ॥ ३ ॥
गिरि-तरु-शिखर, उदधि-सरि-तलमें गुंजित कीर्ति-कथा-सी ।
पत्र-पत्रपर, किरण-किरणमें लक्षित काव्यकला-सी ॥ ४ ॥
रवि-शशि-शुक्र-बृहस्पति-ध्रुव सम जिसके प्रभा-प्रकाशी ।
अंग-अंग भी तेरे पलते बन जिसके अन्नाशी ॥ ५ ॥
जड़-चेतन, चर-अचर पिण्ड सब हैं जिसके प्रत्याशी ।
सब सलोकता, सब समीपता, सायुजके अभिलाषी ॥ ६ ॥
इन्द्र, प्रजापति, रुद्रादित्यों, वसुओंके जो बासी ।
जिसके इंगितपर संचालित कर्म शुभाशुभग्रासी ॥ ७ ॥
उस प्रभुके सेवकके सम्मुख भागे अब संत्रासी ।
उसका बल अमोघ जगतीमें उसका पास सुपासी ॥ ८ ॥

—मुंशीराम शर्मा 'सोम'

वैज्ञानिकका ईश्वराविष्कार

(आत्मलीन आचार्य श्रीअश्वयकुमार वन्धोपाध्याय)

एक विश्वविख्यात आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकसे उनके एक बन्धुने प्रश्न किया—‘महाशय ! आपने तो जीवनभर अकल्पित तपस्या करके प्रकृतिराज्यके बहुविध सूक्ष्म रहस्योंका उद्घाटन किया है एवं अपने असाधारण प्रतिभावलसे मानवसमाजकी सुख-सुविधाके लिये नाना प्रकारके उपकरणोंका भी सृजन किया है; आपसे मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपके अपने विचारसे आपका श्रेष्ठतम आविष्कार कौन-सा है ?’ वैज्ञानिकने पहले जरा-सा हँसकर एक शब्दमें ही इस प्रश्नका उत्तर दिया— GOD (ईश्वर) । बन्धुने इस अप्रत्याशित उत्तरसे विस्मित होकर इसकी एक विस्तृत व्याख्या चाही । प्रवीण वैज्ञानिकने संक्षेपमें अपने ईश्वराविष्कारकी जो व्याख्या सुनायी, उसीका ‘सार-मर्म’ अपनी भाषामें प्रकाशित करनेकी चेष्टा करता हूँ ।

आधुनिक विज्ञान प्रारम्भसे ही हमारे इन्द्रिय-प्राप्त पदार्थोंकी सत्ताको वास्तविक मानकर तत्त्वानुसंधानमें प्रवृत्त होता है । इन्द्रियप्रत्यक्ष ही हमारे विज्ञानकी भित्ति है । निरीक्षण, विश्लेषण, संश्लेषण, युक्ति-विचार इत्यादि विविध उपचयोंद्वारा हमारा तत्त्वानुसंधान जितना अग्रसर होता है, उतना ही इस इन्द्रियगोचर जगत्में ही चित्तचमत्कारी नूतन-नूतन रहस्य उद्घाटित होता है और उसे हमारे व्यावहारिक जीवनमें भी हम प्रयोग करनेकी सामर्थ्य अर्जित करते हैं । इन सब रहस्योंकी इयत्ता नहीं है । जितने ही आविष्कारपर आविष्कार होते जाते हैं, उतना ही यह जगत् कितना रहस्यमय है, इसका हम अनुभव करते रहते हैं । हमारे विज्ञानका जितना प्रसार होता जाता है, उतना ही हम अपने ज्ञानकी दरिद्रताके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करते रहते हैं । हमें प्रतीत होता है कि ज्ञातव्यकी तुलनामें हमारा ज्ञान कितना सामान्य है ।

हमारे विज्ञानने जब इन्द्रियगोचर असंख्य स्वरूप पदार्थोंका रहस्यमेद करके समस्त वास्तविक जगत्के उपादानरूपमें कुछ थोड़ी-सी मौलिक वस्तुओं (Elements) का आविष्कार किया, एवं उनके संयोग-वियोगसे सारा विश्व रचित है, ऐसा सिद्धान्त स्थिर किया, फिर, प्रत्येक मौलिक वस्तुके सूक्ष्मतम परमाणुस्वरूपका निरूपण करके उनके संयोग-वियोगकी कतिपय नियम-प्रणालियाँ भी निर्धारित कीं, तब विश्वप्रकृतिके साथ हमारा वनिष्ठ परिचय हो गया है, इस प्रकारका वैज्ञानिकोंको जो अभिमान हुआ था, वह अस्वाभाविक नहीं था । किंतु जिन सब जड़ परमाणुओंको अविभाज्य, अपरिणामी और नित्य सत्य मानकर स्वीकार किया था, विज्ञानकी अग्रगति के साथ वे भी विभाज्य, परिणामी और अनित्य सिद्ध हो गये । इनके गठन और स्वभावमें निहित कितनी ही जटिलता और रहस्यमयता आविष्कृत हुई । प्रत्येक परमाणु कितनी ही शक्तियोंका अद्भुत समावेश है, ऐसा प्रमाणित हो गया । उन सब शक्तियोंको विच्छिन्न करनेका कौशल भी मनुष्यको कुछ परिमाणमें हस्तगत हुआ । वे सब शक्तियाँ विच्छिन्न होनेपर कितना प्रचण्ड क्रिया-सामर्थ्य लाभ करती हैं, इसका भी परिचय पाया गया । जड़विषयक धारणा ही बदल गयी । प्रत्येक जड़ परमाणु शक्तिमय है, शक्ति ही जड़का उपादान है । आधुनिक विज्ञानने यह प्रतिपादित कर दिया । देखा जाता है कि शक्ति जड़का धर्म नहीं है । जड़ वस्तुके घात-प्रतिघातसे ही शक्ति उत्पन्न होती हो, यह बात नहीं है, अपितु जो जड़ प्रतीत होता है, वह शक्तिका ही अवस्थाविशेष, परिणामविशेष, समन्वयविशेष है ।

बहुविध वैज्ञानिक निरीक्षण, परीक्षण एवं सूक्ष्म गणित और सूक्ष्म विचारकी सहायतासे आधुनिक

विज्ञानने निःसंदेह ही यह प्रतिपादित कर दिया कि विश्वजगत्के सभी क्षेत्रोंमें प्रतिनियत शक्तिका ही विचित्र खेल चल रहा है। जैसे सूक्ष्मादपि सूक्ष्मतर क्षेत्रमें, वैसे ही बृहत्से बृहत्तर क्षेत्रमें भी; गतिशील और क्रियाशील पदार्थसमूहके मध्यमें जैसे, आपाततः स्थितिशील और निष्क्रिय पदार्थोंके मध्यमें भी वैसे ही; बहिर्जगत्में जैसे, अन्तर्जगत्में भी वैसे ही; सर्वत्र सर्वदा शक्तिका ही विचित्र परिणाम, विचित्र अभिव्यक्ति, विचित्र रूपान्तर हो रहा है। शक्तिके अतिरिक्त किसी वस्तुका कोई यथार्थ परिचय हमें नहीं मिलता। सुतरां वस्तुकी शक्ति है, यह कहना निरर्थक है। क्रियाके अंदर जैसे शक्तिका परिचय है, वस्तुके अंदर भी वैसे ही शक्तिका ही परिचय है। प्रत्येक वस्तु एक शक्तिकेन्द्रके अतिरिक्त या शक्तिकी समन्वित अवस्थाविशेषके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

शक्तिको हम भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें भिन्न-भिन्न क्रिया देखकर भिन्न-भिन्न नामोंसे अभिहित करते हैं, जैसे विद्युत्-शक्ति, आलोकशक्ति, उष्णशक्ति, चुम्बकशक्ति, रासायनिक शक्ति और पारमार्थिक शक्ति इत्यादि। इसके अतिरिक्त जीवजगत्में हम प्राणशक्तिका विचित्र खेल देखते हैं। मनोराज्यमें मनःशक्तिका विचित्र विलास देखते हैं, बुद्धिराज्यमें बुद्धिशक्तिका विचित्र परिचय पाते हैं। ये सब शक्तियाँ केवल एक-दूसरीके साथ विचित्र सम्बन्धपूर्वक मिलित होती हैं और संवर्ध करती हैं, सहयोगिता और प्रतिद्वन्द्विता करती हैं, क्रिया-प्रतिक्रिया करती हैं; इतना ही नहीं, एक शक्ति दूसरी शक्तिके रूपमें परिणत हो जाती है। रूपान्तरित होकर प्रकृतिराज्यमें एक शक्तिकी अन्य शक्तिमें परिणति सर्वदा चल रही है। हम वैज्ञानिक उपायोंसे एक शक्तिको दूसरी शक्तिमें रूपान्तरित कर देते हैं। सुतरां विभिन्न जातीय क्रियाओंकी अभिव्यक्तियोंमें 'शक्ति बहुविध है' ऐसा प्रतीत होनेपर भी, सारी शक्तियाँ जो मूलतः एक ही है, इस विषयमें क्या संदेह सम्भव है? एक

ही मूल शक्ति विचित्र क्रियाओंके भीतर विचित्र आकार और उपाधि ग्रहण करती है, विचित्र भावमें आत्मप्रकाश करती है। क्या यही प्रतिपन्न नहीं हो रहा है?

प्रकृतिराज्यके विभिन्न विभागोंमें शक्तिके जो सब विचित्र परिणाम, विचित्र क्रिया-प्रतिक्रिया, विचित्र रूप-रूपान्तर-ग्रहण, विचित्र गतिविधि और विचित्र कार्यों-त्पादन हम साधारणतः देख पाते हैं, उनके अंदर प्रायशः हम नियम-शृङ्खलाका परिचय पाते हैं। सभी क्षेत्रोंमें शक्तिकी मानो सुनिर्दिष्ट कर्मपद्धति है। विज्ञानने इस प्रकारके अनेक नियम आविष्कृत किये हैं और कर रहा है। इन सबको हम प्राकृतिक नियम कहते हैं और प्रायः अखण्डनीय मानते हैं। किंतु सूक्ष्मतर अनुसंधान-से देखा जाता है कि सभी क्षेत्रोंमें शक्ति इन सब नियमोंका बन्धन मानकर चलती हो, ऐसा नहीं है। हमारी आविष्कृत नियम-शृङ्खलाका उल्लङ्घन करके भी शक्ति अनेक क्षेत्रोंमें क्रिया करती है और अपनी स्वतन्त्रताका परिचय देती है। शक्तिको हम सर्वतोभावेन नियमाधीन नहीं कर सकते। शक्तिका कार्य देखकर ही हम नियमका आविष्कार करते हैं। किंतु विशेष-विशेष क्षेत्रमें साधारण नियमका व्यतिक्रम करके भी शक्ति कार्य करती है। शक्तिकी क्रियामें हम स्थूल जगत्में एक प्रकारके नियम देखते हैं और सूक्ष्म जगत्में दूसरे प्रकारके। जडजगत्में एक प्रकारके, तो जीव-जगत्में कहीं-कहीं उसके विपरीत भी। सुतरां शक्ति केवल अपनी सत्तासे सत्तावती है, इतना ही नहीं, कार्य-जगत्में अपनेको विचित्र प्रकारोंसे अभिव्यक्त करनेकी पद्धतिके सम्बन्धमें उसकी अपनी स्वतन्त्रता भी है। यह सिद्धान्त अनिवार्यरूपसे स्थिर होता है।

इस परिदृश्यमान जगत्में हम जो इतने विभिन्न स्तरके, विभिन्न प्रकारके शक्ति-परिणाम देखते हैं, इतनी अभिनव सृष्टि और आकस्मिक ध्वंस देखते हैं, इतने नियमोंके बन्धन और उसीके साथ इतने नियमोंका

व्यभिचार देखते हैं, इसमें भी हमारी वैज्ञानिक दृष्टि इस बातको अस्वीकार नहीं कर सकती कि देश-कालसे अपरिच्छिन्न, असंख्य सौरमण्डल, नक्षत्रमण्डल-विशिष्ट अशेष जटिलतासमाकीर्ण यह विश्वप्रपञ्च एक रहस्यमय ऐक्यसूत्रमें ग्रथित है। इसका एक आभ्यन्तरीण योगसूत्र है। इसके समग्र अवयवोंमें एक अद्भुत सामञ्जस्य है। एक प्राणशक्तिने मानो इस विशाल ब्रह्माण्डको विधृत कर रक्खा है। यह मानो किसीका एक विराट् शरीर है। यह बात केवल मानसिक कल्पना नहीं जान पड़ती।

इसी विराट् विश्वका एक क्षुद्र अंश है हमारी पृथ्वी। इस पृथ्वीके क्रमविकासका इतिहास भी साक्षी देता है कि आकास्मिक रूपसे सूर्यका एक टुकड़ा खिसक आया और उसने एक निर्दिष्ट कक्षामें सूर्यकी ही प्रदक्षिणा करनी आरम्भ कर दी। कितने अद्भुत प्रकारसे एक प्रचण्ड तापविशिष्ट अग्निगोलककी अवस्थासे शक्ति-परिणामोंके भीतर गुजरता हुआ सूर्यका यह टुकड़ा आकाश, पाताल, जल, स्थल, पर्वत, अरण्य, अग्नि, विद्युत् आदिमें विभक्त होकर इन सबके सुन्दर समावेश-द्वारा कालक्रमसे जीवोंके बसनेके स्थानकी योग्यताको प्राप्त हुआ। किस रहस्यमय प्रणालीसे इस जड पिण्डके भीतर प्राणका अभ्युदय हुआ, प्राणके भीतर फिर मनका विकास हुआ, मनके भीतर बुद्धिका उदय हुआ एवं क्रमशः यही पृथ्वी मानवसभ्यताकी लीलाभूमि बन गयी। इस विवर्तनमें कितनी बार कितने प्रकारका संहार-निर्माण हुआ, कितने सृष्टि-प्रलय हुए। वैज्ञानिक दृष्टिसे यह सभी शक्तिके ही खेल हैं। प्राण, मन, बुद्धि—सभी एक शक्तिके ही विचित्र रूप हैं। सूर्य भी शक्तिमय, नक्षत्रादि भी शक्तिमय, पृथ्वी भी शक्तिमयी। कितने सृष्टि और ध्वंसोंके समावेशमें क्या अद्भुत संगठन।

विज्ञान हमारे सामने जो सब तथ्य उपस्थित करता

है, उससे हम अनायास इस सिद्धान्तपर पहुँचते हैं कि यह विश्वप्रपञ्च अशेष वैचित्र्यसमाकुल है और इसमें प्रतिनियत परिवर्तन होनेपर भी एवं इसके प्रत्येक विभागमें सर्वदा सृष्टि, स्थिति, प्रलयकी ताण्डवलीला चलती रहनेपर भी इसके समस्त अतीत, वर्तमान और भविष्यमें एक एकत्व है, एक योगयुक्त संघबद्ध भाव है। अतएव निश्चय ही इसका एक प्राणकेन्द्र है। वह प्राणकेन्द्र अवश्य ही अनन्त शक्तिका आधार, अपनी सत्तासे सत्तावान्, स्वयंप्रकाश, स्वयंक्रिय और स्वतन्त्र है। उस प्राणकेन्द्रसे ही अनन्त कालसे असंख्य प्रकारकी शक्ति विकीर्ण हो रही हैं। असंख्य प्रकारके रूप-रूपान्तरोंकी सृष्टि हो रही है। उस प्राणकेन्द्रने ही अपनी असीम शक्तिसे विश्वके समग्र अंशको, समग्र अङ्ग-प्रत्यङ्गको विधृत कर, संघबद्ध कर, योगयुक्त कर, पकड़ रक्खा है। वह प्राणकेन्द्र ही विश्वकी समग्र व्यष्टि और समष्टि सत्ताका अनन्त स्रोत, आश्रय और नियामक है। केवल बहिर्विश्व ही नहीं, हमारे इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि भी इसी विश्वप्रपञ्चके ही अन्तर्गत हैं एवं उसी एकमात्र महान् शक्तिकेन्द्रसे ही अभिव्यक्त और उसीके द्वारा विधृत और नियन्त्रित हैं। इस शक्तिमय विश्वकी समग्र शक्तिकी मूलभूता और आश्रयस्वरूपा उस महाशक्तिको हम जब नहीं कह सकते; क्योंकि वह स्वराट्, स्वयम्भू, स्वप्रकाश और स्वयंक्रिय है। यही तो चैतन्यका लक्षण है। इस महाशक्तिके विचित्र आत्मप्रकाशको हम उसकी स्वतन्त्र इच्छा कह सकते हैं। अतएव इस सर्वकारणकारण परम सत्ताको वैज्ञानिक दृष्टिसे 'चैतन्यमयी और इच्छामयी' महाशक्ति माननेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। उसको स्वेच्छामय, अनन्त शक्तिमान् चेतन पुरुष कहनेमें भी कोई आपत्ति नहीं है। धर्माचार्यगण उसीका तो परमेश्वरके नामसे वर्णन करते हैं और उपासना करते हैं। ईश्वर और ऐश्वरी शक्तिमें किसी भेदकी कल्पना ठीक नहीं।

प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका एक पुराना लेख)

आनन्दमय भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होनेके लिये सर्वोत्तम उपाय 'सच्चा प्रेम' है। वह प्रेम किस प्रकार होना चाहिये और कैसे प्रेमसे भगवान्‌ प्रकट होकर प्रत्यक्ष दर्शन दे सकते हैं ? इस विषयमें आपकी सेवामें कुछ निवेदन किया जाता है।

अनेक विघ्न उपस्थित होनेपर भी ध्रुवकी तरह भगवान्‌के ध्यानमें अचल रहनेसे भगवान्‌ प्रत्यक्ष दर्शन दे सकते हैं।

भक्त प्रह्लादकी तरह राम-नामपर आनन्दपूर्वक सब प्रकारके कष्ट सहन करनेके लिये एवं तीक्ष्ण तलवारकी धारसे मस्तक कटानेके लिये सर्वदा प्रस्तुत रहनेसे भगवान्‌ प्रत्यक्ष दर्शन दे सकते हैं।

श्रीलक्ष्मणकी तरह कामिनी-काञ्चनको त्यागकर भगवान्‌के लिये वन-गमन करनेसे भगवान्‌ प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

ऋषिकुमार सुतीक्ष्णकी तरह प्रेमोन्मत्त होकर विचरनेसे भगवान्‌ मिल सकते हैं।

श्रीरामके शुभागमनके समाचारसे सुतीक्ष्णकी कैसी विलक्षण स्थिति होती है, इसका वर्णन श्रीतुलसीदासजीने बड़े ही प्रभावशाली शब्दोंमें किया है। भगवान्‌ शिवजी उमासे कहते हैं—

होइहैं सुफल आजु मम लोचन।

देखि बदन पंकज भव मोचन ॥

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी।

कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा।

को मैं चलेउ कहाँ नहिं बूझा ॥

कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई।

कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥

अविरल प्रेम भगति मुनि पाई।

प्रभु देखै तरु ओट लुकाई ॥

अतिसय प्रीति देखि रघुवीरा।

प्रगटे हृदय हरन भव भीरा ॥

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा।

पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥

तब रघुनाथ निकट चलि आए।

देखि दसा निज जन मन भाए ॥

तब मुनि हृदय धीर धरि गहि पद बारहि बार।

निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार ॥

श्रीहनुमान्‌जीकी तरह प्रेममें विह्वल होकर अति श्रद्धासे भगवान्‌की शरण ग्रहण करनेसे भगवान्‌ प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

कुमार भरतकी तरह राम-दर्शनके लिये प्रेममें विह्वल होनेसे भगवान्‌ प्रत्यक्ष मिल सकते हैं। चौदह सालकी अवधि पूरी होनेके समय प्रेममूर्ति भरतजीकी कैसी विलक्षण दशा थी, इसका वर्णन श्रीतुलसीदासजीने बहुत अच्छा किया है—

रहेउ एक दिन अवधि अधारा।

समुझत मन दुख भयउ अपारा ॥

कारन कवन नाथ नहिं आयउ।

जानि कुटिल किधौ मोहि बिसरायउ ॥

अहह धन्य लछिमन बड़भागी।

राम पदारविंदु अनुरागी ॥

कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा।

ताते नाथ संग नहिं लीन्हा ॥

जौ करनी समुझै प्रभु मोरी।

नहिं निस्तार कल्प सत कोरी ॥

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ।

दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ ॥

मोरे जियँ भरोस दइ सोई।

मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई ॥

बीतैं अवधि रहहिं जौ प्राना।

अधम कवन जग मोहि समाना ॥

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।

बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत ॥

बैठे देखि कुसासन जया मुकुट कस गात ।

राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात ॥

हनुमान्के साथ वार्तालाप होनेके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीसे भरत-मिलाप होनेके समयका वर्णन इस प्रकार है । शिवजी महाराज देवी पार्वतीसे कहते हैं—

राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी ।

अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ॥

प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहि जाति नहि उपमा कही ।

जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही ॥

बृक्षत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई ।

सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई ॥

अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो ।

वृद्धत बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो ॥

मान-प्रतिष्ठाको त्यागकर श्रीअक्रूरजीकी तरह भगवान्के चरणकमलोंसे चिह्नित रजमें लोटनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं ।

पदानि तस्याखिललोकपाल-

किरीटजुष्टामलपादरेणोः ।

ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि

विलक्षितान्यञ्जयवाङ्मुखाद्यैः ॥

तदर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः

प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः ।

रथादवस्कन्ध स तेष्वचेष्टत

प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥

देहंभृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् ।

संदेशाद्यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥

(श्रीमद्भागवत १० । ३८ । २५—२७)

जिनके चरणोंकी परम पावन रजको सम्पूर्ण लोकपालजन आदरपूर्वक मस्तकपर चढ़ाते हैं ऐसे पृथ्वीके आभूषणरूप पद्म, यव, अङ्गुशादि अपूर्व रेखाओंसे अङ्कित श्रीकृष्णके चरणचिह्नोंको गोकुलमें प्रवेश करते समय अक्रूरजीने देखा ।

उनको देखते ही आह्लादसे व्याकुलता बढ़ गयी, प्रेमसे शरीरमें रोमाञ्च हो आये, नेत्रोंसे अश्रुपात होने

लगे । अहो ! यह प्रभुके चरणोंकी धूलि है—यों कहते हुए रथसे उतरकर अक्रूरजी वहाँ लोटने लगे ।

देहधारियोंका यही एक प्रयोजन है कि गुरुके उपदेशानुसार निर्दम्भ, निर्भय और विगतशोक होकर भगवान्की मनोमोहिनी मूर्तिका दर्शन और उनके गुणोंका श्रवणादि करके अक्रूरकी भाँति हरिकी भक्ति करें ।

गोपियोंके प्रेमको देखकर ज्ञान और योगके अभिमानको त्यागनेवाले उद्धवकी तरह प्रेममें विह्वल होनेपर भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं ।

एक पलको प्रलयके समान वितानेवाली रुक्मिणीके सदृश श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये हार्दिक विलाप करनेसे भगवान् प्रत्यक्ष दर्शन दे सकते हैं ।

महात्माओंकी आज्ञामें तत्पर हुए राजा मयूरध्वजकी तरह मौका पड़नेपर अपने पुत्रका मस्तक चीरनेमें भी नहीं हिचकनेवाले प्रेमी भक्तको भगवान् प्रत्यक्ष दर्शन दे सकते हैं ।

श्रीनरसी मेहताकी तरह लज्जा, मान, बड़ाई और भयको छोड़कर भगवान्के गुणगानमें मग्न होकर विचरनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं ।

‘बी० ए०’ ‘एम्० ए०’ ‘आचार्य’ आदि परीक्षाओंकी जगह भक्त प्रह्लादकी तरह नवधा भक्तिकी* सच्ची परीक्षा देनेसे भगवान् प्रत्यक्ष दर्शन दे सकते हैं ।

भगवान् केवल दर्शन ही नहीं देते वरं द्रौपदी, गजेन्द्र, शबरी, विदुरादिकी तरह प्रेमपूर्वक अर्पण की हुई वस्तुओंको वे स्वयं प्रकट होकर खा सकते हैं ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

(गीता ९ । २६)

* श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । ५ । २३)

पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं समुत्तररूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ । अतएव सबको चाहिये कि परम प्रेम और उत्कण्ठाके साथ भगवद्दर्शनके लिये व्याकुल हों ।

कर्मचारियोंके तथा उद्योग-संचालकोंके कर्तव्य

(पूज्य श्रीस्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके विचार)

प्रश्न—कर्मचारी-संघ यानी यूनियन कब और क्यों बनते हैं ?

उत्तर—जिस संस्थामें कर्मचारी काम करते हैं, उसके मालिकोंका जब स्वार्थपूर्ण व्यवहार होने लगता है, वे उनपर अभिमानवश अनुचित शासन करते हुए उनको नीची दृष्टिसे देखकर उनके साथ असत् एवं अनुचित व्यवहार करने लगते हैं, तब कर्मचारियोंके मनमें द्वेष एवं प्रतिहिंसाकी भावना जाग्रत् होती है, साथ-ही-साथ उनके मनमें अपनी स्वार्थसिद्धिका विफल भ्रम भी पैदा हो जाता है । वे लोभके कारण अपने लाभका स्वप्न देखने लगते हैं । तब वे 'संघे शक्तिः कलौ युगे'की नीति अपनाते हैं और प्रतिहिंसाकी भावनासे मालिकोंको दबानेके लिये यूनियन बना लेते हैं । परंतु यह याद रखना चाहिये कि जिस संस्था या संघका निर्माण द्वेष या प्रतिहिंसाकी भावनासे किया जाता है, उसके परिणाममें कभी भी शान्ति तथा लाभ नहीं मिलता; क्योंकि यह नियम है कि जिसकी आधार-शिला ही क्रोध और लोभयुक्त होगी, उसका परिणाम किसीके लिये भी कभी हितकर नहीं हो सकता ।

प्रश्न—संघके कर्मचारियोंका क्या कर्तव्य होना चाहिये ?

उत्तर—उनका कर्तव्य है कि उनके अपने लिये जो नियम बनाये गये हैं, प्रत्येक कर्मचारी उसपर ध्यान दे और अपने कर्तव्यका सुचारुरूपसे पालन करे ।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः । (गीता १८ । ४५)

अपने पीछे यूनियनके बलके अभिमानसे प्रेरित

होकर द्वेष-वृत्तिसे संस्थाको नुकसान पहुँचानेकी चेष्टा की जाती है, वह सर्वथा निन्दनीय है । ऐसी चेष्टा कभी न हो, ऐसा दृढ़ संकल्प होना चाहिये । कारण, संस्थाकी सर्वतोमुखी उन्नतिपर ही उनकी उन्नति निर्भर है ।

अपने साथियोंमें किसीकी कुछ भी त्रुटि हो तो उसको दूर करना अपना परम कर्तव्य समझें । अहितके भयसे किसीकी त्रुटि या दोषको छिपानेसे उस व्यक्तिका नैतिक पतन होगा और संघमें अन्यायका प्रचार होकर परिणाममें उल्टा अहित ही होगा । इसलिये दोषीको कभी प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये ।

आर्थिक उन्नति चाहनेवालोंका यह अटल ध्येय होना चाहिये कि वे जहाँ कार्य करते हैं, उस संस्थाकी एवं सभीकी न्यायपूर्वक आर्थिक उन्नति कैसे हो—यह सोचें और करें । केवल व्यक्तिगत आर्थिक उन्नतिकी इच्छा रखनेवालोंकी सुखदायी तथा स्थायी आर्थिक उन्नति नहीं हो सकती । यह नियम है ।

अपने समयका बड़ी सावधानीसे सदुपयोग करना चाहिये । हम किसी संस्थामें समय लगाकर बदलेमें पैसा लेते हैं । अतः काम कम करना, पैसा अधिक चाहना—यह भाव बहुत ही हानिकारक है । हम जितने पैसे लेते हैं उससे अधिक कार्य कर दें, जिससे हमारी कमाई शुद्ध होगी और न्यायपूर्वक कमाईके पैसोंका अन्न खानेसे हमारी बुद्धि पवित्र होगी । उससे उत्तरोत्तर लौकिक और पारलौकिक उन्नति होगी; क्योंकि सब जगह विजय धर्मकी ही होती है । हमारे लिये जितने

समय काम करनेकी जिम्मेदारी है, उस समयके बीचमें आर्थिक, शारीरिक और व्यावहारिक हानि करनेवाले प्रमाद एवं आलस्य और अनावश्यक कार्यमें समय नष्ट न हो जाय, इसके लिये विशेष सावधानी रखनी चाहिये ।

कर्मचारियोंका कर्तव्य है कि वे संस्थाकी उन्नतिके साधनोंपर विशेष ध्यान रखें । उपभोक्ताओंके साथ उत्तम व्यवहार करें, चीजें शुद्धताके साथ बढ़िया बनावें एवं संस्थाकी कोई भी सामग्री कहीं भी नष्ट होती हो तो उसे अपनी व्यक्तिगत चीजोंकी तरह सँभालकर रखें । साथही संस्थाके प्रबन्धकोंका आदेश आदर और सत्कारपूर्वक पालन करनेकी चेष्टा करें ।

प्रश्न—संस्थाके प्रबन्धकोंका क्या कर्तव्य होना चाहिये ?

उत्तर—संसारमें लौकिक और पारलौकिक उन्नति सभी चाहते हैं । बुद्धिमान् वे ही कहे जा सकते हैं, जिनका मुख्य ध्येय आध्यात्मिक उन्नति ही होता है । आध्यात्मिक उन्नति चाहनेवालोंको अपने उद्देश्यकी ओर सदा-सर्वदा सजग रहना चाहिये । मेरे सहयोगी रोटी, कपड़े तथा लौकिक वस्तुओंके अभावमें दुःख न पायें, मेरी तथा मेरे साथ काम करनेवालोंकी वास्तविक उन्नति कैसे हो, यह सोचते रहना चाहिये । यह तभी सम्भव है जब अपनी भावना यह होगी कि उनका वास्तविक हित और उनके चित्तकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेना मेरा प्रधान कर्तव्य है । आध्यात्मिक उन्नतिका लक्ष्य हर समय जाग्रत् रहना चाहिये ।

कार्यकर्ता, ग्राहक, सत्संगी, बाहरसे आनेवाले अतिथि एवं घरवालोंके साथ भीतरसे दोष-दृष्टिरहित होकर हितभरी भावनासे आदर, नम्रता और प्रेमपूर्वक व्यवहार करनेका स्वभाव बनाना चाहिये ।

मैं कहीं अधिकारके अभिमानमें आकर कभी भी उनका अहित तो नहीं सोच लेता हूँ, उनका अपमान और तिरस्कार तो नहीं कर बैठता हूँ, उनके हकसे उन्हें

वञ्चित तो नहीं करता हूँ, उनकी न्यायपूर्ण माँगोंका उपेक्षा तो नहीं करता तथा उनके दुःखका कारण तो नहीं बन जाता हूँ—इस प्रकार विचार करते रहना चाहिये; क्योंकि दूसरोंका अहित सोचने, करने तथा उन्हें दुःख पहुँचानेसे अपना ध्येय तो कभी सिद्ध होता ही नहीं, वरं परिणाममें अहित तथा दुःखकी ही प्राप्ति होती है । इसलिये हर समय सभीके हितमें लगे रहना चाहिये, जिससे अपने ध्येयकी सिद्धि सुगमतासे होगी ।

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

(गीता १२ । ४)

यदि किसी कर्मचारीके द्वारा वास्तवमें कोई भूल ही हो गयी हो तो उसे सबके सामने अपमानित नहीं करना चाहिये । एकान्तमें प्रेमपूर्वक मीठे शब्दोंमें उसकी हितभरी भावनासे उसका दोष बताकर भविष्यमें इस प्रकारकी भूल न हो, इसके लिये चेतावनी देनी चाहिये ।

प्रश्न—मनुष्य अपनी ही विजय चाहता है । सच्ची विजयका मार्ग क्या है ?

उत्तर—विजयका वास्तविक स्वरूप है दूसरेके हृदय पर अधिकार प्राप्त करना । बलपूर्वक शक्तिसे दबाकर विजय प्राप्त करना, वास्तविक विजय नहीं किंतु पराजय ही है; क्योंकि पराजितके हृदयमें दबा हुआ द्वेष अवसर पाकर भयंकर रूप धारण कर लेता है और विजय प्राप्त करनेवालेकी भविष्यमें पराजय करनेमें समर्थ होता है । अतः किसीको भी निर्बल समझकर उसका अनिष्ट करनेकी भावना कभी किंचित् मात्र भी मनमें नहीं रखनी चाहिये । भगवान् श्रीरामने अंगदसे कहा—काजु हमार तासु हित होई । रिपु सन करेहु बतकही सोई ॥

वास्तविक विजय वही होती है, जहाँ इष्ट भगवान् और पालनीय धर्म होता है; क्योंकि भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं और धर्मका फल स्थायी है । इसलिये आश्रय भगवान्का और आचरण धर्मका होनेसे विजय होती

है तथा लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति भी वहीं होती है ।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्धुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

(गीता १८ । ७८)

धनुधारी अर्जुन जहाँ और कृष्ण भगवान् ।

विजय विभूती है वहीं मेरा मत यह मान ॥

जहाँ पैसा ही इष्ट हो और उपाय झूठ-कपट हो, वहाँ पाप, दुःख, आपसमें संघर्ष, अन्याय तथा अहित-रूपसे पराजय ही होगी ।

वास्तविक विजयकी इच्छा रखनेवालोंको अपना तथा दूसरोंका तत्काल तथा परिणाममें हित हो, वही काम

करना चाहिये । इनमें तत्कालकी अपेक्षा परिणामकी और अपने हितकी अपेक्षा दूसरेके हितकी प्रधानता है । कोई भी संस्था हो, जिसमें व्यक्तिगत स्वार्थके त्यागी, सत्यवादी, कर्तव्यपरायण और दूसरोंके हितैषी कार्य-कुशल एवं तत्परतावाले पुरुष अधिक होंगे, वहाँ सफलता, न्याय और विजय स्वतः होगी । अपनी संख्या अधिक बढ़ाना अपनी वास्तविक विजयमें खास कारण नहीं है, किंतु जितने हैं, उतने ही उत्तम आचरणवाले बनें, इसीसे विजय होती है । जैसे अधिक संख्यावाले कौरवों-पर कम संख्यावाले पाण्डवोंकी विजय हो गयी ।

चंदनकी चुटकी भली, गाड़ी भली न काट ।

चतुर नर एकहि भली, मूर्ख भला न साठ ॥

वेद और यज्ञ

(लेखक—याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य)

महर्षि जैमिनिने 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' (जै० सू० १ । १ । २) इस सूत्रके द्वारा धर्म ही वेदका एकमात्र प्रतिपाद्य अर्थ है, यह स्पष्ट किया है ।

वार्तिककारने भी 'धर्मे प्रतीयमाने तु वेदेन करणात्मना' इससे धर्मके प्रतिपादनको ही वेदका मुख्य कर्तव्य माना है । अतः उपर्युक्त प्रमाणोंके द्वारा धर्म ही वेदका अर्थ है, यह निर्विवाद है ।

महर्षि सायणाचार्यने भी—

आध्वर्यवस्य यज्ञेषु प्राधान्याद् व्याकृतः पुरा ।

यजुर्वेदोऽथ होत्रार्थमृग्वेदो व्याकरिष्यते ॥

—इत्यादि वचनोंके द्वारा यज्ञोंका प्रतिपादन ही वेदका मुख्य विषय माना है । अतः इस समय चारों वेदोंमें वेदोंकी जितनी शाखाएँ उपलब्ध हैं, उनकी यज्ञ-प्रधानताके रूपमें ही व्याख्या की गयी है । यह संदेह करना भी उचित नहीं कि 'सभी वेदभाग अर्थान्तर-परक ही था और बलपूर्वक उसे यज्ञपरक बनानेमें सायणाचार्यने बड़ा दुस्साहस किया ।'

आज तो कराल कलिकालके प्रभावसे भारतीय, विशेषतः संस्कृतके विद्वान् संस्कृताभिमानीवर्ग भी अपने पूर्वाचार्योंकेद्वारा प्रवर्तित मार्गको छोड़कर लोकविरुद्ध तथा लोकगर्हित मार्गपर चलनेसे अपनी शोभा समझते हैं । यह पहले ही कहा जा चुका है कि सायणाचार्यके भाष्यके पूर्व भी बहुतसे भाष्य थे, उन सभी भाष्योंने भी वेदको यज्ञपरक ही माना है । उन्हींके अनुसार सायणाचार्यका भी भाष्य बना । इस प्रकार वे भाष्य भी पूर्व-पूर्व भाष्योंके अनुसार ही बने होंगे, यह स्पष्ट कहा जा सकता है । इस तरह प्रवृत्त-भाष्य-परम्परा वेदोंकी यज्ञपरताके प्रतिपादनमें अविचार्य रही है । अधिक क्या कहा जाय, सायणाचार्यके हजारों वर्ष पूर्व भगवान् शत्रुस्वामीने वेदव्याख्यानरूप अपने मीमांसा-शास्त्रमें सम्पूर्ण वेदकी व्याख्याका पर्यवसान यज्ञोंमें ही माना है । अतः सायणाचार्यके ऊपर किसी प्रकारका आरोप करना अपनी अज्ञताको प्रकट करना है । इसी तरह एक-एक शाखाके कल्पसूत्र भी आश्वलायन, कात्यायन, बौधायन प्रभृति उपलब्ध हैं । उनमें भी

यज्ञ-प्रधानताका ही वर्णन प्राप्त होता है। जैसे—

इषे त्वोजेत्वा द्वायवस्थ देवो वः सविता
प्राप्स्यतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे० । (शु० यजु० १।१)
इत्यादि ।

इषे त्वोज्जं त्वेति वृष्टयै तदाह यदाहेषे
त्वेत्यूज्जं त्वेति यो वृष्टादूग्रसो जायते तस्मै तदाह ।
(शतपथब्रा० १।७।१।२)

इस ब्राह्मणवाक्यमें बहुपर्णत्वादि-गुणयुक्त शाखाके छेदनके अतिरिक्त कोई दूसरा अर्थ किस प्रकार किया जा सकता है ? थोड़ी देरके लिये यदि इसे भी अर्थान्तरपरक मान लिया जाय, तो भी 'पर्णशाखां छिनत्ति शामीलीं वेपेत्यूज्जं त्वेति वा' इस कल्पसूत्रका कौन अर्थ कल्पित किया जा सकता है ? यदि यज्ञादि-बोधनतात्पर्यसे ही प्रवृत्त कल्पसूत्रोंका भी अर्थान्तर किया जाय, तो कोई क्या कह सकता है ? क्योंकि ऐसे लोग तो प्रत्यक्षरूपसे जाज्वल्यमान अग्निको 'जल' और हाथीको 'बिल्ली' कह सकते हैं ।

भगवान्‌के श्वास-प्रश्वासरूपसे निकले हुए वेदोंका बहुत बड़ा अर्थ-गाम्भीर्य है। अतः इस सम्बन्धमें बड़ी-बड़ी शङ्काएँ उठा करती हैं। वेदका अधिकांश भाग यज्ञ-प्रतिपादक है, इस बातको वेदभाष्यकारोंने बार-बार कहा है ।

कुछ आधुनिक विचारधाराके लोग वेदकी यज्ञ-परतामें विशेष आलोचना करते हैं तथा मनमाना वेदार्थ करके प्रसन्न होते हैं। ऐसे लोगोंके सम्बन्धमें क्या कहा जाय ? पता नहीं, ऐसे लोगोंका यज्ञोंने क्या अपराध किया और उनके मनमाने अर्थोंने उनका क्या उपकार किया ?

यदि वेदको यज्ञादिरूप धर्मप्रतिपादक नहीं माना जाय और अपनी बुद्धिके अनुसार मनमाने अर्थोंका आरोप किया जाय, तो 'वेद धार्मिक ग्रन्थ हैं' यह

परम्परा समाप्त हो जायगी और 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' (मनु० २।६) इत्यादि समस्त स्मृति-वचन भी निरर्थक हो जायँगे; क्योंकि अनादिरूपसे माने हुए वेदोंके सम्बन्धमें जब ऐसी धारणा बना ली जायगी तो उन्हींके आधारपर बने हुए स्मृति-ग्रन्थोंकी क्या दशा होगी ? ऐसी स्थितिमें तो समस्त धार्मिक ग्रन्थोंका विलय हो जायगा ।

जिस वेदके सहारे यह भारतवर्ष आजतक विश्वके समस्त देशोंमें सर्वश्रेष्ठ समझा गया, जिसके सहारे सभी भारतीय अन्य लोगोंकी अपेक्षा सर्वोत्तम समझे गये और जिसके सहारे हमारी दैनन्दिनचर्या उत्तम चलती आयी, उस धर्ममूल वेदके उच्छिन्न (अप्रामाणिक) होनेसे शेष ही क्या रह जायगा ? अतः उपर्युक्त विचारधारा केवल अज्ञ अथवा पागलकी ही हो सकती है, न कि बुद्धिमान् व्यक्तिकी। इसी प्रकार वेदोंके अर्थोंको तथा वेदोंके यज्ञ-बोधक अर्थोंको पुष्ट करनेवाले प्रमाणोंको छोड़कर अपनी बुद्धिके अनुसार मनमाने अर्थ करनेवाले लोगोंको क्या कहा जाय ? या तो उन्हें यज्ञोंका ज्ञान नहीं, या यज्ञोंके प्रति उनका महान् द्वेष है, यही कहा जा सकता है ।

इसी प्रकार आजके कुछ लोग सम्पूर्ण वेदोंका केवल आध्यात्मिक अर्थमें ही पर्यवसान मानते हैं, यह भी उनकी बुद्धिकी विचित्रता ही है। वस्तुतः यज्ञोंकी अमान्यता और अभावसे ही हमलोग आज दीन-हीन और क्षीण हो गये हैं। भगवान् मनुके—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।

आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥

—इस वचनके अनुसार यज्ञमें डाली हुई बलवर्धक आज्य प्रभृति सभी हव्य-सामग्री भस्मीभूत होकर वाष्परूपसे (भापरूपसे) ऊपर आकाशमें उठती है, फिर वही कुछ समयके बाद वर्षाके रूपमें पृथ्वीपर आती है और वह ओषधियोंके रूपमें परिणत होकर

हम लोगों का पोषक तत्व बन जाती है। वह बल खाद्य-पदार्थों के बल की अपेक्षा बहुत बड़ा होता है। बड़े विहारादिके दोषसे हमारा हास होता जा रहा है, यह खेद की बात है कि वेदों के श्रौत-स्मार्त्तादि यज्ञों के अभावसे और कालकी महिमा तथा देश-दोषसे, आहार-विहारादिके दोषसे हमारा हास होता जा रहा है, यह प्रत्यक्ष है।*

मैत्री ब्राह्मण उच्यते

[महामैत्री-साधना]

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

‘मैत्री ब्राह्मण उच्यते’—यह वचन शास्त्रों में बार-बार प्राप्त होता है। (उदाहरणार्थ द्रष्टव्य—मनुस्मृति २।८७, बृहद् विष्णुस्मृति—५५।१९, बृहत् पाराशरस्मृति ४।६०, महाभारत शान्तिपर्व ६०।२२ तथा २३८।१३, बृहद् योगियाज्ञवल्क्य १०।१५, भविष्यपुराण १।४।२६-२७ इत्यादि स्थान। इन-इन स्थलों पर असहाय, देवस्वामी, भर्तृयज्ञ, भारुचि, नन्दन पण्डित (मनु-व्याख्यान), मेधातिथि, नारायणसर्वज्ञ, राघवानन्द, गोविन्दराज, नन्दपण्डित (वैजयन्ती) तथा नीलकण्ठ और देवबोध आदिने ‘मैत्रः’ शब्द के विभिन्न अर्थ किये हैं। तथापि अधिकांशने—‘सर्वेषां मित्रमेव मैत्रः, स्वार्थे अण् ।’—सभी का मित्र ही—‘मैत्र’ भी है (महामित्र होनेसे) यही अर्थ मुख्यतः माना है।

इसी प्रकार श्रीविष्णुपुराण ३।८।२४ आदिमें भी कहा गया है—

सर्वभूतहितं कुर्यान्नाहितं कस्य कर्हिचित् ।

मैत्री सर्वेषु (समस्त) भूतेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम् ॥

अर्थात् समस्त प्राणियों का उपकार ही करे, किसी का भी अपकार न करे। यह समस्त भूतों में—प्राणिमात्र-में मैत्रीभावना ही ब्राह्मण का उत्तम धन है। उसकी यह मैत्री रागजनित या निन्द्य आसक्तिवशात् नहीं होती, किंतु स्वाध्याय-जप-समाधि आदि साधनों तथा बन्ध धर्म-संस्क्रित्व द्वारा ही होती है। यह भी मनु० २।८७ आदि पूर्वनिर्दिष्ट सभी स्थलों में स्पष्टतया संदर्शित हुआ है। यथा—

स्वाध्यायेन हि संसिद्ध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ।

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्री ब्राह्मण उच्यते ॥

(मनु० २।८७, विष्णुधर्मसू० ५५।१९, बृहत् पाराशर० ४।६०, महा० शां० ६०।२२, २३८।१३, योगवा० ६।२।१२०, बृह० योगियाज्ञ० १०।१५, भविष्य पुराण १।४।२६-२७ इत्यादि) ।

इसके कारणों पर अनुसंधान करनेसे बात भी सर्वथा युक्तियुक्त दीखती है; क्योंकि बृहद् योगियाज्ञवल्क्य, योगदर्शन, योगवासिष्ठ, महाभारत, मोक्षधर्मादि अध्यात्म-

* यह लेख लेखक की ‘यज्ञ-प्रवचन’ पुस्तकसे लिया गया है। ‘यज्ञ-प्रवचन’ की पृष्ठ-संख्या १६५ है। एक रुपया, पचास पैसे मूल्य है। ७।१४, सकरकन्द गली वाराणसी के पते पर लेखकसे यह पुस्तक प्राप्त हो सकती है।

† वस्तुतः रागादि—काम-क्रोधादिकी आसक्ति भी बिना निदान जाने दूर होती नहीं दीखती। केवल मारने, डँटने या दण्ड देनेसे भी कुछ शक्य नहीं दीखता। कारण, निदान ढूँढ़ने पर तमोगुणी-रजोगुणी बुद्धि, माया-मोह, अज्ञान, दुःसंकल्पादिका प्राक्तन तथा इदन्तन दुरभ्यास असत्सङ्ग, तथा विषयसङ्ग भी राग-द्वेषादिके उदय तथा संवर्धनके हेतु उपलब्ध होते हैं। दीर्घकालीन दुरभ्यासका निराकरण दीर्घ सत्सङ्ग, भगवद्भजन, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, सदाचारपरायणता, सद्बिचारादि साधना, एवं शुद्धाभ्यासजनित आत्मदर्शनादि ए० भगवत्कृपाद्वारा ही शक्य है। अतएव विशेष सावधानीसे कुसङ्ग, कुव्यसन, असत् प्रवृत्तियों तथा असत् अध्ययनादिका त्याग करके भगवत्कृपा का आश्रय ले सर्वात्मना भगवत्-शरणागति आदि साधन करते हुए निरन्तर सत्प्रवृत्ति में लगे रहना चाहिये।

शास्त्रोंमें 'स्वाध्याय' तथा जपादिद्वारा अध्यात्म-शास्त्रोंका श्रवण-अध्ययन-मनन तथा 'प्रणव-जप' आदिद्वारा आत्म-वलोकन, समस्त विश्वमें एकेश्वर—एकात्मभावनाका निश्चय ही अभिप्रेत है और इस निश्चयद्वारा सर्वभूत-मैत्री अनायास सिद्ध होती है। ऐसे व्यक्तिका किसी भी व्यक्ति या प्राणीके साथ कोई भी द्वेष, अनिष्टचिन्तन, अहित होना कैसे शक्य हो सकता है ? बाह्य क्रियाओं-द्वारा आत्मदेहादिसहित सर्वत्र उपेक्षा-गाम्भीर्यादि दृष्ट होते हुए भी अन्तरसे सौम्यता ही प्राप्त होती है, उसकी दृष्टि यद्यपि शान्त नीराग होती है, तथापि उसमें सर्वत्र शान्ति, मैत्रीकी शुद्ध अमृतमयी धारा प्रवाहित होती हुई देखी जा सकती है—

अमृतस्यन्दिसुभगा यस्य सर्वजनं प्रति ।

दृष्टिः प्रसरति प्रीता स शान्त इति कथ्यते ॥

(योगवासिष्ठ २ । १३ । ७७)

प्रबुद्ध-मननशील-ज्ञानाभ्यासी साधकमें सरलता, सहृदयता, शुद्ध मैत्रीभावना, सौम्यता, क्षमा, करुणा आदि ज्ञान स्वभावतया उदित होते हैं। उसमें दुराग्रह, दम्भ-द्वेषादि दोषोंकी बात कौन कहे ? स्वप्नमें भी द्वेषीके रूपमें किसीका स्मरण नहीं होता—

‘भावयतः शुक्रो धर्म उपजायते ।’

(यो० भा० १ । ३३)

‘मैत्रः करुण एव च ।’

(गीता १२ । १२)

‘श्रद्धा क्षमा मैत्री दाया ।’

(मानस)

‘मैत्रीकरुणामुदिता ।’

(योगदर्शन)

आर्यता हृद्यता मैत्री सौम्यता करुणाज्ञता ।

समाश्रयन्ति तं नित्यं अन्तःपुरमिवाङ्गनाः ॥

(योगवासिष्ठ ५ । ६ । ९)

प्रायः ऐसे लोग अपकारादिका भी बदला नहीं लेते, वे स्वभावतः मृदुभाषी तथा सर्वसुहृद् होकर स्वयं ही प्रायः सब कष्ट सह लेते हैं—

धृतिमैत्री मतिस्तुष्टिर्मृदुता मृदुभाषिता ।

हेयोपादेयनिर्मुक्ते ब्रूते तिष्ठन्त्यपवासनम् ॥

(योगवा० ५ । १३ । २९)

इस तरह पुराण-स्मृति तथा योगग्रन्थोंमें इसपर बहुत विशाल सामग्री है, जो विस्तारपूर्वक समीक्षा, मननीय तथा संग्रहणीय है ।*

मित्र

सब विधि सौ सेवा करै, करै सकल सुख दान ।

आपु वरै दुख मित्रको, करै न कछु अभिमान ॥

दुराचार, दुर्मति, दुरित, हरै सहज दै ज्ञान ।

सेवै निज आत्मा-सरिस, मित्र सो परम सुजान ॥

* मित्रलक्षणप्रतिपादक यह श्लोक प्रसिद्ध है तथा बहुत जगह उपलब्ध होता है—

शोकारातिभयत्राणं प्रीतिविश्रम्भभाजनम् । केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ॥

(गरुड० ११४ । २, वृद्धचाणक्य ७ । २, चाणक्यराज० शास्त्र (ईश्वरीप्रसाद) ११८, भोजप्रबन्ध १४८, पञ्चतन्त्र २ । ६२, ४ । ३, हितोपदेश १ । २२५, प्रबन्धचिन्तामणि २ । १२० इत्यादि) ।

इसी प्रकार यद्यपि वाल्मीकि-रामायण एवं महाभारतादि इतिहासों एवं कामन्दक, नीतिशाक्यामृत, वैशम्पायननीति-प्रकाशिका आदि सभी नीति-ग्रन्थोंमें तथा गद्य-प्रबन्धादिमें भी मित्रलाभ, मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति आदिमें 'मैत्री' पर बड़ी सुन्दर बातें हैं, योगवासिष्ठमें भासविलास-मैत्री प्रशस्त है तथापि यह 'महामैत्री' तो 'विश्वैकब्रह्मादृष्टि'द्वारा ही मुख्यतया सम्पाद्य है ।

भक्तवत्सल

[पुराण-कथा]

(लेखक—श्री 'चक्र')

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेण वा । विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ॥
सूर्य-ग्रहणके महापर्वपर कुरुक्षेत्रमें अपार मानव-समुदाय एकत्र हुआ था । अधिकांश ऋषिगण तथा राजाओंके समुदाय आये थे । महान् स्नानके पुण्यको प्राप्त करनेका सुअवसर तो था ही, श्रीकृष्णचन्द्रके सामीप्यका सुरदुर्लभ लाभ सबसे बड़ा आकर्षण था । द्वारिकामें ऋषि जा सकते थे; किंतु वहाँ राजसदनमें उन अरण्यवासियोंको वह उल्लास कैसे प्राप्त हो सकता था जो इस विस्तीर्ण तीर्थभूमिमें सहज सुलभ था । नरपति कोई भी कुशस्थली जाय, उसे यादवाधीशका अतिथि ही होकर तो रहना होता । यहाँ राजाओंके अपने शिविर हैं । साथ ही श्रीकृष्ण-दर्शनका महान् सुयोग । महाराज उग्रसेन अपने पूरे परिवारके साथ पधारे हैं । यादवोंकी सभामें विराजमान मधुसूदनकी जो परमैश्वर्यमण्डित दिव्य मूर्ति है, उसके पादाभि-वन्दनका सौभाग्य यहाँ सहज सुलभ है ।

इस महोत्सवके मञ्जु उल्लासमें वसुदेवजीने महायज्ञ किया । कोई आगत ऋषि-मुनि ऐसा नहीं था जो उस यज्ञमें ऋत्विक् बननेको स्वयं आगे न आया हो । यज्ञ और दानकी महिमा, कुरुक्षेत्रकी इस भूमिमें, समन्त-पञ्चक क्षेत्रमें अल्पदानका भी अतिशय माहात्म्य बार-बार श्रवणोंमें पड़ा और सत्यभामाजीके चित्तमें एक लालसा जागी । उन्होंने एक दिन अपने आवासमें पधारे देवर्षिसे पूछा—‘देव ! दानमें जो कुछ दिया जाता है, वह वस्तु अक्षय होकर उपलब्ध होती है, यह सत्य है ?’

‘हाँ देवि ! यदि दातामें शुद्ध श्रद्धा हो, दान पुण्यस्थलपर, शुभ समयमें और सत्पात्रको दिया जाय ।’ देवर्षिने किञ्चित् आश्चर्यसे छा—‘किंतु श्रीहरिकी

बल्लभाको ऐसा क्या अप्राप्य है, जिसकी वे कामना करें । उनकी उपलब्धिको तो काल स्पर्श नहीं करता ।’

‘मैं कुछ दान करना चाहूँ, आप स्वीकार करेंगे ?’ सत्यभामाजीने देवर्षिके प्रश्नका उत्तर नहीं दिया । उनमें शुद्ध श्रद्धा नहीं है, यह आशङ्का कोई कलुष-हृदय भी नहीं कर सकता । यह भगवान् परशुरामकी पुण्य यज्ञस्थली धर्मक्षेत्र—इस-जैसा पुण्यस्थल उपलब्ध है और दानका महापर्व काल है । सम्मुख खड़े महाभागवत, नित्य-विरक्त देवर्षि नारद यदि दान ग्रहण करना स्वीकार कर लें तो श्रेष्ठतम सत्पात्रकी समस्या भी सुलझ गयी ।

‘नारद निवासहीन पर्यटक है और नित्य निष्परिग्रही’ देवर्षिने फिर भी कहा—‘देवि ! ऐसा कोई भाग्यहीन नहीं जो आपके करोंसे प्राप्त प्रतिग्रहको अपने शत-शत जन्मोंके पुण्यपुञ्जका उदय न माने ।’

‘तब आप कल प्रभातमें दर्शन देनेका अनुग्रह करें ।’ सत्यभामाजीने अञ्जलि बाँधकर, मस्तक झुकाकर बड़ी श्रद्धासे नमन किया ।

× × ×

‘आप मुझसे सचमुच प्रेम करते हैं ?’ प्रातःकृत्य, संध्या-हवन, गो-विप्रार्चन, दान तथा सेवकोंका उचित स्तुकार समाप्त करके श्यामसुन्दर आसनपर विराजे तो श्रीरुक्मिणीजीके अनन्तर सत्यभामाजीने आकर उनके चरणोंपर मस्तक रक्खा और उनका अर्चन करते-करते ही उन्होंने मन्दस्मितके साथ पूछ लिया ।

‘यह भी कोई पूछनेकी बात है । मैं तो तुम्हारा ही हूँ ।’ श्रीकृष्णने सप्रेम स्मितपूर्वक देखा । ‘कहीं यह मानिनी आज मान तो नहीं करनेवाली है ?’

‘आप तो इस प्रकार सभीसे कहते हैं ।’ सत्यभामा-
जीमें मान नहीं, उच्छलित राग था । ‘मेरा तो यह मेरे
करका रत्नकङ्कण है । जिसे चाहूँ, उसे दे दूँ ।’

‘यह जन भी तुम्हारा इसी प्रकारका रत्नाभरण है ।
इसे भी जिसे चाहो दे सकती हो ।’—माधवका कमल-
मुख सहज हास्य-भूषित हुआ ।

‘सच ?’ सत्यभामाने अद्भुत भङ्गिमासे देखा ।
‘आपका कुछ विश्वास नहीं ।’

‘देवि ! यह तीर्थभूमि है और मैं आजकल नियम-
पालन कर रहा हूँ, यह आप जानती हैं ।’ श्रीकृष्णचन्द्र
सुप्रसन्न थे ।

‘नारायण ! गोविन्द !’ देवर्षिकी वीणाकी झंकार
आयी । इतनेमें वे दिव्य दम्पति उनके स्वागतमें उठ
खड़े हुए । सत्यभामाजीने स्वयं स्वर्णपीठपर सुकोमल
आस्तरण बिछाया । द्वारिकानाथने देवर्षिका जबतक
पूजन किया, सत्यभामा स्वर्णपात्रमें जल, कुश ले आयीं ।

‘अहं श्रीकृष्णपत्नी सत्यभामा ब्रह्मपुत्राय नारदाय
त्वामिमं पतिं प्रददे ।’ सन्निधि सम्पूर्ण देश-कालादि
उच्चारणपूर्वक हाथमें जल-कुश लेकर सत्यभामाजीने
संकल्पका उच्चारण किया और देवर्षिने दक्षिण हस्त
बढ़ाकर वह कुशाक्षत ग्रहण कर लिया । प्रातःवन्दनके
लिये उपस्थित सभी राजमहिषियोंने आश्चर्यसे एक दूसरे-
का मुख देखा ।

‘श्याम ! नारद परिव्राजक हैं । अब उठो और मेरे
साथ चलो ।’ देवर्षिने वीणा उठायी । श्रीकृष्णचन्द्र
चुपचाप उठ खड़े हुए ।

‘भगवन् ! आप इनका उचित मूल्य ले लें ।’
सत्यभामाजीने अब करबद्ध प्रार्थना की ।

‘देवि ! नारद परिग्रही नहीं है । कोई भी वस्तु
लेकर मैं क्या करूँगा ? प्रतिग्रहमें प्राप्त वस्तुका विक्रय
प्रतिग्रहीताकी इच्छापर निर्भर है और मैं श्रीकृष्णका

विक्रय नहीं करूँगा ।’ देवर्षिने खुलकर हँसते हुए
कहा । ‘देवीने ठीक सोचा था कि इस पावनस्थलीमें
इन चिरचञ्चलका दान करके आप इन्हें अक्षय्यरूपसे
प्राप्त कर लेंगी; किंतु यह तो ऐसा धन नहीं है कि
इसका लोभ नारदके मनमें न हो । श्रीकृष्ण !
आओ, चलें ।’

सत्यभामाजी मूर्छित नहीं हो गयीं, यही बहुत बड़ी
बात हुई । एकत्रित राजरानियोंका मुख निष्प्रभ हो गया ।
जिसे जो सूझा, उसने वही प्रारम्भ किया । देवर्षिकी
चरण पकड़े अनेकोंने । रुदन, क्रन्दन तथा भाग-दौड़
प्रारम्भ हुई । महाराज उग्रसेन, वसुदेवजी, माता देवकी
तथा समस्त यदुवंश क्षणोंमें वहाँ एकत्र हो गया ।

‘श्रीकृष्णका विक्रय मैं नहीं करूँगा ।’ देवर्षि अनुचित
हठ कर रहे हैं, यह भी कोई कैसे कह दे । अपने
आराध्यको बेचनेकी बात तो किसी सामान्य साधकके
मनमें भी नहीं आती ।

‘दया करें प्रभु !’ महारानी रुक्मिणी अन्तमें
आगे आयीं ।

‘दया तो आप कर रही हैं करुणामयी ।’ देवर्षि
सहसा गम्भीर हो गये । ‘आप कह सकती हैं कि यह
दान अवैध है । श्रीकृष्णपर आपका स्वत्व सर्वाधिक है,
किंतु आपको यह विवाद नारदसे तो नहीं करना है ।
अच्छा, आप चाहती हैं तो मैं इन निखिल ब्रह्माण्डनायक
का उचित मूल्य लेनेको प्रस्तुत हूँ ।’

‘मैं दूँगी मूल्य । आप जो माँगना चाहें, ले लें ।’
सत्यभामा सोझास आगे आ गयीं ।

‘निखिल ब्रह्माण्डनायक’ रुक्मिणीजीके अधरोष्ठ काँपे ।
वे मुख झुकाकर पीछे हट गयीं । वे जानती हैं कि
उनके आराध्य भावैकगम्य हैं । जो उन्हें जैसा
मानता-जानता है, उनके लिये वे वैसे ही होते हैं ।
अब इस समय देवर्षि उन्हें निखिल ब्रह्माण्डनायक

चाहते हैं—तब उन अनन्तकोटि ब्रह्माण्डाधीशका मूल्य कहाँसे आयेगा ? सत्यभामाके उल्लासमें उन्हें केवल बाल-चापल्य दीखा ।

‘उचित मूल्य देवि !’ नारदजी किञ्चित् व्यंग्यके ढंग-से हँसे । ‘इन्हें तुलामें बैठा दीजिये ।’ नारदके लिये तो रत्न, स्वर्ण तथा शिलाएँ समान हैं । आप दूसरी ओर ताम्र, लौह, पाषाण भी रक्खें तो मुझे आपत्ति नहीं है । श्रीकृष्ण तुल जायँ, बस इतना मुझे चाहिये ।’

विशाल तुलास्तम्भ तत्काल स्थापित हो गया । यदुकुल-शिरोमणिकी पट्टमहिषी अपने प्राणधनको रत्नोंसे तौल देनेके उत्साहमें थीं; किंतु रत्न, स्वर्णराशि, रजत भी जब पर्याप्त नहीं हुआ, ताम्र तक पर यदुवंशी उतर आये । अन्ततः उन्हें श्रीकृष्णको खोना तो था नहीं ।

‘ये भावमय हैं । आप दूसरी तुलापर संकल्पित धनका कोई प्रतीक भी धरेंगे तो वह अपना सम्पूर्ण भार देगा ।’ देवर्षिने समझाया ।

रानियाँ निराभरण हो चुकी थीं । किसी यादवके शिविरमें तथा शरीरपर एक आभूषण नहीं बचा था । पाण्डवशिविर ही नहीं, दूसरे मित्र राजाओंके शिविर भी उस तुलापर रिक्त हो चुके थे । इतनेपर भी श्रीकृष्ण जिस पलड़ेपर थे, वह भूमिपर स्थिर धरा था ।

‘सम्पूर्ण राज्य एवं राजकीय कोष ।’ एक साथ महाराज उग्रसेन तथा चक्रवर्ती सम्राट् युधिष्ठिरने अपने मुकुट तुलापर धर दिये । तुला किञ्चित् भी तो हिली होती ! उसमें तो क्षुद्रतम कम्पन भी नहीं हो रहा था । केवल स्थिर खड़े थे एक ओर पितामह भीष्म और दूसरी ओर पाण्डव-सम्राज्ञी द्रौपदी । दोनोंके नेत्र भर रहे थे । दोनोंके कण्ठोंसे प्रायः गद्गद स्वर साथ ही फूटे—
‘भक्तवत्सल !’

x

x

x

‘वत्से !’ माता देवकीने रुक्मिणीजीकी ओर देखा ।

‘मातः ! मैं उनकी चरण-चर्चिका हूँ ।’ उन श्रीस्वरूपाने मस्तक झुका लिया । ‘मैं अपने सम्पूर्ण वैभवके साथ स्वयं भी तुलापर बैठ जाऊँ—निखिल ब्रह्माण्डका वैभव अपने नायककी समता तो नहीं कर सकेगा ।’

‘तुम ?’ माताने श्रीहृलधरकी ओर देखा ।

‘यह ठीक कि श्रीकृष्ण मेरे अनुज हैं ।’ श्रीसंकर्षणने माताको कोई आशा नहीं दी । ‘लेकिन इस समय तुलामें उनका समत्व करने-जैसा साहस मैं अपनेमें नहीं पाता हूँ ।’

‘बेटी ! ऐसे अवसरपर सम्मान रखना चाहोगी तो काम चलेगा नहीं ।’ माता रोहिणीने सत्यभामाके कंधेपर हाथ रक्खा । ‘ब्रजराजके शिविरमें जाओ । श्याम प्रेमके मूल्यमें विकता है और वहाँ प्रत्येक इसका धनी है । किसीको भी ले आओ वहाँसे ।’

आश्चर्यकी बात नहीं थी कि ब्रजके शिविरसे कोई अवतक वहाँ आया नहीं था । श्रीकृष्णको सहन नहीं था कि ब्रजके जन द्वारिकाके शिविरमें आकर किसीकी भी उपेक्षा देखें । उन्होंने वाचासे आग्रह कर रक्खा था—‘द्वारिकाके जिस किसीको श्रीचरणोंका दर्शन करना हो, उसे यहाँ आना चाहिये । केवल विशेष-रूपसे आमन्त्रित होनेपर ही यहाँका कोई भी उस शिविरमें जायगा ।’

ब्रजके लोग तो कन्हार्देके संकेतपर प्राण देनेवाले । उन्होंने देखना भी नहीं चाहा कि द्वारिकाके शिविरका स्वरूप कैसा है । सत्यभामाजी तो इस समय विह्वल हो रही थीं । वे रथमें बैठीं और रथ जब ब्रजराजके शिविरके सम्मुख रुका, उन्होंने यह भी नहीं देखा कि उन श्रीकृष्णपट्टमहिषीको कौन, कैसे देख रहा है । रथसे उतरकर दौड़ीं वे और सीधे श्रीवृषभानुजीके शिविरमें कीर्तिकुमारीके चरणोंमें स्तिर रख दिया उन्होंने—‘बहिन ! शीघ्र चलो । इस विपत्तिसे मुझे बचा लो ।’

‘चलो महारानी !’ श्रीवृषभानुनन्दिनीको बड़ा संकोच हुआ। बड़ी त्वरासे उन्होंने सत्यभामाजीको उठाकर अङ्गमाल दी। यह भी नहीं पूछा कि विपत्ति क्या है और कहाँ चलना है उन्हें। जैसे बैठी थीं, वैसे ही वे उठ खड़ी हुईं। उनकी दो सखियोंने खतः उनका अनुगमन किया; क्योंकि उन्होंने तो किसीको कोई संकेत तक नहीं किया। रथपर ही उन्होंने सुना कि विपत्तिका रूप कैसा है।

‘वत्से !’ माता रोहिणीने दौड़कर अङ्गमें ले लिया था रथसे उतरते ही। ‘तू ही आ गयी ?’

संकेतसे ही उन श्रीरासेश्वरीने सत्यभामाजीको सूचित कर दिया कि तुलुके दूसरे पलड़ेपर जो कुछ भी अवतक रखा गया है, उसे उठा लिया जाना चाहिये। वे माता देवकीकी पद-वन्दना करने बढ़ीं तो तुला रिक्त होने लगी। वहाँ उस सामग्रीका रखना व्यर्थ तो सिद्ध ही हो चुका था।

अपने कण्ठमें पड़ी वनमालासे एक तुलसीदल निकाला उन्होंने। नमित-मुख बढ़ीं वे और वह दल कितने स्नेह, कितने सुकोमल ढंगसे तुलापर उन्होंने धरा—कोई अतिशय श्रद्धालु अपने आराध्यपर भी कदाचित् ही ऐसे दलार्पण कर पाता हो। तुलसीदल तुलापर चढ़ा और तुलुका दूसरा पलड़ा उठ गया। तुला संतुलित—सर्वथा संतुलित हो गयी।

क्षणार्ध लगा इसमें। देवर्षि ऐसे आतुर होकर बड़े, मानो कोई अन्य उस दलको उठा लेगा—ऐसा भय हो उन्हें। उस दलको उठाकर उन्होंने अपनी जटाओंमें छिपा लिया। रोम-रोम पुलकित, स्वेद-स्नात स्वर्णाङ्ग, अजस्रस्रवित लोचन, वे उद्दाम नृत्य करने लगे थे; किंतु गद्गद स्वरसे वाणी फूट नहीं रही थी।

‘आपको एक गोपकन्याने वञ्चित किया; किंतु मैं ऐसा नहीं होने दूँगी।’ देवर्षि कुछ स्वस्थ हुए तो बड़े सम्मान, बड़े स्नेहसे प्रेमहास्यपूर्वक श्रीराधाकी ओर देखती हुई सत्यभामाजीने नारदजीसे कहा। ‘आप जो रत्नादि लेना चाहें.....।’

‘किसने वञ्चित किया देवि ? किसको वञ्चित किया ?’ देवर्षि बीचमें ही बोल उठे। जटामेंसे वह दल उन्होंने एक बार निकालकर देखा और फिर जटामें रखते हुए कहने लगे—‘इन कृपामयीके द्वारा कभी कोई वञ्चित हो सकता है ? इनके श्रीचरणोंकी छायासे मायाकी छल्ला दूर भागती है। यह तुलसी—वृन्दा, यह तो स्वयं इनका स्वरूप है और ये श्रीकृष्णसे नित्य अभिन्नरूपा—नारदको श्रीकृष्ण मिले थे। चिरचञ्चल वे, उनकी स्थिरताका आश्वासन तो इन्होंने दिया। अब नारदको राधा-कृष्ण दोनों मिले और अब वे चपल चले तो जायँ !’

देवर्षि नारद फिर प्रेमविभोर होकर उन्मद नृत्य करने लगे थे।

[हरिवंश तथा पद्मपुराणकी एक कथाके आधारपर]

विशुद्ध प्रेमैकलभ्य

जो अनन्त ब्रह्माण्डोंके हैं एकमात्र ईश्वर, आधार ।
जो सम्पत्ति-विभूति-शक्तिके एकमात्र है पारावार ॥
नित अनन्त असमोर्ध्व अनिर्वचनीय परम जो सर्वश्रेय ।
उनके साथ कहीं भी, कुछ भी, नहीं कभी भी है उपमेय ॥
है विशुद्ध प्रेमैकलभ्य वे प्रेमरत्न-पारखी महान् ।
विक जाते वे शुद्ध प्रेमके एक-एक कणपर भगवान् ॥

मधुर

महामहिम मुनि-मन-हर मञ्जुल
 मधुर-मधुर मङ्गलमय श्याम ।
 पल-पल वर्द्धमान शुचि अनुपम
 दिव्य रूप-लावण्य ललाम ॥
 कुटिल भ्रुकुटि करती आकर्षित
 बरवस मनको अपनी ओर ।
 उमड़ उठा रस-सागर परमानन्द
 कहीं भी ओर न छोर ॥
 रूपसिन्धुमें मन निमग्न था,
 पर न तनिक-सा जगा विकार ।
 जगता दूर रहा, स्वाभाविक
 चित्त हो गया अति अविकार ॥
 तन्मयता हो गयी; तनिक भी
 रहा न तनका बाह्यज्ञान ।
 प्रलय नहीं, पर मिटी जगत्की
 सारी रचना, सारा भान ॥
 इतनेमें हो गया अचानक
 आँखोंसे ओझल वह रूप ।
 सहसा व्यथा-वियोग-वह्नि जल
 उठी, बढ़ गयी विपुल, अनूप ॥
 पर आश्चर्य, विरह-दावानलमें
 प्रियतम-स्मृति रही अभङ्ग ।
 के अगणित शीतल सुधांशुकी
 सुधामयी शीतलता सङ्ग ॥
 घोर तापमें थी विचित्र
 अनुपम शीतलताकी अनुभूति ।
 सहज विरोधी-धर्म प्रकट थे
 युगपत्, थी अद्भुत आकृति ॥
 सखी ! बताऊँ मैं कैसे
 प्रियतमके ये प्रतिदिनके छन्द ।
 प्रियतम हैं स्वच्छन्द सदा,
 ये लीलाएँ भी हैं स्वच्छन्द ॥

भगवती श्रीराधाजी तथा सखियोंमें सदा-सर्वदा
 अपने श्यामसुन्दरकी ही मधुर मनोहर चर्चा हुआ
 करती । यही उनके जीवनका स्वरूप था । एक दिन

श्रीराधाजीने अपनी एक सखीसे कहा—सखि ! एक
 दिनकी बात है । मैंने प्रियतम श्यामसुन्दरके दर्शनका
 सौभाग्य प्राप्त किया । श्यामसुन्दरका रूपलावण्य अत्यन्त
 सुन्दर है, वह महान् महिमामय है, मुनियोंके मनको
 हरण करनेवाला परम मञ्जुल, मधुरसे भी मधुर तथा
 मङ्गलमय है । उनका सौन्दर्य प्रतिपल बढ़ता रहता है ।
 वह परम पवित्र है (विकार उत्पन्न करनेवाला पाञ्च-
 भौतिक नहीं है,) दिव्य है, उसकी कहीं भी कोई
 उपमा नहीं है । ऐसे स्वरूप-सौन्दर्यमें टेढ़ी भौंहें
 विशेषरूपसे बलपूर्वक मेरे मनको अपनी ओर खींचने
 लगीं । वस, उसी क्षण परमानन्द-रसका ऐसा विशाल
 समुद्र उमड़ आया, जिसका कहीं भी ओर-छोर नहीं
 था । उस रूपसिन्धुमें मेरा मन सर्वथा निमग्न हो गया,
 पर किसी भी विकारकी (स्व-सुखवासनाकी)
 तनिक-सी भी जागृति नहीं हुई । इस दिव्य रूप-
 समुद्रमें डूबनेपर विकारका जगना तो दूर रहा—सहज
 स्वाभाविक ही चित्त आत्यन्तिक निर्विकार स्थितिको प्राप्त
 हो गया । (अनन्त रूप-सौन्दर्य, चित्तको निर्विकार
 करनेवाला !) मेरी उसीमें तन्मयता हो गयी । शरीरका
 बाह्यज्ञान तनिक-सा भी नहीं रहा । संसारका प्रलय नहीं
 हुआ; पर उसकी सारी रचना मिट गयी, सारा भान नष्ट
 हो गया !

इतनेमें अचानक वह दिव्य रूप मेरी आँखोंसे ओझल
 हो गया—अन्तर्धान हो गया । उसके अदर्शनसे सहसा
 एक वियोग-व्यथाकी भयानक अग्नि जल उठी और वह
 बड़े विशालरूपमें बढ़ गयी । परंतु वह थी अनुपम—
 (क्योंकि वह शान्ति प्रदान करनेवाली थी) । अत्यन्त
 आश्चर्यकी बात है कि उस विरह-दावानलमें प्रियतम
 श्यामसुन्दरकी मधुर मनोहर स्मृति अखण्ड बनी थी और
 वह थी असंख्य शीतल चन्द्रमाओंकी सुधामयी
 शीतलताको साथ लिये हुए । अतः उस घोर तापमें—

भयानक जलनमें भी एक विचित्र उपमारहित सखी ! मैं अपने उन प्रियतमके प्रतिदिनके इन शीतलताकी अनुभूति हो रही थी। इस प्रकार एक परमानन्दमय आचारोंका कैसे वर्णन करूँ। वे मेरे अद्भुत आशयको लिये सहज ही परस्पर-विरोधी धर्म-गुण प्रियतम जैसे सदा स्वच्छन्द हैं, वैसे ही उनकी लीलाएँ एक ही साथ प्रकट हो रहे थे। भी स्वच्छन्द हैं।

सच्चा स्वतन्त्र, विजयी और बलवान् वीर कौन है ?

विजयी वही, स्वतन्त्र वही है, वही यथार्थ वीर बलवान्।
मन-इन्द्रिय जिसके वश रह शुचि करते नित सत्कर्म महान् ॥
काम-क्रोध, लोभ-मद, ममता-राग, मोह-मैपन—सब दोष।
बनते परम पवित्र सुलक्षण, साधन, भक्ति-रत्नके कोष ॥
रहता 'काम' नित्य प्रभु-पद-रत नित्य बढ़ाता सेवा-भाव।
'क्रोध' न पड़ने देता रंचक अशुचि विचारोंका कुछ दाव ॥
भजनविरोधी वृत्तिमात्रका करता वह तत्क्षण संहार।
'लोभ' नित्य बढ़ता रहता प्रभुकी मधुर स्मृतिका सुखसार ॥
प्रभुके प्रेमासबका शुचि 'मद' नित छाया रहता सब अङ्ग।
'ममता' पूर्ण एक प्रभुमें ही नित्य स्थिर हो रही अभङ्ग ॥
प्रभुका मधुर मनोहर पावन दिव्य परम सौन्दर्य ललाम।
एकमात्र है 'राग' उसीमें आत्यन्तिक अनुपम अविराम ॥
'मोह' अनन्य नित्य मोहनके रस-चरित्र सुननेमें लीन।
'मैपन' बना एकमात्र प्रभु-पद-रज-कणका सेवक दीन ॥
'नेत्र' देखते सदा श्यामको अग-जगमें प्रकटित सर्वत्र।
'कान' सदा सुनते मुरली-रव कलित ललित लीला-सुचरित्र ॥
अङ्ग-अङ्ग पाते नित उनका सच्चिन्मय श्रीअङ्ग-स्पर्श।
श्रीवपु-दिव्य-हार-सौरभसे 'नासा' नित पाती अति हर्ष ॥
'रसना' नित पाती प्रसाद-रस, रहती परमानन्द-निमग्न।
'कर-पद-जिह्वा' निज कायोंसे रहते नित सेवा संलग्न ॥
इस प्रकार जो मन-इन्द्रिय-शरीरको कर निज वशमें शूर।
प्रभु-सेवामें कर नियुक्त, रखता है, वह विजयी भरपूर ॥

मन्त्र—एक अतीन्द्रिय विज्ञान

(लेखक—श्रीगोविन्दजी शास्त्री)

भौतिक विज्ञानकी प्रतिष्ठाने जहाँ उसको सर्वसुलभ बना दिया, वहाँ उसने मानवके तर्कका आधार पकड़कर बाह्यसे अन्तरकी ओर जानेकी अपेक्षा बाह्यमें ही उलझा दिया। आजके विज्ञानके सामने आध्यात्मिक मान्यताओंका कोई मूल्य नहीं; क्योंकि वे तर्ककी नहीं, विश्वासकी भूमिपर पनपती हैं और भौतिक विज्ञान तर्कसंगत तथ्योंको ही स्वीकार करता है। यद्यपि कई ऐसी घटनाएँ, जिनका कोई कारण नहीं बता सकते, हमारे सामने हैं, हम उन्हें देख रहे हैं किंतु हमारे तर्कके सामने हम उस सत्यको भी स्वीकार करनेमें हिचकते हैं अथवा कोई और रास्ता निकाल लेते हैं; क्योंकि आज हम उसीको मानना चाहते हैं जो तर्कग्राह्य हो, कारणकी कसौटी-पर खरा उतर सकता हो। इस आयामसे आज उसी तथ्यको सामयिक परीक्षापद्धतिसे आँकना है और उसकी कारण-परम्पराको स्पष्ट करना है। मन्त्र पूर्णतः सूक्ष्मसे स्थूलका नियन्त्रण है, मानवके विराट्को सक्रिय करनेकी पद्धति है। प्रकृति अपराजेय है किंतु मानवसे भिन्न वस्तुकी कोई सत्ता नहीं। पिण्डमें ब्रह्माण्ड देखनेकी दृष्टि ही सोऽहम् या साहम्, शिवाहम् है। प्रारम्भिक स्थितिमें यह उक्ति कल्पना प्रतीत हो सकती है; किंतु थोड़ा प्रयास करनेपर प्रकृतिके रहस्य-पटल स्वतः खुलते जाते हैं, खिलते जाते हैं। प्रकृति अपने-आपमें एक अत्यन्त जटिल और संश्लिष्ट पद्धति है; किंतु उसकी क्षमता, सौन्दर्य और वैभव ऐसे हैं कि जिन्हें हर कोई पा लेना चाहता है। मन्त्रशास्त्रमें भी इसी प्रकारके प्रयोग हैं, जिनमें उस प्रकृतिको वशवर्ती करनेकी पद्धति है, किंतु कई-एक कारणोंसे वे प्रयोग आजके कथित कारणसापेक्ष मस्तिष्कके विश्वाससे परे हैं, अवश्य ही इससे उनकी सत्यतामें कोई अन्तर नहीं आता। जो वस्तु आज कल्पनाके रूपमें सूक्ष्म है, कल वही प्रत्यक्षमें आकर स्थूल हो जायगी। इसके साथ ही यह भी एक निश्चित तथ्य है कि कुछ बातें ऐसी होती हैं जो स्थूल होकर भी दृश्य-श्रव्य नहीं हो पातीं। उन्हें केवल मनमें उपजनेवाली तरंगोंसे ही नापा जा सकता है, आस्थाके सहारे ही माना जा सकता है। इस स्थितिमें होता यह है कि हमारी बुद्धि उसे स्वीकार नहीं करना चाहती। बुद्धि एक बहुत बड़ा ज्ञानकेन्द्र है किंतु नियन्त्रण उसका काम नहीं। नियन्त्रण करता है शक्तिपुञ्ज मन। आज हम बुद्धिजनित उपलब्धियोंतक

ही सीमित हैं। मनके उदात्त विश्वासपर भी हमारी बुद्धिका साम्राज्य है। इसलिये अध्यात्मवादमें अनास्था दृढ़ होती जा रही है। आजका सत्य कलके लिये कल्पना था और आगामी कलका रूप हमारे लिये कोरी कल्पना है, इसलिये कालभेदसे किसी भी वस्तुको या स्थितिको सत्य-असत्य मान लेना कोई संगत बात नहीं। मन्त्रोंका मूल वेद हैं, ऋषि उनके द्रष्टा हैं और संस्कृत शास्त्रका बहुत-सा अङ्ग इसी शाखाके विवेचनमें व्यस्त है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि मन्त्र काव्य नहीं हैं, इसलिये उनमें मनुष्यकी कल्पनाका वैभव नहीं है। वह तो 'अतीन्द्रिय विज्ञान' है। विज्ञानमें हर कल्पनाका कोई तोल रहता है। यह दूसरी बात है कि आज उस विषयके मर्मज्ञ नहीं रहे, पर इससे हम यह तो नहीं कह सकते कि यह समग्र शास्त्र ही असत्य है। असत्य होता तो उसका जीवन इतना लम्बा निश्चय ही नहीं होता।

वस्तुस्थिति यह है कि मन्त्रोंके दृष्टा-उपदेशा ऋषियोंने सामयिक दृष्टिसे उनकी व्याख्या की। आजके युगकी कल्पना उनके मस्तिष्कमें रही होगी किंतु बौद्धिक हासका अनुमान उन्होंने इतना नहीं लगाया होगा। कुछ शतियोंके शत अथवा कल्पित इतिहासके आधारपर आज हम यह कहते हैं कि आजका मानव सब युगोंसे अधिक विकसित, सुखी और विश्रुता हुआ है; किंतु इस शत समयके इतिहासका जहाँसे प्रारम्भ होता है, वहाँसे तो मनुष्यकी चिन्तनकी धारा ही बदल गयी। इसके साथ ही यह भी मान लेना चाहिये कि जिस युगमें मन्त्रोंका परीक्षण, उपयोग और संवर्धन होता था, उस युगकी तुलनामें हम अभी बहुत पीछे हैं। विगत हजारों वर्षोंसे भारतीय शास्त्रोंके कई अङ्गोंमें कोई नया अभिवर्धन या संशोधन नहीं हुआ और यही हाल मन्त्रशास्त्रका रहा है। मन्त्रोंके लिये यह अन्धयुग उनकी उपयोगिता और सत्यतामें ही क्षीणता लानेवाला सिद्ध हुआ। रवीन्द्रके शब्द अक्षरशः सत्य हैं, 'हम असत्यकी कल्पना ही नहीं कर सकते'। देश-काल बहुत कुछ अहमीयत रखते हैं, इसलिये हम हमारे सीमित ज्ञानके आधारपर किसी बातको असत्य कहते हैं तो यह हमारी अल्पज्ञताका चिह्न है। उदाहरणके लिये 'कौड़ियों भी किसी युगमें विनिमयका माध्यम थीं'—यह बात आज हमें इतनी आश्चर्यजनक लगती है कि असत्यके करीब लगती है। विश्वास

तो इसलिये करते हैं कि बुद्धिवादियोंने इसे ऐतिहासिक सत्य मान लिया है और इतिहास उसी बुद्धिजनित प्रक्रियासे परीक्षित एक शाखा है। दूसरे, मन्त्रोंमें कारणका स्पष्टीकरण नहीं किया गया है तथा आजका विज्ञान 'क्यों ? और कैसे ?' के आधारपर चलता है।

मूलतः मन्त्र वेदोंसे उद्धृत हुए हैं। वेद राजाशाही तरह हैं। उनमें 'क्यों'का उत्तर देनेकी आवश्यकता है ही नहीं। $२+२=४$ होते हैं। क्यों होते हैं, इसका कोई उत्तर नहीं। 'होते आये हैं'—इसी विश्वासके आधारपर हम चलते हैं। ठीक यही बात उन वेदोक्त मन्त्रोंमें है। उनमें प्रश्नकी गुंजाइश नहीं। वस, श्रद्धा और विश्वासके सहारे चल देनेकी आवश्यकता है। वेदोक्त मन्त्र अतुलित शक्तिसम्पन्न थे। पर उनकी सिद्धि दुरुह थी, कालान्तरमें उनकी कठिनताका सरलीकरण हुआ और तन्त्रोक्त मन्त्रोंका आविर्भाव हुआ। मन्त्रविज्ञान सबसे कम साधनोंपर चलता था। साधक स्वयंकी शक्तिसे बाह्यकी शक्तिपर नियन्त्रण करता था; किंतु उसके लिये तपस्या फिर भी आवश्यक थी और कालपरिवर्तनके साथ मनुष्यकी योग्यता और क्षमतामें भी अन्तर आया। परिणाम यह हुआ कि यन्त्रोंका प्रादुर्भाव हुआ। जो मन्त्रोंमें वर्णित है वह यन्त्रोंमें चित्रित है। हमारी भावनाओंके व्यक्तीकरणमें अङ्क और अक्षर बड़े सशक्त माध्यम हैं और मन्त्रमें उस अक्षरब्रह्मकी प्रतिष्ठा की गयी है तो तन्त्रमें अङ्कको हमारी भावनाओंका प्रतीक माना गया है। सूक्ष्मदृष्टिसे देखा जाय तो देवता कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं; वरं देवता मन्त्रका स्वरूप ही है। अष्टभुजा, दशभुजा, त्रिनेत्र—इनका वर्णन स्तोत्र और मन्त्रोंमें जिस सरस ढंगसे वर्णित किया गया है, वही यन्त्रोंमें चित्रित है।

मुख्यतः मन्त्र, भावना-विज्ञान हैं और उस भावनाके साथ ध्वनिका सामञ्जस्य उस ज्ञानका रहस्य है। मन्त्र केवल मारण, मोहन, उच्चाटन, स्तम्भन, विद्वेषण और वशीकरण ही नहीं करते, वे निर्वाणका माध्यम भी हैं। और निर्वाण है इस इकाईका विराट्में लीन हो जाना। समग्रशक्तिको अपने-आपमें समेट लेना अथवा तद्रूप हो जाना। मुक्ति है और वही मुक्ति अध्यात्मशास्त्रकी अन्तिम उपलब्धि है। मन्त्र, साधककी शक्तिका उद्दीपन करते हैं तथा उसमें निहित दुर्बलताओंका निराकरण कर अपने वातावरणमें लीन कर देते हैं। मूल उद्देश्य मन्त्रका है—साधकको समर्थ करना, चाहे वह प्रार्थना साधक हो अथवा स्वयंकी शक्तिका उत्प्रेरक। उसकी सिद्धिके

लिये जो विधान हैं वे आस्थाको दृढ़ ही नहीं करते, बल्कि उस प्रयोजनकी भव्यताको स्पष्ट कर देते हैं, सफलताको सुनिश्चित करते हैं। ये समायोजन ही हमारी सिद्धिको स्थायी बनाते हैं। शब्द हमारी भावनाओंकी अभिव्यक्ति हैं और उनकी लय उसमें निहित भावनाविशेषका द्योतक। मन्त्रज्ञोंकी पात्रापात्रताकी विवेचना इस विज्ञानके विलोपका कारण दूसरा है। दुरुहता तीसरा है। कारण-विश्लेषण-हीनता कारणका विवेचन तो शायद इसलिये नहीं किया गया कि मन्त्रविज्ञान वैसे ही बहुत व्यापक है। दूसरे संक्षेपप्रेमी ऋषि किसी बातका विवेचन करके उसे और विस्तृत करनेसे बचते ही रहे और परिणाम यह हुआ कि वह ज्ञान आज कुतूहलवर्धनके अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाता।

मन्त्रसिद्धिके मुख्यतः पाँच अङ्ग हैं, जिनके ज्ञान और पालनके बाद उस मन्त्रकी सिद्धिमें कोई संदेह नहीं रहता। उस सिद्धिको हम संयोगमात्र कहकर उपेक्षित नहीं कर सकते। वरं वह एक ध्रुव सत्य है, विज्ञान है, अतीन्द्रिय शक्ति है। ऋषि, देवता, छन्द, बीज और शक्ति अथवा गुरु और मुहूर्त पाँच अङ्ग हैं।

ऋषि—ऋषि मन्त्रोंके अनुभविता, द्रष्टा और उपदेश हैं। ऋषिकी प्रवृत्ति और प्रकृतिसे मन्त्रका परिचय मिलता है। ऋषिकी प्रतिष्ठा इसलिये भी प्रथम है कि इससे भावी शुभाशुभका ज्ञान हो जाय और प्रतिकूल स्थिति आनेपर ऋषिके स्मरणसे ही स्थिति अनुकूल बन जाय।

वैसे ऋषिका स्थान प्रारम्भमें गुरुके रूपमें था और गुरु था विश्वास, जीवन्त-आस्था। यह सुनिश्चित बात है कि हममें अपरिमेय शक्ति है। निरन्तर हममें अत्यन्त शक्तिशाली विद्युत् उत्पन्न होती रहती है। हमारी वैचारिक सृष्टि चल्ती रहती है और उस शक्तिसे परिचय कराना, हममें हमारे सामर्थ्यकी प्रतिष्ठा करना ऋषिका काम है। प्रायः लोग प्रश्न किया करते हैं—आस्थाकी बात छोड़ दीजिये, हम तो मन्त्रका जप करते रहेंगे। बड़ा विचित्र प्रश्न होता है। पिताको पिता माने बिना ही हम उससे सहायताकी अपेक्षा करते रहें—यह कहाँतक सम्भव है। दूसरे, मन्त्र भावना-विज्ञान है, अदृश्य विचारोंको प्रभावित करता है। इसीसे विश्वास प्रथम सोपान है और विश्वास है ऋषिकी भावना, गुरुकी प्रतिष्ठा।

छन्द—दूसरा महत्त्वपूर्ण अङ्ग है छन्द। छन्द अर्थात् लय। छन्दसे ही अर्थबोध होता है और अर्थ

भावना बनती है। छन्दका व्यावहारिक उपयोग हमारे जीवन में हम करते आये हैं। किसी व्यक्तिकी मृत्यु हो जानेपर उसके परिजनोंका रुदन समवेदनाको उभाड़ता है तो रंगमञ्चपर अभिनेताद्वारा किये जानेवाले रुदनसे हमारी सहानुभूति जगती है। पहले छन्दसे हम दुखी होते हैं, दूसरेसे हमें अनिर्वचनीय रसानुभूति होती है। वमके धमाकेसे विनाश होता है, संगीतके स्वरोंसे सृष्टि होती है। उसी ध्वनिके दो रूप—दो फल। सारा रागशास्त्र इसी यतिके पीछे चलता है जिसमें साधक जीवनभर एक ही रागकी साधना करता रहता है। मल्हारसे वृष्टि, दीपकसे दीप जलना—आजके युगमें किंवदन्ती रहें; किंतु इनका मूल्य किंवदन्ती नहीं, सत्य है। यही छन्द एक वातावरणको जन्म देता है। सिद्धि साधनोंपर निर्भर करती है और उनके उपयोगपर भी। मन्त्र साधन हैं और यति उनका उपयोग। जिस प्रकारके हमारे उद्देश्य होते हैं, उसी प्रकारका मन्त्र हम जपते हैं। मारण, उच्चाटन—जैसे कर्मोंके मन्त्रोंमें कर्णकटु शब्दावली नितान्त आवश्यक है और उनकी लय भी उतनी ही अप्रिय है—यह भी एक निश्चित बात है। वशीकरण, सम्मोहन रजोगुणविशिष्ट कर्म हैं, इनमें मधुर ध्वनि और अपेक्षाकृत कोमल वर्णावलीके साथ यति भी सुगम होती है। छन्दका क्षेत्र बड़ा व्यापक है। इसमें थोड़े-से आरोहावरोहसे, दीर्घ-प्लुतसे अर्थ प्रभावित होता है, अर्थके प्रभावित होनेसे सिद्धि प्रभावित होती है। देवताओं-द्वारा किये गये यज्ञमें 'इन्द्रराजोर्विवर्धस्व' का फल देवोंके वजाय दानवोंको मिल गया। यह उसी यतिका चमत्कार है। छन्दपर मन्त्र निर्भर करता है। दूसरे शब्दोंमें छन्द उस मन्त्रके वातावरणको मूर्त करनेकी पद्धति है जिसमें वर्ण-विन्यास और उनका उच्चारण अपनी विशेषता रखते हैं। वर्णोंका उच्चारण सूक्ष्म वातावरणके उसी अङ्गको प्रभावित करता है जिसका उद्देश्य साधकको अभीष्ट है। वैसे छन्द अपने-आप में इतना स्वतन्त्र वातावरण है कि साधककी आस्था स्वतः जग जाती है और उसका एकाग्र-चित्त तद्रूप हो जाता है।

देवता—मन्त्रका तीसरा अङ्ग है देवता, जो मन्त्रका स्वरूप है। यह आवश्यक नहीं कि एक देवताका एक ही स्वरूप हो। उसी तरह यह भी जरूरी नहीं कि एक तरहके मन्त्रका एक ही देवता हो। स्वल्पतर भेदसे देवता भी बदल जाता है और तदनुसार मन्त्रका स्वरूप बदल जाता है। जो शिव रुद्र-रूप हैं, वही शंकर-स्वरूप भी। जिस आध्यात्मसे साधक आँकेगा, आराधेगा वही रूप उसको मिलेगा। आज

भी शक्तिके रूपमें अणु अपरिमेय है; किंतु स्थान और उपयोग-भेदसे उसी शक्तिको सृजन और विनाश दोनों ही रूपोंमें देख सकते हैं। यह सब निर्भर करता है उपासककी भावना और पद्धतिपर। मन्त्रमें प्रयुक्त ध्वनिका एक निश्चित रूप होता है, एक विशेष कम्पन होता है और वही उसके देवताका स्वरूप होता है। इसलिये स्वरूपज्ञान बहुत आवश्यक है तो मन्त्रके अधिष्ठाता देवताकी प्रतिष्ठा भी नितान्त आवश्यक है। देवता एक प्रतीक है और साधक उस प्रतीकके सहारे अपने आपमें उस शक्तिका आविर्भाव अथवा उद्दीपन करता है। इस दृष्टिसे देवताकी प्रतिष्ठा भी एक महत्त्वपूर्ण कर्म है।

बीज—शक्तिके स्रोतोंमें अणुका जो महत्त्व है, वही मन्त्र-शास्त्रमें बीजका। बीजमन्त्रोंमें जो शक्ति है, वह इतर मन्त्रोंमें नहीं अर्थात् बीज सम्पूर्ण मन्त्रका रहस्य है। लघुतम ध्वनिमें उस मन्त्रका बीज निहित हो सकता है और वही उस सारी शक्तिका रहस्य है। बीज ध्वनिके अथवा अक्षरके रूपमें ही नहीं होता, बल्कि सम्पूर्ण मन्त्रका स्वरूप भी बीज हो सकता है, होता है। इसलिये बीजका ज्ञान भी अन्य अङ्गोंकी ही तरह आवश्यक है। सारे वृक्षका स्वरूप बीजमें निहित है। उपासकके उपास्य मन्त्रका रहस्य भी बीजमें ही निहित है। इसलिये बीजका ज्ञान आवश्यक है।

शक्ति—मन्त्रका अन्तिम रहस्य है शक्ति, जो मूल रूपमें एक होकर भी कार्यरूपमें विभिन्न है। विद्युत् मूल रूपमें शक्ति है; किंतु कारखाने चलाने, कमरे ठंडे-गरम करने, भोजन बनाने आदि विभिन्न अभिप्रायोंके साधनेसे उसकी विभिन्न अर्थोंमें उपासना की जाती है। यही स्थिति है शक्तिकी। सत्त्वगुण-प्रधान होकर जो शक्ति रक्षा करती है, वही रजोगुण-बहुल होकर सृजन करती है तो तमोगुणाविष्ट होकर विनाश-लीला दिखाती है। शक्तिका सौन्दर्य उसके प्रत्येक विलासमें है। शक्तिका ज्ञान होनेसे उस मन्त्रमें निहित रूपका, उपकरणका ज्ञान हो जाता है।

संक्षेपमें मेरा उद्देश्य यह है कि मन्त्र एक व्यक्तिगत उपासना है जो सार्वजनीन भी हो सकती है। साधारणसे चमत्कारसे लेकर निर्विकल्प समाधितक यही मन्त्र ले जा सकता है। वैदिक मन्त्र जितने कठिन कठोर हैं, तन्त्रोक्त नहीं। वाममार्गी तन्त्रोंमें वर्णित मन्त्र और उनकी सिद्धियाँ तो मेरी दृष्टिसे दूसरी शाखाकी कठोरतम तपस्यासे भी अधिक कठोर हैं। 'पञ्चमकार' की साधनाका ढोंग एक बात है और

उस भोगमें योगबुद्धि लाना अत्यन्त ही दुष्कर। वास्तवमें होता यह है कि इस दृश्यजगत्से अधिक व्यापक और सबल जगत् और है, उसे हमारी इन्द्रियाँ साधारण स्थितिमें नहीं जान सकती। मन्त्रोंमें वही शक्ति निहित है जो न केवल उस जगत्से सम्पर्क कराती है, बल्कि उसमें हमारी गति भी कर देती है। दो स्थितिमें मन्त्र लाभदायक हो सकता है—(१) पूर्ण आस्था होनेपर और (२) तटस्थ होनेपर। विरोधी होनेपर वह मन्त्र व्यर्थ जाता है। आस्था तो हमारे सूक्ष्ममें बहुत तीव्र और शीघ्र परिवर्तन करती है, तटस्थ वृत्तिको मन्त्रका प्रभाव स्वतः अपने अनुरूप कर लेता है। हमारे मस्तिष्क और शरीरसे प्रतिक्षण चुम्बकीय धाराएँ निकलती रहती हैं और टकराती रहती हैं। मन्त्र एक विशेष प्रकारकी धाराएँ उत्पन्न

करता है। इसके साथ ही जब हमारी तपस्या उग्र होती है तो हमारेसे वे ही तरङ्गें टकरा सकती हैं जिन्हें हम चाहते हैं। एक ही मन्त्रकी सिद्धिसे हमें कई चमत्कार मिल सकते हैं। मुख्यतः हम किसी उद्देश्यको लेकर मन्त्रका प्रयोग करें, किंतु उसके निरन्तर वर्षणसे प्रकृतिके अज्ञात रहस्य शनैः शनैः खुलने लग जाते हैं और जिस समय उस मन्त्रका दर्शन होता है तो वे सारे सांसारिक उद्देश्य—मारण, मोहन आदि छिप जाते हैं और मनको एक आनन्दातिरेक अभिभूत कर लेता है। जपके भी कई प्रकार हैं। विशेषतया मन्त्रकी क्रिया उस मन्त्रको जल्दी या देरसे सफल अथवा निष्फल बना देती है जिसमें वर्णित पाँच अङ्गोंसे अतिरिक्त भी बहुत कुछ होता है और उसीके लिये गुरुकी आवश्यकता होती है।

आर्य-संस्कृतिकी आत्मा 'सत्य'

(लेखक—प्रो० श्रीप्रेमनन्दन रायजी, एम्० ए०)

मेरी दृष्टिमें सत्यपर लिखनेका अधिकार उसीको प्राप्त है जो स्वयं सत्यनिष्ठ हो। इस दृष्टिसे सत्यपर लिखनेका पूर्ण अधिकारी तो मैं नहीं हूँ, परंतु सत्यमें श्रद्धा रखने और उसका एक विनम्र साधक होनेके नाते नितान्त अनधिकारी भी नहीं माना जा सकता। अतः विज्ञान मेरे इस प्रयासका उपहास नहीं करेंगे और अज्ञोंके उपहासका कोई अर्थ नहीं है।

वस्तुतः भारतीय मनीषियोंने जीवनमें यदि किसी शाश्वत तत्त्वका अनुसंधान किया तो वह है 'सत्य' और यदि कोई आर्य-संस्कृतिकी महत्तम उपलब्धिकी जिज्ञासा करे तो उसका उत्तर होगा 'सत्य'। अध्यात्म-विद्याके पण्डित पूछेंगे कि आपने ब्रह्मका नाम क्यों नहीं लिया, तो मैं कहूँगा कि जरा ठहरिये, मैंने कोई दूसरी बात नहीं कही है, ब्रह्म सत्यका ही नामान्तर है—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तैत्तिरीय उ० २।१।१) 'ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त है।' 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' (छान्दोग्य उ० ६।२।१) 'हे सोम्य ! यह एकमात्र अद्वितीय सत् ही था।'

'सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्यप्रतिष्ठाः'
(छा० उ० ६।८।४)

'हे सोम्य ! इस प्रकार यह सारी प्रजा सन्मूलक है तथा

सत् ही इसका आश्रय है और सत् ही प्रतिष्ठा है।' 'तत्सत्यम्' (छा० उ० ६।८।७) 'वह सत्य है।'

'येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यम्' (मुण्डक उ० १।२।१३)

'जिससे उस सत्य और अक्षर पुरुषका ज्ञान होता है।'

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।

(गीता १७।२३)

'ओम्, तत्, सत्—यह तीन प्रकारका ब्रह्मका निर्देश है।'

श्रुति-स्मृतिके ऐसे अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो सत्य और ब्रह्मकी अभिन्नता प्रतिपादित करते हैं।

अब आचारशास्त्र या व्यवहारशास्त्रके ज्ञाता मुझसे यह कहेंगे कि ब्रह्म तो अदृश्य, अज्ञात और अचिन्त्य है। उसके तो अस्तित्वका ही कोई ठिकाना नहीं। जो सत्य इन्द्रिय-ग्राह्य या बुद्धिग्राह्य नहीं, वह है भी नहीं। सत्यका एकमात्र स्वरूप जो प्रत्यक्ष उपलब्ध है वह व्यावहारिक है यानी वाणीका सत्य। मैं उनसे निवेदन करूँगा कि आपकी बात सही है। प्रत्यक्ष उपलब्ध सत्य तो व्यावहारिक ही है यानी वाणीका सत्य। परंतु उसमें इतना और जोड़ लीजिये कि यह साधन है, साध्य नहीं। तब साध्य क्या है ? वही परम सत्य या पारमार्थिक सत्य। सत्य ही साध्य है, सत्य ही

साधन है। पहला पारमार्थिक है, दूसरा व्यावहारिक; पहला उपेय है, दूसरा उपाय।

अब आप कहेंगे कि दोनों प्रकारके सत्योंका स्वरूप समझाइये, तो सुनिये, संक्षेपमें ही कहना सम्भव है; क्योंकि पारमार्थिक सत्यका स्वरूप अनन्त है और अनन्तको शब्दोंमें बाँधा नहीं जा सकता—‘सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म’ (तै० उ० २।१।१) ‘अनन्तता त्रिविध है—‘देशतः, कालतः, वस्तुतः।’ आकाश देशतः अनन्त है, परंतु वस्तुतः और कालतः सान्त या परिच्छिन्न है। सत्य या ब्रह्म आकाशका भी कारण होनेसे देशतः तो अनन्त है ही; कालतः और वस्तुतः भी अनन्त है। कालतः इसलिये कि वह अपरिणामी और नित्य है—‘वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्’ (गीता २।२१) ‘जो इसे अविनाशी, नित्य, अजन्मा और अपक्षयरहित जानता है।’ ब्रह्म वस्तुतः अनन्त इसलिये है कि वह सूक्ष्मतम है, सूक्ष्मताकी पराकाष्ठा है—‘अणोरणीयान् महतो महीयान्’ (कठ० उ० १।२।२०) ‘यह अणुसे भी अणुतर और महान्से भी महत्तर है।’

‘पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः’

(कठ० उ० १।३।११)

‘पुरुषसे पर और कुछ नहीं है, वही सूक्ष्मत्व, महत्त्व और प्रत्यगात्मत्वकी पराकाष्ठा है।’ सूक्ष्म पदार्थ स्थूलसे अपरिच्छिन्न हुआ करते हैं। आकाशका परिच्छेद करनेमें वायु, जल, अग्नि आदि समर्थ नहीं हैं; क्योंकि वे अपेक्षया स्थूल हैं। वस्तुतः अपरिच्छिन्नताका दूसरा हेतु सत्यका असंसर्गधर्मी होना है। सत्य सबसे असंस्पृष्ट है—‘असंगो नहि सज्यते’ (बृह० उ० ३।९।२६) ‘संसर्गरहित आत्मा कहीं भी लिप्त नहीं होता।’

सत्का भाव जिसमें हो, वह सत्य है। सत् शब्द सत्तावाची है। सत्ता या अस्तित्व वही है जो देश, काल और वस्तुसे अबाधित हो। सत् और असत्की परिभाषा संसारके सर्वश्रेष्ठ विद्वान् भगवान् श्रीशंकराचार्यके मुखसे सुनिये—

‘यद्विषया बुद्धिः न व्यभिचरति तत् सत्, यद्विषया बुद्धिः व्यभिचरति तद् असत् इति सदसद्विभागे बुद्धितन्त्रे स्थिते।’

‘जिस पदार्थको विषय करनेवाली बुद्धि नहीं बदलती,

वह सत् है और जिसको विषय करनेवाली बुद्धि बदलती है वह असत् है। इस प्रकार सत् और असत्का विभाग बुद्धिके अधीन है।’ (गीता-भाष्य २।१६) यह परिभाषा सत्यकी अनन्तताका ही समर्थक है।

अब इसमें इतना और कहना है कि सत्य अनन्त तो है, परंतु आकाशादिकी तरह जड नहीं है। वह नित्य चेतन और सर्वज्ञ है। वह स्वयंप्रकाश है। वह सबका प्रकाशक है, परंतु उसका कोई प्रकाशक नहीं। वह प्रकाशरूप है, ज्ञानरूप है। उसे अन्य प्रकाश या ज्ञानकी आवश्यकता नहीं—

‘स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता।’

(श्वे० ३।१९)

‘वह सम्पूर्ण वेद्यमात्रको जानता है, उसे जाननेवाला और कोई नहीं है।’

‘तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।’

(कठ० उ० २।२।१५)

‘उसके प्रकाशसे ही यह सब कुछ भासता है।’ सत्यका संक्षिप्त किंतु श्रुति-सम्मत विवेचन यही है।

अब प्रश्न यह है कि वह परम सत्य रहता कहाँ है? क्या वह किसी स्थान-विशेष या आराधना-मन्दिरमें रहता है? उसकी साक्षात् उपलब्धिका स्थान कौन है? उत्तर यह है कि वह मन्दिर, मसजिद, गुरुद्वारे और गिरजाघर आदि आराधना-स्थानोंमें तथा उनसे बाहर भी सर्वत्र सम-भावसे स्थित है—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

(गीता ९।१४)

‘मुझ अव्यक्तस्वरूप परमात्माद्वारा यह समस्त जगत् व्याप्त है।’ ‘हरि व्यापक सर्वत्र समाना’ (तुलसी) तो भी उसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि तो हृदयमें ही होती है जहाँ वह आत्मारूपसे ही विराजमान है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

(गीता १८।६१)

‘ईश्वर समस्त प्राणियोंके हृदय-देशमें स्थित है।’

‘सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः।’

(गीता १५।१५)

‘मैं समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्थित हूँ।’

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।

(गीता १०।२०)

‘हे गुडाकेश ! समस्त भूतोंके आश्रयमें (हृदयमें) स्थित सबका अन्तरात्मा मैं हूँ ।’

‘ब्रह्माक्षादपरोक्षब्रह्म य आत्मा सर्वान्तरः ।’
(बृहदारण्यक उ० ३ । ४ । १)

‘जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म और सर्वान्तर आत्मा है ।’ श्रुति-स्मृतिके ये वचन आत्मा, सत्य या ब्रह्मके प्रत्यक्ष उपलब्धिस्थानका निर्देश करते हैं । उसकी प्रत्यक्षोपलब्धि अन्यत्र नहीं होती । अन्योपलब्धि तो परोक्षोपलब्धि है, अपरोक्ष नहीं ।

अब प्रश्न है कि सत्योपलब्धिसे लाभ क्या है ? अनुपलब्धिसे हानि क्या है ? लाभ हैं—अजरत्व, अमरत्व, समस्त दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति, जन्म-मरण-परम्पराका मूलोच्छेद और परमानन्द या निरतिशयानन्दकी प्राप्ति । अनुपलब्धिसे हानि है—जन्म, मरण और त्रिविध तापोंकी परम्पराका प्रवाह ।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।
(केन० उ० २ । ५)

‘यदि इस जन्ममें ब्रह्मको जान लिया तब तो उसके इस मनुष्य-जन्ममें सत्य-अविनाशिता-सार्थकता-सद्भाव अथवा परमार्थता विद्यमान है और यदि न जाना तो उसे महान् यानी अनन्त विनाश अर्थात् जन्म, जरा और मरण आदिकी परम्पराका विच्छेद न होना रूप संसार-गतिकी ही प्राप्ति होती है (शांकरभाष्यका अनुवाद) ।’

‘ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति’ (सु० उ० ३ । २ । ९)

‘जो उस ब्रह्मको जानता है वह ब्रह्म ही हो जाता है ।’

‘यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते’ (गीता १३ । १२)

‘जिसको जानकर मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर लेता है ।’

अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ।
(गीता ९ । १३)

‘भुझे न पाकर मृत्युयुक्त संसारमें घूमते रहते हैं ।’ उपर्युक्त वचन प्रमाणित करते हैं कि सत्यरूप ब्रह्मको जाननेमें जीवनकी पूर्णता और कृतार्थता है तथा नहीं जाननेमें जीवनकी अपूर्णता और निष्फलता है ।

अब अन्तिम प्रश्न यह है कि उपायरूप सत्यका स्वरूप

क्या है ? अधिकांश व्यक्ति यही समझते हैं कि मात्र वाणीका सत्य ही सत्य है । परंतु यह ठीक नहीं है । अभी बहुत कुछ ज्ञातव्य है । सत्यकी परिभाषा लीजिये—

‘सत्यमिति अमायिता अकौटिल्यं वाङ्मनःकायानाम् ।’
(केन० उ० ४ । ८ का शांकरभाष्य)

‘वाणी, मन और शरीरकी अमायिता यानी अकुटिलताका नाम सत्य है ।’

यह परिभाषा सर्वथा निर्दोष है; क्योंकि इसके ग्रहणसे मनुष्यके सम्पूर्ण व्यक्तित्वका मार्जन हो जाता है । केवल वाणीका सत्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, परंतु उससे भी कभी संसारको धोखेमें डाला जा सकता है, जैसे युधिष्ठिरके द्वारा द्रोणाचार्यको ।

वाणीके सत्यके साथ भी अनेक विशेषण लगे हुए हैं जिनको जाने बिना सत्यका पालन सम्भव नहीं है—वे हैं—‘प्रियता’ और ‘हितकारिता’ । जो सत्य प्रिय और हितकारी नहीं है वह असत्य ही है ।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
(गीता १७ । १५)

‘जो वचन अनुद्वेगकर, सत्य, प्रिय और हितकारक है ।’

सत्यकी महिमाका वर्णन जितना भी किया जाय वह अल्प ही है । संसारके समस्त सद्गुण और पुण्य सत्यके ही आश्रित हैं—

‘सत्यमूलं सब सुकृत सुहाय’ (तुलसी)

सत्यनिष्ठ पुरुषकी वाणी अमोघ होती है । वह शाप और वरदान देनेमें समर्थ होता है । आज जो वह शक्ति नहीं दिखलायी पड़ती, उसका एकमात्र कारण असत्य-भाषण ही है ।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।
(पातञ्जलयोगसूत्र)

‘सत्यकी प्रतिष्ठासे वाणीमें क्रियाफलाश्रयत्व आता है ।’

सत्यावलम्बने ही जगत्की व्यवस्था सुखमय हो सकती है । यहाँतक कि राजनीति या कूटनीति भी सत्याश्रित होनी चाहिये । महात्मा गांधीने ऐसा ही करके दिखलाया । यह उस महापुरुषके सत्यकी ही शक्ति थी कि भारतको

स्वतन्त्रता मिली ।

ब्रह्मप्राप्तिके जितने भी साधन हैं उनमें सत्य ही श्रेष्ठतम है। अन्य साधन सत्यावलम्बनके बिना फलप्रद नहीं होते।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा

सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

(मु० उ० ३।१।५)

‘सर्वदा सत्यसे, सर्वदा तपसे, सर्वदा सम्यक् ज्ञानसे और सर्वदा ब्रह्मचर्यसे इस आत्माकी प्राप्ति की जाती है।’ संसारमें सत्यवादी ही विजयी होता है—असत्यवादी नहीं—

‘सत्यमेव जयति नानृतम्’ (मु० उ० ३।१।६)

महात्मा कबीरकी वाणी सुनिये—

साँच बरोबर तप नहीं; झूठ बरोबर पाप।

जाके हिरदय साँच है; वाके हिरदय आप ॥

गोस्वामीजी ईश्वरप्राप्तिके तीन प्रमुख साधन मानते हैं—सत्यभाषण, विनम्रता और परस्त्रीमें मातृभावना। यदि इनसे ईश्वर नहीं मिलें तो उसका उत्तरदायित्व वे स्वयं लेनेको तैयार हैं—

सत्यवचन आधीनता; परतिय मातु समान।

परतमें हरि ना मिले; तो तुलसीदास जमान ॥’

आजकल नास्तिकताकी वाद-सी आ गयी है। लोग कहते हैं कि सत्य या अविनाशी ब्रह्म नामकी कोई चीज नहीं। अतः सत्यभाषणका, जो परमसत्यका साधन है, भी कोई महत्त्व नहीं। ऐसे लोगोंको तैत्तिरीय उपनिषद्की गम्भीर चेतावनी स्मरण रखनी चाहिये—

‘असन्नेव स भवति। असद्ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति।’ (तैत्तिरीय उ० २।६।१)

‘यदि पुरुष ‘ब्रह्म असत्’ है’ ऐसा जानता है तो वह स्वयं भी असत् ही हो जाता है और यदि ऐसा जानता है कि ‘ब्रह्म है’ तो [ब्रह्मचेत्ताजन] उसे सत् समझते हैं।’ अभिप्राय यह कि जो संसारमें सत्यका साक्षात्कार करता है, वही आदर और प्रतिष्ठा पाता है और जो सत्यकी अवहेलना करता है वह स्वयं तिरस्कृत हो जाता है।

जो व्यक्ति असत्यभाषण करता हुआ यह समझता है कि उसकी कोई हानि नहीं होगी, वह भारी भ्रममें है। उसे

प्रदोपनिषद्की गम्भीर चेतावनीको याद रखना चाहिये।

समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतसम्भवदिति।

(प्रदोपनिषद् ६।१)

‘जो पुरुष मिथ्या-भाषण करता है वह सब ओरसे मूल-सहित सूख जाता है।’

भगवान् मनुने अपनी स्मृतिमें चारों वर्णोंके सामान्य धर्मका वर्णन करते हुए सत्यभाषणको भी परिगणित किया है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

एतं सासासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥

(मनुस्मृति १०।६३)

‘जीवोंकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, अन्धाय आदिसे पराया धन न हरना, पवित्र रहना, इन्द्रियोंको वशमें करना, यह धर्म संक्षेपतः चारों वर्णोंका है।’

परंतु भगवान् मनुके मतमें सत्य अनिवार्य रूपसे प्रिय हुआ करता है, अप्रिय कभी नहीं होता—

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयाच्च ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

(मनुस्मृति ४।१३८)

‘सत्य बोले और प्रिय बोले। जो प्रिय न हो ऐसा सत्य न बोले तथा प्रिय लगनेवाला झूठ भी न बोले, यही सनातन धर्म है।’

बहुतसे लोग कहते हैं कि प्राणोंकी रक्षाके लिये असत्य-भाषण विधेय है। यह विल्कुल ठीक है; तो भी असत्य-भाषणका दोष उसे न लगता हो, ऐसी बात नहीं है। शास्त्रके मतसे वैसे व्यक्तिको भी आत्म-शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। (मनुस्मृति ८।१०४; १०५)

विष्णु-स्मृतिकारके मतमें सत्य-भाषण हजार अश्वमेध-यज्ञोंकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है—

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।

अश्वमेधसहस्राच्च सत्यमेकं विशिष्यते॥

(विष्णुस्मृति)

‘सहस्र अश्वमेध और सत्य तराजूमें रखे जानेपर सहस्र अश्वमेधोंकी अपेक्षा अकेला सत्य ही विशेष ठहरता है।’

मनके ये राक्षस भी मृत्युका कारण बन सकते हैं ?

(लेखक—डॉक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्. ए., पी. एच्. डी.)

अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम परश्वर ।
(अथर्ववेद २० । १६ । २४)

अर्थात् मानसिक कमजोरियोंको दूर कीजिये । मनकी दुर्बलता घातक है !

इतना हँसा कि मर गया !

जोधपुर, २३ अक्टूबर ६५ का एक समाचार है—
वहाँसे प्राप्त एक सूचनाके अनुसार एक जनसंघी कार्यकर्ता चुनाव जीतनेकी खुशीसे इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि उसे जानसे हाथ धोना पड़ा ।

बताया जाता है कि अपने दिलके चुनाव जीतनेपर वह इतना ज्यादा खुश हुआ कि बस नाच उठा ! उसके रोम-रोमसे प्रसन्नता फूटी पड़ रही थी, अणु-अणुसे आनन्द-उल्लास छूट रहा था, उसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग नाच रहा था । बढ़ते-बढ़ते उसकी खुशी अपनी चरम सीमापर पहुँच गयी । जैसे कोई बड़ी तेज रफ्तारसे सरपट भागनेवाले मोटरको ब्रेक लगाकर रोक न पाये, वैसे ही वह अपनी खुशीकी तीव्र गतिको चेक नहीं कर पाया । बस, हँसता ही गया । हँसता—खिल-खिलाता रहा ! यह खिलखिलाहट क्रमशः बढ़कर एक ऐसी स्टेजपर पहुँची कि एकाएक दिलका दौरा पड़ गया । देखते-देखते वह वहीं गिर पड़ा और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ।

उसके शरीरमें कुछ नहीं बिगाड़ा था; वह वैसा-का-वैसा ही मजबूत दीख रहा था, पर उसकी हँसीने ही उसके मस्तिष्कका संतुलन नष्ट कर दिया था जिसके मानसिक आघातसे वह प्राण खो बैठा था ।

इसी प्रकारका एक और समाचार पत्रोंमें इस प्रकार छपा है—

मनीला, २२ नवम्बर १९६५ । बयालीस वर्षीय बेन्तुरा कारवेलिस फिलिपाइन्सके चुनावोंमें एक शर्त जीत जानेपर इसी प्रकार सीमासे बाहर हँसनेके कारण मर गया । बात यह हुई कि वह अपने परिवारको खूब आह्लादपूर्ण स्वर और प्रसन्न मुखमुद्रामें हँस-हँसकर बता रहा था कि किस प्रकार उसने दस बोरे चावलकी एक शर्त जीती थी । तभी उसके सीनेमें दर्द महसूस हुआ । अंदरसे कुछ खिंचाव, कुछ तनाव-सा प्रतीत हुआ और तुरंत मानसिक आघातसे उसकी मृत्यु हो गयी !

एक तीसरा समाचार सुनिये—

शिवहर (मुजफ्फरपुर), २ जुलाई १९६५की घटना है । इस गाँवकी एक बारातकी महफिलमें नृत्य और संगीतका समौ बंधा हुआ था । चारों ओर आनन्दका स्रोत प्रवाहित हो रहा था । मस्तीका आलम था । सभी हँस-खेल रहे थे । वह किसी बातपर हँसने लगा और हँसते-हँसते मर गया ।

बताया जाता है कि वह व्यक्ति शामियानेके एक बाँसके सहारे खड़ा होकर मस्तीसे नाच देख रहा था । इतना तन्मय था कि जैसे सब कुछ भूल गया हो । एकाएक नाचके एक मजारसे उसे कुछ ऐसी हँसी छूटी कि वह उसे रोक नहीं पाया । वह हँसी धीरे-धीरे बढ़ती गयी ! उत्तरोत्तर सहनशक्तिका अतिक्रमण कर गयी । जहाँतक वह सहन कर सकता था उस सीमासे बाहर निकल गयी । वह इतना हँसा कि वह वहीं गिर गया तथा तत्क्षण मर गया । इस दुःखद घटनासे रंगमें भंग हो गया । लोग इतने चकित और विस्मित हुए कि समझ नहीं पा रहे थे कि हँसीसे भी कोई व्यक्ति मर सकता है !

मनकी कोई भी प्रवृत्ति जब सीमासे अधिक बढ़ जाती है और हमारा मन उसे कंट्रोल नहीं कर पाता, तो वही मृत्युका कारण बन सकती है ।

अब क्या होगा ?

दुलन्दशहर, २ जुलाई १९६५का एक समाचार है—

‘अब क्या होगा ? अब क्या होगा ?’—यह था एक दुर्बल-हृदय किसानका वाक्य, जिसने उसके हृदयकी गतिको बंद कर दिया और मृत्युके द्वारतक पहुँचा दिया ।

पूरी घटना इस प्रकार है कि वहाँसे छः मील दूर ग्राम सिखैड़ाके एक किसान मलखानसिंहकी भयंकर वर्षा एवं बाढ़में सब फसल नष्ट हो गयी और उस दुर्बलहृदयको यह मानसिक आघात लगा कि ‘हाय ! अब क्या होगा ? कैसे रक्षा होगी ? कौन सहायता करेगा ? किस प्रकार भोजन-वस्त्र मिलेंगे ?’ उसके मनमें ऐसा गुप्त भय बैठा कि उसके अंदरके पुर्जे इस आघातको न सम्हाल पाये । इस डरावनी चिन्ताने जैसे उसके भविष्यको ही अन्धकारमय बना दिया । वह हिम्मत और धैर्य खो बैठा । सर्वत्र उसे निराशा ही दिखायी

दी। नतीजा यह हुआ कि वह अपने अन्तर्द्वन्द्वोंको काबूमें न कर सका और एकाएक हृदयगतिके बंद होनेपर इस संसारसे चल बसा !

ऐसे व्यक्तियोंको दृष्टिमें रखकर ही हमारे यहाँ वेदमें कहा गया है—

अपवक्ता हृदयाविधश्चित्—(ऋग्वेद १।२४।८)

अर्थात् समझदार व्यक्तिको चाहिये कि वह उन विचारोंको तुरंत त्याग दे जो आत्माको कष्ट दें ! मनुष्यको चाहिये कि संकट, खतरा, हानि, मृत्युका शोक सबल हृदयसे सहन करे। पूर्ण धैर्य रखे और संतुलन बनाये रखे।

अत्यधिक क्रोध करनेका यह घातक नतीजा

मोदीनगर—१ जून १९६५ का एक समाचार है। यहाँसे ४ मील दूर ग्राम भोजपुरके समीप स्थित एक भट्टेपर ठेकेदार एवं ईंटें पाथनेवाले मजदूर पथेरोंमें मजदूरीके लेन-देनमें कुछ झगड़ा हो गया। एक ओर गरमीका मौसम, दूसरी ओर क्रोधके भयंकर आवेशके कारण पथेरा मूर्छित हो गया और तत्काल ही घटनास्थलपर उसकी मृत्यु हो गयी। पुलिसने मामला दर्जकर शव परीक्षणके हेतु भेज दिया। अत्यधिक क्रोध करने और उसपर काबू न करनेका यह भयानक दुष्परिणाम निकला था !

दूसरा समाचार इस प्रकार है—

कानपुर, ५ जुलाई १९६५। शिवली पुलिस-क्षेत्रके ग्राम निगोह-निवासी एक व्यक्तिको अपनी छः महीनेकी कन्याकी हत्या करनेके आरोपमें गिरफ्तार किया गया है। बताया जाता है कि नन्हों बच्चीके लगातार रोनेके कारण क्रुद्ध होकर उक्त क्रोधी आदमीने उसे उठाकर जोरसे पटक दिया, जिसके परिणामस्वरूप वह वहीं मर गयी।

इसपर धबराकर वह व्यक्ति स्वयं भी आत्महत्या करनेके लिये कुएँमें कूदने दौड़ा, किंतु लोगोंने उसे पकड़कर पुलिसके हवाले कर दिया।

विवादमें मृत्यु

कानपुरका एक समाचार है। 'कुम्भस्थानसे लाभ होता है या नहीं ?' इस विवादके पीछे उन्नाव जिलेमें बीघापुर स्टेशनपर भयंकर विवाद छिड़ गया। दोनों पक्षवाले क्रोधमें उग्र होते गये। क्रोधके आवेशमें उत्तेजना फैली और उत्तेजनमें मारपीट हो गयी। एक व्यक्ति मर गया तथा दूसरा घायल हो गया।

इस प्रकारके समाचारोंसे स्पष्ट है कि मनुष्यके मनोविकार बढ़कर नियन्त्रणसे बाहर हो जाते हैं और फिर वे महान् उत्पात और संकटका कारण बनते हैं।

गजब हो गया !

लिस्वन, ३१ जुलाई १९६५। पुर्तगीज समाचार-समिति लूसी टानियाने भारतस्थित पुर्तगाली बस्ती गोआसे दो व्यक्तियोंके भयभीत होकर लारीसे कूद पड़ने तथा इनमेंसे एककी मृत्यु हो जानेका समाचार दिया है।

घटना इस प्रकार हुई बताते हैं—दो व्यक्तियोंकी उनकी प्रार्थनापर एक लारीमें बिठा लिया गया। जब इन लोगोंने अपने पास ही रखे एक ताबूतका ढक्कन धीरे-धीरे उठते देखा, तो वे भयभीत होकर उसे देखते रहे; लेकिन जब ताबूतके अंदरसे उर्नीदे स्वरमें आवाज आयी, 'क्या वर्षा बंद हो गयी है ?' तो वे बहुत ज्यादा डर गये और डरके मारे लारीसे कूद पड़े। इनमें एक व्यक्ति मर गया और दूसरा सख्त घायल हो गया। बादमें मालूम हुआ कि इनका यह सब भय निराधार था। वह आवाज, जिसके कारण वे लोग बहुत डर गये थे, उस आदमीकी थी जो ताबूतके साथ पोंडा नामक नगरको जा रहा था। यह व्यक्ति भारी वर्षासे अपनेको बचानेके लिये ताबूतके अंदर घुस गया था और वहीं सो गया था।

बाइमेरका एक समाचार है—एक व्यक्ति पहली बार मुर्देके दाह-संस्कारमें गया। मरे हुए व्यक्तिको पहली बार देखकर उसे इतना डर लगा कि वह कई रात सोते-सोते जगा; डरावने स्वप्न देखता रहा। उसे डरका वहम हो गया। अन्तमें यह डर ही उसकी आत्महत्याका कारण बना।

केवल भयके कारण !

जौन नामक एक व्यक्ति कई बार असफलताके कारण जीवनसे निराश हो गया। उसके जीवनमें एकके बाद दूसरा—कई बड़े मानसिक आघात लगे थे। वह चिन्ता और उद्विग्नतासे अस्त-व्यस्त होकर नाना शंकाओंसे भर गया। उसका मन उधेड़-बुनमें लगा था। उसने मन-ही-मन सोचा—

‘अब जीवनमें शेष ही क्या रह गया है ? सारे दिन निराशा-ही-निराशा ! मैं बेवसीका जीवन जीकर क्या करूँगा ? मैं इस दुनियामें अब रहना नहीं चाहता। परमात्मा मुझे दुनियासे बुलाये, या न बुलाये, मैं आज ही कैमिस्टके यहाँसे जहर लेकर इस कष्टमय चिन्ताका अन्त कर दूँगा।

मुझे आत्महत्या ही सब सांसारिक संकटोंसे बचनेका उपाय सूझता है ।'

ऐसा सोचते-सोचते वह मुहर्रमी सूरत बनाये गमगीन मुद्रासे एक दवावालेके यहाँ विषकी शीशी खरीदने गया ।

मनुष्यका चेहरा उसकी आन्तरिक मनःस्थितिको स्पष्ट कर देता है । गुप्त भावनाएँ छिपाये नहीं छिपती । चतुर व्यक्ति मुखमुद्रासे मनकी बात जान लेते हैं । फिर दूकानदार तो दिनभर ग्राहकोंके चेहरे पढ़ते रहते हैं । इस कैमिस्टको शक हो गया कि 'हो-न-हो', दालमें कुछ काला है । यह व्यक्ति विष खाकर जीवनका अन्त कर देना चाहता है ।'

'मुझे खटमल मारनेवाले विषकी शीशी खरीदनी है'—उसने कैमिस्टसे कहा ।

'क्या कीजियेगा ? आप तो कभी विषैली दवाई खरीदते नहीं है ?' कैमिस्ट बोला ।

'अजी क्या बताऊँ ! खटमल सारी रात परेशान करते हैं । तंग आ गया हूँ उनसे । इस विषसे उन्हें समाप्त कर दूँगा । चैनकी नोंद सोऊँगा ।'

'देखिये बन्धु, यह शीशी विषसे भरी है । समझालकर प्रयोगमें लाइयेगा । इधर-उधर रखनेसे किसी बच्चेके हाथ पड़ जाय, तो मृत्यु तक हो सकती है ।'

ऐसा कहकर कैमिस्ट अंदर गया और जहरवाली शीशीमें रंगीन हानिरहित दवाई भरकर उसने जौनको दे दी ।

कैमिस्टका अनुमान अक्षरशः सत्य निकला । जौन कायर था । उसकी आत्महत्याकी योजना पक्की थी । वह जिंदगीसे पलायन कर रहा था ।

उसने अपनी पत्नीके नाम अन्तिम पत्र लिखा और उस विषैली दवाको गलेके नीचे उतार लिया । मौतके स्वप्न देखने लगा—अब मरा...अब मरा ।

फिर स्वयं कह भी दिया कि मैंने जहर पी लिया है और कुछ देर बाद मैं मर रहा हूँ ।

फिर क्या था, चारों ओर शोर मच गया ।

'जौनने विष खा लिया है ! जौन आत्महत्या कर रहा है !! दौड़ो इसे किसी तरह बचाओ । डाक्टर बुलाओ । इसे वमन कराओ । जौनको बचाओ ।' रोगीकी हालत विगड़ती चली जा रही थी ।

मानसिक असंतुलन और उद्विग्नताके कारण उसके

हाथ-पोंव शिथिल हो रहे थे । उसका हृदय बुरी तरह धड़क रहा था । अब मरा ! अब मरा !!

सब लोंग उसकी निढाल होती, क्षण-क्षण विगड़ती दशापर दुःख प्रकट कर रहे थे ।

जौनको फौरन एक कुशल चिकित्सकके पास अस्पताल पहुँचाया गया और उसकी चिकित्सा तुरंत प्रारम्भ हो गयी ।

डाक्टरने बड़ी सावधानीसे उसकी नब्ज देखी, हृदयकी परीक्षा की, मल-मूत्र, वमन इत्यादि सबका रासायनिक विश्लेषण किया । सब लोग उसकी मृत्युके समाचारकी प्रतीक्षा कर रहे थे ।

पर आश्चर्य ! वह न मरा । यों ही मृत्युशय्यापर पड़ा पड़ा आखिरी साँसें गिनता रहा । उसकी जान ही नहीं निकलती थी ।

डाक्टरने उस शीशीमें लगे हुए रंगीन तरल पदार्थकी परीक्षा की और अन्तमें रहस्यका उद्घाटन करते हुए बतलाया—

'जो दवाई जौनने पी थी, वह कोई भी विष नहीं था । कोई हानिरहित दवाई थी । उसके शरीरमें कोई विकार नहीं है ।'

कैमिस्टको बुलाया गया, तो उसने भी इसी बातकी पुष्टि की । उसने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा कि 'मैंने तो जौनकी जान बचानेके लिये हानिरहित दवाई दी थी । वह विष नहीं था ।'

बादमें रोगीको यह बात खूब समझायी गयी, पर वह मानता ही न था । वह अब भी मानसिक असंतुलनका शिकार था । मृत्युका भय उसे चिन्तित किये हुए था ।

वह बार-बार यही कहता था, 'मैंने विष पी लिया है । अब मैं नहीं बचूँगा ।'

भय तथा मृत्युकी चिन्ता उसके गुप्त मनमें जड़ पकड़ गयी थी । वह उसे खा रही थी । इस विषैली भावनासे उसके मस्तिष्कको शिथिल कर दिया था । यही भय उसकी नस-नसमें फैल गया था । मृत्युका भय उसके गुप्त मनमेंसे निकलता ही न था । अपनी कुकल्पना और उद्विग्नतासे वह मृत्युका इन्तजार कर रहा था ।

फल यह हुआ कि वह महीनों शक-ही-शकमें अस्पतालमें पड़ा रहा । रोगीको अच्छा होनेमें बहुत समय लगा ।

बिना जहर लिये, केवल मिथ्या भय और मानसिक असंतुलनने यह सब उपद्रव किया था ।

डाक्टरोंका कहना था कि सिर्फ जहर पीनेके भयने उसे जीते-जी मौतके समीप पहुँचा दिया था । इस प्रकारकी चिन्ताओं और संदेहोंसे न जाने कितने व्यक्ति मानसिक दृष्टिसे बीमार हैं ।

इस उदाहरणसे यह स्पष्ट होता है कि हमारे मस्तिष्कमें जमे हुए भय, चिन्ता, उद्वेग, अंधविश्वास, मानसिक दबाव हमारे दैनिक स्वास्थ्यपर बड़ा असर डालते हैं ।

यही बात डाक्टर विलियम एडलरने इन शब्दोंमें प्रकट की है—

‘मानसिक भाव-प्रक्रियाएँ मनुष्यकी शारीरिक क्रियाओंको बड़ा प्रभावित करती हैं। अगर मन बीमार है, तो शरीर निश्चय ही बीमार होकर रहेगा । यदि रोगीके मनमें भय, आशंका और मृत्युकी चिन्ता हो, तो उसे स्वस्थ करनेमें डाक्टरको बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है ।

सच मानिये, एक नहीं असंख्य व्यक्ति शरीरसे पूर्ण स्वस्थ दीखनेपर भी मनमें गुप्त संदेह, बहम, चिन्ताएँ, तनाव, आक्रामिक मनोवेग लिये मानसिक बीमारी भोग रहे हैं ।

मानसिक कमजोरीसे मृत्यु

लन्दनका एक समाचार है—एवरडीन विश्वविद्यालयके एक कालेजका चपरासी केवल सड़कोंके गालीगलौज और क्रोधमें चीखनेकी आवाजोंसे ही अपने प्राण खो बैठा था । बात यह थी कि वह चपरासी छात्रोंके दुर्व्यवहारकी सच्ची-झूठी शिकायतें अधिकारियोंको किया करता था । चुगली खानेकी इस मानसिक कमजोरीकी वजहसे वह लड़कोंकी आँखोंमें खटकने लगा था ।

दुष्टप्रवृत्तियोंका शमन करें, ठंडे और शान्त रहें

मनुष्यको चाहिये कि इस प्रकारके नाना उद्वेगों और उत्तेजनाओंसे वह सदा खूब सावधान रहे । जब कभी इन मानसिक शत्रुओंका आक्रमण हो, तब मनको ठंडा करे, शान्त—संतुलित रहे और धैर्यपूर्वक परिस्थितिपर काबू करे ।

हमारे मनके भीतर राक्षस (कुप्रवृत्तियाँ, वासनाएँ और विकार) तथा देवता (सत्-प्रवृत्तियाँ, शील, सद्गुण) सोये पड़े हैं । यदि राक्षस जग उठें, तो आत्म-संयमद्वारा उनपर काबू करना चाहिये ।

पिपेका नाकं स्तुभिर्दमूनाः ।

(ऋग्वेद १ । ६८ । १०)

अर्थात् याद रखिये, संयमी मनुष्य स्वर्गको भी जीत लेते हैं । सुख-शान्तिमय रहनेका उपाय अपनी कुप्रवृत्तियोंको संयममें रखना है ।

अपवक्ता

हृदयाविधश्चित् ।

(ऋग्वेद १ । २४ । ८)

अर्थात् उन कुवासनाओं और मानसिक पापोंको त्याग दीजिये, जो आत्माको कष्ट दें । काम, क्रोध, भय, चिन्ता इत्यादिके कुविचार सदैव त्यागने योग्य हैं ।

आपके गुप्त मनमें जो व्यर्थकी चिन्ताएँ इकट्ठी हो गयी हैं, वे मनमें तनाव और दुःखकी स्थिति उत्पन्न करती हैं । ये कुविचार मानसिक असंतुलन पैदा करते हैं । मानसिक बीमारियाँ फूटकर निकलती हैं । मनमें व्यर्थके कटु अनुभवोंको स्थान न दीजिये । मनमें जमी हुई वासना ही सब दुष्कर्म कराती है ।

मानसिक संतुलन बनाये रहें

याद रखिये, मानसिक असंतुलन आपके ऊपर भयानक संकट ला सकता है । चिन्ता, भय, क्रोध और उद्विग्नता मनुष्यके सर्वोपरि शत्रु हैं । सदैव मनको ठंडा रखिये और संकटके समय धैर्य तथा सहनशीलताका परिचय दीजिये ।

मनको शान्त करनेमें धर्म आपकी सहायता कर सकता है । जीवनमें आस्तिक दृष्टिकोण रखनेसे सहायकके रूपमें हमें परमात्माकी शक्ति मिल जाती है जो सदा मानसिक संतुलन बनाये रखती है ।

मर्त्या हवाअग्ने देवा आसुः ।

(शत० ब्रा० ११ । १ । २ । १२)

मनुष्य शुभकार्य करके शुभ चिन्तनद्वारा ही देव बनते हैं । शुभ चिन्तन, शान्त संतुलित मन और अच्छे कर्मोंद्वारा शरीरसे भूसुर-यद प्राप्त कीजिये ।

आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ।

(ऋग्वेद १० । ६५ । ११)

धर्म—कर्तव्योंका पालन करनेवाले ही देव हैं । वे प्रत्यक्ष देवता हैं जो संकटमें, विपत्तिमें, बड़ी-से-बड़ी प्रतिकूलता और मुसीबतमें शान्त संतुलित बने रहते हैं ।

तुलसीके शब्द

(लेखक—डॉक्टर श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम्. ए., डी. लि.)

(पिछले लेखमें यह दिखानेका प्रयास किया गया था कि कविवर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी गतिका संकेत हमको शब्दोंके पारस्परिक सम्बन्धद्वारा प्रदान करते हैं। जहाँ वे आने-जाने-पहुँचनेके वर्णनमें क्रियाको पहले लिखते हैं और स्थानको बादमें, वहाँ गति शीघ्रतर होती है और जहाँ वे स्थानका उल्लेख पहले और क्रियाका बादमें करते हैं वहाँ गति सामान्य अथवा मन्दतर होती है।)

कभी-कभी एक ही प्रसंगमें एक ही पात्रकी गतियोंमें हमें भिन्नता मिलती है। प्रसंग धनुष-भंगका है। श्रीरघुनाथजीने धनुष तोड़ दिया है परंतु—

‘इरिषा महु कोहु’ वश जो ‘कूर कपूत मूढ़ मन माखे’ राजा थे, उन्होंने बड़ा शोर मचाया। फलस्वरूप—

कोलाहलु सुनि सीय सकानी।

इसलिये सीताजीको—

सखीं लवाइ गइ जहँ रानी।

इसके बाद परशुरामजीका आगमन हुआ, जिनको—

देखि महीष सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥

सब कोलाहल बंद हो गया। राजा लोग समय शृंगुपति-को प्रणाम करने लगे। राजा जनकने भी परशुरामजीको नमस्कार किया। फिर—

सीय बोलाइ प्रनाम करावा।

तब परशुरामजीने जानकीजीको शुभाशीर्वाद दिया।

आसिख दीन्हि सखी हरषानीं। निज समाज है गइ सयानी ॥

यहाँ दो स्थलोंपर सखियोंका जानकीजीको ले जाना कहा है। प्रथम बार सखियाँ सीताजीको रानीके पास ले गयीं और दूसरी बार वे उनको अपने समाजमें ले गयीं। दोनों बार बात केवल ले जानेकी है। परंतु जानेके ढंगमें अन्तर है। पहली बारके जानेकी गतिमें शीघ्रता है—गइ जहँ रानी— यहाँ जाना ‘गइ’ पहले कहा है और गमन-स्थान ‘जहँ रानी’ बादमें। दूसरी बारकी गति साधारण है—निज समाज है गइ—क्योंकि गमन-स्थान ‘निज समाज’ पहले है और जानेकी क्रिया ‘गइ’ बादमें।

एक अन्य प्रसंग देखिये। कविवर कहते हैं—

एक बार जननी अन्हवाए। करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए ॥
निज कुल इष्ट देव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अम्नाना ॥
करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा।

नैवेद्यार्पण तो पूजाका एक अङ्ग है ही, इसलिये इसके अलग कहनेकी क्या आवश्यकता थी? परंतु कविवर ‘करि पूजा’ के बाद ‘नैवेद्य चढ़ावा’ कहते हैं। इस सूक्ष्म रीतिसे कविवरने यह संकेत किया है कि आज पूजामें नैवेद्यका विशेष स्थान है; क्योंकि आज प्रभुका अन्नप्राशन है। इसलिये माता कौसल्याका पूजामें आज असाधारण अनुराग है। नैवेद्यकी एक-एक वस्तु विशेष प्रेमसे साताने भगवान्को अर्पण की। इस तन्मयताके कारण पूजामें देर लग गयी। तो पूजा अन्त होनेपर कौसल्याजी जल्दीसे पाकगृहमें गयीं जो वहाँसे कुछ दूर था। वहाँ उन्होंने सब ठीक पाया तो सामान्य गतिसे मन्दिरमें एक बार फिर आयीं। लेकिन यहाँ—

भोजन करत देख सुत जाई।

तब भयभीत होकर तेजीसे वह वहाँ गयीं, जहाँ प्रभु स्नानोपरान्त पालनेमें सो रहे थे। इस प्रसंगमें माता कौसल्याका तीन बार जाना कहा है। (१) जल्दीसे पाकगृह जाना, (२) वहाँसे साधारण चालसे वापिस मन्दिरमें आना और (३) मन्दिरसे वहाँ तेजीसे जाना जहाँ प्रभु सोये हुए थे।

आपु गई जहँ पाक बनावा। (शीघ्र गति)

बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। (साधारण गति)

गै जननी सिसु पहिं भयभीता। (शीघ्र गति)

इन पंक्तियोंमें जानेकी क्रिया और जानेके स्थानके इधर-उधर करनेसे महारानीकी गतिका अन्तर कविवरने स्पष्ट किया है।

जनक-कुलवारी-मिलन प्रसंग हैं। किशोरीजी प्रेम-विह्वल हैं। शोभासिन्धुकी मधुर मूर्ति देखकर वे उनके वशीभूत हो गयीं। करुणानिधान कैसे सुकुमार हैं। कैसी उनकी अनुपम कोमलता है। फिर उन्हें पिताका कठोर प्रण याद आया और

उस प्रणसे अधिक कठोर शिव-धनुष याद आया !!! अब वे कहाँ जायँ ? किसकी शरणमें जायँ ? कुमारी-हृदयकी पीर सिवा मोंके कौन समझेगा ? जगज्जननी ही इस समय उनकी एकमात्र आश्रय थीं । अतएव—

गई भवानी भवन बहोरी ।

वे जल्दीमें थीं, इसलिये कविवरने पहले किया 'गई' कहा और इसके बाद जानेका स्थान 'भवानी भवन' कहा ।

इस प्रसंगमें किशोरीजीकी तीन अवसरोंपर तीन प्रकारकी चाल है । एक अवसर यह है—

मज्जु करि सर सखिन्ह समेता । गई मुदित मन गौरि निकेता ॥

दूसरा अवसर यह है—

गई भवानी भवन बहोरी । बंदि चरन बोली कर जोरी ॥

तीसरा यह—

तुलसी भवनिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चलों ।

पहले और दूसरे अवसरोंके वर्णनमें गति सामान्यसे शीघ्रतर है—यहाँ जानेकी क्रिया पहले दी है और जानेका स्थान बादमें आया है । तीसरे अवसरपर किशोरीजीका सखियोंके साथ हँसते-गाते निश्चिन्त होकर मन्द-मन्द जाना स्पष्ट है । यहाँ जानेका स्थान 'मन्दिर' पहले आया है और जानेकी क्रिया 'चली' बादमें आयी है ।

यहाँ एक सूक्ष्म भेद विचारणीय है । अभी ऊपर कहा है कि दो अवसरोंपर किशोरीजीकी चाल सामान्यसे शीघ्रतर है । ये दो अवसर हैं—

मज्जु करि सर सखिन्ह समेता । गई मुदित मन गौरि निकेता ॥
गई भवानी भवन बहोरी । बंदि चरन बोली कर जोरी ॥

इन दोनों अवसरोंकी चालमें दूसरे अवसरकी चाल पहले अवसरसे अधिक शीघ्र है । कविवर तुलसीदासजी जब जानेकी क्रिया और जानेके स्थानके बीचमें कोई शब्द नहीं रखते तब यह इस बातका संकेत है कि गति बहुत शीघ्र है । जैसे—

गई भवानी भवन बहोरी ।

गई गगन सो सकति कराला ।

चली विपति बारिधि अनुकूला ।

चली गगन चढ़ि जान,

सपदि चले कमलापति पाहीं ।

परंतु जहाँ जानेकी क्रिया और जानेके स्थानके बीचमें

एक या एकसे अधिक शब्द आ जाते हैं, वहाँ इस प्रकारकी अति शीघ्र गति, वैचैनी भरी गति, तड़पवाली गति, तेज़ी-भरी चाल नहीं होती है यद्यपि गति या चाल सामान्यसे शीघ्रतर होती है । जैसे—

गई मुदित मन गौरि निकेता ।

यहाँ जानेकी जल्दी है परंतु वैसी नहीं है जैसी—

गई भवानी भवन बहोरी ।

में है ।

मयना हिमाचलकी बात सुनकर पार्वतीजीके पास गयीं—
सुनि पति वचन हरषि मन माहीं । गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं ॥

'यहाँ 'गई' और 'गिरिजा पाहीं' के बीचमें दो शब्द हैं 'तुरत उठि' । इसका अर्थ यह है कि गिरिजाजीके पास तुरंत मयना गयीं, शीघ्रतासे गयीं, परंतु फिर भी जैसी शीघ्रतासे उनको जाना चाहिये था वैसी शीघ्रतासे नहीं गयीं; क्योंकि उनके मनमें पतिके वचन सुननेके बाद थोड़ी-सी इस बातकी शङ्का रह ही गयी थी कि शिवजीका घर और कुल और वे स्वयं भी पार्वतीजीके अनुरूप थे या नहीं ?

इसी प्रकार यदि गमन-स्थान और चलनेकी क्रियाके बीचमें शब्द हों तो उसका अर्थ यह होता है कि गति धीमी तो थी ही वह और धीमी हो गयी । जैसे—

पिता भवन जब गई भवानी ।

शिवजीने कैलास पहुँचते ही अखण्ड अपार समाधि लगा ली थी । सतीजीकी दशा यह थी कि—

चिन्ता अमित जाइ नहिं बरनी ।

और—

नित नव सोचु सती उर भारा ।

यहाँतक कि उन्होंने हरिसे यह विनय की कि—

छूट बेगि देह यह मोरी ।

अतएव जब वे पिताग्रहके लिये खाना हुईं, तब उनको पति-परित्यागका भारी दुःख तो था ही, इसके अतिरिक्त उनको यह भी दुःख था कि पतिदेव उनके पिताके घर जानेके पक्षमें नहीं थे । इसलिये जानेकी गति जो वैसे ही मन्द थी, वह मन्दतर हो गयी । इसका ही संकेत कविवरने जानेके स्थान 'पिता भवन' और जानेकी क्रिया 'गई' के बीचमें एक शब्द 'जब' रखकर किया है ।

इस आने-जाने-चलने-ले जानेके प्रसंगमें एक बात और विचारणीय है। कविवर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी अस्मर दूरीका संकेत 'जहाँ-तहाँ'से करते हैं। उदाहरणार्थ विभीषण-शरणागति-प्रकरणमें कविवर कहते हैं—

सादर तेहि आगे करि बानर । चले जहाँ रघुपति करुनाकर ॥
दूरिहि ते देखे द्वौ आता ।

—इससे स्पष्ट है कि 'जहाँ' रघुपति थे, वह स्थान दूर था। उत्तरकाण्डके एक प्रसंगमें कहा है—

पुनि कृपाल पुर बाहेर गए ।

और फिर चलते-चलते—

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई । गए जहाँ सीतल अँवराई ॥

इस 'जहाँ' का अर्थ है कि 'अँवराई' शहरसे बाहर दूर थी।

नारदमुनि करुणानिधानसे बिदा होकर—

सोमसिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम ।

निश्चय ही ब्रह्मलोक अवधसे बहुत दूर है।

एक अन्य प्रसंगमें कविवर कहते हैं कि कौतुकी कृपाल श्रीरघुनाथजीने काकभुशुण्डिजीको पकड़नेके लिये हाथ फैलाया। काकभुशुण्डिजीका कहना है—

जिमिजिमि दूर उड़ाऊँ अकासा । तहाँ मुज हरि देखँ निज पासा ॥

उड़ते-उड़ते—

सप्तावरन भेद करि जहाँ लंगें गति मोरि ।

गयँ तहाँ प्रभु मुज निरखि ब्याकुल भयँ बहोरि ॥

'जहाँ-तहाँ' से इस स्थलपर कविवरका आशय बहुत दूरी दिखलानेका है जो 'सप्तावरन भेद करि' से स्पष्ट है।

इसी प्रकार एक दूसरे स्थानपर कहा है—

अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी । परम समीत धरा अकुलानी ॥

और फिर—

धेनु रूप धरि हृदयँ विचारी । गई तहाँ जहाँ सुर मुनि क्षारी ॥

अर्थात् मृत्युलोकसे जो बहुत दूर देवलोक है वहाँ गयी।

इन उदाहरणोंसे यह स्पष्ट है कि 'जहाँ-तहाँ' से कविवर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीका अर्थ दूरीका है,

जो दूरी उस संदर्भमें अपना विशेष महत्त्व रखती है। परंतु उपर्युक्त बातें जान लेनेपर भी इन महान् कलाकारके काव्यको बहुत सजग होकर अध्ययन करनेकी आवश्यकता है। उदाहरणस्वरूप नारद-मोह-प्रकरण देखिये। मुनि राजकन्याके स्वयंवरमें जानेके सम्यन्धमें कविवर कहते हैं—
गवने तुरत तहाँ रिषिराई । जहाँ स्वयंवर भूमि बनाई ॥

इसके संदर्भमें यह स्मरण रखना आवश्यक है कि कैसे ही नारदजीने राजा झीलनिधिकी कन्या देखी, वैसे ही—

मुनि बिरति बिसारी ।

तब दौड़े-दौड़े गये और थोड़ी-दूरपर ही जाकर प्रभुसे बहुविधि विनय की और उनकी कृपासे हरि-रूप पाकर जल्दीसे स्वयंवरके लिये आये। कविवरने पहले जानेकी क्रिया 'गवने' और उसके बाद जानेके स्थान 'तहाँ' का प्रयोग करके यह स्पष्ट किया है कि नारदजी शीघ्र गतिसे स्वयंवर-भूमिमें आये। कविवरने 'तुरत' लिखकर गति और भी स्पष्ट कर दी। जब इतनी शीघ्रतासे नारदजी अपने इच्छित स्थानपर पहुँच गये तब इस पंक्तिमें 'तहाँ रिषिराई' और 'जहाँ स्वयंवर भूमि' में 'तहाँ-जहाँ' का प्रयोग क्यों किया गया जो बहुत दूरीका सूचक है। इसका समाधान इस प्रकार है कि यद्यपि नारदमुनिने प्रभुको जल्दी बुलाया, वे जल्दी प्रकट हो गये, उन्होंने जल्दीसे हरि-रूप मुनिको प्रदान किया और उसे पाकर मुनि जल्दीसे स्वयंवरभूमिमें आ गये, परंतु नारदजीकी बालाको पानेकी बेचैनी ऐसी अकथ थी कि हरि-रूप पाकर लौटते-लौटते इनको ऐसा लगा कि जो स्वयंवर-भूमि पास थी वह राम जाने कितने योजन दूर लगी। नारदजीकी मानसिक दशाके कारण उनको अपनी कल्पनामें दूरीका अनुभव हुआ, जिस दूरीका वास्तवमें अस्तित्व नहीं था। इसकी ध्वनि कविवरने एक ओर शीघ्रताद्योतक शब्द 'तुरत' और दूसरी ओर दूरीका संकेत 'तहाँ-जहाँ'के मिश्रप्रयोग करके प्रदर्शित की है।

एक और प्रसंग लीजिये। जब सतीजी श्रीरघुनाथजीकी परीक्षा लेने चलीं, तब जिस वटवृक्षकी छाँहमें महादेवजी बैठ गये थे वह श्रीरघुनाथजीके परीक्षा-स्थानसे बहुत दूर नहीं था। सीताजीका रूप धरकर मायापतिकी परीक्षामें असफलता प्राप्त करनेके पश्चात् सतीजीको विस्मयकारक अनुभव हुआ।

देखे जहाँ तहाँ रघुपति जेते । सकिन्ह सहित सकल सुर तेते ॥

इत्यादि बहुत-सी विचित्र लीलाएँ सतीजीने देखीं ।
इसके कारण उनकी यह दशा हुई कि—

हृदय कंप तन सुधि कलु नाहीं ।

वे बहुत घबरा गयीं और—

पुनि पुनि नाइ रामपद सीसा । चली तहाँ जहाँ रहे गिरीसा ॥

इस चौपाईमें कविवरने 'तहाँ-जहाँ' का प्रयोग किया है जिससे मालूम होता है कि जैसे कैलासपति बहुत दूर थे । परंतु सत्य तो यह था कि वे बहुत दूर नहीं थे । सतीजीको अपने व्यवहारपर इतनी ग्लानि थी, इतना दुःख था, जो प्रभुकी लीला देखी उसका इतना भय था कि उनके पाँव उस बटके वृक्षकी ओर उठ ही नहीं रहे थे, जहाँ शिवजी बैठे थे । बड़ी कठिनाईसे वे उधर चलीं । उनको ऐसा लगा कि जैसे बटवृक्ष अत्यधिक दूर था । इस स्थलपर 'तहाँ-जहाँ' के द्वारा कविवरने सतीजीकी मानसिक दशाका हमें दर्शन कराया है जिसके कारण दूरी न होनेपर भी सतीजीको बहुत दूरीका अनुभव हुआ ।

और अब अन्तमें शृङ्गवेरपुर चलिये ।

सुंगवेरपुर भरत दीख जब । मे सनेहँ सब अंग सिथिल तब ॥

सोहत दिएँ निषादहि लागू । जनु तनु धरें बिनय अनुराग ॥

• और फिर—

भाइहि सौपि मातु सेवकाई । आपु निषादहि लीन्ह बोलाई ॥

चले सखा कर सों कर जोरें । सिथिल सरीर सनेह न थोरें ॥

भरतजी हृदय-दाहसे दुखी हैं ।

एकइ उर बस दुसह दवारी । मोहि लगि मे सिय राम दुखारी ॥

जीवन लाहु लखन भर पावा । सबु तजि राम चरने मनु लावा ॥

मोर जनम रघुबर बन लागी । झुठ काह पछिताउँ अमागी ॥

अपनी 'जिअ कै जरनि' को मिटानेके लिये वे श्रीरघुनाथ-पद देखने जा रहे हैं । परंतु अभी श्रीरघुवीर दूर हैं । श्रीराम-प्रेममें व्याकुल भरतजीकी यह दशा है कि मार्गमें जो भी चर या अचर वस्तु मिल जाती है जिसे श्रीराम-स्पर्शने पावन कर दिया है, उसे वे राम-स्वरूप समझकर सानुराग

लिपट जाते हैं । बड़ी बेचैनीसे वे सखा निषादराजसे कहते हैं कि 'प्यारे ! जल्दीसे मुझे वहाँ ले चलो जहाँ रातको श्रीराम-जानकी सोये थे !!!

पूछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ । नेकु नयन मन जरनि जुबाऊ ॥

जहँ सिय राम लखनु निसि सोए । कहत भरे जल लोचन कोए ॥

भरत बचन सुनि भयउ विषादू । तुरत तहाँ लइ गयउ निषादू ॥

जहँ सिंसुपा पुनीत तर रघुवर किय विश्रामु ।

अब कविवरकी शब्दरचनापर ध्यान दें । निषादराज भरतजीको 'तुरत' उस वृक्षके पास ले गये, जहाँ श्रीराम-जानकीने रात्रिमें विश्राम किया था । 'तहाँ लइ गयउ निषादू' में पहले ले जानेका स्थान 'तहाँ' कहा है और इसके पश्चात् ले जानेकी क्रिया 'लइ गयउ' कही है । इस प्रकार कविवरने यह संकेत किया है कि निषादराजकी भरतजीको ले जानेकी गति धीमी थी । कविवरके कहनेका आशय यह है कि यद्यपि निषाद जल्दी-जल्दी चले और भरतजीको वहाँ 'तुरत' ले गये, फिर भी विरहाकुल भरतजीको ऐसा लगा कि निषाद-राज धीमे-धीमे जा रहे हैं । 'तहाँ-जहँ' के संकेतसे कविवरने इस भावकी पुष्टि कर दी है । जिस शीशमके वृक्षको श्रीराम-जानकीका विश्राम-स्थल बननेके पहले कविवरने 'तस सिंसुपा' संज्ञा दी थी, उसका अब वे 'सिंसुपा पुनीत' कहकर उल्लेख करते हैं । यह तत्पर उस स्थानसे बहुत दूर नहीं था, जहाँ माताओंका और भरतजीका डेरा था । परंतु श्रीराम-चरन-प्रेम-विह्वल भक्तवर भरतजीको अपने 'नयन मन जरनि' को शान्त करनेकी ऐसी अकथ व्याकुलता थी कि यद्यपि निषाद उन्हें 'सिंसुपा पुनीत तर' जल्दी-से-जल्दी ले गये, 'तुरत' ले गये और उनको वहाँ शीघ्र पहुँचा दिया, फिर भी भरतजीको अपनी असह्य व्याकुलताके कारण ऐसा लगा कि वह 'सिंसुपा पुनीत' बहुत ही दूर था । वास्तविक शीघ्रता और काल्पनिक विलम्बके विरोधी भावोंका चित्र कविवरने 'तुरत', 'तहाँ लइ गयउ' और 'तहाँ-जहँ' के मिश्र प्रयोगसे अत्यन्त संक्षेपमें, बड़ी सुन्दर रीतिसे, एक अनुपम कलाकार-के सांकेतिक ढंगसे हमारी आँखोंके सामने खींच दिया है ।

शब्दोंके ऐसे अद्वितीय चमत्कारने कविवर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीको विश्वसाहित्यमें अमरता प्रदान की है ।

वर्तमान समयका बड़ा पाप—मिलावट करना

(लेखक—श्रीताराचन्द्रजी पांड्या)

व्यावहारिक जीवनमें, वस्तुओंमें मिलावट करना—हीन गुणवाली वस्तुका उच्च गुणवालीमें मिश्रणकर उच्च गुणवालीके नामसे उसे बेचना या जो वस्तु जैसी है, उससे उच्च गुणवाली बताना—यह महान् पाप है। वर्तमान समयमें देशमें यह महान् पाप खूब जोरोंपर है। आटेमें, मसालोंमें, सभी खाद्य पदार्थोंमें, औषधियोंमें—प्रायः हर वस्तुमें मिलावट की जाती है। दूधमें पानी मिलाना और घीमें तथाकथित 'वेजिटेबल घी' मिलाना तो साधारण बात हो गयी है। खाद्य पदार्थोंमें हीनगुणके खाद्य पदार्थोंकी ही नहीं, किंतु अखाद्य एवं अपवित्र पदार्थोंकी भी मिलावट होती है, यथा—दूधमें आरारुट या ग्लूटिंग पेपर मिलाना, आटेमें सीमेन्ट या पत्थरका चूरा मिलाना, काली मिर्चमें पपीताके बीज मिलाना आदि। बकरीकी मींगनियाँ भी मिलावटके काममें ली जाती हैं, घीमें जानवरोंकी चर्बी मिलायी जाती है, केसरमें खूनसे रंगे अँतड़ियोंके तन्तु मिलाये जाते हैं। खाने-पीनेकी वस्तुओंमें ही नहीं, अन्य पदार्थोंमें भी खराब श्रेणीके या टूटे-फूटे मालको अच्छी श्रेणीका या सावितके तौरपर भेज दिया जाता है।

इस मिलावटसे मिलावट करनेवालेकी या मिलावटका माल देनेवालेकी आत्माका महान् पतन होता है, उसकी नीयतमें धोखेबाजी और ठगनेके भाव भर जाते हैं, उसे झूठ बोलना पड़ता है, छल-कपट करना होता है। उसमें लोभकी अति मात्रा होती है, जो अशौच है। उसकी आत्मा सदा अपवित्र तथा कलुषित रहती है। उसे राज्यका भी और भेद खुल जानेका भी भय बना रहता है, जिससे घूसखोरी पनपती है। अन्यायसे और आसानीसे धन उपार्जित करनेपर उसका व्यय भी प्रायः अनावश्यक और दिखावेकी बातोंमें होता है, जिससे समाजमें तड़क-भड़क तथा ईर्ष्या-असंतोषकी भावनाएँ बढ़ती हैं। इनके अलावा, जिसको मिलावटकी चीज बेची जाती है, उसकी व्यर्थकी वित्तीय हानि होती है, शारीरिक पीड़ा होती है और उसके चित्तको दुःख पहुँचता है। यह उसकी हिंसा ही है। किसी बीमारको नकली या मिलावटी दवा दी जाय तो उसको लाभ न पहुँचनेपर उसे कितनी व्यथा होती है, उसकी बीमारी बढ़

सकती है, उसका प्राणान्त भी हो सकता है। मिलावटकी चीज बेचनेवाला नितान्त स्वार्थी हो जाता है। उसे दूसरेके हिताहितकी परवा नहीं रहती और उसकी यह क्रूरता उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। इन सब दुर्गुणोंका व्यक्ति और समाजके लिये दुष्परिणाम होता है, समाजमें पारस्परिक विश्वास-भावना और साख उठ जाती है। स्वास्थ्य, धर्म और नैतिकताकी हानि होती है।

गाँवोंके लोग पहले सरल, सत्यभाषी होते थे। कम-से-कम, गंगासैया एवं देवी-देवताओंकी झूठी शपथ नहीं खाते थे। लेकिन अब तो वे घीमें मिलावट कर शपथ खाकर भी उसे असली घी बताते हैं; यह समाजका कितना नैतिक पतन है। (बनस्पति घीसे जो अन्य बुराइयाँ होती हैं, जैसे, अपवित्रता, स्वास्थ्यहानि, मूँगफली एवं उसके तैलका मँगा होना, जिससे अनाजके बजाय मूँगफलीको बोनेकी अधिक प्रेरणा होती है, घीकी माँग कम होनेसे पशुधनकी हानि आदि इनका तो वर्णन ही यहाँ नहीं किया जाता है।)

राज्यका कर्तव्य है कि मिलावट करनेवालोंको पकड़नेकी और उनको कठोर दण्ड देनेकी कठोर व्यवस्था करे। लेकिन कानून तथा सरकारी अधिकारी हर जगह काम नहीं दे सकते। अतः इसके साथ ही लोगोंमें धर्म-भावना फैलानी चाहिये। पापके बुरे फलमें, परलोकमें और स्वर्ग-नरकमें विश्वास कराना चाहिये, ताकि परोक्षरूपसे छिपकर तथा एकान्तमें भी ऐसे काम न हो सकें—लोगोंके दिलोंमें मिलावट करनेकी भावना ही नहीं उठे। साथ ही, जो पदार्थ आमजनों पर मिलावटमें काममें आते हों, उन्हें बंद किया जाय या उसे ऐसा रूप दिलाया जाय कि वह मिलावटके लिये काममें नहीं लाया जा सके या उसकी मिलावटका पता आसानीसे और स्पष्टतया चल जाय।

मिलावटकी चीजमें अच्छी चीजकी कीमतमें खराब-कम कीमतकी चीज दी जाती है और बाकी कीमत विक्रेता ले लेता है। अतः यह 'चोरी' है। जो चीज देनी बतायी जाती है, वह नहीं दी जाती है, उससे भिन्न और हीन चीज दी जाती है, अतः यह 'ठगी' भी है। जैसी दी जाय, वैसी नहीं बतायी जाती है, उससे लूँची बतायी जाती है, अतः

‘असत्य-भाषण’ भी है। खरीदारको विश्वास रहता है या विश्वास दिलाया जाता है कि जैसी वह चाहता है या जैसी विक्रेता बताता है वैसी ही वह वस्तु है और इसी विश्वासपर वह उसे लेता है, अतः यह ‘विश्वासघात’ भी है। इस तरहके अनेक दोष मिलावटकी वस्तुसे होते हैं। जो पदार्थ मिलाया जाय, वह हानिकर नहीं हो तो भी उपर्युक्त दोष तो होते ही हैं; क्योंकि ग्राहकको जो चीज दी जाती है, वह वैसी नहीं होती, जैसी वह चाहता है या जैसी उसे बताया जाती है और जैसीके वह दाम देता है।

सभी धर्मोंके शास्त्रोंमें मिलावट करनेकी तथा व्यापारमें बेईमानी करनेकी निन्दा की है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

नान्यदन्येन संस्पृष्टरूपं विक्रयमर्हति ।
न चासारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् ॥
(मनु० ८ । २०३)

अर्थात् किसी चीजमें दूसरी चीज मिलाकर बुरी चीजको अच्छी कहकर, दूरसे नकली चीज दिखाकर (यानी चीजका दोष, स्वरूप आदि सही न बताकर), या तौल या नापमें कम करके कोई चीज नहीं बेचनी चाहिये ।

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे सम्भूलं च विनश्यति ॥

अन्यायसे अर्जित किया धन दस वर्षतक ठहरता है; ग्यारहवें वर्षके प्राप्त होनेपर मूलसहित नष्ट हो जाता है ।

न्यायोपार्जित धनसे ही यज्ञादि शुभकर्म करने चाहिये ।
(श्रीमद्भागवत ११ । १७ । ५१)

अन्यायसे धन कमाना ब्रह्महत्याके समान पातक है । पराये द्रव्यको सरसों-बराबर भी चुरा लेनेवाला व्यक्ति नरकमें गिरता है, इसमें संशय नहीं है (शिवपुराण, उमासंहिता, अध्याय ४-६) ।

चोरी मत करो, न किसीके साथ बेईमानीका व्यवहार करो, न झूठ बोलो, न किसीको ठगो । नाप या तौलमें अन्याय मत करो (बाइबल, लेवितिकस, अध्याय १९ वाँ) ।

जो अन्यायसे अपना घर बनाता है उसके लिये शोक है (बाइबल, जेरेमिहा, अध्याय २२वाँ) ।

नाप-तौलमें सही बनो, तुम भले ही धनवान् बन जाओ, लेकिन कयामतके दिन तुम भयंकर तकलीफ भोगोगे । लोगोंको धोखा मत दो, उनकी चीजें मत ठगो और पृथ्वीपर अन्याय-भ्रष्टाचार मत करो । न्यायसे उपार्जित भले ही थोड़ा बचे लेकिन वह बेहतर है (कुरान, अध्याय ११वाँ का पैरा ८७-८८; अध्याय २६वाँका पैरा १८१-८५ भी देखो) ।

जो कोई ऐसी चीज बेचता है, जिसमें खामी (दोष) है और उस खामीको नहीं बताता है, वह परमेश्वरका वृणापात्र होगा और फरिस्ते उसे बदुवा देंगे । जो अत्यधिक कीमत पानेके लिये मालको जमा रखता है वह पापी है । जो अत्यधिक दाम पानेके लिये खाद्य पदार्थको जमा रखता है, परमेश्वर उसे कोढ़ी और दीवालिया बनावें ! सत्यभाषी और विश्वासयोग्य व्यापारी पैगम्बरों और न्यायी और शहीदोंके साथमें बैठेगा । (हदीस, मुस्करत-उल-मसाबीह) ।

पारसी धर्ममें भी देखिये—

जिसकी सम्पत्ति न्यायसे प्राप्त हुई हो उसे धनवान् समझना चाहिये (जेन्दा अवेस्ता, ‘दीनार्द-मैनोग-ई खिराद’) ।

जिसने पापसे सम्पत्ति पायी हो और इस सम्पत्तिसे जो खुश होता है, उसकी यह खुशी दुःखसे भी ज्यादा बुरी है । जो बेईमानीसे धन कमाता है वह अभाग्य है । (जेन्दा अवेस्ता, ‘दीनार्द-मैनोग-ई खिराद’) ।

दूसरे जन्ममें एक मनुष्य मिट्टी और राख नापनेको और खानेको बाध्य किया गया; क्योंकि जब वह इस दुनियामें था तो उसके बाट या गज सही नहीं थे और उसने आसवमें पानी और अनाजमें मिट्टी मिलाकर लोगोंको ऊँची कीमतमें बेचा था तथा भले मानसोंसे छल किया था (अर्दविराफ) ।

भला, चोरी, ठगी, बेईमानी, असत्य, किस धर्ममें निन्दित और अधोगतिको ले जानेवाले नहीं बताये गये हैं और इसके प्रमाणोंकी क्या गिनती हो सकती है ?

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

आत्मानुभव

श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

(१३ । १७)

इन्द्रियोंके अथवा बुद्धिके द्वारा उपलब्ध न होनेसे ही आत्माको 'जड' नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वह बुद्धि आदिकी पहुँचसे परे है । इन्द्रियोंद्वारा जिन रूप आदि विषयोंका ग्रहण होता है उन सबसे रहित होनेके कारण ही आत्माकी उनके द्वारा उपलब्धि नहीं होती । अतः उसका इन्द्रियाग्राह्यत्व उचित ही है ।

सृष्टिके पूर्व जगत्की जो अनिर्वचनीय अव्याकृत अवस्था थी, उसीको अव्यक्त कहते हैं । यह 'अव्यक्त' ही परमेश्वरकी 'माया' नामक शक्ति है । सृष्टिके प्रारम्भमें परमात्माद्वारा जो सृष्टिविषयक ईक्षण (आलोचन) होता है, उसका नाम 'समष्टि बुद्धि' (महत्त्व) है । अथवा यों कहिये कि सृष्टिरचना-विषयक परमेश्वरका ज्ञान ही 'ईक्षण' है । ईक्षणके अनन्तर 'अहं बहु स्याम्' (मैं बहुत रूपोंमें प्रकट हो जाऊँ) इस प्रकार जो परमेश्वरीय संकल्प है, वही 'अहंकार' कहलाता है । इस अहंकारसे ही आकाशादि-क्रमसे पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति हुई है ।

१—'ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्' (उन्होंने ध्यानयोगमें स्थित होकर परमात्माकी अपनी ही शक्तिका, जो अपने गुणोंसे आच्छादित (अव्यक्त) है, साक्षात्कार किया) श्वेताश्वतर० (१ । ३) ।

२—'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्' (श्वेता० ४ । ९)—इस श्रुतिके अनुसार परमेश्वरकी शक्तिका नाम माया है ।

३—'तदैक्षत (छान्दो० ६ । ३ । ३) इति ईक्षणरूपा बुद्धिः ।'

४—'बहु स्यां प्रजायेय (छान्दो० ६ । ३ । ३) इति बहुभवन-संकल्परूपः अहंकारः ।

५—'तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः, आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भयः पृथिवी ।

(तैत्ति० २ । १) इति पञ्चभूतानि श्रौतानि ।

पिण्ड और ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके लिये पाँचों महाभूतों पञ्चीकरण हुआ । पञ्चीकृत भूतोंसे बना यह स्थूल शरीर 'अन्नमयकोष' कहलाता है । सूक्ष्म शरीर रजोमय अंश—पाँच प्राण और पाँच कर्मेन्द्रियोंका समुदाय मिलकर 'प्राणमयकोष' है । मन तथा सात्त्विक अंशभूत ज्ञानेन्द्रियाँ 'मनोमयकोष'के अन्तर्गत हैं । निश्चयात्मिका बुद्धि एवं ज्ञानेन्द्रियाँ 'विज्ञानमयकोष' हैं । कारण शरीर ही 'आनन्दमयकोष' है । प्रत्येक इन्द्रिय अपनेसे सम्बन्ध रखनेवाले केवल एक ही विषयको ग्रहण करती है, इसलिये सम्पूर्ण इन्द्रियमय विषय पाञ्चभौतिक होनेके कारण नश्वर हैं । उनकी उत्पत्ति होती है, अतः विनाश भी निश्चित है । आत्मा नित्य निरचेतन है । इन विनाशशील जड वस्तुओंसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है । वह इनसे सर्वथा पृथक् और विलक्षण है । गीतोपनिषद्में आत्माको 'ज्योति' कहा गया है—'ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः' (गीता १३ । १७) 'ज्योति' शब्दका अर्थ है—अवभासक, प्रकाशक अथवा चैतन्य । आत्मा सर्वत्र विद्यमान होनेपर भी मन तथा बुद्धिके द्वारा गम्य नहीं है । उसे 'अस्ति' या 'नास्ति' भावसे बुद्धि विषय नहीं बनाया जा सकता । वह अप्रमेय है, उसे उसे माप नहीं सकती । लौकिक बुद्धिसे आत्माका रहना और न रहना, दोनों समान जान पड़ते हैं; क्योंकि वह तो बुद्धि पहुँचके परे ही है । आत्मा सबका आश्रय है, किंतु स्वयं आश्रय-आश्रित-सम्बन्धसे अलिप्त है । उसका आश्रय भाव भी कल्पित है । वह एक सर्व-विलक्षण वस्तु है । अमेद, विभक्त-अविभक्त किसी भी लक्षणद्वारा उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता ।

सूर्य-चन्द्र यदि अन्तरिक्षके आलोक हैं तो आत्मा हृदयके अंदरका । दूसरे शब्दोंमें सूर्य-चन्द्र और नक्षत्र आदि जड़ ज्योति हैं तो आत्मा आन्तरिक ज्योति । उसे 'तत्' ज्ञेय जड़ 'ज्योतिषामपि ज्योति' प्रकाशकोंको भी प्रकाश देनेवाला कहा गया है । वह सूर्य-चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र सबका प्रकाशक है । तभी तो आधुनिक कालकी वैज्ञानिक खोजोंने अन्तरिक्ष यात्राके मार्ग सुलभ कर दिया है । इससे स्पष्ट है कि आत्मा एक चैतन्य है, जड जगत्का प्रकाशक है । यदि ऐसा न होता तो जड निःसाक्षिक होकर अप्रकाशित ही रह जाय ।

येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः... तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

—इत्यादि श्रुतियोंसे तथा—

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

(गीता १५ । १२)

—इत्यादि मगवद्वाक्योंसे भी यह प्रमाणित होता है ।

जिस प्रकार सूर्य-चन्द्र अपने प्रकाशके लिये अन्य किसीकी भी अपेक्षा नहीं करते, उसी प्रकार ब्रह्म भी अपने प्रकाशके लिये किसीकी अपेक्षा नहीं रखता । अर्थात् वह सर्वप्रकाशक तथा स्वयंप्रकाश है । वह आत्मा 'स्वयं ज्योतिः' अर्थात् जडवर्गके साथ असंस्पृष्ट होनेसे 'ज्ञानम्' ज्ञानस्वरूप है । अविद्या-कालुष्यरहित चित्तवृत्तिमें जो संवित् (चेतना या ज्ञान) अभिव्यक्त होती है वह आत्मा (ब्रह्म) की ही एक झलक है; वह आत्मा संवित्स्वरूप है और इसीलिये वह चेतन ही 'ज्ञेयम्'—ज्ञेय है; क्योंकि वही अविद्यासे आवृत रहनेके कारण अज्ञात है । जड वस्तुकी अज्ञातता न रहनेसे वह ज्ञेय नहीं कही जा सकती ।

तात्त्विक दृष्टिसे सत् और असत्का सम्बन्ध हो ही नहीं सकता । सम्बन्धकी प्रतीति भी अज्ञानके ही कारण होती है । यथा—

निःसंगस्य हि संगेन कूटस्थस्य विकारिणा ।

आत्मनो नात्मना योगो वास्तवो नोपपद्यते ॥^१

तथा—'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्'^२

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३ । ८)

ऐसा आत्माभारी शरीर सांसारिक कार्य-व्यापारमें मग-वाणी और कर्मसे जब कालुष्यपूर्ण हो जाता है—'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि' और 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के मूल-मन्त्रसे भटक,

१—अभिप्राय यह कि आवृत वस्तु ही अज्ञात होती है, ज्ञानके द्वारा आवरण-संगमात्र होता है । जड वस्तुका आवरण नहीं स्वीकार किया गया है; क्योंकि वह इन्द्रिय-प्राप्त है । अनावृत होनेसे वह अज्ञात नहीं है, अतएव ज्ञेय भी नहीं है; क्योंकि अज्ञात ही ज्ञातव्य होता है, जो ज्ञात है वह ज्ञातव्य नहीं ।

२—असङ्ग एवं निर्विकार आत्माका आसक्तिवृत्त विकारी अनात्मासे वास्तविक सम्बन्ध होना सम्भव नहीं है ।

३—अर्थात् आत्मा आदित्यवर्ण (सूर्य) और तम, प्रकाश तथा अन्धकारसे परे है ।

अध्या० ६—

जाता है तो चित्तशुद्धिके निमित्त किसी सरिता-सरोवर, वन-वाटिकामें एकान्त-सेवन कर अथवा किसी देवमन्दिर अथवा तीर्थस्थलमें तीर्थवास कर आत्मबोधको प्राप्त होता है । अपने इसी प्रयत्नके लिये मनुष्य सांसारिक जंजालोंसे मुक्त हो ऐसे स्थलोंको जाता है जहाँ उसे शान्ति मिलती है, जहाँ उसकी चित्त-शुद्धि निर्मल होती है । जहाँ उसे अपने आत्मतत्त्वका, परम-तत्त्वका बोध होता है और जहाँ वह—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः

सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥

(श्वेताश्वतरो ६ । ११)

अर्थात्—'समस्त प्राणियोंमें एक ही देव स्थित है । सर्व-व्यापक, समस्त भूतोंका अन्तरात्मा, कर्मोंका अधिष्ठाता, समस्त प्राणियोंमें बसा हुआ, सबका साक्षी, सबको चेतनतत्त्व प्रदान करनेवाला, शुद्ध और निर्गुण है—ऐसी चित्त-वृत्तिको प्राप्त होता है । दूसरे शब्दोंमें मनुष्य आत्म-शान्ति या इस आत्मानुभवके लिये ही देव-मन्दिरमें मूर्तिके माध्यमसे देवदर्शन तथा किसी पुण्यस्थलमें तीर्थसेवन और पावन सरिता-सरोवरोंमें स्नान, ध्यान और पूजनमें प्रवृत्त होता है ।

हमने सन् १९५९ में अपने देशकी देवभूमि उत्तरा-खण्डकी यात्रा की थी । उत्तराखण्डके यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनाथ चारों धामोंकी इस यात्रामें, कहना चाहिये कि आत्मबोधके इस अभियानमें हमने जो पाया वह एक दुर्लभ सुख था । मानवको उसके जन्मसे ही दो विरोधी वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं—सुख-दुःख, सम्पदा-विपदा, राग-विराग और न जाने क्या-क्या; पर इन सबसे भी बड़ी जो दो बातें निसर्गने उसे दी हैं, जो दोनों ही अपने-आपमें एक ओर निसर्गका उसे वरदान है तो दूसरी ओर वही अभिशाप भी । ये हैं मानवकी स्मृति और विस्मृति । हमारी उत्तराखण्डकी यात्रा उसकी समाप्तिके साथ ही स्मृतिकी वस्तु हो गयी । कालान्तरमें यदि यात्रा न सही तो उसके वे आकर्षक, दैवी दृश्य जो हिमालयके अणु-अणुमें परिव्याप्त हैं, निश्चित ही विस्मृतिकी धरोहर हो जाते । फिर क्षणभङ्गुर शरीरके हर क्षण नष्ट होनेकी सम्भावना हमें प्रेरणा दी कि उत्तराखण्डकी इस पवित्र एवं पूजायोग्य धरा और उसके दैवी दृश्योंकी स्मृतिको साहित्यमें सँजो दिया जाय । उत्तराखण्ड-यात्राका यह भुवन

धारावाहिकरूपसे गीताप्रेसके प्रसिद्ध मासिक 'कल्याण' में प्रकाशित हुआ और गीताप्रेसके द्वारा ही पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत ग्रन्थ जो हमारी दक्षिण भारतके तीर्थ-स्थलोंकी यात्राकी स्मृति और उनके दर्शन, अध्ययन एवं आत्मानुभवपर है, हमारी पूर्वोक्त उसी प्रेरणाका अनुसरण है जो हमारी उत्तराखण्डयात्राकी जनक रही।

गीत

हृन्ध से सर्जन जगत का;
तुला के सम बाँट।
सित दिवस के साथ, काळो
रात रख दी छाँट।
बदन पंकज को खिलाती
मधुर मृदु मुसकान।
नयन गुग से नीर बहता
कर उसी को भ्रान्त।
बज रही शहनाइयाँ
गातीं बघाई गान।
शोक की तद्भ्रान्त तड़पन;
सह न सकते कान।
स्मृति सहमती ठवु लहर सी
देख विस्मृति ज्वार।
मरण से होती रही है
सदा जीवन हार।
स्वच्छ लेखन पत्र चढ़ती
लेखनी मसि मग्न।
आँक गत के चित्र अक्षर
स्मृति सुरक्षण रत्न।

प्रस्थान

व्यक्तित्वका निर्माण संकल्पोंके निरन्तर संग्रहसे होता है। संकल्प मनुष्यके आचार-विचार तथा अन्तरमें स्थित सृजन-चेतनाको संजीवित करता है। तथाकथित महान् व्यक्तियोंके सिद्धान्त, संकल्प, विचार बाह्य प्रभावोंसे विरे रहनेके कारण युग-धर्मके अनुरूप परिवर्तित होते रहते हैं; लेकिन इसके विपरीत साधारण-जन, जो युगधर्मके प्रभावसे मुक्त होकर प्रायः धर्मके ऐसे मूलभूत सत्योंमें ही आत्मस्थ रहता है, ये मूलभूत सत्य उसके जीवनमें एक रससे प्रवाहित होते हैं जिन्हें लोग व्यापकरूपमें संस्कृति या सभ्यताका प्रभावरूप

मानते हैं। संस्कृतिमें ये सामान्य मूलभूत सत्य स्पन्दित होते हैं। दूसरे शब्दोंमें बड़े-से-बड़े आदमीके सिद्धान्त, संकल्प, आचार-विचार परिवर्तनशील होते हैं; किंतु एक अद्वेष्ट आदमीकी धार्मिक मान्यताएँ प्रायः सदा अपरिवर्तनीय रहती हैं, जो स्वयंमें एक जीवन-दर्शन बनकर संस्कृतिके समुद्रमें आत्म-विस्तार कर लेती हैं।

गत बार जब हमने उत्तराखण्डकी यात्रा की थी, अपनी उस यात्रामें ही प्रस्तुत यात्राका संकल्प तो हमने दिनांक १ जून १९५९ के उसी क्षण ले लिया था जब गंगोत्रीमें पुण्यसलिला भागीरथीकी धारासे अपना जलपात्र भरा। व्यक्ति व्यक्त और अव्यक्त दो रूपोंमें संकल्प लेता है, वचन हारता है। कन्याके विवाहमें 'जवान दिये बेटी परायी हो जाती है' की उक्तिके अनुसार जब कन्याका पिता वरके पिता या पुरोहितसे बात कर वचन हार देता है तो सगाई हो गयी मानी जाती है और नारियल, दुर्वा, सुपारी तथा अक्षतलिमें लिये जलकी साक्षीमें पुरोहित या वरके पिताको दिया हुआ वह वचन कन्याका पिता जबतक पूर्ण नहीं कर देता, अपनेको कर्जदार मानता है और सगाईके समय लिया हुआ वह संकल्प कन्यादान कर जब लक्ष्मीका पिता पूरा कर देता है तो कन्या-ऋणसे उच्छृण्व हुआ ऐसा मानता है। यह एक व्यक्त संकल्प है जो प्रायः हर भारतीय कन्याका पिता लेता है और उसे प्राणपणसे पूरा भी करता है। अव्यक्त संकल्पोंमें ऐसी अनेक बातें आती हैं जिनका व्यक्तीकरण संकल्पकर्ता व्यक्तिके द्वारा कन्या-ऋणकी भाँति ही उस समय होता है जब वह किसी निश्चित अवधि या अवधि-बन्धनसे मुक्त इच्छित और किसी उपयुक्त अवसरपर उसे भूर्चरूप देता है। उदाहरणके लिये किसी व्रत-अनुष्ठान और तीर्थयात्रा आदिके लिये अन्तरभावसे संकलित होना तथा उसकी मूर्तिपर किसी धार्मिक पूजा-पाठ, ब्राह्मणभोजन और दान-पुण्यादिवारा उसका सांस्कृतिक समारोप करना। भारतीय जन-साधारण इन अन्तरभावी संकल्पोंसे सदा आवद्ध रहता है। न केवल धार्मिक कार्यों और उससे होनेवाली फल-सिद्धिके लिये ही ये संकल्प किये जाते हैं वरं अपने आत्मीयकी अस्वस्थताके दिनोंमें उसके स्वास्थ्य-लाभके लिये, दूरगत स्वजनकी कुशल-क्षेम और सकुशल वापिसीके लिये तथा विदेश भेजे गये पुत्रकी सुशिक्षा, सफलता और सकुशल स्वदेश वापिसीके लिये माता-पिता और सगे-सम्बन्धी मनौतियाँ करते हैं, देवी-देवताको मनाते हैं और दान

पुण्यादिका संकल्प लेते हैं। अव्यक्त संकल्पकी इसी शृङ्खलामें हमने जब गंगोत्तरीमें भागीरथीकी धारासे अपना जलपात्र भरा तो अपने-आप इस बातके लिये वचनबद्ध और संकल्पित हो गये कि यह जलपात्र हम भगवान् शिवको समर्पित करेंगे। दूसरे शब्दोंमें भागीरथीको भगवान् शिवके सुपुर्द करेंगे।

आज अपने उसी संकल्पकी यात्रापर हम जा रहे थे। दिनाङ्क ३ दिसम्बर सन् ६० दिन शनिवारके अपराह्नमें दो बजे हम अपने दलके साथ दक्षिण भारतकी पुण्य-प्रद तीर्थयात्राके लिये मोटरबससे नागपुरके लिये रवाना हो गये। हमारे यात्रादलमें रत्नकुमारीको छोड़ शेष वही यात्री थे जो हमारी गत उत्तराखण्ड-यात्रापर गये थे। रत्नकुमारीके इस यात्रामें साथ न जानेके दो कारण थे—प्रथम तो वे दक्षिण भारतके सभी प्रमुख तीर्थ-दर्शन कर चुकी हैं, दूसरे उनके पति लक्ष्मीचन्दजी अचानक ही उसी समय अस्वस्थ हो गये, जब हमलोग यात्राकी तैयारी कर रहे थे। रत्नकुमारीका हमारे साथ यात्रापर न जानेमें प्रथम कारण गौण होकर दूसरा कारण ही प्रधान था। चूँकि वे भी हमारे साथ ही गंगोत्तरीसे गङ्गाजल-यात्रा भरकर लायी थीं और उन्होंने भी भगवान् रामेश्वरम्को उक्त गङ्गाजल-समर्पणका अन्तर्भावी संकल्प लिया था जिससे आज वे विमुख नहीं तो वञ्चित अवश्य हो रही थीं। रत्नकुमारी और अन्य आत्मीयजनोंसे विदा ले बसस्टैंडसे जब हमारी मोटर रवाना हुई तो हमारे मस्तिष्कमें मोटरके पहियोंके सहस्र विचार-प्रवाह चलने लगा। उत्तराखण्डकी यात्रापर जब हम लोग जबलपुरसे रवाना हुए थे तब भी हमें हमारे आत्मीयजनोंने विदा दी थी और आज भी। किंतु उस विदामें और आजकी विदामें एक बड़ा सार्थिक अन्तर था। उत्तराखण्डकी यात्रापर हमारे रवाना होनेपर हम और हमारे स्वजन वियोग-दुःखसे जितने विडल थे, उतने इस बार इस यात्रापर नहीं। इसका कारण था। उत्तराखण्डकी यात्रा अत्यन्त दुर्गम, कष्टसाध्य और जोखिमसे भरी हुई थी। इष्ट-प्राप्तिकी इस यात्रामें भारी अनिष्टकी सम्भावनाएँ भी थीं। कौन जानता था किसका कौन आत्मीय वापिस आता है या सदाके लिये बिछुड़ रहा है, यह भावनातक उस विदावेलामें लोगोंके मनमें थी, पर यह बात दक्षिण भारतकी इस यात्रामें सर्वथा नहीं। चूँकि रेल-मोटरकी यात्रा थी, जैसी एक नगरसे दूसरे नगर प्रायः नित्य ही लोग करते रहते हैं। फिर गोविन्ददासने

तो हवाई जहाज और समुद्री जहाजसे विश्वभ्रमण किया है अतः आधुनिक वैज्ञानिक सुविधाओंके इस युगमें रेल-मोटरसे यात्राके अभ्यस्त हमलोग और हमारे स्वजन एक सांस्कारिक मोहमात्रसे पीड़ित अवश्य थे, पर व्यथित कदापि नहीं। किंतु इस बार हम सबके मनमें और विशेषकर रत्नकुमारीकी माताजी श्रीमती गोदावरी देवीके मनमें जो एक पीड़ा थी वह थी, रत्नकुमारीके यात्रापर साथ न चल सकने और उस कारणसे जिससे उन्हें एकाएक रुकना पड़ा था।

भारतीय नारी दया, क्षमा, विनय, शील और सदाचारकी मूर्तरूप ही नहीं, उसकी जननी है। हम सब लोगोंके साथ ही रत्नकुमारीने भी दक्षिण भारतकी यात्रापर चलनेकी अपनी पूर्ण तैयारी कर रक्खी थी। किंतु यात्रापर प्रस्थानके एक दिन पूर्व ही उनके पति श्रीलक्ष्मीचन्दजीको हृदय-रोगका एक हल्का-सा दौरा हुआ। दिलका यह दौरा उन्हें जीवनमें प्रथम बार ही हुआ। सभी लोग चिन्तित हो गये, डाक्टरी निदान हुआ और यद्यपि चिन्ताकी कोई विशेष बात डाक्टरोंने नहीं बतायी फिर भी रत्नकुमारीके जो पैर यात्रापर चलनेके लिये उद्यत थे वे एकाएक लड़खड़ाकर थम गये।

रत्नकुमारीकी माताजी मार्गमें गोविन्ददाससे प्रायः रत्नकुमारीके आकस्मिक रुकने और लक्ष्मीचन्दजीकी अस्वस्थताकी ही बात करती रहीं। यद्यपि लक्ष्मीचन्दजीकी देखभाल, सेवा-शुश्रूषा और उपचारके लिये समुचित व्यवस्था कर रत्नकुमारी इस यात्रापर हमारे साथ चल सकती थीं, किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया और अपने संकल्पपात्र गङ्गाजलीको अपनी माताजीको सौंपते हुए यही कहा—“हमारी ओरसे भगवान् रामेश्वरम्को भागीरथी भेंट कर देना।” उनके इस कथनमें और उस समयकी उनकी मुख-मुद्रा और उनके अन्तर्भावोंसे जो स्वर हमें सुनायी दिये उनमें भारतीय नारीका धर्म, उसका कर्तव्य, उसकी मर्यादा, सदाचार और नीति-निपुणता प्रतिबिम्बित हो रही थी।

गोस्वामी तुलसीदासजीने अनुसूयाके मुखसे सीताको उपदेश दिलाते हुए नारी-धर्म कहा है जिसमें चार प्रकारकी स्त्रियाँ बतायी गयी हैं, समय-अनुसार जो जैसा आचरण करती हैं, वे उसी कोटिकी नारी-श्रेणीमें आती हैं। किंतु जो स्वभावसे ही कोटि-गणनासे परे नारी-धर्मका निर्वाह करे, वही सच्ची आदर्श नारी होती है। हमारी दृष्टिमें नारी स्वयं

एक निष्ठुर नियम है, दूसरे नारी सहज धर्म है। जो स्त्री स्वभावसे सदाचारिणी और सहज-धर्मिणी होगी वह पतिकी सह-धर्मिणी और आदर्श नारी कहलायेगी। नारीके निष्ठुर कर्त्तव्योंके पालनमें दत्त-चित्त नारी नारी-धर्मकी अधिकारिणी नहीं मानी जा सकती।

एक धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा ॥

—के भावसे जो नारी शील-स्नेह और कोमल हृदयसे नारी-धर्मका अनुसरण करती हुई पतिकी अनुगामिनी रहती है उसकी दृष्टिमें प्रथम उसका पति है। पतिसे परे कुछ नहीं; परमेश्वर भी नहीं। नारीका यह आदर्श रत्नकुमारीके यात्रा-स्थानमें और उक्त कथनमें जो उन्होंने अपनी माताजीको

अपने पतिके आकस्मिक अस्वस्थ हो जानेसे गङ्गाजल-पान सौंपते हुए—‘हमारी ओरसे भगवान् रामेश्वरम्को भागीरथी भेंट कर देना’—अच्छी तरह अभिव्यक्त हुआ है।

रत्नकुमारीको छोड़ हमारे इस यात्रा-दलमें सर्वश्री सेठ गोविन्ददास, गोविन्ददासकी पत्नी श्रीमती गोदावरीदेवी, भावज श्रीमती नारायणी देवी, सेक्रेटरी श्रीगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव तथा अन्य परिचारक-परिचारिकाओंको मिलाकर कुल ग्यारह व्यक्ति थे। गत उत्तराखण्डकी यात्रामें बारह व्यक्तियोंका काफिला था। इस यात्रामें ग्यारह आदमियोंकी यह टोली।

(क.म.श.)

हे मनमोहन ! टेक निभा दो ।

(रचयिता—श्रीदानविहारीलालजी शर्मा ‘शरण’)

हे मनमोहन ! टेक निभा दो ॥

दुख-सुखका सब रोना रोकर, व्याकुलताके पथपर चलकर ।
जीवनकी सुस्मृतियाँ भूला, क्षणभर कोलाहलमें फँसकर ॥
क्रीडा-कौतुक जगके देखे, नीरवतासे इनमें पड़कर ।
मृग-मरीचिका मन उलझाया, स्वर्ग-नरकका ध्यान न धरकर ॥

जीवन सुखी बना दो ।

हे मनमोहन ! टेक निभा दो ॥

टूट चुकी अब तो अपनी यह, प्रिय-जीवनकी मधुमय प्याली ।
भावोंका उच्छ्वास नहीं है, मन-मन्दिर है मेरा खाली ॥
सौरभमय शुभ-सुमन खिला दो, लेकर अभिलाषाकी डाली ।
जीवन-भार झुका दो अपना, जीवन-उपवनके वनमाली ॥
सुंदर लड़ा दिखा दो ।

हे मनमोहन ! टेक निभा दो ॥

मुरझी लता कामनाओंकी लेकर आया द्वार तुम्हारे ।
यद्यपि इस जीवन-भरमें की कभी तुम्हारी याद न प्यारे ॥
पड़ी हुई मग्नधार नाव है, कोई नहीं जो पार उतारे ।
‘शरण’ शान्तिमय अपनी देकर, भगवन् ! अब तो करो किनारे ॥
अवके फंद छुड़ा दो ।

हे मनमोहन ! टेक निभा दो ॥

ज्ञानकी लौ अज्ञानका काजल

(प्रेषक—श्रीकृष्णमुनिजी प्रभाकर)

आचार्यके सान्निध्यमें ज्ञानार्जन करते शिष्यको कई वर्ष बीत गये, परंतु उसके अन्तश्चित्तमें शान्ति और स्थिरता पूर्णतः व्याप्त नहीं हो पायी। उसका हृदय सदैव उद्विग्न और चञ्चल ही रहता। आचार्यने भी कई बार इस अस्थिर-वृत्तिको लक्ष्य किया, परंतु इस विषयमें वे उससे बोले कुछ नहीं।

अन्ततः एक दिन संध्या-पूजाके उपरान्त विधिवत् कुटियामें दीप जलाकर शास्त्र-श्रवणके लिये जब शिष्य आचार्यके संनिकट बैठा, तो उसने स्वयं ही प्रश्न किया—‘गुरुवर्य! तत्त्वार्जन करते हुए कितने ही वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, किंतु मेरे अन्तर्मनमें सागर-सी गम्भीरता अभी तक व्याप्त नहीं हो पायी, अपितु छिछली नदीकी उद्दाम प्रवाह-धाराके सदृश उसमें चञ्चलताकी लोल तरङ्गें ही उठती और ढहती रहती हैं। इसका क्या कारण है?’

स्थिर मुद्रामें बैठे आचार्य झिलमिलाते दीपककी अमन्द व्योतिको अपलक देख रहे थे। उन्होंने शिष्यके प्रश्नकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया।

एकाएक शिष्यने देखा कि दीपकके ऊपर इकट्ठा हुआ काजलका एक बड़ा-सा खण्ड, जो निरन्तर बढ़ता चला जा रहा था, उसकी शिखापर जा गिरा और उसके भारसे दबकर दीपकी छोटी-सी बत्ती बुझ गयी। कुटियामें घनघोर अन्धकारका साम्राज्य छा गया। अज्ञानीके अंदर पापकी कालिमाकी परत जैसे घनी ही होती चली जाती है, प्रकाशविहीन कुटीमें भी उसी तरह निविड़ अन्धकार सघन होता चला गया। मानो किसीने विश्वकी सारी कालिमा ही पोत दी हो।

हड़बड़ाकर शिष्य जल्दीसे उठा और बत्तीको साफ करके उसने दीपकको पुनः जला दिया। कालिमाकी छातीको चीरता कुटीमें मन्द प्रकाश बिखर गया।

‘प्रश्नका उत्तर तुम्हें स्वयमेव मिल गया, वत्स!’ चुप्पीको

भेदती हुई आचार्यकी धीर वाणी गूँजी। अचकचा गया शिष्य। आसनकी ओर उन्मुख होते हुए वह विह्वल हो बोला, ‘मैं समझ नहीं पाया, गुरुदेव!’

‘बिना अन्तर्वृत्तियोंको सतर्क एवं एकाग्र किये कोई भी तत्त्व बुद्धिके कपाटोंमें प्रवेश नहीं कर सकता। दृष्टिको व्यापक रूप देनेपर प्रत्येक शंकाका समाधान व्यावहारिक जगत्में स्वयमेव प्राप्त हो जाता है; उसे शास्त्रोंमें खोजनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।’ आचार्यने निरूपण किया—‘मनुष्यके अंदर ज्ञानकी गरिमाको आत्मसात् करनेका सामर्थ्य जब सही रूपसे नहीं होता, तो अहंका काला धुआँ उसके ऊपर चित्तमें धीरे-धीरे इकट्ठा होने लगता है, जो आगे चलकर उसके स्वत्वको ही समूल मिटा डालता है। तत्त्वोंको वास्तविक अर्थोंमें अर्जित करके उन्हें जीवनमें उतारनेवाला व्यक्ति ही अहंकी इस कालिमासे सर्वथा असम्भूत रह सकता है। उसका चित्त मलिनताओंसे व्याप्त नहीं हो पाता। तुम्हारे हृदयको अहंकी इसी कालिमाने आवृत कर रक्खा है, इसीलिये वह सुस्थिर नहीं रहता। ज्ञानोपाार्जनका सही उपयोग तभी होगा, जब तुम सदाचरणद्वारा इस दूषित भावको साथ-साथ बिलग करते रहोगे और अन्तर्हृदयको निर्मल एवं विमार्जित बना लोगे। ज्ञान-वर्त्तिका जब निर्वाधाओंको एक बार भी उपार्जित करके प्रज्वलित हो उठती है, तब जीवनका तेल समाप्त हो जाने तक बीचमें उसे बुझानेकी शक्ति किसीमें नहीं होती। उसका अस्तित्व केवल एक अहं ही निःशेष कर सकता है।’

आचार्यके उपदेशको शिष्यकी शानेच्छुक बुद्धिने अतलपर्यन्त आत्मसात् कर लिया। तत्काल उसमें पश्चात्तापकी उत्कट भावना उत्पन्न हो गयी। नेत्रोंसे अवरिल अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। जिसके परिणामस्वरूप अहंकी कालिमाका वह कलंक स्वयमेव नेत्रजलमें घुलकर बह गया। शंकाके मेघ छूट चुके थे और चित्तका गगन गम्भीर हो उठा था। चरणोंमें लिपटे शिष्यके मस्तकको आचार्य ममतासे दुलरा रहे थे।

(लेखकके प्रकाशनारूढ कथा-संग्रह ‘ज्ञानीने कहा’से)

अद्भुत हृदय-परिवर्तन

(लेखक—श्रीश्रीरामजी शर्मा 'राम')

जिस त्यागमयी और गमतामयी भावनाके साथ शान्ति वर्षोंसे अपने भगवान्की उपासनामें लगी थी, वह बात न उसके घरवालोंको पसंद आयी, न पड़ोसियोंको। फिर भी शान्ति अपने रास्तेसे विचलित नहीं हुई। वह बचपनसे ही भगवान्के पूजा-पाठमें विश्वास रखती थी। ब्राह्मणकी लड़की थी, तो पिताके घरसे वही सब सीखकर आयी। यद्यपि शान्ति अभी यौवनकी दहलीजपर खड़ी थी, फिर भी, वह अपने देवताका धूप-दीपसे आवाहन करती, पूजा करती, उसकी आरती उतारती।

यही देखकर यदा-कदा सास कह देती—‘अरी शान्ति ! यह सब ठोंग है। भगवान् तो हमारे प्राणोंमें बसा है। तेरा यह पूजा-पाठ तो प्रदर्शन है। भला, तुझे इस भरी जवानीमें वैराग्य लगा है। अपना घर देख, अपना काम-काज !’

फलस्वरूप स्थिति यह थी कि उसका पति चाहता कि वह पूजा-ध्यान-माला कर रही हो, उस समय भी वह कुछ कहे तो शान्ति पूजा-पाठ छोड़कर उसके इच्छानुसार करे। पर शान्ति लाचार थी। उसका ध्यान नहीं टूटता। इस प्रकार शान्तिको ध्यानावस्थित देख वह चुपचाप लौट जाता। यह देखकर वह कभी झुंझलाता, कुदृता और क्षुब्ध भी बन जाता। शान्तिके हाथमें माला है, आँखें बंद हैं, तब क्या कहे वह। जिस रास्तेसे आता, उसीसे लौट जाता। सचमुच ऐसे क्षणोंमें वह मानो शान्तिका गला घोट देना चाहता या दूसरा विवाह करनेकी बात सोचता। पतिके मनमें यह भी कई बार आया कि वह शान्तिको उसके बापके घर पहुँचा आये। उनसे कह आये कि ‘तुमने अपनी कन्याको योगिनी बनाकर मुझे सौंप दिया, तो इन्होंने मेरा काम नहीं चल सकता। रखो अपने पास !’

लेकिन पुत्र तो अभी सोच ही रहा था, उसकी मौन निश्चय कर लिया था कि वह पुत्रका दूसरा विवाह करेगी। उसने एक लड़कीके बापसे बात भी कर ली; क्योंकि उसकी आँखोंसे यह बात छिपी नहीं रही कि मेरा लड़का शान्तिसे संतुष्ट नहीं है; किंतु उस माँके रास्तेमें भी यह शान्ति बाधा थी। जबतक शान्ति है, दूसरा विवाह कैसे हो। लड़कीका बाप तो राजी हो गया, परंतु लड़कीकी मौन स्वीकार नहीं किया।

किंतु शान्ति उस षड्यन्त्रसे अपरिचित थी। वह प्रायः सोचती कि ‘मुझमें क्या दोष है। मेरे प्रति उपेक्षा क्यों है। जितना घरका काम है, वह मैं करती हूँ। घरको सँजोकर रखती हूँ।’ उसके मनमें पतिकी इच्छा पूरी करनेकी बात आती, तो कहती,—‘मैं तो वह भी पूरी करती हूँ। पतिके ध्यान रखती हूँ; किंतु पति उसे नित्य शराबकी तरह पीये, उसे पूजा-ध्यानसे वञ्चित रखे, यह बात उसे कभी स्वीकार नहीं थी।

और जब औरतोंमें बात चलती तो वह फैलती। शान्तिके कानोंमें भी आती। एक दिन जय अवसर मिला, तो उसने अपने पति शशधरसे प्रश्न किया, ‘आप दूसरा विवाह कर रहे हैं ?’

शशधर इस अप्रत्याशित प्रश्नको सुन, जरा-सी देर चुप रहा। फिर बोला—‘हाँ शान्ति ! मुझे घर चलाना है। तुम्हारा ध्यान भगवान्की ओर है। माँकी इच्छा है घरमें एक बच्चा हो और अब ऐसा मैं भी चाहता हूँ।’

शान्तिने कहा—‘विवाहके लिये तो आप स्वतन्त्र हैं, परंतु जहाँतक घरके चलानेका प्रश्न है, इसके लिये तो मैं भी कामना करती हूँ।’

किंतु शशधर चिढ़ गया। वह दुरंत बोला, ‘शान्ति ! तुम्हारा ध्यान घरकी ओर नहीं। जब आता हूँ, तुमसे दो बात करना चाहता हूँ, तभी तुम्हें हाथमें माला लिये बैठी देखता हूँ।’ उसने कहा—‘मैं नहीं समझता कि तुम पत्थर में क्या खोजती हो, उससे क्या पाना चाहती हो ?’

शान्तिने तब कातरभावसे पतिकी ओर देखा, उसे लगा कि ‘सत्यको उसका पति अभी देख नहीं पाता। पत्थर ही बना है, मोम नहीं, सहृदय नहीं।’ फिर भी उसने कहा—‘इस धरतीपर जो कुछ है, सब भगवान्की लीला है। आप भी उसीके एक अङ्ग हैं।’ वह बोली—‘मैं आजतक नहीं समझ पायी कि आप क्यों पिता बननेकी इच्छा करते हैं। प्यार करनेको बहुत बच्चे हैं, क्या उनसे आपका कोई सम्बन्ध नहीं ? वे समाजके नहीं ? ईश्वरके जीव नहीं ? पर मैं समझती हूँ कि आपके मनमें क्या है। आप वासनाके भूखे

हैं। वासनापूर्तिके लिये ही सब कुछ करना चाहते हैं। क्यों, यही न ?

शशधरने एकाएक पैर पटका—‘शान्ति ! तुमने मुझे गलत समझा है ।’

शान्ति सहज भावसे मुस्करायी—‘हर औरत अपने आदमीको समझती है। उसकी अच्छी-बुरी बातें भी जानती है।’ वह बोली—‘पर आप वासनाकी आगमें पड़कर गलत जाना चाहते हैं। आप यह भूल गये कि पति-पत्नीका सम्बन्ध भी जन्म-जन्मान्तरके संस्कारों और अनुष्ठानोंसे बनता है। यह कंकड़-परथरकी तरह नहीं मिल जाता।’

किंतु शशधरने कहा—‘यह शानका पाठ मुझे मत पढ़ाओ। शान्ति ! मैं दूसरा विवाह करूंगा। चादता हूँ तुम लिख दो। अपनी स्वीकृति दे दो।’

एकाएक शान्तिने कहा—‘हाँ-हाँ, मेरी स्वीकृति है। कभी भी लिखा लीजिये।’ और तभी उसने पतिकी ओर देखा। उसी अवस्थामें कहा—‘यह समझ लीजिये कि वासनाकी भूख कभी मिटनेवाली नहीं है।’ और यह कहते ही उसका स्वर अबबल बन गया। उसे बरबस ही रोना आ गया।

शशधर वहाँसे चला गया तो शान्ति अपनी कोठरीमें चली गयी और उन्हीं रोती हुई आँखोंसे उस पीतलकी मूरतको देखती हुई बोली—‘मेरे देव ! तो क्या इसीलिये तुम जीवकी सृष्टि करते हो ? उसे जीवनभर वासनाकी आगमें जलनेको छोड़ देते हो ?’ और उसे लगा कि वह पीतलका कृष्ण-कन्हैया जैसे हँस पड़ा था। वह शान्तिकी ओर देखकर मुस्करा रहा था; किंतु उसने कहा—‘तो कन्हैया ! तू कुछ नहीं करेगा। बस, देखता रहेगा, इस धरतीका खेल।’

उसी समय शान्तिकी सास वहाँ आयी और बोली—‘बहू ! तो तूने इजाजत दे दी, शशधर विवाह कर ले।’

शान्तिने कहा—‘हाँ माँ ! इसमें इजाजतकी क्या बात ! मुझसे लिखा लो।’

सास चतुर थी, कुटिल भी थी। इसीसे वह मधुर स्वरमें बोली—‘बहू ! यह कानूनकी बात है और कुछ नहीं।’

शान्तिने कहा—‘माँ ! अपने बेटेके दो नहीं, दस विवाह कराओ। खूब बच्चे हो जायेंगे। आपके नाती-पोते पड़पोते—

बीचमें ही सास बोली—‘पेसा मेरा भाग्य कहीं शान्ति !’

उसने कहा—‘पर तू क्या सोचती है ? ऐसी वैरागिन क्यों बनी है ?’

शान्ति सहज भावसे हँसी—‘मैं वैरागिन कहाँ हूँ माँ !’

तभी सास खुली। तुरंत बोली—‘चल, कलमुँही ! देखती नहीं, मेरा लड़का वेश्याके घर जाने लगा। अब वह शराब भी पीने लगा। तू जानती है, वह यह सब क्यों करने लगा ?’

सुनते ही शान्ति सहम गयी। वह व्यथित भी बनी। तुरंत बोली—‘माँ ! बुरा न मानना, अपराध आपका है। आपके जीवनका अभिशाप—इस घरको जला देगा।’

तभी सास चीख उठी, ‘मैं तेरे भगवान्को फेंक दूँगी। तेरा झोंटा पकड़कर घरसे बाहर निकाल दूँगी।’

लेकिन शान्तिने इतनी कठोर बात सुनकर भी अपना विवेक नहीं खोया। उसने तुरंत कहा, ‘आप जिस भगवान्को फेंकनेकी बात कहती हैं, वह तो मेरे दिलमें बसा है। यह तो पीतलकी मूरत है, बाहरी है। आपको इसीमें संतुष्टि हो, तो फेंक दीजिये।’ वह बोली, ‘और रही मुझे निकालनेकी बात खो कहिये तो मैं अभी चली जाऊँ।’

तब सास कुछ नरम पड़ी और बोली—‘तू अपना श्रृंगार क्यों नहीं करती ? अपने आदमीको क्यों नहीं रिझाती ? और भी तो औरतें हैं, वे किस तरह रहती हैं, क्या तू यह नहीं देख पाती। मेरा इकलौता लड़का है। जवान है। उसकी भी तो कोई इच्छा है ?’

× × ×

रात आ गयी। शान्ति अपने घ्यानमें मग्न थी। तभी शशधर आया। आँखें लाल-लाल। आते ही बोला, ‘भगवान्का ही भजन करेगी तू ! चल, उठ। मेरी बात सुन।’

तभी शान्तिने आँखें खोलीं। वह पतिकी ओर देखकर बोली, ‘आप शराबी, वेश्यागामी.....’

इतना सुन, शशधर क्रोधसे भर गया। उसने जेबसे चाकू निकाल लिया। वह अभी शान्तिकी ओर बढ़ता ही, तभी माँ चिल्लायी, ‘अरे, शशधर, सॉप !’

किंतु शशधर तो नशेमें था। वासनाका भूत भी उसपर सवार था। उसने चाकू खोल लिया और शान्तिकी गर्दनपर मारनेके लिये बढ़नेवाला ही था कि तभी वह काला सॉप उसके पैरोंसे लिपट गया। सॉपको देख, चाकू उसके हाथसे छूट गया और वह चिल्ला उठा—‘माँ, सॉप !’

और शान्तिने देखा कि सचमुच सॉप है। वह उसके पतिकी टाँगोंसे चिपटा है। वह काला-काला भयानक नाग। उसका फन उठा था और फुंकार कर रहा था।

उसी समय सास शान्तिके पैरोंपर गिर पड़ी भेरी बहू, तू लाज रख। तू पत रख, इस घरकी।

किंतु शान्ति क्या करती। सॉपको देख, वह न पकड़ सकती थी, न उसे मार सकती थी। उसी अवस्थामें उसने प्रतिमा-की ओर देखा। उसके मनका समत्व आँखोंमें उतर आया। तभी उसने कहा, 'देव ! तुम मेरे सोहागकी लाज रक्खो।' और तभी वह फन उठाये सॉपके पास जाकर बोली, 'नाग-देवता ! काटना है, तो मुझे काट लो। इन्हें छोड़ दो। मुझे लगता है, तुम भी इस घरके देवता हो। अब जाओ।'।

और केवल यह आश्चर्य ही रहा कि शान्तिसे इतनी बात सुनते ही, वह सर्प पलभरमें वहाँसे तिरोहित हो गया।

उसके जाते ही, शशधर एकाएक इतना कातर बना कि वह शान्तिकी ओर देखते ही रो पड़ा। उसने सिर झुकाकर कहा, 'शान्ति ! मैं अपराधी हूँ। जीवन-पथसे भटका हुआ राही।'।

किंतु शान्ति मौन थी, उसकी भरी आँखें अपने देवता-की ओर उठी थीं।

तभी शशधरने अपने स्वरपर जोर देकर कहा, 'शान्ति, तू है, तो यह घर है, नहीं तो, किसीकी जलती हुई चिताका ढेर है। मैं भगवान्‌के समक्ष खड़ा हूँ, शपथ लेता हूँ—श्राव न पीऊँगा, न वेश्याके यहाँ जाऊँगा। मेरा दूसरा विवाह हो, यह प्रश्न तो उठ ही नहीं सकता।'।

आश्चर्य, बेटेके समान, माँकी आँखें भी उसके गालोंपर निकल आयी थीं, वह कौपती हुई शान्तिकी उस देव-प्रतिमाके समीप होती जा रही थी।

अद्भुत हृदय-परिवर्तन।

संत जैमलदासजी और उनके पद

(लेखक—डॉ० शालिग्रामजी गुप्त)

संत जैमलदासजीके विषयमें कहा जाता है कि वे प्रसिद्ध स्वामी रामानन्दजी ११वीं पद्धतिवाले कोइमदेसर (बीकानेर) निवासी श्रीचरणदासजीके शिष्य थे। संत चरणदासजी मेवात-प्रदेशान्तर्गत अलवर नगरसे ६ मील दूर डेहरा ग्रामके निवासी और जातिके दूसर बनिया थे। इनका जन्म भादों सुदी तीज सं० १७६० वि० माना जाता है। ३० वर्षकी अवस्था होनेपर सं० १७९० के लगभग चरणदासजीने अपने मतका प्रचार करना आरम्भ किया था और ५ वर्षके भीतर ही उसे दूर-दूरतक फैलाकर सं० १७९५के लगभग चरणदासजीने अपने सम्प्रदायकी स्थापना की। श्रीपरशुरामजी चतुर्वेदीने जैमलदासके सम्बन्धमें विचार करते हुए लिखा है। उन्होंने (जैमलदासजीने) उनसे (चरणदासजीसे) अपनी दीक्षा सं० १७६० में किसी समय ग्रहण की थी तथा उनका (जैमलदासजीका) देहान्त सं० १८१० में हुआ था। श्रीचतुर्वेदीजी यह भी स्वीकार करते हैं कि रामस्नेही सम्प्रदायकी सिद्धथल खेड़ापा शाखाके मूल प्रवर्तक माने जानेवाले संत हरिरामदासजीको 'संवत् सत्रह से, वर्ष सईको में' अर्थात् सम्भवतः 'संवत् १८०० की तिथि तेरस आषाढ़ बदि' के दिन दुलचासरके

जैमलजीके यहाँ ले जाकर उनसे दीक्षित कराया गया। श्रीचतुर्वेदीजीकी इस मान्यताका मूल आधार हरिरामदासजी कृत 'धधा नीसाणी' की भूमिकारूपमें लिखी गयी एक साखी है, जो इस प्रकार है—

दरिया संवत सत्रहसे, वर्ष सईको जान।

तिथि तेरस आषाढ़ बदि, सतगुरु पढ़ी पिछान ॥

साखी—(१)

किंतु खोजके आधारपर जैमलदासजीके संत चरणदासजीद्वारा सं० १७६० में दीक्षित होने, संत जैमलदासजीद्वारा हरिरामदासजीको सं० १८०० की आषाढ़ बदी तेरसको दीक्षित किये जाने तथा संत जैमलदासजीका सं० १८१० में देहावसान आदि तिथियाँ अशुद्ध प्रतीत होती हैं। यदि ध्यानसे देखा जाय तो स्पष्ट होगा कि संत चरणदासजीका जन्म सं० १७६०में होता है और सं० १७७९में वे स्वयं शुकदेवजीद्वारा दीक्षित होते हैं। ऐसी अवस्थामें जैमलदासजी उनसे दीक्षा सं० १७६०में किस प्रकार ग्रहण कर

१. देखिये—उत्तरी भारतकी संत-परम्परा, द्वितीय संस्करण।

पृष्ठ ६६९।

सकते थे। अतः जैमलदासजीने संत चरणदासजीसे उसी समय या उसके बाद दीक्षा ग्रहण की होगी जब कि सं० १७९० के लगभग उन्होंने अपने मतका प्रचार करना आरम्भ किया होगा अथवा जब कि सं० १७९५ के लगभग उन्होंने अपने सम्प्रदायकी स्थापना की होगी। पुनः हरिरामदासजीने संत जैमलदासजीसे दीक्षा, सिंहथल खेड़ापा शाखाके ही एक संत आसारामकी लावनीकी निम्नलिखित पंक्तियोंके अनुसार सं० १८२० की आषाढ़ कृष्ण १३ को ग्रहण की थी, न कि सं० १८०० की आषाढ़ कृष्ण १३ को।

व्योम द्वैसिद्धि चन्द्र अंका, जानिये संवत् गति वंका ॥

अषाढी तेरस अधियारी, महाराज दीक्षा तत्र भारी ॥

(व्योम = ०, द्वै = २, सिद्धि = ८, चन्द्र = १ इन अंकोंको उलटा पढ़नेसे १८२० संवत् आता है।)

पुनः यह प्रश्न उठता है कि जब सं० १८२० की आषाढ़ कृष्ण १३ को हरिरामदासजी संत जैमलदासजीसे दीक्षित होते हैं तो फिर संत जैमलदासजीकी मृत्युतिथि सं० १८१० को किस प्रकार स्वीकार किया जा सकता है। मेरा अनुमान है कि आषाढ़ कृष्ण १३ सं० १८२० के कमसेकम ६ मास ही संत जैमलदासजीका स्वर्गवास हुआ होगा; क्योंकि हरिरामदासजी दीक्षित होनेके बादसे ही संत जैमलदासजीके यहाँ प्रतिदिन सायंकालके समय जाकर दूसरे दिन प्रातःकाल अपने यहाँ ७ कोसकी दूरीपर बराबर छः मासतक लौट आते रहे और उनके इस नियमपालनमें कभी किसी प्रकारका व्यवधान नहीं आने पाया।

इस प्रकार जैमलदासजीका संत चरणदासजीसे दीक्षित होनेकी तिथि सं० १७९० के पास, संत जैमलदासजी द्वारा हरिरामदासजीको दीक्षित किये जानेकी तिथि सं० १८२० की आषाढ़ कृष्ण १३ एवं संत जैमलदासजीकी मरणतिथि पौष सं० १८२० के बाद ही ठहरती है। संत जैमलदासजीके निवासस्थान रोडा दुलचासरमें उनकी गहियाँ अभीतक चली आ रही हैं और उनके गद्दीधरोंको रामानन्दी बैरागियोंमें 'महन्त' भी कहा जाता है। संत आसारामजीने अपनी लावनीमें संत जैमलदासजीके विषय-

इस प्रकार लिखा है—

ग्राम एक दुलचासर जामें, संत श्री जैमल भल तामें।
महा बीतरागी वर योगी, सदा सो ब्रह्मानन्द भोगी ॥

राम उपासी धीर मुनि धर्म वीर निष्काम।
.....

अपै० ७—

संत जैमलदासजीकी वाणियोंके केवल १९ पद ही खोजद्वारा प्राप्त हो सके हैं जिनमें १ पद राग कल्याण, ४ पद राग कान्हड़ा, १२ पद राग काफ़ी तथा २ चलती उमरीके हैं। उदाहरणस्वरूप १३ पद यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१) राग कल्याण

रमैया राजा अनन्त भवन उर भारै।

व्योम में तुम्ह व्यापि रहे हो; एक निरन्तर सारै ॥
नाम रूप नाना बिधि भासत; तुम्ह बिन नहिं लिंगारै।
तुमही बीज वृच्छ भये तुमही, तुमही मूल तुन डारै ॥
तुमही रूप अरूपी तुन ही; यों दास निगम पुकारै।
जैमलदास एको निज आतन; यह निद्रा मन म्हारै ॥

(२) रागकाफ़ी

अजहूँ चेत नहिं आयु घटंती जाय ॥ टेक ॥

ज्यों तरु छाया तेरी काया; देखत ही घटि जाय।
ऐसो दाव बहुरे नहिं लामै; पीछे ही पछिताय ॥
जैमलदास काच करि कानै; ततही लेणा ताय।

(३)

तुझै आय मिलैगै; रसना राम पुकार ॥ टेक ॥

तन मन लाय लाय चित चरणै; तोहि करैगा पार।
सुमरण साक्षि उदास उलटि धुनि; है सारों निज सार ॥
सत करि मान असत करि कानै; कर गहि दैगा तार।
जैमलदास हरि भक्ति बिहूणी; बाजी बणी असार ॥

(४)

मेरी जिंद कुरवाण; साँईदी सूरत पर वारी हो ॥ टेक ॥
साँईदी सूरत मेरे दिल बिच बसदी; लागै मोहि पियारी हो ॥
दर्शन तेरो जीवन मेरो; मेटौ भ्रम अंधारी हो।
आसन तेरो सहज सिंहासन; पाँचू प्रेम पुजारी हो ॥
जैमलदास करै अरदासा; राखो शरण तुम्हारी हो।

(५)

मैं देख्यो दिल माँहि झूठे मोह पसारो रे ॥ टेक ॥

रचियक सुख के कारणे; हीरो सो जन्म न हारो रे।
बंधन बेड़ी है जमपेड़ी; लागू काल तुमारो रे ॥
मैं तैं तोड़ मोड़ दल पाँचू; हुय मन तूं हुसियारो रे।
जैमलदास भजन कर बेलो; आखिर होत अवारो रे ॥

(६)

परवानी मेरा पीव; तुझदा पार न पाई वे ॥ टेक ॥

सचराचर सब रूप तुं साडा; घट घट दर्शन साँई वे।
अंतर खोज निरंतर देखे; जीवेगा जिंद माई वे।
तुझ बिन और नहीं कोई दूजा; नैणां नूर समाई वे ॥
जैमलदास उदास भया अब; तेरा दर्शन ताँई वे।

(७)

अवधि सिगणी रे तेरी, हरि सुमरै क्यों नाहिं ॥ टेक ॥
 आव गई चेतै तू नाहीं, अवसर बीतो जाहिं ।
 नरपति भूपति ऐसे जानै, संपति स्वपने माँहिं ॥
 हय दल हस्ती दास घणा संग, ऊठि अकेलो जाँहिं ।
 झूठे सुखमें राचि रह्यो है, हरि सुख विसरै काँहिं ॥
 जैमलदास भव नीर तिरन को, राम नाम घट माँहिं ।

(८)

क्या परदेशीझँरी प्रीति, जावतो बार न लावै ॥ टेक ॥
 आत न देख्या जात न जाण्यो क्या कहियाँ वन आवै ।
 काया बिनसै जीव परदेशी, झूठा नेह लगावै ॥
 ऐसे वास फूलन ते बिलुरे, माँहिं माँहिं समावै ।
 जैसे संग सराय को, दिन, उगाँ उठि जावै ॥
 जैमलदास अगम रस घटमें जो खोजै सो पावै ।

× × × ×

(९)

बटाउ रे लोक तू तो मारग भूलो रे ॥ टेक ॥
 निर्मल नुर शरीर समाणा, मनही माँहिं महोलो रे ।
 साचा राम सोई संग तेरे, और झूठ सुख उल्लो रे ॥
 पाँच पच्चीस मोह मच्छर मद, या सँग सँ तू डूलो रे ।
 रहता रूप सही करि राखो, वहता देख न भूलो रे ॥
 जैमलदास भव भ्रम बंधन तजि, कोइक हरिजन खुलो रे ।

(१०) राग कान्हड़ा

चेतन राम शरण मैं तेरी, अबकी बेर अरज सुन मेरी ॥ टेक ॥
 जो रीझो तो भक्ति मोहि दीजै, अपणो जाण कृपा हरि कीजै ।
 आदि अंत मध्य सकल पसारा, सोई आतम राम हमारा ॥
 अचरज देख अचंभो माँहिं, तेरे जनको संशय नाहीं ।
 जिके बात तनही में पाया, जैमलदास शरण तेरी आया ॥

(११)

मन रे जे तू राम पिछानै, नेड़ा हैं सो निश्चय आनै ॥ टेक ॥
 पाँच तत्व ले किया पसारा, जल स्थल जीव सकल संसारा ।
 तीन भवन के बाहिर माँहिं, हरि बिन काज सरै को नाहीं ॥
 पालण पोषण करण संहारण, दीन दया कर दुस्तर तारण ।
 जैमलदास साच मन भजिये, राम विमुख विषया रस तजिये ॥

(१२)

राम खजानौ खूटै नाहीं, आदि अंत केते पचि जाहीं ॥ टेक ॥
 राम खजाने जे रंग लागा, जामन मरन दोऊ दुख भागा ।
 सायर राम खजाना जैसे, अंजलि नीर घटै वह कैसे ॥
 काया माँझि खजाना पावै, रोम रोममें राम रमावै ।
 जैमलदास भक्ति रस भावै, खानाजाद गुलाम कहावै ॥

(१३) चलन ठुमरी

मेरो नेह लग्यो निर्मल धुन सँ ॥ टेक ॥
 तेज प्रकास भयो या तनमें, रीझ रह्यो मन ही मन सँ ।
 अंतर जोति झिगाभिग जागै, चित्त लग्यो उनहीं उन तँ ॥
 दिल माँहि दीया निज दर्शन, क्या कहूँ किनही किन सँ ।
 जैमलदास परस पिउ प्यारा, आतमभिन्न सदा तनहीं तन सँ ॥

छोटे बालककी अद्भुत प्रकारसे रक्षा

भगवान् किस विचित्र प्रकारसे कब किसकी रक्षा करते हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता ।

सन् १९६३ दिनाङ्क ३१ अगस्तकी बात है । गाँव लहजोरा, जिला आगराके मोहनलाल कुम्हारका लगभग चार वर्षकी आयुका लड़का आगरेके पास सहजोरा चौकीके सामने रेलवे लाइन पार कर रहा था कि इतनेमें दो इंजनवाली मालगाड़ी आ गयी । लड़का उसके नीचे आ गया और पूरी मालगाड़ी उसके ऊपरसे निकल गयी । देखनेवालेको कोई भी आशा उसके बचनेकी नहीं थी । चौधरी श्रीशिवसिंहजीने जाकर देखा तो लड़केको ठीक पाया और वह चलने लगा । उससे पूछा गया, 'तू डरा नहीं, कहीं लगी तो नहीं?' तो लड़केने कहा—'मोक्कूँ भइयाने गोदमें बिठाय लियो और बाँह पकर लई और कही कि डरियो मती, मैं तेरे संग बैठूँ हूँ ।' गाड़ी निकलनेपर न भइया, न कोई और; तथा न कोई चोट लगी ।

आश्चर्य है !

—ज्वालाप्रसाद शर्मा
 सी० ओ० डी०, आगरा

संस्कारी कुत्ते

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

(भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुआके एक कइर सनातनी, महात्माओं, संतों एवं विद्वानोंके भक्त पुरुष हैं। वे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध महात्माओं, संतों एवं सदाचारी विद्वानोंको अपने घर बुलाकर उनका आदर-सत्कार किया करते हैं। उनसे उपदेश प्राप्त करते हैं और उन उपदेशोंको लिपिबद्ध करके प्रकाशित करवाया करते हैं। उन्होंने चार श्रद्धेय महानुभावोंके द्वारा कथित ऐसे चार संस्कारी कुत्तोंका वर्णन लिखकर भेजा है जो आश्चर्यप्रद है और यह सिद्ध करता है कि पूर्वजन्मके बद्ध-मूल संस्कार पशुयोनिमें भी किस प्रकार रहते हैं। श्रीभक्तजीने विस्तारपूर्वक सबका अलग-अलग वर्णन लिखकर भेजा है, पर स्थानाभावसे यहाँ संक्षेपमें उनका सारमात्र दिया जाता है।)

(१)

(आर्यसमाजके प्रसिद्ध उपदेशक महाशय श्रीबलवीर-सिंहजी बेधड़के द्वारा)

मैं प्रसिद्ध आर्यसंन्यासी विद्वान् श्रीस्वामी केवलानन्दजी महाराजके निगमाश्रममें वर्षोंतक रहा। वहाँ एक कुत्ता था, जो प्रति सोमवारको व्रत रखता था। स्वामीजी महाराजने बताया कि यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि कुत्तेको कैसे मादूम हो जाता है कि आज सोमवार है। सोमवारके दिन वह कुत्ता सर्वथा निराहार रहता, कुछ भी न खाता। यदि सोमवारको रोटी डाली जाती और खानेके लिये बहुत आग्रह किया जाता तो उस रोटीको मुँहमें दबाकर चुपचाप एकान्त स्थानपर रख आता और दूसरे दिन उसको खा लेता। यह मेरी आँखों देखी सत्य घटना है।

(२)

(आर्यसमाजके प्रसिद्ध विद्वान् महाशय श्रीमुखदेवजी शास्त्री काव्यतीर्थके द्वारा)

मेरी छोटी बहिनका विवाह था। विवाहमें मेरे मामा भात भरने आये थे। उनके साथ ताँगेके पीछे-पीछे १२ कोस चलकर एक कुत्ता भी आया था। मेरे चाचाजीको मादूम नहीं था, उन्होंने उसे गाँवका साधारण कुत्ता समझकर उसकी पीठपर एक डंडा लगा दिया। कुत्ता बड़े जोरसे चिल्ला उठा। कुत्तेकी चिल्लानेकी आवाज सुनकर मामाजी दौड़े आये और उन्होंने गुस्सेमें भरकर कहा कि 'यह हमारा बड़ा धर्मात्मा कुत्ता है। आज इसने भूखों मरकर व्रत रक्खा है और पैदल चलकर यह १२ कोस आया है। घरमें कन्याका विवाह है, इसलिये इसने उपवास कर रक्खा है और जबतक कन्यादान नहीं हो जायगा, यह कुछ भी नहीं खायेगा।'

मामाजीकी इस बातपर हमलोगोंको विश्वास नहीं हुआ और हमने उसको निरी गप समझा। मामाजीने कहा कि 'यह तो आप भी परीक्षा करके देख सकते हैं। कई तरहकी मिठाइयाँ, पूडियाँ, कचौड़ी आदि बनी हैं। आपलोग इसके सामने डालकर देख लें, खाता है या नहीं।' घरसे लाकर पूड़ी-कचौड़ी आदि कुत्तेके सामने रख दी गयीं, पर खाना तो दूर रहा, कुत्तेने उनको छुआतक भी नहीं और वह पीछे हट गया। संध्या होनेपर जब कन्यादान हो चुका और हमारे मामाजी आदिने खाना प्रारम्भ किया तब उस कुत्तेको भी भोजन डाला गया और उसको उसने झट खाना प्रारम्भ कर दिया। यह देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ।

मामाजीने बताया कि 'यह हमारा कुत्ता श्रीहनुमान्-जीका बड़ा भक्त है और हर मंगलवारको व्रत रखता है।' हमने परीक्षा करनेके लिये मामाजीको मंगलवारतक रोक लिया। सोमवारको कुत्तेने भोजन कर लिया, लेकिन

मंगलवारको उसके सामने भोजन-सामग्री रखकर देखा गया तो उसने उसका स्पर्श तक नहीं किया और पीछे हट गया। दूसरे दिन बुधवारको जब उसके सामने भोजन डाला गया तो उसने खा लिया।

(३)

(सुप्रसिद्ध कर्मकाण्डी ज्योतिषाचार्य पण्डित श्रीराम-शास्त्रीजी महाराजके द्वारा)

हमारे घरपर एक बड़ा विलक्षण धर्मात्मा भगवद्भक्त कुत्ता था, उसका नाम नागरीदास रखा गया था। वह भगवान्की कथाएँ सुनते-सुनते सिसकियाँ भरकर रोया करता, हर रविवारको और प्रतिवर्ष श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीशिवरात्रि और श्रीरामनवमीके दिन सदा नियमपूर्वक उपवास किया करता था।

मेरे पूज्य पिताजीका शुभ नाम पूज्य पण्डित श्रीदयाराम-जी वैद्य था। वे वैद्यकका काम किया करते थे और बड़े ही प्रतिष्ठित कर्मकाण्डी पुरुष थे। एक दिनकी बात है, उन्होंने रास्तेमें एक हरिजनके घरके पास एक कुत्तेके बच्चेको अनाथकी तरह पड़े देखा। कुत्तेके बच्चेको देखते ही पता नहीं क्यों पिताजीका मन उसकी ओर आकर्षित हो गया और (१४) चौदह रुपये मूल्य देकर वे उसे अपने घर ले आये। उन दिनों हमारे पूज्य पितामहजी भी जीवित थे। उनका भी उस कुत्तेके बच्चेपर बड़ा प्रेम हो गया था। उन्होंने उसके रहनेके लिये दोमंजला एक छोटा-सा कमरा बनवा दिया और रोज दूध-रोटी आदि देनेकी व्यवस्था कर दी। वे ध्यान रखते जिससे कुत्तेके बच्चेको कोई भी कष्ट न हो।

उस कुत्तेके प्रति सबकी श्रद्धा बढ़ने लगी। कारण कि वह देखनेमें तो साधारण कुत्ता था पर बड़े आचार-विचारवाला कट्टर सनातनी योगी ब्राह्मण-जैसा था। शायद वह पूर्वजन्ममें योगी रहा हो और कोई पाप बन जानेसे कुत्तेकी योनिमें आ गया हो। उसका यह नियम था कि वह प्रति रविवारको उपवास रखता था।

उपवासके दिन उसे अन्न दिया जाता तो न खाता। घरमें जब श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी और श्रीशिवरात्रिके पर्व आते तो वह बराबर व्रत रखता था। भूलकर भी अन्न नहीं खाता था। पता नहीं उसे कैसे श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी और श्रीशिवरात्रिके दिनका ठीक पता लग जाता। तीनों दिन व्रत रखनेसे यह भी सिद्ध होता है कि वह भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् श्रीराम तथा भगवान् श्रीशिवमें कोई भेद नहीं मानता था।

वह बाजारोंमें पत्ते चाटते डोलनेवाले कुत्तोंकी भाँति चटोरा नहीं था। वह किसीकी जूँटन नहीं खाता था। ब्राह्मणोंके घरसे जो सूखा-सूखा, शुद्ध-सात्विक भोजन मिलता, उसीको खाकर वह तृप्त होता था। बड़ा ही संयमी और संतोषी था। वह अहिंसक तथा निरामिषा-हारी था। न किसी जीवकी हिंसा करता और न मांस-मछली आदि ही खाता था।

वह भगवत्कथाओंका बड़ा ही रसिक था। जहाँ भगवान्की कथा होती, वह पहुँच जाता और दूर बैठकर तन्मयता तथा प्रेमके साथ श्रवण करता। भगवान्की लीलाओंके श्रवणमें वह इतना तल्लीन हो जाता कि तन-मनकी सुधि खो बैठता और उसकी आँखोंमेंसे आँसुओंकी अविरल धारा बहने लगती। भगवान् श्रीरामके वनगमनका प्रसंग सुनकर तो वह इतना विह्वल हो जाता कि भगवद्भक्त मानवोंकी भाँति सिसकियाँ भरकर रोने लगता। उसे देखकर सभी उसकी प्रशंसा करते और अपने प्रेमके अभावको देखकर अपने-को धिक्कारते थे।

(४)

(ज्योतिषपीठ बद्रिकाश्रमके परम पूज्य महात्मा दंडीस्वामी अनन्तश्री स्वामी प्रकाशानन्दजी सरस्वती महाराजके द्वारा)

मैं उस समय गृहस्थ-व्याश्रममें था। हम जातिके ब्राह्मण थे और ब्राह्मणोंमें भी श्रेष्ठ माने जाते थे। ब्रह्म-से ब्राह्मण हमारे यजमान थे, जो हमें गुरुव्य

मानते थे। एक बारकी बात है, मैं नैनीताल जिलेके सिरवा नामक ग्राममें अपने भक्त यजमान ब्राह्मणके घर गया हुआ था। उन दिनों मैं स्वयंपाकी था और अपने हाथका बना भोजन चौकेमें बैठकर किया करता था। यजमान हमारे नियमोंसे जानकार थे। इसलिये उन्होंने हमारी रसोईके लिये आटा, घी, चीनी आदिकी सारी व्यवस्था कर दी। मैंने चौकेमें रसोई बनाकर भगवान्का भोग लगाया और भोजन किया। भोजन करनेके पश्चात् मैंने देखा कि वहाँ एक कुत्ता बैठा हुआ है। मैंने रोटी लाकर कुत्तेके सामने डाल दी, पर कुत्तेने मेरे हाथकी डाली हुई रोटीको सूंघातक नहीं। मैंने वहाँ खड़े रहकर खिलानेका प्रयत्न किया, पर कुत्तेने रोटीकी ओर देखातक नहीं। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि कुत्ते तो स्वभावसे ही रोटी देखकर दौड़ पड़ते हैं और छीनकर ले जाते हैं, पर यह सामने पड़ी रोटीको क्यों नहीं खाता? मैं यह सोच ही रहा था कि हमारे यजमान बाहरसे आ गये। मेरे पूछनेपर उन्होंने बतलाया कि 'कोई कितना ही पवित्र क्यों न हो और कैसी भी बढ़िया-से-बढ़िया चीज क्यों न इसे खानेको दे, पर यह जितेन्द्रिय, संतोषी और संस्कारी कुत्ता भूखा रहकर मर भले ही जाय, पर किसीके भी हाथकी बनी रोटी नहीं खायेगा। यह केवल ब्राह्मणके हाथकी बनी रोटी खाता है और ब्राह्मण भी ऐसा हो जो आचार-विचारोंका पूरा पालन करनेवाला और सदाचारी हो एवं अपने ही हाथका बना भोजन खानेवाला हो। हमलोग सब आचार-विचारोंका पालन करते हैं, यह कुत्ता इस बातको जानता है। इसलिये यह कुत्ता हमारे घरके अतिरिक्त अन्य किसीके घरका भोजन नहीं करता। इसे मादम नहीं है कि आप हमारे पूज्य गुरु हैं और परम शुद्ध आचार-विचारोंका पालन करनेवाले हैं। इसीलिये इसने आपके हाथकी रोटी नहीं खायी। मैं इसे विश्वास दिला दूँगा तो यह खा लेगा।'।

मेरे अनुरोध करनेपर यजमान ब्राह्मणने कुत्तेको बराबर समझाकर कहा कि 'भाई कुत्ते! ये ब्राह्मण हैं, बड़े ही आचार-विचारवाले हैं, सदाचारी हैं, धर्मका भलीभाँति पालन करनेवाले हैं, हमारे घरके ब्राह्मण हैं, हमारे गुरु हैं, हमसे भी बड़े हैं और स्वयंपाकी हैं तथा यह रोटी उन्हींके हाथकी बनी है, तुम इसे खा लो।' इतना कहनेपर भी कुत्ता सुनता रहा, पर हिला-डुला नहीं। फिर, जब यजमान ब्राह्मणने यह कहा कि 'देख, हम भी इनके हाथकी बनी रोटी खा लेते हैं, अतएव तू भी खा ले। तू इतना विश्वास कर। हम तुझे सत्यताके साथ विश्वास दिलाते हैं। तू संकोच छोड़कर रोटी खा ले।'।

उनके इतना कहनेपर जब कुत्तेको पूरा विश्वास हो गया, तब वह सामने पड़ी रोटियोंको बड़े प्रेमसे खाने लगा। हमारे पूछनेपर यजमान ब्राह्मणने हमें बतलाया कि 'यह हमारा कुत्ता बड़ा ही धर्मात्मा, सात्विक, त्यागी, तपस्वी, परम संतोषी, परम संयमी और परम भागवत है। यह कुत्ता कोई भी हिंसा नहीं करता, कभी मांसाहार नहीं करता तथा मांसाहारियोंके हाथकी रोटी नहीं खाता। किसी भी बढ़िया-से-बढ़िया चीजको देखकर भी इसका मन नहीं चलता और बड़ी दृढ़ताके साथ यह अपने नियमोंका पालन करता है।

'एक बारकी बात है, नदीमें भयानक बाढ़ आयी थी। यह परम भागवत कुत्ता उस बाढ़में बह गया। इसने निकलनेकी बड़ी कोशिश की, पर नहीं निकल सका और बहते-बहते दूसरे गाँवमें जा पहुँचा। गाँवमें तो पहुँच गया और मृत्युसे भी बच गया; पर अपने दृढ़ नियमोंके कारण कहींपर भी इसने कुछ खाया नहीं। ३-४ दिन यों ही भटकता रहा। गाँववालोंने रोटियाँ डालीं, खिलानेका बड़ा प्रयत्न किया; पर इसने स्पर्शतक नहीं किया। ४-५ दिनके बाद जब बाढ़का पानी घटा और नदीका वेग कम हुआ, तब यह भूखा-प्यासा जैसे-तैसे गाँवको छूटा और सीधा हमारे घर आ गया।

भूखके मारे बिल्कुल सूख गया था और कोसों पैदल चलनेसे थका हुआ भी था। घबरा रहा था। हमने इसे पुचकारकर रोटी डाली और इसने जब उसे खाया तब शान्ति मिली।

‘विचित्र बात तो यह है कि यह परम संतोषी है। इस परम संतोषी कुत्तेने सदाचार, सात्त्विक और आचार-विचारोंका पालन करनेवाले ब्राह्मणोंके अतिरिक्त किसी क्षत्रिय, वैश्यके घरपर भी कभी नहीं खाया। भूखा रह जाता है, पर दृढ़तासे उन नियमोंका पालन कर रहा है। पता नहीं वह पूर्वजन्ममें कोई महान् तपस्वी, सदाचारी ब्राह्मण रहा हो।’

उपर्युक्त वर्णन बहुत संक्षेपमें दिखे गये हैं, पर इनसे यह सिद्ध होता है कि पूर्वजन्मके प्रबल शुभ संस्कार किसी भी योनिमें जीवके साथ रहते हैं और वे उसे उसी प्रकारके आचरण करनेमें प्रवृत्त करते हैं। जीवनमें अशुद्धि नहीं आने देते। किसी पापके फलस्वरूप उस योनिके भोगोंके पूरा होते ही वह फिर श्रेष्ठ योनिमें जन्म लेकर अपने साधनमें लग जाता है और जीवनके परम लक्ष्यको प्राप्त करता है। अतएव मनुष्यको चाहिये कि वह सदा-सर्वदा सजग रहकर तन-मन-वचनसे शुद्ध सात्त्विक कार्य ही करता रहे, जिससे उसके वे सात्त्विक संस्कार सुदृढ़ हो जायें।*



अभिलाषा

(स्वविता—डा० स्वर्णकिरण)

रंगके दो-चार छींटे ही
‘अहंता’ को बदल डालें,
विपर्यस्त अन्तर्ध्वनियाँ
युद्ध-त्रस्त धूम्र-धूसर आसमानको
आश्वस्त करें,
टँगी हुई आँखें आप्यायित हो जाएँ,
अचञ्चल पीपलसे टकराकर आयी हुई हवा
पूरी ताकतसे बदनको झकझोर दे,
अविश्वासके रोएँ उखड़-उखड़ जाएँ,
उलझनोंकी खंदकसे निकली हुई ‘कृत्या’

अनागत भूकम्पकी सम्भावनाओंको खत्म कर दे,
बामन पैर थकित नहीं हों,
झुलसे हुए पत्तोंसे
बातावरण संगीतित हो उठे,
सागर-पारकी उषाएँ
स्थिर निजत्वको
शत-शत लहरोंमें
विकीर्ण कर दें,
अश्रुसे धुले हुए पृष्ठ
विजय-निष्ठाके प्रतीक हो जाएँ।

* लगभग बीस वर्ष पहले हमारे यहाँ गीतावाटिकामें श्रद्धेय संत श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराजके तत्त्वावधानमें षण्मासिक साधक-अनुष्ठान और वार्षिक अखण्डसंकीर्तन हुआ था। उसीके साथ श्रीमद्भागवत, श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भगवद्गीताकी कथाएँ भी प्रतिदिन हुआ करती थीं। उस समय हमारे यहाँ एक कुत्ता था, वह नियमित रूपसे कथामें बैठा करता था और प्रतिदिन जब भगवान्की पालकी निकलती तो पालकीके नीचे-नीचे चला करता था। अनुष्ठान पूरा होनेपर वह कहीं चला गया।—सम्पादक

आजकी दुर्दशा और उसके नाशका उपाय

सत्त्व ढक गया है अब तमसे, रज तमका हो गया गुलाम ।
 तमके संचालनमें होते इसीलिये हैं कर्म तमाम ॥
 सत्त्व सदा ले जाता ऊपर, रज रखता मानवको बीच ।
 कुप्रवृत्तिरत रख मानवको तम है सदा गिराता नीच ॥
 तम बतलाता पुण्य पापको, कहता सदा पुण्यको पाप ।
 तमसाच्छन्न बुद्धिका होता सब उलटा निर्णय बेमाप ॥
 अबनतिको उन्नति बतलाती और पतनको वह उत्थान ।
 पर-हित पर-सुखको वह अपना अहित-दुःख कहती बेमान ॥
 दुराचारको सदाचार कह सदाचारको भ्रष्टाचार ।
 चोरी ठगी डकैतीको वह कहती आवश्यक आचार ॥
 करवाती दुष्कर्म, बताकर उन्हें प्रगति का मूलधार ।
 करवाती कर्तव्य छुड़ाकर मिथ्या अहंकार-ममकार ॥
 देश, धर्म, मत, वाद, जाति, भाषा का गाढ़ असत् अभिमान ।
 करती उदय, स्वार्थ सीमित कर, छा देती सबमें अज्ञान ॥
 दानवता धारणकर मानव करने लगता स्वेच्छाचार ।
 वन जाते सब कर्म सहज ही दुष्ट, असत्, अति भ्रष्टाचार ॥
 अपना हित-सुख मान सहज वह करता पर-हित-सुख का नाश ।
 'जो बोवै सो मिलै'—न्याय से होता उसका पूर्ण विनाश ॥
 प्राणि-प्राणहर वैज्ञानिक अण्वास्त्र आदिका आविष्कार ।
 जिसकी लगी होड़ है उन्नत (?) सब देशोंमें आज अपार ॥
 विद्या, बुद्धि, ज्ञान सबका ही लक्ष्य अनन्य 'अर्थ-अधिकार' ।
 संतत 'हम सम्पन्न सुरक्षित रहें'—सभी का कर संहार ॥
 इसीलिये ईसाई, मुसलिम, हिंदू, बौद्ध हिताहित भूल ।
 करते कर्म जघन्य अशुभ फलदायक निजहितके प्रतिकूल ॥
 पूँजी-साम्य-समाजवाद, गणतन्त्र राज्यतन्त्रादि अनेक ।
 छाये वाद-विकार जगत्में 'क्षुद्र अहं' की रखने टेक ॥
 इसीलिये पातक-रत चीनी पाकिस्तानी सब षड्यन्त्र ।
 मोह-सुग्ध हो फूँक रहे सब द्वेष-कलह का आसुर-मन्त्र ॥
 इस ही क्षुद्र अहंके कारण भारतमें भी छाया मोह ।
 भाषा, वाद, प्रान्त सीमाके नाम बढ़ रहा द्वेष-द्रोह ॥
 हत्या, लूट, निरीह-निग्रहण, अत्याचार, यान-गृह-दाह ।
 गोलीबारी आदि हो रहे कर्म राक्षसी अकथ, अथाह ॥
 हिंसा, पर-धन-हरण, अनृत, व्यभिचार अवाञ्छित सब व्यापार ।
 बने सहज स्वाभाविक दूषित कलुषित जीवनके व्यवहार ॥

सिख हिंदू हैं एक मूलतः एक धर्म संस्कृति सुमहान् ।
 क्षुद्र अहंवंश वे आपसमें लगे बरतने शत्रु-समान ॥
 पंजाबी सूबा—हरियाना राज्य, महामालवकी माँग ।
 चम्बल प्रान्त, भोजपुरिया—उर्दू सूबा का नूतन राग ॥
 मीजो, नागा, हरिजन, कडजम, द्रविड़ और सन्थालस्थान ।
 कई भाग उत्तर प्रदेशके, छिन्न-भिन्न हो राजस्थान ॥
 सभी जानते देश-जातिका इनमें नहीं तनिक उपकार ।
 क्षुद्र अहंवंश किंतु बताते बुधजन प्रचुर लाभ-विस्तार ॥
 रिश्ततखोरी, चोरी, मिश्रण, राज्योंके अपार कर-भार ।
 सभी संकुचित स्वार्थजनित ये दुःखद दुरित कर्म कुविचार ॥
 ढके सभ्यताके पर्देमें, या हो रहे खुले दुष्कर्म ।
 धर्म नामसे छाया सबमें धर्मविनाशी घोर अधर्म ॥
 हो चाहे सुविशाल राष्ट्र या हो कोई भी व्यक्ति नगण्य ।
 'क्षुद्र अहं' करवाता सबसे पातक छोटे-बड़े जघन्य ॥
 अखिल विश्वमें जिस दिन होगा एक आत्मा का शुभ भान ।
 क्षुद्र अहं मिट जायेगा तब, 'स्व' का असली होगा ज्ञान ॥
 सत्त्व अनावृत होगा तमसे, रज होगा तब सत्त्वाधीन ।
 सबके सुख-हितमें स्वाभाविक होंगे सभी कर्म तल्लीन ॥
 सात्त्विक बुद्धि करेगी निश्चय निर्विवाद तब सत्य यथार्थ ।
 फिर प्रत्येक कर्म ही होगा, शुभ भगवत्पूजन—परमार्थ ॥
 सहज सभी सबको सुख देंगे, सभी करेंगे हित-कल्याण ।
 पर—अधिकार सुरक्षित रख कर, दुःखोंसे पायेंगे त्राण ॥
 जहाँ कहीं भी राष्ट्र, व्यक्तिमें जब जागेगा ऐसा भाव ।
 तभी वहाँ उसके सारे दुःखोंका होगा सहज अभाव ॥
 जबतक यह न जोगेगा सुन्दर मनमें शुचि सच्चा सिद्धान्त ।
 मानवता मरती जायेगी, दुःखोंका न आयगा अन्त ॥
 आत्माराम तपस्वी ऋषि-मुनि-नरपतियोंका भारत हाथ !
 लुटा सभी निज आध्यात्मिक धन आज बन रहा वह असहाय ॥
 हे भगवान् ! मिटा दो, अब तो भारतका यह मोह-प्रमाद ।
 राग-द्वेष हटाकर इसके सभी मिटा दो वैर-विषाद ॥
 शानचक्षु कर दो उन्मीलित जिससे देख सके प्रत्यक्ष ।
 सबमें भरे एक बस तुमको, पाये तुमको सदा समक्ष ॥
 सबमें आत्म-सदृश सुख-दुःखोंका हो अनुभव सहित विवेक ।
 सबका भला देखने-करनेका हो जीवनका व्रत एक ॥
 सबकी सेवा, सबका सुख-हित करना स्वाभाविक हो भाव ।
 निज सुख दे पर-दुःख-दलनका बढ़ता रहे निरन्तर चाव ॥

पुनः सत्ययुग आ जाये यह बने पुनः ऋषियोंका देश । सुधा स्रवित हो सबसे, विगलित हो जायें कठोर पाषाण ।
स्वयं सुशान्त सुखी हो जगको दे ऐसा ही शुभ संदेश ॥ सभी सुखी हों, सब निरोग हों, सभी सदा पायें कल्याण ॥

सार्थक मृत्यु

इस प्राकृतिक जगत्में सतत मृत्युका प्रवाह बह रहा है । इसीसे यह मर्त्यलोक है । प्रतिदिन लोग मरे जा रहे हैं, पर आश्चर्य यही है, बच रहनेवालोंको अपना मरना नहीं सूझता और वे मानव-जीवनकी असली साधना—भगवत्प्राप्तिके प्रयत्नको भूलकर संसारके भोगोंमें ही रचे-पचे दीर्घजीवन प्राप्त करना चाहते हैं । संसारमें बड़े-छोटे—सभी मरते हैं, पर मरना सार्थक उन्हींका समझा जाता है, जिनको पुनः मरनेके लिये पार्थिव शरीर धारण नहीं करना पड़ता । ऐसी ही मृत्युको वरणीय मानकर उसीकी तैयारी करनी चाहिये ।

उनका जीवन भी आदर्श ही है जो किसी भी जीवनके क्षेत्रमें लोकसेवा करके जाते हैं । पिछले दिनों भारतके प्रधान मन्त्री श्रीलालबहादुरजी शास्त्रीका देशकी सेवा करते-करते देहावसान हो गया । हमारे अत्यन्त प्रेमी परम भगवद्भक्त अंग्रेज भारतीय श्रीकृष्ण-प्रेमजीके देहावसानसे आध्यात्मिक जगत्का एक उज्ज्वल प्रकाश बुझ गया । 'कल्याण'के पिछले अंकोंमें इनके सम्बन्धमें लिखा जा चुका है । इधर स्वनाम-धन्य विद्वान् श्रीगाडगिल महोदय, स्वातन्त्र्य हिंदूवीर श्रीसावरकर श्री टी० एल० वाखानी महोदय, श्रीविश्वेश्वरनाथ रेऊ महोदय, श्रीउदयशंकर भट्ट, ब्रह्मचारी दत्त-मूर्तिजी, महात्मा श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय, श्रीबजरंगलाल बजाज और गोरखपुरके डा० झिंगरन आदि कई आदर्श पुरुषोंका देहावसान हो गया । ये सभी अपने-अपने क्षेत्रमें आदर्शचरित्र थे । इनमें वीर सावरकरका समस्त जीवन हिंदू-धर्म तथा हिंदू-जातिकी सेवामें अनवरत

तपस्या करते बीता । महात्मा वाखानीजी जीवनभर सारी दुनियाको बिना किसी भेदके आध्यात्मिक अमृत पिलाते रहे । 'कल्याण'में समय-समयपर आप लिखते रहते थे तथा हमलोगोंके प्रति आपकी बड़ी कृपा तथा प्रीति थी । ब्रह्मचारी दत्तमूर्तिजी बड़े ही कुशाग्रबुद्धि विद्वान्, त्यागी और हिंदू-धर्मके सेवक थे । गोरखपुरके डा० झिंगरन एक रोगीको अपना रक्तदान करते हुए परोपकारमें प्राणोंका त्याग करके धन्य हुए । आचार्य श्रीअक्षयकुमारजीका 'कल्याण'से लगभग अट्ठाईस-तीस वर्षसे सम्बन्ध था । आपके अनुभवपूर्ण विचारोंसे 'कल्याण'के पाठक खूब परिचित हैं । आप थे ज्ञान-प्रेमकी विलक्षण समन्वय-मूर्ति । बड़े ही मधुरभाषी, अल्पभाषी, प्रशान्त, गम्भीर-आशय महापुरुष । हमारे बजरंगलालजी पुराने सत्संगी थे । इधर वे साधनमें प्रवृत्त थे । उनकी नामनिष्ठा तथा साधनके नियम-पालनकी प्रवृत्ति सराहनीय है । उन्होंने भयानक शारीरिक पीड़के रूपमें भगवान्की अनुभूति करते हुए सुखपूर्वक देह-त्याग किया ।

हम सबको मृत्युके इन संवादोंसे सावधान होकर अपने जीवनको सर्वथा भगवान्के चरणोंमें समर्पण कर देना चाहिये । मृत्यु आयेगी तब बरबस मरना ही पड़ेगा, परंतु जो मृत्युके लिये सदा तैयार रहता है, उसकी मृत्यु सार्थक होती है । वह तैयारी है—भगवान्के प्रति समर्पित जीवनमें नित्य-निरन्तर भगवान्की अखण्ड मधुर स्मृति और भोगोंसे आत्यन्तिक विरक्ति ।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

पढ़ो, समझो और करो

(१)

प्रायश्चित्त

वात कबकी है, यह तो ठीक पता नहीं, पर सुनी हुई है—सन् १९२४-२५ के करीब ।

प्रसिद्ध भगवद्भक्त गायनाचार्य पण्डित श्रीविष्णुदिगम्बरजी पलुस्कर उन दिनों अमृतसर पधारे हुए थे और यहाँ प्रायः डेढ़-पौने-दो महीना रहे थे । गोलोकवासी गुरुदेव पण्डित लक्ष्मणनारायणजी गर्देकी कृपासे मैं उनके बहुत निकटवर्तियोंमें बन गया था । प्रायः नित्य दो-तीन बार उनकी सेवामें जाता और कई बार घंटे-घंटे, दो-दो घंटे उनके समीप बैठा रहता ।

मेरी प्रार्थनापर उन्होंने मुझे अपनी जीवन-कथा लिखानी शुरू की और उन दिनोंतककी अत्यन्त संक्षेप रूपमें लिखा डाली । उसके बाद एक बार फिर उन्होंने लिखवायी और तबतककी पूरी कर डाली । यह लिखायी थी उन्होंने मुझे लाहौर बुलाकर । फिर न वे लाहौर या अमृतसर आये और न मैं उनके पास जा सका, यद्यपि अपने दौरेमें उन्होंने मुझे दो-एक जगहसे बुला भी भेजा था । अस्तु,

अमृतसरमें जीवन-कथा लिखते हुए प्रसंगवश कई मनोरञ्जक और शिक्षादायक बातें उन्होंने मुझे सुनायीं जिनको विस्तारभयसे मैं उनकी जीवन-कथामें सम्मिलित न कर सका । उन्हींमेंसे एक घटनाका यहाँ संक्षेपसे उल्लेख कर रहा हूँ—

पण्डितजीने कहा—जलन्धरमें देवीके तालपर प्रतिवर्ष हरिवल्लभका मेला होता है, जिसका संगीतसम्मेलन सारे भारतवर्षमें प्रसिद्ध है । उसके प्रधान प्रबन्धक लाला तोलारामजी देशभरके संगीतज्ञों और गवैयाँको निमन्त्रित करते हैं । हमें भी प्रतिवर्ष बुलाया जाता था, पर आये हम तभी जब उन्होंने हमारी एक शर्त मान ली ।

सम्मेलन हो रहा था । एक मुसलमान गवैया गा रहा था । वह गानेमें तल्लीन था । लोग सुननेमें मस्त थे । खूब समा बैठा हुआ था । ज्यों ही हम सम्मेलनमें पहुँचे, लोग उठकर खड़े हो गये । गवैया भी उठकर खड़ा

हो गया । वह अमृतसरके रवात्री वंशका एक गरीब और साधारण समझा जानेवाला गवैया था । जब हम बैठ गये तो वह गवैया भी बैठ गया और जनता भी बैठ गयी ।

वह फिर गाने लगा परंतु समों बाँधनेका प्रयत्न करनेपर भी समों बाँधता ही न था । उधर जनता बड़ी अधीर थी हमारा संगीत सुननेको । इसी बीचमें सीटियाँ बजने और शोर मचने लगा । लाचार वह बेचारा गाना बंद करके अपने स्थानपर चला गया । अब हमारी बारी आयी । हम बड़े अभिमान-गर्व और आत्मविश्वासके साथ गाने बैठे । संगीत हमारा सिद्ध किया हुआ है । राग-रागिनियाँ हमारे सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं, पर न जाने उस समय हमारी सिद्धि कहाँ चली गयी । राग-रागिनियोंको क्या हो गया । रंग ही न जमे । उधर लोगोंको ताल-ताल-पर झूमते और सिर हिलाते हुए देखकर मुझे और भी दुःख हो । मेरी खीझ तो उस समय और भी बढ़ जाय, जब मैं देखूँ कि बड़े-बड़े संगीतज्ञ और गवैयातक झूम-झूमकर सिर हिला रहे हैं । निश्चय ही वे हमारा मज़ाक उड़ा रहे थे और सोच रहे थे—‘ऊँची दूकान और फीके पकवान ।’

आखिर अपना समय तो बिताना ही था और बिताया । मध्याह्न हुआ और हम अपने डेरेपर चले गये । खानेके लिये हमने बोल दिया—इस समय नहीं खायेंगे । रातको देखा जायगा । जी ही नहीं करता था खानेको । जी करता था रोनेको, बुलकर रोनेको ।

कुछ समयतक चुपचाप पड़े रहनेके बाद हमने तोलारामको बुलाया और बतलाया किस प्रकार आज हमें मानसिक क्लेश हुआ है । बड़े-बड़े संगीतशास्त्री क्या सोचते होंगे । यही वह गायनाचार्य है, जिसकी सारे देशमें धूम है । हमलोगोंको देखकर ही इसकी सारी विद्या लुप्त हो गयी ।

श्रीतोलारामजीने समझाया, ‘पण्डितजी ! वास्तवमें ऐसी कोई बात नहीं है । किसीपर आपका बुरा प्रभाव नहीं पड़ा । जिस सूक्ष्म भावसे आप अपनेको असफल हुए समझते हैं, लोगोंमें उतना सूक्ष्म भाव है ही नहीं । इतनी

पैनी दृष्टि है ही नहीं। हो भी तो क्या है ! बड़े-बड़े संगीतज्ञ कई बार समौ नहीं बाँध सकते, फिर आपने तो ऐसा किया ही नहीं। समौ बँधा और खूब बँधा, आप भले ही न मानें।'

हमने कहा—'नहीं तोलारामजी ! आप मेरी मुँह-रखनी कह रहे हैं। वास्तवमें आप भी समझते हैं, हम कैसे रहे हैं आज। अच्छा, अब ऐसा कीजिये, उस गवैयेको बुला दीजिये जो हमारे आनेके समय गा रहा था।'

पहले तो तोलारामजीने हँसीमें ही इस बातको उड़ा दी, पर जब हमने गम्भीर होकर कहा—'नहीं तोलारामजी ! उसे बुलाना ही चाहिये।' तब वे उसे फौरन बुला लाये। वह आया और हमने उसे बड़े आदरसे एक आसन-पर बैठ जानेका संकेत किया। वह बैठ गया और हमने कहा—'देखिये, भाई साहब ! हमने इस विश्रामके और भोजनके समय आपको कष्ट इसलिये दिया है कि आपसे कुछ सुनना चाहते हैं।' वह आश्चर्यान्वित होकर हमारे चेहरेकी ओर देखने लगा। हमने कहा—'दोस्त ! हैरान होनेकी जरूरत नहीं है। हम तुम्हारा मज़ाक उड़ाना नहीं चाहते। हम तो बड़े प्रेम और मुहब्बतसे वास्तवमें ही तुमसे कुछ सुनना चाहते हैं।' तोलारामजीने भी कहा—'ध्वराइये नहीं, पण्डितजी आपको अपमानित नहीं, सम्मानित करना चाहते हैं।'

आखिर उसने राग सोहनीमें गाना शुरू किया और अच्छा गाया, पर हमने तो उसे अच्छेसे भी अच्छा दाद दिया और खूब सराहा।

वह गद्गद हो गया और बारंबार हमें प्रणाम करता हुआ अपने कैम्पमें चला गया और यह चर्चा सर्वत्र फैल गयी।

सवेरे जो उसके दिलपर चोट लगी थी, वह एकदम जाती रही और वह पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न हो गया। लोगोंमें उसकी इज्जत और बढ़ गयी !

अब जो समय मिलनेपर हम बैठे तो वास्तवमें ही हमारा खूब रंग जमा और लोगोंने बहुत पसंद किया। प्रायश्चित्तसे हमारा पाप जो धुल गया था !

—युरादित्ता खन्ना

(२)

'यह' अच्छा कि 'वह'

मैं बम्बईके गिरगाँव बैंक रोडसे जा रहा था। रातके लगभग दस बजे थे। दिनकी तरह मोटर और थोड़ागाड़ियाँ नहीं दिखायी पड़ती थीं। मैं विचारोंकी धुनमें चला जा रहा था। इतनेमें ही एक घरसे ऐसी हृदय-द्रावक आवाज आयी कि मेरी धुन टूट गयी और मैं वहीं खड़ा रह गया—

कहाँ ले जा रही मुझको दगा करके अरी किस्मत !
मरोसेमें मुझे लेकर किया नीलाम क्यों किस्मत !
चलाकर पुष्पमालापर भरे विषधर तले किस्मत !

गानेवालेका हृदय मानो अत्यन्त द्रवित हो रहा था। गानेकी आवाज बंद हुई—मुझे लगा कि किसी दुखी हृदयको उसके भूतकालके दृश्य सामने आकर आघात पहुँचा रहे हैं। अतः विशेष जानकारी प्राप्त करनेकी मेरे मनमें इच्छा हुई। गानेवाला कौन है ? किस दुःखमें है ? भाग्यके आघात उसे कैसे लगे हैं ? यह सब जाननेकी उत्सुकता हो गयी। इसी बीच गानेवालेका भावार्थ टूटे-फूटे शब्दोंमें इस प्रकार मेरे कानोंमें आया।

'मैं लक्ष्मीदास एक समयका धनी व्यक्ति, जिसके वैभवका सूर्य अस्त होते ही आज मेरी इस बीमारीमें भी न कोई मेरा अपना है, न मित्र है। सच्चमुच भगवानदासके समान कौन भाग्यवान् है जो धनी नहीं हो सका, पर आज जिसको सारा जनसमूह चाहता है। उसका कैसा सेवाधर्म पालन करनेका सुन्दर स्वभाव था। मेरा बालसखा होनेपर भी मैं कभी उसके विचारोंसे सहमत नहीं हुआ पर आज वह सारी बम्बईका सम्मानपात्र मित्र हो रहा है। 'यह अच्छा कि वह !' इस प्रश्नका वास्तविक निराकरण मैं आज ही कर पाया हूँ।'

× × ×

कुछ समयके बाद मुझे लक्ष्मीदास और भगवानदासके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त हुई। वे दोनों बालमित्र थे। पर दोनोंके विचारोंमें जमीन-आसमानका अन्तर था।

लक्ष्मीदासके विचार मोटरोंमें घूमने, रावबहादुर अथवा जे० पी० की उपाधि प्राप्त करने और करोड़ाधिपति होकर शारीरिक वैभव भोग करनेके थे और भगवानदासके विचार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' पृथ्वीभरको अपना कुटुम्ब मानकर यथा-साध्य मानव-जातिकी सेवा करनेके थे।

संख्या ४]

लक्ष्मीदासने बी० ए० पास करनेके बाद वकालतके पेशेको धन कमानेका उत्तम साधन मानकर एल्-एल् बी० की परीक्षा पास की। फिर तो उसकी वकालत बड़े जोरसे चल निकली। लक्ष्मीदासने इस प्रकार बहुत धन कमाया तथा कुछ दिनोंमें ही उसने जे० पी० एवं रावबहादुरकी उपाधि भी प्राप्त कर ली।

दूसरी ओर, भगवानदासने डाक्टरी पास करके मानव-जातिकी सेवा करनेका निश्चय किया। उसने अच्छे-अच्छे अवसर मिलनेपर भी नौकरी करना स्वीकार नहीं किया। परंतु गरीबोंकी सेवा करनेके उद्देश्यसे 'मजदूर-दवाखाना' खोला। सात्विक स्वभावका भगवानदास थोड़े ही समयमें अत्यन्त लोकप्रिय तथा सबका परम सम्मान्य एवं आत्मीय स्वजन बन गया।

X

X

X

आज मिलें बंद थीं। मजदूर मिलपर जानेके बदले सैन्डहर्स्ट रोडपर भगवानदासके मकानपर इकट्ठे हो रहे थे। उन्होंने भगवानदासके द्वारा की हुई सेवाओंके बदलेमें भगवानदासकी सद्गत आत्माका अभिनन्दन किया।

धनपति लक्ष्मीदास क्षणिक अभ्युदयके उन्नत शिखरपर पहुँच तो गया था, परंतु किस्मतकी करामात कोई नहीं जानता। भाग्यदेवताका प्रकोप होते ही उसके वैभवका सूर्य अस्त होने लगा। 'एक जोड़े तो तेरह टूटे' वाली दशा हो गयी। धन जानेके साथ-साथ लक्ष्मीके साथी सम्बन्धियोंकी संख्या भी घटने लगी। मानसिक शान्ति तो उसको पहलेसे ही नहीं थी। अब उसे बालसखा भगवानदास याद आये और भगवानदासके साथ—'यह लौकिकवैभव सेवा-धर्मकी अपेक्षा कहीं अच्छा है'—इस प्रकार किये हुए वाद-विवादकी बातें भी याद आयीं और लौकिक वैभव नाशवान् है तथा ब्रह्म अजर-अमर है, इसका उसे भान हुआ।

उसका हृदय खिन्न था। किस्मत नहीं, अपनी ही नीच करनीका विपरीत परिणाम उसके सामने प्रत्यक्ष हो रहा था। 'मेरा 'यह' अच्छा नहीं, परंतु भगवानदासका 'वह' अच्छा था'—यह बात सिद्ध हो गयी। इसी स्थितिमें उसने वह गीत गाया था, जो मैंने सुना। (अखण्ड आनन्द)

—डा० पोपटलाल० अ० भूपतकर

(३)

सेवापरायणताका एक ज्वलन्त दृष्टान्त

आज इस अनैतिक तथा स्वार्थपूर्ण युगमें मानवताका दिनोंदिन पतन होता जा रहा है। परमार्थ, परसेवा एवं परोपकारकी भावना दिनोंदिन लोप होती जा रही है। ऐसे कुसमयमें भी कहीं-कहीं ऐसे देवतास्वरूप मानवके दर्शन हो जाते हैं, जिन्हें देखकर हमारा मन बरबस ही कह उठता है—चाहे कितनी ही नास्तिकता, अनैतिकता पृथ्वीपर छा जाय, पर मानवताका पृथ्वीसे सर्वथा लोप नहीं हो सकता।

मेरे एक परिचित मित्र महोदयको एक ऐसे ही महा-मानवके दर्शन आजसे दस वर्ष पूर्व हुए थे, जिन्होंने संकट-कालमें मित्र महोदयके प्राणोंकी रक्षा की थी। उन्हींके शब्दोंमें घटना इस प्रकार है—

“आजसे दस वर्ष पूर्वकी बात है। मैं इन्दौरसे अजमेर आ रहा था। जूनका महीना था। कड़कड़ाती धूप शरीरको जलाये दे रही थी। एक तो ऐसी भयानक गरमी फिर थर्ड-क्लासके डिब्बेकी भीड़! मेरी तबियत खरा उठी। मैं चार-पाँच दिन पूर्व ही टायफाइड रोगसे उठा था। मेरी तबियत पहलेसे ही खराब थी। इस वातावरणने बेचैनी बढ़ा दी। बुखार हो आया। दो-तीन कै हुई और मैं अचेत होकर सीटपर लुढ़क पड़ा। मेरे पास बैठे सहायत्री एक मद्रासी सज्जन थे। बातचीतके दौरानमें ज्ञात हुआ था कि वे मद्रासके किसी समाचारपत्रके मालिक थे। किसी कार्यवश दिल्ली जा रहे थे। मुझे चेतनाशून्य होते देख वे एकदम उठ खड़े हुए। उन्होंने अपना बिस्तरबंद खोला और उसे बिछा दिया। उसपर उन्होंने मुझे लिटा दिया। फिर वे पंखेसे मुझपर हवा करने लगे। मुझे ठंडा जल पिलाया। उनके पास प्राथमिक चिकित्साकी कुछ औषधियाँ थीं। उनके द्वारा वे मेरी यथासाध्य सहायता करने लगे।

मेरी बेचैनी कुछ कम हुई, पर बुखार अब भी काफी तेज था। मैंने उन सज्जनसे कहा—‘मुझे तेज बुखार है। यदि आप अगले स्टेशनपर मेरे घरवालोंको मेरे बारेमें तारद्वारा सूचना दे दें तो बड़ी कृपा होगी।’

उन्होंने कहा—‘घबराइये मत। अगला स्टेशन रतलाम ही है। मैं आपको वहीं उतार दूँगा और वहींसे आपके सम्बन्धियोंको सूचित कर दूँगा। मुझे भी आप अपना वन्सु ही

समझें ।' रतलाम आनेपर उन्होंने मुझे सामानसहित उतारा और स्वयं भी सामानसहित मेरे साथ ही उतर गये ।

दो-तीन कुलियोंकी सहायतासे वे मुझे रेलवे अस्पतालमें ले गये । डाक्टरसे मिले और उन्हें सारी घटना सुनायी । डाक्टर भी सहृदय थे, दयालु थे । उन्होंने उसी समय मेरे रहनेके लिये वार्डमें प्रबन्ध कर दिया । दवा पिलायी और इन्जेक्शन लगाया । मद्रासी सज्जनने अजमेर मेरे पिताजीको भी तार देकर बुलाया । इस बीच वे मेरी बराबर पूरी देख-माल करते रहे । बाजारसे मौसमी खरीदकर लाते और मुझे उसका रस पिलाते । जिन दवाइयोंकी आवश्यकता पड़ती उन्हें भी वे बाजारसे खरीद लाते । इन मद्रासी सज्जनकी सेवाके कारण मैं मृत्युके मुखसे बच निकला । संध्याको पिताजी ट्रेनसे आ गये । दो-तीन दिनोंमें मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया । इस बीच मद्रासी सज्जन भी हमारे साथ ही रहे । तदनन्तर हम तीनों अजमेरकी ओर खाना हुए । मैंने उनसे कहा—

‘अब आप कृपया हमें यह बतलाइये कि बीमारीमें आपके पाससे कितने पैसे खर्च हुए हैं । वे हमसे ले लीजिये । मैं आपका बड़ा श्रुणी हूँ जो आपने मेरे प्राण बचाये । आप मनुष्य नहीं, देवता हैं । अपना बहुमूल्य समय नष्ट करके आपने मेरी ऐसी सहायता की ।’

वे बोले—‘संकटके समय आपकी देखभाल करना मेरा कर्तव्य था । मनुष्य मनुष्यकी सहायता न करेगा, तो और कौन करेगा । कर्तव्यका कोई मूल्य नहीं होता । मैं आपसे अब कोई धन नहीं लूँगा । मैंने तो केवल अपने कर्तव्यका ही पालन किया है । आप यदि मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो यह वचन दीजिये कि समयपर आप भी कभी रोगग्रस्त व्यक्तिकी सहायता करेंगे ।’

मैंने वचन दे दिया । मैंने और पिताजीने बहुत प्रयत्न किया कि वे मेरी बीमारीमें खर्च हुए रुपये अवश्य ले लें पर उन्होंने हमारे लाख प्रयत्न करनेपर भी पैसे नहीं लिये । आज उस सेवापरायण मानवके दर्शन किये दस वर्षके लगभग व्यतीत हो चुके हैं, पर मैं अपना वचन पूरा नहीं कर पाया हूँ । ईश्वर जाने, मैं उनका श्रुण कब चुकाऊँगा । धन्य हैं ऐसे मानव । सेवापरायणताकी यह घटना एक आदर्श घटना

है । इस प्रकारके सेवाभावी मनुष्योंसे ही भूतल स्वर्ग बनता है । यही सच्चा मानवधर्म है ।

—प्रा० श्याममनोहर व्यास एम्० एस्०सी०

(४)

बहुत-से रोगोंका एक इलाज—‘अनुभूत रसायन तेल’

यह एक महात्माका आशीर्वाद एवं कथन है कि सेवाभावसे बनाने एवं बाँटनेपर यह एक सिद्ध ओषधि है ।

१ सेर गोले (नारियल) का शुद्ध तेल लेकर कढ़ाईमें गरम कर लें, २ छटाक नीमके हरे मुलायम पत्ते तेलमें डालकर जलने दें, २ छटाक मालेके पत्ते भी डालकर तेलमें भुनने दें, १ छटाक फूल ढाक (केवल फूल सूखे) या ताजे फूलका मौसम हो तो दो छटाक ताजे सिर्फ फूल तेल में डालकर जला लें । ये तीनों चीजें जब जल जायें तो कढ़ाई उतारकर ठंडा होनेपर तेल छानकर बोतलमें भर लें ।

प्रयोग—जले, कटे, चोट, फुंसी, फोड़ा, खाज, नासूर, सिरदर्द, कानका दर्द, लू लग जाना, विच्छू, सर्प, ततैया एवं अन्य जहरीले जानवरोंके काटेपर ईश्वरका नाम लेकर प्रयोग करें; तुरंत अवश्य लाभ होगा । प्रयोगविधि—जले, कटे तथा चोटपर बारीक साफ कपड़ा तेलमें भिगोकर सिर्फ जले, कटे या चोटके भागको ढक दें । ऊपर तेलके कपड़े कुछ बड़ा पान या अन्य मुलायम पत्ता ढककर ऊपरसे रई या रुआड़ रखकर षट्ठी बाँध दें । खाज एवं अन्य दौप पर मालिश, नासूरपर रुईकी सूखी बत्ती नासूरमें पास करके ऊपरसे १-२ बूँद तेल टपकाकर ऊपर लिखे ढंगसे बाँध दें । आँखमें सलाईसे लगावें । जहरीले जानवरके काटेपर तेल गरम कर फाया रखना चाहिये एवं विच्छू-सर्पके काटेपर गरम फायेके अलावा कान एवं गुदामें भी १-२ बूँद तेल लगा देना चाहिये । और भी रोगोंमें प्रयोग-विधिके अन्तरसे लाभ होगा । और कुछ मालूम करना हो तो कृपया जवाबी कार्ड डालकर मालूम करें । एक बार फिर प्रार्थना है कि धन कमानेकी दृष्टिसे महात्माजीके आशीर्वादको न अजमायें । हम बीस वर्षसे इसे बनाते एवं मुफ्त बाँटते हैं । जो बाँट सकते हैं अच्छा है, नहीं तो बनाकर घरमें रखें, हर समय कामकी ओषधि है ।

—महेशचन्द्र सिंघल महेश खादी वीविंग फैक्ट्री, मेरठ, ४०९०

(५)

मेहनतकी कमाई

सन् १९४२ की बात है। गाँधीजीके नेतृत्वमें स्वतन्त्रताका युद्ध चल रहा था। अंग्रेजोंकी विदेशी सरकार इस युद्धको नहीं सह सकी और गाँधीजी पूनाके समीप आगा खाँ महलमें नजरबंद कर दिये गये। जेलमें गाँधीजीको मलेरिया बुखार हो गयी। शरीर दुर्बल पड़ गया। तब सरकारने उन्हें छोड़ दिया।

जेलसे छूटनेके बाद गाँधीजी जुहूमें जाकर रहे। वहाँ गाँधीजीके स्वास्थ्य सुधारनेका भार सरोजनी देवी नायडूने स्वयं लिया। जिस बँगलेमें गाँधीजी ठहरे थे, उस बँगलेके दरवाजेपर सरोजनी देवी स्वयं पहरा देने लगीं। वे किसीको भी गाँधीजीके पास फटकने न देतीं।

एक दिन सबेरे वे पहरा दे रही थीं। थोड़ी देर बाद एक बारह-तेरह वर्षका बालक आकर खड़ा हो गया। मैला और फटा पायजामा और कमीज, शरीर दुबला और चेहरा पीका। इतनेपर भी उसकी आँखोंमें चमक थी और चेहरेपर प्रसन्नता खेल रही थी। उसने आते ही कहा—‘माताजी! मुझे बापूके पास जाना है।’

क्यों ?

‘मुझे बापूजीसे मिलना है, उन्हें कुछ देना है।’ बालकने कहा।

‘बापूजीकी तबियत अच्छी नहीं है, अतः तुझे अंदर नहीं जाने दिया जायगा।’

‘पर मैं एक मील पैदल चलकर बापूजीके दर्शनके लिये ही यहाँ आया हूँ।’ बालकने विनयभरे शब्दोंमें कहा।

‘तेरे हाथकी इस पोटलीमें क्या है?’ सरोजनी देवीने पूछा।

‘इसमें कुछ फल हैं, बापूजीके लिये लाया हूँ। इसलिये कि वे बहुत कमजोर न हो गये हैं। ये फल बढ़िया ताजे और मीठे हैं।’ बालकने कहा।

सरोजनी देवीको लगा कि यह कोई साधारण लड़का नहीं मालूम होता। उन्होंने पूछा—‘खरीदकर लाया है या किसीसे माँगकर।’

इस प्रश्नसे बालकके स्वाभिमानपर चोट लगी—‘मेरे माँ-बाप भीख नहीं माँगते और न मुझको ही उन्होंने भीख माँगना सिखाया। लड़केने कहा।

‘तो इन्हें खरीदनेके लिये पैसे कहाँसे लाया?’

‘और लाता कहाँसे? अपनी मेहनतकी कमाईसे।’ यों कहते-कहते बालककी आँखें श्रमके गौरवसे चमक उठीं।

सरोजनी देवीका मन पिघला और बापूजीके पास जानेकी उसे अनुमति मिल गयी। ‘अच्छा, तू अंदर तो जा सकता है, पर फल देकर तुरंत ही लौट आना। एक शब्द भी बापूके साथ बोलना नहीं।’

‘जी! एक शब्द भी नहीं बोलूँगा, प्रणाम करके उनके चरणोंमें फल रखकर तुरंत ही खड़े पैरों वापस चला आऊँगा।’ बालकने सरोजनी देवीको विश्वास दिलाया और वह बापूके कमरेकी तरफ तीरकी तरह चल दिया।

‘तू कहाँ जाता है? तेरे हाथमें यह क्या है?’ किसीने रुखी आवाजमें उससे पूछा।

‘मैं बापूजीके पास जा रहा हूँ, मेरे हाथमें बापूजीके लिये फल हैं।’

‘तू ये फल कहाँसे लाया?’ किसी दूसरेने पूछा।

‘बाजारसे।’

‘चोरी करके तो नहीं लाया है न? इसी माईने फिर पूछा।

‘अब तो बालकका स्वाभिमान भड़क उठा। उसने जरा गरम होकर कहा—‘चोरीको मैं हराम समझता हूँ। समझे साहब! मैं, मेरा बाप और मेरी माँ—तीनों मजदूरी करते हैं और अपने पसीनेकी रोटी खाते हैं। हम किसीके मोहताज नहीं हैं।’ बालकके इन तीखे शब्दोंको सुनकर दोनों सकुचा गये।

‘अच्छा जा। पर फल देकर तुरंत वापस आ जाना।’ परंतु बालकके पगपर तो मानो मनो बोझ बँध गया। उसकी चाल धीमी पड़ गयी। उसके अंदरका आधा उत्साह ही निकल गया। मन विचारोंमें गोते खाने लगा—‘बापूजीके पास रहनेवाले लोग ऐसे? मजूर-आश्रमके गुरुजी तो कहते थे कि बापू अपने शत्रुके साथ भी प्रेमका

बर्ताव करते हैं और.....और.....उनके ये साथी ? ये लोग तो मेरे-जैसे गरीब—निर्दोष बालकको भी दुत्कारकर निकाल रहे हैं । मैं गरीब हूँ, मेरे कपड़े मैले और फटे हैं, क्या इसीसे मैं चोर हो गया ? परंतु मैं और मेरे माँ-बाप चोर नहीं हैं—यह तो सर्वथा सत्य ही है ।’

गाँधीजीके कमरेतक पहुँचनेमें दो-तीन मिनट लगे होंगे । इसी बीच उसके दिमागमें ऐसे अनेक विचार घूम गये ।

अन्तमें वह गाँधीजीके सामने आ पहुँचा । उनको देखनेपर उसका मन शान्त हुआ । गाँधीजीके चेहरेमें उसको अपनी प्रेमभरी माँकी ममताके दर्शन हुए । उसने पास जाकर बापूजीके चरणोंमें प्रणाम किया । फिर पोटली खोलकर ताजे-ताजे संतरे, सेव और हरे अंगूर उनके चरणोंपर रख दिये । अन्तमें फिर एक बार प्रणाम किया और कमरेसे बाहर निकलनेके लिये पीठ फिरा ली ।

गाँधीजीने सोये-सोये ही धीमी आवाजसे पूछा—
‘जरा खड़ा रह बच्चा ! इतने बढ़िया फल तू मेरे लिये क्यों लाया ? तुझे ही खाने थे न ?’

बालकने कुछ भी उत्तर नहीं दिया ।

‘तेरा नाम क्या है ? तू कहाँसे आया है ? तुझे किसीने दरवाजेपर रोका तो नहीं ?’ गाँधीजीने हँसते-हँसते पूछा ?

इतनेपर भी लड़का चुप रहा । गाँधीजीको लगा—
‘कदाचित् बालक गूँगा होगा । उन्होंने मिठासभरे स्वरमें पूछा—
‘तू मेरी बातका उत्तर क्यों नहीं देता ? क्या तुझसे ठीक बोला नहीं जाता ?’

अब उससे बोला गया—‘मैं गूँगा नहीं हूँ बापूजी ! परंतु दरवाजेपर एक माताजी बैठी हैं न ? उन माताजीने मुझसे वचन ले लिया है कि मैं आपके साथ एक अक्षर भी नहीं बोल्दूँगा ।’ ऐसा वचन लेनेके बाद ही उन्होंने मुझे अंदर आने दिया है ।’

‘हाँ, तो यह बात है । पर इतने सारे फल तू मेरे लिये क्यों लेकर आया ?’

‘मेरे बापू बातों-ही-बातोंमें कई बार कहा करते हैं कि फल खानेसे बीमार आदमीकी तबियत जल्दी अच्छी होती है । इसीलिये मैं फल लाया हूँ ।’

फलोंकी तरफ दृष्टि डालकर गाँधीजीने कहा—‘फल तो बहुत बढ़िया हैं । तेरे प्रेमकी मिठास मिल जानेसे ये और भी ज्यादा मीठे लगेंगे । परंतु इतने ज्यादा फल खरीदनेके लिये तू कैसे कहाँसे लाया ?’

‘बापूजी ! मैं सुबह-शाम एक सेठके बगीचेमें मालीके साथ काम करता हूँ । दिनमें मजूर-पाठशालामें पढ़ता हूँ । इस सप्ताह मुझे कामसे जो पैसे मिले, उन्होंनेसे ये फल खरीदकर लाया हूँ ।’

‘वाह ! तू पढ़ता भी है और साथ ही काम भी करता है । जो लड़का पढ़नेके साथ-साथ मेहनतका काम करता है, वह मुझे बहुत प्यारा लगता है । मैं तेरे फल जरूर खाऊँगा । पर सारे फल नहीं लूँगा । आधे मैं खाऊँगा, आधे तू खाना ।’ गाँधीजीने प्रसन्न होकर कहा ।

‘नहीं बापूजी ! मैं नहीं खाऊँगा । ये सारे फल आपको ही खाने पड़ेंगे । आपको तंदुरुस्त होकर देशकी बहुत-बहुत सेवा करनी है ।’ बालकने आग्रहपूर्वक कहा ।

एक मजदूर लड़केके मुँहसे ऐसी बातें निकलती देखकर बापूजी गद्गद हो गये । उन्होंने कहा—‘अच्छा ! मैं ही खाऊँगा । पर एक सेव तो तुझे लेनी ही पड़ेगी ।’ यों कहकर बापूजीने एक बड़ी-सी देखकर सेव लड़केके हाथमें दे दी ।

लड़केने सेव ले ली और उसे बापूका प्रसाद मानकर सिर चढ़ाया और पायजामेके खीसेमें रख लिया । जाते जाते उसने झुककर बापूजीको प्रणाम किया और बापूसे भी प्रेमसे उसकी पीठ थपथपाकर कहा—‘बेटा ! तेरी यह मेहनतके पैसोंसे खरीदी हुई भेंट मेरे मन सबसे अधिक मूल्यवान् है । भगवान् करे तू जीवनमें सदा अपनी मेहनतकी रोटी खा और सदा सुखी रह ।’

बापूजीसे मिला, अतः बालक तो धन्य-धन्य हो गया । उसकी छाती गर्वसे फूल गयी । वह बाहर निकला, तब उसके पैर ऐसे उठ रहे थे मानो सारी दुनियाकी दौलत उसके हाथ लग गयी हो । ‘अखण्ड आनन्द’

—सोमेश पुरोहित

(६)

सभी छात्र ऐसे हों तो ?

गतवर्ष १६ अगस्तकी बात है। एक मेधावी एवं सन्तुष्ट छात्र कल्याण-कार्यालय, गीताप्रेसमें कल्याणके पुराने विशेषाङ्क खरीदने आया था। उस समय इस छात्रसे जो बातें सुननेकी मिलीं, वे इस प्रकार हैं:—

मैंने पूछा, “भैया ! तुम संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क एवं हिंदू-संस्कृति-अङ्क किनके लिये खरीद रहे हो ?” (छात्र अवस्थामें छोटा था, अतएव मैंने पूछा) तो उत्तर मिला, “मेरे लिये ही खरीद रहा हूँ बाबूजी ! और मैं आपके ‘कल्याण’ का ग्राहक भी हूँ (बहुत ही मधुर स्वरमें अपनी बातको चालू रखते हुए आगे कहा)—मेरे घरवाले तो मुझे बहुत रोकते हैं, कहते हैं, ‘ऐसी पुस्तकें न पढ़ा करो ।’ तो मैंने कहा, ‘भैया, तुम इन पुस्तकोंके लिये पैसे कहाँसे लाते हो ?’ छात्रने जवाब दिया—“बाबूजी ! घरसे नित्य थोड़ा-थोड़ा पैसा मिल जाता है, उन पैसोंका मैं दुरुपयोग न करके आध्यात्मिक एवं धार्मिक पुस्तकें खरीद लेता हूँ, ऐसी पुस्तकें पढ़नेमें मेरा बड़ा मन लगता है। बाबूजी ! मेरे घरवाले तो सब मांसाहारी हैं, किंतु मैं सदा निरामिष भोजन करता हूँ। कई बार घरवाले मेरी इन बातोंको लेकर झगला जाते हैं और मुझको ऐसा करनेसे रोकते हैं, पर मैं मेरी बातोंपर अडिग हूँ ।”

छात्रकी ऐसी सुन्दर शिक्षाप्रद बातें सुनकर मैं दंग रह गया और सहसा मुखसे निकल पड़ा कि ‘सभी छात्र ऐ से हों तो, वर्तमान भारतका रूप ही दूसरा हो ।’

—भालचन्द्र शर्मा काजड़िया, गीताप्रेस

(७)

जेबकतरेका हृदयपरिवर्तन

यह सही है कि आज बेईमानी, चोरी, ठगी एवं रिश्वतखोरीका बोलबाला है पर फिर भी मानवता एवं ईमानदारीका पूरा पतन नहीं हुआ है।

चोरों, ठगोंमें भी मानवताकी दिव्यज्योति प्रज्वलित की जा सकती है ! पर चाहिये करनेवाला !

यह सच्ची घटना लगभग दो वर्ष पूर्वकी है। मेरे मित्र

श्रीअशोककुमारजी बन्सल [जो आजकल सादुलशहर जिला गंगानगरमें अध्यापक हैं] पंजाबके रहनेवाले हैं।

एक बार वे दिल्लीसे जयपुर बसमें जा रहे थे। सामनेवाली सीटपर एक बंगाली सज्जन बैठे थे। वे किसी विश्वविद्यालयके रिटायर्ड प्रोफेसर थे। उनके पास ही एक बीस-बाईस वर्षका युवक बैठा था। युवक पेंट-कोट पहने शिक्षित नजर आता था; पर उसकी आँखोंसे धूर्तता एवं चालाकी टपकती थी।

खैर, किसीने उसपर कुछ भी संदेह नहीं किया। जब बस दिल्लीसे करीबन ३०-३५ मील दूरतक निकल चुकी तो युवकने अपना कार्य प्रारम्भ किया। वह कोई जेब-कतरा था।

उसने पासमें बैठे बंगाली सज्जनकी जेब कतर डाली। जेब कटनेके बाद बंगाली महाशयने पेंटकी जेबसे बटुआ निकालनेके लिये जेबमें हाथ डाला तो देखा कि बटुआ गायब और जेब भी गायब। उनके चेहरेपर भय एवं विस्मयकी रेखाएँ उभर आयीं। पर उन्होंने यह बात किसीसे प्रकट नहीं की। उन्हें यह तो ज्ञात हो गया था कि यह करामात पास बैठे हुए युवककी ही है, पर वे बोले कुछ भी नहीं।

थोड़ी देर पश्चात् अलवरका बस-स्टैंड आ गया। युवक अपने कार्यकी सफलतापर मन्द-मन्द मुस्करा रहा था और बससे नीचे उतरकर टहलता हुआ सिगरेट पी रहा था।

जब बस चलनेको हुई तो पुनः पासवाले सज्जनके पास आकर बैठ गया।

दिल्लीसे जयपुर राजस्थान रोडवेजकी बसें चलती हैं। कमी-कमी इनमें जगह-जगह पर चेकिंग होती है।

अलवरसे चलनेपर बसोंका चेकिंग-कर्मचारी रास्तेमें मिला और उसने बस रुकवाकर सभी यात्रियोंके टिकट चेक करने प्रारम्भ किये। जब चेकिंग-कर्मचारी बंगाली सज्जनके पास टिकट माँगने लगा तो वे बोले—

‘महाशयजी ! मेरे पास बैठे सज्जन मेरे सम्बन्धी ही बगले हैं। अलवर बस-स्टैंडपर जब मैं पानी पीने उतरा तो बटुआ मैंने इन्हींको दे दिया था। टिकट उसीमें है। आप कृपया इनके पाससे बटुआ लेकर टिकट चेक कर दें।’

युवक बंगाली सज्जनके ये वाक्य सुनकर पानी-पानी हो गया ! उसका चेहरा भय एवं आश्चर्यसे सफेद पड़ गया । उसने सोचा कि मैं यदि इन्कार करता हूँ तो तलाशी लेनेपर बटुआ मेरे पास ही मिलेगा । अतएव मुझे बटुआ निकाल कर दे देना चाहिये । ये सज्जन मनुष्य नहीं देवता हैं, जिन्होंने धैर्य एवं सहिष्णुता धारण कर मुझे अपमानित होनेसे बचाया । नहीं तो ये मुझे पुलिसके हवाले भी कर सकते थे ।'

उसने शीघ्र ही बटुआ निकालकर बंगाली सज्जनको पकड़ा दिया । टिकट-चेकर टिकट चेक करके वापिस चला गया । जयपुर आनेपर वह युवक बंगाली सज्जनके चरणोंमें गिर पड़ा और अपने दुष्कर्मके लिये उनसे क्षमायाचना करने लगा ।

बंगाली सज्जन बोले—'अब अधिक अफसोस मत करो । यदि उस समय मैं तुम्हारा अपमान करता और

तुम्हें पुलिसके हवाले करता तो भी तुम्हारा भविष्य अन्धकारमें ही रहता । जेलसे छूटनेपर तुम फिर यही धंधा करते । अब तुम यह प्रतिज्ञा करो कि ऐसा अनैतिक कार्य तुम फिर कभी जीवनमें नहीं करोगे । आजसे तुम्हारे जीवनका नया अध्याय शुरू होना चाहिये ।' युवकने प्रतिज्ञा की कि 'वह भविष्यमें यह पापकर्म नहीं करेगा ।'

बंगाली सज्जनके पूछनेपर उसने बताया कि वह मैट्रिक पास है । उन्होंने उस युवकको किसी कार्यालयमें क्लर्ककी जगहपर रखवानेका भी आश्वासन दिया ।

युवकने उस देवपुरुषका पता नोट किया और अत्यन्त चला गया ! बंगाली सज्जनकी अद्भुत सूझ-बूझ, धैर्य एवं क्षमाशीलताने एक जेबकतरेका हृदय-परिवर्तन कर दिया ।

यह घटना श्रीअशोकजीने ही लेखकको सुनायी थी ।

—प्रा० श्याममनोहर व्यास एम्० एस्०सी०

आराध्यसे

सारे जीवन तुझे अपना सर्वस्व समझता रहा ।
और तुझपर अपने सर्वस्वका दाँव लगाता रहा ॥
अब—अवसानके सांध्य धुँधलकेमें,
यह सम्भव नहीं कि तुझे अपना सर्वस्व न समझूँ,
यह सम्भव नहीं कि तुझपर अपने सर्वस्वका दाँव
न लगाऊँ ।
दाँव लगानेके लिये—
अकम्प हाथ चाहिये,
वेद्विद्वक मन चाहिये,
और चाहिये अडिग विश्वास ।
ये सब मुझमें रहे या नहीं, हैं या नहीं,
—यह तू ही भलीभाँति जानता है ।
मुझे तो दाँव लगाना है ।
इस बार भी लगा दूँगा,
—तुझतक पहुँचनेके लिये,
तुझे—अपने सर्वस्वको—पानेके लिये ।

—बालकृष्ण बल्लुआ (बी० ए०, एल्० एल्० बी०)

ग्राहक महोदयोंसे विनयपूर्ण क्षमा-प्रार्थना

‘कल्याण’ का विशेषाङ्क ‘धर्माङ्क’ प्रकाशित हुआ जो अधिकसंख्यक ग्राहक महोदयोंकी सेवामें वी० पी० द्वारा भेजा गया। वी० पी० छूटकर आने, पोस्टऑफिसद्वारा रुपये देने, जमा होने तथा नाम रजिस्टर होनेमें काफी समय लग गया। अभीतक भी वह काम पूरा नहीं हो पाया है। इसीसे ‘कल्याण’के फरवरी तथा मार्चके अङ्क समयपर छप जानेपर भी बहुत थोड़े ही ग्राहकोंको भेजे जा सके। अन्य सबके रुके रहे। इतनी लंबी अवधितक अङ्कोंके न पहुँचनेसे ग्राहक महोदयोंको क्षोभ होना स्वाभाविक ही है। इतनेपर भी ग्राहक महोदय ‘कल्याण’ पर कृपालु बने रहे—इसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं। हमें बड़ा ही खेद है कि हमारी भूलसे—(यदि हम फरवरीका दूसरा अङ्क वी० पी० के साथ भेज सकते तो इतने क्षोभका कारण न होता) हमारे आदरणीय ग्राहकोंको इतना कष्ट हुआ, उन्हें बार-बार पत्र लिखकर समय तथा पैसे नष्ट करने पड़े। हम इसके लिये उन सभीसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक क्षमा-प्रार्थना करते हैं। आशा है अब अगले सप्ताह तक फरवरी-मार्चके अङ्क प्रायः सभी ग्राहकोंके पास पहुँच जायँगे। अप्रैलका यह अङ्क भी कुछ देरसे ही पहुँचेगा, यद्यपि जल्दी-से-जल्दी भेजनेकी चेष्टा की जा रही है। हम एक बार पुनः क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

प्रार्थी—व्यवस्थापक ‘कल्याण’

दिनाङ्क १ अप्रैल

तुलसी-साहित्यके प्रकाशकोंसे नम्र निवेदन

ऐसा विचार किया गया है कि प्रातःस्मरणीय गोखामी श्रीतुलसीदासजीके ग्रन्थोंपर अबतक जितनी टीकाएँ, उनके मूल संस्करण, पुस्तकें तथा निबन्ध आदि जो कुछ भी साहित्य प्रकाशित हुआ है, यथासाध्य उन सबका संग्रह एक स्थानपर किया जाय, जिससे तुलसीदासजीके साहित्यपर सोचने-विचारने तथा लिखने-पढ़ने-वालोंको वहाँ पधारकर देखने-पढ़नेकी सुविधा मिल जाय। इसलिये तुलसी-साहित्यके सभी प्रकाशक महोदयोंसे निवेदन है कि वे अपने यहाँसे प्रकाशित साहित्यकी एक-एक प्रति—बिना मूल्य, अल्प मूल्य या कमीशन काट-कर पूरे मूल्यपर (वी० पी० द्वारा) नीचे लिखे पतेपर शीघ्र भेजनेकी कृपा करें। जिन सज्जनोंके पास पुराना हस्तलिखित तुलसीग्रन्थसम्बन्धी जो कुछ भी साहित्य हो, वे भी कृपा करके संग्रहके लिये भेज दें।

पता—श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस, गोरखपुर

‘मधुमेह’की अचूक दवाके लेखक श्रीपरसरामजीसे निवेदन

कल्याणके गताङ्क २ पृष्ठ ७६४ पर ‘मधुमेहकी अचूक दवा’ शीर्षकमें एक विज्ञप्ति छपी है, उसके सम्बन्धमें बहुत-से सज्जन लेखकका पता जानकर उनसे कुछ बातें पूछना चाहते हैं। खेद है कि कल्याण-कार्यालयमें लेखक महोदय श्रीपरसरामजीका पूरा पता भूलसे नहीं लिखा गया है, केवल बस्ती लिखा है। अतएव श्रीपरसरामजीसे निवेदन है कि वे सम्पादकको अपना पूरा पता तुरंत लिखनेकी कृपा करें।

सम्पादक—‘कल्याण’ गोरखपुर

सुयोग्य कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता

गीताप्रेस मानवताके स्तरको ऊँचा उठानेवाले कार्य करनेवाली, प्रधानतया सस्ते मूल्यपर धार्मिक और नैतिक साहित्य प्रकाशित करनेवाली एक प्रचारक रजिस्टर्ड संस्था है। इसके लाभ-हानिसे किसी भी व्यक्तिका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस संस्थाको आरम्भसे ही त्यागभावनावाले सुयोग्य कार्यकर्ताओंका सहयोग प्राप्त रहा है। पर अब उनमेंसे कई प्रमुख कार्यकर्ताओंका देहावसान हो गया। कई निजी विशेष कारणोंसे अथवा वृद्धावस्थाके कारण कार्य नहीं देख पा रहे हैं। अतएव इस समय इसके कार्य-संचालनके लिये कुछ ऐसे सदाचारी, ईश्वरविश्वासी, कार्यदक्ष, परिश्रमी, सुयोग्य सज्जनोंकी आवश्यकता है, जिनपर कुटुम्बपालनका बहुत बोझा न हो, जो आवश्यक पारिश्रमिक भी अवश्य लें और जिम्मेवारीसे पूरा समय तथा मन देकर कार्य-संचालन कर सकें।

गीताप्रेसके पुस्तक-विक्रय-विभागमें, हिसाब-विभागमें, मैनेजर-आफिसमें, छापाई-विभागमें, मशीन-विभागमें, स्टोरमें, बाहर घूमकर पुस्तकें बेचनेके काममें तथा अन्यान्य विभागोंमें भी जो सज्जन उत्साहपूर्वक काम करना चाहें, वे कृपया अपनी शिक्षाकी योग्यता, कार्यका अनुभव, स्वास्थ्य, अवस्था आदिका पूरा विवरण देते हुए कितने न्यौछावरमें वे काम कर सकेंगे, यह लिखनेकी कृपा करें।

यह ध्यान रखना चाहिये कि इन कार्यमें सहयोग-सहायता करनेकी इच्छावाले पुरुषोंको अपना पूरा समय तथा मन लगाकर प्रधानरूपसे कर्मके द्वारा ही भगवान्की पूजा करनी होगी।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

गीताप्रेस, गोरखपुरकी चित्रावलियाँ पुनः विकने लगी हैं

(१) आकार १५×२०, नं० १, २, ३, ४, प्रत्येकका मूल्य रु० ३.५०, डाकखर्च प्रत्येकका रु० १.१५।

इनमें प्रत्येकमें २ सुनहरे तथा ८ बहुरंगे सुन्दर चुने हुए चित्र हैं।

(२) आकार ११×१४ नं० १ मूल्य रु० २.५०, डाकखर्च १ रु०।

इसमें १२ सुन्दर बहुरंगे चित्र हैं।

(३) आकार १०×७॥, नं० १, २, ३ प्रत्येकका मूल्य रु० १.६५, डाकखर्च प्रत्येकका १ रु०।

इनमें प्रत्येकमें २ सुनहरी और १८ बहुरंगे चित्र हैं।

(४) कल्याण चित्रावलि नं० १, २, ३, ४, प्रत्येकका मूल्य रु० १.३१, डाकखर्च प्रत्येकका रु० १.०४।

ये 'कल्याण' या 'कल्पतरु'के बचे हुए चित्रोंकी बनायी जाती हैं। प्रत्येकमें २५ बहुरंगे चित्र हैं।
मूल्य सस्ता है।

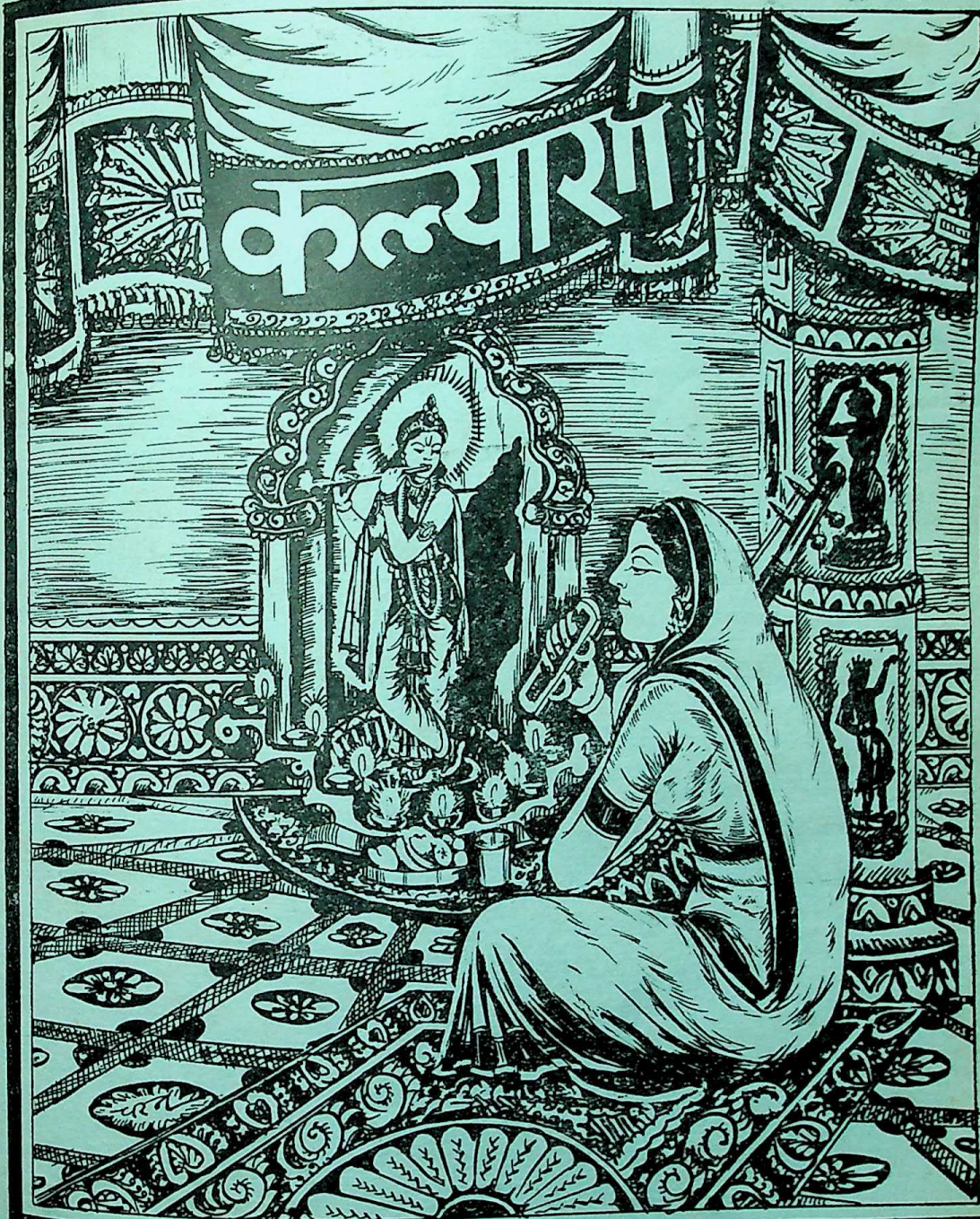
विशेष सूचना

१—चित्रावलियोंके चित्र अलगसे नहीं मिलते। और भी किसी तरहके चित्र फुटकर नहीं मिलते।

२—एकसे अधिक चित्रावलियाँ मँगवानेपर डाकखर्चमें प्रति चित्रावली ५५ पैसे रजिस्ट्रीखर्चकी बचत होगी। बड़े आर्डरका माल रेलसे मँगवानेसे बहुत बचत होती है।

विशेष जानकारीके लिये चित्रावलियोंकी सूची अलगसे मँगवाइये। यहाँ आर्डर मेजनेके पहले स्थानीय पुस्तक-विप्रेतासे माँगिये। उनसे लेनेपर डाकखर्चकी पूरी बचत हो सकती है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर



हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-गोधनके साथ गोवर्धनसे उतरते हुए [कविता]	... ८९३
२-कल्याण ('शिव')	... ८९४
३-प्रतीकोपासना (संत श्रीविनोबाजी)	... ८९५
४-अर्चावितार [कविता]	... ८९६
५-ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कुछ अमृतोपदेश (संक०—प्रे०—श्रीशालिग्रामजी)	... ८९७
६-मनन-माला (ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)	... ८९९
७-ईशावास्यमिदं सर्वम् (श्रीसुरेशचन्द्र-जी वेदाङ्कार, एम्० ए०, एल्० टी०)	... ९०२
८-जिज्ञासा (प्रो० श्रीसीतारामजी गुप्त, एम्० ए०, पी० ई० एस्० (अवसरप्राप्त)	... ९०४
९-दम-सम्पन्न (दान्त) [कहानी] (श्री 'चक्र')	९०७
१०-तस्मै नमः परमेश्वराय (श्रीलक्ष्मीनारायणजी राजपाली, बी० ए०, एल्-एल्० बी०)	९१०
११-उत्सर्ग ही जीवन है (डा० श्रीपरमानन्दजी)	९१३
१२-आधुनिक युग एवं संस्कृति (डा० श्रीनरेन्द्रकुमारसेठी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, प्राध्यापक लांग आहलैंड विश्व-विद्यालय, न्यूयार्क एवं संचालक-भारत-केन्द्र, न्यूयार्क)	... ९१५
१३-हमारा जीवन-प्रतिविम्ब (श्रीवंशीधरजी	

विषय	पृष्ठ-संख्या
शर्मा एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, ए० डि० जज)	... ९१७
१४-सद्भावनाके अभ्यासका चमत्कार (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम्० ए०)	९२०
१५-दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्री-गोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)	... ९२३
१६-तुम ही तुम [कविता]	... ९२८
१७-मधुर	... ९२९
१८-दैवीसम्पदा और आसुरीसम्पदाका स्वरूप और परिणाम (श्रीरणजीतमलजी मेहता, अवसरप्राप्त जज)	... ९३०
१९-तुलसीके नारी-पात्र (श्रीमती तुलसीदेवी मिश्र एम्० ए०, एम्० एड्०)	... ९३४
२०-आखिर वह क्या रहस्य था ? (श्रीहृदयनारायणरायजी एम्० ए०, बी० एड्०)	... ९३९
२१-विराग [कहानी] (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)	... ९४१
२२-भक्त घोड़ी (श्रीराजेन्द्रजी गोस्वामी 'मोहन')	... ९४६
२३-तीन पत्र	... ९४७
२४-भगवत्कृपा	... ९५०
२५-पढ़ो, समझो और करो	... ९५१

चित्र-सूची

१-पुजारिन	(रेखाचित्र)	... मुखपृष्ठ
२-गोधनके साथ गोवर्धनसे उतरना	(तिरंगा)	... ८९३

वार्षिक मूल्य } जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय ॥ साधारण प्रति
भारतमें रु० ७.५० } जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥ भारतमें ४५ पै०
विदेशमें रु० १०.०० } जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥ विदेशमें ५१ पै०
(१५ शिल्लिङ्ग) } (१० पै०)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक—पुस्तकालय, श्रीमती कल्याण, श्रीमती कल्याण, श्रीमती कल्याण, श्रीमती कल्याण

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri

प्रति
वे०
वे०
(स)



गोधनके साथ गोवर्धनसे लड़ना



लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्ब्रह्मर्षिराजर्षिर्भिविदूशूद्रैरपि वन्द्यते स जयताद्वर्मा जगद्धारणः ॥

वर्ष ४० }

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ २०२३, मई १९६६

{ संख्या ५
पूर्ण संख्या ४७४

गोधनके साथ गोवर्धनसे उतरते हुए

गमन करत रवि लखि अस्ताचल मनमोहन लै गोधन संग ।
उतरि रहे गोवर्धन गिरि तें, रंगे रंगीले नित नव रंग ॥
त्रिविध सुगंध पवन मनभावन परसत स्याम सलोने अंग ।
फहरत बसन सुमन वर माला प्रगटत प्रकृति विचित्र तरंग ॥
अलि-कुल-मद-हरनी अलकावलि सिर सिखिपिच्छ मुकुट छविसार ।
नयन बिसाल रसाल चित्तहर पल-पल मोद बढ़ावनहार ॥
मुरली बरसावत मधु रस अति उमगावत सब दिसि रसधार ।
सोहत सुभग सुवेष नीलमनि सुषमा अमित करत बिस्तार ॥

कल्याण

याद रखो—जो धन न्याय तथा सत्यके साथ उपार्जित किया गया है और जो किसी ट्रस्टके धनकी भाँति किसी सच्चे, ईमानदार और कर्तव्यपरायण पुरुषके पास ट्रस्टके कार्योंमें सावधानी तथा उदारताके साथ व्यय करनेके लिये एक ट्रस्टीके पास रखे धनकी भाँति सुरक्षित है एवं जिसका सदा सद्व्यय हो रहा है—ऐसा धन ही पवित्र है।

याद रखो—जिसके पास ऐसा भगवान्की सम्पत्ति-रूप पवित्र धन है और जो उसे निरन्तर भगवान्की सेवामें लगा रहा है, वही वास्तवमें धनी है। उसीके लिये धन सुखरूप और वरदानरूप है।

याद रखो—जो धनपर अपना अधिकार मानता है और अपने भोग-सुखमें ही उसका व्यय करता है अथवा बटोरकर रखता है—वह वास्तवमें धनी नहीं है। वह वैसे ही चोर है, जैसे दूसरेकी चीजको हड़पनेवाला होता है। उसके लिये वह धन सदा दुःखरूप तथा अभिशापरूप है। ऐसे धनसे नये-नये पाप ही बनते रहते हैं।

याद रखो—धनका कोई भी महत्त्व नहीं है। महत्त्व है—सदाचारका, धर्मनिष्ठाका और त्यागका। धन तो असुर-राक्षसोंके पास भी होता है—चोर-छुटेरोंके पास भी हो सकता है।

याद रखो—धर्मनिष्ठा, सदाचार और त्यागसे ही धनकी पवित्रता रहती है। जो धन धर्मके द्वारा नियन्त्रित नहीं है, जिससे असदाचार और भ्रष्टाचार होता है या जो अधर्म एवं भ्रष्टाचारके द्वारा उपार्जित और रक्षित होता है एवं जिसका जहाँ आवश्यकता है, वहाँ निरभिमानताके साथ त्याग नहीं होता; वह धन जहाँ रहता है एवं जहाँ जाता है, वहीं अपवित्रता उत्पन्न

करता है। गंदगी फैलता है। नैतिक पतनका प्रधान कारण बनता है।

याद रखो—धनको धनके रूपमें महत्त्व मिटनेपर वह मनुष्यको चोरी, डकैती, अनाचार, मिथ्याचारमें प्रवृत्त करता है। मनुष्य देखता है कि जिसके पास धन है, उसीका समाजमें आदर है, वही श्रेष्ठ माना जाता है और उसके सारे दोष ढंक जाते हैं। इसलिये वह किसी प्रकारसे भी धन उपार्जन करके समाजमें सर्वश्रेष्ठ तथा सम्मान्य बनना चाहता है। इस प्रकार धनका महत्त्व होनेपर समाज 'चोर-पूजा' करने लगता है। फिर चोरी, डकैती, मिथ्याचार आदि घृणाकी वस्तु न रहकर गौरवकी वस्तु बन जाते हैं। इसलिये कभी भी धनको महत्त्व मत दो। धर्मनिष्ठा, सदाचार तथा त्यागको महत्त्व दो। जिसमें धर्मनिष्ठा सदाचार और त्याग है, वह श्रेष्ठ है; वही सम्मान्य और पूज्य है, धनवान् नहीं। यही समझो और यही समझाओ। कम-से-कम अपने लिये तो यही निश्चय करो कि यदि हमारा धन सत्य तथा न्यायके द्वारा उपार्जित है, धनका अभिमान नहीं है और वह भगवान्की सेवामें लग रहा है, तभी हम श्रेष्ठ हैं; नहीं तो, धनराशि भले ही कितनी ही प्रचुर हो, हम श्रेष्ठ नहीं, नीच हैं और सर्वथा घृणाके पात्र हैं।

याद रखो—जिस समाजमें धर्मनिष्ठा, सदाचार और त्यागका आदर-सम्मान होता है और इनसे रहित धनका तिरस्कार होता है, उस समाजमें उत्तरोत्तर पवित्र आचारका प्रसार अधिक-से-अधिक होता है। वही समाज आदर्श और सुखी होता है। वहाँ चोर-पूजा नहीं होती, त्यागीकी पूजा होती है और जहाँ त्यागीका आदर होता है, वहाँ सभी लोग त्यागी बनना चाहते हैं।

याद रखो—त्यागमें ही शान्ति है और जहाँ शान्ति

‘शिव’



प्रतीकोपासना

(संत श्रीविनोबाजी)

मूर्तिकी अवज्ञा न हो

यह अलग बात है कि सामने 'ॐ' न हो, तो भी मेरा चलेगा। ऐसी कोई तस्वीर या मूर्ति मेरे सामने नहीं है और मुझे ध्यान करना हो, तो सामने मूर्ति रखनेके लिये मैं नहीं कहूँगा। लेकिन मूर्ति है, तो वह मदद करती है।

बहुत साल पहले मैंने हिंदू-धर्मकी व्याख्या बनायी थी। हिंदू-धर्मका क्या लक्षण है? 'मूर्तिं च नावजानाति।' जहाँतक मैं देखता हूँ, हिंदू-धर्मका पूरा विचार इसमें है। व्यावर्तक लक्षण नहीं है, लेकिन पूरा विचार है। मूर्तिकी अवज्ञा नहीं होनी चाहिये, भले ही हम उसका आधार न लें। यह एक मध्यवर्ती मनोदशा सुझायी है।

ईश्वर पत्थरमें भी है

इस्लामके उपासक कब्रिस्तानमें जाकर समाधिपर फूल चढ़ाते हैं। गांधीजीकी समाधिपर क्रिश्चन, मुसलमान, हिंदू सब फूल चढ़ाते हैं। मुसलमान लोग भगवान्‌के लिये हार चढ़ानेको राजी नहीं; क्योंकि उनका कहना है कि भगवान्‌की मूर्ति हो नहीं सकती और इसलिये उसकी पूजा भी हो नहीं सकती। लेकिन गांधीजीके समाधि-पत्थरकी पूजा हो सकती है। मैं मनमें सोचता हूँ कि वह जो हार चढ़ाया जाता है, उसकी खुशबू कौन लेता है? क्या वह पत्थर लेता है? वह हार पत्थरके लिये है कि गांधीजीकी स्मृतिके लिये है? यह एक प्रकारकी मूर्तिपूजा ही है। इसके लिये कोई आधार नहीं। गांधीजीका पत्थरके साथ क्या ताल्लुक है? बहुत हुआ तो इतना सिद्ध होगा कि उनकी हस्ती किसी लेखमें है। ईश्वरका तो पत्थरके साथ ताल्लुक है; क्योंकि ईश्वर पत्थरमें भी रहता है—यह

बात सिद्ध हो चुकी है। इसलिये कोई ईश्वरके नामसे पत्थरकी पूजा करता हो और उसको हम गलत मानें, तो उसमें अहंकारके सिवा कोई अर्थ निकलेगा नहीं।

एकः अनेकः

इस विषयमें भिन्न-भिन्न आधुनिक और पुरातन धर्म-पंथ, जो भी मेरे ध्यानमें आये, वे सब मैं देख चुका हूँ। मैंने किसीकी उपेक्षा की नहीं है। परंतु कोई भी धर्म या पंथ मुझे यह समझानेमें समर्थ नहीं हुआ कि अल्ला मूर्तिमें हो नहीं सकता। बल्कि 'विष्णुसहस्रनाम' में कहा है—एकः अनेकः अनन्तः शून्यः। ईश्वरको गणितशास्त्रमें डालकर वह एक ही है, कहना अजीब बात लगती है। ईश्वर एक है कहना, मेरी माँ एक है, कहने-जैसा है। ईश्वरको एकताकी उपाधिमें बद्ध कर दिया, तो आपने उसको सीमित कर दिया। इसलिये ईश्वर एक है, अनन्त है, शून्य है, असंख्य है। ईश्वर एक है; क्योंकि वह अन्तर्यामी है। ईश्वर अनेक है; क्योंकि हमारे सामने उसके असंख्य, अनन्त रूप खड़े हैं। शून्य तो उसका स्वरूप ही है। इसलिये 'डेफिनिट' (निश्चित), 'इनडेफिनिट' (अनिश्चित) जितनी भी 'कैटेगरी' (कोटि) हो सकती है, वे सब ईश्वरमें समाप्त होती हैं। ईश्वरको एक ही 'कैटेगरी'में मानना अपनी इच्छाकी बात है। कोई मानेगा कि ईश्वरका एक रूप है और उस रूपमें वह भक्ति करेगा, तो ईश्वर उसको उस रूपमें दर्शन दे भी सकता है।

मैं कहना यह चाहता था कि उपासना, ध्यान, प्रार्थना आदिमें सबको जाना चाहिये या नहीं, यह एक व्यावहारिक सवाल है। मुझे पूछेंगे तो मैं कहूँगा कि आपको जैसा अनुभव आता है, वैसा करें। अगर बच्चे

बनकर मुझे पूछते हो, तो कहूँगा कि जरूर जाओ। लेकिन बच्चे न होकर पूछते होंगे, तो कहूँगा कि आप अपने अनुभवसे तय करें। वहाँ अगर शान्तिका अनुभव आता हो, तो जाइये; न आता हो, तो मत जाइये।

जीवनका आधार प्रतीक-उपासना

ध्यान प्रतीकात्मक होता है। वह प्रतीक अंदरका हो सकता है या बाहरका। अक्षर, मूर्ति, लिङ्ग—ये सब प्रतीक ही हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि ऐसा प्रतीक मानना एक प्रकारका भ्रम है। पूरी दुनिया भ्रम है, तो उसके साथ-साथ इसको भ्रम माननेको मैं राजी हूँ। परंतु दुनियाको सत्य समझकर इसको भ्रम मानना मेरी समझमें नहीं आता। जितना वाङ्मय है, जितना साहित्य है, वह कुल-का-कुल विकल्प है, जिसको योगशास्त्रमें 'वस्तुशून्यः' कहा। ज्ञान सब शून्य है।

लेकिन अनुभव यह आता है कि मैं आपको चिट्ठी लिखता हूँ—'आप घड़ी भेज दीजिये' तो आप 'घड़ी' भेज देते हैं, 'घ' और 'ड़ी' नहीं भेजते। आप ऐसा नहीं कहते कि आपने तो 'घ' और 'ड़ी' माँगा था,

और 'घड़ी' का 'घ' और 'ड़ी'के साथ क्या सम्बन्ध है।' घड़ी लिखा तो आप उसका अर्थ घड़ी समझ गये। इसका नाम है प्रतीक-उपासना। घ डी यह अक्षर एक प्रतीक है, जिसपर घड़ीकी उपासना की जाती है। हम सबने इस आरोपको संगति दी, इसलिये आपके और हमारे बीच व्यवहार होता है। अंग्रेजीमें उसका प्रतीक 'वाच' बनाया। अगर उसको हम कहेंगे कि 'घड़ी भेज दो' तो वे कुछ भेजेंगे नहीं, परंतु 'वाच भेज दो' कहेंगे, तो घड़ी भेज देंगे। यानी घड़ीके दो प्रतीक हैं। कोई घड़ी-मूर्ति है, कोई वाच-मूर्ति है। वैसे कोई वैष्णव होता है, कोई शैव होता है, कोई शाक्त होता है। इसलिये जो लोग उपासनाका विरोध करते हैं और साहित्यका बचाव करते हैं, उनकी बात मेरी समझमें नहीं आती। कुछ लोग शिक्षणका बचाव करते हैं और उपासनाका विरोध करते हैं, तो वह भी मेरी समझमें नहीं आता। आखिर शिक्षण भी इन सारे प्रतीकोंको छोड़कर कैसे दिया जा सकता है? कुल-के-कुल शिक्षणका और कुल-के-कुल साहित्यका आधार इस विकल्पपर, प्रतीकपर, मूर्ति-उपासनापर है।

('मैत्री' से सामार)

अर्चावतार

विश्व-चराचरमें जो छाये, अखिल विश्वके जो आधार।
सदा सर्वगत, चलता जिनमें अखिल विश्वका सब व्यापार ॥
कण-कणमें जो व्याप्त नित्य, है अणु-महान् जिनका विस्तार।
जिनसे कभी न खाली कुछ भी—सर्वरूप जो सर्वाङ्कार ॥
व्यक्ताव्यक्त सभी कुछ वे ही, वे ही निराकार-साकार।
लेते काष्ठ-धातु-पाषाण प्रतीकोंमें अर्चा-अवतार ॥
उन प्रभुको भज सकते सब ही निज-निज भाव-सुरुचि अनुसार।

ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कुछ अमृतोपदेश

(उनके ग्रन्थोंसे संकलित)

कुछ भाई कहा करते हैं कि हम भगवान्‌के नामका जप बहुत दिनोंसे करते हैं, परंतु जितना लाभ बतलाया जाता है, उतना हमें नहीं हुआ। इसका उत्तर यह है कि भगवान्‌के नामकी महिमा तो इतनी अपार है कि उसका जितना गान किया जाय, उतना ही थोड़ा है। नाम-जप करनेवालोंको लाभ नहीं दीखता, इसमें प्रधान कारण है—दस नामापराधोंको छोड़कर जप न करना। (१ सत्पुरुषोंकी निन्दा, २ अश्रद्धालुओंमें नाम-महिमा कहना, ३ विष्णु और शंकरमें भेदबुद्धि, ४ वेदोंमें अश्रद्धा, ५ शास्त्रोंमें अश्रद्धा, ६ गुरुमें अश्रद्धा, ७ नाममाहात्म्यमें अर्थवादकी कल्पना, ८ शास्त्र-निषिद्ध कर्मका आचरण, ९ नामके बलपर शास्त्रविहित कर्मका त्याग तथा १० अन्य धर्मोंसे नामकी तुलना—ये दस नामा-पराध हैं।) इन दस अपराधोंका त्याग करके जप करनेपर नाम-जपका शास्त्र-वर्णित फल अवश्य प्राप्त हो सकता है। दस अपराधोंको सर्वथा त्यागकर नाम-जप करनेवालेको प्रत्यक्ष महान् फल प्राप्त होनेमें तो संदेह ही क्या है; केवल श्रद्धा और प्रेम—इन दो बातोंपर खयाल रखकर जो अर्थसहित नामका जप करता है, उसे भी प्रत्यक्ष परमानन्दकी प्राप्ति बहुत शीघ्र हो सकती है। नाम-जपके साथ-साथ परमात्माके अमृतमय स्वरूपका ध्यान होते रहनेसे क्षण-क्षणमें उनके दिव्य गुण और प्रभावोंकी स्मृति होती है और वह स्मृति अपूर्व प्रेम और आनन्द-को उत्पन्न करती है। यदि यह कहा जाय कि रामचरितमानसमें नाम-महिमामें यह कहा गया है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ ।

नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥

फिर श्रद्धासहित नाम जपनेसे ही फल हो, यों ही जपनेसे फल न हो, यह बात कैसे हो सकती है ? तो इसका उत्तर यह है कि 'भाव-कुभाव' किसी प्रकार भी नाम-जपसे दसों दिशाओंमें कल्याण होता है, इस

बातपर तो श्रद्धा होनी ही चाहिये। इसपर भी श्रद्धा न हो तब वैसा फल क्योंकर हो सकता है ? इसपर यदि कोई कहे कि 'विचारद्वारा तो हम श्रद्धा करना चाहते हैं, परंतु मन इसे स्वीकार नहीं करता, इसके लिये क्या करें ?' तो इसका उत्तर यह है कि बुद्धिके विचारसे विश्वास करके ही नाम-जप करते रहना चाहिये। भगवान्‌पर विश्वास होनेके कारण तथा नाम-जपके प्रभावसे आगे चलकर पूर्ण श्रद्धा और प्रेम आप ही प्राप्त हो सकते हैं। परंतु यदि अर्थसहित जप किया जाय तो और भी शीघ्र परमानन्दकी प्राप्ति हो सकती है।

× × ×

बहुत-से भाई कहते हैं कि 'हमलोग वर्षोंसे मन्दिरोंमें भगवान्‌के दर्शन करने जाते हैं; परंतु हमें विशेष कोई लाभ नहीं हुआ—इसका क्या कारण है ?' तो इसका उत्तर यह है कि विशेष लाभ न होनेमें एक कारण तो है श्रद्धा और प्रेमकी कमी तथा दूसरा कारण है भगवान्‌के विग्रह-दर्शनका रहस्य न जानना। मन्दिरमें भगवान्‌के दर्शनका रहस्य है—उनके रूप, लावण्य, गुण, प्रभाव और चरित्रका स्मरण-मनन करके उनके चरणोंमें अपनेको अर्पित कर देना। परंतु ऐसा नहीं होता, इसका कारण रहस्य और प्रभाव जाननेकी त्रुटि ही है। मन्दिरमें जाकर भगवान्‌के स्वरूप और गुणोंका स्मरण करना चाहिये और भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये, जिससे उनके मधुर स्वरूपका चिन्तन सदा बना रहे और उनकी आदर्श लीला तथा आज्ञाके अनुसार आचरण होता रहे। जो ऐसा करते हैं, उन्हें भगवत्कृपासे बहुत ही शीघ्र प्रत्यक्ष शान्तिकी प्राप्ति होती है। देह-त्यागके बाद परम गति मिलनेमें तो संदेह ही क्या है।

× × ×

यदि जीवनमें हमने बहुत-सी भोगसामग्री एकत्र

कर ली, बहुत-सा मान-सम्मान प्राप्त किया, बहुत नाम कमाया, हजारों-लाखों रुपये, विपुल सम्पत्ति, हाथी-घोड़े, नौकर-चाकर तथा बहुत-बड़े परिवारका संग्रह किया; किंतु यदि जीवनका वास्तविक उद्देश्य सिद्ध नहीं किया तो हमारा किया-कराया सब व्यर्थ ही नहीं हो गया; बल्कि यह सब करनेमें जो हमने पापाचरण किया, उसके फलरूपमें हमें नरकोंकी प्राप्ति होगी, हम नीचेकी योनियोंमें ढकेले जायेंगे। इसके विपरीत यदि हमारा जीवन लौकिक दृष्टिसे कष्टसे बीता, हमें मान प्राप्त नहीं हुआ; बल्कि जगह-जगह हम दुरदुराये गये, हमारा किसीने आदर नहीं किया, किसीने हमारी बात नहीं पूछी; किंतु हमने अपने जीवनका सदुपयोग किया, जिस कार्यके लिये हम आये थे उस कार्यको बना लिया तो हम कृतकार्य हो गये और हमारा जीवन धन्य हो गया।

सेवाके कई स्वरूप हैं। दूसरोंको मान-बढ़ाई देना भी सेवा ही है। सेवा रत्नोंकी ढेरी है। उसे छटनेकी चीज समझकर खूब छटना चाहिये। कोई भी नीचा काम—जैसे पैर धुलाना, हाथ धुलाना, पत्तल उठाना आदि—मिल जाय तो समझना चाहिये कि भगवान्की विशेष दया है। यदि किसी बीमारकी टट्टी-पेशाब उठानेका काम मिल जाय तब तो भगवान्की पूर्ण दया समझनी चाहिये। सेवाकार्यमें जितना उच्च भाव रक्खा जा सके, रखना चाहिये। यदि सेवाकार्यको साक्षात् परमात्माकी सेवा समझा जाय तब तो कहना ही क्या है? उससे परमात्मा बहुत जल्दी मिल सकते हैं।

उत्तम पुरुष उनको समझना चाहिये जिनमें स्वार्थ, अहंकार, दम्भ और क्रोध नहीं है, जो मान-बढ़ाई या पूजा नहीं चाहते, जिनके आचरण परम पवित्र हैं, जिनको देखने और जिनकी वाणी सुननेसे

परमात्मामें प्रेम और श्रद्धाकी वृद्धि होती है, हृदयमें शान्तिका प्रादुर्भाव होता है और परमेश्वर, परलोक तथा सत्-शास्त्रोंमें श्रद्धा उत्पन्न होकर कल्याणकी ओर झुकाव होता है।

ऐसे सुर-दुर्लभ मनुष्य-जन्मको पाकर भी जो लोग ताश-चौपड़ खेलते, गाजा-भाँग आदि नशा करते और व्यर्थका बकवाद तथा लोक-निन्दा करते रहते हैं वे अपना अमूल्य समय ही व्यर्थ नहीं बिताते; बल्कि मरकर तिर्यग्योनि अथवा इससे भी नीच गतिको प्राप्त होते हैं। परंतु बुद्धिमान् पुरुष, जो जीवनकी अमूल्य घड़ियोंका महत्त्व समझकर साधनमें तत्पर हो जाते हैं, बहुत शीघ्र अपना कल्याण कर सकते हैं। अतः जिज्ञासुओंको उचित है कि वे समयके सदुपयोग और सुधारके लिये विशेषरूपसे दत्तचित्त होकर साधनको परिष्कृत बनानेमें तत्पर हो जायें।

उद्धारका अर्थ क्या है? उन्नति। रुपये कमाना उन्नति नहीं है। संतान-वृद्धि भी उन्नति नहीं है। यह सब तो यहीं धरे रहेंगे। इनका मोह त्यागकर आत्मोद्धारके अति विलक्षण मार्गपर आगे बढ़िये। समयको व्यर्थ न खोइये।

परम दयालु परमात्माके कानूनके अनुसार जो अपराधी अपनी भूलको सच्चे दिलसे स्वीकार करता हुआ भविष्यमें फिर अपराध न करनेकी प्रतिज्ञा करता है और सच्चे हृदयसे ईश्वरके शरण होकर सर्वस्वसहित अपनेको उसके चरणोंमें अर्पण कर देता है एवं ईश्वरकी कड़ी-से-कड़ी आज्ञाको—उसके भयानक-से-भयानक विधानको, उसके प्रत्येक न्यायको सानन्द स्वीकार करता तथा उसे पुरस्कार समझता है, साथ ही अपने किये हुए अपराधोंके लिये क्षमा नहीं चाहकर दण्ड ग्रहण करनेमें खुश होता है, ऐसे सरल भावसे सर्वस्व अर्पण करनेवाले

शरणागत भक्तको भगवान् अपराधोंसे मुक्त करके अभय कर देते हैं ।

X X X

मङ्गा-यमुना आदि तीर्थ तो स्नान-पान आदिसे पवित्र करते हैं; किंतु भगवान्‌के भक्तोंका तो दर्शन और स्मरण करनेसे भी मनुष्य तुरंत पवित्र हो जाता है; फिर भाषण और स्पर्शकी तो बात ही क्या है ? तीर्थोंमें तो लोगोंको जाना पड़ता है और जाकर स्नानादि करके वे पवित्र होते हैं; किंतु महात्माजन तो श्रद्धा-भक्ति होनेसे स्वयं घरपर आकर पवित्र कर देते हैं ।

X X X

....श्रद्धापूर्वक किया हुआ महापुरुषोंका सङ्ग भजन और ध्यानसे भी बढ़कर है ।....

X X X

लोगोंसे छोटे-छोटे जीवोंकी बहुत हिंसा होती

है । हमें चलने, हाथ धोने, कुल्ला करने तथा मल-मूत्र त्याग करनेमें इस बातका ध्यान रखना चाहिये । हम इन जीवोंके जीवनका कुछ मूल्य नहीं समझते, किंतु स्मरण रखना चाहिये कि इस उपेक्षाके कारण बदलेमें हमें भी ऐसी ही निर्दयताका शिकार होना पड़ेगा । जो मनुष्य जीवोंकी हिंसाका कानून बनाता है, उसे तरह-तरहके कष्ट उठाने पड़ेंगे । यदि कोई पुरुष कुत्तेको रोटी देना बंद करेगा तो उसे भी कुत्ता बनकर भूखों मरना पड़ेगा । यदि किसीने म्युनिसिपल्टीमें कुत्तोंको मारनेका कानून बनाया तो उसे भी कुत्ता बनकर निर्दयतापूर्वक मृत्युका सामना करना पड़ेगा । कसाइयोंकी तो बड़ी ही दुर्दशा होगी । धन्य है उन राजाओंको जिनके राज्यमें हिंसा नहीं थी ।

(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीबालागिराम)

मनन-माला

(लेखक—३० श्रीमगनकाल हरिमाई व्यास)

१. दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति और परमात्माकी प्राप्ति को मोक्ष कहते हैं । इस मोक्षकी सिद्धि जबतक नहीं हो जाती, तबतक जीवको शान्ति नहीं मिल सकती । कुछ लोग कहते हैं कि मुक्तिकी प्राप्ति सहज है, परंतु वे ऐसा इसीलिये कहते हैं कि उन्होंने मुक्तिके स्वरूपपर विचार ही नहीं किया है । मुक्ति वस्तुतः स्व-स्वरूपमें स्थिति होनेपर भी सहज नहीं है ।

२. आत्मज्ञानके बिना किसी भी कालमें किसीको भी मुक्ति नहीं मिलती । मुक्तिके स्वरूपके सम्बन्धमें विभिन्न विचार हैं । कुछ लोग कहते हैं कि इस लोकमें फिर जन्म न हो और स्वर्ग या किसी उच्च लोककी प्राप्ति हो जाय तो उसे मुक्ति कहते हैं । परंतु यह कहना ठीक नहीं है । जिस प्रकार यह लोक नाशवान् है, उसी प्रकार कालविशेषमें सभी लोक भी नाशको प्राप्त होते हैं । जैसे इहलोकमें सुख-दुःख हैं, उसी प्रकार देवलोकोंमें भी सुख-दुःख हैं । वस्तुतः जो कभी बना है वह सत्र नाशवान् है । जब देह धारण हुआ है तो चाहे वह यहाँकी अपेक्षा दिव्य ही क्यों न हो, उसका नाश होगा ही । और भोग भी चाहे कैसे भी दिव्य क्यों न हों,

नाश होंगे ही । वस्तुतः स्व-स्वरूपके ज्ञानके बिना कभी मुक्ति सम्भव नहीं ।

३. साधकको ज्ञानके लिये पहले यह दृढ़ निश्चय करना जरूरी है कि मैं शरीर नहीं हूँ । शरीर, मन, इन्द्रिय, बुद्धि—इनमें कोई एक या सबका समुदाय मैं नहीं हूँ । मैं असङ्ग आत्मा हूँ—ऐसा चिन्तन बारंबार करे और इसके लिये निम्नलिखित दोहा बारंबार पढ़े तथा उसपर विचार करे—

नहीं देह नहीं इन्द्रियाँ, न मन-बुद्धि स्वच्छन्द ।
नहीं जीव, मैं आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द ॥

बन पड़े तो प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल, तीनों समय इस दोहेका अर्थ समझते हुए एक-एक माला जप करे । न बने तो एक माला रोज जरूर जप ले ।

‘मैं शरीर हूँ’—जबतक जीव यह मानता रहेगा, तब तक करोड़ उपाय करनेपर भी शाश्वत सुख-शान्ति तथा परमानन्दकी प्राप्ति नहीं होगी । हम शरीर नहीं हैं, यह निश्चय है, फिर भी हम अपनेको शरीर मानकर सारा व्यवहार करते हैं । इसलिये पहले इसीको बंद करे और

‘मैं शरीर नहीं, बल्कि शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिसे परे असङ्ग शुद्ध आत्मा हूँ’ यह चिन्तन करे। यह सिद्धान्त नितान्त सत्य है और इसके चिन्तनसे अवश्य शान्ति मिलती है।

४. इस जगत्में दो वस्तुएँ हैं—एक दृश्य और दूसरा द्रष्टा। ये दोनों परस्पर विरुद्ध स्वभावके हैं। कभी वस्तुका स्वभाव दूर नहीं होता। जबतक वस्तु है, तबतक उसका स्वभाव भी रहेगा। दृश्य विकारी और विनाशी है तथा द्रष्टा अविकारी और अविनाशी है। दृश्य प्रकृति और उसका कार्य है तथा द्रष्टा आत्मा है। शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि दृश्य कोटिमें प्रकृतिके कार्य हैं और द्रष्टा आत्मा इन सबसे विलक्षण है।

५. जिसको हम चाहते हैं या जानते हैं, वह वस्तु हम नहीं होते हैं—यह बात सच है न? शरीर, मन, इन्द्रिय और बुद्धि—इन सबको हम चाहते हैं या जानते हैं, इसलिये हम इन सबसे पृथक् हैं; और वह आत्मा हम हैं—इस बातका बारंबार चिन्तन और विचार करे। यह सहज ही दृढ़ नहीं हो जाता; क्योंकि अनेक जन्मके विरुद्ध संस्कार चित्तमें पड़े हुए हैं, वे विचार और सत्सङ्गके बिना सहजमें नहीं हटते। अनेक दूसरी युक्तियोंसे भी यह दृढ़ करे कि शरीर, मन, इन्द्रिय, बुद्धि आदिसे हम पृथक् हैं। वे सब दृश्य हैं और हम द्रष्टा आत्मा हैं, उन सबके साक्षी हैं।

६. जन्म शरीरका होता है, बढ़ता है शरीर, क्षीण होता है शरीर और वृद्ध होकर नाशको प्राप्त शरीर ही होता है। इन सब अवस्थाओंमें आत्मा तो जैसा-का-तैसा एकरूप रहता है। वह आत्मा सब कुछ देखता है, अनुभव करता है, साक्षी है। वह न जन्मता है, न बढ़ता है, न क्षीण होता है और न मरता है। उस आत्माको अग्नि जला नहीं सकता, उसे शस्त्र काट या छेद नहीं सकते, जल भिगा नहीं सकता, पवन सुखा नहीं सकता। वह सदा शान्त, निर्विकार एक स्वरूपमें रहता है। वह कुछ करता नहीं, कुछ करवाता नहीं। वह न मरता है और न मारता-मरवाता है। वह सदा एकरस, एकरूप, शान्त रहता है और वह आत्मा हम स्वयं हैं, यह सत्य है। इसका अनेक युक्तियोंसे विचार करके बारंबार चिन्तन करे।

७. यह खुला सत्य है कि शरीर जन्मता है, शरीर अन्न-जलसे बढ़ता है, शरीर रोगी और नीरोग होता है।

शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धिसे ही सारे कर्म होते हैं; मन, बुद्धि ही हर्ष-शोक करते हैं। तथापि यह सब हम ही कर रहे हैं, ऐसा हम मानते हैं। इसीका नाम है ‘अज्ञान’। जबतक यह अज्ञान अभ्यासके द्वारा नहीं मिट जाता तबतक सुख-शान्ति कैसे हो सकती है? जो अपराधी होता है, वह साक्षी नहीं होता और जो साक्षी होता है, वह अपराधी नहीं होता। यह बात सही है। यह भी ठीक है कि प्रकृतिसे शरीर, मन, इन्द्रियाँ और बुद्धिसे सारी क्रियाएँ होती हैं और इन सारी क्रियाओंको होते हुए हम देखते हैं, जानते हैं। यह बात भी सही है कि हम कर्ता नहीं हैं बल्कि साक्षी हैं; हम अपराधी नहीं हैं—बल्कि साक्षी हैं। फिर भी अपराधी कहलाकर दण्ड भोगनेके लिये हम राजी हैं, इससे बढ़कर मूर्खता क्या हो सकती है? संत और शास्त्र एक ही बात कहते हैं कि तुम कर्त्ता, अपराधी नहीं हो, तुम तो द्रष्टा साक्षी हो। यह निश्चय करो। कर्त्ता तो प्रकृति है, तुम प्रकृतिसे परे पुरुष हो। प्रकृतिसे असङ्ग और चेतन हो। यह बात सत्य है और विचारके द्वारा दृढ़ करने योग्य है।

८. कोई कहता है कि शरीर, इन्द्रिय और मन आदि कर्मके कर्त्ता ठीक ही हैं, परंतु प्रेरक तो हम आत्मा ही हैं, क्या यह ठीक नहीं? प्रकृति तो जड़ है और प्रेरक आत्मा है। फिर कर्मका कर्त्ता आत्मा क्यों नहीं होगा? इसका उत्तर यह है कि शरीर कर्म करता है, परंतु उसको प्रेरणा देनेवाले मन और बुद्धि हैं। जिनको शास्त्रमें ‘चित्त’ शब्दसे पुकारते हैं, अथवा चित्त ही सारे कर्मोंका कर्त्ता, भोक्ता है। इस चित्तसे आत्मा पृथक् है। हम इस चित्तके भी द्रष्टा हैं। जो द्रष्टा होता है वह दृश्यसे पृथक् होता है, यह सदा ध्यान रखना चाहिये। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—ये चारों मिलकर अन्न-करण होते हैं, जिसके लिये चित्त शब्दका प्रयोग होता है। यह चित्त ही एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरमें जाता है। यह चित्त हम नहीं हैं, बल्कि हम चित्तसे पृथक् हैं, यह बारंबार विचारपूर्वक चिन्तन करना चाहिये।

९. हम आत्मा हैं, चेतन-स्वरूप हैं, जन्म-जरा और मृत्युसे रहित हैं। प्रकृतिसे भिन्न हैं, सदा सत्स्वरूप हैं। इस प्रकार आग्रहपूर्वक विचार करते हुए चिन्तन करना चाहिये।

१०. जगत्में अथवा स्थावर या जङ्गम जो भी प्राणी उत्पन्न होता है, उसमें शरीर और आत्मा दोनों ही होते हैं। गीतामें शरीरमें इन वस्तुओंका समावेश किया गया है—पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन, पाँच विषय, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संघात, चेतना और धृति—इन सबसे बना हुआ शरीर कहलाता है। ये सब दृश्य हैं और हम इनके द्रष्टा हैं। सारे दृश्य विकारी और विनाशी होते हैं। आत्मा अविकारी और अविनाशी है। हम द्रष्टा हैं और आत्मा हैं। इस प्रकार युक्तिसे विचार करके देखे।

११. शरीरमें जो मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार अन्तःकरण नामसे पुकारे जाते हैं, इन सबका एक नाम 'चित्त' भी है। चित्त ही सारे कर्मोंका कर्ता और शरीरको चलानेवाला है। यह चित्त शस्त्रसे मरता नहीं, उपवाससे दुबला नहीं होता, इस चित्तको जितना समझाया जाय, उतना ही सत्यको समझता है। बलपूर्वक वह नहीं समझता। और जबतक चित्त नहीं समझता तबतक सब बेकार है। मैं आत्मा हूँ, यह शरीर नहीं हूँ—चित्त यह मान ले तो तदनुसार वर्तने लगेगा। यह चित्त भोगेच्छाके त्याग, विचार और सत्सङ्ग—इन तीनोंके विना कभी समझता नहीं है। सारांश यह है कि साधकको विचार, सत्सङ्ग और वैराग्यका सदा सेवन करना चाहिये तथा परमात्माकी आराधना करनी चाहिये। परमात्माकी शरण लिये विना कोई साधना सफल नहीं होती। यह चित्त जबतक मरता नहीं, तबतक आत्मा या परमात्माका दर्शन नहीं होता। इस चित्तकी सच्ची खूबाई भोगेच्छा है। जैसे-जैसे भोगेच्छा-रूप वासना घटती जायगी, वैसे-वैसे वह क्षीण होता जायगा।

१२. भोगेच्छाके शमनके लिये पुराण पढ़े और ज्ञानके लिये उपनिषद्, गीता और योगवासिष्ठ आदि ग्रन्थ पढ़े। पुराणोंको जो लोग गप्प कहते हैं, वे लोग विचारपूर्वक और ज्ञानके लिये पुराण नहीं पढ़ते। पुराणोंमें मनुष्यलोक और देवलोकका वर्णन है। उन सबमें वर्णित तथ्यकी सत्यता-असत्यताका विचार न करके इतना तात्पर्य लेना चाहिये कि देव-दानव या मनुष्य अनेक हो गये हैं, जो अनेक उपाय करनेपर भी अमर नहीं हो सके। सबके शरीर नाशको प्राप्त हुए हैं। दूसरे, अनेक लोग समृद्धि और वैभव,

शक्ति और साधनके होते हुए भी आज पर्यन्त भोगोंसे संतुष्ट नहीं हुए। तीसरे, चाहे जितने लोक हों, वहाँ सुख-दुःख तो होंगे ही। कोई भी लोक हो, वहाँका भोग नाशवान् तो होगा ही। अतएव हमको भोगके लिये या किसी लोकमें जानेके लिये कोई प्रयास नहीं करना चाहिये। जैसा यहाँ सुख-दुःख है, वैसा ही वहाँ भी है। ऐसा कोई लोक नहीं है, जहाँ दुःख न हो; ऐसा कोई शरीर नहीं है, जिसमें दुःख न हो और मृत्यु न हो। शरीर तो मरनेवाला ही है, फिर वह प्राकृत हो या इसकी अपेक्षा दिव्य हो। इस जगत्में आत्माके सिवा और कुछ भी नित्य नहीं। जो अनित्य और विकारी है, उससे शाश्वत सुख, अखण्ड आनन्द कैसे मिल सकता है? नित्य, आनन्द-स्वरूप और निर्विकारी तो एक आत्मा है और वह आत्मा हम हैं, यह बारंबार विचार करे।

१३. आत्मा शरीरमें है, फिर भी वह शरीरसे अलग है तथा शरीरसे पृथक् है, शरीरके धर्मसे लिप्त नहीं होता। यह आत्मा कैसा है? जैसा बुद्धि और चित्तसे निश्चय हो। चित्तमें सत्सङ्ग, विचार और वैराग्यसे आत्माके स्वरूपका निश्चय करके तदनुसार वर्तना चाहिये। जैसे धनवान् वह है जो धनके लिये दूसरोंसे भीख नहीं माँगता। इसी प्रकार, आत्मा सत्, चित् और आनन्दस्वरूप है, यह ठीक तौरसे जान लेनेके बाद चित्तमें सुख या आनन्दके लिये किसी प्राणी-पदार्थकी इच्छा नहीं होती। आत्मामें ही आनन्द प्राप्त करे, आत्माके साथ रमण करे। जिसको आत्मस्वरूपका सच्चा ज्ञान होता है, वह सुखके लिये तुच्छ भोगोंमें कभी नहीं रमता। वह सदा आत्माराम होता है। भोगेच्छाको छोड़े विना कभी कोई आत्माराम नहीं होता। आत्माराम होनेके लिये आवश्यक है कि चित्तमें जो कामनाएँ उठें, उनका त्याग करे। इन्द्रियोंको उनके भोगोंसे अलग रखे और चित्तको आत्मामें जोड़ दे। यह सहज ही नहीं होता, इसके लिये परमात्माका नाम रटते-रटते अभ्यास करना पड़ता है। चिन्तन करना चित्तका स्वभाव है। चित्त या तो भोगोंका चिन्तन करेगा या परमात्माका चिन्तन करेगा। दोनोंसे एक करेगा। इसलिये इसको सदा परमात्माके चिन्तनमें लगावे। यही चित्तशान्ति और भोग-त्यागका अमोघ उपाय है इसीके साथ सत्सङ्ग भी करता रहे—(क्रमशः)

अकबरके दरबारमें वीरवल नामके बहुत बड़े विद्वान् थे। उन्होंने एक बार अकबरसे कहा—‘ईश्वरको याद करो।’ अकबरने कहा—‘वीरवल ! तुम ईश्वर-ईश्वर तो कहते हो, पर क्या बता सकते हो कि तुम्हारा ईश्वर कहाँ रहता है, कैसे उसके दर्शन हो सकते हैं और यदि है भी तो वह क्या कर सकता है?’ वीरवलके लिये इन प्रश्नोंका उत्तर देना सरल न था। वीरवलने सात दिनका अवकाश माँगा। उन्हें कुछ उत्तर न सूझा। वे चिन्तित होकर नदीके किनारे पहुँचे। वीरवलको सभी जानते थे। एक अठारह वर्षका ग्वालेका लड़का वहाँ आया और वीरवलको दुखी देखकर उसने उनकी उदासीका कारण पूछा। उसके हठ करनेपर वीरवलने सम्पूर्ण बातें बता दीं। ग्वालेके लड़केने कहा—‘आप धराइये नहीं। मुझे बादशाहके पास ले चलिये। मैं इन प्रश्नोंका उत्तर दे दूँगा। आप जरा भी चिन्ता न करें।’

अगले दिन वीरवल ग्वालेके लड़केको लेकर बादशाहके पास पहुँचे, बोले—‘आपके प्रश्नोंका उत्तर यह ग्वालेका लड़का देगा।’ बादशाहको कुछ आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा—‘इतने कठिन प्रश्न, उत्तर देगा यह बालक?’ उन्होंने उसे उत्तर देनेके लिये कहा। लड़केने बादशाहसे कहा कि ‘जिससे हम कुछ जानना चाहें, उसका सत्कार करना चाहिये। आप पहले मेरा खिला-पिलाकर सत्कार कीजिये। उसके बाद उत्तर दूँगा।’ बालकके दूध माँगनेपर उन्होंने दूध मँगवाया। बालकने कटोरेको लेकर उसके अंदर झाँका। इधर-उधरसे उसको देखा, फिर अँगुली डालकर उसमेंसे कोई वस्तु खोजने लगा। देर होते देख बादशाहने कहा, ‘बालक ! दूध पीते क्यों नहीं?’ लड़केने कहा, ‘बादशाह ! मैंने सुना है कि दूधमें मक्खन होता है; परंतु इसमें मक्खन दिखायी नहीं देता, अँगुली डालकर उसे ही खोज रहा हूँ।’ बादशाहने हँसते हुए कहा—‘बालक ! तुम इतना भी नहीं जानते कि मक्खन इसमें अवश्य है, उसे देखना हो तो दूधको दही डालकर जमाना पड़ता है, दही बन जाय तो उसे मथनीसे मथना पड़ता है, विलोना पड़ता है। तब मक्खन ऊपर आता है।’

बच्चेने कहा—‘सुनो बादशाह ! तुम्हारे पहले दो सवालोंने जवाब यही है। ईश्वर है सब जगह। संसारके कण-कणमें उसीकी सत्ता है। क्या इस विश्वकी रचनामें उस विराट् प्रभुका हाथ दिखायी नहीं देता, जिसका एक-एक नियम

अदृष्ट और अविचल है। जिसकी व्यवस्था अचम्भेमें डालती है, जिसका न्याय अक्षुण्ण और अपूर्व है, सम्पूर्ण ज्ञानोंके भण्डार वेद जिसके निःश्वासमात्र हैं, अनन्तकालसे संसारमें प्रकाशका प्रसार करनेवाले सूर्य और चाँद उसकी लीलाके निमेषमात्र हैं। फूलकी पंखड़ियोंमें, तितलीके पंखोंमें, पक्षियोंके परोंमें, बादलोंमें, इन्द्रधनुषमें, प्रभातकी उपामें, संध्याकी छिटकती लालीमें कौन चित्रकार बैठा अपनी तूलिकासे माँति-माँतिके रंग भर रहा है। पवनके झकोरोंमें, झरनोंकी झरझरमें, बादलोंकी गर्जनमें, पक्षियोंके कलरवमें, प्रपातोंकी झनकारमें और नदियोंके कलकलमें कौन चतुर, गवैया बैठा अपनी संगीतकी सुरीली तान छेड़ रहा है? यह वह जगन्निन्यन्ता परमेश्वर है। परंतु याद रखो बादशाह ! जब मनको प्रभुनामका दही डालकर जमाया जाता है और उसे धारणा, ध्यान और समाधिकी मथानीसे विलोया जाता है तब भक्त अपने हृदयमें भगवान्के दर्शन करता है।’ बालकका उत्तर सुनकर बादशाहने कहा—‘अच्छा, दो प्रश्नोंका उत्तर तो हुआ। अब तीसरा प्रश्न बतलाओ कि वह क्या कर सकता है?’ बालकने कहा—‘यह प्रश्न आप गुरु बनकर पूछते हैं या शिष्य बनकर?’

बादशाहने कहा—‘शिष्य बनकर पूछता हूँ।’ बालकने कहा—‘अद्भुत शिष्य हो तुम, गुरु नीचे पृथ्वीपर खड़ा है और तुम ऊपर तख्तपर विराजमान हो। गुरुकी महिमा महान् है। उसका आसन ऊँचा है।’

यह सुनकर बादशाह नीचे उतर आया और लड़केको सिंहासनपर बैठाया और हाथ जोड़कर बोला, ‘अब बताओ वह क्या करता है?’

बालकने हँसकर कहा, ‘वह परमेश्वर वही करता है, कि एक दरिद्र ग्वालेके लड़केको सिंहासनपर बैठाता है और बड़े-बड़े सम्राटोंको नीचे उतार देता है।’ यह खेल क्या हमने अपनी आँखोंसे नहीं देखा। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं, जमींदारोंको हमने गलियोंमें खाक छानते देखा है और जेलोंके बन्दियोंको शासन करते देख रहे हैं। अरे, मनुष्य ! इस महान् प्रभुकी शक्तिको क्या तू नहीं जानता ? जिस समय इस विशाल ब्रह्माण्डका रचयिता विराट् प्रभु प्रलयका ताण्डव करता है, धरती काँप उठती है। आसमानमें चमकनेवाले सूर्य, चाँद और सितारे टूट पड़ते हैं। ऊँचे खड़े पहाड़ोंका कण-कण चकनाचूर हो जाता है। इतना है

शक्तिशाली वह प्रभु ! हमारे मुखसे उसके लिये निकल पड़ता है—

अणोरणीयान् महतो महीयान् ।

प्रभु महान्-से-महान् है और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म है ।
इसलिये—

रे मन ! उसका कर चिन्तन
ऊँचे ऊँचे व्योम-विचुम्बितः
शैल-शृंगः उत्तुंग हिमावृतः
अविचल पर्वत हैं महिमान्वित
करते जिसका आराधन ।

जिज्ञासा

[जाननेकी इच्छा]

(लेखक—प्रो० श्रीसीतारामजी गुप्त एम्० ए०, पी० ई० एस्० (अवसरप्राप्त))

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू-

स्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ॥

(कठोपनिषद् ३ । २ । १)

अर्थात् स्वयम्भू—परमेश्वरने समस्त इन्द्रियोंको बाहरकी ओर जानेवाला बनाया है, इस कारण मनुष्य बाहरकी वस्तुओंको ही देखता है और अपने अन्तर्हृदयमें स्थित अपने आत्माको नहीं देखता ।

इन्द्रियाँ दो प्रकारकी हैं—(१) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—नाक, कान, आँख आदि जिनके द्वारा मनुष्य इस विश्वके विषयमें ज्ञान प्राप्त करता है और (२) पाँच कर्मेन्द्रियाँ—हाथ, पाँव आदि जिनके द्वारा इस सृष्टिमें मनुष्य कर्म करता है ।

ज्ञान और कर्म—दोनों ही इस जीवनमें साथ-साथ चलते हैं । आँखोंसे देखने, कानोंसे सुनने, नाकसे सूँघने, जिह्वासे चखने तथा हाथ-पाँवसे छूनेकी प्रवृत्ति मनुष्यमें स्वाभाविक है । जन्मसे ही अपने इर्द-गिर्दकी वस्तुओंके जाननेकी बड़ी तीव्र उत्कण्ठा मनुष्यमें स्वाभावतः होती है । वह अपनेसे बाहरकी वस्तुओंको बड़े ध्यानसे देखता है और अपनी अद्भुत ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा सृष्टिके रंग-रूपको जानने और समझनेकी चेष्टा करता है । बड़ा होकर वह प्रयोगशालाओंमें वैज्ञानिक उपकरणोंकी सहायता भी लेता है और भौतिक विज्ञान प्राप्त करता है । दूरवीक्षण यन्त्रोंसे नक्षत्रों, ग्रहों, तारागणों तथा तारापुञ्जोंका निरीक्षण करके इनके विषयमें बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त करता है, जिससे वह इस परमात्माकी सृष्टिको किसी हृदयक जानने लगता है ।

जबसे मनुष्यने इस पृथ्वीपर जन्म लिया तबसे ऐसा ही करता रहा है और करता रहेगा । यह इसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति

है । यह स्वाभाविक तीव्र इच्छा ही मनुष्यके व्यक्तिगत तथा सामाजिक विकास तथा उन्नतिको कारण हुई है ।

मनुष्यकी इस स्वाभाविक प्रवृत्तिमें जब कोई रुकावट—बाधा पड़ती है, तब उसे दुःख होता है । इस बाधाको दूर करनेके लिये वह पूरा प्रयत्न करता है । मुझे याद पड़ता है कि शिशु-अवस्थामें मेरे एक पुत्रने, जो अब एक सर्जन है, मेरी घड़ीको उठाकर देखना चाहा, इस डरसे कि वह घड़ीको तोड़ न दे, मैंने घड़ी उससे बचाकर एक खुले संदूकमें रख दी । दो-एक दिनके पश्चात् मेरे पीछेसे उसने उस घड़ीको निकाल लिया और उसे तोड़ डाला । तब मुझे ध्यान आया कि मैंने उस बच्चेकी जाननेकी स्वाभाविक इच्छामें उसकी सहायता करनेके बजाय उसकी इच्छाको दवानेकी चेष्टा की थी । यदि मैं उसे अपने सामने उस घड़ीको देखने देता और उसे समझा देता कि घड़ी किस तरह टिक-टिक करती है और वह किस काम आती है, घड़ीको उसके कानपर लगाकर उस टिक-टिकको सुननेकी उसकी इच्छाको पूरी कर देता, तो बच्चेकी जिज्ञासा पूरी हो जाती, बच्चा संतुष्ट हो जाता और घड़ी भी बच जाती ।

जहाँतक जीवन-निर्वाहका सम्बन्ध है, वहाँतक तो जीव-जन्तुओंको भी अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओंको पूरा करनेकी इच्छा रहती है । गरमी, सर्दी तथा वर्षासे बचनेके लिये वे तरह-तरहके साधन खोज निकालते हैं । चूहे, सर्प आदि छोटे-छोटे जन्तु पृथ्वीके भीतर छोटे-छोटे विल बनाते हैं; सिंह, चीते आदि बड़े पशु बड़ी-बड़ी खोहे बनाते हैं अथवा पहाड़ोंके बीचकी दरारों या गुफाओंमें विश्राम करते हैं । दीमक इर्द-गिर्दसे मिट्टीका एक-एक कण इकट्ठा करके कितनी

बड़ी और कितनी सुन्दर बाँधी बनाती है, जिसके भीतर अपनी दौड़-भागके लिये वह बारीक-बारीक मार्ग भी रखती है।

पक्षीगण कैसे-कैसे सुन्दर घोंसले बनाते हैं। कबूतर मकानों अथवा बावलियोंकी दीवारोंकी कन्नसोंमें अपने आपको छिपा लेते हैं।

पशु-पक्षीकी पहुँच तो केवल प्राकृतिक साधनोंतक ही रहती है परंतु मनुष्यको ईश्वरने सोचने-विचारनेके लिये मन तथा निश्चयात्मक बुद्धि प्रदान की है, वह अपनी शारीरिक आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिये बड़े-बड़े व्यवसायात्मक साधन खोज निकालता है। वह रहनेके लिये बड़े-बड़े मकान अथवा भवन बनाता है। वह इनको गरम रखनेके लिये और बाहरकी गरमीको रोकनेके लिये तरह-तरहके वातानुकूल उपाय करता तथा यन्त्र लगाता है। अपने शरीरकी रक्षाके लिये वह नाना प्रकारके कपड़े तैयार करता है और नाना प्रकारके भोजन बनाता है। उनके उपादान कपास, ऊन और नाना भौतिक अन्न पैदा करता है। कपड़े बनानेके लिये तरह-तरहकी मशीनें और कार्यालय बनाता है। इन मशीनोंको चलानेके लिये तेल, कोयला, पानीके प्रवाह आदि प्राकृतिक साधनोंसे विजली उत्पन्न कर लेता है। यातायातके उसने अनेक उपाय—रेल, मोटरें, वायुयान आदिका आविष्कार किया है। उसके ये प्रयत्न नित्य जारी रहते हैं। इनका कोई अन्त नहीं है। मनुष्यकी यह जिज्ञासा अब इतनी बढ़ गयी है कि अब उसके पैर पृथ्वीपर भी नहीं टिकते। उसने पृथ्वीके चारों ओर चक्कर लगाये हैं, चन्द्रमापर पहुँचनेकी तैयारीमें लगा हुआ है और उसके अदृश्य भागके फोटो तो उसने प्राप्त कर लिये हैं।

मानसिक जिज्ञासाको पूरा करनेके लिये मनुष्यकी वैज्ञानिक उन्नतिका बड़ा महत्त्व है। ज्योतिषविद्याका इतना विकास हुआ है कि मानवको सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंके नियमित उदयास्तका, चन्द्रमाके विधिवत् घटने-बढ़नेका, सूर्य-चन्द्र-ग्रहणका तथा सूर्यकी शक्तिका पूरा ज्ञान है। इसके अतिरिक्त उसने ऐसे यन्त्र बना लिये हैं जिनकी सहायतासे वह करोड़ों-अरबों मील दूर नीहारिकाओंके विषयमें भी जानकारी रखता है। वनस्पतियों और जन्तु-शास्त्रके अतिरिक्त उसने रसायन-शास्त्रमें भी बहुत उन्नति की है।

संचार-व्यवस्थाकी दिशामें मनुष्यने टैलियोग्राफ, रिले, सिकम आदि अनेक अन्तरिक्ष यान बनाये हैं जिनके द्वारा मनुष्य विश्वके किसी स्थानमें किसी दूसरे स्थानपर समाचार तत्क्षण सुन सकता है, यही नहीं, टैलिविजनके द्वारा दूरदेशीय दृश्योंको देख सकता है। १९६४ में जापानमें खेले गये आलिम्पिक खेलोंको तत्काल अमेरिकामें देखा गया था। यह विषय बड़ा गम्भीर है। इसकी थोड़ी-सी व्याख्याके लिये भी एक अलग लेखकी आवश्यकता है।

मनुष्यकी जिज्ञासा केवल शारीरिक तथा मानसिक सुख-साधनोंतक ही सीमित नहीं है। इसके मनमें 'कस्त्वं कोऽहम्' अर्थात् मैं कौन हूँ, सृष्टि क्या है, इसका बनानेवाला कौन है, इसका कब अन्त होगा, मैं भविष्यमें रहूँगा या नहीं, यह सृष्टि रहेगी या नहीं, इससे पूर्व मेरा तथा सृष्टिका अस्तित्व था या नहीं, संसारमें सुख-दुःख क्यों देखनेमें आते हैं? सच्चा सुख क्या है, मनुष्यका प्रकृतिके साथ क्या सम्बन्ध है? इत्यादि—इस प्रकारके अनेक, असंख्य प्रश्नोंकी जिज्ञासा बनी रहती है। यही सच्ची जिज्ञासा है और इन प्रश्नोंका समाधान ही सच्चा ज्ञान है।

जैसा कि ऊपर लिखे मन्त्रमें कहा गया है कि 'पराङ्मुखा पश्यति नान्तरात्मन्' ऐसे प्रश्नोंपर विचार करनेवाले मनुष्य विरले ही होते हैं।

'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित्तति सिद्धये' हजारोंमें एक-दो ही पुरुष ऐसे होते हैं जो इन आध्यात्मिक बातोंपर विचार करते हैं।

जो पुरुष इन प्रश्नोंपर विचार नहीं करते और इनसे विमुख रहते हैं, वे सच्ची शान्तिसे वञ्चित ही रहते हैं। वे खाओ, पियो, मौज उड़ाओके चक्करसे परे निकलने नहीं पाते। ऐसे मनुष्योंको शास्त्र पशुके समान बताते हैं।

आहारनिद्राभयमैधुनं च

सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो

धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

कहते हैं कि सन् १९५३ में विवाहसे एक दिन पूर्व जैकलीनने स्व० श्रीकैनेडीसे पूछा—'तुम्हारी अपनी नज़रमें

तुम्हारी सबसे बड़ी खूबी क्या है ?' श्रीकैनेडीने उत्तर दिया कि 'उनके अपने खयालमें जिज्ञासा उनकी सबसे बड़ी खूबी है ।'

प्रतीत होता है कि यही गुण उनकी सफलताका रहस्य था । इसीसे वे अमेरिकाके सर्वोच्च पदपर पहुँच गये ।

जिन महापुरुषोंकी धर्मसम्बन्धी जिज्ञासा प्रबल होती है, उनकी दृष्टिमें सांसारिक वैभव तुच्छ होते हैं । गौतम-बुद्धके जीवनसे हम इसकी सत्यताका अनुभव भली प्रकार कर सकते हैं । राज्यका अपरिमित वैभव तथा भोग-विलासकी प्रचुर सामग्री उपलब्ध होते हुए भी उन्हें विषय-भोगके बन्धन बाँध नहीं सके । राजा जनक कहते थे कि 'यदि जनकपुरी जलने लगे तो उनका कुछ बिगड़नेवाला नहीं है ।'

धार्मिक जिज्ञासावृत्तिका सर्वोत्तम उदाहरण नचिकेता है । उसका वर्णन कठोपनिषद्में मिलता है । नचिकेता (नो चिकेतस्) का अर्थ ही यह है कि जिसके अंदर जाननेकी तीव्र इच्छा हो, परंतु जानता न हो । यमसे उसने ब्रह्मविद्याके सम्बन्धमें कई प्रश्न किये । यमने तरह-तरहके बड़े-बड़े प्रलोभन देकर उसे इस जिज्ञासा-भावको छोड़ देनेके लिये अनेक प्रकारसे प्रेरित किया । उसके सामने चिरंजीवी पुत्र-पौत्र, अमित धन-राशि, त्रिलोकीका राज्य इत्यादि अनेक प्रलोभन रखे परंतु उसने उन सबको तुच्छ समझा और कहा—

श्रोभावा मर्त्यस्य...सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः...
तत्रैव बाहास्तव नृत्यगीते ॥ (कठोपनिषद् १ । १ । २६)

अर्थात्—हे यमराज ! ये सारे भोग तो क्षणभङ्गुर हैं, आज हैं कल नहीं हैं, ये इन्द्रियोंके तेजको क्षीण करनेवाले हैं । ये रथ, घोड़े, धन, सम्पत्ति, वैभव, ऐश्वर्य—आप अपने पास ही रखें ।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः । (कठोपनिषद्)

चाँदी और सोनेके रुपहले-सुनहले टुकड़ोंसे क्या मनुष्यका पेट भरा है ?

मैत्रेयीसे जब याज्ञवल्क्यजीने कहा कि—

अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन । (बृहदा०)

‘हे मैत्रेयी ! धन-पूर्ण पृथ्वीसे भी अमृतकी आशा न रख, तू धन-सम्पत्तिसे अमरत्वको नहीं पा सकती ।’

तब मैत्रेयीने कैसा ऊँचा विचार प्रकट किया,—

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम् ॥ (बृहदा०)

अर्थात् यदि धनादिकी प्राप्तिसे मुक्ति न पा सकूँ, अमृत न पा सकूँ तो मैं ऐसे धनका क्या करूँ । सिकन्दर महान्ने सारे विश्वमें लूट-मार करके असीमित धनराशि इकट्ठी की । परंतु अन्त समयमें उसे उस सारी सम्पत्तिके बदलेमें जीवनका एक क्षण भी न मिल सका; न वह उस सम्पत्तिका लेशमात्र भी अपने साथ ले जा सका । इसीलिये तो कहते हैं कि ‘सिकन्दरके हाथ दोनों खाली कफनसे निकले ।’

ठीक ही है कि यदि मनुष्यका मरण अनिवार्य है ‘जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः’ तो उसके लिये अनित्य पदार्थ किस कामके ? जीवन अल्प है, इसको भोग-विलासमें मूँह लोग ही व्यतीत करते हैं और इन क्षणिक पदार्थोंपर धमंड करके दूसरोंकी अवज्ञा करते हैं, दूसरोंको कष्ट पहुँचाते हैं । युद्ध-विराम समझौता हो जानेके पश्चात् भी पाकिस्तानने अमृतसरके पास छहरहटापर बम-वर्षा करके शहरका नाश किया । पहले अम्बालेमें गिरजाघर धराशायी किया, लुधियानेमें मस्जिदको तोड़ा तथा उसके अंदर प्रार्थना करनेवाले मुसलमानोंके प्राण लिये । यह राक्षसी वृत्ति है ।

इस प्रवृत्तिको दवानेका केवल एक ही उपाय है—वह धर्म है, ब्रह्मज्ञानकी जिज्ञासा है ।

इस प्रकारकी धार्मिक जिज्ञासा ही सच्चे ज्ञान तथा आत्म-दर्शनकी जननी है । इस जिज्ञासाके कारण ही धार्मिक ग्रन्थोंका विकास हुआ जो मनुष्यको मानवताका दर्शन कराते हैं । इसके लिये तपश्चर्याका जीवन आवश्यक है । आत्म-सुधार तथा सद्-व्यवहार और उच्च विचारोंके लिये तीव्र उत्कण्ठा, तीव्र जिज्ञासाकी आवश्यकता है ।

दम-सम्पन्न (दान्त)

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

‘दम इन्द्रियसंयमः ।’

‘अध्यात्मतत्त्वकी उपलब्धि करनी है तो इन्द्रियोंका दमन करो ।’ महात्माने जितने सीधे ढंगसे बात कह दी, कदाचित् उसका करना भी इतना ही सीधा सरल होता ।

‘शरीरको स्वस्थ रखना है तो इन्द्रियोंको साधो !’ पता नहीं क्या बात थी कि आज ये अवधूतजी एक ही बातके पीछे पड़ गये थे । कोई किसी प्रयोजनसे आते आज इन्हें इस एक ही उपदेशकी धुन थी ।

‘यश अपेक्षित है तुम्हें ? इन्द्रियोंको दबाओ !’ अवधूतजीने बात भी पूरी नहीं सुनी और उपदेश दे दिया ।

‘इन्द्रियोंको दमन करो, इन्द्रियोंको दबाओ, इन्द्रियोंको साधो’ सुनते-सुनते ऊब गया वह । उसकी साधु-संतोंमें श्रद्धा है । इन अवधूतजीसे उसे विशेष प्रेम है । ये भी इधर दो-तीन महीनेमें आ जाते हैं और आते हैं तो पाँच-दस दिन इसी आमोदबानमें रुकते हैं । ओषधि, ज्योतिष, मन्त्र और पता नहीं, क्या-क्या अल्लम-गल्लम आता है अवधूतजीको । ग्रामके सीधे श्रद्धालु लोग साधुको सर्वसमर्थ सहज ही मान लेते हैं । उसकी धारणा है कि अवधूतजी उत्तम साधु हैं तथा योग-साधनोंके ज्ञाता भी । दूसरी बातें तो वे लोगोंके आग्रहसे उन्हें संतुष्ट करनेको करते हैं ।

‘नारायण ! यह सब आपका नाटक है । आप जो अभिनय कराना चाहते हो, करता हूँ ।’ अवधूतजी मस्तीमें आनेपर ऐसी बातें कहने लगते हैं, जो दूसरोंकी समझमें कम आती हैं । ‘यह रोग ग्रह-पीड़ा और

यह आपका व्याकुलता नाट्य—नाट्य ही तो है यह सब आपका । आप लीला करना चाहते हो तो करो ।’

‘आपने आयुर्वेद और ज्योतिषका अध्ययन कहाँ किया था ?’ उसने एक दिन पूछ लिया था ।

‘नारायण ! रोग-शोक कहाँ हैं तुम्हारे स्वरूपमें ।’ वे सबको नारायण ही कहते । हैं ‘अच्छा हैं भी तो कर्म-प्रारब्धका भोग मानते हो न उन्हें । चिकित्सा तथा दूसरे प्रयत्न एक प्रकारके कर्म-प्रायश्चित्त ही हैं । मेरा ज्ञान कैसा । तुम मुझे अपनी लीलामें योग देनेको कहते हो तो मैं तुम्हारी इच्छाका पालन करता हूँ ।’

बात उसके पल्ले भी कम ही पड़ती है; किंतु अवधूतजी उसे बहुत अच्छे लगते हैं । सम्पन्न घरका युवक है । घरपर काम कुछ है नहीं । पिताकी सावधानी तथा भगवान्की कृपासे कोई दुर्व्यसन नहीं लगा । अवधूतजी आते हैं तो वह प्रायः पूरे दिन उनके समीप रहता है । घर केवल भोजन करता है । उसकी चले तो अपने घरसे ही नित्य भिक्षा लये इन साधुजीके लिये; किंतु दूसरोंकी श्रद्धाको भी स्तुकार मिलना चाहिये । अवधूतजी उसका ऐसा आग्रह नहीं स्वीकार करते, इसका औचित्य वह समझता है ।

‘संसारसक्त प्राणी सुख-शान्ति पा जाय तो प्रभुको स्मरण ही क्यों करे ।’ एक दिन अवधूतजीने ही उससे कहा था । ‘सृष्टिकर्ताने इसीलिये समस्त सुख-साधनोंमें अपूर्णत्व, अशान्ति और क्लेशके बीज डाल दिये हैं । सृष्टिमें सुख-शान्तिके प्रलोभनसे जिस पुष्पका स्पर्श करो, वहीं कष्टका, असंतोषका कड़ा दंश प्राप्त होता

है। यह तुम्हारी ही तो व्यवस्था है नारायण ! तुम्हारी असीम अनुकम्पाका स्वरूप है यह ।'

रोगी उत्पीड़ित अभावग्रस्त अथवा कामनाओंके गारे लोग ही तो हैं संसारमें। अवधूतजी आते हैं तो उनके पास आर्त प्राणियोंकी भीड़ आती है। किसीको ओषधि बतलायेंगे, किसीको ग्रह-शान्ति करनेको कहेंगे। मन्त्र, अनुष्ठान अथवा कोई आसन-प्राणायाम बतायेंगे। जिज्ञासु कम ही आते हैं। संसारके आकर्षणसे प्राण छूटें तो इसके परे क्या है, यह जाननेकी इच्छा हो। जो गिने-चुने दो-चार जिज्ञासु आते हैं, अवधूतजी उनका बहुत आदर करते हैं। उनको स्नेहसे समीप बैठकर उपदेश करते समय स्वयं पुलकित हो जाया करते हैं।

‘आपने साधन तो बतला दिये; किंतु उनको करनेमें मन तो लगता नहीं।’ आज सबेरे ही उसने पूछा था और तबसे अवधूतजीको ‘सब नुसखेमें अमिलतास’ वाली धुन चढ़ी थी। उसे तो उन्होंने इन्द्रिय-दमन बतलाया ही, रोगियोंको, संतानकामनासे आने-वालोंको, मुकदमेकी चिन्ता लेकर जो आया उसे और चुनावमें जीतनेका आशीर्वाद लेने पधारे नेताजीको भी एक ही उपदेश देते चले गये।

× × ×

‘आप एक कहानी सुननेकी कृपा करेंगे ?’ जब एकान्त मिला, युवक समीप बैठकर अवधूतजीके पैर दबाते हुए बोला।

‘सुनाओ !’ साधुने विशेष ध्यान दिये बिना कह दिया।

‘मेरे बच्चेको ज्वर आया है।’ एक वृद्ध एक वैद्यजीके पास पहुँचा तो वैद्यजीने अपने पुत्रसे कहा— ‘जुलाव दे दो !’

‘मेरे घुटनोंके जोड़ोंमें बहुत दर्द रहता है।’ दूसरा रोगी आया।

‘जुलाव दे दो !’ वैद्यजीने फिर कह दिया।

‘मेरा भाई गिर गया था। पैरमें बहुत चोट आयी है।’

‘जुलाव दे दो !’ वैद्यजीके पास नुस्खा ही दूसरा नहीं था।

युवककी यह कहानी सुनकर अवधूतजी जो ले गये थे, उठ बैठे और खूब हँसे। उन्होंने कहा— ‘तुम कहना क्या चाहते हो ? यह कि मैं उन वैद्यजी जैसा हो गया हूँ ?’

युवक मौन बना रहा। अवधूतजीने समझाया— वैद्यजी बहुत कम स्थानोंपर असफल होते होंगे। शरीरके अधिकांश रोगोंका मूल उदर है। उदर स्वच्छ हुआ तो रोग अपने-आप चले जायँगे। मुझे जहाँ दीखेगा कि मेरा नुस्खा अनुपयोगी है, उसमें परिवर्तन कर दूँगा।

‘दुखता सिर है और आप कहते हैं पैरमें मलहम मलो !’ युवक बहुत खुल गया था महात्माके समीप। वैसे भी साधुसे संकोच नहीं होता, यदि वह सचमुच साधु हो।

‘असंयमसे रोग होते हैं इसे तुम जानते हो !’ अवधूतजीने स्नेहपूर्वक समझाना प्रारम्भ किया। ‘अधिकांश रोग जिह्वा तथा उपस्थके अतिचारसे होते हैं। इनका संयम करो तो जो विकार देहमें आये हैं प्रकृति उन्हें स्वयं दूर कर देगी।’

‘मामले-मुकदमे, ग्रह-दोष सब इन्द्रियसंयमसे मिट जायँगे ?’ युवकके लिये यह बात समझना सरल नहीं था।

‘झगड़े जिह्वाके दोषसे होते हैं। इन्द्रियोंको शान्त रखो। प्रतिपक्षी पिशाच ही न हो तो देर-सबेर स्वयं लजित हो जायगा।’ अवधूतजी कह रहे थे। ‘तभी समझे तो तुम तो दोषसे बचोगे और हानि दूसरा कर नहीं पाता। वह तो अपने ही कर्मका फल है।’

ग्रहोंकी बात भी समझ लो । किसी अनुष्ठानसे ग्रह अपनी राशि तो परिवर्तित नहीं करेगा । राशि-परिवर्तन तो समयपर ही होगा । अनुष्ठान उसके प्रभावको निष्क्रिय करता है । इन्द्रियसंयम स्वयंमें तप है और उसकी शक्ति किसी तप या अनुष्ठानसे कम नहीं है ।

‘और वे नेताजी संयमी बन जायँ, लंबे व्याख्यान बंद कर दें तो चुनाव जीत लेंगे ?’ युवकको अब भी लगता था कि सबको एक ही उपदेश देना साधुकी सनक ही है ।

‘तुम सच बतलाओ, तुम्हारे क्षेत्रमें कोई सरल संयमी सीधा व्यक्ति ऐसा है, जो सबकी सेवा करता हो ?’ महात्माने पूछ लिया ।

‘है’—युवकको कुछ क्षण सोचना पड़ा । उसने एक अहीर भगतका नाम लिया था ।

‘मैं उसे जानता हूँ । वह व्याख्यान तो क्या देगा ठीक बात करते भी संकोच करता है ।’ अवधूतजी बोले । ‘मैं किसी प्रकार उसे चुनावमें खड़ा कर दूँ, तुम्हारा क्या अनुमान है कि उसको कुछ मत प्राप्त होंगे ?’

‘भगत खड़ा नहीं होगा ।’ युवकने कहा, किंतु झिझक गया । नेताजीसे उसका अच्छा सम्बन्ध है । अवधूतजी कोई आज्ञा देंगे तो वह अशिक्षित श्रद्धालु भगत टाल ही देगा, यह उसे भगतके चुनावमें खड़े होनेसे अधिक कठिन लगा । उसने कहा—‘आपकी आज्ञा मानकर वह खड़ा हो जाय तो इस क्षेत्रमें कुछ अत्यन्त स्वार्थी ही हैं जो उसे मत नहीं देंगे । वह बिना कुछ व्यय किये जीत जा सकता है ।’

‘इसका अर्थ है कि भ्रष्टतम व्यक्तिके मनमें भी संयमके प्रति अत्यधिक आदर-भाव है । वह भले स्वयं उसे जीवनमें अपना न सके ।’ अवधूतजीने कहा ।

मई ३—

‘जनता आज अयोग्य असंयमी स्वार्थपरायण विद्वानोंसे ऊब चुकी है और उनके स्थानपर अशिक्षित, अज्ञ, संयमीको भी अपना प्रतिनिधि बनाना पसंद करती है ।’

साधुकी वाणीमें जो सत्य था, उसे युवक कैसे अस्वीकार कर दे ? कोई भी उसे कैसे अस्वीकार कर सकता है ? युवकने मस्तक झुकाकर विनम्र स्वरमें कहा—‘मैं अपना स्पष्टीकरण सुनना चाहता हूँ ।’

‘अब कल !’ अवधूतजी उठ गये । ‘कानोंसे ग्रहण किये गये आहारको पचनेका भी अवकाश दो ।’

श्रुत-तत्त्वको मनन करनेका अवकाश मिलना चाहिये, यह बात जहाँ सत्य थी, वहाँ यह बात भी सत्य थी कि युवक भूल ही गया था कि उसके संध्या-वन्दनका समय हो गया है । कालका अतिक्रम अत्यन्त विवशता होनेपर ही वह करता था ।

x x x

‘तुम अपने सबसे छोटे भाईको दस सेर भार लानेको कह सकते हो ?’ दूसरे दिन प्रातःकाल प्रणाम करके जैसे ही वह बैठा, अवधूतजीने पूछा उससे ।

‘दस सेर ? वह तो अभी केवल तीन वर्षका बच्चा है । अभी पिछले दिनों ही बीमार रहा है ।’ युवकने याचना भरे स्वरमें कहा । ‘ऐसा क्या कार्य है ? कोई दूसरा उसे नहीं कर सकता ?’

‘भगवान्में तुमसे कम ममत्व और करुणा है, इसे माननेका कोई कारण है तुम्हारे समीप ?’ अवधूतजी ऐसे अटपटे, अप्रासंगिक प्रश्न प्रायः कर बैठते हैं । इससे किसीको आश्चर्य नहीं होता ।

‘उन करुणावरुणालयकी अनन्त कृपाका क्षुद्रतम सीकर सम्पूर्ण सृष्टिको सनाथ करता है ।’ युवकने भरे स्वरमें उत्तर दिया ।

‘तब तुम जो नहीं कर सकते, उसकी तुमसे अपेक्षा वह दयाधाम नहीं करेगा। उसके लिये तुम्हें चिन्ता क्यों है ?’ अवधूतजीके स्वरमें अत्यन्त वात्सल्य उमड़ आया। ‘तुम उसके लिये जो कर सकते हो, उसमें प्रमाद मत करो, यही उसे संतुष्ट करनेके लिये पर्याप्त है।’

‘देव !’ युवकने मस्तक रक्खा महात्माके चरणोंपर।

‘मन तुम्हारे वशमें नहीं है। वह तुम्हारे लगाये कहीं नहीं लगता तो तुमसे अपेक्षा भी नहीं की जायगी कि तुम मन लगाकर एकाग्रतासे ही कुछ करो।’ अवधूतजीने अपनी बात स्पष्ट की। ‘तुम्हारे अधिकारमें

मन नहीं तो उसे तुम दे भी कैसे सकते हो ? इन्द्रियाँ वशमें हैं ? प्रयत्न करके उन्हें रोक सकते हो ?’

‘उन्हें रोकनेपर भी मन उनके विषयोंका चिन्तन.....’ युवकने सिर उठाया।

‘मनकी बात अभी छोड़ दो। तुम इन्द्रिय-संयमका दम्भ तो कर नहीं रहे। इन्द्रियोंको प्रयत्नपूर्वक रोको, दम-सम्पन्न बनो। देखोगे कि मन स्वतः शान्त होने लगा है। मनोनिग्रहरूपी शम इन्द्रियोंके दमनका अनुवर्तक है।’ अवधूतजीने अपनी बात समाप्त करके आशीर्वाद दिया—‘दान्त हो वत्स !’

युवकने उनके चरणोंपर मस्तक रख दिया।

तस्मै नमः परमेश्वराय

(लेखक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी राजपाली, बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं

सृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः।

तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्र-

संसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥

(श्रीमद्भागवत १०।४९।२९)

‘भगवान्की मायाका मार्ग अचिन्त्य है। उसी मायाके द्वारा इस संसारकी सृष्टि करके वे इसमें प्रवेश करते हैं और कर्म तथा कर्मफलोंका विभाजन करते हैं। इस संसारचक्रकी बेरोक-टोक चालमें उनकी लीला-शक्तिके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है। मैं उन्हीं परमैश्वर्यशाली प्रभुको नमस्कार करता हूँ।’

आद्यशंकराचार्यके मतानुसार मायाका सदसद्विलक्षण, अनिर्वचनीय स्वरूप है। अपनी मायाशक्तिके द्वारा ही वह चैतन्य अविनाशी परमतत्त्व, जो सनातन, सर्वगत और सर्वव्यापक है, जगत्के प्रत्येक पदार्थ

और कर्ममें प्रविष्ट हो समस्त पदार्थों और क्रियाओंको नियन्त्रित करता है। और यह मायाकी ही चमत्कृति है, जो संसारकी समस्त वस्तुओं और हलचलोंको दृष्टिगोचर कराने और संचालित करनेवाला स्वयं अपने ढंगसे रंगभूमिसे अदृश्य हो जाता है। परिणामस्वरूप परिवर्तनशील होनेके कारण जो जगत् असत् है उसकी तो प्रतीति होती है और जो उसका प्रकाशक स्वतः प्रकाशस्वरूप, आत्मतत्त्व है—जिसकी सत्ता ‘सत्’ होनेके कारण त्रिकालमें बाधित नहीं होती और जो बर्फमें जलकी भाँति समग्र विश्वमें ओतप्रोत है—वह दृष्टिगोचर नहीं होता।

जिस प्रकार जल ही बर्फका पूर्वरूप और लयस्थान है, वर्तमानरूपमें भी वह भिन्न पिण्ड दीखनेपर भी वस्तुतः एकमात्र जल ही है। इसी प्रकार जगत्के समस्त पदार्थों एवं कर्मोंका अधिष्ठान और निधान सर्व

प्रकाशक ब्रह्म ही है और एकमात्र वही सत्य है और जगत्, जो परिवर्तनशील और नश्वर है, असत् है।

‘ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः’

‘जीव ब्रह्म ही है, अन्य कुछ नहीं’—शुद्ध, बुद्ध, नित्य, मुक्त। पर शुद्ध, स्वच्छ स्फटिकके समीप यदि जवाकुसुमका लाल पुष्प रख दिया जाय, तो न समझने-वाले व्यक्तिको वह स्वच्छ स्फटिक लाल प्रतीत होगा; पर जो जानकार है, वह तो यही कहेगा कि स्फटिक स्वच्छ है। ठीक इसी प्रकार जो आत्मज्ञानी है, वह देहेन्द्रियादिके द्वारा प्रपञ्चमात्रकी प्रतीति करता हुआ भी सतत स्व-स्वरूपस्थित ही रहेगा।

निर्मल आकाशमें बादल उमड़ते हैं, बिजलियाँ चमकती हैं, घड़घड़ाहट होती है और प्रचण्ड तूफान जाता है, पर इन सबसे आकाशका कुछ भी नहीं विगड़ता। इसी प्रकार स्वरूपस्थित ज्ञानीको भी देह रहते हुए प्रारब्धानुसार विविध सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंका भोग भोगना पड़ता है। पर सुख-दुःखको समान समझनेवाला धीर, तत्त्वज्ञ पुरुष द्वन्द्वोंके उपस्थित होनेपर सदैव अप्रभावित, अव्यथित और अपराभूत ही रहेगा।

पर यह सब सत्य होते हुए यह भी कहना पड़ेगा कि श्रीभगवान्की मायाशक्ति अचिन्त्य और दुर्वेद्य है, जो प्राणीमात्रको व्यामोहित करती है और उसके विवेककी आधारशिलाको हिला देती है—

अति प्रचंड रघुपति कै माया ।
जेहि न मोह अस को जग जाया ॥

ऐसा कौन है जिसे माया-मोहने अन्धा न किया हो ? ब्रह्मा, इन्द्रादि देवोंका ऐश्वर्य-प्रभुत्वादिके मदोन्मादके कारण पतन हुआ है, ब्रह्मविद्-वरिष्ठ व्यास, वशिष्ठादि शोक-संतापमें विह्वल पाये गये हैं तथा

विश्वामित्र, दुर्वासादि तपस्वियोंको कामाग्नि-क्रोधाग्निमें जलते-झुलसते देखा गया है।

और सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि विश्व-त्रितापहर्ता, मोह-शोक-निवारक, हरि-गुण-गान-रत देवर्षि नारद स्वयं विवेक खोकर वैष्णवी मायाके शिकार होते हैं ! देवर्षि नारदके मोहकी कथा सुनकर भगवती उमाको विस्मय हुआ और वे भूतभावन भगवान् श्रीशंकरसे प्रश्न कर बैठे—

कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा ।
का अपराध रमापति कीन्हा ॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी ।
मुनि मन मोह आचरज भारी ॥

देवी पार्वतीके कुतूहलपर देवाधिदेव महादेव हँसते हुए बोले—

बोले ब्रिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ ॥

पर इस दुस्तर मायाको पार करनेका उपाय ?* लेखके प्रारम्भमें उद्धृत श्लोकमें श्रीमद्भागवतकारने सारगर्भित तीन शब्दोंमें ही स्पष्ट निर्देश दे दिया है—‘तस्मै नमः परमेश्वराय’। ‘मैं उन्हीं परमैश्वर्यशाली प्रभुको नमस्कार करता हूँ।’

नमस्कार, वन्दन अथवा प्रणाम दैन्यका प्रतीक है। जो सर्वैश्वर्यसम्पन्न और सर्वसमर्थ हैं—‘कर्तु-मकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः’ हैं और—

* अपने दैन्य तथा प्रभुके सहज सौहार्दपर विश्वास होनेपर मनुष्य प्रभुकी अनन्य शरण ग्रहण करता है। जो प्रभुकी शरण ग्रहण करते हैं, वे दुस्तर मायासे तर जाते हैं। भगवान्ने स्वयं कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

(गीता ७।१४)

छुछी भरे, भरी लुढ़कावै, जब चाहे तब फेर भरावै ।

हम उनका ही आश्रय ग्रहण करें और सर्व-साधनहीनता एवं सर्वतः पराधीनताका अनुभव करते हुए उन श्रीहरिके श्रीचरणोंमें ही अपना माथा टेक दें—विनम्र, दीनभावसे ।

वर्षा सर्वत्र होती है, पर्वतों और निम्न स्थलोंपर । पर वर्षाका जल पहाड़ोंपर नहीं टिकता, वह स्थित रहता है केवल मात्र निम्नस्थलोंपर ही । इसी प्रकार 'कृपासिंधु हरि'की कृपा यत्र-तत्र-सर्वत्र है, पर उसकी अभिव्यक्ति वहीं होगी, जहाँ दैन्य है । अहंकार, अभिमानमें वह तिरोभूत ही रहेगी ।

परीक्षित् सार्वभौम श्रीसम्पन्न थे । पर क्या उन्हें श्रीशुकदेव मुनिका दर्शन प्राप्त हुआ ? नहीं । पर वे ही जब मृत्युका समय निकट आनेपर साम्राज्यका समस्त वैभव और बन्धु-बान्धवोंका मोह-ममत्व परित्याग कर दैन्यश्रीसे समन्वित हो श्रीभागीरथीके तटपर अशरण-शरण श्रीभगवान्‌के शरणापन्न हुए, उस समय ही उन्हें अभय-प्रदाता, भगवद्रूप, परमहंस श्रीशुकदेव-जीके दर्शन हुए ।

दैन्यश्रीसे जबतक जीव संयुक्त नहीं होता, तबतक उसे भगवत्प्राप्ति नहीं होती और न आत्मकल्याणका मार्ग ही मिलता है । इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है ।

भक्ति, अनुराग, प्रेम-साधनामें दैन्य ही मुख्य है—एकमात्र प्रभु-कृपापर निर्भर होना और साधनहीनताका अनुभव करना । संत तुलसीदास कहते हैं—'सुकृतरूपी नहन्नीसे क्या मेरे पाप-पहाड़ काटे जा सकते हैं ? मैं केवल प्रभु-अनुग्रहपर ही आश्रित हूँ ।'

बस, सब करो साधना, पर सर्वोत्कृष्ट साधना है—मङ्गलमयी कृपाकी प्रतीक्षा करनेकी क्षमता आना ।

कल्प-कल्पान्तरतक निर्निमेष नयनोंसे श्रीभगवत्कृपाकी बाट जोहते रहना और कभी निराश न होना ।

पंखहीन शावक निराश्रय हैं । क्षुधार्त, दूधपान करनेवाले बछड़े 'अम्बा, अम्बा' पुकारते हैं । पपीहेकी भौंति पंख टूट जायँ, पर अमर आशा स्वाति-बिन्दुकी न टूटे । 'पी-पी'की रटन सतत लगी रहे ।

शवरीको कई हजार वर्ष व्यतीत हो गये प्रतीक्षा करते-करते, पर अटूट विश्वास था भगवान् श्रीरामके आनेका । आयेंगे अवश्य, जब आयें ।

क्रौंचीके करुणक्रन्दनसे करुणामूर्ति महर्षि वाल्मीकि की स्मृतिमें देवी सीताका करुणक्रन्दन जाग उठा और करुणा-समुद्रमें जो आघात लगा, वही धनियों और शब्दावलीमें प्रकट हो गया ।

श्रीगोपाङ्गनाओंका 'गोपिकागीत' इसी प्रकारका प्रेम-सागरका 'ज्वार' था जो शब्द-ब्रह्मके रूपमें साकार हुआ । 'राजन् ! श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे वे सुगंधस्वरसे फूट-फूटकर रोने लगीं ।' (रुरुदुः सुखरं) धन्य हैं वे भक्तिकी आचार्या !

इस संदर्भमें पूज्य गुरुदेवके मार्मिक शब्दोंका परिशीलन करें—'यह योग हरिकृपाका योग है । इसमें हमारा बल, अपना साधन नहीं, उसकी कृपा है । वह सतत अनन्तरूपसे हमपर बनी हुई है । जितना ही हम अपनेको विश्वासपूर्वक उसके आश्रित करते हैं, उतनी वह अधिक प्रतीतिमें आती चली जाती है । जितना साधन बन पड़े, उसके लिये प्रभुका धन्यवाद करना चाहिये और प्रभुसे संयुक्त होनेके लिये, सर्वथा उनका हो जानेके लिये, हृदयमें तीव्र आकांक्षा, प्रबल इच्छा उत्पन्न करनी चाहिये ।'

उत्सर्ग ही जीवन है

(लेखक—डॉ० श्रीपरमानन्दजी)

मालीने जीवनकी सभी साधोंको हृदयमें संयोजित कर अति उत्साहसे एक सुन्दर उपवन बनानेकी मधुर कल्पना की।

यद्यपि माली उम्रके चौथेपनका पथिक था, पर साध थी चिर-प्रयत्नसे साध्य सुन्दर सुरभित सुमनों और सुधा-मधुर फलोंके प्राप्त करनेकी, जिसकी आशा दुस्साहस मात्र ही कही जा सकती है।

पौधे सस्नेह लगाये गये। लहलहाते नव पल्लवों-को अङ्कुरित देख, उसका हृदय फूला नहीं समाता।

जीवनका कण-कण मालीने इस यज्ञमें आहुति दे अपनेको धन्य माना।

उपवनमें एक सरोवर था, अति रमणीक और सुन्दर कमल फूल रहे थे। वनस्पति, ओषधि, लता, त्वक्-सार, वीरुध, द्रुम सभी पंक्तिबद्ध नियमानुकूल सुन्दर ढंगसे सजाये गये थे।

वृद्ध माली लाठी टेकता जब उपवनमें प्रवेश करता, पुष्प सुरभिसे उसका स्वागत करते, वृक्षोंसे आवेष्टित लताएँ अपने प्यारे मालीके स्वागतमें पुष्प-वर्षा करतीं।

जीवन-साधनाका पुरस्कार मालीने पा लिया।

जीवन-रसका कण-कण उड़ेल जिन पौधोंको मालीने सींचा था, उन्होंने बदलेमें क्या प्रदान किया? बस, स्नेह भर ही तो, यों तो.....।

‘सुमनने फाड़कर अपना हृदय दिखला दिया नभको।’ पुष्पकी सुगन्धि किसी एककी नहीं है।

मालीने देखा, सुन्दर कमल सरोवरमें खिले हैं। पङ्क-जल-पालित कलिका अपने कोमल हृदयमें सौरभ-

शिशुको नहीं छिपा सकी। पंखुरियाँ खुल गयीं और सौरभ अखिल विश्वमें फैलकर ही रहा।

विकसित कोमल कमलने उपदेशामृत मालीको दिये—

(१) जीवन सुन्दर, मृगध और कोमल हो।

(२) सुरभिमय हो।

(३) सुरभि एकदेशीय होकर न रहे, वरं विश्वके कोने-कोनेको सौरभमय बना दे।

मधुबेला है आज, भरे तू जीवन पाटल फूल !
भिक्षुक-सा यह विश्व खड़ा है पाने करुणा प्यार;
हँस उठ रे नादान खोल दे पंखुरियोंके द्वार;
रीते कर ले कोष, नहीं कल सोना होगा धूल ?

इस प्रकार मृदुल पुष्पने महान् उत्सर्गकी भावना अपने मूक अभिवादनमें भर दी।

वे कुञ्ज क्या जिनमें मनोहर पुष्प ही खिलते न हों,
वे पुष्प क्या जिन पै मधुप, मधुके लिये मिलते न हों,
वे मधुप क्या जिनको रसिकगण आत्मगुरु कहते न हों,
वे रसिक क्या जिनके हृदयमें प्रेमनद बहते न हों।

आदियुगसे करुणारससे आर्द्र स्पदन, क्रन्दन और अश्रु-वर्षामें नाशके मधुर संगीत बज रहे हैं। नीर-भरी बदली क्षितिज-भृकुटीपर धूमिल घिर, अविरल चिन्ताका भार लिये जब वरस पड़ती है, तब पृथ्वीके रजःकणसे नवीन अङ्कुरका जन्म होता है।

संस्कृतिकी मुसकुराहट बलिवेदीपर चढ़े पुष्पोंकी याद दिलाती है। जीवन-पथको कलुषित पङ्किल पद-चिह्नोंसे मलिन करना उचित नहीं।

मन्दिर तो बलिदानियोंकी रंगभूमि है, अखिल विश्वके बलिदानी समय-समयपर जीवन-पुष्पाञ्जलि

चढ़ाने यहाँ अतिथिरूपमें आया करते हैं। उपवनके सुरभित पुष्प उनका स्वागत करते हैं।

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः

स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।

धाराधरो वर्षति नात्महेतवे

परोपकाराय सतां विभूतयः॥

नदी स्वयं अपने जलको नहीं पीती, वृक्ष अपने फलको आप नहीं खाता, वर्षा धरापर अपने लिये नहीं बरसा करती, सज्जनोंकी विभूति परोपकारके लिये है।

जीवमात्रको एक अनमोल धन मिला है—दूसरेकी भलाई करना। यह जीवनका गूढ़ रहस्य है—प्रकट है तो भी रहस्य-सा प्रतीत होता है।

प्राणी क्या है ? प्राणसे जलता 'स्नेह-दीप'। यदि जलकर शक्ति और प्रकाशका परिचय न दे तो प्राणी निर्जीव है।

अस्तित्वके लिये भोजन ग्रहण करता है, पर अस्तित्व तो अमर-ज्योति प्रदान करनेमें है।

स्वार्थ जीवनका भयानक मानसिक रोग है। शरीरमें एक रोग होता है, जिसका नाम है 'जलोदर'। उदरके जीवकोशोंको जल-संचयका अनुराग पैदा हो जाता है, जो मृत्युका सबल दूत है। अपरिग्रही बनकर शक्ति और पौरुष संवर्द्धन करो। पौरुष और शक्तिके द्वारा संसृतिके प्राणी-प्राणीका संवल बनो।

शक्तिके दो रूप हैं—अच्छे और बुरे।

विद्या विवादाय धनं मदाय

शक्तिः परेषां परिपीडनाय।

खलस्य साधोर्विपरीतमेत-

ज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

विद्यासे ज्ञान अर्जन करो और ज्ञानका प्रकाश फैलाओ। धन सुकर्ममें व्यय करो और सुपात्रमें दान करो। शक्ति और बलसे पीड़ितोंकी रक्षा करो।

सृजनमें प्रत्येक कण आगेके कणोंको उन्नतिकी ओर ढकेलता है। इसी परम्परासे आदान-प्रदानके द्वारा संसारचक्र चलता है। कितनी ही शक्ति लगाइये, पर इस गति-चक्रको आप शिथिल नहीं कर सकते।

‘दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।’

सयाना वही है जो दोनों हाथोंसे शक्तिरूपी प्रवाहित जलको शुभकर्ममें निरन्तर लगाता हो।

‘बन्धा गंदा होय’ की कहावतके अनुसार रुका हुआ जल गंदा हो जाता है। मानस-मन्दिरको दूषित कर देता है।

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्॥

‘प्रज्ञा चक्षु है, सत्य तप है, राग दुःख है और त्याग सुख है।’

‘जीवो जीवस्य भोजनम्’ एक जीव दूसरेको खाकर जीता है। यह कठोर सत्य है, हम किसीकी निर्ममतापूर्ण हत्या करके जीविका उपार्जन कर सकते हैं। बड़ी मछली छोटी मछलीको खा जाती है। सिंह-व्याघ्रादि हिंस्र पशु आखेटपर ही जीते हैं। इस पशुत्व-भावनाको क्या मानव भी प्रश्रय देगा ? नहीं !

मानव विवेक-बुद्धिवाला है। इसीसे सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। यह विश्व-शान्तिका उपासक है, विश्व-प्रेममें ही सब सुख और आनन्द निहित है, ऐसा समझता है।
अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

‘सारी वसुधा अपना परिवार है।’ यह मानक विश्वको वह स्नेह-सूत्रमें बाँधता है।

स्नेह-सूत्रमें विश्वको बाँधनेवाला यह मानव उत्सर्ग की भावना लेकर आगे बढ़ता है। ऐसा भाव उत्पन्न करना चाहता है कि एक प्राणी दूसरे प्राणीपर अपने

प्राण-निष्ठावर करनेके लिये सहर्ष तैयार हो। प्रकृतिमें दीखता भी है कि माता गर्भाश्रित भ्रूणको अपना रक्त ही तो पिलाकर पाला करती है। नूतन जन्मजात शिशुको स्तनपान कराकर पालती-पोसती है। दूध रक्त ही नहीं वरं रक्तसे निकाला उच्चतम पोषण पदार्थ है। शिशु बढ़ता जाता है। माँका शरीर क्षीण होता जाता है। यौवन नष्ट हुआ, बुढ़ापेने कदम रक्खा। माँने शरीरके अमूल्य पोषण-द्रव्योंको शिशुके लिये उत्सर्ग कर दिया, तब कहीं बालक अपने पैरोंपर खड़ा होने योग्य बनता है।

अमिय पिलावत मान बिनु, रहिमान मोहि न सुहाय।
प्रेम सहित मरिबो भलो, जो बिष देय बुलाय ॥

स्नेहवश प्राणार्पण हिंसा नहीं अहिंसा है। इसे ही बलिदान अथवा उत्सर्ग कहते हैं।

प्रेम न बाढ़ी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देय ले जाय ॥

विश्व-बन्धुत्वकी भावना हृदयमें जाग्रत् करो और 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' तन, मन, शरीर, प्राण समीका उत्सर्ग करो। इसीमें सच्चा आनन्द और सुख है।

आधुनिक युग एवं संस्कृति

(लेखक—डा० श्रीनरेन्द्रकुमार सेठी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, प्राध्यापक—लॉग

आईलेण्ड विश्वविद्यालय, न्यूयार्क एवं संचालक—भारत-केन्द्र, न्यूयार्क)

आजका युग बदलती हुई मान्यताओंका युग है। विज्ञानके माध्यमसे देश-विदेशकी संस्कृतियोंमें नये-नये परिवर्तन आने लगे हैं। प्रगतिका माप-दण्ड भी अब वह नहीं रहा जिसके आधारपर 'सभ्यता' और 'संस्कृति'में एक समय भेद माना जा सकता था और माना भी जाता था। जीवनकी दिशा भी मुड़ चली है और मानव-सम्बन्धोंकी परिभाषा भी वह नहीं रही जिसपर एक समय हम गर्व करते थे।

नये आयामका अर्थ यह नहीं है कि हमें परिवर्तन-मात्रसे कुछ विद्रोह हो। हम नवीनताका सर्वत्र स्वागत करते रहे हैं। हमारी सांस्कृतिक आधार-शिला एक जागरूक, चैतन्य और स्पन्दनशील दर्शनपर स्थित है, जो जीवनकी परिवर्तनशील चेतनाको पूर्णतः आत्मसात् किये हुए है। अतः बदलते हुए युगसे हमें उतना क्लेश नहीं है, जितना बदली हुई मान्यताओंसे, उनसे उत्पन्न होनेवाले मानसिक विघटनसे एवं चारों ओर छाये हुए एक आध्यात्मिक अन्धकारसे।

मूलमें प्रश्न संस्कृति और उसके आध्यात्मिक विश्वासका है। मुझसे कई बार यह पूछा जाता है कि आजके समयमें जब आर्थिक कठिनाइयाँ इतनी बढ़ गयी हैं, जीवनकी गति इतनी तीव्र हो गयी है और दुराचार-का इतना भीषण जोर है, तब यह कैसे सम्भव है कि हम अपनी भारतीय संस्कृतिके आधारपर अपनी गतिविधि चला सकें और हिंदूधर्मकी मान्यताओंको अग्रसर करते हुए अपना कार्य-व्यापार आध्यात्मकी ओर मोड़ें? मुझसे मेरे कई मित्र यह पूछ चुके हैं—भारतमें और विदेशोंमें भी। मैंने सदैव काफी दृढ़ताके साथ यही उत्तर दिया है कि यह पूर्णतया सम्भव है कि आजके बदलते युगमें और आजकी कठिनाइयोंमें भी भारतीय संस्कृति और हिंदूधर्मकी परिधिमें पूरी तरहसे रहा जा सकता है।

इस लेखमें इसी विषयकी चर्चा करते हुए उन मुख्य-मुख्य तत्त्वोंके बारेमें कुछ लिखा जाता है, जिनके

आधारपर और जिनकी प्रेरणासे संस्कृति एवं धर्मकी मान्यताएँ हमारा जीवन-दर्शन सँवार सकती हैं ।

(१) निष्ठा

विश्वासका धरातल जीवनको एक दिशा और ठोस चेतना प्रदान कर सकता है ! हमारी कठिनाइयाँ कुछ इसलिये इतनी अधिक बढ़ गयी हैं कि हममें विश्वासकी बहुत कमी आ गयी है । दूसरोंके लिये तो जाने दीजिये, हमें अपने-आपमें विश्वास कम होने लगा है । बिना विश्वास बढ़ाये, हम जीवनमें सदैव विनाशकी ओर जाते रहेंगे ।

अतः यह बहुत जरूरी है कि हम अपने विश्वासकी परिधि बढ़ायें । जो कार्य हम कर रहे हैं या करने-वाले हैं, उसकी पूरी जानकारी प्राप्त करनेके बाद, हमें उसमें निष्ठा उत्पन्न करनी चाहिये—आत्मिक विश्वास एवं परम श्रद्धा जो हमें अपने कार्यमें पूरी तरहसे एकनिष्ठ कर सकें । यह श्रद्धा-विश्वास हमें अपने कार्यके प्रति एक नया उत्साह देगा, एक नयी प्रेरणा देगा, जिससे हम अपने कार्य-व्यापारमें प्रगति कर सकेंगे ।

(२) सदाचार

निष्ठाके साथ-साथ जीवनमें आचारका भी बहुत महत्त्व है । आजकल यह माना जाने लगा है कि व्यापारमें जिस तरहका आचरण लोगोंको सफल बना सकता है, उसमें आचारकी परिभाषा कुछ दूसरी ही होती है । भारतमें इन दिनों आर्थिक उन्नति और सदाचारमें बहुत कम एकता पायी जाती है । परंतु यह मेरा दृढ़ विचार है कि सदाचारके साथ ही व्यक्ति अपने कार्यमें, व्यापारमें, जीवनके हर पहलूमें वास्तविक सफलता पा सकता है और यही एक ऐसी सफलता होगी जिसकी आधार-शिला अधिक स्थायी और अधिक सार्थक होगी । हमें यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि अपने दैनिक कार्यक्रम एवं व्यापारमें हम सदाचारकी निश्चित मर्यादाकी पूरी

तरहसे रक्षा करेंगे और न स्वयं अपने मार्गसे विचलित होंगे और न कभी दूसरे व्यक्तिको प्रलोभन देंगे । यदि यह प्रतिज्ञा सब लोग कर लें तथा उसके अनुसार आचरण करना शुरू कर दें तो फिर देशकी नैतिक समस्याएँ शीघ्र ही सुलझ जायँगी ।

(३) आदर

प्रसिद्ध अंग्रेज कवि विलियम वर्डस्वर्थने एक कविता में लिखा है, 'दि चाइल्ड इज दि फौंदर ऑफ मेन', अर्थात् बाल्यकालमें पड़े हुए संस्कार आगे चलकर सारी युवावस्था और प्रौढ़ायुमें हमारा जीवन-दर्शन करते हैं । आजकलकी मूल समस्या भी यही है कि बाल्यकालमें अच्छे संस्कार नहीं डाले जाते । घरमें, विद्यालयमें, सामाजिक संघटनोंमें तथा क्रीड़ा-स्थलोंमें अर्थात् उन सभी स्थानोंमें जहाँ हमारे भारतीय बालकगण जाते-आते हैं, उनके मस्तिष्कमें जिस प्रकारकी विचारधारा और भाव-भंगिमा पैदा की जाती है, वह अत्यधिक अतिरिक्त और निराश्रयी होती है । हमारा यह कर्तव्य है कि आरम्भसे ही अपने परिवारमें एक संगठनकी नींव डालें, बच्चोंमें अपनेसे बड़ोंके प्रति आदर एवं श्रद्धाकी भावना पैदा करें एवं सारे व्यक्तिगत सम्बन्धोंमें एक पारस्परिक समादरका उदय करें । ऐसे परिवेशमें संस्कृतिकी आन्तरिक भावधाराको पूर्ण प्रश्रय मिल सकता है ।

(४) अपरिग्रह

सम्भवतः हमारी भौतिक समस्याओंका एक कारण यह भी है कि हममें संग्रहकी प्रवृत्ति काफी जोर पकड़ने लगी है । जीवनके हर पहलूमें हम प्रतिदिन संग्रहकी ओर बढ़ने लगे हैं । हम अधिक वस्तुएँ खरीदना चाहते हैं; हमारे पड़ोसियोंसे अधिक बढ़िया तरीकेसे रहना चाहते हैं; भोजन, वस्त्र तथा अन्य उपयोगी चीजोंमें हम दिन-प्रतिदिन नवीनता और वैविध्य लानेका प्रयास करते हैं ।

इन सभी प्रयत्नोंका फल यह होता है कि जीवनकी इकाई विच्छिन्न हो जाती है और जहाँ एक शान्तिमय वातावरण होना चाहिये, वहाँ एक तीव्र अशान्तिका उदय होने लगता है। आर्थिक कठिनाइयोंके कारण फिर चारों ओर मुसीबतें ही मुसीबतें दीखने लगती हैं। ऐसी हालतमें अपरिग्रहकी भावना अत्यधिक उपयोगी है; क्योंकि उससे हमारे दैनन्दिन व्यापारमें एक सामाविकता आने लगती है और झूठे जगमगाते स्वप्नों-

से हटकर हम वास्तविकताकी दुनियामें प्रवेश करनेमें सफल होते हैं।

वस्तुतः यदि हम संप्रहशीलताकी प्रवृत्तिको कम कर सकें, अनावश्यक आवश्यकताओंको मिटा सकें तो संस्कृति और धर्मकी उदात्त चेतनाका आश्रय हमें एक नयी प्रेरणा और उत्साह प्रदान करेगा, जिससे हम अपने आपके साथ और अपने व्यापारके साथ पूर्ण संधि स्थापन करके शान्तिके साथ जीवन-यापन कर सकेंगे।

हमारा जीवन-प्रतिविम्ब

(लेखक—श्रीवंशीधरजी शर्मा पम्० प०, एल्-एल्० बी०, ए० डि० जज)

मनुष्य मानव-आकृति तो है किंतु मानवता न हो तो उसका 'मानव-जीवन' नहीं। भोजन यदि पेट भरना ही है तो वह 'पोषण' नहीं। कपड़े पहनना यदि तन ढाँपना ही है तो वह 'सुरक्षा' नहीं। रहना यदि अंदर बैठना-उठना ही है तो 'निवास' नहीं। व्यवहार यदि आपसमें भिड़ना ही है तो वह 'शिष्टता' नहीं। आपसी मेल-मिलापको यदि सत्यताका आधार नहीं तो यह 'सभ्यता' नहीं। विचरना यदि इधर-उधर भटकना ही है तो यह 'यात्रा' नहीं। विवेक यदि सीमित स्वार्थपूर्ति ही है तो यह 'चरित्र' नहीं। बुद्धिमें यदि चेतनता नहीं तो वह 'प्रतिभा' नहीं। जीना यदि दिन पूरे करना ही है तो यह 'जीवन' नहीं। ऐसा तो पशु करते हैं। उनके लिये आत्मा, परमात्मा, सत्य, न्याय, धर्म कोई वस्तु नहीं। इनसे वे अनभिज्ञ हैं। आज हमारा जीवन भी ऐसा ही बनने लगा है। इसमें कान्ति, आभा, शील, प्रतिभा, विवेक एवं आस्थाका नितान्त अभाव होता जा रहा है। हमारी केवल आकृति ही मानवकी है। हम वस्तुतः आज पशुकी मूढ़ता धारण करते जा रहे हैं, जिससे हमारा जीवन मानव-जीवन नहीं रहेगा।

हम जो खाते हैं, वह हमें कितना पुष्ट करता है। हममें कितना बल भरता है, वह कितना शुद्ध रक्त बनाता है तथा हमारे मन एवं शरीरपर कैसा प्रभाव डालता है। इसे जान लेनेको 'पोषण'का ज्ञान कहते हैं।

हम जो पहनते हैं वह कितना शुद्ध और स्वच्छ है।

उसमें बनावटीपन कितना कम है। शरीरको कितना ढाँपता और सुरक्षित रखता है, उसे पहनकर हम कैसे लगते हैं, कितने सुथरे लगते हैं, कैसे सज्जन जान पड़ते हैं, कहीं कारतून या अभिनेता ही तो नहीं जान पड़ते। शरीरको नंगा भी नहीं रखवा जा सकता। हाथ, पैर, मुँहके अतिरिक्त उसे सारा ही ढाँपना चाहिये। उसे कीमती वस्त्रोंकी भी आवश्यकता नहीं। उसे साफ स्वास्थ्यकर अल्प मूल्यके सादे वस्त्रोंकी आवश्यकता है जो सर्दी-गरमी-हवासे बचा सकें। जिनमें मलिनता और बेढंगापन न हो और जो आसानीसे प्राप्त हों एवं किसीकी भी हिंसामें कारण न हों—यह पहनावा है।

जहाँ मनुष्य रहता है वहाँ गंदगीका क्या काम। घरकी देहलज घरका भाग्य बता देती है। उसकी लीपा-पोती हमारी सफाईको बता देती है। आँगनकी शोभा घरकी शोभाको बता देती है। उसकी मोरियाँ-नालियाँ सैनीटेशनको बतला देती हैं। उसमें रोशनी-हवा उसके वासको बतला देती है। उसके अंदर रखी हमारी चीजें हमारी रुचिको बता देती हैं। उसकी मजबूती हमारी आर्थिक मजबूतीको बतलाती है। उसमें रहना कितना सुखद है, वहाँ आसन है, शय्या है, शय्यापर आवश्यक विलौना है, वह सुथरा है और इसमें कोई भलामानस रहता है। यह 'निवास' है।

हम एक दूसरेसे कितना मीठा बोलते हैं। कितना आकर्षित करते हैं। कलह, वैर, विरोध, घृणा, द्वेष, हिंसासे

कितना दूर रहते हैं। कितना स्नेह, मैत्री एवं बन्धुत्व उत्पन्न करते हैं। प्रेमको कितना स्थान देते हैं। दूसरेको कितना सम्मान देते हैं। उससे कितना सहयोग करते हैं। यह 'शिष्टाचार' है।

हम आपसी मेल-मिलापमें सत्यको कितना साक्षी रखते हैं। दूसरोंका कितना भञ्ज चाहते हैं। छल-कपटसे कितना दूर रहते हैं। हमारी भूल एवं खोटी नीयतसे दूसरेको कितनी क्षति होती है। हमारा मिलना-जुलना, सहायता-सहयोग-सेवा उसे कितना सुख देती है। दूसरेके दुःखको हम अपना कितना दुःख समझते हैं। हमारी बातपर कितना विश्वास किया जाता है। हम वचनके कितने पक्के हैं। कैसी हमारी धुन है। किसमें हमारा अनुराग है। कितना उत्कृष्ट हमारा ध्येय है। कैसी सच्ची हमारी लगन है। हम कितने सच्चे हैं। दूसरोंपर हमारा कितना प्रभाव है। हमारी कितनी प्रभुता है। हमारी क्या देन है और हम कितने ऊँचे आँके जाते हैं। यह सब हमारी 'सभ्यता'को जतलाता है।

हम चलते-फिरते तो हैं, किंतु हम कहाँ जाते हैं, कहाँ हमारे पग पड़ते हैं, किधर जाते हैं, क्या प्रयोजन रखते हैं और हमारे निश्चित गतव्य स्थान भी कोई है या नहीं? जहाँ जाते हैं, क्या प्राप्त करते हैं। कितना संतोष हम प्राप्त करते हैं। किसी अन्यकी हानि तो नहीं करते। कहीं अपना ही तो कुछ नहीं बिगाड़ रहे हैं। कोई हमें आवारा तो नहीं कहता। इधर-उधर बिना मतलब तो नहीं भटकते। समय व्यर्थ तो नहीं गँवाते। बल ही तो नहीं क्षीण करते। थकते ही तो नहीं, या टाँगें ही सीधी करते हैं या तोड़ते हैं। यह 'व्याघ्रा' है।

हममें परोपकारकी कितनी भावना है। दूसरेके धनको कैसा समझते हैं। किसीका हित हमें कितना प्रिय है। अन्यको किस दृष्टिसे देखते हैं। हममें बुरे कामोंमें कितनी लजा है। दूसरेका कष्ट हमें कितनी पीड़ा देता है। हम स्वयंको कितना ऊँचा उठाते हैं। सेवाभाव हममें कितना है। दूसरेमें हम कितना बुल-मिल जाते हैं। उसे कितना अपना बना लेते हैं। कितना आचरण आदर्शपूर्ण रखते हैं। कितना सदाचार बर्तते हैं। हममें कितनी पवित्रता है, गहराई है, स्वच्छता है और स्पष्टता है। हम कुटुम्बको कितना ऊँचा उठाते हैं। समाजका कितना उत्थान करते हैं। देशसे कितना प्यार करते हैं। उन सबके लिये कितना बलिदान कर सकते हैं। त्याग

कितना है। सरलता कितनी है। हम कितना स्वयंको पढ़ते हैं, कितना अन्यको। भूलें कितनी कम करते हैं। सतर्कता कितनी बरतते हैं। कोई ढील तो हममें नहीं। कोई दोष तो हममें नहीं। भूलको कितना स्वीकार करते हैं और उसमें कितना सुधार करते हैं। स्वयंपर कितना उत्तरदायित्व लेते हैं और दूसरेपर कितना मँढ़ते हैं। हम कितने स्वावलम्बी हैं। आत्मनिर्भरता कितनी है। संतोष कितना है। दुर्गन्धोंसे कितना बचते हैं। अच्छाई कितनी धारण करते हैं। दीनेके लिये हमारे हृदयमें कितनी सहानुभूति और दया है। हम स्वार्थके ही साथी हैं कि दुःखके भी। हमारे मन, वचन एवं कर्ममें सार्थकता भी है या नहीं। संयम कितना है। कोई ओछापन तो नहीं। दृढ़ता कितनी रखते हैं, या योंही फिसल जाते हैं। प्रलोभन तो हमपर नहीं छा जाता। लोभके शिकार तो नहीं हो जाते। अपनी ही हाँकते हैं या दूसरेकी भी सुनते हैं। उचित एवं अनुचितको भी समझते हैं। सत्य और न्यायसे तो नहीं डिगते। इस सबसे 'चरित्र' जाना जाता है।

हम कुछ सोच भी सकते हैं। खोज भी सकते हैं। हमारे विचारोंमें कोई व्यापकता भी है। उनमें कोई ओज भी है। गम्भीरता भी है। विद्या कितनी गहन है। कितना अमूल्य धन है। कितनी अक्षय निधि है। कितने हीरे-मोती इसमें भरे पड़े हैं। नूतनता कितना रस रखती है। बुद्धि कैसी प्रखर लगती है। विद्वत्ता कितनी पूजनीय है। हम अपने कथनसे कितना सन्मार्ग दिखलाते हैं। वाणीसे कितना चकित करते हैं। दूसरेकी बात कितने ध्यानसे सुनते हैं और उसका कैसा उपयुक्त एवं विनम्र उत्तर देते हैं। विचार-शक्ति कितनी है, उससे अपना तथा दूसरोंका कितना मार्ग दर्शन करते हैं। उससे नीति और पद्धति कितनी कैसी बनती है और वह हमारा किस प्रकार संचालन करती है। ये सब 'प्रतिभा'के ही कारण हैं।

उपर्युक्त सब बातें मानव-जीवनको दर्शाती हैं। उसमें सत्य, न्याय एवं धर्मको कितना प्रमुख स्थान है। शिष्टाचार और सदाचारकी कितनी प्रधानता है। जिस मनुष्यमें ये नहीं, वह मनुष्य नहीं। जो मनुष्य नहीं, वह नाममात्रका मानव है।

हमारा पिण्ड बतला देता है कि हम क्या खाते हैं। कितने नीरोग हैं। अधिकांशकी हड्डियाँ ही दिखायी देती हैं।

मुँह फीके ही दीख पड़ते हैं। पिलाई पुती हुई है या अत्यन्त स्थूलकाय हैं, उठ-बैठ भी नहीं सकते। कान्ति किसी-किसीमें ही देखते हैं। यह पोषणके 'अभाव'को दर्शाता है।

किसीके शरीरपर वस्त्र नामको ही होते हैं। होते भी तो उनके पहननेका ढंग नहीं आता। जैसे हुए जैसे-तैसे फँसा लिये और निकल पड़े। कोई उन्हें देखता भी है, परखता भी है, उसे क्या सरोकार। उनकी सफाई जाने उनकी बला। फैशन करेंगे तो टाँग ही तोड़ देंगे। बहुरूपिया बना लेते हैं या इतनी कीमतके कपड़े पहनते हैं, जिनके लिये चोरी, हिंसा करनी पड़ती है। ऐसी हमारी सजधज है। पता नहीं हम किस मनोवृत्तिका प्रमाण देते हैं। यह है हमारा 'पहनावा'।

घरोंके बाहर कूड़ा-करकट देखनेसे ही सम्यन्ध रखता है। नालियों एवं मोरियोंकी दुर्गन्धको पता नहीं कितने कोस जाती है। दीवारों और फरसोंमें गढ़े-दरारें ऐसी जैसी खाइयाँ। सफेदी-रोगान किसीपर ही देखनेको मिलता है। छतोंपर बड़े सूरख पता नहीं किस दशाको रोते हैं। घरकी चीजें स्थान-स्थानपर बिखरी हुई, बेतरतीब पड़ी हुई। जो चीज जहाँ रखी है वहीं पड़ी है। रसोई ऐसी जैसे काजलकी कोठरी। वर्तन ऐसे जैसे कई दिनोंसे माँजे नहीं। उन्हींमें खा लिया। बैठनेको जी करे तो जहाँ-तहाँ बैठ गये। न झाड़ना, न बुहारना। सोनेको चाहा तो जहाँ चाहा खटिया डाल ली। जो आया ओढ़ लिया। बिछौनेपर मैलका पता नहीं कितनी मोटी परत होती है। रात ही काटनेसे तो मतलब है। घर जब जवाब ही देने लगे तो उसकी मरम्मतकी नौबत आती है। दूरसे खँडहर ही लगते हैं। और कहीं-कहींका ऐसा ठाट-बाट होता है जैसे घर नहीं, अजायबघर है। इतना खर्चीला-भड़कीला कि रात-दिन उसीके मारे हैरानी रहती है। या केवल बैठकको ही घर समझते हैं। उसे कुछ सजा लिया, शयनागार कुछ सँवार लिया। बाकी चाहे जैसा हो। ऐसा हमारा 'निवास' है।

कलहसे हमें बड़ा प्रेम है। बस, मिड़नेको तैयार रहते हैं। मित्र क्या है? वन्धु क्या है? बुजुर्ग कौन है? इससे क्या सरोकार। हम किससे क्या कम हैं—यही गर्व। मीठा बोलना जानते ही नहीं। कटु-से-कटु भाषण करते हैं, बात-बातपर क्रोध और उसे मानते हैं तेजस्विता, दबंगपन गुण। कहीं मीठे भी बनेंगे तो दिखानेके लिये। ईर्ष्या-द्वेषको हृदयमें बैठाये रहते हैं। इज्जत किसीकी क्या करनी, जब खुद ही प्रधान हो। ऐसा हमारा 'शिष्टाचार' है।

झूठको हम कला समझते हैं। छलको पालिसी कहते हैं। दूसरा मरे या जीये, यह जाने हमारी बला। अपना उल्लू सीधा होना चाहिये। कुटुम्बका किसने ठेका लिया है? समाज कौन वस्तु होती है? देशसे क्या प्रयोजन? पहले अपनी सेवा फिर अन्यकी। किसीका क्या विश्वास। बस, मौज लूटो और मौजमें ही बहे जाओ, भले ही कोई रोये-पीटे। जितना मर्जी दूसरोंको सता लो। इसीमें मजा है। ऐसी हमारी 'सभ्यता' रह गयी है।

जहाँ मर्जी निकल पड़े। कोई मिल गया तो धंटों गप्पें लगा ली। दिन काट दिया। इधर-उधर भटककर वापिस आ गये। आवारगीकी ही धुन रहती है। ऐसी हमारी 'यात्रा' है।

चरित्रके नामपर खोखले। न कोई संयम, न सदाचार। खुले घोड़े-बैलकी तरह। बातपर कोई विश्वास ही नहीं करता। भ्रष्टता और पतनकी सीमा ही छू ली है। उससे आगे और क्या? ऐसा हमारा 'चरित्र' रह गया है।

वाणी हमारी थोथी तथा फीकी। आदमियतकी कोई बू ही नहीं आती, अकूल्का उसमें नाम ही नहीं। वेहूदगीका कोई ठिकाना नहीं। कोई सऊर नहीं। नितान्त मूर्खता। कोई उसमें रस नहीं, न कोई सार। ऐसी हमारी 'प्रतिभा' है।

ऐसे हम बन रहे हैं और ऐसे ही सँचेमें जीवनको ढाल रहे हैं। अन्तर इतना ही है कि हमारी दो टांगें हैं, बाकी सारी हुलिया चौपायाकी है—और वही रंग-ढंग। कितना खेद है कि हम मनुष्य होकर मनुष्य न बन सके। जीवनका उद्देश्य ही विसरा दिया है। उसकी सार्थकताको मिट्टीमें मिला दिया। पुतला तो मिट्टीका ही है, किंतु उसमें प्राण भी हैं। उनका कोई मूल्य भी है। मानव-जन्म बार-बार नहीं मिलता। मनुष्य-योनि बड़ी दुर्लभ है। उससे असली काम लो। किसीके काम आओ। कुछ भला करके मरो, जिससे तुम्हारा जीवन सफल हो, लोग तुम्हें याद करें। तुम्हारी की गयी सेवा भुलायी न जा सके। स्वयंको ऊँचे-से-ऊँचा उठाओ और दूसरोंको ऊँचे उठनेमें मदद दो।

मनुष्य बड़ा असाधारण प्राणी है, इसे न भूलो। सदा याद रखो—तुम माँ-बापके प्यारे हो। समाजके दुलारे हो। देशके तारे हो। विश्वके लाल! इन सबका तुमपर ऋण है। तुम्हारा गौरव इसीमें है कि इस ऋणको चुकाओ। सेवाका व्रत लो और उसका पालन करो। प्रभुको भी तुमसे प्यार है। वह तुमपर बड़ी कृपा-दृष्टि रखता है। उसकी कृपाका लाभ क्यों नहीं उठाते?

हम रक्त-मांसके पिण्ड या अस्थिके ही पिंजर नहीं हैं। हमारे इस स्थूलके भीतर सूक्ष्म शरीर भी है और है चेतन आत्मा—जिससे वह संयोजित है। हृदय शरीरको गति देता है, उसे जीवित रखता है। इसके रुक जानेपर इसकी अवधि समाप्त हो जाती है। वह नाश हो जाता है। आत्मा शक्ति है, प्रकाश है। शरीरके मरनेसे आत्मा नहीं मरता। शरीरसे उसका बेतारका सम्बन्ध है। उसे चेतन रखता है। बुद्धिमें विवेक भरता है। हृदयके मर्मको स्पर्श करता है। ज्ञान-चक्षुओंको खोलता है, जिससे हम सत्य, न्याय एवं धर्मको समझते हैं। वास्तविकताको पाते हैं।

जिसे आत्मा साक्षी दे वह 'सत्य' है। जिससे अन्यका अधिकार सुरक्षित रहे वह 'न्याय' है। जो मर्यादाको बनाये रखे वह 'धर्म' है। आत्माकी प्रतीति—उसकी उपलब्धि यह

'प्रबोधन' है। प्रबोधनसे ही जीवन सफल हो जाता है। उसीसे मानवता सिद्ध होती है। अन्यथा मनुष्य मनुष्य ही नहीं है।

आत्मज्ञान मानवताका वास्तविक मूल पाठ है। यह पाठ पढ़ लिया तो अन्य सब पाठ सरल हो जाते हैं। अगला पाठ्य-क्रम ठीक चलता है। पहले इसी पाठको पढ़ना चाहिये।

सत्य, न्याय, धर्मपर चलना हमारा कर्तव्य है, बड़ा पावन कर्तव्य है। न्याय एवं धर्मसे च्युत होना ही पाप है। इसे न समझकर हम अनेक अपराध करते हैं। बहुत-सी भूलें करते हैं और पछताते हैं। अपनेमें नाना प्रकारकी कमजोरियाँ ले आते हैं, जिनके घातक परिणाम होते हैं। हमारे अमूल्य जीवनका यह परिणाम ! इसीसे हमें मूर्ख, दैवान्, अधम, पामर कहा जाता है। इस कलङ्कसे बचो और वास्तविक मानवताका विकास कर जीवनको धन्य बनाओ।

सद्भावनाके अभ्यासका चमत्कार

(लेखक—पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम० ए०)

आजसे बीस वर्ष पूर्व महाराष्ट्र प्रान्तके एक संतानहीन धनी व्यापारीको यह समस्या आयी कि उसके मरनेके बाद उसकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी कौन होगा ? प्रत्येक व्यक्ति अपना नाम बनाये रखनेके लिये अपने ही पुत्रको अपनी सम्पत्ति देना चाहता है और जब उसके संतान नहीं होती तो वह दूसरे व्यक्तिके बच्चेको गोद ले लेता है। यह दत्तक पुत्र कहा जाता है। कभी-कभी यह लड़का किसी बाहरी परिवारसे ले लिया जाता है और कभी अपने परिवारसे ही। कोई-कोई लोग अपने भाईके लड़केको गोद ले लेते हैं और कोई अपने भाईको भी गोद ले लेते हैं। इस प्रकार एक मनुष्यके नामपर सम्पत्तिकी सुरक्षा बनी रहती है। उक्त व्यापारीको संतान तो थी नहीं, वह सोच रहा था कि किस लड़केको गोद लिया जाय।

इस व्यापारीका विश्वासपात्र व्यक्ति हमारा एक पुराना छात्र था, जो उसी व्यापारीकी सहायतासे चलाये गये एक स्कूलका हेडमास्टर था। यह व्यक्ति लगनके साथ अपना काम करता और गरीब विद्यार्थियोंको खूब प्यार करता था। उसे अपने मतलबकी ही बात सूझी। वह पिछले राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके संग्राममें भाग ले चुका था और उसके बाद

उसने बालकोंकी शिक्षामें अपना सारा समय देना कर्तव्य बना लिया था। इस शिक्षकने अनायास ही इस समय अर्थात् १९४५ में लेखकद्वारा लिखे गये 'कल्याण' के एक लेखको इस व्यापारीको बताया। इस लेखका शीर्षक था 'कृपण मनुष्य की संतान क्यों नष्ट हो जाती है'। इस लेखमें संतान नष्ट होनेके आध्यात्मिक कारण ही नहीं बताये गये हैं, वरं संतान प्राप्ति और रक्षाके भी आध्यात्मिक उपाय बताये गये हैं। कृपण मनुष्य धनकी चिन्तामें हर समय लगा रहता है और उसके कारण वह किसी भी व्यक्तिके प्रति मैत्रीभावनाका अभ्यास नहीं कर पाता। वह हरेक व्यक्तिको कपटी और छली समझता है। उसके अमैत्री भावनाका अभ्यास दूसरोंकी अपेक्षा स्वयंकी ही अधिक हानि करता है। जब कोई धूर्त व्यक्ति किसी गरीब व्यक्तिके धनका धोखेसे हरण कर लेता है तो उसकी आहसे उसका फला-फूला परिवार ही नष्ट हो जाता है। इसका सब बुरा प्रभाव उसके संतानपर ही पड़ता है। उसकी संतान गर्भावस्थामें ही अथवा जन्म लेनेके थोड़े दिनों बाद ही मर जाती है। इसके प्रतिकूल परिणाम मैत्री भावनाके अभ्यासके होते हैं। यदि दूसरे किसी व्यक्तिकी संतानको निःस्वार्थ भावसे इसी प्रकार पाला जाय, जैसे अपनी

संतानको मनुष्य पालता है तो यदि वह पुत्रहीन है तो उसे संतान होने लगती है और यदि संतान मर-मर जाती है तो वह जीवित रह जाती है। कभी-कभी संतानहीन व्यक्तिका धन पा लेनेसे भी मनुष्य संतानहीन हो जाता है और यदि इस धनको छोड़ दिया जाय तो संतानकी रक्षा हो जाती है।

हमारे शिष्यने अपने शुभ-चिन्तकको सलाह दी कि वे किसी बालकको गोद न लें, वरं दूसरे बालकोंके लालन-पालनपर अपना पैसा खर्च करें तो उनको भी संतान होगी। उन्होंने उसी समयसे गरीब बालकोंकी शिक्षामें अपनी बहुत-सी कमाई खर्च करना प्रारम्भ कर दिया। वे जिस ग्राममें रहते हैं, उसमें कई स्कूल खुलवाये। वे स्वयं ही उस ग्रामकी नगरपालिकाके अध्यक्ष थे। अतएव उनके लिये यह काम सरल हो गया। फिर उन्होंने जिलेके कई नगरोंमें स्कूल खुलवाये। इससे उनकी दानशीलताकी कीर्ति भी बहुत बढ़ गयी। अब वे कालेज खुलवा रहे हैं। इस जिलेमें अब २८ स्कूल और सात कालेज हो गये। जब इन्होंने दूसरे बालकोंकी सेवामें पैसा खर्च करना प्रारम्भ ही किया था; तभी उनको एक लड़का हो गया। यह लड़का पढ़ने-लिखनेमें प्रतिभावान् निकला। अब वह कालेजमें पढ़च गया है।

‘कल्याण’के पिछले अङ्कमें इस बातकी सबूतीके कई उदाहरण दिये गये थे कि दूसरोंके बच्चोंको प्यारसे रखनेसे स्वयंको बच्चे भी होने लगते हैं अथवा यदि वे मर-मर जाते हैं तो जीवित रहने लगते हैं। उनमेंसे एक स्वयंके प्यारके साथ रखे जानेका उदाहरण भी था। लेखकको तेरह वर्षकी अवस्थामें एक ऐसे परिवारमें रहनेका अवसर मिला, जिसमें ३४ या ३५ वर्षकी अवस्थातक कोई बच्चा नहीं हुआ था। इस घरके बाबूजी तो बड़े ही शीलवान् थे, परन्तु माताजी कुछ कड़े स्वभावकी थीं। बाबू उनकी बातें बड़े धैर्यसे सुनते रहते थे। ये रहनेवाले कानपुर जिलेके थे, परन्तु नौकरी होशंगाबादमें करते थे। माताको बाँझ कहानेका भारी दुःख था। इस परिवारमें लेखक एक ही साल रहा था। फिर दूसरी जगह चला गया। पर जितने समय वह वहाँ रहा, उसके प्रति इस महिलाने बड़ा ही स्नेह दिखाया। वह ऊपरसे कठोर थी, पर भीतरसे बड़े ही कोमल हृदयकी थी। ज्यों ही लेखकने इस घरको छोड़ा, इस महिलाको चेचककी बीमारी हुई। इससे उसके रूपका सौन्दर्य जाता रहा। परन्तु उसके हृदयका सौन्दर्य इससे और भी बढ़ गया। इसके परिणाम-

स्वरूप उसके चार संतान हुई। ये संतान अभी भी हैं। इस उदाहरणको जानकर उक्त सेठको विश्वास हो गया कि यदि वह भी उसी प्रकार दूसरे लोगोंकी संतानको प्यार करे तो उसे भी संतान होगी। यह बात फिर हुई भी।

अपने एक मारवाड़ी शिष्यके भाईको कोई संतान न थी। उसके पास पैसा काफी हो गया था। उसने अपने भाईको ही गोद ले लिया। उसकी पत्नीने उसे बड़े प्यारसे पाला। जब लड़का पाँच वर्षका हो गया तो स्वयं भाभीको बच्चे होने लगे और अब चार बच्चे हो गये हैं। यह भाभी आज भी अपने देवरको पुत्रके समान ही मानती है।

हमारे समाजमें यह बात प्रचलित है कि पुत्रहीनकी जायदाद मनुष्यको नहीं लेनी चाहिये। यदि किसी ऐसे व्यक्तिकी सम्पत्ति हमारे पास आ जाय जो बड़ा ही अत्याचारी था तो इस सम्पत्तिके पानेवालेको अनेक प्रकारके कष्ट हो जाते हैं। कभी-कभी ऐसी सम्पत्ति पानेसे मनुष्यके घरमें अथवा परिवारमें गहरी फूट हो जाती है। घरका प्रधान व्यक्ति पागल हो जाता है अथवा इस प्रकारकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी ही मर जाता है। हमारे एक विरादरीके संतानहीन धनी व्यक्तिके मरनेपर उसकी जायदाद उसके भानजोंपर चली गयी। उसने अपनी दो पत्नियोंको उत्तराधिकारी नहीं बनाया। इस सम्पत्तिके पानेके बाद घरमें अनेक प्रकारके रोग हुए और पानेवाला कुछ समयके लिये पागल भी हो गया।

एक हमारी चिकित्सा में आनेवाले २२ वर्षके युवकको हठी विचारका मानसिक रोग हो गया था। उसे बार-बार विचार आता था कि उसकी मृत्यु शीघ्र हो जायगी। उसे ज्ञात हुआ था कि जिस परिवारमें उसका विवाह हुआ है, उसके सभी दामाद युवावस्था में मर जाते हैं। अतएव उसकी भी मृत्यु हो जायगी। वह एम० ए० राजनीतिकी परीक्षा देने-वाला था। परंतु इस हठी विचारके कारण उसका पढ़ाई में मन ही नहीं लगता था। उसके परिवारकी अधिक जानकारी करनेपर पता चला कि उसके पिताने अपने लड़केके विवाहके उपलक्ष्यमें दहेजके रूपमें लड़कीकी माँ और उसके चाचाकी सभी जायदाद लिखवा ली थी। माँ विधवा थी और चाचाको कोई संतान न थी। इस जायदादको उन्होंने लड़कीके नाम लिख दिया था। अब उसके जेठ चाहते थे कि लड़की इस जायदादको उसके ससुरके नामपर कर दे, ताकि परिवारके सभी लोग उसके हकदार बन जायँ। बहू यह करना नहीं

चाहती थी। अतएव घरमें कलह था। इधर बड़े भाईने बहूके नामपरकी सभी जायदादपर कब्जा कर लिया। अब तो उसकी माँ और चाचाका जीना भाररूप हो गया। इससे विद्यार्थीको दुःख था, पर वह कुछ कर भी नहीं सकता था। बड़े भाईका उसके ऊपर उपकार था, जिसके कारण वह भाईकी योजनाओंका विरोध नहीं कर सकता था। हमने इस विद्यार्थीको बताया कि इन बूढ़े लोगोंकी मृत्युके पूर्व उनकी जायदाद लेना उनपर अत्याचार है और यदि यह अत्याचार होता रहा तो तुम्हारा बाध्य विचार दिमागसे कभी नहीं हटेगा। सम्भव है इससे तुम मर भी जाओ। फिर अपनी पत्नीसे पितृधन छुड़ाना भी अत्याचार है और यदि इन दो बातोंको तुम रोक नहीं सकते तो फिर तुम्हारा बाध्य विचार भी बना रहेगा।

विद्यार्थीने अपनी मजबूरी बता दी। उसने कहा कि 'जबतक मैं नौकरी नहीं पा लेता, तबतक अपने भाईका विरोध कैसे कर सकता हूँ?' फिर उसको बताया गया कि वह उन दोनों बूढ़ोंकी सेवा करे और उन्हें आश्वासन दे कि यदि उसके भाई उनकी जमीन-जायदाद ले लेंगे तो वह उनको पालेगा। इस प्रकारके आश्वासनसे वे दोनों व्यक्ति प्रसन्न हो गये। इधर बड़े भाईपर भारी विपत्ति आ गयी। उसके दो लड़के थे। वे दोनों ही कुछ दिनोंके रोगमें एक-एक करके मर गये। उसकी पत्नीको गर्भपात भी हुआ। अब वे संतानहीन हो गये। इससे पत्नी इस परिवारके धनसे ऊब गयी और उसने उसको अपने और अपने परिवारके लिये जहर मान लिया। अब तो मजबूर होकर बड़े भाईको यह स्थान छोड़ आना पड़ा। जहाँतक हमारे छात्रकी बात है, उसका हठी विचार उक्त निर्णयके साथ-ही-साथ जाता रहा। अब उसे दो लड़के हैं।

जब कभी मनुष्यको विरासतकी जायदाद मिल जाती है तो उससे उसकी क्षति हो जाती है। ऐसी जायदाद पारिवारिक उन्नतिके लिये जहरके समान होती है। उसके मिलते ही परिवारके लोग ही शत्रु हो जाते हैं। यदि ये कुछ उपद्रव करने लगें तो अच्छा ही समझना चाहिये। यदि ये उपद्रव नहीं करते तो अपना मन ही उपद्रव करने लगता है। मनुष्यको ही विचार सताने लगता है कि उसके घरमें भूत आ गये हैं और वे उसका विनाश कर डालेंगे। यदि यह धन किसी कठोर पुत्रहीन मनुष्यका हुआ तो हानि और भी अधिक

होती है। इससे उस धनके उपभोग करनेवाले सभी लोगोंकी हानि होने लगती है। घरके बच्चे मर-मर जाते हैं। अचानक मिले धनसे घरके मालिकको लकवा या हृदय-रोग हो जाता है। सुप्तका मिला धन उसे सम्हालनेकी क्षमता मालिकमें पैदा नहीं करता। वह उसके चरित्रके सद्गुणोंका विनाश कर देता, उसका अहंकार अत्यधिक बढ़ा देता है और उसे विनाशकी ओर ले जाता है। यदि ऐसा धन अचानक खो जाय तो इसे कल्याणप्रद मानना चाहिये। अपने मनसे तो कोई भी व्यक्ति इस प्रकारका धन छोड़ नहीं सकता। पाने-वालेकी लोभकी वृत्ति असाधारण बढ़ जाती है। परंतु साथ-ही-साथ उसे भय हो जाता है कि दूसरे लोग उसके धनको न छिना लें। यदि इस प्रकारके भय उसके मनमें न आवे तो बाध्य विचारके रूपमें कोई बात मनमें बैठ जाती है और इसके कारण वह अपना स्वास्थ्य खो देता है। अब यदि कोई व्यक्ति ऐसे धनको दूसरेको दे दे तो उसका वास्तविक कल्याण हो जाता है।

कबीरने कहा है—

पानी बाढ़ो नावमें, घरमें बाढ़ो दाम।

दोनों हाथ उलींचियो, यही सयानो काम॥

हमने पिछले बीस वर्षोंमें धनके प्रति ममता छोड़नेके अनेक प्रयोग कराये। इसके परिणामस्वरूप मानसिक रोगियोंको अपार लाभ हुआ। हमारे एक शिष्यने अपने सालेकी अचानक मृत्यु होते देखी। यह जमादार था और देन-लेन का व्यापार भी करता था। वह अनाज काश्तकारोंको बाढ़ीर देता था। उसके मर जानेपर उसकी उधरआई कुछ भी वसूल नहीं हुई और जिन लोगोंका उसपर कर्ज था, उसे देना पड़ा। उसके घरमें एक तेरह वर्षका लड़का था और सब लड़कियाँ थीं। इन सबकी जिम्मेदारी अब बहनोईपर पड़ी। इस घटनासे वे काफी दुखी हुए और उनका मन भयभीत भी हुआ। उन्होंने सोचा कि यदि इसी प्रकार उनकी भी मृत्यु अचानक हो गयी तो उनके लड़के भी बरबाद हो जायेंगे। उनके कर्जदार उनका दिया गल्ला या पैसा नहीं देंगे। अतएव अब उन्होंने प्रत्येक कर्जदारसे दस्तावेज लिखवाना शुरू किया। ये दस-बीस दस्तावेज ही लिखा पाये थे कि उन्हें अपने शरीरमें वही रोग दीखने लगा जो उनके सालेको हुआ था। वे जितना ही अधिक इसकी दवा करते, रोग बढ़ता ही जाता था। वास्तवमें वह रोग मानसिक रोग

संख्या ५]

था। परंतु वे इसके कारण इतने दुबले-पतले हो गये थे कि चल-फिर नहीं सकते थे। फिर वैद्योंने इनसे अनेक कल्प भी कराये।

हमने जो उपचार इस रोगके लिये किया वह सभीके लिये माननेयोग्य है। हमने उन्हें सलाह दी कि वे अपने सभी शत्रुओंके प्रति सद्भावनाका अभ्यास करें, जिन लोगोंको गल्ला उधार दें उनसे दस्तावेज न लिखायें। वे जिस प्रकार पहले गल्ला उधार देते थे, उसी प्रकार गल्ला उधार देते रहें। इसके अतिरिक्त वे एक यज्ञ करें, जिसमें अपने गाँवके सभी लोगोंको खिलावें और आस-पासके लोगोंको भी बुलावें। यह यज्ञ सात दिनोंतक चले। उन्होंने यही किया और फिर वे अपने रोगसे सदाके लिये मुक्त हो गये। इन बातोंके पूर्व उन्होंने अपने जीवनकी उन सभी घटनाओंको सुनाया जो दूसरे लोगोंको सुनायी नहीं जा सकती थीं। ये वासनासम्बन्धी थीं।

इनमेंसे कुछ बातोंकी जानकारी आसपासके लोगोंको हो चुकी थी और इसके लिये उनकी निन्दा होती रहती थी। जब मनुष्यकी अन्तरात्मा उसे किसी भी कुकृत्यके लिये कोसती है तो इससे उसे अनेक प्रकारके रोग हो जाते हैं। ये रोग तबतक उसके मनसे अथवा शरीरमें नहीं जाते; जबतक वह अपने पुराने पापोंका प्रायश्चित्त नहीं कर लेता। प्रायश्चित्त पुराने बुरे कृत्योंके लिये पश्चात्ताप करनेसे ही नहीं होता; वरं नये भले कामोंके करनेसे होता है। जब अपने मनकी रुख बदल जाती है, तभी मनुष्यका वास्तविक अथवा काल्पनिक रोग मिटता है। सद्भावनाका अभ्यास ही दुर्भावनाका प्रतीकार करता है। इससे अपना खोया हुआ आध्यात्मिक धन फिरसे वापस मिल जाता है। इस धनके वापस हो जानेपर मनुष्य निर्भीक हो जाता है। जो मनुष्य निर्भीक रहता है, उससे जिस प्रकार भूत डरते हैं, उसी प्रकार सब तरहके रोग और संकट भी डरते हैं।

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ ८७२ से आगे]

जबलपुर नर्मदाके तटपर बसा हुआ है। नर्मदा-स्नान, मेड़ा घाटकी चाँदनीमें शोभा और धुआँ-धार जल-प्रपात-सेवन हम सदासे ही करते और देखते आये हैं। परंतु आज दक्षिण भारतको जाते समय जब हमने तिलवारा घाटपर नर्मदाको पार किया, उस समय हमें एकाएक स्मरण आया कि हम उत्तर भारतकी सीमाको लाँघकर दक्षिण भारतमें प्रवेश कर रहे हैं। ये सीमाएँ भौगोलिक नैसर्गिकताके आधारपर हमारे विज्ञ-जनोंने स्थापित की थीं, परंतु इतिहासने इनपर अपनी छाप लगा दी।

पुण्य-सलिला भागीरथीका गङ्गोत्तरीका जल हमारे साथ था। हमने उत्तरकी सीमापर प्रकट गङ्गाके नमनके साथ भारतके मध्यमें जो पूततम नर्मदा उत्तर और दक्षिण भारतका विभाजन करती है, उसको आज एक नवीन दृष्टिसे नमन किया। नमनकी इस वेलामें गोविन्ददासको अपने नर्मदा-वर्णनकी एक कविता स्मरण हो आयी—

रेवा तेरा अद्भुत बाह।

बहा कठिन पर्वत पथसे यह परम पुनीत प्रवाह ॥

हमारे देशकी एक विशेषता ये नदियाँ भी हैं, जिनको हमारी संस्कृतिमें पवित्र स्थान मिला है। इन पवित्र नदियोंमें नर्मदा एक पवित्र और पुण्यप्रद नदी मानी जाती है और इस पवित्रताके साथ इसकी शोभा भी अद्भुत है; शायद किसी सरिताको ऐसी सुषमा प्राप्त नहीं, जैसी नर्मदाको है। इसलिये गोविन्ददासने इस कविताके अन्तमें निम्नलिखित पंक्तियाँ भी जोड़ी हैं—

सकल सरित सरिसे है
तुझको शोभा मिली अपार।
कारण एक कठिन पथ तूने
किया ससाहस पार ॥

मार्गके सभी परिचित पड़ावों, ग्रामों और दृश्योंको देखते १७० मीलकी यात्रा लगभग साढ़े सात घंटेमें समाप्त

कर हमारी बस ठीक ९-३० बजे नागपुरके बस-स्टैंडपर आ सकी। बस-स्टैंडपर हमारे यात्रादलकी अगवानी सेठ गोविन्ददासकी नव-विवाहिता पौत्री और उनके पति सत्य-नारायणने की जो अपने निवासस्थान पीपलासे हमलोगोंसे मुलाकातके लिये ही आये थे। नागपुरमें हमारे ठहरनेकी व्यवस्था 'दैनिक नवभारत' के मालिक और प्रधान सम्पादक श्रीराम-गोपालजी माहेश्वरीके यहाँ थी। मोटर-स्टैंडपर उनकी कार हमें लेनेको प्रस्तुत थी। माहेश्वरीजीके यहाँ पहुँचकर लगभग ग्यारह बजे रात्रिको हम भोजनादिसे निवृत्त हुए। आज हमारी यात्राका प्रथम दिन था और नागपुर उसका प्रथम पड़ाव।

नागपुरसे, जब वह पुराने मध्यप्रदेशकी राजधानी था, हमारा दिन-रातका सम्बन्ध था। जब जी चाहा नागपुर चले आये। राज्य-पुनर्गठनके बाद प्रथम बार ही आज हम नागपुर पहुँचे थे। सहस्रों बार देखे नागपुरमें आज एक नवीनता और एक अजीब अन्तर हमें दिखायी दिया। उत्तराखण्डकी यात्रा और हिमालयके सभी स्थल अनदेखे होनेकी वजहसे हमारे कौतूहल और आकर्षणके केन्द्र थे, पर नागपुर तो सदाका परिचित अपना घर-सा था; फिर आज उसमें भी एक नवीनता और कुछ अजीबपन हमें क्यों दिखायी दिया, इसपर हम विचार-मग्न हो गये।

अनेक बार देखी चीजें भी जब हमसे कुछ अधिक समयके लिये पृथक् हो जाती हैं तो उनमें हमें अन्तर दिखायी देने लगता है। यह अन्तर कभी-कभी हमारे दृष्टि-भेदके कारण होता है। कभी उन चीजोंके सहज परिवर्तनके कारण। नागपुरके सम्बन्धमें भी बहुत दूरतक यही बात थी। जिस नागपुरसे हमारा निशि-दिवसका सम्बन्ध था, आज वह हमारे लिये अपरिचित-सा एक नया नागपुर बन गया। क्यों? भाषावार राज्य-पुनर्गठनके कारण राजधानीके स्थानान्तरणसे नागपुरसे दफ्तरोंके साथ वे व्यक्ति भी स्थानान्तरित किये गये, जिनकी मातृभाषा मराठी नहीं थी। अतः एक तरहसे हिंदी-भाषा-भाषी जन-समुदायका स्थानान्तरण और नये आये तथा पुराने मराठी भाई-बहनोँका ही बाहुल्य नागपुरकी नवीनताका प्रथम कारण था। फिर एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे भी जहाँ हम सदा परिचित भावसे आते थे, परिचित भावसे रहते थे और अपने परिचित लोगोंसे मिलते थे, वहाँ आज इस परिचयके लोप हो

जानेपर यदि पराया-पराया ही अनुभव करें तो स्वाभाविक ही है। व्यक्तिकी जहाँ आवभगत हो, वहीं उसके मनमें अपनत्वकी भावना आती है। पहले नागपुरमें हमारी खुश आवभगत होती थी अपने खूब परिचय और प्रभावके कारण, किंतु जबसे वह बम्बई प्रदेशमें गया, हमारा परिचय और प्रभाव भी अपने साथ ले गया। जैसे कोई सहपाठी या पड़ोसी किसी ऊँचे ओहदेपर पहुँच जानेपर उस व्यक्तिकी, जिसके साथ वह खेला-कूदा, पढ़ा-लिखा और बड़ा हुआ हो, पहुँचके बाहर हो जाता है। यही बात नागपुरके बम्बईमें विलयसे हमलोग महसूस कर रहे थे। नागपुरकी बम्बई विलयसे कोई तरक्की हुई यह तो हम नहीं जानते, किंतु जब वह हमारे पुराने मध्यप्रदेशकी राजधानी था तो राजधानीके अधिकारोंकी अपेक्षा जबलपुरसे आबादीके अलावा शैक्षणिक संस्थाओं, जिनमें विश्वविद्यालय, मेडिकल कालेज, हाईकोर्ट और औद्योगिक आदि सभी दृष्टियोंसे जबलपुर ही नहीं, अपितु समूचे मध्यप्रदेशका एक अग्रगण्य नगर था। आज निर्विवाद रूपसे उसका यह स्थान छिन गया है। इन सभी दृष्टियोंसे नागपुर आज हमारे लिये सर्वथा नया था। हमने उसके इस नये रूपको नमस्कार कर शय्याकी शरण ली। हमारी यात्रा-टोलीने अपने प्रथम पड़ाव नागपुरमें आजकी रात्रि सुखपूर्वक बितायी।

नागपुरमें श्रीरामगोपालजी माहेश्वरीके निवासस्थान पर श्रीमाहेश्वरीजीके अनुपस्थित होते हुए भी उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कौशल्या देवीने हमारे यात्रा-दलके अठारह घंटेके प्रवास-कालमें हमारे ठहराने एवं भोजन आदिकी जो स्नेह-पूरित व्यवस्था की, उसके लिये कौशल्या देवीसे श्रीमाहेश्वरीजीको, जो उन्हें ऐसी सदृशहिणी एक सहधर्मिणीके रूपमें प्राप्त हुई, हमलोगोंकी ओरसे धन्यवाद देने कह हमने कौशल्याजीसे विदा ली।

दिनांक ४ सितम्बरके अपराह्न ४-३० पर ग्रैंड ट्रंक एक्सप्रेससे हमलोग विजयवाड़ाके लिये रवाना हुए।

अनुरागहीन निरे कर्मठ भावसे ग्रैंड ट्रंक एक्सप्रेस अपने गन्तव्यकी ओर एकके बाद एक स्टेशन पार करती हुई तेजीसे बढ़ी चली जा रही थी और हमलोग अपने डिब्बेमें बैठे खिड़कियोंसे मार्गकी शोभा देख रहे थे। छोटे-बड़े गाँव, हरे-भरे पौधे और धानके खेत हमें लुभा रहे थे। हम जिसपर दृष्टि डालते वही हमारी दृष्टिसे क्षणमात्रमें ओझल

हो जाता। जान पड़ता जिसे हमारी दृष्टि पकड़ना चाहती है, वही उससे दूर भागता है। हमारी गाड़ी ग्रैण्ड ट्रंक इस आकर्षण-प्रत्याकर्षणके अर्थभावसे परे अपने गन्तव्य-पथपर अग्रसर थी। मानो कर्त्तव्यका ठीक मर्म पहचान वह अपने जीवन-पथपर अग्रसर हो। हमने देखा जिन गाँवों, नदी-नालों, लता-वृक्षों, बाग-बगीचों और खेत-खलिहानोंको हम जी भर देखना चाहते हैं, वे हमसे दूर भाग रहे हैं; पर इसके विपरीत हमारी गाड़ी जो निर्लिप्त भावसे आगे बढ़ रही है, उसके स्वागतके लिये पग-पग-पर पीछे छोड़े गाँवों, नदी-नालों, लता-वृक्षों, बाग-बगीचों और खेत-खलिहानोंकी जगह नये गाँव, नदी-नाले, लता-वृक्ष, बाग-बगीचे और खेत-खलिहान आगे मिल रहे हैं। जीवनका यह मर्म हमारी समझमें आ गया। जिस वस्तुको हम चाहते हैं, जिसके पीछे पड़ जायँ, वह हमसे दूर भागेगी; पर जिसकी हम उपेक्षा करें या जिससे उदासीन रह निर्लिप्त भावसे अपने कर्त्तव्य-पथपर अग्रसर रहें तो वही वस्तु पग-पगपर हमारे स्वागत-सत्कार और समर्पणको प्रस्तुत दीखेगी। तात्पर्य यह कि यदि हम पल-पल दायें-बायें और आगे-पीछे देख-देख कर आगे बढ़ना चाहें तो आगे नहीं बढ़ सकते। हमारी जीवनरूपी गाड़ी तो तभी अपने लक्ष्यपर पहुँच सकेगी, जब हम सामने देखकर और अपना सही लक्ष्य सामने रखकर ग्रैण्ड ट्रंककी भौति तेजी-से आगे बढ़ें। ग्रैण्ड ट्रंक एक्सप्रेससे मिले इस सार-भूत संदेशके साथ ही हम अपने विस्तरोंपर सो गये।

गीत

जग जीवनके पकड़ जकड़ते जब जब ये मायामय खल।
रूपोंका जब होने लगता रंगोंकी छायासे मेल ॥
सम्र बने साकार शक्तते मानसमें उठती हिलकोर।
एक, एक सौ, सौ बन जाते मिलता फिर तो ओर न छोर ॥
कमी डूब, तिर कमी पकड़ता दसों करणसे मिल-मिल मन।
बाँधी मुट्ठी समुद्र खोलता, शून्य देख सिंहारित कण-कण ॥
आशा निहत विमुख हो चलता, देख देख छलनाकी छाँह।
फिर, फिर विविध रूप धर घेरे पकड़ विकारोंकी वह बाँह ॥
किंतु कृती अब, जागरूक वह, सकी न झुलसा जगकी आग।
निर्मम, दृढ़-विमुक्त, आत्मबल जागा जिसका, बनकर त्याग ॥
दिनाङ्क ५ सितंबरके प्रातःकाल जब हमारी नौद खुली
तब हमने अपनेको उत्तरभारतसे एकदम दक्षिण भारतमें पाया।

विजयवाड़ाके कुछ पूर्व पौ फटते ही हमने दक्षिण भारतके कुछ रम्य दृश्य देखे। हमारी गाड़ी तेजीसे बढ़ी जा रही थी और हम अपने डिव्येमें बैठे निकटवर्ती मनोरम दृश्य देख रहे थे। गिरिखण्डोंकी तलहटीमें बने कुछ झोपड़े, जिनमें घासकी छावनी थी, ऐसे मालूम पड़ते जैसे गिरि-आश्रय-निर्मित इन झोपड़ोंमें विजयवाड़ाके व्यस्त जीवनसे विरक्त कोई साधु-संन्यासी विराज रहे हों। इन झोपड़ियोंके आकार, आकृति और गिरिखण्डोंके इस दृश्यको देख एकवारगी हमारी दृष्टिमें वनवासी ऋषि-मुनियोंके आश्रम और आश्रमके वातावरणका एक साकार दृश्य घूम गया। प्रभातकी सुनहली रवि-रश्मियोंके आलोकमें विजयवाड़ाके निकटवर्ती दृश्योंकी शोभा देखते-देखते, कुछ ही देरमें ग्रैण्ड ट्रंक एक्सप्रेस जब विजयवाड़ाके प्लेटफार्मपर आ रुकी तो स्टेशनके कोलाहलपूर्ण वातावरणमें हमने अपनेको दक्षिण-भारतके जन-जीवनमें पाया। यद्यपि जैसा पहले कहा गया है, नर्मदाको पार करते ही दक्षिण भारतका आरम्भ हो जाता है, परंतु सच्चे दक्षिण-भारतके दर्शन विजयवाड़ा पहुँचनेपर ही होते हैं। सारी शकटें बदल जाती हैं, पहनावमें परिवर्तन हो जाता है, बोली और भाषा बदल जाती है। अब हमें श्यामवर्णके व्यक्ति दृष्टिगोचर हुए अधिकतर विकच धोतियाँ धारण किए हुए। पुरुषोंकी अपेक्षा महिलाएँ वर्णमें उतनी श्याम नहीं थीं और उत्तर भारतके सदृश ही साड़ियाँ पहने हुए थीं। हाँ, पहननेका ढंग अवश्य बदल गया था। वेश-भूषा और रूप-रंगकी इस समताके साथ एक विशेष अन्तर था। इन महिलाओंकी नाक चार्याँ ओर न छिदकर दाहिनी ओर छिदी हुई थी। स्टेशनपर खोमचोंमें अब उत्तरभारतके सेव-चूड़ा, दाल, नमकीन, बर्फी, पेड़ा, गुलाबजामुन और रसगुल्लोंके स्थानपर इडली बड़े आदि दीख पड़े। बोलीका क्या कहें। यहाँकी बोली सुनते ही वीरबलका एक आख्यान स्मरण हो आया।

कहा जाता है एक बार आलमगीर बादशाह अकबरने भाषा-ज्ञानके लिये वीरबलको सारे देशका दौरा करने भेजा। वीरबल जब दक्षिण भारत पहुँचे तो यहाँकी जन-भाषाके सम्बन्धमें उन्होंने जानकारी प्राप्त की। कुछ दिन यहाँ रहनेके बाद जब वे वापस लौटे और बादशाह अकबरने जब उनसे देशकी विभिन्न भाषाओंके सम्बन्धमें जानकारी माँगी तो वीरबलने अन्य भाषाओंके परिचयके साथ दक्षिण भारतकी जनभाषाका परिचय एक थैलीमें पत्थरकी कुछ गिट्टियों

डालकर उसे बजाते हुए दिया। भावार्थ यह कि दक्षिणकी भाषाका बीरबलने बादशाह अकबरके सामने उसकी गूढ़ताके कारण उपहास किया।

इस प्रकारके मनगढ़ंत किस्से, जो कुछ अर्द्धशिक्षित लोग जहाँ-तहाँ कहते फिरते हैं, इससे किसी भाषाविशेषका कोई उपहास होनेकी बजाय ऐसे व्यक्तियोंका ही मजाक होता है तथा उनकी इस प्रवृत्तिसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये लोग भाषा-विज्ञानसे तो सर्वथा अनभिज्ञ हैं ही, साथ ही विभिन्न भाषाओंके मूलमें राष्ट्रकी जो सांस्कृतिक निधि सुरक्षित है उसका भी ऐसे लोगोंको कोई ज्ञान नहीं। महात्मा गाँधी देशकी स्वाधीनताके लिये अंग्रेजी राज्यको अभिशाप मानते थे, वे अपने ऊपर अंग्रेजीके आधिपत्यको वर्दाश्त नहीं कर सकते थे, किंतु इसके साथ ही उनका अंग्रेज जातिसे प्रेम था और गाँधी-दर्शनके इसी सिद्धान्तके अनुसरणका आज यह फल है कि अंग्रेजी राज्य जानेके बाद अंग्रेज जाति और भारतीयोंमें मानव-जातिके जन्मजात अधिकार मानव-मानवके प्रति प्रेमकी यह प्रगाढ़ता मौजूद है। अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी साहित्यने भी हमें जो कुछ दिया, उसके लिये हम अंग्रेजी भाषाके कृतज्ञ हैं। फिर दक्षिणकी ये जनभाषाएँ तो हमारे देशकी सभ्यता, उसकी संस्कृतिकी संरक्षिका हैं। इनसे हमारी सभ्यता और संस्कृतिका पोषण होता है, देश और विदेशमें हमारे देशकी ये विभिन्न भाषाएँ अपनी विभिन्न पोशाकोंमें हमारे देश, उसके अध्यात्म, उसके साहित्य और संस्कृतिका प्रतिनिधित्व कर हमारी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठाको बढ़ाती हैं। अतः हमारा कर्तव्य है कि देशकी सभी भाषाओंको, चाहे वे उत्तर भारतकी हों अथवा दक्षिण भारतकी, हम न केवल आदरकी दृष्टिसे देखें वरं सहोदरा बहनोंकी भाँति सभीसे अपना खूनका रिश्ता मान एक-दूसरेके परिचय और पठन-पाठनका पुरजोश प्रयत्न करें।

विजयवाड़ा पहुँचते ही गोविन्ददासको विजयवाड़ाका पुराना नाम बैजवाड़ा स्मरण हो आया। उन्होंने सन् १९२१ में बैजवाड़ेमें हुए अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटीके उस अधिवेशनका हाल बताया, जिसमें सन् १९२० के असहयोग-आन्दोलनके कार्यक्रमको कार्यरूपमें परिणत करनेकी योजना बनायी गयी थी। जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ था कि काँग्रेसके एक करोड़ चबन्नी-सदस्य बनने चाहिये। तिलक-स्वराज्य-फंडमें एक करोड़ रुपया एकत्रित होना चाहिये

और देशमें बीस लाख चखें चलने चाहिये। कितना उत्साह था गाँधीजीके उस प्रथम आन्दोलनमें, जिसमें सन् १८५७ के स्वतन्त्रता-युद्धके पश्चात् प्रथम बार देशकी जनता सक्रिय-रूपसे कुछ करनेको कहा गया था। बापूके इस स्वातन्त्र्य आन्दोलनकी याद कर न जाने कितनी बातें मस्तिष्कमें उभर आयीं। पढ़े-लिखे लोग ही नहीं, सर्वसाधारण निरक्षर जनताने जैसा अपूर्व उत्साह और योग देकर असहयोग आन्दोलनके समूचे कार्यक्रमको पूरा किया था, उसे स्मरण कर आज आये दिनों भाषा, धर्म और सम्प्रदायके नामपर होनेवाले आन्दोलनोंपर जब हमारी दृष्टि जाती है तो आकाश-पातालका अन्तर दिखायी देता है। यद्यपि स्वातन्त्र्य आन्दोलन और इन आन्दोलनोंमें कोई मेल नहीं, फिर भी जनहितकी दृष्टिसे भी कुछेक आन्दोलनोंको, जो आज जन-समर्थन नहीं मिलता, इसकी क्या वजह है इस ओर हमारा ध्यान जाये बिना नहीं रहता। बापू जिस संस्थाके नेता थे वह थी काँग्रेस, जो देशकी एकमात्र जन-प्रतिनिधि संस्था थी। काँग्रेसको भी अपने उद्देश्य-साधनके लिये अपनाते-पहले बापूने उसे अपने कठिन सिद्धान्तोंमें आवद्ध किया था। फिर उस संस्थामें उसके ऊँचे-से-ऊँचे पदाधिकारी और उसके छोटेसे स्वयंसेवक तकको तभी काँग्रेसका सदस्य बनाया जाता था, जब वह मनसा-वाचा-कर्मणा सत्यनिष्ठ, अनुशासनवद्ध और अहिंसाका अनुसरण करनेवाला हो। फिर इन कठिन सिद्धान्तोंकी कसौटीपर कसा जानेवाला व्यक्ति ही बापूद्वारा संचालित असहयोग आन्दोलनमें सत्याग्रही या सैनिक बनता था। आन्दोलनकी सफलता और आम जनताकी इस तरहकी जागरूकता, लगन और कर्तव्य-निष्ठाका सारा श्रेय बापूको था जिन्होंने इस प्रकारका एक नया और अनूठा प्रयोग कर जनताको जाग्रत किया। लोग उनका आँख मूँदकर अनुसरण करते थे क्यों? इसलिये कि बापू किसी भी कार्यक्रम या सिद्धान्तको कायम करने और उसे सर्वसाधारणको व्यावहारिक रूप देने तभी कहते जब वे व्यावहारिक-रूपसे उसे स्वयं अपना लेते। गाँधीजी उपदेशक नहीं थे, वे एक कार्यकर्ता थे। अतः उनके मुखसे निकलनेवाला हर शब्द एक सेनापति का आदेश होता था। उनकी प्रत्येक बातमें एक ऊँचे दर्जेकी सत्यता और गहराई रहती थी। यही वजह थी कि उनकी आवाज लोगों के हृदयपर सीधा असर करती थी। आज स्थिति भिन्न है

कुछ लोग जो बड़े-बड़े आन्दोलन और कार्यक्रम आरम्भ करते हैं पर असफल होते हैं। इसका यही कारण है कि ऐसे लोगोंके अंदर सिद्धान्तनिष्ठाका अभाव है और बिना सिद्धान्तके व्यावहारिक पक्षके ये लोग जनताको प्रेरित करना चाहते हैं। केवल कण्ठसे ही इनके सिद्धान्त और कार्यक्रम निकलते हैं, उनका हृदयसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अतः आम जनताके कण्ठतक ही इनके सिद्धान्तों और कार्यक्रमकी आवाज जाती है, हृदयतक उसकी पहुँच नहीं। और तो जाने दीजिये वही काँग्रेस, जिसके माध्यमसे बापूने देशका नेतृत्व किया, स्वाधीनता दिलायी, आज अपने गौरवशाली इतिहासके बावजूद आम जनतामें अपना असर खोती जा रही है। आखिर क्यों? जैसा कि ऊपर कहा गया है, अब काँग्रेसमें वह सिद्धान्त-निष्ठा, वह सच्चाई, और सच्चाई एवं सिद्धान्त-निष्ठाका वह व्यावहारिक पक्ष नहीं रह गया, जिसपर बापू सदा जोर देते रहे। पुरखोंकी कमाई और पुरानी पीढ़ीके किसी एकाध नेताके नामपर वास्तविक रूपसे कोई भी जन-प्रतिनिधि संस्था अधिक समयतक अपना अक्षुण्ण अस्तित्व कायम नहीं रख सकती। गाँधीजीने काँग्रेस और देशको साधारण मिट्टीसे ऐसे आदमी तैयार कर दिये जो देशके सर्वमान्य और बड़े-बड़े नेता बने; किंतु खेद और दुर्भाग्यकी बात है कि उसी काँग्रेससे काँग्रेसके ही आदमी आज असंतुष्ट हो सिद्धान्तोंका सौदा कर बाहर-भीतर हो रहे हैं। इसमें संदेह नहीं, गाँधीजीके नेतृत्व-कालमें जो काँग्रेस गङ्गोत्तरीकी गङ्गा थी, आज वह अधिक समयमें नहीं केवल चौदह-पंद्रह वर्षोंमें ही कलकत्तेकी हुगली-गङ्गा हो गयी है। अस्तु,

विजयवाड़ामें अपना सामान छोड़ हम उसी समय जाने-वाली मीटर गेजकी रेलसे पना-नृसिंहजीके दर्शनार्थ मंगलगिरि नामक स्टेशनको खाना हुआ। विजयवाड़ासे ट्रेनमें हमने दक्षिणकी प्रसिद्ध समृद्ध सरिता कृष्णाको जव पार किया तो कृष्णाके रूप-स्वरूपको देखते ही दक्षिण भारतकी एक अदृश्य झाँकी हमारी दृष्टिमें घूम गयी। उत्तर भारतको गङ्गा-यमुना आदि सरिताओंने धन-धान्यसे समृद्ध किया है तो दक्षिण भारतको कृष्णा-कावेरीने। भारतभूमि इन सरिताओंके समानसे ही भाग्यशाली बनी है। इन सरिताओंने देश-

की मिट्टीको उर्वरा बनाया, यही नहीं, उसके कण-कणमें इनकी सुगन्धि है। क्या देशके सांस्कृतिक जीवनमें, क्या धार्मिक और क्या आर्थिक सभी क्षेत्रोंमें ये हमारा मातृरूपा पोषण करती हैं, इसीलिये इनकी वन्दनामें कहा है—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।

नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधि कुरु ॥

मंगलगिरि विजयवाड़ासे केवल सात मीलपर है। अतः लगभग एक घंटेमें हम मंगलगिरि स्टेशनपर पहुँचे और मंगलगिरिसे पैदल ही पना-नृसिंहजी खाना हुआ। स्टेशनसे पक्के मार्गद्वारा कुछ दूर चलनेपर हमें कुछ दूकानें मिलीं। इन दूकानोंमें एक-दोके साइनबोर्ड हिंदीमें देखकर हम सबकी अपेक्षा गोविन्ददासको अधिक प्रसन्नता हुई। थोड़ी ही दूर चलनेपर वस्तीमें स्थित एक धर्मशाला है, जिसमें हमलोगोंने स्नानादि किये और पना-नृसिंहजीके दर्शनार्थ खाना हुआ। वस्तीके निकट एक पहाड़ीपर पना-नृसिंहजीका मन्दिर है। पहाड़पर निर्मित सीढ़ियोंके मार्गद्वारा हमलोग मन्दिर पहुँचे। हमारे साथ गोविन्ददासकी भावज नारायणी देवीके लिये, जो पैदल चलनेमें प्रायः अशक्त थीं, हमने एक डोली की तथा दूसरी गोविन्ददासकी पत्नी गोदावरी देवीके लिये। डोलियोंपर आरुढ़ इन महिलाओंको देखकर हमें उत्तराखण्डकी यात्राके अनेक संस्मरण याद आ गये।

मन्दिर पहुँचते ही हमने पना-नृसिंहजीके दर्शन किये तथा दर्शन-पूजनके अनन्तर दर्शनार्थियोंके लिये जो एक आम रिवाज है—श्रीपना-नृसिंहजीको शर्बतभरे घट अर्पित किये। जिस समय यह शर्बत एक पात्रद्वारा पना-नृसिंहजीके मुखारविन्दमें मन्दिरका पुजारी अर्पित कर रहा था, उस समय हमें गड़गड़की आवाज सुनायी दी। इस आवाजकी ओर संकेत कर पुजारीने हमें बताया कि भगवान् पना-नृसिंहजी शर्बत पी रहे हैं। भगवान् पना-नृसिंहजी द्वारा अपने शर्बतका पान इस गड़गड़की आवाजमें अनुभव कर हम सबने आस्तिक भावसे अपनी ओरसे भेंट आदि अर्पण कर मन्दिरसे विदा ली। इस आवाजपर हमारे साथकी महिलाएँ आश्चर्यचकित थीं और उनका मत था कि भगवान् पना-नृसिंहजी साक्षात्में शर्बत पान करते हैं; किंतु इसे गोविन्ददासने अंध-श्रद्धा निरूपित करते हुए कहा—यह आवाज पना-नृसिंहजीकी मूर्ति-

के मुखारविन्दकी आकृति और उसमें शर्वत डालते ही जो हवाका दबाव पड़ता है, उसके कारण होती है, पना-नृसिंहजी-के प्रत्यक्ष शर्वत-पानके कारण नहीं। उदाहरणार्थ हम जब तूँबेमें पानी भरते हैं तो यही आवाज होती है। इसका मतलब यह नहीं कि तूँबा आदमीकी तरह पानी पी रहा है, अन्तर केवल इतना है कि तूँबेमें हम जितना पानी भरना चाहें उतना नहीं भर सकते अपितु उसमें जितनी जगह होगी, उतना ही भरेगा किंतु पना-नृसिंहजीके मुखारविन्दसे सैकड़ों घट शर्वत उड़ेलनेपर भी अवृत्त भावसे वे प्यासे ही दीखते थे। यही लोगोंके आश्चर्य और कौतूहलकी बात थी। सम्भव है मूर्तिके तलमें इस शर्वतके प्रवाहकी व्यवस्था हो, हाँ, यह शर्वत जो पना-नृसिंहजी पान कर रहे थे, काफी स्वादिष्ट था। हमलोगोंने भी भर पेट पिया। एक घड़ा शर्वतपर तीन रुपया एक आना व्यय आता है। जो व्यक्ति जितना चाहे श्रद्धातुसार पना-नृसिंहजीको अर्पण कर सकता है।

जिस गिरिखण्डपर पना-नृसिंहजीका यह मन्दिर निर्मित है उसके नीचे चारों ओरका दृश्य बड़ा मनोरम है।

गीत

श्रीपना-नृसिंहजीकी स्तुति

मंगल-गिरिपर मंगलधाम।

उन्नत करता एक शिखरको श्रीनरहरि-मंदिर अभिराम ॥
नर-सम युग-पद-पंकज राजित अवनीकी यह गोद ॥
केहरि सम कंधोंकी केशर छूती गगन पयोद ॥
सह न सके जनके जीवनपर जब तुम अत्याचार ॥
भयको देने अमय, भयानक ले उतरे अवतार ॥
त्रिभुवनकी श्री खड़ी काँपती कर न सकी मनुहार ॥
बढ़ा निपट शिशु, घट भर मधु ले, पिया मुग्धका प्यार ॥
वही रूप है, जनके मनपर भुवन कैपाता रोष ॥
भर घट पना पिलाता शिशु-जन, करता निज परिशेष ॥

हमलोग वापिस धर्मशाला लौटे और कुछ जलथान का अपराह्नकी मीटर-गीजकी रेलद्वारा विजयवाड़ा लौट आये। दिनाङ्क ६ सितम्बरको हम विजयवाड़ासे मद्रासके लिये खाना हुआ। (क्रमशः)

तुम ही तुम

तुम्हीं सदा सुखरूप, दुःखमें भी नित भरे एक तुम ही।
तुम्हीं मधुर आनन्द गानमें करुणाक्रन्दनमें तुम ही ॥
तुम ही दिव्य स्वर्गभोगोंमें नरक-यन्त्रणामें तुम ही।
तुम ही मधुर सृजनमें स्वामी, महाप्रलयमें भी तुम ही ॥
तुम ही हो प्रकाश उज्ज्वलमें, नित्य घोर तममें तुम ही।
तुम ही प्रिय, शुभ, मंगल; अप्रिय, अशुभ, अमंगल भी तुम ही ॥
तुम्हीं विशद जन-कोलाहलमें, निर्जन वनमें भी तुम ही।
तुम्हीं अस्तिमें भरे, नास्तिमें भी हो नित्य एक तुम ही ॥
तुम्हीं सभीमें सदा पूर्ण हो, जड-चेतन सब हो तुम ही।
मुझे दिखायी देते केवल नित सर्वत्र एक तुम ही ॥

मधुर

एक दिन वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानीने अपनी एक
अन्तरङ्ग-सखीको अपना यह अनुभव सुनाया—

मेरे हे जीवन-जीवन !
मेरे हे जीवनके रस !
मेरे हे भीतर-बाहर !
मेरे हे केवल सरवस !
मैं नहीं जानती कुछ भी
अतिरिक्त तुम्हारे प्रियतम !
मैं नहीं मानती कुछ भी
वस, तुम्हें छोड़कर प्रियतम !
हर सभी पृथक्ता मेरे
रह गये एक तुम ही तुम ।
कर आत्मसात् 'मैं मेरा'
सब कुछ अपनेमें ही तुम ॥
अब तुम्हीं सोचते-करते
सब 'मैं मेरा' मुझमें बन ।
नित तुम्हीं खेलते रहते
बन मेरे चित्त-बुद्धि-मन ॥
आनन्द मुझे तुम देते
नित बने पृथक् लीलामय !
अपनेमें अपनेसे ही
तुम होते प्रकट कभी लय ॥
नित मिलन विरहकी लीला
चलती यों सतत अपरिमित ।
होते सब खेल अनोखे
नित सुखवाञ्छासे विरहित ॥
मैं कहूँ अलग क्या प्रियतम !
कहते हो तुम ही सब कुछ ।
सुनते भी तुम ही हो सब,
तुम ही हो, मैं हूँ जो कुछ ॥
बड़ी निकुञ्जमें आली !
थी ध्यानमग्न सब कुछ तज ।
एकान्त हृदयमन्दिरमें
यों थी मैं रही उन्हें भज ॥

मेरे मनकी ये बातें
सुनकर वे प्यारे मोहन ।
हो गये प्रकट यमुना-तट-
की उस निकुञ्जमें सोहन ॥
उरसे अन्तर्हित सहसा
हो गये प्राण जीवनधन ।
व्याकुलता उदय हुई अति,
खुल गये नेत्र वस तत्क्षण ॥
वे देख रहे थे मुझको
रसभरे दृगोंसे अपलक ।
मिलनेकी उठी हृदयमें
अत्यन्त तीव्रतम सु-ललक ॥
वस, मुझे लगा ली उरसे
निज स्वयं भुजाओंमें भर ।
रसभरे दृगोंसे आँसू
बह चले प्रेमके झर-झर ॥

‘हे मेरे जीवनके जीवन ! हे मेरे जीवनके रस !
हे मेरे बाहर-भीतर (के रूपमें प्रकट) ! हे मेरे एकमात्र
सर्वस्व ! हे प्रियतम ! मैं तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ
भी नहीं जानती । हे प्रियतम ! एक तुमको छोड़कर
बस, मैं और किसीकी भी सत्ता नहीं मानती । मेरी सारी
पृथक्ता हरण करके एकमात्र तुम-ही-तुम रह गये हो ।
मेरे सारे ‘अहं’ और ‘मम’—‘मैं-मेरे’को अपनेमें ही तुमने
लीन कर लिया है । अब जो कुछ सोचना-करना होता
है, सो सब मुझमें ‘मैं-मेरा’ बनकर तुम्हीं सोचते-करते
हो । मेरे चित्त-बुद्धि-मन बनकर तुम्हीं नित्य खेल
खेलते रहते हो । किंतु हे लीलामय ! तुम ही नित्य ही
पृथक् बने रहकर मुझे आनन्द प्रदान करते हो । तुम
अपनेमें ही अपनेसे ही कभी प्रकट हो जाते हो, कभी
लय हो जाते हो । यों नित्य-निरन्तर अपरिमित प्रकारोंसे
तुम्हारी यह संयोग और वियोगकी—मिलन और विरहकी
लीला चलती रहती है । बड़े विलक्षण-विलक्षण खेल

होते रहते हैं; परंतु सभी निज-सुखकी इच्छासे रहित (केवल सुख देनेके लिये ही) होते हैं । प्रियतम ! मैं अलग क्या कहूँ ? सब कुछ तुम्हीं तो कहते हो और सुनते भी सब तुम्हीं हो । मैं जो कुछ हूँ सो तुम्हीं हो ।'

'प्यारी सखी ! मैं सब कुछ त्यागकर निभृत निकुञ्जमें ध्यानमग्न बैठी हुई एकान्त हृदय-मन्दिरमें यों प्रियतमसे बात करनेके रूपमें उनको भज रही थी कि मेरी ये मनकी बातें सुनकर वे मेरे प्रियतम मोहन उस यमुना-तटकी निकुञ्जमें सहज प्रकट होकर सुशोभित हो गये । इसीके साथ मेरे हृदयसे वे मेरे प्राण-जीवन-धन सहसा

अन्तर्धान हो गये । उनके अन्तर्धान होते ही मेरे हृदयमें अत्यन्त तीव्र व्याकुलता उत्पन्न हो गयी और बस, उसी क्षण मेरे नेत्र खुल गये । नेत्र खुलते ही मैं देखा—वे प्राणप्रियतम रसपूर्ण नेत्रोंसे निर्निमेष मेरे ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं । मेरे हृदयमें भी तुरंत उनसे मिलनेकी अत्यन्त तीव्रतम इच्छा जाग उठी । बस, उन्होंने अपनी भुजाओंमें भरकर मुझे हृदयसे लगा लिया और उनके रसभरे नेत्रोंसे झर-झर प्रेमाशु बहने लगे ।'

कैसा विचित्र त्यागपूर्ण अनन्य प्रेम है !

दैवीसम्पदा और आसुरीसम्पदाका स्वरूप और परिणाम

(लेखक—श्रीरणजीतमलजी मेहता, अवसरप्राप्त जज)

यह संसार हाट बणियाकी सब जुग सौदे आया ।

चातुर माल चौगुणा कीन्हा मूर्ख मूल गँबाया ॥

संसारमें अनेक उत्तम पदार्थ हैं, जिनके प्राप्त होनेसे मनुष्यको सुख और गौरव मिलता है । इन पदार्थोंके समूह-को सम्पदा कहना चाहिये । इनमें स्वास्थ्य, द्रव्य, विद्या, अधिकार, सम्मान आदि सब सम्मिलित हैं । सांसारिक जनताकी दृष्टिसे ये वस्तुएँ जिसके पास होती हैं, उसे ही बड़ा आदमी या सौभाग्यवान् माना जाता है । उदाहरणार्थ एक सेठ, राज्यका अधिकारी या कालेजका प्रोफेसर सम्पदा-सम्पन्न पुरुष माना जाता है; क्योंकि लोकदृष्टिमें उसका जीवन सुखसे वीतता है, सम्मान भी होता है । इसके विपरीत एक अभावग्रस्त साधनहीन पुरुष ग्लानि तथा निरादरका पात्र बन जाता है । यह सब कर्मोंका फल है; क्योंकि ईश्वरके विधानमें जो कुछ होता है, वह नियमपूर्वक होता है । नियमके विरुद्ध कुछ भी नहीं हो सकता । इस विषयमें गोस्वामी तुलसीदासजीके सुन्दर वचन सदैव याद रखने लायक हैं—

कर्म प्रधान बिस्व रचि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥

हर एक धर्म-प्रचारकने इस सिद्धान्तका हृदयपूर्वक

समर्थन किया है । अब प्रश्न यह उठता है कि किसी पुरुषको उसके अच्छे कर्मोंके फलस्वरूप सम्पत्ति मिले तो उसको उसका उपयोग किस प्रकार करना चाहिये ? इस प्रसंगमें नीतिका यह अच्छा श्लोक मननीय है—

विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतज्-
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

विद्यासे ज्ञान प्राप्त करना और दूसरोंको ज्ञान देना, धनसे दान देना और अधिकारसे जनताकी रक्षा करना—ये इन वस्तुओंके सदुपयोग हैं और इसीको दैवीसम्पदा कहना चाहिये । वाद-विवाद पैदा करके विद्यासे दूसरोंको मूल ठहरानेकी चेष्टा करना, धनसे मदान्ध (Proud) होकर दूसरोंका निरादर करना और अधिकार पाकर लोगोंको दुःख देना—ये इन वस्तुओंके दुरुपयोग हैं और इसीको आसुरी सम्पदा कहा गया है ।

दैवीसम्पदाकी प्राप्ति होती है उत्तम संस्कार, अच्छी शिक्षा और सत्संगसे । ऐसा मनुष्य ईश्वरके विधानमें श्रेष्ठ

रखता हैं और उसके बनाये हुए नियमोंका पालन करनेमें ही अपना कल्याण समझता है तथा दूसरोंको सुख देने और उनका हित करनेको ही अपने सुख-हितका साधन मानता है। यही शास्त्रोंका सार है। जैसा कि एक महात्माने कहा है—

चार वेद षट् शास्त्रों में बात मिली है दोय ।
सुख दीन्हे सुख होत है, दुख दीन्हे दुख होय ॥

अब आसुरीसम्पदावालोंका स्वरूप देखिये—

वे ईश्वरको नहीं मानते, कर्मफलको नहीं मानते, पर-लोकको नहीं मानते और अपने सीमित बुद्धि और बलको ही सर्वोपरि मानते हैं। वे दूसरोंको दुःख देनेमें, उनका अहित करनेमें, सामाजिक नियम और मर्यादाओंको तोड़नेमें कोई शंका नहीं करते। उनका यह विश्वास है कि वे जो चाहें सो कर सकते हैं और उनकी स्वेच्छाचारिताको रोकनेवाली या उन्हें दण्ड देनेवाली कोई शक्ति नहीं है। इस मनोवृत्तिका बहुत मनोहर विवेचन श्रीमद्भगवद्गीताके १६वें अध्यायमें किया गया है और वहाँ कहा गया है—आसुरीसम्पदावाले लोग दम्भ, मान, मदमें चूर हुए कभी भी पूरी न होनेवाली कामनाओंके वश हुए मोहवश असत् आचरण करते हुए भ्रष्टाचारमें लगे रहते हैं। वे सदा चिन्ताग्रस्त, काम-क्रोध-परायण तथा कामोपभोगको—जैसे-तैसे धन कमाओ और उसे भोगो—इसीको जीवनका एकमात्र लक्ष्य मानते हुए अन्यायपूर्वक अर्थोपार्जन करते हैं। वे धनलोभी लोग हर किसीको शत्रु मानकर उसकी हत्यामें प्रवृत्त रहते और अपनेको ही ईश्वर, भोगी, सफलजीवन, बलवान् तथा सुखी मानते हैं। वे सब तरहसे अभिमानमें मतवाले होकर दिन-रात बुरा सोचते, बुरा करते—यहाँ दुःखी रहते हैं तथा अन्तमें अपवित्र नरकोंमें गिरते हैं। इस प्रकार ऐसे दुष्ट पुरुषोंका घोर पतन होता है तथा वे बहुत दुःख पाते हैं। प्रारम्भके दोहेमें 'मूर्ख मूल गँवाया' जो शब्द आये हैं, वे ऐसे लोगोंके लिये बिल्कुल ठीक लागू होते हैं। ऐसे लोगोंके लोक-परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं। यही कारण है कि बहुतसे मनुष्य जन्मकालसे ही आयुपर्यन्त दुःख-ही-दुःख भोगते हैं। यदि इसका उदाहरण देखना है तो सड़कोंपर बैठे हुए या फिरते हुए हजारों भिखारियोंको देखना चाहिये। इनमेंसे भी कई पिछले जन्ममें बड़े सेठ या शासक अथवा पण्डित रहे होंगे। उनके पुण्य नष्ट होकर जो पाप संचित हुए, उन्हींका फल उनको बाध्य होकर भोगना पड़ रहा है। कहा गया है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । भगवान् बुद्धने भी स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा है कि 'बड़े-से-बड़ा राजा पापोंके फलस्वरूप अगले जन्ममें भिखारी हो जाता है तथा गरीब-से-गरीब व्यक्ति अपने पुण्य और तपके प्रभावसे भविष्यमें बड़ा ऐश्वर्यवान् पुरुष बन जाता है।' (देखिये—Light of Asia, by Sir Edwin Arnold)

देवीसम्पदाके फलस्वरूप मनुष्य ऊपर चढ़ता है और परमपदतक पहुँच सकता है। आसुरीसम्पदाका फल यह होता है कि वह इतनी नीची गतिमें चला जाता है कि उसके दुःखकी कोई सीमा नहीं रहती।

देवीसम्पदाका क्रम—नीचेसे ऊपर आना

- (१) ईश्वरमें तथा सत्यमें श्रद्धा और उसका आश्रय ।
(Integrity)
- (२) अपने कर्तव्यकर्मको कुशलतापूर्वक करना ।
(Efficiency)
- (३) जीवनको सादा तथा पवित्र बनाना ।
(Simplicity, Purity)
- (४) नम्रता रखना । (Modesty)
- (५) सबके प्रति सद्भावना ।
(Goodwill towards all)
- (६) जीवनका ऊँची स्थितिमें पहुँचना और जन्मकी सफलता प्राप्त होना ।
(Exaltation and Salvation)

आसुरीसम्पदाका क्रम—ऊपरसे नीचे जाना

- (१) ईश्वर, ईश्वरके विधान और समाजके नियमोंका निरादर (Disregard for Divine as well as human laws) ।
- (२) अभिमानकी अत्यधिक मात्रा (Excess of vanity) तथा कर्तव्य-त्याग ।
- (३) विलासिताका प्रेम (Love of Luxury) ।
- (४) अभिमान, मद, लोभ और उसकी पूर्तिके लिये छल, कपट तथा शक्तिका दुरुपयोग करना (Greed and its fulfillment by fraud or force or both) ।

(५) भ्रष्टाचारकी पराकाष्ठा (Demoralization and Degradation) ।

(६) सर्वनाश (Total Destruction of all that is good and desirables) ।

उपर्युक्त विषयोंपर तुलनात्मक दृष्टि डालनेसे स्पष्ट मालूम हो जाता है कि दैवीसम्पदाका आश्रय लिया हुआ व्यक्ति कौन है और आसुरीसम्पदाका कौन ? उसके आचार-विचारसे सहजमें ही परीक्षा हो जाती है तथा उसका परिणाम भी ध्यानमें आ जाता है । श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—‘दैवीसम्पदाका फल मोक्ष है और आसुरीका बन्धन—‘दैवी सम्पद्दिमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।’

इतिहासमें ऐसे बहुत-से दृष्टान्त मिलते हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि दैवीसम्पदाके ग्रहण करनेके लौकिक परिणाम क्या हुए और आसुरीसम्पदासे क्या हुए । यहाँपर दो महापुरुषोंका उल्लेख करना पर्याप्त होगा । एक तो सम्राट् अशोक, दूसरे महाराजा विक्रमादित्य—ये दोनों शक्तिशाली शासक थे, किंतु इन्होंने दैवीसम्पदाका आश्रय लिया और दृढ़ता तथा उत्साहके साथ जनताकी सेवा की ।

फलस्वरूप उनका जीवन गौरव और सफलतासे परिपूर्ण रहा और दो सहस्रसे अधिक वर्ष बीत जानेपर भी उनकी उज्ज्वल यश-रीति आज भी सर्वत्र चमक रही है और विचारशील मनुष्योंको प्रेरणा दे रही है । इसी प्रकार धनवानोंमें देखिये । आप भारतका भ्रमण कीजिये और अनुभव कीजिये कि जनताके कल्याणके कार्योंमें मन्दिर, धर्मशालाएँ, पाठशालाएँ, औषधालय, अनाथालय, कुँए, बावड़ी, तालाब आदि संस्थाओंमें कितनी करोड़ों रुपयोंकी राशि व्यय हुई है और जिन दानोंका कोई चिह्न मौजूद नहीं, उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता । यह सब किसने किया ? उन धनसम्पन्न पुरुषोंने जिन्होंने दैवीसम्पदाका आश्रय लिया था । इसी तरहसे विद्याके विषयमें देख लीजिये । जो अनेक ग्रन्थ जनताको शिक्षा और प्रेरणा देते हैं, ये उन विद्वानोंकी ही देन हैं, जो दैवीसम्पदाका आश्रय लिये हुए थे ।

भारतको छोड़कर अन्य देशोंके इतिहासपर विचार किया जाय तो वहाँ भी दैवीसम्पदा और आसुरीसम्पदाके बहुत-से उदाहरण मिलेंगे । जिस देशने उन्नति की, वह दैवी-

सम्पदाके आश्रयसे ही की है और जिसका पतन हुआ तो आसुरीसम्पदासे ही हुआ है । दैवीसम्पदाका अच्छा उदाहरण अमेरिकाके भूतपूर्व प्रेसिडेंट रूजवेल्टसे मिला है कि जिन्होंने आसुरीसम्पदाके पुजारी हिटलरको अमेरिकाकी प्रबल शक्तिके सदुपयोगसे समाप्त करके विश्वको पाप, गुलामी और अत्याचारसे बचाया । इस विषयमें ये निम्नलिखित चार बातें विचारणीय हैं—

(१) सत्ता और धन—उन्माद पैदा करके मनुष्यके पतनके कारण बन जाते हैं और उसकी बुद्धि तथा विवेकको नष्ट कर देते हैं । इसलिये इनसे सदैव दूर रहा जाय ।

(२) ज्ञान और सदाचारके अभ्याससे सत्ता और धनका सदुपयोग करना सीखा जाय और उनसे जन-कल्याणके कार्य किये जायें ।

(३) सत्ता और धनको समाजकी वस्तु बना दिया जाय और व्यक्तियोंका उनपरसे प्रभुत्व हटा दिया जाय ताकि उनसे दुरुपयोग, उन्माद एवं पतनकी आशंका ही नहीं रहे ।

(४) संसारमें भोग-विलासके लिये और अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिये सत्ता और धनके बराबर दूसरे कोई साधन नहीं हैं । इसीलिये लोगोंका यह निश्चय होता है कि इनको किसी भी प्रकारसे न्याय, अन्यायसे प्राप्त किया जाय, अपने काबूमें रक्खा जाय और उनसे मनमाना खेल खेला जाय ।

अब इन चारों दृष्टिकोणोंपर कुछ विस्तारसे विचार किया जाता है ।

(१) यह बात निर्विवाद है कि हर एक मनुष्यमें न्यूनाधिक मात्रामें अहंकार (Egoism) होता ही है और यह भी सत्य है कि धन और सत्ता अभिमानको बहुत बढ़ावा देती है । इनमें मोह-उन्माद (Infatuation) पैदा करनेका स्वाभाविक गुण है । इसीलिये अपना कल्याण चाहनेवाले उच्च ध्येयवाले विचारशील पुरुषोंने परम्परासे धन और सत्तासे दूर रहनेमें ही भलाई समझी है, ऐसे लोग अपने उच्च लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये सब प्रकारका बलिदान करनेको

संख्या ५]

भी तैयार रहते हैं। इस श्रेणीमें अग्रगण्य नाम भगवान् बुद्धका आता है। अन्य भी बहुतसे उदाहरण हैं। महात्मा गान्धीके जीवनसे भी हमको बहुत कुछ शिक्षा मिलती है। स्वराज्य आनेपर वे चाहते तो प्रधान मन्त्री या राष्ट्रपति बन जाते; किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। साधारण मनुष्योंके लिये वे बातें बहुत कठिन हैं। इसलिये दूसरी श्रेणीकी विचारधारा परम्परासे चली आ रही है।

(२) पुरुषार्थ और योग्यतासे धन और सत्ता प्राप्त की जाय और उनका सदुपयोग करके अपनी और समाज दोनोंकी उन्नति की जाय। यह मध्यम मार्ग (Middle Path) है। किंतु इसमें बहुत सावधानीकी आवश्यकता है; क्योंकि इस मार्गमें डिगनेवाली प्रवृत्तियाँ (Temptations) बहुत आती हैं। बुद्धिमान् आदमी वही है कि जो सत्य एवं न्यायके मार्गसे कभी विचलित न हो।

(३) धन और सत्ताका अधिकांश दुरुपयोग होता है। इसलिये राजाओंका शासन (Monarchied) प्रायः विश्वसे समाप्त हो चुका है और इसके बदलेमें प्रजातन्त्र शासन (Democracy) प्रचलित हो रहा है अर्थात् सत्ता प्रजामें ही रहे, किसी व्यक्तिविशेषमें नहीं। इसी तरहसे पूँजीवादको मिटाकर समाजवाद और साम्यवादकी स्थापना करनेके लिये प्रबल चेष्टा हो रही है। ऐसा होनेका कारण यही है कि बहुधा पूँजीपति अपने धनका दुरुपयोग करते हैं। ऐसा न हो तो साम्यवादका प्रभाव फैलानेके लिये आवश्यकता ही नहीं रहती। परंतु मनोवृत्तिमें आसुरी-सम्पदाका आश्रय रहनेपर प्रजातन्त्र, समाजवाद और साम्यवादके मानने-मनवानेवाले लोग भी सर्वथा भ्रष्टाचार, अलाचारपरायण तथा असत्-मार्गमें प्रवृत्त हो जाते हैं।

इसके लिये दैवीसम्पदाका प्रचार तथा विस्तार आवश्यक है, जिससे लोग धन तथा सत्ताके मोहजालसे मुक्त होकर कर्तव्यपरायण बनें। इसके दो उपाय बड़े महत्त्वके हैं। (१) सुशिक्षासे देशवासियोंको योग्य और सदाचारी बनाया जाय, (२) सुशासनसे उच्चाधिकारी जनताके सामने एक आदर्श प्रस्तुत करें। अपने नीचेके अधिकारियोंपर शुद्ध प्रभाव डालें। इस प्रसंगमें गोस्वामी तुलसीदासजीके दो वाक्य हर एक व्यक्तिको याद रखने चाहिये—

(१) दया धर्मका मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाड़िये, जब लग घटमें प्राण॥

(२) प्रभुता पाय काहि मद नाहीं।

यह बात भी स्मरण रखनेयोग्य है कि यदि कोई व्यक्ति धन और सत्तासे विषयवासनाकी पूर्तिको ही अपना ध्येय समझे तो यह उसकी भारी भूल है। गीताने इस विषयमें कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(१६।२२)

हे अर्जुन ! विषयभोगोंमें बुद्धिमान् पुरुष रुचि नहीं करते; क्योंकि वे यह जानते हैं कि जितने भी संस्पर्शज भोग हैं, वे दुःख पैदा करनेवाले हैं और दुःखका कारण यह है कि किसी वक्त तो अप्राप्त ही रहते हैं और प्राप्ति-के बाद उनका विनाश हो जाता है।

यह बात तो अनुभवसिद्ध है कि हर एक मनुष्यको किसी-न-किसी समय अपना शरीर भी छोड़ना पड़ेगा और उसकी अवधि भी हमारी दृष्टिमें निश्चित नहीं है तथा अपने प्रभुत्व (Control) में भी नहीं है। इसलिये इस बातको सदैव याद रखना चाहिये कि इस संसारमें हमारा रहना अस्थायी (Impermanent) है। मनुष्य-जन्मका लक्ष्य और सफलता शाश्वत सुख (Everlasting happiness) की प्राप्ति है तथा धन एवं सत्ता सब नाशवान् वस्तुएँ हैं और उनके दुरुपयोगसे दुःख तथा पतन निश्चित है। इसलिये इस विषयपर गम्भीरतासे विचार करनेकी और उसके अनुसार आचरण करनेकी आवश्यकता है। इसकी अधिक जानकारीके लिये गीताके अध्ययनसे लाभ उठाना चाहिये। वहाँ १६वें अध्यायमें दैवीसम्पदा और आसुरीसम्पदा दोनोंका उत्तम रीतिसे वर्णन किया गया है तथा इसी विषयको लेकर विश्वमें आजतक जो महान् पुरुष हुए हैं, उन्होंने गीताके दृष्टिकोणका पूरी तौरसे समर्थन किया है, और उनमें वे लोग भी सम्मिलित हैं जो ऊँची-ऊँची सत्ता और अधिक-से-अधिक धन प्राप्त करके भी मदान्ध नहीं हुए और अपने विवेकको सुरक्षित रख सके। ॐशान्ति।

तुलसीके नारी पात्र

(लेखिका—श्रीमती तुलसीदेवी मिश्र एम० ए०, एम० एड०)

रामचरितमानस हिंदीसाहित्यकी अनुपम निधि है। इसमें भारतीय संस्कृतिका मनोहर सर्वाङ्गीण निरूपण हुआ है। भारतीय संस्कृतिकी नारीका विशद चित्रण इसकी विशेषता है। इसमें नारीके विविध रूपोंका सुन्दर चित्रण है। तुलसीके नारी पात्र मानवसुलभ सभी विशेषताओंसे सम्पन्न हैं। एक ओर जहाँ मानसमें कौसल्या, सीता, अनुसूया, मन्दोदरी, सुमित्रा आदि उदारशया महान् स्त्रियोंका मनोहर उज्ज्वल चित्रण है, वहीं दूसरी ओर मन्थरा, शूर्पणखा, ताड़का-जैसी दुष्टा स्त्रियोंका भी आकर्षक अङ्कन है।

‘मानस’ में देवियाँ, मानवी स्त्रियाँ, राक्षसियाँ, अर्धमानवी—सभी श्रेणीकी स्त्रियाँ प्राप्त हैं, जो अपनी चरित्रगत विशेषताओंके कारण रामकथामें महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। तुलसीदासजीने नारी पात्रोंका सूक्ष्म चित्रण करके उन्हें अत्यन्त सजा-सँवारकर उपस्थित किया है। सभी किसी-न-किसी महान् आदर्शकी प्रतिष्ठा करती हैं। तुलसीदासजी-के नारी पात्र उच्च आदर्शोंसे परिपूर्ण हैं और मानवीय दुर्बलताओं-से युक्त भी। उन्होंने गुण-दोषमय विश्वके दृष्टिकोणको नारी पात्रोंके चित्रणमें भी महत्व दिया है। सतीके मोहके चित्रणद्वारा तुलसीने नारी-सुलभ दुर्बलताओंका सहज चित्रण किया है, किंतु उस मोहके मूलमें रामविषयक जिज्ञासाको रखकर उन्होंने उसे भी मनोहर रूप प्रदान किया है। सतीके मोहके लिये गोस्वामीजीने सतीको नहीं, किंतु राम-मायाको मूल कारण ठहराया है—

बहुरि राम मायहि सिरु नावा । प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा ॥

सतीकी जन्म-जन्मान्तरकी राम-विषयक जिज्ञासाकी परितुष्टि-स्वरूप शंकरने पार्वती-जन्ममें उन्हें आद्योपान्त रामकथा सुनायी है। रामके मानवरूपमें अवतरित होनेके मूल कारणस्वरूप मनु-शतरूपा-प्रसंगके अन्तर्गत शतरूपाकी सहज मातृभावना निहित है। शतरूपाको वरदान देनेके फलस्वरूप रामने उन्हें अपनी बाल-क्रीड़ाओंसे आनन्दित करनेको नररूपमें अवतरित होकर उन्हें पुत्रसुख प्रदान किया।

कौसल्या—कौसल्यामाताका चरित्र ज्ञानमय है। उनकी भावनाएँ सदा विवेकसे अनुशासित हैं। मनुने प्रभुको

पुत्ररूपमें माँगा था, किंतु शतरूपाने वरदानमें भक्तोंका सुख, विवेक एवं आचरण सभी कुछ माँग लिया था। वही विवेकशीला शतरूपा इस जन्ममें कौसल्या हुई और मनु दशरथ हुए। ‘मानस’की कौसल्या स्वभावतः अत्यन्त उदार हैं। उनमें सपत्नीद्वेष लेशमात्र भी नहीं है। दशरथने उन्हें हविष्यान्न दिया तो उन्होंने प्रसन्नतासे उसमेंसे सुमित्राको दे दिया। कौसल्या अपने और कैकेयीके मातृत्वपदमें कोई अन्तर नहीं मानती। वे पूर्ण उदारतासे रामसे कहती हैं कि यदि केवल पिताने वन जानेका आदेश दिया है तो वे माताको पितासे बड़ी जानकर वन न जाएँ, किंतु यदि माता-पिता दोनोंने उन्हें वन जानेको कहा हो तो ऐसा वन उनके लिये सैकड़ों अयोध्याओंसे बढ़कर है। जौ केवल पितु आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥ जौ पितु मातु कहैउ बन जाना । तौ कानन सत अवध समाना ॥

पुत्रके राज्याभिषेकके स्थानपर वनादेशके विषयमें जानकर अवर्णनीय वेदना होनेपर भी वे अपनी गम्भीरता एवं धैर्यको नहीं त्यागतीं। अत्यधिक संतप्त होनेपर भी वे विवेकमयी हैं। उस समय उन्हें सर्वाधिक चिन्ता इस बात की है कि रामके बिना भूपतिको, भरतको और प्रजाको प्रचण्ड क्लेश होगा—

राजु देन कहि दीन्ह बन मोहि न सो दुख लेहु ।
तुम्ह बिन भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड क्लेहु ।

‘मानस’ की कौसल्या रामको पितृ-आज्ञा-पालनके कर्त्तव्यमें रंचमात्र भी विचलित नहीं करना चाहतीं। उनकी दृष्टिमें पिताकी आज्ञाका पालन करना पुत्रका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—
तात जाउँ बलि कीन्हैहु नीका । पितु आयसु सब धरमक टीका ॥

उन्हें अपने पत्नीधर्मका पूर्ण ज्ञान है। वे पतिके लिये त्यागकर पुत्रके साथ वन चलनेका आग्रह नहीं करतीं, किंतु अत्यन्त धैर्य एवं विवेकसे रामसे कहती हैं—

जौ सुत कहउँ संग मोहि लेहु । तुम्हरे हृदय होइ संदेह ।

अन्तमें विधाताकी गतिको सब कुछ समझ लेते हैं। पुत्रको आशीर्वाद देकर विदा किया कि वे शीघ्र लौटकर प्रजा के कष्ट मिटावें और अपनी निष्ठुर माताको भूल न जाएँ।

संख्या ५]

माताने विधातासे कामना की कि क्या कभी उनकी दशा पलटती कि वे अपने नेत्रोंसे पुनः राम-सीताकी मनोहर जोड़ी निरखेंगी और उन्हें तात, वत्स, लाल, रघुपति आदि कहकर हृदयसे लगाकर पुलकित होंगी—

बहुरि बच्छ कहि लाहु कहि रघुपति रघुबर तात ।
कवहि बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात ॥

स्नेहाकर कौसल्या धर्म और स्नेह—दोनोंसे अभिभूत हैं । अतः दोनोंका एक साथ पालन करती हैं । वे केवल स्वयं ही कर्तव्यशील नहीं हैं, अपनी विवेकशीलताद्वारा वे रघुकुलशिरोमणि राजा दशरथको भी धैर्य बँधाती हैं—

धीरु धरिअ त पाइअ पारु । नाहि त बूझिहि सबु परिवारु ॥

माता कौसल्या राम और भरतमें कोई अन्तर नहीं मानती । वे भरतसे रामकी भाँति स्नेह करती हैं—‘राम भरत दोउ सुत सम जानी’ । ननिहालसे भरतके आगमनपर ममत्वमयी कौसल्याने उन्हें उठाकर अत्यन्त सरलभावसे हृदयसे लगा लिया एवं अश्रुमोचन करने लगीं । उस समय उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो उनके राम पुनः उनके पास लौट आये हों—

सरल सुभाय मायँ हियँ लाए । अतिहित मनहुँ राम फिरि आए ॥

किंतु संयमशील माँकी भाँति वात्सल्यरससे विभोर होनेपर भी उन्होंने भरतको धैर्य एवं आश्वासन प्रदान करके अपनी उदारहृदयता एवं गूढ़ विवेकका विशेष परिचय दिया है—

माता भरतु गोद बैठारे । आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे ॥
अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहु । कुसमउ समुझि सोक परिहरहु ॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी । काल करमगति अघटित जानी ॥

कौसल्या आदर्श श्वश्रू हैं । उनका अपनी पुत्रवधूके प्रति व्यवहार श्लाघनीय है—

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई । राखेउँ प्रान जानकिहि लाई ॥

‘मानस’की कौसल्याका सम्पूर्ण जीवन आदर्श एवं त्यागमय है ।

सीताके चरित्रका तो कहना ही क्या है ! विश्वसाहित्यमें वैसा चरित्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है । आध्यात्मिक रूपमें वे ‘उद्भवस्थितिसंहारकारिणी’ और ‘क्लेशहारिणी’ हैं, तो आधिदैविक रूपमें ‘सर्वश्रेयस्करी’ (कल्याणकारिणी) हैं और आधिभौतिक रूपमें वे ‘रामवल्लभा’ सीता हैं । इन तीनों रूपोंको ध्यानमें रखकर गोस्वामीजीने ‘मानस’के प्रारम्भमें उनकी वन्दना की है—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥

सीताके चरित्रकी मुख्य विशेषता उनका दृढ़ पतिव्रत्य है । भक्त तुलसीदासजीने सीताके नाम-स्मरणमात्रसे स्त्रियोंके पतिव्रत्यधर्ममें स्थिर होनेको कहकर उन्हें अनुसूयासे ‘पतिव्रता-शिरोमणि’ कहलाया है । वनगमनके समाचारसे वे दुःखित नहीं हुईं, अपितु वे रामके वियोगकी आशंकामात्रसे व्याकुल हो उठीं । मानसिक अन्तर्द्वन्द्वको वे अंदर-ही-अंदर सीमित रखके संकोचवश मौन स्थित रहीं । रामके मुखसे वनके भीषण कष्टोंको सुनकर उन्होंने अत्यन्त नम्रतासे कौसल्यासे क्षमा-याचना करके मर्यादितरूपसे अपने वनगमनकी अभिलाषा व्यक्त करते हुए रामसे स्पष्ट कहा कि ‘उनके लिये पतिवियोगके समान जगत्में कोई दुःख नहीं है, उनके बिना स्वर्ग भी उनके लिये नरकके समान है । संसारके जितने भी स्नेह और नाते हैं, वह सभी पतिके बिना स्त्रीको सूर्यसे भी बढ़कर तपानेवाले हैं । शरीर, धन, गृह, पृथ्वी आदि पतिके अभावमें स्त्रीके लिये सब शोकके समाज हैं । भोग रोगके समान हैं, आभूषण भाररूप हैं और संसार यमयातनाके समान है । उनके बिना जगत्में उन्हें कुछ भी सुखदायी नहीं है, जैसे बिना जीवके देह और जलके बिना नदी है वैसे ही बिना पुरुषके स्त्री है । उन्हें तो निरन्तर वनमें पतिके साथ रहने और उनका मुखचन्द्र निहारनेमें समस्त सुख प्राप्त होंगे । उनके साथ पशु-पक्षी ही उनके प्रिय कुटुम्बी होंगे । पर्णकुटी उनके लिये स्वर्गके समान सुखदायी होगी । वनके कन्द-मूल और फल अमृतके समान आहार होंगे और पहाड़ अयोध्याके सैकड़ों राजमहलोंके समान होंगे । प्रतिक्षण प्रभुके चरण-कमलोंको देखकर वे अत्यधिक आनन्दित रहेंगी । वनके जितने भी कष्ट, भय, विषाद और संताप—स्वामीने उन्हें सुनाये वे सब मिलकर प्रभुके वियोगजनित दुःखके लवलेख भी नहीं होंगे’—

वन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय विषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु वियोग लवलेख समाना । सब मिलि होहि न कृपानिधाना ॥

वनमें वे सभी प्रकारसे प्रियतमकी सेवा करेंगी और मार्गजनित समस्त थकावट दूर करेंगी । प्रियतमके चरण-प्रक्षालन करके, पेड़ोंकी छायामें बैठकर प्रसन्नमनसे पंखा झलेंगी आदि—

मोहि भग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ॥

सबहि भौंति पिय सेवा करिहौ । मारग जनित सकल श्रम हरिहौ ॥
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं । करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं ॥
श्रमकन सहित स्याम तनु देखें । कहँ दुख समउ प्रान पति पखें ॥

उनकी पतिपसयणता देखकर पिता जनकने मुक्तकण्ठसे उनकी प्रशंसा की है । उन्हें तापसी वेषमें देखकर पिताको असीम संतोष और सुख हुआ । वे कह उठे—

पुत्रि ! पवित्र किए कुल दोऊ । सुजस धवल जगु कह सब कोऊ ॥

‘मानस’में सीताके चरित्रकी एक विशेषता और है । सीताके चरित्र-चित्रणमें तुलसीके भक्त-व्यक्तित्वका प्रभाव भी पड़ा है । सीताके पत्नीसुलभ रूपके साथ-साथ उनमें रामकी अनन्य भक्ताके गुणोंका समावेश है । इस सुवर्ण-सुगंधि संयोग-की वृष्ट-भूमिमें तुलसीने सीताके प्रेममें ‘अलौकिक प्रीति’ एवं ‘प्रीति पुरातन’की अखण्डताका निदर्शन किया है, जिसे सूक्ष्म पारखी तुलसीने ही लखा है, और किसीने नहीं । इसी पुरातन एवं अलौकिक प्रेमसे विवाहके पूर्व उनकी प्रीतिको मर्यादावादी तुलसीने पुनीत कहा है—‘प्रीति पुरातन रुखै न कोई’ । सीताका भक्तस्वरूप ‘मानस’में आद्योपान्त वर्णित है । वे निरन्तर रामके चरणकमलोंके ध्यानमें लवलीन रहा करती थीं—‘सिय मन राम चरन अनुरागा’ । हनुमान् रामको सीताके विषयमें बताते हैं—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।

लोचन निजपद जंत्रित जाहिँ प्रान केहिँ बाट ॥

रावणके यहाँ विषम परिस्थितिमें भी वे प्रतिपल रामजीके नाम-गुणोंका जप एवं स्मरण करके आत्मरक्षा किया करती थीं । वही उनका एकमात्र कवच था । आर्तभक्तकी भौंति विलाप करती हुई वे प्रभुकी कृपायाचिका हैं—

हा जग एक बीर खुराया । केहि अपराध बिसारेहु दाय ॥
आरतिहरन सरन सुखदायक । हा खुकुल सरोज दिन नायक ॥

सीताकी—

दीनदयालु विरद संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

—वाली पंक्ति तो भक्तोंका सर्वस्व बन गयी है । श्रीरामकी चरणकमलरज उनका परमधन है, जिसको वे अवध एवं जनकपुरके अतुल वैभव-विलासके समकक्ष कहीं अधिक वरीयता प्रदान करती हैं—

बिनु खुपति पद पदुम परागा । मोहि केउ सपनेहु सुखद न लाग ॥

जिन प्राणप्रिय रामके लिये सीताने लंकामें यमयातनासे

अधिक कष्टदायी जीवन व्यतीत किया, उन्हीं रामने रावणकी मृत्यु एवं लंकाविजयपर उन्हें कुछ वचन कहे और अग्नि-परीक्षाका आदेश दिया । पतिव्रता सीताने उसे भी सहर्ष शिरोधार्य किया और अपने आत्म-समर्पणका अनुपम दृष्टान्त संसारके समक्ष प्रस्तुत किया । उनकी पवित्रताके साक्षी स्वयं अग्निदेव हुए ।

लंका-विजयके पश्चात् अयोध्यामें जब वे पद्महिषीके रूपमें रामके साथ राजसिंहासनपर विराजों, तो हमें उनके आदर्श गृहिणी रूपके सुन्दर दर्शन होते हैं—

पति अनुकूल सदा रह सीता । सोभा खानि सुसील विनीता ॥

×

×

×

जद्यपि गृहँ सेवक सेविकिनी । विपुल सदा सेवा विधि गुनी ॥
निज कर गृह परिचरजा करई । रामचंद्र आयसु अनुसई ॥
जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानइ । सोइ कर श्री सेवाविधि जानइ ॥
कौसल्यादि सासु गृह माहीं । सेवइ सबन्धि मान मद नाहीं ॥

भारतीय नारीकी पूर्ण परिणति सीताके चरित्रमें मिलती है । वे संकोचशीला कुमारी, स्वयंवरा, वधू, पुत्रवधू, पत्नी, माभी, गृहिणी—सभी रूपोंमें मानसमें अंकित हैं । अपने सभी रूपोंमें वे परम आदर्श अनुकरणीय हैं ।

कैकेयी—भरतमाता कैकेयीके भावोंके असंतुलनको ही रामायणके इतने बड़े काण्डका उत्तरदायी ठहराया गया है । किंतु तुलसीदासजीने इस असंतुलनके लिये सुरमायाको दोषी ठहराया है । वस्तुतः उन्होंने इस प्रसङ्गमें प्रभु-इच्छाको प्रधानता देकर सभीको दोषमुक्त कर दिया है । देवताओंने सरस्वतीको अपने कार्य-साधनके लिये विवश किया, उन्हें देवहितके लिये अवध आना पड़ा । सरस्वतीने मन्थराकी बुद्धि विपर्ययित की और मन्थराने करोड़ों कुटिलताओंका आश्रय लेकर कैकेयीको भड़काया । अखिर बुद्धिकी स्त्री और देवताओंकी मायाके वशमें होनेके कारण मन्थराके रहस्ययुक्त कपटभरे प्रिय वचनोंको सुनकर रानी कैकेयीने वैरिन मन्थराको सुहृद् जानकर उसका विश्वास कर लिया—

गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अघर बुधि रानि ।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि ॥

वस्तुतः कैकेयी रामको भरतसे भी अधिक मानती थी । क्योंकि रामको सहज स्वभावसे सभी माताएँ कौसल्याके समान प्रिय थीं । फिर उसपर तो उनका विशेष प्रेम था, उनके

संख्या ५]

उनकी प्रीतिकी परीक्षा करके देख ली थी। उसकी तो विधातासे हार्दिक कामना यही थी कि विधाता कृपा करके यदि उसे पुनर्जन्म दें तो रामचन्द्र पुत्र और सीता बहू हों। राम तो उसे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थे।

जौ विधि जनमु देइ करि छोडू। होहुँ राम सिय पूत पतोहुँ ॥

जन्म-जन्मान्तरके लिये 'होहुँ राम सिय पूत पतोहुँ' का वरदान चाहनेवाली कैकेयीके हृदयमें 'भावीवश प्रतीति उर आई' का निर्देशन किया गया है।

भावुक कैकेयीके पुत्रस्नेहको आड़में रखकर उससे इतना निर्मम एवं भ्रमण कृत्य कराया गया। कैकेयीने जो कुछ भी किया—अपने पुत्रके सुखके लिये, उसकी स्वत्व-रक्षाके लिये किया और वह भी उस स्थितिमें जब उसे पूर्ण विश्वास दिला दिया गया कि उसके पुत्रका सम्पूर्ण अधिकार आसन्न भविष्यमें छिन जानेवाला है। उसने अपने लिये कोई सुख-साधनपूर्ण वर नहीं माँगा था।

भरतके दृढ़ निर्णयको देखकर कैकेयीको अपनी भूलपर घोर पश्चात्ताप हुआ और वह अन्य रानियोंके साथ दशरथकी चितामें जल मरनेको उद्यत हो गयी; किंतु—
भरत मातु सब गहि पद राखीं। रही राम दरसन अभिलाखीं ॥
उन्होंने आजीवन पश्चात्ताप किया—

कुटिल मातु पछितानि अवाई।

अबनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु विधि मीचुन देई ॥

वह गुरु वशिष्ठ, नगर-निवासी—ग्रामनिवासी सभीकी निन्दाकी पात्री बनती है और सबसे अधिक आत्मज भरतद्वारा उपेक्षिता है; किंतु तुलसीने उसके चरित्रको सर्वत्र विधाताकी गति कहकर पर्याप्त परिष्कृत करनेका प्रयत्न किया है। कैकेयीके वरदानोंके फलस्वरूप रामने समस्त राक्षसोंका विनाश किया और भरतका उज्ज्वल भ्रातृभक्त-स्वरूप प्रत्यक्ष हुआ।

सुमित्रा—विमाता कैकेयीने भरतके सुखके लिये रामको चौदह वर्षोंके लिये वन भेजा तो सुमित्राने अपने पुत्रको रामकी सेवाके लिये चौदह वर्षोंके लिये वन भेजकर अपने असीम त्यागका आदर्श उपस्थित किया। 'मानस' में सुमित्राका संक्षिप्त चित्रण है; किंतु इस संक्षिप्त झोंकीमें भी उनके अप्रतिम गुणोंकी भव्य प्रतिमा प्रदर्शित की गयी है। सुमित्रा विवेकशीला एवं अत्यन्त मितभाषिणी हैं। सांसारिक प्रपञ्चसे उन्हें सदैव विरक्ति-सी रहती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है कि उन्हें अयोध्याकी भीषण क्रान्तिका

किञ्चित् शान नहीं है। लक्ष्मण जब स्वयं उनसे विदा माँगने गये तो उन्हें रामके चौदहवर्षीय वनवासका समाचार शत हुआ, जिसे सुनते ही सूक्ष्मदर्शिनी सुमित्राके नेत्रोंके समक्ष भावी अन्धकार छा गया।

गई सहमि सुनि वचन कठोरा। मृगी देखि जनु दव चहुँ ओरा ॥

तुलसीदासजीने उनकी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दशाका चित्रण अति सूक्ष्मतासे किया है। सुमित्राने राम-सीताके रूप, शील और मधुर स्वभावको समझकर और उनपर राजाके प्रेमकी गम्भीरताको देखकर अपना सिर धुन लिया, उन्हें विश्वास हो गया कि पापिनी कैकेयीने बुरी तरह धात लगाया है—

समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुसीनु सुमाउ।

नृप सनेहु लखि धुनेउसिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥

किंतु कुसमय समझ धैर्य धारण किया। उन्होंने विदाके समय भयके कारण सकुचाते हुए स्वपुत्र लक्ष्मणसे स्वयं ही स्नेहपूर्वक कहा—

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भौंति सनेही ॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासु। तहँइ दिवस जहँ मानु प्रकासु ॥
जौ पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥
गुरु पितु मातु बंधु सुरसाँई। सेइअहिं सकल प्राण की नाई ॥
रामु प्राण प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के ॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें ॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू ॥

सुमित्राको रामके स्वरूपका सम्यक् शान था। वह पुत्रको सहर्ष रामकी सेवा करनेका आदेश देती हैं। उनकी दृष्टिमें रामकी सेवा जीवनका परम लाभ है। रामके प्रति पुत्रका सहज स्नेह देखकर वे स्वयंको भाग्यशालिनी मानती हैं और कहती हैं—

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौ तुम्हरे मन छाड़ि लहु कीन्ह राम पद ठाउँ ॥

क्योंकि उनकी दृष्टिमें वही युवती स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र श्रीरामका भक्त हो—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई ॥

रामविमुख पुत्रकी माता होनेसे तो स्त्रीका बाँझ होना ही भला है। सुमित्राके विचारसे लक्ष्मणके भाग्यसे ही राम वन जा रहे हैं, उनके वन जानेका अन्य कोई कारण नहीं

है। अतः वे पुत्रको भली प्रकार समझाती हैं कि वह राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोहरहित होकर निर्विकार भावसे मनसा, वाचा, कर्मणा श्रीरामकी सेवा करे। वह सर्वथा वही करे, जिससे श्रीरामको वनमें किसी प्रकारका कष्ट न हो। यही उनका आशीर्वचनसहित उपदेश है। सुमित्राको पूर्णरूपसे निश्चय है कि उनके पुत्रको रामके साथ सब प्रकारसे आराम रहेगा। जिसके साथ श्रीराम-सीता-रूप माता-पिता रहेंगे, उसे किसी प्रकारका कोई कष्ट नहीं होगा। पुत्रके प्रति रामकी सेवापरायणताका उनका यह उपदेश सर्वथा अद्वितीय है। उन्होंने लक्ष्मणको रामके अलौकिक स्वरूपका ज्ञान कराके अपनी तत्त्वज्ञता तथा निष्काम सेवाधर्मका आदेश देकर सेवापरायणताका ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है—

तुम्ह कहुँ बन सब भौंति सुपासू। सँग पितु मातु राम सिय जासू॥

जेहि न राम बन लहहिँ कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

सुमित्राकी समक्षतामें और किसीको नहीं रक्खा जा सकता। उनका चरित्र सर्वथा अनुपम है।

मन्दोदरी—राक्षसी स्त्रियोंमें मन्दोदरी परम सात्विक स्वभावकी रामभक्त स्त्री है। राक्षसराज रावणकी प्रिय पत्नी होते हुए भी उसे रामके स्वरूपका सम्यक् ज्ञान है। वह अपने पतिको बार-बार समझाती है कि राम साक्षात् भगवान् हैं। वे उनसे वैर न करें। जानकीको सकुशल उन्हें समर्पित कर दें। इसके लिये वह रावणसे सदैव अनुनय-विनय करती है। कभी-कभी पतिधर्मकी दृष्टिसे कुछ अनुचित भी कह देती है; किंतु रावण स्त्रीस्वभाव समझकर उसकी सभी बातोंकी अवहेलना कर देता है। मन्दोदरीको रामके परब्रह्म होनेका पूर्ण ज्ञान है। वह सदैव रावणको रामभक्ति एवं भजन करके आत्मकल्याणकी ओर उन्मुख करती है; किंतु उसके न माननेपर उसे कालविवश समझकर संतोष कर लेती है—

काल विवस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना॥

पतिकी मृत्युपर उसे स्वाभाविक शोकके साथ संतोष है कि रामके विरोधके कारण उसकी समस्त दुर्दशा हुई किंतु फिर भी दयालु रामने उसे अपना परम-धाम दे दिया है। अतः वह रामकी उस कृपाके लिये परम कृतज्ञ है। पतिकी सद्गतिसे उसे पूर्ण संतोष है। वह श्रीरामको नमस्कार करके अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है—

जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।

जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुरपिय भजेहु नहिँ करुनामयं॥

आजन्म ते परद्रोहरत पापौघमय तव तनु अयं।

तुम्हहूँ दियो निजधाम राम नमामि ब्रह्म निराप्रयं॥

अहह नाथ रघुनाथ सम कृपा सिंधु नहिँ आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्ह भगवान्॥

रावण-पत्नी राक्षसी मन्दोदरीकी यह रामभक्ति आदर्श है, अनुपम है, धन्य है।

शबरी—तुलसीकी भक्ति-भावनानुसार शबरी रामकी अनन्यभक्ताके रूपमें चित्रित की गयी है। वह रामके समस्त अपना दैन्य प्रदर्शन करती हुई प्रभुके दर्शन पाकर प्रेम-विभोर हो उठती है—

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥

अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल, फल लाने उसने श्रीरामको समर्पित किये और श्रीरामने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेमपूर्वक खाया। उसकी दीनता, हीनतापूर्ण वाणी सुनकर रामने उसे अपनी नवधा भक्ति सुनाकर हृदयमें धारण करनेको कहा, जिसके अनुसार (१) सत्संग, (२) भगवान्‌के कथा-कीर्तनमें प्रेम, (३) निरभिमान गुरु-सेवा, (४) भगवान्‌के गुणोंका गान, (५) उनके राम-नामके मन्त्रका जप और उसमें दृढ़ विश्वास, (६) इन्द्रियनिग्रह, शील-वैराग्य, संत पुरुषोंके धर्माचरणमें लगे रहना, (७) संसारको समभावसे राममय देखना और संतोंको भगवान्‌से भी अधिक मानना, (८) कथा-लाभ संतोष और स्वप्नमें भी पराये दोषोंको न देखना, (९) सरलता और सभीके साथ निष्कपट व्यवहार, भगवान्‌पर भरोसा और हर्ष-विषादरहित होना है। भगवान्‌से स्वयं उससे कहा कि उनकी नवधा भक्तिमेंसे जिसमें एक भी प्रकारकी भक्ति होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी हो, उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। फिर उसमें तो सभी प्रकारकी भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियोंको भी दुर्लभ है, वही उसके लिये सुलभ हो गयी है।

सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।

जोगि बृंद दुर्लभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥

शबरीने रामको सुग्रीवसे मित्रता करनेको कहकर उनके सीतान्वेषण-कार्यको गति प्रदान की है। तुलसीदासजीने शबरी के चरित्रसे स्पष्ट कर दिया है कि रामभक्तिके अधिकारी सभी वर्ण, जाति एवं वयके व्यक्ति हो सकते हैं। रामभक्तिके मार्गमें जाति-पाँतिकी कोई बाधा नहीं है।

रामकथाको विविध प्रकारके मोड़ प्रदान करनेवाली नारियोंमें मन्थरा, ताड़का, शूर्पणखा आदि हैं।

मन्थरा—के चित्रणमें तुलसीने 'गई गिरा मति फेरि' कहकर उसे निर्दोष बनानेका प्रयत्न किया है। उसके पूर्व रामके अहित-चिन्तनमें उसकी बुद्धि तत्पर नहीं थी। देवताओं-के कार्य-साधनके लिये देवताओंकी प्रेरणासे सरस्वतीने उसे 'अपयशकी पेठारी' बनाया। वह सम्पूर्ण अयोध्याकी सुख-शान्तिके लिये धूमकेतु बनी। चौदह वर्षपर्यन्त रामको वन-वास जाना पड़ा; दशरथकी मृत्यु हुई; कैकेयी आदि सभी रानियाँको वैधव्यका दुःख भोगना पड़ा आदि—किंतु उसीके परिणामस्वरूप पृथ्वी भारविहीना हुई, राक्षसोंका नाश हुआ।

शूर्पणखा—रावणकी मृत्युका कारण बनी। उसकी कामवासनाका भयंकर दण्ड उमे मिला। उमे कर्ण-नासिका-विहीन होना पड़ा। उसके रोष एवं मायात्मक स्वभावके फलस्वरूप उसने रावणको सीताहरणके लिये प्रेरित किया।

कामान्ध रावण विनाशके गर्तमें पतित हुआ, किंतु तुलसीने शूर्पणखाके चित्रणमें भी अपनी कुशलताका परिचय दिया है। उन्होंने उसके चित्रणमें भी नीतिज्ञता आदिका पुट दे दिया है। उसीके कारण रावण-जैसे राक्षसको सद्गति प्राप्त हुई। वह परमधाम प्राप्त कर सका।

ताड़का—के कारण रामको विश्वामित्रके आश्रममें जाना पड़ा; जिसके परिणामस्वरूप वे जनकपुरी ले जाये गये और उनका सीताके साथ पुनीत परिणय हुआ और अहल्या-का उद्धार हुआ।

तुलसीने अपने सभी नारी पात्रोंका चित्रण अत्यन्त गम्भीरतासे किया है। सभी किसी-न-किसी प्रकार उनकी भक्ति-भावनासे अनुरजित हैं और किसी-न-किसी आदर्शकी प्रतिष्ठा करते हैं। उनके सभी पात्र सर्वथा सोद्देश्य हैं।

आखिर वह क्या रहस्य था ?

(लेखक—श्रीहृदयनारायण रायजी एम्० ए०, बी० एड्०)

जीवनमें कई बार ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं, जिनके मर्मतक पहुँचनेमें बेचारी बुद्धि कुण्ठित हो जाती है। ऐसी ही कुछ घटनाओंने मेरी बुद्धिके सामने आजतक प्रश्नचिह्न उपस्थित कर रक्खा है। पिताजीकी बड़ी इच्छा थी कि मैं वकील बनूँ, परन्तु मैं किसी कालेजमें प्रोफेसर या प्रधानाचार्य बनना चाहता था। एम्० ए० के पश्चात् उनके इच्छानुसार सालभरतक 'लॉ' का भी विद्यार्थी रहा; परन्तु इसी बीच मेरी नियुक्ति बिहारके एक विद्यालयमें हो गयी और मैंने राहतकी साँस ली। प्रायः प्रीष्ठावकाशमें मैं अपने गाँव जाता हूँ जो गङ्गाके तटपर स्थित है। प्रातःकालीन वायुमें गङ्गातटपर ठहलना मुझे अत्यन्त आनन्ददायक तथा मनोहारी लगता है।

बहुत दिन हो गये उस बातको, लेकिन मेरे दिलसे वह मुलायमी नहीं जाती। एक दिन गङ्गाकी इस रमणीक स्थलीमें मेरी भेंट एक महात्मासे हुई जो एक निर्जन स्थानमें ध्यानमग्न थे। उनके मुखमण्डलसे अद्भुत

आभा प्रकट हो रही थी, जिससे मैं न चाहते हुए भी उनके निकट पहुँच गया। कुछ देर पश्चात् महात्माकी आँखें खुलीं तथा मैं उनके निकट ही बैठ गया। दर्शनशास्त्र तथा संस्कृतका मैं विद्यार्थी रह चुका हूँ, इसलिये महात्मासे प्रथम दिन दर्शन तथा धर्मको लेकर काफी देरतक बातचीत हुई। उनकी विद्वत्ता तथा बुद्धिसे मैं बहुत प्रभावित हुआ तथा प्रतिदिन वहाँ जाने लगा। काशीके अपने विद्यार्थीजीवनमें पण्डे-पुजारियोंसे लेकर उच्चकोटिके विद्वान् संतोंके संसर्गमें आनेका सुअवसर मुझे उपलब्ध हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि धर्मके बाह्य आडम्बर तथा अन्धविश्वासको देखकर धर्मके प्रति मेरी आस्था ही ढाँवाँडोल हो गयी। उन दिनों ईश्वरके अस्तित्वके सम्बन्धमें मेरे मनमें द्वन्द्व मचा हुआ था। जब मैं धर्म तथा ईश्वरके अस्तित्वमें अविश्वास प्रकट करता तो महात्माजी दुखी होते तथा मुझे आस्तिकताकी ओर उन्मुख करनेका प्रयत्न करते।

हस्तरेखाओं तथा ज्योतिषकी बातोंको मैं पूर्णतः

सत्य नहीं मानता, फिर भी इनके अध्ययनमें मेरी बड़ी रुचि है। अधिक घनिष्ठता बढ़नेके बाद एक दिन मैंने महात्माजीको हस्तरेखाओं तथा ज्योतिषपर वार्तालाप करनेको बाध्य कर दिया। पहले तो वे इस विषयपर कुछ कहनेसे इन्कार करते रहे, फिर मेरे आग्रहके कारण वे हस्तरेखाओंको कुछ देरतक देखते रहे, फिर बोले—
‘तुम्हारी-जैसी हस्तरेखाओंका व्यक्ति कभी नास्तिक नहीं हो सकता।’ उन दिनों केन्द्रीय सरकारके शिक्षा-विभागमें एक सरकारी पदके लिये मैं साक्षात्कार दे चुका था। उसके परिणामके सम्बन्धमें उन्होंने कहा—
‘बेटा ! तुम्हारे प्रति श्रीकृष्णकी बड़ी कृपा है, तुम्हें यह पद अवश्य मिलेगा।’ महात्माजी अब विशेष कुछ कहना नहीं चाहते थे, फिर भी मैंने निवेदन किया कि कृपया यह कहिये कि मेरी नियुक्ति कहाँ होगी ? मेरे इस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने एक श्लोक पढ़ दिया, जो मुझे आज भी स्मरण है—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।

पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

उपर्युक्त श्लोककी व्याख्या करते हुए वे बोले कि ‘तुम्हारी नियुक्ति इन्हीं सात स्थानोंमेंसे किसी एक स्थानपर होगी। श्रीकृष्णके विशेष कृपापात्र होनेके कारण तुम्हें ब्रजभूमिमें सेवाका सुअवसर मिलेगा।’ महात्माजीकी बातोंको मैं उस समय यों ही सुनता गया; परंतु मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, जब इस भविष्यवाणीके कुछ ही दिनों बाद केन्द्रीय सरकारके शिक्षा-विभागसे मुझे एक नियुक्ति-पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें मेरी नियुक्ति ब्रजभूमिमें की गयी थी। आजके इस भौतिक भोग-प्रधान युगमें, जहाँ दिनोदिन नास्तिकता तथा फैशनपरस्तीकी बड़े वेगसे वृद्धि हो रही है, कुछ लोग इस सत्य घटनाको कहानी समझेंगे तथा कुछ दूसरे कल्पनाकी उपज या काकतालीय-न्यायसे बना संयोगमात्र !

एक दिन महात्माजी अद्वैत वेदान्तकी व्याख्या कर रहे थे, न जाने कैसे एकाएक मेरे मुँहसे निकल पड़ा कि ‘मैं ब्रह्म या ईश्वरका अस्तित्व नहीं मानता हूँ; क्योंकि वह अगम्य तथा अगोचर है।’ वेदों तथा उपनिषदोंसे अनेक अकाट्य तर्क प्रस्तुत करनेपर भी मैं बार-बार ईश्वरके अस्तित्वमें अविश्वास प्रकट करता रहा। अन्तमें महात्माजी मुसकराकर बोले—‘क्या तुम ईश्वरको तत्काल देखना चाहते हो ?’ मैंने बिना कुछ सोचे-समझे स्वीकारात्मक उत्तर दे दिया। उन्होंने मुझे आँखें बंद करके ध्यान एकत्रित करनेका आदेश दिया। सम्मोहनेके सम्बन्धमें मैंने पुस्तकोंमें पढ़ा था। इसलिये मुझे भय हुआ कि कहीं योगिराज मुझे सम्मोहित न कर दें। फिर भी कौतूहल तथा जिज्ञासावश मैंने आँखें बंद कर लीं। योगिराजने अपना हाथ मेरे सिरपर रक्खा। थोड़ी ही देरमें मुझे एक ऐसी दिव्य ज्योतिके दर्शन हुए जिसका वर्णन करनेकी शक्ति कलममें नहीं है। गीतामें कहा भी तो गया है—

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।

यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥

मेरी दशा एक ऐसे व्यक्तिके समान हो गयी जो स्वप्नमें कोई भयानक वस्तु देखकर आँखें खोलना चाहता है; परंतु ऐसा कर नहीं पाता। कुछ देर पश्चात् उन्होंने जब अपना हाथ हटाया तो मेरे नेत्र स्वयं खुल गये। मैंने देखा कि योगिराज मुसकरा रहे थे। मैं घबराया हुआ उनके सम्मुख नतमस्तक हो गया। इस घटनाके पश्चात् योगिराजके प्रति मेरी प्रगाढ़ श्रद्धा हो गयी, परंतु दूसरे दिन जब मैं उनके स्थानपर पहुँचा तो वे नहीं मिले और पुनः कभी उनसे मेरी भेंट नहीं हुई।

मैं ब्रजमें रहता हूँ; परंतु महात्माजीकी बातोंको स्मरण करके आज भी सारे शरीरमें सिहरन-सी दौड़ जाती है। भगवान् श्रीकृष्णकी कृपावाली बात बहुत

दिनतक मेरे लिये रहस्य बनी हुई थी। एक दिन मैं 'कल्याण' की पुरानी फाइलोंको उलट रहा था कि निम्नलिखित श्लोक मिले—

अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठस्थ गरीयसी ।

विना कृष्णप्रसादेन क्षणमेकं न तिष्ठति ॥

यह मथुरा धन्य और वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ है; क्योंकि वैकुण्ठमें तो मनुष्य अपने पुरुषार्थसे पहुँच सकता है, पर यहाँ श्रीकृष्णकी कृपाके बिना एक

क्षण भी नहीं ठहर सकता ।

अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः

पुरीं मदीयां परमां सनातनीम् ।

सुरेन्द्रनागेन्द्रमुनीन्द्रसंस्तुतां

मनोरमां तां मथुरां पराकृतिम् ॥

दुष्टहृदयके लोग मेरी इस परम सुन्दर सनातन मथुरानगरीको नहीं जानते, जिसकी सुरेन्द्र, नागेन्द्र तथा मुनीन्द्रोंने स्तुति की है और जो मेरा ही स्वरूप है ।

विराग

[कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

चौधरी हीरालाल प्रतिष्ठित, धनवान्, ईमानदार और हरिभक्त थे। दो दूकानें चळती थीं इनकी। एकपर शुद्ध घृत बेचा जाता था और दूसरीपर वख। दोनों-पर नाप-तौल पूरा-पूरा देनेकी इनकी हिदायत सारे कर्मचारियोंको दी हुई थी। आज नगरवासियोंकी अपेक्षा ग्रामवासियोंमें ईमानदारी और धर्म-कर्म अधिक ठिके हुए हैं। शुद्ध घृतकी खरीदीके लिये चौधरी पहलेसे ही विश्वासपात्र कृषकोंको बिना व्याजसे रुपया बाँट देते थे और उनसे ताजा शुद्ध घृत भावके अनुसार लेकर बाकीके लेन-देनका हिसाब तत्काल कर देते थे। इनकी ईमानदारीकी चर्चा दूर-दूरतक फैली हुई थी। इसीसे इनकी दूकानोंपर बिक्री अधिक होती थी। प्रति-दिन रामद्वारेमें जाकर रामस्नेही साधुओंके उपदेश सुनना और उनकी हर प्रकारसे सेवा करना चौधरीजीका नेम था। वहीं वे शान्त वातावरणमें रामनामकी माला जपते रहते थे। एक बार वसन्तोत्सवके अवसर-पर अनेक रामस्नेही संतोंके साथ अच्छे-अच्छे विद्वान्, कवि-कोविद, भजनोपदेशक और प्रसिद्ध गायकोंका वहाँ आगमन हुआ। उनके विद्वत्तापूर्ण उपदेश हुए। एक गायकने सुरीली तानसे गाया—

रघुवीरपर अगर यह जीवन निसार हांता—

तो इस मनुष्य-तनपर कुछ सुझको प्यार होता ।

हे भाग्य ! तूने सुझको नहीं पुण्य ही बनाया—

तो चरणोंपर चढ़ते-चढ़ते मैं गलेका द्वार होता ।

रघुवीरपर.....

(स्व० राधेश्याम कथावाचक)

वनमें कूदते-फाँदते हिरन भी मधुर गानकी तान सुनकर मोहित हो जाते हैं। तब भला मनुष्यकी क्या बिसात ?

पिला पाये जो अमृत-रस, उसे संगीत कहते हैं ।

लहर लाये जो अन्तरमें, उसीको गीत कहते हैं ॥

उत्सवमें सम्मिलित सभी जनोंका ध्यान भी इस गानको सुननेकी ओर लगा हुआ था। चौधरी हीरालाल तो बिसूर-बिसूर कर रो रहे थे। उत्सव-समाप्तिपर सब लोग अपने-अपने घर गये; किंतु चौधरी वहाँ बैठे रोते रहे। उनके परम मित्र जौहरी कंचनलालने जब देखा, तो वे उनको अपने साथ घर ले चले। भवितव्यता बड़ी प्रबल होती है। मार्गमें जाते-जाते भयंकर मोटर-दुर्घटना हो गयी, जिससे कई यात्री घायल होकर कराहने लगे। पर, भगवान्की असीम अनुकम्पा तो देखिये कि ये दोनों बाळ-बाळ बच गये ।

(२)

चौधरी और जौहरी एक वृक्षके नीचे बैठे-बैठे भगवान्की इस अहेतुकी कृपापर आँसू बहा रहे थे। कंचनलालने पटनाके उस वर्षके भारी भूकम्पकी याद दिलायी, जिसमें शिलाओंकी ओटमें कुछ मानवोंकी रक्षा हो गयी थी। भगवान्की कृपाका पार नहीं है। चौधरी हीरालाल तो बहुत ही उदास थे। वे यहींसे वैराग्य ले, घर न लौटकर वनमें जा, तपस्या और हरिभजनमें अपना शेष जीवन बिताना चाहते थे। उनका यह दृढ़ निश्चय जानकर कंचनलाल बोले—‘भूल करते हो हीरजी ! यह तुम्हारा अक्रम वैराग्य टिकेगा नहीं। गृहस्थीमें रहकर भी सब कुछ कर सकते हो। मनुस्मृतिमें कहा है कि ‘जिस प्रकार सारे जीव-जन्तु वायुके आधारपर रहते हैं, उसी प्रकार गृहस्थाश्रमका आश्रय लेकर सब आश्रम जीवित रहते हैं।’* यदि ऐसा न करोगे, तो इन्द्रियाँ अपनी तृप्तिके हेतु आपको वनमेंसे भी बरबस गृहस्थीमें पीछा खींच लयेंगी।’

‘परंतु भाईजी ! मैंने तो अब वैराग्य लेनेका निश्चय कर ही लिया है। सम्भव है मेरे प्रभुकी ही ऐसी इच्छा हो।’ चौधरीने दृढ़तापूर्वक कहा।

जौहरी फिर समझाते हुए बोले—‘आपने जीवन-भर कठिन परिश्रमसे, बहुत थोड़ा नफा लगाकर ईमानदारीके साथ धनोपार्जन किया है। इसे भोगो-विलसो। अरबों-खरबोंकी आयको बुद्धिमान् लोग (धर्मभावनापूर्वक) सदा विलसते हैं। सुमोंके साथ तो यह सम्पदा राईके बराबर भी नहीं जाती†।’

चौधरी हँसे, बोले—‘कंचनजी ! यह सम्पदा सुमोंके साथ ही नहीं, किसीके साथ भी नहीं जाती।

* यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।

तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥

(३.१.७७)

† अरबों-खरबों आय, बुद्धिमान् विलसते सदा।

सुमों चले न साथ, राई जितरी (राजिया)॥

(राजमान—यागवाङ्में प्रसिद्ध ‘राजिया’के मोरठे)

इतिहासप्रसिद्ध विजयी सिकन्दरके पास आया धन था; किंतु—

लाया था क्या सिकंदर, दुनियासे ले गया क्या।

थे दोनों हाथ खाली, बाहर कफनसे निकले॥

जीवनके एक क्षणका भी भरोसा नहीं। कौन

जाने अभी आपसे बात करते-करते ही मृत्यु आ जाय। ‘गनीमत है इस मिल बैठनेको, जुदाईकी घड़ी सिरपर खड़ी है।’ अतः भगवान्का भजन करना ही सार है।’

जौहरीने बहुत समझाया, किंतु चौधरी नहीं माने और प्रातःकाल होनेके पूर्व ही चलकर एक गाँवके निकट जा पहुँचे। कुछ दिनोंके पश्चात् भक्तोंकी आर्थिक सहायतासे उन्होंने वहाँ आश्रम बना लिया। परिवारके लोगोंके बहुत-बहुत आग्रह करनेपर भी घर नहीं गये और उनसे कोई सहायता लेना भी स्वीकार नहीं किया। एकमात्र भगवान् ही उनके आधार रह गये थे। आश्रमके हरिकीर्तनमें आसपासके सैकड़ों नर-नारी सम्मिलित होकर चन्देसे आश्रमका खर्च चलाते, ब्रह्मभोज करते, अभ्यागतोंको अन्न-वस्त्र, रोगियोंको औषध देते और दीन-दुखियोंकी सेवाका प्रबन्ध करते थे।

(३)

नित्य ही साधु हीरालाल बड़े प्रेममें मग्न होकर भगवान् सियारामजीके शृंगार, पूजा, भोग, आरती, भजन-कीर्तन, पाठ आदि कर उनसे विसूर-विसूरका हाथ जोड़ प्रार्थना किया करते थे—

‘कह दो प्रभु ! इस चित्तवृत्तिका

तुममें, केवल तुममें लय हो।

प्रणव तुम्हीं, उद्धारक तारक,

राम ! तुम्हारी जय हो, जय हो॥

(डा० बलदेवप्रसाद मिश्र)

आश्रममें आनेवाले जो लोग जिस लोकोपकारके योग्य होते, साधु हीरालाल उनसे वही सेवा लेनेकी चेष्टा किया करते थे। कई लोग उनके पास कामना-

पूर्तिके उपाय पूछने आते थे, परंतु वे सबको हरिनाम जपना ही उपाय बताते थे। एक दिन एक संकट-ग्रस्त व्यक्तिके बहुत निहोरे करनेपर उसको उन्होंने उपाय बताते हुए कहा कि 'तुम वामनपुराणके इस अच्युताष्टकका नित्य त्रिसंध्यामें पाठ किया करो—

अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम् ।
इंसं नारायणं चैव एतन्नामाष्टकं पठेत् ॥ १ ॥
त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं दारिद्र्यं तस्य नश्यति ।
शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःखमः शुभदो भवेत् ॥ २ ॥
गङ्गायां मरणं चैव दहभक्तिस्तु केशवे ।
ब्रह्मविद्याप्रबोधश्च तस्मान्नित्यं पठेन्नरः ॥ ३ ॥

देखो, विश्वासपूर्वक जपनेसे ही फलकी प्राप्ति होती है ।'

प्रभु-कृपासे उसका संकट थोड़े दिनोंमें ही दूर हो गया। उसने दक्षिणास्वरूप १०१) रुपया लाकर संत हीरालालके चरणोंपर चढ़ाये। किंतु उन्होंने इस निधिको किसी दशामें भी लेना स्वीकार न कर इनसे दीन-दुखियोंको अन्न-वस्त्र दिलवा दिये। यह दृश्य वे लोग देख रहे थे, जो दूसरोंके हितकी हानिको अपना लाभ समझते हैं और जिन्हें दूसरोंके उजड़नेमें हर्ष तथा बसनेमें विषाद होता है।* उन्होंने झूठी अफवाह फैलायी कि 'यह साधु सट्टेके आंकफर्क बताकर लोगोंको ठगता है।' इशारा पाते ही पुलिसने आश्रमकी तलाशी ली, पर कोई प्रमाण नहीं पाया। इस मिथ्या कलंकके आरोपसे साधु हीरालालके मनको बड़ा धक्का लगा। जौहरीजीने आकर उनको समझाया कि 'धैर्य धारण कीजिये। आप तो जानते ही हैं—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपतकाल परखिये चारी ॥

(तुलसी)

अतः मानापमानके भेदको त्यागकर शान्तिसे श्रीहरिका भजन कीजिये ।'

x x x x x

* पर हित हानिलाम जिन्ह करैं। उजरें हरष विषाद बसेरें ॥

(रामचरितमानस, बालकाण्ड ४)

एक समय अर्द्धरात्रिके पश्चात् अनतिदूर ग्रामसे एक भक्तिरस-भरे मधुर गानकी तान सुनायी दे रही थी। एक नारी चक्री पीसती हुई उसीकी लयके साथ गा रही थी—

'कहीं मिलते इयाम चरण धोती, कहीं मिलते.....
मंदिरमें जाकर हूँदती। राधासे पूछ खबर लेती ॥
'कहीं मिलते इयाम चरण धोती, कहीं मिलते इयाम.....'

नीरव निशाके शान्त वातावरणमें इस सरस गानकी तान आश्रमके परकोटेको लाँघकर संत हीरालालके कर्ण-कुहरोंमें पड़ते ही उनका अन्तर शंकृत हो उठा और वे ब्राह्ममुहूर्तमें भगवान्का स्मरण करनेके बजाय प्रेमदीवाने हो रुदन करने लगे। इतनेहीमें उनके ज्येष्ठ पुत्र मोतीलालने आकर पूछा—'पिताजी, रोते क्यों हो? मैंने आपको तीर्थयात्रा ले चलनेकी तैयारी कर ली है।' हीरालाल बोले—'भैया! यात्रामें शरीर साथ नहीं देगा। यहीं एकान्तमें भजन करने दो भगवान्का। कहा है कि—'मन चंगा, तो कठौतेमें गंगा।' ऐसा कहकर वे 'हे राम हे राम' जलदी-जलदी बोलने लगे। कुछ तुतलानेके कारण उनके मुखसे 'हराम हराम' शब्द निकलने लगा। यह सुन पुत्र बोला—'पिताजी, आप केवल राम राम ही कहा करें। आपके मुखारविन्दसे हराम शब्द निकल जाता है, जो बड़ा दोष है।' चौवरी मानो चैतन्य बटोरकर बोल उठे—'सुनो बेटा—

तुलसी अपने रामको रीझ भजो चहे खोज।

उलटो सूधो जाभिहै, खेत परो सो बीज ॥

(तुलसी)

भगवान्का तो ऐसा अतुल प्रताप है कि वे तनिक तुलसीदलके अर्पणको बड़ी भारी सेवा मान लेते हैं।* ऐसे भगवान्का जो मुख स्मरण नहीं करता, उसमें धूल भरी हुई समझना चाहिये।†

* अतुल प्रताप तनिक तुलसीदल मानत सेवा भारी।

(श्रीछीतस्वामीजी)

† कहत कबीरा राम न जा मुख, ता मुख धूल भरी।

(कबीरदासजी)

(४)

७५ दीपावलियोंके उत्सव संत चौधरीने आश्रममें सानन्द सम्पन्न किये । ७६वाँ उत्सव वृद्धावस्थाकी निर्बलताके कारण वे मना न सके, जिसे उनके पुत्र गुलाबचन्दने स-समारोह मनाया । अपनी-अपनी पत्नियोंके सहित तीनों पुत्र घरपर माताकी खूब सेवा करते थे और फिर आश्रममें पहुँचकर वृद्धावस्थाके रोगी अपने पूज्य पिता संत हीरालालकी भी चित्त-मनसे भलीभाँति सेवा किया करते थे । इस कार्यमें नियमितता बरतनेमें वे कभी झुँझलाहट अथवा अशान्ति प्रकट नहीं होने देते । उनके इस सेवा-कार्यकी प्रशंसा दूर-दूरतक ग्रामों, नगरों और बड़े शहरोंतकमें लोग किया करते थे । संत चाहते थे कि 'मेरे बाद आश्रमका सब कार्य यथावत् चलता रहे, और दीन-हीन अथवा अभाव-ग्रस्त मानवोंकी सेवा या दान मेरे पुत्रोंद्वारा सदा होता रहे । तीनों मिलकर धर्मकार्यमें सम्पत्तिका सदुपयोग जीवनपर्यन्त करते रहनेमें कभी प्रमाद न करें ।' अपनी यह कामना संतने एक दिन अच्छा अवसर देखकर तीनों पुत्रोंके सामने प्रकट कर दी । दो पुत्रोंने उनकी इस आज्ञाको शिरोधार्य करते हुए प्रतिज्ञा ली; किंतु तीसरे पुत्र मनोहरलालने अस्वीकार करते हुए इन्कार-सूचक गर्दन हिला दी, वह कुसंगतिके प्रभावसे अपने हिस्सेके धनको अलग करवाकर उसे मनमाने ढंगसे भोगना चाहता था । चौधरीजीने जब यह जाना, तो उनके चित्तमें मानो एक आघात-सा लगा । उन्होंने मनोहरको घर-तौरपर समझाया, ताकि बात बाहर न फैलने पावे । यदि थोड़ी-सी भी बात लोगोंमें कहीं प्रकट हो जायगी तो मेरी और कुलकी बदनामी होगी । परंतु कई बार कई प्रकारसे समझानेपर भी मनोहरके चित्तमें एक बातने असर नहीं किया । यही बात चरितार्थ हुई कि—

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहि जलद ।

मूखइ हृदयँ न चेत जौ गुर मिलहि बिरंचि सम ॥

(रा० च० मानस, लंकाकाण्ड १६ख)

फिर भी संतने पुत्रको समझानेमें हार नहीं मानी । वे नित्यकर्मसे निवृत्त होकर श्रीभगवान्की सभी सेवाओंको कर लेनेके पश्चात् मनोहरको नित्य समझाते थे । कई दिनों तक उन्होंने उसे खूब समझाया । भ्राताओंने भी समझाया; परंतु किसीको कोई सफलता नहीं मिली । सभी बार प्रयत्न करके हार गये ।

हजारों मुश्किलें घेरे हुए हैं कासबाबीको ।

वह आसानीसे अथ 'दानिद' मयस्सर हो नहीं सकती ॥

"त्यागी हुई सम्पत्तिकी चिन्ता करना साधुके लिये उचित नहीं । यदि चिन्ता की तो संसारसे विरक्ति कैसी । परंतु मेरा मोह केवल इतना ही है कि पुत्रोंद्वारा इस कलिकालमें इसका सदुपयोग होता रहे । यह तभी हो सकता है, जब कि तीनों भ्राता एक-मत हो प्रेमसे रहें । पर, यह कैसा पूत है, जो समझता ही नहीं है ।"

संत हीरालाल यह पश्चात्ताप कर ही रहे थे कि कंचनलाल नित्यकी भाँति यथासमय वहाँ आ गये । हीरालालने अपने मनकी सारी बातें अभिन्नमित्र कंचनलालसे कह डालीं ।

अब कंचनलालने मनोहरको समझाकर सुमार्गपर लानेकी सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर संतको विश्वास दिलाया । उन्होंने मनोहरलालको अलग ले जाकर खूब समझाया । घरकी फूटके बुरे-से-बुरे परिणाम कई उदाहरण देकर बताये । एकताकी खूबियाँ समझाई । इस प्रकार कई दिनोंतक उनका प्रयत्न चलता रहा ।

अन्तमें सच्चे दिलकी सम्मति काम कर गयी । मनोहर, विवेकी पिताका पुत्र तो था ही । इसीसे उसमें उत्तम संस्कार संचित थे, जिनपर 'तुल्यमतासीर-सोबत असर'के अनुसार थोड़ा-सा आवरण छा गया था, वह अब टिक न सका । उसने अपनी भूल जानकर भ्राताओंके साथ एक जीव होकर रहना स्वीकार किया । पितासे

* सीख दई सरपै नहीं, करै रैन दिन सोर ।

पूत नहीं वह मूत है, महापाप फल घोर ॥

(बुधजन सतसई ८३)

भी क्षमा माँगनेके लिये वह उनके आश्रमपर दौड़ा गया और उनके चरणोंको अपनी अविरल अश्रुधारासे भिगोते हुए उनसे बारंवार क्षमा-याचना की। सरल-हृदय पिताने दोनों हाथोंसे उठाकर उसे अपने हृदयसे लगाया। कंचनलाल वहीं यह दृश्य देख रहे थे। अपनी सफलताके हर्षतिरेकके कारण उनकी आँखोंके कोयोंमें भी जल झलक रहा था—खास तौरपर पिता-पुत्रके इस अनोखे मिलनको देखकर।

इतना ही नहीं, कुपूत समझे जानेवाले मनोहरको उसकी माताने जब अपने पगोंपर पड़े हुए सिसकियाँ भरते देखा तो उसका मातृ-हृदय ममत्वसे भर गया और उसमें वर्षाव्रतकी नदियोंके उफानकी तरह पुत्र-स्नेह उमड़ आया। बोली—‘बेटा! तूने मेरे दूधकी, कुलकी एवं तेरे विरक्त पिताकी लाज रख ली है। कहा है—‘गुणियोंकी गणनाके आरम्भमें जिसकी रेखा भूलसे भी नहीं खिंचती, यदि उसीसे उसकी माता पुत्रवती है, तो कहिये, बन्ध्या कैसी होती है ?’* सो, लाल, तुझे जन्म देकर मैं धन्य हुई हूँ। मेरे अशेष आशीर्वाद हैं कि तुम सब धर्मका पालन करते हुए खूब फूलो-फलो।’

मनोहरलालने माताके दुर्लभ आशीर्वाद सादर मस्तकपर चढ़ाये।

जिनकी कुसंगति पाकर मनोहर विवेक खो बैठा था, उनका स्वार्थ सधना बंद हो जानेसे वे बड़े रुष्ट हुए। उनमेंसे जालिमसिंह आवेशमें आकर बोला—‘मित्र सदाशिव! मनोहर हमारी टोलीमें रहनेकी शपथ ले चुका था, अब उसे मुकर जानेका मजा चखाना चाहिये।’

‘शान्त हो भाई! सदाशिव बोला—सच तो यह

* गुणिगणनारम्भे न पततिकठिनी स सम्भ्रमा यस्य ।
तेनाम्ना यदि सुतिनी वद बन्ध्या कीदृशी भवति ॥
(पञ्चतन्त्र)

है कि हमको अब बुरे कर्म छोड़कर सुमार्गपर तुरंत आ जाना चाहिये। हमने एक भले घरानेके भोलेमाले लड़केको लोभवश अपने जालमें फँसाकर उसे गुमराह करनेका भारी पाप किया है। पर सद्भाग्यसे उसका विवेक जाग गया। सुबहका भूला संध्याको घर आ जाय तो उसे गनीमत समझना चाहिये।’

कुछ दिनोंतक दोनों मित्रोंमें इस प्रकारका वार्तालाप चलता रहा। अन्तमें दोनों सहमत होकर मनोहरसे क्षमा-प्रार्थना करनेको उसके भवनपर गये और दोनोंने गिड़गिड़ाकर मनोहरके पैर पकड़ लिये। यह देखकर मनोहरको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके मनमें संदेहकी एक ध्वनि हुई—‘शायद ये लोग मुझसे बदला लेनेके लिये आये हैं।’ उसने अपने पाँवोंको झटककर दोनोंको हटाया। परंतु यह क्या! दोनों सिसकियाँ भरते हुए फिर उसके पैरोंपर गिर पड़े। पश्चात्तापके अश्रु रोकेसे भी नहीं रुक रहे थे। मनोहरके विशुद्ध चित्तमें जन्मजात मानवता तो भरी ही थी, अतः वह असली भेदको समझ गया। फिर तो उसके कपोलोंपर भी क्षमाभावके अश्रु ढलक पड़े। उसने दोनों मित्रोंको आगे बढ़कर अपने हृदयसे लगाया। तीनों खूब ही खुलकर मिले, जैसे वर्षोंके बिछुड़े हुए हों। मनोहरकी माताजी देहलीपर खड़ी-खड़ी यह अद्भुत दृश्य देख रही थीं। उसने सत्य बात समझकर प्रसन्नतापूर्वक तीनोंको असीसे दीं।

इसके पश्चात् दोनों मित्र गृहस्थीसे उदासीन होकर परोपकारमें तन-मन-धनसे सदा संलग्न रहने लगे। जालिमसिंह तो ‘हीरा आश्रम’में नित्य चार घंटे नियम-पूर्वक कीर्तन करता था। दोनों, संत हीरालालको गुरु बनाकर गुरु-सेवामें तत्पर रहते और गुरुपूर्णिमापर एक बृहत् महोत्सवका आयोजन कर गुरु-पूजा किया करते थे। अपने पिछले दुष्कृत्योंकी याद कर जब वे सिहर

उठते, तब गुरुजी ही उनको सान्त्वना देते हुए अपना करते थे । इस प्रकार उनका धर्ममय जीवन स्नेह-स्निग्ध हस्त उनके मस्तकपर रख पुत्रवत् प्यार व्यतीत हुआ ।

भक्त घोड़ी

श्यामा अब वृद्ध हो गयी थी । उससे उतना काम नहीं होता था जितना कि वह अबतक करती आयी थी ! वह अयोध्याके प्रसिद्ध कनक-भवनकी निजी फिटनमें जोती जाती थी ।

इतनी भावुक थी वह कि संतों और भक्तजनोंको देखकर स्वाभाविक ही नत हो जाती थी । सिधाईमें उसके समान दूसरी घोड़ीका मिलना कठिन था । तभी तो सभी लोग उससे बड़ा दुलार करते थे ।

एक बार मन्दिरके प्रबन्धकर्ताओंने निश्चय किया कि अब श्यामाको वापिस टीकमगढ़ रियासत भेजकर दूसरी घोड़ी मँगवा ली जाय । यह बात मन्दिरके सारे कर्मचारियोंको ठीक तरहसे ज्ञात भी न हो पायी कि इधर श्यामाजीने दाना-पानी छोड़ दिया, प्रत्युत उसकी आँखोंसे सतत अश्रुधार गिरती रहती । तीन दिनोंतक उसने कुछ भी न लिया ।

रेलका डिब्बा रिजर्व करा लिया गया था । अतः निश्चित दिन उसे दो आदमी बाँधकर स्टेशन ले गये, यद्यपि वह जाना नहीं चाहती थी । उसके नेत्रोंसे अवरिक्त अश्रुपात हो रहा था । सुमन्तके रथके घोड़े भी इसी तरह रोये होंगे ।

श्यामा टीकमगढ़ नहीं जाना चाहती थी । भला, कनकभवनविहारी सरकारकी शरण छोड़कर कौन कहीं जाना चाहेगा ? मोहसे पूरित व्यक्ति भले ही चले जायँ ।

आदमियोंने रोते-रोते उससे विदा ली और

उन्होंने जब लौटकर मैनेजरको सारी बात सुनाई तो वे भी दुखी हुए ।

प्रातःकाल हुआ तो स्टेशनमास्टर मागे-मागे फिर रहे थे । कभी किसी कर्मचारीको डाँटते, कभी किसी कर्मचारीकी लापरवाहीको कोसते ! श्यामाका डिब्बा गाड़ीमें नहीं जोड़ा गया था ।

स्टेशन-मास्टरने डिब्बेमें जाकर देखा तो वह मरणासन्न पड़ी थी । मन्दिर खबर की गयी । मैनेजर तथा अन्य लोग आये । घोड़ीको बाहर निकाला गया ।

अब किसी व्यक्तिको मजाक सूझा या प्रभुसे उसे प्रेरणा दी, उसने श्यामाके कानमें जाकर धीरेसे कहा—“श्यामाजी ! अब टीकमगढ़ नहीं जाना है । उठो ।” मानो किसीने नयी शक्तिका संचार किया हो, श्यामा बिजलीकी तरह उठकर मन्दिरकी तरफ भागी और ठीक अपने निवासस्थानपर आकर रुकी ।

श्यामा बादमें लगभग पाँच वर्ष और सेवाएँ रही । बादमें साकेतवासी हुई ।

अयोध्यावासी आज भी उसके बारेमें दाँहे गाकर मनको सीख देते हैं—

श्यामा गई साकेत को, लोगन यही सिखाय ।
यहि तन कर फल हरि भजन, वृथा न देहु गँवाय ॥
पशुतनमें मैं अस किया, राखी अपनी टेक ।
नरतन पाय न चेतिहौ, पछितैहो जन्म अनेक ॥
—राजेन्द्र गोस्वामी, नोहर

तीन पत्र

(१)

घोर पतन और दुःखकी सम्भावना

प्रिय महोदय ! आपका कृपापत्र मिला । भविष्यमें क्या होगा—इसका पूरा पता तो विधान-कर्त्ता भगवान्-को ही है । पर यह निश्चय है कि भगवान् सब मङ्गल करते हैं और जो कुछ भी हमारे लिये फलरूपमें विधान करते हैं, वह मङ्गलमय ही होता है—अवश्य ही उसका स्वरूप अत्यन्त भयानक, रौद्र तथा प्रलयङ्कर हो सकता है अथवा अत्यन्त सौम्य, शान्त तथा सुखकर भी हो सकता है । वह भी होता है, हमारे किये कर्मोंके फलस्वरूप ही । अतएव वर्तमानमें हमारे जैसे कर्म हो रहे हैं और हमारे कर्मोंके प्रेरक हमारे मनके जैसे विचार हैं, उन्हें देखते परिणाम भयानक दुःखमय ही प्रतीत होता है, यद्यपि वह भी होगा मङ्गलमय ही !

इस समय हमारे जीवनमें 'अहं' का अत्यन्त प्रभाव है और वह 'अहं' संकुचित होते-होते इतना सीमित और क्षुद्र हो गया है कि हमारा हित और हमारा सुख बहुत छोटे-से दायरेमें आकर गंदा और कुवासना-पूर्ण हो गया है । इसीसे आजका मानव प्रायः सर्वमय सर्वाधार भगवान्-को, एक आत्माको, विश्व-चराचरको, विश्वके चेतन प्राणियोंको, मानव-जातिको, राष्ट्रसमूहोंको, देशको, जातिको और अपने कुटुम्बको भी भूलकर केवल अपने व्यक्तिगत भौतिक वैभव-पद-अधिकार-सुखकी प्राप्तिको ही एकमात्र जीवनका ध्येय समझ बैठा है और केवल इसी क्षुद्र सीमित उद्देश्यकी सिद्धिके लिये चिन्तामग्न और क्रियाशील बना हुआ है । उसे न ईश्वरका भय है, न धर्मकी परवा है, न दूसरोंके कष्ट-दुःखका विचार है—केवल उसका अपना काम सधना चाहिये, भले ही सबका विनाश हो जाय ।

और जो दूसरोंके हास-विनाशपर अपना विकास सिद्ध करना चाहता है, वह तो विनाशको ही प्राप्त होगा; जब सभी दूसरोंका विनाश करके अपना विकास चाहेंगे, तब सहज ही सब सबके विनाशमें लगेंगे और परिणामतः सभीका विनाश होगा । इस आसुरी भावनासे सभीकी अधोगति और दुर्गति होगी !

आज समस्त विश्वमें और हमारे भारतमें भी एक-दूसरेको नीचा दिखानेकी, गिरानेकी, हानि पहुँचानेकी, मारनेकी, मिटानेकी, छूटनेकी जो घोर हिंसामयी कुप्रवृत्ति बढ़ रही है, फिर चाहे वह धर्मरक्षा, देशहित, मानव-सेवा, लोक-सेवा या समाज-सेवाके नामपर अथवा किसी भी तन्त्र या वादके सिद्धान्तके नामपर होती हो । उस प्रवृत्तिका मूल हेतु है सीमित क्षुद्र अहंके हित या भोग-सुखका भ्रम—मनुष्यकी व्यक्तिगत अदम्य भोग-लालसा अथवा भौतिक वैभव-पद, अधिकार-सुखकी अज्ञानमयी क्षुद्र कामना । इसका फल तो दुःख ही होगा । इस अवाञ्छनीय अनर्थकी मूल सहायक तथा प्रेरक होती है—अज्ञानजनित तीन पापवृत्तियाँ—काम, क्रोध और लोभ—इन तीनोंका स्वरूप तथा फल बतलाते हुए भगवान् इन तीनोंका त्याग करनेकी आज्ञा देते हैं ।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥

(गीता १६ । २१)

'काम, क्रोध और लोभ—ये तीन प्रकारके आत्माका नाश—पतन करानेवाले नरकके द्वार हैं । अतएव इन तीनोंका त्याग करना चाहिये ।' परंतु उन क्षुद्र अहंवृत्तिवाले भोग-सुखकामियोंके यही तीन साथी, सहायक और प्रेरक होते हैं । अतएव उनके लिये

होता है कि इस प्रकारके मनुष्य अपने ही दुर्विचारों तथा दुष्कर्मोंसे अपना और जगत्का दुःख बढ़ाने और उसे अधोगतिकी ओर ले जानेमें लगे रहते हैं। आज यही हो रहा है और इससे अनुमान यही होता है, अभी जगत्के दुर्दिन शेष नहीं हुए हैं, वरं उनमें प्रबलता आ रही है और इसका फल दुःखोंकी उत्तरोत्तर वृद्धि और मानवताके स्वरूपका हास-विनाश ही होगा। भगवान् सबको सुबुद्धि दें। सबका मङ्गल करें।
आपका—

(२)

स्वीकारोक्ति

भैया ! क्या बताऊँ ; जिन विचारों और कार्योंको बुरा, अनुचित और अकर्तव्य समझता-बतलता था, अब उन्हींको खयं कर-करवा रहा हूँ। युक्तिवादसे भले ही उनका औचित्य सिद्ध करनेका प्रयास किया जाय, पर मन तो जानता-समझता ही है। लोगोंसे कहता था कि 'चुपचाप साधन करना है। अपना प्रचार कभी नहीं करना है, न लौकिक मान-सम्मान कभी ग्रहण करना है। इस प्रकार साधना करनी है सहज स्वाभाविक, जिससे लोगोंको पता ही न लगे कि 'यह भी कोई साधना करता है। इसके कर्ममें भी कोई विशेषता है'। ऐसा केवल कहता ही नहीं था, यही मानता था, सच्चे हृदयसे मानता था और इसीके अनुसार करना चाहता और करता भी था। बड़ी सरलतासे साधना चल रही थी। मनमें शान्ति, उल्लास एवं सात्त्विक विचारोंकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। उस समय मैं प्रवचन नहीं करता था। मित्रों-सज्जनोंने कहा—'प्रवचन किया करो, मनमें अच्छे सात्त्विक विचार आवेंगे। उनका मनन होगा। लोगोंका भी भला होगा आदि'—मैं प्रवचन करने लगा। पहले-पहले तो लाभ हुआ। लाभ तो अब भी होता ही होगा; क्योंकि प्रवचन तो अच्छे विचारोंका ही होता है। परंतु

कुछ ही समय बाद प्रवचनमें रस आने लगा, आसक्ति और ममता-सी हो गयी। कामना जगी—प्रवचन बहुत अच्छा हो, लोगोंको अच्छा लगे। फिर तो जिज्ञासा हो गयी—कितना अच्छा लगा। लोग प्रशंसा करते तो आनन्द-सा आता। एक बार प्रसिद्ध गांधीवादी श्रीश्रीकृष्णदासजी जाजू प्रवचनमें आये। मैं गीताके अनुसार दानकी व्याख्या कर रहा था। उनको बड़ा अच्छा लगा। उन्होंने बड़ी सरलता की। मुझे प्यारी लगी। वे जबतक रहे, तब नियमसे आते रहे। मेरा अब भी वही हाल है। अब नहीं बोलता था। दूसरोंके प्रवचन चावसे सुनता था, ग्रहण करता था, सुननेकी इच्छा रहती थी। अब तो सुनानेकी इच्छा रहती है; क्योंकि मैं सुना जो सकता हूँ, बहुत अच्छा उपदेश जो कर सकता हूँ और लोगोंको सन्मार्गपर जो लगा सकता हूँ। यह अभिमान है या मोह—अथवा आत्मप्रचार या कुछ और ?—अन्तर्यामी ही जानते हैं।

मैं पैर छूनेवालोंसे डरता था, डरता तो अब भी हूँ। पर पहले विरोध करता था घोर, पैर छुलानेवालोंका। उन्हें आत्मपूजाकी अभिलाषा करनेवाले व्यक्ति मानता था। धीरे-धीरे लोग मेरे पैर छूने लगे। कई बार विरोध किया। घोर विरोध भी किया। पर लोगोंने कहा—धीरेसे समझाया—'आपका क्या बिगड़ता है। इन बेचारोंको लाभ पहुँचता है। आपका इसमें क्या घट जाता है ?' मैंने जब इसका भी विरोध किया तब उन्होंने समझाया—'बेचारे आते हैं, इनके दुःख होगा। लाभ न सही, इनके सुखके लिये ही छू लेने दीजिये।' इसपर भी विरोध करता रहा, बल भी करता हूँ। पर लोग पैर छूते ही हैं और उनकी संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है। मैं छुलता ही हूँ भले ही विरोधके साथ। यह क्या है ? मनका भ्रम है, पैर पुजवानेकी इच्छा है या उनके लाभ-मुक्ति

लिये ऐसा किया जा रहा है। अथवा उपेक्षावृत्ति है। अन्तर्यामी भगवान् ही जानते हैं।

यही बात छायाचित्र उतरवानेके सम्बन्धमें है। घोर विरोधी था मैं। युक्तियोंके साथ विरोध करता था। कोई चोरी-छिपकर चित्र ले लेता तो मनमें दुःख होता। अब तो सैकड़ों नर-नारियोंके पास मेरे हजारों छायाचित्र होंगे। जब अभाव था, तब कहते हैं कि मेरा एक छायाचित्र कोई विदेशी सज्जन किसीके पाससे हजारों रुपये देकर खरीद ले गये थे। अब घर-घर पड़े सड़ते हैं। विरोध अब भी करता हूँ। यह भी आत्मप्रचार है या लोककल्याणकी शुभेच्छा? अन्तर्यामी भगवान् ही जानते हैं।

मान-सम्मान, पूजा-प्रतिष्ठासे मेरा बड़ा विरोध था। अब भी मौखिक तो है ही। परन्तु अन्तर्यामी भगवान् जानते हैं कि मनमें पूजा-प्रतिष्ठाकी इच्छाका कोई लेश भी नहीं है, या छिपे-छिपे इच्छाका ही विस्तार हो रहा है। लगता ऐसा ही है—‘बहुत प्रीति पुजाइवेपर, पूजिवेपर थोरि।’ लोग कहते हैं—‘बेचारे सत्संगी भावुक लोग कुछ करते हैं, इसमें आपका क्या बिगड़ जाता है।’ मैं चुपचाप, कभी-कभी कुछ विरोधके साथ सुन लेता हूँ। पर पूजा-प्रतिष्ठा, सम्मान-प्रशंसा स्वीकार तो करता ही हूँ।

पहले प्राचीन महात्माओंकी वाणी ही सुनता-सुनाता था। पीछे तुकबंदी करने लगा। मित्र-बन्धुओंका मुझमें अकृत्रिम अनुराग है। ‘राग’में चीज अच्छी लगती ही है, उसके गुण-दोषकी भीमांसा नहीं होती। राग उसपर मुग्ध कर देता है बरबस। यही यहाँ भी हुआ। मित्रोंने उनका प्रचार किया भाँति-भाँतिसे। अवश्य ही उनकी नीयत सर्वथा शुद्ध, आदर्श और उनमेंसे कइयोंकी तो केवल विशुद्ध भगवत्प्रेमके प्रचार-प्रसारकी ही है। पर प्रचार मेरा भी हुआ ही। मेरा नाम साथ जुड़ा ही है। नामाभिमान मिटा नहीं। इसमें मैंने

मित्रों-महानुभावोंकी शुद्ध नीयतका आदर किया या मेरी आत्मप्रचारकी छिपी वासनाकी पूर्ति हुई। अन्तर्यामी जानते हैं। पर विरोध करनेपर भी विरोध नहीं है, मनमें प्रसन्नता-संतोष न होनेपर भी प्रसन्नता-संतोष है। पता नहीं, यह छल है या विशुद्ध वासना-पूर्तिकी कुचेष्टा अथवा भगवत्प्रेम-प्रचार?

सादगी, त्याग, सदाचार, खान-पान, रहन-सहन, धन और धनियोंका सङ्ग, मितव्ययिता, सीमित आवश्यकता आदि बहुत-सी ऐसी बातें और हैं, जिनमें मेरे पहलेके विचारों और कार्योंमें बड़ा अन्तर है। पहले जिनका विरोध था, अब वही मेरे जीवनमें मूर्तिमान् हैं।

सम्प्रदाय-निर्माणका मैं विरोधी था। पर देखता हूँ सम्प्रदाय-निर्माणका कार्य—किसी-न-किसी रूपमें चल ही रहा है। यह मेरी कमजोरी है तो भगवान् दूर करें। आत्मप्रचारकी इच्छा है तो उसका नाश कर दें और यदि भगवत्सेवा है तो मुझे अच्छी तरह यह अनुभव करा दें।

मेरे शुद्ध नीयतवाले पवित्रहृदय मित्र-बान्धवोंका मेरे प्रति जो सच्चा स्नेह, सद्भाव, प्रेम तथा सौहार्द है, वह अतुलनीय है। मेरा यह सौभाग्य है। इसीसे आशा है कि शायद अपनी भीतरी वासना ही हो, पर उन लोगोंके अनुरोधके बहाने मैं जो दुर्बलताओंका शिकार होता दीख रहा हूँ, वास्तवमें ऐसा नहीं होगा; क्योंकि वे सभी मेरे सच्चे सुहृद् और हितैषी हैं। अधिक क्या! तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर शायद आ गया होगा। शेष भगवत्कृपा। तुम्हारा अपना ही।

(३)

भगवत्कृपा—अनिर्वचनीय

सम्मान्य महोदय! सादर नमस्कार। आपका कृपा-पत्र मिले बहुत दिन हो गये। मेरा शरीर अस्वस्थ था।

इससे उत्तर नहीं लिख पाया। अब कुछ ठीक है और आपका दूसरा पत्र भी मिल गया है। अतएव उत्तरमें कुछ शब्द लिख रहा हूँ। मुझपर भगवान्की कैसी तथा कितनी कृपा है, इसके सम्बन्धमें आपने पूछा है। इसका क्या उत्तर दिया जाय? भगवान्की कृपा अनन्त और अपार है, अहैतुकी है और प्राणिमात्रपर है। 'सुहृदं सर्वभूतानां'—उनके श्रीमुखके वाक्य हैं, फिर किसपर कितनी कैसी कृपा है, कौन कैसे बताये? अतुलनीय, अवर्णनीय, अचिन्त्य, अनन्त अगाध कृपा-समुद्रकी थाह कौन पा सकता है? मनुष्यके पास ऐसा कोई यन्त्र, मन्त्र या साधन है ही नहीं, जिसे वह भगवत्कृपाकी इयत्ताका पता लगा सके। ऐसा कोई धर्माभीष्ट बना ही नहीं। फिर मेरी बात तो मैं क्या बताऊँ—मैं अपनी तथा अपने कार्योंकी ओर देखता हूँ तो ऐसा लगता है कि मैं नरकमें रहने लायक पापी भी नहीं हूँ, मेरे पाप उससे भी बड़े हैं। मैं सर्वथा दीन, हीन, मलिन, साधनहीन, पापपीन हूँ और उत्तरोत्तर अधोगतिमें जाना ही मेरे लिये उचित तथा न्याय्य है। पर जब भगवत्कृपाकी ओर देखता हूँ तो चकित रह

जाता हूँ। कहाँ मैं नरकका भी अनधिकारी और कहाँ भगवत्कृपासे भगवान्का परम निज-जन! भगवत्कृपा मुझे दिखलाती है—प्रत्यक्ष, मानो स्वयं भगवान् अपने सारी कल्याण-सम्पत्ति, प्रेम-सम्पत्तिके अगाध समुद्रको लेकर मेरे हृदयमें उतर आये हैं और उसको उन्होंने अपना नित्यनिवास बना लिया है। दिन-रात उनकी लीला चल रही है—बाहर-भीतर। विशुद्ध प्रेमस्वरूप तथा ब्रह्मानन्दको भी आनन्द देनेवाले दिव्य रसके आधार, आगार-स्वरूप अनन्त रसरूप भगवान् स्वयं दिव्याति-दिव्य आनन्दमें निमग्न हुए आनन्द-नृत्य कर रहे हैं—नित्य-निरन्तर अविराम, अभिराम!

न लोक है, न परलोक; न भोग है, न त्याग; न बन्धन है, न मुक्ति; न मैं है, न तू; न प्रारब्ध है, न पुरुषार्थ; न जन्म है, न मृत्यु। बस, एक ही रस विविध रसोंके आकारमें विविध विचित्र रंगोंमें अबाध गतिसे प्रवाहित और उच्छ्वलित है। एक ही लीलामय नित्य लीलायमान हैं।

यह है भगवत्कृपाका एक संकेतमात्र। विशेष भगवत्कृपा। आपका—

भगवत्कृपाका चमत्कार

भगवत्कृपा अलौकिकने कैसे कर चमत्कार-व्यापार।
नरक-कीटसे बदल बनाया मुझको श्रेष्ठ विशुद्ध उदार ॥
उतरे स्वयं मलिन जीवनमें मेरे परम सुहृद् भगवान्।
लेकर प्रेम, ज्ञान, रसकी अति उज्ज्वल सम्पत् अमित महान् ॥
मिट्टे जगत्के दुःखद सारे द्वन्द्व, छा गया परमानन्द।
भुक्ति-मुक्तिकी मिट्टी वासना, लगे खेलने प्रभु स्वच्छन्द ॥
अब तो सतत चल रहा केवल प्रभुका मधुर मनोहर नृत्य।
यों कर दिया कृपाने मुझको अपनी करुणासे कृतकृत्य ॥

पदा, समझा और करा

(१)

आदर्श एवं अनुकरणीय स्वामिभक्ति

बिल्कुल सत्य घटना है। सम्बन्धित लोगोंके नाम जान-बूझकर नहीं दिये गये हैं।

श्रीसेठजीका व्यापार दिन-दूनी रात-चौगुनी गतिसे बढ़ रहा था। भाग्य साथ दे रहा था। मिट्टी छूते तो वह भी सोना हो जाती थी। रुपयेके साथ दर्पमें वृद्धि होना भी स्वाभाविक है। संसारी लोगोंकी सफलता सहज ही अभिमानकी जननी होती है। उनको विश्वास हो गया था कि इस समृद्धिका सारा श्रेय उनकी बुद्धिको ही है। अपनी बुद्धिके प्रतापर उनकी ऐसी कुछ अनुचित श्रद्धा जागी कि वे पुराने विश्वासी कार्यकर्ताओंकी बात भी अनसुनी करने लगे। गद्दीमें उनके पिताके समयके एक पुराने मुनीमजी थे। ईमानदार और स्वामिभक्त होनेके साथ वे व्यापार-कार्यमें बड़े कुशल थे। सेठजीके पिताके समयमें काम-काजका सारा भार प्रायः उन्हींपर रहता था।

किंतु सेठको अपनी बुद्धिपर अधिक भरोसा हो गया और फलस्वरूप वे मुनीमजीके सत्यपरामर्शको 'अनधिकार हस्तक्षेप' के रूपमें देखने लगे। मालिककी निगाह बदली हुई देखकर मुनीमजीने अवकाश ग्रहण कर लिया और वे अपने घर चले गये।

इसी समय द्वितीय महायुद्ध छिड़ा। कलकत्तेमें बम-वर्षाकी आशंका हो गयी। श्रीसेठजी अपना व्यापार समेटकर बनारस चले गये। इधर सैकड़ों मील दूर गाँवमें बैठे हुए मुनीमजीके मनमें पुराना मोह जागा। वे ममताकी मॉँगको ठुकरा न सके। भागे हुए कलकत्ते आये। अपने पुराने सेठके घर जाकर देखा कि वहाँ कोई नहीं है। सेठजी जाते समय जो नौकर-चाकर घरकी रखवाली करनेके लिये छोड़ गये थे, वे भी विपत्ति समीप आयी समझकर नौ-दो-ग्यारह हो चुके थे। मुनीमजी पुराने अनुभवी पुरुष थे। स्थितिको समझनेमें उन्हें देर न लगी। यद्यपि कानूनकी दृष्टिमें उनका कोई उत्तरदायित्व न था; क्योंकि वे वर्षों पूर्व नौकरी छोड़ चुके थे, तथापि मानव-हृदयमें एक ऐसी वस्तु छिपी रहती है, जो कानूनसे कहीं ऊपर होती है। वे शुद्ध सनातन विचारोंके आदमी थे। उनकी अन्तरात्मामें मालिकका नमक समाया था, जो इस विपत्तिके समय उन्हें कुरेद रहा था।

मुनीमजीने अपना कर्तव्य निश्चय कर लिया। वहाँ आसन जमाकर बैठ गये। पहले तो उनका उद्देश्य मालिककी सम्पत्ति-

की रक्षा करना मात्र था, किंतु बादमें जब उन्होंने देखा कि 'कलकत्तेमें सोना छुट रहा है और साधारण लोग भी अनाप-शनाप धन कमा रहे हैं; तब उन्होंने भी गद्दी खोलकर व्यापार शुरू कर दिया। मालिक अभीतक बनारसमें बैठे हुए थे और बमोंके भयसे कलकत्ते आनेका नाम नहीं ले रहे थे। वे अपनी सम्पत्तिको गयी हुई समझकर इस ओरसे निराश हो चुके थे। उन्हें क्या पता था कि उनके पुराने मुनीमजी वहाँ विद्यमान हैं और सहस्रबाहु होकर उनकी सम्पत्तिकी रक्षा तथा वृद्धि कर रहे हैं।

मुनीमजीने मालिकके नाममें ही कारबार शुरू किया। यद्यपि उनका कानूनी अधिकार न था, पर उन्हें विश्वास था कि वे रुपये कमाकर ही देंगे। इसीसे उन्होंने ऐसा साहस किया। बड़ा प्रतिष्ठित फर्म था और बाजारमें उनकी काफी धाक भी थी। इसके अतिरिक्त कदाचित् ईश्वर भी उनकी स्वामिभक्तिपर प्रसन्न होकर उनका रास्ता सरल कर रहा था। डेढ़ सालकी अवधिमें मुनीमजीने हेडियनके काममें कई लाख रुपये कमाये। जो रुपया कमाते, वे पहलेकी भौति ही फर्मके हिसाबमें जमा कर देते और अपने निजी खर्चके लिये वेतनके रूपमें, उतने ही रुपये लेते, जितने उन्हें पहले मिला करते थे।

डेढ़ वर्ष बाद जब बमोंकी आशंका कम हुई, तो सेठजी वापस कलकत्ते आये। यहाँ उन्होंने जो दृश्य देखा, समझा-उससे वे कुछ देरके लिये अवाक् हो गये। उनकी आँखोंमें आँसू छलछला आये। उधर मुनीमजीका गला भी प्रसन्नताके कारण रुंध गया था। स्वामी सेवककी ओर देख रहा था बड़े आदरकी दृष्टिसे, और सेवक स्वामीकी ओर देख रहा है अत्यन्त स्नेहकी नजरसे। शब्दोंकी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी थी।

—श्रीवल्लभदास विन्नानी, 'ब्रंजेश'

(२)

नरमेराम—सेवामूर्ति

सूरज उदय हुए बिना रहे तो सवेरे ही दरवाजेपर नरमेराम 'धर्मकी जय' सुनाये बिना रहे। लाल किनारेकी धोती, मोटी-खादीका कुर्ता, सिरपर पेंचदार साफा, कपाल-पर करौत-जैसा लंबा चन्दनका त्रिपुंड्र, कंधेपर झोली, एक हाथमें बाँसकी लकड़ी और दूसरेमें भिक्षापात्र लिये नरमेराम की लंबे शरीरवाली मूर्ति नित्य प्रातःकालका एक मङ्गल-दर्शन था। आशीर्वाद बरसाती हुई उसकी आँखोंका भोलापन ही उसकी बड़ी-से-बड़ी सिफारिश थी। नरमेरामके होठोंपर 'कल्याण'के सिवा दूसरा शब्द ही नहीं आता।

उसके मजबूत डील-डौलको देखकर कभी कोई कह बैठता—‘नरमेराम ! यों भीख माँगते हो, इसके बदले कुछ मेहनत-मजदूरी करने लगे तो क्या बुरा है ?’ इसपर नरमेरामका सदा एक ही जवाब होता—‘भाई साहेब ! सबके अपने-अपने धर्म होते हैं, मेरे बापने भी यों ही जिंदगी बितायी और मैं भी उसी तरह झोली फेरता हूँ, इसमें शर्म किस बातकी ? दो वक्त रोटी मिली कि बस जय-जयकार !’

और सचमुच नरमेराम किसीके लिये जरा भी बोझ न बनकर अपना गुजारा चलानेकी कला जानता था। एक मुट्ठी आटा-अनाजसे अधिक कितना भी कोई देना चाहे तो नरमेराम उसे वापस लौटा देता। आस-पासके दस-दस गाँवोंमें नरमेराम चक्कर लगाता और इसी दरम्यान किसका किससे क्या सम्बन्ध है, किसकी लड़की किसके यहाँ ब्याही है, ये सारी डायरी नरमेरामके पास रहती थी। इसलिये एक गाँवसे दूसरे गाँव बिना वेतन समाचार पहुँचानेवाले हलकारेका काम भी वह खूब करता। यों समाज-जीवनकी एक उपयोगी कड़ी बनकर नरमेरामने अपने भिक्षु-जीवनकी धुद्रताको बिल्कुल मिटा दिया था।

इस प्रकार नरमेरामका काम आसानीसे निभा जा रहा था। इसी बीच गाँवके रामजी-मन्दिरके वयोवृद्ध पुजारीका देहावसान हो गया। गाँवके लोगोंने नरमेरामसे इस जिम्मेवारीको लेनेके लिये कहा—‘अरे भले आदमी ! तेरे-जैसा आदमी सहजमें मिलता हो तो हम दूसरे किस नये पुजारीको कहाँ खोजने जायँ ?’ नरमेराम-जैसे भ्रमते-रामको एक जगह बँधकर रहना कैसे अच्छा लगता ? पहले तो उसने थोड़ी ‘ना-हाँ’ की, पर अन्तमें संकोचमें पड़कर उसने रामजीके मन्दिरका पुजारी-पद स्वीकार कर लिया।

नरमेरामने ज्यों ही मन्दिरका काम सँभाला, त्यों ही उसने एक-एक कोनेको झाड़-बुहारकर स्वच्छ कर दिया। पीतलकी देवमूर्तियोंको एक जगह एकत्र करके इमलीकी खटाईसे अच्छी तरह मँजकर सोने-जैसा चमकीला बना दिया, मानो अभी नयी प्राण-प्रतिष्ठा हुई हो।

नरमेराम मन्दिरमें तो बैठा, पर उसने अपनी झोली फिरानेवाला नित्यका क्रम जारी रखा। मन्दिरका कोठार सदा अनाजसे भरा रहता। दर्शन करने आनेवालोंमेंसे कोई कहता—‘नरमेराम ! अनाज इकट्ठा करनेका इतना लोभ

क्यों करते हो ? जरूरतके अनुसार रखकर बाकीको बेच क्यों नहीं देते ?’ इसपर नरमेराम कोठारकी तरफ अँगुली करके कहता—‘क्या कहा आपने ? अनाज बेच दूँ ? मरते समय मेरे बाप कह गये थे कि ‘बेटा ! और सब करना पर कभी अनाज न बेचना । जिस दिन तैने अनाज बेचा, समझ लेना उसी दिन धर्म छोड़ दिया ।’ कोठारमें भले ही ऊपरतक अनाज भरा रहे पर इसमें अपने तो एक ही सेरके मालिक हैं । अनाजके एक-एक कणपर मालिकने खानेवालेका नाम लिख रक्खा है । अपने तो उस मालिकके मुनीम हैं । पेटके लिये दो वक्त जितना भाड़ा देना है, उतना ही इसमें अपना हिस्सा है । इसके अतिरिक्त एक दाना भी अपना नहीं है ।’

परंतु नरमेरामकी इस धुनको शायद ही कोई समझ पाता। एक साल वर्षा नहीं हुई, सूखा पड़ गया। हरे-हरे खेत सारे खड़े-ही-खड़े सूखने लगे। तालाबोंमें तल जमीन दिखायी देने लगी। रास्ते-घाटपर खड़े, बिना पत्तोंके पेड़ छुटे हुए मुसाफिरों-जैसे अकिंचन दीखने लगे। घास-चारेके अभावमें पशु कमजोर होकर अस्थिपंजर मात्र रह गये। किसानोंके पैर रुक गये। गरीबोंके लिये अनाजका अभाव हो गया और वे दो-दो, चार-चार दिनतक बिल्कुल भूखे रहनेको बाध्य हो गये। जिनके पास साधन था, ऐसे लोगोंका हृदय भी संकुचित हो गया। वे केवल अपनेको ही सँभालनेमें लग गये।

नरमेरामसे यह सब भला कैसे देखा जाता ? उसने कोनेमेंसे अपनी नित्यकी संगिनी लकड़ीको उठाया और खूँटीसे उतारकर झोली ली। रामजीके मन्दिरकी छोटी-छोटी सीढ़ियोंसे उतरते हुए नरमेरामने कहा—‘हे ठाकुरजी ! अब तो तेरे ही रखे लाज रहेगी। इन बेचारे गरीबोंका सहायक और कौन होगा ? यदि इस गाँवकी बस्तीमें एक भी गरीब भुखमरीके कारण मर गया तो उसके साथ ही इस नरमेरामको भी मरा ही समझना ।’

नरमेराम बिना रात-दिनकी परवा किये झोली फिराने लगा। उदयसे अस्ततक बस, एक ही धुन। साँझ पड़ते-पड़ते वह थककर मुर्दा-सा हो जाता, पर वह जितना सोचता, उतना अनाज शामतक इकट्ठा किये बिना रुकता नहीं। फिर कुछ देर इधर-उधर बिताकर ठीक आधी रातके समय बारहका डंका लगते ही उठकर खड़ा हो

संख्या ५]

जाता। कोठारमेंसे झोलेमें ढूस-ढूसकर अनाज भरता और सीधा गरीबोंकी झोपड़ियोंमें जा पहुँचता। केवल जलके आधारपर रहनेवाले भूखे, घुटने मोड़कर सोये हुए दीन-दुखियोंको कैसे पता लगता कि उनके दरवाजेपर कोई खड़ा है। आवाज न हो, इसके लिये नरभेराम झूठे उतार देता और जिस कुटुम्बमें जितने आदमी होते, उनकी संख्याके अनुसार झोलेसे निकाल-निकाल बाहर अनाजके ढेर लगाकर और झोला खाली करके, जूता हाथमें उठाकर, जैसे आया था वैसे ही चुपचाप रामजीके मन्दिरकी ओर चल देता।

परंतु छिपानेकी बड़ी इच्छा होनेपर भी नरभेरामके इस गुप्त-दानकी योजनाका पता सभी लोगोंको लग गया। इससे गाँवके साधनसम्पन्न सुखी लोग कुछ शर्माये। नरभेराम-जैसा एक भिखारी गाँवके गरीबोंके लिये इतना कर सकता है और हमलोग साधन होते हुए भी चुपचाप बैठे देखते हैं। यह ठीक नहीं है।' इस प्रकारका असर उनलोगोंपर पड़ा। मुखियाने मन्दिरके चौकमें गाँवके महाजनों-को इकट्ठा किया और सबने मिलकर निश्चय किया कि 'सभी लोग अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार मन्दिरके कोठारमें गरीबोंके लिये अनाज दें और उसे बाँटनेकी व्यवस्था नरभेरामके सुपुर्द की जाय।'

इधर नरभेरामने अनाज-वितरणका काम इतनी कुशलता-से चलाया कि किसीको कोई असुविधा नहीं रही। नरभेरामकी टेक भगवान्‌ने रक्खी। गाँवमें भुखमरीके कारण एक भी गरीबकी मृत्यु नहीं हुई और इस प्रकार वह संकटकी साल पूरी हो गयी।

फिरसे आकाशमें इन्द्रके अभय-संगीतके समान वर्षाका मेघ-गर्जन सुनायी पड़ने लगा। किसान जल्दी-जल्दी बोंवनी-की तैयारीमें लगे और सारी प्रकृति ही मानो दुर्भिक्षके असुरका संहार करनेके लिये तत्पर हो गयी हो। देखते-ही-देखते ऐसी विचित्र परिस्थिति हो गयी।

नरभेरामका रोम-रोम पुलकित हो उठा। 'आया मेरा दुलारा आया। आज तो बस, दिल खोलकर ही बरसना। पीछे फिरकर देखना ही नहीं हो मेरे बापजी !' (अखण्ड आनन्द)

—बालमुकुन्द दवे

(३)

मंद करत जो करत भलाई

बहुत पुरानी बात नहीं है। गुजरातके अन्तर्गत

अहमदाबादसे २५ मील दूर सावरमती नदीके किनारेपर देलवाड़ नामक एक ग्राममें पुरुषोत्तम मासके अवसरपर एक महात्माजीद्वारा भागवतपुराणकी कथा बड़े समारोहसे हो रही थी। मासका आज अन्तिम दिन था; श्रोता जनता बड़े भक्ति-भावसे चढ़ावा देनेकी तैयारीमें थी। मङ्गलाचरणमें मधुर स्तवन था—

प्यारे ! जरा तो मनमें विचारो, क्या साथ लाये क्या ले चलोने। जावे यही साथ सदा पुकारो गोविन्द दामोदर माधवेति ॥

कथावाचकजी एक चद्दरधारी त्यागी थे, इससे जनता विशेष प्रभावित थी। उनको भेटके चढ़ानेमें जो भी धनराशि मिली, उन्होंने सदाकी भाँति मन्दिर-जीर्णोद्धार, धर्मशाला, पाठशाला, कुआँ, तालाब और गोशाला आदि सत्कार्योंमें व्यय करनेके लिये उसी समय ग्रामके मुखियाको बुलाकर बिना ही गिने सब सुपुर्द कर दी।

महात्माजी वहाँसे अपने स्थानको विदा हो ही रहे थे कि एक विधवा स्त्री अपने आठ वर्षके बच्चेको साथ लिये उनके सामने आकर आँसू बहाती कहने लगी—'मैं एक असहाय स्त्री हूँ, मेरे यह एकमात्र बच्चा है। इसके पिता क्षयरोगसे पीड़ित थे। घरकी सारी पूँजी उनकी चिकित्सामें व्यय हो चुकी; कुछ जमीन थी वह गिरवी रख दी। तदनन्तर उनका देहावसान हो गया। मैं अपने इस बच्चेका पालन-पोषण करनेमें असमर्थ हूँ। कृपया आप गिरवी भूमिको छुड़वानेके लिये रकम भरा दें। मेरे पास एक सेर चाँदी और ढाई तोले स्वर्णभूषण सुरक्षित हैं; वे मैं आपको दे दूँगी और खेतकी पैदाइशमेंसे बचाकर बाकी सारी रकम आपको तीन वर्षमें चुका दूँगी। 'संत हृदय नवनीत समान' महात्माजीने द्रवित होकर कहा—'मैं अपने स्थानपर जाकर पत्र लिखूँगा, पैसोंकी व्यवस्था हो जायगी, तब तुम्हारे पास पहुँचा दूँगा।'

महात्माजी प्रसिद्ध कथावाचक और अकिञ्चन महानुभाव हैं। अपने परिचित एक सज्जनसे चाँदी तथा सोनेके गहने देने और तीन वर्षके अंदर-अंदर चुकती रुपये लौटा देनेकी शर्तपर डेढ़ हजार रुपये उन्होंने एक विश्वासी पुरुषके द्वारा विधवा बहिनके पास पहुँचा दिये। विधवाने गाँवके चार सुप्रतिष्ठित व्यक्तियोंद्वारा खत लिखवाकर पैसोंकी प्राप्तिकी रसीद तीन वर्षमें लौटानेके लिखित वादेके साथ भेज दी। उसने महाजनके पैसे भरकर अपने खेतकी भूमिको छुड़ा कब्जा ले लिया। दो-तीन वर्ष व्यतीत हो गये; परंतु विधवाने न तो

चाँदी और गहने भेजे, न रकम-पूर्तिमें कुछ पैसे ही पहुँचाये ।
 इधर रकम देनेवाले सज्जनने महात्माजीको संकेत किया ।
 अतएव एक व्यक्तिको भेजकर महात्माजीने उस विधवाका
 पता लगाया तो मालूम हुआ कि वह अपने पीहरमें है ।
 सूचना मिलते ही स्वयं महात्माजी अहमदाबादसे डमोड़ा
 स्टेशनके पास इसनपुर ग्राममें पहुँचे । वहाँ उन्होंने विधवाकी
 माताजी तथा भाई-बहिनोंसे मिलकर बातचीत की । विधवाने
 अपने समुराल देलवाड़ चलनेके लिये कहा । महात्माजी उक्त
 विधवा बहिन और उसकी बहनोंके साथ मोटरद्वारा रातको
 ८ बजे सादरा पहुँचे । वहाँसे ३ मील दूरीपर देलवाड़
 ग्राम रह गया । रात्रिको सादरामें महादेवजीकी धर्मशालामें
 कोठरी खुलवाकर विधवाने महात्माको ठहराया और
 स्वयं ग्राममें जाकर अपने सगे-सम्बन्धी जातिवर्गसे मिली
 तथा एक सजातीय राजपूत पुलिस कर्मचारीको
 उलटा-मीधा समझाकर षड्यन्त्र किया । पुलिसकर्मचारी
 नवयुवक था । तुरंत डंडा लिये धर्मशालामें महात्माजीके पास
 पहुँचकर अंतसंत बकने लगा और पुलिस-पावरमें आकर
 बिना ही पूछताछके उसने महात्माजीके दो-तीन बेंत लगा दी ।
 महात्माजी गुजरातमें बीसों वर्षोंसे सप्ताह-कथा करते आ रहे
 हैं । अतः उनसे प्रायः सभी परिचित हैं । गाँवके लोग
 एकत्रित हुए । सरपंच, मुखी, पटेल और भक्तोंने
 महात्माजीको पहचान लिया और सारी घटनासे जानकारी
 प्राप्त की । पुलिस-कर्मचारी निकटके ग्रामका निवासी
 था । उस गाँवमें महात्माजी एक बार चार महीने कथा-
 कीर्तन करके सबके परिचित हो चुके थे । उक्त पुलिस-कर्मचारी
 उस समय विद्यार्थी था और मामाके यहाँ निवास करता था ।
 महात्माजीको नामसे जानता था, किंतु कभी दर्शन न करनेसे
 चेहरेसे पहचानता नहीं था । उसे जब अपनी भूल मालूम हुई
 तो उसने पश्चात्ताप किया । विधवाका ऐसा दुर्व्यवहार देखकर
 महात्माजी अहमदाबाद लौट आये । यहाँ उन्होंने भक्तमण्डलको
 शान्तिसे सब बातें बतलायीं और अपने पासकी सभी
 चीजें बेचकर उन्होंने रुपये इकट्ठे किये और जिन सज्जनसे
 विधवाको रुपये दिलवाये थे, उन्हें पूरे वापस लौटा दिये
 'संत सहर्हि दुख पर हित लागी.....' । सत्य है । मुझे दूसरे
 दिन सूचना मिली कि गुरुदेवजी पधारे हैं तो मैं दर्शनार्थ
 सेवामें उपस्थित हुआ । एक लिपिकके द्वारा मुझे सारा
 वृत्तान्त मिला । मुझे बड़ा खेद हुआ और इसका उचित
 प्रतीकार करनेकी नीयतसे आदेश प्राप्त करनेके लिये मैंने

उनसे निवेदन किया । महात्माजी मुझे खिन्न रूप
 क्षुब्धचित्त देखकर बोले—

नारी धराधाम सुपुत्र प्यारे सन्निवृत्त सद्बान्धव द्रव्य सारे ।
 कोई न साथी सदा ही पुकारो गोविंद दामोदर माधवेति ॥

‘उपकार करनेवालेके प्रति उपकार करना साधुता नहीं है ।
 सच्ची साधुता तो अपकार करनेवालोंके प्रति उपकार करनेकी
 ही है ।’ मैं गुरुदेवके आदेशका उल्लङ्घन नहीं कर सका ।
 ऐसे परोपकार और परपीड़ा दोनोंको वहन-सहन करनेकी
 संत विरले ही पाये जाते हैं । संतोंकी महिमामें श्रीतुलसी-
 दासजीने कहा है—

उमा संत कै यही बड़ाई । मंद कर्त जो करइ भलाई ।

मुझे दुःख तो बहुत हुआ, पर साथ ही यह विचार
 भी आया कि इस प्रकार सभी लोग यदि इस ‘परोपकार-
 पुण्याय पापाय परपीडनम्’ के सिद्धान्तको मान लें तो
 भारतमें कलह, अशान्ति, चिन्ताएँ और दुःख सदाके लिये
 समूल नष्ट हो जायँ । इसमें कुछ संदेह नहीं । इस घटनाका
 वर्णन ‘अखण्ड आनन्द’ में छप चुका है तथापि पुनः
 संत-असंतकी रहनी-करनीसे ज्ञानार्थ ‘कल्याण’में प्रकाशनाय
 भेज रहा हूँ । इसे पढ़कर ‘कल्याण’के कल्याणाकाङ्क्षी पाठक
 लाभ उठावें ।

—नारायणसिंह माथुर (पुलिस सल्लाह)

ताजमहल, अहमदाबाद

(४)

नवार्ण-मन्त्रकी महिमा

मैं सन् १९२९ तक नास्तिक रहा । मेरे स्वर्गीय पिताजी
 पं० नन्दकिशोरजी सारस्वत एक उच्चकोटिके पण्डित थे ।
 उनका ९५ वर्षकी अवस्थामें स्वर्गवास हुआ और उनके
 उत्तरायणकी एकादशी (११) को, जिसको उन्होंने पहले
 कह दिया था । स्वर्गीय पं० गोविन्दबल्लभजी पन्त, रहमन्वी
 केन्द्रीय सरकार १९२८-३५ तक जिला कांग्रेसके अध्यक्ष
 रहे और मैं मन्त्री था । उनके साथ जब मैं हल्द्वानी जिला
 नैनीतालसे स्वतन्त्रता-आन्दोलनमें जेल जा रहा था, तब मेरे
 पिताजीने मुझे कहा कि ‘‘मैं तुम्हें आरगूमेन्टसे (युक्ति-
 पूर्वक) समझा तो नहीं सकता, परंतु मेरी यह आशा है
 कि ‘तुम जेलमें नवार्ण-मन्त्र (ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै
 विच्चे) का जप करना’ और दूसरे दिन प्रातः जेलमें आकर
 उन्होंने मुझे मन्त्र दिया ।

मैंने जेलमें गेरुआ कपड़े पहिन लिये और सादी सजा में मैंने जब गाँधी-इखिन समझौता हुआ तबतक नौ लाख जप कर लिया था। साथ ही गेरुआ कपड़ोंके कारण मुझे जेलमें स्वप्नदोष भी नहीं हुआ। मैं छूटकर बाहर आया।

उस समय मेरे चेहरेपर,—लोग कहते हैं,—एक अनोखा तेज था। हल्द्वानीमें मेरा रोशनीका ठेका था और वह मेरे स्वर्गीय पिताजीके नाम करा दिया था; क्योंकि मुझे यह भास हो रहा था कि जुर्माना अवश्य होगा। सन् १९३१-३२ का ठेका अवश्य लेना था; क्योंकि कांग्रेसका कार्य करते हुए वही आजीविकाका एक साधन था। वैसे हम पाँच भाई थे। जबसे माताजीका स्वर्गवास हुआ और सब भाई काम करने लगे, केवल मैं ही स्वतन्त्रता-आन्दोलनका सिपाही बना। मैंने पिताजीसे एक दिन पहले कहा कि 'आपको काशीपुरसे, जहाँ हमारा निवास-स्थान है, हल्द्वानी ठेकेमें चलना है।' अगले दिन शामको चार बजे ही गाड़ी लालकुआ जाती है। उससे काशीपुरके खत्री लाला खुवीरशरणजीके लड़के धुवनारायण महरोत्राजी वारात जा रही थी और उनकी बोगी लालकुआसे जो गाड़ी एक्सप्रेस लखनऊ जाती है, उसमें लगनेवाली थी।

मैंने अपने पिताजीसे हल्द्वानी चलनेके लिये कहा मगर लालाजी उनके सिर ही हो गये कि 'आपको लखनऊ चलना है।' पिताजीने मुझसे कहा कि 'अगर लालाजी मान जायें तो मैं चलनेको तैयार हूँ।' लालाजीने कहा कि 'पण्डितजी! ठेके तो रोज ही होते रहते हैं। लड़केकी शादी कब आती है।' मुझे यह सुनकर दुःख भी हुआ और गुस्सा भी आया। मैं जाकर इन्टरक्लासमें बैठ गया और मेरे मुँहसे यह निकला—'भगवती! मेरी रोजी जायगी? हरगिज्ञ नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता।' और मैं समाधि या निद्रामें हो गया। कब गाड़ी चली मुझे पता नहीं, जब अगले स्टेशन सरकारामें गाड़ी रुकी और इंजनसे बँधी मालगाड़ी लेकर इंजन चला तो उसके दो पहिये पटरीसे उतर गये। यात्रियोंने शोर मचाया तब मेरी समाधि या निद्रा टूटी। बाहर निकलकर देखा तो दूसरा ही नजारा था। सामने मेरे पिताजी आ गये, मेरे मुँहसे निकला—'कहिये, आप ही नहीं जायेंगे या मय बरातके।' उन्होंने कहा कि 'तुमने बुरा किया सब खो दिया।' लालाजीने ड्राइवरको सौ रुपयेका नोट दिया और कहा कि 'वह गाड़ी मिलवा दे।' उसने कहा कि 'अगर दो घंटे भी मेरी गाड़ी लेट होगी तब भी

मैं एक्सप्रेससे मिला दूँगा।' सब आदमी तमाशा देख रहे थे। इंजनका पहिया चढ़ाया तो दूसरी तरफका उतर गया। सब लोग परेशान थे। मैं शान्त होकर ट्रेनमें बैठ गया। सरकारा स्टेशनसे गाड़ी तब चली, जब लखनऊवाली गाड़ी जा चुकी थी। सरकारासे लालकुआ तीस मील था। रातको गाड़ी पहुँची। अगले दिन पिताजी लालकुआसे हल्द्वानी, जो कि १० मील है, पहुँचे और ठेका मेरे नाम हो गया।

मैंने स्वतन्त्रता-आन्दोलनमें पाँच दफा जेल काटी है और मैं वहाँ हमेशा गेरुआ कपड़े पहिनता रहा और नवार्ण मन्त्र—जो कि मेरे जीवनका एक अङ्ग बन गया है—बराबर जप करता रहा। अब मेरी अवस्था ६५ साल है। मैं डाक्टर हूँ, उत्तरप्रदेश कांग्रेस कमेटीका सदस्य हूँ, नगरपालिका काशीपुरका अध्यक्ष हूँ तथा और भी बहुत-सी कमेटियोंका सदस्य हूँ। काशीपुरमें श्रीचामुण्डा देवीजीका एक बहुत प्राचीन मन्दिर है, जहाँ मैं सन् १९४४में जबसे जेल-यात्रासे लौटा हूँ, नित्य जाता हूँ और उसका जीर्णोद्धार नगरसे चंदा करके करवाया है। अब वह दर्शनीय स्थान है। —डा० रामशरण सारस्वत, काशीपुर (नैनीताल)

(५)

सोतेसे जगा दिया

एयर इंडियाके 'बोइंग ७०७' में एयर-होस्टेजकी आवाज सुनायी दी—'अब थोड़ी ही देरमें अपना विमान जेनेवा एयर पोर्टपर उतरेगा।'।

हमलोग तैयार हो गये। भट्टाचार्य, मि० रोबर्ट हॉक और मैं—हम तीनोंकी अच्छी टाली थी। मिस्टर रोबर्ट अमेरिकन थे, भट्टाचार्य और मैं कैलीफोर्निया युनिवर्सिटीमें एम० एस्० की शिक्षाके लिये जा रहे थे। न्यूयार्क जानेसे पहले ५-४ दिन हमलोगोंको स्विट्जरलैंडमें रुकना था। मि० रोबर्ट भी यहाँ उतरनेवाले थे। हमने एक ही होटलमें रुकनेका निश्चय किया।

चार दिनोंतक तीनों साथ-साथ घूमे। अब दूसरे दिन हमलोग अलग होनेवाले थे। जो कुछ देखा था उसकी बात चल रही थी।

मेरे मुँहसे निकल गया, 'दुनियाके स्वर्गको जिंदगीमें देख तो लिया।'।

भट्टाचार्यने भी मेरे सुरमें सुर मिला दिया।

मि० रोबर्ट हमारी ओर ताकते रहे।

‘मि० मेहता ! आप इसको दुनियाका स्वर्ग कहते हैं ?’
उन्होंने ‘इस’के ऊपर जोर दिया और बोले—‘आप दूसरे अच्छे-से-अच्छे स्थानोंमें हो आये हैं या नहीं ?’

‘नहीं ! अमेरिकाके कितने ही स्थान अभी देखने हैं !’

‘मि० मेहता ! आपने काश्मीर तो देखा होगा ?’

‘नहीं !’

‘कोडाई-कैनाल ?’

‘नहीं !’

मि० मेहता ! आपने दार्जिलिंगपरसे सूर्योदय देखा होगा ?

‘नहीं !’

मि० मेहता ! ऊटी तो हो आये हैं न ?

‘नहीं !’

‘बस ! तो खत्म । मि० रोबर्टने धीमी आवाजमें कहना शुरू किया ।

‘देखिये, मैं सारे भारतमें घूमनेका दावा तो नहीं कर सकता, पर भारतका आजकलका शिक्षक-वर्ग, भारतसे बाहर जानेवाला विद्यार्थी-वर्ग मानो हीन-भावनाके रोगसे अत्यन्त पीड़ित हैं । भारतमें क्या-क्या है, इसका कदाचित् उनको पता ही नहीं है । गतवर्ष मेरे घर तीन भारतीय विद्यार्थी—गुप्त, शाह और चौधरी आये थे ।

‘एक दिन बात चली तो मैंने शाहको गीताका मर्म समझानेके लिये कहा । शाह गोलमटोल बातें करने लगे । दूसरे दोनोंकी भी यही दशा हुई । आखिर मैंने सीधे-सीधे पूछ लिया । ‘आपमेंसे किसीने गीता पढ़ी है ?’ जवाब नकारमें मिला । ‘रामायण ? महाभारत ?’ इसका उत्तर भी नकारात्मक रहा ।

‘उत्तरप्रदेशके कई गाँवोंमें मैं घूमा हुआ हूँ । वहाँ रातको तुलसीदासजीकी रामायण लगभग सभी जगह बाँची जाती थी, यह मैंने देखा । मैं तो टूटी-फूटी हिंदी जानने लगा । जहाँ राम-सीताका नाम आता, वहाँ गाँवके लोग ‘हाँ’ कहते । मैं तो कहता हूँ कि वे गाँवके लोग उन्हें उनके बाप-दादा जो विरासत दे गये हैं, उसकी अच्छी तरह रक्षा और व्यवहार करना जानते हैं, पर दिल्लीमें तो आप वेदव्यास या वाल्मीकिके बदले वाइल्डका नाम लेंगे तो मानो महान् समझे जायेंगे ।’

‘यहाँ आनेवाले विद्यार्थी गीता या महाभारत आदिकी बात करनेमें शर्माते हैं । मैं कहता हूँ, आप अपने सिरको ऊँचा उठाकर गर्वसे कह सकते हैं—वेद हमारे देशमें पैदा

हुए, वेदव्यास हमारे देशमें पैदा हुए, विवेकानन्द भारतीय थे ।’

मिस्टर रोबर्ट जरा श्वास लेने रुके । हमलोग तो अमेरिकनकी छटा देखते ही रह गये ।

‘पर आपके यहाँ तो बिना ‘देवदास’के पढ़े ही हेमलेखना दुनियाकी सबसे श्रेष्ठ ट्रेजेडी कहते हैं । सत्यजित रायकी फिल्म देखे बिना ही पश्चिमी किसी भी फिल्मको अच्छा वतने लगते हैं । बिसमिल्लाखॉकी शहनाई और रविशंकरका सितार सुने बिना ही पश्चिमके जार्ज अथवा ट्रम्पेटके किसी मादक रिकार्डको खूब पसंद करते हैं । मणिपुरी, भोंगरा या भारत नाट्यम्के जाने बिना ही आपलोग ट्रिस्टकी तारीफें फु बाँधने लगते हैं ।’

‘आप कुछ भी पसंद करें, यह प्रश्न नहीं है, परन्तु आपके देशमें जो कुछ भी श्रेष्ठ है, उसके सम्बन्धमें बात करते हुए कभी लज्जित न हों । इसी प्रकार पाश्चात्यका कुछ अच्छा हो और उसे ग्रहण करनेका मन हो तो उसे ग्रहण करें, किंतु—

मि० रोबर्टकी आवाज धीमी हो गयी ।

—‘आपके देशकी रहनी-करनी, आव-हवा, रीति-रिवाजके लिये और आपके अपने लिये वह कितना अवशुल होगा, इसका अच्छी तरह विचार अवश्य कर लेना चाहिये ।’

मैं और मेहता तो चकित हो गये । हमको लगा मानो किसीने हमें सोतेसे जगा दिया है ।

दूसरे दिन प्रभात हुआ । हमारे जानेका दिन था । हम तैयार हुए । मि० रोबर्ट फ्रांसके ‘बोइंग ७२७’में यहाँसे पेरिस जानेवाले थे ।

‘अलग होनेके पहले फिर एक सलाह दूँ, इसको बुझ तो नहीं मानेंगे मि० मेहता !’ मि० रोबर्टने सलाह शब्दपर जोर देते हुए कहा ।

‘नहीं, नहीं, मैं तो मानता हूँ कि आपहीने हमें अमेरिकाके लिये तैयार किया ।’ मैंने कहा ।

‘आप यू० एस० ए० (अमेरिका) जा रहे हैं । वहाँके हरे-हरे क्षेत्रमें स्वयं-संचालितपन (ऑटोमेशन) देखकर कहीं उसकी चाह न कर बैठियेगा । मैं तो इतना ही कहूँगा कि वास्तवमें प्रगति क्या है, इसपर एकान्तमें बैठकर कभी विचार कीजियेगा ।’ मि० रोबर्टने कहा । (अखण्ड आनन्द) —नलिनकांत गोखले

श्रहरि:

ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके द्वारा लिखित मानव-जीवनको सरलतासे उच्चतम आध्यात्मिक आदर्शोंकी ओर अग्रसर करनेवाली सरल, सुन्दर, शिक्षाप्रद सचित्र और सस्ती कुछ पुस्तकें

मूल्य
रु. पै.मूल्य
रु. पै.

- | | |
|--|--|
| १-आत्मोद्धारके साधन-धर्म, निष्कामकर्म, भक्ति, प्रेम, ज्ञान आदि ३० लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ४६४, रंगीन चित्र ४ ... १.२५ | १४- भाग २ सचित्र, पृष्ठ ७५२, सजिल्द ०.७० |
| २-भक्तियोगका तत्त्व-भक्ति-सम्बन्धी २९ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ४५६, रंगीन चित्र ४ ... १.२५ | १५- " ३ सचित्र, पृष्ठ ५६०, सजिल्द ०.६० |
| ३-कर्मयोगका तत्त्व-कर्मयोग-सम्बन्धी ३१ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ४२०, दो तिरंगे, तीन सादे चित्र ... १.२५ | १६- " ४ सचित्र, पृष्ठ ६८४, सजिल्द ०.७५ |
| ४-महत्त्वपूर्ण शिक्षा-१७ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ४७६, रंगीन चित्र ४, मू० १.००, सजि० ... १.५० | १७- " ५ सचित्र, पृष्ठ ६२१, सजिल्द ०.७० |
| ५-परम साधन-साधनसम्बन्धी १६ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ३७२, तिरंगे चित्र ५, मू० १.००, सजि० ... १.५० | १८-परमार्थ-पत्रावली-भाग १ पृष्ठ ११२, सचित्र ०.३० |
| ६-परमशान्तिका मार्ग-३४ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ४१६, चित्र रंगीन ४, सादे २, मू० १.००, सजि० ... १.५० | १९- " -भाग २ पृष्ठ १७२, सचित्र ०.३० |
| ७-ज्ञानयोगका तत्त्व-२७ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ३८४, चित्र रंगीन ३, मू० १.००, सजि० ... १.५० | २०- " -भाग ३ पृष्ठ २००, सचित्र ०.६० |
| ८-प्रेमयोगका तत्त्व-२२ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ-संख्या ३८०, चित्र रंगीन ५, सादा १, मू० १.००, सजि० ... १.५० | २१- " -भाग ४ पृष्ठ २१४, सचित्र ०.६० |
| ९-तत्त्व-चिन्तामणि-भाग २ सचित्र, पृष्ठ ५९२, १.०० | २२-अध्यात्मविषयक पत्र-पृष्ठ १६४, सचित्र ०.६० |
| १०- " - " ३ सचित्र, पृष्ठ ४२४, ०.८० | २३-शिक्षाप्रद पत्र-पृष्ठ २४२, सचित्र ०.६० |
| ११- " - " ४ सचित्र, पृष्ठ ५२८, ०.९५ | २४-रामायणके कुछ आदर्श पात्र-सचित्र, पृष्ठ १६८ ... ०.४५ |
| १२- " - " ६ सचित्र, पृष्ठ ४५६, १.०० | २५-स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा-पृष्ठ १७६ ... ०.४५ |
| १३-तत्त्व-चिन्तामणिका गुटका संस्करण-भाग १ सचित्र, पृष्ठ ४४८, सजिल्द ०.६० | २६-महाभारतके कुछ आदर्श पात्र-स०, पृष्ठ १२८ ०.३० |
| | २७-आदर्श भ्रातृ-प्रेम-पृष्ठ १०४ ... ०.२५ |
| | २८-शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ-पृष्ठ १२८ ... ०.३० |
| | २९-आदर्श नारी सुशीला-पृष्ठ ५६ ... ०.२५ |
| | ३०-ध्यान और मानसिक पूजा-पृष्ठ ३२ ... ०.२५ |
| | ३१-गीता-निबन्धावली-पृष्ठ ८० ... ०.२० |
| | ३२-श्रीभारतजीमें नवधा भक्ति-पृष्ठ ४८, सचित्र ०.१५ |
| | ३३-नवधा भक्ति-पृष्ठ ६४, सचित्र ०.१५ |
| | ३४-बाल-शिक्षा-पृष्ठ ६४, सचित्र ०.१५ |
| | ३५-ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप-पृष्ठ ३६, ०.१२ |
| | ३६-नारी-धर्म-पृष्ठ ४८ ... ०.१२ |
| | ३७-गीता पढ़नेके लाभ ... ०.१२ |
| | ३८-श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा ... ०.१० |
| | ३९-श्रीप्रेम-भक्ति-प्रकाश ... ०.०८ |
| | ४०-सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय ०.०८ |
| | ४१-सामयिक चेतावनी ... ०.०८ |
| | ४२-श्रीमद्भगवद्गीताका तात्त्विक विवेचन ... ०.०८ |

मूल्य

रु. पै.

४३-गीतोक्त कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञान-योगका रहस्य	०.०७	५८-धर्म क्या है ?	०.०३
४४-संत-महिमा	०.०७	५९-तीर्थोंमें पालन करने योग्य कुछ उपयोगी बातें	०.०३
४५-वैराग्य	०.०७	६०-महात्मा किसे कहते हैं ?	०.०३
४६-भगवान् क्या हैं ?	०.०४	६१-ईश्वर दयालु और न्यायकारी है	०.०३
४७-भगवान्की दया	०.०४	६२-प्रेमका सच्चा स्वरूप	०.०३
४८-चतुःश्लोकी भागवत-सटीक	०.०४	६३-हमारा कर्तव्य	०.०३
४९-गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग	०.०४	६४-ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नामजप सर्वोपरि साधन है	०.०३
५०-सत्यकी शरणसे मुक्ति	०.०४	६५-त्यागसे भगवत्प्राप्ति	०.०३
५१-भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	०.०४	६६-चेतावनी	०.०३
५२-स्त्रियोंके कल्याणके कुछ घरेलू प्रयोग	०.०४	६७-कल्याण-प्राप्तिकी कई युक्तियाँ	०.०३
५३-व्यापार-सुधारकी आवश्यकता	०.०४	६८-शोकनाशके उपाय	०.०३
५४-परलोक और पुनर्जन्म	०.०४	६९-श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव	०.०३
५५-ज्ञानयोगके अनुसार विविध साधन	०.०४	७०-गजल गीता	०.०३
५६-अवतारका सिद्धान्त	०.०४				
५७-सत्सङ्गकी कुछ सार बातें	०.०३				

सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग

पुस्तकोंका आर्डर यहाँ देनेसे पहले उनके छपे मूल्यपर स्थानीय विक्रेताओंसे अथवा हमारी विज्ञापित दुकानोंसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये, इससे भारी डाकखर्चकी बचत हो सकती है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

‘कल्याण’के आजीवन-ग्राहक बनिये और बनाइये

[आपके इस कार्यसे गीताप्रेसके सत्साहित्य-प्रचार-कार्यमें सहायता मिलेगी]

(१) प्रतिवर्ष ‘कल्याण’का मूल्य भेजनेकी बात समयपर स्मरण न रहनेके कारण वी० पी० द्वारा कल्याण मिलनेमें देर हो जाती है, जिससे ग्राहकोंको क्षोभ हो जाता है; इसलिये जो लोग भेज सकें, उन्हें एक साथ एक साथ भेजकर ‘कल्याण’का आजीवन ग्राहक बन जाना चाहिये।

(२) जो लोग प्रतिवर्ष सजिल्द विशेषाङ्क लेना चाहें उन्हें १२५) रुपये भेजना चाहिये।

(३) भारतवर्षके बाहर (विदेश) का आजीवन ग्राहक-मूल्य अजिल्दके लिये १२५) रुपये या दस पौंड अजिल्दके लिये १५०) रुपये या बारह पौंड है।

(४) आजीवन ग्राहक बननेवाले जबतक रहेंगे और जबतक ‘कल्याण’ चलता रहेगा, उनको प्रतिवर्ष कल्याण मिलता रहेगा।

(५) मन्दिर, आश्रम, पुस्तकालय, मिल, कारखाना, उत्पादक या व्यापारी-संस्था, क्लब या अन्यान्य संस्था कर्म में आजीवन-ग्राहक बनाये जा सकते हैं।

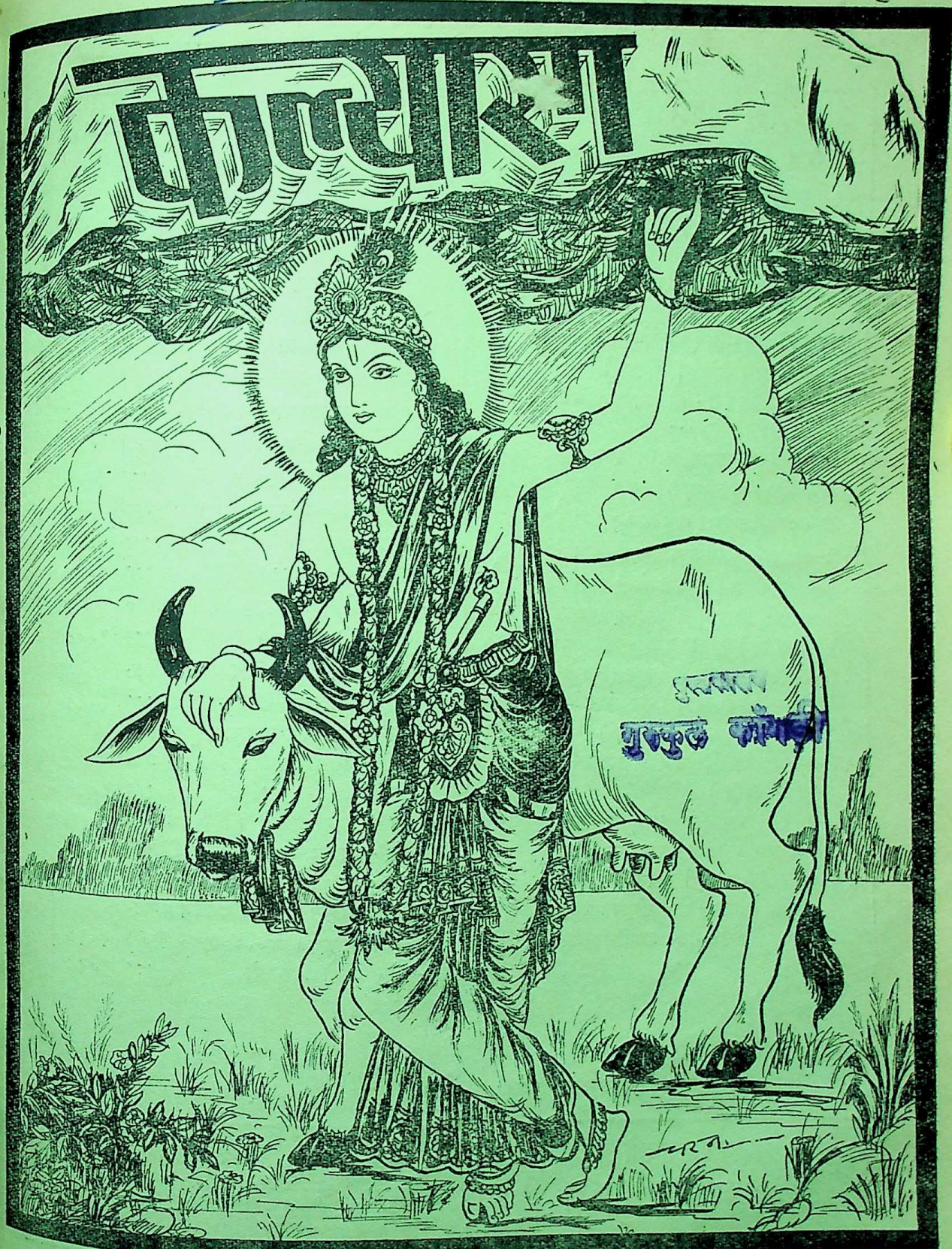
चेक या ड्राफ्ट ‘मैनेजर, गीताप्रेस’ के नामसे भेजनेकी कृपा करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

व्यवस्थापक—‘कल्याण’, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

11-6-66

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-कौसल्याका आनन्द [कविता] ...	९५७
२-कल्याण ('शिव') ...	९५८
३-ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश (पुराने लेखोंसे संकलित) ...	९५९
४-वाणी और भक्ति (संत श्रीविनोबा भावे) ...	९६१
५-कैसे वचन बोलें ? [कविता] ...	९६२
६-मनन-माला (ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास) ...	९६३
७-मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः (श्रीम० त्रि० भट्ट) ...	९६६
८-'स्व' का चिन्तन (साधुवेषमें एक पथिक) ...	९७१
९-सबका सदा परम कल्याण चाहो [कविता] ...	९७३
१०-साधन-माला [साधनोपयोगी सुनी हुई बातोंका संग्रह] (श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका) ...	९७४
११-दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्री-गोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव) ...	९८१
१२-धर्म-अधर्मके हिस्सेदार (ठाकुर श्री-सुदर्शनसिंहजी) ...	९८६
१३-ए रे ! नर चेत !! [कविता] (श्रीमन्मदनलालजी पाराशर एम० ए०) ...	९८८
१४-धर्मनिरपेक्ष राज्यकी कल्पना—एक रुन-सामयिक चिन्तन (प्रो० श्रीकृपानारायण-जी मिश्र, एम० ए०, शास्त्री, साहित्य-रत्न) ...	९८९

कल्याण, सौर आषाढ २०२३, जून १९६६

विषय	पृष्ठ-संख्या
१५-महर्षि गौतम और उनका धर्मशास्त्र (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ...	९९२
१६-यह मृत्युलोक (श्रीपरमहंसजी महाराज, श्रीरामकुटिया) ...	९९५
१७-तितिक्षा [कहानी] (श्री 'चक्र') ...	९९७
१८-धार्मिक स्वाधीनताके लिये प्राणोत्सर्ग करनेवाले हुतात्मा—महात्मा गौरीनाथ (श्रीशिवकुमारजी गोयल) ...	१००१
१९-फलित प्रार्थना (श्रीरामपुनीतजी श्रीवास्तव एम० ए०) ...	१००२
२०-हिंदू-धर्मकी अग्नि-परीक्षा (श्रीसुन्दर-लालजी बोहरा) ...	१००३
२१-मधुर ...	१००७
२२-'नम्रताकी मूर्ति' श्रीहनुमान्जी (श्रीस० ना० पाण्डे महोदय) ...	१००८
२३-जी भरकर हँसिये (श्रीवेदव्रतजी दीक्षित, एम० ए०, एल्० टी०) ...	१०११
२४-सबसे न्यारा प्यार तुम्हारा ! [कविता] (प्रो० श्रीभवदेवजी झा, एम० ए०-द्वय) ...	१०१२
२५-संत श्रीजयमलदासजी (सिंहस्थल राम-स्नेही-सम्प्रदायाचार्य-प्रधानपीठाधीश्वर श्री १००८ श्रीभगवद्दासजी शास्त्री) ...	१०१३
२६-उदात्त सङ्गीत (डा० श्रीबलदेव प्रसाद-जी मिश्र, एम० ए०, पी-एच्० डी०) ...	१०१७
२७-पढ़ो, समझो और करो ...	१०१८

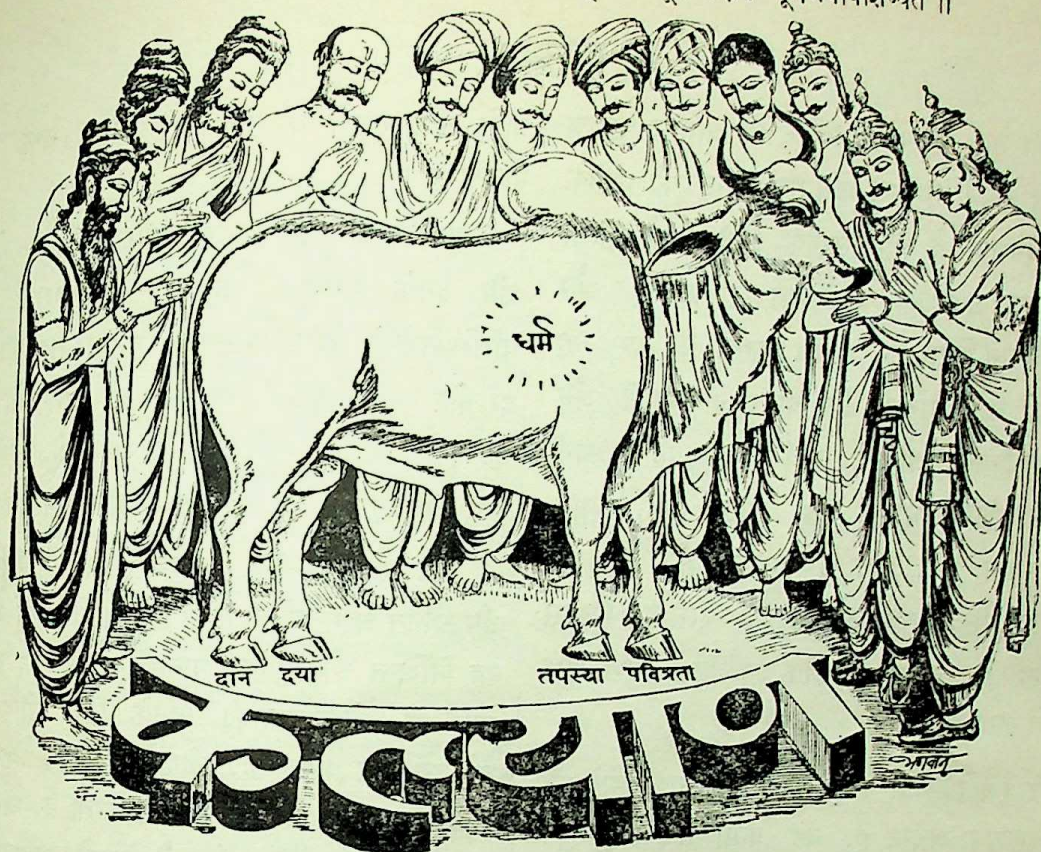
चित्र-सूची

१-नोप्रेमी गिरिधारी	(रेखाचित्र) ...	मुखपृष्ठ
२-भरत-शत्रुघ्नके साथ माता कौसल्या आनन्दमय	(तिरंगा) ...	९५७

वार्षिक मूल्य } जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय ॥ { साधारण प्रति
 भारतमें रु० ७.५० } जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥ { भारतमें ४५ पै
 विदेशमें रु० १०.०० } जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥ { विदेशमें ५६ पै
 (१५ बिल्लि) } { (१० पैस) }

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री

मुद्रण—प्रकाशक—पुस्तकालय, गुरुकुल कांगड़ी Collection, Haridwar



लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्ब्रह्मर्षिराजर्षिर्भिविंद्शूद्रैरपि वन्द्यते स जयताद्वर्मो जगद्धारणः ॥

वर्ष ४० }

गोरखपुर, सौर आषाढ २०२३, जून १९६६

{ संख्या ६
पूर्ण संख्या ४७५

कौसल्याका आनन्द

सानुज भरत भवन उठि धाए ।
पितु-समीप सब समाचार सुनि, मुदित मातु पहुँ आए ॥ १ ॥
सजल नयन, तनु पुलक, अधर फरकत लखि प्रीति सुहाई ।
कौसल्या लिये लाइ हृदय, 'बलि कहौ, कछु है सुधि पाई ?' ॥ २ ॥
'सतानंद उपरोहित अपने तिरहुति-नाथ पठाए ।
खेम-कुसल रघुवीर-लषनकी ललित पत्रिका ल्याए ॥ ३ ॥
दलि ताडुका, मारि निसिचर, मख राखि, बिप्र-तिय तारी ।
दै विद्या लै गये जनकपुर, हैं गुरु-संग सुखारी ॥ ४ ॥
करि पिनाक-पन, सुता-स्वयंबर सजि, नृप-कटक बटोरयो ।
राजसभा रघुवीर मृनाल-ज्यों संभु-सरासन तोरयो ॥ ५ ॥
यों कहि सिथिल-सनेह बंधु दोउ, अंब अंक भरि लीन्हें ।
बार-बार मुख चूमि, चारु मनि-बसन निछावरि कीन्हें ॥ ६ ॥
सुनत सुहावनि चाह अवध घर-घर आनंद बधाई ।
तुलसिदास रनिवास रहस-बस, सखी सुमंगल गाई ॥ ७ ॥

कल्याण

याद रक्खो—मनुष्य स्वाभाविक ही आनन्द चाहता है और वह अपनी समझसे दिन-रात आनन्दकी प्राप्ति के उपाय ही सोचता है और उसीके लिये कार्य करता है। अनुकूल उपायोंका अवलम्बन करता है और विघ्नोंको हटाने-मिटानेका प्रयास करता है; पर वह इस बातको नहीं जानता कि वास्तविक स्थायी और नित्य आत्यन्तिक आनन्द कहाँ है। वह अपनी विषयासक्त सीमित बुद्धिसे इस जगत्में धन, ऐश्वर्य, कीर्ति, सम्मान, पुत्र, स्त्री, पूजा, पद और अधिकार आदिमें ही सौन्दर्य तथा आनन्द है—ऐसा दृढ़ विश्वास कर बैठा है, अतएव इन्हींके अर्जन, रक्षण तथा संवर्धनमें लगा है।

याद रक्खो—जो वस्तु अपूर्ण है, नाश होनेवाली है, जो मृत्युके अधीन है, वह कभी न तो वस्तुतः सुन्दर होती है और न आनन्द देनेवाली ही। वह तो सदा ही असुन्दर और दुःखरूप है।

याद रक्खो—पता नहीं, किस अनादि कालसे यह जीव भगवद्विमुख होकर—अपने आत्मस्वरूपको भूलकर माया-मोहमें फँस रहा है और अनित्य तथा दुःखपूर्ण दुःखयोनि संसारके प्राणि-पदार्थ-परिस्थितियोंको प्राप्त करके आनन्द-लभ करनेके लिये प्रयत्नशील है। यह जो आत्म-स्वरूपकी विस्मृति है, यही क्षणभङ्गुर शरीर और नाममें अहंबुद्धि—अर्थात् यह मैं हूँ, और शरीर तथा शरीर-सम्बन्धी वस्तुओंमें ममत्व-बुद्धि अर्थात् ये मेरे हैं—ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न करती और बढ़ाती है। इसी कारण मनुष्य शरीरकी स्वस्थतामें अपनेको स्वस्थ, कृशता या स्थूलतामें अपनेको कृश या स्थूल, शरीरके नाशमें अपना नाश मानता है और इसी कारण यह शरीर और नामके सम्बन्धी स्त्री, पति, पुत्र, घर, धन, पद, अधिकार, मान आदिके नाशमें मेरी वस्तुओंका नाश और इनकी

प्राप्ति तथा रक्षामें मेरी वस्तुओंकी प्राप्ति तथा रक्षा मानता है।

याद रक्खो—इस प्रकार शरीर एवं नामको धैर्य और इनके सम्बन्धी अनुकूल प्राणी-पदार्थों तथा परिस्थितियोंको 'मेरा' माननेवाला मनुष्य सदा ही चोट-पर-चोट खाता रहता है, वह सदा ही आनन्दके बदले घोर दुःख, शान्तिके बदले अशान्ति, अमरताके बदले नित्य-मृत्यु और तृप्तिके बदले सदा अतृप्ति प्राप्त करता है।

याद रक्खो—ऐसा मनुष्य जीवनभर चिन्ताग्रस्त और भ्रमित अशान्तचित्त रहता है। कभी किसी अवस्थामें वह निश्चिन्त और सुस्थिर शान्तचित्त नहीं रह सकता। साथ ही भोगकामनाकी पूर्तिके लिये भोगासक्तिवश नये-नये पाप करता है, लोगोंसे द्वेष-द्रोह करता है, क्रोध-हिंसा करता है, छल-कपट करता है, असत्य और अन्यायका आश्रय लेता है और मरते क्षणतक दुखी रहता हुआ पापोंका संग्रह करके मृत्युका ग्रास बन जाता है।

याद रक्खो—इस प्रकार जिसकी पाप-चिन्तामयी मृत्यु होती है, वह मृत्युके पश्चात् बहुत बड़ी कड़ी यमयन्त्रणा भोगता है, बार-बार अधम आसुरी योनियोंमें जाता है और वहाँ भौंति-भौंतिके संतापकी आगमें जलता रहता है।

याद रक्खो—मनुष्य-जीवनका यह ध्येय तो है ही नहीं; वरं उसके असली ध्येयका भगवत्प्राप्ति या आत्मस्वरूप-स्थितिका बाधक है। अतएव इस परिणाम-को प्राप्त करानेवाले अहं-ममजनित पापकर्मोंका परित्याग करके नित्य-निरन्तर सावधानीके साथ उन साधनोंका आश्रय ग्रहण करो जिनसे मानव-जीवनके असली ध्येयकी प्राप्ति हो। वास्तविक लक्ष्यको प्राप्त करके जीव कृतकृत्य हो जाय। मानव-जन्म सम्पन्न हो जाय।

‘शिव’

ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

(पुराने लेखोंसे संकलित)

अनन्त आनन्दधन परमात्मा

संसारमें सभी मनुष्य सुख चाहते हैं। सुखसे या जिससे सुख मिलनेकी आशा रहती है, उससे प्रेम करते हैं। इसलिये जो मनुष्य भगवान्‌को परम सुख-स्वरूप और एकमात्र सुखप्रद समझ लेता है, उससे बढ़कर या उसके समान आनन्दप्रद एवं आनन्दस्वरूप किसी वस्तुको भी नहीं समझता तथा उसपर जिसको पूर्ण विश्वास हो जाता है, वह पुरुष ईश्वरको छोड़ और किसीसे प्रेम नहीं कर सकता। संसारमें जहाँ भी सुख और आनन्द प्रतीत होता है, वह उस आनन्दमय परमात्माके आनन्दका आभासमात्र ही है (बृ० ४। ३। ३२)। जगत् क्षणिक, अल्प और अनित्य है। परमेश्वर अनन्त, नित्य, पूर्ण, चेतन और आनन्दधन है। इसलिये उस नित्य विज्ञानानन्दधन परमात्माके साथ किसी सांसारिक आनन्दकी तुलना नहीं की जा सकती। भजन, ध्यान, सेवा, सत्संग आदिसे पवित्र अन्तःकरण होनेके साथ-ही-साथ उपर्युक्त प्रकारके ज्ञानरूपी सूर्यका प्रकाश मनुष्यके हृदयाकाशमें चमकने लगता है।

भगवान्‌की दया

भगवान्‌की दया सर्वथा सर्वदा और सर्वत्र व्याप्त है। सुख या दुःख, जय या पराजय—जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह ईश्वरकी दयासे पूर्ण है और स्वयं ईश्वरका ही किया हुआ विधान है। उसीकी दया इस रूपमें प्रकट हुई है। मनुष्य जब इस रहस्यको जान लेता है तब उसे सुख और विजय मिलनेपर जो हर्ष प्राप्त होता है, वही हर्ष दुःख और पराजयमें भी होता है। जबतक ईश्वरके विधानमें संतोष नहीं है और सांसारिक सुख-दुःखादिकी प्राप्तिमें हर्ष-शोक होता है, तबतक मनुष्यने

भगवान्‌की दयाके तत्त्वको वास्तवमें समझा ही नहीं है। जब ईश्वरको कर्मोंके अनुसार फल देनेवाले न्यायकारी होनेके साथ ही परम प्रेमी, परम हितैषी, परम दयालु और परम सुहृद् समझ लिया जायगा, तब उनके किये हुए सभी विधानोंमें आनन्दका पार न रहेगा। विषयी और पामर पुरुषोंके हृदयमें तो स्त्री-पुत्र, धन-धामकी प्राप्तिमें क्षणिक आनन्द होता है, किंतु दयाके मर्मज्ञ उस पुरुषको तो पुत्रकी उत्पत्ति और नाशमें, धनके लाभ और हानिमें, शरीरकी नीरोगता और रुग्णतामें तथा अन्यान्य सम्पूर्ण पदार्थोंकी प्राप्ति और विनाशमें, जैसे-जैसे वह भगवान्‌की दयाके प्रभावको समझता जायगा, वैसे-वैसे ही नित्य-निरन्तर उत्तरोत्तर अधिकाधिक विलक्षण आनन्द, शान्ति और समताकी वृद्धि होती जायगी।

रोग और मृत्युको परम तप माननेसे तपके फल और मुक्तिकी प्राप्ति

सब जग ईश्वररूप है, भलो बुरो नहीं कोय।

जैसी जाकी भावना, तैसी ही फल होय ॥

सारा संसार ईश्वररूप है, जिसकी जैसी भावना होती है उसको उसीके अनुरूप फल भी प्राप्त होता है। मनुष्य जब बीमार होता है तब वह बहुत ही व्याकुल हुआ करता है। उसकी व्याकुलताका प्रधान हेतु यही है कि वह उस रोगमें दुःखकी भावना करता है। वेदनाका अनुभव होना दूसरी बात है और उससे दुखी होना और बात है। यदि रोगमें दुःखकी जगह 'तप' की भावना कर ली जाय तो मनुष्य रोगजन्य दुःखसे अनायास ही बच सकता है। वह केवल दुःखसे ही नहीं बच जाता, तपकी भावनासे उसके लिये वह रोग ही तपतुल्य फल देनेवाला भी हो जाता है। इस रहस्यके समझ लेनेपर ज्वरादि

व्याधियोंमें मनुष्यको किञ्चिन्मात्र भी शोक नहीं होता । जैसे तपस्वी पुरुषको तप करनेमें महान् परिश्रम और अत्यन्त शारीरिक कष्ट उठाना पड़ता है, परंतु वह कष्ट उसके लिये शोकप्रद न होकर शोकनाशक और शान्तिप्रद होता है, वैसे ही रोगमें तपकी भावना करनेवाले रोगीको भी उसकी दृढ़ सद्भावनाके प्रभावसे वह रोग शोकप्रद न होकर हर्ष और शान्तिप्रद हो जाता है । भावनाके अनुसार ही फल होता है, इसलिये रोगपीड़ित मनुष्योंको उचित है कि वे रोगमें तपकी ही नहीं, बल्कि यह भावना करें, यह रोग दयामय भगवान्का दिया हुआ पुरस्काररूप 'प्रसाद' है । अतएव 'परम तप' है । यदि रोग आदिमें इस प्रकार परम तपकी भावना सुदृढ़ हो जाय तो अवश्य ही वे रोगादि परम तपके फल देनेवाले बन जाते हैं । परम तप इहलौकिक कष्टोंसे छुड़ाकर जीवको स्वर्गादिसे लेकर ब्रह्मलोकतक पहुँचा सकता है और यदि फलासक्तिको त्यागकर कर्तव्य-बुद्धिसे ऐसे परम तपका साधन किया जाय तो वह इस लोक और परलोकमें मुक्तिरूप परमा शान्तिकी प्राप्ति करानेवाला बन जाता है । तपसे जैसे पूर्वकृत पापोंका क्षय होता है, वैसे ही रोग-पीड़ा आदिमें परम तपकी दृढ़ भावनासे जीवके समस्त पापोंका क्षय हो जाता है और उसे परमपदकी प्राप्ति हो जाती है । जबतक मनुष्य रोगको कष्टदायक समझता है, तभीतक वह उससे द्वेष करता है, परंतु वही रोग जब तपके रूपमें—उपासनाके स्वरूपमें परिणत हो जाता है, तब वह उससे, तपःशील तपस्वीकी भाँति, न तो द्वेष करता है, न उसमें कष्ट मानता है और न उसकी निन्दा करता है । वह तो तपस्वीकी तरह उसकी प्रशंसा करता हुआ किसी भी कष्टकी किञ्चित् भी परवा न करके परम प्रसन्न रहता है । इसी अवस्थामें उसके रोगको 'परम तप' समझा जा सकता है—

अत्यन्त व्याधि-पीड़ित होनेपर जब मनुष्यके सामने मृत्युका महान् भय उपस्थित होता है, उस समय उस मृत्युमें 'परम तप' की भावना करनेसे वह भी मुक्तिका कारण बन जाती है । यद्यपि मृत्युके समय विद्वानोंको भी भय लगता है तब व्याधि-विकल विषयी मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, तथापि मृत्युके समीप पहुँचे हुए व्याधि-पीड़ित मनुष्यको मुक्तिके लिये इस प्रकारकी भावना करनेका यथासाध्य प्रयत्न तो अवश्य ही करना चाहिये कि 'तपकी इच्छासे वनमें गमन करनेवाले तपस्वीको जैसे उसके मित्र-बान्धव वनके लिये विदा कर देते हैं, उसी प्रकार मृत्युके अनन्तर मुझे भी मेरे मित्र-बान्धव वनमें पहुँचा देंगे । वही मेरे लिये परम तप होगा । एवं जैसे तपस्वी वनमें जाकर पञ्चाग्नि आदिसे अपने शरीरको तपाता है वैसे ही मेरे बन्धु-बान्धव मुझे अग्निमें दग्ध करके तपायेंगे जो मेरे लिये परम तप होगा ।'

(रोगकी भाँति ही) मृत्युरूप महान् कष्टको 'परम तप' समझनेवालेको शोक और मृत्युका भय नहीं होता । उसे मृत्युमें भी परम प्रसन्नता होती है । जैसे तपके लिये वनमें जानेवाले तपस्वीको वन जानेमें भय और बन्धु-बान्धव तथा कुटुम्बियोंके वियोगका दुःख न होकर प्रसन्नता होती है और जैसे वनमें चले जानेके बाद पापोंके नाश तथा आत्माकी पवित्रताके लिये किये जानेवाले पञ्चाग्नि-तापमें शारीरिक कष्ट शोकप्रद न होकर उत्साह, शान्ति और आनन्दप्रद होता है, वैसे ही अपनी सुदृढ़ भावनासे मृत्युको 'परम तप' के रूपमें परिणत कर देनेवाले पुरुषको भी मृत्युका भय और शोक नहीं होता । ऐसी अवस्था होनेपर ही समझना चाहिये कि उसका 'मृत्युको परम तपके रूपमें समझना यथार्थ है ।

श्रुति कहती है—

‘एतद्वै परमं तपो यद्व्याहितस्तप्यते परमं हैव लोकं जयति य एवं वेद । एतद्वै परमं तपो यं प्रेतमरण्यं हरन्ति परमं हैव लोकं जयति य एवं वेद । एतद्वै परमं तपो यं प्रेतमग्नावभ्यादधति परमं हैव लोकं जयति य एवं वेद ।’

(बृह० ५ । ११ । १)

‘ज्वरादि व्याधियोंसे पीड़ित रोगी जो उस व्याधिसे तपायमान होता है, उस कष्टको ऐसा समझे कि यह ‘परम तप’ है । इस प्रकार उस व्याधिकी निन्दा न करके और उससे दुःखित न होकर उसे ‘परम तप’ माननेवाले विवेकी पुरुषका वह रोगरूप तप कर्मोंका नाश करनेवाला होता है और उस विज्ञानसे उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, वह परम लोकको जीत

लेता है अर्थात् मुक्तिको प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार मृत्युके समीप पहुँचा हुआ मनुष्य मृत्युको प्राप्त होनेसे पूर्व इस तरह चिन्तन करे कि मरनेके अनन्तर मुझे अन्त्येष्टिके लिये लोग जो ग्रामसे बाहर वनमें ले जायेंगे, वह मेरे लिये परम तप होगा (क्योंकि ग्रामसे वनमें जाना ‘परम तप’ है, वह लोकमें प्रसिद्ध है) । जो उपासक इस प्रकार समझता है वह परम लोकको जीत लेता है । मेरे शरीरको वनमें ले जाकर लोग उसे अग्निमें जलायेंगे वह भी मेरे लिये परम तप होगा (क्योंकि अग्निसे शरीर तपाना परम तप है, यह लोकमें प्रसिद्ध है) । जो उपासक इस प्रकार समझता है, वह परम लोकको जीत लेता है अर्थात् मुक्त हो जाता है ।’

वाणी और भक्ति

(लेखक—संत श्रीविनोबा भावे)

मनुष्य वाणी अच्छी रखनेको सीखेगा तो बड़ा लाभ होगा । मनुष्यको खुदको होगा और समाजको भी होगा । तुकाराम महाराज कहते हैं—

‘एकाचीं उत्तरे । गोड अमृत मधुरें । एकाची वचनें । कडू अत्यन्त तीक्ष्णें । ऐशा देवाच्या विभूती—’

भगवान् ने विभूतियाँ निर्माण कीं । कुछ ऐसी विभूतियाँ निर्माण कीं, जिनकी वाणी मृदु, अमृत-मधुर; तो कुछ ऐसी जिनकी वाणी अत्यन्त कटु, कठोर । सब ईश्वरकी ही विभूतियाँ हैं; परंतु मनुष्यको तो वाणीका सदुपयोग करना ही सीखना है ।

जीम देहली द्वार

वाणी बहुत बड़ी वस्तु है । तुलसीरामायणमें उसका वर्णन है—‘जीह देहरी द्वार—’ जिह्वा देहली है । देहलीपर दीया रक्खा जाये, तो क्या होगा ? अंदर और बाहर दोनों तरफ प्रकाश होगा । वैसे ही मनुष्यकी जिह्वा है । बाहरकी सृष्टि और अंदरका

चित्त दोनोंको जोड़नेवाली वाणी है । वहाँ अगर राम-नाम रख दिया तो—भीतर-बाहर उजियार—अंदर-बाहर उजाला होगा । हमारे लिये वाणी—देहली द्वार—है । वहाँ रामनामकी लाल बत्ती रख दी, तो चित्त-से-चित्त जुड़ जायेगा । दो मनुष्योंको जोड़नेका काम वाणी कर सकती है और तोड़नेका काम भी कर सकती है । इसलिये वाणीका उत्तम, सम्यक्, ठीक उपयोग करना सीखना चाहिये ।

वाणीके उत्तम, सम्यक् उपयोगकी शिक्षाकी योजना अभी शिक्षणशास्त्रमें होनी चाहिये । भगवान् ने हर एकके पेटमें भूख रक्खी है, तो दूसरोंपर हमारा भार न पड़े इसलिये हाथसे काम सीखना आवश्यक है । लेकिन यह तो बाहरका कार्यक्रम हुआ । अंदरका कार्यक्रम क्या है ? वाणी सुधारना । वाणी सुधारनेसे सब सुधरता है । तुकारामजी महाराजने कह दिया—

नसे तरी मनीं नसो । परीवाचे तरी वसों—

मनमें न हो तो हरकत नहीं, लेकिन वाणीमें होने दो—फिर वाणीसे मनमें जायेगा और उसका परिणाम होगा, इसलिये सबसे महत्त्वकी वस्तु है वाणी ।

भक्तिपूर्वक गाते रहो

वाणी सत्यसे पवित्र हो, मधुर हो ।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्—सत्य बोलें, प्रिय बोलें ।

न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्—अप्रिय सत्य न बोलें ।

प्रियं च नानृतं ब्रूयात्—प्रिय असत्य न बोलें । एष

धर्मः सनातनः । इसलिये सत्य और प्रेम दोनों इकट्ठे

सधने चाहिये । लड़कियाँ लड़कोंकी अपेक्षा कम शगड़ती

हैं । शगड़ेंगी तो वाणीका अधिक उपयोग करेंगी,

लड़के हाथका उपयोग ज्यादा करेंगे । संस्कृतमें वाणी

खीलिङ्ग है और हस्त पुंलिङ्ग है । कल्पना ऐसी दीखती

है कि स्त्रियोंकी वाणी चले और पुरुषोंका हाथ चले ।

इसलिये स्त्रियोंको वाणीका उत्तम शिक्षण मिलना चाहिये ।

उत्तम मधुर संगीत आना चाहिये । सूरदास, तुलसीदास,

नामदेव, तुकाराम आदिके भजन कण्ठस्थ होने चाहिये ।

उनकी धुन लगनी चाहिये । रात-दिन मुखमें भजन

हो । धुन होती है, तो मनुष्य उसीमें रमता है । संगीत-

शास्त्रके ज्ञानकी आवश्यकता नहीं । लेकिन भावपूर्वक,

भक्तिपूर्वक भजनका अर्थ ध्यानमें लेकर उसमें तन्मय

हो जायें । मीराबाई उत्तम गाती थी । उसको किसीने

संगीत सिखाया नहीं था । वह प्रेम-भक्तिसे गाती थी ।

ऐसा गाना मैंने तो बिल्कुल बचपनसे सुना है । ऐसा

गाना सुननेको मिलना एक भाग्य है ।

हमारी माँ जो गाने गाती थी, वे सब भगवान्‌के

गाने होते थे । अत्यन्त प्रेमसे और भक्तिसे गाती थी ।

मुझे याद है, उसकी आवाज बहुत मधुर थी । परंतु

उसकी विशेषता यह थी कि वह बिल्कुल तन्मय होकर

गाती थी ।

नामा गहिवरें दाटला । पूर धरणीये लोटला—

नामदेव गद्गद हो गया कीर्तन करते-करते और

आँसुओंकी बाढ़ भूमिपर बहने लगी । हमारी माँ

संसारमें थी, लेकिन उसके चित्तमें, उसकी वाणीमें

संसार नहीं था । उसके मुखसे कभी कटु शब्द सुना

नहीं । भगवान्‌की मूर्तिके सम्मुख जब बैठकर गाने

लगती थी, तब उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने

लगती थी । मैं कहता यह था कि स्त्रियोंके शिक्षणमें

मैं ज्ञानसे भी भक्तिको महत्त्व देता हूँ । ज्ञान भी

चाहिये लेकिन भक्ति मुख्य चीज है और आज दुनिया-

को ज्ञानसे भी भक्तिकी ज्यादा आवश्यकता है । (मैत्री)

कैसे वचन बोलें ?

दुःख-अहित-उद्वेगकर, कटु, मिथ्या, निस्सार ।

अपमान-प्रद, हो सहज जिनसे वैर-प्रसार ॥

ऐसे वचन न बोलिये कभी कहीं भी भूल ।

जिनके सुनते ही चुभे कठिन हृदयमें शूल ॥

सत्य मधुर हितकर वचन वाणीका शृङ्गार ।

सुनते ही हो हृदयमें जिनसे सुख-संचार ॥

मङ्गल वचन उचारिये विनय भरे, सत्-सार ।

जिनसे हित-सुख-प्रेमका हो सबमें विस्तार ॥

मनन-माला

(लेखक—ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

[गताङ्क-पृष्ठ ९०१ से आगे]

१४. शरीरमें तीन भाग हैं—शरीर, चित्त और आत्मा । चित्त इच्छा करता है शरीरके लिये, अपने लिये और आत्माके लिये । तथापि नाम लेता है आत्माका । जैसे मन्दिरमें स्थित भगवान्की मूर्ति न कुछ खाती है, न पीती है तथापि पुजारी कहते हैं कि भगवान् भूखे हैं, भगवान्को भोग लगाना है । वह सारा खान-पान मूर्तिके आगे रखकर फिर ले लेता है और स्वयं उपयोग करता है । इसी प्रकार इस शरीरमें आत्मा भगवान्की मूर्तिरूप है और चित्त मुख्य पुजारी है तथा शरीर मन्दिर है । आत्मा कुछ खाता-पीता नहीं, कुछ भोगता नहीं । मन्दिरकी अचल मूर्तिके समान विराजता है । उसका नाम लेकर चित्त सारे भोगोंकी इच्छा करता है, सम्पादन करता है और भोगता है । आत्मा नित्यमुक्त और अविनाशी तथा अविकारी है तथापि चित्त आत्माका नाम लेकर कहता है कि आत्मा बद्ध है । चित्तमें तीन प्रकारकी इच्छाएँ उठती हैं—(१) शरीर-पोषणकी, (२) मौज उड़ानेकी तथा (३) मुक्तिकी । शरीर-पोषण तो प्रारब्धा-नुसार होगा, इसके लिये चित्तको बारंबार समझावे कि इसकी चिन्ता छोड़ दे । आत्मा तो नित्यमुक्त है, यह उसे समझा-कर मुक्तिकी चिन्ता छोड़े और मौज मात्रका त्याग करे । चित्तको भोगोंमें रमण करनेसे सदा रोके, अर्थात् भोगकी चिन्ताका त्याग करे और सदा आनन्दमें रहे । चित्तमें आत्माको रमण करावे, आत्माकी रट लगावे । जगत्में वस्तुतः चिन्तनका कोई विषय नहीं है तथापि चित्त व्यर्थ ही चिन्तासे व्याकुल रहता है । जबतक चिन्ता रहती है तबतक चित्तको चैन नहीं मिलता और आत्मानन्दका अनुभव नहीं होता । अतएव अनेक युक्तिसे चित्तको समझाकर चिन्ता-मुक्त करे । चिन्तासे क्लेश उठानेसे कोई सुख या सच्चा फल नहीं होता । इसलिये इस निरर्थक और दुःखदायी चिन्ताके क्लेशको त्यागनेके लिये ही शास्त्र कहते हैं । कर्म करनेका शास्त्र निषेध नहीं करते । चिन्ता, व्याकुलता और क्लेश—जिनका दुःखके सिवा और कोई परिणाम नहीं है, इनको त्याग देनेका उपदेश संत और शास्त्र करते हैं । जब कोई प्रसङ्ग पड़े तो मनसे पूछो कि इसका क्या उपाय है ? जैसे अपना जवान पुत्र मर जाय तो चित्तमें क्लेश होता है, उस समय चित्तसे पूछना

चाहिये कि इस मृत पुत्रको जिलानेका कोई उपाय है ? क्या रोने-कलपनेसे वह जी जायगा ? तब वह कहेगा कि नहीं । तो जिस क्रियाका दुःखके सिवा दूसरा फल नहीं होता, उस क्रियाको न करे । इस दृष्टान्तद्वारा जीवनके दूसरे प्रसङ्गोंको भी समझे । उद्यम करने, पुरुषार्थ और प्रयत्न करनेकी मनाही नहीं है । परंतु चित्तको ऐसा अभ्यास कराये, जिससे वह क्लेश, व्याकुलता और उद्वेगमें न पड़े । जिसका चित्त सदा शान्त रहता है वह सदा मुक्त है । जिसका चित्त अशान्त है वह सदा बद्ध है । अतएव जिस प्रकार चित्त सदा शान्त रहे, इसका अभ्यास करता रहे ।

१५. और कुछ लोग जो कहते हैं कि कुछ भी न करे, विल्कुल क्रियाहीन होकर बैठा रहे । यह ठीक नहीं, कोई भी आदमी क्षणमात्र भी क्रिया बिना नहीं बैठ सकता । केवल सुषुप्ति और समाधिमें शरीर और चित्त क्रियाहीन रहते हैं । शेष शरीरकी प्रकृतिके अनुसार शरीरको कर्म करना ही पड़ता है । वह रोकनेसे नहीं रुकता । स्थूल शरीरको दृष्टपूर्वक चेष्टा-रहित रख सको तो मन अपना चर्खा चलाये बिना नहीं रहता और यदि मन संकल्प-विकल्प-रहित हो जाय, तो सदा आनन्द ही रहे । बहुत मेहनत करनेपर मनको संकल्परहित किया जाता है । जबसे शरीरने जन्म लिया है तबसे वह एक प्रकारकी प्रकृति लेकर उत्पन्न हुआ है । जिस प्रकृतिके परमाणुसे वह बना है और जो संस्कार उसमें है, उसके अनुसार उसे क्रिया करनी ही है । जो क्रिया करता है, उसका फल भोगता है, तदनुसार जन्म-मरण चला ही करता है । इसका उपाय यह है कि क्रिया तो चित्तके साथ शरीर और इन्द्रियाँ करती हैं और मैं कहनेवाला आत्मा तो सबका असङ्ग साक्षी है । जो कर्म करता है, वह फल भोगता है । मुझ आत्मामें कर्त्तापन नहीं है और भोक्तापन भी नहीं है, इस प्रकार अभ्यास करके मैं असङ्ग आत्मा अकर्त्ता और अभोक्ता हूँ, यह ज्ञान सदा जाग्रत् रखकर शरीरसे कर्म करता रहे । इसके लिये नाटकके पात्रोंका दृष्टान्त लो । नाटकमें अभिनेता स्त्रीका पार्ट लेता है, फिर राजा हो जाता है, यह सब पार्ट करनेवाले अभिनेताका उस पार्टके साथ जैसे कोई सम्बन्ध नहीं होता, इसी प्रकार आत्माका शरीरके पार्टके

साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। राजाका अभिनय करनेवाले पात्रको उस पार्टसे कोई लाभ नहीं और भिखारीका पात्र बननेवालेको कोई सच्चा दुःख नहीं होता। इसी प्रकार आत्माने शरीर धारण किया है, इस कारण उसका अभिनय करते हुए अपनेको उस शरीरसे असङ्ग समझे। आत्मा जन्मता नहीं, मरता नहीं, बूढ़ा नहीं होता। जो कुछ होता है वह सब शरीरको होता है। यह आत्मज्ञान लोकको टगनेके लिये नहीं है और एक बार बाँचने या मुननेसे यह हो भी नहीं जाता। यदि चित्त एक क्षण भी आत्मचिन्तन बिना रहे तो वह चित्त अनर्थ करता है। इसलिये यह अभ्यास करनेवाला साधक ध्यानपूर्वक चित्तको आत्मचिन्तनमें लगाये रखे और शरीरसे निज धर्मरूप कर्मोंको करता हुआ सदा चित्तको आत्मचिन्तनमें रखे। आत्मचिन्तनमें साधक जितना प्रमाद करेगा, उतना ही उसका पतन होगा। ऐसा कभी न समझे कि 'मैं तो आत्मज्ञानी हो गया, मैं जो करता हूँ उससे मेरा सरोकार नहीं।' ऐसा सोचनेवालेको आत्मज्ञान हुआ ही नहीं होता। यह तो भावी अनर्थका सन्निपात होता है। आत्मज्ञानीसे कभी पाप होता ही नहीं। उसकी सारी क्रियाएँ शान्त और पुण्यमय, सुख-शान्ति प्रदान करनेवाली होती हैं। इसलिये मनको शान्त रखकर मनसे आत्मचिन्तन करते हुए शरीरसे प्रकृतिके अनुसार कर्त्तव्य समझकर कर्म करता रहे।

१६. चित्तको शान्त रखनेकी खास जरूरत है। शान्त चित्त ही मुक्तिका सच्चा साधन है। जैसे हमें नहीं बोलना होता है तो मौन रहते हैं और तदनुसार समय-विशेषमें मौन बैठे रहते हैं। उसी प्रकार एकान्तमें बैठकर चित्तको संकल्परहित करनेकी आदत डालनी चाहिये। प्रतिदिन थोड़ी-थोड़ी देरतक यह अभ्यास करे। इस प्रकार बैठनेके पहले चित्तको पूछे कि उसको कुछ विचार करना है तो कहे और कर ले। विचार हो तो कर ले। फिर कहे कि अब इतने समयतक बिना कोई विचार किये बैठना है। इसलिये शान्तिसे बैठो। जैसे किसी दूसरेको कहा जाता है, वैसे चित्तको कहकर चित्तके ऊपर लक्ष्य रखकर शरीरको हिलाये-डुलाये बिना शान्त बैठ रहे। फिर भी चित्त कोई विचार खड़ा कर दे, तो कहे कि हिलो-डुलो मत। विचारको बंद

करो और शान्त बैठे रहो। इस अभ्यासको धीरे-धीरे बढ़ाये और इसे विक्षेपरहित एकान्त स्थानमें करे। इस अभ्याससे थोड़े ही दिनोंमें पूर्ण शान्ति आ जायगी।

१७. स्यावर-जङ्गम सब प्राणियोंमें आत्मा है। देव-दानव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदिके भी शरीरमें आत्मा है। आत्माके होनेसे ही शरीर सब क्रिया कर सकता है। आत्मा सब शरीरोंमें एक-सा है। आत्मा स्त्री नहीं है, पुरुष नहीं है, नपुंसक नहीं है। इसकी न कोई जाति है न कोई धर्म है। आत्मा न छोटा है न बड़ा है, इसका कोई रूप-रंग नहीं है। आत्मा निराकार, निर्विकार, अजर, अमर और अनन्त है। सदा एकरस रहता है। शरीर अनेक हैं, परंतु आत्मा सब शरीरोंमें एक ही है, यह बात तुरंत समझमें नहीं आती। कुछ सम्प्रदायवाले आत्माको अनेक मानते हैं। आत्मा जन्म-मरण, विकार और विनाशसे रहित है, इतनी बात तो समझमें आती है न? तथा वह आत्मा शरीरसे पृथक् मैं ही हूँ, इन दोनों बातोंको निश्चय कर रखो। यदि किसी सम्प्रदायका आग्रह हो तो उसे मनसे निकाल डालो और अपनी बुद्धिसे विचार करके आत्माके स्वरूपका निर्णय करो। 'जन्म, जरा, मृत्यु और विकारसे रहित आत्मा असङ्ग है और वह आत्मा मैं हूँ।' इतना निश्चय हो जानेके बाद, वह आत्मा सब शरीरोंमें एक है, अनेक नहीं—इसको अभ्यास-द्वारा समझे, अभ्यासमें कोई उतावली न करे। आत्माके जिस स्वरूपका निश्चय हो, तदनु रूप वासनाका त्याग करता जाय। इच्छारहित होता जाय और जिस किसीके साथ कभी विवाद न करे। अपनी आत्मा कैसी है? जिसकी बुद्धिमें जैसा निश्चय हो वही आत्मा है। जन्म, जरा, मरण, विकार और विनाशसे रहित मैं असङ्ग आत्मा हूँ—यह चिन्तन और मनन बारंबार करता रहे।

१८. सबमें आत्मा है, यह जानकर अपने सम्पर्कमें आनेवाले प्राणीमात्रकी सेवा करे। इस सेवाके द्वारा आत्माका साक्षात्कार होगा। प्राणीमात्रको दुःख न हो, ऐसा बर्ताव करे और जिस प्रकार सुख हो, वैसा करे।

१९. मैं आत्मा हूँ और सबमें आत्मा समानरूपसे रहता है, यह कहना सहज है, परंतु आचरणमें लाना कठिन है। पहले तो यह बुद्धिमें बैठना कठिन है। बुद्धिमें इसको स्थिर

करनेके लिये पहले बुद्धि शुद्ध और निर्मल होनी चाहिये। जिस प्रकार साफ वस्त्र पर रङ्ग ठीक-ठीक चढ़ता है, उसी प्रकार शुद्ध चित्तमें ही आत्माका ज्ञान स्थिर होता है। चित्तशुद्धिके लिये सदाचार, स्वधर्माचरण, इन्द्रियनिग्रह, सत्य, अहिंसा, सत्सङ्ग और विचार तथा विवेककी आवश्यकता है। जगत्में चेतन वस्तु एक है। उसको चाहे आत्मा कहो, परमात्मा कहो, ईश्वर कहो या जैसा जँचे, वैसा कहो। सबके शरीरमें रहनेसे वह आत्मा कहलाता है। बड़े-से-बड़े देवता, बड़े-से-बड़े दानव, बड़े-से-बड़े मानव तथा छोटे-से-छोटे देव-दानव-मानव सभीके एवं पशु-पक्षी आदि जीवोंके—सभीके पृथक्-पृथक् शरीरोंमें एक ही आत्मा है। सबका शरीर उसमें रहनेवाले आत्माके सामीप्यसे ही क्रिया कर सकता है और जिस शरीरमें जो शक्तियाँ काम करती हैं, वे आत्मासे प्राप्त हुई होती हैं। आत्मा कुछ करता नहीं, कुछ भोगता नहीं, तटस्थ रहकर देखा करता है। शरीरसे स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों शरीरोंको समझना चाहिये। मैं यह शरीर नहीं बल्कि आत्मा हूँ, यह चित्तको समझना कठिन है, सहज नहीं। इसके लिये बहुत प्रयत्नकी आवश्यकता है। अब यह विचारना है कि आत्मज्ञानकी प्राप्ति के लिये क्या करना चाहिये ?

२०—ज्ञान तो ज्ञानीके पास ही मिलता है। ज्ञानी वे हैं जिन्हें आत्माका साक्षात्कार हुआ हो, जो ब्रह्मनिष्ठ हों। उनकी सेवा करनेसे, उनसे विनय-विवेकयुक्त प्रश्न करनेसे वे दयालु, ज्ञानी महात्मा सेवासे प्रसन्न होकर ज्ञान देते हैं; ऐसे ज्ञानी सहज ही नहीं मिलते। पुस्तक बाँचनेसे, व्याख्यान या आख्यान सुननेसे ज्ञान नहीं होता। यह सब चित्तशुद्धिके लिये आवश्यक है, परंतु ज्ञान तो ब्रह्मनिष्ठ संतसे ही मिलता है। ऐसे संत जबतक न मिलें, तबतक परमात्माके नामका जप करे, सदाचारका पालन करे और उद्यम करे।

२१—आत्माका कोई आकार नहीं है। आत्मा कहो या परमात्मा कहो। चेतन आत्मा एक, अखण्ड, व्यापक और निराकार है। तथापि भक्तोंकी प्रार्थनासे साकार दिव्यदेह धारण करते हैं, ऐसे सगुण, साकार परमात्माकी किसी भी मूर्त्तिकी

उपासनासे तथा उसके नामका जप करनेसे चित्तशुद्धि जल्दी होती है। शिव, विष्णु आदि देवता सभी भगवत्स्वरूप माने जाते हैं। वे उपासकको भोग और मोक्ष—दोनों प्रदान करनेमें समर्थ हैं। इसलिये जिस देवतामें श्रद्धा हो, उस देवताका जप करे तथा उसकी भक्ति करे। गृहस्थाश्रमीके लिये यह मार्ग बंधुत सहज है। भोगकी इच्छामात्रका त्याग साधकको तुरंत हो जाय, यह बहुत कठिन है। मनमें अनेक इच्छाएँ होती हैं, जीवनमें अनेक विपत्तियाँ आती हैं। साधक निष्ठापूर्वक जिस देवकी चाहे, आराधना करे। सब देवताओंके शरीर पृथक् हैं, परंतु अंदर एक ही आत्मा है। देवताओंमें छोटाई-बड़ाई नहीं होती; अतएव एक देवताको निश्चय करके अचल श्रद्धासे जप और ध्यान करे। जितनी ही अधिक श्रद्धा होगी, उतना ही शीघ्र फल प्राप्त होगा। आराधना करते समय भोगकी इच्छा न करे तो यह श्रेष्ठ है। फिर भी सुखकी प्राप्ति के लिये या दुःखकी निवृत्ति के लिये इच्छा हो तो भी उसी अपने इष्ट-देवसे प्रार्थना करे और भगवान्से कहे कि 'हे प्रभो ! मेरे मनको भोगोंसे हटाकर अपनेमें लीन करो और मुझको मुक्तिका मार्ग दिखाओ।' प्रार्थनामें बहुत बल है। जो कुछ कष्ट हो सो अपने इष्टदेवसे कहे। साथ ही मनको समझाये कि मुक्तिदाता भगवान्की उपासना करके भोग माँगना मूर्खता है। इस प्रकार मनको रोकता रहे और इष्टदेवकी आराधना करता रहे। सदाचार तो होना ही चाहिये। ऐसा करनेसे इष्टदेव सारी सुविधा कर देंगे। अथवा प्रकट होकर ज्ञान प्रदान करेंगे या संत-साधुको प्रेरित करके उनसे भेंट कराकर उनके द्वारा ज्ञान प्रदान करेंगे, या स्वप्नमें आकर ज्ञान देंगे। बिना किसी कामनाके, केवल मुक्तिके लिये उपासना करनेसे जल्दी फल प्राप्त होता है, चित्त निर्मल होता है या ज्ञानकी प्राप्ति होती है। चित्त निष्काम भक्तिके निर्मल होता है। अतएव चित्तमें जिस देवके प्रति श्रद्धा हो, उस देवताकी निष्काम भक्ति करे। देवताओंके शरीर पृथक्-पृथक् हैं, परंतु चाहे कोई भी देवता हो, आत्मा तो उसमें एक ही है और उस आत्माकी सत्तासे ही सारे शरीर अनेक प्रकारके कर्म करते हैं। (क्रमशः)

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः

(लेखक—श्रीम० त्रि० भट्ट)

मनुष्यकी सृष्टि करके प्रभुने कलाकी सीमा दिखला दी है । मनुष्यके शरीरमें उन्होंने कैसी-कैसी अद्भुत वस्तुएँ डाल दी हैं ? मन, बुद्धि, हृदय, मस्तिष्क, समझनेकी शक्ति—ये सारी सामग्रियाँ मनुष्यके शरीरमें इकट्ठी कर दी हैं । इन्द्रिय-शक्ति भी जितनी मनुष्यमें है, उतनी और किसी प्राणीमें नहीं है । अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्यके शरीरमें अनेक विशेषताएँ हैं । मनुष्य ही सृष्टिमें ईश्वरकी अति प्रिय वस्तु है । अतएव अनुभवी संतोंका कहना है कि मनुष्य अपनी सारी शक्ति लगाकर नरसे 'नारायण' अथवा जीवसे 'शिव' बन सकता है । जीव तो शिवरूप है ही । केवल अविद्याके कारण इसका शिवभाव लुप्त हो गया है और वह जीव-भावकी प्रधानता भोग रहा है । बकरोंके झुंडमें पाला-पोसा गया सिंहशावक अपनेको बकरा ही मानता है, इसी प्रकार शिवरूप जीव संसारकी मायामें पड़कर अपने सच्चे स्वरूपको भूलकर मायाके राज्यमें भूला-भटका फिरता है और अपने शिव-स्वरूपको भूल गया है ।

एक शिष्यने गुरुसे पूछा कि 'महाराज ! जीव स्वयं ईश्वर है, इसका प्रमाण क्या है ? जीव तो सामान्य है और ईश्वर महान् है । जीव अल्पज्ञ है और ईश्वर सर्वज्ञ है, फिर वह कैसे कह सकते हैं कि दोनों एक ही हैं ?'

गुरु महाराज बोले कि 'यह मैं तुमको समझाता हूँ । परंतु अभी तुम इस कमण्डलुमें मेरे लिये गङ्गाजल ले आओ ।' शिष्य कमण्डलुमें गङ्गाजल भरकर लाया । तब गुरुने कहा—'बच्चा ! यह गङ्गाजल नहीं है । मैंने तो तुम्हें गङ्गाजल लानेके लिये कहा था ।' शिष्यने कहा—'महाराज ! यह गङ्गाजल ही है । मैं अभी गङ्गाजीसे भरकर लाया हूँ ।' गुरुने कहा—'यदि यह गङ्गाजल है तो गङ्गाजी-जैसी धारा इसमें नहीं है, गङ्गाजीमें लोग नहाते हैं, इसमें नहाते नहीं दीखते । गङ्गाजीमें नौकाएँ चलती हैं, इसमें कोई नौका चलती नहीं दीखती । गङ्गाजीमें मगर, मछली आदि जलचर प्राणी विहार करते हैं, वैसे जलचर इसमें नहीं दीखते । इसलिये यह गङ्गाजल नहीं है ।' शिष्यने कहा—'महाराज ! गङ्गाका पात्र बहुत विशाल है, इसी कारण उसमें ये सब रहते हैं, यह कमण्डलु तो नन्हा-सा पात्र

है, इसमें ये सब कैसे रहेंगे ? परंतु गङ्गाजीमें जो जल है, वही जल यह भी है ।' गुरुने कहा—'बच्चा ! इसी प्रकार ईश्वर विराट् है और सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् तथा सर्वज्ञ है; और जीव नन्हे पात्रमें है, इसलिये मर्यादित है, सीमित है । परंतु वस्तुतः यह ईश्वर ही है । यदि जीवको अपने शुद्ध स्वरूपका भान होता तो वह ईश्वर ही था, ऐसी प्रतीति होती है । अग्निमेंसे निकली चिनगारी अग्निरूप ही है । उसी प्रकार ईश्वरसे निकला अंश, अग्निकी चिनगारीकी भाँति ईश्वर ही है । अन्तर इतना ही है कि ईश्वर महान् है और जीव अल्प है । परंतु अविद्याके आवरणके कारण जीव पामर बन गया है । अविद्याका आवरण दूर होनेपर इसको अपने स्वरूपका भान होता है । पानीके ऊपर जमी काईको दूर हटानेसे पानी मिलता है, उसी प्रकार आवरणको दूर कर दें तो ईश्वरका दर्शन हो सकता है । इस अविद्याको दूर करनेके लिये अनन्त ज्ञानियों और महर्षियोंने अनेकानेक उपाय बतलाये हैं, उनमें मनोनिग्रहके ऊपर सबसे अधिक जोर दिया गया है ।

पञ्चमहाभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशके ऊपर ईश्वरकी सत्ता है । तथापि हम आज देख रहे हैं कि वैशानिकोंने इन पाँचोंके ऊपर अपनी प्रभुता जमा रक्की है । इससे यह प्रतीत होता है कि इस जीवमें ईश्वरी शक्ति है । परंतु जीव स्वयं अपनेको अल्पज्ञ, शक्तिहीन और पामर मानकर निष्क्रिय बना रहता है ।

जो पुत्र पिताको अपने समान या अपनेसे सवाया दीखता है, वह अधिक प्रिय होता है । उसी प्रकार ईश्वरको भी अपने-जैसा शक्तिशाली पुत्र, अर्थात् पुरुषविशेष प्रिय होता है और उसीके ऊपर प्रभुकी कृपा अवतरित होती है ।

मनुष्यको कसौटीपर कसनेके लिये ईश्वरने जगत्में अनेक प्रलोभन डाल रखे हैं । इन प्रलोभनोंको दूर हटाकर यदि मनुष्य अपने ध्येयपर डटा रहे तो वह परमपदको पा सकता है । परंतु अधिकांश मनुष्य मान बैठे हैं कि इस संसारमें आकर मनुष्यको सिर्फ खाना, पीना और मौज उड़ाना है । इसीमें मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है । यदि मनुष्य-जन्मका यही हेतु हो तो, यह तो सभी पशु-पक्षी और

संख्या ६]

जीव-जन्तुओंमें भी है। फिर मनुष्यजन्मकी महत्ता क्या है? परंतु चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करते-करते मोक्षके द्वार-स्वरूप आर्यदेश और सब सामग्रीकी सुलभताके साथ मनुष्यजन्म प्राप्त हुआ है। इसमें अवश्य कोई हेतु निहित है। परंतु इस अमोघ मानव-जन्मको आज मनुष्य व्यर्थ नष्ट कर रहा है। ईश्वरके द्वारा इसके लिये नियोजित मर्यादाका इसने यथेच्छ उल्लङ्घन किया है। यदि मर्यादामें रहकर गन्तव्य स्थानकी प्राप्तिका प्रयत्न नहीं करता तो उसे अपने ध्येयकी प्राप्ति नहीं हो सकती। नदी यदि अपने कराररूपी मर्यादाको तोड़कर स्वेच्छा विहार करे तो कितने ही गाँवोंको मटियामेट कर दे, खेती-बारी बर्बाद कर दे, इतना ही नहीं, इसके साथ ही वह अपने प्रियतम सागरकी प्राप्तिसे वञ्चित रह जाय। अतएव इस मर्यादाके पालनमें यत्नशील रहकर वह अपने गन्तव्य स्थानमें सुखपूर्वक पहुँच जाती है। यही स्थिति मनुष्यकी है। मनुष्य ईश्वरको पानेके लिये शास्त्र-निर्दिष्ट मर्यादाका यथार्थ पालन करके नियत पथमें चलकर प्रसुप्त पहुँच सकता है, भव-भ्रमणको निवारण करके अगाध अविनाशी सुख-सिन्धुमें निमज्जित होकर तदाकार हो सकता है। परंतु अविद्या और मोहके कारण शास्त्र और सपुत्रोंके द्वारा निर्दिष्ट मर्यादा इसे नहीं दीखती। संसारका क्षणभङ्गुर भोग-सुख इसे बहुत प्रिय लग रहा है, संसारके प्रलोभनोंमें यह डूबा हुआ है। इसका मुख्य कारण इसका बहिर्मुख मन है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

संसारका बन्धन, भवाटवीका भ्रमण भी मनके ही द्वारा होता है तथा परमपदकी प्राप्ति, मोक्ष-लाभ भी मनके द्वारा ही होता है। इसलिये मन ही इसमें कारणभूत है। ऐसा शास्त्र कहते हैं। मनुष्यके बन्ध और मोक्षका कारण मन है। इस मनको सुसंस्कृत बनाया जाय तो यह मोक्ष अर्थात् परम शाश्वत सुख प्रदान करता है और यदि यह कुसंस्कार-युक्त रहे तो इस भवसागरके दुःखदायी भँवरमें, जन्म-मृत्युके चक्करमें डाले रखता है।

हम जानते हैं कि संसारकी तृष्णाका त्याग मोक्षप्राप्तिके लिये उपयोगी साधन है। परंतु फिर भी अधिकांश मनुष्य तृष्णाके मिथ्या माधुर्यका त्याग नहीं करते। इसका कारण यह है कि वे अपने मनके दास हैं। मन जैसे नचाता है वैसे नाचते हैं। हम संसारके क्षणिक और दुःख भोग-सुखरूपी

मृगमरीचिकाके पीछे तृष्णाके वश होकर दौड़ रहे हैं। हम हृदयसे जानते, देखते और अनुभव करते हैं कि तथाकथित सांसारिक सुख नाशवान् और क्षणिक है, तथापि हम अपने मनको संसारके राग-गंघोंसे हटाकर अपने ध्येयमें नहीं लगा सकते, यह हमारी लज्जाजनक दुर्बलता है। हमारी आज्ञाकी दुर्दशाका मुख्य कारण हमारा यह मन ही है। हम जिस कार्यको अपने अन्तःकरणमें बुरा समझते हैं और करना नहीं चाहते, वह कार्य भी हमारा कुसंस्कारी मन हमसे बलपूर्वक कराता है। मनुष्यके बुरा या भला बननेका कारण उसके कर्म हैं और कर्मका सबसे बड़ा आधार मन है।

कर्म दो प्रकारसे होते हैं। कुछ कर्म अकेला मन ही करता है और कुछ कर्म मन इन्द्रियोंकी सहायतासे करता है। मनन, चिन्तन, भावना और स्वाध्याय आदि कार्य अकेला मन ही कर सकता है। जब कि उठना, बैठना, जाना, आना, बोलना, देखना, सुनना, खाना-पीना इत्यादि काम इन्द्रियोंकी सहायतासे होते हैं। ऐसे कार्य इन्द्रियोंकी सहायताके बिना नहीं हो सकते। इन्द्रियाँ बहिर्मुख और जब होनेके कारण अपनी इच्छा पूरी करनेके लिये मनके पीछे-पीछे भटकती हैं। अतएव इन्द्रियाँ मनके वशवर्ती हो गयी हैं। हमारे छोटे-बड़े सब कार्योंका सूत्रधार मन है, इसी कारण शास्त्रकार और ज्ञानी महर्षियोंने मनोनिग्रहपर बड़ा जोर दिया है। इन्द्रियाँ मनरूपी राजाकी नर्तकी हैं। मनकी मर्जीसे वे नृत्य करती हैं और मनको प्रसन्न रखती हैं तथा स्वयं भी तुच्छ आनन्द प्राप्त करती हैं। वस्तुतः मनको जीते बिना इन्द्रियाँ जीती नहीं जा सकतीं।

मनको निरंकुश छोड़कर यथेच्छ विहार करने देना और केवल इन्द्रियोंपर काबू रखना वञ्चनामात्र है। जबतक मन काबूमें न हो, इन्द्रियोंपर अंकुश रखनेका प्रयत्न विशेष लाभदायक नहीं होता। सारे उपद्रवोंका मूल तो मन है। वृक्षकी डाली और पत्ते काट डालनेसे वृक्ष नष्ट नहीं होता, वह पुनः प्रलूणित हो उठता है। परंतु डाली और पत्तेकी ओर न देखकर यदि केवल मूलको नष्ट कर दिया जाय तो वृक्ष स्वयं नष्ट हो जायगा। अतएव मनका निग्रह ही सच्चा निग्रह है, यही सच्चा संयम है। राजा वशमें हो जाय तो उसकी सेना अपने-आप वशमें हो जाती है, उसके लिये प्रयत्न नहीं करना पड़ता। किसी दुष्ट मनुष्यकी दुष्टताका कारण भी उसका मन होता है और किसी महापुरुषकी महानताका कारण भी उसका मन होता है। एकका मन

कुसंस्कारपूर्ण होता है और दूसरेका मन सुसंस्कृत होता है। एक तो मनका गुलाम होता है और दूसरा मनको अपने अधीन रखता है अर्थात् मन उसका गुलाम होता है।

मनुष्यके मनमें दो प्रकारकी शक्तियाँ हैं। वे मनुष्यको उन्नतिके शिखरपर भी ले जाती हैं और अवनतिके भयंकर दुःखद गर्तमें भी डाल सकती हैं।

पारा कच्चा हो तो वह अनिष्टकारक होता है और यदि शुद्ध किया हो तो वह हितकर होता है। कच्चे पारेसे मनुष्यका जीवन नष्ट होता है और संस्कार किये हुए शुद्ध पारेको आयुर्वेदमें चमत्कारिक औषधके रूपमें वर्णन किया गया है। मनकी स्थिति भी पारा-जैसी है। संस्कारहीन मन मनुष्यके अमूल्य जीवनको नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है और सुसंस्कृत मन मनुष्यके उद्धारका कारण बनता है।

अब प्रश्न यह होता है कि मनको सुसंस्कृत कैसे बनायें ? क्या अपनेमें यह शक्ति नहीं है ?—नहीं, शक्ति तो है; परंतु उसका हम उपयोग नहीं करते। यदि कोई यह कहे कि मन तो हमारे अधीन है, फिर हम इसके गुलाम कैसे हैं ? इसका उत्तर यह है कि घोड़ा अपने सवारके कब्जेमें होता है, परंतु यदि बिना लगामके सवार घोड़ेपर सवारी करे तो वह घोड़ेके अधीन हो जाता है और सुरक्षित नहीं रहता; फिर तो वह घोड़ा जहाँ ले जाता है, वहीं उसको जाना पड़ता है। यही हाल मनका है।

एक बुढ़िया माँके मनमें एक बार विचार आया कि मैं दूसरी सब सवारियोंपर तो बैठ चुकी हूँ, घोड़ेपर भी चढ़ चुकी हूँ, पर ऊँटकी सवारी मैंने कभी नहीं की। देवात् एक बार किसी पर्वके दिन वह बुढ़िया माँ तीर्थमें स्नान करके झोलेमें वस्त्र डालकर, हाथमें जल भरा लोटा लेकर घर लौट रही थी। रास्तेमें उसने एक पेड़के नीचे एक ऊँटको बैठे देखा और बहुत दिनका मनमें दवा हुआ विचार प्रकट हो आया। बहुत दिनोंसे ऊँटपर बैठनेका विचार कर रही हूँ तो आज क्यों न इस ऊँटपर बैठकर घर जाऊँ ? ऐसा सोचकर बुढ़िया माँ उस ऊँटपर बैठ गयी। जैसे ही बुढ़िया ऊँटपर बैठी कि वह ऊँट अपने स्वभावके अनुसार खड़ा हो गया और मनमाने रास्तेपर चल पड़ा। बुढ़िया माँ घबरायी। ऊँटको कैसे रोक्कूँ और कैसे इसे फिरसे बैठऊँ ? यह बुढ़िया माँको शत न था। ऊँटके नकेल भी नहीं बँधी थी, कोई साधन भी पास न था। इसलिये बुढ़िया

माँ निरुपाय थी। ऊँट जंगलकी ओर चलने लगा। रास्तेमें किसी जान-पहचानवाले एक आदमीने पूछा, 'माँजी ! कहाँ जा रही हैं ?' तब बुढ़ियाने उत्तर दिया, 'भाई ! जहाँ ऊँट ले जाय वहाँ।'।

हमारी स्थिति भी उस बुढ़िया माँके-जैसी है। हम मनके ऊपर सवार हैं; परंतु मनको लगाम नहीं है तथा इसको वशमें करनेकी कला भी हाथमें नहीं है। इसलिये हमको मन जहाँ ले जा रहा है, वहीं हम चले जा रहे हैं। अपनी इच्छा तो घर जानेकी है—परम पदको प्राप्त करनेकी है। परंतु मनरूपी ऊँटको रोकना नहीं आता। इस कारण वेकाबू मनपर सवार होकर हम लाचार हो गये हैं। मन अपने अधीन है, परंतु जन्मसे ही निरंकुश—बेलगाम होनेके कारण पूर्णतः उद्दण्ड और उन्मत्त होकर हमारे ऊपर चढ़ बैठा है। यदि हमने शुरूसे ही इसके ऊपर अंकुश रक्खा होता तो यह ऐसा प्रचण्ड स्वेच्छाचारी बनकर हमें परेशान न करता और इसका निग्रह दुःसाध्य न बन जाता।

प्रारम्भमें ही थोड़े प्रयत्नसे जिस मनको हम परम हितकारी मित्र बना सके होते, उसीको हमने अपनी असावधानीसे ऐसा शत्रु बना लिया है। अब तो 'जब जागे तभी सबेरा' नीतिके अनुसार प्रयत्न शुरू कर देना चाहिये। शत्रु जितना बलवान् हो, उससे अधिक बलवान् बननेकी आवश्यकता है। विद्युद्गतिसे भी तीव्रगामी मनको रोकनेमें अत्यन्त बलकी आवश्यकता है। अधिक जाग्रति और लगनकी जरूरत है।

सारी सिद्धियोंका मूल 'मनःसंयम'में है। परंतु वह केवल साधारण या नाममात्रके पुरुषार्थसे प्राप्त होनेवाला नहीं है। इसके लिये प्रबल पुरुषार्थकी तथा योग-युक्तिकी आवश्यकता है। विकराल जंगलके जीवको वशमें करनेके लिये जैसे तीव्र उपायकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मनोनिग्रहके लिये भी तीव्र उपाय जरूरी है।

मनको पहले शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच विषयोंके चिन्तनसे विरत करके शुभ चिन्तनमें लगाना चाहिये। विषयोंकी असारताका पाठ इसको देते रहना चाहिये। फिर धीरे-धीरे विषयोंसे इसमें वैराग्य उत्पन्न कराना चाहिये। संसाररूपी घोर वनमेंसे निकालकर भगवच्चिन्तन, तत्त्वविचाररूपी वृक्षके धड़में इसको दृढ़तापूर्वक बाँध देना चाहिये और बुद्धिरूपी अंकुशके द्वारा इसको वशमें करनेका

सतत प्रयत्न करना चाहिये। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने मनोनिग्रहका उपाय 'अभ्यास' और 'वैराग्य' बतलाया है। योगेश्वर महर्षि पतञ्जलिने भी योगशास्त्रमें 'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः' यह सूत्र लिखा है। अभ्यासके द्वारा उद्धत मन वशमें होता है और इसीके साथ-साथ वैराग्यद्वारा उसको निर्मल, कोमल और शान्त बनाया जा सकता है। अभ्यासके साथ वैराग्यकी भी आवश्यकता है।

संसारके महत्कार्योंका सम्पादन करनेमें दीर्घकालतक सतत पुरुषार्थकी आवश्यकता होती है। इसी प्रकार बहिर्मुख होकर भटकनेवाले मनको वशमें करनेके लिये दीर्घकालतक आदरपूर्वक प्रबल पुरुषार्थ करनेकी नितान्त आवश्यकता है। अल्पकालके थोड़े प्रयत्नसे एकाएक मन वशमें नहीं हो सकता, इसके लिये लंबे समयतक प्रबल परिश्रम करना पड़ता है। यह अभ्यास है।

मनोनिग्रहका दूसरा उपाय श्रीकृष्ण भगवान्ने 'वैराग्य' बतलाया है। मनुष्यका मन संसारके रागद्वेषके चक्रमें पड़कर अति चञ्चल तथा मलिन बन गया है। अनेक जन्मसे वह सांसारिक विषयोंमें भटक रहा है। राग-द्वेषकी तरङ्गोंने मनरूपी समुद्रमें क्षोभ उत्पन्न करके इसको अशान्त और तूफानी बना दिया है। इसमें कुविचारोंकी घोर तरङ्गें उठ रही हैं और जीवन-नौका संकटापन्न होकर भयानक स्थितिमें पड़कर अन्तमें विनाशको प्राप्त हो रही है। इस रागद्वेषको निर्मूल करनेका एक ही उपाय है—'वैराग्य'।

• त्याग और वैराग्य—इन दोनोंमें अन्तर है। त्याग इन्द्रियों-द्वारा हो सकता है और वैराग्य मनके द्वारा होता है। विषयोंकी ओरसे बलात् इन्द्रियोंको रोक रखनेपर भी मन उन विषयोंमें रममाण रहता ही है। अर्थात् त्यागकी अपेक्षा वैराग्य विशेष उपकार करनेवाला है।

आर्यावर्त्तमें ऐसे असंख्य महात्मा हो गये हैं जिन्होंने मनोनिग्रहके द्वारा असम्भवको सम्भव और अशक्यको शक्य बनाया है। मनःसंयमके द्वारा अपनी इच्छाशक्ति अमोघ बनती है। यह अमोघ इच्छाशक्ति दृढ़ संकल्पकी जननी है और दृढ़ संकल्प ही उद्धारका मूलमन्त्र है।

इन्द्रियोंको उनके विषयोंमें लगानेवाला, प्रवृत्त करनेवाला मन है। मन यदि इन्द्रियोंका सहायक न बने तो इन्द्रियाँ कुछ भी न कर सकें।

लिखना पढ़ना चातुरी, तीनों बात सहेल।
कामदहन मनवशकरन, गगन चढ़न मुस्कल ॥

‘जिसने मनको जीता उसने जगत्को जीत लिया’—ऐसी कहावत भी है। ‘जितं जगत् केन ? मनो हि येन ।’

मनकी शक्ति अथाह है, अद्भुत है। हम सूक्ष्मदृष्टिसे देखें तो जान पड़ेगा कि मन कैसे अद्भुत विचार करता है, कितनी अधिक याददास्त रखता है तथा कितनी कल्याण करता रहता है और इसकी गति कितनी वेगवान् है। यह सब देखनेपर मनकी विपुल शक्तिका हमको भान होता है। पर साथ ही यह मन मनुष्यका आशकारी नौकर भी है। मनुष्यकी इच्छाओंकी यह थोड़ी-बहुत पूर्ति करता है। मनुष्य जो चाहे वह काम मनसे करा सकता है। मनुष्य जो कुछ चिन्तन करता है, उसको मन उसके पास हाजिर कर देता है। इतना ही नहीं, मनुष्यकी इच्छाके अधीन होकर वह मृत सगे-सम्बन्धी तथा स्नेहीजनोंको भी स्वप्नमें हाजिर करके उनके साथ भेंट-मुलाकात और बातचीत भी करा देता है। वह स्वप्नमें देवी-देवता या संत-महात्माओंके दर्शन भी कराता है। अशक्य वस्तुको भी यह शक्य बनाता है। मनुष्यको उसकी इच्छाके अनुसार संसारमें भ्रमण भी कराता है और संसारके जन्म-मरणके चक्रसे उबारकर परम शाश्वत सुख अर्थात् मोक्ष भी प्रदान कराता है। इसी कारण ज्ञानी, अनुभवी संतोंने कहा है—

‘मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः’—

संसार चाहिये तो उसको भी मन प्रदान करता है और परम सुख, मोक्ष चाहिये तो उसको भी मन ही प्रदान करता है। मनुष्यकी सेवामें चौबीस घण्टे उसकी आज्ञा पूरी करनेके लिये मन खड़ा तैयार रहता है। यह कभी थकता नहीं, न कभी वृद्ध होता है। मन सतत उद्योगमें रहता है। इसको किसी काममें लगाये रखना मनुष्यके हाथमें है। इसके-जैसा आशकारी मित्र या नौकर दूसरा कोई नहीं है। परंतु इस मित्रको अपने वशमें कर रखनेके लिये चतुराईकी आवश्यकता है।

व्यवहारमें भी जिस कामको न करनेके लिये बालकको कहिये, उस कामको वह खास करके करेगा। अतएव शिक्षण शास्त्रमें कहा है कि बालकको नकारात्मक आज्ञा नहीं देनी चाहिये। ‘शूठ मत बोलो’—यह न कहकर कहना चाहिये कि ‘सच बोलो।’ ‘आलस्य न करो’—के स्थानमें कहना

चाहिये कि 'उद्यमी बनो'। इसी प्रकार मनको भी जिस कामसे निवारण किया जायगा, उसमें उसकी विशेष प्रवृत्ति रहेगी। एक संतने एक शिष्यसे कहा कि जब ध्यान करने बैठो तो अमुक आदमीको याद मत करना। अब शिष्य जैसे ही ध्यान करनेके लिये बैठा, वैसे ही वह आदमी उसके सामने, उसके मनोराज्यमें उपस्थित हो गया। इसी प्रकार मनसे जो काम करवाना न चाहोगे, उस कामको वह खास करके करेगा।

मन कभी बेकार नहीं रहता, वह प्रतिक्षण कुछ-न-कुछ करता ही रहता है। मनुष्य निद्रित रहता है, तब भी मन स्वप्न-सृष्टिमें विचरण करता रहता है। इस मनको विहित कार्यमें सतत लगाये रखनेके लिये मनुष्यको निरन्तर जागरूक रहना चाहिये और मन क्या कर रहा है—इसकी सजग होकर पहरागिरी करनी चाहिये, ऐसा महापुरुषोंका कहना है।

मनकी रुझान संसारकी ओर होनेके कारण यह संसारके प्रलोभनोंमें पड़ जाता है। नयी-नयी उपाधि खड़ी कर देता है। कुतर्क और कुविचारमें लग जाता है। परंतु शास्त्रोंका कहना है कि उसको बार-बार युक्तिपूर्वक समझाकर श्रेय, कल्याणकारी मार्गमें लगाना चाहिये। मन बलात्कार करनेसे काबूमें नहीं आता, परंतु समझानेसे समझता है। जो मनुष्य मनको वशमें नहीं रखता, बल्कि मनकी इच्छाके अनुसार वरतता है, वह अवन्तिके गर्तमें गिरता है। इसके अनेक उदाहरण इतिहासमें मौजूद हैं।

मनको यदि भलीभाँति समझाकर सुसंस्कार-सम्पन्न किया जाय तो वह सारे अच्छे-अच्छे विचारोंमें रमता रहता है और वे सद्बिचार क्रियाओं में परिणत होते रहते हैं। अच्छी तरह सुशिक्षित दृढ़ मन शरीरको भी नीरोग रख सकता है। परंतु मनका स्वभाव चञ्चल होनेके कारण वह घड़ी-घड़ीमें छटकता रहता है, स्थिर नहीं रहता। वह वायुके समान चञ्चल है।

मनुष्य जप या ध्यानमें बैठा रहता है, तो भी उसका मन बाहरके विषयोंमें भटकता रहता है। हाथमें माला फिरती रहती है और जीभसे मन्त्र-जप होता रहता है, उस समय भी मन बाहर भटकता रहता है, अथवा दिनभरके कार्यक्रमकी रूप-रेखा तैयार करता रहता है, प्रोग्राम बनाता रहता है। ध्यान और जप करते समय मन तरङ्गित होता रहता है अर्थात् जप और ध्यानमें जितना चाहिये उतना उपकारक नहीं होता। फिर भी हम यह सब करते रहनेपर भी संतोष रखते

हैं। हाड़-मांसके चोले, इस शरीरको प्रभुकी मूर्तिके सामने रखकर मनको हम यथेच्छ भ्रमण करने देते हैं। जिस मनको प्रभुमें लगाना है, वह तो संसारके रागरंगमें वहार करता है, अर्थात् प्रभुमें लगता नहीं। जिस कार्यमें मन नहीं लगता, वह काम ठीक नहीं होता।

छुट्टा और हरहा पशुको वशमें करनेके लिये यदि उसको मारें, पीटें और उसपर जुल्म करें तो वह और अधिक हरहा बन जाता है और छटके रहनेकी कोशिश करता है। कुछ भी करो, वह वशमें नहीं होता। परंतु यदि उसको पुचकार-कर, प्रेम दिखाकर, खानेका लालच देकर धीरे-धीरे विश्वास जमाकर पास बुलाये तो वह लालच और प्रेमके वश होकर पास आता है, तब वह रस्सीसे बाँधा जा सकता है। इसी प्रकार मनको कष्ट देकर बलात् वशमें करनेका प्रयत्न किया जाय तो वह भटकता हुआ मन और भी दूर भागता है और मनुष्यको हैरान, परेशान कर डालता है। परंतु यदि उसको प्रेमसे संसारकी असारता समझाकर, मोक्षसुखका लालच देकर, पटाकर, पुचकारकर स्थिर किया जाय तो धीरे-धीरे वह वशमें हो जाता है। उसका केवल सद्बिचार, सदाचार, मोक्षसुख और ब्रह्मानन्द आदिमें प्रेम उत्पन्न करना जरूरी है।

बालकको यदि उसके माँ-बाप 'तू तो आबारा है, उदत है, बदमाश है, लम्पट है' आदि वाक्य जवन्तव कहकर भर्त्सना देते रहें तो वह बालक बदमाश, लम्पट और आबारा हो जाता है और दिन-पर-दिन उच्छृङ्खल बनता जाता है। परंतु उसको समझाकर, पटाकर, उसकी प्रशंसा करके, कुल्की कीर्तिका ध्यान दिलाकर, अच्छे कामके लिये प्रोत्साहन देकर प्रेमपूर्वक सद्बिचार, सदाचार और सद्धर्मकी ओर अग्रसर करानेका प्रयत्न किया जाय तो वह बालक सुधर जायगा और आसानीसे वशमें हो जायगा। इसी प्रकार मनुष्य मनको 'यह खराब है, भटक रहा है, राक्षस बन रहा है, वानर-जैसा चञ्चल है, दुष्ट है, यह समझनेवाला नहीं है'—इत्यादि कहते रहनेसे अथवा चिन्तन करनेसे मन ढीठ होकर और बहक जाता है और फिर किसी प्रकार वशमें नहीं होता। परंतु मनको उसकी महत्ता समझाकर सारासार-विवेकमें लगाकर उसको धीरे-धीरे स्थिर करवाने तथा सारे श्रेयस्कर विचारोंमें, शुभ भावनाओंमें लगाये रखनेका सात्त्विक प्रयत्न किया जाय तो यह मन मनुष्यका गुलाम बन जाता है। फिर इसे जो काम सौंपा जाय, वह प्रसन्नतासे करता है। परंतु

यह काम चार-छः दिनमें या वर्ष-दो-वर्षमें बननेवाला नहीं है। इसके लिये तो सतत प्रयत्न आवश्यक है। हम कुछ दिन प्रयत्न करके बैठ रहें तो यह काम होनेवाला नहीं।

संसारके तुच्छ विषयोंमें हमारा अधिक अनुराग है, इनमें हम कितना अधिक रममाण रहते हैं, इसको हमारा मन भी समझ गया है, वह हमको पहचान गया है। इसलिये यह हमारे आगे-आगे चलकर हमारी वृत्तियोंको मार्गदर्शन कराता है और हमको दौड़ाता है। हम व्यवहार और परमार्थ दो घोड़ोंपर सवारी करनेकी इच्छा करते हैं, अर्थात् हमको एकमें भी निष्ठा नहीं है। अतएव हमारा प्रयत्न निष्फल

हो जाता है। हमारा प्रयत्न भी ऊपरी और क्षणिक है—इस बातको भी मन भलीभाँति समझता है। अतएव यह वशमें नहीं होता। और हम उल्टे उसे विभिन्न प्रकारके विषयोपभोगका प्रलोभन देकर, उसे ललचाकर विषयोंकी ओर आकर्षित करते हैं। अतएव वह रातमें नींदमें भी भटकता हुआ नयी-नयी सृष्टि रचता रहता है। नींदके छः घण्टोंको छोड़कर शेष १८ घंटेमें कितनी देर हम मन, अन्तःकरण और इन्द्रियोंको एकाग्रतापूर्वक संयममें रखकर प्रभुके पास बैठते हैं—इसपर विचार करें और मनको स्नेहपूर्वक अधिक-से-अधिक प्रभुमें लगानेका प्रयत्न करें।

‘स्व’का चिन्तन

(लेखक—साधुवेषमें एक पथिक)

चिन्तनद्वारा उसका अनुभव होता है जो नित्य-निरन्तर प्राप्त है। जो प्राप्त नहीं है, अपनेसे भिन्न है, वह चिन्तन-मात्रसे नहीं मिलता, उसके संयोगके लिये कर्म करना होता है। ‘स्व’ अथवा अपने-आपकी अनुभूतिके लिये कर्म नहीं, चिन्तन आवश्यक है। ‘स्व’ अथवा ‘मैं’ या अहंका स्फुरण निरन्तर एक ज्योतिकी तरह हो रहा है, उस चिन्मय ज्योतिमें ही जो कुछ पर अथवा भिन्न है, वह प्रकाशित हो रहा है। प्रकाशमें परको देखना दृश्यको देखना है और स्वयं स्फुरित मैं—सङ्गरहित अहंको देखना ‘स्व’को देखना है। ‘स्व’में ही उस परमाश्रयका बोध होता है जिसमें अहंरूपी चैतन्य-ज्योति स्फुरित हो रही है। ‘स्व’के साक्षात्कारका उपक्रम ही साध्याय कहा जाता है।

अध्यात्मविद्याकी शब्दावली और धर्मशास्त्रोंमें ‘स्व’ प्रमुख शब्द है। शिक्षित समाजमें स्वाभिमान, स्वधर्म, स्वदेश, स्वावलम्बन आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं पर इसमें गर्भित रहस्यकी अभिव्यक्ति अपनी जीवन-चर्यामें विरले ही विद्वान् कर पाते हैं। स्व और परके भेदको कुछ ही साधक समझते हैं, प्रायः परके साथ स्वको मिलाकर ही अपना परिचय देते हैं। मानव-जीवनको धर्ममय बनानेके लिये साध्याय परम सहायक साधन अथवा धर्मका प्रमुख अङ्ग माना गया है। अनेक साधक साध्यायका अर्थ पुस्तकोंका अध्ययन समझते हैं। यद्यपि पुस्तकोंके अध्ययनसे अनेक प्रकारका ज्ञान होता है तथापि जहाँ कुछ बातोंका ज्ञान होना

हमलोगोंके लिये सुखकर है, वहीं कुछ बातोंका ज्ञान होना सुखकर होते हुए भी अन्तमें दुःखद और अहितकर है।

अध्ययनके द्वारा ही आज मनुष्य अधिकाधिक अभिमानी और कामी होता जा रहा है, वह अध्ययनजनित ज्ञानके बलपर ही अपने मनकी रुचि-पूर्तिके लिये छल, कपट, दम्भ और पाखण्ड करनेकी अच्छी कला जानता है। देहको सजाने और सुखोपभोगको जुटानेमें वह अपने पूर्वजोंको अयोग्य सिद्ध कर रहा है पर साध्यायसे वञ्चित रहकर अपनी अहंकृतियोंका दुष्परिणाम नहीं देख रहा है। अध्ययनसे ही प्रत्येक मनुष्यको अपनी कमियोंका ज्ञान होता है, लोभी, मोही और अभिमानी अध्ययन करते हुए अपनी कमीकी पूर्तिके लिये प्रयत्न कर रहे हैं। पर स्वका अध्ययन न करनेके कारण अपने-आप अथवा अपने जीवनकी कमीका ज्ञान उन्हें नहीं हो पाता। लाखों मनुष्य अपने अभावकी पूर्तिके लिये ही श्रम कर रहे हैं और जब उन्हें कुछ प्राप्त होता है तब बड़े गर्वसे सिर उन्नत कर अभावपीड़ितोंकी दशा देखकर अपने-आपको कृतकृत्य मानते हैं, पर स्वका अध्ययन न कर सकनेके कारण वे नहीं देख पाते कि संसारके अधिकाधिक ऐश्वर्य-वैभव प्राप्त करनेके पश्चात् भी वे रंक हैं, रिक्त हैं, कामनायुक्त हैं—शान्त, स्वस्थ, निर्भय और मुक्त नहीं हैं। उनके जीवनमें श्रम-ही-श्रम है, विश्राम नहीं है। हमें संतने बताया कि ऐसा अध्ययन करना चाहिये जो जड़तासे चेतनाकी ओर ले जाय, बन्धनसे मुक्तिकी ओर

प्रेरित करे, दुःखके भोगसे बचाकर, अधर्म, अन्याय और पापसे रक्षा कर धर्म, न्याय और पुण्यको प्रकाशित करता रहे; जो पर—अन्यसे विमुख बनाकर स्वमें स्थिर कर दे।

अनेक साधक उसका चिन्तन करते हैं जो कर्मके द्वारा प्राप्त होता है और उसकी प्राप्ति के लिये कर्म करते हैं जो चिन्तनमात्रसे प्राप्त दीखता है। हमें सावधान किया गया है कि जो कुछ अपनेसे भिन्न है, उसकी प्राप्ति के लिये विधिवत् कर्म करना पड़ता है। प्राकृतिक विधानसे जो कुछ मिलता है उसपर अपना अधिकार तो होता नहीं है, वह अविवेकके कारण अपना ही प्रतीत होता है और वहीं अपने आपको—स्वको आच्छादित कर लेता है। स्वकी विस्मृतिमें ही संसार सामने आता है। स्वमें देह, धन, कुल, जाति, रूप, वर्ण और सम्बन्धी आदिके भर जानेपर उन्हींका आकार-अहंकार बन जाता है। हमें यह भी समझाया गया है कि जो कुछ तुम अपने स्वमें रख लेते हो, उसीको मेरा मानने लगते हो और जिस वस्तुमें स्वको प्रतिष्ठित कर देते हो उसीसे तन्मय होकर 'मैं' मानने लगते हो—ये ही 'मैं' और 'मेरापन'—दोनों बन्धनके हेतु हैं। बन्धनसे मुक्ति पानेके लिये उस ज्ञानकी आवश्यकता है जो स्वके अध्ययनसे प्राप्त होता है।

भोगी सांसारिक वस्तुओं और व्यक्तियोंका अध्ययन करता है, उनके उपभोग और उपयोगका ज्ञान प्राप्त करता है पर जो योग्यासी है उसे स्वका अध्ययन आवश्यक होता है, इसके बिना समस्त विद्याएँ और योग्यताएँ निस्सार हैं। स्वके अध्ययनमें—चिन्तनमें अविद्याकी सीमान्तर्गत सुखासक्ति बाधक बनती है, गुरु-विवेक स्वके अध्ययन-चिन्तनमें परम सहायक होता है। स्वको न जानना अज्ञान है और जानना मुख्य ज्ञान है। स्वको न जाननेके कारण मिली हुई देहादि वस्तुओंसे तन्मय हो जानेसे ही काम, क्रोध, मोह, लोभ, भय, हिंसा और घृणा आदि दोष उत्पन्न होते हैं, पुष्ट होते हैं और प्राणीको दुःख देते हैं। तत्त्ववेत्ताकी दृष्टिमें वे अभागे दयाके पात्र हैं जो संसारके विषयमें बहुत अधिक जानकारी रखते हैं पर स्वको नहीं जानते हैं। स्वके अध्ययन-चिन्तनसे चित्त चिन्मय होता है, पर—जड़के चिन्तनसे वह जड़मय बना रहता है। जो स्वरूपको जानकर अनित्य वस्तुसे असंग हो जाता है उसीपर संसारका शासन नहीं रहता, स्वको न जाननेवाला ही पर—देहादिमें अटका रहता है; जो देहमें रुका है वही भौतिकवादी अध्यात्मसे

विमुख है। स्वके अध्ययनसे भौतिकवादीकी सद्गति—परम गति अध्यात्मकी ओर होती है।

स्वाध्याय करते हुए ही हमें यह ज्ञात हो सका कि जब हृष्ट उत्पन्न होने और विनाश होनेवाली देहादि वस्तुसे अपनेको मिलाकर उन्हें अपना रूप मानने लगते हैं, हम सत्यसे विमुख हो जाते हैं। जो कुछ हमें मिला है उसे अपना मानकर जबतक अपनेमें हम उसे स्वीकार किये रहते हैं, तबतक हम बन्धनसे मुक्त नहीं हो पाते। अपनी स्वीकृतियोंसे जबतक हम मुक्त नहीं हो पाते तबतक नित्य प्राप्त परमात्माके भक्त नहीं हो पाते हैं। स्वाध्यायद्वारा ही यह ज्ञान होता है कि जिस देहमें स्वको प्रतिष्ठित कर रखा है वह मेरा नहीं है, जब देह मेरा नहीं है तब मैं देहमय रूप नहीं हूँ, जड़ नहीं हूँ, उत्पत्ति-विनाशधर्मी भी नहीं हूँ। इसी तरह स्वमें प्रतिष्ठित कुछ भी अपना नहीं है, अहंता, ममता तथा आसक्तिके लिये कुछ बचता ही नहीं है। अहंता, ममता और आसक्तिसे रहित होते ही स्व नित्य मुक्त है। जड़ वस्तुसे असंग होते ही स्व चिन्मय है। चिन्मात्र तत्त्वकी अनुभूति होते ही यही स्व परमात्मासे नित्ययुक्त है। स्वका सत्यसे नित्य युक्त चिन्तन करते ही भक्ति सुलभ हो जाती है, इसीलिये संतने बताया है कि भक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक प्राप्त होती है, भोग परतन्त्रतापूर्वक प्राप्त होते हैं। भक्ति स्वमें ही सुलभ होती है, भोग पर—अन्यके संयोगसे अत्यधिक श्रमसे मिलते हैं। नित्यप्राप्त सत्य—परमात्माका अनुभव नित्य विद्यमान स्वमें होता है, उसके अनुभवका साधन स्वाध्याय है।

स्वमें जब किसी अन्यके स्मरण-चिन्तन नहीं होते, तब जो शेष है वही तो परमात्मा है जो नित्य विद्यमान है पर अन्यकी स्मृतिसे वह ढका-सा रहता है। जिस प्रकार सूर्यसे उत्पन्न बादल सूर्यको ढके हुए-से दीखते हैं और उसीकी किरणोंसे छिन्न-भिन्न हो जाते हैं उसी प्रकार अपने आपद्वारा परको स्वीकार कर लेनेपर सत्य ढक-सा जाता है, अस्वीकार करते ही आवरण हट जाता है। एक संतने हमें समझाया कि स्वका अध्ययन कर लेनेके पश्चात् शास्त्रका अध्ययन करना चाहिये, स्वको जाने बिना शास्त्रके अध्ययनसे अहंकार पुष्ट होता है, मानकी तृष्णा प्रबल होती है। स्वके अध्ययनके लिये किसीकी अपेक्षा नहीं है, परके अध्ययनके लिये दूसरेकी अपेक्षा है। अन्यके अध्ययनसे भोग भले ही मिलते हैं, योग नहीं होता। स्वके अध्ययनसे योगकी सिद्धि सुलभ होती

है। ...स्वाध्यायमें भोग नहीं है, न संघर्ष है, न अशान्ति है, केवल दर्शन है। स्वाध्यायके द्वारा शान्ति मिलती नहीं, नित्य मिली दीखती है। ...एक संतने हमें सावधान किया था कि जय देखते-देखते दृश्यकी सीमा पार कर देखनेको कुछ नहीं रहता है, तभी स्वका बोध होनेपर ही परमात्माका बोध होता है। स्वके अध्ययनसे उस मिलावटका ज्ञान होता है जिसके कारण अहं साकार दीखता है, मिलावटसे असंग हुए बिना स्वमें नित्य विद्यमान सत्यका दर्शन नहीं होता। जय स्वमें नाम-रूप नहीं रह जाते तभी शुद्ध चैतन्यमात्र शेष रहता है, यह अनुभूति परमात्माकी अनुभूति है। आकारयुक्त 'मैं' का ज्ञान जीव है, जीव अज्ञानमें ही है, अहंकाररहित आत्मा ही परमात्मा है, वहाँ अज्ञान नहीं है। शान्त रहकर स्वके सतत चिन्तनसे ही आत्माकी अनुभूति होती है। एक संत समझा रहे थे कि सत्यको जाननेके लिये बाहर कहीं न भटको, केवल स्वकी ही शरण लो, आत्मारामको पानेके लिये शिवकी शरण लेनी पड़ती है, स्वमें ही शिवतत्त्व है, जहाँ अनेकताका अन्त होता है, वहाँ एकान्त कैलाशमें शक्ति-शिवका दर्शन होता है। शिवशक्तिके योगके लिये जो स्व नहीं है उससे तादात्म्य तोड़ना पड़ता है। शब्दोंको छोड़कर स्वयंमें शान्त होनेसे परमात्माकी

उपलब्धिका ज्ञान होता है। सत्यकी विस्मृति परके सङ्गसे होती है, परके सङ्गमें ही संसार सामने रहता है, स्वकी स्मृतिमें सत्य परमात्माका योग होता है।

स्वाध्यायद्वारा ही नामरूपका अभिमान मिटता है, इसीलिये साधकको नामरूपरहित स्वके चिन्तनमें ही विश्राम मिलता है। परके सङ्गमें तो काम-ही-काम रहता है। एक संत कह रहे थे कि स्वके अज्ञानमें ही जो परमात्मा जगन्मय दीखता है, स्वके ज्ञानमें वही जगत् परमेश्वरमय दीखता है। स्वाध्यायद्वारा ही विपमताको पार करनेपर समता आती है, समतामें सत्य परमात्माकी अनुभूति होती है।

जो कुछ अपने आपसे भिन्न है, उसीसे अध्ययन आरम्भ होता है और परकी प्रकृतिकी सीमासे लौटकर स्वके अध्ययनसे अध्ययनकी समाप्ति होती है। हमें संतने सावधान किया है कि देहादि—पर वस्तुओंके सङ्गसे देहाभिमान, धन, विद्या और कुलके अभिमान आदिकी रक्षा होगी, स्वधर्मकी रक्षा नहीं होगी। इसलिये स्वको जानो, परका चिन्तन छोड़कर स्वका चिन्तन करो। स्वमें सत्य विद्यमान है, स्वमें स्थिर होनेपर ही नित्ययोग है, स्वमें प्रीति समेटनेपर ही भक्ति है।

सबका सदा परम कल्याण चाहो

पर-हितको निज अहित मानता, पर-विकासको जो निज नाश ।
पर-यशको निज अयश मानता, पर-उन्नतिको अपना हास ॥
पर-सुखको निज दुःख मानता, पर-पूजनको निज अपमान ।
पल-पल पाप कमाता ऐसा मानव अति दुर्मति, अज्ञान ॥
रोग-भोग, निन्दा-स्तुति, अनहित-हित, जय-हार, मान-अपमान ।
मिलते सब, होता जैसा निज कर्मजनित प्रारब्ध-विधान ॥
कोई कर सकता न हमारा बिना कर्मके कुछ नुकसान ।
पर निमित्त जो बनता, स्वयं खोदता वह निज दुखकी खान ॥
हो चाहे प्रतिकूल परिस्थिति, हो चाहे सब विधि अनुकूल ।
दोनों ही प्रभु-प्रेरित हैं, दोनोंमें प्रभु-अनुकम्पा मूल ॥
उनसे लाभ उठाओ, चाहो सबका सदा परम कल्याण ।
निज सुख-तन-मन-धन दे, चाहो परका सदा विपद्से त्राण ॥

साधन-माला

[साधनोपयोगी सुनी हुई बातोंका संग्रह]

(संग्राहक तथा लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका)

१—मिली हुई वस्तु आदिको अपनी मान लेना अर्थात् उनमें ममता करना, उनको अपने सुखभोगकी सामग्री मानना ही साधनमें विघ्न है; अतः उनका सर्वहितकारी भावसे सेवामें उपयोग करना और बदलेमें मान-बड़ाई आदि किसी प्रकारके सुखकी कामना न करना ही साधन है।

२—भोगोंकी वास्तविकता जाननेके लिये अर्थात् उनमें वैराग्य होनेके लिये ही मर्यादित भोगोंमें प्रवृत्त होना चाहिये। यदि विचारपूर्वक भोगवासना नष्ट कर दी जा सके तो भोगोंमें प्रवृत्ति आवश्यक नहीं है।

३—अहितकारक प्रवृत्तियोंका और भावनाओंका त्याग करना सभीके लिये परम आवश्यक है। अतः भिन्नताको लेकर तो प्राप्त शक्ति आदिका सबकी सेवामें सदुपयोग करना और एकताको लेकर सबके साथ परम प्रेम करना ही साधकका उद्देश्य होना चाहिये।

४—मनुष्यमें जो क्रिया-शक्तिका वेग है, उसकी जो कर्म करनेकी आसक्ति है, उसे मितानेके लिये ही कर्म करनेका विधान है। किसी प्रकारके फलके लिये नहीं। जो फलके लालचसे कर्म करता है, उसका लक्ष्य कर्मकी सुन्दरतापर नहीं रहता। वह लोभके कारण कर्ममें अनेक प्रकारके दोष और त्रुटियोंका समावेश कर लेता है।

५—साधकको चाहिये कि किसी भी प्रकारकी परिस्थितिमें वह राग-द्वेष करके आवद्ध न हो, किन्तु प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करके उससे ऊपर उठनेकी चेष्टा रखे। प्रत्येक परिस्थितिको साधनकी सामग्री समझे।

६—विवेकविरोधी कर्मका मनुष्य-जीवनमें कोई स्थान नहीं है। जो कर्म किसीके लिये अहितकर हो, वही विवेक-विरोधी है। हर एक काम पवित्र भावसे भावित होकर ही करना चाहिये। क्रियाकी अपेक्षा भावका महत्त्व अधिक है।

७—कर्तव्य-पालनका दायित्व साधकपर तबतक रहता है, जबतक उसके जीवनसे अशुद्ध तथा अनावश्यक संकल्पोंका अभाव न हो जाय, शुभ संकल्प पूरे होकर मिट न जायँ,

सहज भावसे निर्विकल्पता न आ जाय, अपने-आप आयी हुई निर्विकल्पतासे असंगता न हो जाय।

८—जो काम मनुष्य अपने लिये दूसरोंसे नहीं चाहता, वह उसे दूसरोंके साथ नहीं करना चाहिये। कोई भी अपनी बुराई नहीं चाहता, अतः मनुष्यको किसीके साथ बुरा व्यवहार नहीं करना चाहिये। हरेक क्रिया सर्वहितकारी भावसे करनी चाहिये।

९—साधकको चाहिये कि करनेयोग्य हर एक कामको साधन समझे। जो काम कर्तव्यरूपमें प्राप्त हो, उसे भगवान्-का समझकर पूर्ण योग्यताके साथ उत्साहपूर्वक जैसे करना चाहिये, ठीक-ठीक सावधानीसे करे। किसी भी कामको छोटा न समझे, उसमें तुच्छ बुद्धि न करे।

१०—मनुष्यको जो शरीर तथा अन्य वस्तुएँ मिली हैं, वे संसारकी सेवा करके उससे उन्मृष्ट होनेके लिये मिली हैं और मन भगवान्-का चिन्तन करके उनमें तन्मय होनेके लिये मिला है। अतः दोनोंका यथायोग्य उपयोग करके कृतकृत्य हो जाना चाहिये।

११—मनुष्यमात्रको क्रिया, भाव और विवेक प्राप्त है। अतः विवेकसे प्रकाशित भाव और पवित्र भावसे भावित कर्तव्य-कर्म करना चाहिये। वर्तमान कर्तव्य-कर्म किये बिना क्रिया-शक्तिका वेग शान्त नहीं होता तथा करनेकी आसक्तिका नाश नहीं होता। अतः करनेकी आसक्तिसे मुक्त होनेके लिये पवित्र भावसे कर्तव्यपालन करना आवश्यक है।

१२—जब सेवकके जीवनमें अधिकार-लालसा सर्वथा नष्ट हो जाती है, तब उसके द्वारा की हुई सेवा विभु होकर समाजमें सेवा-भावका विस्तार करती है। अतः सेवकके लिये सेवक कहलानेतककी भी लालसाका सर्वथा त्याग हो जाना परम आवश्यक है।

१३—परिस्थिति-परिवर्तनकी अपेक्षा उसके सदुपयोगका बड़ा महत्त्व है। अतः प्राप्त परिस्थितिको हितकर जानकर

संख्या ६]

उसका सदुपयोग करना चाहिये। सर्वहितकारी भावसे ही हर एक परिस्थितिका सदुपयोग हो सकता है।

१४-बुद्धिको विवादमें न लगाकर सत्यकी खोजमें लगाना चाहिये। समयको उपभोगमें न लगाकर शान्तिमें लगाना चाहिये। मनको व्यर्थ चिन्तनमें न लगाकर सार्थक चिन्तनमें लगाना चाहिये।

१५-साधकको ऐसा साधन अपनाना चाहिये जो किसी दूसरेपर अवलम्बित न हो, जो सर्वथा स्वतन्त्र हो। जो साधक अपने साधनमें दूसरोंके सहयोगकी आशा रखता है या उनसे सहायता लेता रहता है, उसका उन व्यक्तियोंमें मोह और पदार्थोंमें आसक्ति हो जाती है।

१६-साधकको चाहिये कि अपनेपर अपना आधिपत्य करे की हुई भूलको पुनः न दुहरावे, सबका हित करे, किसीके अधिकारका अपहरण न करे। इस प्रकार जिसका जीवन दूसरोंकी आवश्यकता बन जाता है, वही सच्चा साधक है।

१७-राग-द्वेषसे रहित होकर इन्द्रियोंद्वारा कर्तव्य-पालन करनेवाला साधक उस स्थितिको प्राप्त कर सकता है, जो सुख-दुःखसे सर्वथा अतीत है, जिसमें आनन्द-ही-आनन्द है।

१८-साधकको जो काम कर्तव्यरूपमें प्राप्त हो, उसे भगवान्‌का काम समझकर उत्साहपूर्वक, उसमें विवेक, स्नेह और शक्तिको भलीभाँति लगाकर कुशलताके साथ करना चाहिये। आलस्यसे या अवहेलनासे अथवा उतावलेपनसे नहीं करना चाहिये।

१९-जबतक जीवन प्रभु-प्रेमसे पूर्ण न हो जाय, तबतक साधनानीपूर्वक भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये कर्तव्य-पालन करते रहना चाहिये।

२०-साधकके लिये कर्तव्य-कर्म वही है, जो विधानके अनुकूल हो, जिसमें किसीका अहित न हो, जो सर्वहितकारी हो और जिसके करनेकी वर्तमानमें ही आवश्यकता हो।

२१-जिस कामको मनुष्य बुरा समझता है, उसका त्याग न करना और जिसको करना अच्छा समझता है, उसे भी न करना—यह भूल है। साधकको इस भूलका सुधार अवश्य करना चाहिये।

२२-प्रत्येक कार्य स्वीकार किये हुए स्वाँगकी दृष्टिसे नाटककी भाँति आसक्ति और कामनाका त्याग करके सर्व-हितकारी भावसे करना चाहिये। धर्मानुसार जो स्वाँग स्वीकार

किया है, उसके विधानके विपरीत कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये।

२३-माने हुए सम्यन्धकी स्वीकृतिको स्वाँगकी भाँति कर्तव्य-पालनके लिये समझना चाहिये, सत्य नहीं।

२४-वर्तमानमें जो परिस्थिति प्राप्त है, उसके अनुसार साधनानीपूर्वक अपने कर्तव्यका पालन करते रहना चाहिये। अप्राप्त परिस्थितिकी कामना नहीं करनी चाहिये।

२५-क्रियामें भेद होनेपर भी लक्ष्यमें भेद नहीं होना चाहिये। साधककी हर एक क्रिया प्रभु-प्रेमके उद्देश्यसे उनकी प्रसन्नताके लिये ही होनी चाहिये।

२६-स्वार्थभाव मिटानेके लिये सेवा करनेका स्वभाव बना लेना परम आवश्यक है। निष्काम सेवामें ही स्वार्थ-भावका अन्त हो सकता है। जिसकी सेवा की जाय, उसके हितपर दृष्टि रखनी चाहिये, उसे सुन्दर और निर्मल बनाने-का लक्ष्य रखना चाहिये।

२७-अच्छे कर्मोंका आचरण अवश्य करना चाहिये, परंतु उनमें आसक्ति नहीं होना चाहिये। इसी प्रकार बुरे कर्मोंका त्याग अवश्य करना चाहिये, परंतु उनमें द्वेष नहीं करना चाहिये।

२८-ऐसा कोई भी काम साधकको नहीं करना चाहिये जिसको प्रकट नहीं किया जा सके, जिसमें किसीका अहित हो, जो विधानके विपरीत हो। ऐसा भी कोई काम साधकको नहीं करना चाहिये, जो क्रियाकी आसक्तिको और भोगवासनाको बढ़ानेवाला हो एवं भगवान्‌के भजन-स्मरणमें बाधक हो।

२९-परिस्थितिके परिवर्तनमें मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है, किंतु प्राप्त परिस्थितिके उपयोगमें सर्वथा स्वतन्त्र है। अतः साधकको परिस्थितिके परिवर्तनकी बात न सोचकर उसका सदुपयोग करके परिस्थितियोंसे अतीतका जीवन प्राप्त कर लेना चाहिये।

३०-साधककी हर एक प्रवृत्ति उसको अपने साधकी ओर ले जानेवाली, प्रवृत्तिकी आसक्तिको मिटानेवाली, सर्व-हितकारी भावसे भावित और सर्वथा निष्काम होनी चाहिये।

३१-कर्तव्य-पालन करते समय सब प्रकारसे शान्त,

उद्बेगरहित और सावधान रहना चाहिये । राग-द्वेषको अपने अन्तःकरणमें स्थान नहीं देना चाहिये ।

३२-मनुष्यका जो कर्म है, उसे वह सहजमें कर सकता है, जिसके करनेकी सामर्थ्य और सामग्री नहीं है, वह उसका कर्तव्य ही नहीं है । अतः कर्तव्यपालनमें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं है ।

३३-अपने द्वारा किये हुए व्यवहारके बदलेमें अपने अनुकूल व्यवहारकी आशा या कामना नहीं करनी चाहिये ।

३४-अन्न-वस्त्र आदि आवश्यक वस्तुओंको शारीरिक हितकी दृष्टिसे काममें लेना चाहिये । स्वाद या शौकीनीके लिये नहीं ।

३५-प्रत्येक काम आरम्भ करनेके पहले उसपर हित-अहितकी दृष्टिसे गम्भीरतापूर्वक विचार कर लेना चाहिये ।

३६-बुराईका उत्तर भलाईसे देनेका स्वभाव बना लेना चाहिये । दूसरेके द्वारा की हुई बुराईका प्रभाव अपने ऊपर नहीं होने देना चाहिये ।

३७-वाणीका संयम करनेके लिये व्यर्थ बात न करनेका, स्वाभाविक मौन रहनेका स्वभाव बना लेना चाहिये । आवश्यक होनेपर ही दूसरेसे बात करनी चाहिये ।

३८-बिना आवश्यकताके विलासिताके भावसे मन बहलानेके लिये जनसमाजसे नहीं मिलना चाहिये । जिससे मिलना हो, उसके हितका भाव रहना चाहिये ।

३९-व्यर्थ चेष्टाके त्यागसे जितेन्द्रियता स्वाभाविक प्राप्त होती है, अतः साधकको किसी समय मन और इन्द्रियके द्वारा व्यर्थ चेष्टा नहीं करनी चाहिये ।

४०-प्रतिकूल परिस्थितिसे दुखी होना, अपने दुःखमें दूसरोंको कारण समझना तथा उसको दूर करनेके लिये दूसरोंको दुखी करना—दुःखकी वृद्धि करना है । अतः प्रतिकूलतासे भयभीत न होकर उसका सदुपयोग करना चाहिये ।

४१-किसीकी हानिमें अपना लाभ, किसीके अनादरमें अपना आदर, किसीकी निर्बलतामें अपना बल, किसीकी हारमें अपनी जीत, किसीके हासमें अपना विकास मानना तथा किसीके अहितमें अपने हितका दर्शन करना—यह

सर्वथा प्रमाद है । साधकको प्रमादका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये ।

४२-सम्प्रदाय, मत, वाद, मान्यता, सिद्धान्त, वर्ण, आश्रम आदिको लेकर परस्परमें प्रेमका भेद नहीं होना चाहिये । हम सब उस एक ही परमेश्वरके हैं । इस भावसे प्रेमकी एकताको सुरक्षित रखना चाहिये ।

४३-सभी मत-सम्प्रदाय आदिकी उत्पत्ति सामाजिक भूलोंको मिटानेके लिये, सबका कल्याण करनेके लिये होती है । व्यक्तियोंका कल्याण और सुन्दर समाजका निर्माण ही सम्प्रदाय आदिका मुख्य उद्देश्य है । परन्तु उनकी ममता मनुष्यको पागल बना देती है । वे अपना सुधार करना भूलकर राग-द्वेषकी सृष्टि कर लेते हैं । साधकको इस भूँका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये ।

४४-शान्ति तथा एकताको सुरक्षित रखनेके लिये अपने मत, सम्प्रदाय आदिका अनुसरण तथा दूसरोंके मत, वाद, सम्प्रदाय आदिका आदर करना परम आवश्यक है ।

४५-साधकका जीवन अपनी मान्यता और जानकारीसे अभिन्न होना चाहिये । मान्यता, जानकारी और जीवन तीनोंकी एकता होनी चाहिये, उनमें भेद नहीं रहना चाहिये ।

४६-भोगोंकी वासना, उनको प्राप्त करनेका संकल्प, उनका सम्बन्ध और चिन्तन—यही बन्धन है । बन्धनको काटनेके लिये साधकको चाहिये कि सब प्रकारके भोगोंकी चाहका त्याग करके उनके सम्बन्ध और चिन्तनसे रहित हो जाय । शरीरको 'मैं' माननेसे तथा उससे सम्बन्ध रखने-वाल्लोंको 'मेरा' माननेसे आसक्ति हो जाती है । आसक्तिके कारण ही भोग सुखप्रद प्रतीत होते हैं ।

४७-साधकको चाहिये कि अपने दोषोंको खोज-खोजकर निकाले । दूसरेके दोषोंको देखनेमें और उनकी आलोचना करनेमें अपने अमूल्य समयको नष्ट न करे ।

४८-साधकको क्रिया-शक्तिका उपयोग तो सेवामें करना चाहिये तथा चिन्तन-शक्तिका उपयोग भगवान्के गुण, प्रभाव और स्वरूपके चिन्तनमें करना चाहिये । चिन्तन, विश्वास और प्रेम करनेमें मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र है ।

४९—मनकी चाह पूरी करनेमें स्वाधीनता नहीं है। परंतु उसका त्याग करनेमें साधक सर्वथा स्वाधीन है। इसी प्रकार भोगोंकी वासनाका तथा संकल्पका भी त्याग करनेमें साधक सर्वथा स्वाधीन है। अतः उनका त्याग अवश्य कर देना चाहिये।

५०—सच्चा साधक वही हो सकता है, जिसने अपनी सेवा कर ली है, अर्थात् अपने जाने हुए दोषोंका त्याग करके अपनेको सेवक बना लिया है। ऐसे सेवकके जीवनमें सेवा-भाव विभू होता है।

५१—सच्चा सेवक हुए बिना की हुई सेवा सेवाके रूपमें भोग है। वह मनुष्यको गुणोंके अभिमानमें आवद्ध कर देता है। गुणोंका अभिमान सब दोषोंकी भूमि है। अतः सेवाके रूपमें भोगका सर्वथा त्याग परम आवश्यक है।

५२—जब मनुष्य अपने दुःखका कारण किसी दूसरेको नहीं मानता, तब उसके जीवनमेंसे द्वेषभावका सदाके लिये अभाव हो जाता है तथा वैरभावका नाश हो जाता है, जिसके होते ही निर्भयता, समता, मुदिता आदि दिव्य गुणोंकी अभिव्यक्ति स्वतः होती है।

५३—मनुष्य स्वयं अलग रहकर अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको भगवान्में लगाना चाहता है, यहाँसे ही गलती होती है। मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तो साधकके औजार हैं। जब साधक अपने-आपको भगवान्में लगा देता है, तब मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तो उसके साथ अपने-आप लग जाती हैं।

५४—साधक यह अभिमान रखता है कि मैं सत्संगी हूँ। दोषोंको किस प्रकार दूर करना चाहिये, सद्गुणोंका और सदाचारका किस प्रकार पालन करना चाहिये, इस बातको जानता हूँ, दूसरे नहीं समझते। इस भावसे जो दूसरोंसे सुधारकी बात कहता रहता है, वह अनेक वर्षोंतक सत्संग करते रहनेपर भी अपने लक्ष्यकी प्राप्ति नहीं कर सकता।

५५—जो साधन साधकको अपना जीवन प्रतीत होता हो, जिसके बिना रहा नहीं जाता हो, जो जीवनसे भी अधिक प्रिय हो, वह साधन ही उसका साधन है। साधकमें कभी भी साधनका अभिमान नहीं होना चाहिये तथा किसी भी अवस्थामें साधन भार-सा नहीं प्रतीत होना चाहिये।

५६—साधन कोई भी छोटा-बड़ा नहीं होता। उसमें प्रेम होना चाहिये और उसमें पूरी शक्ति लगनी चाहिये। उत्साह, व्याकुलता बढ़ती रहनी चाहिये। साधनमें किसी प्रकारके रसका उपभोग और सफ़लताका अभिमान नहीं करना चाहिये।

५७—साधकको अपने जाने हुए दोषोंका त्याग करके शुद्ध होना चाहिये। निर्दोष कहलानेकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। यदि कोई अपना दोष बतलाये तो उसकी बात शान्तिपूर्वक सुनकर अपने दोषोंको सूक्ष्मतासे देखना चाहिये और उनको मिटाना चाहिये।

५८—मनुष्य दोषोंमें सुख-भोगकी कल्पना करके रस लेता रहता है। इस कारण उनके रहनेका दुःख नहीं होता तथा उनको मिटानेकी लालसा और कोशिश भी नहीं होती। अतः साधकको दोषोंमें रस नहीं लेना चाहिये।

५९—मानव-जीवनमें आचारकी बड़ी आवश्यकता है। आचारसे पतित तो मनुष्य नहीं, पशु है। मनुष्य तो वही है जो आचार और विचारसे सम्पन्न है।

६०—मनमें राग-द्वेष आदिका न रहना ही सच्चा आचार है। बाहरकी पवित्रता भी भीतरकी शुद्धिको बढ़ानेके लिये ही है। आचार मनुष्यको षृणा नहीं सिखाता। दोषोंके नाश हो जानेका नाम ही शुद्धि है। दोषोंका त्याग करना कठिन नहीं है।

६१—अपनेको पवित्र और दूसरोंको अपवित्र मानकर अभिमान करना आचार नहीं है। शरीरमें और मनमें शुद्धि आदि बढ़ानेका नाम आचार है।

६२—शरीरको आलसी बना देना, मनको राग-द्वेषसे भर लेना, बुद्धिको विवेकहीन बना देना—यही अशुद्धि है। इसको दूर करना ही असली आचार है।

६३—न्याय और प्रेम दोनों उन्नतिके साधन हैं। अपने बनाये हुए दोषोंको अन्त करनेके लिये साधकको अपने प्रति न्यायका उपयोग करना चाहिये तथा भेदका नाश करनेके लिये अन्यके प्रति प्रेमका उपयोग करना चाहिये।

६४—सुख-दुःख दिन-रातकी भाँति अपने-आप आते-जाते हैं। सुख सेवाका और दुःख त्यागका पाठ पढ़ानेके लिये

आता है। अतः साधकको सुखमें उदार और दुःखमें विरक्त रहना चाहिये।

६५—सुख-दुःखका भोग करनेवाला मनुष्य सुख-दुःखके जालमें फँस जाता है। उनका सदुपयोग नहीं कर सकता। अतः साधकको सावधानीपूर्वक दोनोंको साधनकी सामग्री समझकर समभावसे उनका सदुपयोग करना चाहिये।

६६—सुख-दुःख दोनों ही जाने-आनेवाले और अनित्य हैं। अतः साधकको दोनोंसे अतीत जो जीवन है, उसकी खोज करनी चाहिये। दोनोंमें सम रहकर रागद्वेषका नाश करना चाहिये।

६७—सुखके लोभीको दुःखके भयसे भीत होना पड़ता है। आया हुआ सुख तो चला जाता है पर उसका राग बना रहता है। दुःखसे भी अधिक दुःखका भय उसे भीत करता रहता है। सुखके प्रलोभनसे और दुःखके भयसे मनुष्य विवेकका अनादर करता है। अतः साधकको सुखकी आसक्तिका और दुःखके भयका नाश कर देना चाहिये।

६८—सम्मानकी दासताने अभिमानको जन्म देकर सेवाभावको आच्छादित कर लिया है। अतः साधकको किसी प्रकारके गुण या पदके अभिमानको स्थान नहीं देना चाहिये तथा सम्मानकी कामनाका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

६९—अहंता, ममता और कामनाका नाश होना साधकके जीवनमें परम आवश्यक है। यह मालूम होनेके बाद भी अहंता, ममता और कामनाका नाश नहीं होता। इसका कारण वर्तमान परिस्थितिमें किसी-न-किसी प्रकारकी आसक्ति है, उसीमें संतोष है, उसके परिवर्तनकी आवश्यकताका ज्ञान नहीं है।

७०—साधकको चाहिये कि अपनी जानकारीके अनुरूप जीवन बनाये और मान्यताके अनुसार कर्तव्यका पालन करे। दूसरोंकी जानकारीका अनादर न करे तथा किसी प्रकारका संदेह भी न करे। अपनेको शरीर मानते रहना ही अपनी जानकारीका अनादर करना है; क्योंकि यह सभी जानते हैं कि शरीर मैं नहीं हूँ।

७१—जबतक मनुष्य मान्यता तो केवल कथनमें रखता है और जीवनमें देहभाव रखता है तथा विधानका पालन नहीं करता, तबतक वह साधक साधनपरायण नहीं हो सकता।

देहभाव उसको भोगोंमें फँसाता है। इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख आदि विकारोंकी उत्पत्ति देहभावसे ही होती है।

७२—संसारकी चाह मिटानेसे संसारका सम्बन्ध बूट जाता है। वास्तवमें चाहको मिटाना कठिन नहीं है। उसे पूरी करनेमें बहुत कठिनाई है; क्योंकि चाहकी पूर्तिमें प्राणी सदैव पराधीन है, उसका त्याग करना सब प्रकारसे सुगम और सरल है।

७३—जो साधक भगवान्को अपना लेता है, सब प्रकारसे उनका हो जाता है, वह कैसा है, उसका आचार-व्यवहार कैसा है, वह जाति-पाँतिमें ऊँचा है या नीचा है, इस बातका विचार न करके भगवान् उसको अपना लेते हैं। भगवान्की इस महिमाको जानकर मनुष्यको भगवान्के शरण हो जाना चाहिये।

७४—साधकको हर एक परिस्थितिमें भगवान्की कृपाका दर्शन करना चाहिये तथा समझना चाहिये कि मुझे जो विवेक मिला है, वह भगवान्का ही प्रसाद है। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर तथा अन्य सब साधन-सामग्री उन्हींकी है। उन्होंने ही कृपापूर्वक इनका सदुपयोग करनेके लिये दिया है। यह समझकर किसी भी वस्तु या शक्तिका अभिमान या दुरुपयोग नहीं करना चाहिये।

७५—प्रेमकी इच्छा रहते हुए भी यदि प्रेम प्राप्त न हो तो उसके न मिलनेकी गहरी वेदना होनी चाहिये। प्रेमकी चाह भी है और उसके प्राप्त होनेकी तीव्र वेदना भी नहीं है तो जीवनमें किसी-न-किसी प्रकारका रस है, चाहे किसी प्रकारके सद्गुणका रस या किसी प्रकारके सदाचारका रस हो सकता है; क्योंकि जबतक भोगोंमें रस प्रतीत होता है, तबतक प्रेमकी सच्ची चाह ही नहीं होती।

७६—प्रभु-प्रेमका मूल्य सद्गुण या सदाचार नहीं है। वे मनुष्यमें किसी सौन्दर्य या गुणके कारण प्रेम नहीं करते। वे तो उसीमें प्रेम करते हैं, जो उनपर विश्वास करके यह मान लेता है कि मैं उनका हूँ, वे मेरे हैं, अतः हर एक मनुष्य उनके प्रेमका अधिकारी है।

७७—सुख-भोगकी रुचि और प्रवृत्तिसे ही मनुष्य भगवान्से विमुख होता है और भोगवासनाकी निवृत्तिसे भगवान्के सम्मुख और संसारसे विमुख होता है।

७८-ईश्वरको प्राप्त करनेके लिये कर्मकी आवश्यकता नहीं है। उनकी प्राप्ति की तीव्र लालसा होनी चाहिये। साधक जितना अधिक प्रभुके लिये व्याकुल होता है, उतना ही शीघ्र उसे भगवान् मिल जाते हैं।

७९-मैं शरीर नहीं हूँ, यह जान लेनेसे समस्त वासनाओं का अन्त हो जाता है, चित्त स्थिर हो जाता है, बुद्धि सम हो जाती है; समस्त दुःखोंका सदाके लिये अभाव हो जाता है तथा केवल ईश्वर-प्रेमकी लालसा जाग्रत् रहती है। वह ईश्वरसे मिला देती है।

८०-साधकको चाहिये कि न तो संसारको अपना विरोधी मानकर उससे द्वेष करे और न अपनत्वका सम्बन्ध जोड़कर राग करे। सर्वथा राग-द्वेषरहित उदासीन रहे तथा उसके अधिकारकी रक्षा करके उससे उन्मृगण हो जाय। संसारके सम्बन्धने ही मनुष्यको प्रभुसे विमुख किया है।

८१-जो साधक भीतरसे संसारसे सम्बन्ध जोड़े रहता है और ऊपरसे सम्बन्ध तोड़कर भगवान्का भजन-स्मरण करनेके लिये अलग रहता है, वह भगवान्का चिन्तन नहीं कर सकता। व्यर्थ चिन्तन होता रहता है। उससे सम्बन्ध नहीं टूटता।

८२-जबतक मनुष्य संसारसे या अपने साथियोंसे किसी प्रकार अपने मनकी बात पूरी करानेकी आशा रखता है, अपने कर्तव्यका निष्कामभावसे पालन करके उनसे सर्वथा उन्मृगण नहीं हो जाता, तबतक उसका शरीर, संसार और माने हुए साथियोंसे सम्बन्ध नहीं छूटता। अतः साधकको चाहिये कि उनके सम्बन्धका त्याग करके भगवान्से सम्बन्ध जोड़ ले।

८३-साधकको चाहिये कि अपनेको पतित जानकर और भगवान्को पतित-पावन मानकर अपनेको उनके समर्पण कर दे; सर्वतोभावेसे उनका हो जाय।

८४-मनुष्य सोचता है कि भगवान्को प्राप्त करना बड़ा कठिन है, यह भूल है; क्योंकि भगवान्से मनुष्यकी किसी प्रकारकी भी दूरी नहीं है। उनको प्राप्त करना मनुष्यके लिये परम आवश्यक है। भगवान्के शरण होते ही भगवान् उसे

तुरंत अपना लेते हैं। मनुष्यके अभिमानने ही उसे भगवान्से दूर कर रक्खा है। उसका त्याग कर देना चाहिये।

८५-साधकको भगवान्की इस महिमापर दृढ़ विश्वास करना चाहिये कि सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणसम्पन्न, सर्वसुहृद्, परब्रह्म परमेश्वर, पतितपावन और दीनवत्सल है, हर एक प्राणी, चाहे वह कितना ही पापी, कितना ही नीच क्यों न हो, उसको अपनानेके लिये हर समय, हर जगह वे प्रस्तुत रहते हैं। यह विश्वास करके जो सब प्रकारसे एकमात्र भगवान्को ही अपना सर्वस्व मान लेता है, उसके मनमें शरणागतिका भाव जाग्रत् होता है।

८६-किसी प्रकारके गुणका और बलका अभिमान रहते हुए मनुष्य भगवान्के शरण नहीं हो पाता। अतः साधकको सब प्रकारके अभिमानका त्याग करके सर्वथा उनपर निर्भर हो जाना चाहिये। शरणागति अचूक शब्द है। इससे मनुष्यके सब दोष जलकर भस्म हो जाते हैं।

८७-भगवान्पर विश्वास और उनमें प्रेम स्वाभाविक होना चाहिये। किसी प्रकारका जोर डालकर नहीं; क्योंकि प्रयत्नसाध्य वस्तु स्थायी नहीं होती। अतः साधकको चाहिये कि मन और बुद्धिको सब प्रकारसे भगवान्में लगा दे। भगवान्पर विश्वास न होनेके जितने भी कारण हैं, उनको खोज-खोजकर मिटा दे तथा अपने प्रभुपर विकल्परहित अचल विश्वास करे।

८८-आवश्यक तथा शुद्ध संकल्पोंकी पूर्तिके सुखकी दासतासे, संकल्प-निवृत्तिकी शान्तिसे एवं असंगताद्वारा सम्पादित स्वाधीनतासे संतुष्ट न रहनेपर प्रेमकी अभिव्यक्ति अपने-आप होती है।

८९-सुखकी आसक्ति और कामनासे तथा दुःखके भयसे ही मनुष्य दूसरोंको दुःख देता है, उसके परिणामपर लक्ष्य नहीं रखता। अतः साधकको आसक्ति, कामना और भयका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

९०-अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होनेपर न तो उसमें हर्षित होना चाहिये, न ममता करनी चाहिये, न उसके बने रहनेकी कामना या आशा ही करनी चाहिये तथा उसका उपभोग भी नहीं करना चाहिये।

९१—प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त होनेपर न तो उसकी निन्दा करनी चाहिये, न उससे द्वेष करना चाहिये, न उसमें दुखी होना चाहिये ।

९२—किसी भी परिस्थितिमें सुखके लोभसे या दुःखके भयसे विवेकका अनादर नहीं करना चाहिये । हर समय सावधान रहना चाहिये ।

९३—शरीरको अपना स्वरूप नहीं मानना चाहिये तथा उसमें ममता और आसक्ति भी नहीं करनी चाहिये । सर्वथा असंग रहना चाहिये ।

९४—सब प्रकारकी समस्त कामनाओंका अभाव होनेसे मन स्वाभाविक ही स्थिर और एकाग्र हो जाता है, उसके लिये प्रयत्न नहीं करना पड़ता ।

९५—साधकको चाहिये कि भगवान्को हर समय याद रखे । किसी भी परिस्थितिमें भगवान्को कभी भी न भूले । इसके लिये नाम-जपका अभ्यास बहुत उपयोगी है ।

९६—किसी प्रकारके गुणका अभिमान और प्रदर्शन नहीं करना चाहिये । अभिमान करनेसे मनुष्यमें अनेक प्रकारके दोष आ जाते हैं तथा वह गुण भी दोषमें बदल जाता है ।

९७—शरीरसे असङ्ग होनेपर सुख-दुःखसे अतीत स्थिति प्राप्त हो जाती है । समस्त वासनाओंका नाश हो जाता है, उस स्थितिमें जो उसके शरीरद्वारा क्रिया होती है, वह राधनरूप होती है । उससे पूर्वके कर्म-संस्कारोंका नाश हो जाता है ।

९८—विश्वास और प्रेम मनमें नहीं होते । मन तो उनको प्रकाशित करनेवाला यन्त्र है ।

९९—विश्वास और प्रेम उसमें होते हैं, जो मनको भी प्रकाशित करता है । जैसे बल्बमें प्रकाश नहीं है, वह तो प्रकाशको प्राप्त करनेका यन्त्र है । प्रकाशका केन्द्र तो पावर-हाउसमें है ।

१००—जीनेकी आशा, पानेकी आशा, करनेकी आशा, भोगनेकी आशा—इन आशाओंने ही मनुष्यको ईश्वरसे दूर कर रक्खा है । अतः साधकको सब प्रकारकी आशाओंका त्याग कर देना चाहिये ।

१०१—आसक्ति और स्वार्थको लेकर जो प्रियता होती

है, वह प्रेम नहीं है, वह तो मोह है । वह प्रियता विषु नहीं होती, एकदेशीय होती है । उसमें राग-द्वेषका नाश नहीं होता । प्रेम तो वह है जिसमें स्वार्थ और विषमता नहीं रहती ।

१०२—सुख-दुःख कर्मका फल नहीं है । कर्मोंके फलके रूपमें तो परिस्थिति प्राप्त होती है । उसमें सुख और दुःख तो मनुष्यके भावानुसार होते हैं । विवेकी मनुष्य परिस्थितिसे अतीत जीवन प्राप्त करनेके लिये उनसे असंग हो जाता है ।

१०३—विवेकविरोधी कर्मके त्यागसे कर्तव्यपरायणता, विवेकविरोधी सम्बन्धका त्याग करनेसे स्थूल-सूक्ष्म और कारण शरीरोंसे असंगता तथा विवेकविरोधी विश्वासका त्याग करनेसे समस्त आसक्तियोंका नाश होकर प्रभु-प्रेमकी अभिव्यक्ति अपने-आप प्राप्त होती है । अतः इन तीनोंका त्याग परम आवश्यक है ।

१०४—मनुष्यकी माँग शान्ति, सामर्थ्य, स्वाधीनता और अनन्त रसकी है । उसकी पूर्तिके लिये संकल्प-पूर्तिके सुखभोगका त्याग करना, संकल्प-निवृत्तिकी शान्तिमें रमण न करना, सामर्थ्यका दुरुपयोग न करना और प्रभुमें अनन्य प्रेम करना परम आवश्यक है ।

१०५—काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जिसको पराजित न कर सके एवं सुख-दुःखका आक्रमण जिसपर अपना प्रभाव न कर सके, वही वीर और धीर है ।

१०६—धीर पुरुष अपने विरोधीपर विजय प्राप्त करके भी क्रोध न करके धैर्यपूर्वक कर्तव्यपालन करता है । उसपर हर्ष और शोक दोनों अपना प्रभाव नहीं डाल सकते ।

१०७—जिसका भाव, चरित्र, विश्वास, विवेक, संकल्प और पराक्रम सब-के-सब एक होकर जीवन बन गये हैं, वही वीर कहलाने योग्य है । ऐसा वीर एक दुर्बल मनुष्य भी बन सकता है । इस वीरताके लिये शारीरिक बलकी आवश्यकता नहीं है ।

१०८—सत्पुरुषोंका सङ्ग करनेके लिये साधकको सबी अभिलाषाके साथ चेष्टा करते रहना चाहिये । ऐसा करनेसे सत्सङ्गकी प्राप्ति अवश्य हो सकती है, इसमें संदेह नहीं ।

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गतांक पृष्ठ १२८ से आगे]

हमारी दक्षिण भारतकी तीर्थयात्राका प्रधान केन्द्र मद्रास ही था। विजयवाड़ासे मंगलगिरिमें पना-नृसिंहजीके दर्शनोपरान्त हमलोग सीधे मद्रास पहुँचे। यहाँ गोविन्ददासके भानजे भगवानदासजीके हम मेहमान थे। अपनी उत्तराखण्डकी गत यात्रामें हमारे यात्रा-दलमें बारह व्यक्ति थे। इस बार रत्नकुमारीके एकाएक रुक जानेके कारण दक्षिण भारतकी यात्रामें हमलोग ग्यारह रह गये। रत्नकुमारीको छोड़ ग्यारह वही यात्री थे, जो उत्तराखण्ड गये थे। मद्रास पहुँचते ही भगवानदासकी पत्नी श्रीमती प्रकाशवतीजी, जिनके हम अतिथि थे, मद्रासमें हमारे आतिथ्य-सत्कारके साथ हमारी यात्रा-साथिन भी हो गयीं और उनके साथ होते ही हमलोग पुनः उत्तराखण्डकी यात्राके सदृश बारह हो गये। मद्राससे उनके यात्रापर रवाना होते ही भगवानदासजी बोले—‘आपके आप जायँ साथ ले जायँ यजमान।’ वाली कहावत आपने चरितार्थ की। उनका यह संकेत गोविन्ददासकी धर्मपत्नी और अपनी मामी गोदावरी देवीके प्रति था, जिनके स्नेहवश प्रकाशवती इस यात्रापर हमलोगोंके साथ जा सकीं।

मद्रास एक वन्दरगाह होनेके कारण भारतकी दक्षिण-पूर्वी सीमा निर्धारित करता है। इसका महत्त्व उसकी अनेक विशेषताओंके कारण और बढ़ गया है। यों तो सारा दक्षिण भारत ही मन्दिरोंकी प्रचुरताके कारण देवभूमि बना हुआ है किंतु मद्रासको मन्दिरोंका नगर नामसे पुकारा जाता है। यहाँके मन्दिर प्राचीन भारतीय संस्कृति, भवननिर्माण-कला एवं इंजीनियरिंग आदिकी अनेक विशेषताओंका प्रतिनिधित्व करते हैं। कर्नाटक संगीत तथा भारत नाट्यमूका उत्कर्ष यहीं हुआ। द्रविड़ सभ्यता, जिसकी छाप हड़प्पा और मोहन-जोदड़ोपर भी पायी गयी है, यहींपर फूली-फली।

यहाँके मन्दिरोंमें केवल निर्माण-कलाका ही चमत्कार नहीं, अपितु इनमें दक्षिण भारतकी जनताका जीवन तथा सांस्कृतिक परम्पराएँ प्रतिबिम्बित होती हैं। मन्दिरोंके चारों ओर आप मद्रासके आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जीवनके प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं। मद्रासमें आप कहीं भी चले जाइये, हर आवादीके केन्द्रमें आप

मन्दिर पायेंगे, जिनमें आपको इस क्षेत्रकी सभ्यता तथा कला पराकाष्ठाको पहुँची हुई स्पष्ट प्रतिबिम्बित होगी। यहाँ एक अजायबघर भी है, जिसमें ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्वकी अनेक दुर्लभ वस्तुओंका एक सुन्दर संग्रह है।

सांस्कृतिक महत्त्वके बाद हमारी दृष्टि इसकी भौगोलिक विशेषताओंकी ओर जाती है। मम्बई और कलकत्ताके बाद मद्रास भारतका तीसरा सबसे बड़ा नगर है। इसका क्षेत्रफल ५५ वर्गमील और जनसंख्या लगभग २० लाख है। मद्रासको दक्षिण भारतका प्रवेशद्वार कहा गया है। यहाँसे दक्षिण भारतके किसी भी नगरको पहुँचा जा सकता है। इसके अतिरिक्त उत्तर भारतके अनेक महत्त्वपूर्ण नगरोंको यहाँसे वायुयान तथा रेलगाड़ियाँ भी जाती हैं।

मद्रासके ऐतिहासिक महत्त्वपर दृष्टिपात करनेपर हमारा ध्यान १५०० वीं सदीके उस समयकी ओर चला जाता है, जब पुर्तगालियोंने मायलापुरके केन्द्रमें एक फैक्टरी तथा सेंट थामसकी २०० वर्ष पुरानी कब्रपर एक रोमन कैथोलिक चर्चका निर्माण किया था।

मद्रासके प्रमुख आकर्षण हैं—सेंट जार्जटा किला, सेंट मेरीका चर्च व प्रकाश-स्तम्भ। सेंट मेरीका चर्च संसारके पूर्वी देशोंका सर्वप्रथम प्रोटस्टेंट चर्च है। यहाँका प्रकाश-स्तम्भ १६० फुट ऊँचा है जिसपरसे सम्पूर्ण मद्रास नगरपर सरसरी निगाह डाली जा सकती है। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय-भवन, राष्ट्रीय आर्ट गेलरी, अजायबघर, चिड़ियाघर, प्रयोगशालाएँ तथा स्थानीय उद्यान भी पर्यटकोंकी दृष्टिको सहज ही आकर्षित कर लेते हैं। इसके साथ ही यहाँका सचिवालय-भवन, विधान-सभा-भवन तथा कई बड़े-बड़े सरकारी कार्यालय भी दर्शनीय हैं।

मद्रासका प्रमुखतम व्यापारिक केन्द्र माउण्टरोड नगरके ठीक बीचोंबीच स्थित है। माउण्टरोडके दोनों किनारोंपर बड़ी-बड़ी दूकानें, वैभवपूर्ण होटल तथा सार्वजनिक मनोरंजनके अनेक महत्त्वपूर्ण स्थल हमारे सामने आते हैं। गवर्नमेंट ऐस्टेट तथा चिल्ड्रन थियेटर भी इसी सड़कपर स्थित है। जार्जटाउन भी मद्रासका एक प्रमुख व्यापारिक

केन्द्र है जो घनी आबादीके बीच बसा है। मद्रास अब तेजीके साथ एक औद्योगिक नगरके रूपमें परिवर्तित होता जा रहा है। डनलप टायर, हरकुलीज साइकिल तथा स्टील ट्यूबकी यहाँ बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ खुल गयी हैं। पैराम्बुरमें कर्नाटक तथा बर्किंगम मिर्चें भी दर्शनीय हैं।

मद्रासकी इस धार्मिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं औद्योगिक गरिमाका अवलोकन करने यहाँ प्रतिवर्ष सहस्रों पर्यटक आते हैं। यहाँ प्रत्येक स्तरके पर्यटकोंके लिये आवास तथा भोजनकी भी सुन्दर व्यवस्था है। कोनेमरा, दसप्रकाश, एयर लाइन्स एवं बुललैण्ड आदि यहाँके प्रसिद्ध होटल हैं जो आधुनिक सुख-सुविधासे पूर्ण तथा जिनमें प्रति कमरा साढ़े दस रुपयेसे लेकर पैंसठ रुपये प्रतिदिनके हिसाबसे उपलब्ध हो सकता है।

मद्रासका वर्णन तबतक अपूर्ण होगा जबतक इसकी नदियाँ एवं जलमार्गोंका वर्णन नहीं किया जाता। कोडम नदी मद्रासको दो भागोंमें विभाजित करती है। यह नगरके पश्चिमी छोरसे प्रविष्ट होती है और सेंट जार्ज किलेके सामने समाप्त हो जाती है। इसके तीन मील दक्षिणमें आड्यार नदी है जो आगे चलकर बंगालकी खाड़ीमें मिल जाती है। बर्किंगम नहर उत्तरी क्षेत्रमें बहती कृष्णा नदीको दक्षिणके पांडिचेरी क्षेत्रसे मिलती है। इस नहरमें भारतमें बने जहाजी वेड़े तथा आधुनिकतम जलयान खाद्यपदार्थों तथा अन्य अनेक वस्तुओंको लेकर एक स्थानसे दूसरे स्थानकी ओर जाते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

मद्रासका प्रमुख बन्दरगाह मरीना संसारका दूसरे नम्बरका सबसे लम्बा समुद्रतट माना जाता है। विशाल और विस्तीर्ण फैले सिन्धुका यह विशाल और विस्तीर्ण तट सचमुच ही बड़ा सुहावना और मनोरम है। बम्बईके गेटवे आफ इण्डिया, महालक्ष्मी और चौपाटी समुद्रतटोंकी भाँति यहाँ भी प्रतिदिन सहस्रों नर-नारी सिन्धु-सम्पर्कका सुख उठाते हैं। दूर-दूरतक नीलाकाश और उसके नीचे नीलिमा लिये लहराता सिन्धु सूर्यास्तके सुनहरे प्रकाशमें जब अपनी आभासे ज्योतिर्मय होता है, जान पड़ता है धरती और गगनके बीच केवल यही एक जलधि है जो चेतन जगत्का जीवनदाता है। हमलोगोंने भी मद्रासके इस मरीना समुद्रतटपर कुछ देर बैठकर यहाँ सिन्धुसे सम्पर्क साधा। सुदूर फैला सिन्धु और विस्तीर्ण क्षेत्रमें फैला रेतीला समुद्रतट, जिसमें बैठे

सहस्रों नर-नारी प्रकृतिके इस वैभवका जब रसास्वादन करते हैं तो जान पड़ता है प्रकृतिकी प्रधान रचना मानवके सुखोपभोग, सेवा और सत्कारके लिये ही मानो प्रकृतिने शेष सृष्टिकी रचना की हो। कितनी विशाल, कितनी उदार और कितनी मोहक देन है यह प्रकृतिकी और कितना महान्, कितना पराक्रमी और कितना बड़भागी है प्रकृतिका पुजारी यह मानव जो ईश्वर और उसकी मायाके सदृश प्रकृतिप्रसूत इस जड-जंगम जगत्से केलि-क्रीड़ा करता है।

मरीनाके इस समुद्रतटपर हमलोगोंने सिन्धु और उसके तटके सहयोगी भावके प्रतीक नारियलके डाय लिये और इस मिष्ट-मधुर फलका रसास्वादन कर मरीनाके इस समुद्रतटसे विदा ली। इसके किनारे क्वीन मेरी कालेज, प्रेजीडेंसी कालेज, विश्वविद्यालय-भवन एवं सीनेट हाउस आदि भी अवस्थित हैं। 'आइस हाउस' भी इसीके तटपर स्थित है, जिसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीके जमानेमें अंग्रेज सौदागरोंके प्रयोगके लिये उत्तरी अमेरिकासे वर्ष मँगाकर एकत्रित की जाती थी।

इसके अतिरिक्त मद्रासकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं जो इसे एक वैभवपूर्ण एवं साधनसम्पन्न नगरका रूप प्रदान करती हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कर्मचारियोंद्वारा बनाये गये मकानोंके अतिरिक्त यहाँ गौधीनगर-जैसी आधुनिकतम कालोनियाँ भी हैं। जगत्प्रसिद्ध 'थियोसोफिकल सोसाइटी'का प्रधान कार्यालय यहीं है। यहाँके विख्यात पुस्तकालयमें दर्शनशास्त्र, साहित्य, विज्ञान आदि विषयोंसे सम्बन्धित अनेक दुर्लभ ग्रन्थों एवं प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियोंका सुन्दर संग्रह है। आड्यारमें श्रीमती रुक्मिणी देवीने एक 'कलाक्षेत्र' की स्थापना की है जिसमें भारतीय नृत्य एवं संगीतकी शिक्षा दी जाती है।

इस प्रकारकी साधनसम्पन्न एवं आधुनिक नगरी मद्रासमें ऐतिहासिक महत्त्वके भी अनेक स्थल हैं। यहाँके एक बागमें डा० एनी बीसेंट एवं कर्नल ओकाटको दफनाया गया था। सेंट जार्ज किलेमें अवस्थित एक चर्चमें सन् १७५३ में राबर्ट क्लाइवने मार्गरेट मैस्किलिनसे विवाह किया था। इसी किलेमें मद्रासके ६ ब्रिटिश गवर्नरों तथा पादरी श्वार्ट्जकी कब्रें हैं।

१७वीं सदीके प्रारम्भमें ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनीने मसूलीपट्टमको अपना व्यापारिक केन्द्र बनाया। कम्पनीकी मसूलीपट्टम काउंसिलके एक सदस्य फ्रांसिस डे सन् १६३९

में मद्रासपट्टम आकर बस गया। जहाँ अंग्रेजोंने अपनी प्रथम फैक्टरी तथा किलेका निर्माण किया। यह वर्तमान मद्रास नगरका उत्तरी भाग है। सेंट जार्ज किलेके निर्माणमें १४ वर्ष लगे और यह सन् १६५३ में बनकर तैयार हुआ। मद्रास नगर निगमकी स्थापना भी १७ वीं शताब्दीमें हुई।

निष्कर्षरूपमें मद्रास नगर भारतकी प्राचीन सभ्यता एवं इतिहासकी एक सजीव झलक है। इसमें मन्दिरों, गिरजाघरों तथा कब्रोंकी एक अद्भुत शृङ्खला है जिनका एक-एक पत्थर धुंधले अतीतकी याद दिलाता है।

यहाँकी जलवायु वर्षभर गरम किंतु स्वास्थ्योपयोगी है। समुद्र-स्नानस्थानीय लोगों तथा नवागन्तुकों—दोनोंके आकर्षण तथा रुचिका केन्द्र है। आड्यार एवं समुद्र-तटपर जनताकी इस रुचिको पूरा करनेके लिये कुछ बोटिंग क्लब भी स्थापित किये गये हैं। क्रीडा-प्रेमियोंके लिये रेसकोर्स मैदान, गोल्फ कोर्स मैदान तथा अनेक प्रकारके स्टेडियमकी भी व्यवस्था है।

इस प्रकार दक्षिण भारतके इस प्रवेशद्वार मद्रासकी ओर भारत तथा संसारके अन्य देशोंके पर्यटकोंका ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक ही है। यह दिल्लीसे १३६१ मील, कलकत्तासे १०३२ मील तथा बम्बईसे ७९४ मील दूर है। सरकारने भी पर्यटकोंकी सुविधाके लिये कुछ कम कार्य नहीं किया। मद्रास जानेके लिये वायु तथा रेलसेवाकी सुन्दर व्यवस्था है। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली तथा श्रीलंकासे विमानद्वारा मद्रास अब कुछ ही घंटोंमें पहुँचा जा सकता है। माउण्टरोडपर पर्यटकसूचना-कार्यालय, वायु-सेवाके अनेक टिकिट-घर तथा टूरिस्ट एजेंसियाँ हैं।

लगभग चौबीस घंटे मद्रासमें सुकाम कर दूसरे दिन लगभग दो बजे मोटर बसद्वारा बालाजीके लिये रवाना हुए। रेलकी अपेक्षा बसकी यात्रामें भौगोलिक और सामाजिक दोनों ही निरीक्षण कुछ अधिक होते हैं। मद्रास तामिलनाडुमें है और बालाजी आन्ध्र प्रदेशमें। दक्षिण भारतके इन दो विभिन्न प्रदेशोंकी भौगोलिक स्थितिमें कोई अन्तर नहीं है और न यहाँके मानवोंके रूप-स्वरूप वेश-भूषा आदिमें। अन्तर केवल भाषाका है और इस अन्तरने समान भौगोलिक स्थिति रहते हुए भी तथा दोनों क्षेत्रोंमें एक ही द्रविड़ जातिके निवासी होनेपर भी दो राज्योंका निर्माण कर दिया। यहाँतक कि तामिलनाडुके निवासियों और आन्ध्रप्रदेशके निवासियोंके आपसी सम्बन्धतक प्रेमपूर्ण नहीं। जो भाषा

मानवको सच्चा मानव बनाती है, उस भाषाभेदसे कभी-कभी कैसी विलक्षण स्थिति उत्पन्न हो जाती है!

मद्राससे बालाजीके मार्गमें हमने दक्षिण भारतके देहाती क्षेत्रके समाजका निरीक्षण किया। मार्गमें हमें अनेक कस्बे और गाँव मिले। हमने यहाँकी खेती देखी और विकासके उस समयके कुछ सरकारी काम। साथ ही यहाँका प्राकृतिक सौन्दर्य भी।

बालाजीके लिये तिरुपतिमें बस बदलनी पड़ती है। हमलोग तिरुपतिमें बस बदल बालाजीके लिये साढ़े सात बजे संध्याको रवाना हुए। 'तिरुपति' तमिल भाषाका शब्द है। 'तिरु'का मतलब 'श्री' है और पतिका मतलब 'प्रभु'। इस प्रकार 'श्रीप्रभु' यानी श्रीमहाविष्णु हुआ। 'तिरुमलै'का अर्थ श्रीपर्वत है। यानी वह पर्वत जिसपर भगवान् श्रीविष्णु लक्ष्मीके साथ विराजमान हैं।

विद्यानां वेदविद्येव मन्त्राणां प्रणवो यथा।

प्राणवत्प्रियवस्तूनां धेनूनां कामधेनुवत्॥

तथा वेंकटेशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः॥

जिस तरह सब विद्याओंमें वेदविद्या, मन्त्रोंमें प्रणव, प्रिय वस्तुओंमें प्राण और गायोंमें कामधेनु उत्तम हैं, उसी तरह सब पुण्य क्षेत्रोंमें वेंकटाचल क्षेत्र उत्तमोत्तम है। जिस पहाड़पर भगवान् वेंकटेश्वरका मन्दिर है उसीको वेंकटाचल कहते हैं।

दक्षिण भारतमें आन्ध्र राज्यके चित्तूर जिलेमें तिरुपतिसे बारह मील २८०० फुट ऊँचे 'तिरुमलै' नामक पर्वतपर श्रीवेंकटेश्वर बालाजीका विशाल मन्दिर है। तिरुपतिसे बालाजी जानेके लिये दो रास्ते हैं, एक पुराना पगडंडीवाला सात मील पैदलका, इस रास्ते सीढ़ियोंपर चढ़ते हुए जाना पड़ता है। निर्बल, बूढ़े और बच्चोंके लिये यह कष्टकर है। पुराने जमानेमें ऐसे लोग डंडियों, डोलियोंपर बैठकर इस रास्ते आया-जाया करते थे। वर्तमानमें एक दूसरा मोटर-मार्ग लगभग बीस लाख रुपयेकी लागतसे श्रीबालाजी-मन्दिर-कमेटीने बनवा दिया है जिससे यातायात सुगम हो गया है। किंतु यह बारह मील अधिकतर मोड़दार और चढ़ाईवाला मार्ग है। इस मार्गपर रवाना होते ही गोविन्ददासको सन् १९१६ का समय याद आया जब वे अपने माता-पिताके साथ बालाजी आये थे। उस समय मोटरका मार्ग न होकर पैदल मार्ग ही था। इस मार्गपर लोग पैदल चलते थे और

डोलीपर भी। इस समयकी एक घटनाका उन्हें स्मरण हो आया। जब गोविन्ददास अपने माता-पिताके साथ पैदल मार्गद्वारा बालाजी जा रहे थे तो डोलियोंकी व्यवस्था थी और मार्गमें बीच-बीचमें इन डोलीवालोंको दही पिलाया गया था, कदाचित् भारवाहकोंके मार्ग-श्रम-निवारणके लिये। अब मोटर-यातायातकी व्यवस्था हो जानेसे पैदल कौन जाना चाहेगा ?

हमारी यात्रा-डोली तिरुपतिसे सायंकाल मोटर बसद्वारा 'तिरुमलै' के लिये रवाना हुई। लगातार चढ़ाईवाला मार्ग, फिर अत्यन्त घुमावदार। कुछ देरतक तो हम इस सर्पाकार लहराते पथ और उसके निकट नीचे खाई-खंडोंको देख सके। किंतु थोड़ी ही देरमें हमारे आसपास सघन अंधेरा छा गया। इस गहन अन्धकारमें हमें कुछ अजीब और आकर्षक दृश्य दिखे। ज्यों ही हमारी मोटर मोड़पर चलती हुई मुड़कर इतनी लौट जाती कि पीछे छोड़ा हुआ तिरुपति नगर जो अब काफी निचाईपर था, विद्युत्-प्रकाशमें एक अपूर्व आभासे आलोकित हमारी दृष्टिके सम्मुख आया जान पड़ा। जैसे कोई नक्षत्र-लोक हो या किसी झीलमें मुक्तामणि भरे हों, अथवा अन्तरिक्षसे नक्षत्र उतरकर तैर रहे हों। विद्युत्-प्रकाशसे रत्नद्वीपों-सा जगमगा रहा था तिरुपति नगरका सारा दृश्य। दूसरी ओर मोटरमार्गकी बायीं ओरका पगडंडीवाला पैदल पथ जो विजलीके प्रकाशसे युक्त था, सर्पाकार लहराता पहाड़की चोटीको जाता हुआ ऐसा दीखता जैसे पर्वतपर पंक्तिबद्ध संजीवनी बूटीकी पौध लगी हो। हम अपनी मोटरकी खिड़कीसे नीचे कभी तिरुपति नगरकी शोभा देखते, कभी इस ऊँचाईकी ओर जानेवाले पगडंडीवाले मार्गको। इसी बीच जोरकी वर्षा होने लगी। फिर क्या पूछना था, सारा दृश्य मनोहारी हो गया। मोटर-पथमें पल-पल पड़ते मोड़ोंसे यह दृश्य देखते पुलक-नात और प्रफुल्ल-मन जान पड़ा। पल मारते ही हमारी मोटर बालाजीके बस स्टैंडपर आ लगी। ८ सितम्बरको लगभग ९ बजे रात्रिमें हमने तिरुमलैकी पवित्र भूमिका स्पर्श किया।

बालाजीके बस-स्टैंडपर पहुँचते ही हमने अपने बालाजी प्रवास कालके लिये प्रवासगृह आदि बातोंके लिये पूछ-ताछ की। मद्राससे ही हमने तार देकर अपने ठहरने आदिकी आवश्यक बातोंके लिये मन्दिर-कमेटीको लिख दिया था। तदनुसार एक अच्छे साफ मुन्दर स्थानकी व्यवस्था भी हो गयी। बस स्टैंडसे हमलोग अपने सुकामके लिये, जहाँ

हमें ठहरना था, रवाना हुए। इसी बीच हमारे साथ एक अद्भुत घटना घट गयी।

कुली सामान लेकर जा रहे थे, उनके साथ गोविन्द-प्रसाद श्रीवास्तव पहले रवाना हुए। गोविन्ददास मन्दिर-कमेटीके पूछताछ दफ्तरमें कुछ जानकारी ले रहे थे। इसी समय गोविन्ददासकी पत्नी गोदावरी देवी और गोविन्ददासके भानजे भगवानदासकी पत्नी श्रीमती प्रकाशवती देवी, जो मद्राससे हमारे साथ हो गयी थीं, ये दोनों महिलाएँ बस-स्टैंडसे गायब हो गयीं। गोविन्ददासकी भावज नारायणी देवीको एक डोलीमें बिठा दलके अन्य नौकर सुकाम स्थान-पर ले गये। जब गोविन्ददास अपने सुकामपर पहुँचे तो अपनी पत्नीको वहाँ न देख साथवालोंसे पूछताछ की। दलके सभी सदस्य सिवा उक्त दोनों महिलाओंके अपने अड्डेपर उपस्थित थे। गोविन्ददासकी हैरानी बढ़ी। अतः वे अपनी पत्नीको खोजने निकल पड़े। रात्रिका समय, स्थान अपरिचित और न जाने क्या-क्या बातें हमलोगोंके दिमागमें आतीं। एक ओर गोविन्ददास, दूसरी ओर गोविन्दप्रसाद, तीसरी ओर गुरुप्रसाद रसोइया और चौथी ओर गोदावरीदेवीकी परिचारिका श्यामा—गोदावरीदेवीको खोजने चल पड़े। यद्यपि कोई विकट वन नहीं था, तथापि सघन बस्ती थी, फिर तीर्थयात्रियोंकी भीड़। वनमें तो केवल भूलने-भटकनेका भय रहता है, साथ ही हिंसक वनचरोंका भी, किंतु किसी अपरिचित स्थानमें, जहाँ अपना कोई नहीं, सभी पराये हों, चौपद पशुकी उपेक्षा द्विपदधारी मानवका भय अधिक बेहाल बना देता है। अतः नाना आशंकाओं-भरे हृदयसे उक्त चार व्यक्ति बालाजी नगरके आम पथमें ही नहीं, गलियों-कूचोंमें घुस पड़े। गोविन्दप्रसादने अपने अतिरिक्त बालाजीके पंडा, जो मोटर स्टैंडपर हमसे मिल चुके थे, उन्हें तथा उनके अतिरिक्त उन भारवाहकोंको जो सामान लेकर आये थे तथा कुछ और आदमियोंको इन महिलाओंकी खोजके लिये भेज दिया। पर पता किसीको न लगा। इस समय गोविन्ददासकी मनःस्थिति और अस्त-व्यस्त शारीरिक दशा देखते ही बनती थी। राह चलते हर व्यक्तिसे पुरुषों और महिलाओंसे, बालकों और वृद्धोंसे वे अपना परिचय दे, अपनी पत्नीका आकार-आकृति बना पता पूछते। हर व्यक्तिसे 'ना' में उत्तर पा हताश हो आगे बढ़ते और आगे मिलनेवालेसे फिर वही प्रश्न करते। गोविन्ददासकी यह दशा देख वनवासकालमें

संख्या ६]

भगवान् रामका सीता-विरह स्मरण हो आया, जब वे—

‘पूछत चले लता तरु पाती’

तथा—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी ।

तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥

बंजन सुक कपोत मृग मीना ।

मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥

—आदिसे पूछते विरह-व्यथामें व्याकुल बावरे बने वनमें भटक रहे थे। उस कालमें लता-पात और वनचर मनुष्यसे बात करते थे। यही नहीं, किंतु गोस्वामी तुलसीदासजीने भगवान् रामकी एक साधारण नरकी भाँति नारी-विरहमें जो अवस्था थी, उसका चित्रण किया है। आगे जब वे—

किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं ।

प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥

पहि विधि खोजत बिलपत स्वामी ।

मनहुँ महा विरही अति कामी ॥

—इन शब्दोंमें रामकी मनोदशाका चित्रण करते हैं। तब तो नारी-विरह-वर्णन पराकाष्ठाको पहुँच जाता है। जब एक अवतारी अथवा अवतारी नहीं तो एक नर-नाहर क्षत्रिय राजकुमारकी पत्नी-वियोगमें यह मनःस्थिति हो जाती है तो एक साधारण गृहस्थकी क्या अवस्था होगी, इसका सहज अंदाज लगा जाता है। गोविन्ददास अपनी पत्नी गोदावरी देवीके बालाजी-प्रवेशके साथ ही इस तरह गायब होनेपर हैरान थे।

विचित्र संयोगकी बात थी। उत्तराखण्डकी यात्रामें इसी प्रकारकी एक घटना जब हमलोग बदरीनाथपुरीके लिये पीपलकोटीसे कुमारचट्टीकी ओर जा रहे थे, तो हमारे दलकी दो महिलाओं, एक गोविन्ददासके सदर मुनीमकी पत्नी, दूसरी गोदावरी देवीकी परिचारिका श्यामाके बिलगावकी घटित हुई थी। वह घटना उस वक्त घटी जब हमलोग अपनी चारों धामों यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ—तीन धामोंकी यात्रा समाप्त कर चौथे और अन्तिम बदरीनाथ धामको जा रहे थे। आजकी यह घटना हमारे यात्रा-कार्यक्रमके प्रथम धाममें प्रवेशके साथ ही घटी। ‘प्रथमग्रामसे भक्षिकापातः’ वाली उक्तिके अनुसार आज हम सभी भयग्रस्त और दुःखकातर थे। गोदावरी देवीको इस प्रकार बस-स्टैंडपर बिना अपने दलके किसी पुरुषके

संरक्षणमें छोड़े सबका अपने मुकामपर चले आना एक अनुचित बात तो थी, इसके साथ ही एक ऐसी अनहोनी और अनिष्टकारक घटनाका कारण भी हुई जिसपर सभी एक-दूसरेपर कुपित थे। पर इस परस्परके कोपमें सभीके दिलोंमें जो कसक और पीड़ा थी, वह भी बड़ी मार्मिक थी। गोविन्ददास व्याकुल थे तो बाकी सभी मोह-ग्रस्त। परिचारिका श्यामाकी अपनी मालकिनके वियोगमें विचित्र दशा थी। ऐसे ही अवसरोंपर अपने स्वामीके प्रति सेवकका अनुराग अनुभवमें आता है। इस भटक और खोजमें लगभग डेढ़ घंटा हम सभी हैरान हुए, क्या-क्या किया गया। पुलिस-थानेमें रिपोर्ट की गयी। लाउड-स्पीकरसे ऐलान कराया गया और अन्तमें दोनों महिलाएँ जब मिलीं तो अनायास ही। गोविन्ददास और उनकी पत्नी गोदावरी देवीका यह मिलन भी एक नाटकीय दृश्य था। श्यामा अपनी मालकिनको अपने बड़े-बड़े ललचाये लोचनोंसे घूर रही थी और हम सब कृतज्ञ-भावसे प्रभुको धन्यवाद दे रहे थे। पूछनेपर मालूम हुआ मन्दिरके पट खुले थे, अतः भक्तिमयी ये देवियाँ प्रभु-दर्शनकी लालसामें मन्दिर चली गयीं। जब हमलोगोंने इन्हें मन्दिरमें देखा तो ये वहाँसे रवाना हो चुकी थीं। तात्पर्य यह कि भगवान् तो अन्तर्धान होते ही हैं यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं, उनके भक्त भी अन्तर्धान हो जाते हैं। यह आज हमारे लिये आश्चर्य और असमंजसके साथ ही एक असाधारण अनुभव था।

पौराणिक एवं ऐतिहासिक तथ्योंसे स्पष्ट है कि वैकटेश्वर बालाजीका यह मन्दिर बहुत प्राचीन है। अतीतकालमें राजा-महाराजाओंमें स्वर्ण-रजतके बहुमूल्य आभूषणों, वस्तु-वाहनों तथा प्रचुर द्रव्यकी भेंटसे इस मन्दिरको समृद्ध किया गया है। इन दानदाताओंमें चोलवंश, पांड्य राजाओं तथा विजयनगर साम्राज्यके प्रसिद्ध सम्राट् श्रीकृष्णदेवराय और उनकी पत्नी तिरुमलदेवी तथा चिम्मनदेवीका योग विशेष उल्लेखनीय है। इसके साथ ही महाराष्ट्र, मैसूर और गडवाल-के राजाओंने भी बहुमूल्य भेंटोंसे मन्दिरको अलंकृत किया। श्रीकृष्णदेवराय और उनकी पत्नी तिरुमल देवी तथा चिम्मन देवीकी तो इस मन्दिरके प्रथम प्राकारके भीतर दरवाजेके बगलमें मूर्तियाँ भी रखी हैं जो उनके जीवनकालमें ही प्रतिष्ठित हो गयी थीं। दक्षिणके अन्य मन्दिरोंकी तरह विशाल गोपुरों, शिखरोंसे युक्त श्रीबालाजीका यह मन्दिर भी अपने

आकार-प्रकारमें विशाल है। फिर केवल अपने आकार-प्रकारमें ही नहीं, अपितु श्रद्धा, भक्ति, मनौती और उसकी सिद्धिकी दृष्टिसे भी श्रीबालाजीका मन्दिर सारे देशमें विख्यात है। श्रद्धा और भक्तिपूर्ण हृदयसे यहाँ की गयी मनौतियाँ अवश्य पूरी होती हैं। कुछ सफल परिणाम हमने स्वयं अपने मित्रोंके इन मनौतियोंके सम्बन्धमें देखे हैं। भारतवर्षके चार धामोंमें दक्षिणका धाम रामेश्वरम् है, तथापि अपनी इन विशेषताओंके लिये श्रीबालाजीका मन्दिर सारे भारतमें बेजोड़ है। फिर वैभव और समृद्धिकी दृष्टिसे भी शायद देशके सभी मन्दिरोंमें यह अग्रणी है। इसके स्वर्ण-मण्डित गरुड़-स्तम्भ और शिखर प्रभातकी रवि-रश्मियोंमें और

निशाके विद्युत्-प्रकाशमें जब अपनी पूर्ण आभासे दमकते हैं तो सोनेकी द्वारकाकी साकार कल्पना मस्तिष्कमें उतर आती है। फिर मन्दिरकी सारी व्यवस्थाके साथ ही यहाँकी पूजा-विधि भी अत्युच्च कोटिकी एवं बड़ी भक्तिभाव-वर्द्धक है। बदरीनाथकी भाँति मन्दिरमें दक्षिणी ब्राह्मण, जो यहाँके पुजारी होते हैं, बड़ी सुव्यवस्था और शुचितापूर्ण ढंगसे भगवत्सेवाके विविध अङ्गोंको पूरा करते हैं। मन्दिरके मध्यमें स्थित देवमूर्तिके सामने सहस्रोंकी संख्यामें कतारबद्ध नर-नारी इस पूजादर्शनका लाभ उठा अपनेको कृतकृत्य मानते हैं। बालाजीमें दर्शनार्थियोंकी जैसी भीड़ हमने देखी, वैसी भारतके किसी अन्य देवमन्दिरमें नहीं। (कशः)

धर्म-अधर्मके हिस्सेदार

(लेखक—ठाकुर श्रीसुदर्शनसिंहजी)

विश्वमें आप अकेले नहीं रहते हैं। कहीं किसी एकान्त-में जाकर भी आप एकाकी नहीं होते हैं। प्रकृतिके अविराम चलनेवाले विनिमयकी धारामें व्यक्तिकी कोई सत्ता नहीं है। परमाणुओंकी धारा प्रवाहित हो रही है। उसमें आपका शरीर पानीकी धारामें बहनेवाले आवर्तकी आकृतिके समान है। हम-आप श्वास-लेते हैं, कहाँ? उस वायुमें जो दूसरे सबके श्वाससे भरी है। यही अवस्था जलकी है। आपके प्रत्येक शब्द, प्रत्येक विचार, प्रत्येक चेष्टाका कम्पन सम्पूर्ण विश्वमें व्यापक हो रहा है।

जब हमारा स्थूल अस्तित्व ही अपने आपमें स्वतन्त्र नहीं है, हमारी क्रिया अपनेतक कैसे सीमित रह सकती है? हम किसी स्थानपर, किसी देशमें, किसी कालमें क्रिया करते हैं। वह क्रिया हमारे अनजानमें भी अनेकोंके सहयोग-की अपेक्षा करती है। एक व्यक्ति चाकूमें किसीपर चोट करता है। चाकूका लोहा खदानसे निकला, कारखाने गया, चाकू बना, बिका, यहाँतक सहस्रों व्यक्ति हैं उसे प्रस्तुत करनेमें। चाकूमें लकड़ीकी मूठ है और चाकू बनानेवालेका जीवन है। उस जीवनके उत्पन्न करने, पालन करने, अन्न-वस्त्र उपलब्ध करने, रोगोंसे बचाने, शिक्षा देनेमें सहस्रों व्यक्तियोंका योग है। इस प्रकार कोई कार्य अपने-आपमें स्वतन्त्र नहीं है। कर्मशास्त्रका कहना है कि पृथ्वी, पर्वत, नदियाँ, वन,

धातुएँ, समुद्र, सूर्य, चन्द्र, तारे, वायु आदि सब तत्त्व जीवोंके समष्टि-प्रारब्धसे निर्मित होते हैं।

कर्मका समष्टिपर प्रभाव तथा कर्ममें समष्टिका योग एक प्रत्यक्ष तथ्य है। इनको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। लेकिन यहाँ समष्टिके भागकी बात में नहीं करूँगा। व्यक्ति जो धर्म या अधर्म करता है, उसमें मुख्य-मुख्य हिस्सेदार कौन-कौन होते हैं, केवल यह बात यहाँ करनी है। आप धर्म करते हों या अधर्म, उसका बड़ा भाग किनको मिलता है—मिल सकता है, यह जान लेना इसलिये भी लाभदायक है कि अज्ञानके कारण हम अन्धोंके पापकर्ममें भागीदार होनेसे बचे रहें। साथ ही अनायास मिलते शुभ-कर्मके भागसे वञ्चित न हो जायें।

पति-पत्नी—कर्मका मुख्य दायित्व उसके कर्तापर ही होता है। लेकिन पत्नी पतिकी अर्धाङ्गिनी मानी जाती है। इसलिये पतिके धर्म-अधर्ममें पत्नीका तथा पत्नीके धर्म-अधर्म में पतिका बड़ा भाग होता है। साध्वी पत्नीके पुण्यबलसे पतित पतिका भी उद्धार हो जाता है, यह बात पुराणोंमें अनेक स्थानोंपर आयी है।

पिता-पुत्र—जैसे पिताकी सम्पत्ति तथा ऋणका भुगतान पुत्रको भोगना या देना पड़ता है, वैसे ही पिताके धर्म-अधर्मका शुभाशुभ प्रभाव भी उसकी संततिको प्राप्त होता

है। पुत्रका किया श्राद्ध ही पिताको नहीं प्राप्त होता; पुत्रके किये धर्म-अधर्मसे भी पिता प्रभावित होता है।

त्रिसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ।

भगवान् नृसिंहने प्रह्लादसे यह बात कही थी। भक्तिसूत्र-में तथा पुराणोंमें अन्यत्र भी आता है कि भगवद्भक्तके उत्पन्न होनेसे उस कुलके पितरोंका उद्धार हो जाता है।

तीन कुल सात पीढ़ियाँ—श्राद्धमें पिता, पितामह, प्रपितामह तथा वृद्धप्रपितामहको पितृकुलमें तथा इसी प्रकार चार पीढ़ियोंको मातृपक्षमें पिण्डदान किया जाता है। भगवान् नृसिंहने 'त्रिसप्तभिः' कहकर बतलाया कि माता-पिता तथा पत्नीके (स्त्री हो तो पतिके) कुलकी सात-सात पीढ़ियाँ भक्तके प्रभावसे पवित्र हो जाती हैं। इसका अर्थ हुआ कि भगवद्भक्त, ज्ञानी तथा उत्कट धर्मात्माके कर्म अपनेसे सम्बन्धित इन तीनों कुलोंके सात पूर्वजोंको पवित्र बना देते हैं।

शासक-प्रजा—जिसके शासनमें रहकर प्रजा धर्म या अधर्म करती है, उस शासकको प्रजाके धर्म-अधर्मका भाग मिलता है। सम्पत्तिके षष्ठांश तथा धर्माधर्मके दशांशका भागी शासक है। इसी प्रकार शासकके धर्म अथवा अधर्मका फल प्रजाको भी प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवतमें कथा है कि द्वारकामें एक ब्राह्मणका पुत्र जन्मते ही मर जाता था तो वह राजद्वारपर पुत्रका शव रखकर पुकारता था—'शासकके कर्मदोषसे ही मेरा पुत्र मरा है।' ऐसी और भी कथाएँ पुराणोंमें मिलती हैं।

भूमिपाल—जिसकी भूमिपर कोई शुभ अथवा अशुभ कर्म किया जाता है, उस भूमिका स्वामी उस कर्तके कर्मका भागी अवश्य होता है। इसलिये पहले पुण्यात्माजन अपनी भूमिपर ही यज्ञ-दानादि करते थे। तीर्थोंमें यात्रियोंके ठहरने तथा मुख-सुविधाकी व्यवस्था भी इसीलिये करते थे।

गुरु-शिष्य—जैसे पुत्र अपने पिताकी विन्दु-संतान है, वैसे ही शिष्य अपने गुरुकी नाद-संतान है। इसलिये गुरुके सत्कर्म—तप आदिका फल शिष्यको मिलता है। शिष्यके पुण्य अथवा पापका भागी गुरुको भी होना पड़ता है। बहुत-से विचारवान् धर्मज्ञ इसीलिये किसीको भी मन्त्र देकर शिष्य ही नहीं बनाते। जैसे शिष्यके लिये योग्य गुरुका अन्वेषण कर्तव्य है, गुरुको भी वैसे ही सत्यात्रको ही शिष्य बनाना चाहिये।

आश्रयदाता—किसी भी पुण्य अथवा पापकर्मको जिसने आश्रय दिया है, वह उसके पाप-पुण्यका भाग पाता है। लेकिन मनुष्य जिसका आश्रय ग्रहण करता है, उसके पाप-पुण्यका भाग भी उसे कुछ-न-कुछ ग्रहण करना ही पड़ता है।

आजीविका एवं सुविधादाता—जिसका अन्न कोई खाता है, जिसकी सहायतासे, जिसके द्वारा सुविधा उठाकर रहता है, उसके पाप-पुण्यका भाग भी ग्रहण करता है। सुविधा तथा आजीविका देनेवालेको भी उन सुविधा उठाने-वालोंके कर्मका भाग मिलता है। साधक इसीलिये सबका दान नहीं लेते। किसका अन्न ग्रहण करें, किसका न ग्रहण करें, इसका बहुत विचार करते हैं। तीर्थोंमें अन्न-सत्र लोग चलाते हैं। साधु-ब्राह्मणोंको, गरीबोंको, तीर्थयात्रियोंको वस्त्र, पाठ-पूजाकी पुस्तकें, जूता-छाता अथवा धन दान करते हैं। वे इन पुण्यात्माओंके पुण्यका भाग प्राप्त करते हैं।

स्वामी-सेवक—इन दोनोंमें भी एक-दूसरेके कर्मोंका विनिमय होता है। जैसे उत्तम सेवकके कारण स्वामीकी प्रशंसा तथा दुश्चरित्र सेवकसे स्वामीकी निन्दा होती है; वैसे ही स्वामीके सुयश-अपयशसे सेवककी भी प्रशंसा-निन्दा होती है। लोकमें ही ऐसा नहीं होता। दोनोंके पाप-पुण्यका भी कुछ अंश एक-दूसरेको प्राप्त होता है।

निन्दक-प्रशंसक—आपका कोई सम्बन्ध नहीं है। इतनेपर भी आप एक व्यक्तिके उत्तम कर्मकी प्रशंसा करते हैं और अधम कर्मकी निन्दा करते हैं। उस व्यक्तिके कर्मोंमें इस निन्दा या प्रशंसासे आपका भाग हो जाता है। प्रशंसा करके आप उसे यश तथा निन्दा करके अपयश देते हैं। इसलिये उसके पुण्य-पापका भाग मिलता है आपको।

पुराणमें एक कथा ही है कि किसी राजाने स्वप्नमें देखा कि उसके पुण्य तो हैं; किंतु उसके अपकर्मके स्वरूप बहुत-सी घोड़ेकी लीद भी एकत्र है जो उसे खानी पड़ेगी। देव-दूतने बताया कि लोग उसकी निन्दा करें तो लीद उनमें बंट सकती है। राजाने बुरा काम तो नहीं किया; किंतु ढंग ऐसा बनाया कि लोग उसे बुरा समझकर उसकी निन्दा करें। दुबारा उसने स्वप्न देखा तो थोड़ी लीद बची थी। राज-पुरोहितने बताया कि राज्यमें एक व्यक्ति है जो किसीकी निन्दा नहीं करता। वह निन्दा करे तो बची लीद समाप्त हो।

राजा वेश बदलकर गया। उसने अपनी निन्दा कराने-

की बहुत चेष्टा की तो वह व्यक्ति बोला—‘राजन् ! आपका प्रयत्न व्यर्थ है । वह लीद आपको ही खानी पड़ेगी । मैं आपकी निन्दा करके उसे खानेवाला नहीं हूँ ।’

जीवन्मुक्त पुरुषोंसे भी कर्म तो होते ही हैं । उनके मंचित तो ज्ञानसे भस्म हो जाते हैं । प्रारब्ध वे भोगते हैं । लेकिन ज्ञानके अनन्तर जो कर्म वे करते हैं, उसमेंसे शुभ कर्म उनकी सेवा तथा प्रशंसा करनेवालोंको तथा अशुभ कर्म उनको कष्ट देनेवालों तथा उनकी निन्दा करनेवालोंको प्राप्त हो जाते हैं । ऐसा शास्त्रोंमें वर्णन है ।

इस बातको कर्म-विनिमयके इस नियमको ध्यानमें रखकर प्रत्येक मनुष्यको परनिन्दा, परचर्चासे दूर रहना चाहिये ।

प्रेरक, सहायक, अनुमोदक—कर्ता सदा स्वेच्छासे अपनी प्रेरणासे ही कर्म नहीं करता । अनेक बार वह दूसरों-द्वारा प्रेरित किया जाता है । कभी-कभी तो कर्ता गौण होता है और प्रेरक ही मुख्य होता है । जैसे स्वामीकी आज्ञासे विवश होकर सेवकको जब कोई काम करना पड़ता है, गुरु या पिताकी आज्ञासे विवश शिष्य या पुत्रको कोई काम करना पड़ता है तो वहाँ आदेश देनेवाला ही कर्मका मुख्य उत्तरदायी होता है । कर्मके करनेवालेपर बहुत थोड़ा दायित्व रह जाता है ।

ऐसा न भी हो तो भी अनेक बार कर्ता वह कर्म न कर पाता, यदि उसे दूसरेसे प्रेरणा-प्रोत्साहन न मिलता । ऐसी अवस्थामें भी प्रेरक उस कर्मका उत्तरदायी होता है । भले

कर्ता वह कर्म स्वेच्छासे कर लेता; किंतु प्रेरणा देनेवाला कर्मके दायित्वसे मुक्त नहीं हो सकता । इसी प्रकार कर्ममें सहायता देकर कारण बननेवाला भी उस कर्मका उत्तरदायी है ।

कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ।
कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत् फलम् ॥

(श्रीमद्भागवत ११ । २७ । ५५)

भगवान्ने कहा है कि कर्मका कर्ता, प्रेरक, सहायक तथा उस कर्मका समर्थन-अनुमोदन करनेवाला भी—‘ठीक किया’ ‘यही करना चाहिये’ कहनेवाले भी जन्मान्तरमें उस कर्मके फलभागी होते हैं । बार-बार और बहुत अधिक होकर कर्मफल उन्हें प्राप्त होता है ।

अधर्मके सूचक—

यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्वेत् ।

(श्रीमद्भागवत १ । १७ । २२)

राजा परीक्षित् वृषभरूपधारी धर्मके सम्मुख यह तथ्य प्रकट कर रहे हैं—‘जो स्थान अधर्मके कर्ताको प्राप्त होता है, उस अधर्मकी दूसरोंको सूचना देनेवालेको भी वही स्थान, वही पापका फलभोग प्राप्त होता है ।’

‘अमुकने अमुक दुष्कर्म किया !’ यह सूचना सत्य हो सकती है; किंतु यह सूचना देकर कोई न तो दुष्कर्म रोक सकता, न कर्मका वह निर्णायक है । इसलिये उस अधर्मके फलमें हिस्सेदार बननेकी बुद्धिमानी न की जाय, यही उत्तम बात है ।

ए रे ! नर चेत !!

जीवन है थोरौ, काम करिबो घनेरौ, बस,
याही सोच परब्यौ मन राति-द्यौस अकुलात ।
स्वारथहि साधन में सारी आयु बीती जाति,
करि-करि पाप-कर्म छीन भयौ सब गात ॥
धर्म सौं न प्यार, सत्कर्म सौं न सरोकार,
झूठ, छल-छंद, मन्द ! अंगन सौं लपटात ।
ए रे ! नर चेत !! विनु पुन्य-जल सूख्यौ खेत,
सींचि, नर-देह तेरी धूरि सब भई जात ॥

—मकखनलाल पाराशर एम्० ए०

धर्मनिरपेक्ष राज्यकी कल्पना—एक समसामयिक चिन्तन

(लेखक—प्रो० श्रीकृपानारायणजी मिश्र, एम्. ए., शांजी, साहित्यरत्न)

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पश्चात् देशके नवनिर्माणकी समस्या देशनायकोंके सामने आयी। दुर्भाग्यवश राष्ट्रपिता बापू अपने स्वप्नोंके भारतको साकार किये बिना ही चल पड़े। वर्षोंके दासत्वके परिणामस्वरूप देशमें भीषण दारिद्र्य, साम्प्रदायिक कलह, जातिवाद, अशिक्षा एवं वर्ग-वैषम्यका भयावह दृश्य सामने था, जिससे नवागता स्वतन्त्रताकी सुरक्षा एवं मर्यादातक खतरेमें पड़ी-सी दीख पड़ती थी। दारिद्र्य, अन्नाभाव, औद्योगिक पिछड़ापन, सामाजिक वैषम्य एवं साम्प्रदायिक कलह—ये सब स्वतन्त्र राष्ट्रको विरासतमें मिले थे। हमारे राष्ट्रनायकोंने पं० जवाहरलाल नेहरूके नेतृत्वमें अदम्य उत्साह एवं अपूर्व साहससे इनका सामना किया। देशके औद्योगिक एवं आर्थिक निर्माणके लिये साम्यवादी रुसके अनुकरणपर पञ्चवर्षीय योजनाओंका प्रारम्भ हुआ। जनताके इस राज्यको ब्रिटेन और अमेरिकाकी नकलपर गणतन्त्र-राज्य (Democratic republic) घोषित किया गया। गांधीजीके विचारानुकूल एवं प्राचीन भारतीय संस्कृतिके अनुसार अहिंसा, सह-अस्तित्व एवं पञ्चशीलसे समन्वित गुट-निरपेक्ष विदेशी नीतिकी घोषणा हुई। गांधीजीके 'रामराज्य'की कल्पनाको साकार करनेके उद्देश्यसे राष्ट्रके सर्वतोन्मुखी विकासके लिये गणतन्त्रीय समाजवाद (Democratic socialism) की गृहनीति अपनायी गयी। ये नीतियाँ क्रान्तिकारी होती हुई भी आदर्श एवं आशापूर्ण थीं और इनके पीछे नये भारतके निर्माणकी महत्वाकाङ्क्षा थी। अतः जनताने इन्हें मौन स्वीकृति प्रदान कर दी। परंतु इस सिलसिलेमें जो सबसे भयंकर भूल हुई और जिसपर जनताने अच्छी तरह ध्यान नहीं दिया, वह थी इन राष्ट्रनायकोंकी 'धर्मनिरपेक्ष राज्य' (Secular state) की कल्पना, जो उस समय उच्च आदर्शोंके आवरणमें आच्छन्न, अत्यन्त लुभावनी-सी लगी। धर्मनिरपेक्षताकी नीतिको सभी सामाजिक एवं राजनीतिक बुराईयोंकी एकमात्र औषध बताया गया और फलस्वरूप भारत 'धर्मनिरपेक्ष राज्य' घोषित कर दिया गया।

सेक्युलर राज्य होनेके कारण आज अपने राष्ट्रका अपना कोई धर्म नहीं है। राष्ट्रको किसी भी धर्मकी अपेक्षा

नहीं, अतएव वह धर्मनिरपेक्ष है। यद्यपि वह व्यक्तिविशेष या सम्प्रदायविशेषके धर्ममें बाधा नहीं डालता, तथापि धर्म-प्रचार एवं धर्म-संरक्षण राष्ट्रका उद्देश्य नहीं है। राष्ट्रीय संस्थाओं, विद्यालयों तथा संघटनोंको किसी भी धर्मके प्रचार करनेका आदेश नहीं है। कैसा विचित्र आदर्श! कैसी समाज-घातिनी नीति! भ्रष्टाचारको खुला निमन्त्रण। मुनाफाखोरी एवं 'काले बाजार' की मार्गप्रशस्ति। और इस प्रकारकी नीतियोंका निर्माण किया भारतीयोंने, स्वतन्त्र भारतीयोंने अपने देशका नव-निर्माण करनेके लिये! उन लोगोंने नहीं समझा कि धर्मके ही कारण मनुष्य पशुसे मानव हुआ। मनुष्य भी एक पशु है, जो विचारशील एवं धार्मिक है और जिसे कर्तव्याकर्तव्य, धर्माधर्म, उचितानुचितका बोध है। इस बोधशक्तिका ही दूसरा नाम धर्म है। धर्म मानवका निर्माता है और समाजका आधार है। विज्ञान एवं तकनीकी-के प्रचारद्वारा देशका औद्योगीकरण करनेके महत्वाकाङ्क्षी हमारे राष्ट्रनायकोंने नहीं समझा कि मानव-चरित्रके निर्माणार्थ धर्म और दर्शनकी आवश्यकता विज्ञान और तकनीकीसे भी कहीं अधिक है। * उन्होंने इस बातपर ध्यान नहीं दिया कि धर्मका अर्थ ही होता है 'धारण करनेवाला।' धर्म ही राष्ट्र या समाजको धारण करता है—

धारणाद्धर्म इत्याद्धर्मो धारयति प्रजाः।

यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥

(महा० कर्म० ६९।५८)

“धारण करनेके कारण लोग इसे 'धर्म' कहते हैं। धर्म ही प्रजाको धारण करता है। जो धारणके साथ रहे, वही धर्म है—यह निश्चय है।”

जिस समाजका आधार (धर्म) ही नहीं रहेगा, उस समाजकी क्या गति होगी? धर्मको पाखण्ड, अन्धविश्वास और मूर्खताकी संज्ञा देनेवाले अब भी इस बातको समझनेका

* Philosophy and Religion help us more than the exact sciences in discovering a goal for human conduct, a unity for the higher endeavours of the human mind.

Radhakrishnan: East and West in Religion, George Allen & Unwin Limited, London. p. 98.

प्रयास करें कि धर्म किसी भी राष्ट्रके लिये अत्यन्त आवश्यक है। किसी भी राष्ट्रका वास्तविक विकास फौलाद और खादके कारखानोंसे नहीं होता, रेलों और सड़कोंके विस्तारसे नहीं होता, बड़ी-बड़ी इमारतों और संस्थाओंसे नहीं होता और विशाल व्यापारसे भी नहीं होता। राष्ट्रका वास्तविक विकास तब होता है, जब वहाँके नागरिक ईमानदार, सच्चे, उच्च तथा निर्मल चरित्र हो जाते हैं। उनमें मानवताके प्रति प्रेम, देशके प्रति निष्ठा, सत्यके प्रति अनुराग तथा अत्याचारके प्रति घृणाका भाव विकसित हो जाता है। उनका आत्मा इतना सबल हो जाता है कि उनसे कुछ भी अनुचित नहीं हो सकता। उनका चरित्र इतना सत्य-निष्ठ हो जाता है कि वे कुमार्गपर जानेका विचारतक नहीं कर सकते। उनके हृदयमें संतोष एवं उत्पत्ता इतना प्राबल्य होता है कि वे कभी लोभके शिकार नहीं हो सकते। उनकी अन्तरात्मा (Conscience) इतनी सचेत एवं प्रबल होती है कि वह उनके लिये सत्यासत्य और उचितानुचितकी सच्ची निर्णायिकाका काम देती है। जो राष्ट्र ऐसे नागरिकोंका निर्माण कर सके, वही वस्तुतः विकासशील राष्ट्र है। घूसखोरों, बेईमानों, चोरों, अत्याचारियों एवं भ्रष्टाचारियोंको पैदा करनेवाला और प्रश्रय देनेवाला राष्ट्र कभी भी विकास नहीं कर सकता। जिस राष्ट्रमें मानवताके निर्माणका कारखाना खराब हो गया हो, उसका विकास खाद और सीमेंटके कारखानोंसे नहीं किया जा सकता। जिस राष्ट्रमें मानव दिन-दूने रात-चौगुनेकी गतिसे बढ़ते जा रहे हों और मानवता उसी अनुपातमें घटती जा रही हो, वह राष्ट्र सचमुच अभागा है। जिस राष्ट्रने धर्मका ही परित्याग कर दिया हो और जो अपना विकास भी चाहता हो, उसका भला भगवान् ही कर सकते हैं।

धर्मसे ही मानवताका निर्माण होता है। धर्म मानवको सदाचारी एवं सत्यनिष्ठ बनाता है। आचार धर्मका प्रथम चरण है। 'आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च' (मनु० १।१०८)। धर्म शरीरपर आत्माकी विजय, इन्द्रियोंपर मनकी विजय एवं असत्यपर सत्यकी विजयकी शिक्षा देता है। वह मानवको अनुशासित एवं जितेन्द्रिय रहकर नैतिक बलसे काम, क्रोध, लोभ और घृणाका दमन करते हुए विश्वको अत्याचार एवं अधर्मसे बचानेका साहस

प्रदान करता है।* धर्मकी उपेक्षा करनेवाले राष्ट्रमें सत्यनिष्ठ एवं देशभक्त नागरिकोंका निर्माण असम्भव है। धर्मका मूल सूखे सिद्धान्तों (Dogmas) और सम्प्रदायवादी मत-मतान्तरों (Creeds) में नहीं होता है और न तो पूजापाठ, बाह्य उपचार और उत्सवोंमें। धर्म वस्तुतः चिर-संचित उस गम्भीरतम ज्ञान-भंडारमें है, जिसमें आजके मानवके अव्यवस्थित विचारों (Chaotic thoughts) को व्यवस्थित एवं नवनिर्मित करनेकी क्षमता है।† धर्म वह शक्ति है, जो राष्ट्रकी रक्षा हर प्रकारसे करनेमें समर्थ है। धर्मका लक्षण ही बताया गया है—'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' (वैशेषिक दर्शनके प्रणेता कणादका सूत्र), अर्थात् जिससे ऐहिक कल्याण (भौतिक सुख) और पारलौकिक सिद्धि (मोक्ष) दोनोंकी प्राप्ति हो, वह धर्म है। धर्मकी सुरक्षा करनेवाले राष्ट्रका सदा कल्याण होता है। धर्म नागरिकोंको सच्चरित्र, सत्यनिष्ठ एवं सदाचारी ही नहीं बनाता अपितु राष्ट्रके सभी संकटोंका हनन भी कर देता है—

धर्मेण हन्यते व्याधिर्धर्मेण हन्यते महः।

धर्मेण हन्यते शत्रुर्यतो धर्मस्ततो जयः॥

अब स्पष्ट हो जाना चाहिये कि धर्म-निरपेक्ष राज्यकी कल्पना कितनी आत्मघातिनी थी? कुल अठारह वर्ष बीते हैं। भ्रष्टाचारका नग्न नृत्य हो रहा है। देशमें अन्नका अभाव है। नागरिकोंमें देश-प्रेमका अभाव है। शासकोंमें नैतिकता एवं सत्यनिष्ठा नहीं है। पदाधिकारियोंमें आत्मबल एवं नैतिक भावना नहीं है। फलस्वरूप रिश्वतखोरी, चोरी एवं भ्रष्टाचारने भयंकर रूप धारण कर लिया है। कहा गया है कि जो धर्मकी उपेक्षा करता है, धर्म भी उसकी उपेक्षा करता है। जो धर्मका नाश करना चाहता है, धर्म भी उसको नष्ट कर डालता है। यह शास्त्रीय बात है—

* Religion is the discipline which touches the conscience and helps us to struggle with evil and sordidness, saves us from greed, lust and hatred, releases moral power and imparts courage in the enterprise of saving the world.

Radhakrishnan: *Religion and Society*, George Allen and Unwin London, 1947, p. 42

† The essence of Religion is not in the dogmas and creeds, in the rites and ceremonies which repel many of us, but in the deepest wisdom of the ages, the *philosophia perennis*, Sanātana Dharma, which is the only guide through the bewildering chaos of modern thought.

Ibid., p. 43.

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।

राष्ट्रको धर्म-निरपेक्ष बनाकर हमारे राष्ट्रनायकोंने जो भूल की, उसीका परिणाम आज हमारी आँखोंके सामने है । देशके शिक्षाविद् आज मुक्तकण्ठसे चिल्लाने लगे हैं कि देश-में धार्मिक शिक्षा अत्यावश्यक है । भारतके गृहमन्त्रीको बाध्य होकर 'सदाचार-समिति' की कल्पना करनी पड़ी है । आजकल शासकों एवं मन्त्रियोंके लिये 'आचार-संहिता' का निर्माण किया जा रहा है । इस प्रकार अब धर्मकी आवश्यकताका अनुभव होने लगा है । यह कल्याणकारी लक्षण है । इस दिशामें उचित यह है कि शीघ्रातिशीघ्र धार्मिक शिक्षा विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयोंमें अनिवार्य कर दी जाय । धार्मिक तथा नैतिक विचारोंके प्रसार एवं प्रचारका उपयुक्त वातावरण तैयार किया जाय । संस्कृत और संस्कृतिके अध्ययनके मार्ग प्रशस्त किये जायँ । एक प्रकारका धार्मिक जागरण (Religious awakening) लानेका प्रयास किया जाय । इस मशीनयुगमें आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्योंके पुनर्जीवन (Revival) की आत्मिक आवश्यकता आ पड़ी है । समाजरूपी शरीरका आत्मा धर्म ही होता है ।* जिस प्रकार शरीर-शुद्धिके लिये आत्मिक विकासकी आवश्यकता है, उसी प्रकार समाजके अभ्युत्थानके लिये धर्मके संरक्षण एवं संवर्धनकी आवश्यकता है । जब राष्ट्रमें धार्मिक वातावरण तैयार हो जायगा, तब लोभ, मोह और ऐसी सभी बुराइयाँ स्वतः नष्ट हो जायँगी ।

राष्ट्रनायक और अधिकारीवर्ग अपना उत्तरदायित्व समझे और इस प्रकारके धार्मिक नवजागरण (Religious Renaissance) का मार्ग प्रशस्त करें । जनता ऐसे लोगोंको चुने, जिनमें नैतिक एवं आत्मिक गुणोंका विकास हो । अधिकारी वही बनें जो अधिकारको सम्हाल सकें । राष्ट्रके हितके साथ खिलवाड़ करनेवालोंको आगे न बढ़ने दिया जाय । इस देशमें शासक वही हो सकता था, जो धार्मिक एवं आत्मसंस्कारसम्पन्न होता था—

आत्मसंस्कारसम्पन्नो राजा भवितुमर्हति ।

(कामन्दक० मण्डल मो० ४ । ४)

यस्मिन् धर्मो विराजेत तं राजानं प्रचक्षते ।

(महाभारत, शान्ति० ९० । १३८)

रक्षयिष्यति

यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः ।

अथायुमाह

राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ॥

(श्रीमद्भागवत ४ । १६ । १५)

धर्मसे हमारा तात्पर्य किसी सम्प्रदायके धर्म-विशेषसे नहीं है । हमारा तात्पर्य सभी धर्मोंके मूलभूत मूल्यों (the Quintessence of all religions) से है । बाह्य-डम्बरों (Externals) का परित्याग कर देनेपर इस्लाम, ईसाई और हिंदू धर्ममें कोई विशेष अन्तर नहीं रह जाता । इन सभी धर्मोंका मूल तत्त्व एक-सा ही है । अपना विचार है कि सेकुलर रहकर भी कोई राज्य धार्मिक बन सकता है । धर्मके सार्वभौम तत्त्वोंका प्रचार और प्रसार किया जाय, जिससे नयी मानवताका निर्माण हो सके । विज्ञानने मानवको मशीन बनानेका उपक्रम तैयार कर लिया है । मानवताकी रक्षाके लिये धर्मकी शरण लेनेकी आवश्यकता आ पड़ी है । विश्वमें युद्धके काले बादल मँडरा रहे हैं । रावण और कंसका जमाना आनेवाला है । विज्ञान मानवको भस्मासुर बनाने जा रहा है । ऐसी दशामें धर्मके संरक्षण और संवर्धनकी आवश्यकता विश्वके सम्मुख उपस्थित है । धर्मविहीन विज्ञान भी अज्ञान-सा ही है ।† हमारे तत्त्वद्रष्टा ऋषियोंने कहा था—

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्य-

मापातमात्रमधुरा

विषयोपभोगाः ।

प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमा नराणां

धर्मः सदा सुहृद्दहो न विरोधनीयः ॥

‘यह पृथ्वीका आधिपत्य (सम्पत्ति-अधिकारादि) हवामें उड़नेवाले बादलके समान हैं, विषय-भोग केवल आरम्भमें ही मधुर लगनेवाले हैं (उनका अन्त दुःखद है), प्राण तिनकेके अग्रभागमें स्थित जल-बिन्दुके समान नश्वर है, धर्म ही मनुष्यका सनातन एवं स्थायी कल्याणकारक मित्र है, अतः उसका विरोध नहीं करना चाहिये ।’

* A mechanical world in which humanity is welded into a machine of soulless efficiency is not the proper goal for human endeavour; we need a spiritual outlook which will include in its intention not only the vast surging life, economics and politics but the profound needs of the soul...Religion is the inside of a civilization, the soul, as it were, of the body of its social organization.

Radhakrishnan: *East and West in Religion*, George Allen & Unwin Limited, London, pp. 44-45.

† Science without conscience is Nescience.

महर्षि गौतम और उनका धर्मशास्त्र

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

यद्यपि इस नामके गौतम आरुणि, गौतम आग्नि-
वेश्य, गौतम औदालक आरुणि, सात्य गौतम, कौश्रेय
गौतम, गौतम हारिद्रुमत आदि अनेक लोग हुए हैं और
तदनुसार उन-उनके शाण्डिल्य, भारद्वाज, आग्निवेश्य,
माण्डि, सैतव, गार्ग्य आदि अनेकानेक गोत्र भी कहे
गये हैं, तथापि अहल्यापति गौतमसे ही हमारे इस
लेखका सम्बन्ध है। * महाभारत आदिपर्व १०४-१२४,
सभापर्व अध्याय ४ श्लोक १७, शान्तिपर्व ९७, अनु-
शासनपर्व १५४ आदिके अनुसार इनकी माताका नाम
प्रद्वेधी, पिताका नाम दीर्घतमा और गोत्र आङ्गिरस प्राप्त
होता है।† ऋग्वेद १।१४७ के अनुसार इनके पिता
बृहस्पतिके शापसे जन्मान्ध उत्पन्न हुए थे। बृहदेवता ३।
१२३, महाभारत, शान्तिपर्व ३४३ तथा मत्स्य० ४८।५२-
६ आदिमें इनके नामकी व्युत्पत्ति आदिकी चर्चा है।

महा० १।१२२।५० एवं भागवतादि प्रायः
सभी पुराणोंमें इनका नाम वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके
सप्तर्षियोंमें आता है—

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः।

जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः॥

(श्रीमद्भागवत ८।१३।५)

वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रिर्जमदग्निः सगौतमः।

विश्वामित्रभरद्वाजौ सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥

(श्रीविष्णुपुराण ३।१।३२)

* महर्षि गौतमकी जीवनीसे सम्बन्धित बहुत-सी बातें
'कल्याण' वर्ष ३८, अङ्क १२ के 'दुर्भिक्ष' लेखमें आ चुकी हैं।

† (क) तरुणी रूपसम्पन्नां प्रद्वेधी नाम ब्राह्मणीम्।
(आदिपर्व १०४।२४)

(ख) यानङ्गिराः क्षत्रधर्मानुतथ्यो ब्रह्मविष्ममः।
(शान्तिपर्व ९०।१)

(ग) कक्षीवान् दीर्घतमाः—समा० ४, अनु०
१५४ पूरा अ०।

अर्थात् (इस वर्तमान ७वें वैवस्वत मन्वन्तरमें)
वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और
भरद्वाज—ये सात सप्तर्षि हैं। इनकी स्त्री अहल्या
साक्षात् ब्रह्माजीकी ही पुत्री कही गयी हैं। (ब्रह्मपुराण
८७, वाल्मीकि रामा० उत्तरकाण्ड ३०, तथा भागवत
९।२१ में अहल्याको मुद्गलकी पुत्री तथा हरिवंश
१।३२में इन्हें वश्यश्वासकी पुत्री कहा गया है।)
विभिन्न रामायणों तथा रामसम्बन्धी नाटकग्रन्थों (प्रसन्न-
राघव, अनर्घराघव, बालरामायण आदि) में एवं महाभारत,
वनपर्व १८५ आदिमें शतानन्दजीको इन दोनोंका पुत्र
बतलाया गया है। पाद्मोत्तर २६८ तथा ब्रह्मपुराणके
प्रायः १३५ अध्यायोंमें गोदावरीमाहात्म्यमें इनकी
बड़ी महिमा है। इन्हींके नामपर गोदावरीको गौतमी
गङ्गा भी कहते हैं। उत्तङ्क महर्षि इन्हींके शिष्य थे।
(महा० आदि० ५६-५७)। चिरकारी इनके दूसरे
पुत्र थे (महा० शान्ति० २६६।४)। इन्होंने
पारियात्र पर्वतपर ६० हजार वर्षोंतक तपस्या की
थी। इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर धर्मराज इनके
आश्रमपर पधारे थे। इनका आश्रम कुछ समयतक
मिथिलामें (वाल्मीकि-रामायण आदि) तथा पश्चात्
सुदूर उत्तरमें बतलाया गया है—

उदीचीमाश्रिता दिशम्। (शान्तिपर्व २०८।३३)*

* 'तीर्थाङ्क'के अनुसार भारतमें कई गौतमाश्रम तथा
गौतमकुण्ड हैं। १—बक्सरमें, पृ० १५७, दूसरा जनकपुरमें
पृ० १५३। यह सीतामढ़ी-दरभंगा रेलवेलाइनपर कमतौला
स्टेशनसे १० मील पश्चिमकी ओर है। यहाँ ५ कुण्ड हैं।
इस गौतमाश्रमका क्षेत्र प्रायः १० बर्गमीलके अन्तर्गत है।
तीसरा गौतमाश्रम २४७ पृष्ठके अनुसार नासिकसे १७
मील दूर श्यम्बकेश्वरमें है। यहाँ गौतमालय तालाब तथा
गौतमेश्वर मन्दिर आदि भी हैं। चौथा गौतमाश्रम, पृ०

संख्या ६]

अकालपीडित जनता तथा साधु-ब्राह्मण-ऋषि-मुनियोंकी ११ (कहीं १००) वर्षोंतक अन्न-दान, सेवादिकी कथा नारदपुराण २।७३, देवीभाग १२-१९, शिवपुराण कोटि २५-२७ आदि अनेक स्थलोंमें प्राप्त होती है। शिवपुराण, उमासंहिता २।४३ आदिमें इनके द्वारा न्यायदर्शन, गौतमशिक्षा, धर्मशास्त्र आदिके निर्माणकी बात उपलब्ध होती है। द्राह्यायण १।४।१७, लाट्यायन १।३।३ आदि श्रौतसूत्रों तथा गोभिल आदि गृह्य-सूत्रोंमें इनके आचार्यत्वका उल्लेख है। इनके न्यायदर्शनपर अनेक व्याख्याएँ हैं। इनके आह्निकसूत्र, पितृमेधसूत्र भी मिलते हैं।

गौतमधर्मसूत्र*

इसे गौतमस्मृति भी कहते हैं। कलकत्ता (रा० ९० सो०) तथा मैसूरके संस्करणोंमें पीछे एक भाग अधिक मिलता है, अन्योमें प्रायः २८ अध्याय हैं।

११८ के अनुसार आबू पर्वतपर (राजस्थानमें) है। Abu Guide तथा Mount Abu नामक पुस्तकोंमें भी इसका विस्तृत वर्णन है। इस मन्दिरमें गौतमजी और अहल्याकी प्रतिमाएँ हैं।

About 4 miles towards the west from the Vaisithasram is the Asram of Gautama. The footpath leading to Gautamashram passes through a dreary wood. In the temple there are the images of Gautama and his wife Ahalya. (Mount Abu, pp. 52, by Hiralal Dayabhai Nanavati, Second Edition, 1931)

इनमें अन्तिम तो पारियात्रपर्वतवाला ही अनुमित होता है। इनके अतिरिक्त कोई एह इनका आश्रम हिमालयमें होना चाहिये, जैसा कि ऊपरकी कथासे ज्ञात होता है।

* मोर प्राच्य संस्करणमें गौतमस्मृति और बृद्धगौतम-स्मृति नामकी दो स्मृतियाँ और हैं। इसे पहले जीवानन्दने भी छपा था।

पर इस अध्यायपर किसीकी व्याख्या नहीं है। अतः हो सकता है, यह प्रक्षिप्त हो।

मनु० (३।१६), बौधायन तथा वसिष्ठादिने अपने धर्मसूत्रोंमें गौतमके इस शास्त्रका उल्लेख किया है। तन्त्रवार्तिक (शाबरभाष्य), अपरार्क (याज्ञ० स्मृतिकी व्याख्या), स्मृतिचन्द्रिका, शांकरभाष्यादिमें भी इसका उल्लेख है। इस ग्रन्थपर हरदत्त, असहाय, मस्करी आदिकी टीकाएँ हैं। पहले और भी बहुत-सी व्याख्याएँ थीं। हरदत्त और मस्करीकी व्याख्याओंको मिलाकर देखनेसे स्पष्ट लगता है कि हरदत्तने सब कुछ मस्करीके आधारपर ही लिखा है। 'अपर आह' आदि कहकर पृ० ६९, ८०, ८४ आदिपर मस्करीके भाष्यांशको उद्धृत भी किया है। कामन्दकीय नीतिसारका उपाध्याय-निरपेक्षा आदिके व्याख्याताओंने मस्करीको चाणक्य ही माना है (द्रष्टव्य आनन्दाश्रमसंस्करण), जो उचित ही प्रतीत होता है। मैसूर संस्करण की भूमिकामें मस्करीका प्रतिपादित समय सर्वथा गलत ही है। भाष्यकी प्रणालीसे भी इसकी प्राचीनता सुस्पष्ट परिलक्षित होती है।

महर्षि गौतमका आदर्श उपदेश

गौतमने योगक्षेमके लिये ईश्वर, देवता, पितर तथा धर्मात्माओंके आश्रय-ग्रहणकी बात लिखी है—

योगक्षेमार्थमीश्वरमधिगच्छेत् । नान्यमन्यत्र देवगुरुधार्मिकेभ्यः ।*

(९।६३-६४)

मस्करीने ५८ पृष्ठमें ज्ञानीकी प्रशंसा लिखी है। 'राजधर्म' विषयक मन्तव्योंमें गौतमकी प्रधानता है। इसपर (व्यवहाराध्याय मिलाकर) चार अध्याय लिखे हैं। प्रायः अन्य

* टीकाकारोंने 'ईश्वर' का अर्थ 'राजा' लिखा है, पर ६४ वाँ सूत्र इस पक्षमें नहीं है। अतः परमेश्वर अर्थ ही ठीक है।

स्मृतियोंमें राजधर्मपर सामग्री नहीं मिलती । मस्करीद्वारा इसकी विशेष व्याख्या भी उनके चाणक्य होनेका प्रमाणान्तर है । गौतमने राजाको सर्वथा आस्तिक होनेका उपदेश किया है । आचाराध्यायमें गौतमने 'अवेनु' को वेनुभव्या, दुर्भगको सुभग, अभद्रको भी भद्र, कपाल (भिन्नभाण्डावयव) को भगाल, इन्द्रधनुको मणिधनु और नकुलको सकुल कहकर पुकारनेका आदेश दिया है । (अध्याय ९ सूत्र २०-२३ तथा सूत्र ५३) इसपर एक टिप्पणी स्कन्द—माहेश्वर-खण्डमें व्यासने लिखी है । याज्ञवल्क्यजीने एक नकुलको नकुल कह दिया था । इसपर उसने उन्हें शाप दे दिया और याज्ञवल्क्यजीको अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ ।

महर्षि संवर्तद्वारा कथित 'नकुल' का वह प्रसङ्ग 'स्कन्दपुराण', माहेश्वरखण्डमें इस प्रकार उपलब्ध होता है । बहुत पहले मिथिलामें याज्ञवल्क्य मुनि रहते थे । उनका आश्रम बड़ा रम्य था । एक दिन एक नकुलको आते देख उन्होंने गार्गीसे कहा—'भद्रे ! गार्गी ! देखो दूध बचाना, यह नकुल आ रहा है । यह दूध पीना चाहता है । इसे भगाना ।' उनकी यह बात सुन नकुल मनुष्यकी भाषामें बोलने लगा (वह वास्तवमें मुनि था, पर जमदग्निके शापसे नकुल-विग्रहमें था)—'अरे ! तुम्हें बार-बार धिक्कार है । देखो ! पापी मनुष्य कभी-कभी कितना निर्लज्ज हो जाता है—उसे यह पता भी नहीं रहता कि इसके परिणामस्वरूप उसे कितना भीषण नरक भोगना पड़ेगा । मुने ! तुम

अपनेको कुलीन समझकर ही तो मुझे नकुल कह रहे हो !* अरे याज्ञवल्क्य ! तुमने क्या पढ़ा ! क्या यही तुम्हारी योगेश्वरता है ! तुम मुझ निरपराधको क्यों कोसे हो ! इतने परुष वचन कहनेका आदेश तुम्हें मिला, किस शास्त्रसे मिला है ! क्या तुम यह नहीं जानते कि प्राणी जितने क्रूर शब्दोंका उच्चारण करता है, उतनी ही तत्त्व लौहशलाकाएँ यमपुरुष उसके कानोंमें डालते हैं ! वक्र, विषदग्ध, शस्त्र और कालकूट विषका प्रयोग तो ठीक है; पर वाक्-शस्त्रका प्रयोग ठीक नहीं—

वज्रस्य दिग्धशस्त्रस्य कालकूटस्य चाप्युत ।

× × ×

न तु तं परुषैर्वाङ्मयैर्जिघांसेत कथंचन ॥

(माहे० कुमारि० १३ । ७४-६)

यह सुन याज्ञवल्क्यजी डर गये । उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'महान् धर्मको नमस्कार ! ब्रह्मा, बृहस्पति, विष्णु आदि भी जिस धर्मतत्त्वके विषयमें मोहित हों, वहाँ मेरी क्या गणना । जो अपनेको धर्मात्मा या धर्मज्ञ मानता है, वह मानो धूलकी रस्सीसे बाढ़को बाँधना चाहता है । श्रीशुकदेवजीने तथा गृह्यसूत्रकारने भी ठीक ही कहा है कि नकुलको भी सकुल कहे किसीको भी कटु वचन न कहे—

नकुलं सकुलं ब्रूयान्न कचिन्मर्मणि स्पृशेत् ।

(८५)

'अतः आप क्षमा करें ।' पर नकुलने उन्हें क्षमा नहीं किया और याज्ञवल्क्यको पुनर्जन्म लेने तथा अकुलीन होनेका शाप दे दिया । इससे पीछे वे ही भर्तृयज्ञ हुए थे ।

* महर्षि पाणिनिके (६ । ३ । ७५)—

नभ्राट्-नपात्-नवेदा-नासत्यानमुचि-नकुल-नख-नपुंसक-नक्षत्र-नक्र-नाकेषु प्रकृत्या—इस सूत्रानुसार 'न कुलमस्या'—इसका कोई कुल नहीं है; इस विग्रहके अनुसार 'नकुल' शब्द बनता है ।

यह मृत्युलोक

(लेखक—श्रीपरमहंसजी महाराज, श्रीरामकुटिया)

आब्रहमभुवनालोकाः

पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।

कालके द्वारा सीमित होनेके कारण ब्रह्मलोकसे लेकर चौदह भुवन सभी अनित्य हैं। 'भूर्भुवः स्वः' के अन्तर्गत यह पृथ्वीलोक है, जिसपर हम सभी प्राणी निवास करते हैं। इसका वास्तविक नाम है—'मृत्युलोक'। यहाँ सर्वाधिकारसम्पन्न राजाके भी ऐश्वर्य और अधिकार का वास्तवमें कोई अर्थ नहीं है। उसका वह ऐश्वर्याधिकार क्षणभङ्गुर है। वह न किसीका रहा और न कभी किसीका रहेगा ही। अतः मृत्युलोकके ऐश्वर्य एवं अधिकारका जो मोह है, वह व्यर्थ है; क्योंकि उसका अन्त ही निश्चित है। मनुष्य स्वयं मर्त्य है।

कालो जगद्भक्षकः ।

और

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।

नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

जैसे शरीर क्षणभङ्गुर और अनित्य है, वैसे ही यहाँ वैभव भी अनित्य ही नहीं, वरं नित्य दुःखद है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥

(गीता ५।२२)

मृत्यु सबके पीछे लगी हुई है; जिसके दस मस्तक और बीस भुजाएँ थीं, वह महान् वीर रावण भी अमर नहीं हो पाया। ऐसे रावणको जिसने बाँध लिया था, जिसके हजार भुजाएँ थीं, वह सहस्रबाहु अर्जुन भी अमर नहीं रहा; क्योंकि यह मृत्युलोक ही ठहरा। और—

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।

कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥

काल (मृत्यु) ही सभी प्राणियोंको पचाता है, प्रजाका नाश करता है। चराचरको लय करनेवाली वह मृत्यु नित्य जाग्रत है। इसलिये ऐसी दुरत्यय मृत्युको कोई भी टाल नहीं सकता।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम् ।

शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥

सभी देहधारी प्रतिदिन मृत्युलोकसे यमराजके घरपर जाते हैं, मृत्युको प्राप्त होते हैं; पर जो लोग यहाँ शेष—जीवित हैं, वे अमर रहना चाहते हैं, इससे बढ़कर और आश्चर्य क्या हो सकता है? मृत्युलोकमें कायम कौन है?

यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति ।

तदीयरससम्पुष्टे काये का नाम नित्यता ॥

मृत्युलोकका स्वरूप है—सुत्रहका पकाया अन्न पड़ा-पड़ा रात पड़नेपर नष्ट हो जाता है। ऐसे सड़ने-वाले अन्नसे शरीरके स्वस्थ रहनेका भरोसा करना एक धोखा है। अरे भाई! भूलो मत कि तुझे भी मरना है। एक सिर और दो हाथवाले अत्यन्त दुर्बल मनुष्य! तुम अमर रहना चाहते हो?

जलबुद्बुदवन्मूढ क्षणविध्वंसि जीवनम् ।

किमर्थं शाश्वतधिया करोषि दुरितं सदा ॥

‘मानव! तेरा यह शरीर पानीके बुलबुलेके समान क्षणभङ्गुर है, इसे स्थिर मानकर तू क्यों पापोंमें प्रवृत्त है?’ स्वार्थ और मोहसे उन्मत्त मनुष्य आज सर्वथा विवेकरह्य होकर दूसरोंको सताना, दूसरोंका अहित करना, दूसरोंकी हिंसा करना, दूसरोंका खत्व हरण करना, दूसरोंको धोखा देना, दूसरोंको गिराना, दूसरोंको दबाना इत्यादि पापकर्मोंमें ही जीवन बिताना चाहता है!

मोहमूढ़ मानव! ये तेरे वैभव, उपार्जित धन, खजन और अधिकार—सभी क्षणभङ्गुर हैं। जिस सुखके लिये, जिन खजनोंके लिये, जिस देहके आरामके लिये, जिस झूठी नामवरीके लिये तू पाप कर रहा है, वे सब नष्ट हो जायेंगे। इन भोगों, पदार्थों और

शरीरोंको मृत्यु चबाकर पीस देनेवाली है। मिथ्या मोहमें मनुष्य जीवनभर दुःख, नैराश्य और अशान्ति, चिन्ताके साथ भोगोंकी प्राप्तिके प्रयासमें छल, कपट, ईर्ष्या, द्वेष, कलह, चोरी, हिंसा, अनाचार आदि पापोंमें रत रहता है। पापका परिणाम है नरक। नरककी दारुण यन्त्रणा कितनी भयानक है, इसे बताया नहीं जा सकता। इसके सिवा सहस्र-सहस्र बार मृत्युका प्रास बनना पड़ता है।

भगवान् ने कहा है—

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।

मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥

(गीता १६।१६, २०)

‘जिनका चित्त अनेक विषयोंमें सदा भटकता रहता है, जो मोहरूपी जालसे सर्वथा ढके हुए हैं, ऐसे वे कामोपभोगमें अत्यन्त आसक्त लोग घोर अपवित्र नरकमें गिरते हैं। ऐसे मूढ़ लोग मुझको प्राप्त न होकर जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं, तदनन्तर उससे भी अति नीच गतिमें जाते—घोर नरकोंमें पड़ते हैं।’

जीवनका प्रारम्भ गर्भवास, प्रसव आदि दुःखोंसे होता है। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि आदि दोष जीवनभर लगे रहते हैं—यों दुःखमें ही स्थिति और पर्यवसान होता है। इस मृत्युलोकमें दुःख-ही-दुःख भरा है। किसी भी अवस्थामें सुखकी आशा करना एक भ्रम है—इतना बड़ा भ्रम कि संसारके सभी लोग इस भ्रान्तिमें विभ्रान्त हैं। भगवान् ने इसको दुःखालय और अनित्य कहा है—

दुःखालयमशाश्वतम्।

इस नाशवान्, अस्थिर, विकारी शरीरमें मोह क्यों? इस शरीरके आरामके लिये पापमें प्रगतिशील क्यों? केवल इसीलिये कि मृत्युकी स्मृति नहीं और भोगोंमें सुखकी आस्था है। इस भोग-लाछसामें प्रमत्त होकर ही

मनुष्य अधिकाधिक पाप करता है—जैसे आज धनी निर्धनोंको, बड़े छोटोंको, सबल निर्बलोंको, शासक जनताको, विषयी विरक्तोंको, अथर्व धर्मियोंको, सुखी दुखियोंको छूटने, भय दिखाने, दबाने नारा करनेमें तल्लीन है। मनुष्यकी यह अहम्भन्यता और भोगलालसा! कहाँतक कहा जाय। आज मनुष्य मानवत्वं मूक प्राणियोंके पीड़न और विनाशमें बुरी तरह प्रवृत्त है। मानो उनमें जीव है ही नहीं। पर मनुष्य कितना ही दुर्दान्त हो, मृत्युसे बच नहीं सकता।

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।

अथ वाच्यशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥

अपनी मृत्यु आकाशवाणीसे सुनकर कंस अपनी बहिन देवकीको मारने लगा, तब वसुदेवजीने उपर्युक्त श्लोक कहा था—हे वीर! देहधारीकी मृत्यु देहके साथ उत्पन्न होती है। अवधि पूरी होनेपर, चाहे वह आज हो या सौ वर्षोंके बाद, प्रत्येक देहधारीकी मृत्यु निश्चित है।

बहिस्सरति निःश्वासे विश्वासः कः प्रवर्तते।

बाहर निकलनेवाला श्वास भीतर जायगा या नहीं, यह कौन जानता है। अतएव—

श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्ने चापराद्धिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ॥

जिस कार्यके लिये मनुष्य भूलोकमें आया है, उसे शीघ्रातिशीघ्र कर लेना चाहिये। सबरेका शामपर और आजका कलपर छोड़ना नहीं चाहिये; क्योंकि मृत्यु तुम्हारा कार्य पूरा होने, न होनेकी प्रतीक्षा में खड़ेगी नहीं, इसलिये भोगसुखकी लिप्साका परित्याग करके आत्मकल्याणके लिये जुट जाना ही मानवता है। घर, स्त्री, परिवार, धन-वैभव और अधिकारके मोह-जालमें न पड़कर आत्मोद्धारके लिये संयतचित्त होकर अभीसे तत्पर हो जाना चाहिये।

‘तितिक्षा दुःखसम्पन्नः ।’

चतुर्दिके रजतधवल उत्तुंग हिमशृङ्ग, उनसे अज्ञात गतिसे निकले हिमस्रोत जो नीचे आकर निर्झरमें परिवर्तित हो जाते थे और उन निर्झरोंका प्रवाह ‘दामोदर-कुण्ड’ बनाता है । नैपालमें मुक्तिनाथसे पर्याप्त आगे दुर्गम पर्वतोंमें है यह शालिग्राम-क्षेत्र । इसी परम पावन स्थलीको बाबा गोरखनाथने अपनी साधनभूमि बनाया था ।

‘जहाँ दो कोसतक चारों ओर एक भी प्राणी न हो, वहाँ आसन लगा ।’ अपने सहज समर्थ शिष्यको दीक्षाके उपरान्त योगीश्वर मत्स्येन्द्रनाथजीने आदेश दिया था । कहीं भी जायँ, प्राणी तो मिलेंगे ही । उस हिमप्रान्तको उन्होंने प्राणिशून्य देखा था । पर्वतीय पक्षी भी उन दिनों वहाँ नहीं थे । बरफने जहाँ सारी धरतीको अपनी लंबी-चौड़ी सफेद चादरसे ढक रक्खा हो, क्षुद्र कीटोंका वहाँ रहना सम्भव नहीं होता ।

‘देहकी स्मृति ही सबसे बड़ी बाधा है ।’ गोरखनाथजी साधारण मानव तो थे नहीं कि उन्हें साधनाकी विस्तृत व्याख्या आवश्यक होती । गुरुने केवल सूत्र सुना दिये थे । उन सूत्रोंका विवेचन उन्हें स्वयं प्राप्त करना था ।

‘देहकी स्मृति—देहाध्यास दुस्तर तो है ।’ आज जहाँ जानेके लिये विशेष वस्त्र, विशेष जूते तथा अनेक औषधियाँ आवश्यक होती हैं, जहाँ यात्री सिरसे पैरतक अनेकानेक अच्छे भारी ऊनी वस्त्रोंसे आच्छादित होकर किसी प्रकार जा पाता है । जहाँ नेत्रोंपर चश्मेका नीलावरण न हो तो हिमपरसे प्रतिबिम्बित सूर्यकी किरणों आघे ही क्षणमें अन्धा बना दें और नासिका किसी चिकने लेपसे लिप्त न हो तो हिमदंशसे कब गल गयी, पता ही न लगे, उस स्थानमें जो केवल कटिमें काली कौपीन बाँधे, नग्नदेह, नग्नपद पहुँचा हो, उस कर्णमें

विशाल योगमुद्राधारीकी कठिनाईका कोई ठिकाना है ?

उन योगाचार्यको शीत संतप्त नहीं करता । सिद्धौषध-शास्त्रके उन महान् मर्मज्ञको न हिमान्वता हो सकती थी, न हिमदंश; किंतु प्रकृति अपने कार्यमें प्रमाद तो नहीं करती । श्वाससे बाहर आती आर्द्रता मूँछोंपर हिमकण बनकर स्थिर होती जा रही थी । हिमने जटाओं तथा श्मश्रुपर छाकर उन युवा योगीको श्वेतकेश-जैसा बना दिया था । हिम, जल और यत्र-तत्र कुछ शिलाएँ—तृणका नाम वहाँ नहीं था । कोई ऐसी पाषाण-शिला नहीं मिली, जिसपर वे आसन लगाते । दामोदरकुण्डके जलमें डुबकी लगाकर आर्द्रदेह, आर्द्रकेश ही वे हिमशिलापर पद्मासनसे बैठ गये थे । प्राणायामने शरीरको संज्ञाशून्य नहीं होने दिया । अन्यथा वहाँ प्राणी दामोदरकुण्डमें प्रवेश करते ही अर्धमूर्छित हो जाता है, किसी प्रकार जलसे शीघ्रतासे निकलनेपर भी सर्वाङ्ग अवश, अनियन्त्रित हो जाता है ।

‘बहुत बाधक है यह देहकी अनुभूति ।’ गोरखनाथजी-जैसे जन्मसिद्धके लिये भी वहाँ मनको देहसे हटाकर एकाग्र करना कठिन हो रहा था । प्राणायामसे प्राप्त उष्मा शीघ्र समाप्त हो जाती थी और तब लगता था कि शीत अस्थियोंमें प्रवेश करके उन्हें छिन्न-भिन्न कर रहा है । एक-एक स्नायु फट जायगी, इतनी दारुण वेदना उठने लगती । रक्त जब जमने लगे, पीड़ा होती ही थी । पुनः प्राणायामका आश्रय लेना पड़ता था ।

‘युक्ताहारविहारस्य’ गीताके गायकने ‘योगो भवति दुःखहा’की सिद्धिका साधन जो कहा है, बहुत महत्त्वपूर्ण है । आयुर्वेदने स्वस्थ शरीरकी पहचान बतलायी है कि शरीरका स्मरण न हो । बहुत शीत या उष्णता, अनाहार, अनिद्रादिसे उत्पीडित शरीर अपनी ओर मनको बार-बार आकर्षित करेगा । ऐसी अवस्थामें ध्यान,

भजन आदि नहीं होता। शरीरकी सामान्य आवश्यकताओंको पूर्ण करके, उसे साधारण स्थितिमें रखकर और मनकी वासना-तृष्णाको बलपूर्वक दबाकर साधन चलता है।

ये सब बातें सामान्य साधकके लिये हैं। सृष्टिमें जो विशेष शक्तिशाली आते हैं, वे अपना विशेष मार्ग भी बना लेते हैं। संघर्षमें अपनेको डालकर विजय प्राप्त करनेका जो गौरव है, वह उनका भाग है। उनके साथ स्पर्धा करने जाकर सामान्य व्यक्ति तो अपना विनाश ही बुलायेगा।

योगी युवक गोरखनाथ असामान्य पुरुष थे। प्रकृति उनको पराभव दे सके, इतनी शक्ति उसमें नहीं हो सकती। उस देवबन्ध पावन स्थलको त्यागकर अन्यत्र जानेकी बात मनमें उठ नहीं सकती थी। प्राणी-वर्जित प्रदेश और वह भी पुण्यभूमि और कहाँ प्राप्त होनी थी। उन्होंने निश्चय किया—‘इस देहकी ओर ही पहले ध्यान देना चाहिये।’

जब देह लक्ष्यकी ओर नहीं जाने देता, देहको ही लक्ष्य बनाकर उसकी ओरसे पहले निश्चिन्त हो लेना चाहिये, यह तर्क उस समय भी नवीन नहीं था। भगवान् दत्तात्रेयका रसेश्वर-सम्प्रदाय इसी आधारको लेकर चलता था और गोरखनाथजीके लिये सिद्ध रसेन्द्र-प्रक्रिया अपरिचित नहीं थी।

× × ×

शुभ्र शशाङ्क-धवल विप्र पारद आज अप्राप्य है और सुप्राप्य वह कभी नहीं था; किंतु जो ध्यानावस्थित होकर त्रिलोकीके सम्पूर्ण बाह्याभ्यन्तरका दर्शन कर सकता हो, उसे वह दुर्लभ नहीं हो सकता था। सिद्धेश्वर रसेन्द्र मणिलिङ्ग सुतलमें सही, महायोगीके लिये सुतल अगम्य कहाँ है।

सविधि सुमुहूर्तमें उस मणिलिङ्गके सान्निध्यमें जब अभिषिक्ता अर्चिता द्वात्रिंशलक्षणा सिद्धिदा कौमारी शक्तिने रसार्दन प्रारम्भ किया, आधिदैविक शक्तियोंमें

आक्रोश उठना स्वाभाविक था। स्थूल जगत् अपनी सीमामें रहे, यह जिनका दायित्व है। मानव जन उनके अधिकारको चुनौती देकर उठ खड़ा होता है, उन्हें भी अपने शस्त्र सम्हालने ही पड़ते हैं। दिशाएँ काँपने लगीं। अकाल उल्कापात तथा प्रचण्ड उत्पात प्रारम्भ हुए; किंतु गोरखने दृष्टि उठायी और वे सब शान्त हो गये।

क्षेत्रपाल और स्थल- (ग्राम-) कालिकाने अपनेको असमर्थ पाया उस महासाधकके सम्मुख जानेमें। जहाँ छिद्र होता है, विघ्न वहाँ आते हैं। प्रमादरहित, पूर्ण जागरूक गोरखनाथके समीप विघ्न कहाँसे जाते? योग एवं रस-साधनाके विघ्नोंको तो उनका नाम-स्मरण ही निवृत्त कर देता है।

सहसा गोरखनाथ आसनसे उठ खड़े हुए। उन्होंने जल एवं बिल्वपत्र हाथमें लिया। धरा-अम्बरको अपने पदाघातसे पीड़ित करती, उप्रतेजा भगवती छिन्नमस्ता दौड़ती आ रही थीं। अपने ही हाथमें अपना मस्तक लिये, अपने भिन्नशिर कवचके कण्ठदेशसे फूटती रुधिर-धाराको उस मस्तकसे और अपने अन्य दो रूपोंसे पान करतीं, खड्ग-खप्पर, पाश, मस्तकहस्ता, त्रिरूप-धारिणी उन महाशक्तिके मुखोंसे बारंबार चीत्कार फूट रहा था—‘नाशय ! नाशय ! हुं।’

‘नमः त्रिपुरान्तकाय महारुद्राय हुं फट्’ गोरखनाथ-जीने बिल्वपत्रसे जलविन्दु निक्षिप्त किये और अत्यन्त विनीत स्वरमें बोले—‘मातः ! आप कोई रूप ले लें, शिशुपर निष्करुण नहीं हो सकतीं। यहाँ भगवान् नीललोहितका मणिलिङ्ग विराजमान है। इसकी अवमानना आपको भी अभीष्ट नहीं होगी?’

क्षणार्धमें सर्वत्र शान्तिका साम्राज्य हो गया। छिन्नमस्ताका हस्तस्थित मस्तक उनके कण्ठदेशपर पहुँच कर स्थिर हो गया। उनके पार्श्वकी उनकी दोनों मूर्तियाँ उनमें लीन हो गयीं। वे दिगम्बरा त्रिरूपा अब

संख्या ६]

पाठारुणवल्गा, किञ्चित् श्यामवर्णा, तिर्यक्-मुखस्थिता, त्रिलोचना त्रिपुरभैरवी बन चुकी थीं ।

‘शङ्करहृदिस्थिता करुणामयी अम्बे ! आप सुप्रसन्न हों ।’ गोरखनाथने स्तवन किया सविधि; किंतु वह रूप त्रिपुरसुन्दरी नहीं बना । कोई चिन्ताकी बात भी नहीं थी । त्रिपुरसुन्दरीके सम्मुख स्थित होनेपर आशुतोषके स्फटिक गौर वक्षमें जो उनका प्रतिविम्ब पड़ता है, भस्माङ्गरागलिताङ्गकी छायासे किञ्चित् श्यामवर्णा वह त्रिपुरभैरवी शिवहृदिस्थित होनेसे अतिशय करुणामयी हैं । साधकके लिये वे परम सिद्धिप्रदा हैं ।

‘तुमने महाशक्तिकी अर्चनाके बिना ही यह कर्म प्रारम्भ कर दिया । यह भी स्मरण है तुम्हें कि यह युग कौन-सा है ? कलिमें रससिद्धि कदाचित् ही होती है । तुम केवल अपने तीन शिष्योंको इसे दे सकोगे ।’ भगवतीने एक सीमा निर्धारित की और वे अन्तर्हित हो गयीं ।

रसार्दनका श्रम, नियम-पालन तथा प्राणापदाको जिन्होंने स्वीकार किया था, उन कौमारी शक्तिको वञ्चित करना शक्य नहीं था । वे उस सिद्ध रसका सेवन करके अमर योगिनी हो गयीं । अनेक नामोंसे उनका उल्लेख कई योग-सम्प्रदायोंमें पाया जाता है ।

गोरखनाथजीका देह रसेन्द्रका सेवन करके सिद्ध हो गया । वे अपने दो शिष्योंको ही यह लाभ दे सकेंगे, यह चिन्ता अनावश्यक थी । अब उन्होंने फिर दामोदरकुण्डके समीप हिमशिलापर आसन लगाया । प्रकृतिकी कोई शक्ति अब उनके देहको प्रभावित नहीं कर सकती थी । अब उनके ध्यानमें देह बाधा नहीं दे सकता था ।

x

x

x

‘यह क्या दम्भ करने बैठा है ?’ उन्मुक्तकेश, अङ्गारनेत्र, दिगम्बर, मलिनकाय एक अतिदीर्घ देह पागल पता नहीं कहाँसे उस प्राणिहीन प्रदेशमें आ गया था और वह बार-बार अट्टहास कर रहा था ।

अद्भुत बात यह थी कि गोरखनाथजी ध्यान नहीं कर पा रहे थे । शत-शत वज्रपात-ध्वनि करते शिलाखण्ड जहाँ क्षण-क्षणमें टूटते हैं, उस प्रचण्ड कोलाहलमें सर्वथा अप्रभावित योगी इस उन्मत्तके अट्टहाससे विचलित हो गया था । उसे लगता था कि कोई उसके मनको बलपूर्वक बाहर खींच लाया है ।

‘आप कौन हैं ?’ गोरखनाथजीने पूछा । वे अपनी नेत्र-पलक भी बंद नहीं कर पाते थे । पलकें चेष्टा करनेपर भी नहीं गिर रही थीं ।

‘तेरा बाप ! तेरा गुरु !’ पागलने हाथकी तलवारसे गोरखनाथपर प्रहार किया; किंतु योगीके सिद्ध वज्र-देहसे टकराकर तलवार झनझनाकर पागलके हाथसे छूट गिरी । उनके शरीरपर चिह्नतक नहीं बना ।

‘दम्भी कहींका ! तेरा गुरु.....’ पागलका अट्टहास असह्य हो गया । वह पता नहीं गुरुदेवको क्या कहने-वाला था । गुरुको कोई अपशब्द कहेगा, यह सम्भावना ही सहन नहीं हुई । गोरखनाथजीने झपटकर तलवार उठा ली और पूरी शक्तिसे पागलपर चोट की; किंतु यह क्या ? अपने आघातके वेगसे गोरखनाथ स्वयं भूमिपर—हिमशिलापर गिर पड़े । तलवार पागलके शरीरमेंसे ऐसे निकल गयी थी, जैसे वायुमें चलायी गयी हो ।

‘आप कौन ? देवता, यक्ष, गन्धर्व ?’ गोरखनाथ स्वयं बोलते-बोलते रुक गये । उनके सम्मुख जब वे योगस्थ हों—प्रेत-पिशाच, यक्ष-गन्धर्व, देवता-दैत्य कोई ऐसी घृष्टता करनेका साहस कर कैसे सकता है ? ऐसा कौन है यह जो प्रयत्न करनेपर भी उनकी सर्वज्ञ दृष्टिकी पकड़में नहीं आता ।

‘मैं असत्य नहीं कहता । तेरे दम्भने तुझे अविश्वासी बना दिया है ।’ पागलका स्वरूप बदल गया और गोरखनाथ गुरुदेवको पहचानकर उनके चरणोंपर गिर पड़े ।

‘मेरे गुरुदेवको छोड़कर व्योमदेह दूसरा भूतलपर नहीं हुआ, यह मैंने सुना था ।’ गोरखनाथके नेत्रोंसे झरती अश्रुधारा गुरुके चरण धो रही थी । मेरा सिद्ध वज्रदेह-प्राप्तिका गर्व गल गया । मुझपर अनुग्रह करें देव ! मेरा दम्भ ?’

‘माताको अपने अबोध शिशुकी चिन्ता रहती है ।’ गुरुने कहा । ‘तू क्या समझता है कि मत्स्येन्द्र अपने कर्तव्यको भूल जायगा ? शिष्यको स्वीकार किया तो उसको परम सिद्धितक पहुँचाना कर्तव्य बन गया । तेरी प्रत्येक क्षणकी साधना मेरी दृष्टिमें रही है । तूने छिन्नमस्ताको सुप्रसन्न कर लिया; किंतु यदि चामुण्डा आती ?’

गोरखनाथजी भी एक बार भयकम्पित हो गये । सचमुच आना तो चामुण्डाको ही चाहिये था और उन शिव-वक्षपर ताण्डवकारिणी उग्रभैरवीको भला वे कैसे शान्त करते ? वे तो कोई मर्यादा मानती नहीं हैं ।

‘मैं चामुण्डा-पीठसे ही आ रहा हूँ ।’ मत्स्येन्द्रनाथ हँसे । ‘मेरी अर्चाकी उपेक्षा करके चामुण्डा कहीं जा नहीं सकती थी ।’

‘गुरुदेव !’ शिष्य अपने समर्थ गुरुके पावन पदोंपर मस्तक ही तो रख सकता है ।

‘किंतु अब यह तेरा दम्भ है ।’ मत्स्येन्द्रनाथने समझाया । ‘मेरी इच्छा थी कि तू प्राणिहीन प्रदेशमें कुछ काल तपस्या करता । तप अपार शक्तिका द्वार उन्मुक्त कर देता है । कलिके सम्पूर्ण जीवोंको तेरा तपःतेज कल्पान्ततक पवित्र रखता; किंतु सृष्टिके नियामकका विधान अन्यथा कैसे हो सकता है ।’

‘मेरा दम्भ ?’ गोरखनाथजीको अपने आचरणमें कहीं दम्भ नहीं दीखता था । दम्भ होता है दूसरोंको

अन्यथा दर्शन करानेके लिये । इस जनहीन प्रदेशमें कोई किसलिये दम्भ करेगा ?

‘तपका मूल है तितिक्षा और तितिक्षा कहते हैं दुःखोंको जान-बूझकर सहनेको ।’ खिन्नस्वरमें मत्स्येन्द्रनाथ कह रहे थे । ‘शरीरको सिद्धरस-सेवनसे वज्र बनाकर तू जो इस शीत-प्रदेशमें आ बैठा है, यह कौन-सा तप, कौन-सी तितिक्षा है ? जब शरीर शीत-उष्ण—आघातादिसे प्रभावित होता ही नहीं, तब तेरा यहाँका निवास क्या तपका दम्भ नहीं है ?’

गोरखनाथजी चुप रह गये । उनके समीप भी कोई उत्तर नहीं था । मत्स्येन्द्रनाथजी कुछ रुककर बोले—‘यही भूल मुझसे भी प्रारम्भमें ही हुई थी, जब मैंने स्थूल पाञ्चभौतिक देहको साधन-शक्तिसे व्योमदेहमें परिवर्तित किया । मैं प्रकृतिकी जिस विजयपर प्रफुल्ल था, अब जानता हूँ कि वही मेरी पराजय थी । मायाने मुझे देहकी ओर आकृष्ट करके पंगु कर दिया था ।’

‘परमात्मा अनन्त करुणालय है । देहको वज्र अथवा व्योम-सदृश बनाना आवश्यक होता तो उसने ऐसा करनेमें संकोच न किया होता ।’ कुछ रुककर वे योगेश्वर बोले—‘देहकी दुर्बलता—कष्टानुभव-क्षमता ही मानवको तप एवं तितिक्षाके वे साधन देती है, जिनमें सम्पूर्ण सृष्टिको परिवर्तित कर देनेकी शक्ति है ।’

‘अब मेरे समान तुम्हें भी लोकालयमें अज्ञात विचरण करना है । अज्ञानद्वारा प्राप्त मानापमानमें सम रहकर मानसिक तप करो ।’ मत्स्येन्द्रनाथने आदेश देकर कहा । ‘प्राणिहीन प्रदेश अब अनावश्यक है, किंतु तितिक्षाका सीमित क्षेत्र शक्तिस्रोत भी सीमित कर देता है । महेश्वरकी इच्छा पूर्ण हो ।’

गुरु-शिष्य साथ ही वहाँसे नीचे चले ।

धार्मिक स्वाधीनताके लिये प्राणोत्सर्ग करनेवाले हुतात्मा-महात्मा गौरीनाथ

(लेखक—श्रीशिवकुमार गोयल)

भारतकी पुण्य-भूमिपर ब्रिटिश गोरोंका आधिपत्य था, तो गोआको पुर्तगाली गोरोंने अपनी दासतामें जकड़ रखा था।

पुर्तगालियोंने गोआपर अधिकार करनेके पश्चात् हिंदुओंको तलवारके बलपर ईसाई बनानेका अभियान प्रारम्भ कर दिया। पुर्तगीजोंने हिंदू-मन्दिरोंको गिरा-गिराकर उनके स्थानपर चर्च बनाने प्रारम्भ कर दिये। हिंदुओंकी चोटियाँ काठी जाने लगीं, यज्ञोपवीत तोड़कर फेंके जाने लगे। हिंदुओंको विवाह-संस्कार, नामकरण एवं यज्ञोपवीत-संस्कार करनेकी पूरी तरहसे पाबंदी थी।

पुर्तगाली पादरियोंने घोषणा करायी कि जो भी हिंदू माथेपर तिलक या टीका लगायेगा, उसे गिरफ्तार कर लिया जायगा। सन् १६७९ के अन्तमें आदेश निकाला गया कि यदि कोई भी हिंदू यज्ञ-हवन करता पाया गया तो उसपर दो हजार रुपये जुर्माना किया जायगा। अहले एक हिंदूने सनातनधर्मी रीतिसे विवाह किया तो उससे पाँच हजार रुपये जुर्मानेके रूपमें चर्चके लिये वसूल किये गये।

पुर्तगाली अधिकारी मि० मर्टिन एकटोसे डी मेलोने ६ नवम्बर १५४१ को जारी किये गये अपने एक आदेशमें गोआके हिंदुओंको चेतावनी दी—‘यदि वे छः मासके अंदर ईसाई नहीं होते तो उन्हें राज्यसे निर्वासित कर दिया जायगा।’

ईसाई पादरी गाँव-गाँव घूमकर हिंदुओंको सामूहिक रूपसे ईसाई बनानेका अभियान चला रहे थे। गाँव-के-गाँव आतङ्क एवं भयके बलपर ईसाई बनाये जा रहे थे। हिंदू आतङ्ककी चक्कीमें पिस रहा था।

हिंदुओंने जब अपनी आँखोंके सम्मुख ही अपने देवमन्दिरोंको गिरते देखा, प्राणप्यारी गैया मैयाके रक्तके

नाले बहते देखे, अपने धर्मबन्धुओंको तलवारके बलपर धर्मभ्रष्ट किये जाते देखा तो उनका हृदय हाहाकार कर उठा, किंतु क्रूर एवं बलशाली पुर्तगालियोंके अत्याचारी शासनके सम्मुख वे बेबस थे, लाचार थे।

गोआके ग्राम कुनारामें जिस समय पुर्तगीज हिंदुओंको जबरदस्ती ईसाई बनाकर, हिंदू बच्चोंसे ‘ईसूसीह मेरे प्राण बचैया’ का नारा लगवा रहे थे, तो गोरखनाथ-सम्प्रदायके एक हिंदू संत बाबा गौरीनाथ यह दृश्य देखकर चीत्कार कर उठे। उनका धार्मिक हृदय हिंदुओंको धर्मभ्रष्ट होते देखकर काँप उठा।

महात्मा गौरीनाथने गाँवके हिंदुओंको एकत्रित करके सिंहगर्जना की और उन्हें धर्मके लिये प्राण-अर्पण करनेको उत्साहित किया। उन्होंने कहा—‘अरे, भय तथा आतङ्कसे धर्म छोड़ना तो नीचतम कायरताका प्रमाण है। प्राण चाहे चले जायँ; किंतु धर्मकी रक्षा होनी चाहिये। ये पुर्तगीज हमारे देश तथा धर्मके महान् शत्रु हैं। इनके अत्याचारी साम्राज्यका नाश अवश्यम्भावी है।’

कुनाराके हिंदुओंने नाथ-बाबाकी सिंहगर्जना सुनी तो उनका आत्माभिमान जाग्रत हो उठा। उन्होंने गलेमें पड़े क्रासोंको तोड़कर पैरोंसे रौंद डाला। बाइबिलोंकी जगह पुनः गीता-रामायण रख दीं एवं ईसाके चित्रके स्थानपर भगवान् श्रीराम-कृष्णके चित्र प्रतिष्ठित कर दिये। समस्त ग्राम पुनः हिंदूधर्मकी शरणमें आ गया।

पुर्तगाली शासकोंने जब पादरियोंसे नाथ-बाबाकी गतिविधियोंकी चर्चा सुनी तो वे जल-भुन उठे। नाथ-बाबाको कुनाराके शिवमन्दिरसे पकड़कर जेलमें डाल दिया गया।

महात्मा गौरीनाथपर पुर्तगालियोंने भीषण अत्याचार

किये। उन्हें कई दिनोंतक भूखा-प्यासा रखा गया, हंटरोंसे पीटा गया, किंतु पुर्तगालियोंके भीषण अत्याचार नाथ-बाबाको विचलित न कर सके। वे अपने प्राणप्रिय सनातन हिंदू-धर्मपर चढ़ानके समान डटे रहे। जेलकी कोठरीसे निरन्तर 'हिंदू-धर्मकी जय'का उद्घोष होता रहा।

दस सशस्त्र पुर्तगाली सिपाहियोंने जेलकी बैरकका फाटक खोल और बाबासे कहा—'यह गोमांस है, इसे खाओ।'।

'नरपिशाच म्लेच्छो ! भाग जाओ !'—नाथ-बाबा दहाड़ उठे। 'तुम्हारे यह अत्याचार तुम्हारे क्रूर पुर्तगाली शासनको भस्मीभूत कर देंगे।'।

पुर्तगाली बाबाके तेजस्वी एवं रौद्र रूपके आगे न ठहर सके। वह बैरकसे बाहर हो गये और दूसरे

दिन बाबाको जेलकी कोठरीसे निकालकर गोआके मुख्य गिरजाघरके सामने मैदानमें एक गड्ढेमें कमर तक गाड़ दिया गया। चार शिकारी कुत्ते नरपिशाच पुर्तगालियोंने बाबापर छोड़ दिये। देखते-ही-देखते खूँखवार कुत्तोंने नाथ-बाबाके शरीरकी बोटियाँ नोच डालीं ! अमर हुतात्मा महात्मा गौरीनाथ अपने इष्टदेव भगवान् श्रीपशुपतिनाथका स्मरण करते हुए परलोक सिधार गये।

महात्मा नाथ-बाबा गौरीनाथके इस महान् बलिदान-से, गोआके बलिदानपूर्ण इतिहासमें एक पृष्ठ और संलग्न हो गया !

बाबा गौरीनाथका धर्मकी रक्षाके लिये किया गया यह महान् बलिदान था !

फलित प्रार्थना

(लेखक—श्रीरामपुनीतजी श्रीवास्तव एम्० ए०)

वह नित्य प्रार्थना करता रहा। धीरे-धीरे प्रार्थनामें तन्मयता आती गयी और तन्मयता रूपकी सृष्टि करती रही। बाणी अधरोंका स्थान छोड़कर आँखोंमें आ बसी। प्रार्थना जीवनमें रम गयी, भक्ति विश्वासमें विरम गयी, अन्ततः प्रार्थनाको सौभाग्य देने देवता पधारे। प्रार्थीपर कृपा-दृष्टि डालकर बोले—'भक्त ! मैं तुम्हारी प्रार्थनासे प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम मुझसे क्या चाहते हो ?'

भक्तने भोलेपनसे बातको दुहरा दिया—'देवता ! मैं भी यही पूछता हूँ कि तुम मुझसे क्या चाहते हो ?'

भक्तकी बात सुनकर भगवान् चकित हो गये। पर तुरंत ही गाम्भीर्यको मुसकानसे हलका बनाते हुए कह उठे—'मैं भला तुमसे क्या चाहूँगा ! मैं कुछ नहीं चाहता।'।

'मैं भी कुछ नहीं चाहता।' इतना कहकर भक्तने राम-राम कहा और जानेको मुड़ा.....। परंतु देवताने झपटकर भक्तका हाथ पकड़ लिया और आग्रहपूर्वक कहा—'मेरे भक्त ! तुम रुठकर जा रहे हो ! मैं सच कह रहा हूँ कि मेरी कोई इच्छा नहीं। तुम जो चाहते हो, वही मैं चाहता हूँ।'।

भक्त भी मन्द स्वरमें भुनभुना उठा—'तुम जो चाहते हो, वही मैं चाहता हूँ।'।

हिंदू-धर्मकी अग्नि-परीक्षा

(लेखक—श्रीसुन्दरलालजी बोहरा)

धनुर्वर किंतु धैर्यवान् व्यक्ति ही धर्मकी ध्वजाको धारण कर सकते हैं। जिस समाजके नेताओंमें भी धुक्कोचित उत्साह है, समुद्र-सी गम्भीरता है और समयके अनुसार जनताको निर्देशन देनेकी क्षमता है, उस समाजकी शान्ति और अस्तित्वको भयंकर-से-भयंकर कंडर भी विक्षुब्ध नहीं कर सकते। आपसी संगठन, कुशल-नेतृत्व एवं कष्टसहिष्णुता समाजको सदा बल ही प्रदान करते हैं। वही समुदाय प्रशासक योग्य है जो एक ही समयमें साधुओंके सदृश शीलवान् एवं सैनिकों-जैसे शूरोसे ओतप्रोत रहता है। जिस संगठनमें कोरे फक्कड़-ही-फक्कड़ भर्ती हो जायँ, वह संगठन इहलौकिक समस्याओंसे समन्वित न रहकर केवल शनैः-शनैः पारलौकिक गुणियोंको सुलझानेमें ही उलझ जाता है। संन्यासियोंके हाथमें दण्डका रहना इस बातका स्पष्ट प्रतीक है कि संन्यासीको परम शीलवान् होनेके साथ-ही-साथ शूर रहना भी अत्यावश्यक है। यही बात थी कि राजर्षि होते हुए भी विश्वामित्रको श्रीराम-लक्ष्मणको अपनी रक्षार्थ आमन्त्रित करना पड़ा। देहासक्त संन्यासी अथवा धर्म-प्रचारक अपने भेषको ही कलङ्कित करते हैं। वैदिक धर्मके पुनः-संस्थापक श्रीकुमारिल भट्ट एवं स्मर्य गुरु रामदास-जैसी विवेकशीलता और निडरता ही किसी धर्मविशेषका प्राण है। यही कारण है कि हिंदू-धर्म देहकी नश्वरतापर अहर्निश बल देता है। श्री अर्यमें कर्मयोग उसी साधकका सफल एवं श्रेष्ठ अर्थ है जो कर्तव्य-कर्मकी साधनामें अपने प्राणोंकी भी परवा नहीं करता।

आज भी हिंदू-धर्मको ऐसे ही निडर और प्रबल धर्म-प्रचारकोंकी—तपस्वी, कुशल कार्यकर्ताओंकी

आवश्यकता है। राष्ट्रद्वारा अपनायी गयी धर्म-निरपेक्ष नीति हिंदू-धर्मके लिये गला घोटनेवाली ही सिद्ध हुई है। जिस प्रकार बिना नामका कोई व्यक्ति नहीं होता, ठीक उसी तरह बिना धर्मके कोई राष्ट्र अथवा समुदाय नहीं होता—यही सनातन प्रकृति रहती आयी है। राष्ट्रको धर्मसे रहित घोषित करना मानव-शरीरमें व्याप्त दिव्य संस्कारोंका हनन करना है; 'अथातो धर्मजिज्ञासा' की परम्परापर ही कुठाराघात करना है।

धर्म-निरपेक्षताकी नीति हिंदू-धर्मके लिये आज थूहरके काँटोंके समान सिद्ध हो रही है। हर शिक्षित एवं संस्कृत पुरुष इस धर्महीन नीतिके कारण वैचारिक भूलभुलैयामें फँस गया है। समस्त सरकारी अधिकारी चाहे हिंदू ही क्यों न हों, फिर भी इस नीतिकी ओर अँगुली तक नहीं उठाता। हमलोगोंसे तो वे प्राणहीन पत्थरकी मूर्तियाँ ही अच्छी हैं जो बिना हाथ-पैर हिलाये अपने ऊपर गिर रहे तूफानी ओलोंको भी टुकड़े-टुकड़े कर देती हैं। तनिक सोचिये, हमारे 'वैयक्तिक स्वतन्त्रता' एवं 'स्वतन्त्र चिन्तन' के भ्रम कितने तथ्यपूर्ण हैं ?

किसी दर्जासे कपड़ा सिलवानेका अर्थ यह तो नहीं है कि वह अपने खयंके शरीरके अनुरूप ही कपड़ेकी कटाई और सिलाई कर दे;—उस वस्त्रकी सिलाईसे दर्जाकी कुशलता अवश्य झलकेगी, किंतु अन्ततः वह वस्त्र तो हमारा ही होगा। उसी प्रकार राष्ट्रकी नीतिको धर्मरहित रखकर हमें अपनी सनातन संस्कृति तथा संस्कारोंसे विलग नहीं किया जा सकता।

देशकी हर समस्याको पाश्चात्य परिस्थितियोंके दृष्टिकोणसे देखनेका ही यह फल है कि आज

ईसाईमत हिंदुत्वपर हावी होता जा रहा है। नागालैण्डके रूपमें ईसाइयत भारतमें स्थायीरूपसे अपना मठ कायम कर रही है। आज भारतमें एक करोड़के करीब ईसाई गृहस्थ एवं सात हजारसे ऊपर ईसाई धर्म-प्रचारक हैं। आये दिन नये-नये चर्चोंकी स्थापना हो रही है। प्रतिमास तीस हजारके करीब नादान, निरक्षर आदिवासी तथा अन्य हिंदुओंको ईसाई बनाया जा रहा है। करोड़ों रुपया ऋणके नामपर विदेशोंसे प्राप्त करके भारत-स्थित ईसाई-संस्थाएँ ईसाइयतका प्रचार करनेमें लगा रही हैं। औरंगजेबने तलवारके बलपर हिंदुओंसे उनका ईमान बदलवाया था; अंग्रेजोंने सरकारी पदका प्रलोभन देकर ईसाइयतको भारतमें पनपाया और आज वे उच्छिष्ट ईसाई-संस्थाएँ भोलेभाले ग्रामीणोंको आर्थिक एवं चिकित्सा-सम्बन्धी सुविधाओंका प्रलोभन देकर भ्रष्ट कर रही हैं। विदेशोंसे पाठ्यपुस्तकोंके नामपर प्रतिवर्ष हजारों रुपयेका हिंदूधर्म-विरोधी साहित्य हिंदुओंमें ही लाकर बाँटा जाता है! अफसोस, चश्मा लगानेपर भी हमारी आँखोंका दृष्टि-दोष नहीं जाता है!

आज पूरा केरल ईसाई बन रहा है; मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मद्रास, बिहार-केन्द्रद्वारा शासित क्षेत्रों एवं असमके वायुमण्डलमें ईसाइयतकी विषैली गैससे भरे हुए गुब्बारे छोड़े जा रहे हैं। फिर भी देशके प्रतिष्ठित रईस, नेता तथा शिक्षक लोग अपने बच्चोंको ईसाइयोंके मिशन स्कूलोंमें भेजनेको लालायित रहते हैं—

दिलके फफोले जल उठे सीनेकी आगसे।

इस घरको आग लग गयी घरकी चिरागासे ॥

इतना तो सिद्ध है कि एक शिक्षित ईसाई पादरीकी अपेक्षा एक निरक्षर हिंदू किसान धर्मके व्यावहारिक रूपको अधिक सूक्ष्मतासे समझता है, लेकिन कृषककी आर्थिक विपन्नता ही उसे ईसाइयत कबूल कर लेनेको बाध्य करती है। ईसाई मिशनरी लोग भी 'ऋण-

अदायगीकी असफलतापर धर्म-परिवर्तन' की शर्त ऋणी-से मंजूर करवाकर ही ऋण देते हैं। मुसलमान जहाँ भी गये, उन्होंने तलवारके बलपर लोगोंका ईमान बदला; ईसाई जहाँ भी पहुँचे, उन्होंने लोगोंका आर्थिक प्रचूषण करके उन्हें ईसाई बनाया। उपनिवेशवाद-रूपी मधुमक्खियोंका छत्ता ईसाई मिशनरियोंद्वारा ही पाला गया है।

किंतु यह प्रमाणसहित कहा जा सकता है कि हिंदू-धर्मने आजकी परिभाषावाला उपनिवेश कभी कहीं भी कायम नहीं किया, हिंदू-धर्मके प्रचारकोंने सदैव सहानुभूतिसे ही काम लिया है—धर्मप्रचारार्थ किसी भी हिंदू सम्राट्ने तलवार उठायी हो, ऐसा उदाहरण सम्पूर्ण हिंदुत्वके इतिहासमें मिल ही नहीं सकता। कलिंग-विजयके बाद अशोकने पश्चात्तापके रूपमें अपना शेष जीवन आत्म-शोधनमें ही लगा दिया। हिंदू-धर्मसे प्रस्फुटित जैन एवं बौद्ध धर्म अपने जन-कालसे ही अहिंसाके कट्टर समर्थक तथा पोषक रहे हैं। आर्थिक अथवा राजनीतिक सिद्धिके लिये तलवार उठायी जाती है, किंतु धर्म-प्रचारके लिये सिवा इस्लाम तथा ईसाई धर्म-प्रचारकोंके मानव-इतिहासमें किसीने भी तलवार नहीं उठायी। शक्रकी चासनीमें तैयार की हुई कुनैनकी गोलियाँ खिलानेमें ईसाई मिशनरी ही गौरवका अनुभव कर सकते हैं, एक हिंदू-धर्म-प्रचारक असत्यको सत्यका जामा पहनानेकी खूबमें भी कल्पना नहीं करता।

ईमानदारी एवं निष्पक्षतासे देखा जाय तो आज भारतमें बसे हुए समस्त मुसलमान और ईसाई लोग निश्चित रूपसे हिंदू ही हैं। यह भला हम कैसे मान सकते हैं कि अपनेको अहिंदू कहनेवाले सम लोग शरणार्थी अथवा खानाबदोश जातियोंके रूपमें ही आये हैं। हमारे आपसी मन-मुटाव एवं मठों, मंदिरों तथा घाटोंपर लड़नेकी प्रवृत्तिने ही हमलोगोंमेंसे करोड़ों

संख्या ६]

माइनोंको इस्लामी तथा ईसाई होनेको मजबूर किया है। अभी कलकत्ता और कहीं-कहीं आज भी देशके अनेक प्रान्तोंमें मुसलमानोंके शादी-कार्य ब्राह्मण पण्डित ही सम्पन्न करवाते हैं। ईसाई बने हुए परिवारोंके सिर्फ नाम बदल जाते हैं, किंतु उनके रीति-रिवाज प्रायः हिंदू ही बने रहते हैं—भला सात समुद्रपारके रीति-रिवाजोंको यहाँपर कैसे थोपा जा सकता है? लोगोंके जन्मजात संस्कारोंको सहज ही कैसे बदला जा सकता है? जो भी हो, इससे हिंदुओंकी संख्या एवं शक्ति-को तो अवश्य ही धक्का लगता है। सही शब्दोंमें आज हिंदू-धर्मपर अमावास्याकी अन्धकारमयी रात्रि छा रही है, फिर भी हमारी कुम्भकर्णी निद्रा नहीं टूटती है। इसका अर्थ तो यही हुआ कि रातको हमारे मकानमें आग लगी है और हम रजाई ओढ़े हुए पड़े हैं। हिंदू-धर्मके लिये आजकी तुलनामें बुरे दिन शायद ही कभी आये हों; इसपर भी हमारी धमनियोंमें उबाल (Ferment) नहीं आता। ऐसा लगता है जैसे हमारा रक्त आज नसोंमें सँद होकर (Congealed) रह गया है।

‘उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।’

के उद्बोधक आज न जाने कहाँ समाधिस्थ हो गये हैं।

हर युगका अपना धर्म होता है—संदेश होता है। धर्म कोई जड़ अथवा स्थिर रहनेवाले उपादानोंसे नहीं बना है। संन्यासियों एवं मनीषियोंका धर्म वैराग्य तथा ज्ञानकी ओर उन्मुख रहता है जब कि गृहस्थी लोग उसी धर्मको ग्रहण करते हैं जो उनके लिये उपयोगी हो। भला हिंदू-धर्ममें ऐसी क्या नपुंसकता आ गयी है जिसके कारण इसमें लोगोंको आकर्षित करनेकी क्षमताका ही हास होता जा रहा है। ये शादी-शुदा पादरी लोग हमपर टिड्डियोंकी तरह छा रहे हैं, मध्य, फिर हमारे नैष्ठिक ब्रह्मचारी एवं भगवाधारी लोग क्या कर रहे हैं? उस साधकका आत्मज्ञान अथवा

आत्मशोधन ही आत्मघातक है जो अपने सह-धर्मियोंके साथ आत्मीयताका अभाव रखकर भी आत्म-गौरवका अनुभव करता है। इस संदर्भमें आर्य-समाजद्वारा पोषित शुद्धि-आन्दोलन निश्चितरूपसे एक प्रशंसनीय कदम है। किंतु कालियके फनोंकी तरह बढ़ रहे ईसाई-मतके लिये ऐसे अनेकों शुद्धि-प्रचारकोंकी आवश्यकता है; अनेकों निर्भीक एवं निष्पक्ष समाचार-पत्रोंकी आवश्यकता है और आवश्यकता है हिंदुत्वके गौरव अनेकों विवेकानन्दोंकी।

विश्वका इतिहास साक्षी है कि पिछले पाँच हजार वर्षोंमें अनेकों सभ्यताएँ तथा सम्प्रदाय उत्पन्न हुए और आँधीकी उपस्थितिमें जलते हुए दीपकोंकी तरह शान्त हो गये। पर हिंदू-धर्मके सनातन सिद्धान्तोंपर कोई खरोंच नहीं लगी। बौद्ध और जैनधर्म भी हिंदू-धर्मसे ही निकले और हिंदुत्वके ही पोषक हैं। यही कारण है कि—

यूनाने मिश्र रोमां सब मिट गये जहाँ से।

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी ॥

किंतु आज इस कुछ बातको समझने तथा समझाने-वाले शिक्षित और संस्कृत लोग ही विधर्मी बनते जा रहे हैं। अनुभव तथा अध्ययनके आधारपर यह निश्चित-रूपसे कहा जा सकता है कि अपना धर्म एवं ईमान वही व्यक्ति बदलता है, जिसमें विपत्तियोंसे लड़नेकी हिम्मत और हौसला नहीं होता। आप राजस्थानके किसी एकदम निर्धन राजपूतसे धर्म-परिवर्तनकी बात कहिये, वह आपके सामने तलवार निकालकर खड़ा हो जायगा। हिंदू-धर्मके आधार-स्तम्भ ऐसे ही निर्धन किंतु स्वधर्माभिमानि लोग हैं। इन्हीं रणबाँकुरे लोगोंके जीते-जी पानीकी तरह करोड़ों रुपया बहा देनेपर भी भारतीय ईसाई पादरी निराशा एवं विषादका ही अनुभव करते हैं। अपनेको शिक्षित एवं संस्कृत (?) कहनेवाले हमारे शिक्षित समाजमें इसी क्षत्रियोचित स्वधर्माभिमान-का दिवाला निकलता जा रहा है। धर्मको पोंगा-

पन्थियोंकी माया एवं धोखेबाजीके विशेषणोंसे जोड़कर इन लोगोंने हिंदू-धर्मको बदनाम करनेमें कोई कसर नहीं रख छोड़ी है ।

इसलिये यह अत्यावश्यक है कि युवकोंको धार्मिक शिक्षा दी जाय । अपितु धार्मिक शिक्षासे तात्पर्य है, औपनिषदिक परम्पराका संवर्द्धन, नचिकेता-सी निडरता एवं आरुणि-जैसी गुरु-भक्तिका युवकोंके जीवनमें बीजारोपण । सही शब्दोंमें धर्म हमारी अपने आत्मा एवं अपने समाजके प्रति संस्कारजात सात्त्विक जिज्ञासा है; इस जिज्ञासाको सचेतन बनाये रखना ही धर्मका पालन करना है ।

आज इसी बातकी आवश्यकता है कि अविलम्बरूपसे हिंदू-समुदायको गतिमान् (mobilize) किया जाय । मनमुटावका परित्याग किया जाय । बौद्ध अन्य नहीं हैं, जैन दूसरे नहीं हैं, आर्यसमाजी पराये नहीं हैं, कबीर-पंथियोंकी काथी तीन लोकसे न्यारी नहीं है, ग्रन्थ-साहबके पुजारी हमसे अलग नहीं हैं, कोई वल्लभ अथवा रामानुजसम्प्रदायी पृथक् नहीं है, शैव और वैष्णवका भाव एक ही गुलाबके विभिन्न वर्णोंके समान है । हम सब हिंदू हैं—एक ही सात्वत धर्मके अनुयायी । हिंदुओ ! एक होओ—संघे शक्तिः कलौ युगे ।

आज हमारा धर्म खतरेमें है, गायका कले-आम हो रहा है, हमारी माँ-बेटियोंका शील खतरेमें है ! हिंदुओ ! जागो । हिंदुओ ! एक होओ ।

नामपर मत लड़ो, भेषपर मत लड़ो, मन्दिरों

और मठोंपर मत लड़ो । तीर्थोंपर दंगा मत करो । मूर्तियोंपर मत लड़ो । ईसाई और इस्लामके मतावलम्बी आपकी ईर्ष्या, द्वेष, मनमुटाव एवं अपने आत्मजनोंके प्रति तिरस्कारकी भावनाके जीते-जागते प्रमाण हैं । आपकी उदासीनता एक करोड़ ईसाइयोंके रूपमें आपकी नाँद हराम कर रही है, फिर भी आप रजाई ओढ़नेका विफल प्रयास कर रहे हैं । बर्फानी हवामें मलमलके वस्त्र पहननेवालेको निश्चितरूपसे निमोनिया होता है । ठीक उसी प्रकार अपने धर्मपर संकट आया हुआ देखकर भी जो उदासीन बने रहते हैं, उनका इस धरातलसे नामोनिशान ही मिट जाता है । यह निश्चित मानिये कि मनुष्य होकर भी जो धर्म-संकटके समय मूक बना रहता है, वह आनेवाले जन्ममें जिराफ बनता है ।

अतः अपनेको हिंदुत्वके प्रतिनिधि और हिंदू-दर्शनके साधक तथा ज्ञाता माननेवाले मनीषियों ! आप अपनी मोहमयी निद्राका त्याग कीजिये । हिमालय और विन्ध्याचलकी गुफाओंमें आँख मूँदकर बैठनेवाले महात्माओ तथा श्रद्धेय संन्यासियों ! आप बाहर आइये और मिटते हुए धर्मकी रक्षा कीजिये । गंदी गलियों और गरीबोंके जीवनपर लिखनेवाले ओ कवियों और लेखको ! आप अपनी लेखनीको हिंदुओंमें स्वधर्माभिमान जगानेके लिये समर्पित कर दीजिये । राष्ट्रके ओ करोड़पति महाजनो ! आप विलास मनाना छोड़िये और हिंदू-धर्मके प्रचारार्थ मुक्तहस्तसे धन प्रदान कीजिये । यह हिंदू-धर्मकी अग्नि-परीक्षाका काल है ।*

* ऐसा ज्ञात हुआ है कि इस वर्ष सोलह करोड़से अधिक रुपये और सैकड़ों ईसाई प्रचारक भारतवर्षमें आये हैं । बिहार, मध्यप्रदेश, आसाम, नेपाल आदि अनेक स्थानोंमें इनका प्रचार और भोले-भाले हिंदुओंको ईसाई बनानेका कार्य बड़े जोरोंसे चल रहा है । हिंदू-धर्मकी रक्षा करनेवालोंको चेतना चाहिये ।

मधुर

वृषभानुनन्दिनी प्रेममूर्ति श्रीराधाजी प्रियतम श्री-
कृष्णसे मधुर-मधुर खरोंमें कह रही हैं—

बाह कुचाह मिट गयी सारी,
रही एक यह 'प्यारी चाह' ।

मधुर तुम्हारे स्मृति-सागरमें
डूबी रहूँ, न पाऊँ थाह ॥

मेरे सब कुछ एक तुम्हीं हो,
सारी ममताके आधार ।

मैं भी एक तुम्हारी ही हूँ,
ममता मुझपर नित्य अपार ॥

तुम्हें छोड़कर नहीं दीखता
कभी कहीं भी कोई और ।

एक तुम्हीं करते विहार नित
मधुर मनोहर सबही ठौर ॥

नहीं दीखता मुझमें मेरा
कुछ भी भला-बुरा गुण दोष ।

नित्य कर रहे तुम वे लीला
जिनसे तुम पाते परितोष ॥

क्या मैं कहूँ, करूँ कैसे कुछ
और ? बताओ, प्रियतम श्याम !

जब कि तुम्हीं बाहर भीतर कर
रहे नित्य लीला अभिराम ॥

करते रहो सदा तुम लीला
यों ही मनमानी स्वच्छन्द ।

अङ्ग-अङ्ग, मन, मति, आत्मा सब
देते रहें तुम्हें आनन्द ॥

प्रियतम श्रीकृष्ण ! मेरी अच्छी-बुरी सभी चाहें
मिट गयीं, अब तो बस यह एक ही 'प्यारी चाह' रह
गयी है कि मैं तुम्हारी स्मृतिके मधुर समुद्रमें निरन्तर
डूबी रहूँ, कभी थाह ही न पाऊँ । प्रियतम ! मेरे सब
कुछ तथा मेरी सारी ममताके आधार एकमात्र तुम्हीं
हो, मैं भी एकमात्र तुम्हारी ही हूँ और मुझपर तुम्हारी
नित्य अपार ममता है । प्यारे ! तुम्हारे अतिरिक्त,

मुझे कभी कहीं भी कोई दूसरा नहीं दिखायी देता ।
सर्वत्र सभी जगह एकमात्र तुम्हीं नित्य मधुर मनोहर
विहार करते दीख पड़ते हो । मुझे मेरे अंदर भी मेरी
अपनी कुछ भी भली-बुरी वस्तु या गुण-दोष नहीं
दिखायी देता । मैं तो देखती हूँ कि सदा-सर्वदा तुम्हीं
वे सब लीलाएँ कर रहे हो जिनसे तुमको सुख मिलता
है । अतः तुम्हीं बताओ मेरे प्रियतम श्यामसुन्दर ! मैं
अब और क्या कहूँ तथा कैसे कुछ और करूँ ? जब कि
मेरे बाहर-भीतर सर्वत्र तुम ही नित्य-निरन्तर सुन्दर लीला
कर रहे हो । बस, यों ही तुम सदा अपनी मनमानी
स्वच्छन्द लीला करते रहो और मेरे अङ्ग-अङ्ग, मन-बुद्धि-
आत्मा सब सदा तुम्हें आनन्द देते रहें ।

ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर प्रियतमा श्रीराधिकासे गद्गद
खरोंमें कहते हैं—

जिससे मुझ 'आनन्दरूप' को
मिलता है अति परमानन्द ।

सदा खिला, जिससे खिल उठता
है वह मधुर कौन-सा छन्द ? ॥

जिससे नित्य तृप्त मुझमें जग
उठती सहज अवृत्ति अपार ।

मचला नित रहता मन मेरा
जिसके लिये अमन अविकार ॥

मैं रस-रूप स्वयं जिसके रस
आस्वादनको बना अधीर ।

रहते नित्य देखते मेरे
नेत्र अवृत्त बहाते नीर ॥

राधे ! एक तुम्हीं हो मेरी
वही मधुरतम मञ्जुल मूर्ति ।

हो सकती न कदापि किसीसे
रञ्जक मात्र तुम्हारी पूर्ति ॥

नहीं बजारू सौदा हो तुम
या न लेन-देन व्यापार ।
शुद्ध प्रेमका मधुर उछलता
हो अनन्त रस-पारावार ॥

मुझ स्वयं 'आनन्द-स्वरूप' को जिससे अत्यन्त परम आनन्द मिलता है; मैं जो सदा ही खिला रहनेवाला, जिसे पाकर और भी खिल उठता हूँ, वह कौन-सा छन्द है ? जिससे मुझ नित्य तृप्तमें भी सहज ही अपार अतृप्तिका उदय हो जाता है; जिसके लिये मेरा अमनरूप

निर्विकार मन नित्य मचला रहता है; मैं स्वयं 'रसरूप' जिसके रसका आस्वादन करनेके लिये सदा अधीर बना रहता हूँ; और मेरे नेत्र जिसको सदा ही अतृप्तरूपसे देखते हुए आँसू बहाते रहते हैं—हे मेरी प्रियतमे राधिके ! मेरी वह मधुरतम मञ्जुल मूर्ति तुम्हीं हो । तुम्हारी पूर्ति कभी भी किसीसे भी रश्चकमात्र भी नहीं हो सकती । तुम न तो बाजारू सौदा हो, न तो तुम लेन-देनरूप व्यापार ही हो, तुम तो विशुद्ध प्रेमरसका उछलता हुआ अनन्त समुद्र हो !

‘नम्रताकी मूर्ति’ श्रीहनुमान्जी

(लेखक—श्री स० ना० पाण्डे महोदय)

अधिकांश भगवत्प्रेमी पुरुष पवनसुत हनुमान्जीको प्रमुखतः शक्तिके आराध्यदेवके रूपमें ही जानते एवं पूजते हैं । किंतु जैसा विद्याके विषयमें कहा है कि—

विद्या विनयेन शोभते ।

—उसी प्रकार नम्रता भी बलवान्का ही आभूषण है । बल होना एवं उसका दर्प होना मनुष्यको रावण बना देता है और फिर वह अन्यायी-अत्याचारी हो जाता है । सच पूछा जाय तो प्रत्येक अत्याचारी व्यक्ति डरपोक होता है, निर्भय कभी नहीं । क्रूरता निर्वलताकी निशानी है । अतः सच्चा बलशाली व्यक्ति अपने बलका प्रदर्शन नहीं करता । उसका बल तो निर्वल्लोकी रक्षा, धर्मकी रक्षा एवं आततायीके मर्दनके समय प्रकट होता है या फिर जब उसे कोई शुभ कार्य अपने स्वामीके हितमें करने हेतु ललकारा जाय, जैसा कि जाम्बवंतने समुद्रलङ्घनकी समस्याके समय कहा—

‘का चुप साधि रहेहु बलवाना’

तथा—

कवन सो काज कठिन जग माहीं । जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ॥
राम काज लागि तव अवतारा । सुनतहिं भयउ पर्वताकारा ॥

पर पर्वताकार अवश्य हुए, गरजे-तरजे भी, किंतु मानसिक संतुलन नहीं खोया । नम्रतापर अधिकार बनाये रक्खा एवं उन्हीं जाम्बवंतसे बोले—‘मैं समुद्रको लील सकता हूँ, लॉघ सकता हूँ, बन्धुसहित रावणको मारकर त्रिकूटपर्वतको उखाड़कर अभी ला सकता हूँ, पर—

जामवंत मैं पूछूँ तोही । उचित सिखावनु दीजहु मोही ॥

अतः हनुमान्जीकी महानता, इतनी उनकी शक्तिमें नहीं थी, जितनी कि उनकी भक्तिमें तथा नम्रतामें । जब रामदलके वीरोंकी यह स्थिति थी कि—

निज निज बल सब काहुँ भाषा । पार जाइ कर संसय राखा ॥

ऐसे समयमें भी सबमें शक्तिशाली होते हुए—आप चुप्पी साधे रहे । ऐसा ही ‘रामकाज’ कर आनेके बाद भी वही नम्रताकी मूर्ति, वही प्रशंसासे पृथक् छिपे

संख्या ६]

रहनेकी प्रवृत्ति । सुग्रीवसे खुद आगे बढ़कर यह नहीं कहा कि 'हे स्वामी । मैंने आपका दिया काम पूरा किया है तथा मैं सीताका संदेश भी ले आया हूँ ।'

कुसल कुसल पद देखी । राम कृपाँ भा काजु बिसेषी ॥
नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना ।

आदि ।

ऐसी अंगदने रिपोर्ट दी तथा ऐसी ही रिपोर्ट फिर सुग्रीवने भी श्रीरामको दी कि—

प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू ।
तथा—

वनतनय के चरित सुहाए । जामवंत रघुपतिहि सुनाए ॥

—यद्यपि श्रीरामने हनुमान्जीको अपना विशेष (पर्सनल) दूत बनाकर भेजा था अपनी मुद्रिका देकर । अतः श्रीरामको खुद रिपोर्ट देनेका उन्हें अधिकार था । फिर वे सीताजीका विशेष संदेश तथा वृत्तावली भी तो लाये थे । अतः आगे बढ़कर भेंट कर सकते थे । पर नहीं, रामदलमें उनका चतुर्थ स्थान था—पहले सुग्रीव, फिर जाम्बवंत, फिर अंगद, फिर हनुमान् एवं अपनेसे बड़ोंको सीधे रिपोर्ट देना, करना—अपनेसे बड़ोंका अपमानसूचक होता । फिर हनुमान्-जी तो नम्रताकी प्रतिमूर्ति थे, तभी तो लंका-विजयपर जाते समय भी सबको शीश नवाकर चले—

यह कहि नाइ सबन्हि कहूँ माथा ।

हनुमान्जीद्वारा सीताजीकी सुध लानेपर तथा उनका संदेश एवं निशानी प्राप्त कर जब श्रीराम उन्हें अपने निकट बैठकर प्रेमपूर्वक पूछते हैं—

रघु कपि रावन पालित लंका । केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका ॥

तब अभिमानगलित, नम्रताके अवतार श्रीहनुमान्जी कहते हैं—

साखा मृग के बहि मनुसाई । साखा तैं साखा पर जाई ॥

बाधि सिंधु हाटकपुर जारा । निसिचर गन बधि बिपिन उजारा ॥
सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछु मोरि प्रभुताई ॥

इसी प्रकार जब भगवान् श्रीराम कहते हैं कि—

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं । देखेउँ करि बिचार मन माहीं ॥

देखिये, सफलताके चरमविन्दुपर भी दीनता, महावीर होते हुए भी अपने-आपको एक शाखामृग मानना कितनी बड़ी बात है । इसी प्रकार जब सीताजी हनुमान्जीके लघु रूपको, साधारण रूपको देखकर परम शङ्का प्रकट करती हैं कि कैसे ऐसी वानरोंकी सेनासे प्रबल राक्षसोंपर श्रीराम विजय प्राप्त करेंगे, तब पुनः ऐसे अवसरपर अपने प्रभुका प्रतापप्रदर्शनके लिये तथा एक दुष्टके चंगुलमें फँसी दुखी माताकी सान्त्वनाके लिये वे अपनी देह अपना पौरुषमय विराट् स्वरूप प्रदर्शित करते हैं—

कनक भूधराकार सरीरा । समर भयंकर अतिबल बीरा ॥

पर तुरंत ही, विशाल शक्तिके प्रदर्शनके साथ ही फिर अपने आपको शाखामृग ही कहते हैं—

सुनु माता साखामृग नहि बल बुद्धि बिसाल ।

विशालताके साथ लघुताका कैसा अद्भुत समन्वय है, जो विरलोंमें ही पाया जाता है ।

फिर यह बात नहीं कि अपने प्रभु या स्वामी लोगोंके सम्मुख ही उनकी यह नम्रता, आत्मश्लाघा या अभिमान-से दूर रहनेकी प्रवृत्ति प्रकट होती हो । यह तो उनका स्वभाव ही बन गया था । तभी तो बेचारे वे दूतगण, जो कि रामसेनाका भेद लेने रावणद्वारा भेजे गये थे, धोखा खा गये, उन्होंने देखा यह हनुमान्, जिसने लंकामें इतना उपद्रव मचाया, एक शान्त एकान्त नगण्य-सा बंदर है । अतः उन्होंने रिपोर्ट दे दी—

जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महुँ तेहि बलु थोरा ॥

पर निरभिमानताका तो परम उत्कृष्ट उदाहरण

उपस्थित होता है तब जब उनकी विभीषणजीसे भेंट होती है एवं विभीषण दीनभावसे कहते हैं—

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा । करिहि कृपा भानुकुल नाथा ॥

तब परम भक्त हनुमान्जी अपने उस महापौरुषको भूल जाते हैं जो कि वे अभी-अभी कर आये हैं । यथा—
समुद्रलङ्घन तथा समुद्री राक्षसोंका हनन या मानमर्दन ।
एवं तुरंत कहते हैं, 'प्रिय सखा विभीषण ! सुनो, प्रभु-
की शरणमें अधम-से-अधमको स्थान है । मुझको ही देखो न—

कहहु कवन मैं परम कुलीना । कपि चंचल सबहीं बिधि हीना ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा । तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा ॥

अस मैं अधम सखा सुनु..... ।

इस प्रकार महावीर विक्रम बजरंगी अपने-आपको एक परम साधारण बंदरसे अधिक कुछ नहीं मानते । वे तो अपना बल श्रीरामको मानते थे एवं अपनी गरिमा एक नदीकी भाँति शक्तिके पुञ्ज श्रीरामरूपी समुद्रमें खोकर, अपने-आपको हल्का पाते थे । इसीलिये हर कार्यके पूर्व उन्होंने श्रीरामका स्मरण किया एवं सुगमतापूर्वक अभिमानसे रहित होकर विलक्षण कार्य किये । यही शायद उनकी अभयताका भी कारण था । तभी तो मेघनादद्वारा बाँधे जानेपर, रावण-दरबारमें सभीत दिक्पालोंको, वरुण, कुबेरको हाथ जोड़े देखकर भी, उन्होंने—

जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका ।

—प्रवेश किया एवं रावणको निर्भय उपदेश देते हुए कहा—

मोहि न कछु बाँधे कह लाजा । कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा ॥

ठीक है, पहले ही तुलसीने कहा है—

प्रभु कारज लगि कपिहि बंधावा ।

पर रामायणमें एक प्रसंग ऐसा अवश्य आता है, जिसमें श्रीहनुमान्जीको कुछ क्षणोंको अपने बलका घमंड आ जाता है । ऐसा प्रसंग लक्ष्मण-शक्तिके समम जड़ी लेकर आते हुए भरतद्वारा बाण मारे जानेपर एवं उनके द्वारा त्वरित उन्हें भेजेनेके हेतु अपने बाणोंपर बैठनेका आह्वान करनेपर होता है ।

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना । मोरें भार चलिहि किमि बाना ॥

किंतु श्रीरामके प्यारे एवं अनन्य भक्त एवं सेवकको घमंडका स्पर्श ही आश्चर्यकी बात है, उसका टिकना तो असम्भव ही है । अस्तु—

राम प्रभाव बिचारि बहोरी । बंदि चरन कह कपि कर जोरी ॥

राम-प्रभावकी स्मृति होते ही उनके संशयका तुरंत नाश हो जाता है ।

रावण-जैसे महाबलशालीसे टक्कर लेना एवं उस विशाल शैलकायको भी अपनी एक मुष्टिका-प्रहारसे धराशायी कर देनेवाले पवनसुतके महापराक्रमकी बरबस दैत्य-सम्राट् रावणको भी बड़ाई करनी पड़ी—

मुख्य गै बहोरि सो जागा । कपि बल बिपुल सराहन लागा ॥

पर वे ही—

‘अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं ।’

परम दीनतापूर्वक प्रभुसे परिचयके समय कहते हैं—

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान ।

अस्तु, इससे यही सिद्ध होता है कि पवनसुत हनुमान् न केवल एक आदर्श सेवक, निर्मल हृदय संत तथा श्रेष्ठ भक्त थे, वरं अतुलित बलके धाम होते हुए ही वे विनय, नम्रता और सौजन्यताकी साक्षात् मूर्ति हैं । अतुलनीय शक्तिके साथ विनम्रताका रहना ही वास्तविक विनम्रता है !

जी भर कर हंसिये

(लेखक—श्रीवेदव्रतजी दीक्षित, एम० ए०, एल्० टी०)

मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो हँसना जानता है। हँसना ईश्वरीय वरदान है, इसलिये इसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिये।

शिशु जन्मके कुछ दिनों बादसे मुस्कराने लगता है। हँसी बीस सप्ताह तकके बच्चेमें नहीं देखी जाती। आरम्भमें मुस्कराने और हँसनेकी क्रियामें मस्तिष्क-संस्थान और चेष्टा-तन्तुओं (Motor Neurous) की विशिष्ट प्रतिक्रियाएँ कारण होती हैं। बादको बच्चासे इनका समाजीकरण हो जाता है।

ठीक समयपर हँसना इस बातका परिचायक है कि आपको सामाजिकताका ज्ञान है। लोग हँसकर, मुस्कराकर मित्र बनाते हैं और दुश्मन भी पैदा करते हैं।

आप हँसीके द्वारा अपने मनोभावकी सूचना दूसरोंको देते हैं। हँसना कभी आपकी शुभेच्छाका, कभी मनाका, कभी मूढ़ आनन्दका और कभी खीझनेका भी परिचायक हो सकता है। कभी-कभी लोग अपने मनोभावको छिपानेके लिये भी हँसते हैं। हँसना सांकेतिक भाषाका एक अङ्ग है।

हँसना स्वास्थ्यके लिये अच्छा है। दीर्घायु प्राप्त करनेवालोंमें निश्चल भावसे हँसनेका गुण प्रायः देखा गया है। यह कुछ आन्तरिक-शारीरिक अवयवोंके लिये अच्छा व्यायाम है।

आप हँसते हैं जब कि कहीं कोई ऐसी कमी या गड़बड़ी देखते हैं जिससे अपनी वास्तविक हानि या क्षतिका अनुभव नहीं करते। दया कर लोगोंकी ऐसी कमियोंपर कम-से-कम उनके सामने मत हँसिये जिनपर उनका वश नहीं है—जैसे अङ्गहीनता, कुरूपता और रुकड़ाहट।

कहते हैं कि एक बार काले-कुरूप, शीतलके दागोंसे भरे मुख और एक आँखवाले कवि 'जायसी'को देखकर बादशाह शेरशाह अपने भरे दरबारमें हँस पड़ा था। कविने पूछा—

‘मोंहिका हँसेसि कि कोहरेहिं।’

—मुझको हँसते हो या कुम्हार (ईश्वर) को ? शेरशाहके पास कोई जवाब नहीं था।

कहीं आप इतने जोरोंसे तो नहीं हँसते कि ळगता हो अभी छत टूटकर गिर पड़ेगी ? यह भी हो सकता है कि आप हँस रहे हों और दूसरोंको रोनेका भ्रम होता हो। यह सच है कि कुछ लोगोंको हँसना नहीं आता।

हँसनेके समय, कोई भी हो, मुख प्राकृतिक रूपसे अधिक सुन्दर ळगता है। यदि हँसनेके बीच मुखपर तनाव दिखलायी पड़े, मुखाकृति पहलेसे भद्दी हो जाय तो संकोच, व्यंग, भय, दमन (Repression) या मनो-ग्रन्थियोंकी आशंका करनी चाहिये। अकारण रुक-रुक कर हँसनेवाले आत्मदमनके पीड़ित होते हैं। कुछ लोगोंमें इस प्रकार बेहद हँसना मानसिक बीमारीका चिह्न होता है।

विकृत हास्य प्रायः ऊपर लिखी गयी बातोंका सूचक होता है।

× × ×

इन साधारण-सी बातोंको जानकर आप जी भर हँस सकते हैं, जरूरत भर हँस सकते हैं। भूलिये नहीं कि निश्चल हँसीका एक भी क्षण दैवी कृपाके बिना प्राप्त नहीं हो सकता। हँसना कितनी साधारण-सी बात है और मनोविज्ञानकी दृष्टिसे कितना असाधारण ? अनायास तुलसीकी पंक्ति याद आती है—

कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभुके एक-एक उपकार।

सबसे न्यारा प्यार तुम्हारा !

(रचयिता—प्रो० श्रीभवदेवजी झा, एम्० ए० [द्वय])

सबसे ऊँचा, सबसे सच्चा, सबसे न्यारा प्यार तुम्हारा !
 भला-बुरा हम जो कह देते,
 तुम चुपचाप उसे सह लेते;
 फूल तुम्हें दें या दें काँटे, तुमको सब स्वीकार हमारा !
 बात तुम्हारी कभी न मानी;
 चलते रहे राह मनमानी,
 फिर भी कभी शिकायत क्या की ? कितना हृदय उदार तुम्हारा !
 जब-जब प्रिय, अस्वस्थ हुए हम,
 तुमने हमें सिखाया संयम;
 कटु-मधु ओषधिसे तुम करते नित समुचित उपचार हमारा !
 दिये सदा तुमने बहुविध सुख,
 मिले तुम्हें हमसे दुख ही दुख;
 तो भी विमुख कभी न रहे तुम, यह क्या कम उपकार तुम्हारा ?
 स्थिर इस जगका प्यार न पाया;
 मिली मोहकी चञ्चल छाया;
 किंतु मुड़ा जब, निश्चल निर्मल मिला स्नेह-संसार तुम्हारा !
 सुखमें हमने तुम्हें भुलाया,
 दुखमें तुमने पास बुलाया,
 हृदय जानता है केवल यह कितना है आभार तुम्हारा !
 झूठे सुखसे नित सम्मोहित,
 हम न सोच पाते अपना हित;
 ठुकराया हमने आमन्त्रण प्रियतम ! कितनी बार तुम्हारा !
 हरदम प्रीति तुम्हारी बरसी,
 पर अचेत यह आत्मा तरसी;
 खुला हुआ था जाने कबसे करुणामय दरबार तुम्हारा !
 जबसे परखी प्रीति तुम्हारी;
 निज आत्मा-निधि तुमपर वारी;
 हम विक चुके तुम्हारे हाथों अब तो है अधिकार तुम्हारा !

संत श्रीजयमलदासजी

[भूल-सुधार]

(लेखक—सिंहस्थल रामस्नेहीसम्प्रदायाचार्य-प्रधान-पीठाधीश्वर श्री १०८ श्रीभगवद्दासजी शास्त्री)

‘कल्याण’ वर्ष ४० के चौथे अङ्कमें डा० शालिग्रामजी गुप्तका एक लेख ‘संत जयमलदासजी व उनके पद’ शीर्षक प्रकाशित हुआ है, जो रामानन्दीय एवं सिंहस्थल रामस्नेही-पद्धतिसे विपरीत है। अतएव सिंहस्थल-खेड़ापाके परम्परा-नुसार जो मान्यता चली आ रही है उसके अविकल उद्धरण (मुद्रित एवं हस्तलिखित ग्रन्थोंसे) देकर वास्तविक तथ्यको प्रकाशित किया जाता है। श्रीसम्प्रदायान्तर्गत श्रीरामानुज-स्वामीकी २३वीं पद्धतिमें श्रीरामानन्दजी महाराज हुए। इहाँ श्रीरामानन्दजीकी १०वीं पद्धतिमें रामानन्दीय वैष्णव महत्त श्रीचरणदासजी महाराज कोडमदेसर (वीकानेर) में हुए। वे वहीं रहा करते थे। इसी तरह ११वीं पद्धतिमें श्रीजयमलदासजी महाराज इन चरणदासजीसे दीक्षित होते हैं। नीचे कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

(१) रामानन्द अनन्तानन्दं कर्मचन्द देवाकर,
पूर्ण मालवी शिष्य दामोदरदास उजागर।
नारायण मोहनदास दास माधो मैदानी,
ता सिष सुन्दरदास चरणदास निज ज्ञानी ॥
जिन जैमल” प्रगटे नमो, हरिरामदासके सब सुतन।
रामदास बन्दन करत, पदपंकज अनुचर यतन ॥
(रामस्नेही धर्मप्रकाश—पृष्ठ ४)

(२) पूरणदास प्रताप, देस मालागर पावन।
दास दामोदर पाद, रामचर्चा गुन गावन ॥
नारायण मोहनदास, दास माधो गुणसागर।
सुन्दर चरणेहु दास, जीव केतान उजागर ॥
मरतखण्ड मुरधर धरा, पतितपार तिम अघ हरण।
देवाकर शाखा अघट, राम भगत परगट करण ॥
तम्बू अघर अकास, दलीचा अवन सदाई।
विचरत सहज सुभाय, जगत परवाह नहिं काई ॥
मैदानी मैदान रता, हर गुरके आसै।
क्षेत्रपाल सिष भयो, भगतजन भाव प्रकासै ॥
प्रचुर कथा जग जस बढत, कोडमदेसर बार सत।
हंसदसा आरूढ मत, माधोदास अपार गत ॥४१॥

भक्तपुंज परसिष, उदय आंकूर सवाया।
परसन भये दयाल, रूप गूढ धर आया ॥
जेतराम जल पाय, पंथ संत मेद बताया।
राम राम मुख ध्यान, सिवर परचै पद पाया ॥

पृष्ठ ८—

उलट मिलै सुन सिखर धर, अनुभव गिरा उचार सत।
जय जय जैमलदास गुरु, घट चित्र अघटा पाय तत ॥४२॥
(श्रीदयालजी महाराजकी ‘भक्तमाल’ अप्रकाशित)

(३) रामानन्द वन्दि दास, वन्दन अनन्तानन्द;
वन्दौ कर्मचन्द देवाकर सुखकन्दको।
पूरण ही मालवी जू दामोदर दास वन्दौ;
नारायणरु मोहन वन्दौ तजि द्वन्दको ॥
वन्दौ जन माधोदास, सुन्दर चरणदास;
जैमल हरिराम वन्दि वन्दौ ता नन्दको ॥
(रामस्नेही धर्मप्रकाश—पृष्ठ ३२४)

(४) माधवदासके सेव सदा उर, गुरुदेव स्थापन मेरे यो ही।
इष्ट गोतन्त्र पितृ सुर पूजन, काज कल्याण प्रजात सुकोई ॥
गंग जमन नहवाइ जु बाहिमें, चित्र पवित्र मनोरथ सोई।
सो गुरुदेव नमो निज स्वामि जु, मेरी तो साय उन्हीं ते होई ॥
ताहिके सुन्दर पाट विराजत, गाजत इन्द जु ग्यान अपारो।
सार सिरी मन नित्य पिछानत, सुन्दर होइके सुन्दर न्यारो ॥
पाँचहुँ तीन किये घर सुन्दर, सुन्दर चित्त चलै न कदारो।
सो गुरुदेव नमो निज स्वामिहु, नन्द अनन्दमें काज सुधारो ॥
चित्त चरण शरणको पालक, दास चरण चरण भयो है।
प्रेमहु प्रीत जगी जिनके घट, द्वैत विषाद सु दूरि गयो है ॥
बुद्धिप्रवीन अपार दियै जिन, आप उद्योत प्रकास लयो है।
रीति सुरीति सदा सन्त सेवत, मेव समेव अखण्ड रह्यो है ॥
तासु प्रसाद नमो जिहि जैमल, बंस प्रजापति आप बन्यो है।
ज्ञान विज्ञान को देखि सबैपर, कामरु क्रोधको दूरि हन्यो है ॥
दत्तदयाल सो मत्त को धारक, सिद्ध कपिल सो ध्यान गन्यो है।
सो गुरुदेव नमो जिह स्वामिहु, आप अविगत तत्त मन्यो है ॥१३॥
(गुरुप्रकरण परची-बैभव-वर्णन पृष्ठ ४)

(५) अनन्तानन्द के नमो कर्मचन्द, ताके देवाकरै धिन परसिष।
पूर्ण मालवी दास दामोदर, ता नारायण दास कुलोधर ॥
मोहनदास तासु सिष पूरा, अग्रज माधोदास हजुरा।
मैदानी के सुन्दरदासा, चरणदास ता चरण निवासा ॥
जय जय जैमल दास प्रवीना, आतम परचै पद लवलीना ॥२९॥
(गुरुप्रकरण परची—पृष्ठ ४)

(६) क्रमशः १ से ८ के बादके (छन्द)
ध्यान माधोदास धारयो, मंड जाय मैदान।
आकास ओढण भूमि पोढण, दसो दिस वखान ॥
तो परवान जी परवान, त्याग बैराग में परवान ॥ ९ ॥

किये नख सिख सर्व सुन्दर, ध्यान सुन्दर धार ।
बाद विरोध विकार परिहर, दिये द्वन्द्व मार ॥
तो चित च्यार जी चित च्यार, निर्मल किये मन चित च्यार ॥१०॥
चरणदास बिचार बाणी, राम चरणों चित ।
अल्पसुख संसारको, निज नाम साचो बित ।
तो बड़ कृत्त जी बड़ कृत्त, सन्तो चरण की बड़ कृत्त ॥११॥
नमो जैमलदास स्वामी, बड़े धीर गंभीर ।
धार जन अवतार अनी, मेटणा पर पीर ।
तो सुख सीर जी सुख सीर, अमृतधार की सुख सीर ॥१२॥
(रामरत्नेही धर्मप्रकाश, पूरणदासजीकी वाणी—पृष्ठ ३०८)

उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि श्रीजयमलदासजीके गुरु, श्रीसुन्दरदासजीद्वारा दीक्षित कोडमदेसर (बीकानेर) निवासी श्रीचरणदासजी ही थे । श्रीशुकदेवजीके द्वारा दीक्षित चरणदासजी, जो सं० १७६० में उत्पन्न हुए थे, इनके गुरु नहीं हैं । उनके विषयमें उत्तरी भारतकी संत-परम्परा-में पृष्ठ ७१८ पर ग्रन्थकारने लिखा है कि “मेरा जन्म ‘डेहरे’में हुआ था । पूर्व नाम रणजीत, पिताका मुरली था । जाति दूसरी थी । घूमता हुआ मैं दिल्ली आ गया जहाँ शुकदेवजीके दर्शन हुए और उन्होंने मेरा नाम चरणदास रख दिया ।” इसी बातको स्वीकार करते हुए ‘राजस्थानी भाषा और साहित्य’में पृष्ठ ३०१ पर मोतीलालजी मेनोरिया कहते हैं कि— “इनका जन्म मेवात प्रदेशके ‘डेहरा’ नामक ग्राममें सं० १७६० के लगभग हुआ था । लोग इन्हें ब्राह्मण और कुछ दूसर बनिया बतलाते हैं ।” इन्होंने चरणदासी पंथ चलाया और इनके ५२ शिष्य हुए और ये १८३८ में परलोक सिधारे । इनकी गदियाँ अनेक स्थानोंपर हैं । इन्होंने १४ ग्रन्थोंकी रचना की है, जिनमें कहीं भी जयमलदासजीका नाम नहीं है । अतः काल-व्यतिक्रमसे भी ये जयमलदासजीके गुरु नहीं होते हैं ।

श्रीजयमलदासजी कोडमदेसरसे चरणदासजीसे दीक्षित होनेपर सौवतसर नामक ग्राममें जो बीकानेर रियासतमें है, जाकर मन्दिरकी सेवामें लगते हैं । इनके एक शिष्य रामदास-जी इसी समयमें होते हैं जो बादमें अयोध्या प्रस्थान कर जाते हैं । सं० १७६० के चातुर्मासमें आप कथा कर रहे थे । बटना सौवतसर ग्रामकी है । इसी कथामें एक दिन ‘गूढ़-रूप’से भगवान्का पधारना जयमलदासजीने वर्णन किया है । उद्धरण प्रस्तुत है—

प्रश्न—(हरिरामदासजीका)—

(७) प्रथमहिं भक्ति सगुण तुम साधी । सो सब तजी कवन परसादी ॥
निर्गुण भक्ति लही प्रभु कैसे । सो गुरु कहो कृपा करि जैसे ॥

उत्तर—

सुन सिष कहौ यथार्थ सहते । जब हम सौवतसरमें रहते ॥
वहाँ एक पंथीजन आये । नाम गृहस्थ मोहि बतलाये ॥
जेतराम जल पावो वालं । ऐसे बचन कहे तत्कालं ॥
जबहीं जल तुंवी भर लायो । तब मैं महापुरुष को पायो ॥
महापुरुष बोले पुनि बैना । मो को पंथ बताय सुदेना ॥
जब मैं पंथ बतावन काजा । चलो साथ में ले महाराजा ॥
चलत चलत पंथनमें संग । पूछ्यो एक मोहि परसंगा ॥
साधन कथा करौ तुम भाई । सो मोहि अवधू कहौ सुनाई ॥
जब मैं कही ताहि विधि सारी । पाठ करूँ अर सेव मुगरी ॥
सेवा पूज करी अब ताँई । निश्चय भयो कि तेरे नाई ॥
तब मैं पूछत भयो सुमेवं । निश्चय मोहि बतावो देवं ॥
महापुरुष समीप्य बोलायो । राम राम निज मंत्र सुनायो ॥
ब्रह्ममिलनकी युक्ति बताई । सेवा पूजा सकल लुड़ाई ॥
धारी सुरत मूँद कर नैना । लागी राम भजन खिब लैना ॥
(रामरत्नेही धर्म-प्रकाश, पृष्ठ ३३६)

इस तरह इन्हें यह १७६०में भगवद्दर्शनोपदेश हुआ है; श्रीचरणदासजीद्वारा गुरुदीक्षा नहीं । चरणदासजीद्वारा गुरुदीक्षा तो इससे पहले ही हो चुकी थी । अब तो वे निर्गुण भक्ति-प्रवर्तक बने थे । तदुपरान्त श्रीजयमलदासजीके श्रीहरिरामदासजी ही शिष्य हुए हैं, जिन्होंने आपसे ‘तारकमन्त्र’ विक्रम संवत् १८०० में लिया है । यहाँ यह बतला देना आवश्यक होगा कि ‘कल्याण’के उपर्युक्त लेखमें इस दीक्षा-संवत् १८०० को भी असंगत बतलाया है और इसके प्रमाणमें उन्होंने आधारस्वरूप ‘हरियशमणि-मंजूषा’ नामक पुस्तकमें मुद्रित आशारामजीकृत लावणी पृष्ठ ४८६ को लिया है । पर उनका यह कथन भी असङ्गत है । श्रीहरिरामदासजी महाराजकी दीक्षा वस्तुतः १८०० में ही हुई थी, यह तथ्य प्रमाणपुष्ट है । प्रमाणस्वरूप यहाँ निम्न उद्धरण पर्याप्त होंगे—

(८) एक मिले सागर समत, बरस सईको बंद ।

आसापुरण पास धिन, कृष्ण त्रयोदसि कंध ॥
(गुरुप्रकरण परच-वैभव-वर्णन, पृष्ठ ६)

[एक (१) सागर (७) सईको (१००) कुल

१८००]

संख्या ६]

(९) संवत् सत्रहसे वर्ष सईको; मास अषाढ़ मास मद्र नीको ।
वदि तेरस दिन सुदिन सदाई; रामकृपा गुर दीक्षा पाई ॥
(गुरुप्रकरण परची, पृष्ठ १७)

(१०) पंच ग्राही परसिध; जीव तारण महाराजा;
आन कुपंथ मिटाय पंथ भगवद् सिध काजा ।
आपा भरम मिटाय; करमकी सीव मिटाये ।
विश्वोई सिध क्रिये; तास मुख राम रटाये ॥
संवत् सत्रह सई भल समौ; आवि व्याधि जीवां हरी ।
राम नाम परताप धिन; जैमल शाखा विस्तरी ॥
वरस सईको सुदिन मास आषाढ़ उज्यागर ।
वद तिथ तेरस उदय ज्ञान गुरदेव कृपाकर ॥
आदि भगतको अंस तारण जीवां हित आयें ।
गुर पद मिल पद परस; ब्रह्म परचे तत पाये ॥
निरविकार निरभै भया; जीव सीव मिल नहि भिन्न ।
जयमलदास प्रताप पद; ताप भये हरिराम धिन ॥४४॥
(दयालजीकी 'भक्तमाल' अप्रकाशित)

इससे स्पष्ट होता है कि श्रीहरिरामदासजीको दीक्षा श्रीजयमलदासजीसे १८०० में ही होती है, जैसा कि स्वयं श्रीहरिरामदासजी महाराजने अपने ग्रन्थ 'धवर निसाणी'—में व्यक्त किया है—

हरिया संवत् सत्रहसे वर्ष सईको जान ।
तिथि तेरस आषाढ़ वदी सतगुरु पड़ी पिछान ॥
यहाँ उक्त दोहेके बारेमें भी कुछ कहना अत्यावश्यक हो गया है । 'उत्तरी भारतकी संत-परम्परा'—पृष्ठ ६७१ एवं 'कल्याण' वर्ष ४०, अङ्क ४, पृष्ठ ८७६ में 'हरिया' शब्द छपा है जो भूल है; वह असलमें 'हरिया' न होकर 'हरिया' होना चाहिये । प्रमाण हस्तलिखित प्रतियाँ तथा मुद्रित ग्रन्थ है । उनकी दीक्षाको १८२० प्रामाणिक मानें तो वह निराधार सिद्ध होती है । डॉ० शालियारामजी अपनी इस बातको प्रामाणिक ठहरानेके लिये 'हरियशमणिमंजूषा' की आशारामजीकृत लावणीका यह दोहा प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत करते हैं । किंतु उन्होंने इस दोहेमें आये हुए 'घौ' को 'द्वै' लिखा है जो अशुद्ध मुद्रित था । शुद्ध यों है—

व्योम घौ सिधि चन्द्र अंका । जानिय संवत् गति बंका ॥
इसी पद्यांशका अन्वय यों होगा—व्योम (शून्य०)
घौ (०) सिद्धि (८) चन्द्र (१) अर्थात् १८०० ।
सय आशारामजी इसी लावणीमें लिखते हैं—
अठारा छका जब आयन । शिष्य तब आये नारायन ॥
बारस जब बीत गये फिर तीन । शिष्य भये रामदास परवीन ॥

प्रसङ्गको देखते हुए निम्न पंक्तियाँ भी उस ओर प्रकाश डालनेमें सहायक होंगी—

संवत् अठारह प्रसिध वरस नवको भल आयक ।
शुक्ल पक्ष वैशाख तिथि एकादश लायक ॥
ता दिन उदय उद्योत; परस सतगुरु पद पूरा ।
आप आप मिल आप; राम भज उदय अंकूरा ॥
सतगुरु मिल सतगुरु भया; बालबाल धर ध्यान चित ।
भक्तसमौ भूमंडमें; बल बल वारुँ बार मित ॥
(बालजी महाराजकी 'भक्तमाल' अप्रकाशित)

एक उदाहरण और प्रस्तुत है—

संवत् अठारह भल भल आयो । नो के वरस पदारथ पायो ॥
मास बैसाख शुक्ल पक्ष माहीं । एकादसी तिथि सुखदाई ॥
उदय प्रभात अरथ सिधि जा दिन । गुरु हरिराम कृपा की तादिन ॥
रामदास तो नाम सदाई । राम सनेह संगति के माहीं ॥
(गुरुप्रकरण परची, पृष्ठ १४)

जब श्रीहरिरामदासजी महाराज रामस्नेही शाखा (खेड़ापा) के प्रवर्तक श्रीरामदासजीको दीक्षा १८०९ में देते हैं; तो स्वयंको श्रीजयमलदासजीसे १८२० में दीक्षित किस तरह करवा सकते हैं ? इससे सिद्ध है कि हरिरामदासजीको दीक्षा १८०० में हुई । इससे पहले श्रीजयमलदासजीको सगुण दीक्षा श्रीचरणदासजी (कोडमदेसर) द्वारा होनेके उपरान्त १७६० में निर्गुणप्रद भगवद्दर्शन दीक्षा हुई थी । तबसे आप दुलचासर एवं रोड़ा (दोनों ही बीकानेर रियासतमें हैं) नामक ग्रामोंमें ही विराजमान रहे । यहींपर १८१० में आपका परमधाम-गमन होता है; जिसके प्रमाणस्वरूप रोड़ा ग्राममें चरणपादुका एवं देवल विद्यमान हैं । इससे भी श्रीहरिरामदासजीका १८२०में दीक्षित होना असंगत सिद्ध हो जाता है ।

यदि इससे भी पूर्व प्रमाण मानें तो 'कल्याण' वर्ष १२ अङ्क १ पृष्ठ ६२६ पर दीक्षाकाल १७०० लिखा गया है । इसी तरह 'कल्याण' वर्ष २६ अङ्क १ पृष्ठ ४४९ पर भी तथा 'कल्याण' वर्ष २९ अङ्क १ पृष्ठ ४०९ पर भी हरिरामदासजीका दीक्षा-संवत् १७०० ही लिखा गया है । किंतु इनमें भी संयोगवश भूलसे ही ऐसा लिख दिया गया है और पूर्वकथित दोहे 'हरिया संवत् सतगुरु पड़ी पिछान' के अंश 'हरिया संवत् सत्रहसे' को ही लेकर लिख दिया गया है; आगेका अंश 'वरस सईको जान' बिल्कुल ही अद्धूता रह गया है । अतः यहाँ भी १८०० ही होना चाहिये ।

श्रीजयमलदासजी महाराजके पद सम्पूर्ण अद्यावधि उपलब्ध ४७ हैं । जिन्हें 'कुछको 'रामस्नेही धर्मप्रकाश' में;

एवं कुछको 'हरियश-मणिमंजूषा' में मुद्रित किया जा चुका है तथा कुछ पद मुद्रित नहीं हो पाये हैं। अब आपके समग्र पदोंका संकलन श्रीजयमलदासजी महाराजके निर्गुणपद नामक पुस्तकके आकारमें छप रहा है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होने-वाला है।

अब तो यह स्पष्ट हो ही गया है कि जयमलदासजीके गुरु श्रीशुकदेवजीके द्वारा दीक्षित श्रीचरणदासजी न होकर, रामानन्दीय सुन्दरदासजीके शिष्य श्रीचरणदासजी हैं। श्रीपरशुरामजी चतुर्वेदीने अपनी 'उत्तरी भारतकी संत-परम्परा' (द्वितीय संस्करण) नामक पुस्तकमें पृष्ठ ६६९ पर मेवात-निवासी चरणदासजीका शिष्य होना जयमलदासजीके लिये नहीं लिखा है; किंतु उन्होंने लिखा है कि 'इनके दीक्षा-गुरु जयमलदासजीके लिये कहा जाता है कि वे प्रसिद्ध स्वामी रामानन्दजीकी ११वीं पद्धतिवाले कोडमदेसर (बीकानेर) निवासी चरणदासजीके शिष्य थे। उन्होंने उनसे अपनी दीक्षा संवत् १७६० में किस समय ग्रहण की थी।'।

इसपर 'श्रीरामदासजीकी वाणी'के प्रधान सम्पादक श्रीहरिदासजी शास्त्री दर्शनार्थवेदाचार्य बी० ए० ने अपने सम्पादकीय वक्तव्यमें पृष्ठ ७ पर लिखा है। 'अठारहवीं शताब्दीमें इनका आविर्भाव माना जाता है।' इससे हमें ज्ञात होता है कि संत श्रीजयमलदासजीकी प्रथम (सगुण) दीक्षा श्रीचरणदासजी कोडमदेसर (बीकानेर) निवासीद्वारा सम्भवतः वि० सं० १७४०-५० के लगभग हुई होगी और यही सही जान पड़ती है।

इनका मेवात-निवासी श्रीचरणदासजीका शिष्य होना तो नितान्त असम्भव एवं कल्पनामात्र कहा जा सकता है। मेवात-निवासी चरणदासजीका तो एक पंथ ही अलग है जिसे 'चरणदासी' नामसे पुकारा जाता है और जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, उनके १४ ग्रन्थोंमें कहीं भी श्रीजयमलदासजीका नाम नहीं है और न ५२ शिष्योंमें ही श्रीजयमलदासजीका नाम कहीं आता है।

किंतु उक्त विवरणसे श्रीजयमलदासजीको रामस्नेही-सम्प्रदायका प्रवर्तक मानना भी ठीक नहीं है। रामस्नेही-सम्प्रदायके मूल आचार्य कौन हैं? इस विषयमें जैसा कि 'रामस्नेही-मत-दिग्दर्शन'के रचयिता श्रीउत्साहरामजी प्राणाचार्य पृष्ठ १५ पर लिखते हैं—'.....अतः अब यह स्वयं सिद्ध है कि रामस्नेही-सम्प्रदायके मूल आचार्य श्रीजयमलदासजी महाराज हैं।' किंतु उनका यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण है; क्योंकि श्रीजयमलदासजी महाराजको

सम्प्रदायकी सभी शाखाओं एवं उपशाखाओंमें गुरुका स्थान दिया गया है, न कि रामस्नेही-सम्प्रदायके प्रवर्तक का। रामस्नेही-सम्प्रदायके प्रवर्तक तो इनके शिष्य श्रीहरिरामदासजी महाराज हैं। इसी बातको 'श्रीआचार्यचरितामृत'कार श्रीहरिदासजी शास्त्री पृष्ठ १०८ पर कहते हैं कि 'श्रीजयमलदासजी महाराजके 'परमधाम' पधारनेपर आपके शिष्योंने रोड़ा दुलचासरमें दो गुरुस्थान माने हैं। आजतक भी इन रोड़ा दुलचासर दो स्थानोंमें दो गुरुगदियाँ चली आती हैं। यहाँके महंत रामावत बैरागियोंके महंत कहलाते हैं। गुरु-परम्पराके अनुसार ये दोनों ही रामस्नेही-मतावलम्बियोंके गुरुस्थान माने जाते हैं।'*

चूँकि ये रामस्नेही-धर्मप्रवर्तक एवं मूलआचार्य श्रीहरिरामदासजी महाराजके गुरु थे; अतः इन्हें गुरुके रूपमें आदरकी दृष्टिसे देखा जाता है तथा सिंहस्थल-खेड़ापा दोनो ही स्थानोंमें नित्यप्रति होनेवाले वाणीपाठ तथा विशेष अवसरोंपर भी सर्वप्रथम श्रीजयमलदासजी महाराजकी वाणीका पाठ ही होता आ रहा है। पाठ-क्रम इस प्रकार हैं—सिंहस्थल-वाणी-पाठक्रम—

श्रीरामानन्दजी महाराज, श्रीजयमलदासजी, श्रीहरिरामदासजी, श्रीनारायणदासजी, श्रीहरदेवदासजी, श्रीरामदासजी, श्रीदयालजी, श्रीकवीरजी, श्रीनामदेवजी, श्रीरैदासजी आदि-आदिकी वाणीका क्रमशः पाठ।

* रामस्नेही-सम्प्रदायके एक परम आदरणीय महानुभावने वतलाया कि श्रीजयमलदासजी महाराज पहले सगुणोपासक थे और रोड़ा तथा दुलचासर नामक दो स्थानोंमें जो गदियाँ हैं, वे उसी समयकी स्थापित हैं। पीछे भगवान्ने दर्शन देकर जब उन्हें राम-मन्त्रका एक विशेष पद्धतिसहित उपदेश किया तबसे वे निर्गुणोपासक एवं निर्गुणभक्तिके प्रवर्तक हो गये।

इस स्थितिमें हमारी समझसे रामस्नेही-सम्प्रदायके मूल प्रवर्तक और आचार्य श्रीजयमलदासजी महाराजको ही मानना चाहिये; क्योंकि भगवान्ने उन्हींको मन्त्र दिया और वही रामस्नेही-सम्प्रदायका मन्त्र तथा नामजप-पद्धति है। अवश्य ही एकमात्र श्रीहरिरामदासजी ही श्रीजयमलदासजी महाराजके शिष्य हैं और रोड़ा तथा दुलचासरकी गदियाँ उनके सगुणोपासक रहनेके समयकी हैं अतएव सम्प्रदायका मूल स्थान सिंहस्थल ही है। श्रीजयमलदासजी महाराज श्रीहरिरामदासजीके गुरु थे, इसलिये उनके पूर्वस्थापित गदियोंको गुरुगद्दी माना जाना भी उचित ही है।—सम्पादक

खेड़ापा—वाणी-पाठक्रम—

श्रीरामानन्दजी महाराज, श्रीजयमलदासजी, श्रीहरिराम-
दासजी, श्रीरामदासजी, श्रीदयालजी, श्रीपूरणदासजी आदि-
आदिकी वाणीका क्रमशः पाठ ।

इसी तरह अन्य शाखाओंमें श्रीरामानन्दजी महाराज,
श्रीहरिरामदासजी, श्रीरामदासजी वाणियोंका पाठ कर लेनेके
उपरान्त अपने आचार्योंकी वाणीका पाठ किया जाता है ।*

इस प्रकार सदियोंसे चले आ रहे वाणी-पाठक्रमसे
यह पता चलता है कि श्रीजयमलदासजी महाराजको
श्रीगुरुजीके रूपमें और इनके शिष्य श्रीहरिरामदासजी
महाराजको 'प्रधान आचार्य' माना जाता है ।

विशेष जानकारीके लिये 'रामस्नेही-धर्म-प्रकाश' नामक
पुस्तकका अध्ययन कीजिये । पता है—बड़ा रामद्वारा,
बीकानेर ।

उदात्त सङ्गीत [हरियाली देखो]

(रचयिता—डा० श्रीवलदेवप्रसादजी मिश्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

(१)

हैयाम आदिने बोलतमें मस्ती देखी,
कविकुल गुरुतकने नीवि-मोक्षको मोक्ष कहा ।
यह मस्ती और मोक्ष तो अन्तरका धन है,
कय सुरा-सुन्दरीमें इनका अस्तित्व रहा ? ॥

(२)

अहि-दंष्ट्र नीमको मीठी ही बतलाता है,
विषयातुर क्या जानेगा मोक्षकी मस्ती क्या ?
अविनश्वर प्रियतमके प्रेमीसे तुम पूछो
यह इश्क-परस्ती अथवा हुस्न-परस्ती क्या ॥

(३)

जो खण्ड खण्ड है, वह अखण्ड सुख क्या देगा ?
क्षणभंगुर भोगोंको भोगो मर्यादासे ।
गङ्गाका उद्गम बूँदों बूँदोंको भटके ?
है सुधा-सरोवर तुममें, फिर भी तुम प्यासे ?

(४)

बादलके रंगोंकी सुन्दरता देखो, पर
उसको मुट्ठीमें भरनेका मत यत्न करो ।
जिसकी किरणोंसे ऐसे रंग उभरते हैं,
उस ज्योतिर्मयहीको तुम अपना रत्न करो ॥

(५)

देहों-देहोंका अलग-अलग बटवारा है,
अधिकार नहीं है एक अन्यका हरण करे ।
व्यापक समाजमें यदि मानवको रहना है
तो शुद्ध स्वार्थका वह पहिले संवरण करे ॥

(६)

न्यायोचित भोग तुम्हारे जो हैं इस जगमें,
जिनके भोगोंमें मन-संतुलन न खोता हो ।
आनन्दसहित ऐसे भोगोंको तुम भोगो,
जिनके भोगोंके बाद विवेक न रोता हो ॥

(७)

जगका सारा सौंदर्य उसी प्रियतमका है,
फिर हम विरक्त क्यों बनै, न क्यों उसका रस लें ।
रस देनेहीके लिये विश्व बन वह फैला,
हाँ, लक्ष्य रहे यह उसे न निजतक ही कस लें ॥

(८)

यदि ब्रह्म-जीवके चिन्तनमें चक्कर आये
तो मायाहीका प्रकृत प्रेम व्यापक कर लो ।
मस्तीका सुरस चखानेको है बहुत वही
जो उतनी भी सौंदर्य-सुधा उरमें भर लो ॥

(९)

दिनकी हलचल है, रातोंका विश्राम मधुर,
वृक्षोंका झूम-झूमकर मधु बरसाना है ।
मानव-मनके आकर्षणको क्या क्या न यहाँ
पशुओंकी धुन है और खगोंका गाना है ॥

(१०)

दोरंगे पक्षोंपर उड़ती रहती दुनिया,
यदि एक अश्रुसे सिक्त तारसे अन्य भरा ।
क्यों हार हारकर पीला पक्ष पकड़ते हो ?
हरियाली देखो, जिससे हो ले चित्त हरा ॥

* 'श्रीजयमलदासजी महाराजके पद' 'कल्याण'के अगले अङ्कसे दिये जायेंगे ।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

परहितव्रती जीवन

ये थे जिला गोरखपुर, चौरीचौरासे दक्षिण, ग्राम ब्रह्मपुरके पास एक छोटी-सी बस्ती पिपरहियाके निवासी परहितपरायण पं० विक्रमादित्यजी आदि चार भाइयोंमें सबसे छोटे श्रीरामलग्नजी इनके साथ मेरा कोई पूर्व परिचय नहीं था। मैं मीठाबेलसे सामान लेकर काशी जानेके लिये चौरीचौरा जा रहा था; अचानक गठरी मेरे सिरसे उतरी और अन्य सिरपर चली गयी। वह थे रामलग्नजी, जिनसे कोई परिचय न था। गठरी ढोते हुए वे चौरीचौरा ही नहीं, अपितु वाराणसीतक मेरे साथ पहुँच गये।

हम दोनों गौरीशंकर गोयनका-महाविद्यालयमें पं० रामयशजी त्रिपाठीसे पढ़ने लगे। आये दिन परहितका ध्यान रखकर कोई-न-कोई संकट अपने ऊपर रामलग्नजी ले ही लिया करते थे। यहाँतक कि नयी धोती, नया कुर्ता सदा दूसरोंको ही दे दिया करते थे। मैं विद्यालयसे आकर भोजन तैयार करके प्रतीक्षामें बैठा रहता कि वे आयें तो साथमें भोजन करें। प्रतिदिन आकर वे यही सुनाते कि आज एक बीमार भाई मिल गया था, उसे रिकशेपर बिठाकर उसके स्थानपर छोड़ने चला गया था तो आज एक विद्यार्थीके पास भोजन नहीं था, उसका प्रबन्ध आवश्यक था इत्यादि।

परीक्षोपरान्त रामलग्नजीतो घर चले गये, मुझे साहित्यसे विशेषयोग्यता देनी थी, अतः मैं रुक गया; परंतु ज्वरका शिकार हो गया। आगेपीछे कोई न था। तीन दिनतक ज्वराक्रान्त निस्सहाय पड़े रहनेपर मैंने रामलग्नजीको पत्र लिखा। पाँचवें दिन मडुववाँके पं० रामअवधजी पाण्डेय टाँगा लेकर आये और मेरा नाम लेकर बुलाने लगे। ज्वरावस्थामें ही मैंने पूछा; 'आप कौन हैं, कहाँसे आये हैं?' क्योंकि इनसे कोई परिचय न था। इनको तो रामलग्नजीने पत्र लिखकर मेरे पास भेजा था। ये सज्जन मुझे अपने निवासस्थान राममन्दिर ब्रह्मनालमें ले गये और इन्होंने वैद्योंकी दवासे मुझे स्वस्थ ही नहीं किया अपितु मेरे भोजन तथा पढ़ाईके साधनकी भी व्यवस्था की।

मैं स्वामी श्रीआत्मानन्दजीकी प्रेरणासे पंजाब आ गया तो रामलग्नजी भी पता लगाते हुए आ पहुँचे। हम दोनों गीता-मन्दिर अयोधरमें रहते थे। सब सोये हुए होते, तब रामलग्नजी उठकर मन्दिरकी सफाई विधिवत् कर डालते और साथ ही बोलते जाते—

हीरा जन्म अनमोल रे साजन, हीरा जन्म अनमोल ॥
मनसे-छल अरु कपट त्याग, द्वेषसेतू शत योजन भाग ॥
क्रोध समझकर काला नाग, मीठी वाणी बोल रे साजन ॥ हीरा०
मायाके चक्रमें आकर, इस दुनियासे मन भरमा कर ॥
धन-यौवनमें मोह बढ़ाकर, ऐसे ही मत रोल रे साजन ॥ हीरा०
जिसकी वन-वन खोज करत है, जाहि भजत दिन-रैन रटत है ॥
सो हरि हृदय माँझ बसत है, पट हृदयका खोल रे साजन ॥ हीरा०

इसी समय दक्षिण हैदराबादका सत्याग्रह आरम्भ हुआ। पं० जीको जातिकी सेवाका अच्छा मौका मिल गया। पं० बुद्धदेव विद्यालंकारके साथ घुमते हुए अपने तीन सौ साथियोंके सङ्ग औरंगाबादमें १८ मासके लिये कारागारमें बंद हो गये। उनके नाते मुझे भी यह सौभाग्य प्राप्त हो गया। जेलमें इनका त्याग, तप, बलिदान देखने लायक था। भोजन कम मिलता तो अपने भूखे रहकर दूसरोंको खिलाते। काम अधिक करना पड़ता तो दूसरोंका भी काम कर देते। मार पड़ती तो मार खानेवालेके आगे जाकर सिर नीचा कर देते और प्रहार सह लेते। संन्यास, कीर्तन, भजन, उपदेश सदा करते और दूसरोंको भी प्रेमसे सिखाते। मैं यह सब देखा करता और मन-ही-मन सोचता कि ये मनुष्य हैं कि देवता हैं या कोई अवतारी व्यक्ति हैं। क्रोधादिके अनेक कारण उपस्थित होनेपर भी कभी भी क्रोधका शिकार होते उन्हें नहीं पाया। जेलसे छूटते ही पुनः पंजाब आ गये और चेचकके शिकार होकर हमें सदाके लिये छोड़ गये। धन्य है ऐसा जीवन और धन्य है वह परिवार!

—साहित्यायुर्वेदरत्न शंकरप्रसाद त्रिपाठी शास्त्री (प्रसन्न)

(२)

विलक्षण न्यायप्रियता

कुछ पुरानी बात है, लाला वैजनाथजी शोसन जज थे। उनके एक ही लड़की थी, जिसका विवाह तो तीन साल पूर्व ही हुआ था। लड़कीका पति बहुत अच्छा सम्भ्रान्त घरनेका पढ़ा-लिखा युवक था। परंतु एक बार उसका किसीसे किसी

संख्या ६]

बातपर झगड़ा हो गया। झगड़ा बैठते-बैठते मार-पीट शुरू हो गयी। क्रोधमें मनुष्य परिणामको सर्वथा भूल जाता है, उसकी बुद्धि मारी जाती है। बैजनाथजीके जामाताकी यही दशा हुई। उसने अपने विरोधीपर घातक प्रहार कर दिया और वह मर गया। युवक पकड़ा गया। नीचेकी अदालतने उसपर खूनका आरोप लगाकर शोसन सुपुर्द कर दिया और वह मामला उस समय आगराके शोसन जज लाला बैजनाथजीकी अदालतमें गया।

घरवाले प्रसन्न हो गये कि कैसे भी हो, लाला बैजनाथजी अपने दामादको छोड़ ही देंगे। बैजनाथजीने चाहा कि मामला उनकी अदालतमें न रहे, उन्होंने प्रकारान्तरसे प्रयत्न भी किया, पर मामला दूसरी अदालतमें नहीं भेजा गया। उस समयके अंग्रेज गवर्नर तक बात गयी। उन्होंने भी यही कहा कि 'मामला लाला बैजनाथजीकी अदालतमें ही रहेगा। लालाजीकी न्यायशीलतामें उन्हें विश्वास है।'

घरवालोंने—यहाँतक कि लालाजीकी पत्नीने कई बार कहा, लड़केके पिता-माताने भी उनसे कहलवाया कि लालाजी लड़केकी प्राण-रक्षाका ध्यान रखें। लालाजी सुन लेते; पर कोई उत्तर नहीं देते। मामला सच्चा था। सबूतके गवाह आदिके द्वारा भी खून करना प्रमाणित था। लालाजीने सोचा—'अभियुक्त बैजनाथका दामाद है, उसे फाँसी होगी तो बैजनाथ अवश्य रोयेगा। सब घरवालोंने पर वज्रपात होगा। पर न्यायके आसनपर बैठे हुए जजका वह कोई नहीं है। जजको तो न्याय करके ही न्यायासनकी पवित्रताको बचाना है।'

आज फैसला सुनाया जायगा। सभी लोग उत्सुक हैं। घरवाले पूरी तो नहीं, पर इस आशामें अवश्य हैं कि प्राणरक्षा तो होगी ही, कारावास भले हो जाय। पर हुआ उल्टा ही, लाला बैजनाथजीने फाँसीकी सजा सुना दी। अदालतमें कुहराम मच गया। बैजनाथजी गम्भीर स्तब्ध थे। पर जाकर अवश्य ही रोये; क्योंकि उस समय वे लड़केके ससुर थे।

पूर्वव्यवस्थाके अनुसार गवर्नरके पास समाचार पहुँचा और सहृदय गवर्नरने दूसरे ही दिन तारके द्वारा विशेष आदेश भेजकर लड़केकी फाँसीकी सजा रद्द कर दी। बड़ा प्रभाव पड़ा गवर्नरपर लाला बैजनाथजीके न्यायपूर्ण फैसलेका। लाला बैजनाथजीकी पदोन्नति भी हो गयी।

लाला बैजनाथजी यदि ममतावश न्यायपथसे डिगकर दामादको छोड़ देते तो सरकार अपील करती; मामला सच्चा और प्रमाणित था, उसे फाँसी होती ही। लालाजीके द्वारा पवित्र न्यायासनकी प्रतिष्ठा बिगड़ती; उनपर कलङ्क लगता और शायद नौकरी भी चली जाती। भगवान्ने सुबुद्धि देकर उनके लिये न्यायरक्षा करवायी। सर्वत्र सुख छा गया।

—हरिदत्त शर्मा

(३)

भगवत्कृपा-परवशता

कुछ वर्षों पहलेकी पुरानी घटना है। मईका महीना था, लू और धूपसे जनसाधारण परेशान थे। मैं लखनऊसे छोटी लाइनकी एक्सप्रेस ट्रेनसे वस्तीको जा रहा था। ट्रेनके तीसरे दर्जेमें काफी भीड़ थी और बहुत-से लोग खड़े-खड़े ही यात्रा कर रहे थे। ट्रेन जब बाराबंकी पहुँची तो स्टेशनपर यात्रियोंका बड़ा जमाव था और कई लोग इधर-से-उधर जगहकी खोजमें दौड़ रहे थे। ट्रेन शायद पाँच मिनट ही रुकती थी। कुछ लोग काफी कशमकशके बाद कूद-फाँदकर हमारे डिब्बेमें घुस-आये और वातावरणमें धुटनका अनुभव होने लगा। जैसे ही ट्रेन चली तो एक व्यक्ति और उसकी औरत सामानके साथ गाड़ीमें घुसनेका प्रयत्न कर रहे थे, अंदरके मुसाफिरोंमेंसे कुछने डॉट-फटकार की और रोष प्रकट किया। परंतु कुछने, चूँकि गाड़ी चल चुकी थी और पुरुष किसी प्रकार अंदर आ चुका था, इसलिये उसके सामान और स्त्रीको भी घुसनेमें सहायता दी।

वे दम्पति मुसल्मान थे और बदहवासीकी दशामें डिब्बेमें आये थे। किसीने उनसे पूछा कि 'कहाँ जाओगे, तो उस पुरुषने जवाब दिया—'करनलगाँज'। तभी कई लोगोंने कहा कि 'यह गाड़ी तो वहाँ नहीं रुकेगी।' यह सुनकर मानो उस आदमीके होश उड़ गये और उसकी बीबी भी परेशान हो गयी। किसीने कहा कि 'बड़े बेवकूफ लोग हैं, बिना समझे-बूझे गाड़ीपर चढ़ जाते हैं।' दूसरेने कहा कि 'गोंडामें जब गाड़ी रुकेगी तो डाक-गाड़ीका तावान और टिकटके दाम अलग चार्ज होंगे, तब तबीयत ठीक हो जायगी।' यह सुनकर उस गरीबपर घड़ों पानी पड़ गया और वह हतबुद्धि-सा खड़ा रहा। मानो साँप सूँघ गया हो। गरीब आदमी टिकटके पैसे और जुर्माना कहाँसे देगा। असुविधा और समयकी बर्बादी जो होगी सो

अलग । इतनेमें उसकी औरत, जो चुप थी, एकदम बरस पड़ी—

‘इस जाहिल मर्दुयेकी वजहसे हमेशा परेशानी ही उठानी पड़ती है, बिना जाने-बूझे चढ़ गये, न पूछा न गछा—अब बेइज्जती जो उठानी पड़ेगी सो अलग, कपड़े और सामान भीड़बिक जायँगे ।’

वह आदमी गुमसुम खड़ा रहा और गम्भीर मुद्रामें उसने कहा ‘अब अल्लाह मालिक हैं ।’

यात्रियोंमें कुछ लोगोंने कटु शब्द भी कहे, कुछ लोगोंने हास-परिहासयुक्त कटाक्ष छोड़े । उसकी औरतकी जवान कतरनीकी तरह चल रही थी और उसने अपने पतिकी बेवकूफी तथा निकम्मेपनपर अच्छा खासा भाषण दे डाला और उसे कोसती रही, परंतु वह आदमी यही कहता रहा ‘या अल्लाह, तेरा ही भरोसा है, मेरी इज्जत अब तेरे ही हाथ है ।’—उसकी भाव-मुद्राबड़ी गम्भीर थी और उसकी आत्मा अपने अल्लाहसे अनुनय-विनय कर रही थी । वह किसीके डाँट-फटकारकी ओर ध्यान नहीं दे रहा था । उसकी हालत देखकर कुछ समझदार लोगोंपर बड़ा असर पड़ा । वे उस कुलटा स्त्रीपर, जिसकी कटु वाणी अपने दुर्वचन और क्रोधपूर्ण फटकारोंको छोड़नेका नाम ही न ले रही थी—नफरतभरी निगाहोंसे देख रहे थे—। उस गरीब आदमीके लिये समस्या टिकटकी थी । एक सज्जनने कहा कि—‘अगर गाड़ी किसी कारणवश कर्नलगंज रुक जाय तो ये लोग उतर सकते हैं ।’ परंतु ऐसा असम्भव-सा प्रतीत होता था । उस आदमीने यह बात सुनी और वह अपने मौलासे अधिक विनीत और निश्चल भाव-से विनय करने लगा ।

गाड़ी सनसनाती चली जा रही थी । लोगोंका ध्यान अब उस तरफ कम होने लगा । केवल उस औरतकी जली-कटी बातें और मर्दके प्रति असंतोषकी एक आध चटकार सुनायी दे जाती थी । कर्नलगंज निकट आ रहा था ।

लोगोंने सहसा देखा कि स्टेशनका सिगनल उठा हुआ है अतः गाड़ी रुकने लगी । जैसे ही गाड़ी रुकी, वे दोनों दम्पति लाइनके किनारोंके तारोंको फाँदकर बाहर हो गये । औरत तो अपना सामान सँभालने लगी, परंतु वह साधु-प्रकृति गरीब अपना अँगोछा बिछाकर सिजदेमें गिरा । गाड़ी चलने लगी, संध्याकालीन सूर्य पश्चिम दिशामें अपनी स्वर्णिम लाली बिलेर रहा था और वह अल्लाहका प्यारा अपने मौलाके सम्मुख दोजानु सिजदेमें था । उसकी

आँखोंसे अश्रुधारा और हृदयमें विह्वलता उमड़ी आ रही थी ।

सब लोग उस बेचारे गरीबकी निश्चलता और भगवान् की भक्त-वत्सलता और शरणागतकी पुकारपर कृपापरवशता देखकर आश्चर्यचकित हो गये । वे उस अनजाने गरीबकी भगवद्भक्ति, निश्चल श्रद्धा और स्वाभाविक सरल विश्वास आदि गुणोंपर विचार-विनिमय करते आगे बढ़े ।

अब भी कभी-कभी उस दृश्यकी स्मृति आते ही हृदयमें आनन्दका संचार हो जाता है ।

—रामकृष्णलाल एम्.० ए.०, लखनऊ
(४)

एक सचरित्र छात्रकी सज्जनता

वात १९६६ के जनवरी मासकी है । मैं कॉलेजकी छुट्टीके पश्चात् साइकिलके द्वारा घर लौट रही थी । कॉलेजसे घर जानेके रास्तेमें बीचमें कुछ निर्जन स्थान भी पड़ता है । कॉलेजके समीपसे ही दो छात्र मेरे पीछे पड़ गये । उस निर्जन स्थानमें पहुँचते ही वे मुझे साइकिलसे गिरानेकी कोशिश करने लगे; पर प्रत्येक बार ईश्वरकी कृपासे मैं बचती गयी । कुछ आगे जानेपर रास्तेके दोनों किनारे कुछ दूरतक गोबर पड़ा हुआ था । उसी गोबरमें मुझे गिरानेकी वे लोग चेष्टा करने लगे और मेरी साइकिलको ऐसी लात मारी कि मैं साइकिलसे गिरते-गिरते बची । इसी बीच उधर एक और सज्जन छात्र आ निकले, जिन्होंने इनकी बुरी हरकतोंको देख लिया और मुझे इनके चंगुलसे बचाना अपना पावन कर्तव्य समझा । उस छात्रकी उपस्थितिमें ही जैसे ही इन लोगोंने साइकिलको आगे बढ़ाकर मेरी साइकिलको धक्का मारना चाहा, उन्होंने भी तेजीसे अपनी साइकिलको आगे बढ़ा लिया और उन लोगोंकी साइकिलको ऐसा धक्का मारा कि वे दोनों छात्र अपनी साइकिलसमेत गोबरमें जा गिरे । जिससे उनके सारे कपड़े गोबरमें सन गये और उन्हें अपने कुकर्मोंका हाथों-हाथ फल मिल गया । मैं उन छात्रके प्रति कृतज्ञता भी प्रकट न कर पायी थी, कि उन्होंने तेजीसे अपनी साइकिलको दूसरी गलीमें मोड़ लिया और मैंने भी तेजीसे अपने घरकी ओर प्रस्थान किया । मैं ईश्वरको धन्यवाद करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस विकट परिस्थितिमें ठीक समयपर समर्थ सहायक भेजकर बचाया और मैं उन छात्र भाईकी भी अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस विकट परिस्थितिसे बचाया ।

—एक छात्रा, रॉची

गोहत्या-निवारण तथा दिल्ली-जेलमें अनशन करनेवाले साधुओंको तुरंत छोड़नेकी अपील

गोहत्याके निवारणके लिये दिल्लीकी जेलमें लगभग बीस साधु आमरण अनशन कर रहे हैं और सरकारका उन अनशनकर्ताओंपर कोई ध्यान नहीं है, अपितु सुना यह गया है कि जेल-अधिकारी उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। यदि यह सत्य है तो वस्तुतः बड़े खेदकी बात है। अनशन करनेवाले ये साधु जेलमें सड़ते रहें, अधिकारियोंके दुर्व्यवहारको सहते रहें और उनकी उचित माँगपर विचार करना तो दूर रहा, उसे सुनना भी सरकारको नागवार लगे—सरकारके लिये यह सर्वथा अशोभनीय है।

ऐसा लगता है कि सिद्धान्ततः प्रजातन्त्रका जो भी उदात्त स्वरूप हो, पर व्यवहारतः वास्तविकता कुछ और ही है तथा भारतके वर्तमान प्रजातन्त्रमें जनताकी माँगके औचित्यको महत्त्व नहीं, अपितु माँगके लिये किये गये अवाञ्छनीय तथा उग्र आन्दोलनको महत्त्व है। अनुचित माँगके लिये यदि हिंसात्मक उग्र कार्य किये जायँ तो सरकार झुक जायेगी और उचित माँगको शीलसहित निवेदन किया जाय तो उस शीलकी कोई कीमत नहीं। अवाञ्छनीय शोर-गुलकी आवाज तो सरकारतक पहुँच सकती है; किंतु जो माँग विशुद्ध राष्ट्रीय है, विशुद्ध देशहितकी भावनासे प्रेरित है और विशुद्ध रूपसे भारतीय गौरवकी पोषक एवं भारतीय संस्कृतिके अनुकूल है, उस माँगको सुननेमें सरकारको कठिनाई होती है।

अपनी धर्म-निरपेक्ष सरकार गायके आध्यात्मिक-धार्मिक महत्त्वपर ध्यान नहीं देना चाहती। (बल्कि सत्य तो यह है कि लौकिक महत्त्वकी अपेक्षा गायका आध्यात्मिक और धार्मिक महत्त्व कहीं अधिक है।) पर गायके अन्य ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि पक्ष भी हैं, जिनके लिये गोरक्षा नितान्त आवश्यक है। प्राचीन साहित्यमें वर्णित गोमहिमाका, आध्यात्मिक-धार्मिक साधनाओंमें गोमहत्ताका, हिंदू-राजाओं एवं यवन बादशाहोंद्वारा किये गये गोरक्षा-प्रयासोंका, आर्थिक विकासके लिये गो-उपयोगिताका तथा इस प्रकारसे अन्य दृष्टियोंका मैं यहाँ उल्लेख नहीं करता। इससे सब परिचित हैं। पर प्रत्येक समाजके कुछ सम्मान-बिन्दु हुआ करते हैं। इस दृष्टिसे सोचें। प्रत्येक समाजके कुछ स्थायी आधार होते हैं। जिस तरह निर्गुण-सगुण-सिद्धान्त, कर्म-सिद्धान्त, पुनर्जन्म-सिद्धान्तके अभावमें भारतीय दर्शनकी कल्पना नहीं की जा सकती; जिस तरह राम, कृष्ण और संतोंकी कथाके अभावमें भारतीय वाङ्मयकी कल्पना नहीं की जा सकती, उसी तरह गीता, गङ्गा और गायके अभावमें भारतीय गौरव, भारतीय संस्कृति, भारतीय समाजकी कल्पना नहीं की जा सकती। देशके सम्मानके लिये गायके सम्मानकी परमावश्यकता है। गोमाता हिंदूसमाजकी एक गौरवकी वस्तु है। इसीलिये महात्मा गांधी कहा करते थे—‘गोरक्षा हिंदूधर्मकी दी हुई दुनियाको बख्शीश है। हिंदूधर्म भी तभीतक रहेगा, जबतक गायकी रक्षा करनेवाले हिंदू हैं।’ फिर कहा है—‘भारतवर्षमें गोरक्षाका प्रश्न स्वराज्यसे किसी प्रकार भी कम नहीं है। कई बातोंमें मैं इसे स्वराज्यसे भी बड़ा मानता हूँ। जबतक हम गायको बचानेका उपाय ढूँढ़ नहीं निकालते, तबतक स्वराज्य अर्थहीन कहा जायगा।’

इसी तरह संत विनोबा भावेजी लिखते हैं—‘इस देशमें गोहत्या नहीं चल सकती। गाय-बैल हमारे समाजमें दाखिल हो गये हैं। सीधा प्रश्न है कि आपको देशका रक्षण करना है या नहीं? यदि करना है तो गोवध भारतीय संस्कृतिके अनुकूल नहीं आता। इसका आपको ध्यान रखना चाहिये। गोहत्या जारी रही तो देशमें बगावत होगी। गोहत्याबंदी भारतीय जनताका मैनडेट या लोकाज्ञा है और प्रधान मन्त्री मोदीयको इसे मानना चाहिये।’

संविधानमें गोरक्षाको स्पष्ट भाषामें स्वीकार किया गया है; पर उस भाषाको तोड़-मरोड़कर अर्थका अनर्थ किया गया। इसके बाद भी गोरक्षाका आन्दोलन चलता रहा। तब केन्द्रने यह कहकर टाल दिया कि यदि राज्य-सरकार अपने-अपने यहाँ कानून बनाये तो बना सकती है। जिन कुछ राज्योंमें कानून बने तो उनको कार्यान्वित करनेका अवसर या सहयोग नहीं दिया गया। जितने भी कमीशन इस विषयपर विचार करनेके लिये बैसे गये, सबने गोहत्याका विरोध किया; पर उनके सुझावपर अमल नहीं किया गया। अब अमेरिकन विशेषज्ञोंको बुलाकर उनसे राय सरकार ले रही है। वे विशेषज्ञ गोहत्याको जारी रखनेका अपितु बढ़ावा देनेका सुझाव देते हैं। इन अमेरिकन विशेषज्ञोंसे सुझाव लेने या सुझाव माननेसे पहले यह तो सोचना चाहिये कि क्या इन विशेषज्ञोंको भारतका सांस्कृतिक दृष्टिकोण प्राप्त है? अपने देशकी परम्परा और सम्मानको भूलकर परानुकरण किसी भी प्रकारसे देशके हितमें नहीं है।

खेद तो तब और भी अधिक यह देखकर होता है कि सरकारी पदोंपर अबतक भी अपने कुल ऐसे महानुभाव हैं, जो गांधी-विनोबाके अनुयायी हैं, जो व्यक्तिगत रूपसे गोहत्या-निवारणके पक्षमें हैं, जो समाजहितकी दृष्टिसे इस बातको मनसे स्वीकार भी करते हैं; किंतु फिर भी एक सदोष प्रशासन-व्यवस्था (Administrative Set-up) के शिकार होकर या कुछ अभारतीय अथवा अराष्ट्रीय धमकियोंसे भयभीत होकर अपनेको पंगु मान बैठे हैं।

सरकारको चेतना चाहिये तथा देशके हितके लिये, समाजके सम्मानके लिये और जनताकी भावनाके आदरके लिये गोहत्याको सम्पूर्ण रूपसे बंद कर देनेकी घोषणा करनी चाहिये। अन्यथा—‘यद्गृहे दुःखिता गावः स याति नरके नरः’ (जिस नरके घरमें गाय दुःखिता हैं, वह नरकमें जाता है) में निहित तथ्यके अनुसार भारत भी अनेक नरकोपमेय संकटों-कष्टोंसे ग्रस्त होगा। गोहत्या अशुभकी सूचक है। यह अमङ्गलको बुलावा है।

सरकारके साथ-साथ प्रत्येक हिंदूसे (चाहे वह सनातनी हो, बौद्ध हो, जैन हो, सिक्ख हो या अन्य कोई हो), अपितु प्रत्येक भारतीयसे मेरी प्रार्थना है कि वे भी गोरक्षाके कार्यमें पूर्ण सहयोग दें। व्यक्तिगत जीवनमें ऐसा कोई कार्य न करें जो गोहत्याको परोक्ष या प्रत्यक्ष रूपसे सहाय दे तथा सामाजिक जीवनमें वे सरकारपर विशेष दबाव डालें कि सरकार गोहत्या-निवारणके लिये तुरंत ठोस कदम उठाये। अब आम चुनाव आनेवाले हैं। जनता उन्हींको मतदान दे, जो गोरक्षाका वचन दें।

मैंने यह भी सुना है कि देशके कुछ बड़े-बड़े महात्मा आमरण अनशनका विचार कर रहे हैं। आध्यात्मिक और धार्मिक जगत्के मूर्धन्य व्यक्ति जब इस प्रकारसे अपने जीवनको होम देनेके लिये तैयार हो रहे हैं तो वस्तुतः यह हमारी सरकारके लिये तथा हमारे समाजके लिये एक बड़ी लज्जाकी बात है। इस अनशन-यज्ञमें यदि इन महापुरुषोंने भाग ले लिया तो बड़ा अनर्थ होगा। सरकारसे मेरी यह विनम्र विनती है कि वह तुरंत इस समस्यापर शान्त मनसे विचार करे, दिल्लीजेलमें अनशन करनेवाले साधुओंके साथ सद्व्यवहार करे, उचित आश्वासन देकर उन साधुओंको शीघ्रातिशीघ्र रिहा करे तथा भारतमें सम्पूर्ण गोवधवृद्धिके लिये अविलम्ब घोषणा कर दे।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

‘कल्याण’के नये आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे

‘कल्याण’के आजीवन ग्राहक बनानेकी जो योजना थी, वह कई कारणोंसे अबसे रद्द कर दी गयी है। अतः अबतक जो आजीवन ग्राहक बन चुके हैं, उनके अतिरिक्त नये आजीवन ग्राहक अब नहीं बनाये जायेंगे। इसलिये अबसे आजीवन ग्राहकके रुपये कोई सज्जन न भेजें। व्यवस्थापक—‘कल्याण’, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

करव्याण



वर्ष ४०]

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-महिषमर्दिनी दशभुजा दुर्गा [कविता]	१०२१
२-कल्याण ('शिव')	... १०२२
३-संतों—महापुरुषोंकी महिमा (ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्त श्रीजयदयालजी गोयन्दका-के संकलित कुछ वचनामृत; संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीशालिगरामजी)	... १०२३
४-मधुर	... १०२६
५-गीताका पंद्रहवाँ अध्याय	... १०२९
६-मनन-माला (ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)	... १०३३
७-वैष्णवश्रेष्ठ कौन है ? [कविता]	... १०३५
८-मनुष्यके भीतरसे ईश्वरकी झलकियाँ (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	... १०३६
९-मनुष्यका स्थायी धन (पं० श्रीलालजी-रामजी शुक्ल, एम्० ए०)	... १०४०
१०-शौर्य [कहानी] (श्री 'चक्र')	... १०४२
११-गौरी रक्षा बलिदानके बिना नहीं (श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)	... १०४५
१२-दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी	

कल्याण, सौर श्रावण २०२३, जुलाई १९६६

विषय	पृष्ठ-संख्या
देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी	
श्रीवास्तव) १०५४
१३-तुझसे मिले बिना—(श्रीबालकृष्ण बलदुवा)	... १०५९
१४-सप्तसिन्धु और आर्योंका मूलस्थान (श्रीपीताम्बरापीठ-संस्थापक श्री १००८ स्वामीजी महाराज, दतिया)	... १०६०
१५-पति-पत्नी (तथा सब) के लिये हितकर अठारह अमृत-संदेश	... १०६१
१६-अनन्य भक्ति (श्रीरामरूपजी तिवारी)	... १०६२
१७-भगवन्नाम-महिमा (सद्गुरु श्रीवावाजी महाराज; अनुवादक—श्रीविष्णु सावलाराम कर्पे)	... १०६५
१८-दर्शनमें ही सुख है [कविता] (श्रीसूरदासजी)	... १०६८
१९-धार्मिक भावनाके प्रचारकी आवश्यकता (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)	... १०६९
२०-चित्तचोर [कविता] (श्रीहितहरिवंश-जी महाप्रभु)	... १०७२
२१-महाराज पृथु (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)	... १०७३
२२-पढ़ो, समझो और करो	... १०७७

चित्र-सूची

१-गौरीकी गोदमें गणपति	(रेखाचित्र) ... मुखपृष्ठ
२-महिषमर्दिनी दशभुजा दुर्गा	(तिरंगा) ... १०२१

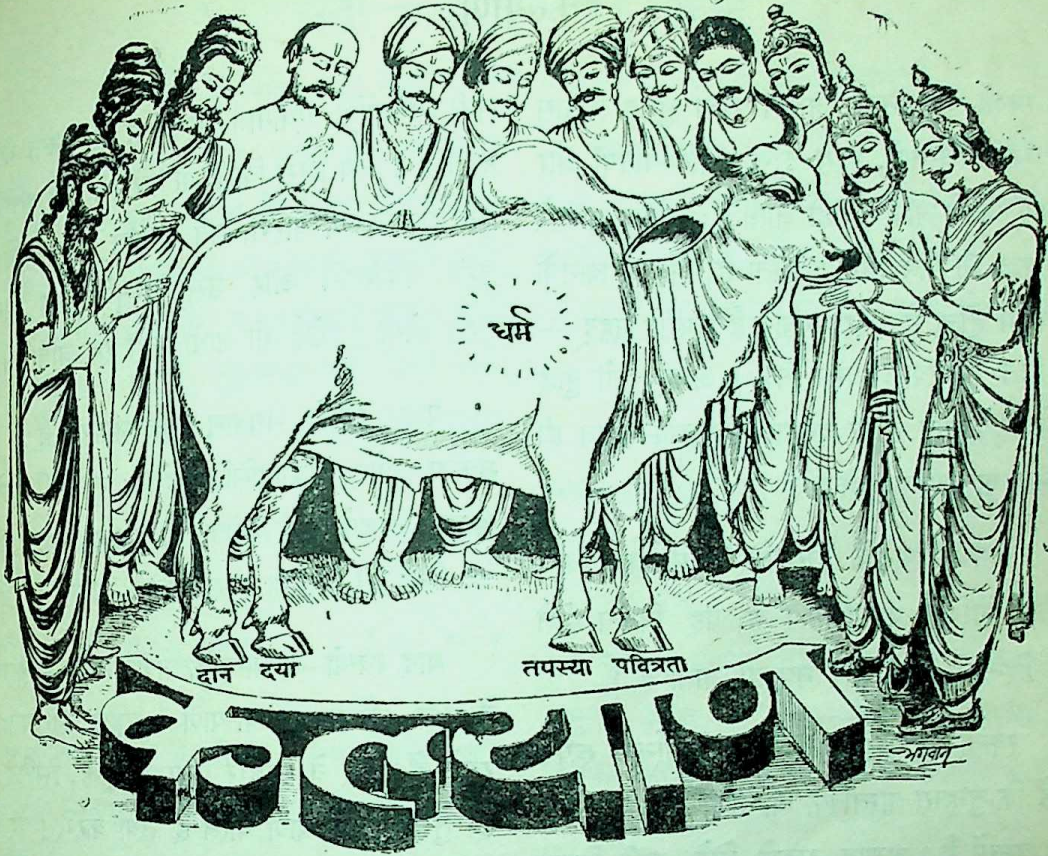
वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिल्लिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ४५ पैसे
विदेशमें ५६ पैसे
(१० पैसे)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।

यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्ब्रह्मर्षिराजर्षिभिर्विदुश्चैरपि बन्धते स जयताद्वर्मा जगद्धारणः ॥

वर्ष ४० }

गोरखपुर, सौर श्रावण २०२३, जुलाई १९६६

{ संख्या ७
पूर्ण संख्या ४७६

महिषमर्दिनी दशभुजा दुर्गा

लिप्यै हाथ असि, चक्र, गदा घन, परसु, धनुषवर ।
सूल, वज्र, दृढ़ पास, कमंडलु, घंटा रवकर ॥
ज्योतिर्मय अतिसय उज्ज्वल सुभ नेत्रत्रय-धर ।
कुंडल सोभित स्रवन, सुकंकन सज्जित सब कर ॥
कंठ हार-मनि-सुमन, सिंहपर रहीं विराजित ।
महिषमर्दिनी दुर्गा मां दसभुजा सु-राजत ॥

कल्याण

याद रक्खो—भगवान्पर अनन्य तथा सुदृढ़ विश्वास होते ही सारी चिन्ताएँ, सारी दुःखद परिस्थितियाँ और सारी बाधाएँ अपने-आप दूर हो जाती हैं; क्योंकि तुम्हारे लिये जो कुछ भी फल निर्माण होता है, सब भगवान्के ही नियन्त्रणमें होता है और भगवान् हैं तुम्हारे सुहृद्— अकारण हित करनेवाले परम मित्र । अतएव जो कुछ भी तुम्हारे लिये बना है या बनेगा, वह सभी सहज ही तुम्हारे लिये कल्याणरूप होगा ।

याद रक्खो—भगवान्के द्वारा निर्मित प्रत्येक विधान तुम्हारे लिये निश्चित कल्याणरूप है, यह निश्चय होते ही सारी चिन्ताएँ अपने-आप नष्ट हो जाती हैं ।

याद रक्खो—भगवान् भलीभाँति निर्भ्रान्त रूपसे जानते हैं कि तुम्हारा वास्तविक 'कल्याण' किस परिस्थिति या किस वस्तुमें है । अतएव तुम्हारे लिये वही विधान करते हैं, उसी परिस्थिति और वस्तुको प्रदान करते हैं, जो तुम्हारे लिये निश्चित मङ्गलमयी है । भले ही वह देखनेमें प्रतिकूल हो । पर जब तुम यह विश्वास कर लोगे कि तुम्हारे लिये यह मङ्गलमयी ही है, तब तुम्हारी उसमें प्रतिकूल बुद्धि हट जायगी, अनुकूल बुद्धि हो जायगी और अनुकूल बुद्धि होते ही सारे दुःखोंका— सारी दुःखद परिस्थितियोंका नाश हो जायगा; क्योंकि प्रत्येक परिस्थिति ही अनुकूल होकर सुखस्वरूपा बन जायगी ।

याद रक्खो—भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं । वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, कोई भी ऐसी शक्ति नहीं है, जो उनका विरोध कर सके, वरं सच्ची बात तो यह है कि

सारी शक्तियोंके एकमात्र मूलस्रोत या अनन्त भण्डार वे ही हैं । वे जब जिस किसी भी परिस्थिति या वस्तुके द्वारा तुम्हारा कल्याण करेंगे, तब तुम्हारा कल्याण निश्चय ही उसी परिस्थिति और उसी वस्तुके द्वारा होगा और तुरंत होगा । कोई भी बाधा नहीं रह जायगी ।

याद रक्खो—भगवान् सत्यसंकल्प हैं । उनका संकल्प और संकल्पसिद्धि दोनों साथ ही होते हैं । अतएव तुम्हारे लिये भगवान्का मङ्गल संकल्प होते ही वह सिद्ध हो जायगा । सफल हो जायगा ।

याद रक्खो—भगवान् कल्याणमय हैं—मङ्गलमय हैं, वे सदा ही सबका कल्याण—मङ्गल स्वरूपतः करते रहते हैं । और वे तुम्हारे परम सुहृद् हैं, इसलिये अवश्य ही तुम्हारा कल्याण करते हैं तथा करेंगे । पर तुम्हारा उनकी मङ्गलमयतापर और उनकी सुहृदतापर विश्वास नहीं है, तुम अपनी मनमानी परिस्थिति और वस्तुमें अपना कल्याण मानते हो और मनके विरुद्ध परिस्थिति और वस्तुमें अपना अकल्याण या अमङ्गल मानते हो— इसीसे अनुकूलता-प्रतिकूलताका अनुभव करते हो और सुखी-दुखी होते रहते हो । बल्कि कई बार ऐसा होता है कि तुम भूलसे यथार्थ अनुकूल परिस्थिति और वस्तुको प्रतिकूल मान बैठते हो और यथार्थ प्रतिकूलमें अनुकूल बुद्धि कर लेते हो । अतएव भगवान्पर, उनकी सुहृदता-पर, उनकी अनिवार्य मङ्गलमयतापर विश्वास करो— अटल और अनन्त विश्वास करो तो प्रत्येक परिस्थिति और वस्तु तुम्हारे लिये कल्याणमयी—आनन्दमयी हो जायगी ।

‘शिव’



संतों—महापुरुषोंकी महिमा

(ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्त श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके संकलित कुछ वचनामृत)

महान् पुरुषोंका सङ्ग बड़ा दुर्लभ है और मिल जानेपर उन्हें पहचानना कठिन है; किंतु पहचानकर उनका सङ्ग करनेसे परमात्मस्वरूप महान् फलकी प्राप्ति अवश्य हो जाती है; क्योंकि महापुरुषोंका सङ्ग कभी निष्फल नहीं होता। महान् पुरुषोंका सङ्ग बिना जाने करनेसे भी वह खाली नहीं जाता; क्योंकि वह अमोघ है। योगदर्शनमें तो यहाँतक कहा है कि महापुरुषोंके चिन्तनमात्रसे चित्तवृत्तियोंका निरोध होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है—

वीतरागविषयं वा चित्तम् । (१ । ३७)

महापुरुषोंका किसी भी जीवके साथ किसी प्रकारका स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता, इस विषयमें भगवान् खण्ड्य कहते हैं—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥

(गीता ३ । १८)

‘उस महापुरुषका इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मोंके न करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी इसका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता ।’ तो भी उसके द्वारा केवल लोकहितार्थ कर्म किये जाते हैं ।

वस्तुतः आजकल परमात्माको प्राप्त हुए महापुरुषोंका अभाव है, ऐसा नहीं कहा जा सकता; परंतु हमें श्रद्धाकी कमीके कारण उनका दर्शन और परिचय नहीं प्राप्त होता ।

महापुरुषोंकी कोई भी क्रिया बिना प्रयोजन नहीं होती। उनकी सम्पूर्ण क्रियाएँ दूसरोंके हितके लिये—कल्याणके लिये ही होती हैं। वे किसीसे काम लेते हैं तो उसके कल्याणके लिये ही, अपने लिये नहीं ।

जो महात्मा परमात्मामें मिल जाते हैं, वे परमात्मस्वरूप ही हो जाते हैं। परमात्माकी पूजा ही उनकी पूजा है ।

महात्मा पुरुषोंके दर्शनसे, उनसे वार्तालाप करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाय—इसमें तो कहना ही क्या, उनका स्मरण करनेसे भी अन्तःकरण पवित्र हो जाता है ।

भगवान्का यह नियम है—

‘ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।’

—जो मुझे जैसे भजते हैं, वैसे ही मैं उनको भजता हूँ । परंतु महात्माओंका यह नियम नहीं है । उनका इससे भिन्न यह नियम है कि ‘जो हमें नहीं भी भजते, उन्हें भी हम भजते हैं ।’

जैसे आगमें घास डाली जाय तो आग हो जाती है और घासमें आग डाली जाय तो आग हो जाती है ।

इसी तरह महात्माके पास अज्ञानी जाय तो वह भी महात्मा हो जाता है और अज्ञानियोंके पास महात्मा चला जाय तो भी वह अज्ञानी मनुष्य महात्मा हो जाता है; क्योंकि महात्माओंके पास ज्ञानाग्नि है, उससे अज्ञान नष्ट हो जाता है ।

महात्माओंका ज्ञान अमोघ—अव्यर्थ है। उनका सङ्ग, दर्शन, भाषण, स्मरण सभी महान् फलदायक होते हैं।

× × ×

एक दीपकसे जब लाखों दीपक जल सकते हैं तब संसारमें एक महात्माके मौजूद रहते सब महात्मा क्यों नहीं बन सकते।

× × ×

महात्माका यथार्थ तत्त्व जाननेसे मनुष्य महात्मा ही हो जाता है, जिस प्रकार परमात्माका तत्त्व जाननेसे परमात्मा हो जाता है।

× × ×

महात्माका तत्त्व तब जाना जाता है, जब मनुष्य उनके आज्ञानुसार आचरण करता है।

× × ×

जिस मनुष्यकी भगवान् या किसी महात्मामें पूर्ण श्रद्धा हो जाती है, वह तो उनके परायण ही हो जाता है। परायणतामें जितनी कमी है, उतनी ही कमी विश्वासमें भी समझनी चाहिये।

× × ×

महापुरुषोंद्वारा किये गये उत्तम बर्तावको भगवान्का बर्ताव ही समझना चाहिये; क्योंकि महापुरुषके अंदरसे भगवान् ही सब कुछ करते-कराते हैं।

× × ×

पूर्ण महात्माओंके दर्शन हो जायँ तब तो कहना ही क्या है; क्योंकि उनके मुखसे जो शब्द निकलते हैं वे पूर्णतः तुल्य हुए होते हैं। जैसे एक व्यापारी अपनी दूकानका माल तौल-तौलकर ग्राहकोंको देता है—अंदाजसे नहीं। इसी प्रकार महापुरुषकी वाणीका प्रत्येक शब्द उनके हृदयरूपी तराजूपर तुल्य-तुल्यकर आता है। उनके वाक्य अमूल्य होते हैं, उनकी क्रियाएँ

अमूल्य होती हैं और उनका भजन अमूल्य होता है। उनके मन, वाणी और शरीरके प्रत्येक कार्य महत्त्वपूर्ण और तात्त्विक होते हैं। उनकी मौन—अक्रिय अवस्थामें भी विश्व-कल्याणका महान् उपदेश भर रहता है। अतः उनका भाषण, स्पर्श, दर्शन, कर्म, ध्यान और यहाँतक कि उनकी छुयी हुई वस्तु भी पवित्र समझी जाती है।

× × ×

इस प्रकारके पुरुष यदि हमें मिल जायँ और फिर हम उन्हें पहचानकर, उनका अमोघ सङ्ग करें तथा उनकी बातोंको लोहेकी लकीर—ईश्वरकी आज्ञाके तुल्य मानकर काममें लावें तो हम अपना तो क्या, दूसरोंका भी कल्याण करनेमें समर्थ हो सकते हैं।

× × ×

गङ्गाके स्नान-पानसे जिस प्रकार बाहर-भीतरकी पवित्रता होती है, उससे भी बढ़कर महात्माओंका सङ्ग पावन करनेवाला होता है।

× × ×

जैसे अन्धकारमें लालटेनका प्रकाश होता है, उसी तरह संतोंका भी प्रकाश विकीर्ण होता रहता है। पर लालटेन जड़ ज्योति है, महापुरुष चिन्मय ज्योति हैं। उनके दर्शनसे ज्ञानकी वृद्धि होती है। महात्माओंके सङ्गसे हमारे छोटे-छोटे दोष भी दीखने लगते हैं। हमारे आचरणोंका सुधार होता है। हमारेमें गुण आते हैं और अवगुणों एवं दुराचरणोंका नाश होकर हृदय निर्मल बन जाता है। फिर बारीक दोष भी दीखने लगते हैं और चेष्टा करनेसे समूल नष्ट हो जाते हैं। भक्तोंके सामने कोई बुरा व्यवहार नहीं कर सकता। उनके दर्शनसे स्वाभाविक ही ईश्वरकी स्मृति हो जाती है।

× × ×

संख्या ७]

विशेष श्रद्धा और विश्वासवाले मनुष्यको किसी भगवद्भक्तका साक्षात्कार होनेपर ऐसा माद्वम होता है मानो उस महात्माके द्वारा ईश्वरभक्ति, समता, दया, शान्ति, प्रेम, आनन्द, ज्ञान तथा अन्य समस्त सद्गुण उसमें प्रवेश करते जा रहे हैं। आगसे सूखी घासकी तरह हृदयके दुर्गुण भस्म होते हुए दिखायी पड़ते हैं और उस महात्माकी आँखोंमें दया और प्रेमका सिन्धु लहराता हुआ दिखायी पड़ता है।

× × ×

निसंदेह महात्माओंकी जहाँतक दृष्टि जाती है, वहाँतक पृथ्वी-आकाश, चर-अचर सब कुछ पवित्र हो जाता है।

× × ×

शास्त्र कहते हैं—मुक्ति तो महापुरुषोंकी चरणरजमें विराजमान रहती है अर्थात् श्रद्धा और प्रेमपूर्वक महापुरुषोंकी चरणरजको मस्तकपर धारण करनेसे मनुष्य मुक्त हो जाता है।

× × ×

उन महात्माओंमें कठोरता, वैर और द्वेषका तो नाम ही नहीं रहता। वे इतने दयालु होते हैं कि दूसरेके दुःखको देखकर उनका हृदय पिघल जाता है। वे दूसरेके हितको ही अपना हित समझते हैं। उन पुरुषोंमें विशुद्ध दया होती है। जो दया कायरता, ममता, लज्जा, स्वार्थ और भय आदिके कारण की जाती है, वह शुद्ध नहीं है। जैसे भगवान्की अहैतुकी दया समस्त जीवोंपर है, इसी प्रकार महापुरुषोंकी अहैतुकी दया सबपर होती है। उनकी कोई कितनी ही बुराई क्यों न करे, बदला लेनेकी इच्छा तो उनके हृदयमें होती ही नहीं। कहीं बदला लेनेकी-सी क्रिया देखी

जाती है, तो वह भी उसके दुर्गुणोंको हटाकर उसे विशुद्ध करनेके लिये ही होती है। इस क्रियामें भी उनकी दया छिपी रहती है।

× × ×

वे संत करुणाके भण्डार होते हैं। जो कोई उनके समीप जाता है, वह मानो दयाके सागरमें गोते लगाता है। उन पुरुषोंके दर्शन, भाषण, स्पर्श और चिन्तनमें भी मनुष्य उनके दयाभावको देखकर मुग्ध हो जाता है। वे जिस मार्गसे निकलते हैं, मेघकी ज्यों दयाकी वर्षा करते हुए ही निकलते हैं। मेघ सब समय और सब जगह नहीं बरसता, परन्तु संत तो सदा-सर्वदा सर्वत्र बरसते ही रहते हैं। उनके दर्शन, भाषण, चिन्तन और स्पर्शसे सारे जीव पवित्र हो जाते हैं। उनके चरण जहाँ टिकते हैं, वह भूमि पावन हो जाती है। उनके चरणोंसे स्पर्श की हुई रज स्वयं पवित्र होकर दूसरोंको पवित्र करनेवाली बन जाती है। उनके द्वारा देखे हुए, चिन्तन किये हुए और स्पर्श किये हुए पदार्थ भी पवित्र हो जाते हैं। फिर उनके कुलकी विशेषतः उन्हें जन्म देनेवाले माता-पिताकी तो बात ही क्या है। ऐसे महापुरुष जिन देशोंमें जन्मते हैं और शान्त होते हैं, वे देश तीर्थ माने जाते हैं। आजतक जितने तीर्थ बने हैं, वे सब परमेश्वर और परमेश्वरके भक्तोंके निमित्तसे ही बने हैं। इतना ही नहीं, सब लोकोंको पवित्र करनेवाले तीर्थ भी उनके चरणस्पर्शसे पवित्र हो जाते हैं।

× × ×

महात्माओंकी पवित्रताके विषयमें जितना कहा जाय थोड़ा ही है। स्वयं भगवान्ने उनकी महिमा अपने श्रीमुखसे गायी है।

(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीशालिग्राम)

मधुर

प्रेमके विशुद्ध स्वरूपमें अभिमानको स्थान नहीं है और दैन्य आभूषणरूपमें नित्य सुशोभित है । भगवान् श्रीकृष्णकी अन्तरङ्गा प्रेमप्रतिमा श्रीराधाजीके अचिन्त्यानन्त विचित्र भाव हैं; परंतु सभीमें उनके त्याग तथा दैन्य, प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरकी महत्ता और उनकी दीनताके मङ्गलदर्शन होते हैं । एक बार अपनी एक सखीको राधाजीने अपना अनुभव सुनाया । वे बोलीं—एक बार मेरे मनमें आयी कि मैं प्राणवल्लभ श्रीश्यामसुन्दरके समीप जाकर उनके चरणोंमें पड़ जाऊँ और उनकी पवित्र चरणरजसे अपनेको पवित्र करूँ । पर मनमें तुरंत यह विचार आया—

मधुर मनोहर नीलश्याम-तन
अनुपम छबिमय ।
कोटि कोटि मन्मथ-मन्मथ
सौन्दर्य सुधामय ॥
कहाँ दिव्य गुण-रूप-राशि
वह मुनि-मन-हारिणि ।
कहाँ कुरूपा मैं अति कुत्सित
तन-मन-धारिणि ॥

वे नीलश्याम-कलेवर मधुर मनोहर अनुपम शोभामय हैं, उनका सुधामय सौन्दर्य करोड़ों-करोड़ों कामदेवोंके मनका मन्थन करनेवाला है । कहाँ तो श्यामसुन्दरकी वह मुनियोंके मनको हरण करनेवाली दिव्य गुणों और रूपोंकी महान् राशि और कहाँ मैं अत्यन्त कुत्सित मन और शरीरको धारण करनेवाली कुरूपवती नारी !

यद्यपि बाहर नहीं दीखते
चिन्ह बुरे अति ।
पर चल रही अहं-क्षतधारा
हृदय तीव्र गति ॥
समता मनमें भरी,
नहीं समता है किञ्चित् ।

सदा रागमें रँगी,
रागसे संतत सिञ्चित ॥
दीख रही ऊपर छायी
ठंडक सुखव्यापिनि ।
भीतर जलती अग्नि
कामनाकी संतापिनि ॥
सहज हृदयका क्रोध
छा रहा भीतर-बाहर ।
लोभ हृदयमें भरा
कर्म करवाता दुःखकर ॥

(मेरा बाहरी रूप भी बहुत कुत्सित था । जगह-जगह शीतलाके दागके समान कुरूपताके चिह्न थे, पर वे तो किसी तरह छिप गये इसलिये) बाहरसे कोई भी कुत्सित चिह्न अब नहीं दिखायी देते, पर भीतर तो अहंकारके घावोंकी तीव्र वेदना-धारा नित्य-निरन्तर चल रही है । मनमें मेरे ममता भरी हैं, तनिक-सी भी समता नहीं है । मैं सदा ही राग (आसक्ति) से रँगी रहती हूँ और रागसे ही सदा सींची जाती हूँ । मुझमें बाहर सुखसे व्याप्त ठंडक छायी दीखती है; परंतु अंदर संताप देनेवाली कामनाकी आग जल रही है । मेरे हृदयका सहज क्रोध बाहर-भीतर सर्वत्र छा रहा है । हृदयमें लोभ भरा है, जो सदा दुःखदायी कर्म करवाता रहता है ।

हुए प्रकट सब दोष
भयानक मेरे सन्मुख ।
काँपी, डरी, निराशा-सी
छायी मेरे मुख ॥
किस साहससे प्रियतमके
समीप मैं जाऊँ ?
तन-मन मलिन अपार
किस तरह मुख दिखलाऊँ ?

संख्या ७]

किस मुख उनसे कहूँ,
मुझे दो पदपङ्कज प्रिय !
शुचि पद-रज दे, मुझे
बना दो शुद्ध सत्त्वमय ॥

(श्रीराधाजी कह रही हैं—यों सोचते-सोचते)
मेरे सारे दोष भयानक रूपमें मूर्तिमान् होकर मेरे
सामने प्रकट हो गये । मैं उनको देखकर काँप उठी,
डर गयी और मेरे मुखपर निराशा-सी छा गयी । (मैं
सोचने लगी—हा ! इतने भयानक दोष, इतने घोर
पाप !) मैं किस साहससे प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके
समीप जाऊँ ? मेरा मन और मेरा शरीर इतना मलिन
है कि जिसका पार ही नहीं है, (मैं वहाँ जाकर)
किस प्रकार मुख दिखलाऊँ ? और किस मुखसे उनसे
कहूँ कि 'प्रियतम ! अपने चरणकमल मुझे प्रदान
करो और अपनी पवित्र चरण-रज देकर मुझे विशुद्ध
सत्त्वमय बना दो ।'

मान नहीं मन रहा किंतु,
मचला वह अतिशय ।
चलो चलो प्रियकी संनिधिमें,
छोड़ो भ्रम-भय ॥
उठने लगी, गिरी फिर
अपनी ओर देखकर ।
घृणित दोषसे पूर्ण हाय !
मैं जाऊँ क्योंकर ?
रूप-शील-सौन्दर्य-
सद्गुणोंके वे सागर ।
अतुलनीय अनुपम सब विधि
प्रियतम नटनागर ॥
मेरे सदृश न कोई पामर
नीच घृणित जन ।
मिलनेच्छाका त्याग तदपि
करता न हठी मन ॥
तम-घन इच्छा करे
सूर्यसे मिलनेकी ज्यों ।

मेरा मन भी श्याम-मिलन-
इच्छा करता त्यों ॥
पर साहस न जुटा पायी,
स्थिति हुई भयानक ।
मर्मव्यथा अति असहनीय
जग उठी अचानक ॥

(मैं बुद्धिसे यह सब विचार कर रही थी) परंतु
मन इसे मान नहीं रहा था, वह अत्यन्त मचल उठा
(और उसने कहा—) 'चलो, चलो प्रियतमके समीप ।
(वे बड़े उदार हैं—) डर और भ्रमको छोड़ दो ।'
(मनकी बात सुनकर मैं उठने लगी, परंतु अपनी ओर
देखकर—अपनी गुणरूप हीनता और दोषागारताको
देखकर गिर पड़ी । हाय ! मैं घृणित दोषोंसे भरी,
कैसे उनके समीप जाऊँ ? वे रूप, शील, सौन्दर्य और
सद्गुणोंके समुद्र हैं । वे मेरे प्रियतम नटनागर सब
प्रकारसे अतुलनीय और अनुपमेय हैं । इधर मेरे समान
पामर, नीच और घृणित व्यक्ति कोई भी नहीं है ।
इतनेपर मेरा आग्रही-हठी मन उनसे मिलनेकी इच्छा-
का त्याग नहीं करता । मेरे मनकी यह श्याम-
सुन्दरसे मिलनेकी इच्छा वैसी ही है, जैसी घोर
अन्धकारकी प्रकाशमय सूर्यसे मिलनेकी इच्छा हो ।
(सूर्यके प्रकाशसे मिलते ही अन्धकारका स्वतन्त्र
अस्तित्व नष्ट हो जाता है । अतः अन्धकारके
रूपमें वह कभी प्रकाशसे मिल ही नहीं सकता । तद्रूप
होकर ही मिलता है । ऐसे ही भगवान्से मिलनेवाला
भी तद्रूप हो जाता है ।) (मिलनेकी इच्छा होनेपर
भी) मैं साहसका संग्रह नहीं कर सकी, परंतु स्थिति
बड़ी भयानक हो गयी और अचानक मेरे हृदयमें
अत्यन्त असह्य पीड़ा जाग उठी ।

बाह्य चेतना गयी, पड़ी
सब सुध-बुध खोकर ।
अंदर प्रकटे श्याम
रूप-गुण-निधि मुनिमनहर ॥

करने लगे दुलार सहज
मनुहार अपरिमित ।
नहलाने बस, लगे
प्रेमधारामें अविरत ॥

मेरी बाह्य चेतना लुप्त हो गयी । (मैं बेहोश होकर)
सारी बाहरी सुध-बुध खोकर गिर पड़ी । इतनेमें ही मुनि-
मनका हरण करनेवाले दिव्य रूप-गुणके निधि श्यामसुन्दर
अंदर प्रकट हो गये और मुझसे प्यार-दुलार करने लगे,
सहज ही मेरी इतनी मनुहार करने लगे कि जिसकी
कोई सीमा नहीं और बस, वे मुझको अपनी प्रेम-
रस-सुधा-धारामें (अपने हाथों) नहलाने लगे !

कहने लगे—तुम्हारे
जो कुछ बाहर भीतर—
है, होता है,—छिपा न
है मुझसे रत्ती भर ॥
अहं, ममत्व, सुराग,
कामना, क्रोध, लोभ सब ।
है नित मेरे लिये,
नहीं कुछ उनमें तब अब ॥
किंतु तुम्हारा प्रेम शील
निज-गुण न मानकर ।
गुणमें करता दोष-बुद्धि
नित सत्य जानकर ॥
प्रिये ! तुम्हारा दैन्य सहज
पावन अति सुखकर ।
अतः नित्य रहता मैं
सुख-सम्पादन-तत्पर ॥

(और) कहने लगे—राधिके ! तुम्हारे बाहर-भीतर
जो कुछ है, जो कुछ होता या हो रहा है, वह मुझसे
रत्तीभर भी छिपा नहीं है । (मैं उसके असली रूपको
जानता-देखता हूँ ।) तुम्हारा अहंकार (मुझे प्रियतम

माननेके रूपमें), तुम्हारी ममता (मुझे ही एकमात्र
अपना माननेके रूपमें), तुम्हारा सुन्दर राग (मुझमें
अनन्य आसक्तिके रूपमें है और इसी (मेरे) राग-
सुधा-रसके द्वारा तुम सदैव सिञ्चित हो), तुम्हारी कामना
(एकमात्र मुझे सुखी देखनेके रूपमें), तुम्हारा क्रोध
(सेवामें त्रुटि मानकर क्षुब्ध होनेके रूपमें) और तुम्हारा
लोभ (अपने प्रेममें सहज कमी देखकर उसे बढ़ानेके
रूपमें)—ये सब नित्य मेरे लिये हैं । (सदासे हैं,
सदा रहेंगे) इनमें तब या अब नहीं है । परंतु तुम्हारा
प्रेम-शील ऐसा है कि तुम अपने गुणोंको गुण न मानकर
उन गुणोंमें सदा ही सचमुच ही दोषबुद्धि रखती हो ।
प्रियतमे ! यह तुम्हारा (अपने गुणोंमें भी दोष
दिखानेवाला स्वाभाविक) सहज दैन्य अत्यन्त पवित्रकारी
है और मुझे अत्यन्त सुख देनेवाला है । इसीसे मैं नित्य-
निरन्तर तुम्हारे सुख-सम्पादनमें ही लगा रहता हूँ ।

अन्तर्धान हुए सहसा
शुचि रस वर्षा कर ।
खुले नेत्र अविलम्ब,
चेतना आयी सत्वर ॥
देखा खड़े सामने
मृदु मुसकाते प्रियवर ।
हुई कृतार्थ विशुद्ध
रसभरी पद-रज पाकर ॥

इस प्रकार पवित्र रसकी विशद वर्षा करके प्रियतम
सहसा अन्तर्धान हो गये । उनके अन्तर्धान होते ही
तुरंत मेरी आँखें खुल गयीं और उसी क्षण बाह्य चेतना
लौट आयी । मैंने देखा कि मेरे प्रियतम सामने खड़े
मन्द मृदु मुसकुरा रहे हैं । (मैं चरणोंमें गिर पड़ी
और) विशुद्ध रसमयी चरणरजको प्राप्त करके कृतार्थ
हो गयी ।

गीताका पंद्रहवाँ अध्याय

(कुल ज्ञातव्य)

१-अर्जुनकी युद्धप्रवृत्तिका उद्देश्य है सबका हित। वे श्रीकृष्णके सम्मुख स्पष्टरूपसे अपने हृदयका उद्गार प्रकट करते हैं कि 'अहो! हम जिन लोगोंके लिये राज्य-सुख एवं भोग चाहते हैं, वे ही अपने प्राण तथा धनका परित्याग करके मरने और मारनेके लिये युद्धभूमिमें खड़े हैं।' इसका अभिप्राय यह है कि अर्जुन व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धिके लिये अथवा सामूहिक युद्धाभिनिवेशके वशवर्ती होकर नरसंहारमें प्रवृत्त नहीं हैं। वे धर्माधर्मका शुद्ध विवेक करके ही युद्धमें प्रवृत्त होना चाहते हैं। इसके विपरीत दुर्योधनकी बुद्धि युद्धोन्मादसे अभिभूत हो गयी है। उसको इस बातका हर्ष है कि लोग उसके स्वार्थ और अधिकार-लिप्साको पूर्ण करनेके लिये अपनी जान हथेलीपर लेकर सामने खड़े हैं और मरनेपर तुले हुए हैं—

‘मर्त्यं त्यक्तजीविताः ।’

केवल इतनी ही बात ध्यानमें रखकर गीताका साध्याय किया जाय तो यह निष्कर्ष निकलेगा कि अर्जुनमें दैवी सम्पत्ति और दुर्योधनमें आसुरी सम्पत्ति जन्मसे ही विद्यमान है।

२-अर्जुन नर है—जीव है। श्रीकृष्ण नरके हृदयमें विराजमान नारायण हैं—वासुदेव हैं, ईश्वर। एक नरके लिये यह कितना उत्तम प्रसङ्ग है कि वह अपने जीवन-रथके सारथिके रूपमें नारायणको प्राप्त कर ले, उनकी आदेश-निर्देशात्मक वाणीका श्रवण करे और तदनुसार आचरण करे। अपने जन्म-जन्मके, माता-पिताके और इसी जन्मके संस्कारोंसे आक्रान्त जीवको सर्वभूतहित नारायणकी प्रेरणा प्राप्त होने लगे, इससे बढ़कर उसके जीवनमें सौभाग्य और उत्कर्षका दूसरा कोई क्षण नहीं हो सकता। जीवकी संकीर्ण भावनाओं और एकदेशी विचारोंको सम्पूर्ण बनानेके लिये ही भगवद्वाणीका अवतरण होता है और सचमुच भगवद्गीता वैसा ही लोकहितकारी एक पावन अवतरण है।

३-कोई भी बाह्य परिस्थिति, जो देश, काल, वस्तुकी

खुलाई २—

न्यूनाधिकता और व्यक्तियोंके विचार-भेदसे परस्पर विलक्षण और विचित्र होती है, सीधे हमारे जीवन एवं कर्तव्यका संचालन नहीं करती और न तो प्रभावित ही करती है। वह पहले हमारी बुद्धि अथवा नीयतका परिवर्तन करती है और वह बुद्धि ही हमारे क्रिया-कलापका संचालन करती है। इसलिये हमारी बुद्धिको उचित दिशामें मोड़ देनेके लिये सर्वभूतहित वाणी अर्थात् भगवद्वाणीका सर्वोपरि महत्त्व है; क्योंकि वह कर्म और वासनाओंके मूलका ही संशोधन करती है।

४-अतीतकी स्मृतियोंमें उलझी हुई, वर्तमानके दलदलमें फँसी हुई और भविष्यकी भय-कल्पनासे आक्रान्त बुद्धि कभी यथार्थ दर्शन नहीं कर सकती। परिस्थितियोंसे प्रभावित ज्ञान पशुजीवनमें भी होता है; परंतु वह संस्कारोंके गतिहीन जड बन्धनोंसे मुक्त करनेमें असमर्थ है। राग-द्वेषरहित शुद्ध अन्तःकरणमें अभिव्यक्त होनेवाला ज्ञान ही यथार्थ दर्शन है। आत्माको मरनेवाला और मारनेवाला मानकर अपने कर्तव्यका निर्धारण करना भय और विभीषिकाके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग है और एक स्वतन्त्र यथार्थदर्शी पुरुषके द्वारा चलने योग्य नहीं है; क्योंकि उसके मूलमें अपने यथार्थ स्वरूपका अज्ञान है—

‘उभौ तौ न विजानीतः’

सत्य और असत्य—दोनोंके ही जन्म-मरण नहीं होते। अपनेमें या अन्यमें जो जन्म-मरणकी प्रतीति है वह अपने अधिष्ठान एवं साक्षी आत्माका स्पर्श नहीं करती। इसलिये अपनेको अज-अविनाशीरूपमें जानना ही यथार्थ दर्शन है।

‘वेदाविनाशिनं नित्यम् ।’

यह यथार्थ दर्शन एक ओर ‘न हन्यते’ कहकर आत्मस्वरूपको अभय बतलाता है तो दूसरी ओर ‘न हन्ति’ कहकर निर्विकार और निष्क्रिय भी बतलाता है। क्या यह जीवनके लिये अद्भुत संदेश नहीं है कि आत्मा स्वरूपसे ही निष्काम और निर्भय है।

५-मृत्यु, अज्ञता और दुःखसे भय है। अमर

जीवन सच्चे ज्ञान और स्थायी सुखकी कामना है। वस्तुतः यह भय और काम आत्माके शुद्ध स्वरूपमें नित्य निवृत्त ही हैं; क्योंकि जिनसे हम भयभीत होते हैं वे हैं ही नहीं और जिनको चाहते हैं वे नित्य प्राप्त ही हैं, अपने स्वरूप ही हैं। इसलिये जब यथार्थ दर्शन होता है, तब अविद्याकी निवृत्ति हो जानेके कारण राग, द्वेष, भय, शोक, मोह आदि दोष स्वयं निवृत्त हो जाते हैं। इसीसे हम देखते हैं कि गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णको यह पसंद नहीं है कि लोकहितकारी स्वधर्ममें प्रवृत्त करनेके लिये अर्जुनको कोई लौकिक प्रलोभन दिया जाय। कर्मकाण्डियोंके निरूपणके दृंगको वे 'पुष्पिता वाणी' कहते हैं, और उन्हें 'अविपश्चित्'। यह स्पष्ट है, यदि लौकिक फलकी प्राप्ति के लिये अर्जुन युद्धसे विमुख हैं तो ऐसे घोर कर्मसे उन्हें परलोक-प्राप्तिकी आशा भी नहीं है। यही वह भूमि है जिसमें निष्काम स्वधर्मनिष्ठाको दृढ़ करनेकी आवश्यकता होती है। सम्पूर्ण गीतामें श्रीकृष्णने बाँसुरीके मधुर स्वरके बिना ही निष्काम धर्मनिष्ठाका गम्भीर संगीत गाया है।

६—इसमें संदेह नहीं कि विषयभोग, अर्थसंग्रह और कोई महान् कर्म करनेसे जो तात्कालिक अभिमान-सुख उत्पन्न होता है, वह बुद्धिके लिये एक ऐन्द्रजालिक सम्मोहन है और बुद्धिको प्रगतिशील होनेसे रोकता है। साथ ही उन-उन पदार्थोंकी न्यूनता और अभावसे उत्पन्न दुःख बुद्धिको उद्विग्न एवं अस्थिर बनाता है। यही कारण है कि भौतिक विषयोंकी चकाचौंधके सम्मोहन, आकर्षण, प्रलोभनमें पड़ी हुई अथवा उनके द्वारा उद्वेजित एवं चालित बुद्धि कभी व्यवसायात्मिका, निश्चयात्मिका अथवा स्थितिका रूप धारण नहीं कर सकती और न तो गम्भीर तत्त्वका अवगाहन ही कर सकती है। इसलिये यह आवश्यक है कि अनुकूल और प्रतिकूल मात्रास्पर्शोंके सहनेका स्वभाव बनाया जाय। संसारका कोई भी पहला सुख अथवा दुःख चित्तपर जितनी करारी चोट करता है उतनी तीव्रता द्वितीय, तृतीय चोटमें नहीं रहती। परिस्थितियोंका चक्र सभी सुख-दुःखोंको भूतके अतल गर्भमें विलीन करता रहता है, क्रमशः उन्हें शिथिल कर देता है और भविष्यमें तो वह अपने धैर्यका एक रोचक संस्मरण बन जाता है।

हम सर्वोत्तम लक्ष्यकी प्राप्ति के लिये क्षणिक सुख-दुःखोंके प्रवाहमें स्वयं तितिक्षु रहकर एकरस जीवनको आगे बढ़ानेका अभ्यास बना लेते हैं तो हम जीवन-सागरका शुद्ध मथितार्थ अमृतत्व या अमृततत्त्व प्राप्त करनेके योग्य अधिकारी हो जाते हैं।

७—मुख्य प्रश्न यह नहीं है कि हमारे जीवनमें सुख और दुःखके कितने उद्वेजक या सम्मोहक प्रसङ्ग आते हैं अथवा उनका हमारे बाह्य जीवनपर क्या प्रभाव पड़ता है? इस प्रवहमान प्रपञ्चमें वैसे प्रसङ्गोंकी कभी कभी नहीं होती, प्रत्युत एक अनन्तर दूसरा, दूसरेके अनन्तर तीसरा—इस क्रमसे वे तरंगायमान होते ही रहते हैं। हमारे लिये तो वे तब समस्याका रूप धारण करते हैं, जब हम उन्हें अभिमान और ममताके द्वारा स्वीकृति दे देते हैं कि ये सुख, उनके आकार और निमित्त मेरे हैं अथवा मैं सुखी और दुखी हूँ। यह निश्चित समझिये कि व्यक्तिगत अथवा पञ्चायती कर्मोंके फलस्वरूप जो घटनाएँ, परिस्थितियाँ और वृत्तियाँ बनती हैं, वे रात-दिनके समान केवल बाह्य स्तरको ही प्रभावित करती हैं, अपने एकरस आत्मचैतन्यपर कोई प्रभाव नहीं डालतीं। इसीसे अपनेको सुख-दुःखसे बाँध लेना या उनसे बँध जाना एक बौद्धिक स्वीकृति है, यथार्थ सत्य नहीं। विवेकको जाग्रत रखनेपर हम कैसी भी बाह्य परिस्थितिमें सुख-दुःखको स्वीकार करनेके लिये बाध्य नहीं हैं। हम उनसे कह सकते हैं कि 'अरे ओ सुख! ओ दुःख! तुम बाहरसे ही लौट जाओ। तुम हमारे स्पर्शके अधिकारी नहीं हो; क्योंकि हम इतने उन्नत, इतने सूक्ष्म और इतने पूर्ण धरातलपर विराजमान और प्रकाशमान हैं कि तुम सम्पूर्णरूपसे संघटित होकर भी एक परमाणुके समान भी नहीं हो सकते और न हमारी छाया ही छू सकते।' निश्चय ही सुख-दुःखकी चल आकृतियाँ केवल मनोराज्य हैं और अपने स्वरूपके अज्ञानके कारण अपनेको कर्ता, भोक्ता, परिच्छिन्न, संसारी माननेवाला भ्रान्त जीव ही उन्हें स्वीकृति दे देता है। सुख-दुःखका अभिमान केवल एक भ्रान्त प्रतीति है।

८—गीताका स्पष्ट अभिमत है कि आत्मचैतन्य कर्ता-भोक्ता नहीं है—'न करोति न लिप्यते।' वह अपरिणामी, नित्य और सर्वगत है। तत्त्वतः उसमें जन्म और मरण नहीं हैं। वह अद्वितीय परमात्माका स्वरूप होनेके कारण सम्पूर्ण

संख्या ७]

प्रातीतिक प्रपञ्चका आधार होनेपर भी स्वरूपसे अद्वितीय ही है 'न च मत्स्थानि भूतानि'। प्रत्यक्चैतन्याभिन्न परमात्माके ज्ञानसे ही अपुनरावृत्ति-लक्षण मोक्षकी प्राप्ति होती है 'गच्छन्त्य-पुनरावृत्तिम्'। ज्ञानी पुरुष समदर्शी हो जाता है। परमात्माका तत्त्वतः ज्ञान और परमात्मामें प्रवेश एक ही बात है। इसी सबके साक्षात्कारके लिये गीतामें विविध साधनोंका निरूपण किया गया है।

९-यदि निष्पक्ष होकर गीताके साधनपक्षका निरीक्षण किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि काम, क्रोध और लोभसे विमुक्त होकर ही श्रेयके आचरण किये जा सकते हैं। दोष-दुर्गुण नरकके द्वार, आत्मज्ञानके विरोधी एवं परिपन्थी हैं। भगवान्की भक्ति साधनोंमें सबसे सुगम है। यह ज्ञान, योग, स्थितप्रज्ञता, गुणातीतता—सभीमें सहायक है। यह साधनकालमें दोष-दुर्गुणोंका दूरीकरण और सद्गुणोंका आधान करती है। पदार्थ-शोधनमें तीव्रता उत्पन्न करती है। अविद्या-निरासके लिये विद्याको उद्दीप्त करती है। जब विद्या-अविद्याको निवृत्त करके स्वयं निवृत्त हो जाती है, तब तत्त्व महापुरुषके जीवनमें जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख बनकर ऐक्यरतिके रूपमें यही स्वस्वरूपा भक्ति प्रकाशमान रहती है। क्यों न हो, जब भगवान् और आत्मा शब्दोंके अर्थ अलगा-अलग होते हैं तब भगवद्भक्ति और आत्मरति अलगा-अलग होती है, परंतु जब दोनोंके ऐक्यका बोध होकर तदतिरक्ता बोध हो जाता है तब स्वभावसिद्ध ऐक्यरतिके रूपमें भक्ति महारानी अपना स्वरूप प्रकाश करती है—'स सर्वविद् भजति माम्'।

१०-यद्यपि ब्रह्मबोध अविद्यानिवृत्तिके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करता तथापि ब्रह्मज्ञानीके जीवनमें अविद्यानिवृत्तिके कुछ परिणाम स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर होते हैं।

जीवनकालिक विविध और विषम परिस्थितियोंमें एक ऐसी स्थिर प्रज्ञाका उदय हो जाता है जिससे व्यवहारमें स्थित महापुरुष स्थितप्रज्ञ हो जाता है और एक स्थिर आधार मिल जानेके कारण मनकी चञ्चलता और विचलता समाप्त हो जाती है; क्योंकि प्रज्ञाके स्थिर होनेपर कुछ बातें अपने-आप ही जीवनमें उतरती हैं—(क) अपने हृदयमें अपने आत्माकी विद्यमानतासे ही संतुष्ट रहना। इसका

स्वाभाविक फल यह होता है कि कामनाएँ स्वयं शान्त हो जाती हैं।

(ख) इन्द्रियोंको प्रिय लगनेवाले विषयोंमें आसक्ति नहीं रहती। इसलिये उनके वियोगमें उद्वेग, संयोगमें स्मृहा, भोगमें राग, नाशका भय और नाशकपर क्रोध नहीं होता।

(ग) स्वतःसिद्ध साध्यकी प्राप्ति हो जानेके कारण साधनपक्षमें दुराग्रह भी नहीं रहता। फलस्वरूप साधनहीन और साधन-विरोधीसे भी द्वेष नहीं होता। साथ ही अपनी रुचिके अनुकूल साधन करनेवालोंके प्रति अभिनन्दन और पक्षपात भी नहीं रहता। सर्वात्मक ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान साधनके अभिनिवेशको शिथिल कर देता है।

(घ) ऐन्द्रियक भोगोंसे तृप्ति प्राप्त होनेकी दुराशा छूट जानेके कारण स्वयं ही अन्तर्मुखता सेवामें उपस्थित हो जाती है। विषयानन्द ऐन्द्रियक है। ब्रह्मानन्द मन और इन्द्रियोंकी शान्ति है। विषयानन्दपर बार-बार कर्मका आवरण आता है। शान्ति निरावरण, स्थिर और अपने अधिष्ठान ब्रह्मसे अभिन्न है। इसलिये शान्ति ही नित्य तृप्ति है। फिर कामपूर्तिमूलक रति, लोभपूर्तिमूलक तुष्टि और भोगपूर्तिमूलक तृप्तिकी अपेक्षा न रहकर आत्मरति, आत्म-बुद्धि और आत्मतृप्ति सदा विराजमान रहने लगती है।

(ङ) अभिमान और ममत्वकी निवृत्ति हो जानेके कारण जीवनमें स्वाभाविक ही त्यागकी प्रतिष्ठा हो जाती है। त्यागमें विराग और विरागके अन्तरङ्गमें तत्त्वज्ञान। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मबोधके उत्तरकालीन स्वाभाविक त्यागमें स्वयं ही रस-रागका निरोध और आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है।

(च) मन अपने आश्रयस्वरूप परमात्मामें न किञ्चित् हो जाता है। स्फुरित होनेपर आत्मासे पृथक् उसकी स्थिति, गति नहीं होती। इसलिये प्रमाथी इन्द्रियोंके इन्द्रजालसे वह मुक्त हो जाता है और सबका संयम करके युक्त और आत्मपरायण रहता है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है—इन छः विशेषताओंके आनेपर बुद्धिके परिवर्तन और विचलनका कोई कारण नहीं रह जाता और प्रज्ञाके स्थिर होनेपर इनका आ जाना सर्वथा स्वाभाविक है।

११-तत्त्वज्ञानके बिना सच्ची स्थितप्रज्ञता नहीं आ सकती । तत्त्वज्ञान अन्तःकरणकी शुद्धिके बिना नहीं हो सकता । कर्मयोगके बिना अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं हो सकती । ब्रह्मसत्यके साक्षात्कारमें कर्मयोगका असाधारण महत्त्व है । अपने अन्तःकरणकी शुद्धि और ईश्वरप्रीतिके लिये किया जानेवाला पुरुषका प्रत्येक विहित प्रयत्न कर्मयोग है । शारीरिक प्रयत्न धर्म है । मानसिक प्रयत्न उपासना है । बौद्धिक प्रयत्न सांख्य है । ये सब पुरुष-प्रयत्नसाध्य होनेके कारण कर्मयोगकी ही बहिरङ्ग-अन्तरङ्ग शाखाएँ हैं । इनके द्वारा चित्तशुद्धि होकर महावाक्यके द्वारा भूमासत्य-विषयक चरमा वृत्ति होती है, वही अज्ञानका नाश करती है ।

सम्पूर्ण आध्यात्मिक उन्नतिका मूल कर्मयोग है । भगवद्वाणीकी स्पष्ट उद्घोषणा है कि कर्मयोग ही नैष्कर्म्यका एकमात्र उपाय है । केवल कर्मसंन्यास सिद्धिका उपाय नहीं है । सम्पूर्ण कर्मोंका परित्याग होना सम्भव भी नहीं है । वे शरीरधारीके लिये प्रकृतिसिद्ध हैं । निष्काम एवं आसक्ति-रहित कर्मयोग सकाम कर्मत्यागसे विशिष्ट है । अकर्मण्यता और कर्मठताके द्वन्द्वमें कर्मानुष्ठान ही श्रेष्ठ है । कर्मके बिना तो जीवन-निर्वाह भी नहीं हो सकता । ऐसी-ऐसी अनेक युक्तियोंके द्वारा समर्थित भगवद्वाणीकी कर्मयोग-प्रेरणा सर्वथा उपादेय है, परमात्माकी प्राप्तिके निश्चित अन्तर्देशमें प्रवेश प्राप्त करनेके लिये यही द्वार है ।

१२-प्रज्ञाकी स्थिरतामें प्रतिबन्धक विषयचिन्तन, विषयासक्ति, काम, क्रोध, सम्मोह, स्मृतिविभ्रम और बुद्धि-नाशसे बचकर, क्योंकि ये प्रणाशके कारण हैं, अपने मनको गुरु और शास्त्रका आज्ञाकारी बनाना चाहिये । इसीको

गीतामें विधेयात्मा कहते हैं । अध्रुव प्रपञ्चमें अविनाशी ध्रुवकी इच्छा करनेवाला बालक है, अकृतात्मा है । वह मृत्युके द्वारा फैलाये पाशमें स्वयं फँस जाता है । विधेयात्मा पुरुष ही इस पाशको काटता है । इसकी युक्ति है, राग-द्वेषरहित होकर व्यवहार करना और केवल जीवननिर्वाहके लिये भोग करना । इन्द्रियोंका अपने वशमें होना परमावश्यक है । इसीसे प्रसादकी उपलब्धि होती है । अन्तःकरणका निर्विकार और निर्मल होना ही प्रसाद है । प्रसाद ही प्रज्ञाकी स्थिरताका जनक है । मन इन्द्रियोंके पीछे न चले, प्रज्ञाके पीछे चले । हम संसारके भोगोंका पीछा न करें, भोग स्वयं हमारी ओर आयें और हमारी पूर्णतामें समा जायें । निष्कामतामें ही शान्ति मिलती है । जब यह शान्ति तत्त्वज्ञानपूर्वक होती है, तब इसे 'ब्राह्मी स्थिति' कहते हैं । वस्तुतः यह एक व्यावहारिक शान्ति है और भगवद्वाणीकी प्रेरणाके अनुसार जीवन निर्माण करनेपर यह इसी जीवनमें प्राप्त होती है ।

१३-यह बात पहले कही जा चुकी है कि जीवन-निर्माणकी प्रत्येक दिशामें भगवद्भक्ति असाधारण उपकारक है, मधुर है, रसीली है । पंद्रहवें अध्यायमें भगवद्भक्तिके लिये अपेक्षित सम्पूर्ण साधनसामग्रियोंका निरूपण है । जीवकी कर्ममूलक गतियाँ वैदिक धर्मानुष्ठानसे ही लौकिक जीवनमें सुख-शान्तिकी छाया, दृढ़ वैराग्यकी आवश्यकता, निर्मान मोह आदि साधन, भजनीय ईश्वरका स्वरूप, जीवका स्वरूप, भगवद्भक्तिका स्वरूप—ये सभी बातें कही गयी हैं, यह मनुष्य-जीवनको पूर्ण बनानेके लिये पर्याप्त हैं । सच्चा ज्ञान और कृतकृत्यताकी प्राप्तिके लिये पंद्रहवें अध्याय-जितनी सामग्री एकत्र मिलना दुर्लभ है ।*

* 'कल्याण' के पाठक श्रद्धेय स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजसे सुपरिचित हैं । आप बहुत बड़े दार्शनिक विद्वान्, लेखक और वक्ता महात्मा हैं । आपके द्वारा लिखे ग्रन्थरत्न तथा प्रवचनोंके संग्रह आध्यात्मिक जगत्की अमूल्य निधि हैं । आपके माण्डूक्यप्रवचन, भक्तिरहस्य, श्रीमद्भागवतरहस्य, सत्सङ्गसाधन और फल, सुगम भक्तिमार्ग, भगवान्के पाँच अवतार, ईशावास्य-प्रवचन, आनन्दवाणी आदि लगभग १६, १७ बहुत ही उपादेय तथा कल्याणप्रद ग्रन्थरत्न प्रकाशित हो चुके हैं । इनमें वेदान्त, भक्ति, सदाचार, निष्कामकर्मयोग आदिका विशद विवेचन है । उपर्युक्त लेख आपके 'पुरुषोत्तमयोग' से लिया गया है । जिन सज्जनोंको आपके ग्रन्थोंसे लाभ उठाना हो वे 'सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट' 'विपुल', २५५-ए । १६ रिज रोड, मालावार हिल, बम्बई ६ से सम्पादक पत्रव्यवहार करें ।

मनन-माला

(लेखक—३० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

[गताङ्क पृष्ठ ९६५ से आगे]

२२—सब शरीरोंमें आत्मा है, यह जानकर जिन प्राणियोंसे भी सम्पर्क हो, उनका भलीभाँति दान-मानसे सम्मान करें, इस प्रकार आत्मोपासना करें। आत्मा कहें या परमात्मा, वेतन वस्तु एक और अखण्ड है तथा वह प्राणीमात्रके भीतर और बाहर व्याप्त है। ऐसा जानकर प्राणीमात्रको भगवान्की मूर्ति समझकर शास्त्रमें कहे अनुसार यथायोग्य सबकी भलीभाँति पूजा करे। जैसे गायकी पूजा चन्दन-पुष्पसे नहीं होती, बल्कि घास देकर उसकी पूजा की जाती है। इसी प्रकार भूखेकी पूजा उसको भोजन देनेसे और प्यासेकी पूजा जल पिलानेसे होती है। रोगीकी पूजा उसकी चिकित्सा तथा सेवा करके होती है। आश्रयहीनकी पूजा उसे आश्रय देकर की जाती है। देवमूर्तिकी सेवा शास्त्र-विधिके अनुसार श्रद्धापूर्वक पूजा करनेसे होती है। इस साधनसे थोड़े समयमें ही आत्मदर्शन होता है। परन्तु जो कुछ करे, पूर्ण निष्काम भावसे करे।

२३—चित्त संकल्प-विकल्प किया ही करता है। उसको शान्त करनेके लिये भगवान्की अपने मनके अनुकूल एक सुन्दर मूर्ति रखकर उसके सामने एकटक देखा करे। शरीरको बिना हिलाये-डुलाये, आँखकी पलक बिना गिराये, जबतक बने तबतक उस मूर्तिकी दर्शन करता रहे। आँखें थक जायँ तो थोड़ी देर उन्हें आराम देकर फिर आँखें खोलकर उस मूर्तिके अङ्ग-प्रत्यङ्गका दर्शन करे। इस अभ्याससे चित्त शान्त होगा। श्वास-प्रश्वासकी गति मन्द होगी तथा मन निर्विकार होगा। ज्यों-ज्यों चित्त शान्त होगा, वासनाएँ मरती जायँगी और आत्मसाक्षात्कार समीप होता जायगा। यदि भगवान्के सगुण स्वरूपके दर्शनकी इच्छा होगी तो भगवान् सगुणरूपमें प्रकट होंगे।

२४—चित्तको शान्त करनेका दूसरा मार्ग यह है कि एक बड़ा दर्पण लेकर विक्षेपरहित स्थलमें एकान्तमें बैठे और दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बको एकटक देखे। आँखोंमें जलन हो या पानी आने लगे तो भी बिना धराये देखता रहे। ऐसा करते हुए जब आँखें थक जायँ तब थोड़ी देरतक आँखोंको आराम देकर फिर ताकना शुरू कर दे। इस प्रकार थोड़ा-थोड़ा अभ्यास बढ़ावे और मनमें कोई संकल्प

उठे तो उसका त्याग करे तथा मनको निर्विचार करता जाय। इन सब अभ्यासोंके करनेमें उतावली न करे। धीरे-धीरे शान्तिसे और धीरजसे आगे बढ़े। एक महीनेतक प्रतिदिन पंद्रह मिनट बैठे और दूसरे महीनेमें धीरे-धीरे बढ़ाकर आधा घंटा कर दे।

२५—एक सुगम उपाय यह है कि बिना हिले-डुले, शान्त होकर एकान्तमें बैठकर आँखें बंद कर ले और मुँदी आँखोंसे जो अँधेरा दीखे, उसको देखता रहे। मुँदी हुई आँखोंसे अँधेरा तो दीखता ही है, उस अँधेरेको देखते हुए मन कोई संकल्प न करे, यह ध्यानमें रखे। संकल्प करने लगे तो उसे रोके। यह अभ्यास भी धीरे-धीरे बढ़ावे। इस अभ्यासके बढ़ाते समय अनेक दृश्य दीखेंगे, उनसे हर्षित न हो तथा धराये नहीं। जो दीखे, उसे देखता रहे और मनको संकल्परहित बनाये रखे। जो दीखे उसे परमात्मा या आत्मा न समझे। दीपक-जैसा जान पड़े, अथवा चन्द्रमा, तारा, बिजली आदि-जैसे जान पड़ें तो उन सब दृश्योंको चित्तकी वृत्ति समझे। मनको बिना किसी विचारके शान्त रखना जरूरी है।

२६—संतोंके द्वारा प्रशंसित एक नादानुसंधानकी प्रक्रिया है। एकान्तमें लम्बा होकर सो जाय। दरी या तोशकके ऊपर सोवे। पश्चात् दोनों कानोंमें दो अङ्गुलियाँ डालकर कानोंके छिद्रको बंद कर दे। ऐसा करनेसे कानोंमें आवाज सुन पड़ेगी। उस आवाजको सुने और इस अभ्यासको धीरे-धीरे बढ़ावे। यह अभ्यास अनुभवी पुरुषके पास सीखकर उसके समीपमें रहकर करे। इससे पक्षियोंकी चहचहाटसे लेकर घंटी, घड़ियाल, शङ्खतककी आवाज सुनायी देती है।

२७—देश, काल, वस्तु, व्यक्ति और क्रिया—इन पाँचोंका असर चित्तपर होता है। ये सात्त्विक, राजस या तामस—जिस प्रकारके होते हैं, उनके सङ्गमें आनेवाला चित्त भी उसी प्रकारका बन जाता है। अतएव इन पाँचोंको सात्त्विक रूपमें सेवन करे और श्रेयकी इच्छा करते हुए राजस-तामसका त्याग करे।

२८—जैसा मन होता है, वैसा ही मनुष्यका स्वरूप होता है और जैसा सङ्ग होता है वैसा मन बनता है। सबके सङ्गकी अपेक्षा व्यक्तिका सङ्ग बलवत्तर है। जैसे व्यक्तिका सङ्ग होगा, वैसा ही मनुष्य बन जायगा। इसमें जिस व्यक्तिमें पूज्य बुद्धि होती है और जिसका वचन प्रमाण जान पड़ता है, उस व्यक्तिके सङ्गका शीघ्र असर पड़ता है। अतएव श्रेयकी इच्छा रखनेवालेको चाहिये वह सात्विक गुणयुक्त, सदाचारी, ईश्वर-भक्त, शान्त, वैराग्यवान्, नित्य प्रसन्न, व्यक्तिकी सेवा करे। भोगी मनुष्यका सङ्ग छोड़ दे। सङ्गसे कामना जाग्रत् होती है। जैसा सङ्ग होता है, वैसी इच्छा होती है। अतएव मुमुक्षु पुरुष भोग और भोगीका सङ्ग सर्वथा त्याग दे। इन्द्रियोंके द्वारा मन अनुभव करता है और अनुभवमें राग होनेसे उसकी इच्छा जाग्रत् होती है। अतएव मोक्षकी इच्छा रखनेवाला विषय-कामना उत्पन्न न करे तथा वैषयिक चित्र, नाटक, सिनेमा तथा दृश्य आदि न देखे और वैसे व्याख्यान, आख्यान तथा संगीत भी न सुने। जिससे परमात्माके प्रति प्रीति हो, उसकी भक्ति बढ़े, वैसे दृश्योंको देखे। वैसी वाणी सुननेको मिले, इसलिये संतोंकी सेवा करे। परमात्माकी महिमाके द्योतक निर्दोष प्राकृतिक दृश्योंको देखे।

२९—जैसे आज स्नान करनेके बाद फिर कल स्नान करना पड़ता है; क्योंकि शरीर विकारी होनेके कारण मलिन हो जाता है। इसी प्रकार आज चित्त शान्त रखनेके बाद कल फिर उसको शान्त करनेका अभ्यास करना पड़ता है। चित्तमें मलिनता आती ही है, अतएव चित्त-शुद्धिके लिये नित्य निरन्तर प्रयत्न करना जरूरी है। निर्विचार अवस्थामें बैठनेका अभ्यास, परमात्माकी सगुण उपासना और सत्सङ्ग—ये चित्तशुद्धिके सुन्दर उपाय हैं, इनका नित्य सेवन करे।

३०—परमात्माके किसी भी एक छोटे-से नामको गुरुके द्वारा ग्रहण कर ले। जैसे राम, कृष्ण, हरि, ॐ आदि। फिर उस नामकी रट बोलकर या मन-ही-मन निरन्तर करता रहे। मनको बेकार न रहने दे। हम चाहे जहाँ रहें, मनको सदा नाम-स्मरणमें लगाये रखें। जैसे रोजाना मजदूरीपर किसी आदमीको काममें लगाया जाता है और जब वह बेकार होता है तो तत्काल काममें लगानेवाला उसको तुरंत काम देता है, बेकार नहीं बैठने देता। उसी प्रकार मनको, जैसे ही वह बेकार हो तुरंत हरिस्मरणमें लगा दे। यह अभ्यास बहुत ही अच्छा है।

३१—मैं देह हूँ, ऐसा मानकर हम सारा व्यवहार करते हैं। इसकी जगह 'मैं आत्मा हूँ'—ऐसा मानकर सारा व्यवहार करे। पुराने जमानेमें संतजन शिष्यको यह बात दृढ़ करा देते थे कि 'तू देह, इन्द्रिय, मन या बुद्धि नहीं है, बल्कि तू सबसे परे असङ्ग चेतन आत्मा है।' इसका भली-भाँति अभ्यास होता था और तदनुसार अभ्यास करते हुए आत्मज्ञान दृढ़ होनेपर मनुष्य सारा व्यवहार जीवन्मुक्त दशामें रहकर करता था। इसी प्रकार सबको चाहिये। देह-स्वरूपके स्थानमें आत्मस्वरूप होकर शरीरसे सारी क्रिया करे और मनसे शान्त आत्मस्वरूपमें रहे। इससे श्रेयकी इच्छा रखनेवाले दिनमें अनेक बार (२) नम्रमें उक्त साखीको बोला करें।

३२—जो कुछ यह दृश्य जगत् दिखलायी देता है, इस सबके बाहर और भीतर आत्मा है। प्राणीमात्रके शरीरमें आत्मा है। देव, दानव, मनुष्य, पशु-पक्षी सबमें आत्मा है। इसलिये सबको आत्मस्वरूप जानकर उनके साथ आत्मवत् व्यवहार करे। आत्मा ही अनेक रूप होकर सारे ब्रह्माण्डमें व्याप्त हो रहा है। आत्माके बिना कोई स्थान नहीं है। सारांश यह है कि आत्मा ही जगत्स्वरूपमें भासित हो रहा है। इस बातका बुद्धिद्वारा भलीभाँति विचार करे।

३३—जगत्में जो कुछ दिखलायी पड़ता है, सुनयी पड़ता है या अनुभवमें आता है, वह सब पञ्चमहाभूतोंसे बना है। यह बात ठीक है न? पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पञ्चमहाभूत कहलाते हैं, इन पञ्चमहाभूतोंके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इहलोक या परलोकमें इन पञ्चमहाभूतोंसे न बना हुआ कोई पदार्थ नहीं है। पञ्चमहाभूतोंमें अन्तिम पृथ्वी-तत्त्वको लें, तो शास्त्र कहते हैं कि जल, तेज, वायु और आकाश—इन चार तत्त्वोंसे पृथ्वी तत्त्व बना है। इन चार तत्त्वोंसे पृथक् वस्तु पृथ्वी नहीं है। इसलिये वास्तविक चार तत्त्व हैं। इनमें जलतत्त्वको कहते हैं कि तेज, वायु और आकाशका परिणाम है। इन तीनोंसे पृथक् जल नामका कोई तत्त्व नहीं है। रसायन शास्त्र भी कहता है कि हाइड्रोजन और आक्सीजनका मिश्रण जल है। अब रहे तीन तत्त्व—तेज, वायु और आकाश। इनमें कहते हैं कि तेजतत्त्व वायु और आकाशका परिणाम है। वायु (गैस) जलता है, इसका तो हम अनुभव भी करते हैं। अतएव वायु और आकाशके परिणामके सिवा कोई

पृथक् तेज-तत्त्व नहीं है। अब वायु और आकाशमें आकाशसे वायु उत्पन्न होता है। अतएव वायु आकाशका परिणाम है और आकाश अमूर्त्त तत्त्व है तथा वह आत्मासे उत्पन्न होता है। अर्थात् मूल आत्मासे आकाश पहले उत्पन्न हुआ और इस क्रमसे सृष्टि हुई। अतएव सारा जगत् पञ्चतत्त्वरूप है और पाँच तत्त्व आत्मासे उत्पन्न हैं। आत्मासे पाँचों तत्त्वोंके उत्पन्न होनेके कारण आत्माके सिवा दूसरा कोई नहीं है। इस कारण आत्मा ही पाँच तत्त्वके रूपमें तथा उस आधार-पर जगत्के रूपमें अपनी मायाशक्तिसे व्यक्त हो रहा है। आत्मा ही जगत् रूपमें आभासित हो रहा है। जैसे जल और

बुद्बुद पृथक् वस्तु नहीं हैं, बल्कि जल ही वायुके कारण बुद्बुदके रूपमें भासित होता है। इसी प्रकार आत्मा ही अपनी मायाशक्तिसे जगत् रूपमें भासमान है; क्योंकि सृष्टिके आदिमें आत्माके सिवा और कोई वस्तु नहीं थी। आत्मा कहें या परमात्मा—वस्तु एक ही है, जो अखण्ड, अजर, अमर, अविकारी और अविनाशी है। प्राणीमात्रके भीतर और बाहर व्याप्त है। वह आत्मा मैं हूँ, इस प्रकारका चिन्तन करना नितान्त सत्य है। यह सहज ही गलेसे नीचे नहीं उतरता, परन्तु आज या लाखों वर्ष आगे, यही केवल सत्य है—यह समझे बिना छुटकारा नहीं है।

वैष्णवश्रेष्ठ कौन है ?

जड-चेतन सबमें जो सदा देखता एकमात्र भगवान् ।
सबके सेवा-हितमें जो कर देता अपना सब बलिदान ॥
निज सुख-दुखमें सदा देखता जो प्रभुका कल्याण-विधान ।
क्षमावान्, पर-दुःख-दुखी जो पर-कल्याण-निरत मतिमान् ॥
जिसके इन्द्रिय-प्राण, बुद्धि-मन-देह सभी प्रभु-सेवा लीन ।
रहते सदा, त्याग अग-जगका सारा ही सम्बन्ध मलीन ॥
सदाचार-रत रहता, पर करता न कभी किञ्चित् अभिमान ।
जन्म-कर्म-वर्णाश्रम-कुलमें रखता नहीं राग विद्वान् ॥
रागद्वेषरहित प्रभु-सेवाहित करता विधिवत् व्यवहार ।
पर न कहीं भी, कुछ भी करता अहंकार जो किसी प्रकार ॥
एकमात्र प्रभुमें ही रहती जिसकी सब ममता-आसक्ति ।
कर्ममात्र होते प्रभु-पूजा, प्रभुमें ही होती शुचि-भक्ति ॥
नहीं विमोहित कर पाते जिसको भुवनोंके दुर्लभ भोग ।
नहीं त्याग करता, कैसे भी, वह शुचि प्रभु-स्मृतिका संयोग ॥
प्रभुके शुचितम मधुर मनोहर लीला-नामोंमें अनुरक्त ।
सदा-सर्वदा रहता, होकर सभी वासनाओंसे मुक्त ॥
दैवी-सम्पदके गुण जिसकी सेवा कर नित होते धन्य ।
भुक्ति-मुक्तिका त्यागी, अति बड़भागी प्रभुका भक्त अनन्य ॥
प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिमें सम, नित्य-निरन्तर द्वन्द्वातीत ।
निकल रहा जिसके अणु-अणुसे नित्य मधुर प्रभुका सङ्गीत ॥
इस प्रकार जो दिव्य गुणों-भावोंसे युक्त नित्य रमणीय ।
वही श्रेष्ठ प्रभुरत वैष्णव है, सेवनीय अति आदरणीय ॥

मनुष्यके भीतरसे ईश्वरकी झलकियाँ !

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

पुरुष एवेदः सर्वम् । (ऋग्वेद १०।१०।२)

अर्थात् यह सम्पूर्ण विश्व परमात्माका ही रूप है। संसारको परमात्माका प्रत्यक्ष स्वरूप मानकर इसकी सेवा करनी चाहिये।

ईश्वर मनुष्यके मनमें विद्यमान है और अनेक बार सत्प्रवृत्तियोंके रूपमें वह चमका करता है। ईश्वरने मानव-प्राणीके निर्माणमें जो असाधारण श्रम किया है, उसकी सार्थकता तभी है, जब वह दिव्य प्रयोजनों और परोपकारमें संलग्न रहे, जिनके लिये उसका सृज्म किया गया है। इस संसारको सुरम्य और सुव्यवस्थित बनानेमें निराकार परमेश्वरको एक साकार आकृतिकी जरूरत थी, जो मनुष्यके रूपमें पूर्ण होती है।

समय-समयपर हमारे समाजमें, दैनिक नित्यप्रतिके जीवनमें ही ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनसे प्रत्यक्ष होता है कि ईश्वर हमारे अंदर मौजूद है और उच्च कार्य कराता है। यहाँ ऐसे ही कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

रोगीको बचानेके लिये प्राणदान

गोरखपुरमें उत्तर-पूर्वी रेलवेके सेन्ट्रल अस्पतालके सर्जन डा० सुधीरगोपाल शिगरनने हालमें ही एक रोगीकी जान बचानेके लिये अपने प्राणोंकी आहुति दे दी। बात यों हुई कि उस रोगीका ऑपरेशन किया गया था। रोगी पहलेसे ही दुर्बल था और उसमें रक्तकी कमी थी। उसके रक्तका मिलान किया गया, अनेक व्यक्तियोंके रक्तकी परीक्षा करनेपर शत हुआ कि कोई भी उसके रक्तसे मिलान नहीं खाता है। संयोगसे स्वयं सर्जन सुधीरगोपालने अपने रक्तका परीक्षण कराया, तो वह रोगीके रक्तसे मिल गया। डाक्टर साहबका ही रक्त चढ़ाकर उस रोगीको बचाया जा सकता था; दूसरा कोई मार्ग न था। अब क्या किया जाय ?

डाक्टर साहब विचार करने लगे, 'हमें अपने भौतिक स्वार्थोंकी संकीर्णतासे ऊपर उठनेके लिये यह सोचना ही होगा कि हमें मनुष्यकी योनि आध्यात्मिक आदर्शों, परोपकार, सेवा और ऊँचे आदर्शोंके लिये मिली है। यदि विश्व-हितके लिये हम कुछ नहीं करते, तो हमारा मानव-

जीवन बेकार है। हमें शरीर-निर्वाह तथा परिवार-पालनेके अलावा ईश्वरके व्यक्त एवं विराट् स्वरूप विश्व-हितके लिये भी कुछ करना चाहिये।'

यह सोचकर डाक्टर सुधीरगोपाल रोगीको रक्तदान देनेके लिये तैयार हो गये। एक शीशी रक्तके वाद दूसरी शीशी रक्तकी और जरूरत पड़ गयी। डाक्टर साहब पुनः रक्त निकलवा रहे थे कि कुछ ऐसी प्रतिक्रिया हो गयी कि उसी दिन रात्रिको अनेक उपचार करनेके बावजूद भी उनका देहान्त हो गया। ईश्वरका श्रम सार्थक हुआ। वह दैवी ज्योति बुझ गयी, पर शत-शत आत्माओंको मनुष्य-जन्मकी जिम्मेदारी सिखा गयी।

बुद्धाका नेत्र-दान

इलाहाबादमें एक ७० वर्षीय बंगाली बुद्धाकी आँखें दो अन्धोंको सफलतापूर्वक लगा दी गयी हैं। मरनेसे पूर्व बुद्धाने अपनी दोनों आँखें अस्पतालको दानस्वरूप देनेकी वसीयत लिखी थी। उसने लिखाया था, 'मैं चाहती हूँ कि मेरे शरीरका कोई भी हिस्सा यदि परोपकारमें दूसरेके काम आ सके, तो मेरा जीवन सफल है। ईश्वरने आदमीको जो असीम प्रतिभा, दिव्य ज्ञान, अन्तरात्मा दी है, उसके पीछे यही प्रयोजन है कि वह आखिरी दम तक परोपकारमें लगा रहे। आप मेरी ये आँखें सुरक्षित रखें और किसी जरूरतमन्द युवक-युवतीके लगा दें और ईश्वरका श्रम सार्थक करें।'

अस्पतालके डाक्टरने एक आँख एक दसवर्षीया अन्धी लड़की एवं दूसरी एक २२ वर्षीय नवयुवकके लगायी है। दोनोंको दीखने लगा है।

इसी प्रकारका एक उदाहरण और है। बम्बई नगरकी एक छः वर्षीया कुमारी जोत्सना बेन पटेलने तीन व्यक्तियोंको मरणोपरान्त नेत्र दान किये। इस लड़कीकी मृत्यु ७ दिसम्बर १९६५ को शहरके अस्पतालमें हुई थी। लड़कीके माता-पिताने शीघ्र ही सरकारी नेत्र-बैंकको उसके नेत्र दानमें दे दिये। इसके फलस्वरूप एक अन्ध

संख्या ७]

लड़केकी पुतलियाँ बदल दी गयीं तथा एक अन्य व्यक्तिकी विटियस ट्रांस प्लाटेशनके लिये शल्यक्रिया की गयी।

नागपुरका एक समाचार इस प्रकार है—

स्थानीय मेडिकल कालेजमें एक ६० वर्षीय वृद्धद्वारा दानमें दी गयी आँखें एक ३० वर्षीया युवतीकी आँखोंमें लगा दी गयीं। इस युवतीकी आँखें ५ वर्षकी अवस्थामें ही चेचककी बीमारीके कारण खराब हो गयी थीं।

अभावग्रस्त जीवनमें अनुकरणीय आदर्श

अभावग्रस्त कठिनाइयोंमें फँसे हुए, अनेक उत्तर-राष्ट्रियोंके बोझसे दबे हुए व्यक्तियोंमेंसे भी ईश्वर शलका है।

मुजफ्फरनगरके डी० ए० बी० कालेजके अध्यापकों तथा कर्मचारियोंने अपने एक दिवंगत अध्यापकके निःसहाय परिवारकी सहायताके लिये जिस अनुपम त्यागका आदर्श प्रस्तुत किया है, वह निश्चय ही सबके लिये अनुकरणीय है।

कालेजके अर्थशास्त्रविभागके अध्यक्ष श्रीसीतारामकी गत २७ जुलाई १९६५ को मृत्यु हो गयी। श्रीसीतारामकी विधवा बहु, दो पुत्र और चार पुत्रियोंके लिये कोई सहारा नहीं रहा। छोटे बच्चे, कमानेवाला मृत्युके कराल ग्रासमें समा गया। दो पुत्रियोंकी शादी तो तुरंत ही होनी चाहिये।

ऐसी आर्थिक तंगी और वैवाहिक कठिनाईमें दिवंगत प्राध्यापककी विधवाको जो कठिनाई हो सकती है, उसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। अध्यापकोंकी आर्थिक हालत कितनी गिरी हुई होती है, यह किसीसे छिपी नहीं है। उनकी कमाई हाथसे उदरतक ही सीमित रहती है। ऐसे विरले ही होते हैं, जो अपने पीछे कुछ धन छोड़ जाते हैं। फिर जिनका परिवार बड़ा हो, उनकी मुसीबतोंका तो अन्त ही नहीं।

कालेजके कर्मचारियोंमेंसे ईश्वर चमका। उनकी अन्तरात्माने कहा, 'तुम्हें अपने स्वर्गीय साथीके परिवारकी हर प्रकार सहायता करनी चाहिये।' सबने मुसीबतमें फँसे परिवारकी सहायताका फैसला किया।

आप जानते हैं, वह फैसला क्या था ?

सबने निर्णय किया कि सब कर्मचारी, जिसमें चपरासी, पत्रांग, भंगीतक शामिल हैं, तीन वर्षतक अपनी महंगाईका

जुलाई ३—

भत्ता जमा करते रहेंगे। इस प्रकार जो धन एकत्रित होगा, उससे इस परिवारकी सेवा-सहायता, विवाह इत्यादि किये जायेंगे।

जिन कर्मचारियों और अध्यापकोंने यह व्रत लिया है, उन्हें स्वयं कितनी कठिनाई होगी, इसका अनुमान लगा सकना कठिन नहीं है; किंतु स्वयं कष्ट उठाकर जो दूसरोंकी कठिनाइयोंको आसान करनेकी कोशिश करते हैं, मानवता उन्हेंको अपना आदर्श मानती है और उन्हेंसे प्रेरणा लेती है।

रिक्षाचालककी ईमानदारी

फरीदकोटका एक समाचार है। इक्कीस वर्षीय रिक्शा चालनेवाले रामचन्द्रने शनिवारको पूरा दिन उस मुसाफिरकी खोजमें लगा दिया, जो जल्दीमें भूलसे अपनी अटेची रिक्शेमें भूलकर कामपर तेजीसे निकल गया था। उसमें पैतालीस हजारके जेवर आदि थे। वह चाहता तो यह सब धन हड़प कर सकता था, पर वह मनुष्य-जन्मकी नैतिक जिम्मेदारीको समझता था और उसे पूरा करनेमें ही सफलता मानता था। अन्तमें अटेचीको खोल खतपर लिखे एक पतेकी सहायतासे रिक्शाचालकने जेवरोंके मालिकका पता लगा लिया और अबोहर जाकर वह अटेची असली हालतमें सौंप दी। जेवरोंके मालिकने रिक्शाचालकको पाँच सौ रुपयेका पुरस्कार देना चाहा। पहले तो उसने लेनेसे इन्कार कर दिया। अधिक आग्रहके बाद उसने वह राशि लेकर जवाहरलाल नेहरू स्मारक कोषको दे दी।

आदमीमें ईश्वर बैठा हुआ, सही रास्ता दिखाता रहता है। आन्तरिक अभिलाषा तीव्र हो और उसके लिये आवश्यकता, दृढ़ता एवं प्रयत्नशीलता विद्यमान रहे, तो परोपकारका रास्ता मिल ही जाता है।

भूलका प्रायश्चित्त

कटककी एक घटना अखबारोंमें छपी है।

यहाँके एक छात्रद्वारा अपनी भूलका अनोखे ढंगसे प्रायश्चित्त किये जानेकी एक घटना घटित हुई है। घटना इस प्रकार है—

शेखवाजारका ८ वीं कक्षाका एक छात्र शहरसे स्टेशनतक रिक्शासे आया। रिक्शा—भाड़ेके बारह आने

देनेके लिये उस छात्रने एक रुपयेका नोट रिक्शावालेको दिया, लेकिन रिक्शावालेके पास चार आने वापस देनेके लिये न होनेके कारण उसने वह नोट लौटा दिया। छात्रने उसे यह कहकर कि 'अभी रेजगारी लाता हूँ। कुछ देर ठहरो।'—वह स्टेशनके भीतर चला गया और बुकस्टालपर पत्र-पत्रिकाएँ पढ़नेमें इतना तल्लीन हो गया कि उसे याद ही न रहा कि रिक्शावालेको मजदूरीके पैसे भी देने हैं।

करीब आध घंटे पश्चात् जैसे ही उसे याद आया, बुकस्टालसे रेजगारी लेकर वह भागा-भागा स्टेशनके बाहर आया, तो दुर्भाग्यसे रिक्शावाला न मिला। छात्रकी अन्तरात्माने उसे बुरी तरह विक्षुब्ध कर दिया। वह सोचने लगा, 'हाय! मुझसे कैसा पाप हो गया। मैंने एक गरीब मजदूरकी मजदूरी दवा ली। उस गरीबकी रोटी छीन ली। उफ्! वह भूखा होगा।' दुखी होकर छात्र उसे इधर-उधर ढूँढ़ने लगा। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते काफी रात व्यतीत हो गयी। फिर भी वह न मिला तो पासहीमें मोटर-स्टैंडके पास आकर सिसकियाँ भर-भरकर रोने लगा। लोगोंने जब उसके रोनेका कारण पूछा, तो उसने सारी बातें बता दीं और वह कहने लगा कि 'मेरी गलतीसे एक गरीब रिक्शावालेकी बारह आनेकी मजदूरी मारी गयी। मैं उसका प्रायश्चित्त कर रहा हूँ।'।

लोगोंके समझाने-बुझानेपर वह आँखोंमें अश्रु लिये एक अन्य रिक्शासे अपने घर चला गया, लेकिन जानेसे पूर्व वह बारह आने अपंग भिखारियोंको बाँट गया।

सच है आन्तरिक अभिलाषा तीव्र हो और उसके लिये दृढ़ता और प्रयत्नशीलता विद्यमान रहे, तो परोपकारका मार्ग मिल ही जाता है। कोई ऐसा तरीका निकल आता है, जिससे दूसरोंकी कुछ सहायता-सेवा हो सकती है।

परोपकारके लिये बलिदान

जबलपुर छिन्दवाड़ा जिलेके आनन्दराव नामक एक व्यक्तिको डूबते बालककी प्राणरक्षामें अपना बलिदान करनेके लिये मरणोत्तर राष्ट्रपति-पदक प्रदान किया गया है।

बताया जाता है कि छिन्दवाड़ा जिलेके बैरागढ़ गाँवमें लोहेके कमजोर ढक्कनसे ढके हुए अनाजके एक गहरे गड्ढेपर एक दस वर्षीय बालक खेल रहा था। वह ढक्कन उसका भार सहन न कर सकनेके कारण यकायक टूट गया और बालक उस गड्ढेमें गिर पड़ा। उस गड्ढेमें

काफी ऊँचाईतक पानी भरा हुआ था। पास ही स्वर्गीय श्रीआनन्दराव खड़े थे। बालककी प्राणरक्षके लिये उन्होंने अपनी जानकी परवा नहीं की और वे स्वयं उस गड्ढेमें कूद गये। यद्यपि वे अपने इस उद्देश्यमें सफल हुए, परंतु बाहर निकलनेके पहले ही उस गड्ढेकी जहरीली हवा और गैसके कारण दम घुटनेसे उनकी मृत्यु हो गयी। इस महान् और परोपकारी कार्यके लिये भारत-सरकारने सराहना की है और राष्ट्रपति-पदक प्रदान किया है।

इसी प्रकारका एक समाचार इस प्रकार है—

नयी दिल्ली। तीन स्त्रियोंको डूबनेसे बचाकर अपना जीवन बलिदान कर देनेवाले दिल्लीके १६ वर्षीय वीर बालक सुभासचन्द्रके पिता श्रीआर० आर० खुरानाको चीफ कमिश्नरने अपने निवास-स्थानपर आयोजित एक समारोहमें पुत्रका मरणोत्तर जीवनरक्षा-पदक (प्रथम श्रेणी) भेंट किया।

पूरी घटना इस तरह है। दरियागंजके कमर्शल हायर-सेकेंड्री स्कूलका विद्यार्थी सुभासचन्द्र ८ नवम्बर १९६२ को अपने तीन मित्रोंके साथ कुदसिया घाटके निकट घूम रहा था कि घाटकी ओरसे चिल्लानेकी आवाज आयी। ये तुरंत दौड़ते हुए घाटपर पहुँचे। उन्हें मालूम हुआ कि स्नान कर रहीं कुछ स्त्रियाँ भँवरमें फँस गयी हैं। सुभास तुरंत जूते उतारकर कपड़ोंसहित यमुना नदीमें कूद गया। तीनों डूबती स्त्रियोंको तो उसने बचा लिया, किंतु स्वयंको न बचा पाया और यमुनाकी गोदमें समा गया। परोपकारी बालककी जब यह कहानी उस समारोहमें सुनायी गयी, तो उसके पिताका भाल गर्वसे ऊँचा उठ गया।

मनुष्यके भीतर देवत्व है और वह अनेक बार इस प्रकार झलकता रहता है। परोपकारसे मनुष्यका देवत्व अधिकाधिक विकसित होगा। इस दृष्टिकोणको अपनाकर मनुष्य देवता बनता है, शान्ति पाता है, यशस्वी बनता है और लोक-पर-लोकमें सुख पाता है।

बिना कर्मचारीका डाकखाना

राजकोट। सौराष्ट्रके एक गाँवमें बिना व्यक्तिके डाकखानेका परीक्षण सफलतापूर्वक किया जा रहा है। जूनागढ़के उस गाँवमें एक बक्समें कार्ड और लिफाफे रक्खे हैं और जिस ग्रामीणको जरूरत पड़ती है, उसमेंसे कार्ड-लिफाफे निकालकर उतने ही पैसे उसमें डाल देता है। इस ईमानदारीके कारण

संख्या ७]

वह डाकखाना मजेमें चल रहा है। अभीतक एक पैसेका भी बाटा नहीं हुआ है। परमार्थवृत्तियोंको विकसित करनेसे मनुष्य जीते-जी देवत्वकी तरफ बढ़ता है और स्वर्ग-जैसा भव्य वातावरण उपस्थित करता है।

नियमोंके विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता

महात्मा सुकरातको प्राण-दण्ड हुआ। लोग उनकी विचारधाराको ठीक प्रकार समझ नहीं पाये थे। दुनियामें मुद्दमतिवाले भी काफी हैं। उनके कारण प्राणदण्डका आदेश पाये हुए कैदीके रूपमें सुकरात कारावासमें थे।

उनके परम शिष्य क्रीटोने उन्हें बचानेकी युक्ति सोची। वे उचित-अनुचित किसी भी तरह उन्हें बचा लेना चाहते थे। क्रीटो रिश्तत दे, जेलमें चुपकेसे घुस आये और सुकरातके समुल हाथ जोड़कर बोले—

‘आपकी प्राणरक्षाका सारा प्रबन्ध हो चुका है। देर न बीजिये और चुपचाप जेलसे भाग चलिये। बाहर आपको बचाकर सुरक्षित ले चलनेका सारा इन्तजाम पूर्ण है। किसीको पता भी न चलेगा कि आप कब और कैसे जेलसे गायब हो गये? आपको किसी दूसरे देशमें पहुँचा दिया जायगा। मेरी जीवनभरकी जो कुछ भी कमाई है, सब आपको भेंट है। वर, आपका जीवन चाहिये।’

सुकरातके सामने जीवन-रक्षाका एक स्वर्णिम अवसर था। कौन ऐसा मानव है जिसे प्राण प्यारे नहीं होते! उचित-अनुचित हर तरीकेसे आदमी प्राणरक्षा चाहता है।

पर सुकरातने उस सुझावपर गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, मैं ऐसे अनुचित प्रस्तावको स्वीकार नहीं कर सकता। जिस देशकी मिट्टीमें मैं पैदा हुआ हूँ, जहाँ मेरे माता-पिता रहे हैं, जहाँकी हवामें साँस लेकर और जहाँके पानीमें मैं पला हूँ, उस देशके नियमोंके विरुद्ध कार्य करना मैं परमात्माके प्रति बोधा मानता हूँ।

वास्तवमें आध्यात्मिक उत्कर्षका आधार कोई पूजा-पद्धति, कर्मकाण्ड या अभ्यास साधन नहीं, वरं दैवी गुणोंका व्यवहार ईमानदारी और अनुशासनप्रियता ही हो सकती है। ईश्वर-प्राप्ति एवं स्वर्ग, मुक्ति, आत्मशान्ति-जैसी सिद्धियोंको प्राप्त करनेकी अनिवार्य शर्तें संयम, सदाचार एवं उदारता ही होती हैं। उन्हें पूरी किये बिना कोई व्यक्ति आत्म-कल्याणका अधिकारी नहीं बन सकता।

अपना शव भी दान

हैदराबादमें गुडरके एक एडवोकेट श्री एड० वी० नरसिंहराव अभीतक रोगियोंको बचानेके लिये चालीस बार रक्तदान दे चुके हैं, लेकिन त्याग और बलिदानकी यह परम्परा अभी बंद नहीं हुई है। वे मानवताकी सेवामें ही ईश्वरकी सेवा मानते हैं। मनुष्य-जीवनको सार्थक करना चाहते हैं। अतः अब उन्होंने अपनी वसीयतमें अपना शव ओस्मानिया जनरल अस्पतालके सुपरिन्टेन्डेन्टके नाम कर दिया है। उन्होंने यह भी कहा है कि मेरी मृत्युके बाद मेरी आँखें किसी जरूरतमन्दके लिये सुरक्षित रख ली जायँ।

वृद्ध विधवाका सर्वस्व-दान

श्रीमती चौहारिया बाई नामक एक वृद्ध विधवाने विलासपुर जिलेमें अपने गाँव सिमनीमें लड़कियोंका एक स्कूल बनानेके लिये राज्य-सरकारको अपनी सारी जायदाद दानमें दे दी है।

विधवाने यह भेंट मध्यप्रदेशके उपविक्तमन्त्री श्रीएम० पी० दुबेको उस समय दी, जब वे गाँवमें एक सार्वजनिक सभामें भाषण दे रहे थे। जब स्थानीय नेता उपमन्त्री महोदयका स्वागत कर रहे थे, यह वृद्धा मञ्चपर चढ़ गयी और पंद्रह सौ रुपये नकद तथा सात सौ रुपयेकी कीमतके अपनी भूमिके कागजात उन्हें दिये। उसने जल्दी ही पाँच सौ रुपये और देनेका वचन भी दिया। इस वृद्धाने उपमन्त्रीसे अनुरोध किया कि स्कूलका निर्माण जल्द होना चाहिये, जिससे कि वह उसे अपने जीवनकालमें ही फलता-फूलता देख सके। वह कहती है, ज्ञानकी वृद्धि और प्रसारमें ही ईश्वरकी भक्ति संनिहित है। दूसरोंको ज्ञान-प्राप्तिका अवसर देना ही सच्ची पूजा है।

चपरासीकी कर्तव्यपरायणता

बुलन्दशहरके श्रीदुर्गाप्रसाद नामक एक स्कूलचपरासी-को डकैतोंने बहुत पीटा और सब नकदी लूट ली। जब वे उससे साइकिल छीनने लगे, तब वह अड़ गया। वह साइकिल स्कूलकी सम्पत्ति थी और इस प्रकार सार्वजनिक सम्पत्तिकी रक्षा करना उसका धर्म था, पवित्र कर्तव्य था। उसने वह साइकिल तबतक न दी जबतक कि डकैतोंने उसे गोली मारकर धराशायी ही न कर दिया। यह चपरासी बुलन्दशहरके शर्मा हायर सेकेन्डरी स्कूलमें नौकर था।

वह अपने गाँवको जरूरी कामसे जा रहा था कि रास्तेमें डकैतोंने उसे घेर लिया। चपरासीके पास जो नकदी थी, वह तो उन्होंने छीन ली। जब वे उससे साइकिल छीनने लगे, तो उसने विनीत स्वरमें कहा, 'तुम मेरी सब चीजें ले सकते हो, परंतु स्कूलकी चीज मैं किसी भी दशामें नहीं दे सकता; क्योंकि यह सार्वजनिक सम्पत्ति है। मैं उसकी सुरक्षाको सबसे बड़ी बात समझता हूँ।'।

कर्तव्यपालन ईश्वरकी सर्वश्रेष्ठ पूजा है। उपकारशील मनुष्यके हृदयमें सदैव सत्कर्मोंके स्रोत फूटते हैं; क्योंकि उसके मनमें ईश्वर जड़रूपमें विद्यमान रहते हैं।

प्रजापति:—बहुधा वि जायते। (अथर्ववेद १०।८।१३)

अर्थात् इस विश्वमें परमात्मा ही अनेक रूपोंसे जन्म ले रहा है। संसारके सब प्राणधारी परमात्माकी प्रतिमूर्तियाँ हैं। याद रखिये—

मर्त्या हवाअग्ने देवा आसुः।

(शत० ब्राह्मण ११।१।२।१२)

अर्थात् इस दुनियामें मनुष्य शुभ कार्य करके ही देव बनते हैं। जैसे भी बन पड़े शुभ कर्म करो और इसी शरीरसे भू-सुरका पद प्राप्त करो। धर्मकर्तव्योंका पालन करनेवाले ही देवता हैं।

मनुष्यका स्थायी धन

(लेखक—पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम्० ए०)

मनुष्यके धन दो प्रकारके होते हैं—एक बाहरी और दूसरा भीतरी। सांसारिक जीवनमें कुशल व्यक्ति बाहरी धनका चिन्तन करते हैं और उसकी प्राप्तिके अनेक साधन खोज लेते हैं। लौकिक धनकी कीमत करनेवाले लोगोंके विचारोंका संचालन उनके लौकिक लाभसम्बन्धी विचार ही करते हैं। उनका किसी व्यक्तिके प्रति स्नेह स्वार्थवश ही होता है। उनका न्याय और अन्यायका निर्णायक भी निज स्वार्थकी पूर्ति अथवा उसका विनाश होता है। अतएव बाहरी धनकी कीमत करनेवाले लोगोंकी न्यायप्रियतापर विश्वास भी नहीं किया जा सकता।

मनुष्यके बाहरी व्यवहारसम्बन्धी विचार भी उसकी भीतरी इच्छाओंद्वारा संचालित होते हैं। जिस व्यक्तिकी भोग-इच्छाएँ बहुत ही प्रबल हैं, जो बहुत-सी बड़ी-बड़ी भोग-कामनाएँ रखता है, वह किसी दूसरेके स्वार्थका ध्यान ही नहीं रख पाता। जिस बातमें उसके स्वार्थकी सिद्धि नहीं होती, उसमें उसकी रुचि भी नहीं होती। सदा बाहरी लाभका चिन्तन करनेवाले ऐसे लोग दूसरोंके प्रति न्याय करनेमें असमर्थ रहते हैं।

धन वह पदार्थ है जिसकी प्राप्तिसे मनुष्यको सुख हो। ऐसे ही पदार्थ मूल्यवान् कहलाते हैं। किसी भी मूल्यका निर्माण मनुष्यके मनके द्वारा होता है। मनुष्य जिस पदार्थके

बारेमें चिन्तन करता है, वही उसके लिये मूल्यवान् है। पैसेका लाभ तथा कामवासनाकी तृप्ति—दो ही मनुष्यकी प्रमुख वासनाएँ हैं, जिनके द्वारा मनका चिन्तन संचालित होता है। सामाजिक आदरका भाव भी मनुष्यके चिन्तनका कारण बन जाता है। इन तीन प्रकारकी इच्छाओंमें आपसमें संघर्ष भी होता है जिससे मनुष्य निम्न स्तरकी बातोंको छोड़ ऊँचे स्तरकी बातोंके बारेमें सोचता है। किसी भी प्रकारका संघर्ष मनुष्यको गम्भीर चिन्तनके लिये बाध्य करता है। वह उसकी चेतनाको संघर्षके स्तरसे ऊपर उठाता है। जिस व्यक्तिको बाहरी संघर्षका सामना नहीं करना पड़ता, वह बाहरी जगत्में नीचा ही पड़ा रहता है। जिस व्यक्तिके मनमें आन्तरिक संघर्ष नहीं होता वह भी भीतरी मनसे अविकसित रह जाता है। जिस मनकी स्थितिमें मनुष्य पड़ा है, जबतक वह अप्रिय न बन जाय तबतक वह उसे क्यों छोड़ेगा? संघर्षके कारण मनुष्यकी चेतना निम्न स्तरके मूल्योंको छोड़कर अपने आप ही ऊपर उठ जाती है।

प्रत्येक प्रकारके बाहरी मूल्योंका अभाव सुनिश्चित है। चाहे पैसा-रुपया हो, चाहे मकान-दूकान, चाहे कोई पद हो—सभी जानेवाले ही हैं। मनुष्यका शरीर भी उसके साथ नहीं रहेगा। उसके सगे-सम्बन्धी भी उसे छोड़ देते हैं। ऐसी अवस्थामें वह मनुष्य मूर्ख है जो अपने मूल्योंका निर्माण चले जानेवाली वस्तुओंमें करता है। मनुष्यमें जब विचारकी

संख्या ७]

परिपक्वता आती है, तब वह सहजमें ही अस्थिर मूल्योंसे विरक्त हो जाता है। वह ऐसे तत्त्वकी खोज करता है जो दूरतक ठहरे। फिर संसारके सभी पदार्थोंकी नश्वरताको देख वह उनकी प्राप्तिकी चेष्टामें ही अपने आपको नहीं खो देता। वह इन पदार्थोंकी प्राप्तिकी चेष्टा उतनी ही दूरतक करता है जिससे उसका काम चल जाय।

सभी प्रकारके मूल्योंका निर्माण उनके विषयमें भावात्मक होंसे सोचनेसे होता है। हम जिस विषयके बारेमें सोचते हैं वह हमें प्यारा बन जाता है और जिस पदार्थमें हमारी प्रियता आरोपित हो जाती है, उसीके विषयमें हम चिन्तन भी करते हैं। प्रियताका संचय करना ही मनुष्यका सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। मनुष्यका मन ही मूल्योंका निर्माण करता है। जिस मनुष्यका मन अपने नियन्त्रणमें है उसके मूल्य भी उसी वशमें हैं। वह परावलम्बी न बना रहकर स्वावलम्बी बना रहता है। मानसिक स्वावलम्बनकी प्राप्तिसे अधिक महत्त्वकी कोई बात नहीं है।

यह मानसिक स्वावलम्बनकी प्राप्ति दो प्रकारसे होती है। एक सचेत होकर संसारके पदार्थोंकी प्राप्ति करनेकी चेष्टासे, दूसरे अपनी चेतनाके प्रसारको अन्तर्मुखी बनाकर। जिस प्रकार दूसरे लोग संसारके कामोंमें लगे रहते हैं, उसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुषको भी संसारके पदार्थोंकी प्राप्तिमें लगे रहना पड़ता है। इससे वह अपने आपको लौकिक दृष्टिसे अजनबी व्यक्ति नहीं बना लेता। दूसरे, उसे इससे मानसिक परिपक्वता आती है। मानसिक परिपक्वताकी अवस्थामें मनुष्यको किसी प्रकारकी वस्तुकी चाह नहीं रहती। यदि वह उसके पाससे चली जाय तो वह अपने आपको ही समाप्त नहीं कर देता।

मानसिक परिपक्वता उस व्यक्तिको नहीं आती जो लौकिक लाभमें ही चिपका रहता है। ऐसा व्यक्ति बूढ़ा होकर भी मनसे बच्चा ही है। कभी-कभी किशोर बालक भी मानसिक दृष्टिसे सयाना हो जाता है। उसमें मानसिक परिपक्वता आ जाती है। यह मानसिक परिपक्वताकी प्राप्ति सम्पूर्ण समाजके प्रयासका परिणाम है। किसी भी व्यक्तिमें स्वयंसे लौकिक लाभोंके प्रति वैराग्य-भावनाका आ जाना उस सामाजिक विकासका परिणाम है जिसमें वह पला है। कभी-कभी बालकोंमें वैराग्यका भाव बौद्धिक परिपक्वता आनेके पूर्व ही आ जाता है। बौद्धिक परिपक्वता बौद्धिक

विकाससे आती है। इसके लिये संसारके बुद्धिमान् लोगोंके सम्पर्कमें आना आवश्यक है। भावोंकी परिपक्वता भी उसी प्रकार भावोंमें उठे हुए लोगोंके सम्पर्कसे आती है। इस प्रकार एक वैराग्यवान् अथवा ऊँचे आदर्शके लोगोंके सम्पर्कमें आते ही अनेक नवयुवक अथवा किशोर बालक वैसे ही बन जाते हैं। संसारमें महापुरुषोंकी बड़ी उपयोगिता है। वे अपनी उपस्थितिमात्रसे संसारके अनेक होनहार बालकों और नवयुवकोंकी चेतनाको प्रबुद्ध और विकसित कर देते हैं। उनसे तादात्म्य करके कभी-कभी समाज-का-समाज सुधर जाता है। उनके ध्यानमात्रसे लौकिक उलझनोंमें फँसी चेतना उन उलझनोंके ऊपर अनायास उठ जाती है।

मानसिक स्वावलम्बन-प्राप्तिका दूसरा उपाय नित्यप्रति अपनी चेतनाको अन्तर्मुखी करनेका अभ्यास है। चेतनाको अन्तर्मुखी करनेका प्रयास ही 'योग' कहा जाता है। पतञ्जलिकी तथा बुद्धकी शिक्षा चेतनाको अन्तर्मुखी बनानेकी शिक्षा है। इसके लिये भी विवेकके जाग्रतकी आवश्यकता है। विवेकके द्वारा मनुष्यकी चेतना धीरे-धीरे अनेक प्रकारके विषय-अनुरागसे मुक्त हो जाती है। यदि मनुष्य अपनी चेतनाको उसी समय अन्तर्मुखी बनानेका प्रयास करे, जब वह अनेक प्रकारके विषय-अनुरागमें फँसी है, यदि हठ करके योगाभ्यास करने लगे तो वह मानसिक एकीकरण प्राप्त न कर मानसिक रोगका शिकार बन जाता है। मानसिक शुद्धिके बिना योगाभ्यास करने लग जाना खतरेसे खाली नहीं है। पागलखानेके रोगियोंकी जीवनीके अध्ययनसे पता चला है कि वे कभी-न-कभी अपनी प्रबल वासनाके दमनके हेतु योगाभ्यास करने लगे थे। ऐसे लोगोंको जान-बूझकर मानसिक शुद्धि और परिपक्वताके निमित्त लौकिक कामोंमें लग जाना चाहिये।

मानसिक परिपक्वता-प्राप्तिका एक उपाय अपने प्रेमका प्रसार करना है। मनुष्य जो कुछ करता-धरता है, वह जो कुछ कमाता है, अपने प्रियजनोंके लिये ही सब कुछ करता है। कोई भी व्यक्ति सर्वथा स्वार्थी रहकर जी नहीं सकता। अपने बाल-बच्चोंके हितका चिन्तन सभी लोग करते हैं। अपने मित्रोंको हर एक व्यक्ति प्रसन्न रखना चाहता है। परंतु इस प्रकारके प्रयासका अन्तिम परिणाम दुःख ही होता है। अपने ही लोगोंके हितका ध्यान न रखकर काम करनेके

बदले यदि हम राष्ट्रके हितका अथवा समाजके अन्य लोगोंके हितको ध्यानमें रखकर काम करने लगे तो हममें वह मानसिक परिपक्वता आ जाय, जिससे दुनियाकी सामान्य दुःखद घटनाओंसे हम विचलित न हों।

मनुष्यके कामके जो आन्तरिक हेतु होते हैं, वे ही उसे स्थायी आनन्द अथवा दुःख देते हैं। मनुष्यकी स्थायी सम्पत्ति उसका मानस-अभ्यास ही है। सुख-दुःख भावात्मक अभ्यासके परिणाम हैं। यदि हम अपने भावोंको किसी अस्थिर पदार्थपर न जमाकर किसी स्थिर विचारपर जमावें तो हमें दुःखकी अनुभूति न हो। मनुष्यका आध्यात्मिक धन उन

विचारोंका है, जिनमें उसका विश्वास है और जिनके अनुसार उसका प्रतिदिनका आचरण बनता है।

जिस व्यक्तिके भाव संसारके अनेक दुखी लोगोंपर बैठे हुए हैं, जो नित्यप्रति इनके प्रति प्रेमकी अनुभूति करता है, वह सम्पत्तिहीन होकर भी प्रसन्न रहता है। अतएव प्रतिदिन मनुष्यको सामान्य लोगोंके प्रति मैत्रीभावनाका अभ्यास करना नितान्त आवश्यक है। अपने ही हितका चिन्तन मनुष्यके भावोंको विगाड़ता है और परहितका चिन्तन ही उसके भावोंको सुधारता है। यही मनुष्यका संचित स्थायी धन बन जाता है।

शौर्य

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

‘स्वभावविजयः शौर्यम् ।’

‘आप यदि मेरा अनुरोध स्वीकार कर लें, हम सबपर असीम अनुग्रह होगा।’ ब्राह्मणके साथ न बलप्रयोग किया जा सकता और न उन्हें आज्ञा दी जा सकती, केवल प्रार्थना की जा सकती थी। जिनका सम्पूर्ण प्रजा सुरोंके समान सम्मान करती है, उन शास्त्रज्ञ, विरक्त, भगवान् लोकनाथके आराधककी सुरक्षा सबसे अधिक आवश्यक थी; किंतु सुरक्षाके लिये भी उनकी अवमानना तो की नहीं जा सकती। इस बंगदेशके छोटेसे राज्यकी शक्ति ही कितनी है कि उस लोकभयंकर कालापहाड़का प्रतिरोध किया जा सके। साश्रुनेत्र राजाने प्रार्थना की—‘वह पिशाच देव-द्विज-द्रोही है और निसर्ग-क्रूर है।’

‘राजन् ! नश्वर शरीर इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि उसके मोहसे ब्राह्मण अपने आराध्यका सांनिध्य-त्याग करे।’ उन श्वेत रोम-केश, वलीपलितकाय, ताम्र गौर वृद्धका विशाल भाल सौम्य तेजसे भूषित था। उनके सुदीर्घ दृगोंमें भयका कोई भाव नहीं था। ‘भगवान् लोकनाथका श्रीविग्रह अचल-प्रतिष्ठ स्वयम्भू विग्रह है। उसे स्थानच्युत करनेकी बात सोची नहीं जा सकती। उन प्रलयंकरने यदि अपने इस विग्रहके तेजोपसंहारका संकल्प किया है तो इस देहकी पादाञ्जलि भी उन्हें

प्राप्त होनी चाहिये। तुम प्रजा तथा अपने परिवारकी रक्षा करो।’

‘प्रजाके रक्षणीयवर्गको यथाशक्य सुरक्षित स्थानोंपर भेजा जा रहा है।’ राजाके स्वरमें कोई उत्साह नहीं था। ‘वैसे वह मृत्युका दूत किधरसे आयेगा, कहाँ उसके क्रूर कर क्या-क्या करेंगे, कोई अनुमान नहीं है। केवल देवस्थान, विप्र एवं क्षत्रियवर्गका वह संहारक है। राजपरिवारके साथ सैनिकोंके स्वजन भी स्थानान्तरित किये गये हैं। अब तो आप आशीर्वाद दें कि अपने क्षात्रधर्मकी रक्षा करता हुआ यह शरीर सार्थक हो।’

‘तुम शूर हो।’ उन तपोधनने एक बार आकाशकी ओर इस प्रकार देखा जैसे नियतिकी अव्यक्त लिपि पढ़ रहे हों। ‘मरण भी उसका मङ्गलपर्व ही है जो जीवन-यज्ञकी पूर्णाहुति जनताके आतङ्कको समाप्त करनेके लिये कर सके।’

‘यह अल्पप्राण आत्माहुति मात्र दे सकता है और उसके लिये आये इस अवसरका सम्पूर्ण उपयोग करेगा।’ राजाके शब्दोंमें दृढ़ निश्चयके साथ निराशाकी वेदना थी—‘लेकिन आतङ्कका अन्त अनावधि लगता है। कहीं मैं इस भारत-भूमिके आतङ्कका सचमुच अन्त कर पाता।’

संख्या ७]

राजन् ! जो द्वेष तथा स्वार्थरहित है, जिसने अपनी स्वाभाविक दुर्बलताओंको विजित कर लिया है, उसका बलिदान व्यर्थ कर देनेकी शक्ति विश्व-नियन्तामें भी नहीं है ।' ब्राह्मणका मुख तेजोदीप्त हो गया । नाभिकमलसे उठते परावाणीके पूर्ववर्ती स्वर पश्यन्तीसे अलंकृत आशीर्वाद दे गये—तुम्हारा आत्मदान आतङ्कके अन्तका अवश्य निमित्त बनेगा ।'

‘देव !’ नरपतिने विह्वल होकर उनके चरण पकड़ लिये । मेरा जन्म सार्थक हो गया है इन श्रीचरणोंकी सेवा करके और मेरे मरणको अशून्य कर दिया इस आशीर्वादाने; किंतु आप.....’

मेरी चिन्ता मत करो । मैं उन लोकनाथके अङ्कमें अभय बैठा हूँ । वे महापुरुष इस समय ऐसे स्वरमें बोल रहे थे, जिसकी सत्यतामें संदेह किया नहीं जा सकता था । ‘आतङ्कके अन्तमें ब्राह्मण अपना सहयोग नहीं देगा तो कर्मकी पूर्णता कैसे होगी ?’

X X X

‘कालापहाड़ आ रहा है !’ कितना भयंकर है यह संवाद । प्रलयका संदेश भी इतना दारुण नहीं होगा । वह वृंशसताकी नग्न मूर्ति—जनपदोंको फूँकते, रौंदते, मानवके छिन्न-भिन्न शवोंसे मेदिनीको वीभत्स बनाते, शिशाचोंकी सेनाके समान आँधीके वेगसे आनेवाला निष्ठुर हथियार जिधर जाता है, पूरी दिशा उजाड़ हो जाती है और वह आ रहा है ।

‘कालापहाड़ आ रहा है !’ प्रतिहिंसाने उस मानवको दानव बना दिया है । वह हिंदूधर्ममें अपनाया नहीं गया । एक बार धोखेसे—विवशतासे धर्मभ्रष्ट हो जानेपर और अब वह अपनी क्रूरतापर उतर आया है । जिसके अन्तरमें इतनी दारुण हिंसा छिपी थी, वह धार्मिक ही कय था कि उसे कोई धर्मज्ञ स्वीकार करता । वह ध्वंसका दूत, सुना इधर ही आ रहा है ।

‘कालापहाड़ आ रहा है !’ शिशु यह सुनते ही भस्मे माताके अङ्कमें मुख छिपा लेते हैं । बालक क्रीड़ा त्यागकर घरोंकी ओर भागते हैं । नारियोंके सिरसे जल-कल्ला गिर जाते हैं । दूसरोंकी चर्चा व्यर्थ है, अच्छे-अच्छे शूरक सशस्त्र हो उठते हैं और खड्गकी मूठपर कर पकड़ भी अश्वकी पीठपर पहुँचनेकी त्वरा उन्हें हो

जाती है । आज तो उसके सचमुच आनेका समाचार आया है ।

‘कालापहाड़ आ रहा है !’ जनपद उजाड़ बन गये । भवन उलूक-शृगालोंके आवास बननेको त्याग दिये गये । केवल सुन्दर वनका दलदल तथा अरण्य लोगोंको जीवन-रक्षाका आश्रय जान पड़ रहा था । वनके व्याघ्र, गज तथा महाकाय सर्प उस दैत्यकी अपेक्षा कम भयानक थे ।

‘कालापहाड़ आ रहा है !’ लोगोंके समूह भागते आ रहे थे । पैदल और छकड़ोंका अनन्त समूह बराबर बढ़ता जा रहा था । घर-द्वार, भूमि-उपवन तथा अपने परम प्रिय, ‘पोखर’ त्यागकर किस विपत्तिमें बंणीय परिवार इस प्रकार अनिश्चित प्रवास करता है, बड़ा दारुण है यह अनुमान भी । लोग आते गये और उनके साथ मार्गके लोग भी सम्मिलित होते गये ।

‘कालापहाड़ आ रहा है !’ प्रत्येक मुखपर एक ही चर्चा । प्रत्येक मार्ग जैसे सुन्दर वन ही जा रहा है । उनपर मानव-प्रवाह, जैसे शत-शत धाराओंमें भगवती भागीरथी समुद्रको अङ्कमाल देने यहाँ धावित हैं । सब मुख श्रीहीन, भय-विह्वल । बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष और उनके पशु भी साथ हैं ।

‘कालापहाड़ आ रहा है !’ उसका आक्रोश केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं देवस्थानोंपर है; किंतु उसके क्रूर भ्लेच्छ सैनिक कोई मर्यादा मानते हैं ? वे जब स्वधर्मियों-तकको लूटनेमें संकोच नहीं करते, दूसरा उनकी दयाका विश्वास करके कैसे रुका रह सकता है ?

‘कालापहाड़ आ रहा है !’ इस आतङ्कके भगदड़के मध्य अकस्मात् एक दिन ग्राम-ग्राम, पथ-पथमें एक मेरीघोष-के साथ घोषणा सुनायी पड़ी—‘कालापहाड़ कोई यमराज नहीं है । हो वह यम; किंतु मृत्यु दो बार नहीं आती । युवको ! तरुणों ! देश तुम्हें पुकारता है ! धर्म तुम्हारा आह्वान करता है ! तुम इस पुकारको अनसुनी कर दोगे ?’

‘देश पुकारता है ! धर्म पुकारता है !’ चलते छकड़े रुक गये । भागते पद स्थिर हो गये । नारियाँ तक उत्कर्ण सुनने लगीं । उद्घोषक कह रहा था—‘आराध्य पीठपर अविचल खड़ी भगवन्मूर्तियाँ पुकारती हैं तुम्हें ! देव-ब्राह्मणों-

की रक्षाका महापर्व आज पुकार रहा है ! तुम इसे अनसुना कर सकोगे ?

‘नहीं ! हम सुनेंगे यह पुकार । क्या करना है हमें ?’ युवकों, तरुणों ही नहीं, वृद्धोंतकने उद्घोषकोंको स्थान-स्थानपर घेर लिया । अनेक स्थानोंपर नारियाँ आगे आ गयी थीं—‘बतलाओ ! क्या करना है हमें ?’

‘हम कालापहाड़को मार भले न सकें, अपने मस्तकोंसे उसका मार्गविरोध अवश्य कर सकते हैं ।’ उद्घोषक बोल रहा था । ‘राजा क्षमासेनने खड्ग उठाया है । उनके पीछे मृत्युके इस महातीर्थमें स्नान करनेका जिनमें साहस हो, आ सकते हैं वे । उनका स्वागत ! कापुरुषोंकी हमें कोई आवश्यकता नहीं है ।’

‘हम आयेंगे !’ जिनके समीप शस्त्र नहीं थे, वे भी लाठी उठाये आगे आये । केवल एक प्रश्न था प्रत्येकका—‘क्षमासेन युद्ध करेंगे ?’

‘क्षमासेन युद्ध करेंगे !’ उद्घोषकने दृढ़ स्वरमें घोषणा की । ‘ब्राह्मण तथा माताएँ क्षमा करें । उन्हें वृद्ध, बालक तथा अन्य असमर्थोंका आश्रय बनना चाहिये । उनका शौर्य वनमें भी सार्थक होगा, यदि वे असमर्थोंकी वन्यप्राणियोंसे रक्षामें सावधान रहें ।’

‘क्षमासेन युद्ध करेंगे !’ इस चर्चाने जैसे कालापहाड़के आतङ्कको पहले ही पराजित कर दिया । अब ‘कालापहाड़ आ रहा है ।’ के स्थानपर जन-जनमें चर्चाका विषय बन गया—‘क्षमासेन युद्ध करेंगे ।’

‘क्षमासेन युद्ध करेंगे !’ प्रत्येक श्रोता एक बार अविश्वाससे कहनेवालेका मुख देखता रह जाता था । वचनसे जो अपनी दया, उदारता, क्षमाके लिये प्रसिद्ध हैं, अपना अपमान करनेवाले नायकको भी जिन्होंने दण्ड नहीं दिया, राजकुलका अहित करनेवाले सेवकको भी जिन्होंने वृत्ति दी, जिन्हें क्रोध करते देखा ही किसीने नहीं, वे नरपति शस्त्र उठावेंगे ?

‘क्षमासेन युद्ध करेंगे !’ किसीके अपराधका दण्ड देना जिन्हें आता नहीं । प्रजामें कोई उद्धत हो तो उसके सुधारके लिये जो स्वयं उपवासका अनुष्ठान कर लेते हैं, जो प्रजा तथा पुत्रमें भेद नहीं कर पाते और कोई शत्रु भी है, यह जिन्हें समझाया नहीं जा पाता, वे संग्राम करने आयेंगे, यह सहज विश्वास करनेयोग्य बात नहीं थी । राजाके सम्बन्धमें

अनेक किंवदन्तियाँ उस छोटे राज्यमें तथा उससे बाहर भी फैली थीं । यह लोकस्वभाव है कि छोटी घटना भी फैलती है तो उसका रूप बहुत बड़ा बन जाता है । क्षमासेनके सम्बन्धमें भी यही हुआ था । लोगोंमें तो बात यहाँतक फैली थी कि उनके नरेश अस्त्र छू जाय तो स्नान करते हैं । अतः उनके युद्धकी घोषणा जहाँ अविश्वासनीय प्रतीत हुई, अत्यधिक प्रेरणाप्रद भी बनी वह ।

× × ×
‘कापुरुष ! तू और कर क्या सकता था ?’ कोई इस प्रकार भी कालापहाड़को कह सकता है, उसने कल्पना भी नहीं की थी । जिस प्रचण्ड झंझावातके सम्मुख महारणके तरु समूल धराशायी हो जाते हैं, उसको एक उद्यान क्या अवरोध उत्पन्न कर सकता है । क्षमासेन अपने सैनिकों, सहायकोंके साथ खेत रहे । रणभूमिसे रक्ताक्त शरीर, अंगार-नेत्र, शोणितस्त्रावी तलवार लिये कालापहाड़ सीधे लोकनाथ-मन्दिर आया था । वह अपने हाथों इस प्रसिद्ध श्रीमूर्तिको नष्ट करनेका संकल्प इस ओर अभियानसे पूर्व ही कर चुका था । नील वस्त्रधारी, म्लेच्छ सेनाके कुछ मुख्य नायक उसके पीछे प्रेतोंके समान आये थे । उन उद्धत लोगोंके अश्व मन्दिरके भीतर गर्भगृहके सम्मुखतक आये । किंतु जैसे ही अश्वपरसे वह कूदा, वृद्ध पुरोहित द्वारपर सम्मुख दीखे ।

‘कापुरुष ! कालापहाड़ कापुरुष है ? मूर्ख ब्राह्मण ! क्या कहता है तू ?’ चीखा वह कजल-कृष्ण-वर्ण, अत्यन्त दीर्घ एवं प्रचण्डकाय दैत्य !

‘इस असहायोंकी हत्यासे अपवित्र शस्त्र और इन स्वर्ण-लोभी, प्राणिपीड़न प्रिय प्रेतोंको लेकर तू अपनेको शूर समझता है ? कायर कहाँका !’ वृद्ध ब्राह्मणकी वाणीमें केवल शब्दोंकी ही तीक्ष्णता नहीं थी, उसमें वह उपेक्षा तथा तिरस्कार था जो कुत्तेको भी कोई नहीं देता । ‘शूर था वह जो तुझ नारकीयका प्रतिरोध करनेमें प्राण देकर सुरपूजित हो गया । तू अभिमान-उद्धत भीरु !’

‘ले !’ हाथका शस्त्र कालापहाड़ने पूरी शक्तिसे एक ओर फेंक दिया । झनझनाकर टूट गयी वह मारी तलवार । पीछे घूमकर उसने अपने अनुचरोंको आदेश दिया—‘दूसरे सब बाहर चले जायँ ।’

‘नपुंसक ! मैं नहीं जानता था कि तू मूर्ख भी है !’ ब्राह्मणने झिड़क दिया । ‘अब तू वृद्ध ब्राह्मणसे बाहुयुद्ध करनेको उद्यत है । तू समझता है कि शौर्य सैनिकोंमें और

संख्या ७]

शब्दमें नहीं है तो तेरे इस प्रतिहिंसापरायण पापी शरीरमें है ।
हड्डी, मांस और विषामें शौर्य है—यह तुझ-जैसा नारकीय
ही समझ सकता है ।'

‘ओह !’ कालापहाड़ने अपने अधर दाँतसे इतने जोरसे
दबाये कि उनसे रक्त टपकने लगा । क्रोधके अधिकतम
अवेशसे नेत्रोंसे टपाटप आँसू टपकने लगे, स्वेद-स्नात शरीर
थरथर काँपा कुछ क्षण और स्तम्भित—जड़ हो गया । वह
पलकतक गिरा नहीं पाता । मूर्तिके समान स्थिर खड़ा है
वह । उसके नेत्र अंगारके समान जल रहे हैं । सर्पके समान
भूतारयुक्त श्वास छोड़ रहा है वह ।

‘शौर्य चित्तका गुण है । चित्तकी स्वाभाविक विक्रियाको
जीतकर वह प्राप्त होता है । स्वभाव—मनके विषयाभिमुख
दौड़नेको, क्रोध-रोषको और राग-द्वेषको जीत लेनेका नाम है
शौर्य । तुझमें साहस है शौर्यकी प्राप्ति ?’ बड़ी वेधड़क दृष्टिसे
देखते हुए दक्षिण हस्त पूरा फैलाकर उन्होंने द्वारकी ओर
निर्देश किया—‘जा ! विश्वनाथका यह द्वार तुझ-जैसे
कापुरुषके लिये नहीं है । निकल जा !’

पता नहीं क्या हुआ, कालापहाड़ घूमा और सचमुच
निकल गया । वह अपने क्रोधसे ही उन्मत्त हो गया था ।
उसके पश्चात् रोगशय्यासे वह उठ ही नहीं सका ।

गौकी रक्षा बलिदानके बिना नहीं

(लेखक—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

‘गवार्थे ब्राह्मणार्थे च सद्यः प्राणान् परित्यजेत् ॥’

छप्पय

बीरो । बीरो ॥ उठो उठो मत देर लगाओ ।
गोमाता डकराड़ ताड़ अब आइ बचाओ ॥
चलों बहुत दिन लुरीं गरे पै अब न चलेँगी ।
मिलीं बहुत धिक्कार जगतमें अब न मिलेंगी ॥
माँके हित मरि जायँगे, गोबध बंद करायँगे ।
पीछे पग न हटायँगे, गोरक्षक कहलायँगे ॥

गौको हमने अनादिकालसे माता मान रक्खा है । गौ और
आर्यधर्मका ऐसा अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है कि आर्य-
धर्म गोरक्षाके बिना रह नहीं सकता तथा गोरक्षा बिना
धर्मके हो नहीं सकती । गौ बैल तथा साँड़ देती है, गौ दोष-
रहित विशुद्ध सर्वोत्तम जीवनदाता दुग्ध देती है, जिससे दही,
रस, मक्खन, घृत, खोवा तथा विविध भौतिकी खोवाकी
मिठाइयाँ बनती हैं । गौका मूत्र, गोबर—सभी वस्तु एक-से-एक
पवित्र तथा परमोपयोगी हैं । इन बातोंपर हमें यहाँ विचार
नहीं करना है । यद्यपि हैं ये सभी बातें परमोपयोगी, परंतु
यह आर्थिक दृष्टिकोण है । हमें तो यहाँ धार्मिक दृष्टिकोणसे
विचार करना है, और बिना धार्मिक दृष्टिकोण रक्खे, बिना
रक्षाके गौकी रक्षा हो नहीं सकती । गौको एक दूधका
कर्म मानकर गो-संरक्षण, गो-संवर्धन और नस्ल-सुधार

आदि हो सकते हैं । वह गौरूपी दूधके यन्त्रसे घी-दूधका
व्यापार कहा जा सकता है । जैसा कि पाश्चात्य देशवाले करते
हैं । वे गौको ऐसी-ऐसी वस्तुएँ खिलते हैं, जिनसे उनका
अधिकाधिक दूध बढ़ सके—जिनमें मछलीका तैल तथा
अन्य अशुद्ध वस्तुएँ हैं । वे लोग बच्चा देते समय गौकी
आँखें बाँध देते हैं, बच्चेको पैदा होते ही माँसे पृथक् कर देते
हैं । उसे देखने नहीं देते; सूँघने, चाटने, चूमने नहीं देते ।
स्तनोंमें मुँह नहीं लगाने देते । जिससे वात्सल्यभाव जाग्रत्
न होने पाये । बछड़ेको माँका भी दूध नहीं पिलाले, अन्य
गौओंका पिलाले हैं । बछड़ोंको तो वे मारकर खा जाते हैं ।
बिना बछड़ेके दूध निकालते हैं । जो गौ अधिक दूध नहीं
देती या दूध देनेमें अड़चन करती है अथवा अधिक दुधारू
नहीं होती, उसे वे अनुपयोगी कहकर खा जाते हैं । उनकी
दृष्टिमें गौ वही है, जो युवती हो, अधिक-से-अधिक दूध दे ।
शेष सब अनुपयोगी हैं, उनका एकमात्र उपयोग यही है
कि उन्हें काटकर खा जाना । यह पाश्चात्य दृष्टिकोण है ।
फौजोंमें जो गौएँ रक्खी जाती हैं, वे भी इसी दृष्टिकोणसे
रक्खी जाती हैं । प्रयागके उस पार नैनीमें तथा अन्यान्य
स्थानोंमें जो डेरी हैं, उनमें भी प्रायः यही दृष्टिकोण अपनाया
जाता है; किंतु हमलोग जो गौको माता मानते हैं, इस
दृष्टिकोणको कभी भी नहीं अपना सकते । हमारे लिये गौ

* गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षाके निमित्त तुरंत प्राणोंका परित्याग कर देना चाहिये । इन दोके लिये प्राण छोड़नेपर आत्महत्याका
परा नहीं लगता ।

जुलाई ४—

माता पहले है और उपयोगी पशु पीछे है। गौ कैसी भी हो, वह दूध देती हो या न देती हो। हम उसे मार देनेकी कल्पना कभी कर ही नहीं सकते। गौमात्रकी रक्षा हम सदासे करते आये हैं और सदा करते रहेंगे। मुनते हैं एक बार जब श्रीविनोबा भावे प्रयाग गये थे, तब नैनी होकर जा रहे थे। नैनीके ईसाइयोंने उन्हें अपनी संस्थामें चलनेको कहा तो उस संस्थाकी ओर वे पीठ फेरकर खड़े हो गये और बोले—‘आपलोग चलनेको कहते हैं, मैं तो आपकी संस्थाकी ओर मुख भी न करूँगा; क्योंकि वहाँ तुरंत पैदा हुए गौके बच्चोंको मार दिया जाता है।’

गौके साथ हमारी धार्मिक भावना जुड़ी हुई है। यद्यपि गौ कभी भी अनुपयोगी नहीं होती। बूढ़ी होनेपर भी वह खादके रूपमें इतना गोबर दे देती है, जो उसके भोजनभरको पर्याप्त है। इसके आँकड़े आजसे बहुत दिन पहले देशी ही नहीं, विदेशी विशेषज्ञोंने भी लगाये हैं; किंतु मैं यहाँ इसके विस्तारमें जाना नहीं चाहता। यहाँ तो मैं यही बताना चाहता हूँ कि गौ हमारी माता है, उसकी रक्षा जैसे भी हो, हर मूल्यपर हमें करनी ही चाहिये।

गौके प्रति हमारी माताकी भावना नयी नहीं, सनातन है। पुराणोंमें ऐसी अनेकों आख्यायिकाएँ हैं, जिनमें लोगोंने गौओंकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंका हँसते-हँसते बलिदान कर दिया है। पाश्चात्य देशोंमें गौका उपयोग केवल दूधके लिये ही होता है। हल जोतने, बोझा ढोने तथा सवारी आदिका कार्य घोड़ोंसे लिया जाता है। वहाँके किसानोंको दूध पीनेको गौ और खेती करनेको घोड़े दो जानवर रखने पड़ते हैं; किंतु हमारे यहाँ एक गौसे ही दोनों काम होते हैं। गौका तो दूध पीते हैं, उनके बछड़ोंसे हल चलाते, कूँएँसे पानी निकालते, उन्हींको गाड़ीमें बोझा ढोते, सवारीके लिये रथ, बहली गाड़ीमें उन्हें जोतते। उनकी खादसे पैदावार बढ़ाते। गौ हमारे इहलोक तथा परलोक दोनोंमें परमोपयोगी मानी जाती है। अब हमारी सरकारके उच्चाधिकारी विदेशी नहीं स्वदेशी, अन्य धर्मावलम्बी नहीं अपनेको हिंदू संतान कहलानेवाले हमें सलाह देते हैं कि ‘आर्थिक दृष्टिसे गौ उपयोगी नहीं। अतः खेतीके कामोंके लिये तो ट्रैक्टर आदि मशीन रखो और दूधके लिये भैंस रखो। गौको सर्वथा छोड़ दो।’ किंतु इस दृष्टिकोणको हमने अपना लिया तो हम अपनी सनातन संस्कृतिको खो बैठेंगे, जिसके लिये

हमने असंख्य लोगोंका बलिदान दिया और भारत-विभाजनके समय अब भी उसके असंख्य-असंख्य ज्वलन्त उदाहरण प्रत्यक्ष देखनेको मिले।

गौका हम किसी भी प्रकार परित्याग नहीं कर सकते, गौ हमारे जीवनका एक अङ्ग है। गौको हमने अपने परिवारमें सम्मिलित कर लिया है। हमारे पूर्वजोंने गोरक्षाके लिये बड़े-बड़े बलिदान किये हैं जो सर्वत्र प्रसिद्ध है।

महाराज दिलीपने कामधेनुको भूलमें प्रणाम नहीं किया, इसी अनजाने अपराधके कारण उनके कोई संतान नहीं हुई। अपने गुरु वसिष्ठकी आज्ञासे उन्होंने गोधेवाका व्रत लिया। वे नित्य गौ चराने वनमें जाते और गौ जिधर भी जाती, उसके पीछे-पीछे फिरते। एक दिन एक सिंहेने गौको धर दवाया। राजाने अपने धनुषपर बाण चढ़ाकर सिंहेको मारना चाहा, किंतु राजाके हाथ ही न उठे। तब वे विवश हो गये। सिंहेने हँसकर कहा—‘राजन् ! मैं कई दिनोंका भूखा हूँ, यह गौ मुझे आहाररूपमें मिली है। इसे खाकर मैं अपनी भूख शान्त करूँगा। तुम मेरा आहार क्यों छीन रहे हो?’

राजाने कहा—‘सिंह ! तुम्हें अपना पेट ही तो भरना है, तुम मुझे खा लो, गौको छोड़ दो।’

सिंहेने कहा—‘राजन् ! मूर्खताकी बात मत करो। तुम्हारे शरीरसे लोकका बहुत उपकार होगा। तुम्हारे बिना देशमें अराजकता फैल जायगी। तुम्हारे वंशका नाश हो जायगा। आगे वंशपरम्परा न चलेगी। एक छोटीसी गौके पीछे तुम संसारका इतना अहित कर रहे हो। अरे अपने गुरुको एकके स्थानपर सहस्र गौ दे देना। जब तुम्हारा वंश ही नहीं चलता तो प्राण क्यों दे रहे हो?’

राजाने कहा—‘सिंह ! गौकी रक्षा मेरा धर्म है। धर्मके लिये प्राण दे देना मरना नहीं है, अमर होना है। अपने शरीरको देकर मैं अपने धर्मका पालन कर रहा हूँ।’

सिंहेने अनेक तरहसे समझाया। राजा नहीं माने और अपनी आहुति देनेको गौके ऊपर गिर पड़े। वह तो उनके धर्मकी परीक्षा थी। वहाँ न तो सिंह था, न कोई और। नन्दिनी गौ उनकी ऐसी धर्मनिष्ठासे प्रसन्न हो गयी।

ऐसी एक नहीं गोरक्षाके लिये प्राण देनेकी ऐसी अनेक कथाएँ हैं।

भाग ४०

उदाहरण

सकृते,

परिवारमें
के लिये

क्रिया,

मान नहीं

व्रत
श्री

जधर मा
ने गौको

सिंहको

विवश हो

ना भूखा

वाकर से
में जीप

યા છાન

भरना

11

तु करो ।

हारे बिना

नाश हो

सी गोक
-पाणे

अपन
तंत्र ही

॥ यद्वा ॥

॥

ना है।

हूँ ।'

माने और

तो उनके

इ और ।

१००

की

7

2

अभी जय मैं जोधपुर गया, तो वहाँके एक विद्वान् पण्डितने मुझे एक बड़ी ही मार्मिक कथा जोधपुरके एक महाराजकी सुनायी। उस समय जोधपुरकी गद्दीपर एक १०-१२ वर्षकी अवस्थाके महाराजा राज्य करते थे। उनके पितामह भजन करने चले गये। पिताका देहान्त हो गया। अतः छोटे बच्चेको ही गद्दीपर बैठाया गया। मुसल्मानोंका समय था। उस समय मुसल्मान सरदार हजार-दो-हजार सैनिक लेकर घूसा करते थे और जिस राज्यको भी निर्वल देखते, उसीपर कब्जा कर लेते थे। एक सरदार बड़्ही सेना लेकर जोधपुर राज्यमें भी पड़ा था। सरदारके सालेने एक साँड़को तलवारसे घायल कर दिया। प्रजाके लोग साँड़को लेकर दरबारमें आये। बालक महाराजने सरदारको संदेश भेजा जिसने साँड़को घायल किया है, उसे तुरंत मेरे पास भिजवाइये।

प्रधान मन्त्रीने बारंबार प्रार्थना की—‘हुजूर ! ऐसी आज्ञा न दें। वह सरदार बड़ा बली है, उसने राज्यपर चढ़ाई कर दी तो सब यही कहेंगे कि राजा बालक थे; पर प्रधान मन्त्री तो बूढ़ा था, उसने क्यों नहीं रोका ?’ किंतु महाराजने उनकी एक न सुनी, गरजकर कह दिया—‘मैं हिंदू हूँ। गौरी रक्षा करना हिंदूका सर्वप्रथम कर्तव्य है। मेरे रहते कोई गौके पुत्रको घायल करे। मेरे प्राण चले जायँ, मेरा राज्य चला जाय, मैं गौको दुःख देनेवालेके जबतक प्राण न ले लूँगा, तबतक मानूँगा नहीं।’

प्रधान मन्त्री डर गया, किंतु राज-आज्ञाके सम्मुख करता ही क्या। सरदारने अपने सालेको इस आशासे दरबारमें भेजा कि महाराज उसे क्षमा कर देंगे; किंतु गौको क्लेश पहुँचाने-वालेको हिंदू क्षमा करना जानते ही नहीं थे। महाराजने

एक ब्राह्मणकी गौओंको चोर चुराकर भागे जा रहे थे, ब्राह्मणने अर्जुनसे गौओंकी रक्षाकी पुकार की। अर्जुनका धनुष उस स्थानपर रक्खा था, जहाँ धर्मराज द्रौपदीके साथ एकान्तमें थे। वहाँ जानेपर अर्जुनको बारह वर्षका वनवास करना पड़ता; किंतु अर्जुनने उसकी तनिक भी परवा न की, वे निर्भीक होकर वहाँ गये। दस्युओंसे गौओंको छुड़ा लिये और फिर बारह वर्षोंतक वनवासके दुःखोंको सहते रहे।

मुसल्मानों ने कालसे गोवध आरम्भ हुआ। इसके पहले गौके वधकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। मुसल्मानोंने मांस या चर्मके लोभसे गोवध आरम्भ नहीं किया। केवल अपनी विजयके लिये तथा हिंदुओंको निन्दानेके लिये ऐसा किया था। वे सेनाओंके सम्मुख गौओंको कर देते थे। ऐसा कोई भी हिंदू नहीं था, जो किसी भी कारणसे गौओंका रक्त देख सके। गौओंके प्रति उनकी कितनी भारी निष्ठा थी। उन्होंने अपने राज्य छोड़ दिये, परिवारका परित्याग कर दिया, वे वन-वन भटकते रहे, किंतु उन्होंने गौओंपर बाण नहीं छोड़े। ऐसे राज्यवंशोंको मैं जानता हूँ, उनके किले मैंने देखे हैं, जो गौओंपर बाण न छोड़नेके कारण अपने भरे-पूरे राज्यको छोड़कर चले गये।

प्राचीन जितने भी राज्य थे, उनमें कानूनसे गोहत्या नहत्याके सदृश ही मानी जाती थी। गोहत्यासेको प्राणदण्ड दिया जाता था। अभी-अभी १०-१२ वर्ष पूर्व जो ५००-६०० देशी राज्य सरदार पटेलने भारतमें विलीन किये, प्रायः उन सबमें कानूनसे गोहत्या बंद थी। यहाँतक कि मुस्लिमबहुल राज्य काश्मीरमें भी कोई गोहत्या भूलसे नहीं कर सकता था। गोहत्या करनेवालेको १० वर्षकी सजाका दण्ड था। वह कानून तो अबतक ज्यों-का-त्यों जम्मू-काश्मीरमें बना है। एक बार हाईकोर्टके एक जजने गोहत्यासेको १० वर्षकी सजाके स्थानपर ६ महीनेकी सजा कर दी थी, इसपर जम्मू-काश्मीरमें ऐसा प्रचल आन्दोलन हुआ कि शासक घबरा गये। उन दिनों मैं भी काश्मीरमें ही था। अन्तमें महाराजाको यह आश्वासन देना पड़ा कि आगेसे गोहत्या करनेवालेको १० वर्षकी ही सजा दी जायगी। नेपाल राज्यमें भी गोहत्या अबतक नरहत्याके समान ही मानी जाती है। किसी भी हिंदूराज्यमें आजसे १०-१५ वर्ष पूर्व गोहत्या नहीं होती थी।

महाराज छत्रपति शिवाजी गो-ब्राह्मणप्रतिपालक कहे

उसे तोपके मुखसे उड़वा दिया। वह सरदार डरके कारण जोधपुर राज्यको छोड़कर अपनी सेनाके साथ चला गया। ऐसी थी हिंदू राजाओंमें गौके प्रति भक्ति !

नामधारी सिक्खोंने कसाईखानेको रातोंरात तोड़ दिया, सब गौएँ भगा दीं। गौओंके प्रति नामधारी सिक्खोंने कितने बलिदान किये। उन्हें तोपके मुखसे उड़ा दिया गया। वे हँसते-हँसते गाते-बजाते तोपके सम्मुख खड़े हो गये। एक छोटा बच्चा था। अंग्रेज फौजी अफसरने बहुत कहा—‘तुम भाग जाओ, तुम बहुत छोटे हो, तोपका गोला तुम्हारे लग नहीं सकता।’ वह पुरुषसिंह पत्थर उठा लाया और उसपर खड़ा होकर बोला, मैं अब तो छोटा नहीं, अब गोला मारो। तोप दागी गयी और वह गोमाताकी जय बोलता हुआ परलोक प्रयाण कर गया।

गोरक्षाकी अपनी माँगको हमने कभी भी नहीं छोड़ा। साधु-संत-महंतोंकी बात तो छोड़ो, जितने भी राष्ट्रीय नेता हुए हैं—लोकमान्य तिलक, गोखले, महात्मा गाँधी, पं० मालवीयजी, मोतीलालजी नेहरू—सबने गोरक्षाका समर्थन किया है और उसके लिये आन्दोलन भी किये हैं। लोकमान्य तिलक तो कहा करते थे—‘स्वराज्य होते ही हम कलमकी एक नोकसे एक मिनटमें गो-हत्या बंद कर देंगे।’ महात्मा गाँधीजी कहा करते थे—‘मैं गोरक्षाको स्वराज्यसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण समझता हूँ।’ खिलाफत-आन्दोलनमें सम्मिलित होते समय उन्होंने स्पष्ट कहा—‘खिलाफतका प्रश्न मुसल्मानोंका धार्मिक प्रश्न है, मैं इसीलिये इसमें सम्मिलित हुआ कि मुसल्मान भाई मेरी गौकी रक्षा करेंगे।’

पं० मोतीलालजी नेहरूसे किसीने पूछा था—‘पण्डितजी ! क्या आप गोमांस खा सकते हैं ?’ उन्होंने मीठी चुटकी लेते हुए हँसीके लहजेमें बड़े मजेसे कहा—‘भाई ! गौका मांस तो मैं नहीं खा सकता, मगर गौका मांस खानेवालोंके मांसको मैं बड़े मजेसे खा सकता हूँ।’

सन् २१ में जब हम असहयोग-आन्दोलनमें कार्य करते थे, उन दिनों देशभक्तोंकी तीन ही पहचान थी—(१) खादी पहिनना, चरखा चलना। (२) हिंदी भाषाका व्यवहार और प्रचार तथा (३) गोरक्षा करना। उन दिनों मुसल्मानोंने भी गोमांस खाना तथा गौकी कुरबानी करना बंद कर दिया था। अनेक बड़े-बड़े मौलवियोंने फतवे दिये थे कि गौकी कुरबानी करना मुसल्मानोंके लिये लाजमी

नहीं है। जितनी गोशालाएँ थीं, उनके सभापति-मन्त्री तथा अन्य पदाधिकारी प्रायः कांग्रेसी ही होते थे। देहलीके पाटोदिया-हाउसमें कांग्रेसियोंकी एक सभा हुई, जिसमें अब्दुल कलाम आजाद, पं० मोतीलाल नेहरू, पं० नेकीराम शर्मा तथा सभी कांग्रेसी नेता थे, उसमें एक प्रस्ताव पास हुआ कि ‘अंग्रेजी राज्यमें गोवध होता है, अतः अंग्रेजोंका साथ नहीं देना चाहिये।’

कांग्रेसके ऐसे रुखको देखकर हम सब लोगोंको यह पूरा विश्वास हो गया था कि स्वराज्य होते ही सबसे पहला कानून गोहत्याबंदीका ही बनेगा। भगवान्की कृपासे वह दिन भी आया जब अंग्रेज इस देशको छोड़कर जाने लगे। उस समय सम्पूर्ण देशने यह माँग की कि सर्वप्रथम गोरक्षाका ही कानून बने, जिस दिन स्वराज्यकी घोषणा हो इसके साथ ही गोहत्याबंदीकी घोषणा हो। इसके लिये सम्पूर्ण देशभरसे विधानसभाके अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसादजीके पास इतने तार और पत्र भेजे गये कि उनकी गणना करना भी असम्भव हो गया, केवल तौलकर ही उनका अनुमान लगाया गया। भारतके विधानमें भी गोरक्षाको राज्यकी प्रधान नीति और मुख्य कर्तव्य स्वीकार किया गया। उस समय स्वराज्य होते ही गोरक्षाकी घोषणा तो नहीं की गयी; किंतु इसके लिये एक कमेटी बना दी गयी। कमेटीने अपने प्रतिवेदनमें स्पष्ट कहा—‘जबतक पूर्ण गोवधबंदी न होगी तबतक भारतकी आत्माको शान्ति न होगी।’

इन आश्वासनोंसे हम पूर्ण आश्वस्त थे कि चाहे देर भले ही हो, हमारी सरकारने जब गोरक्षाको राज्यकी नीति घोषित कर दिया है तो शीघ्र ही कानून बन जायगा। स्वराज्य होते ही मध्यप्रदेश-सरकारने तो अपने यहाँ सम्पूर्ण गो-हत्या-बंदीका कानून बना ही दिया; किंतु केन्द्रने उन्हें कोई उत्साह प्रदान नहीं किया।

सरकार ज्यों-ज्यों इस कानून बनानेमें देरी करने लगी, त्यों-ही-त्यों जनताको संदेह बढ़ने लगा। स्वराज्य होनेके दो-तीन वर्षतक तो हम सरकारकी प्रतीक्षामें ही बैठे रहे। जब समझा कि सरकार जान-बूझकर इस प्रश्नको ढाल रही है, तब जनताकी ओरसे आवाज उठायी गयी। स्वामीजी श्रीकृपावीरजीने आन्दोलन किया। राष्ट्रीय स्वयंसेवकसंघने भी सम्पूर्ण देशमें हस्ताक्षर-आन्दोलन आरम्भ किया और इतने अधिक हस्ताक्षर करायें कि संसारमें स्यात् ही किसी आन्दोलनपर

भी तथा
दिया-
कलाम
सभी
कि
नहीं

ह पूरा
पहला
वह
लगे ।
क्षाका
साथ
भरसे
इतने

दिया । और
 होते
 लिये
 दनमें
 बतक

 देर
 नीति
 पान्य
 त्या-
 कोई

 गी,
 नेके
 जब
 है,
 श्री-
 पूर्ण
 धेक
 पर

कानूनोंको लागू ही नहीं होने दिया । अनेकों वर्ष वे फाइलें

ही पड़ी रहीं । जब बहुत कहने-सुननेपर लागू भी किये, तब मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश तथा बिहारके कसाइयोंने सर्वोच्च न्यायालयमें अपील कर दी । अपीलके बीचमें हम आन्दोलन नहीं कर सकते । कई वर्षोंके पश्चात् सर्वोच्च न्यायालयने निर्णय दिया कि ये कानून गलत हैं । लेंके वधपर रोक नहीं होनी चाहिये । कानूनोंमें पुनः संशोधन हुए । जहाँ बैलोंका वध बंद था, वहाँ कानूनसे फिर होने लगा । केन्द्रकी ओरसे पग-पगपर रोड़े अटकाये गये । मुकद्दमेमें ऐसे-ऐसे आँकड़े पेश किये गये, जो सरकारी फाइलोंके अतिरिक्त कहीं मिल नहीं सकते । कसाइयोंकी कभी हिम्मत पड़ ही नहीं सकती कि वे जनताकी भावनाके विरुद्ध अपील करते यदि उन्हें केन्द्रकी ओरसे सह न मिली होती !

इस प्रकार इतने दिनोंका किया-कराया परिश्रम सब बेकार हो गया ।

प्रायः सभी कमीशनोंने, जो सरकारकी ओरसे नियुक्त किये गये थे, सर्वसम्मतिसे गोवध-बंदीकी शिफारिश की । जब कमीशनोंने सरकारकी इच्छापूर्ति नहीं हुई तब केन्द्रकी ओरसे अमेरिका आदिसे विशेषज्ञ बुलाये गये । उन्होंने कहा—‘भारतमें बहुत-सी गौएँ बेकार हैं, अनुपयोगी हैं, उन्हें या तो मारकर खा जाना चाहिये या पड़ोसी राज्योंमें भेज देना चाहिये; क्योंकि ये अनुपयोगी गौएँ दूध देनेवाली गौओंके चारेको खा जाती हैं ।’

उन बुद्धिके शत्रु विदेशी विशेषज्ञोंसे कौन पूछे कि जो गोबरके रूपमें पर्याप्त खाद देती है, जो केवल जंगलोंमें उस तृणको चरकर रहती है, जिसे कोई संग्रह नहीं कर सकता, जो व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है । बिना दूध देनेवाली गौओंको कोई दाना, भूसी, खल, ज्वार आदि पौष्टिक पदार्थ नहीं देता । ऐसी बूढ़ी दूध न देनेवाली गौओंको मारकर तुम कौन-सा लाभ उठा लोगे । मरते समय वह अपना चमड़ा तो छोड़ ही जाती है । ऐसे ही विशेषज्ञोंका विरोध करते हुए भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादने कहा था—‘हिंदुस्तानमें गायोंके लिये इस तरहकी धार्मिक भावना है कि उन्हें मारना लोग पसंद नहीं कर सकते । इसलिये यह जो बहादुरीकी सलाह दी जाती है कि जितने खराब जानवर हैं, उनको कत्ल कर दिया जाय, मैं समझता हूँ, इसमें बहादुरी है, बुद्धि नहीं । यदि हम इस कामको

करना चाहेंगे तो सुधार तो नहीं होगा, उल्टे हम अपने खिलाफ एक जमात पैदा कर लेंगे, जो हमारा विरोध करेगी ।’

‘मेरे कहनेका अभिप्राय यही है कि सरकार माँति-माँतिके बहाने बनाकर इस प्रश्नको टालती ही गयी । मान लो कुछ प्रान्तोंमें कानून बन भी गये तो गौ लखनऊमें न मरकर कलकत्ते-बंबई जाकर मरेंगी । अनुपयोगीका तो नाम है, मारी जाती हैं उपयोगी ही गौएँ ।’

जब हमने देखा केन्द्रीय सरकार हड़तासे कसाइयोंका पक्ष ले रही है और हमारे समस्त प्रयत्नोंको विफल बनानेपर उतारू है तो क्या करें । आजसे १३, १४ वर्ष पूर्व जब हम गोहत्यानिरोध-समिति बना रहे थे तब एक साधुने सभामें कहा था—‘यदि ब्रह्मचारीजी और करपात्रीजी—ये दो आदमी गौओंके नामपर प्राण दे दें, तो आज गोहत्या बंद हो जाय ।’ उस समय तो यह बात हँसीमें टल गयी; किंतु पीछे मैंने सोचा—‘मेरे प्राण देनेसे गोहत्या बंद होती है, तो मैं प्राण क्यों न दे दूँ ।’

इस विचारके आनेपर मैंने अपने पाँच-सात सम्माननीय बन्धुओंसे सम्मति की, यदि मुझमें इतना गोप्रेम होता कि एक-एक क्षण भी गोहत्या मेरे लिये असह्य हो जाती, तब तो सम्मति आदिकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती । गोप्रेमकी न्यूनतासे, प्राणोंके मोहसे, सार्वजनिक प्रश्न होनेसे मैंने अपनेसे अधिक अनुभवी और विद्वानोंसे सम्मति लेनी आवश्यक समझा । यह सब मैंने देख लिया है कि यह काम अशास्त्रीय तो नहीं है । यद्यपि यह बात मैंने न तो किसी समाचार-पत्रमें छपायी, न सर्वसाधारणमें इसे प्रकट ही किया; क्योंकि जिस प्रकार मैं वाणीपर संयम रखनेका प्रयत्न करता हूँ उसी प्रकार लेखनीका संयम रखनेकी चेष्टा करता हूँ । कोई बात असत्य बनावटी न निकल जाय । इसका पालन कहाँ तक होता है इसे सर्वान्तर्यामी प्रभु ही जानें । हाँ, तो बहुत गुप्त रखनेपर भी बात फैल-सी गयी । बलियामें एक संतने राजर्षि टण्डनसे भी कह दी । वे सुनते ही मेरे पास दौड़ी आये । उस समय मैं नित्यका कीर्तन कर रहा था । टण्डनजी ने मेरे एक साथीसे पूछा ‘ब्रह्मचारीजीका शरीर ठीक है न?’ उन्होंने कहा ‘हाँ ठीक है ।’ फिर उन्होंने पूछा ‘उनकी बुद्धि ठीक है न?’ इसका वे क्या उत्तर देते ? कीर्तन करके जब मैं निवृत्त हुआ तो वे हँसते हुए बोले ‘मैंने पूछा था तुम्हारी

७]

बुद्धि ठीक है न ? मेरे प्रश्नका अभिप्राय तुम समझ ही गये होंगे ?

मैंने पूछा—‘मैंने बुद्धिहीनताकी कौन-सी बात कर डाली है ?’ वे आवेशमें आकर बोले—‘यह कायरताका काम है। आप जैसे उदासी व्यक्ति को यह अनशन आदि शोभा नहीं देता। जनमतको जाग्रत् करके गोरक्षा करो। यह जो आप आत्महत्या—बलिदान करना चाहते हो उस शक्तिको दूसरी ओर ल्याओ।’ यह कहकर उन्होंने गीताका यह श्लोक पढ़ा—

कुतस्त्वा कश्मलमित्रं विषमे समुपस्थितम् ।

अनार्यशुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

मैंने कहा—‘बाबूजी ! आपको तो काँग्रेसका मोह हो गया है। मैं कोई अशास्त्रीय बात तो कर नहीं रहा हूँ। हमलोगोंके लिये तो अनशन करनेका, धरना देनेका शास्त्रीय विधान है। चित्रकूटमें भरतजी जब श्रीरामचन्द्रजीको लौटाने गये और जब श्रीरामचन्द्रजी किसी भी प्रकार अवध लौटनेको उद्यत न हुए तो भरतजीने शत्रुघ्नजीसे कहा—‘शत्रुघ्न ! तुम चट्याई ले आओ; मैं आर्यपुत्रके सामने बिना खाये अनशन करके धरना दूँगा।’ यह सुनकर शत्रुघ्नजी संकोचमें पड़ गये। वे श्रीरामचन्द्रजीका मुँह देखने लगे। भरतजीने जब देखा कि शत्रुघ्न कुशकी चट्याई नहीं ला रहे हैं तो वे स्वयं उठे और कुशकी चट्याई बिठाकर अनशन करने बैठ गये।’

‘इसपर श्रीरामचन्द्रजीने बड़े स्नेहसे भरतजीसे कहा—‘भरत ! मैं कौन-सा अन्याय कार्य कर रहा हूँ जिसके लिये तुम अनशन करने जा रहे हो ? फिर मूर्खभिषिक राजाओंके लिये तो अनशन करनेका विधान भी नहीं है। हाँ, ब्राह्मण बिना खाये-पिये एक करबट लेटकर मनुष्योंको अन्यायसे रोकनेके लिये अनशन किया करते हैं। यह तो शास्त्रीय विधान है।’

ब्राह्मणो ह्येकपाश्वेन नरान् रोद्धुमिहाहति ।

न तु मूर्खभिषिकानां विधिः प्रत्युपवेशने ॥

‘इस प्रकार मैं कोई अनार्यशुष्ट, अस्वर्ग्य तथा अकीर्तिकर कार्य नहीं कर रहा हूँ। आप इसे आत्महत्या बता रहे हैं।’ उन्होंने हँसकर कहा—‘हाँ भाई, होगा; किंतु यह सबसे अन्तिम उपाय है। आत्महत्या तो मेरे मुखसे निकल गयी, इसीलिये पीछे बलिदान कहा—किंतु इसका अभी समय नहीं। मुझे काँग्रेससे कोई मोह नहीं। इसका नाम भी विदेशी है। और स्वराज्य मिल जानेपर अब इसकी आवश्यकता भी नहीं।’

कार्य बहुत समझ-बूझकर करना चाहिये, इस प्रकार जैसे बड़े-बूढ़े नेता समझाते हैं, बहुत देरतक समझाते रहे।’

इस प्रकार राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघके सरसंघ चालकजी गुरुजी गोलवलकरने भी बहुत बल देकर कहा—‘देखो, अभी ऐसा साहस मत करो। यदि प्राण देनेसे गोरक्षा होती हो तो सबसे पहले मैं तैयार हूँ। समय आयेगा तब बतायेंगे।’

‘कल्याण’-सम्पादक भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीसे भी मैंने सम्मति ली। उन्होंने मुझे तुरंत तार दिया—‘अभी शीघ्रता न करें।’ उन्होंने तुरंत तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजीको पत्र लिखा। श्रीराजेन्द्रप्रसादजी भाईजीसे बड़ा स्नेह रखते थे। उनका उसी समय बड़ा लम्बा पत्र आया। वह पत्र उन्होंने राष्ट्रपतिकी हैसियतसे लिखा था; वैसे राजेन्द्रबाबू गोरक्षाके प्रबल पक्षपाती थे; कई गोरक्षा-सम्मेलनोंके वे सभापति बने और उन्होंने सरकारकी गौहत्या बंद न करनेपर बड़ी भर्त्सना की। भाईजी बताते थे कि एक बार श्रीराजेन्द्रबाबूने कहा था—‘यदि मेरा वंश चले तो इन सब सिनेमाओंको बंद कर दूँ।’ कुछ दिनों बाद सिनेमाओंकी तारिकाओंके सङ्गमें उनका चित्र छपा। तब भाईजीने उनसे पूछा—‘आप तो सिनेमा बंद करनेकी बात करते थे, सिनेमातारिकाओंके साथ चित्र क्यों छपाया ?’ इसके बाद मिलनेपर उन्होंने हँसकर कहा—‘मेरे दो रूप हैं—एक राजेन्द्रप्रसाद, दूसरा राष्ट्रपति। चित्र राष्ट्रपतिका है। मन्तव्य राजेन्द्रप्रसादका।’ इसी प्रकार यह पत्र राष्ट्रपतिका है केन्द्रकी नीतिके अनुरूप है। उस पत्रकी प्रतिलिपि मैं यहाँ अविकल उद्धृत करता हूँ।

डा० श्रीराजेन्द्रप्रसादजीके पत्रकी प्रतिलिपि राष्ट्रपतिभवन, नई दिल्ली २४ जनवरी १९५३।

प्रिय श्रीहनुमानप्रसादजी,

आपका २१-१-५३ का पत्र मिला और उसके साथ ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजीके पत्रका उद्धरण भी मैंने पढ़ा। गोसेवा और गोरक्षाकी बात इस समय देशमें बहुत चल रही है और इस विषयमें बहुत बातोंमें काफी प्रगति भी हुई है। गो-संवर्धनकी बात तो सभी लोग मान गये हैं और उसके लिये जो कुछ होना चाहिये उसका समर्थन भी लोग करते हैं। गोवधके सम्बन्धमें कानूनसे यहाँतक मामला पहुँच गया है कि अधिकांश स्थानोंमें ऐसे वंशका वध नहीं हो सकता जो कामके लायक हों। अर्थात् बैल जो अपना काम करने

योग्य हों। कई जगहोंमें यह कानूनी तौरसे पास हो चुका है कि गोवध एकवारगी बंद हो।

इसके लिये आन्दोलन भी काफी चल रहा है। ऐसी अवस्थामें ब्रह्मचारीजीका अनशन अनावश्यक प्रतीत होता है। अगर विचार-स्थितिका विश्लेषण किया जाय तो गोवधका मुख्य कारण भी मालूम हो सकता है। धार्मिक कृत्यके तौरपर जो गोवध होता है वह सालमें एक दिन होता है और वह भी बहुत बड़े पैमानेपर नहीं होता। जो वध प्रतिदिन होता है वह आर्थिक कारणोंसे होता है। जितने गो-वंश कसाई-खानोंमें जाते हैं, उनमेंसे अगर एक-एकका पता लगाया जाय तो मालूम हो जायेगा कि उनमेंसे अधिकांश हिंदुओंके घरसे ही जाते हैं। यदि उन्हें रखकर खिलाना-पिलाना असम्भव हो जाता है और बेचनेसे कुछ पैसे मिल जाते हैं जिनकी भूखे गरीबोंको हमेशा ही आवश्यकता रहती है तो हिंदू भी कोई-न-कोई बहाना निकालकर आँख बंद करके गो-वंशको हत्यारेके हवाले कर देते हैं। बाजारों और मेलोंमें जितने जानवर बिकते हैं उनको जाकर देखा जाय तो जो मैं कह रहा हूँ उसका पूरा प्रमाण मिल जायगा। यदि कानून-द्वारा गो-वध बंद कर दिया जाय तो उससे वास्तविकतामें गो-वध बंद नहीं होगा; क्योंकि उसका मूलभूत कारण अपनी जगहपर काम करता ही रहेगा। जब कोई कसाईके हाथ नहीं बेच सकेगा और अपने घरमें गोवंशको पाल भी न सकेगा तो वह उसको यों ही छोड़ देगा और जैसा अक्सर देखा जाता है। इस तरह गोवंशकी रक्षा करनेवाले उनको मारेंगे तो नहीं, मगर वे खानाबगैर मौतके घाट उतर जायेंगे। जहाँकहीं अकाल पड़ता है वहाँ यह दृश्य देखनेमें बहुत आता है। पर जहाँ अकाल नहीं भी हो, वहाँ भी आजकलकी महँगी और कठिनाईके दिनोंमें बहुतेरे लोग जो पालनेकी शक्ति नहीं रखते और साथ ही अधिकके हाथ बेचना भी। यों ही जानवरोंको अपने गाँव या घरसे कुछ दूर ले जाकर, जहाँ लोग पहिचान न सकें कि वे किसके जानवर हैं, छोड़ देते हैं। मैंने भी देखा है कि इस तरहके वे बहुतेरे जानवर गाँवोंमें फिरते हैं और खाद्यपदार्थोंके बदले केवल मार खाते रहते हैं। यदि गो-वंशकी रक्षा उद्देश्य है तो इस कारणको किसी-न-किसी तरहसे दूर करना चाहिये और मेरे विचारमें यह सच्ची गोसेवा और गोरक्षा होगी। मैं चाहता हूँ कि इस विषयमें केवल भावुकतासे काम न लेकर बल्कि विवेकसे काम लेना चाहिये और आप उनसे मेरा आग्रह करके कहें कि जो

कठिन व्रत वे उठाना चाहते हैं उससे भी काम सिद्ध न होगा।

अगर कानूनसे बंद कर दिया जाय तो जैसा मैंने ऊपर बताया है दूसरे कारणोंसे गो-वध बंद नहीं होगा। यद्यपि दुरीसे गला काटकर क्षणमें उसका प्राणान्त न किया जायगा पर महीनों भूखा रखकर शनैः-शनैः हम उनको मारेंगे। इसलिये यदि मेरी राय आप जानना चाहें तो मैं यही कहूँगा कि आप और ब्रह्मचारीजी अपनी सब शक्ति लगाकर, विशेष करके हिंदुओंमें इस बातका प्रचार करें कि वे गायकी सच्ची सेवा करें, केवल दिखानेवाली सेवा नहीं और आँख बचाकर गो-वध हो या कराया जाय तो उससे ही संतोष मानें। मैंने सुना है कि गाँवोंमें यह प्रथा प्रचलित है कि जब गायवाला गाय बेचना चाहता है तो खरीददारको उसका पगहा पकड़ा देता है। बाजारों और मेलोंमें कसाईके हाथमें पगहा नहीं पकड़ाता, बल्कि पगहा जमीनपर डाल देता है और उसी तरहसे कसाई भी रुपये उसके हाथमें न देकर जमीनपर रख देता है जिसे बेचनेवाला उठा लेता है और कसाई पगहा उठा लेता है। इस तरहकी भावनासे ही हम संतोष मान लेते हैं, यह हितकर नहीं है। इसीलिये मैं समझता हूँ कि वैसे कारणको दूर करनेमें बहुत काम करना है। यदि उसमें ब्रह्मचारीजी अपना समय और शक्ति लगावें तो ठीक गो-सेवा कर सकते हैं।

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार

गीताप्रेस गोरखपुर

आपका—

राजेन्द्रप्रसाद

इस पत्रका छोटा-सा उत्तर जो भाईजी (हनुमान-प्रसाद पोद्दार) ने उनको लिखा, उसकी प्रतिलिपि भी नीचे दी जाती है—

गीताप्रेस, गोरखपुर

३० जनवरी १९५३

परम सम्मान्य और प्रिय श्रीबाबूजी !

सादर नमस्कार।

आपका २४ जनवरीका कृपापत्र मिला। आपने कृपापूर्वक मेरे पत्रका तत्काल स्वयं लम्बा पत्र लिखकर उत्तर दिया, इसके लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मेरे प्रति चिरकालसे आपकी जो अहैतुकी प्रीति, शुद्ध सद्भावना तथा आत्मीयता है, इसके लिये मैं आपका सदा ही ऋणी हूँ। आपका संदेश मैं श्रीब्रह्मचारीजी महाराजके पास भेज रहा हूँ। वे क्या करेंगे, इसका निश्चित तो

संख्या ७]

पता नहीं है, पर आशा है वे फिलहाल आपकी बात मान लेंगे।

आपने पत्रमें जो कुछ विचार प्रकट किये हैं, वे सर्वथा स्तुत्य और विचारणीय हैं एवं उनके अनुसार गोसंवर्धन, नस्ल-सुधार, गोसेवा होनी ही चाहिये। लोग छल्ले स्वार्थवश कसाई के हाथ पगहा नहीं पकड़ते और कसाई भी रुपये जमीनपर रख देता है—इस प्रकार कपटसे आँख बचाकर गोवध हो या कराया जाय, इसमें संतोष मानने की तो कल्पना ही नहीं है। यह तो प्रत्यक्ष गोहत्या है—महापाप है। यह बंद होनी ही चाहिये।

परंतु साथ ही कानूनन सर्वथा गोवध बंद भी होना ही चाहिये। इसके बिना अच्छी गायों का कटना बंद नहीं होगा। आपसे कई बार पहले भी बात हो चुकी है और आपने इस बात को स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया था। किंतु आप आवश्यकतासे अधिक साधु हैं। इसलिये सप्टवादी होने पर भी कहीं-कहीं मित्रों तथा साधियों के मनके विरुद्ध या सरकार की नीतिके विपरीत कोई बात इन्हें हिचक जाते हैं। अतएव मेरी यह विनीत प्रार्थना है कि अब आपको साहसके साथ अपने मन की बात स्पष्ट कह देनी चाहिये कि 'सरकार को कानूनन सर्वथा गोवध बंद करना होगा।' और इसके लिये उचित प्रयत्न भी करना चाहिये।

आशा है मेरी प्रार्थना पर आप ध्यान देंगे और मैं पृष्टतापूर्ण जो शब्द लिख गया हूँ—यद्यपि आप जानते हैं कि ये सत्य हैं—उसके लिये मुझे कृपया क्षमा करेंगे। आप स्वस्थ और सानन्द होंगे। शेष भगवत्कृपा।

विनीत

हनुमानप्रसाद पोद्दार

गौओं की रक्षा हो, गोवंश का संवर्धन हो, नस्ल सुधारी जाय, गौएँ कसाइयों के हाथ न बेची जाय—इसमें किसी का भी मतभेद नहीं, किंतु जबतक सम्पूर्ण भारत-वर्ष में कानूनसे गोवध बंद न हो तबतक अच्छी गौएँ बच नहीं सकती। कसाई अपने लोभवश अच्छी-से-अच्छी गौओं को काटेंगे, ग्वाले लोभवश जवान गौओं को बेचेंगे, भ्रष्ट लोभवश कसाइयों को कर्ज देंगे और कसाइयों के हमारी सरकार हिंदुओं के बहुत अनुकूल नहीं। अनेक मुसलमानों के वोटों का भरोसा है, हिंदुओं में एकता नहीं। उनमेंसे बहुतसे लोभवश गोहत्या की समर्थक कांग्रेसी

जुलाई ५—

सरकार को वोट देंगे ही। यदि समस्त हिंदू निश्चय कर लें कि हम गोरक्षा के समर्थकों ही वोट देंगे तो सरकार तो आज गोहत्या बंद कर दे। किंतु मैंने तो चुनाव लड़कर देख लिया है, अपनी इच्छासे तो कोई विरला ही वोट देता है। कोई सरकार के भयसे, कोई जातिके दबावसे, कोई दल के कारणसे तो कोई लोभसे वोट देते हैं। अतः गोरक्षा के आधार पर चुनाव लड़नेसे हम जीत नहीं सकते। सरकार यदि दृढ़तासे निश्चय कर ले तब तो कोई कुछ कर ही नहीं सकता। कुछ स्वार्थी कसाइयों को छोड़कर मुसलमानों में भी बहुतसे लोग ऐसे हैं जो गोहत्या नहीं चाहते। यदि हम सरकार को विवश कर सकें तो उसे सम्पूर्ण देश में गोहत्या-बंदी का कानून बनाना ही पड़ेगा। गत वर्ष हमने श्रीवृन्दावनधाम में रहकर एक वर्ष का गोसेवाव्रत किया था। भारत-गोसेवक-समाज के सहयोगसे हमने वहाँ अखिल भारतवर्षीय स्तर पर दो गोरक्षा-सम्मेलन किये। एक तो व्रत के आरम्भ में सेठ गजाधरजी सोमानी के सभापतित्व में खास श्रीधाम वृन्दावन में ही, दूसरा गोसेवाव्रत की परिसमाप्ति पर 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ' के सरसंघ चालक श्रीगुरुजी श्रीगोलवलकर के सभापतित्व में अपने यमुनापार के गोलोक में। दोनों ही सम्मेलनों में गत गोपाष्टमी से गोरक्षा के लिये प्रबल आन्दोलन की, सदस्य बनाने तथा धन एकत्रित करने की बात कही थी, किंतु उसी समय देश में पाकिस्तान का आक्रमण आरम्भ हो गया। ऐसे समय आन्दोलन आरम्भ करना अनुचित प्रतीत हुआ। गत कुम्भ के पश्चात् हमारे कुछ साधुओं ने पदयात्रा की और दिल्ली में संसद के सम्मुख धरना तथा अनशन आरम्भ किया। वे २०-२२ साधु पिछले दिनों तक दिल्ली की तिहाड़ जेल में बंद थे। अनशन कर रहे थे। जेल की ओरसे उन्हें जबरन दूध पिलाया जाता था।

हम सोचते हैं, जबतक कुछ लोग अपने प्राणों का बलिदान न करेंगे, तबतक यह सरकार पसीजेगी नहीं। कुछ लोगों ने मुझे लिखा है—आप अहिंसा और अनशन की बातें व्यर्थ करते हैं, इससे काम चलने का नहीं, सरकार तो मार-धाड़ और तोड़-फोड़ के आन्दोलनों से झुकती है। आप सामूहिक रूपसे गोहत्याओं की हत्या कराइये, तोड़-फोड़ कीजिये। आप केवल हमारा नेतृत्व करें, करने के लिये तो हम लोग तैयार हैं।

ऐसे भाइयों को मैं स्पष्ट बात देना चाहता हूँ, यह कार्य मुझसे होने का नहीं। मैं अपने साधुवेष में ऐसा कार्य नहीं कर सकता, न किसी को अनुमति या सम्मति ही दे सकता हूँ। गौ तो सभी की माता है, अपनी मान्यता के अनुसार सभी

करनेमें स्वतन्त्र हैं। दो बातें होती हैं, या तो मारकर मर जाना या बिना किसीको मारे अपने आपको ही बलिदान कर देना। साधुके नाते मैं दूसरी ही बात कर सकता हूँ। अतः भगवान् मुझे शक्ति दें। मैंने निश्चय किया है आगामी कार्तिक शुक्ला गोपाष्टमी (ता० २० नवम्बर) से मैं अपने वृन्दावनस्थित गोलोकमें आजीवन अनशन-व्रत करूँगा। यह व्रत या तो प्राणोंकी समाप्तिपर ही समाप्त होगा अथवा सम्पूर्ण देशमें कानूनसे सम्पूर्ण गोहत्या-बंदीपर ही समाप्त होगा। जब श्री-श्रीमाँ आनन्दमयीने यह बात सुनी तो उन्होंने कहा—‘पिताजी ! ऐसा क्यों करते हैं ? और लोग तो अनशनका बहाना करते हैं, पीछे मनानेपर खाने लगते हैं। महात्मा गाँधीने यह बड़ा भारी अनर्थ किया। लोग बात-बातपर अनशनकी धमकी देने लगते हैं। अनशन एक खिलवाड़ हो गया है। मैं जानती हूँ आप ऐसा न करेंगे। आप तो अड़े तो अड़ जाओगे।’

मैंने कहा—‘माँ ! क्या तुम चाहती हो, गौएँ कटती रहें।’ इसपर वे बोलीं—‘नहीं, कदापि नहीं। गोहत्या तो

बंद होनी ही चाहिये। कोई दूसरा उपाय नहीं है।’ मैंने कहा—‘हमारे पास दूसरा क्या उपाय है। न हमारे पास अस्त्र-शस्त्र है न तपस्या, तेज, प्रभाव तथा दूसरे सद्गुण हैं। अन्तिम उपाय यही है।’

सो, भगवान् कृपा करें। व्रतका निर्वाह करें—ऐसा हमने निश्चय किया है। थोड़ेसे भी आदमी प्राणोंकी आहुति दे दें तो गोहत्या ही बंद न होगी, यह सरकार भी हिल जायगी। नैपालकी राणाशाहीके विरुद्ध एक भक्तिमती महिला ने सामूहिक बलिदान किया था। एक छोटा-सा गाँव-का-गाँव उस माताके साथ प्रवल नदीके वेगमें छल्लों मार गया। महिलाएँ अपने छोटे-छोटे बच्चोंको गोदमें लेकर कूद गयीं। मेरे भी परिचित एक साधु उसमें कूदे। उसके थोड़े ही दिनों पश्चात् नैपालसे राणाशाहीकी समाप्ति हो गयी। अतः जो लोग मेरे साथ अनशन करना चाहें, वे गोलोक-संकीर्तन-भवन, वंशीवट वृन्दावनके पतेसे मुझसे पत्रव्यवहार करें। जो अपने घर ही रहकर अनशन करना चाहें वे अपने ही यहाँ करें—इसकी सूचना भर मुझे दे दें।

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ ९८६ से आगे]

श्रीवैष्णवदेववालाजीके सम्बन्धमें जो पौराणिक आख्यान हमें मिलते हैं, उनके अनुसार जिस प्रकार त्रेतामें भगवान् राम और लक्ष्मणजी द्वारपरमें श्रीकृष्ण और बलरामरूपसे अवतीर्ण हुए, वे ही कलियुगमें बैकुण्ठेश्वरवालाजीके रूपमें भूमण्डलपर, विशेष कर शेषाचल पर्वतपर श्रीनिवासरूपमें प्रकट हुए। कथा इस प्रकार है—

किरातके तीरसे घायल श्रीकृष्णको देखकर सब द्वारका वासी, माँ यशोदा और अर्जुन आदि शोकविह्वल हो विलाप करने लगे।

यशोदाने श्रीकृष्णसे कहा—‘हे कृष्ण ! मैं इस लोकमें कितने ही जन्म लूँ और तुम्हारी सेवा करूँ, मुझे तृप्ति नहीं होती। इसलिये तुम जहाँ कहीं भी रहो, मैं सदा सर्वदा तुम्हारी सेवामें लगी रहना चाहती हूँ।’ यह सुनकर श्रीकृष्णने कहा—‘माँ ! तुम इस मानव-शरीरको छोड़नेके बाद वकुलमालिका बनकर शेषाचलपर जाओ और वहाँ आदिशेषाहस्वामीकी सेवा करती रहो। फिर उस समय मैं तुमसे वहाँ आ मिलूँगा।’ तदनन्तर श्रीकृष्णने अर्जुनसे

कहा—‘अर्जुन ! तुम और कुछ घड़ियोंतक इन गोपिकाओंकी रक्षा करो और तब इन सोलह हजार गोपिकाओंको निज स्वरूप मिल जायगा।’ फिर गोपिकाओंसे भी यही बात कहकर श्रीकृष्ण अपने मानव-शरीरका संवरण करके लक्ष्मीके साथ वैकुण्ठ जा पहुँचे। इसके बाद ही सब गोपिकाओंको निज-रूप, ऋषियोंका रूप प्राप्त हुआ। वे सब अपने-अपने योगदण्ड एवं कमण्डलुओंको हाथमें लेकर शेषाचलपर चले गये और वहाँ तपस्या करने लगे। इतनेमें कलिका प्रवेश हुआ। यह जानकर धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा द्रौपदीको साथ लेकर वैकुण्ठको चले। मार्गमें द्रौपदी और युधिष्ठिरके चारों भाई अपने शरीरोंको त्याग वैकुण्ठवासी हुए, केवल युधिष्ठिर सशरीर धर्मदेवताके साथ वैकुण्ठ जा पहुँचे।

श्रीकृष्णावतारकी लीला पूर्ण करनेके बाद एक बार भगवान् विष्णु और लक्ष्मी लेटे हुए थे। उस समय वैकुण्ठके द्वारपर आदिशेषा पहरा दे रहा था। उसी समय भगवान् विष्णुके दर्शनार्थ वायुदेव आ पहुँचे। आदिशेषा ने उन्हें द्वारपर रोक दिया। वायुदेवने उससे कहा कि मैं

[७]

अत्यन्त आवश्यक कामसे विष्णु भगवान्‌के दर्शन करने आया है और अब मुझे रोकनेसे तुम्हारी वही गति होगी जो इन युगमें द्वारपालकोंकी हुई थी ।' लक्ष्मीने इन दोनोंका हृदयविवाद सुनकर अपने पतिसे कह दिया । विष्णुने वायुसे देवको बुलाकर उनसे कहा कि 'तुम उस घमंडीसे बात मत करो ।' इसपर आदिशेष बड़े क्रोधमें आया और वायुसे अपने बल्की डींग मारने लगा । तब विष्णुने व्यंग करते हुए दोनोंसे कहा—'बातोंसे काम नहीं चलता, इसलिये जो कर सकते हो, उसे कार्यरूपमें प्रमाणित कर दिखाओ । हे आदिशेष ! सुनो, मेरु-पर्वतके उत्तरमें उसका आनन्द नामक पुत्र है । तुम वहाँ जाकर उससे लिपट जाओ और तब वायु अपने बलसे उसे हिलायेगा । यदि वायु उसको हिला सके तो वही अधिक बली है, अन्यथा तुम । यह तुम दोनोंकी परीक्षा है ।'

दोनोंने भगवान्‌ विष्णुका यह प्रस्ताव स्वीकार किया । आदिशेष शीघ्र गतिसे आनन्द पर्वतसे लिपट गया । वायुने अपना सारा बाहुबल लगाकर उस पर्वतको हिलाया, पर वह लोके भी नहीं हिला । वायुका क्रोध चढ़ गया । अब उसने अपना सारा बल लगाया । चौदहों लोक डौंवाडोल हो उठे । सब देवता और मनुष्य घबरा गये । फिर भी आदिशेषने अपनी पकड़ नहीं छोड़ी । सभी देवता और मुनियोंने मिलकर शान्त होनेके लिये वायुसे प्रार्थना की, पर उसने नहीं सुना । फिर उन्होंने आदिशेषसे प्रार्थना की कि तुम इस समय चतुर्दश भुवनोंकी रक्षा करो, नहीं तो प्रलय हो जायगा । यह सुनकर आदिशेषने अपना एक सिर हटाया तो वायु उस पर्वतको उठाकर आकाशमार्गमें उड़ने लगा । मेरु अपने पुत्रकी यह विपत्ति देखकर बहुत डर गया और उसे छोड़ देनेके लिये वायुसे प्रार्थना की । अब वायु अपनी विजयपर प्रसन्न हुआ और आनन्द पर्वतको नर्मामुखी नदीके उत्तरमें आदिवराहक्षेत्रमें धीरेसे रख दिया । तब देवता लोगोंने वायुसे कहा—'वह पर्वत शेषांश-सम्भूत है । विष्णुको अपने रहनेके लिये एक योग्य स्थानकी आवश्यकता पड़ी । इसलिये तुम दोनोंको इस तरह उभाड़-कर उन्होंने अपना काम पूरा कर लिया । अतः तुम दोनों कार्य-मनस्ताप न करो ।'

वायु और शेष यह वृत्त जानकर बहुत हर्षित हुए और भगवान्‌की स्तुति करके अपने-अपने स्थानको चले गये । इसी घटनाके कारण द्वापरयुगमें इस पर्वतके अञ्जनाद्रि और शेषाद्रि नाम पड़े ।

कलिका प्रवेश हुआ । कलियुगमें मनुष्य धर्मशून्य हो गये । वे अपने-अपने वर्णाश्रम धर्मोंको छोड़कर स्वेच्छाचारी बन गये । यह देखकर त्रिलोकसंचारी नारदमुनि अपने पिता ब्रह्माजीके पास गये और उनसे बोले—'पिताजी ! कृष्णावतारकी लीला पूर्ण करके विष्णु भगवान्‌ वैकुण्ठ चले गये । भूलोकमें कलिका प्रवेश हुआ । उसके प्रभावसे मनुष्य भगवान्‌को भूलकर सदा पुत्र, मित्र, कलत्र आदिकी मायामें लगे रहते हैं और अन्तको यम-सदन पहुँच जाते हैं ।' इसपर ब्रह्माजीने कहा—'यह सच है कि भूलोकमें विष्णुके न रहनेसे मनुष्य भगवद्‌भक्तिसे विमुख विनष्ट होते हैं । इसलिये भूलोकमें विष्णुको बसनेका कोई उचित उपाय करो ।' नारद इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये ब्रह्मासे आज्ञा और आशीर्वाद लेकर सत्यलोकसे भूलोक चले आये । भूलोकमें वे जाह्नवीके तटपर आ पहुँचे, जहाँ कश्यप आदि मुनिवर यज्ञ करते थे । नारदने उनसे पूछा कि 'तुम जो यज्ञ करते हो, इसका फलभोक्ता कौन है ?' यह प्रश्न सुनकर वे कुछ संदेहमें पड़ गये और कोई उत्तर नहीं दे सके । तब नारदने उनसे कहा कि 'तुम यह यज्ञफल उनको समर्पित करो जो त्रिमूर्तिमें सत्त्वगुणसम्पन्न, शमदमादिगुणसम्पन्न, अत्यन्त दयालु एवं मोक्षप्रद देव हैं ।' यह कहकर नारद वहाँसे चले गये ।

कश्यप आदि मुनियोंने त्रिमूर्तिमें सत्त्वगुणसम्पन्न देव कौन है, इस जिज्ञासापूर्तिके लिये महर्षि भृगुको भेजा । भृगु पहले सत्यलोक जा पहुँचे । वहाँ ब्रह्मा पद्मासनपर विराजमान थे और वेद, शास्त्र, सावित्री, गायत्री, सरस्वती तथा अष्ट दिक्पाल उनकी सेवामें संलग्न थे । भृगु ब्रह्माको दण्ड-प्रणाम करके खड़े रहे । पर ब्रह्माको इनका आगमन नहीं मालूम हुआ । फिर भृगु स्वयं उस ब्रह्मसभामें एक आसनपर जा बैठे । थोड़ी देरमें ब्रह्माने अपने नेत्र खोले और भृगुको सभामें आसीन हुए देखा, पर उनसे इसलिये नहीं बोले कि वे अनुमति लिये बिना पहले ही सभामें आसीन हुए हैं । इसपर भृगुने क्रोधमें आकर निश्चय कर लिया कि ब्रह्मा पूजाके योग्य नहीं हैं । वे तुरन्त सत्यलोक छोड़कर कैलास जा पहुँचे ।

जब भृगु कैलास पहुँचे तब वहाँ शंकरजी पार्वतीजीके पास थे, अतः उन्होंने भृगुका आगमन नहीं देखा । परंतु पार्वतीने भृगुको देखकर ऋषि-आगमनकी बात अपने पतिको बता दी । इससे शंकरजी बड़े क्रोधमें आकर भृगुको दण्ड

देनेको उद्यत हुए। इसपर भृगुको भी क्रोध आ गया और वे शंकरको शाप देकर चले गये।

भृगु कैलाससे वैकुण्ठ जा पहुँचे। वहाँ विष्णु लक्ष्मीके साथ हंसतुलिका तल्पपर लेटे हुए थे। यह देखते ही भृगु बड़े क्रोधमें आये और विष्णुके वक्षपर उन्होंने पाद-प्रहार कर दिया। विष्णु तुरंत उठ खड़े हुए और विनयपूर्वक भृगुके पाँव पकड़कर दबाने लगे और बोले कि मैं आपका आगमन न जाननेके कारण लेटा रहा। इसलिये मुझे क्षमा कीजिये। यह सब देखकर लक्ष्मी बड़े क्रोधमें आयीं और विष्णुके वक्षसे दूर जा खड़ी हुईं। विष्णुका ऐसा विनम्र व्यवहार देखकर भृगुका सारा क्रोध उतर गया। उन्होंने दण्ड-प्रणाम करके भगवान् विष्णुसे कहा—हे भक्तवत्सल त्रिलोकीनाथ ! ब्रह्मानन्दसपुत्र नारदने गङ्गानदीके तटपर जाकर वहाँ यज्ञ करनेवाले कश्यप आदि मुनिवरोंसे पूछा कि तुम इस यज्ञका फल किसे समर्पित करते हो। वे इसका जवाब नहीं दे सके और संदेहमें पड़े चुप रहे तो नारद उनसे यह कहकर चले गये कि त्रिमूर्तिमें जो सत्त्वगुणसम्पन्न है उनको यह यज्ञ-फल दिया जाय। बस, उन मुनियोंने त्रिमूर्तिमें सत्त्वगुणसम्पन्नको जान लेनेके लिये मुझे भेज दिया। मैं सत्यलोक तथा कैलास चलकर आया और वहाँ ब्रह्मा तथा शंकरकी परीक्षा की। फिर आपकी परीक्षा करने यहाँ आया और अच्छी तरह अनुभव कर लिया कि त्रिदेवोंमें आप ही सत्त्वगुणसम्पन्न, भुक्ति-मुक्तिदायी, भक्तवत्सल, सर्वभूताधार एवं सर्वभुवनधर्ता हैं। यह कहकर भृगुने अनेक प्रकारसे विष्णुकी स्तुति की। विष्णु भृगुसे गले मिले और उन्हें आशीर्वाद देकर भेज दिया।

भृगुने गङ्गातटपर जाकर कश्यप आदि मुनियोंसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनकर वे अत्यधिक हर्षित हुए और यज्ञफल विष्णुको समर्पित कर परम संतुष्ट हुए।

विष्णु भगवान्के वक्षपर भृगुके पाद-प्रहारसे उसी वक्षःस्थलमें रहनेवाली लक्ष्मीका जो अपमान हुआ, उसे वे नहीं सह सकीं। वे अपने पतिदेवसे इस प्रकार बोलीं—हे प्राणनाथ ! आपने अपने वक्षपर लात मारनेवाले दुष्ट भृगुको दण्ड देनेके बदले उसका आदर किया। इससे मेरा बड़ा अपमान हुआ, जो मुझसे सहा नहीं जाता। इसलिये मैं वैकुण्ठ छोड़कर भूलोकमें चली जा रही हूँ और वहाँ आपके चरणकमलोंका ध्यान करती हुई समय बिताऊँगी। यह सुनकर विष्णुने कहा—हे कमलाक्षी ! भृगुने मेरे वक्षपर

पाद-प्रहार कर मेरा बड़ा उपकार किया है। यह मेरे लिये अत्यन्त शुभकर है। इसलिये इस विषयमें तुमको क्रोध नहीं करना चाहिये। यह सुनकर लक्ष्मी और क्रोधानुर हो बोलीं—हे पुरुषोत्तम ! तुम चराचर सृष्टिके संरक्षक हो। तुम त्रिमूर्तिके आदिकारण हो और चतुर्दश भुवनोंकी अपनी कुक्षिमें रखनेवाले हो। तुम भक्तोंके आप्तवन्धु और उनके नित्य संरक्षक परमात्मा हो। ऐसे तुम्हारे वक्षपर भृगुने पाद-प्रहार किया तो तुम उसे सहकर सहर्ष उसे गले मिले और उन्हें आशीर्वाद दिया। इस व्यवहारसे तुम्हारे वक्षःस्थलपर रहनेवाली मेरा जो अपमान हुआ, उसे तुमने नहीं पहचाना। अतः मैं यहाँ बिल्कुल नहीं रह सकती। इसपर विष्णु फिर बोले—हे लक्ष्मी ! कदाचित् तुम नहीं जानती यह भृगु कौन है ? सच मानो, यह तुम्हारा पुत्र लगता है। उसने मेरे वक्षपर पाद-प्रहार क्यों किया ? मेरी परीक्षा करनेके लिये किया। अतः केवल इसी कारणसे तुम वैकुण्ठ छोड़कर चली जाओगी तो सभी लोग तुम्हारा परिहास करेंगे। यह सुनते ही लक्ष्मीके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने विष्णुसे कहा—आज भृगुने आपको सत्त्वगुणसम्पन्न कहकर आपकी बड़ी स्तुति की और इसलिये आपने उसे क्षमा कर दिया। कल इसी प्रकार और कोई चाहे ग्वाला भी हो, आपके ऊपर प्रहार करे। भूलोकवासी आपपर चाहे पत्थर फेंकें, म्लेच्छ जातिवाले भी आपकी परवा नहीं करें और सब आपकी उदारतासे लाम उठावें। यह मुझे असह्य है। मुझे यह विरहदशा पहुँचाने वाले ब्राह्मण जातिके लोग भिक्षाटन करके अपने पुत्र-कलत्रका पालन-पोषण करेंगे। वे गरीब बन जायेंगे और खान-पानके लिये विद्या बेचकर जीविका चलायेंगे। बस, इतना कहकर लक्ष्मी उसी समय वैकुण्ठसे निकली और वहाँसे करवीपुर नामवाले कोल्हापुर जा पहुँची जो बैकटाचलसे करीब बीस योजन दूर है।

अब लक्ष्मीके वियोगमें अत्यन्त व्याकुल विष्णु चिन्ता-मग्न हो गये—लक्ष्मीके बिना वैकुण्ठ कला-विहीन हो गया। जिसको लक्ष्मीकी कृपा प्राप्त नहीं है, वह सभीसे निन्दा पाता है। लक्ष्मीके न रहनेसे सभी लोग भाग्यविनष्ट हो जायेंगे। अब लक्ष्मी पृथ्वीपर जा पहुँची। वहाँ जो लोग उसकी सेवा करेंगे, उन सबको वह धनधान्यसम्पन्न एवं सर्वभुवन-सम्पन्न बनायेगी, चाहे वे मूढ़ हों या नीच, भक्त हों या मुक्त, गरीब हों या भिक्षुक, कुलद्रोही हों या हिंसक, स्वार्थी

रे लिये
 ध नहीं
 गुर हो
 क हो।
 मुयनोंको
 धु और
 वक्षपर
 र उनसे
 वयहारसे
 मा, उसे
 नहीं रह
 कदाचित्
 तुम्हारा
 किया !
 कारणसे
 तुम्हारा
 ठिकाना
 आपको
 इसलिये
 और कोई
 श्रेष्ठवासी
 आपकी
 से लाभ
 पहुँचाने-
 कलत्रका
 न-पानके
 कहकर
 करवीपुर
 दोब वीस

चिन्ता-
हो गया।
न्दा पाता
जायँगे।
उसकी
सर्वसुख-
हों या
स्वार्थी

ग्वालिन गाय और बछड़ेको चन्द्रगिरि ले गयी और उन्हें वहाँके चोलराजाको बेचकर कोल्हापुर वापिस चली गयी । चोलराजाने इन गाय-बछड़ोंको अपने चरवाहेको सौंपकर उन्हें ठीक-ठीक चराते रहनेकी आज्ञा दी । राजाशाके अनुसार वह ग्वाला इनको भी अन्यान्य हजारों गायोंके साथ ले जाकर चराता रहा । यह नयी गाय भी रोज अन्य गायोंके

साथ चरने शेषाद्रिपर चली जाती थी। फिर वहाँसे वह उस वल्मीकके पास पहुँचती थी जिसमें विष्णु रहते थे। वह वल्मीकपर खड़ी होकर विष्णुको दूध पिला देती थी और बादमें चुपचाप वापस चली आती थी। इस तरह कुछ दिन बीत गये, परंतु यह समाचार गोपालकको तनिक भी मालूम नहीं हुआ।

चोलरानीने देखा कि इस नयी गायके पास दूध बिल्कुल नहीं मिलता था। एक दिन रानीने गोपालकको बुलवाकर उससे पूछा—‘क्यों रे दुष्ट ग्वाले ! क्या तू रोज इस नयी गायका दूध पी लेता है ?’ यह सुनकर ग्वाला काँप उठा और बोला—‘रानीजी ! मैं सचसुच इस गायका दूध नहीं पीता। मैं रोज इस गायको भी और गायोंके साथ ले जाकर चराता हूँ। बस, और कोई पाप मैं नहीं जानता।’ तब रानीने उससे कहा—‘रे मूर्ख ! मैं तेरी बातोंका विश्वास नहीं कर सकती। कलसे यदि यह गाय दूध नहीं देगी तो तुझे कठिन दण्ड दिया जायगा।’ यह सुनकर ग्वाला डरते हुए, ‘जो आशा’ कहकर चला गया।

दूसरे दिन सबेरे गोपालक हाथमें कुल्हाड़ी लेकर गायोंको चराने शेषाद्रिपर चला। सब गायें चरने लगीं। यह नयी गाय उनसे विछुड़कर यथारीति उस वल्मीकके पास जाकर श्रीनिवासको दूध पिलाने लगी। गोपालक गायके पीछे-पीछे चला और यह सब देखने लगा। तदनन्तर बड़े क्रोधमें आकर गायको मारनेके लिये गोपालकने ज्यों ही कुल्हाड़ी ऊपर उठायी, त्यों ही परम दयालु प्रभुने गायकी रक्षा करनेके लिये वल्मीकसे बाहर आते हुए अपना सिर बाहर रक्खा। कुल्हाड़ीका प्रहार गायपर पड़नेके बदले श्रीनिवासके सिरपर पड़ा। सिरसे सात तालके प्रमाणमें रक्त फूटकर बहने लगा। यह देखते ही गोपालक बेहोश हो जमीनपर गिर पड़ा। तुरंत वह गाय दौड़ती हुई चली गयी और चोलराजाके दरबारमें जा पहुँची और भूमिपर लेटकर विलख उठी। उसके शरीरपर खूनके धब्बे लगे हुए थे। यह दृश्य देखकर दरबारके सभी लोग सन्न रह गये। गायके इस विलापका कारण कोई भी नहीं समझ सका। वे सोचमें पड़े हुए एक दूसरेका मुँह ताकते रह गये। थोड़ी देर सोचनेके बाद चोलराजाने अपने एक नौकरको बुलाकर आशा दी कि तू अभी इस गायके साथ जंगलमें जाकर वहाँ जो घटना घटी है वह सविस्तर देखकर आओ। यह राजाशा सुनते ही गाय दौड़ती हुई शेषाद्रिपर वल्मीकके पास पहुँची। यह नौकर भी गायके

पीछे-पीछे चलकर वहाँ पहुँचा और वहाँ बेहोश पड़े हुए ग्वालेको तथा वल्मीकसे फूटनेवाले रक्त-प्रवाहको देखा। यह सब दृश्य देख वह भयभीत-सा दरबारमें पहुँचा और सारा वृत्तान्त निवेदन कर दिया। राजा पालकीमें बैठकर खाना हुआ और वल्मीकके पास पहुँचा। वहाँका दृश्य देखकर स्तब्ध रह गया। थोड़ी देर बाद यों बोला—‘इस जंगलमें क्यों ऐसा घोर कृत्य हुआ ? इस वल्मीकसे क्यों इस तरहका रक्त-प्रवाह निकलता है ? हाय रे भगवान् ! अब मैं क्या करूँ। न जाने किस दुष्टने यह घोर पाप किया है ?’

चोलराजाके ये वचन सुनते ही श्रीनिवास उस वल्मीकमें से बाहर आये। उन्हींके सिरसे रक्त-प्रवाह हो रहा था। उन्होंने राजासे कहा—‘रे पापी ! मैं वैकुण्ठ छोड़कर इस वल्मीकमें आ बसा हूँ। अब तुमने अपने ग्वालेसे मेरे ऊपर कुल्हाड़ीका आघात करवाया। प्रजाके पापके लिये राजा ही जिम्मेदार है। इसलिये वह पापफल तुम्हींको भोगना है। तुम अभी पिशाच बन जाओ।’ यह शाप सुनकर राजा भय-कम्पित हो गया और श्रीनिवासके पैरों पड़कर शाप-मुक्ति के लिये अनेक प्रकारसे प्रार्थना करने लगा। प्रार्थनासे प्रसन्न हो दयार्द्र विष्णुने कहा—‘राजा ! मैं अपने भक्तोंको पीड़ित रहते नहीं देख सकता। मेरा शाप भी व्यर्थ नहीं हो सकता। तुम पिशाच बनोगे और इसी क्षेत्रमें कुछ कालतक रहनेके बाद यह रूप छोड़ दोगे। फिर राजा सुधर्मके पुत्र होकर जन्म लगे तथा आकाश राजाके नामसे राज्य-पालन करोगे। अपनी कन्याके साथ मेरा विवाह करोगे। तबतक तुम्हारे सब पाप कट जायँगे।’ यह सुनकर चोलराजाने विष्णुको कृतज्ञतापूर्वक प्रणाम किया और उस ग्वालेपर भी कृपा करनेकी प्रार्थना की।

इसी समय वह ग्वाला होशमें आया, पर अंधा बन गया। उसने विष्णुको प्रणाम करके क्षमा-याचना की। विष्णुने ग्वालेसे कहा—‘तुमको इस जंगलमें कुछ कालतक इस तरह अंधा ही रहकर घूमना है। कुछ काल बाद मैं इस क्षेत्रमें एक प्रतिमाके रूपमें प्रकट होऊँगा और तब तुम मेरे दर्शन करनेसे पूर्ववत् अपनी दृष्टि पा सकोगे। तबतक मेरी पूजा करते जाओ तो पापमुक्त हो जाओगे। एक बात और सुनो ! वैकुण्ठ छोड़कर इस वल्मीकमें आ बसते समय मैंने अपने पहले दर्शन तुम्हींको दिये। इसलिये कलियुगमें मैं प्रतिमाके रूपमें अपने पहले दर्शन तुम्हारे वंशके लोगोंको ही दूँगा।’

संख्या ७]

शापके अनुसार चोलराजा पिशाच बन गया और सदा भगवान्‌का ध्यान करता रहा। वह कुछ कालके बाद राजा दुर्भरका पुत्र होकर पैदा हुआ। ग्वाला अंधा ही रहकर सदा भगवान्‌का ध्यान करते हुए समय काटता रहा।

श्रीनिवास धावकी पीड़ा उठाते हुए वल्मीकमें रहे। उस समय देवगुरु वहाँ श्रीनिवाससे आ मिले और धाव ठीक करनेके लिये एक जड़ीकी दवा बताकर चले गये। श्रीनिवास उस जड़ीकी खोज करते हुए जंगलमें घूमने लगे। रास्तेमें वकुलमालिकासे उनकी भेंट हुई। वकुलमालिका वहाँ आदि-वराहस्वामीकी सेवा करती थी। उसने धायल श्रीनिवासको देखकर उनसे प्रश्न किया—‘बेटे ! तुम कौन हो और तुमको वह धाव कैसे हुआ ? तुम इस तरह इस निर्जन वनमें क्यों भ्रम रहे हो ?’ यह सुनकर वह उसके निकट चली आयी और अपने कमण्डलुके जलसे उनका मुँह धोया। एक जड़ी लेकर उनके धावपर दवा लगायी और कुछ खिला-पिलाकर बिठाया। तदनन्तर श्रीनिवाससे अपना सारा वृत्तान्त कह सुनानेको कहा।

वकुलमालिकाका यह उदार व्यवहार देखकर श्रीनिवासने उसे कहा—‘हे माई ! मैं अनाथ हूँ। कई अवतार लेकर ताना कष्ट झेलनेके बाद मैं इस जंगलमें आ बसता हूँ। वह धाव मुझे एक ग्वालेके द्वारा लगा है। मेरी देख-रेख करनेवाला मेरा कोई नहीं है। इसलिये मैं इस तरह जंगलमें भ्रमना चला आया।’ यह सुनते ही वकुलमालिकाको वह घर याद आया जो द्वापरयुगमें उसको श्रीकृष्णसे प्राप्त हुआ था। वह बोली—‘बेटे ! मैं भी अनाथ हूँ। मेरे कोई संतान

नहीं है। मेरी देख-रेख करनेवाला भी कोई नहीं। इस पुण्यक्षेत्रके प्रभु आदिवराह स्वामीने मुझे आश्रय दिया है। उन्हींकी सेवा करती हुई मैं यहाँ रहती हूँ। तुम्हें देखते ही मुझे ऐसा लगा कि तुम मेरे निजी पुत्र हो। अब मेरे आनन्दकी सीमा नहीं। मैं तुम्हें अपना निजी पुत्र मानती हूँ। तुम यहाँ रह जाओ, और कहीं मत जाओ।’ तब श्रीनिवासने कहा—‘माँ ! यहाँसे थोड़ी दूरपर इमलीके पेड़के नीचे एक वल्मीक है, उसीमें मैं रहता हूँ। तुम मेरे साथ आकर एक बार वह वल्मीक देखो।’

वकुलमालिका श्रीनिवासके साथ चली और वल्मीक देखकर अधिक हर्षित हुई। उसने मनमें समझा कि यह मेरा परम भाग्य है कि मैंने श्रीकृष्णावतारके समय यशोदा होकर परमात्माकी सेवा की और अब इस जन्ममें भी उनकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त है। फिर वह वहाँसे वराहस्वामीके पास वापिस चली आयी। तब वराहने उनसे पूछा—‘माँ ! आज तुम अत्यधिक संतुष्ट दीख पड़ती हो इसका क्या कारण है ?’ वकुलाने श्रीनिवाससे अपने मिलने और उनसे अपने सम्भाषण-का सारा वृत्त सविस्तर कह सुनाया। फिर आदिवराहने कहा—‘माँ ! मुझमें और श्रीनिवासमें कोई भेद नहीं है। हम दोनों एक ही हैं। तुम श्रीनिवासके पास चली जाओ और उसकी सेवा करती रहो। इस कलियुगके अन्तमें तुम उनके पवित्र चरणक्रमलोंके पास पहुँच सकोगी।’ आदि-वराहके इस वचनके अनुसार वकुलदेवी श्रीनिवासके पास चली गयी और बड़े आनन्दसे उनकी सेवा करती रही।

(कवयः)

तुझसे मिले बिना—

(रचयिता—श्रीबालकृष्ण बलदुवा)

बहुत दिन हो गये
तुझसे मिले बिना ॥
तुझसे मिले बिना
पुराना नया नहीं होनेका ॥
और—पुराना नया हुए बिना
जीवनकी रुक्षता नहीं जानेकी;
आँखोंका धुँधलका नहीं हटनेका ॥

सप्तसिन्धु और आर्योंका मूल स्थान

(व्याख्याकार—श्रीपीताम्बरापीठ-संस्थापक श्री १००८ स्वामीजी महाराज, दतिया)

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्यं सुषिरामिव ॥
(ऋ० ८ । ६९ । १२)

शब्दार्थ—हे वरुण ! तुम श्रेष्ठ देव हो, तुम्हारी सात सिन्धुओंकी धाराएँ तालु छिद्रसे प्रवाहित होनेवाली छिद्र धाराओंकी तरह प्रवाहित होती हैं ।

ऋचाकी व्याख्या

वरुण, इन्द्र एवं विष्णु—इन तीनों देवताओंका स्वरूप एवं कार्य परस्पर बहुत ही मिलता-जुलता है । विष्णुको इन्द्रका सखा बताया गया है; विष्णुका एक नाम उपेन्द्र भी कोशोंमें मिलता है । वारुणमण्डलमें भी विष्णुका ध्यान योगियोंने माना है, जिसे स्वाधिष्ठानके नामसे कहा गया है । इसलिये विष्णुका सम्बन्ध इन्द्र एवं वरुणसे होनेसे दोनोंमें विष्णुदेवताका अन्तर्भाव है । इस विषयमें एक बार विवाद उठा कि इन्द्र देवता राजा है या वरुण ? कुछ लोग वरुणके माननेवाले हुए और कुछ इन्द्रके पक्षपाती बने । विवादको मिटानेके लिये पूर्व दिशाका राज्य इन्द्रको दिया गया एवं पश्चिम दिशाके राजा वरुण नियुक्त हुए । इस प्रकार विवाद समाप्त किया गया । पंजाब प्रदेशके पश्चिम हृदपर रहनेवाले सिन्धु-नदको पूर्व एवं पश्चिम भागकी सीमा नियत किया गया । सिन्धु-नदके पश्चिम भागमें सप्तनद-प्रदेश माना गया है । भूमध्य-सागरतक यह सीमा पहुँचती है । यह वरुणका प्रदेश है । मन्त्रमें वरुणको सुदेव पदसे कहा गया है । उन सप्तनदियोंके वैदिक नाम ऋग्वेदकी एक ऋचामें इस प्रकार बताये गये हैं—
(१) तृष्णामा, (२) सुसर्तु, (३) रसा, (४) श्वेती, (५) कुभा, (६) गोमती, (७) क्रमु । 'ऐतरेया-लोचन' नामक ग्रन्थमें पण्डित सत्यव्रत समाश्रमीने इन

नदियोंके आजकलके नाम इस प्रकार दिये हैं—तृष्णामा और सुसर्तु ये सुवास्तुके नामान्तर हैं, जिन्हें आजकल खाद कहते हैं । रसाका नाम काबुल, श्वेतीका नाम अर्जुनी (डेराइस्माइल खॉके पास बहनेवाली), कुभा काबुल, क्रमु कुर, गोमती गोमलति (ऐ० पृ० २८) इत्यादि नाम दिये गये हैं । इन्हें पश्चिम प्रदेशका सप्तसिन्धु कहते हैं । यह प्रदेश भी आर्यावर्तका ही भाग था । सिन्धुके पूर्वका देश भी सप्तसिन्धुके नामसे कहा जाता है, जो गङ्गा, यमुना, सरस्वती, सतलज, व्यास, रावी और झेलमके नामसे प्रसिद्ध है । कुछ विदेशी विचारकोंने पश्चिमके सप्तसिन्धुको ही आर्योंका मूल स्थान माना है और आर्योंका वहींसे भारतमें प्रवेश हुआ है—ऐसा कहा है; परंतु यह बात अब अप्रामाणिक सिद्ध हो चुकी है । आर्योंका मूल स्थान भारत ही है । उनका बाहरसे आना किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है ।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

मनुस्मृतिके इस प्रमाणसे आर्योंका बाहरसे आना मानना सर्वथा अयुक्त है । इस देशके उत्पन्न ब्राह्मणोंसे सारे संसारके लोगोंने सर्वप्रथम अपनी-अपनी सभ्यताको सीखा । इसलिये सर्वप्राथम्य भारतको ही है । श्लोकमें अग्रजन्मा शब्दका प्रयोग आर्योंका बाहरसे आनेवाले मतको भ्रान्त बताता है; क्योंकि कहीं बाहरसे आनेवालेके लिये अग्रजन्मा शब्दका प्रयोग अयुक्त है । आर्योंको भी यहाँके आदिवासियोंकी उपाधि देना सर्वथा अनुपयुक्त है । आर्य बाहरसे नहीं आये हैं । इसी प्रकार लोकमान्य बालगंगाधर तिलकका उत्तरीय ध्रुव एवं श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीका तिव्वत (त्रिविष्टप) से आर्योंका आना कहना भी सर्वथा निराधार ही है । सप्त छिद्र—दो

संख्या ७]

आँख, दो कान, दो नाक और मुख—इनसे ज्ञानकी धाराएँ जैसे बहती रहती हैं, उसी प्रकार वरुण देवके द्वारा सप्तसिन्धु प्रवाहित होते रहते हैं। व्याकरण-महामाध्यकार महर्षि श्रीपतञ्जलिने शब्दब्रह्मको वरुण

पदसे ग्रहण करके प्रथमा, द्वितीया आदि सात विभक्तियों-को सप्तसिन्धु-पदसे ग्रहण किया है। मन्त्रका माहात्म्य ही ऐसा है कि उनसे अनेक अर्थोंकी सूचना प्राप्त होती है।

पति-पत्नी (तथा सब) के लिये हितकर अठारह अमृत-संदेश

१—पति और पत्नी दोनों एक दूसरेके पूरक हैं। एकके बिना दूसरा अधूरा है। दोनों मिलकर ही पूर्ण हैं। वे एक दूसरेके सहधर्मी, जीवन-सहचर, प्रेमी और प्रेमास्पद हैं।

२—पति-पत्नी दोनोंके जीवनका न तो उद्देश्य भिन्न है और न स्वार्थ ही पृथक् है। अतएव उनमें संघर्षके लिये न तो स्थान है और न अवसर। अतिच्छिन्न सहयोग और एकात्मतापर ही दाम्पत्य-जीवन सुप्रतिष्ठित है। पति-पत्नी एक प्राण, दो देह हैं।

३—पति-पत्नी दोनों यह समझें कि भोगोंसे कभी सच्चा सुख नहीं मिल सकता। त्याग और कर्तव्य-पालनसे ही जीवनमें शाश्वत सुखकी झाँकी मिल सकती है। काम-भोग-सुख तो सुख है ही नहीं।

४—किसी भी दशामें भगवान्‌को कभी नहीं भूलना चाहिये। वे ही सर्वाधिक प्रेमके आस्पद हैं। सती नारी पति-प्रेममें उसीका साक्षात्कार करती है और विवेकी पुरुष पत्नीके भावका अनुकरण करके भगवत्प्रेम प्राप्त करता है।

५—जिस किसी भी बर्तावसे अपनेको दुःख होता हो और जो अपनेको बुरा लगता हो, वह बर्ताव दूसरेके साथ कभी नहीं करना चाहिये। यह धर्मका सर्वस्व है।

६—माता-पिता-गुरुजन आदिको प्रतिदिन नमस्कार करो। उनका कभी अपमान या तिरस्कार मत करो।

शुलाई ६—

सेवा-सद्व्यवहार, नम्रता, आज्ञापालन आदिके द्वारा उनका आशीर्वाद प्राप्त करते रहो।

७—खान-पानकी शुद्धि परमावश्यक है। अशुद्ध वस्तु अशुद्धताके साथ बनी हुई, अशुद्ध हाथोंसे बनी हुई तथा मांस, मद्य, अंडे, लहसुन, प्याज, जूँठन कभी नहीं खाने चाहिये। अन्यायोपार्जित द्रव्यसे प्राप्त खान-पानसे भी बड़ी हानि होती है।

८—दूसरेके अधिकारकी सदा रक्षा करनी चाहिये और सदा अपने कर्तव्यकी।

९—अभिमानसे पतन होता है और विनयसे सर्वसुख प्राप्त होते हैं। कामनासे दुःख बढ़ते हैं और संतोषसे सर्वश्रेष्ठ सुखकी प्राप्ति होती है। सदा सबके साथ विनय-नम्रताका बर्ताव करो। अभिमानका सर्वथा त्याग करो। सबके साथ मधुर भाषण करो।

१०—सबका सदा हित चाहो, करो; कभी दूसरेका न अहित चाहो, न करो, न किसीको करनेकी सम्मति दो और न कोई करता हो तो उसका समर्थन करो।

११—दूसरेका हक छीनने या किसी प्रकारसे लेनेकी कभी इच्छा मत करो।

१२—कुसङ्ग विष है, उससे सदा बचो। सत्सङ्ग तथा स्वाध्याय अमृत हैं, उनका नित्य सेवन करो। सत्य और सदाचारको कभी शिथिल न होने दो।

१३—नारीके लिये सबसे महत्त्व और सम्मानकी वस्तु है—उसका पतिके प्रति निश्छल सरल प्रेम,

पतिको परमेश्वर मानकर पतिके मनका अनुगमन ।
इसीका दूसरा नाम 'पातिव्रत्य' है । यह भारतीय नारी-
की परम्परागत विशेषता है ।

१४—पुरुषके लिये परमावश्यक है—पत्नीका
संरक्षण, हितसाधन और सुख-सम्पादन । पत्नी उसकी
मित्र है, अर्धाङ्गिनी है, दासी कदापि नहीं । उसका
स्वेच्छासे व्रण किया हुआ स्वामीका दासत्व तो उसके
सतीत्वकी शोभा है, उसका शृङ्गार है, पतिका अधिकार
नहीं । धर्मपत्नीकी रक्षाके लिये जगत्में पुरुषोंने बड़े-
बड़े बलिदान किये हैं ।

१५—लज्जा, विनय, सुशीलता, निस्स्वार्थ सेवा और
सरल प्रेम साध्वी नारीके आभूषण हैं ।

१६—संयम, सदाचार, समवर्तिता, मित्रभाव और
निस्स्वार्थ प्रेम सज्जन पुरुषके गुण हैं ।

१७—कौटुम्बिक जीवनमें अपने स्वार्थको पीछे रखकर
कुटुम्बके अन्यान्य लोगोंकी सुख-सुविधापर पहले ध्यान
देना पति-पत्नी दोनोंका परम पवित्र कर्तव्य है ।

१८—बच्चोंके लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा, स्वास्थ्य-
सुधार और चरित्रकी निर्मलतापर (अपने आचरण-
द्वारा) सबसे अधिक ध्यान देना चाहिये ।

अनन्य भक्ति

(लेखक—श्रीरामरूपजी तिवारी)

सूर्यास्त हो चुका था, क्षितिजपर लालिमा धीमी पड़
रही थी, निर्मल आकाशमें नक्षत्रगण अदृश्यताकी परत
तोड़कर बाहर निकल रहे थे । गङ्गाकी अविरल धारा निस्संकोच
बह रही थी । निर्जन, निस्तब्ध, शान्त स्थान था । गङ्गाके
किनारेपर एक झोपड़ीमें रोशनीका प्रकाश टिमटिमा रहा था ।

एक नीरस, उद्विग्नचित्त व्यक्तिने, जिसका नाम
रामदास था, झोपड़ीमें प्रवेश किया । झोपड़ीमें एक साधु
बैठा था । उस व्यक्तिने साधुको प्रणाम किया । साधुने
कहा—‘आओ, प्यारे, बैठो ।’

व्यक्ति (रामदास) ने कहा—‘महाराज ! जीवनमें रस
नहीं है, जीवन बोझ हो गया है, इस जीवन-दीपको
बुझाना चाहता हूँ ।’

साधु—क्या संसारमें तुम्हें कहीं भी राग नहीं रहा है ?

व्यक्ति—नहीं, महाराज !

साधु—भगवान्में अनुराग पैदा करो । जीवन रसमय
हो जायगा ।

व्यक्ति—भगवान्में राग होता नहीं ।

साधु—भगवान्में राग उत्पन्न होनेका तुमने कोई उपाय
भी किया ?

व्यक्ति—हाँ महाराज, जप करता हूँ; लेकिन मन इधर-
उधर भटक जाता है ।

साधु—तुमने उपाय ठीक नहीं किया; पहले भगवान्की
महिमाको जानो, तब जपमें मन लगेगा ।

व्यक्ति—महिमाका ज्ञान कैसे हो ?

साधु—भगवान्की लीला पढ़ो और सुनो, भगवान्की लीला-
का चिन्तन करो—चाहे रामायणके द्वारा, चाहे श्रीमद्भागवतके
द्वारा, चाहे किसी भक्तसे लीलाका गुण-गान सुनो ! मीरा,
तुलसीदास आदि भक्तोंके जीवन-चरित्र पढ़ो । रामायणमें
भगवान् श्रीरामकी महिमा भरी पड़ी है तथा श्रीमद्भागवतमें
भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका सुमधुर गान है । जब महिमा
हृदयमें अङ्कित हो जायगी, तब भगवान्में श्रद्धा तथा प्रेम
उत्पन्न हो जायगा और प्रेमसे रस मिलेगा । जब उनमें
इस प्रकार अनुराग हो जायगा, तब उनकी स्मृति स्वयं
जाग उठेगी और जीवन रसयुक्त-आनन्दमय हो जायगा ।

व्यक्ति—महाराज ! इन पुस्तकोंके पढ़नेमें भी मन नहीं
लगता, तब क्या किया जाय ?

साधु—अभ्यास तथा नियमसे पढ़ोगे तो मन लगने
लगेगा ।

रामदासने बड़े ध्यानसे साधुकी बातें सुनीं और
वह प्रणाम करके चला गया ।

रामदासका एक छोटा-सा मकान गाँवकी सड़कपर
था; उसमें एक कमरा था, जिसकी खिड़की सड़ककी तरफ

संख्या ७]

बुलती थी। यह स्थान ठंडे प्रदेशमें था; बरफीले पर्वत
बारों ओर घेरा डाले हुए थे।

रामदासने तुलसीदासजीकी रामायणका पारायण प्रारम्भ
किया। नियमसे प्रतिदिन १ घंटे पढ़ना शुरू किया। थोड़े
दिनोंमें उसे उसमें कुछ रस मिलने लगा। दो घंटे, तीन घंटे,
फिर धीरे-धीरे बारह घंटे प्रतिदिन रामायणका पारायण होने
लगा। भगवान् रामकी महिमाका अङ्कुर उसके रागरहित
हृदयमें फूटने लगा। धीरे-धीरे अङ्कुरने एक विशाल वृक्षका
रूप धारण कर लिया। उसमें प्रेमरूपी फल भी लगने लगे
और मिठास देने लगे। कभी वह रोता; कभी वह हँसता
और भगवान्की महिमामें गद्गद हो जाता था।

एक दिन वह शबरीका प्रकरण पढ़ रहा था। उसने
पढ़ा कि भगवान् राम शबरीके यहाँ पधारे। शबरी अपनेको
भूल गयी और बेर भगवान्को खिलाने लगी। भगवान्के दर्शन
न होनेतक शबरी भगवान्की प्रतीक्षामें जीवनभर बैठी रही।
कितना अदृष्ट धैर्य था और कितनी लगन! प्रतिक्षण उनकी
बट देखती; रास्ता साफ करती। उसके सामने जब भगवान्
आ पहुँचे, तब वह उनके प्रेममें सारी सुध-बुध भूल गयी। जब
ऐसा रोमाञ्चकारी प्रेममय प्रकरण रामदासने पढ़ा तब वह उसमें
लपक हो गया और सोचने लगा—‘काश आप मेरे यहाँ
आते तो मैं भी शबरीकी तरह आपके चरणोंमें हृदयके
अन्तस्सलके द्वारा प्रेम उँडेल देता।’ उस छोटे-से कमरेमें
वह भगवान् रामके प्रेम-उल्लासमें अपनेको भूल गया।
खिड़कीके बाहरसे एक अस्पष्ट, मधुर शब्द सुनायी दिया—
‘कल आऊँगा।’ रामदास यह सुनते ही खिलखिलाकर
हँस पड़ा, उसकी खिलखिलाहट खिड़कीसे बाहर जाकर
बर्फ़ीले पहाड़ोंसे टकरा गयी और उसे लगा कि भगवान् राम
बर्फ़ीली पहाड़ोंकी चोटीसे उतरकर उसके पास आ रहे हैं।

रात्रिका समय था, चन्द्रदेव अपनी चाँदनीसे सफेद
रंगके धोतीको दुग्धसे नहला रहे थे। कमरेमें दिया टिमटिमा
रहा था। रामदासने रोशनी बुझा दी और सफेद चन्द्रमाकी
किरणों बरफीली चोटियोंसे टकराकर उसके कमरेमें छिटकने
लगीं। उसे ऐसा लगा कि भगवान् राम ही चन्द्रकिरणोंके
रूपमें व्याप्त हो रहे हैं। उसकी सुध-बुध सब विलीन
हो गयी।

थोड़े समयके पश्चात् जब उसे चेतना आयी, तब भगवान्
रामके वचनोंकी याद आयी कि ‘कल वे आयेंगे।’ फौरन

उठा, कमरेको स्वच्छ किया। कमरेकी प्रत्येक वस्तुको सुन्दर
रीतिसे सजाया। एक छोटेसे तख्तको उनके बैठनेके लिये
सुसज्जित किया। बाहर सफेद चमेलीके पुष्प चाँदनीमें खिल
रहे थे, उन्हें तोड़ने लगा। उनकी एक माला तैयार की।
रात्रि बहुत ठंडी थी। बाहर सड़कपर सफेद बरफकी पतली
चादर बिछी हुई थी। उसने अग्नि प्रज्वलित की। पौ फट
गयी। सफेद चन्द्रमाकी श्वेत किरणें अदृश्य हो गयीं।
निर्मल आकाशमें धीरे-धीरे सूर्यकी किरणें फैलने लगीं।

उसने गायका दूध भगवान् रामके लिये गरम किया
और नाना प्रकारके भोजन तैयार किये। फिर प्रसन्न मुद्रामें
खिड़कीके पास आकर वह भगवान्की प्रतीक्षामें बैठ गया।

खिड़कीके बाहर सड़कको साफ करनेके लिये कुछ
मजदूर बरफको हटाने लगे। उनमेंसे एक वृद्ध मजदूर बरफ
हटाते-हटाते गिर गया। उसके मुखसे निकला ‘हे भगवान्!
दया करो।’ उसके शरीरपर एक ही पतला कपड़ा था।
सर्दीसे उसका शरीर जकड़ गया था। रामदास दौड़कर
बाहर आया और उस बूढ़ेको उठाकर अंदर ले आया।
आगके पास लिटा दिया। थोड़ा-सा गरम-गरम दूध उसे
पिलाया। बूढ़ा अच्छा हो गया और बोला—‘भगवान् तुमपर
कृपा करें, मैं तुम्हारा एहसान कभी नहीं भुँदूँगा।’ बूढ़ा
चला गया। यह फिर आकर खिड़कीके पास भगवान् रामकी
प्रतीक्षामें बैठ गया। दोपहर हो गया। पहाड़की चोटियोंसे
बरफ पिघलने लगी। रामदासके मूक नेत्र उधर ही लगे थे
कि इतनेमें उसने एक बच्चेकी चीत्कार सुनी, बाहर आया
और देखा कि एक स्त्री फटी धोती पहिने एक वर्षके बच्चेको
गोदमें लिये उसकी तरफ आ रही है। उसने पूछा—‘बहिन!
यह बच्चा क्यों रो रहा है?’ स्त्रीने कहा—‘यह बच्चा भूखा
है। इसे बारह घंटेसे दूध नहीं मिला। कल मैंने अपना
कम्वल गिरवी रखकर उससे दूध खरीदकर इस बच्चेको
पिलाया था। अब मेरे पास कुछ भी नहीं है।’ बच्चा
सर्दीसे ठिठुर रहा था। रामदासने कहा—‘बहिन! अंदर
आओ और बच्चेके लिये दूध तैयार है, उसे पिला दो।’
स्त्री अंदर आयी। रामदासने बड़े प्यारसे बच्चेको तथा
स्त्रीको दूध पिलाया। आगकी ताप दी। बच्चा हँसने लगा।
स्त्री प्रसन्न हो गयी और बोली—‘भगवान् तुमपर प्रसन्न हों।’
रामदासने एक रुपया देकर कहा कि अपना कम्वल जो
गिरवी रखा है, उसे छुड़ा लेना। स्त्री चली गयी और यह

रामदास फिर खिड़कीपर बैठकर भगवान् रामकी बात देखने लगा ।

सूर्यकी किरणें बरफीली चट्टानोंसे टकराकर चकाचौंध करनेवाला श्वेत प्रतिबिम्ब बिखेर रही थीं । रामदासकी आँखें अब बरफीले पहाड़ोंको देखनेमें असमर्थ थीं । उसकी निगाह लंबी फैली हुई सड़कपर दूरतक गयी । सूर्यास्तका समय हो रहा था कि रामदासने देखा—एक बुढ़िया अपने सिरपर एक सेवकी टोकरी रखे जा रही थी, पीछेसे एक बालकने एक सेव टोकरीमेंसे ले ली । बुढ़ियाने बालकको पकड़ लिया और वह उसे पीटने लगी । रामदासने जब यह देखा तो वह भागकर वहाँ पहुँचा । बालकको छुड़ाकर बुढ़ियासे कहा कि 'तेरे सेवकी कीमत क्या है ? मैं देता हूँ । तू इस बालकको छोड़ दे ।' रामदासने दो और सेव लेकर बालकको दिये । बालकको प्यार किया और कहा 'अब चोरी मत करना ।' बुढ़ियाको सेवोंका मूल्य दे दिया ।

बालक बुढ़ियाके पैरोंपर गिर पड़ा, क्षमा माँगी और कहा कि 'मैं यह टोकरी सिरपर रखकर तुम्हारे घर पहुँचा दूँगा' और रामदाससे कहा—'पिताजी ! मैंने तुमसे अपूर्व स्नेह प्राप्त किया है । प्रभु अपना स्नेह तुम्हें दें ।' बालक टोकरी सिरपर रखकर बुढ़ियाके साथ चला गया । रामदास फिर आकर खिड़कीके पास बैठ गया । रात्रि हो गयी, फिर चन्द्रमाका श्वेत उज्ज्वल प्रकाश फैल गया । तारागण झिलमिलाने लगे । शान्त वायु प्रबल होकर बढ़ने लगी । रामदासने खिड़की बंद कर दी । सुख उदास हो गया ।

इतनेमें साधु महाराज आ गये और उन्होंने रामदाससे पूछा कि 'प्यारे ! उदास क्यों हो ?'

रामदासने कहा—'महाराज ! आज भगवान् श्रीराम आनेवाले थे; उनकी प्रतीक्षामें मैं बैठा रहा, वे नहीं आये । इससे मन उदास हो गया ।'

साधुने कहा—'भगवान् राम तो नित्य सर्वत्र व्याप्त हैं । वे कहाँ नहीं हैं ? उनके आने-जानेका प्रश्न ही कैसा ?'

रामदासने कहा—'महाराज ! यह तो ठीक है; परंतु वे सगुण, साकार रूप भी तो धारण करते हैं । मेरी उनके मधुर, सगुण रूपके दर्शनकी आकाङ्क्षा थी और उन्होंने कल कहा भी था कि 'मैं आज आऊँगा' लेकिन न जाने वे क्यों नहीं आये । इसमें भी कुछ रहस्य मालूम होता है; क्योंकि उनकी वाणी कभी असत्य नहीं हो सकती ।'

फिर रामदासने साधुसे भोजन करनेके लिये कहा

और उन्हें सुसज्जित तख्तपर बैठाकर भोजन, जो कि रामदासने अपने हाथोंसे बनाया था, प्रेमसे खिलाया और जो माला गूँथी थी, वह उनके गलेमें पहिना दी । साधु भोजन करके बहुत प्रसन्न हुए और रामदासको आशीर्वाद देकर कि 'तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो' चले गये ।

रात्रिका फैलाव पूरा हो गया । निस्तब्धता छा गयी । वायुका वेग कम हो गया । रामदासने खिड़की खोल दी । चन्द्रमाकी शीतल किरणें कमरेमें पड़ने लगीं । रामदास शान्त था, निस्तब्ध था । उसके मनकी वृत्तियाँ स्थिर थीं और वह विचार कर रहा था कि 'राम सर्वत्र हैं । मुझमें भी हैं ? मैं राममें हूँ । मुझे उनके दर्शन अपनेमें क्यों नहीं होते ? वे सगुण साकार भी हैं ही, मुझे वे दर्शन क्यों नहीं देते ?' इतनेमें आवाज आयी । 'रामदास ! तुम उदास क्यों हो ? मैं तो वास्तवमें आया था, किंतु तुमने मुझे पहचाना नहीं । मैंने तुम्हारी सेवाका प्रसाद ग्रहण किया । विचार करो और हृदयके अन्तस्तलके पट खोलो और देखो कि मैं कहाँ नहीं हूँ । वह वृद्ध मजदूर मैं ही तो था; जिसे तुमने बड़े प्यारसे अंदर लाकर सेवा की थी । वह स्त्री और बच्चा भी मैं ही था, जिनको तुमने प्यारसे दुग्धपान कराया था । वह बालक भी जिसे तुमने प्यारसे सेव दिये थे, मैं ही था । जिस साधुको तुमने अभी आदरसे भोजन कराया था, वह साधु भी मैं ही था । वह भोजन भी मुझे ही प्राप्त हुआ है । वह हार भी मेरे ही गलेमें गया है । वह सेवा भी सब मुझे ही मिली । तुमसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ और मैं चाहता हूँ कि तुम मेरा नित्यस्वरूप सदैव सर्वत्र देखा करो । तुम सगुण और साकारस्वरूप देखना चाहते हो तो लो, उसे भी देखो ।'

ये शब्द रामदासके अन्तस्के आन्तरिक कक्षमें बैठ गये और अकस्मात् एक अद्भुत दिव्य प्रकाश छा गया । रामदासके सामने भगवान् धनुर्धारी श्रीराघवेन्द्रका दिव्य मङ्गलविग्रह प्रकट हो गया । रामदास भावविह्वल हो चरणोंपर गिर पड़ा, सुसकराते हुए भगवान्ने उसे उठाकर सिरपर हाथ रक्खा और कहा 'मैं तुझे दिव्य आलोक देता हूँ, जिससे तू सदा सर्वत्र मुझे देख सकेगा ।' यों कहकर भगवान् श्रीराम अन्तर्धान हो गये । दिव्य आलोकमें रामदास रस और आनन्दमें परिपूर्ण हो गया और अब उसे सर्वत्र प्रभु राम के दर्शन होने लगे । वह कहने लगा—'भगवान् राम !' मुझे

संख्या ७]

क्षमा करना। मैंने आपको उन रूपोंमें पहचाना नहीं। अब तो सर्वत्र आप-ही-आप दिखायी देते हैं। आज यह रहस्य समझमें आया कि 'आप' नाम और रूपके पर्देमें छिपे बैठे रहते हैं। सब कुछ आप ही देते हैं। किंतु यह प्रकट नहीं होने देते कि आपका दिया हुआ है और उसके पीछे आप-

की नित्य-निरन्तर सत्ता है। यह कैसा अद्भुत रहस्य है ! आज आपने मुझे एक दिव्य नया प्रकाश दिया है। यह आपकी कृपाका प्रसाद है, जो आज कूट-कूटकर मेरे जीवनमें भर गया है। प्रभु आप धन्य हैं। आपकी महिमा धन्य है। आपकी कृपाके प्रसादसे ही नित्य नवरसकी उपलब्धि होती है।*

भगवन्नाम-महिमा

(लेखक—सद्गुरु श्रीवावाजी महाराज, अनुवादक—श्रीविष्णु सावलराम कपें)

मर्ता अमर्तस्य ते भूरि नाम मनामहे । विप्रासो जातवेदसः* ॥

'आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमति भजामहे ॥'

(ऋ० सं०)

ये दोनों मन्त्र ऋग्वेदसंहिताके हैं। इनमें भगवन्नामकी महिमा गायी गयी है। भगवत्-प्राप्तिके सब साधनोंमें नाम-साधन सर्वश्रेष्ठ है। श्रुति-स्मृति-पुराण आदि पुरातन सनातन ग्रन्थोंमें नाममाहात्म्यरूपी विविध मूल्यवान् रत्नोंका भंडार भरा हुआ है। भारतवर्षके प्रातःस्मरणीय साधु-संतोंने भी इस सम्बन्धमें स्वानुभवके बलपर चिरस्मरणीय कार्य किया है। नाम-माहात्म्यकी ध्वजा चिरंतन कालके लिये ऊँची पढ़ाये रखनेका कार्य भी उन्हींकी कृपा तथा अथक परिश्रम-का फल है। श्रीतुकाराम महाराज, नामदेव महाराज, एकनाथ महाराज, ज्ञानेश्वर महाराज, नरसिंह मेहता, तुलसीदासजी, सुरदासजी, गुरु नानक, मीराबाई, कबीर आदि संतोंकी सेवाएँ इस सम्बन्धमें विशेष उल्लेखनीय हैं। भारतवर्ष सदैव इन संतोंका ऋणी रहेगा।

केवल नामसाधनका अवलम्बन करनेसे अन्य सब साधनोंका फल प्राप्त हो जाता है। अग्निसे जैसे घासका तिनका जल जाता है, वैसे ही भगवन्नाम-स्मरणसे मनुष्यकी समस्त पापराशि भस्म हो जाती है। नामकी महिमा अत्यन्त अलौकिक है। नरको नारायण बनानेकी अद्भुत शक्ति नाममें है। कोई यदि नामकी महिमाको केवल अर्थवाद समझता है तो यह उसका केवल भ्रम है। नाम-महिमा अर्थवाद नहीं है।

* कुछ अंश एक अंग्रेजी कथाके आधारपर।

अर्थवादं हरेर्नास्ति सम्भावयति यो नरः ।

स पापिष्ठो मनुष्याणां नरके पतति स्फुटम् ॥

(कात्यायनसंहिता)

इस वचनमें अर्थवाद माननेका निषेध किया है। ऐसे अनेक निषेधपरक वचन पुराणादि ग्रन्थोंमें हैं। पद्मपुराणमें दस नामापराधोंका वर्णन है। 'नामस्यर्थवादो भ्रमः' इसमें नाममहिमाको 'अर्थवाद' मानना भी अपराध माना गया है। ऐसा एक भी आर्ष ग्रन्थ नहीं है, जिसमें नाममहिमाका वर्णन न हो। गीतामें 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (१०। २५) यह भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने मुखसे कहा है और जपयज्ञकी श्रेष्ठता बतलायी है।

'जप्येनैव तु संसिध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः ।'

(मनु० २। ८७)

केवल जपसे भी ब्राह्मणत्वका रक्षण होता है, ऐसा मनुजी कहते हैं। गीताके सत्रहवें अध्यायमें श्रीमद्भगवत्पाद पूज्य श्रीजगद्गुरु शंकराचार्यने और गुरु माऊली श्रीज्ञानेश्वर महाराजने भगवन्नामकी महिमाका बखान करते हुए कहा है कि भगवन्नाम निर्गुण कर्मको सगुण बनाता है तथा अपूर्ण कर्मको पूर्ण करता है।

परि आश्रय आकाशा । आकाशचि कां जैसा ॥

या नामा नामी आश्रय तैसा । अमेद असे ॥ ४०३ ॥

(ज्ञानेश्वरी)

श्रीज्ञानेश्वर महाराजका कथन है कि जिस प्रकार आकाश-का आश्रय आकाश ही होता है, आश्रित आकाश और आश्रय आकाशमें भेद नहीं किया जाता, वे दोनों अभिन्न हैं, उसी

प्रकार नाम और नामके आश्रयभूत नामी परमात्मा दोनों भेदरहित तथा अभिन्न हैं। 'नाम परब्रह्म वेदार्थी' (ज्ञा० १०—२३३)। वेदोंने भी नामको परब्रह्म माना है। इस प्रकार भगवन्नामका महत्त्व जानकर ही हमारे ऋषि-मुनियोंने हमारे सब विधि, आचार, कर्मके आदि तथा अन्तमें 'विष्णवे नमः' तीन बार उच्चारण करनेकी प्रथा रखी है; परंतु बड़े खेद तथा दुर्दैवकी बात है कि आज हमारे समाजके नेता तथा अनेक विद्वान् भी भगवन्नाम-स्मरणको अर्थवाद ही मानते हैं।

अर्थवादकी रूपरेखा—जो वाक्य अर्थवादके लक्षणके अनुरूप हो, उसीको अर्थवाद कहा जा सकता है, केवल किसीके कथनमात्रसे नहीं। नाम-जप-यज्ञसे अन्य यज्ञकी श्रेष्ठता माननेवाले 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' भगवान्की इस उक्तिको 'अर्थवाद' कहते हैं। पर ऐसा माननेपर तो सम्पूर्ण गीताके दशम अध्याय—विभूतियोगको ही अर्थवाद कहना पड़ेगा। पुराणोंमें नाम-महिमा भरी पड़ी है। नाम-महिमाको अर्थवाद समझना अत्यन्त पाप है, ऐसा भी वहाँ स्पष्ट उल्लेख है। अर्थवाद पारिभाषिक शब्द है। इसका स्पष्टीकरण पूर्व-मीमांसामें दिया है। पूर्वमीमांसामें वेद-वाक्य दो प्रकारके माने गये हैं—एक मुख्य वाक्य और दूसरा अवान्तर वाक्य। वेदोंमें कुछ आदेश प्रवृत्तिपरक हैं तो कुछ निवृत्तिपरक हैं। मानवको कुछ कर्म करनेका आदेश है तो कुछ कर्म करनेका निषेध है। इस प्रकारके विधि-वाक्योंका पाप-पुण्यरूप फल भी बतलाया गया है। ऐसे विधि-वाक्योंको ही मुख्य वाक्य कहा है। इसके विपरीत जिन वाक्योंमें इस प्रकारके विधिका कोई कथन नहीं है और जो केवल विधिसे सम्बन्धित यजमान, देवता, सामग्री, द्रव्य आदि उपयुक्त बातोंका वर्णन करते हैं, उन्हें अवान्तर वाक्य कहते हैं। इन अवान्तर वाक्योंको ही पूर्वमीमांसामें 'अर्थवाद' कहा है। अवान्तर वाक्यमें विधिका कथन नहीं होता। परंतु उनमें विधि-वाक्यकी प्रशंसा होती है और वे मानवको कर्ममें प्रवृत्त करते हैं; अतएव वे निरर्थक नहीं हैं, विधि-वाक्योंसे उनका धनिष्ठ सम्बन्ध है। सारांश, अर्थवादमें कोई विधि-आज्ञा नहीं होती तथा न कोई स्वतन्त्र फल-प्राप्तिका कथन होता है। 'अर्थवाद'का स्पष्टीकरण इस प्रकार पूर्वमीमांसामें किया गया है।

अर्थवादके प्रकार—वेदोंमें अर्थरूप वाक्योंके तीन ही

प्रकार हैं—(१) अनुवादरूपवाक्य, (२) गुणरूप वाक्य और (३) भूतार्थरूप वाक्य।

(१) **अनुवादरूप वाक्य**—श्रुतिमें कुछ ऐसे वाक्य हैं, जिनके कथनका अनुभव प्रत्यक्षरूपसे या प्रत्यक्ष प्रमाणसे मानव कर सकता है; ऐसे श्रुति-वाक्य 'अनुवादरूप' अर्थवाद कहे जाते हैं। उदाहरणार्थ—

अग्निर्हिमस्य भेषजम्।

—यह श्रुति-वाक्य है। अग्निसे शीतका निवारण होता है, इसका अनुभव प्रत्यक्ष प्रमाणसे होता है। श्रुति-वचन केवल प्रत्यक्ष अनुभवका पुनः उच्चार है, अनुवाद है; इसलिये यह वाक्य 'अनुवादरूप' अर्थवाद है।

(२) **गुणरूप वाक्य**—वस्तुको आँखोंसे देखते ही जिन गुणोंका बोध होता है, उसके विरुद्ध गुणोंका बोध उस वस्तुके वर्णनसे होता है, तब उस वाक्यको गुणरूप कहते हैं। जैसे—'यजमानः प्रस्तरः' यह श्रुति-वाक्य है। इसका शब्दार्थ है कि यजमान पत्थर है। परंतु वास्तविकतामें यजमान पत्थर नहीं होता। यज्ञमें चैतन्य-युक्त मानव यजमानके रूपमें दिखायी देता है। अतः यह श्रुति-वाक्य प्रत्यक्षका विरोधक होनेसे उसे 'गुणरूप' अर्थवाद कहते हैं।

(३) **'भूतार्थरूप वाक्य'**—

'आदित्यः पुरुषो भूत्वा कुन्तीमुपजगाम'।

—यह श्रुतिवाक्य भूतार्थरूप वाक्य है। 'भूतार्थरूप' अर्थवादमें इतिहासका कथन होता है।

उपर्युक्त अर्थवादसम्बन्धी विवेचनसे यह स्पष्टरूपसे ज्ञात होता है कि नाम-महिमा अर्थवाद नहीं है। यदि उसे अनुवादरूप अर्थवाद कहें, तो वह प्रत्यक्ष प्रमाणगम्य नहीं है। नाममाहात्म्यसम्बन्धी शास्त्र-वचन प्रत्यक्ष अनुभवके अनुवादमात्र नहीं हैं। नाममहिमाको गुणरूप अर्थवाद भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि गुणवादात्मक अर्थवादमें भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि गुणवादात्मक अर्थवादमें प्रत्यक्ष प्रमाणके विरुद्ध प्रतिपादन होता है। परंतु नाम-माहात्म्यमें प्रत्यक्ष प्रमाणके विरुद्ध भी कथन नहीं होता। अन्तमें भूतार्थवादकी कसौटीपर परखकर देखें तो भी नाम-महिमा अर्थवाद सिद्ध नहीं होती। कारण, भूतार्थवादमें केवल ऐतिहासिक घटनाओंका वर्णन होता है। अर्थवादमें विधिसे प्राप्त फलका वर्णन स्वतन्त्र रूपसे नहीं होता।

संख्या ७]

परंतु नाम-शास्त्रमें नाम-स्मरणकी विधि है तथा उससे प्राप्त स्वतन्त्र फलका भी प्रतिपादन है। नाम-स्मरणसे सब पापोंका क्षालन होता है तथा अन्तमें भगवत्प्राप्ति भी होती है। इसलिये शास्त्र-विचारसे भी भगवन्नामस्मरण अर्थवाद नहीं है।

वचन-विरोध—नाम-माहात्म्य-सम्बन्धी संतोंके वचनों-का यदि परिशीलन किया जाय तो यह दिखायी देगा कि उनके एक दूसरेके कथनमें विरोध है। एक स्थानपर उनका कथन है कि केवल भगवन्नाम-स्मरणमात्रसे सब पापोंका क्षालन होता है और अन्तमें ईश्वर-साक्षात्कार होता है; परंतु अन्य स्थानपर कुछ संतोंका इसके विपरीत कथन है। वे कहते हैं कि श्रद्धा और भाव-विरहित भगवद्भजन केवल जल्पना है, जिह्वाको व्यर्थ कष्टमात्र है। परंतु ऊपरके शास्त्रीय विवेचनसे यह सिद्ध है कि नाममाहात्म्य अर्थवाद नहीं है। अतः संतोंके ये परस्परविरोधी कथन वास्तविकरूपसे विरोधी नहीं हैं, वे साधारण व्यक्तिको विरोधी प्रतीत होते हैं। मूलतः उनमें समन्वय है। अब इस समन्वयकी थोड़ी चर्चा करें।

वचन-संगति—भगवन्नामस्मरणसे दो प्रभावी फल प्राप्त होते हैं—समस्त कृत पापोंका क्षालन होता है और अन्तमें भगवत्प्राप्ति होती है। नामस्मरण श्रद्धायुक्त अन्तःकरणसे करो या अश्रद्धासे करो, उससे प्रथम फलकी प्राप्ति होती है, यानी सब पापोंका क्षय होता है। श्रीतुकाराम महाराजका वचन—

चाल केलासी मोकळा । म्हणे विठ्ठल वेळोवेळा ॥ १ ॥

तुज पापचि नाही ऐसे । नाम घेता जवळी वसे ॥ २ ॥

इस अर्भगमें महाराजने यह बतलाया है कि नाम-स्मरणमें पापक्षालन करनेका कितना अद्भुत सामर्थ्य है ! जो विषयासक्त हैं, किसी प्रकारका संयम नहीं रख सकते, ऐसे पापर जीवोंके लिये यह उपदेश है। हे मानव ! तू संसारमें चाहे जैसा बर्ताव कर, परंतु समय-समयपर भगवान्का नाम अवश्य लेता रह। इससे तुझे यह लाभ होगा कि संचित पापोंका क्षय होगा और परिणामवश तू दुर्गतिसे बचेगा।

नामस्मरणकी लगन लगनेसे मनुष्यकी वृत्ति बदलती है। मानव धीरे-धीरे अधार्मिकसे धार्मिक बनता है। ऐसा संत-माहात्माओंका प्रत्यक्ष अनुभव है।

जान आदि कवि नाम प्रतापू । भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ॥

(रा० च० मा०)

नामस्मरणसे पापक्षय होता है, परंतु तत्काल भगवत्प्राप्ति नहीं होती। उसके लिये अधिक प्रयत्नोंकी आवश्यकता है। नामस्मरणके साथ सदैव श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इष्ट देवताका ध्यान भी उतना ही आवश्यक है।

नाम रूपा नहीं मेळ । अवधा वाचेचा गोंधळ

(एकनाथ)

रूप ग्यान नहीं नाम विहीना ।

(रा० च० मा०)

इंद्रिया सी नेम नाही । मुखी नाम करीळ काई ॥

(एकनाथ)

मुखी नाम त्या काम बाधू शके ना

(रामदास ८७)

इन संतोंकी उक्तियोंमें केवल विरोधाभास है। वास्तवमें नामस्मरणका महत्त्व ही उनमें प्रतिपादित है। भगवन्नाम-स्मरणसे पापक्षय नहीं होता, ऐसा किसीका भी कथन नहीं है। उनकी उक्तिका आशय यह है कि रामनामके साथ-साथ यदि पापकर्म भी करता रहे तो उसके पूर्वकृत पापोंका क्षालन होगा; परंतु नामस्मरणके बाद किये हुए पापोंका परिणाम भविष्यमें भोगना ही पड़ेगा। पाप करते रहनेसे चित्त-शुद्धि नहीं हो सकती और जबतक चित्त-शुद्धि नहीं होती, तबतक भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः मनुष्य-जीवनका अन्तिम लक्ष्य जो ईश्वरसाक्षात्कार है, उसके लिये नाम-स्मरणके साथ मनुष्यको भगवान्का ध्यान भी करना चाहिये। भगवान्के ध्यानमें मनको संलग्न करना कठिन है—

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।

(गीता ६।३४)

भगवान्ने ही मनको दुर्निग्रह और चल माना है। इसलिये उसे काबूमें लानेके लिये अभ्यास और वैराग्य—ये दो उपाय बतलाये गये हैं। मन सांसारिक विषयोंमें लिपटा हुआ रहता है, अतः प्रथम धीरे-धीरे नामस्मरणके साधनसे उसकी यह आसक्ति कम करनेकी कोशिश करनी चाहिये। मनको चिन्तन करनेके लिये विषय चाहिये, अतएव सांसारिक विषयोंके स्थानपर उसे भगवत्-चिन्तन करनेकी आदत शनैः-शनैः डालनी चाहिये—यही अभ्यास है। परिणामवश कालान्तरसे

साधकके मनमें विषय-वैराग्य और भगवत्प्रेमका उदय होने लगता है। अतः अविरत भगवन्नाम-स्मरण होना चाहिये। इस मार्गका अवलम्बन करनेसे कुछ समय अवश्य लगता है, परंतु इच्छित फल निश्चितरूपसे प्राप्त होता है।

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।

(गीता ६।४५)

इस कालावधिको कम करनेका एक ही उपाय है—
इन्द्रियनिग्रह और मनोनिग्रहपूर्वक भगवन्नाम-स्मरण।

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।

बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥

अजामिलकी कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है। पुत्रनिमित्तसे मरते समय उसके मुखसे भगवान्का नाम निकला। केवल अन्त समयमें भगवन्नामोच्चार करनेसे अजामिलके सारे पाप नष्ट हो गये और दुष्प्रवृत्तिका नाश होकर उसमें सत्-प्रवृत्तिका उदय हो गया। मोक्षमार्ग उसके लिये सुलभ हो गया। यदि मरते समय उसकी दृष्टि पुत्रकी ओर न होकर परमात्माकी ओर होती तो सकृन्नामस्मरणसे भी उसे निश्चितरूपसे मोक्षकी प्राप्ति होती।

अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।

यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

(गीता ८।५)

भरणों जथा जे आठवे। तो तेचि गती ते पावे ॥

(शानेश्वरी ८।७६)

नाम-स्मरणसे भगवत्प्रेम उत्पन्न होता है। परंतु इसकी प्राप्ति आसानीसे नहीं होती। उसके लिये विशेष साधनकी आवश्यकता है।

बहुला सुकृतांची जोडी। म्हणुनि विट्ठली आवडी ॥

(तुकाराम)

अनेक जन्मोंके पुण्यसे भगवत्प्रेमका उदय होता है। भगवत्प्रेमके लिये साधकको वीर पुरुषके सदृश प्राणार्पण करनेकी भी तैयारी रखनी पड़ती है। यही भक्तिमार्गका वीर-रस है। नामस्मरणसे ही साधक धीरे-धीरे इस अवस्थातक पहुँच सकता है।

निष्ठवंत भाव भक्ताचा स्वधर्म। निधार हे वर्म चुको नये ॥

अतः साधकको दृढ़निश्चयी तथा निष्ठावान् भगवद्भक्त होना चाहिये। उसका भगवच्चरणारविन्दमें नितान्त निष्ठा, श्रद्धा एवं अनन्य भक्ति-प्रेम होना चाहिये।

निश्चयाचे बल। तुका म्हणे तेचि फल ॥

(तुकाराम)

तुकाराम महाराजका कहना है कि कोई भी काम करने का दृढ़ संकल्प तथा दृढ़ निश्चय करनेपर उस कार्यका इच्छित फल कर्ताको अवश्यमेव मिलता है। यहाँ यह स्पष्ट करा देना आवश्यक है कि संकल्पित कार्यमें सफलता प्राप्त होते ही कर्ताका अहंकार जाग्रत् हो उठता है। अहंकार-बुद्धि भगवत्प्रेमके मार्गमें एक बड़ी भारी बाधा है। अतः इससे सदा बचे रहकर साधकको नित्य-निरन्तर अहंकाररहित रहना चाहिये।

दर्शनमें ही सुख है

नैना नाहिनै ये रहत।

जदपि मधुप ! तुम नँदनंदन कौ निपटहि निकट कहत।

हृदय माँझ जो हरिहि बतावत, सीखौ नाहि गहत ॥

परी जु प्रकृति प्रगट दरसन की, देख्यौइ रूप चहत।

सूरदास प्रभु विन अवलोके सुख कोई न लहत ॥

—सूरदास

धार्मिक भावनाके प्रचारकी आवश्यकता

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री टा० स्टी० इलियटका कहना है कि प्राचीनकालमें जब किसी धर्मका पतन होता था, तब साथ-ही-साथ किसी दूसरे धर्मका उत्थान देखनेमें आता था; परंतु आजके युगकी यह विशेषता है कि सभी धर्म पतनको प्राप्त हो रहे हैं और उनका स्थान लेनेके लिये कोई नया या पुराना धर्म नहीं आ रहा है।

कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ अमेरिकन लिटरेचरने आधुनिक युगमें ईसाइयोंकी धार्मिक भावना शिथिल पड़ जानेके तीन कारण बतलाये हैं। १—नयी खोजें, जिन्होंने बाइबिलमें वर्णित बहुत-सी बातोंको मिथ्या सिद्ध कर दिया है और इस प्रकार उसके स्वतःप्रमाण होनेमें संदेह उत्पन्न कर दिया है। २—मार्क्स और डार्विनके सिद्धान्तोंका व्यापक प्रचार। ३—ईसाई धर्मकी संकीर्णता। देखना है, ये सब बातें आर्य-धर्मपर कहाँतक लागू होती हैं।

बाइबिलके बहुत-से सिद्धान्त—उदाहरणतः यही कि सृष्टि केवल ६००० वर्ष पुरानी है, मिथ्या सिद्ध हो चुके हैं; परंतु आर्य आर्ष ग्रन्थोंके सिद्धान्त—जैसे चन्द्रमाकी समुद्रसे उत्पत्ति, वायुयान, ब्रह्मास्त्र, अन्तर्लोकयात्रा, वनस्पतियोंमें जीवका होना, समस्त जड़ पदार्थोंके पीछे एक ही तत्त्वका होना—अब नयी खोजोंके द्वारा सत्य सिद्ध होते जा रहे हैं। अतः नयी खोजोंसे आर्य-धर्मको कोई भय नहीं!

साम्यवादके जन्मदाता कार्लमार्क्स (१८१८-८३) जन्मतः यहूदी थे। वे अर्थको ही मनुष्यकी समस्त प्रवृत्तियोंका मूल मानते हैं। उनके मतानुसार कुछ थोड़े-से धूर्त लोग अर्थोपार्जनके समस्त साधनोंपर अपना अधिकार करके शेष बहुसंख्यक जनताको पशुओं-जैसा जीवन व्यतीत करनेपर विवश करते हैं। इस प्रकार समाज 'शोषक' और 'शोषित'—दो भागोंमें बँट जाता है। अतः शोषितोंको चाहिये कि वे संगठित होकर शोषकोंको उखाड़ फेंकें और सारी शासन-सत्ता अपने अधिकारमें कर लें। मार्क्सका यह सब कहना नितान्त भ्रामक है। अर्थ मनुष्यकी मूल प्रवृत्ति नहीं है। वह केवल कामनाओंकी पूर्तिका एक मुख्य साधन है, साध्य नहीं। धीरे नास्तिक और भोगवादी भी काम, विषय-प्रेम और अहंके चक्करमें अर्थको प्रसन्नतापूर्वक तिलाञ्जलि दे देते

हैं और न समाज शोषक और शोषितके आधारपर ही दो दलोंमें बँटा होता है। धर्म, जाति और राष्ट्रीयताको लेकर एक दलके शोषक और शोषित मिलकर दूसरे दलके शोषकों और शोषितोंके विरुद्ध खड़े हो जाते हैं। इसी कारण मार्क्स धर्म, जाति और राष्ट्रीयताके विरुद्ध है; क्योंकि इनके कारण सारे शोषितोंका एक अलग संगठन नहीं बन पाता।

साम्यवादियोंका यह भी कहना है कि धर्म और धर्माचार्योंने सदैव ही शोषकवर्गका साथ दिया है, जब कि वस्तुस्थिति यह है कि धर्म ही सदैव सत्ताधारियोंके अन्यायके विरुद्ध लड़ता आया है। भारतमें मुगल अत्याचारके विरुद्ध उठनेवाले राजपूत, मरहठा, सिक्ख और जाट विद्रोह-धर्मकी पृष्ठभूमिपर खड़े थे। सन् १८५४ की क्रान्तिके पीछे प्रबल धार्मिक भावना काम करती थी। वर्तमान स्वराज्य आन्दोलनके जन्मदाता लोकमान्य पण्डित बाल गङ्गाधर तिलककी धर्म-निष्ठसे कौन परिचित नहीं होगा। महाराष्ट्र और बंगालके क्रान्तिकारी गीता हाथमें ले-लेकर फाँसीपर चढ़ते थे। इंगलैंडका प्रजातन्त्र-आन्दोलन वहाँके धार्मिक आन्दोलनका एक अङ्ग था। अमेरिकामें दासप्रथाविरोधी आन्दोलन धार्मिक भावनासे उठा था। महात्मा गांधीके आध्यात्मिक गुरु थोरोने तो दासप्रथाके विरुद्ध सत्याग्रहतक किया था और 'सिविल डिसेओबिडियन्स' नामका अपना प्रसिद्ध निबन्ध लिखा था (१८४७), 'अङ्किल टाक्स कैविन' नामकी जिस पुस्तकने दासप्रथाके विरुद्ध सबसे अधिक लोकमत जाग्रत किया, उसकी लेखिका श्रीमती हैरियर वीचर स्टो (१८११-९६) इतनी संयमशील और धर्म-परायण थीं कि वे नाटक देखनातक पाप समझती थीं और बड़ी कठिनाईसे उन्होंने अपनी पुस्तकके आधारपर नाटक खेले जानेकी आज्ञा दी थी। रूसमें जारके अत्याचारोंके विरुद्ध जो आन्दोलन चले थे, उनका प्रारम्भिक नेतृत्व पादरियोंने किया था।

धार्मिक अर्थव्यवस्था साम्यवादसे भिन्न है। वह मुख्यतः दो सिद्धान्तोंपर आश्रित है—जो व्यक्ति समाजकी जितनी

१. गाइड टू ग्रेट ग्रेज: लेखक जोसेफ शिप्पे।

२. प. ट्रेजरी ऑफ ग्रेट रिपोर्टिंग: सम्पादक लुई शिडर।

सेवा करे, उसे उतना ही समाजसे लेनेका अधिकार है और क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति न तो समाजकी एक-सी सेवा ही करता है और न सभी व्यक्तियोंकी सेवा करनेकी क्षमता ही एक-सी होती है, अतः विषमता समाजकी एक स्वाभाविक स्थिति है। परंतु यह विषमता पूँजीवादद्वारा उत्पन्न विषमतासे सर्वथा भिन्न है। पूँजीवादने जिस विषमताको जन्म दिया है, वह अस्वाभाविक और अन्यायपूर्ण है; क्योंकि इस व्यवस्थामें जो समाजकी कुछ भी सेवा नहीं करते वे तो लखपति और करोड़पति बने हुए हैं और जिनकी सेवाके बलपर समाज जीवित है, वे भूखों मरते हैं। परंतु इस अस्वाभाविक और अन्यायपूर्ण विषमताकी चिकित्सा उतनी ही अस्वाभाविक और अन्यायपूर्ण समता नहीं है। धार्मिक अर्थ-व्यवस्थाका दूसरा सिद्धान्त है संयम, त्याग और दान, जिसे न तो पूँजीवाद मानता है न साम्यवाद। आजकी अर्थव्यवस्थामें सभी लोग अपनी अनियन्त्रित कामनाओंकी पूर्तिके निमित्त अधिकाधिक अर्थसंचयमें लगे रहते हैं। जो सफल हो जाते हैं, वे शोषक कहलाते हैं और जो सफल नहीं हो पाते, वे शोषित। साम्यवादी सरकारमें शोषितोंके नामपर सारी सत्ता मुट्ठीभर नेताओंके हाथमें आ जाती है और संयमके अभावमें ये नेता भी अधिकाधिक अर्थ-संचय तथा भोगवासनाकी पूर्तिमें लग जाते हैं और फिर वही चक्र चल पड़ता है।

मार्क्सके सिद्धान्त कितने ही खोखले क्यों न हों, जबतक समाजमें आजकी अन्यायपूर्ण विषमता बनी रहेगी और लोगोंकी भोग-कामनाएँ इसी प्रकार अनियन्त्रित रहेंगी, तबतक साम्यवादके प्रति जनताका आकर्षण बना रहेगा। समाजवादसे आशा बँधी थी कि वह साम्यवाद और पूँजीवाद दोनोंके चंगुलसे जनताको छुड़ानेमें सफल होगा परंतु धर्माश्रित न होनेके कारण समाजवादी व्यवस्था भी उत्पीड़नमें परिवर्तित हो गयी। समाजवादके नामपर जनताके स्वतन्त्र व्यवसायोंको नष्ट करके अर्थोपार्जनके सारे साधनोंपर राज्य अधिकार कर लेता है और शनैः-शनैः सारी जनताको वेतन-भोगी बननेपर विवश करता है। समाजवादी शासनमें वेतन सोने-चाँदीमें न मिलकर कागजी मुद्राके रूपमें मिलता है, जिसे समाजवादी सरकार अंधाधुंध छापकर वस्तुओंके भाव आकाशमें पहुँचा देती है, जिससे वेतनभोगी जनता भुखमरीके निकट आ जाती है और

समाजवादी सरकार सारा दोष व्यापारियोंके सिर मढ़कर अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ लेती है।

सर चार्ल्स राबर्ट डार्विन (१८०९-८२) इंग्लैंडके निवासी थे। वे बनना चाहते थे पादरी, परंतु बन गये वैज्ञानिक विकासवादके जन्मदाता। डार्विनके अनुसार जड़ ही विकास करते-करते वनस्पति, जलचर, थलचर और वानर होता हुआ मानवके रूपमें आया है। डार्विनके विकासवादने प्राचीनताके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न की है, जो सभी धर्मोंके लिये भयावह सिद्ध हुई है; परंतु डार्विनके सिद्धान्त केवल अनुमान हैं, वे सिद्ध नहीं हैं। अनेक प्रश्नोंका डार्विनके यहाँ कोई उत्तर नहीं। क्या आज भी वानर मानव बनता जा रहा है? क्या मानव भी विकसित होकर किसी भूत या देव-जैसी अन्य योनिको प्राप्त होगा? सभी वानर मानव क्यों नहीं बने? यह विकास कभी रुकना या नहीं? एक विशिष्ट समयपर ही जड़में क्यों परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ? इत्यादि। पूँज्यपाद स्वामी कर्पात्रीजीने अपनी अप्रमूल्य कृति 'मार्क्सवाद और राम-राज्य' में मार्क्स और डार्विनका बहुत ही युक्तियुक्त खण्डन किया है। ऐसी पुस्तकोंका व्यापक प्रचार होना चाहिये।

कुछ विद्वान् डार्विनके विकासवादसे उल्टे ईश्वर और धर्मकी सत्ता सिद्ध करनेमें सहायता लेते हैं। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिकाके अनुसार डार्विन सृष्टि-रचनाके पीछे एक महान् उद्देश्य मानता है विकास और क्योंकि जड़ निरुद्देश्य होता है, उद्देश्य केवल चैतन्यमें ही हो सकता है; अतः सिद्ध हुआ कि सृष्टि-रचनाके पीछे कोई चैतन्य सत्ता अवश्य है।

कुछ विद्वान् धार्मिक भावनाओंको आघात पहुँचानेवालोंमें मार्क्स और डार्विनके साथ-साथ फ्रायडका भी नाम लेते हैं।

सिगमण्ड फ्रायड (१८५६-१९३९) वायनाके एक यहूदी डाक्टर थे। वे कामको ही मनुष्यकी मूल प्रवृत्ति मानते हैं। उनके सिद्धान्तोंने अनाचारको बहुत प्रोत्साहन दिया है; परंतु बहुत-से विद्वान् कहते हैं कि फ्रायड अनाचारके समर्थक नहीं थे। कोलम्बियाके समर्थ समालोचक श्री० लियोनस ट्रिलिंग (१९०५—) लिखते हैं कि फ्रायडने केवल यह कहा है कि मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति पापकी ओर होती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे पापका

संख्या ७]

समर्थन भी करते हैं। 'If Freud discovered the darkness for Science he never endorsed it.'

फ्रायडका आशय चाहे कुछ भी रहा हो, नयी मनो-वैज्ञानिक खोजोंने उनके तथाकथित सिद्धान्तोंकी धजियाँ उड़ा दी हैं। सम्भवतः इसी कारणसे केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ अमेरिकन लिटरेचरने धार्मिक पतनके कारणोंमें उनका नाम नहीं गिनाया।

ईसाई-धर्मके अनुसार कोई भी व्यक्ति—चाहे वह कितना ही सदाचारी, त्यागी, तपस्वी और लोकसेवक क्यों न हो—जबतक प्रभु ईसापर विश्वास नहीं लाता, मुक्ति नहीं पा सकता। ईसाई-धर्म-प्रचारक साम, दान, दण्ड, भेद—किसी-न-किसी प्रकारसे सारे विश्वको ईसाई बनानेकी चेष्टा करते रहते हैं* और दूसरे धर्मोंको अनादरकी दृष्टिसे देखते हैं। के० हि० आफ अमेरिकन लि० के अनुसार ईसाई-धर्मकी ये बातें बढ़ती हुई विश्ववन्धुत्वकी भावनाके कारण लोगोंको खटकने लगी हैं; परंतु इस विषयमें हिंदूधर्म बहुत उदार है। वह अपना धर्म दूसरोंपर नहीं लादता और दूसरे धर्मों, उनके मान्य ग्रन्थों, उपासना-गृहों एवं महापुरुषोंको भी समुचित मान देता है और प्रत्येक धर्मके अनुयायियोंको पूरी-पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता।

प्रसिद्ध साहित्यिक श्रीटामस स्टीन्स इलियट (१८८८-१९६५) धर्मके पतनका एक बड़ा कारण आधुनिक साहित्यकी धर्म और सदाचारहीन वृत्ति बतलाते हैं। परंतु यूरोपका साहित्य तो पहले भी धर्म एवं सदाचारसे शून्य व्यक्तियोंके हाथोंमें रहा है। प्रसिद्ध इटैलियन साहित्यिक अरिथोस्टोको दुराचार-के अपराधमें जीवित जलाया गया था। फ्रान्सीसी उपन्यास-कार बालज़क और जर्मन कवि गेटेकी व्यभिचार-लीलाएँ प्रसिद्ध ही हैं। शेक्सपियरकी ही टक्करके और उनके ही, समकालीन एक अंगरेजी नाटककार मालों एक सरायमें किरायेके पैसोंपर लड़ते हुए मारे गये और दूसरे बेन जानसन एक अभिनेता-की हत्याके अपराधमें वर्षों बंदी-गृहमें सड़ते रहे। अंगरेजीमें निबन्ध-साहित्यकी नाँव डालनेवाले बेकन घूसके अपराधमें जेल गये। प्रसिद्ध अमरीकी कवि वाल्ट हिटमैनका आचरण इतना

* आजकल तो ईसाई बनानेका कार्य बहुत बड़े पैमानेपर हो रहा है। करोड़ों रुपये तथा हजारों आदमी बेन-केन प्रकारेण ईसाई मतके प्रचारमें लगे हैं और लाखों भारतीयोंको ईसाई बना रहे हैं इसका परिणाम बहुत ही भयानक होगा।

लोकनिन्दित था कि सम्प्रान्त अमरीकी महिलाएँ अपने घरोंमें उनका आना-जाना अच्छा नहीं समझती थीं। विश्व-साहित्यके ज्योतिःस्तम्भमें चमकनेवाले आस्कर वाइल्ड दुराचारके अपराधमें जेल गये और फिर आत्मघात करके मर गये। इस्लाममें भी साहित्य मुख्यतः इस्लाम-विरोधी रहा है। कइर मुसलमान काव्यसे इतना चिढ़ते हैं कि औरंगजेबने कविता करना बंद करा दिया था। दासल अलूम देववंदसे जो मुहम्मद साहबकी जीवनी छपी है, उसमें उनका एक गुण यह भी बतलाया गया है कि वे कभी कविता-पाठ नहीं करते थे।

हमारे कहनेका यह आशय नहीं है कि यूरोप व इस्लाम-में ऐसे साहित्यिक हुए ही नहीं, जिनकी लेखनीने धर्म और सदाचारको बल दिया हो। डैंटे, शेक्सपियर, रस्किन, कार्डिनलन्यूमन, टालस्टाय, एमर्सन, थोरो और स्वयं इलियट तथा शेख सादी, मौलाना रूम तथा और भी बहुत-से साहित्यिक हैं, जिन्होंने अपनी लेखनीद्वारा जनताको ऊँचा उठानेका प्रयत्न किया; परंतु मुख्य साहित्यिक-धारा धर्म और सदाचारकी विरोधिनी ही रही है। प्राचीन कालमें क्योंकि शिक्षा धर्माचार्योंके अधीन थी, अतः धर्महीन साहित्यको पाठ्य-क्रममें स्थान नहीं था और इस कारण उसका दुष्परिणाम देखनेमें नहीं आता था।

यह हिंदूधर्मकी ही विशेषता है कि उसका साहित्य धर्मका विरोधी न रहकर सदैव धर्म और सदाचारको बल प्रदान करता आया है। हमारे अधिकांश साहित्यिक भगवद्भक्त, साधु और संन्यासी रहे हैं। धर्म और साहित्यका सामञ्जस्य स्थापित करनेमें सफल होनेके कारण ही सम्भवतः आर्य संस्कृति अबतक जीवित है। हमारी संस्कृति साहित्यिक कसौटीपर खरी उतरी है, परंतु अब पिछले ५० वर्षोंसे विदेशी कुसंगतिके कारण हमारा साहित्य भी धर्म और सदाचारका विरोधी होता जा रहा है। उच्चकोटिके सरस एवं कलापूर्ण साहित्यमें धर्मानुकूलसाहित्यके नामसे केवल प्राचीन साहित्य है। उसके व्यापक प्रचारकी आवश्यकता है; परंतु इतनेसे ही काम नहीं चल जायगा। नवीन मौलिक साहित्यके सृजनकी भी उतनी ही आवश्यकता है। इलियटके अनुसार जिस जातिमें मौलिक साहित्यके सृजनकी क्षमता नहीं रहती, वह अपने प्राचीन साहित्यसे भी हाथ धो बैठती है।

साहित्यके अतिरिक्त मनोरञ्जनके साधनोंका भी धर्मके साथ समन्वय करना होगा। इस्लाम मनोरञ्जनके साधनोंसे

कभी सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर सका। नृत्य, गायन, वाद्य, नाटक—सब इस्लाममें निषिद्ध हैं। यूरोपमें जब ईसाई-धर्म फैला तो उसने प्रचलित नाटक और रङ्ग-मञ्चका विरोध किया। फलस्वरूप पुराने नाटक बंद हो गये और नये धार्मिक नाटक लिखे जाने लगे; परन्तु ईसाई-धर्मका प्रचार करनेवाले ये नये नाटक न तो रोचक ही थे न कलापूर्ण। धीरे-धीरे नाटक फिर स्वतन्त्र हो गया। वह पहले सेक्युलर हुआ और फिर धर्मविरोधी होने लगा। सोलहवीं-सत्रहवीं शतीमें फिर यूरोपमें, विशेषतया इंग्लैंडमें नाटकविरोधी अभियान चला और १६२९ में इंग्लैंडमें जब प्रथम बार एक नाटकमें कुछ महिलाओंने अभिनय किया, तब वहाँकी जनता बुरी तरहसे भड़क उठी। The idea of women appearing on the stage was new and shocking to English spectators—अँगरेज जनताके लिये स्त्रियोंको अभिनय करते देखना एकदम असहनीय था। (उस समयतक यूरोपमें स्त्रियोंका अभिनय भी पुरुष ही करते थे) और २ सितम्बर १६४२ की विज्ञप्तिमें पार्लियामेन्टने नाटक खेलना दण्डनीय ठहराया। १६४८ में इंग्लैंडके सारे नाटकघर ढहा दिये गये और अभिनेताओंको पकड़-पकड़कर सार्वजनिक रूपसे कोड़े लगाये गये और प्रत्येक दर्शकपर ६ शिलिंग जुर्मानाका नियम बना। १७८७ से पूर्व संयुक्त राष्ट्र, अमरीकामें भी नाटक खेलना दण्डनीय अपराध था। धीरे-धीरे नाटकपर लगे ये सारे प्रतिबन्ध हट गये और शनैः-शनैः वह फिर अधर्म और दुराचारके प्रचारमें लग गया।

आर्य संस्कृतिकी एक विशेषता यह भी है, इसने मनोरञ्जनके साधनोंका भी धर्मके साथ सामञ्जस्य स्थापित करनेमें सफलता प्राप्त की है। हमारे यहाँ नाटकका उद्देश्य देवताओंकी प्रसन्नता प्राप्त करना बतलाया गया है; परन्तु आज मनोरञ्जनका मुख्य साधन सिनेमा है, जो अधर्म और दुराचारके प्रचारमें आकाश-पाताल एक किये हुए है। सिनेमामें देशकी जनताका जो व्यापक घोर नैतिक पतन हो रहा है, वह बड़ा ही भयानक है। इस ओर देशके सभी शुभचिन्तकोंको, विशेषकर धर्मप्रेमी बन्धुओंको ध्यान देना आवश्यक है।

धर्मके विभिन्न अङ्गों—कर्मकाण्ड, अध्यात्म, तत्त्वचिन्तन, सदाचार और राष्ट्रीयतामें जब परस्पर विरोध उत्पन्न हो जाता है, तब धर्मका भयानक रूपसे पतन होने लगता है। गीताने इन सभीके परस्पर विरोधको मिटानेका सफल प्रयत्न किया है। उपनिषदों और तुलसीके मानसकी चेष्टा अध्यात्म और कर्मकाण्डके विरोधको दूर करनेकी रही है। भगवान् महावीर और गौतम बुद्धने कर्मकाण्ड और सदाचारके विरोधको दूर करके आर्य जातिको नवजीवन प्रदान किया था। समर्थ स्वामी रामदास और लोकमान्य पं० वाल गङ्गाधर तिलकने धर्मको राष्ट्रीय जीवनका प्रेरक बनाया; परन्तु जिन लोगोंके हाथमें आज हमारा राजनीतिक नेतृत्व है, वे हमारे धर्मको—विशेषतया वर्ण-व्यवस्थाकी राष्ट्रीयताका विरोधी बतलाते हैं। अब यह धर्माचार्योंका कर्तव्य है कि वे इस भ्रमको दूर करनेका विशेष प्रयत्न करें।

चितचोर

नंद के लाल हर्यौ मन भोर ।

हौं अपनी मोतिन लर पोवति, काँकर डारि मयौ सखि भोर ॥
बंक विलोकनि, चाल छवीली, रसिक सिरोमनि नंदकिसोर ।
कहि, कैसेँ मन रहत श्रवन सुनि सरस मधुर मुरली की घोर ॥
इंदु गोविंद वदन के कारन चितवन कौं भए नैन चकोर ।
(जैश्री) हित हरिबंस रसिक रस जुवती तू लै मिलि सखि ! प्रान अँकोर ॥

—श्रीहितहरिवंश महाप्रभु

महाराज पृथु

[सस्ता-महँगीका कारण—एक विश्लेषण]

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

प्रायः इधर दो वर्षके भीतर ही वस्तुओंका मूल्य पुनः दूना जँचा उठ गया। 'Modern Review'-LXVIII. 10 (October 1943) में भी देवज्योति वर्मनके लेखमें, 'सिद्धान्त' ४१२४; ७१२; ९११५ के लेखोंमें तथा Journal of the Asiatic Society of Bengal, 1935, Vol. I, Letter No. 2, Page 235 इत्यादिमें मूल्योंके ऐतिहासिक आँकड़े दिये हैं। 'कल्याण' ३८।१२ के मेरे 'दुर्मिक्ष' शीर्षक लेखमें भी कुछ आँकड़े हैं। श्री० आर० सी० मजूमदार, श्री एच० सी० रायचौधुरी आदिकी Advanced History of India, श्रीईश्वरीप्रसादके 'मध्ययुगीन इतिहास', श्रीराम लालकी 'भारतीय इतिहासकी रूपरेखा', रामचरणजीकी 'भारतकी युगयात्रा' (१-२) आदिमें ये आँकड़े विस्तारसे दिये हैं। तदनुसार अलाउद्दीन खिलजीके राज्यकालमें पैसे-बो जीतल तथा रुपयेको 'तनका' कहा जाता था।* सभी ऐतिहासिकोंने उस समयकी मूल्यतालिका निम्नलिखित प्रकार-से लिखी है—

गैहूँ—७।	जीतल अर्थात् प्रायः २ आनेका १ मन
जौ—४	” ” १ ” १ ”
धान—४	” ” १ ” १ ”
दाल—५	” ” १। ” १ ”
चीनी—१३	” ” १ सेर
धी—१	” ” २३ ”
नमक—५	” ” २३ मन

अकबरके राज्यकालतक प्रायः अन्नोंका यही भाव प्राप्त होता है। 'आईने-अकबरी' तथा 'शमसि-सिराज' अफीकके लेखोंसे मालूम होता है कि उस समय लोगोंकी आय बहुत

* Thomas: 'Chronicles of the Pathan kings', p. 160, Elliot, Vol. III, p. 192. A Jital (copper coin) was $\frac{1}{2}$ (in weight) of a silver tankā of 175 grains and corresponded in value to $1\frac{1}{2}$ farthing. One Delhi man was equal to 28.8 lbs avoirdupois and 40 seers made a man (मन). [Thomas, Chronicles, pp. 160-62]

ही अधिक थी*। १८ हजार रुपयेतक वेतन पानेवाले बहुत-से लोग थे। बौद्धजातकों, कौटिल्यके अर्थशास्त्र, गरुडपुराणके रत्नपरीक्षा-प्रकरण, भविष्यपुराणके अन्न-धातु-परिवर्तन-प्रकरण, मानसोल्लास, युक्तिकल्पतरुके रत्नविवरणादि प्रकरणोंके देखनेसे पता चलता है कि इसके पूर्व गुप्त राजाओंके शासनकालमें अन्न इससे भी सस्ता था। चाणक्यने मूल्यनियन्त्रणपर बहुत अधिक जोर दिया है।† पुराण-महाभारतादिके अनुसार युधिष्ठिरादि-के समय मूल्य थोड़ा और सस्ता था। तथापि युधिष्ठिरसे अकबरतकके ऐतिहासिक सर्वेक्षणसे सिद्ध है कि मूल्योंमें विशेष अन्तर नहीं पड़ा है। यह अन्तर अत्यन्त साधारण ही है। बीचमें अकाल भी पड़े हैं, पर पुनः मूल्य

* (A) Making deductions for the monthly expenses of maintaining troops and other incidental expenses, Moreland calculates that a mansabdar of 5000 received a net monthly salary of at least Rs. 18000; one of 1000, at least Rs. 5000 and a commander of 500 at least 1000 a month. (Moreland, 'India at the death of Akbar', pp. 66)

(B) Whether paid in cash or in Jagirs, the Mughal public servants enjoyed, as we know from the Aini-Akbari, inordinately high salaries which attracted most enterprising adventurers from Western and Central Asia. (Kalikinker Dutta)

(C) The Sultan (Allauddin) fixed the pay of a soldier at 234 Tankas and 78 Tankas for a man maintaining two horses. (Advanced History of India)

† इसी प्रकार एक बार दुर्मिक्षके समय जब 'शहना-ए-मंडी' वे सुलतान अलाउद्दीनसे प्रार्थना की कि अनाजका भाव $\frac{1}{2}$ या एक जीतल बढ़ा दिया जाय तो उसे २१ बैतोंकी सजा दे दी गयी। (ईश्वरीप्रसाद, मध्ययुगका इतिहास, पृ० २४५, पंक्ति १०-१३, प्रयाग १९५५ का संस्करण)

उसी स्तरपर आ गये हैं* । अभी कुछ दिन पहलेतक हिसाब (शुभंकर) कौड़ी, बौड़ी, रौड़ी आदिमें बताये जाते थे । वराटिका, कष्किणी या कौड़ी प्राचीन मुद्रा पर्याप्त मूल्यकी थी । इससे भी अन्न प्राप्त होता था । सन् १८०१ तक बंगालके सिलहट जिलेकी ढाई लाखकी मालगुजारी कौड़ियोंमें ही सरकारी खजानेमें जमा होती रही । (Fort Williams Reveune Consultation, The Economic History of Bengal etc., पृथिवीपुत्र, पृ० ३७२ इत्यादि) ।

ध्यान देनेपर पाप, अधार्मिकता, नास्तिकता ही महर्घता—महँगी या मूल्यवृद्धिका मुख्य हेतु दीखती है । हिंदू-कालमें सस्ता अन्न खरीदकर महँगा बेचना भारी पाप समझा जाता था और मुस्लिमकालमें भी इसके लिये कठोर दण्ड दिया जाता था ।† (ईश्वरीप्रसादः मध्ययुग-इतिहास—पृ० २४२, पंक्ति—१२, pool's Medivel India) ।

अंग्रेजोंके आगमनकालसे मूल्य-नियन्त्रणपर ढील पड़ी, संस्कृति-आचार सर्वथा परिवर्तित हुए, धर्मपर आक्षेप हुआ, मशीनोंका विकास-विस्तार प्रारम्भ हुआ । पैशनपरस्ती आरम्भ हुई, अनेक मनवहलाव तथा समय-नाशक नाटक, सिनेमा, खेलोंका प्रसार हुआ । अनिवार्य शिक्षाद्वारा भी कृषिकी भारी उपेक्षा हुई । स्वार्थपरता बढ़ी, दान-परोपकार-वृत्तिका लोप हुआ, वर्णधर्मनियन्त्रण

* The prices were abnormally high in times of famine, but very low in times of over-productions (Smith's Oxford History of India; J. A. S. B. 1935, Vol I.)

† समर्घ धान्यनादाय महार्घ यः प्रयच्छति ।
स वै वार्द्धिको नाम सर्वधर्मेषु गंहितः ॥
वृद्धिं च भ्रूणहत्यां च तुलया समतोलयत् ।
अतिष्ठद् भ्रूणहा कोट्यां वार्द्धिः समकम्पत ॥

(विष्णुस्मृति ५१ । ९, आपस्तम्बधर्मसूत्र १ । १८ । २२, वसिष्ठधर्मसूत्र २ । ४१ । ४५—५५, बौधायन १ । ५ । ९३—९५, मनु ३ । १५३, १८०; याज्ञवल्क्य ० । १ । ६ । १३२, १६१; अत्रिधर्मसूत्र ४ । ४०; गौतमधर्मसूत्र १ । ७५; अङ्गिरः १ । २९; यम ३ । ३५, ३७; बृहच्यम ३ । १६; बृहदारण्यक १ । २८२; कात्यायन ६ । ७; लघु शातातप १ । ५३; प्रजापतिस्मृति ८८, ९०; शङ्ख १७ । ३८)

न रहा, जो प्राचीन राजनीतिका मूल मन्त्र था। विधवाविवाह, गन्धर्वविवाहादि बढ़े, जन-संख्या बढ़ी । परिणामतः सब प्रकारसे सभीके भूखों मरनेकी स्थिति सामने आयी । राजा बेनके भी राज्यमें यही सब हुआ था—

न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ।
अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ॥
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशंसति ।
स महीमखिलां भुङ्क्ते..... ।
वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥

(मनुस्मृति ९ । ६५-६७)

उसने इसी प्रकारकी विधवा-असवर्णा-गन्धर्वादि विवाहोंकी परम्परा चलायी । वह नास्तिक भी था । उसने ईश्वरोपासना, वर्ण-धर्म, सत्सङ्ग, स्वाध्याय, इतिहास-पुराण-कथा-वार्तादि सबको रोककर यथेच्छाचार पैशनपरस्तीका विस्तार कर दिया था—

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ।
इति न्यधारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥
(श्रीमद्भागवत ४ । १४ । ६)

लोक वेद तें विमुख भा अधम न बेन समान ।
(रामचरितमानस २ । २२८ गीताप्रेस)
(रामचरितमानस २ । २२७ काशिराम)

अतः उसके राज्यमें भी अन्नकी भीषण महँगी होकर पीछे सर्वथा अन्न-लोप-सा ही हो गया था ।

प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य
क्षुक्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥

त्रयं राजञ्जाठरेणाभितसाः ।
(श्रीमद्भागवत ४ । १७ । ९-१०)

* वर्णानाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेत् ।
चलतश्चैतान् स्वधर्मे स्थापयेत् ॥
(गौतमधर्म २ । २ । ९-१०)

रघुवंश १४ । ६७; राजनीतिरत्नाकर, नीतिवार्त्ता,
श्रीमद्भागवत १ । १७ । १६; मार्कण्डेयपुराण २७ । ३१ ।
यश्चोल्लङ्घ्य स्वकं धर्मं स्ववर्णाश्रमसंज्ञितम् ।
नरोऽन्यथा प्रवर्तेत स दण्ड्यो भूयुनो भवेत् ॥
(मार्क २८ । ३४)

मंथ्या ७]

अराजके नृपश्रेष्ठ धरिण्याः सकलौषधीः ।
प्रस्तास्ततः क्षयं यान्ति प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वर ॥

देहि नः क्षुत्परीतानां प्रजानां जीवनौषधीः ।
(विष्णुपुराण १।१३।६७-६८)
इत्यादि ।

आदिराज पृथुका प्राकट्य

अत्यन्त अधार्मिक, अविनीत होनेके कारण वेन ब्राह्मणों-
द्वारा शापदग्ध हुआ—‘वेनो विनष्टोऽविनयात्’ (मनु,
भागवतादि) और तपस्वी महर्षियोंने उसके शरीरको मथकर
पृथुको प्रकट किया । वेनका राज्य प्रायः लोकतन्त्र ही था,
अतः पृथुको ‘आदिराज’ की संज्ञा मिली । * ‘राजा’ शब्द पहले
उनमें ही इसलिये प्रयुक्त तथा सार्थक हुआ कि प्रजा उनके ही
द्वारा पूर्णरीत्या अनुरजित हुई थी । † उन्होंने गोपालन तथा
कृषिपर पूरा ध्यान दिया, इसीसे भूमिका नाम उनके नाम-
पर ‘पृथ्वी’ एवं ‘पृथिवी’ आदि पड़ा । प्रजा इतनी प्रसन्न
हुई कि उन्हें प्रातःस्मरणीय बना लिया । ‡ अब भी मान्यता
है कि उनके प्रातःस्मरणसे अन्न-धनकी प्राप्ति होती है ।
उनके सामने पृथ्वी गोरूपमें उपस्थित हुई थी और उन्होंने
प्रह्लाद, बृहस्पति, हिमाचल आदिको वस्त्र बनाकर विद्या,
कला, ओषधि आदिका दोहन किया था—

* (क) स आदिराजो रचिताञ्जलिर्हरिं विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः ।
(श्रीमद्भा० ४।२०।२१)

(ख) इत्यादिराजेन नुतः स विश्वदृक् तमाह राजन् मयि भक्तिरस्तु ते ।
(श्रीमद्भा० ४।२०।३२)
(शतपथ ब्रा० ५।३।५।४)

† (क) अथामाह राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ।
(श्रीमद्भा० ४।१७।१५, विष्णुपुराण १।१३।४८)

(ख) राजिताश्च प्रजाः सर्वास्तेन राजेति शब्दते ।
(महा० शान्तिपर्व ५९।१२५)

‡ वेन्यं पृथुं देहयमर्जुनं च शाकौन्तलेयं भरतं नलं च ।
रामं च सीतां सरति प्रभाते तस्यार्थलाभो भवतीह नित्यम् ॥
(नित्यकर्म प्रातः) १२।१००; मनु० १।१०१; भविष्यपुराण २।१२३)

पृथूपदिष्टां दुदुधुर्धरित्रीम् ।

(कुमारसम्भव १।२; अथर्व ८।२८)

महाराज पृथुकी सिद्धिमें आस्तिकता, भगवद्भक्ति,
ब्राह्मणभक्ति एवं धर्मप्रेम ही मूल हेतु था । * भगवान्के
चरित्रके वे इतने अधिक प्रेमी थे कि उन्होंने भगवद्गुण-
श्रवणके लिये दस हजार कान माँगे थे—

‘महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ।
(श्रीमद्भा० ४।२०।२४)

पुनि प्रनवउँ पृथुराज सनाना । ‘‘‘ सुनहिं सहस्र दस काना ॥

वे सर्वनिरपेक्ष होकर भी प्रजाधारण करनेमें समर्थ थे—

आत्मयोगबलनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ।
(श्रीमद्भा० ४।१८।२७)

उन्होंने पृथ्वीको समतल करके, सब प्रकार कृषिके योग्य
बनाया । सर्वत्र ग्राम, नगर, खेड, खर्वट, घोष, पल्ली
आदि बसाये । प्रजासे कर लेना प्रायः छोड़ ही दिया था ।
पृथ्वी बिना जोते-बोये ही धान्योंसे परिपूर्ण रहती थी—

अकृष्टपच्या पृथिवी सिन्धुन्त्यन्नानि चिन्तनात् ।
(ब्रह्मपुराण ४।५९; पद्मपुराण २।२८।४०; विष्णुपुराण
१।१३।५०; वायु० ६२।१४२; ब्रह्माण्ड० ३६।१४२;
हरिवंश ४।४२ इत्यादि) ।

अन्न इच्छामात्रसे पक-बनकर तैयार हो जाते, गोएँ
इच्छानुसार दूध, दही, घी एवं अन्य श्रेष्ठ पदार्थ देती थीं,
कामधेनुके तुल्य थीं, मधुसे मानो सभी पक्षे-वनस्पतियाँ
परिपूर्ण थीं—

सर्वकामदुघा गावः पुष्टके पुष्टके मधु ।
(ब्रह्मपुरा० ४।५९; विष्णुपुरा० १।१३।५० इत्यादि, वही
सब पूर्वोक्त स्थल)

पृथ्वीको इस प्रकार उनके वशमें देख कुछने इसे
उनकी स्त्री और कुछने पुत्रीकी कल्पना की—

* सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविद्वर्हि ॥

इत्यादि पृथूक्ति (श्रीमद्भा० ४।२२।४५, ४६; मनुस्मृति
१२।१००; मनु० १।१०१; भविष्यपुराण २।१२३)

(१) पृथोरपीमां पृथिवीं भार्या पूर्वविद्धो विदुः ।

(मनुस्मृति ९ । ४४)

(२) दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते ॥

(ब्रह्मपुराण ४ । ११३)

(३) दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सलः ।

(श्रीमद्भाग ४ । १८ । २२, वायु ० ६३ । ३)

वर्द्धमानने गौरादिगणमें पृथुका अन्तर्भाव करके 'पृथ्वी', शेष पाणिनि आदिने पृथिवी ही माना है ।

पृथोरियं पृथ्वी (अण्), पृथुरियं
षिद्गौरादित्वात् ङीप्,

(पा० ४ । ४१)

प्रथेः षिवन् (उणा० १ । १५७)

प्रथिन्नदि—उ (उणा० १ । २८)

तत्पुष्करपणेशप्रथयत्

(यजु० ११ । १९, १३ । २ शतपथ)

पृथुना राज्ञावतारिता इति वा पृथ्वीति क्षीरस्वामी ।

'स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीम्'

(ऋग्वेद १० । ३१ । ९)

पृथ्वीयं पृथुकन्यात्वात् ।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिख० ९ । ३३;

देवीभागवत ९ । १० । ३०)

पृथ्वीयं पृथुकन्यात्वाद् विस्तृतत्वात् महामुने ।

(मही मुने इति अपि देवी भा० षाठः)

—इत्यादि पृथ्वीकी अनेक व्याख्याएँ शास्त्रोंमें प्राप्त हैं और पृथ्वी, पृथिवी एवं पृथवी—ये तीन रूप भी बनते हैं—(शब्दार्णव) कहीं-कहीं 'पृथुवी' रूप भी है ।

(द्विरूपकोश)

इन्होंने अत्रि आदि मुनियोंको अपार धन प्रदान किया था (महाभारत, वनपर्व, १८५ । ८—३५) । इनकी भक्तिसे प्रसन्न होकर साक्षात् भगवान् विष्णुने ही इनके शरीरमें प्रवेश किया था—

तपसा भगवान् विष्णुराविवेश च भूमिपम् ।

(महा० शा० ५९ । १२८)

प्रायः भगवान् राम एवं बुध, प्रह्लाद, बुधिशि, मान्धाता, अम्बरीष, रुक्माङ्गद, सहस्रार्जुन (कार्तवीर्य), विक्रमादित्य आदि राजाओंके शासनकालमें भी ऐसी ही स्थिति रही—

वस्तु विनु गथ पाइए

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड)

यत्प्राप्यते वस्तु विनार्वतोऽपि ।

(सत्योपा० पुलस्त्यसं०) इत्यादि ।

ससि संपन्न सदा रह धरनी ।

—आदिसे इन लोगोंके समयमें निर्मूल्य वस्तु मिलनेकी बात मिलती है । वस्तुतः सच्ची बात यह है कि ये राजा लोग अत्यन्त त्यागी, भोगविमुख एवं प्रजाहितको जाननेवाले महान् भगवद्भक्त थे ।

राजानमनुवर्तेत यथा राजा तथा प्रजाः ।

(भोजप्रबन्ध १ । ४४; योगवासिष्ठ पृ० ३१७, ६१८, निर्णय-सागर संस्करण; अद्भुतदर्पण नाटक पृ० १२७, १३३; प्रबन्ध-चिन्तामणि ५ । ५२)

अतः प्रजा भी तद्वत् ही भोगविमुख थी । ऐसी स्थिति में सर्वत्र दान-परोपकारकी भावना प्रसरित होनेपर ऐसी स्थिति आनी कोई कठिन बात नहीं है । पर भोगलोलुपताकी ओर नेताके अभिमुख होनेपर प्रजा भी जब वैसी ही हो जाती है, तब महार्घताको कोई कैसे रोक सकता है । उस समय दान-उपकारकी भावना लुप्त होकर अर्थ-संग्रहेच्छा, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, परपीडन, छल, असत्य आदि दोष सर्वत्र वृद्धिगत होते हैं । अतः आस्तिकता एवं सच्चे हृदयसे त्यागकी भावना ही अभीष्ट है । इसके बिना सद्भावना नहीं आ सकती और सद्भावनाके बिना समर्पता-शान्ति-सुखका दर्शन होना बहुत ही कठिन होगा । इन सब वस्तुओंके लिये भी सत्सङ्ग-स्वाध्याय-सदाचारकी आवश्यकता है । उसके लिये सच्ची सद्विद्या—संस्कृतभाषाके प्रचार-शिक्षणकी आवश्यकता होगी । इस शिक्षामें भी पूर्ववत् त्याग-वृत्तिसे ही शिक्षक-विद्यार्थीका रहना काम करेगा । आजकी भोगमयी शिक्षा विपरीत दिशाको ही ले जायगी । वर्णाश्रम-पालन भी परमावश्यक है । अंधाधुंध शिक्षासे यही स्थिति रहेगी अथवा और अधिक बिगड़ेगी । समय रहते सभीको इन विषयोंपर शीघ्रतासे विचारकर यथोचित परिवर्तनके लिये तत्काल प्रयत्नशील होना चाहिये ।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

महात्माका चमत्कार—एक महापुरुषके दर्शन

आज एक तीस वर्ष पुरानी घटनाकी और एक अद्भुत अनुभवकी स्मृतियाँ मनमें जग रही हैं। प्रयागके माघ-मेलेके अवसरपर यात्रियोंके स्नानकी सुविधाके लिये गङ्गाजीके प्रवाहको मोड़नेके लिये मुझे उस समय एक ठेका मिला था। अथक प्रयत्नके बावजूद हताश होते-होते एक महात्माकी कृपासे कैसे मुझे चमत्कारिक सफलता मिली, यही बताने जा रहा हूँ। यों मुझे क्यों और कैसे यह ठेका मिला, वह भी एक जान लेने लायक बात है।

१९३६-३७ में मैंने सरकारी अधिकारियोंके कहने, बल्कि दयाव देनेसे माघ-मेलेमें विजली लगानेका ठेका अपनी कम्पनीके नामसे लिया और उसमें जी-तोड़ परिश्रम किया। ठीक समयपर विजलीकी वस्तियाँ मेलेमें जल गयीं, जिसकी किसीको आशा नहीं थी। मुझे १६ दिसम्बरको सरकारी आदेश मिला था कि जनवरी ७ को विजलीकी वस्तियाँ मेलेभरमें लग जानी हैं। यानी केवल १९ दिनका समय मिला था और न एक गज तारका तार और न एक भी खंभा मेरे पास था। यह सब सामान मैं कलकत्ता जाकर पैसैंजर गाड़ीसे लाया और तब यह काम कराया। केवल सरकारी अफसरोंको ही नहीं, बल्कि और जो इस कामकी जानकारी रखते थे, उनको भी बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस थोड़े-से समयमें यह काम कैसे हो गया। मैं स्वयं ६ रातोंतक नहीं सोया और न अपने घर आया। बाँधपर ही एक छोटे-से तम्बूमें कुर्सीपर बैठे-बैठे कमी-कमी एक-आध घंटेके लिये सो लेता था और मेरे आदमी आठ-आठ घंटेकी शिफ्टमें काम कर रहे थे। मेरे इन्जीनियर श्री वी० पी० वर्माने एक ही शिफ्टमें १८-२० घंटेतक काम किया। इस काममें इतनी शीघ्रता करनेके कारण मुझे पर्याप्त हानि हुई, जो कोई सात या आठ हजार रुपयेकी थी। परंतु मैंने पैसा कमानेकी जगह इस बातको अधिक महत्त्व दिया कि मेरा वचन रह जाय और डिपार्टमेंटकी बदनामी न हो। इसका सरकारी अफसरोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा और इसी कारण तत्कालीन एग्जेक्यूटिव इन्जीनियर श्री एस० जी० नरवाणेने बुलाकर जनवरीके

पहले सप्ताहमें मुझसे कहा कि क्योंकि गङ्गा झूँगीकी तरफ जा रही हैं और १० लाख तीर्थ-यात्रियोंको थोड़े-थोड़े पानी और कीचड़मेंसे जाकर संगमका स्नान अमावस्याके दिन करना पड़ेगा, इसलिये सरकारने यह निश्चय किया है कि गङ्गाजीकी धारको ऐसा मोड़ा जाय कि वह झूँसीकी तरफ न जाकर बाँधकी तरफ आ जाय और इस कामका ठेका मैं तुमको देना चाहता हूँ और वह केवल इसलिये कि तुमने विजलीके काममें जो हमलोगोंके कारण हानि उठायी, उसकी कुछ पूर्ति हो जाय। मैंने उनसे साफ-साफ कहा कि मैंने ऐसा काम कभी नहीं किया है तो उन्होंने कहा कि हमारे असिस्टेंट इन्जीनियर श्रीमुसद्दीलाल आपको सब काम बतायेंगे। आप केवल सब सामान और मजदूरोंका प्रबन्ध कर दें। उनके इस विश्वास दिलानेपर मैं गङ्गाजीकी धाराको इस ओर मोड़नेके कामके लिये राजी हो गया।

इस कामके लिये बल्लियाँ पानीमें गाड़कर और उनके पीछे बालू भरकर बाँध बाँधा जाता है। सैकड़ों बोरियाँ निर्धारित स्थानपर बल्लियोंके पीछे निश्चित स्थानपर डाली जाती थीं। इन सबका अभिप्राय यह था कि गङ्गाकी लहर बाँधकी तरफ हो जाय। इस काममें मैंने सौ-सवा-सौ आदमी लगाये थे और कई नावें किरायेपर ले रखी थीं। जैसा मैंने बताया हमारे आदमी बालू भर-भरकर बल्लियोंके पीछे बोरियाँ डालते थे। पाँच दिनतक सायंकालको यह मालूम होता था कि हमलोग अपने कार्यमें सफल हो रहे हैं और अगले दिन काम करनेसे पूरी सफलता मिल जायगी। परंतु न जाने कौन-सी दैवी शक्ति थी, जो हमारे प्रयत्नोंको व्यर्थ और नष्ट कर देती थी। तीन दिनतक प्रातःकाल मेरे आदमी मुझे यह आकर बताते थे कि साहब ! रात्रिमें १२ बजेके करीब एकदम कुछ ऐसी लहर आयी कि सब बल्लियाँ और बोरियाँ बह गयीं। इस तरहसे जब तीन दिन बीते तो चौथे और पाँचवें दिन रात्रिमें भी मैं उस कड़कड़ाते जाड़ेमें नाचपर ही रहा और वही हुआ, जो मुझे बताया गया था। अर्थात् रात्रिमें १२ बजेके आस-पास कोई ऐसा गङ्गाजीका बहाव होता था कि मेरा दिनभरका कार्य असफल हो जाता था और बल्लियाँ तथा बोरियाँ बह जाती थीं। आप समझ सकते हैं कि इसके कारण मुझे कितनी मानसिक वेदना हो रही थी। सरकारी अफसर भी

काफी परीशान थे। कहनेवालोंको मौका मिल गया था कि बिजलीके ठेकेदारको गङ्गाकी धारको बाँधनेका जो ठेका दिया गया, यह कुछ गड़बड़ बात है। इसका मुझे और भी अधिक दुःख था; क्योंकि मेरे साथ भलाई करनेवालोंकी जनतामें बुराई की जा रही थी।

अमावससे दो दिन पहलेकी बात है कि प्रातःकाल लगभग नौ बजे मैं और श्रीमुसदीलाल, असिस्टेंट इंजीनियर (जो एल० एस० जी० ई० डी० के चीफ इंजीनियर होकर रिटायर हो गये हैं) और श्री भगवान-चन्द्र तत्कालीन मैनेजर, माघ-मेला (जो कलेक्टर होकर रिटायर हो गये हैं) मेरे साथ एक नावमें बैठकर श्री-मुसदीलालजीके आदेशानुसार दारागंजवाले गङ्गाके पुलकी ओर गङ्गाजीके किनारे-किनारे जा रहे थे; क्योंकि इंजीनियर साहबका यह विचार था कि एक और जगह प्रयत्न किया जाय तो सम्भवतः हमलोग गङ्गाजीका प्रवाह मोड़ सकें। देखते हैं कि गङ्गाजीके किनारेपर धोतीकी जगह सफेद कपड़ा लपेटे हुए, खड़ाऊँ पहने एक तेजस्वी पुरुष, जिनकी लम्बाई ५३ फुटके करीब होगी, हाथमें कमण्डलु लिये हुए हमारी नावकी ओर आये और हाथसे संकेत करके उन्होंने नावको ठहरनेके लिये कहा। नाव खड़ी हो गयी। उन्होंने पूछा 'आपमेंसे शर्माजी कौन हैं?' तब मैंने हाथ जोड़कर कहा कि 'महाराज! मुझे ही शर्मा कहते हैं।' वे हँसे और कहने लगे—'तुमने पिछले एक सप्ताहसे गङ्गाजीकी बड़ी सेवा की और इसका तुमको फल अवश्य मिलेगा।' मैंने कहा कि 'महाराज! मेरा सब परिश्रम असफल हो गया है; क्योंकि जिस कार्यके लिये मैंने आठ-आठ घंटे पानीमें खड़े होकर अपने आदमियोंसे काम कराया, वह सब आधी रातमें वह जाता है; तब अब सफलताकी क्या आशा है।' महात्माने कहा—'मैं जो कहूँ, तुम वह करो तो तुमको अवश्यमेव सफलता मिलेगी।'।

मेरा हाल उस समय उस दृढ़ते हुए आदमी-जैसा था, जो तिनकेका सहारा ढूँढ़ता है और इसी कारण मैंने हाथ जोड़कर उनसे फिर कहा कि 'महाराज! आप ही बता दीजिये कि कैसे इस काममें सफलता मिल सकती है।' महात्माजीने आदेश दिया—'कल प्रातःकाल १० बजे आप उस निश्चित स्थानपर जिसे मैं बताऊँ, गङ्गाजीका पूजन करना।' और उन्होंने दारागंजके एक पण्डितजीका नाम भी बताया और

कहा कि 'उनको बुलाकर पूजा कराइये। दूसरे, मैं आगे चलकर आपको स्थान दिखलाता हूँ, जहाँ यदि आप एक ७ या ८ फुट चौड़ी और ३ फुट गहरी तथा कोई १०० फुट लंबी नाली खुदवा दें तो गङ्गाजीका प्रवाह उधर ही आ जायगा और तब काम हो जायगा। आप निश्चय जानिये कि गङ्गा माताके १२ लाखसे ऊपर यात्री, जो परसों संगममें स्नान करने आयेंगे, उन सब यात्रियोंको वे आनन्दपूर्वक स्नान करायेंगी।'।

जहाँ हमलोगोंकी बातें हो रही थीं, उससे एक ५० फुट चलनेके बाद महात्माने वह जगह दिखायी, जहाँ गङ्गाजीका पूजन करनेको बताया था। उससे १०० फुट आगे चलकर वह जगह बतायी जहाँ ७ या ८ फुट चौड़ी नाली खुदवानी थी। यह वह जगह थी, जो गङ्गाजीके बहावमें ऊँची जगहपर थी। मैंने कहा कि 'महाराजजी! ऊँची जगहपर पानी कभी चढ़ता नहीं, नीची जगहमें ही बहता है।' महात्माने कहा कि 'आप विश्वास कीजिये। गङ्गाजी इसी रास्तेसे बाँधकी ओर आयेंगी।' मुझे क्योंकि अपने मनमें विश्वास नहीं हुआ अतः मैंने कहा, 'महाराज! अंधेको रास्ता दिखानेके लिये स्वयं ही उसके घर पहुँचाना पड़ता है। इस कारण यदि आप इस नालीको खुदवा दें तो मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँगा; क्योंकि मैं इंजीनियर साहबके आदेशानुसार कल दो सौके करीब आदमी इसी कामके लिये दूसरी जगह लगा रहा हूँ।' महात्माजी हँसे और उन्होंने कहा कि 'अच्छी बात है, हम आपका यह काम भी कर देंगे। आप हमको ४० रुपये दे दीजिये और हमको ४० फावड़े, दो सौ टोकरियाँ दिलवा दीजिये।' मैंने तुरंत अपनी जेबमेंसे ४०) प्रस्तुत किया और अपने मैनेजरके नाम एक आज्ञा-पत्र दिया कि महात्माजीको जितने फावड़े और टोकरियोंकी आवश्यकता हो दे दी जायँ।

जब हमलोग चलने लगे, तब महात्माजीने कहा कि 'तुमने गङ्गाजीके पूजनकी सामग्री तो लिखी ही नहीं, वह भी लिख लो और निर्धारित समयपर और उन्हीं पण्डितजीसे पूजा कराना।' उनके आदेशानुसार मैंने सब सामग्री लिख ली। मैं उसमेंसे केवल एक चीज आपको बता देना चाहता हूँ कि उन्होंने सवा मन दूध लिखाया था और इसीके अंदाजेसे और बाकीकी सामग्री थी। सब मिलाकर उस जमानेमें, जब कि चीजें सस्ती थीं, १३०) की सामग्रीका सामान आया।

मैं इस सिलसिलेमें दो बातें बता देना आवश्यक समझता हूँ। सबसे पहली बात तो यह है कि मेरे पिताजी बड़े कट्टर आर्यसमाजी थे और वे उस समय जीवित थे तथा मैं स्वयं भी सदैव आर्यसमाजके नियमोंमें विश्वास करता आया हूँ। मेरे गुरु स्वामी परमानन्दजीके आदेशानुसार उस वर्ष यहाँपर आर्यसमाजने मुझे प्रधान भी चुन रखा था। यह सब होनेपर भी मेरा गङ्गाजीके पूजनको राजी हो जाना मेरे कुटुम्ब और मित्रोंके लिये एक आश्चर्यकी बात थी और मेरे पिताजी तो बहुत ही क्रोधित हुए। पर न जाने क्यों मैंने यह सोचा कि ऐसा करनेमें कोई बुराई नहीं है।

दूसरे, जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, जहाँपर कि महात्माजीने नाली खुदवानेको कहा था, वह गङ्गाजीके बहावसे ढाई-तीन फुट ऊपर जगह थी और इस कारण मेरा यह विश्वास कर लेना कि पानी ऊपरको बढ़ जायेगा, श्रीमुसद्दीलाल और उनके सहयोगी चन्द्रासाहबको आश्चर्यमय प्रतीत हुआ। उन्होंने कहा—‘शर्माजी आज मालूम होता है कि आपका मस्तिष्क ठिकाने नहीं है। आपने बेजाने तथा बिना पूछे ही एक आदमीको ४०) दे दिये और अपने मैनेजरके नाम उसको इतना सामान देनेको लिख दिया और ऊपरसे आप गङ्गाजीकी पूजा करने जा रहे हैं ! खैर आप जो करना चाहें, करें।’

इसके बाद नाव आगे बढ़ी और श्रीमुसद्दीलालजीने एक स्थान दिखलाया और कहा कि उसी समयसे वहाँ काम लगा देना चाहिये। ऐसा ही किया गया; क्योंकि उनको यह विश्वास था कि यहाँ उन्हीं बोरियों और बल्लियोंका बाँध बाँधनेसे गङ्गाजीका बहाव बदल सकता था।

२० वर्षसे अधिकसे दारागंजसे छत्तीस तक पीपोंका एक पॉन्टून पुल बसा था और उसको बनानेवाले एक घाट-दरोगा थे। उस समय वे बृद्ध हो गये थे और रेशमी साफा पहना करते थे, वे भी मौजूद थे। वे पानीको बाँधनेमें बहुत अनुभवी समझे जाते थे। उन्होंने भी इंजीनियर साहबकी बातका समर्थन किया। हमलोग लौट आये। सायंकालको किसी समय वे महात्मा फावड़े और टोकरियों तथा कुछ कुदाल इत्यादि मेरे कैम्पसे ले गये।

सायंकालको मैं अपने पिताजीको मेलेमें लाया और क्योंकि वे नहरके इंजीनियर रह चुके थे, उनको वह जगह

दिखलायी, जहाँ महात्माने नाली बनानेको कहा था। वे हँसे और कहने लगे कि ‘तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं है। पानी ऊपर नहीं चढ़ा करता।’

तत्कालीन एग्जेक्यूटिव इंजीनियर श्रीनरवाणेने भी, जिनका मैंने ऊपर उल्लेख किया है, उस स्थानको देखकर बही बात कही।

उधर दिनभर नयी जगहपर काम करनेके बाद अगले दिन मुझे यही समाचार मिला कि दिनमें जितने काम किये थे, रात्रिमें १२ बजेके करीब सब बह गये। आप समझ सकते हैं कि मैं कितना हताश हुआ हूँगा। अगले दिन फिर उसी जगह सवा सौसे अधिक आदमी कामपर लगाये गये; क्योंकि ऐसा ही इंजीनियरसाहबका आदेश था।

इधर निर्धारित समयपर पूजाकी सामग्री और पण्डितजी बताये हुए स्थानपर पहुँच गये और मैं भी वहीं था। हमलोग पूजन आरम्भ करनेवाले थे कि श्रीमुसद्दीलाल इंजीनियर तथा श्रीभगवानचन्द्र मैनेजर भी आ गये और उन्होंने कहा—‘शर्माजी ! हमलोग भी गङ्गाजीके पूजनमें सम्मिलित होना चाहते हैं।’ मैंने उनका स्वागत किया और कहा कि मैं अपनेको धन्य समझूँगा यदि वे भी मेरी पूजामें सम्मिलित होंगे। पूजा आरम्भ हुई और अनुमानतः १२ बजेके करीब समाप्त हुई। इस स्थानसे हमलोग अच्छी तरह देख रहे थे कि वह महात्मा भी अपनी बतायी हुई जगहपर नाली खुदवा रहे हैं और स्वयं भी पूजा कर रहे हैं।

हमलोगोंका ध्यान अपनी पूजामें लगा हुआ था और पूजाकी अन्तिम आहुति देनेके पश्चात् हमलोग आँख बंद करके पण्डितजीके कथनानुसार कुछ मन्त्रोंको उच्चारण कर रहे थे। उसके बाद हमलोगोंने आँख खोलीं घाट-दरोगा, जिनका मैंने ऊपर उल्लेख किया है, वहाँ मौजूद थे। उन्होंने अपनी पगड़ी उतारकर गङ्गाजीमें डाल दी और कहा कि ‘गङ्गा माई ! मेरा मान भी अब तुम्हारे ही हाथमें है।’ पगड़ी डालते ही दरोगाजी तुरंत चिल्ला पड़े—‘शर्माजी, गङ्गाजी तो आ गयीं। देखिये मेरी पगड़ी किधर बह रही है।’ हम सबको देखकर महान् आश्चर्य हुआ; क्योंकि पगड़ी बाँधकी तरफ ही बह रही थी और ऐसा मालूम होता था कि गङ्गाजीमें बाढ़ आ रही है। हमलोग वहाँसे तुरंत उन महात्माको धन्यवाद देनेके लिये उनकी तरफ गये; परंतु जब वहाँ पहुँचे, तब कुलियोंने बताया

कि थोड़ी ही देर हुई वहाँ थे, कहीं गये होंगे। परंतु पानी उस नालीमेंसे बहुत जोरोंसे आ रहा था। इसको देखकर और भी आश्चर्य हो रहा था।

तीन घंटेके बाद यह हालत हो गयी कि गङ्गाके किनारे जो पंडा लोग अपने तख्त लगाये रहते हैं, उनको तख्त उठाना मुश्किल हो गया; क्योंकि पानी बाँधकी तरफ बहुत जोरोंसे आ रहा था।

मैंने, श्रीमुसद्दीलालजी तथा श्रीभगवानचन्द्रजीने उन महात्माको ढूँढ़नेकी बहुत कोशिश की, मगर हमलोगोंको वे आजतक नहीं मिले। कुलियोंसे पूछनेपर पता लगा कि उन्होंने ४० कुली रखे थे और हर एकको पहलेसे ही प्रातः एक-एक रुपया दे दिया था (उस जमानेमें कुली ६ आना रोजपर मिलता था) और कह दिया था कि यह सब समान उस कैम्पमें पहुँचा देना। हम सबको आश्चर्य तो हुआ ही; साथमें यह तृष्णा रह गयी कि हम उनको धन्यवाद भी न दे सके।

सायंकालको मेरे पिताजी तथा एग्जेक्यूटिव इंजीनियर साहब तथा और दो-एक इंजीनियर आये और सब देखकर बड़े स्तम्भित हुए। सबने यही कहा कि यह तो एक चमत्कार हो गया। हमलोग इसको किसी तरहसे समझ नहीं सके और सचमुच ही यह चमत्कार था।

उस दिन साढ़े आठ बजे रात्रिके समय एक साधु मेला-कैम्पमें मुझसे मिलने आये; क्योंकि मैं बहुत दिनका थका हुआ था, सो गया था। मगर उन्होंने मेरे आदमीसे कहा कि तुम उनको जगाओ और उनको बाहर बुलाओ, मुझे उनसे एक आवश्यक कार्य है। मेरे आदमीने बहुत कुछ कहा, परंतु अन्तमें उसने मुझे जगा ही दिया और कहा कि एक साधु आपसे मिलने आये हैं। मुझे यह अच्छा नहीं लगा और मैं बाहर निकला तो वे साधु दौड़े और उन्होंने मेरे चरण छूनेका प्रयत्न किया। मैंने उनसे कहा कि 'महाराज! आप यह क्या करते हैं?' तो उन्होंने कहा कि 'आप बड़े भाग्यवान् हैं। मैं तो आपका दर्शन करने और चरण छूने आया था। आप नहीं जानते कि कल और आज आपको श्रीशिवजी महाराजने स्वयं दर्शन दिया और उन्हींकी कृपा और दयासे गङ्गाजीका बहाव बदल गया।' थोड़ी देर बात करनेके बाद वे साधु चले गये।

क्योंकि मैं सदैव आर्यसमाजी रहा हूँ, मुझे यह तो विश्वास नहीं हुआ कि मुझे शिवजीके दर्शन हुए; परंतु यह मैंने अवश्य समझा कि किसी बहुत बड़े महान् पुरुषने, जो कभी बहुत बड़े इंजीनियर रहे होंगे, दर्शन दिये। यह भगवान् ही बता सकते हैं कि क्या सत्य है।

१९५७में मैंने एक अंग्रेजी पुस्तक पढ़ी—'आटोबायोगफी' ऑव ए योगी, जिसको स्वामी योगानन्दजीने लिखा है और जो अमेरिकामें छपी है। उसमें एक जगह यह लिखा था कि हिमालयपर एक महात्मा रहते हैं, जिनकी आयु ३५० वर्षसे अधिक है और जो कभी-कभी प्रयागमें माघ-मेलेपर तथा हरद्वारमें आते हैं। उनकी पोशाक सफेद होती है। वे खड़ाऊँ पहनते हैं और हाथमें कमण्डलु रखते हैं। वे कोई साढ़े पाँच फुट लम्बे हैं। बड़े तेजस्वी स्वरूपवाले हैं।

मनमें बात उठती है, 'क्या यही महान् पुरुष थे, जिनके मुझे दर्शन प्राप्त हुए?'

—कप्तान श्री एम्. पी. शर्मा

(२)

रहस्य

आदरणीय वर्माजी अत्यन्त सरलहृदय एवं विनम्र व्यवहारशील अध्यापक हैं। छात्रोंके साथ वे मित्र-जैसा व्यवहार करते हैं। बात-बातमें छात्रोंको 'मेरे दोस्त' और 'आप' कहकर सम्बोधित करते हैं, कभी भी किसी भी छात्रके लिये अपशब्दका प्रयोग नहीं करते। उनकी एक प्रसुख आदत यह है कि वे किसी भी छात्रका उपहास नहीं करते, जैसा कि प्रायः देखा जाता है कि कुछ अध्यापक किसी छात्रको भरी कक्षामें लजित करके एक प्रकारके आनन्दका अनुभव किया करते हैं। वे अपने व्यवहारसे छात्रोंको इतना संतुष्ट रखते हैं, जितना कोई भी अध्यापक नहीं रख पाता।

एक बार कक्षामें मैंने, बहुत ही नम्रतापूर्वक, इस सीधे-पनका रहस्य पूछा, तो वे मुस्कराकर बोले, 'इसमें भी एक रहस्य है।'।

रहस्य बतानेके लिये आग्रह करनेपर जब वे गम्भीर हो गये, तब मैंने उन्हें परेशान करना उचित न समझा और चुपचाप अपने स्थानपर जाकर मैं बैठ गया।

थोड़ी देर चुप रहनेके बाद वे बोले—'यह घटना उस समयकी है; जब मैं 'फर्स्ट-इयर'में पढ़ता था। हमारे कैंपसमें फिजिक्स पढ़ाते थे—

× × ×

बहुत सख्त आदमी थे। लड़कोंसे डटकर काम लेते थे और काम न करनेपर पूरे पीरियडभर बेंचपर खड़ा रखते थे। यहाँतक तो कोई बात न थी, पर उनमें एक आदत यह थी कि जब भी उनका मन होता वे किसी भी लड़केको खड़ा करके सवाल पूछने लगते और गलत उत्तर बतानेपर भरी क्लासमें उसे बेवकूफ बनाते। सब लड़कोंके सामने उसका मज़ाक उड़ाया जाता और सब हँस-हँसकर इसका आनन्द लेते। बेचारा लड़का हृदसे ज्यादा लज्जित हो जाता। जो भी उनके पल्ले पड़ता, बेचारेकी उस समयके लिये तो मिट्टी ही पलीद कर देते।

एक समयकी बात है कि मैं जो बीमार पड़ा तो चार दिनोंतक खाटसे न उठा और चार दिनोंतक भोजन खानेकी न मिला। पाँचवें दिन हल्का फुल्का खाया। मैं पूरी तरह सख्त भी नहीं हुआ था, फिर भी कालेज चला ही आया। तीसरा पीरियड फिजिक्सका था।

× × ×

आज काफी देरसे आये और आते ही उन्होंने हाजिरी लेना शुरू कर दिया—हालॉ कि प्रायः वे हाजिरी पढ़ानेके बाद लेते थे। रोल नम्बर ३४ पर आकर उन्होंने कहा—'कीप स्टैंडिंग' (खड़े हो जाओ) और फिर हाजिरी लेने लगे। लाचार होकर मैं खड़ा हो गया। मन-ही-मन मैं धराने लगा और सोचने लगा कि आज तो खैर नहीं है।

× × ×

लड़कोंके साथ कभी-कभी हृदसे ज्यादा कठोर हो जाते थे। यही उन्होंने उस दिन मेरे साथ किया। रजिस्टर बंद करनेके बाद बड़े ही अजीब लहजेमें उन्होंने मुझसे पूछा—'क्या आप यह फरमानेकी तकलीफ करेंगे कि आपके दीदार एक हफ्ते बाद क्यों नसीब हो रहे हैं? क्या बंदेसे कोई खता हो गयी थी?'

सारी क्लास मेरी ओर देखकर मुस्करा रही थी और मेरी समझमें नहीं आ रहा था कि मैं क्या कहूँ। बुखार तो उनकी समझमें साधारण चीज थी और उसके लिये चार दिनोंतक गैरहाजिर रहना बेवकूफीकी बात थी।

उन्होंने, उसी लहजेमें, फिर कहा—'यदि आपको मुझे बतानेमें शर्म लगती हो तो पड़ोसके साथीको बता दीजिये, मैं उससे दरयाफ्त कर लूँगा।'

सारी क्लासकी मुस्कराहट फूटनेको हो गयी। आखिर मैंने कह ही दिया, 'सर! बात यह है कि मुझे फेवर आ गया था।' घबराहटमें 'फीवर' (fever) की जगह मुखसे 'फेवर' निकल गया।

अब इसके बाद उन्होंने मुझे जो बेवकूफ बनाना शुरू किया तो सारे पीरियडपर यही करते रहे—पढ़ाया-लिखाया, कुछ भी नहीं।

एक तो वैसे ही मेरी तबीयत ठीक नहीं थी, फिर क्लासके लड़कोंकी हँसी और × × × × जीके व्यङ्ग्याणोंसे मैं इतना मर्माहत हो उठा कि तीसरे पीरियडके बाद ही घर आकर खाटपर लेट रहा और फिर दोबारा चार दिनोंके बाद ही कालेज जा सका। गनीमत यह हुई कि दूसरी बार × × × × जी केवल यही पूछ कर रह गये—चार दिनोंतक कालेज क्यों नहीं आये?—और इसका उत्तर सुनकर फिर उन्होंने कुछ न पूछा।

उस दिन, भरी क्लासमें × × × × जीने मेरा मजाक उड़ाकर, मुझे जो बेदना पहुँचायी थी, वह आजतक मुझे याद है और यही कारण है कि मैं किसी भी लड़केको बेदना नहीं पहुँचाना चाहता, किसीकी हानि नहीं करना चाहता, किसीको भी दुखी नहीं करना चाहता और हर एकको यथा-सम्भव संतुष्ट तथा प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करता हूँ।

इतना कहकर वर्माजी चुप हुए और मैं सोचने लगा—काश, सभी व्यक्ति इस घटनासे शिक्षा ग्रहण करते।

—कुमार 'स्वदेशी'

(३)

सच्चे दर्शन

रेलगाड़ी जामनगरका प्लेटफार्म छोड़कर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। जामनगरसे एक सदगृहस्थ अपने कुटुम्बके साथ गाड़ीपर सवार हुए थे। अनुभवी तथा भावुक-जैसे ये सज्जन ठीक मेरे सामने ही बैठे थे। गाड़ी चलनेपर लगभग दस मिनिट तो ये अपना सामान जचाते रहे। तदनन्तर किस विषयपर बात चलायी जाय—मानो यों सोचते हुए ये मेरी ओर नजर करके देखते रहे।

अन्तमें—जैसे अकस्मात् विषय मिल गया हो, वैसे बोल उठे—‘क्यों ! आपको ओखातक जाना है ?’

मैंने कहा—‘नहीं ! द्वारकातक ही जाना है ।’

‘तब तो हमलोग साथ ही रहेंगे । मैं तो बहुत बार हो आया हूँ, परंतु इस बार तो सारे कुटुम्बको द्वारकाधीशके दर्शन कराने हैं ।’ उन्होंने कहा ।

मैंने उनकी बातका समर्थन किया और आतुरताके साथ उनकी बातें सुनने लगा । आजकी शिक्षा, विद्यार्थी, शिक्षक, शिक्षाविभाग, शिक्षा-अधिकारी, भारतसरकार आदि विषयोंपर वे चर्चा करने लगे । मैं केवल हुँकारा देता हुआ उनकी बातें सुन रहा था और आतुरताके साथ उनके थकनेकी बाट देख रहा था ।

आखिर मैं उपन्यास लेकर पढ़ने लगा । इसी समय अकस्मात् यात्रियोंकी जय-जयकारकी ध्वनि सुनायी दी, तब मैंने उठकर सामान तैयार किया । गाड़ी रुकी । मेरे साथी सद्गृहस्थसे संध्याकी आरतीमें मिलनेका वादा करके मैं उनसे अलग हो गया ।

संध्याको बाजारमें घूम-फिरकर मैं मन्दिरमें पहुँचा । आरती शुरू हो गयी थी । मैं पीछे खड़ा हो गया । वे सज्जन कुछ आगे खड़े थे । आरती पूरी होनेपर उन्होंने अपने लगभग आधे दर्जन बच्चोंको चढ़ानेके लिये खुदरा पैसे दिये और स्वयं हाथ जोड़े खड़े रहे ।

मेरा ध्यान उन्हींकी ओर लगा था । उन्होंने जेबमेंसे नकद एक रुपया निकालकर हाथ लंबा किया, इसी बीच अचानक उनका ध्यान बगलमें खड़े एक भिखारीकी ओर गया । एक पैरसे लँगड़ा और अंधा वह भिक्षुक लकड़ी टेके हाथ फैलाये खड़ा था । उन्होंने कृष्णभगवान्की मूर्ति और भिक्षुककी ओर बारी-बारीसे देखा और मुझे लगा कि वे अभी भिक्षुकको कुछ सुना देंगे । परंतु मैंने क्या देखा ? उन्होंने रुपया भिक्षुकके हाथपर रख दिया और फिर वे भगवान्की मूर्तिके सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे । मेरे आश्चर्यका पार न रहा ।

कुछ देरके बाद वे बाहर निकले और मेरे साथ बात-चीत करने लगे । अब उनकी धार्मिक बातोंमें मुझे बड़ा रस आने लगा । मानो मेरी शङ्काका समाधान कर रहे हों—इस प्रकार वे एकाएक बोल उठे—‘आज मुझे श्रीकृष्णके सच्चे

दर्शन हुए । आज तो मानो भगवान् मेरी ओर अपना स्मित बिखेर रहे थे ।’

उनके हृदयकी बात सुननेके लिये इतने शब्द पयोक्त थे । मुझे लगा कि धर्म इसीका नाम है । देवता मूर्तिमें ही नहीं, रोटीके टुकड़ेके लिये बिलबिलाने जीवित मनुष्योंमें बसते हैं । यदि प्रत्येक मनुष्य दरिद्रोंमें नारायणके दर्शन करे तो ? ‘अखण्ड आनन्द’

—त्रिभुवन पन्० कापड़

(४)

ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ पुलिसकर्मचारी

दिनाङ्क १४।४।६६ को मैं रेलवे स्टेशन सफाई तिनसुकिया जा रहा था । तृतीय श्रेणीके एक डिब्बेमें मैं बैठा था । हाथमें एक प्लास्टिक-बैग था जिसमें सात हजारके नकद नोट थे तथा साथमें कुछ सुपारियोंका (३० सेरका) एक छोटा बस्ता था । ज्यों ही गन्तव्य स्टेशनपर पहुँचा, मैंने खिड़कीसे झाँककर एक कुलीको आवाज दी । मैंने अपने हाथका वह बैग सीटपर रखवा तथा वह सुपारियोंका बस्ता उस कुलीके सिरपर रखवाया । तुरंत मैंने प्लास्टिक-बैगको उठानेके लिये हाथ बढ़ाया तो स्तब्ध रह गया । पासमें ही खड़ा एक लड़का उसे लेकर नौ-दो-ग्यारह हो चुका था ।

मैंने तत्काल ही Railway Protection Force के पुलिसमैनोंसे, जो प्लेटफार्मपर वहीं पासमें खड़े थे, सहायता माँगी लड़केको पकड़नेके लिये । उन्होंने दौड़-धूप शुरू की, पर लड़का न जाने कहाँ छिप चुका था ।

मैंने मन-ही-मन कातर भावसे उस दयालु परमेश्वरको पुकारा । पर पुलिसवालोंके यह कहनेपर कि अब पता चलना सम्भव नहीं, मैंने प्लेटफार्म छोड़ दिया और उदास मनसे शहर जानेके लिये स्टेशनके पीछे पुलकी सीढ़ियोंपर चढ़ने लगा ।

इतनेमें ही पीछेसे एक अन्य पुलिसमैनने आवाज दी । मैंने उसकी ओर मुड़कर देखा और तत्काल उसके पास दौड़ा आया । उसके हाथमें वही अपना प्लास्टिक-बैग देखकर मैं हर्षसे उछल पड़ा और उस पुलिसवालेके चरण छूकर उसे प्रणाम किया ।

पुलिसवालेके कहनेपर मैंने बैग खोलकर देखा, उसमें पूरी-की-पूरी रकम—सात हजार रुपये ज्यों-की-त्यों थी । उसने

[संख्या ७]

बताया कि उधर कॉलोनीकी तरफ एक लड़का इसे लेकर उतावलीमें जा रहा था; संदेह होनेपर वह पुलिसवाला उसकी ओर दौड़ा। लड़का इस भयसे कि पुलिसवाला पकड़कर पीटेगा; यह बैग फेंककर बड़ी तेजीसे दौड़ पड़ा। पुलिसवालेने यह बैग लाकर मुझे दिया।

यदि यह पुलिसवाला सावधानी न बरतता तथा बैग मिलनेके बाद भी लोभके वशीभूत हो जाता तो मुझे इस बड़ी रकमसे हाथ धोना पड़ता। मैं आर. पी. एफ. आफिसमें गया और उस पुलिसवालेकी भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा इसकी कर्तव्यनिष्ठाके कारण पदोन्नतिकी प्रार्थना भी। पूछनेपर इस पुलिसवालेने अपना नाम एच्. के. दे. (H. K. Dey) बतलाया।

उसके बार-बार मना करनेपर भी सिर्फ इसी भावसे कि अन्य लोगोंके मनमें भी इस ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठाको देखकर उत्साहकी वृद्धि हो; मैंने एक अत्यन्त तुच्छ रकम (मात्र एक सौ रुपये) उसके हाथमें थमाकर पुरस्कृत किया। घर लौटते वक्त मेरी खुशीका ठिकाना न था।

—हीरालाल गोदूका

(५)

भयानक कुकृत्यका भयंकर परिणाम

घटना अधिक पुरानी नहीं है; कुछ ही वर्षों पूर्वकी बात है। यह अक्षरशः सत्य है। इसमें कला एवं कल्पनाका अंश भी नहीं है। घटनाके पात्रों एवं स्थानके नामोंका उल्लेख जान-बूझकर नहीं किया जा रहा है।

जिला...के...गाँवमें दो भाई साधारणतया कृषिकार्य करते हुए सरलतासे गृहस्थीका भार वहन करते थे। उनके पास एक बैलेंकी बड़ी ही सुन्दर जोड़ी थी। एक दिन संवत्सकालमें दो ग्राहक बैल खरीदने आये। सौदा बारह सौ रुपयेपर तय हो गया। पर बात करते-करते रात्रि हो गयी। कृषक बन्धुओंने निश्चल भावसे उन ग्राहकोंसे अपने घरमें ही आतिथ्य ग्रहण करनेका आग्रह किया। ग्राहकोंको तो रात्रि-निवास करना ही था; उन्होंने सहज ही आतिथ्य स्वीकार कर लिया।

भोजनोपरान्त ग्राहकोंके शयनादिका प्रबन्ध 'वरोठा' में कर दिया गया। 'वरोठा' लोकभाषामें घरके उस कमरे-को कहते हैं, जिसमेंसे होकर मार्ग मकानसे द्वारको जाता है। यथात् उसकी दोनों (दीवारोंमें दरवाजे होते हैं)। ग्राहक सो गये।

इधर कुछ देर बाद उन दोनों कृषक बन्धुओंके हृदयमें लोभ जाग उठा; लोभ पापका मूल है। उन दोनोंने ग्राहकोंकी हत्या करके उनका धन अपहरण करनेकी पापपूर्ण योजना बनायी; तथा दोनोंने अपनी पत्नियोंको भी इस कार्यमें सहयोगी बनाया कि लाशोंको गाड़नेका प्रबन्ध पहले ही कर लिया जाय। यह सोचकर वे घरके बिल्कुल समीपमें लगे हुए ईखके खेतमें गड़ढा खोदनेका निश्चय करके अतिशीघ्र कार्यमें संलग्न हो गये।

× × ×

दैवयोगसे गाँवके एक प्रतिष्ठित सज्जनको टट्टीकी हाजत हुई। अतः वे सज्जन गाँवके निकटतम होनेके कारण उसी खेतमें गये। खेतमें बड़ी खड़खड़ाहट हो रही थी। अतः उन्होंने शान्त होकर ध्यान दिया तो दो व्यक्तियोंकी मन्द परंतु सतर्क बात-चीत करनेकी आवाज सुनी। अतः वे रहस्य जाननेके लिये बड़ी ही सावधानीसे उनके समीप जाकर चुपके-से उनका कार्य देखने तथा बातचीत सुनने लगे। जब उन्हें उनके कार्यों तथा बातोंसे योजनाका पता लगा; तब वे तुरंत उन किसानोंके घर पहुँचे; कमरेका दरवाजा खुला ही मिला। उन सज्जनने ग्राहकोंकी जगाया। जागनेपर वे दोनों बड़े चकित हुए और जगानेका कारण पूछने लगे; परंतु उन सज्जनने बिल्कुल चुप रहनेका संकेत किया और बिना कुछ कहे अपने पीछे आनेको कहा। पता नहीं कैसे वे दोनों रात्रि-में अचानक जगकर भी उस अपरिचित व्यक्तिके पीछे बिना कुछ तर्क-वितर्क किये चल दिये; यह बात अस्वाभाविक अवश्य प्रतीत होती है। निश्चय ही यह ईश्वरीय प्रेरणा थी।

उन किसान बन्धुओंके एक-एक पुत्र था। वे दोनों गाँवमें एक जगह हो रहा नाटक देखने गये थे। नाटकके बीचमें एक बच्चेको बड़े जोरसे नींद आने लगी; अतः इच्छा न होनेपर भी उसने अपने दूसरे भाईको घर चलनेके लिये बाध्य कर दिया; घर आनेपर उन्हें भी द्वार खुला मिला तथा एक विस्तर भी लगा मिला। अतः उन दोनोंने सोचा कि सम्भवतः यह विस्तर हम दोनोंके लिये लगा दिया गया है। अतः वे दोनों वहीं लेट गये और लगभग १५।२० मिनटमें नाटकके कलाकारों एवं नृत्य आदिपर टीका-टिप्पणी करते रहे। तदनन्तर सो गये।

तदुपरान्त वे दोनों कृषकबन्धु लाश गाड़नेके लिये गड़ढा तैयार करके आ गये और पूर्वनिश्चित योजनाके अनुसार उनकी पत्नियोंने कटार हाथोंमें लेकर जल्दी-जल्दी एक-एक पुत्रका वध कर दिया; वे यह न देख पायीं कि किसको मार

रही हैं। उन कुमारोंके पिता-चाचा ने भी जल्दी-जल्दी उनके कपड़ोंकी खूब तलाशी ली; परंतु कहीं भी वह अर्थराशि उन्हें न मिली। झुंझला-घबराकर तुरंत लशोंको उठाकर पूर्वनिर्मित गड्ढेमें बड़ी सावधानीसे गाड़ दिया। यद्यपि कुमारोंकी लाश तथा युवकोंकी लाशके भार आदिमें बड़ा अन्तर होता है, फिर भी वे घबराहटमें कुछ न जान सके। शवोंको गाड़नेके बाद घबराहटके होते हुए भी उन चारोंने राहतकी साँस ली। पर पैसा न मिलनेके कारण उन्हें बड़ा पश्चात्ताप था। पकड़े जानेका भय तो था ही।

प्रातःकाल उन कृषक-बन्धुओंने ग्राहकोंको प्रातःकालीन क्रिया करते हुए देखा, तब तो वे सन्न रह गये तथा पुत्रोंके न लौटनेके कारण उन्हें भयानक धक्का लगा। उन दोनोंने तुरंत जाकर गड्ढेको खोदकर लशें निकालीं। अब क्या था, मासूम पुत्रोंके मृत शरीर खून-मिट्टीमें लथपथ सामने पड़े थे। फिर क्या था, यह पापमयी घटनाकी सूचना विजलीकी भाँति गाँवमें, जिलेमें तथा अन्य जिलोंमें भी फैल गयी। उन पापबुद्धि किसानोंकी जो दुर्दशा इस समय थी, वह देखी नहीं जाती।

—सौवरनलाल मौर्य

(६)

होटलके नौकरकी ईमानदारी

वात ४ मई ६६ की है। हमारे गाँवका नापा नामक एक कोरकू आदिवासी कुछ जमीन खरीदनेके लिये ५०००) (पाँच हजार) रुपये एक कपड़ेकी थैलीमें लेकर खेतकी रजिस्ट्री कराने अपने कुछ साथियोंके साथ बुरहानपुर रजिस्ट्री आफिसमें गया हुआ था। रजिस्ट्री-कार्यमें विलम्ब देखकर वह जलपानके लिये अपने साथियोंसहित श्रीसेठ मौजीलाल घनश्यामदासके होटलमें गया। वहाँ ऊपरके मंजिलेमें बैठकर सबने जलपान किया। जलपानके पश्चात् सभी लोग वापस आ गये; परंतु रुपयोंकी थैलीपर किसीका ध्यान नहीं रहा। थैली वहीं छूट गयी और उसे होटलके एक नौकरने, जिसका नाम स्मरण नहीं है, उठाकर बड़ी सावधानीसे अपने पास रख लिया।

उधर जब रजिस्ट्री आफिसमें रुपयोंकी आवश्यकता हुई, तब सबके होश उड़ गये। थैलीकी तलाशमें जब होटलमें गये, तब उक्त होटलके ईमानदार नौकरने ५०००) रुपयोंकी थैली उस आदिवासीको वापस कर दी। आदिवासीने नौकरको कुछ पुरस्कार देना चाहा, परंतु उसने कुछ स्वीकार नहीं किया।

आज भी ऐसी चाटुकारी दुनियामें सज्जनोंका वास है, जो

अपने नैतिक चरित्रसे समाजका मार्ग-दर्शन करते हैं। यदि ऐसा ही स्वभाव सबका हो जाय तो रामराज्य दूर नहीं।

—विश्वम्भरनाथ दीक्षित

(७)

‘ईमान’की कमाई

वात कोई पंद्रह-बीस साल पहलेकी है। दिन-तिथि तो स्मरण नहीं, प्रातःकालका समय था। मैं द्वारपर बैठी अपना मन प्रकृतिकी अनुपम आभासे बहला रही थी, अचानक एक आवाज सुनायी दी—‘दरी लो, दरी!’ देखा, एक तरुण धीठपर गड्ढर बाँधे मेरे घरकी ओर बढ़ता आ रहा है। पास आकर उसने अपना गड्ढर खोलकर कई दरिं मेरे सामने फैला दीं। एक दरी मुझे पसंद आयी और मैं युवकसे मोल-भाव करने लगी। परंतु युवक किसी भी तरह चौदह रुपये पंद्रह आनेसे एक पैसा भी कम करनेको तैयार नहीं हुआ और बोला, ‘वहनजी! सुबह-सुबह ईमानसे सही दाम मैंने बताये हैं।’

दरी मुझे पसंद थी, अतएव मैंने पंद्रह रुपये दे दिये, क्योंकि एक आना बाकी उसके पास नहीं था, मैंने उसके कहा कि ‘वह बाकी पैसे फिर कभी दे जाये।’

× × × ×

काफ़ी अरसा बीत गया। मैं एक आनेकी बात भूल गयी थी। अचानक एक दिन क्या देखती हूँ कि एक बूढ़ा सा आदमी मकानके आसपास चक्कर काट रहा है। मेरी उत्सुकता जगी तो मैंने आगे बढ़कर उससे पूछा कि वह क्या ढूँढ़ रहा है। बुढ़ा बड़े दुखी स्वरमें बोला—‘मेरा बेटा कुछ दिन पहले इस शहरमें दरी बेचने आया था। वापस लौटनेपर वह बीमार पड़ गया और ईश्वरका प्यार हो गया। मरनेके कुछ घंटे पहले उसने इस मकानका पता बताते हुए अपनी अन्तिम इच्छा व्यक्त की थी कि उसके ऊपर १ आनेका जो कर्जा बाकी है, वह मैं चुका आऊँ। फुटकर पैसा न होनेके कारण उस दिन वह एक आना नहीं चुका सका था।’ बूढ़ेकी आँखें नम हो आयीं और वह बोला—‘मेरे बेटेके अन्तिम शब्द थे, जीवनभर मैंने ईमानदारीसे रोजी कमायी है; अतः मौतके बाद भी वह कोई न कह सके कि मैंने किसीका पैसा रख लिया है। मेरी भी आँखें भर आयीं। इस घटनासे ‘ईमानदारी’ मेरे जीवनका शाश्वत सिद्धान्त बन गयी। ‘धर्मयुग’

—प्रमिल शर्मा

श्रीगीता-रामायणकी आगामी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिये समितिने इन ग्रन्थोंके द्वारा धार्मिक शिक्षाका प्रसार करनेके लिये परीक्षाओंकी व्यवस्था की है। उत्तीर्ण छात्रोंको योग्यतानुसार पुरस्कार भी दिया जाता है।

परीक्षाओंके लिये स्थान-स्थानपर लगभग ५०० केन्द्र भी स्थापित हैं तथा और भी नियमानुसार स्थापित किये जा सकते हैं। आगामी गीता-परीक्षाएँ दिनाङ्क २० एवं २१ नवम्बर १९६६ को एवं श्रीरामायणकी परीक्षाएँ दिनाङ्क ८ एवं ९ जनवरी १९६७ को होनेवाली हैं।

केन्द्र-व्यवस्थापकोंसे निवेदन है कि सभी परीक्षाओंके लिये आवेदनपत्र एवं नवीन केन्द्रोंके लिये प्रार्थनापत्र दिनाङ्क ३० अगस्त १९६६ तक भेज देनेकी कृपा करें।

विशेष जानकारीके लिये पत्र लिखकर नियमावली मँगा सकते हैं।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम, वाया ऋषिकेश (देहरादून) उ०प्र०

आवश्यक सूचना

कुछ दिनों पूर्व गीताप्रेसके विभिन्न विभागोंके लिये कुछ कार्यकर्ताओंकी आवश्यकताके सम्बन्धमें एक विज्ञप्ति 'कल्याण'में छपी थी। उसके फलस्वरूप इतनी अधिक संख्यामें आवेदनपत्र आये हैं कि उन सबको पढ़कर चुनाव करना कठिन हो रहा है। अतएव यह निवेदन है कि अब कोई सज्जन आवेदनपत्र कृपया न भेजें। जो सज्जन आवेदनपत्र भेज चुके हैं, वे बार-बार पत्र न लिखें। चुनावमें जो आयेंगे, उनके पास समयपर सूचना आप ही पहुँच जायगी।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

'कल्याण'के चालू वर्षका 'धर्माङ्क' अभीतक मिलता है

अतः नये ग्राहक बनने-बनानेवालोंको शीघ्रता करनी चाहिये।

जिन्हें नया ग्राहक बनना हो, वे कृपापूर्वक वार्षिक मूल्य रु० ७.५० मनीआर्डरसे भेजनेकी कृपा करें अथवा 'धर्माङ्क' तथा उसके बादके अबतकके प्रकाशित सभी अङ्क वी० पी० द्वारा भेजनेकी आज्ञा प्रदान करें।

व्यवस्थापक—कल्याण, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

6 AUG 1966

गोहत्या बंद करानेके लिये भगवद्-आराधन सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियानको सफल बनाइये

आस्तिक जनतासे अनुरोध

भारतीय धर्म, कर्म, सभ्यता, संस्कृतिका मूल स्रोत, राष्ट्र एवं विश्वके सर्वविध अभ्युदयका आधार और भगवान्‌का परम प्रिय गोवंश है। गोहत्यासे ही देशका आध्यात्मिक, धार्मिक, आर्थिक पतन एवं स्वास्थ्यका विनाश उत्तरोत्तर होता जा रहा है तथा देशमें भीषणतम अन्नसंकट छाया हुआ है। जबतक समग्र भारतसे समस्त गोवंशकी हत्या पूर्णतया बंद न होगी, तबतक देशमें न तो सुखशान्ति होगी और न सांस्कृतिक उत्थान एवं राष्ट्ररक्षा ही होगी। अबतक हमलोगोंने गोवध बंद करानेके लिये अनेक उपाय किये; किंतु सरकारने इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं किया। अतः अब हमने संयुक्तरूपसे कड़ा कदम उठानेका निश्चय किया है।

कुछ महाविभूतियाँ गोपाष्टमी संवत् २०२३ तदनुसार २० नवम्बर १९६६ से गोहत्याबंदीके लिये आमरण अनशनव्रत करनेका निश्चय कर चुकी हैं। निर्बल एवं बलवान्‌का भी परम बल आर्तत्राणपरायण अशरणशरण भगवान्‌ ही हैं।

अतः समस्त भारतीयोंको गोहत्या-बंदीके संकल्पकी पूर्तिके निमित्त व्रत, उपवास, यज्ञ, जप, होम, पूजा, पाठ आदिद्वारा भगवद्-आराधनमें अपने-अपने विश्वासानुसार आज ही प्रवृत्त हो जाना चाहिये। आचार्यों, मुनियों, वैदिकों, ग्रन्थियों एवं अन्य समस्त सज्जनोंको अखण्ड रुद्राभिषेक, दुर्गापाठ, विष्णु-सहस्रनाम-पाठ, भगवन्नाम-कीर्तन एवं अपने-अपने इष्टदेवकी आराधना विशाल पैमानेपर करनी चाहिये तथा उसकी सूचना 'कल्याण' कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुरमें भेजनी चाहिये।

गोवध-बंदीके लिये जितना भी प्रयत्न कर सकते हों, करना चाहिये, जिससे कि अनशनव्रत तथा अन्यान्य प्रत्यक्ष प्रयत्न करनेवालोंको बल मिले तथा भारतमाताके भालसे गोवधका कलङ्क दूर हो जाय।*

स्वामी करपात्री

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

गुरुचरणदास (अध्यक्ष, भारत-साधु-समाज)

मुनि सुशीलकुमार

हनुमानप्रसाद पोद्दार

* समस्त भारतमें कानूनके द्वारा गोहत्या पूर्णरूपसे बंद होनी ही चाहिये। सरकार कृपापूर्वक शीघ्र ऐसा कानून बना दे। इसीलिये यह प्रयास हो रहा है। साथ ही जो हिंदू समर्थ हों, सबको एक-एक गाय अवश्य रखनी चाहिये। गौ अधिक-से-अधिक दूध दे तथा मजबूत सॉड-बैल हों, इसके लिये नस्ल-सुधारका काम भी होना चाहिये। एजेंट, दलाल, व्यापारी, इन्स्पेक्टर, डाक्टर आदिके रूपमें जो लोग गोहत्यामें सहायता कर रहे हों, उनको इस सहायतासे बचना चाहिये तथा समाजसे सर्वत्र उनको तिरस्कार मिलना चाहिये। सरकारी बुद्धि ठीक हो तथा गोहत्या-निवारणके लिये प्रयत्न करनेवालोंको सार्विक बल एवं साहस मिले, इसके लिये विभिन्न सभी सम्प्रदायोंके हिंदू, जैन, सिख, बौद्ध आदि सबको अपने-अपने विश्वासके अनुसार कम या अधिक देवाराधन तथा भगवत्प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये।

करोड़ों लोग आराधना करने लगेंगे तो उसका बड़ा प्रभाव होगा।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

मभ्युदयका
र्थक पतन
हुआ है।
ख शान्ति
नेके लिये
युकरूपसे
के लिये
णपरायण
तप, होम,
चाहिये।
ठ, विष्णु-
चाहिये
वत तथा
जाय।*

पेसा कानून
गहिये। गौ
ट, दलाल
ना चाहिये
लिये प्रयत्न
दि सबको

द पोद्दार



6 AUG 1966

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

गोहत्या बंद कराने १,५०,०००

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-नटराजका ताण्डव-नृत्य [कविता] ...	१०८५
२-कल्याण ('शिव') ...	१०८६
३-गो-महिमा और गो-रक्षाकी आवश्यकता (ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्त श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका दिव्य संदेश; संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीशालिग्रामजी) ...	१०८७
४-जीवनका परमपुरुषार्थ (संकलयिता— श्री 'माधव') ...	१०८८
५-मनन-माला (ब्र० श्रीमगनलाल हरिमाई व्यास) ...	१०८९
६-धनकी आसक्तिसे पतन [कविता]	१०९१
७-आजका तनावपूर्ण जीवन और मानसिक रोग (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी-एच० डी०) ...	१०९२
८-समता [कहानी] (श्री 'चक्र') ...	१०९५
९-तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः (श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार एम० ए०, एल्० टी०)	१०९८
१०-जीवनका सार—धर्म [कविता] (श्रीभगवत्नारायणजी भार्गव) ...	११००
११-हरेर्नामैव केवलम् (प्रो० श्रीबौद्धविहारीजी झा, एम० ए०, साहित्याचार्य) ...	११०१
१२-यमराजका न्याय [कहानी] (श्रीनरेन्द्रनारायणलालजी) ...	११०४
१३-परम सुहृद् भगवान् [कविता] ...	११०६

कल्याण, सौर भाद्रपद २०२३, अगस्त १९६६

विषय	पृष्ठ-संख्या
१४-पढ़ना और है, गुनना और (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ...	११०७
१५-सच्चा शिक्षित विद्वान् कौन है ? [कविता]	१११०
१६-पुण्य स्मरण (श्रीमाधव) ...	११११
१७-तुलसीके शब्द (डा० श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू एम० ए०, डी० लिट्०) ...	१११४
१८-दोनों हाथ समेटी तेरी देन [कविता] (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा) ...	१११८
१९-पुरुषोत्तममास (श्रीपरमहंसजी महाराज, श्रीरामकुटिया) ...	१११९
२०-शुभ्रोपासना (स्वामीजी श्रीशारदानन्दजी)	११२१
२१-शिक्षकका धर्म और उसके आदर्श (अध्यापक श्रीमानिकलालजी 'दोषी')	११२५
२२-विद्यार्थी-धर्म ही जीवनकी आधार-शिला है (श्रीसुदामाप्रसादजी त्रिपाठी 'दीन', शास्त्री, एम० डी० एच्०) ...	११२६
२३-दक्षिण भारतकी तीर्थ-यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव) ...	११२८
२४-मधुर ...	११३४
२५-सदुपयोग [कहानी] (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर) ...	११३५
२६-पढ़ो, समझो और करो ...	११३९
२७-श्रद्धाञ्जलि (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ...	११४८

चित्र-सूची

१-श्रीगौरीशंकर	(रेखाचित्र) ...	मुखपृष्ठ
२-नटराजका ताण्डव-नृत्य	(तिरंगा) ...	१०८५

वार्षिक मूल्य
भारतमें रु० ७.५०
विदेशमें रु० १०.००
(१५ शिल्लिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति
भारतमें ४५ पै०
विदेशमें ५६ पै०
(१० पैसे)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

६६

व्या

७

०

१

४

८

९

१

५

६

८

४

५

९

८

४

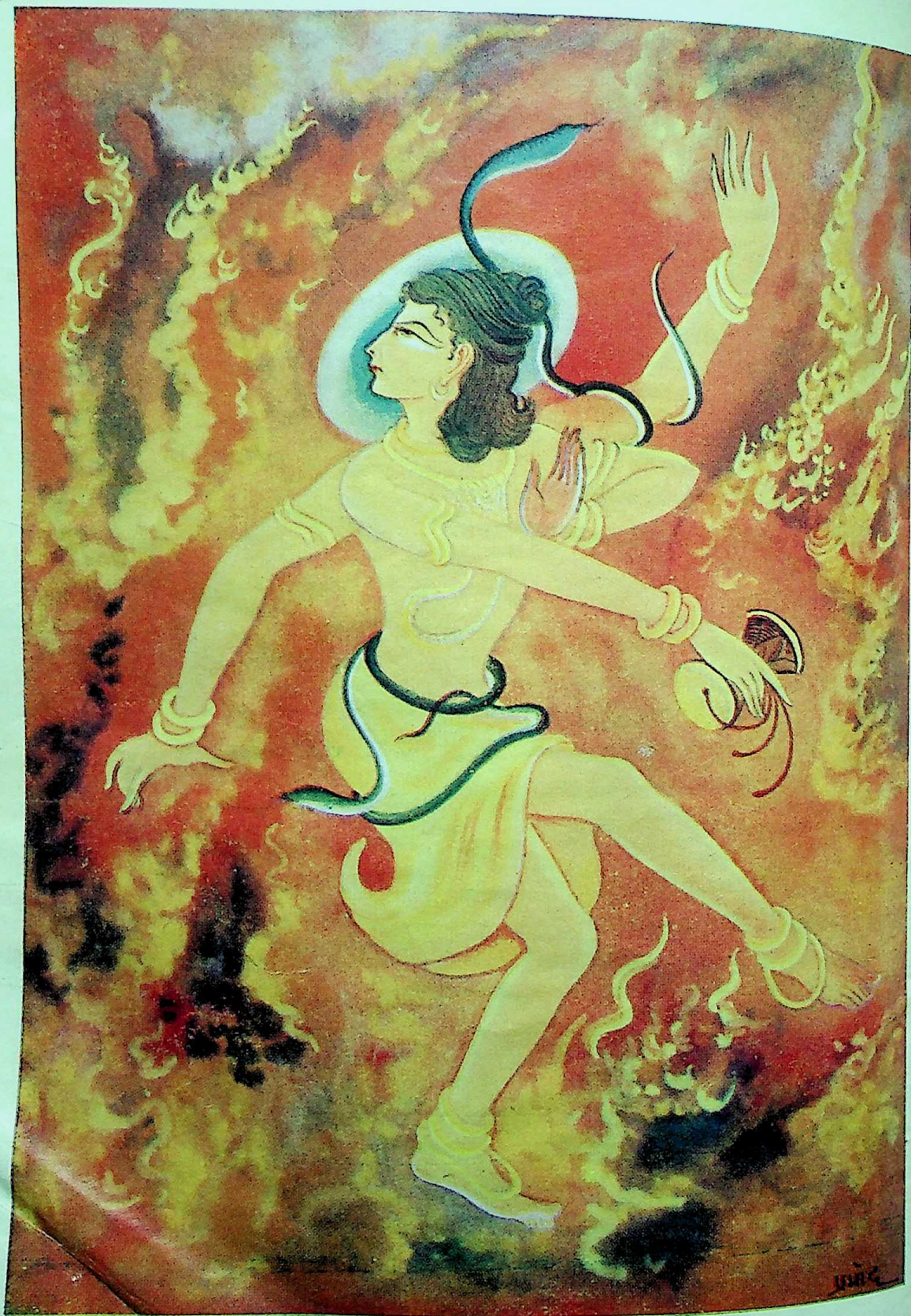
५

प्रति

४५ पै०

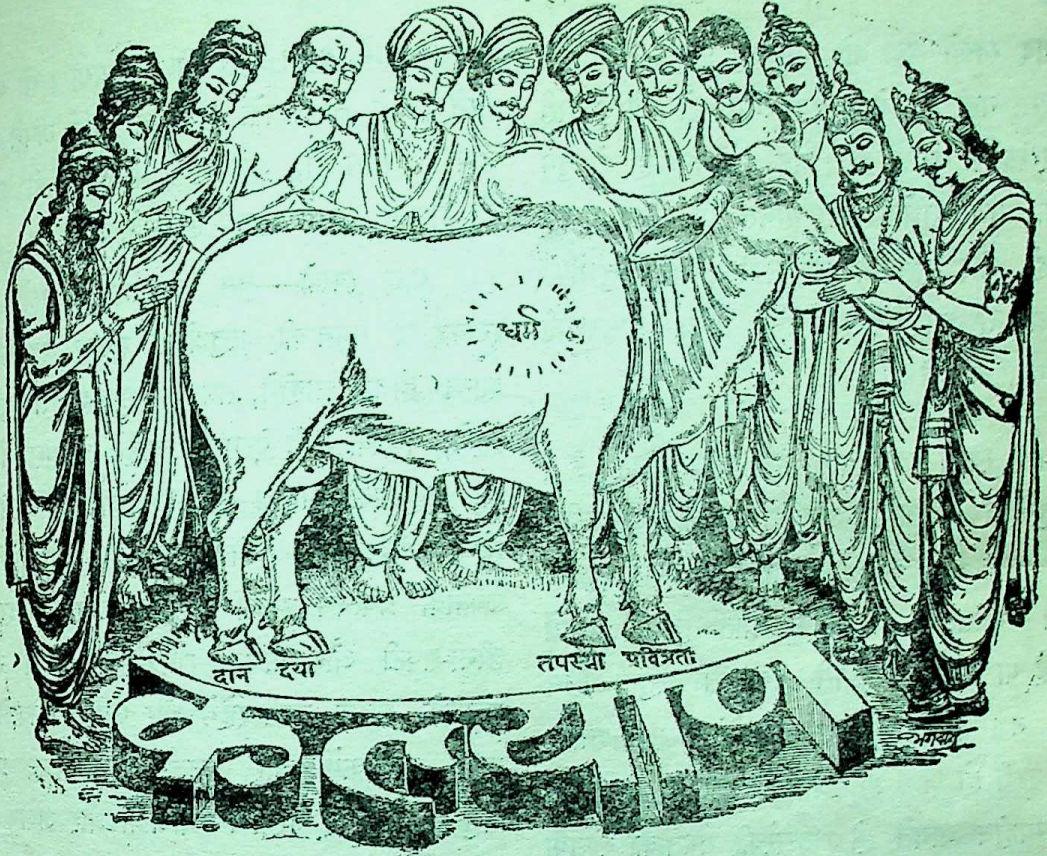
५६ पै०

पैस)



नटराजका ताण्डव-नृत्य

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्नृक्षारिजर्षिभिर्विदूशूद्रैरपि वन्द्यते स जयताद्वर्मा जगद्धारणः ॥

वर्ष ४०

गोरखपुर, सौर भाद्रपद २०२३, अगस्त १९६६

संख्या ८

पूर्ण संख्या ४७७

नटराजका ताण्डव नृत्य

नाचत नटराज रुचिर वाजत डमरू कर ।
जटाजूट सोहत सिर भूषन भुजंगधर ॥
आसुतोष सदासिव भव रुद्र प्रलयंकर ।
देवपति महादेव अखिल विखडुःखहर ॥
भूतनाथ अंग अंग राजत विभूति वर ।
कामरिपु कामरूप काम-सकल-सिद्धिकर ॥

कल्याण

याद रक्खो—यहाँ कोई भी वस्तु, प्राणी, परिस्थिति, पदार्थ ऐसा नहीं है, जो तुम्हारा 'मेरा' हो—जो तुम्हारी ममताको सार्थक करता हो। यह महामोह है जो तुम सांसारिक प्राणि-पदार्थोंको मेरा मानते हो, उनमें ममता रखते हो और संसारकी अधिक-से-अधिक वस्तुओंको 'मेरी' बनाना चाहते हो—उनपर मिथ्या 'ममता'की मुहर लगाना चाहते हो।

याद रक्खो—जहाँ 'मेरा' है, वहीं 'पराया' है। कोई तुम्हारी ममताकी वस्तु है, तो कोई दूसरोंकी। अपनी ममताकी वस्तुओंमें तुम्हारी आसक्ति है, दूसरोंकी ममताकी वस्तुओंके प्रति तुम्हारे मनमें उपेक्षा है या द्वेष है। इसीसे ममताकी वस्तुके छिन जानेपर, नष्ट हो जानेपर या नष्ट होनेकी सम्भावनापर ही तुम दुखी हो जाते हो, अपनेको अत्यन्त संकटग्रस्त और भाग्यहीन मानते हो। दूसरेकी ममताकी वस्तुके नाशपर तुम या तो उपेक्षा करते हो—या सुखी होते हो। राग-द्वेषका यही परिणाम है। कुछ प्राणि-पदार्थोंमें ममता होनेपर समता नष्ट हो जाती है और फलतः राग-द्वेष पुष्ट हो जाते हैं, जो नये-नये मानसिक और शारीरिक पापों तथा दुःखोंके कारण होते हैं।

याद रक्खो—तुम्हारे पास जो कुछ है, या जो कुछ तुम्हें मिलनेवाला है, सब भगवान्का है। यह समझकर उसपर निजी ममता न करके भगवान्की वस्तुकी दृष्टिसे उसकी सँभाल करो और उसपर अपना स्वत्व न मानकर उसे यथायोग्य भगवान्की सेवामें लगाते रहो। इससे, 'जैसा बीज बोया जाता है, उसीके अनुरूप अनन्तगुने फल होते हैं' इस बीज-फल-न्यायके अनुसार

तुम्हें बदलेमें बहुत कुछ मिल जायगा। यों यदि सब करने लगेंगे तो सबके अभावकी पूर्ति अपने-आप हो जायगी। साथ ही, भगवान्की वस्तुको 'मेरी' माननेका जो दोष है, उससे बचाव हो सकेगा।

याद रक्खो—तुम जबतक वस्तुओंमें ममता रखकर या ममताकी वस्तुओंकी संख्या बढ़ाकर सुखी-शान्त होना चाहोगे, तबतक सुख-शान्ति तुमसे दूर रहेंगे; क्योंकि सभी ऐसा ही चाहेंगे तो संसारमें दूसरोंकी वस्तुओंको मनुष्य सदा ललचायी आँखोंसे देखता रहेगा और उन्हें हथियाकर उनपर ममताकी छाप लगानेके प्रयत्नमें संलग्न होगा। इससे सदा सर्वत्र छीना-झपटी और फलतः संघर्ष-संहार होता रहेगा। संसारके मानव दुखी रहेंगे और ऐसा करनेवाले मानव प्राणी परलोकमें और पुनर्जन्ममें भी नाना प्रकारकी असुरी योनियोंके, नरक-यन्त्रणाओंके और अशेष क्लेशोंके भागी होंगे ही।

याद रक्खो—जो मानव इस प्रकार ममता, राग-द्वेष, उनके फलस्वरूप पाप तथा दुःखभोगकी परम्परामें जीवन बिताता रहेगा, वह मानवजीवनके एकमात्र परम तथा चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिसे वञ्चित रह जायगा, जिसकी प्राप्ति मानवेतर योनियोंमें होती ही नहीं। अतएव संसारके किसी भी प्राणी, पदार्थ, वस्तु, परिस्थितिमें ममता न कर नित्य सत्य सनातन सर्वाधार भगवान्के श्रीचरणोंमें ममता करो। फिर सर्वत्र समता हो जायगी। राग-द्वेष रहेंगे नहीं। पाप होंगे नहीं। दुःख तथा नरकोंसे एवं नारकी योनियोंसे छुटकारा मिला रहेगा और मानव-जीवनकी चरम सफलत्वरूप भगवत्प्राप्ति भगवत्कृपासे हो जायगी।

‘शिव’



गो-महिमा और गोरक्षाकी आवश्यकता

(ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्त श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका दिव्य-संदेश)

गोरक्षा हिंदूधर्मका एक प्रधान अङ्ग माना गया है। प्रायः प्रत्येक हिंदू गौको माता कहकर पुकारता है और माताके समान ही उसका आदर करता है। जिस प्रकार कोई भी पुत्र अपनी माताके प्रति किये गये अत्याचारको सहन नहीं करेगा, उसी प्रकार एक आस्तिक और सच्चा हिंदू गोमाताके प्रति निर्दयताके व्यवहारको नहीं सहेंगा; गोहिंसाकी तो वह कल्पना भी नहीं सह सकता। गौके प्राण बचानेके लिये वह अपने प्राणोंकी आहुति दे देगा; किंतु उसका बाल भी बाँका नहीं होने देगा। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके पूर्वज महाराज दिलीपके चरित्रसे सभी लोग परिचित हैं। उन्होंने अपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठकी बछिया नन्दिनीकी रक्षाके लिये सिंहको अपना शरीर अर्पण कर दिया, किंतु जीते-जी उसकी हिंसा न होने दी। पाण्डवशिरोमणि अर्जुनने गोरक्षाके लिये बारह वर्षोंका निर्वासन स्वीकार किया।

परंतु हाय ! वे दिन अब चले गये। हिंदूजाति आज दुर्बल हो गयी है। हम अपनी मानस स्वतन्त्रता, अपना पुरुषत्व, अपनी धर्मप्राणता, ईश्वर और ईश्वरीय कानूनमें विश्वास, शास्त्रोंके प्रति आदरबुद्धि, विचार-स्वातन्त्र्य, अपनी संस्कृति एवं मर्यादाके प्रति आस्था— सब कुछ खो बैठे हैं। आज हम आपसकी झूट एवं कलहके कारण छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। हम अपनी संस्कृति एवं धर्मपर किये गये प्रहारों एवं आक्रमणोंको व्यर्थ करनेके लिये संघटित नहीं हो सकते। हम अपनी जीवनीशक्ति खो बैठे हैं। मूक पशुओंकी भाँति दूसरोंके द्वारा हाँके जा रहे हैं। शारीरिक गुलामी ही नहीं, अपितु मानसिक गुलामीके भी शिकार हो रहे हैं। आज हम सभी बातोंपर पाश्चात्य दृष्टिकोणसे ही

विचार करने लगे हैं। यही कारण है कि हमारी इस पवित्र भूमिमें प्रतिवर्ष लाखों-करोड़ोंकी संख्यामें गाय और बैल काटे जाते हैं और हम इसके विरोधमें अँगुलीतक नहीं उठाते। आज हम दिलीप और अर्जुनके इतिहास केवल पढ़ते और सुनते हैं। उनसे हमारी नसोंमें जोश नहीं भरता। हमारी नपुंसकता सचमुच दयनीय है !

× × ×

भारत-जैसे कृषिप्रधान देशमें आर्थिक दृष्टिसे भी गायका महत्त्व स्पष्ट ही है। जिन लोगोंने हमारे ग्रामीण जीवनका विशेष मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया है, उन सबने एक स्वरसे हमारे जीवनके लिये गौकी परमावश्यकता बतायी है। गोधन ही हमारा प्रधान बल है। गोधनकी उपेक्षा करके हम जीवित नहीं रह सकते। अतः हमारे गोवंशकी संख्या एवं गुणोंकी दृष्टिसे जो भयानक हास हो रहा है, उसका बहुत शीघ्र प्रतीकार होना चाहिये और हमारी गौओंकी दशाको सुधारने, उनकी नस्लकी उन्नति करने और उनका दूध बढ़ाने तथा इस प्रकार देशके दुग्धोत्पादनमें वृद्धि करनेका भी पूरा प्रयत्न करना चाहिये। गायों, बछड़ों एवं बैलोंका वध रोकने तथा उनपर किये जानेवाले अत्याचारोंको बंद करनेके लिये देशभरमें कानून बनना आवश्यक है। विधर्मियोंको भी गौकी परमोपयोगिता बतलाकर गो-जातिके प्रति उनकी सहाजुभूति एवं सद्भावका अर्जन करना चाहिये। जिस देशमें कभी दूध और दहीका पानीकी तरह बाहुल्य था, उस देशमें आज असली दूध मिलनेमें कठिनता हो रही है—यह कैसा आश्चर्य है !

× × ×

यदि समय रहते भारतवासी सावधान नहीं होंगे, इसी तरह गोधनकी उपेक्षा करते रहेंगे तथा गौओंके

बढ़ते हुए हासको रोकनेकी चेष्टा नहीं करेंगे तो भविष्य और भी भयानक हो सकता है। उस समय कोई उपाय करना भी कठिन हो जायगा, इसलिये विचारवान् मनुष्योंको चाहिये कि वे पहलेसे ही सावधान हो जायँ। खासकर प्रत्येक हिंदूके लिये तो इस समय यह एक प्रधान कर्तव्य हो गया है कि वह इस ओर ध्यान दे और सब प्रकारसे गौओंकी रक्षाके लिये चेष्टा करे।
(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीशालिमाराम)

जीवनका परम पुरुषार्थ

[एक महात्माका प्रसाद]

(संकलयिता—श्री‘माधव’)

स्नेहकी माँग प्राणिमात्रको रहती है; क्योंकि स्नेहके बिना जीवनमें व्यापकता नहीं आती। सच तो यह है कि हमारा निर्माण भी किसीके स्नेहसे और उदारतासे ही हुआ है। अतः स्नेह एवं उदारतासे हमारी जातीय एकता है। जिससे हमारी जातीय एकता है, हम उससे विमुख हो गये हैं, दूर नहीं। विमुखता अपना ही बनाया हुआ दोष है किसी औरका नहीं। जब हम अपने बनाये हुए दोषका त्याग कर देंगे, तब हमारा समस्त जीवन विवेक और प्रेमसे परिपूर्ण हो जायगा। विवेकपूर्वक हम अनित्य जीवनसे विमुख होकर नित्य-जीवन प्राप्त कर सकते हैं। प्रेमी होकर प्रेमास्पदको रस प्रदान कर सकते हैं और प्राप्त बलके सदुपयोगसे उत्कृष्ट भोग भी प्राप्त हो सकते हैं। परंतु भोगोंकी प्राप्ति किसी भी विवेकी तथा प्रेमीको अभीष्ट नहीं है; क्योंकि भोगका परिणाम रोग तथा शोक है। अतः भोगप्राप्ति विवेकयुक्त जीवनका उद्देश्य नहीं है। विवेकयुक्त जीवनका उद्देश्य तो केवल कामनाओंकी निवृत्ति, जिज्ञासाकी पूर्ति और प्रेमकी प्राप्ति ही हो सकता है। कामनाओंकी निवृत्तिमें पूर्ण योग और चिरशान्ति तथा जिज्ञासाकी पूर्तिमें अमरत्वकी प्राप्ति होती है। परंतु जिसे भोग अभीष्ट नहीं है, उसे ही नित्य-योग और अमरत्व प्राप्त होता है। जो अमरत्वकी भी छावसा नहीं रखता, उसे प्रेमकी प्राप्ति होती है।

पुण्यकर्म आदिसे उत्कृष्ट भोग और विवेकसे अमरत्व प्राप्त हो सकते हैं। कर्म करनेकी सामर्थ्य और विवेक तो अनन्तकी अहैतुकी कृपासे स्वतः प्राप्त है; परंतु प्रेमप्राप्तिके लिये तो हमें उन अनन्तके समर्पित होना पड़ेगा। उसके लिये हमें उनकी दी हुई सामर्थ्य, योग्यता आदिको केवल उन्हें ही समर्पित करना होगा। जिस प्रकार शिशु माँकी उपार्जित वस्तुओंको माँसे उत्पन्न किये हुए हाथोंके द्वारा ही जब माँके भेंट कर देता है तब माँ प्रसन्न हो जाती है। बेचारे बालकके पास अपनी कोई वस्तु नहीं है, सब कुछ माँसे ही मिला है। उसी प्रकार हमें भी सब कुछ उन अनन्तकी अहैतुकी कृपासे ही मिला है। अतः हमें उनकी दी हुई प्रत्येक वस्तु, योग्यता और सामर्थ्यको उन्हींसे प्राप्त विवेकपूर्वक उन्हींको भेंट कर देना है तथा उनके विश्वास, प्रेम और सम्बन्धको ही अपना अस्तित्व मानना है। ऐसा होते ही हमें जो प्रेम प्राप्त होता है, उसी प्राप्त प्रेमसे हम उन अनन्तको रस प्रदान कर सकते हैं। जिस प्रकार माँके द्वारा प्राप्त स्नेहसे ही शिशु माँको रस प्रदान करता है, उसी प्रकार हम शिशुकी भाँति उन अनन्तके दिये हुए प्रेमसे ही उन्हें आह्लादित कर सकते हैं। कारण कि विवेकयुक्त जीवनका निर्माण उनकी अनिर्वचनीय, अनुपम और अहैतुकी कृपाशक्तिने उन्हें प्रेम प्रदान करनेके लिये ही किया है। इस दृष्टिसे जीवनका मुख्य

संख्या ८]

उद्देश्य प्रेम-प्राप्ति है। वह प्रेम तभी प्राप्त होगा जब हम उनकी कृपाका आश्रय लेकर अपनेको उन्हींके समर्पित कर दें। इस बातके लिये चिन्तित न हों कि 'हम कैसे हैं' ? जैसे भी हैं उनके हैं। वे जैसे भी हैं हमारे हैं। उनकी कृपा स्वयं हमें उनसे प्रेम करनेके योग्य बना लेगी। हमें तो केवल उनकी कृपाको अपना

लेना है। उनकी गुणमयी माया तो प्राणियोंको मोहित करती है; परंतु उनकी कृपाशक्ति स्वयं उन शक्तिमान्-को मोहित कर देती है। अतः उनकी कृपाका आश्रय लेकर जो एक बार यह कह देता है कि 'मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो' बस, वे सदाके लिये उसके हो जाते हैं। यही इस जीवनका अन्तिम पुरुषार्थ है।

मनन-माला

(लेखक—ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

[गताङ्क पृष्ठ १०३५ से आगे]

१४—'मैं आत्मा हूँ'—इस बातमें आपको शङ्का होती हो तो विचार दृढ़ करके बताइये कि यदि आप आत्मा नहीं तो क्या हैं आप हैं—इसमें तो कोई शङ्का नहीं है ? मैं हूँ—यह अनुभव सबको होता है। 'मैं नहीं हूँ'—ऐसा कोई नहीं कहता। इस जगत्में दो वस्तुएँ हैं। एक आत्मा है—जो निष्क, अविकारी और अविनाशी है और दूसरा अनात्मा—जो दृश्य है, विकारी है और विनाशी है। किसी भी आग्रहसे मुक्त होकर स्वतन्त्रतापूर्वक बुद्धिसे विचार करके देखिये तो आपको ज्ञात होगा कि दृश्य जो विकारी और विनाशी है, वह 'मैं' नहीं हूँ। वल्कि मैं द्रष्टा हूँ। आत्मा द्रष्टा है और जगत् दृश्य है। आत्मा द्रष्टा है और शरीर, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि दृश्य है। आत्मा इनका अनुभव करता है, आत्माका अनुभव ये नहीं कर सकते।

१५—यह तत्त्व सत्य है, पर जबतक यह बात समझमें नहीं आती, तबतक उपासना करता रहे। भक्तिके द्वारा चित्त शुद्ध हुए बिना करोड़ों उपाय करनेपर भी चित्त इस बातको स्वीकार नहीं करता। अतएव किसी-न-किसी सगुण परमात्माकी निष्काम भावसे भक्ति करे, वैसा करनेपर चित्त-शुद्धि होकर बुद्धिसे स्वयमेव आत्मज्ञानकी स्फूर्ति होगी। वैराग्य और ज्ञान—ये दो निष्काम भक्तिके फल हैं। निष्काम भक्ति करते रहनेसे वैराग्य और आत्मज्ञान स्वयं ही फलित होगा। इसके लिये अथिरे होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। कोई क्रिया बाँझ नहीं होती। सकाम भक्ति इच्छित फल प्रदान करती है और निष्काम भक्ति आत्मज्ञान और वैराग्य प्रदान करती है। इन दोनोंकी प्राप्ति जबतक न हो तबतक लगे रहना जरूरी है।

भक्ति जैसे-जैसे बढ़ती जाय, वैसे-वैसे निष्काम होता जाय तब ज्ञान और वैराग्यका प्रादुर्भाव होगा और यदि ये दोनों प्रकट न हों तो निश्चयपूर्वक जान ले कि भक्ति करनेवालेके चित्तमें अवश्य कोई-न-कोई भोग-कामना या वासना भरी है।

१६—इस जगत्के उत्पन्न होनेके पहले एक परमात्मा था। उसके सिवा कोई दूसरा न था। उसकी अपनी माया-शक्तिसे यह दृश्य-जगत् संकल्पमात्रसे बन गया। दूसरी वस्तु न होनेके कारण या तो वह स्वयं जगत् रूप हो गया अथवा मायावीके खेलके समान इस सम्पूर्ण जगत्का व्यवहार खड़ा हो गया है, जो असत् है। अतएव या तो जगत्को मिथ्या मायामय मानो अथवा जगत्को परमात्मारूप मानो—इन दोनोंके सिवा तीसरा मार्ग नहीं है। तुम्हारी बुद्धिमें जो जँचे उसे मानो।

१७—तुमको यह शङ्का होती हो कि तुम आत्मा नहीं, जीव हो, तो शरीरमें जीव नामकी कोई वस्तु जान नहीं पड़ती। शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और प्राण—ये शरीरसे क्रिया करते हैं और ये भी परमात्माके सामीप्यसे अपना-अपना काम करनेमें शक्तिमान् होते हैं, प्राणीमात्रके शरीरमें परमात्मा तो हैं ही। परमात्मा न हों तो आँखें देख न सकें, कान सुन न सकें, पैर चल न सकें, हाथ लेने-देनेका काम न कर सकें, मन संकल्प न कर सके, बुद्धि निश्चय न कर सके और प्राणका श्वासोच्छ्वास न चले। सबके हृदयमें परमात्मा विराजते हैं। उनकी सत्तासे यह सब चलता है, ब्रह्माण्डकी प्रत्येक क्रिया उनकी सत्तासे होती है। सबके हृदयमें आत्मारूपमें वही बसे हैं। उनके सिवा जीव नामकी दूसरी कोई चीज

नहीं है। शास्त्र कहते हैं कि बुद्धिमें आत्मा या परमात्माका जो प्रतिबिम्ब है, वही जीव है अथवा वही चिदाभास कहलाता है। यह प्रतिबिम्ब कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, स्वतन्त्र वस्तु तो बिम्ब है। पानी या दर्पणमें अपनी छाया पड़ती है, यह छाया कोई व्यक्ति नहीं। छाया अपने बिम्बसे पृथक् व्यवहार नहीं कर सकती। छाया आभासमात्र है, सच्चा तो बिम्ब या व्यक्ति है। इसी प्रकार शरीरमें सच्चा तो आत्मा या परमात्मा ही है तथा जीव अथवा चिदाभास, यह कोई भी सत्य वस्तु नहीं है। अतएव जीव सत्य नहीं है। बल्कि आत्मा सत्य है और वह आत्मा तुम हो। प्रत्येक प्राणीके अन्तःकरणमें परमात्मा ही आत्मारूपमें विराज रहा है। तुम आत्मा हो, यह निश्चय है। यह तुरंत समझमें नहीं आता, परंतु निष्काम भावसे भगवान्की भक्ति करनेपर भगवान्की दयासे विचार करते-करते यह सत्य समझमें आ जायगा।

३८—तुमको यह सत्य जान पड़े या न जान पड़े, परंतु व्यवहारमें इतना तो करो ही, जिसके आचरणसे तुम और तुमसे दूसरे सुखी हों और तुमको स्वयं आत्मदर्शन हो। 'आत्मा अपने और प्राणीमात्रके हृदयमें विराज रहा है। सबका आत्मा एक है, इसलिये किसीका अपमान न करो और किसीको अपनेसे तुच्छ न समझो, किसीको अप्रिय बात न कहो, किसीको धोखा मत दो तथा किसीके साथ कपटव्यवहार न करो।'।

३९—'मैं आत्मा हूँ और आत्माका सत्, चित् और आनन्द-स्वरूप है और वही मेरा स्वरूप है। इसलिये आनन्द या सुखके लिये मुझे कहीं जानेकी आवश्यकता नहीं है।' इस प्रकारके विचारसे ऐसा दृढ़ निश्चय करके अपने सुख या आनन्दके लिये अन्य व्यक्ति या पदार्थकी इच्छा त्याग दो।

४०—शरीरके व्यवहार और आत्माके व्यवहारको अलग कर दो। अर्थात् स्वयं आत्मारूप रहकर शरीरसे शरीरके सारे आनेवाले व्यवहारोंको करो। जैसे नाटकमें राजा बना हुआ पात्र भीतरसे जानता है कि मैं राजा नहीं हूँ, बल्कि बेतनभोगी अभिनेता (नौकर) हूँ तथा भीतरसे जानते और समझते हुए राजाका अभिनय करता है, उसी प्रकार हम अंदर आत्मा हैं, परंतु शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि नहीं हैं—ऐसा जानते हुए शरीरकी प्रकृतिके अनुसार अंदर समत्वयुक्त रहकर, बिना हर्ष-शोकके, नाटकके खेलके समान सारा व्यवहार करो। यह सहज ही

सिद्ध नहीं होता। एक बार पढ़ने और जान लेनेसे तत्त्व गलेमें नहीं उतरता, बल्कि सतत इसका अभ्यास करना पड़ेगा। बहुत दिनोंसे और अनेक जन्मसे यह भूल हो गयी है। इस भूलको दूर करनेके लिये परमात्माकी भक्ति, सत्सङ्ग, विचार और वैराग्यके निरन्तर अभ्यासकी आवश्यकता है। इनके बिना किये दूसरा कोई उपाय नहीं है, इसलिये मन लगाकर करते रहना चाहिये।

४१—यह जगत् परमात्माका एक नाटक है। इसमें परमात्मा स्वयं विभिन्न शरीर धारण करके अनेक खेल खेल रहे हैं। सबको अपना-अपना अभिनय करना है। परमात्मा विभिन्न शरीरोंमें आत्मारूपमें विराजमान होकर खेल कर रहे हैं। यह खेल इतना विचित्र है कि इसमें आत्मा अपने रूपको भूलकर जिस वेषमें अभिनय करता है, उस वेषके रूपमें अपनेको मान बैठा और अपने असली स्वरूपको भूल गया है। स्वयं अभिनयकी एकतानतामें भूल गया है, इसको अपने ही विचारसे मूलस्वरूपको याद दिलाना है। मूलस्वरूप याद करके अभिनय करनेसे अभिनयका सुख दुःख उसको नहीं होगा। यही भेद है और यह बड़ा भेद है।

४२—जैसे नाटकमें अभिनय करनेवाला पुरुष स्त्री बनता है, रोता है, हँसता है, अनेकों प्रकारके अच्छे-बुरे दीखनेवाले काम करता है और सब कुछ करते हुए अंदरसे जानता है कि मैं स्त्री नहीं हूँ, बल्कि मैं बेतन-भोगी पुरुष पात्र हूँ। इससे वह सब कर्म करते हुए उनके पाप-पुण्यसे लिप्त नहीं होता; क्योंकि उसको सदा अपने मूलस्वरूपका भान होता रहता है। वह 'मैं आत्मा हूँ' यह सतत भान रखते हुए शरीरकी प्रकृतिके अनुसार स्वकर्मरूपी अभिनय करता रहे तो पाप-पुण्यका भागी नहीं होता और सदा मुक्त ही रहता है।

४३—प्राणीमात्रके शरीरमें परमात्मा बसते हैं तथा परमात्मा सर्वत्र हैं। जैसे पवन और आकाश सर्वत्र है, उसी प्रकार परमात्मा सर्वत्र हैं; परंतु श्रद्धासे वे प्रकट होते हैं। परमात्माको प्रकट करनेमें एक श्रद्धापूर्वक चिन्तन ही कारण बनता है।

४४—इस जगत्में जो दीखता है, सुनायी देता है या अनुभवमें आता है, वह सब संकल्पसे हुआ है। किसी-न-किसी संकल्पसे बना है। तपसे संकल्पशक्ति

संख्या ८]

बलवती होती है। आदिमें परमात्माने संकल्पशक्तिसे सृष्टि की और वह उत्तरोत्तर संकल्पशक्तिसे बढ़ती गयी। इसलिये यह सम्पूर्ण जगत् संकल्परूप है, सत्य नहीं। क्षणिक है और विकारी तथा विनाशी है और जगत्के अधिष्ठानरूपमें रहनेवाला आत्मा सत्य, अविकारी, अविनाशी, एक और अखण्ड है।

४५-सौमरि ऋषि यमुनाके जलमें रहकर तप करते थे। वहाँ उन्होंने मछलियोंको रति करते देखा, उस दृष्टिसंगके दोषसे उनको वृद्धावस्थामें भी तप छोड़कर ब्रह्मा की कनेकी इच्छा हुई और उन्होंने राजाकी पचास कन्याओंको स्वयं पचास रूप धारण करके ब्याह लिया। अर्थात् एक-एक कन्याको एक-एक ऋषिने ब्याहा। अपने तपकी सिद्धिके प्रभावसे एक सौमरिसे पचास सौमरि हो गये और गृहस्थाश्रम करने लगे। फिर एक परमात्मा अनेक रूप होकर इस संसारको चलाते हैं, तो इसमें आपको क्यों शङ्का हो रही है ?

४६-एक श्रीकृष्ण भगवान्ने १६१०८ रूप धारण करके १६१०८ रानियोंको ब्याहा और उनके साथ प्रत्येक घरमें पृथक्-पृथक् निवास किया। फिर अनन्तशक्ति, सर्वव्यापक परमात्मा अनेक रूप धरकर इस जगत् रूपी नाटकको खेल रहा है, इसमें आपको क्यों शङ्का होती है ?

४७-श्रीकृष्ण भगवान् एक समय वृन्दावनमें गोप-बालकोंके साथ बछड़े चरानेके लिये गये। समय ब्रह्माजी उनकी परीक्षा करनेके लिये आये और उस ओर सभी बछड़ोंको हर ले गये तथा दूसरी ओर सब गोप-बालकोंको हर ले गये। तब श्रीकृष्ण भगवान् उनके सम्बन्धियोंको राजी करनेके लिये स्वयं ही सब बछड़ोंके रूपमें तथा गोपबालकोंके रूपमें उनके ही वेष और साधन—जैसे वस्त्राभूषण, लकुड़ी और बाँसुरीसे युक्त हो गये। जड़-चेतन सभी रूपोंमें हो गये। फिर अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके नाथ परमात्मा यदि इस स्थावर-जङ्गमरूपमें हो जाते हैं, तो इसमें शङ्काकी क्या बात है ?

४८-परमात्मा सर्वत्र हैं और परमात्मामें यह सारा जगत् उनकी मायासे भासित हो रहा है तथा यह भासमान जगत् मिथ्या है और एक परमात्मा ही सत्य हैं। यह बात एकदम सत्य है तथा जो सत्य-परमतत्त्व है, वही हम हैं—इसका बारंबार चिन्तन करे।

४९-प्राणीमात्रमें आत्मा है और आत्मामें प्राणीमात्र हैं और वह आत्मा हम हैं, यह नितान्त सत्य है। हम सत्य हैं, जन्म-जरा और मरणसे रहित हैं। यह बारंबार चिन्तन करे।

धनकी आसक्तिसे पतन

धनासक्त मानवमें होता धनके प्रति 'ममत्व'-'अभिमान'।
 धनका 'मान' बढ़ाता शठ वह 'सदाचार'का कर 'अपमान' ॥
 'काम' 'प्रेम'का स्थान छीनता, लेता 'भोग' 'त्याग'का स्थान।
 आ जाता 'अधिकार' स्थानच्युत हो जाता 'कर्तव्य' महान् ॥
 आती घोर 'विषमता' पावन 'समता' हट जाती तत्काल।
 'निर्दयता' 'दयालुता'का ले स्थान बना देती बेहाल ॥
 जो धन असत्-मार्गसे आता, नित्य बढ़ाता रहता पाप।
 वह वरदान नहीं, जीवनमें है वह घोर अशुचि अभिशाप ॥

आजका तनावपूर्ण जीवन और मानसिक रोग

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

एक साधारण-सी हैसियतके क्लर्क महोदय तने हुए, कुछ उद्विग्न-से मेरे पास आये और उन्होंने पाँच सौ रुपये उधार माँगे। मैंने आश्चर्यसे पूछा, 'क्या किसी कन्याके विवाह इत्यादिके लिये प्रबन्ध कर रहे हैं या पुत्रको उच्च शिक्षाके लिये कहीं बाहर भेज रहे हैं? रुपयेको क्या कीजियेगा?'

वे उच्च स्वरमें कुछ आँखें तरेरते हुए बोले, 'अजी, क्या बताऊँ, पिछले तीन महीनेसे बड़ा उद्विग्न जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मनपर बड़ा भारी बोझ है। सदा तनाव बना रहता है।'

'आखिर बात क्या है?' मैंने समवेदनाभरे स्वरमें पूछा।

'बात भी छोटी-सी है और फिर बढ़कर तिलका ताड़ हो गयी है। मेरे घरके सामनेवाला शराबी पड़ोसी तनिक-सी बातपर मुझसे लड़ बैठा। पहले आवेशमें जोर-जोरसे बोला, फिर हाथा-पायीकी नौबत आ गयी। मार-पीट हो गयी। उसने मुझपर मौजदारीका मुकदमा दायर कर दिया है, पर उसका पक्ष कमजोर है। मैंने प्रसिद्ध वकील किया है और अभी जीत रहा हूँ। भला, उस छोटे-से आदमीसे मैं कैसे नीचा देख सकता हूँ? मेरी भी इज्जतका सवाल है। अब थोड़ा-सा पैसा तो खर्च होगा, देखना, कैसा नीचा दिखाता हूँ। बस, आप पाँच सौ रुपयेका इंतजाम कर दीजिये। रुपया तो आता-जाता रहता है, पर एक बार उस दुष्टको हराना जरूर है।' यह कहते-कहते वे आवेशमें आ गये। उनकी भौंहें तन गयीं और नेत्र कुछ लाल हो गये।

स्पष्ट था कि वे बदला लेनेके लिये तने बैठे थे। तीन महीने होनेपर भी उनकी उत्तेजना और आवेश शान्त नहीं हुए थे। मन तनावसे भरा हुआ था। उनका दिमाग थका-मौंदा-सा मालूम हो रहा था। यह तनावपूर्ण अवस्था ही मानसिक अस्वस्थताकी सूचक है।

× × ×

हालकी ही बात है, एक व्यक्तिको इतना भयानक क्रोधका दौरा उठा कि उसने अपनी पत्नीकी नाक काट डाली और इस गुस्सेका कारण साधारण ही था। उसकी पत्नी जब-तब अपनी माँके घर जानेकी जिद किया करती थी। पति महोदय क्रोधसे सदा तने रहते थे। यह तनाव दिमागमें

बढ़ता रहा; पनपता रहा; आखिर बढ़कर उसका भयानक दुष्परिणाम निकला। पतिको सजा मिली होगी और पत्नी हमेशाके लिये कुरूप हो गयी।

× × ×

मेरे एक मित्र हैं। हिंदीके उच्चकोटिके कवि हैं। प्रोफेसर हैं। उनकी लेखनीमें जादू है। उनकी एक समस्या है कि रात्रिमें उन्हें नींद नहीं आती। चारपाईपर पड़े करवटें बदलते रहते हैं। कई बार नींद लानेवाली दवाइयोंका प्रयोग करके सोते हैं, लेकिन डाक्टर कहता है कि इन वेदोशी लानेवाली दवाइयोंमें खतरा है। बार-बार निद्रा लानेवाली ओषधियाँ नहीं लेनी चाहिये। अब बिना उस दवाईके दो-दो दिन नहीं सो पाते हैं। अनिद्रा रोगसे परीक्षित हैं। उन्होंने एक बार मुझे अपने मानसिक अस्वास्थ्यकी सूचना देते हुए लिखा था, 'मेरे शिक्षक प्रो० बोरगाँवकर ३० वर्ष इसीसे बीमार रहे और अन्तमें आन्तरिक तनावपूर्ण मानसिक अवस्थाके कारण मरे।' मैंने नींद न आनेके अनेकों रोगियोंको देखा है, जो थोड़ी-सी नींदके लिये सब कुछ बलिदान करनेको तैयार रहते हैं। दिल्लीमें एक अठारह सालकी युवती एक सालतक न सोयी। एक ६० वर्षकी वृद्धा पुत्र-शोकमें उद्विग्न होकर १२ वर्षतक पूरी न सोयी। यह अनिद्रा रोग बहुत दिनोंतक तनावपूर्ण जिदगी जीने और व्यर्थकी चिन्ता और गुप्त भयको मनमें स्थायीरूपसे बसा लेनाका दुष्परिणाम है।

राँचीका एक समाचार है—

'पता चला है कि राँची जिलाके लोहरदगा थानाके अन्तर्गत दूरगाँव नामक ग्राममें एक उराँव युवकने अपने पिताकी हत्या लाठीसे मारकर कर दी। पिताने अपने युवक पुत्रको गाली दी थी। इसपर वह बुरा मान गया और इतना उत्तेजित हुआ कि पिताकी हत्या कर दी।'

इतने छोटे कारणपर ऐसा महापाप-काण्ड कर डालना गुप्त मनमें जमे हुए तनावके कारण ही हुआ।

× × ×
एक युवक विद्यार्थी सिनेमाके संसारसे आकर्षित होकर बम्बई भाग निकला। वहाँ अध-पगला-सा फिरता रहा। कई

संख्या ८]

सिनेमा बनानेवाली कम्पनियोंकी खाक छानता रहा। उसके गुप्त मनमें फिल्मी कलाकार बननेकी अदम्य और उत्कट इच्छा थी। दुर्भाग्यसे आजकल जो सस्ती फिल्में बनती हैं, उनमें काम-क्रीड़ा, उच्छृङ्खलता एवं अनैतिक कृत्योंकी भरमार रहती है। इन्हें देख-देखकर युवक स्वप्नके संसारमें विचरण किया करते हैं। वासनाद्वारा उत्पन्न तनावसे भरे रहते हैं। इस विद्यार्थीको जब कुछ न मिला, तो आत्महत्या कर ली। जेवमें जो कागज मिला, उसमें लिखा था—'मैं सिनेमाका हीरो बनना चाहता था। ऐसी कुरूप दुनियामें मैं जीना नहीं चाहता, जिसमें मेरी कलाको समझनेवाला कोई न हो।' मानसिक तनावसे अकाल मृत्यु हो गयी!

× × ×

एक नववधूने सासके व्यङ्ग्य वाणोंसे तंग आकर आत्महत्या की है। उसने जो अन्तिम पत्र लिखा था, उसमें यह स्पष्ट किया गया था कि वह घुटन और तिरस्कारसे तंग आ गयी है और इस प्रकार अपने दुःखमय जीवनका अन्त कर रही है। स्त्रियोंमें तनाव बहुत अधिक रहता है, जिसके कारण वे मानसिक नरकमें रहती हैं।

× × ×

हालकी ही बात है कि एक पेन्शन लेने आये हुए वृद्ध वृद्धोंमें ही गिरकर मर गये। एक अध्यापक कक्षामें कुर्सीपर बैठकर पढ़ाते-पढ़ाते ही चल बसे। अध्यापकों तथा विद्यार्थियोंको उनके शवका दाह-संस्कार करना पड़ा।

ऐसे व्यक्ति हरदम मनमें कुछ-न-कुछ तनाव या चिन्ताकी स्थिति बनाये रहते हैं। काल्पनिक भय तथा मानसिक बीमारियोंसे परीक्षान रहा करते हैं। परिवारकी छोटी-बड़ी अनेक चिन्ताएँ उन्हें सदैव घेरे रहती हैं। यही जीर्ण चिन्ताएँ बढ़कर मानसिक रोग बनते हैं और अन्तमें उनकी मृत्युके कारण बनते हैं।

तनावके कारण क्या हैं

प्रश्न उठता है, मानसिक तनाव क्यों उत्पन्न होता है? आजकल लोग तनिक-सी बातपर क्रोध हो जाते हैं। उग्र मानने और ईर्ष्या-वैर करनेकी दुष्प्रवृत्ति इतनी उग्र हो उठी है कि अहंपर तनिक-सी चोट लगते ही नाराज हो उठते हैं। उनकी पाशविक वृत्तियाँ उच्छृङ्खल हो उठती हैं। दूसरोंसे अनवन होनेपर चिन्ता और फिर उससे मानसिक तनाव पैदा होता है। उनकी स्थिति नर-शरीरवाले एक पिशाच-जैसी हो जाती है।

अगस्त २—

पशुओंका स्वभाव है, बिना बात नाराज या असंतुष्ट हो बैठना; सींग या लातोंसे मारना या फिर दाँतोंसे काट लेना।

साँपको चाहे भूलमें ही या अनजानमें किसीने छेड़ दिया हो; पर वह कुत्सित स्वभाववश अपने-आपको थोड़ा-सा आघात लगनेमात्रसे ही इतना क्रोध होकर तन जायगा कि सामनेवालेके प्राण ही लेकर छोड़ेगा।

कहते हैं कि सिंह, बाघ, तेंदुआ आदि हिंस्र पशु केवल इतनी-सी बातपर नाराज हो जाते हैं कि हमसे किसीने आँख ही कैसे मिलायी! नीची आँखें करके भले ही कोई निकल जाय, पर दूसरेके द्वारा उनका सामना किया जाना वे अपना अपमान समझते हैं। लोग बताते हैं कि भूत, पलीद, पिशाच और राक्षस भी ऐसे ही असहिष्णु होते हैं। अपने विरुद्ध जरा-सी बात सुनते ही आवेशमें भर जाते हैं।

सर्प, बाघ और भूत-पिशाच मनुष्ययोनिमें तो नहीं माने जाते, पर मनुष्योंकी आकृतिमें भी बहुत-से पाये जाते हैं। जिन्होंने अपनी हिंस्र प्रवृत्तियों, अपने क्रोध, उत्तेजना, उन्माद और आवेशको वशमें करना नहीं सीखा है, वे हिंस्र पशु ही तो हैं।

आजका कानून फौरन बदला लेनेमें बाधा डालता है। इसलिये दूसरोंके प्रति क्रोध, उत्तेजना और आवेश हमारे गुप्त मनमें जमे रह जाते हैं। आज मुकद्दमेवाजी तैजीसे चल रही है और वकील लोग अनाप-शनाप कमा रहे हैं। इसका कारण यह है कि लोग मुकद्दमे लड़-लड़ाकर मनके तनावको किसी प्रकार निकालना चाहते हैं।

उसने मुझे अपशब्द कहा, उसने मेरी मानहानि की, उसने मुझे पराजित किया और उसने मेरा धन हरण किया—ऐसे विचार जब गुप्त मनमें जमा हो जाते हैं, तब मन तनावकी स्थितिसे भर जाता है। मनुष्य किसी-न-किसी तरह बदला लेनेकी योजनाएँ बनाता रहता है। वैर बढ़ता ही जाता है। वैरसे वैर कभी शान्त नहीं होता। प्रेम, दया, करुणा, ममता, स्नेह, सहानुभूति आदि कोमल प्रवृत्तियोंद्वारा ही वैर-भाव शान्त होता है और तनाव कम होता है।

कहा भी है—

अक्रोशद्वधीन्मां स ह्यजयदहरच्च मे।

ये च तन्नोपनहन्ति वैरं तेषूपशम्यति ॥

अर्थात् 'उसने मुझे गाली दी, मेरा अपमान किया, मुझे पीटा, उसने मुझे पराजित किया और उसने मेरे धनका हरण किया—जो व्यक्ति ऐसे तनावपूर्ण विचारोंको मनमें स्थान

नहीं देते, उनमें वैर शान्त हो जाता है। तनावपूर्ण स्थिति कम हो जाती है।

न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन।

अवैरेण हि शाम्यन्ति एष धर्मः सनातनः ॥

याद रखिये, वैरभाव रखनेसे वैर कभी शान्त नहीं हो सकता। अवैर अर्थात् प्रेममय क्षमाशील भाव रखनेसे ही वैरभाव (सब प्रकारका तनाव) शान्त होता है। यह सनातन धर्म है।

व्यर्थके झगड़ों और उत्तेजनासे कोई समस्या सुलझती नहीं, वरं लड़ाई-झगड़े बढ़ते ही जाते हैं। मुकद्दमेदाजीसे कुछ हाथ नहीं आता, दीर्घकालीन वैर चलता रहता है। मुकद्दमेमें विरोधी पक्ष भी अपना पक्ष न्यायपूर्ण ही मानता है। अतः वे जीत या हार कर भी अपने पीछे संताप, पश्चात्ताप, दुःखद बेवसीकी एक लम्बी शृङ्खला छोड़ देते हैं।

तनावपूर्ण स्थिति भयंकर है। उससे बचनेके लिये मानसिक उद्वेगोंको गुप्त मनमें स्थान न दिया जाय। उद्वेगोंसे सावधान रहें। आवेश और उत्तेजना, ध्वराहट और हड़बड़ी, क्रोध और असंतुलनके क्षणोंमें अपनेको काबूमें रक्खा जाय और धैर्य तथा शान्तिसे काम लिया जाय।

यदि आप मानसिक संतुलन बनाये रहें, तो कोई भी प्रतिकूल परिस्थिति ऐसी नहीं है कि उसका हल न निकल सके। आप केवल अपने मानसिक संतुलनको सुरक्षित रखें। अपनी सूझ-बूझ, बुद्धि और दूरदर्शितासे समस्याका हल निकालें।

हम कैसे सुखी रह सकेंगे ?

हमारे वेदोंमें मनकी तनावपूर्ण स्थितिको हटानेके अचूक उपाय दिये गये हैं, देखिये—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥

(अथर्ववेद ३।३०।१)

अर्थात् हम पारस्परिक वैर-भावको त्यागकर सहृदय, मनस्वी तथा उत्तम स्वभाववाले हों; एक दूसरेको सदैव प्यारकी दृष्टिसे देखें। तभी हम सुखी रह सकेंगे।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट

संराधयन्तः सधुराश्रयन्तः।

अन्यो अन्यस्मै वल्लु वदन्त एत

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥

(अथर्ववेद ३।३०।५)

अर्थात् जीवनको संशोधित करते हुए, ज्ञानमें वृद्धि करते हुए, परस्पर एक दूसरेकी सेवा-सहायता करते हुए, सदा-सर्वदा मीठी वाणीका उच्चारण करते हुए हम सब लोग मित्रतापूर्ण, व्यवहार करें। सबके मन समान हों। (प्रेम, करुणा, दया, सहानुभूति, आनन्दकी दैवी स्थितियोंसे भरे रहें।)

अनमित्रं नो अभिरादनमित्रं न उत्तरात्।

इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृषि ॥

(अथर्ववेद ६।४०।३)

अर्थात् (तनावपूर्ण मानसिक स्थितिसे बचनेके लिये हम भूत, भविष्य और वर्तमानमें कभी किसीसे वैर न करें। आपकी यही आकांक्षा सदा रहनी चाहिये—

यद् वदामि मधुसूत तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥

(अथर्ववेद १२।१।५८)

अर्थात् मैं सदैव अपने मुखसे मीठे वचन बोलूँ। (मनमें दैवी गुण धारण करता रहूँ) सभी मुझसे प्यार करें। मैं दिव्य प्रकाशको अपने हृदयमें धारण करूँ। जो बुरे तत्व मेरे समीप आयें, उनसे मैं सदा सुरक्षित रहूँ।

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः

सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।

अभिवीरो अभिषत्वा सहोजि-

ज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ॥

(अथर्ववेद १९।१३।५)

बन्धुओ ! जीवनमें पूर्ण सफलता और मानसिक सुख प्राप्त करना चाहते हो तो अपनी दैवी शक्तियों (दैवी सम्पदा) को पहचानो और आसुरी दुष्प्रवृत्तियोंसे बचो। जीवनमें अनेकों विघ्न-बाधाएँ तो सदा आती ही रहेंगी। उनसे कभी मुक्ति नहीं होगी, पर उनसे संघर्ष करनेके लिये आपको अपने उज्ज्वल भविष्य और दैवी स्वरूपमें विश्वास होना चाहिये।

परमात्माके भजन, कीर्तन, धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययन, श्रवण इत्यादिसे मानसिक तनाव दूर होता है। छोटे बच्चोंसे खेलनेमें मन प्रसन्न रहता है। संगीतका बड़ा ही स्वास्थ्य-दायक प्रभाव होता है। आप धार्मिक संगीत सुनें और थोड़ा थोड़ा स्वयं गाया करें। धार्मिक गायन, भजन, तुलसीकृत रामायण, भक्तप्रवर सूर और मीराबाईके भजन तन्मयतापूर्ण स्वरमें गानेसे मनका तनाव दूर होता है। यथासम्भव मनमें किसीके प्रति वैरभाव, गुप्त भय अथवा चिन्ता न रखें। प्रतिदिन भगवान्का पूजन किया करें।

समता

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

देहिनीऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धौरस्तत्र न मुह्यति ॥

(गीता २ । १३)

‘अधोरनाथ ! साधुता व्यर्थ है यदि वह स्वार्थ-कलुषित हो ।’ गुरुदेवने दीक्षा देनेके दिन ही कहा था । आज उनके वचनोंका स्मरण आ रहा है—‘यशः ऐश्वर्य तथा भोग तो प्रत्येक संसारसक्त चाहता है । सिद्धियाँ तुझे और क्या देंगी ? मठ, मन्दिर तथा लोकप्रशंसा—साधु-सम्प्रदायमें यह जो धोर सांसारिकता आ गयी है, उसे अपनाकर मुझे लज्जित मत करना । गृह-परिवार आदिका ही यह दूसरा रूप है । कामकलुषित, शास्त्रवर्जित घृण्य रूप । तुझसे मुझे आशा है—व्यक्तित्वके पोषणसे ऊपर उठना वत्स !’

‘अपनी ही मुक्तिकी चिन्ता—यह भी तो व्यक्तित्वका ही चिन्तन है । स्वार्थ ही तो है यह ।’ अधोरनाथ आज यह सोचने लगे हैं । क्षीणकाय, अपरिग्रहशील, तपोनिरत अधोरनाथने अवतक ऐसा कुछ नहीं किया है, जिससे यह कहा जा सके कि गुरुदेवके दीक्षाकालीन उपदेशको वे कभी भूले हैं । उनकी कठोर तपस्या, धोर वनमें एकान्त साधना एवं लोकनिरपेक्षताको देखते ही सबके मस्तक उनके सामने झुक जाते हैं ।

‘छिः !’ सच्चे योग-साधकके सम्मुख सिद्धियाँ आती ही हैं । अधोरनाथके सम्मुख अनेक रूपोंमें वे आयीं और बार-बार आयीं; किंतु उन्होंने तत्काल झिड़क दिया उन्हें । जैसे कोई घावभरे खजुलाहे कुत्तेको झिड़क देता है ।

‘शिवस्वरूप गुरु गोरखनाथ अमर हैं । उन्होंने कालके पद अवरुद्ध कर दिये हैं । रसेश्वर-सिद्धिने उन्हें यह सामर्थ्य प्रदान की ।’ नाथ-सम्प्रदायमें जो जनश्रुतियाँ हैं, अधोरनाथने भी सुनी हैं और उनपर श्रद्धा की है । आज इस श्रवणने चित्तको एक नवीन संकल्प दिया—‘जरा-मरण-भयातुर, रोग-शोक-संत्रस्त, काम-क्रोध-लोभ-निष्पीडित मानवसमुदाय अपनी इन असह्य पीड़ाओंसे परित्राण पा जाय यदि रसेश्वर-का सिद्धयोग सर्वसुलभ हो । लोकमङ्गलके इस अनुष्ठानमें आत्माहुति देनेमें भी श्रेय है ।’

मनुष्य महान् नहीं है । दैहिक बल, बुद्धि, धन अथवा तप उसे महान् नहीं बनाता । महत्संकल्प मनुष्यको महान् बनाता है । जो अपने संकल्पके प्रति सच्चा है और उसका संकल्प स्वार्थ-दूषित नहीं है तो समष्टि स्वयं उसको सुयोग प्रदान करती है । महत्संकल्पके लिये महान् श्रमकी शक्ति, साहस तथा अनुकूल योग अपने-आप उपस्थित होते हैं ।

अधोरनाथका संकल्प महान् था और अपने संकल्पके प्रति उनकी स्थिरप्रतिष्ठ निष्ठा थी । रसेश्वरके स्वरूप, उसकी मृत, मूर्छित, विद्ध आदि अवस्थाएँ तथा उनके सम्बन्धमें अन्य आवश्यक विवरण उन्हें अल्पकालमें ही प्राप्त हो गये । ऐसे अनेक विवरण उन्हें मिले, जिनकी प्राप्ति ही किसी रस-साधकके पूरे जीवनकी साधनाका परिणाम कहा जा सकता था ।

× × ×

विशुद्ध विप्रवर्गीय पारद—कृष्ण, पीत एवं अरुणिमासे सर्वथा शून्य शुभ्र चन्द्रोज्ज्वलरस धरामें अपने-आप उपलब्ध नहीं होता । अनेक अनुष्ठानोंके उपरान्त मन्त्रपूत साधक मरुस्थलके मानववर्जित प्रदेशके प्राणि-पद-स्पर्शहीन पवित्र सिकता-कणोंसे उसे तब कण-कणके रूपमें प्राप्त कर सकता है, जब ग्रीष्मके मध्याह्नमें धरागर्भसे रसेश्वरके कण ऊपर उठते हैं ।

अपनेको अग्निमें आहुति देनेके समान अनुष्ठान है यह । मरुस्थलकी प्रचण्ड ऊष्मा, जल-विहीन धरा और उसमें अनेक योजन लक्ष्यहीन भटकती यात्रामें—राशि-राशि उड़ती बालुकामें अल्पतम कणोंका अन्वेषण; किंतु अधोरनाथको यह दुष्कर नहीं लगा । उन्होंने शुद्ध विप्रवर्गीय पारद प्राप्त किया और पर्याप्त मात्रामें प्राप्त किया ।

विशुद्ध पारद—भगवान् धूर्जटिके श्रीअङ्गका सार-सर्वस्व । वह जिसे उपलब्ध हो गया, देव-जगत् उसका सम्मान करनेको विवश है । यमकी चर्चा व्यर्थ है, उद्धत चासुण्डा तथा अपना ही रक्तपान करनेवाली छिन्नमस्ता तक उस महाभागके सम्मुख संयमित हो जाती हैं । योगिनी, यक्ष-रक्षः-पिशाच उसकी छायाका स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं । स्वयं विशुद्ध पारदकी उपलब्धि अपने आपमें महती सिद्धि

है। किंतु अघोरनाथके महत्तम संकल्पकी शक्तिके सम्मुख तो इसकी कोई गणना नहीं है।

सिद्धभूमि आवश्यक थी। कामाख्या और हिंगलाज स्मरण आये। भगवती महामाया ही तो सिद्धरसकी साधनामें व्याघात उपस्थित करती हैं। इस विचारने अघोरनाथको जालन्धर पीठपर भी स्थिर नहीं होने दिया। त्रिपुरभैरवी प्रसन्न न हों, कोई सफलता किसीको मिला नहीं करती। उनके अङ्गका आश्रय अपेक्षित है रस-साधकको।

‘भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी छाया जो स्फटिक शुभ्र-विग्रह वृषभध्वजके श्रीविग्रहमें पड़ती है, भस्मभूषिताङ्ग शिवके वक्षमें वह किञ्चित् श्याम प्रतीत होनेवाला प्रतिविम्ब ही भगवती त्रिपुरभैरवी हैं।’ अघोरनाथने अपने सम्प्रदायके एक संतसे कभी यह विवरण सुना था। साधनास्थल चुननेमें इस श्रवणने उनकी सहायता की।

‘भगवान् नीलकण्ठके विशद वक्षमें भगवतीका प्रतिविम्ब अर्थात् शक्तिसमन्वित पुरुष—अर्धनारीश्वरकी सौम्य क्रीड़ा-स्थली!’ अघोरनाथने व्यास-पार्वती सरिताओंकी मध्यभूमि त्रिकोण सिद्धक्षेत्र कुलान्तमें भी सुदूर हिमक्षेत्रमें पार्वतीके उद्गमस्थानको उपयुक्त माना।

चतुर्दिक् हिमश्वेत शिखर, सत्त्वगुण मानो सर्वत्र साकार हो रहा है। पार्वतीके उद्गमका अल्प प्रवाह और उसे अङ्गमाल देता उष्णोदक निर्झर—भगवान् उमामहेश्वर-का व्यक्त विग्रह प्रकृतिमें वहाँ जलरूप है। योगसिद्ध तपस्वी अघोरनाथको आहारकी अल्पतम अपेक्षा होती है। जब आवश्यक हो, वे कुछ नीचे आकर वन्य कन्द-मूल सहज प्राप्त कर लेते हैं।

‘विश्वके प्राणी जरा-मृत्यु, शोक-रोगसे परित्राण प्राप्त करें।’ शरीरकी स्मृति नहीं। क्षुधा-पिपासाकी चिन्ताएँ बहुत पीछे छूट चुकी हैं। कटिमें कौपीन और फटे कानोंमें मुद्रा, जलपात्रतक रखना जिस तापसने त्याग दिया है, वह बड़ी-सी झोलीमें ओपधियाँ, खरल तथा अनेक वस्तुओंका परिग्रह लिये इस एकान्त हिमप्रदेशमें आ बैठा है। एक ही व्यथा है उसे—‘प्राणियोंकी व्यथा दूर हो।’

‘कहाँ टुटि है? क्या भूल हो रही है मुझसे?’ अघोर-नाथ लगे हैं पूरे लः महीनेसे। आज शरच्चन्द्रिकाका भी योग आ गया, किंतु रसेश्वर अनुविद्ध क्यों नहीं

होते? पारद मूर्छित हो जाता है। गुटिका बन जाती है। तापसहिष्णु भी हो गया है। सब हुआ; किंतु वह अनुविद्ध नहीं हो रहा है। परीक्षण-प्रक्रियाओंमें पड़कर वह पुनः सक्रिय, सप्राण हो उठता है। अघोरनाथने आसन स्थिर किया और गुरुदेवके पादपल्लवोंमें चित्तको एकाग्र करके वे ध्यानस्थ हो गये।

× × ×

शुभ्र ज्योत्स्ना घनीभूत होकर जैसे शरीर बन गयी हो। धराका स्पर्श विना किये भी सम्मुख सुप्रसन्न स्थित वह भव्य तपोमय श्रीविग्रह। पिंगल जटामारसे विद्युन्मालाका भ्रम सहज हो सकता था। कर्णोंमें मुद्रा होनेसे अनुमान होता था कि वे देवता नहीं, कोई योगीश्वर हैं।

चाहते हुए भी अघोरनाथ नेत्र-पलक खोलनेमें समर्थ नहीं हो रहे थे। उनका कोई अङ्ग किञ्चित् गति करनेकी शक्तिसे भी रहित जान पड़ा; किंतु नेत्र-पलक खुले हों। इस प्रकार प्रत्यक्ष दर्शन वे उन तेजोमयका कर रहे थे। मन-ही-मन चरणवन्दन कर लिया उन्होंने।

‘वत्स! किसी समय यही इच्छा इस गोरखनाथको भी हुई थी।’ अत्यन्त स्नेहस्निग्ध, किंतु तनिक खिन्न स्वर था—‘गोरख मिट जाता, अपने अमरत्वकी अभिलाषा कहाँ की थी मैंने। मुझे तो रससिद्ध हो जानेके पश्चात् पता लगा कि कालकी कृष्ण यवनिकामें मेरे लिये अमरत्वका यह छिद्र भी भगवती महामायाका पूर्व संकल्पित विधान ही था। उनका संकल्प अमोघ है। उनके लीला-विलासमें व्याघात उपस्थित किया नहीं जा सकता। मैं समझता था, कालके पदोंको रुद्ध करनेका साधन मुझे मिल गया है; किंतु भ्रम सिद्ध हुआ वह मेरा। मुझे भविष्यके साधकोंको संरक्षण एवं प्रकाश प्रदान करनेके लिये महामायाने सुरक्षित मात्र किया है।’

‘धन्य हो गया जीवन। जन्म-जन्मकी साधना सफल हुई। साक्षात् शिवस्वरूप गुरु गोरखनाथने दर्शन देकर कृतार्थ किया मुझे।’ अघोरनाथका देह भले निष्कम्प हो, उनका चित्त विह्वल हो रहा था। अनन्त भावनाओंका उद्रेक अन्तःकरणमें एक साथ उठ रहा था।

‘भगवान् महाकालकी गति अवरुद्ध नहीं हुआ करती। उनकी गतिको रुद्ध करनेके साधन हैं; किंतु वे महामायाकी इच्छासे ही सक्रिय होते हैं।’ गुरु कह रहे थे।

प्रवाहमें वे साधन किन्हीं-किन्हींको सुरक्षित कर देते हैं किसी उद्देश्यविशेषसे ।

‘अच्छा समझ लो, तुम सफल ही हो जाते हो ।’ अघोरनाथके अन्तर्द्वन्द्वको लक्षित करके गुरुने कहा । ‘जरा-मृत्यु तथा व्याधिका ही निवारण तो कर सकोगे । भय, शोक, लोभ-मोह तो मनुष्यके मनसे उत्पन्न होते हैं । वे दुःख तो उसके कल्पनाप्रसूत हैं । अमर होनेमात्रसे मनुष्य सुखी कैसे हो जायगा ? तुम्हें लगता नहीं है कि मृत्युसे अमय होकर अजितेन्द्रिय प्राणी अधिक तमोगुणी, विषय-लोलुप, संघर्षशील, अधर्माचारी होकर परिणाम-स्वरूप अनन्त कालतक अशान्त, क्षुब्ध और दुःखी रहने लगेगा ।’

‘अनर्थ ! क्षमा करो नाथ !’ अचानक अघोरनाथ चीत्कार कर उठे । उनके नेत्र खुल गये । वहाँ कोई दृश्य नहीं था; किंतु उस हिमप्रदेशमें भी उनका सम्पूर्ण शरीर खेदसे भर उठा था । उसी समय उन्होंने अपनी झोलीका सम्पूर्ण संग्रह पार्वतीके प्रवाहमें विसर्जित कर दिया ।

× × ×

‘फट गया ! फट गया ! फट गया ! यह कञ्चुक फट गया !’ अवधूत अघोरनाथ पुनः उन लोगोंमें आ गये हैं, जो उनसे परिचित हैं । जो साधना-कालसे इस तपस्वीमें श्रद्धा रखते हैं; किंतु सबको लगता है कि उग्र तपस्या तथा कठिन योग-साधनाने इनके मस्तिष्कको कुछ विकृत कर दिया है । कभी कोई शवयात्रा देखते ही नाचने लगते हैं—‘अलख निरञ्जन ! अविनाशी हूँ मैं । अरे मूर्खों ! तुम सब रोते क्यों हो ! मेरा यह कञ्चुक फट गया । अब नया-नया, कोमल-कोमल, नन्हा-नन्हा कञ्चुक पहनूँगा ! अहा, सुन्दर, सुकुमार, छोटा-सा वस्त्र !’

अवधूतोंकी बात वैसे भी समझमें आनी कठिन होती है और अघोरनाथ तो कुछ विक्षिप्त हो गये हैं । वे कभी किसी बच्चेको गोदमें उठा लेते हैं—‘अब यह वस्त्र मुझे छोटा पड़ने लगा है । धीरे-धीरे बड़ा वस्त्र बदल दूँगा । क्यों बड़ा वस्त्र ठीक रहेगा !’ बच्चेसे ही पूछने लगेंगे ।

‘बाबा, तेरा यह वस्त्र पुराना हो गया !’ एक दिन गाँवके चौधरीका हाथ पकड़कर बोले । ‘बहुत सिकुड़ने

पड़ गयीं इसमें । फटनेको आ गया यह । अब इसे बदल डालना है ।’

‘अभी आज ही तो यह कुर्ता-धोती मैंने पहनी है महाराज !’ बेचारा चौधरी अपने नवीन वस्त्रोंको देखता और अवधूतके मुखको—‘पुराने वस्त्र तो मैंने आज सेवकको दे दिये ।’

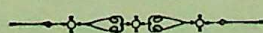
‘अरे नहीं, डरना मत ! यह पुराना वस्त्र महाहवनके काम आयेगा । वस्त्रका क्या, सेवकको दे दे या अग्निमें डाल दे !’ अवधूत हँसते रहे—‘कुत्ते-शृगाल, कौवे-गीध, मछली-कछुए, असंख्य कीट—अपने कोई दरिद्र हैं कि थोड़ेसे सेवक रखेंगे । सम्राट्के लक्ष-लक्ष सेवक !’

किंतु उस दिनसे लोग अवधूतसे डरने लगे हैं । वह चौधरी तीसरे दिन ही मर गया था और अवधूत तब भी ताली बजाकर कूद रहे थे—‘महाहवन किया अपने वस्त्रसे मैंने । मेरी लपटें, मेरा वस्त्र और अब मैं रोता हूँ ! अहाहा !’

किंतु अवधूत सदा ऐसे उन्मत्त नहीं रहते । बड़ा स्नेह करते हैं शिशुओंसे । कोई बीमार दीख जाय तो उसके पैर-तक दवाने बैठ जायेंगे । सिद्ध पुरुष हैं, एक चुटकी भस्म दे दें तो बड़े-से-बड़ा रोग भाग जाय । अब मस्तिष्क कुछ विक्षिप्त हो गया तो इसका कोई क्या करे । वैसे अपने लिये उन्हें कभी कुछ चाहिये ही नहीं । रोटी दो या हलवा, भूख लगी हो तो प्रेमसे पत्ते भी खा लेते हैं, न लगी हो तो खीर भी फेंक देते हैं—‘मैं इस कीचड़का क्या करूँ । उजला लगता है तो तू मुखमें पोत ले ! मैं नहीं पोतता इसे ।’

‘धन चाहिये ! मुझे भी तो थोड़ा धन चाहिये !’ उस दिन ईंटोंके टुकड़े, टूटे शीशे, कंकड़, मिट्टीके डले एकत्र करने लगे और पूरी गलीका कूड़ा एकत्र कर लिया । बच्चोंने पूछा कि क्या करते हो तो बोले—‘सम्पत्ति एकत्र कर रहा हूँ ।’ फिर भाग खड़े हुए—‘सब सम्पत्ति मेरी ! सब कहीं मेरी सम्पत्ति ! सम्पत्ति भी मैं, तुम भी मैं । मैं—अलख ! अलख ! गुरुदेव !’

अब पागलकी चेष्टाकी क्या संगति है । पता नहीं क्या बात है कि गाँवके पण्डितजी कहते हैं—‘अघोरनाथ बाबा ही सच्चे ज्ञानी हैं । उनमें पूर्ण समता है । वे तत्त्वदर्शी हैं ।’ कहीं पण्डितजीका मस्तिष्क भी तो कुछ गड़बड़ नहीं होने लगा है ?



तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः

(लेखक—श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार एम्० ए०, एल्० टी०)

‘तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः’ यह ईशोपनिषद्का एक वाक्य है। इस वाक्यका अर्थ है, वैराग्यभावसे भोग करो। इस संसारमें दो तरहकी विचारधारा पायी जाती है। पहली विचारधारा अध्यात्मवादी है और दूसरी भौतिकवादी। भौतिकवादी विचारधाराका अर्थ प्रकृतिपर विजय मानते हैं। पहले बैलगाड़ी चलती थी, अब मोटर और विमान चलने लगे हैं; पहले मिट्टीका दिया जलता था, अब बिजली जलने लगी है; पहले जिन बातोंके लिये महीनों लग जाते थे, अब उनके लिये बटन दबाना काफी है। नयी-नयी मशीनोंके द्वारा मनुष्य प्रकृतिका स्वामी बनता जा रहा है।

अध्यात्मवादी विचारकोंकी दृष्टिमें उन्नतिका अर्थ प्रकृति-की नहीं, आत्माकी विजय है। मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोहके सामने क्षण-क्षण अपनेको निर्मल पा रहा है। इन मनोवेगोंने उसे पागल बना रखा है। मनुष्यने मोटर बना ली, हवाई जहाजमें उड़ने लगा, बिजलीसे काम लेने लगा, एक सेकंडमें जहाँ चाहे वहाँ अपनी बात पहुँचाने लगा, मशीनके द्वारा प्रकृतिका स्वामी बन गया; परंतु अगर वह मोटरपर चढ़कर दूसरेको लूटने लगा, हवाई जहाजपर चढ़कर निहत्थोंपर बम बरसाने लगा, मशीनके द्वारा आग उगलने लगा तो यह विजय किस कामकी? पर हो तो यही रहा है!

कहते हैं, यह संसार परमात्माने बनाया है। परमात्माने इस विश्वका निर्माण मनुष्यकी भलाई और उसके आनन्दके लिये किया है। परंतु हम देखते हैं कि संसारमें सुख नहीं। यदि सुखके लिये संसारका निर्माण हुआ था तो इतना क्रन्दन-रुदन क्यों? इतनी पीड़ा क्यों? इतना वैमनस्य क्यों? क्या यही मानवता है, जिसका नम्र रूप हम आज इन आँखोंसे देख रहे हैं? मानवरक्तसे वसुन्धराकी प्यास बुझायी जाती है, इस भूमिकी खेतियाँ मानवी अस्थियोंके चूर्णसे उपजाऊ बनायी जाती हैं, एक मानवी दल दूसरे मानवी दलके सत्यानाशमें अपना गौरव समझता है, बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ धाँ-धाँ करके जल रही हैं और अपने आपको मानव कहनेवाला अग्निकी उन प्रचण्ड ज्वालाओंमें जीते-जी जलनेवाली सहस्रों सतियोंके

हाहाकारको सुनकर अट्टहास करता है। शिशु अनाथ होते हैं तो क्या? नवविवाहिताएँ विधवा होती हैं तो क्या? रोगी और स्वस्थ नकली खाद्य पदार्थोंसे मरते हैं तो क्या?

यह सब देखकर हृदय रखनेवालेको रोमाञ्च हो जाता है और वह पुकार उठता है ‘क्या इस दयनीय अवस्थासे, भँवरों तथा मँझधारोंसे भरपूर इस संसार-सागरमें जीवन बितानेका है कोई उपाय? और तब उसे वेदका यह मन्त्रांश सुनायी पड़ता है ‘तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः’ इस संसारमें वैराग्यभावसे भोग करना ही इस संसारके दुःखोंसे छूटने और संसारको पार करनेका एकमात्र मार्ग है।

बृहदारण्यक उपनिषद् (४-५) में याज्ञवल्क्य तथा मैत्रेयीका संवाद आता है। याज्ञवल्क्यने जब वानप्रस्थ आश्रम में जानेका विचार किया तो उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों—मैत्रेयी और कात्यायनीको बुलाकर कहा—‘मैं परिव्राजक बनना चाहता हूँ; इसलिये कात्यायनीके साथ तुम्हारे हिस्सेका धन बाँट देना चाहता हूँ।’ कात्यायनी साधारण स्त्री थी, वह धन लेनेको तत्पर हो गयी; परंतु मैत्रेयीने कहा—‘यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् स्यां न्हं तेनामृता।’ ‘भगवन्! यदि धन-धान्यपूर्ण समूची धरित्री ही मुझे मिल जाय तो क्या मैं अमर (दुःख-सुख और जन्म-मरणके बन्धनोंसे मुक्त) हो जाऊँगी। क्या मेरी आत्माको शान्ति मिल जायगी?’ याज्ञवल्क्यने कहा ‘नेति नेति’ ‘नहीं अमरता तो नहीं मिल सकती। हाँ, धनियोंकी तरह तुम्हारा जीवन अवश्य हो जायगा।’ याज्ञवल्क्यने आगे कहा—‘यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन।’ ‘सांसारिक प्राकृतिक साधनोंके मिलनेसे तुझे आत्मिक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी। हाँ, साधनसम्पन्न व्यक्तियोंके जीवनके समान तेरा जीवन सुखी जरूर हो जायगा।’ मैत्रेयीने कहा—‘येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्’ जिस वस्तुके मिलनेसे मुझे चिरस्थायी शान्ति न मिले तो उसके पीछे दौड़कर मैं क्या करूँगी। मुझे आत्मतत्त्वका उपदेश दीजिये।’

आज संसार इस आत्मतत्त्वसे दूर, दूर और बहुत दूर होता चलो जा रहा है। परिणाम यह हो रहा है कि वैज्ञानिक दृष्टिसे आज यद्यपि हम एक दूसरेके अत्यन्त निकट आ

संख्या ८]

गये हैं, परंतु आध्यात्मिक दृष्टिसे हम एक दूसरेसे बहुत दूर हो गये हैं। विश्वशान्तिकी स्थापनाके हेतु संयुक्त राष्ट्रसंघमें एकत्र, विश्व-एकता और विश्वशान्तिका नारा लगानेवाला प्रत्येक राष्ट्र अपनी जेबमें छुरा लेकर बैठा है और अपने पड़ोसी और विरोधीके पेटमें भोंकनेको तैयार है। मनुष्यका मनुष्यसे विश्वास उठ गया है। आज चन्द्रमामें पहुँचनेके स्वप्नोंको साकार करनेवाला मनुष्य चन्द्रमापर अधिकार करनेका विचार कर रहा है और इन सबका फल यह है कि संसारमें दुःख, कष्ट, असंतोष, निराशा, परावलम्बन बढ़ रहा है। इसका दोष विज्ञानको नहीं दिया जा सकता। इसके लिये वास्तविक दोषी तो वह भावना है जो दूसरोंकी वस्तु और अधिकारको अपनी वस्तु और अपना अधिकार बनाना चाहती है। आजके विश्वकी दृष्टिसे हम इस विषयपर विचार करें तो हम इसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि भौतिकवादी दृष्टिकोणके परिचायक साम्राज्यवाद और साम्यवाद दोनों ही हैं। अर्थात् लन्दन और न्यूयार्ककी साम्राज्यवादी विचारधाराका यही तो उद्देश्य है कि धन और शस्त्रशक्तिके बलसे संसारमें जो वस्तु मेरी नहीं है, वह किस तरह मेरी बनायी जाय और मास्कोकी साम्यवादी विचारधारा सुननेमें इससे भिन्न हो सकती है; परंतु उसका भी लक्ष्य वही है, जो साम्राज्यवादी विचारधाराका है। वैदिक विचारधारा, जिसे हम ऋषि-मुनियोंकी विचारधारा कह सकते हैं, वह इससे विलकुल भिन्न है। यह विचारधारा जगह-जगह देखती है—कौन वस्तु दूसरोंकी है मेरी नहीं! जो मेरी नहीं, उसे किस तरह दूसरोंको दिया जाय? इसीलिये सनातन धर्मने, वैदिक धर्मने शान्ति और अमरताके लिये 'अपरिग्रह'का उपदेश दिया है। यह 'अपरिग्रह' क्या है? 'परि'का अर्थ है चारों तरफसे, 'ग्रह'का अर्थ है ग्रहण करना, पकड़ना। 'अपरिग्रह' का अर्थ हुआ किसी वस्तुको कसकर चारों तरफसे पकड़ लेना। और 'अपरिग्रह' का अर्थ हुआ उसे छोड़ देना। इसलिये वेदोंने संसारके सुख और ऐश्वर्योंको भोगनेसे मना नहीं किया; परंतु भोगते हुए भोगमें ह्वनेसे मना किया, उसने संसारको वैराग्यभावसे भोगनेका उपदेश दिया। सम्पत्ति पवित्र है। मनुष्यको अर्थ प्राप्त करना चाहिये, सम्पत्ति प्राप्त करनी चाहिये और उसका ठीक-ठीक उपभोग भी करना चाहिये। संत तुकारामने कहा है—

सद्व्यवहारसे जोड़ो धन। उसे व्यय करो वन उदार मन ॥

उदार-मन बनकर सम्पत्तिका भोग करना यही 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'का भाव है। इसको हम इस प्रकार एक दृष्टान्तद्वारा समझ सकते हैं।

प्राचीन कालमें कणाद नामके एक ऋषि थे। उनके पास अनेक ज्ञानार्थी ज्ञानोपलब्धिके हेतु आया करते थे। परंतु ज्ञानका उपदेश पात्रको देखकर किया जाता था; उसकी परीक्षा करके धर्मका उपदेश देनेका विधान था। एक दिन चार-पाँच व्यक्ति उनके पास आये और कुछ उपदेशकी प्रार्थना की। गुरुने उन्हें दूसरे दिन प्रातः छः बजेके लगभग बुलाया। नियत समयपर जब वे व्यक्ति पहुँचे तो कणादजीने वहाँ एक बृहद् यज्ञका आयोजन कर रक्खा था। ज्ञानार्थियोंके आनेपर यज्ञ प्रारम्भ हुआ और वह बृहद् यज्ञ दो-तीन बजेके लगभग समाप्त हुआ। शिष्योंको आज भी ज्ञानका उपदेश न मिला और अधिक देर हो जानेके कारण वे भूखसे व्याकुल होकर जब अपने-अपने घर जानेकी तैयारी करने लगे, तब कणादजी उनके पास आये और बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर बोले कि 'महानुभावो! आज अब आप भोजन भी मेरे यहाँ करके जाइये, सब तैयार है। मैंने पहले ही यज्ञके उपलक्ष्यमें इसका आयोजन कर लिया था।' शिष्य रुक गये और एक बाल्टीमें धरके बाहर पानी रख दिया गया और थोड़ी देरमें उन्हें हाथ-पैर धोकर बैठनेके लिये कहा गया। जब वे चारों आदमी धरके बाहर हाथ-मुख धोने गये, दरवाजेपर चार-पाँच भयंकर जल्लादकी शृङ्खले व्यक्ति शस्त्र तथा मजबूत रस्सियाँ लिये आकर उपस्थित हो गये। जिस समय हाथ-मुख धोकर वे भोजनके थालोंपर जाकर खानेको तत्पर हुए, उसी समय उन व्यक्तियोंने इन्हें रोककर गम्भीरतासे कहा कि 'यहाँ भोजन करनेवालोंको यहाँके नियमोंके अनुसार अपनी कोहनीपर यह खपच्चियाँ बँधवाकर भोजन करना पड़ता है और जो ऐसे भोजन करनेसे इन्कार करते हैं, उनकी गर्दनमें इन तलवारोंसे यहाँ उड़ा दी जाती है।' दोनों क्रोहणियोंपर खपच्चियाँ बँधवाकर भोजन करना अस्वाभाविक और अपमानपूर्ण होते हुए भी गर्दन कटनेके डरसे मना करनेलायक तो था नहीं; अतः कोहनीयाँ बँधवाकर वे लोग परोसे हुए थालोंके पास बैठ गये। अब तक कणादजी वहाँसे गायब थे, अब आ गये और हाथ जोड़कर उन्होंने उनसे भोजन करनेकी प्रार्थना की। परंतु

कोहनीपर खपच्ची बँधी होनेसे हाथ मुड़ नहीं सकते थे और उनके न मुड़नेसे भोजन करना असम्भव होनेसे वे नाराज होकर कणादजीसे बोले कि 'महाराज ! हमने आपका क्या बिगाड़ा है कि आप इस तरहका अपमानपूर्ण व्यवहार हमसे कर रहे हैं।' कणादने कहा—'इसमें अपमानकी कोई बात नहीं, तुमने मुझसे उपदेश चाहा था। आज मैं तुम्हें भोजन करना सिखाना चाहता हूँ। तुम्हें यह सुन्दर-सुन्दर रसगुल्ले और मिठाइयाँ हाथमें लेनेके बाद भी मुखमें ले जानेमें क्यों कठिनाई हो रही है, क्या इसका कारण जानते हो ? इसका कारण है, तुम अपने खानेकी चिन्तामें लगे हुए हो। यदि तुम अपनी चिन्ता छोड़कर, अपने लिये परिग्रहकी वस्तुओंका उपभोग न करके दूसरोंको खिलानेकी चिन्ता करो, वस्तुओंका वैराग्यभावसे भोग करो तो तुम्हें कष्ट सम्भव नहीं। ग्रास पकड़ो, धनका संग्रह करो, परंतु उस धनके संग्रहको अपने लिये प्रयोग मत करो। यदि अपने थालीके रसगुल्लेको उठाकर सामनेवालेके मुखमें डाल दो, सामनेवाला उठाकर तुम्हारे मुखमें डाल दे तो तुम्हारा पेट भी भर जायगा और तुम्हें कष्ट भी नहीं होगा।'।

आज जरा इस कणाद-यज्ञकी बात हम विश्वपर घटायें और देखें तो हमें पता चलेगा कि आज यदि रूस अमेरिका-

को अपना धन, अपना साम्राज्य, अपना सब कुछ दे दे और अमेरिका रूसके लिये अपना सब कुछ त्याग दे तो विश्वशान्ति दूर नहीं, संसारके कष्ट मिट जायें; वैदिक और शासनिक परतन्त्रताका अन्त हो जाय। यह है 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' वैराग्यभावसे भोग करनेका तात्पर्य।

इसलिये हिमालयकी उन गुफाओंमेंसे जहाँ कभी तपस्वी लोग भौतिकवादमें डूबी हुई संतप्त दुनियाको आध्यात्मिक शान्तिका संदेश दिया करते थे, आज भी एक दूसरेके रुधिरकी प्यासी, बावली दुनियाके लिये एक गूँज सुनायी दे रही है। 'मारनेके स्थानपर मरना सीखो, मक्कारीके स्थानमें ईमानदारी सीखो, लेनेके स्थानमें देना सीखो, उच्छृङ्खलाके स्थानमें संयम सीखो, फँसनेके स्थानमें निकलना सीखो, प्रकृतिकी चकाचौंधमें अपनेको खो देनेके स्थानमें उसमेंसे आत्मतत्त्वको समेटना सीखो, मशीन बननेके स्थानमें मनुष्य बनना सीखो, काँचके टुकड़ोंको मोती मत समझो, कागजके गुलदस्तेको असली गुलाबके फूल मत समझो, नकलीको असली मत समझो, 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' को याद करो।'। आज भी यह संदेश आसमानमें लिखा है और पूर्वसे बहनेवाली हवामें गूँज रहा है। सुननेवाले उसे सुनते हैं—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'।

जीवनका सार—धर्म

धर्म मनुज-जीवनका सार।

धर्मविहीन नराधमको है बार-बार धिक्कार ॥

वेद-श्रुति-स्मृति धर्ममूल है मङ्गलका आधार।

धर्म काट देता भवबन्धन, खोल मोक्षका द्वार ॥

सत्य न्यायपर दृढ़ करता है धर्म शुद्ध आचार।

काम-कोप-मद-लोभ-मोहका करता है संहार ॥

समराङ्गणमें विजय कराता, करता राष्ट्रोद्धार।

साहस शौर्य अभयका करता जीवनमें संचार ॥

है सर्वस्व धर्म मानवका वही ईश साकार।

धर्मवेदिपर बलि हो जाओ, हो आनन्द अपार ॥

—श्रीभगवतनारायण भार्गव

हरेनामैव केवलम्

(लेखक—प्रो० श्रीवाँकेविहारीजी झा, एम्० ए०, साहित्याचार्य)

अनादिकालसे भारतीय जन-जीवनका चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिपरक ही माना गया है। यही भारतीय संस्कृतिका मर्म है; यही उसकी अलोकसामान्य विशेषता है। सारा संसार सदासे अधिभूतके पीछे पागल है और भारत सदासे उसका पर्यवसान अध्यात्ममें मानकर अध्यात्मप्रेमी रहा है। यह एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है कि हमारे यहाँकी समस्त अपरा विद्याएँ साधन और परा विद्या उनका साध्य रही है। प्रत्येक शास्त्रविशेषके प्रवर्तकने अपने शास्त्रको विवर्ग-प्राप्तिके सीमित नहीं रखकर उसे चरम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्षका भी प्रापक बताया है। अतः हमारा कोई ग्रन्थ भगवत्स्तुतिके बिना अपना प्रारम्भ नहीं करता। योग, यज्ञ, तप, ज्ञान, कर्म आदि मोक्ष-पथ हुए तो क्या हुए, यहाँ तो संगीतशास्त्र, शब्दशास्त्र, काव्यशास्त्र और यहाँतक कि कामशास्त्र-जैसे शास्त्र भी अपना चरम लक्ष्य परानन्दसंदोह ब्रह्मकी प्राप्तिको ही मानते हैं। इसीलिये तो हमारे यहाँ समस्त प्रकारके शास्त्रोंके प्रणेता ऋषि-मुनि ही हुए हैं। इस तरह भारतका भूत भी अध्यात्म हो जाता है और सब बातें 'ईश्वरार्पणमस्तु' से ही उपसंहृत होती हैं।

यहाँ हम भगवत्प्राप्तिके केवल आध्यात्मिक साधनोंका विमर्श करते हुए देखेंगे कि कीर्तनयोगका उनमें क्या महत्त्व है। पहले यह बतला देना आवश्यक है कि कीर्तनयोग कोई नवप्रवर्तित मार्ग नहीं है। कुछ लोगोंकी यह मान्यता हो सकती है कि श्रीचैतन्यदेवसे ही इसका प्रवर्तन हुआ और इसलिये यह कलियुगीन ही नहीं, अत्यर्वाचीन है। पर बात ठीक उल्टी है। यह उतना ही पुराना है जितना हमारा वेदान्त, सांख्य, योग या मीमांसा आदि।

पञ्चपुराणमें इसकी चर्चा आयी है कि श्रीभगवान्‌के दिव्यधाममें उनके प्रिय पार्षदोंद्वारा संकीर्तनसमारोह हुआ, जिसमें—

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत् ।
हन्त्रोऽवादीन्सुदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमार-
सन्नामे भाववक्ता सरसरधनया व्यासपुत्रो बभूव ॥

अगस्त ३—

इसी पुराणमें अन्यत्र यमद्वारा अपने दूतोंको दिये गये आदेशमें कीर्तनकी महत्ता स्पष्ट होती है—

स्वपुरुषमपि वीक्ष्य पाशहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर भगवत्कथासु मत्तान्
प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥

इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतमें अनेक स्थलोंपर कीर्तनयोगकी श्रेष्ठता बतलायी गयी है। स्वयं प्रभु श्रीमुखसे कहते हैं—

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

आदिशक्ति महागौरीके दरबारमें महाकालकी अध्यक्षतामें नित्य प्रदोषकालीन कीर्तन होनेका उल्लेख भी पुराणोंमें मिलता है। अतः उपर्युक्त उद्धरणों तथा ऐसी अन्य पौराणिक उक्तियोंसे यह स्पष्ट है कि कीर्तन अनादिकालसे चला आ रहा है।

कीर्तनयोगका तात्पर्य क्या है, इसका स्वरूप और क्षेत्र क्या है, इसे भी जान लेना आवश्यक है। वाच्यार्थमें 'कीर्तन' शब्द 'कीर्त' धातुसे 'ल्युट्' प्रत्यय करनेपर व्युत्पन्न होता है, जिसका तात्पर्य है भगवत्कीर्तिके उच्चारका व्यापार। इस प्रकार हमारी रागात्मिका वृत्तिके द्वारा सम्पाद्य 'अनुराग' ही इसकी पृष्ठभूमि है और श्रवणादिक नवधा भक्तिके रुचिर भवनका यह महत्त्वपूर्ण ही नहीं, अनन्य स्तम्भ है; क्योंकि भक्तिका स्वरूप ही अनुरागमय है; महर्षि शाण्डिल्यने इसे स्पष्ट किया है—'सा परानुरक्ति-रीश्वरे।' देवर्षि नारदके अनुसार भी 'सा त्वस्मिन् परमप्रेम-रूपा।' और कीर्तन 'अनुराग'के पूर्ण परिपाकका रूप है। परम्परागत अनुभवानुमोदित नाम, रूप, लीला, धाम तथा नाभाजीद्वारा उल्लिखित भक्ति, भक्त, भगवन्त और गुरु—ये आठ भावमय भगवद्विग्रह इसके प्रतिपाद्य हैं। अधिकारियोंके कथनानुसार पिछले सातके प्रति अनुराग गाढ़ होते-होते नामानुरागमें पर्यवसित हो जाता है। भाव

इसकी प्राणवायु है और गायन इसका रुचिर कलेवर है, बाह्य स्वरूप है। भगवान् शंकर इस सरणिके आदिप्रवर्तक हैं, ब्रजाङ्गनाएँ इसकी परमाचार्याएँ हैं और देवर्षि नारद इसके मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। इस तरह कीर्तनयोगकी यह निर्मल सरिता युग-युगसे अविच्छिन्नत्वेन प्रवाहित होती हुई भारतकी पुण्यभूमिको सरस करती रही है और कलियुगमें चैतन्य, मीराँ, कबीर, सूर, तुलसी, नामदेव, तुकाराम, नरसी आदि अनेक चिन्मय आत्माएँ इसमें स्नान करके स्वयं क्या, जगत्को धन्य करती रही हैं।

अब हम प्रकृत प्रसंगपर आये। प्रश्न होता है कि भगवत्प्राप्तिके अन्य अनेक साधनोंके रहते कीर्तनयोगके आविर्भावका कारण क्या है और विशेषकर कलियुगी प्रजाओंके निमित्त साधनान्तर-परिहारपूर्वक कीर्तन ही एकमात्र समुचित साधन क्यों समझा गया ?

[कीर्तन अपने वाच्यार्थमें एक क्रियाविशेषका बोधक होनेपर भी अपने अनुराग-तत्त्वके कारण सीधा मतलब भक्तियोगके सर्वाङ्गीण रूपसे रखता है, इसे हम फिरसे याद कर लें।]

प्रश्न जितना सुन्दर है, समाधान भी उतना ही आह्लादजनक और हृदयावर्जक है। बात यह है कि प्रभु भावमय हैं। उन्हें केवल दिल चाहिये, प्यार चाहिये, और कुछ नहीं। उनकी इस भावैकगम्यताको एक भक्तने बड़े सही रूपमें आँका है—

भावका भूखा हूँ मैं औ भाव ही बस सार है ।
भावसे मुझको भजे तो भवसे बेड़ा पार है ॥
अन्न-धन और वस्त्र-भूषण कुछ न मुझे चाहिये ।
आप हो जावे मेरा, बस पूर्ण यह सत्कार है ॥
भाव बिन सब कुछ भी दे डाले तो मैं लेता नहीं ।
भावसे एक फूल भी दे तो मुझे स्वीकार है ॥
भाव बिन सुनी पुकारें मैं कभी सुनता नहीं ।
भाव-पूरित टेर ही करती मुझे लाचार है ॥

सचमुच सर्वसौख्यमय प्रभुको कोई दे ही क्या सकता है ? तभी तो भक्तवर रहीमने कहा कि 'हे नाथ ! रत्नाकर जिसका घर और लक्ष्मी जिसकी गृहिणी है, ऐसे तुमको क्या दिया जाय ? हाँ, गोपीनयनकोरसे तुम्हारा मन छिन गया है; यह लो, अपना मन मैं तुम्हें देता हूँ—

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा
देयं किमस्ति भवते जगदीश्वराय ।
आभीरवाभनयनाहृतमानसाय
दत्तं मनो यदुपते कृपया गृहाण ॥

ऐसे प्रभुकी प्राप्तिके लिये योग, यज्ञ, तप, ज्ञान, वैराग्य आदिमें द्विधा व्यर्थता है। एक तो इन सबमें कर्तृत्वाभिमानका पूर्ण अभाव नहीं होनेके कारण साधक दलिताशय और दीन नहीं हो पाता, जिससे भगवत्प्राप्तिका पूर्ण अधिकारी होनेमें उसे जन्मों लगनेपर भी कठिनाई बनी ही रहती है—

जे ग्यान मान बिमत्त तब भव हरनि भक्ति न आदरी ।
ते पाइ सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी ॥
(मानस)

दूसरे, यदि कोई भाग्यवान् साधक उस लायक हो भी जाता है, तो उसे वह मजा कहाँ, जो भक्तोंको मिलता है ? उसका चरम लक्ष्य मुक्ति है, जो तत्त्वतः शून्यका प्रतीक है। भक्त तो मुक्ति देनेपर भी नहीं लेते—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः ॥
(भागवत)

रसगुल्लेको खानेमें मजा है, रसगुल्ला ही हो जाना तो एक अजीब बात है। अतः भक्त प्रभुकी नित्यलीलके सहचर होकर उनके साथ शाश्वत विहारके अधिकारी होते हैं।

ऐसा होनेका कारण है। दो ढंगके उपासक होते हैं। उपास्यदेव प्रभुको ईश्वर और अपनेको जीव मानकर उपासना करनेवालोंकी एक कोटि है तथा प्रभुके साथ स्वामी, सखा, पुत्र, पति आदि लौकिक सम्बन्धकी स्थापना करके भजन करनेवालोंकी दूसरी कोटि है। पहली कोटिके उपासकोंकी अपनी भावनाके अनुसार प्रभु दुर्लभ, दूरस्थ और महतो महीयान् मालूम पड़ते हैं तथा दूसरी कोटिके भक्तोंको वे बिल्कुल अपने, सगे मालूम पड़ते हैं। धनुर्यज्ञमें प्रभु भुवन-मोहिनी छवि लेकर उपस्थित थे। फिर भी—'बिदुषद् प्रभु बिगष्टमय दीसा'। लेकिन एक दूसरा समुदाय उन्हें किस भावसे देख रहा था ?

जनक जाति अवलोकहि कैसैं । सजन सगे प्रिय क्राहि जैसे ॥

संख्या ८]

और सचमुच इन लोगोंको प्रभु उसी रूपमें मिले ।
 'योगिनामप्यगम्यः' प्रभुने दुल्लह चितचोर बनकर रनिवास हास-
 विलाससर्वस जन्मका फल सबोंको दिया । 'यादृशी भावना
 बल सिद्धिर्भवति तादृशी ।' प्रभुकी तो घोषणा ही है—'ये
 यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।' एक दृष्टान्तसे यह
 रहस्य स्पष्ट होता है । कोई सम्राट् अपने दरबारमें जिस
 गम्भीरतासे रहता है और जिस तमीजसे सबोंकी सलामी लेता
 है, उस औपचारिकताको वह अन्तःपुर जाते ही छोड़ देता
 है । वहाँ उसका आनन्दमय रूप है । वहाँ वह सबोंको जितना
 और जिस रूपका अधिकार देता है, वह बाहरी लोगोंको कैसे
 नसीब होगा ? इसी तरह ईश्वर-जीवका नाता लेकर साधक
 प्रभुकी दिव्यानन्दमयी नित्यलीलामें सम्मिलित नहीं हो सकता ।
 प्रभुके वे एकान्त प्यारे लोग 'सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च
 ददन्ताः' होते हैं और वे ही लोग उनका सदा सांनिध्य प्राप्त
 करते हैं । उनकी पुकारपर वे पागल होकर दौड़ पड़ते हैं ।
 उनका वचन है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

और जहाँ प्रभु ही हैं, वहाँ उनका अन्य भावविग्रह कैसे
 नहीं रहेगा । अतः—

सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र

यत्राच्युतोदारकथाप्रसङ्गः ।

यही भक्तिका रहस्य है । इसलिये सयाने लोग—'मुकुति
 निरादर भगति लुभाने' होते हैं । हम पहले जान चुके हैं कि
 भक्तिका एक प्रधान सत्त्व कीर्तन है और उसके प्रतिपाद्य
 आठ भगवद्भिग्रहोंमें सातका पर्यवसान नामानुरागमें होता है ।
 नामकीर्तनकी प्रतिष्ठासे ही समग्र भक्तिक्षेत्रका अभ्याहार हो
 जाता है । नरसीकी यह पंक्ति इसी सत्यकी पुष्टि करती है—
 राम नाम श्रुं ताळी लागी, सकल तीर्थ तेना तनमां रे ॥

इसलिये नाम-महिमासे हमारे ग्रन्थ भरे पड़े हैं । इसका
 भी रहस्य यही है कि किसीके प्रति प्यारका अत्यन्त उद्दाम
 रूप यही है कि हरदम उसका नाम होठोंपर रहे ।

यह एक बात हुई । इसके साथ ही यह बात आती है कि
 कलियुगमें इसकी केवलताका तात्पर्य क्या है ? महाप्रभु श्रीचैतन्य
 देवकी यह नारदपुराणोक्त घोषणा सचमुच बड़ी मार्मिक है—

हरेनाम हरेनाम हरेनामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

गोस्वामीजीकी पंक्तिसे इस प्रतिज्ञाका रहस्य स्पष्ट
 होता है—

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रमाऊ । कलि विसेषि नहिँ आन उपाऊ ॥

कलियुगकी मलिनस्वभाववाली प्रजाको योगकी श्रमता
 नहीं है—'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' और वह बहुत कठिन है ।
 यश तो विधिनिषेधमय है । आजकल यज्ञोंको सफलतापूर्वक
 सम्पन्न करना असम्भव है । न यज्ञीय सामग्री शुद्ध मिलेगी
 और न वैदिक प्रौढ़ मिलेंगे । इसी तरह तपः, ज्ञान, वैराग्य—
 सबोंके साथ कठिनाई है । इसलिये इस युगमें नाम सर्वोपरि
 ही नहीं, अनन्य साधन माना गया । इसमें चित्तशुद्धि, यम,
 नियम आदिकी कोई आवश्यकता नहीं । साधन इतना सुगम
 और इसका फल ? भागवतमें स्पष्ट कहा गया है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं तायां यजतो मखैः ।

द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

(श्रीमद्भागवत १२ । ३ । ५१-५२)

दोषोंके निधि इस कलियुगमें एक महान् गुण यह है कि इसमें
 केवल श्रीकृष्णके कीर्तनसे ही मनुष्य सङ्गसे छूटकर परमात्मा-
 को पा जाता है । अन्य युगोंमें विविध कष्टसाध्य साधनोंसे
 जितना फल मिलता है, उतना ही इस युगमें हरिकीर्तनसे
 मिल जाता है । एक महात्मा कहते थे कि अन्य साधनोंसे
 फल मिलता है, पर कीर्तनसे फल, छिलका, गुठली—सबोंके
 ऊपर रस ही मिलने लगता है । यम, नियम, आसन,
 प्राणायाम और प्रत्याहारकी पाँचों योगभूमिकाओंके बादसे
 तो इसका प्रारम्भ ही होता है । चञ्चल चित्तकी सहज समाधि
 इसीसे शीघ्र होती है ।

अन्तमें यही कहना है कि हम कलियुगी प्रजाओंको
 निरन्तर हरिनामकीर्तनका ही आश्रय लेना चाहिये । इसमें
 योग्यता-अयोग्यताका कोई प्रश्न ही नहीं है । लोग कहते
 हैं—अमुक ढोंगी कीर्तनकार है । मेरा खयाल है कि एक
 हरिनाम ही ऐसा है, जिसमें ढोंग भी परम फलद और
 कल्याणकारी होता है ।

यमराजका न्याय

[कहानी]

(लेखक—श्रीनरेन्द्रनारायणलालजी)

मनोजने ज्यों ही आँखें खोलीं, अगल-बगल सींगधारी दो भयंकर प्रेत खड़े दिखायी दिये। रोम-रोम सिहर उठे उसके। पैर डरसे काँपने लगे और जवानपर तो मानो ताला जड़ दिया गया।

फिर मनोजने कुछ साहस बटोरा और इधर-उधर आँखें फेरनी शुरू कर दीं। वह समझ जरूर रहा था कि वह किसी बहुत बड़े दरवारमें खड़ा है। लेकिन उसकी समझमें यह नहीं आ रहा था कि आखिर वह है कौन-सा दरवार।

सामने एक विशाल सिंहासनपर नजर पड़ी; सिंहासन रत्नजटित और बहुत ही सुन्दर था और उसकी बगलमें कुछ हटकर एक दूसरा आसन भी दीख पड़ा, किंतु दोनों आसन खाली थे। पर तबतक मनोजकी सारी तन्द्राएँ समाप्त हो चुकी थीं और जब उसने सँभलकर आँखें चारों ओर घुमायीं, तब तो मारे भयके उसकी हालत खराब होने लगी; बड़ी-बड़ी कटारें लिये भयंकर प्रेत दरवारके चारों ओर खड़े थे। उधर अचानक उसकी आँखें अपनी बगलमें खड़े प्रेतपर जा टिकीं, मानो उसकी आँखें उस प्रेतसे पूछ रही हों—‘भई, जल्द बताओ, यह प्रेतोंका तो दरवार नहीं?’

प्रेत मनोजका मनोभाव समझकर बोल उठा—

‘घबराओ नहीं; यह महाराज यमकी पुरी है!’

‘तो मैं यमपुरीमें हूँ?’ हकलते हुए मनोजने पूछा।

‘हाँ, इसमें डरनेकी क्या बात है। यहाँ तो सभी जीवों-को पहले आना ही पड़ता है!’

‘क्यों, मैंने कौन-सा पाप किया है भैया?’

‘पाप-पुण्यका निर्णय यहीं होता है।’

‘कौन करेगा मेरे पाप-पुण्यका न्याय?’

‘ब्रह्मा-पुत्र भगवान् चित्रगुप्त।’

‘और दण्ड-पुरस्कार कौन देगा?’

‘भगवान् यम, प्रतापी भगवान् सूर्यके छोटे बेटे। यह काम उन्हींके जिम्मेका है और हम सब उन्हींके आज्ञाकारी दूत हैं।’

‘कैसे हैं तुम्हारे स्वामी, भैया?’

‘बड़े ही अच्छे हैं, दूधका दूध और पानीका पानी न्याय करते हैं।’ उसी समय मनोजको दफ्तरकी याद हो आयी और वह बोल उठा—‘भई! देखो, मुझे घर जल्द पहुँचा दो, दफ्तरका समय हो गया है। आजकल इमरजेंसी है, बड़ी कड़ाई है।’

प्रेत मुसकराकर पूछ बैठा—‘यह इमरजेंसी कौन-सी बला है जी?’

मनोज बोला—‘मेरे भारतपर पाकिस्तान और चीनके आक्रमणका हमेशा खतरा बना हुआ है, इसलिये भारत-सरकारने संकटकाल घोषित कर दिया है। इसमें देशकी रक्षाके लिये पूरे जोर-शोरसे काम होते हैं, जरा भी ढिलाई बरदाश्त नहीं।’

‘तो जमीनवाले आपसमें ही कटते-मरते हैं?’

‘क्यों, इसमें कुछ नयी बात तो नहीं, हमेशासे आदमी आपसमें इसी तरह लड़ते-मरते आये हैं! यही तो बीरताका परिचय है।’

इसी बीच दूसरे प्रेतने बड़े जोरोंमें अट्टहास किया, जिससे सारा दरवार दहल उठा। फिर मौन होते हुए वह बोला—‘अरे यार, मर्त्यलोकके लिये यह नयी बात नहीं। वहाँ तो असत्य, अधर्म, अन्याय, अनाचार, अकर्म आदिका ही बोलबाला रहता है, जिसके चलते हमारी नाकमें हमेशा दम आया रहता है।’

‘तो क्या तुम्हारे यहाँ पाप-पुण्य नहीं होते?’ लीझते हुए मनोज पूछ बैठा।

‘नहीं जी, यह लोक पाप-पुण्यसे बिल्कुल मुक्त है।’

‘छोड़ो इस वकवासको। भई, मुझे घर पहुँचा दो, दफ्तरकी देर हो रही है।’ मनोज चिढ़ते हुए बोला। उसी समय सहसा घंट बज उठे और शङ्खध्वनि होने लगी तथा एक दूत जोरसे बोल उठा—‘सावधान! भगवान् यम और भगवान् चित्रगुप्त पधार रहे हैं।’

यम और चित्रगुप्त अपने-अपने आसनपर आकर बैठ गये। भगवान् यम थे तो सुन्दर, पर सूरत भयावनी बना रक्खी थी और भगवान् चित्रगुप्त एक वृद्ध और सम्भ्रान्त व्यक्ति प्रतीत होते थे। उनमें बुद्धि और विवेक झलक

संख्या ८]

रहे थे। सहसा हिम्मत बटोर मनोज बोल उठा—
‘तुम्हारा है भगवान् यमकी। आपके दूत मुझे पकड़ लाये।
मेरे दफ्तरका समय हो रहा है और ये मुझे घर नहीं पहुँचा
रहे हैं!’ मनोजकी बातें सुनकर भगवान् यमने मुस्कराते
हुए कहा—‘चित्रगुप्त देवता! धरतीका मनुष्य भी अजीब
जीव होता है; उसे शरीर छूटनेपर भी उस शरीरका मोह
बहुत दिनोंतक बना रहता है।’

‘तो क्या मेरा शरीर छूट गया?’ घबराकर मनोज
पूछ बैठा। भगवान् चित्रगुप्त बोले—‘कोई भी शरीरधारी
यहाँ आ नहीं सकता।’ और फिर वे वहीके पन्ने उलटने
लगे तथा कुछ देखने लगे। उसी बीच मनोज रोनी सूरत
बनाकर बोल उठा—‘हाय-हाय! मेरे बाल-बच्चोंका क्या
हाल होगा, देवता?’

चित्रगुप्तजी बोले—‘जब तुम्हारा जन्म धरतीपर हुआ
था, तब तुम्हें बाल-बच्चे थे?’

‘नहीं’

‘जब तुम्हारा शरीर छूटा, तब तुम्हारे किसी परिवारने
तुम्हारा साथ दिया?’

‘नहीं’

‘तुम्हारा जब जन्म धरतीपर हुआ, तब यह मालूम
हुआ कि जन्मके पहले तुम कहाँ और किस रूपमें थे?’

‘मालूम नहीं देवता!’

‘ऐसा सुन्दर मानव-तन तुम्हें मिला और तुमने कुछ
परवा नहीं की; बस बाल-बच्चे, परिवार करते रहे।’

‘सारी स्थितियाँ समझते हुए गम्भीर होकर मनोज
बोला—‘मुझे धर्म-अधर्म नहीं मालूम देवता! किंतु हाँ,
जानते भर मैंने सदा कर्त्तव्यका पालन किया, भगवान्‌के
सभी जीवोंसे सदा प्रेम करता रहा। जहाँतक बना, भगवान्‌के
सब जीवोंके सुख-हितका ध्यान रक्खा और भरसक पहुँचाया-
किया। अपनी स्त्री छोड़कर परायी औरतोंको सदा माँ-बहन
ही समझा। हाँ, भगवान्‌ने मुझे धन तो इतना नहीं दिया,
पर चरित्ररूपी अमूल्य धन उनकी कृपासे मुझे प्राप्त रहा।’
इसी बीच भगवान् चित्रगुप्त पूछ बैठे—‘भगवान्‌की पूजा
करते थे?’

‘नहीं देवता! मुझे अवकाश नहीं मिलता, इससे न तो
मैं मन्दिर जाता और न विशेष पूजा-पाठ ही करता, परंतु
मैंने कभी किसीसे घृणा नहीं की; किसीको धोखा नहीं दिया
और न किसीके कोमल हृदयको कुचलनेकी इच्छा या
चेष्टा ही की।’ मनोज बोलकर ज्यों ही मौन हुआ, भगवान्

यम बोल उठे—‘तुम बड़े अच्छे जीव मालूम होते हो।’
थथमते हुए वे फिर पूछ बैठे—‘तो क्या तुमने भगवान्‌की
कभी पूजा नहीं की?’

मनोज गम्भीर होकर बोला—‘भगवान्‌को तो मैंने कभी
नहीं देखा, देवता! हाँ, भगवान्‌के बनाये हुए तमाम
जीवोंको मैं भगवान् ही समझता रहा, उनकी बनायी हुई
चीजोंको देखता रहा और उन सारी चीजोंसे मैं बराबर
प्रेम करता रहा और हृदयसे प्रेम करता रहा।’ जरा रुकता
हुआ मनोज फिर बोल उठा—‘मेरा एक साथी है भास्कर,
जो कहता था कि उसे भगवान्‌के दर्शन होते हैं और वह
हमेशा पूजा-पाठमें रहता था। तिलक लगाता और मन्दिर
भी बड़ी पाबन्दीसे वह जाया करता। भगवान्‌की प्राप्तिके
लिये बड़े-बड़े जोग-जाप भी किया करता था वह। वह ऐसा
कर सकता था; क्योंकि वह एक बड़ा अफसर था और काफी
धन था उसके पास। उसे चिन्ता ही किस बातकी थी।’

भगवान् चित्रगुप्त इसी बीच बोल उठे—‘उसे चिन्ता
थी कामिनियोंकी मनोज! यह धर्म उसका बाहरी दिखावेका था,
ढोंग था। ध्यान तो रात-दिन उसका परायी औरतोंपर ही
लगा रहता और साथ ही वह बड़ा बेईमान अफसर था,
लाखों रुपयेकी उसने बेईमानी की है। कितने घर उसने
तबाह कर दिये। अंदरसे बड़ा स्वार्थी और क्रूर था वह।’

‘क्या कह रहे हैं, देवता?’ मनोजने चकित होकर
पूछा। ‘मैं ठीक कह रहा हूँ और यही कारण है कि वह
रौरव नरकमें पड़ा कराह रहा है आज।’

‘तो क्या उसका भी शरीर छूट गया?’ मनोजने पूछा।
इसी बीच भगवान् यम बोल उठे—‘हाँ, भास्करका शरीर
छूट गया।’ फिर भगवान् यम चित्रगुप्तसे बोले—‘हे देवता!
मनोजके सम्बन्धमें आपकी बहीमें क्या नोट है और आपका
परामर्श क्या है?’

पन्ने उलटते हुए भगवान् चित्रगुप्त बोले—
‘मनोज तो भगवान्‌के सच्चे और सर्वोच्च सकाम
भक्तोंमेंसे एक है।’

‘भगवान् यम प्रसन्न होते हुए बोले—‘मनोज! ऐसा ही
है। जाओ मनोज! तुम्हें अमरपुरीमें रहनेका आजीवन सुख
दिया जाता है। तुम्हें वहाँ सारी राजसी सुख-सुविधाएँ प्राप्त
होंगी; क्योंकि हमारे मापदण्डपर तुम बिल्कुल खरे उतरे।’

भगवान् यमका न्याय सुनकर मनोज थोड़ा प्रसन्न तो
अवश्य हुआ, पर फिर गम्भीर हो गया। भगवान् यमने फिर
पूछा—‘क्यों मनोज! तुम्हें प्रसन्नता नहीं हुई?’

‘प्रसन्न हूँ, भगवान् ! किंतु भास्करकी दुर्दशा जानकर मन दुखी हो गया ।’ मनोजने उत्तर दिया ।

‘कर्मोंका फल तो जीवोंको भुगतना ही पड़ेगा मनोज !’

भगवान् चित्रगुप्त बोले । मनोजका रोम-रोम काँप उठा । भगवान् यमकी ओर मुख करके मनोजने फिर पूछा—‘मेरा कोई पुण्य हो और मैं भास्करके लिये उसे दे दूँ, इससे क्या भास्करका कष्ट दूर नहीं किया जा सकता देवता ?’ भगवान् यमने जवाब दिया—‘किया जा सकता है, मनोज ! तुम जो कुछ चाहो, वही हो सकता है ।’

‘देवता !’ मनोजके मुँहसे निकला और उसकी आँखोंसे आँसू झरने लगे । भगवान् यम प्रसन्न होते हुए बोले—

‘तुम्हें जीवोंसे सच्चा प्रेम है, मनोज ! दुष्टका कष्ट भी तुमसे सहन नहीं हो रहा है ।’ थोड़ा रुकते हुए भगवान् यम फिर बोल उठे—‘रोओ मत मनोज ! तुम जैसे भगवान् के भक्तकी आँखोंके आँसू बरदाश्त नहीं हो रहे हैं । जाओ, अबतकके उसके सारे पापोंके फल तुम्हारे आँसुओंसे धुल गये और वह भी तुम्हारे साथ अमरपुरीमें ही आजीवन रहेगा ।’ बात समाप्त होते ही मनोजने देखा, सामने भास्कर सिर झुकाये खड़ा है । मनोजने प्रसन्न हो भास्करको प्रेमालिङ्गनमें कसते हुए कहा—‘भास्कर ! हम दोनों अब आजीवन अमरपुरीमें ही रहेंगे ।’ उसी समय सहसा भगवान् यम बोल उठे—‘तथास्तु !’

परम सुहृद् भगवान्

(१)

किससे कैसे कब हो सकता है मेरा सचमुच कल्याण ।
नहीं जानता उसे अब मैं, पूर्ण जानते हैं भगवान् ॥
सर्वशक्तियुत, सबके ज्ञाता, सब लोकोंके ईश महान् ।
सहज सुहृद् मेरे वे जो कुछ करते मेरे लिये विधान ॥
निश्चय ही वह है मङ्गलमय सब कल्याणोंका आधान ।
हिम-आतप, वर्षा-सुखा कब किससे कैसा लाभ अमान ॥
रोग-निरोग, मरण-जीवनके सब रहस्यका उनको ज्ञान ।
इससे वे जब भी, जो कुछ भी, करते हैं रखकर अवधान ॥
भरा उसीमें है हित सबका परम चरम शुभ अभ्युत्थान ।
निर्भय मैं रहता हूँ इससे प्रभु-अनुकम्पाका कर ध्यान ॥

(२)

जान गया मैं परम सुहृद् प्रभु करते नित मेरा कल्याण ।
जान गया वे सर्वशक्तिमय हैं मेरे शुचि बन्धु महान् ॥
रहते सदा सजग, वे करते नहीं भूलकर भी कुछ भूल ।
शूल रूपमें भी देते वे प्रभु मुझको मृदु सुरभित फूल ॥
उन प्रभुका मुझपर अतिशय है सदा हृदयका निर्मल प्यार ।
मैं इससे अब पहुँच गया हूँ भय-चिन्ता-भ्रमके उस पार ॥
निर्भय नित्य, शान्त, निर्भ्रम, निश्चिन्त हुआ अब मैं मलहीन ।
रहता सदा प्रफुल्ल उल्लसित प्रभु-सेवामें ही तल्लीन ॥
मैं प्रभुका हूँ नित्य दास प्रिय, वे मेरे स्वामी बस एक ।
योग-क्षेम वहन करते सब, रखते नित्य सुरक्षित ठेक ॥

पढ़ना और है, गुनना और !

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

पोथी पढ़ि पढ़ि जग सुआ, पंडित भया न कोय ।
बढ़ि अच्छर 'प्रेम'के पढ़े सो 'पंडित' होय ॥

शिक्षाका दिन-दिन प्रचार बढ़ रहा है। स्कूल खुल रहे हैं, कालेज खुल रहे हैं, विश्वविद्यालय खुल रहे हैं, शोध-संस्थान खुल रहे हैं। पढ़ाईके लिये सुविधाएँ बढ़ायी जा रही हैं। बजटमें लाखों-करोड़ों रुपयोंका आयोजन किया जा रहा है। शिक्षा-आयोग बन रहे हैं। देशी, विदेशी, अन्तराष्ट्रीय संस्थाएँ खड़ी की जा रही हैं। बच्चोंके लिये, स्त्रियोंके लिये, अध-व्यसोंके लिये पढ़ाईका प्रबन्ध हो रहा है। अज्ञानके अन्धकारको मिटानेके लिये विश्वभरके विद्वान्, राज-नीतिज्ञ, समाजसुधारक ज्ञानकी जलती हुई मशालें लेकर बाहर निकल पड़े हैं। ऐसा लगता है कि कुछ ही बरसोंके भीतर विश्वसे अशिक्षा और अज्ञानका नामोनिशान ही मिट जायगा।

बहुत खूब ।

कौन न स्वागत करेगा इस शिक्षा-अभियानका ?

× × ×

'अंगूठाछाप' लोग शेक्सपीयर और मिष्टनपर, कैट और हैगेलपर बहस करने लगे; ज्ञान और विज्ञानकी प्रगतिपर वाद-विवाद करने लगे; राजनीति और समाजशास्त्र, इतिहास और मनोविज्ञानकी गुथियाँ सुलझाने लगे—इससे बढ़कर और क्या चाहिये ? अशिक्षित लोगोंका बौद्धिक धरातल ऊँचा उठे, वे भी अपनेको, समाजको, विश्वको भलीभाँति समझकर अपनी और परायी समस्याओंपर चिन्तन करने लगे, इससे अच्छा और क्या होगा ? आज जिनके लिये 'काला अक्षर भैंस बराबर' है, कल वे ही संयुक्त राष्ट्रसंघमें उपस्थित समस्याओंपर, संसद् और विधान-

सभामें उपस्थित विलोंपर अपने मत व्यक्त करने लगे, तो इसका स्वागत कौन न करेगा ?

अज्ञानान्धकारको मिटानेके लिये किया जानेवाला कोई भी आन्दोलन प्रशंसनीय है, अभिनन्दनीय है। बर्ट्रेण्ड रसेल लिखते हैं—

'Happiness is of two sorts. The two sorts I mean might be distinguished as plain and fancy, or animal and spiritual, or of the heart and of the head. Perhaps the simplest way to describe the difference between the two sorts of happiness is to say that one sort is open to any human being, and the other only to those who can read and write.'

'प्रसन्नता दो प्रकारकी है—एक तो सीधी-सादी, दूसरी कल्पना-मिश्रित। एक पाशविक, दूसरी आध्यात्मिक, एक हृदयकी, दूसरी मस्तिष्ककी। एकका आनन्द कोई भी मनुष्य उठा सकता है, दूसरीका आनन्द केवल वे ही उठा सकते हैं, जो पढ़े-लिखे हैं।'

मतलब नास्वादा लोग उस प्रसन्नतासे वञ्चित रह जाते हैं जो पढ़े-लिखे लोगोंके ही हिस्सेमें लिखी रहती है।

जरूरी है कि प्रसन्नताका यह आनन्द हर आदमीको मिल सके। इसलिये हर आदमीको साक्षर होना ही चाहिये।

× × ×

परन्तु क्या साक्षरतासे ही विश्वकी सभी समस्याओंका निदान निकल आयगा ?

पोथी पढ़ लेनेसे ही आजकी स्थितिमें कल्पनातीत सुधार हो जायगा ?

* Bertrand Russell : The Conquest of Happiness. P. 93

शिक्षाका प्रचार होनेसे ही अज्ञानका पर्दाफाश हो जायगा ? मनुष्यका सर्वाङ्गीण विकास हो जायगा ?

जी नहीं । बात ऐसी नहीं है ।

रस्किनने इस समस्यापर गम्भीरतासे सोचा था । वह कहता है—

"You might read all the books in the British Museum and remain an utterly 'illiterate' uneducated person; but if you read ten pages of a good book, letter by letter.....that is to say, with real accuracy,.....you are forever more in some measure an educated person." *

ब्रिटिश म्यूजियमकी सारी किताबें पढ़कर भी आप 'अशिक्षित' मनुष्य बने रह सकते हैं और किसी अच्छी पुस्तकके केवल दस पन्ने पढ़कर भी आप किसी हदतक 'शिक्षित' बन सकते हैं, बशर्ते कि आप पढ़ें ठीकसे, प्रामाणिकतासे ।

यह 'ठीकसे' पढ़ना क्या है ?

इसका नाम है—'गुनना' ।

पढ़ना और है, गुनना और ।

आज पढ़े-लिखे तो हजारों हैं, लाखों हैं, करोड़ों हैं, पर गुने हुए लोग कितने हैं । शायद अँगुलियोंपर गिनने-लायक मुश्किलसे निकलेंगे ।

×

×

×

आजसे ६६ साल पहले स्वामी रामतीर्थने अपने 'अलिफ्' नामके रिसालेमें एक लेखमें इसका एक बढ़िया उदाहरण दिया था ।

बचपनमें जब कौरव और पाण्डव एक साथ पढ़ते थे तो एक दिन उन सबकी परीक्षा ली गयी । किसी विद्यार्थीने आधी किताब सुना दी, किसीने पूरी । पर युधिष्ठिरसे पूछा गया तो उसने कहा—'मैंने तो केवल दो वाक्य याद किये हैं ।'

परीक्षक महाशयको अत्यन्त क्रोध हो आया । वे बोले—'अरे दुष्ट ! तू तो सबसे बड़ा है और अभीतक सिर्फ दो वाक्य याद किये । यह कैसी सुस्ती है । तुझे लज्जा नहीं आती ? चुल्हभर पानीमें डूब मर ।'

परीक्षकने इतनेसे ही बस न की । लगे चपत-पर-चपत मारने ! बेचारे राजकुमारके कपोल लाल हो गये, पर बाह रे राजकुमार ! उफ्तक नहीं की । शान्त खड़ा रहा ।

यह देख परीक्षकको अत्यन्त विस्मय हुआ । सोचा कि आज दुर्योधनको किसी अपराधपर धमकाना चाहा था तो वह पगड़ी उतारनेको तैयार हो गया था । भगवन् ! यह कैसा राजकुमार है कि इसे पीटते-पीटते अधमरा कर दिया है और इसने चूँतक नहीं की । प्रसन्नवदन खड़ा है ।

अब युधिष्ठिरका हाल सुनिये । अक्षर-परिचय होनेके बाद पहला ही वाक्य गुरुजीने बताया था—'क्रोध मत करो ।'

सुशील बालक तभीसे एकान्तमें जाकर उसपर विचार करने लगा । कानोंसे सुने पाठको रोम-रोममें उतारने लगा । बेचारे युधिष्ठिरको उस शिक्षा-कलाकी खबरतक न थी, जिसकी बदौलत साधारण बाबू और पण्डित लोग विद्यारूपी गङ्गाकी नहर अपने मस्तिष्क-पर इस सफाईके साथ बहा देते हैं कि रुड़कीवाली नहरके साथ एक बूँद भी पुलसे नीचे गिरने नहीं पाती । ऊपर-ऊपर तो गङ्गा बहती हैं और निचला हिस्सा सूखा-का-सूखा पड़ा रहता है । देखनेमें तो सैकड़ों पुस्तकें पढ़ डालीं, परीक्षाओंमें पूरे-पूरे नम्बर हासिल किये, विश्वविद्यालयमें पारितोषिक और पदक प्राप्त किये, किंतु भीतर एक बूँद भी न पड़ने दी । आचरणमें कुछ प्रवेश न होने दिया । बेचारा युधिष्ठिर इस कलासे बिल्कुल अपरिचित था । उसने जो कुछ पढ़ा, झट उसके हृदयमें उतरने लगा ।

*. Ruskin : Sesame and Lilies. P. 14

उसके विचार-क्रमका रूप यह था—

‘क्रोध मत करो’—भला क्योंकर ? हमें तो क्रोध आ जाता है। क्यों आता है ? उचित है या अनुचित ? क्रोधके बिना काम चल सकेगा या नहीं ? यदि क्रोध न किया तो नौकर लोग ढीठ हो जायेंगे, काम अच्छा न करेंगे, रोव उठ जायगा, प्रबन्ध बिगाड़ जायगा, रसोई समयपर न तैयार होगी। आदि।

क्रोधको छोड़नेमें कठिनाइयाँ तो होंगी, पर क्या क्रोधको छोड़ना असम्भव है ? यदि असम्भव होता तो गुरुजी ऐसा उपदेश ही न देते। शास्त्र ही ऐसा अनुशासन क्यों देते ?

अब क्या करें ? क्रोध तो आ ही जाता है। तो क्या यह उचित होगा कि मान तो लिया जाय कि क्रोध करना अनुचित है, पर समयपर क्रोध आ जाय तो आ जाने दें ? नहीं, यह तो छल है। गुरु और शास्त्रके साथ धोखेबाजी है। मुँहसे ‘हाँ’ कर लेना और अमलमें ‘न’ लाना।

अबसे दृढ़ संकल्प करते हैं कि ‘क्रोधको पास न फटकने देंगे।’

क्रोध क्यों उत्पन्न होता है ? प्रायः जब कोई काम बिगाड़ता है या कोई चीज खराब हो जाती है तो क्रोध आता है। अरे मन ! काम तो एक बार बिगाड़ चुका। तू उसपर चित्तको क्यों बिगाड़ता है ? चीज तो खराब हो गयी, होगी दस, बीस, पचास, सौकी, पर उसके लिये चित्त-जैसी अनमोल चीजको क्यों खराब कर बैठता है ? आनन्द मेरा जन्मजात स्वत्व है। किसी सांसारिक वस्तुके लिये इस जन्मजात स्वत्वको क्यों खोऊँ ?

राजकुमारोंके यहाँ रिवाज तो है कि बात-ब्रातपर उदकी पीठीकी तरह ऐंठना, किंतु गुरुजीका उपदेश है—‘शान्त रहो, मनको हिलने ही न दो।’ गुरुजीकी

अगस्त ४—

इस आज्ञाका मैं पालन करूँगा, चाहे सारी दुनिया मेरे खिलाफ हो।

इस प्रकार सोच-विचार करते-करते युधिष्ठिरने उन तमाम मौकोंको याद किया, जहाँ उसकी शान्तिके पैर फिसला करते थे और अपने-आपको खूब समझाया—‘ऐ अनजान मन, अबतक जो हुआ सो हुआ। आगेसे ऐसे कोमल समयोंपर सँभलकर चलना। जब कोई कुछ कटुवाक्य कहे, गाली दे, काम बिगाड़ दे, हमारे खिलाफ साजिश रचे अथवा जब चित्त अस्वस्थ हो, तब तू शान्त रहा कर।’

इसके पश्चात् युधिष्ठिरने बहुत बार जान-बूझकर अपने-आपको ऐसे स्थानोंपर पहुँचाया, जहाँ दुर्योधन आदिने उसे छेड़ा और दुःख देना चाहा, किंतु युधिष्ठिरने हर बार ‘क्रोध मत करो’—इस पाठका व्यावहारिक अनुभव सफलताके साथ किया। जब क्रोध बिल्कुल छूट गया तो चित्तमें चैन रहने लगा। आनन्द और प्रसन्नताने रंग जमाया, मानो मुफ्तमें खजाने हाथ आ गये। अनुभवने युधिष्ठिरको यह सिद्ध कर दिखाया कि सब लोगोंका यह ख्याल गलत है कि ‘क्रोधके बिना काम नहीं चल सकता।’

परीक्षक महोदयने जब देखा कि युधिष्ठिरपर मारका कोई असर नहीं हो रहा है, तब वे समझे—‘ओहो ! यह लड़का तो हमारा भी गुरु है। यह हमको सिखा रहा है कि पढ़ना किसको कहते हैं ?’

उनकी आँखोंमें आँसू डबडबा आये। बच्चेको गोदमें लेकर वे फूट-फूटकर रोने लगे।

इल्म चंदां कि बेशतर रत्नानी,
चूँ अमल दर तो नेस्त नादानी।

‘तू चाहे जितनी विद्या पढ़ जाय, यदि उसपर अमल नहीं है, तो सिर्फ नादानी है।’

× × ×
तो, इसका नाम है पढ़ना, इसका नाम है
गुनना ।

लोग पढ़ते हैं ऊँचा पद पानेके लिये । धन
कमानेके लिये । लोगोंसे प्रशंसा पानेके लिये । ऊँचा
रुतबा पानेके लिये ।

कुछका यह हौसला पूरा हो जाता है ।
पर यही तो जीवनका लक्ष्य है नहीं ।
यही तो जीवनकी प्रगति है नहीं ।

रस्किनके शब्दोंमें जीवनकी प्रगतिकी व्याख्या
यह है—

'He only is advancing in life, whose
heart is getting softer, whose blood
warmer, whose brain quicker, whose spirit
is entering into Living Peace.'

'केवल उसीका जीवन प्रगतिकी ओर जा रहा
है, जिसका हृदय दिन-दिन मुलायमसे मुलायम होता
जा रहा है, जिसके रक्तकी ऊष्मा बढ़ती जा रही है,

जिसका मस्तिष्क दिन-दिन तीक्ष्ण होता चल रहा है
और जिसकी आत्मा स्थायी शान्तिकी दिशामें प्रवेश
करती आ रही है ।'

× × ×
शिक्षाका लक्ष्य, विद्याका लक्ष्य है—मुक्ति ।
'सा विद्या या विमुक्तये ।'

हम नाना प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त न हुए, मानव
मानवको बाँटनेवाले कटवरोमें ही कैद बने रहे तो
धिककार है हमारी शिक्षापर, धिक्कार है हमारी
विद्यापर ।

हमारे यहाँ तो इसीलिये कहा है कि एक ही
शब्द पढ़ लो—ढाई अक्षरका छोटा-सा शब्द है—
'प्रेम' । वस, ब्रेड़ा पार है ।

मानव-मानवसे प्रेम । पशु-पक्षीसे प्रेम । कीट-
पांगसे प्रेम । पेड़-पौधोंसे प्रेम । चर-अचरसे प्रेम ।
सृष्टिसे प्रेम, सृष्टिकर्तासे प्रेम ।

जीवनकी सार्थकता इसीमें प्राप्त हो जायगी । इसके
अलावा न कुछ पढ़नेकी जरूरत है, न कुछ गुननेकी ।

सच्चा शिक्षित विद्वान् कौन है ?

जिसमें नहीं विनय, ऋजुता, तप, त्याग, मधुर विनम्र व्यवहार ।
जिसमें नहीं मधुर हित वाणी, सत्य, सुसंयम, शुभ आचार ॥
वचन असत्य परुष परहित-नाशक, मन भरा दर्प-अभिमान ।
हिंसा-वैर-परायण, काम-क्रोध-लोभ-भय-दंभ-निधान ॥
भक्ष्याभक्ष्य-विचार त्याग जो करता तामस भोजन-पान ।
साक्षर होकर भी वह नर-पशु मानवता-विरहित अज्ञान ॥
जिसमें दया, प्रेम, सेवा, तपका लहराता सिन्धु महान् ।
अक्षरहीन भले हो, पर वह है मानव शिक्षित विद्वान् ॥
व्यर्थ, अनर्थपूर्ण जीवन अपवित्र असुर-पशुका कर त्याग ।
दैवी सम्पद्का सेवन कर बनो सुशिक्षित शुचि बड़भाग ॥

पुण्य स्मरण

(लेखक—श्रीमाधव)

काशी हिंदू-विश्वविद्यालय । जुलाई १९२६ । हमलोगोंने आश्चर्यके साथ देखा कि हमारे विश्वविद्यालय-के अंगरेजी विभागमें एक अंगरेज प्रोफेसर आ गये हैं । बड़ी मनोह्र मूर्ति, खूब कदावर लगभग साढ़े सात फीट ऊँचे, बड़ी-बड़ी नीली आँखें, सामनेके बाल खलवाट होनेका संकेत देते हुए, उन्नत प्रशस्त ललाट, सुमेकी ढेरकी तरह नुकीली नाक, रेशमी कमीजपर काली फहरातो हुई टाई । मोटर साइकिलपर होते तो यह टाई और भी फरफर फहराती । शोभाका क्या कहना था । हमलोग बी०ए०में आ गये हैं । नवागन्तुक प्रोफेसरका नाम है—रोनाल्ड निक्सन । हमलोगोंको आपने चार्ल्स लैव पढ़ाना शुरू किया । यह पढ़ाना क्या था तन्मयता-का तिलिस्स था । लैव एक अभागा लेखक हो चुका है—सर्वथा अभागा । इंडिया ऑफिसमें अन्ततक किरानीगिरी करता रहा । घरमें एक पगली बहन थी एलिया । वह स्वयं भी मस्तिष्क-विकारसे यदा-कदा पीड़ित हो जाया करता था और पथरपर सिर पटकने लगता था । एक बार लैवने सपनेमें देखा कि उसे कई बच्चे हो गये हैं जिनका सपनेमें ही नामकरण भी कर दिया । नींद खुली तो उसे बड़ी ग्लानि हुई; क्योंकि वह था कुँआरा, आजीवन अविवाहित । उसने अपने सपनेका जो चित्र 'ड्रीम चिल्ड्रेन' में खींचा है वह किसीके भी हृदयको हिला देनेवाला है । प्रो० निक्सनसे इसी लैवको लेकर प्रथम-प्रथम साक्षात्कार हुआ । पढ़ानेकी शैली इतनी मोहक और चित्ताकर्षक कि हम सभी मन्त्रमुग्ध उनकी प्यारभरी मीठी-मीठी बातें सुनते अघायें ही नहीं । इच्छा होती कि पहली घंटीसे अन्तिम घंटीतक बस इन्हींका क़ास चलता रहे ।

इनके विश्वविद्यालयमें आते-ही-आते जन्माष्टमीका

पर्व आया । इस पर्वपर विश्वविद्यालयमें कई दिनोंतक लगातार कथा-वार्ता, नाटक, संगीत आदिका सुललित सुमधुर कार्यक्रम चलता था । स्वयं पूज्यचरण पुण्यश्लोक प्रातःस्मरणीय चिरवन्दनीय महामना श्रीमालवीयजी महाराज रेशमी पीताम्बर पहनकर, खड़ाऊँ पहने विश्वविद्यालयमें आते और श्रीमद्भागवतसे श्रीकृष्णजन्मकी कथा भावभीने शब्दोंमें सुनाते । उसी अवसरपर श्री-कृष्णजन्मोत्सवका अभिनय भी था; जिसमें वसुदेवजीकी भूमिकामें प्रो० निक्सन थे । इस अभिनयके माध्यमसे वे छात्रोंके अति निकट आ गये, लगा जैसे युगोंकी आत्मीयता हो; सर्वथा अपने लगे—सखा, सुहृद्, अन्तरङ्ग मित्र ।

परंतु यह अन्तरङ्गता और घनीभूत होनेवाली थी । प्रो० निक्सन रहते थे नगवामें गङ्गा-किनारे 'राधा-निवास' में, जो लखनऊ विश्वविद्यालयके तत्कालीन उपकुलपति डॉ० ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्तीकी कोठी थी—दानवीर बाबू शिवप्रसाद गुप्तके 'सेवा-उपवन' के ठीक सामने । 'राधा-निवास' गङ्गातटपर है और सावन-भादोंमें तो 'गङ्गायां घोषः' ही हो जाता है । प्रोफेसर निक्सन दोनों शाम गङ्गास्नानके लिये धोती-गंजी पहने नंगेपाँव आते थे और उनका स्नान काफी देरतक चलता था; क्योंकि वे तैरनेके खूब शौकीन थे । तैरना ही एक प्रकार उनके लिये नशा था । मैं भी तैरनेका बेहद शौकीन । फिर 'दोस्ती' होनेमें क्या देर लगती ? हाँ—'दोस्ती' शब्दका साभिप्राय प्रयोग मैं कर रहा हूँ; क्योंकि आरम्भसे ही वे एक सच्चे दोस्तकी तरह पेश आये । वैशाख-जेठमें हम दोनों प्रायः तैरते हुए उस पार रामनगर घाट पहुँच जाते और फिर तैरते हुए ही लौटते । सबेरे तो कुछ कम; परंतु शामको दो-तीन घंटेका तैरना स्वाभाविक

हो गया था । रेशमी कुरता, धोती, चप्पलमें वे बड़े सुहावने लगते; क्योंकि उनकी सिंदूरी गोराई खूब देखनेको मिलती । तैरनेका उन दिनों नशा-सा था और गङ्गा पार कर जाना जैसे एक खिलवाड़ था । एक दिन भूलसे खादीकी भारी भरकम धोती पहने मैं तैरने लगा, तीन चौथाई पार कर गया कि लगा डूबने । इतनेमें ही हमारे परम शुभचिन्तक प्रो० निक्सनने अपने कंधेका सहारा देकर पार लगाया, नहीं तो, उस दिन जै सीताराम हो गया होता और 'गङ्गालाम' में क्या देर थी ।

प्रो० निक्सन डॉ० चक्रवर्तीके परिवारमें एक सदस्य-की तरह रहने लगे थे । इसे लेकर तरह-तरहकी अफवाहें फैलने लगी थीं । लोगोंको झूठी-झूठी अफवाहें फैलानेमें एक मजा आता है । एक अफवाह यह थी कि डॉ० चक्रवर्तीकी कन्या मोतीरानीसे प्रोफेसर निक्सन शादी करना चाहते हैं इसीलिये अबतक अविवाहित हैं । और भी कुछ गंदी बातें यारोंने फैलायीं; परंतु वहाँ तो एक नये जीवनका निर्माण हो रहा था जो सर्वथा दिव्य और अलौकिक था । जिसकी जैसी दृष्टि उसके लिये वैसी सृष्टि । राग-द्वेष-मोहसे पीड़ित मानव इनसे परेका दृश्य कैसे देख पाये ? कभी-कभी शामको गङ्गा-तटपर डॉ० चक्रवर्तीका पूरा परिवार, जिसमें उनकी धर्मपत्नी मोनिका चक्रवर्ती और कन्या मोतीरानी होती, हरिनाम-संकीर्तनके लिये आ जाता और प्रो० निक्सन भी उसमें होते । हारमोनियम-झाँझ-खोल-मृदंगपर—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

—का तुमुल उद्घोष गङ्गाकी लहरोंसे मिलकर एक परम पावन अमृत-वर्षामें हम सभीको नहला देता । प्रायः प्रत्येक एकादशी तथा अमावस्या और पूर्णमासीको यह संकीर्तन हम छात्रोंके लिये विचित्र आकर्षण और उत्कट प्रतीक्षाका विषय होता । यह संकीर्तन श्री-हरिहरबाबाकी नावसे सटे गङ्गा-तटपर हुआ करता था ।

इसमें कभी-कभी डेढ़-दो सौ व्यक्ति उपस्थित होते । विशेषतः पूर्णिमाकी चाँदनीमें तो ऐसी अमृतवर्षा होती कि शब्दोंमें उसका वर्णन करनेकी शक्ति नहीं । अभी प्रो० निक्सन प्रोफेसर ही थे ।

परंतु जादू वह जो सिरपर चढ़कर बोले । हरिनामके दिव्य रसमें वे पग चुके थे । प्रभु जिसे वरण करता है उसके रास्तेके सारे विघ्नों—बाधाओंको खंय हटा देता है । यही उसका बाना है, यही उसकी रीति है । प्रो० निक्सन एक बार वृन्दावन गये और श्रीराधारमणके श्रीविग्रहकी जो झाँकी मिली उसने उन्हें सर्वथा आत्मसात् कर लिया । उन्होंने मोनिका चक्रवर्तीसे, जो अब 'यशोदामाई' थी, विधिवत् गौडीय वैष्णवी दीक्षा ली—गलेमें तुलसीकी दोहरी माला, मस्तकपर ऊर्ध्वपुण्ड्र गौडीय गोपीचन्दन, हाथमें जपमालिका, काषाय-वस्त्र, लम्बी कमरतक लटकती जटा, पैरोंमें काठकी चड़ी । लगा जैसे 'भीराँ' आ गयी । उन्होंने पूज्य मालवीयजीको लिख भेजा कि 'अब मुझसे अध्यापकी नहीं हो सकेगी, क्षमा करते हुए मुझे विश्वविद्यालयकी सेवासे मुक्त कर दें।' परंतु महामना मालवीयजी उन्हें फिर भी अध्यापक-रूपमें काम करते रहनेके लिये आप्रहशील ही रहे । इस नये वेशमें प्रथम-प्रथम जब प्रो० निक्सन, अब श्रीकृष्णप्रेम, काशी पधारे तो विश्वविद्यालयके प्राच्य-विद्याविभागके हालमें छात्रों-अध्यापकोंकी एक विराट् सभामें उन्होंने अपने 'चाण्डाल शरीर'की चर्चा करते हुए—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

—की व्याख्या प्रस्तुत की थी और अन्तमें श्री-कृष्णके विरहमें धाड़ मारकर फफक-फफककर रोने लगे तो जैसे आँसुओंकी यमुना बहने लगी । उनका समस्त उत्तरीय आँसुओंसे भीग गया था । यह है 'जह्ने लगन लगी घनस्याम की' का ज्वलन्त उदाहरण, आजके युगमें और एक सर्वथा विदेशीके जीवनमें । परंतु श्री-

कृष्णके लिये स्वदेश-विदेश क्या ? उनकी प्रीतिके तीर कब किसे लग जायँ कौन कह सकता है ?

अब श्रीकृष्ण-प्रेमके लिये जनसंसद् अथवा लोकालय-में रहना कठिन हो गया । जब कभी श्रीकृष्णका नामो-ल्लेख होता प्रेमाश्रुओंका प्रवाह उमड़ आता । खामखा लोग उन्हें छेड़ते । अतएव अलमोड़ेसे कुछ दूर मितौल पुनानौलामें एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर बना, भगवान् श्रीकृष्णकी एक परम मनोज्ञ मूर्तिकी स्थापना हुई—सर्वथा शान्त एकान्त वन्य प्रदेशमें और स्वयं श्रीकृष्ण-प्रेमने अष्टयाम सेवाका मधुर कार्य अपने लिये माँगा । माँ साथ थी । मन्दिरमें झाड़ू-बुहारसे लेकर भगवान्का शृङ्गार, रागभोग, मङ्गला आरतीसे लेकर शयनकी आरतीतक स्वयं श्रीकृष्णप्रेम सारी सेवामें एक दिव्य आनन्दका अनुभव करते । एक संस्कृत पाठशाला खुली जिसमें छात्रोंको पढ़ानेसे लेकर उनके लिये भोजन बनानेका काम स्वयं श्रीकृष्ण-प्रेम करते । गंगोत्रीके जो यात्री अथवा उस वन्यप्रदेशके जो व्यक्ति अस्वस्थ हो जाते उनकी सेवा-शुश्रूषाके लिये एक औषधालय भी चलता । साथ ही अपने साधक जीवन-के अनुभवप्रकाशमें श्रीकृष्णप्रेमने दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे—‘दि योग ऑव दि कठोपनिषद्’ और ‘दि योग ऑव दि भगवद्गीता ।’ ये दोनों ग्रन्थ साधनाकी दृष्टिसे अनुपम हैं और एक सच्चे साधकको साधनपथमें आनेवाले कष्टों, कठिनाइयों, विघ्न-बाधाओंको पारकर भगवद्वाज्यमें प्रवेश करानेमें परम सहायक हैं; क्योंकि उनमें पाण्डित्यका प्रदर्शन नहीं; अनुभवकी सुषमा और ज्योतिर्मयी ऊष्मा है । काश, इन दोनों ग्रन्थोंका हिंदी-अनुवाद हो जाता । अंग्रेजीके आध्यात्मिक साहित्यमें श्रीकृष्णप्रेमके इन दोनों ग्रन्थोंकी बड़ी महिमा है और देश-विदेशके उच्चकोटिके साधक इन्हें बड़ी श्रद्धा और प्रीतिके साथ अपने स्वाध्याय और नित्य पाठमें रखते हैं । मैंने डा० भगवानदासको इन

ग्रन्थोंमें निमग्न होते देखा है और स्वनामधन्य महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज प्रायः इनकी चर्चा करते हैं ।

एक बार श्रीकृष्णतत्त्वपर मेरी जिज्ञासाका उत्तर देते हुए श्रीकृष्णप्रेमने जॉन कीट्सकी निम्नलिखित पंक्तियोंमें किंचित् सुधार संशोधनकर थोड़ेमें बतलाया था । कीट्सकी पंक्तियाँ हैं—

Beauty is Truth, Truth Beauty. That is all ye know and all ye need to know.

श्रीकृष्णप्रेमने इन पंक्तियोंको यों बदल दिया—

Krishna is God, God Krishna. That is all ye know and all ye need to know.

‘एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।’ में उनकी अटूट आस्था थी और इसी निष्ठाके साथ आठ पहर चौंसठ घड़ी आनन्दकी परमावस्थामें वे निमग्न रहते । इस स्थितिसे बाहर आनेकी प्रवृत्ति सदाके लिये समाप्त हो गयी थी, इसलिये प्रवचन आदिमें वे कभी भी प्रवृत्त नहीं हुए; यों हरिनामकीर्तनमें आरम्भमें कभी-कभी कहीं-कहीं जाया करते, फिर वह भी बंद हो गया । वे अपने अंदर ही श्रीकृष्णप्रेमके आनन्दमें डूबते गये और डूबते ही गये, एकदम डूब गये । कितना विलक्षण और सर्वप्राप्ति था श्रीकृष्णके प्रति प्रेम श्रीकृष्णप्रेमका ।

एक बार गुरुतत्त्वपर मेरी जिज्ञासाका उत्तर देते हुए ‘श्रीचैतन्यचरितामृत’की दो पंक्तियाँ उद्धृत की थीं—

किंवा न्यासी, किंवा विप्र, शूद्र किंवा हय ।

श्रीकृष्णतत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय ॥

भगवान् श्रीकृष्णकी पूर्ण कृपा, पूर्ण प्रीति उन्हें प्राप्त थी—यह उनके जीवनकी एक-एक साँससे प्रकट था । वे सचमुच श्रीकृष्णके सिवा न कुछ जानते थे, न सुनते थे, न देखते थे—‘कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने’ उनका सारा जीवन मधुसूदन स्वामीकी इस एक पंक्तिकी जीवन्त व्याख्या था ।

जो व्यक्ति कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयकी उच्च-तम शिक्षा प्राप्तकर द्वितीय महायुद्धमें अपनी सेवाएँ अर्पितकर हवाई जहाजसे विप्ले बम गिराया करता था वही भगवान् बुद्धकी 'करुणा'से प्रेरित होकर सिलोन आया, फिर भारतवर्षमें उसी सत्यकी शोधमें आया, लखनऊ विश्वविद्यालयमें अंगरेजीका प्रोफेसर हो गया;

परन्तु अंदरकी बेचैनी उसे काशी-गङ्गास्नान और हरिनामके लिये खींच लायी और फिर वृन्दावनकी दिव्य लीलापर जिसने अपनेको निछावर कर दिया, जिसका जीवन सेवाकुञ्ज बन गया—वही विश्वको प्रेमका पाठ पढ़ाकर अपने प्रेमाराध्यमें एक हो गया, एकाकार हो गया। श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णप्रेम दो हैं ही कहाँ ?

तुलसीके शब्द

(लेखक—डाक्टर श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू एम्० ए०, डी० लिट०)

पिछले दो लेखोंमें यह दिखाया गया है कि आने-जाने-चलनेकी गतियोंका बोध कविवर तुलसीदासजी एक संकेत-द्वारा करते हैं। जहाँ गतिकी क्रिया पहले आती है और गमन-स्थान पीछे वहाँ सामान्यसे शीघ्रतर गतिका बोध होता है। जैसे—

आवहु बेगि चलहु बन भाई ।

इसका अर्थ है कि जल्दी आओ और भाई ! वनको जल्दी चलो। वनको चलनेकी शीघ्रता 'चलहु बन' से कविवरने स्पष्ट की है। यहाँ 'चलहु' क्रिया पहले है और जहाँ जाना है उस स्थानको, 'बन' को क्रियाके बाद लिखा है। क्रिया और गमन-स्थानका यह क्रम शीघ्रतासूचक है। मिथिलासे जो दूत अवध गये थे उनकी गतिमें भी इसी प्रकार शीघ्रताका संकेत है।

पहुँचे दूत रामपुर पावन ।

यहाँ क्रिया 'पहुँचे' पहले है और पहुँचनेका स्थान 'रामपुर' बादमें। शंकर भगवान्ने जब यह संकल्प कर लिया कि—

एहि तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं ।

तब इस संकल्पको शीघ्रतिशीघ्र कार्यान्वित करनेकी इच्छा उनके जाने—

चले भवन सुमिरत रघुबीरा ।

और उनके कैलास पहुँचने—

विश्वनाथ पहुँचे कैलास ।

और उनके वटवृक्षके नीचे बैठने—

बैठे वटतर करि कमलासन ।

—इन तीनों बातोंसे स्पष्ट है, जहाँ तीनों क्रियाएँ 'चले' और 'पहुँचे' और 'बैठे' पहले लिखी गयी हैं और

तीनों स्थान अर्थात् 'भवन' और 'कैलास' और 'वटतर' क्रियाओंके बादमें प्रयोग हुए हैं।

यह क्रम-संकेत अन्य प्रकारकी क्रियाओंके सम्बन्धमें भी पाया जाता है। उदाहरणार्थ—

अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा ।

यहाँ उठाना पहले कहा और धनुष बादमें, जिसका अर्थ यह है कि शीघ्रतासे धनुष उठाया।

एहि विधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर ।

यहाँ 'उतरे' पहले और 'सागर तीर' बादमें, कहकर सागरके किनारे उतरनेमें शीघ्रताका बोध कविवरने हमें कराया। इसी प्रकार भानुप्रतापके प्रसंगमें तापसने—
भानुप्रतापहि बाजि समेता । पहुँचाएसि छन माझ निकेता ॥

और इसके बाद—

राजा के उपरोहितहि हरि लै गयउ बहोरि ।

लै राखेसि गिरि खोह महुँ मायाँ करि मति मोरि ॥

आपु विरचि उपरोहित रूपा । परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा ॥

इस प्रसंगमें 'पहुँचाएसि', 'राखेसि' और 'परेउ'—ये तीनों क्रियाएँ पहले प्रयोग की गयी हैं और स्थानके नाम अर्थात् 'निकेता', 'गिरिखोह' और 'सेज'का बादमें उल्लेख है। इस क्रमके कारण इन तीनों कार्योंमें शीघ्रगति स्पष्ट होती है।

श्रीरामचरितमानसमें क्रियाका एक और प्रयोग विचारणीय है। जहाँ कविवर तुलसीदासजी सकर्मक क्रियाके प्रयोगमें कर्म पहले रखते हैं और क्रिया बादमें, वहाँ स्थिति या वातावरण या वक्ताकी चित्तवृत्ति साधारण होती है और

अगर कोई काम करनेकी आज्ञा दी गयी है या कोई प्रार्थना दी गयी है तो उस कामके करनेमें किसी प्रकारकी शीघ्रताकी ध्वनि नहीं निकलती । परंतु यदि सकर्मक क्रियाके प्रयोगमें पहले क्रियाका प्रयोग हुआ है और उसके बाद कर्मका तो इसका अर्थ यह होता है कि आदेश या उपदेश या प्रार्थनामें शीघ्रताका बोध है या स्थिति या वातावरणमें भावका उद्वेग है, भाव-विह्वलता है । उदाहरणार्थ भरत-भरद्वाज-मिलन-प्रसंगमें मुनिवरने भरतजीकी पहुनाईके निमित्त 'सुचि सेवक सिध' अपने पास बुलाये और उनसे कहा—

कंद मूल फल आनहु जाई ।

इस आज्ञामें कोई विशेषता नहीं है; कोई अत्यावश्यकता या शीघ्रताकी ध्वनि नहीं है । यह सामान्य आतिथ्य-धर्म-निर्वाहकी बात है । जो विशेष आतिथ्य मुनिवरको करना है वह ऋद्धि, सिद्धि, अणिमादिकद्वारा करेंगे । यह कन्द-मूल-फल लानेकी मुनिवरकी आज्ञा एक सामान्य आज्ञा है । यहाँ कर्म पहले लिखा है और क्रिया उसके बाद । इसके विपरीत ज्यमृग-प्रसंगमें जब सीताजीने मनिरचित कनक देहवाले चमकते-झिलमिलते अति विचित्र मृगको देखा, जिसका एक-एक अङ्ग सुमनोहर था, तो वे उसकी परम रुचिर मृगछालके पानेको विह्वल हो उठीं । कविवर कहते हैं—

आनहु चर्म कहति वैदेही ।

वैदेही इसकी मृगछाला पानेके लिये इतनी उत्सुक थीं कि कृष्णानिधान उनकी बात न टाल दें या मृगछाला लानेमें देर न करें इसलिये आर्त होकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी-को पाँच प्रकारसे सम्बोधन किया, उन्होंने उनको 'देव', 'पृथ्वी', 'कृपाला', 'सत्यसंध' और 'प्रभु'—कहकर प्रार्थना की । सीताजीकी विह्वलता, उनकी मृगछाला पानेकी उत्सुकता, उनकी इच्छापूर्तिकी शीघ्रता—ये सब कविवरने पहले क्रिया 'आनहु' और इसके बाद कर्म 'चर्म' रखकर हमें समझायी है ।

हनुमान्जी अशोक-वाटिकामें पहुँच चुके हैं । माता जानकीजीको प्रभुका संदेश और मुद्रिका दे चुके हैं । जगजननीका शुभाशीर्वाद पवनकुमारको मिल चुका है । प्रसन्नचित्त होकर माता जानकीजी हनुमान्जीसे कहती हैं—

रघुपति चरण हृदयें धरि तात मधुर फल खाहु ।

हनुमान्जी माता जानकीजीकी फल खानेकी आज्ञा पाकर संतुष्ट हैं । वातावरणमें किसी प्रकारकी विह्वलता नहीं है । इस

साधारण स्थितिकी सूचना कविवरने हमको इस पंक्तिमें पहले कर्म अर्थात् 'फल' और तत्पश्चात् क्रिया 'खाहु' प्रयोग करके दी है । इसके विपरीत अंगद-रावण-मिलन-प्रसंगमें जब पृथ्वी-पर गिरे हुए रावणके कुछ सुकुट अंगदने श्रीरामचन्द्रजीके पास भेज दिये तब राक्षसपति बड़ा क्रुद्ध हुआ । कविवर कहते हैं कि—

'सकोपि दसानन सब सन कहा प्रसाइ ।'

कि बंदरोंको पकड़ लो और पकड़-पकड़ मार डालो और—

खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु ।

यहाँ वातावरण क्रोध भरा है, घृणा भरा है, प्रति-शोधकी कटु भावनासे पूर्ण है । रावणकी आज्ञामें उसके पालनकी शीघ्रताका भाव है । यह बात कविवरने पहले क्रिया 'खाहु' और उसके बाद कर्म 'भालु कपि' का प्रयोग करके हमको सूचित की है ।

यह आवश्यक नहीं है कि जब भी आज्ञा दी जाय वह शीघ्रतासूचक हो । उदाहरणार्थ सुग्रीवने कृष्णानिधान प्रभुसे कहा कि—'दशाननका भाई आपसे मिलने आया है । वह निशाचर कपटी है । इसका कुछ भरोसा नहीं ।' इसपर प्रभुने कपिराजको समझाया-बुझाया और आज्ञा दी—

उभय भोंति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत ।

इस आज्ञामें कोई शीघ्रतासूचक बात नहीं है । यह एक सामान्य आज्ञा है । इसलिये कविवरने पहले कर्म और उसके बाद क्रियाका प्रयोग किया है । इसी प्रकार रावणवधोपरान्त जब माता जानकीजी सुन्दर पालकीमें प्रभुके पास लायी जा रही थीं तब माताके दर्शनकी लालसा असंख्य वानर-भालुओंको हुई । अन्तर्धामी कृपालु प्रभु सबके मनका भाव समझ गये । उन्होंने आज्ञा दी—

सीतहि सखा पयादे आनहु ।

यह आज्ञा सबके लिये आनन्ददायिनी हुई; परंतु इस आज्ञामें शीघ्रताका बोध नहीं है । इस कारण कविवरने पहले कर्मका प्रयोग किया है और उसके बाद क्रियाका जो सामान्य स्थितिका सूचक है । उदाहरणार्थ नीचे कुछ चौपाइयाँ उद्धृत की जाती हैं जिनमें आदेश दिया गया है और जो शीघ्रतासूचक है । इनमें पहले क्रियाका प्रयोग किया गया है और उसके बाद कर्मका । जिस क्रमसे कविवर तुलसीदासजी शीघ्रताका अर्थ प्रकट करते हैं ।

आनहु सकल सुतीरथ पानी ।

करहु कतहुँ अब ठाहर टाटू ।

तजहु सोच मन आनहु धीरा ।

पठवहु जहँ तहँ वानर जूथा ।

आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा ।

यही नियम, उपदेश और प्रार्थनामें भी लागू है । जिस उपदेश या प्रार्थनामें शीघ्रता है जैसे—

करहु राज परिहरउ गलानी ।

अस बिचारि उर छाड़हु छोहू ।

कृपासिंधु प्रिय वंधु सन कहहु हृदय कै वात ।

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी ॥

करहु सो बेगि दास मैं तोरा ।

करहु चाप गुस्ता अति थोरी ॥

नाथ करहु बालक पर छोहू ।

कीजिअ गुरु आशु अवसि ।

नाथ राम सन तजहु विरोधा ।

पावक प्रगट करहु तुम बेगी ॥

यहाँ पहले क्रियाका प्रयोग हुआ है और बादमें कर्मका । परंतु कभी-कभी उपदेश या प्रार्थनामें शीघ्रताका बोध नहीं होता । जैसे—

जौं विप्रन्ह बस करहु नरेसा ।

अब सोइ जतन करहु मन लाई ॥

यहाँ पहले कर्म प्रयोग हुआ है और उसके बाद क्रियाका जो साधारण या सामान्य स्थितिका सूचक है । ऐसे सामान्य स्थितिके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

संत असंत मरम तुम्ह जानहु ।

पाय पुनीत पखारन लागे ॥

सिय महिमा रघुनायक जानी ।

मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा ॥

व्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा ।

सो उर धरहु जो कहत विभीषन ॥

विप्र रूप धरि बचन सुनाए ।

ऐसी साधारण वातावरणकी स्थिति वक्ताकी शान्तिपर भी निर्धार करती है । जैसे—

धीरज धरहु मातु बलि जाई ।

सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ ॥

कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव ।

अथवा उसके संकोचपर । जैसे—

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी ॥

मोर मनोरथ जानहु नीके ।

एक और प्रयोग है जहाँ यह साधारण स्थितिका संकेत पाया जाता । वह है किसी मान्य सत्यके उल्लेखमें जहाँ कर्म पहले आता है और क्रिया बादमें । जैसे—

अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्वदा संकर प्रिया ।

कोइ नहि सिव समान प्रिय मोरें । अस परतीति तजहु जनि मोरें ॥

पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु ।

हरि इच्छा भावी बलवाना । हृदयँ विचारत संभु सुजाना ॥

परंतु जहाँ अत्यन्त शीघ्रताकी ध्वनि है अथवा जहाँ भाव-तीव्रता है वहाँ यह क्रम उलट जाता है अर्थात् पहले क्रियाका प्रयोग होता है और बादमें कर्मका । जैसे—

मोर कहा सुनि करहु उपाई ।

करहु कृपा हरिजस कहउँ ।

करहु सेतु उतरै कटकु ।

करहु सफल आपनि सेवकाई ।

हँथवासहु बोरहु तरनि ।

भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई ।

उदय करहु जनि रवि रघुकुल गुर ।

पहि ते जानहु मोर हित ।

छाँड़हु बचन कि धीरज धरहु ।

जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ ।

तजहु तात यह रूपा ।

तजहु आस निज निज गृह जाहू ।

मोहि दीन्ह सुख सुजसु सुराजू ।

मंजहु भव चापा ।

उपर्युक्त उदाहरण भाव-उद्वेगके हैं जिसकी ओर कवि-वरने पहले क्रिया और बादमें कर्म लिखकर संकेत किया है । भाव-तीव्रताका एक और भेद है—विस्मय या आश्चर्य । जैसे—

देखहु मुनि अबिबेकु हमारा ।

देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ ।

देखहु काम प्रताप बड़ाई ।

देखहु बनरन्ह केर छिठाई ।

देखहु भजन प्रताप ।

आश्चर्यान्वित घटनासे भाव-उद्वेग उत्पन्न होता है । इस-

संख्या ८]

लिये ऐसे स्थलपर भी कविवरने पहले क्रिया और बादमें कर्म का प्रयोग किया है।

संक्षेपमें श्रीरामचरितमानसमें जहाँ सकर्मक क्रियाके प्रयोगमें कविवर तुलसीदासजीने पहले कर्मका उल्लेख किया है और उसके बाद क्रियाका। इसका अर्थ यह है कि वातावरण शान्त है या वात साधारण है या सर्वमान्य है या उस वातपर कोई बल नहीं दिया जा रहा है, न उसमें किसी प्रकारकी शीघ्रता है। इसके विपरीत जहाँ कविवर पहले क्रिया लिखते हैं और तत्पश्चात् कर्म वहाँ वे यह कहना चाहते हैं कि वात असाधारण है या वातावरण उद्विग्न है या भावमें तीव्रता है या वातपर विशेष बल दिया जा रहा है या कार्यमें शीघ्रता वाञ्छनीय है।

इस अन्तरके दर्शनार्थ एक छोटा-सा उदाहरण दिया जाता है। राजा भानुप्रतापकी कपटी मुनिसे घोर वनमें भेंट हुई है। मुनिने राजाको आश्रय दिया, राजासे मीठी-मीठी बातें कीं, जिससे मुनिपर राजाकी श्रद्धा हो गयी। तब राजाने पूछा—

नाथ नाम निज कहहु बखानी।

यह एक साधारण प्रश्न है। आप कौन हैं, यह एक मामूली सवाल है। आजकलकी भाषामें इसे 'कटीन क्वेश्चन' नियक्रमका प्रश्न कहेंगे। कविवरकी दृष्टिमें जो इस प्रश्नका साधारण मूल्य है वह उन्होंने पहले कर्म अर्थात् 'नाम' और उसके बाद क्रिया अर्थात् 'बखानहु' लिखकर स्पष्ट कर दी। थोड़ी देर बाद कपटी मुनिने बड़े होंगकी बातें कीं जिसके कारण राजा भानुप्रतापका विश्वास कपटी मुनिपर बढ़ता गया। अन्तमें 'तापस बंगध्यानी' बोला कि उसका नाम एकतनु था। जो भूमिका मुनिने बाँधी थी उसकी पृष्ठभूमिमें 'एकतनु' नाम सुनकर राजा आश्चर्यचकित हो गया। भाव-वेगसे उत्तेजित होकर उसने पूछा कि—

कहहु नाम कर अरथ बखानी।

पहला प्रश्न साधारण था; परंतु यह दूसरा प्रश्न उद्विग्न चित्तसे किया गया है। इसमें आश्चर्य है, जिज्ञासाकी तीव्रता है, उत्तर पानेकी शीघ्रता है, उत्तेजना है जो पहले प्रश्नमें नहीं थी। इस भाव-वेगका संकेत कविवरने पहले क्रिया 'कहहु' और बादमें कर्म 'नाम कर अरथ' लिखकर किया है। प्रश्न दोनों नाम-सम्बन्धी हैं; परंतु एक साधारण प्रश्न है,

दूसरा भावपूर्ण और यह भेद कविवरने क्रिया-कर्मके क्रममें भेद करके स्पष्ट कर दिया है।

एक और उदाहरण देखिये— दो रानियाँ अपने पतियोंसे बातें कर रही हैं। दोनों अनुपम सुन्दरी हैं, दोनों बड़ी पति-प्रिया हैं। कैकेयी राजा दशरथसे कहती हैं—

सत्य सगहि कहहु वर देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना ॥

रानी रोषपूर्ण हैं। उनकी बातमें कटु व्यंग भरा है। यह 'भाव-विह्वलता' 'कहहु वर देना' में पहले क्रिया और बादमें कर्म लिखकर स्पष्ट कर दी। मंदोदरी रावणको समझा रही है। शान्तिपूर्ण समझा रही है। मीठी बोलीसे, मधुरतासे समझानेका प्रयास है।

कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ विमल जस लेहु।

यह शान्ति, यह भाव-प्राबल्यका अभाव कविवरने 'जस लेहु' कहकर स्पष्ट किया है जहाँ कर्म पहले और क्रिया बादमें है।

परंतु कभी-कभी इस प्रकारकी चौपाई भी मिल जाती है। जैसे—

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखौ नयन स्वाम मृदु गाता ॥

रावण-वध हो चुका है। प्रभु खरारि अनुजसमेत सकुशल हैं। यह संवाद महारानी श्रीसीताजीने सुना है। इसे सुनते ही वे विह्वल हो गयीं। वे—

अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल।

—हो रही हैं। अब उनका बन्दी जीवन, विषम-वियोग-दग्ध-जीवन अन्त होनेवाला है। वे उत्तेजित हैं। सुख-सौन्दर्य-निधान प्रभुके दर्शनके लिये ललपित हैं। इससे अधिक शीघ्रतासूचक भावपूर्ण परिस्थिति क्या हो सकती है? परंतु कविवर कहते हैं—

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता।

यहाँ कविवर 'जतन' जो कर्म है उसका पहले उल्लेख करते हैं और क्रिया 'करहु' का इसके बाद। यह कर्म-क्रिया क्रमका वहाँ प्रयोग होता है जहाँ वातावरण साधारण हो। परंतु यहाँ तो वातावरण अत्यन्त भावपूर्ण है। कविवर चाहते तो इसको यों भी लिख सकते थे—

करहु जतन अब सोइ तुम्ह ताता।

—जिसमें पहले किया और बादमें कर्मके क्रमसे शीघ्रताका बोध हो जाता। परंतु कविवरने ऐसा नहीं किया; क्योंकि तुलसीदासजी कवि ही नहीं थे वे कलाकार भी थे। इस रहस्यको समझनेके लिये एक छोटी-सी जीवन-शौकीका वर्णन यहाँ आवश्यक है। एक बार एक माता अपने तीन बच्चोंके साथ चाय पी रही थीं। दो पुत्र थे—एक १४ वर्षका दूसरा ११ वर्षका और एक नववर्षीय पुत्री थी। माता जलेबी खा रही थीं। अकस्मात् जलेबीका एक छोटा टुकड़ा उनके तालूके पास पीछे जा चिपका, जिससे उनको साँस लेनेमें एकदम रुकावट आ गयी। उनके मुँहसे एक शब्द 'पानी' ही निकल पाया। उसे सुनते ही तीनों बच्चे पानीके लिये दौड़ पड़े। यह सच्ची घटना इस बातका दृष्टान्त है कि जिसको सत्य प्रेम होता है उसको आवश्यक बातके लिये बल देकर आदेश देना निरर्थक है। प्रेम यह सिखला देता है कि किस वस्तुकी कितनी आवश्यकता प्रेमपात्रको है। पवनकुमार बल-बुद्धि-निधान हैं। करुणा-निधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी और महारानी श्रीसीताजीके प्रिय सुत हैं। इनको सबल शब्दोंमें आदेश देना इनकी भक्तिका निरादर करना होता। माता श्रीजानकीजी क्या चाहती हैं, उसे वे कितनी तीव्रतासे चाहती हैं—ये बातें

हनुमान्जीको बतलानेकी आवश्यकता नहीं। अपनी अगाध भक्तिके कारण वे स्वयं ही माताकी इच्छा शीघ्रतिशीघ्र पूर्ण करनेकी चिन्तामें रहते हैं। यदि पवनकुमारसे माता श्रीजानकीजी यह कहतीं कि तुम प्रभुके दर्शन मुझे शीघ्र करा दो तो इसका अर्थ यह होता कि या तो हनुमान्जीमें इतनी बुद्धि नहीं है कि वे माता श्रीजानकीजीकी प्रभु-मिलन-लालसाके वेगको समझ सकें, या उनमें यथेष्ट भक्तिभाव नहीं है जिससे पवनकुमार महारानी श्री-जानकीजीकी बलवती इच्छा-पूर्ति अविलम्ब करनेमें सफल हों। हनुमान्जीकी भक्ति और उनकी बुद्धिका निरादर न हो, इसलिये कविवरने महारानी श्रीजानकीजीके इस आदेशमें—
अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्पाम मृदु गाता ॥

—विशेष बल नहीं प्रदर्शित किया और इसे सामान्य आदेशके रूपमें ही रहने दिया। यह कविवरकी मनो-वैज्ञानिक सूझ और उनके शब्द-चमत्कारका उदाहरण है। श्रीरामचरितमानसको बहुत सजग रहकर अध्ययन करना आवश्यक है; क्योंकि जैसा ऊपर कहा गया है, गोस्वामी तुलसीदासजी कविवर ही नहीं हैं, अनुपम कलाकार भी हैं।

(क्रमशः)

दोनों हाथ समेटी तेरी देन

दोनों हाथ समेटी तेरी देन ।

दोनों हाथ समेटी तेरी देन ॥

सुखकी, दुखकी,

अंधियारीकी, उजियारीकी,

दोनों हाथ समेटी तेरी देन ।

दोनों हाथ समेटी तेरी देन ॥

अंधियारीसे नींव पटवाई ।

तब सुखकी मंजिल बन पाई ॥

दुखके द्वार-झरोखे रखकर ।

उजियारी उनपर चमकाई ॥

दोनों हाथ समेटी तेरी देन ।

दोनों हाथ समेटी तेरी देन ॥

—बालकृष्ण बलदुवा—

पुरुषोत्तम मास

(लेखक—श्रीपरमहंसजी महाराज, श्रीरामकुटिया)

परम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।

स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १५ । १९)

हे भारत ! जो तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुष मुझको पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वविद् सब प्रकारसे निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको ही भजता है । इस श्रावणकी अमावास्या १८ । ७ । ६६ के बाद 'अधिक मास' श्रावण प्रारम्भ हो गया । अधिक मासको 'मलमास' और 'पुरुषोत्तम मास' भी कहते हैं । मलमासकी दृष्टिसे शुभ कर्म वर्जित होनेसे यह मास निन्दित है । परंतु—

पुरुषोत्तमेति मासस्य नामाप्यस्ति सहेतुकम् ।

तस्य स्वामी कृपासिन्धुः पुरुषोत्तम उच्यते ॥

भगवान् पुरुषोत्तम इसको अपना नाम देकर इसके स्वामी बन गये हैं । अतः इसकी महिमा बहुत बढ़ गयी है । इस पुरुषोत्तम मासमें साधन करनेसे मनुष्य पवित्र होकर भगवान्को प्राप्त हो सकता है । यह मास अन्य सब मासोंका अधिपति है । यह जगत्पूज्य और जगत्का वन्दनीय है और इसकी पूजा करनेपर यह सब लोगोंके दुःख, दारिद्र्य और पापका नाशक होता है ।

येनाहमर्चितो भक्त्या मासेऽस्मिन् पुरुषोत्तमे ।

धनपुत्रसुखं भक्त्या पश्चाद् गोलोकवासभाक् ॥

इस मासमें नियमपूर्वक रहकर पुरुषोत्तम भगवान्की विधिपूर्वक पूजा करनेसे भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और भक्तिपूर्वक इन भगवान्की पूजा करनेवाला यहाँ सर्व प्रकारके धन-पुत्रादिद्वारा सुख भोगकर मृत्युके बाद भगवान्के दिव्य गोलोकमें निवास करता है । अतः—

सभी घरोंमें, मन्दिरोंमें, तीर्थोंमें और पवित्र स्थलोंमें इस मासमें भगवान्की विशेषरूपसे महापूजा होनी चाहिये । इससे गौ, ब्राह्मण, साधु-संत, धर्म, देश और विश्वका मङ्गल होगा । साथ ही धर्मकी रक्षाके लिये व्रत-नियमोंका आचरण करते हुए दान, पुण्य, पूजन, कथा, कीर्तन और जागरण करना चाहिये ।

मङ्गलं मङ्गलार्चनं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ।

परमानन्दराज्यं च सत्यमक्षरमव्ययम् ॥

मङ्गलरूप, मङ्गल-पूजन-योग्य, मङ्गलोंके मङ्गल, परमानन्द-के राजा, सत्य, अक्षर और अव्यय पुरुषोत्तम भगवान्का ध्यान करना चाहिये ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

—इस द्वादशाक्षर मन्त्रका निरन्तर जप करना अत्यावश्यक है । घट-स्थापन और अखण्ड व्रीका दीपक भी रखना चाहिये । श्रीशालग्राम भगवान्की मूर्ति स्थापित करके उसका स्वयं या विद्वान् ब्राह्मणद्वारा विधिपूर्वक पूजन करना-कराना चाहिये । श्रीमद्भगवद्गीताके १५ वें (पुरुषोत्तमनामक) अध्यायका नित्य प्रेमपूर्वक अर्थसहित पाठ करना चाहिये । पुरुषोत्तम मासमें श्रीमद्भगवत्की कथाका पाठ करना-कराना महान् पुण्यदायक है । अधिक अवकाश प्राप्त हो तो सवा लाख तुलसीदलपर राम, ॐ वा कृष्ण—इनमेंसे किसी एक नामको लिखकर चन्दनसे, भगवान् शालग्राम या भगवद्विग्रह-मूर्तिपर चढ़ानेका अनन्त पुण्य-माहात्म्य है ।

पुरुषोत्तम-माहात्म्यकी कथा सुननी चाहिये और इस पुरुषोत्तम मासमें निम्नलिखित नियमोंका पालन अवश्य करना चाहिये ।

प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व उठकर शौच, दन्तधावन, स्नान, संध्या आदि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर—

गोवर्द्धनधरं वन्दे गोपालं गोपेरुषिणम् ।

गोकुलोत्सवमीशानं गोविन्दं गोपिकाप्रियम् ॥

—इस मन्त्रद्वारा विधिपूर्वक पौडशोपचारसे नित्य पुरुषोत्तम भगवान्की पूजा करनी चाहिये । पूजन करते समय और कथा-श्रावण-पठन करते समय—नव-नील-नीरद श्यामवन, द्विभुज मुरलीधर पीतवस्त्रधारी पुरुषोत्तम भगवान्का नील-वसना परम युतिमयी भगवती श्रीराधाजीके सहित ध्यान करते रहना चाहिये । पुरुषोत्तम-माहात्म्यमें श्रीकौण्डिन्य ऋषि कहते हैं—

ध्यायेन्नवघनश्यामं द्विभुजं मुरलीधरम् ।

लसत्पीतपटं रम्यं सराधं पुरुषोत्तमम् ॥

पुरुषोत्तमव्रतीको क्या भोजन करना और क्या न करना है; वर्ज्य-अवर्ज्य क्या है; इसके सम्बन्धमें श्रीवाल्मीकि ऋषि-ने कहा है—

इस पुरुषोत्तम मासमें एक समय हविष्यान्न भोजन करना चाहिये—जैसे गेहूँ, चावल, सफेद धान, जौ, मूँग, तिल, बथुआ, मटर, चौलाई, ककड़ी, केला, आँवला, दही, दूध, घी, आम, हरें, पीपल, जीरा, सोंठ, सेंधा नमक, इमली, पान-सुपारी, कटहल, शहतूत, सामक, मेथी इत्यादि-का सेवन करना चाहिये। केवल साँवा या केवल जौपर रहना अधिक हितकर है। माखन-मिश्री पथ्य है। गुड़ न लेकर ऊखका या ऊखके रसका सेवन करना चाहिये।

अपथ्य व्रताते हुए मांस, शहद, चावलका माँड़, उड़द, राई, मसूरदाल, बकरी-भैंस और भेड़का दूध त्याज्य कहा है। काशीफल (कोइड़ा), मूँगी, प्याज, लहसुन, गाजर, बैंगन, नालिकका सेवन वर्जित है। तिलका तेल, दूषित अन्न, बासी अन्न भी ग्रहण न करे। अभक्ष्य और नशेकी चीजोंका सेवन नहीं करना चाहिये। फलाहारपर रहे और शक्तिसम्पन्न हो तो कृच्छ्र चान्द्रायण-व्रत उपवास करना अति उत्तम है।

इस मासमें मनुष्य ब्रह्मचर्यको धारण करता हुआ पृथ्वीपर शयन करे। थालीमें भोजन न करके पत्तल (पलास) में भोजन करे। रजस्वला स्त्री और धर्मभ्रष्ट संस्काररहित लोगोंसे दूर रहे। परस्त्रीका भूलकर भी कभी स्पर्श नहीं करे। इस मासमें वैष्णवकी सेवा करनी चाहिये। वैष्णव-भोजन करानेका बहुत पुण्य वतलाया गया है।

पुरुषोत्तम मास-व्रतीको कभी भी शिव, देवता, देवी, ब्राह्मण, वेद, गुरु, गौ, साधु-संन्यासी, स्त्री, धर्म और प्राज्ञ-गणोंकी भूलकर भी न तो निन्दा करनी चाहिये और न उनकी निन्दा श्रवण ही करनी चाहिये।

ताँबेके पात्रमें दूध, चमड़ेमें पानी, केवल अपने लिये पकाया हुआ अन्न—ये दूषित माने गये हैं। अतएव इनका परित्याग करना चाहिये। दिनमें सोना नहीं चाहिये। व्रतीमें शक्ति हो तो मासके अन्तमें उद्यापनके लिये एक मण्डपकी व्यवस्था करके वैष्णव-गुरुद्वारा भगवान्की षोडशोपचार पूजा करके चार-पाँच वेदविद् ब्राह्मणोंद्वारा चतुर्व्यूहका जाप कराना चाहिये। फिर दशांश हवन कराके नारियलका होम करना चाहिये।

गौओंको घास-दाना दान करे। ब्राह्मण-भोजन करावे। वैष्णवको यथाशक्ति सोना, चाँदी, गाय, वसु, घी, अन्न, वस्त्र, पात्र, छाता, जूता, गीता-भागवत आदि पुस्तकोंका दान करना चाहिये। काँसीके वर्तनमें ३० पुआ धर सम्पुट करके ब्राह्मण-वैष्णवको दान करे तो अक्षय्य पुण्यका भागी होता है।

इस मासकी भक्तिसे ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट होते हैं, पितृगण मोक्षको प्राप्त होते हैं तथा दिन-प्रतिदिन अक्षय्य यज्ञका फल प्राप्त होता है। निष्काम-भावसे सद्भक्ति की जाय तो जीव मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं।

ततश्चाध्यात्मविद्यायाः कुर्वीत श्रवणं सुधीः।
सर्वथा वृत्तिहीनोऽपि सुहृत् स्वस्थमानसः॥

आजीविका न हो तो भी बुद्धिमान मनुष्यको दो घड़ी शान्त मनसे गुरुद्वारा आत्मविद्याका श्रवण करना और पुरुषोत्तम-तत्त्वको समझना चाहिये। गीताजीमें—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यन्यथ ईश्वरः॥

(१५।१७)

‘श्वर और अक्षर—उन दोनोंसे उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकोंमें प्रवेश करके सब अपरा-परा प्रकृति और पुरुष (जीव) सबका धारण-पोषण करता है वह अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा नामसे कहा गया है।’ वही—

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमन्ययम्॥

(गीता ९।१८)

वही पुरुषोत्तम सबकी एकमात्र गति—मुक्तिस्थान हैं, भरण-पोषण करनेवाले हैं, सबके प्रभु-स्वामी हैं। सबके साक्षी, आश्रय, शरण्य तथा सुहृद् हैं। वे सबकी उत्पत्ति, लय, आधार और निधान-स्वरूप भगवान् हैं। सब चराचरके बीज—कारण, अविनाशी, माता, धाता, पिता, पितामह हैं। वही पुरुषोत्तम नामसे कहे गये हैं।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥

(गीता १३।२२)

वास्तवमें वे ही पुरुषोत्तम देहमें स्थित हुए भी परे हैं। साक्षी, उपद्रष्टा, अनुमन्ता, भर्ता-भोक्ता हैं। ब्रह्मादिकोंके भी स्वामी महान् ईश्वर हैं; वे ही सत्-चित्-आनन्दधन, विशुद्ध परमात्मा, पुरुषोत्तम भगवान् कहे गये हैं।

भगवान् पुरुषोत्तम कहते हैं—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

(गीता १५।१८)

संख्या ८]

—क्योंकि मैं नाशवान् जडवर्ग क्षेत्र प्रकृतिसे तो सर्वथा अतीत हूँ और मायामें स्थित अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ, इसलिये लोकमें और वेदमें भी पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ ।

पुरुषोत्तम मासमें पुरुषोत्तमको जाननेकी श्रद्धा रखते हुए जो प्रयत्न-व्रत करना है, वास्तवमें वही सच्चा भजन, भाव, भक्ति और मुमुक्षुता है ।

जो इस पुरुषोत्तमके अति गोपनीय रहस्यको तत्त्वसे जान गया वही मनुष्य ज्ञानवान् और कृतार्थ हो गया है ।

प्रिय पाठकगण ! पुरुषोत्तमतत्त्व समझिये और समझकर

उसका भजन कीजिये । श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान्का नाम-जप, कीर्तन, सत्संग, यज्ञ, हवन, दान-पुण्य, दीन-सेवा, तीर्थयात्रा, आर्तसेवा, गो-रक्षा, कथा-श्रवण, पाठ-पूजा आदि नियमोंका आचरण-पालन करना भजन है ।

मनुष्य-जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है । दुर्भाग्यकी बात है आज मानव इस महान् उद्देश्यको भूलकर अर्थ, अधिकार और विलासके पीछे पिशाचकी भाँति दौड़ने लगा है और देवदुर्लभ पदार्थको नष्ट कर खो रहा है । पाठकोंसे निवेदन है कि ऐसा न करके यथासाध्य इस पुरुषोत्तम मासमें कुछ नियम-पालन करनेकी कोशिश अवश्य करें ।

बोलो पुरुषोत्तम भगवान्की जय ! जय !! जय !!!

शुभ्रोपासना

(लेखक—स्वामीजी श्रीशारदानन्दजी)

[ॐ तत् सत् ॐ ऐं शारदायै नमः]

जो इस विश्वमें ओतप्रोत भावसे रहती हैं, अहैतुक प्रेम ही जिनके विश्वका छन्द है, उन अनन्तनामा, आनन्दमयी और लीलाचतुरा जिन्हें हम, आप और वे—सदा अनुभव करते हैं; परंतु अपनी सीमित बुद्धिके कारण समझ नहीं पाते, वही चैतन्य शक्ति 'शुभ्रा' हैं ।

अनादि, असीम, नामातीत एवं निर्गुण ब्रह्म जब 'एकोऽहं बहु स्याम' इस संकल्पसे संक्षुब्ध हुए तब वे पुरुष और प्रकृति (या आद्याशक्ति) के रूपमें प्रतिभात हुए । ये पुरुष एवं प्रकृति अभिन्न एवं अङ्गाङ्गी न्यायसे सम्बन्धित हैं । जैसे सूर्य और उनका प्रकाश, आकाश एवं नीलापन एवं जल और उसकी तरंगता है, उसी तरह पुरुष एवं आद्याशक्ति हैं, पुरुष तटस्थ या साक्षी हैं, उनके इच्छानुसार प्रकृति भिन्न-भिन्न लीलाएँ कर रही हैं ।

पुरुष और प्रकृति त्रिगुणमें हमें इस तरह प्रतिफलित दृष्टिगोचर होते हैं—पुरुष सत्त्वगुणमें भगवान् विष्णु, रजस्में सृजनकर्ता ब्रह्मा एवं तमस्में कर्पूर गौर चन्द्रमौलीश्वर । इसी तरह आद्याशक्ति सत्त्वगुणमें शारदा, रजोगुणमें लक्ष्मीजी एवं तमोगुणमें कालीके रूपमें प्रतिफलित दिखायी देती हैं; किंतु वस्तुतः यह सारा दृश्य एवं अदृश्य जगत् बस एक सच्चिदानन्दधन परमानन्दमय ब्रह्मसे ही सब तरहसे परिपूर्ण है । वह

समस्त रूपोंमें व्याप्त एक अनामय सत्ता है, जिसे आप महादेव, वासुदेव, श्रीकृष्ण या राम आदि कहते हैं । उन मङ्गलमय परमात्माकी सत्त्वस्था अभिन्नाशक्ति ही 'शुभ्रा' हैं ।

शारदा या शुभ्रा ज्ञान, बुद्धि एवं प्रज्ञाकी परिचालिका मानी गयी हैं । उनमें प्रेम, भक्ति, ज्ञान एवं कर्म साकार हो उठे हैं । शारदाका जो मनोरम रूप लोगोंमें प्रचलित है, वह श्वेताम्बरा, चतुर्भुजा, सदा मधुर हास्यमयी दिव्य गौरवर्णा तापसी-का रूप है, जो अनायास इसीसे मिलते-जुलते दुग्धफेन-धवल परेशकी याद दिलाता है ।

दोनों भुजाओंसे वे वीणाका झङ्कार कर रही हैं, एकमें बड़ी व्यग्रतासे वीणा पुस्तक सँभाले हुए हैं और एक हृथमें स्फटिक-मालासे नाम-जप कर रही हैं । मानो हमें कह रही हैं कि कितना भी व्यस्त जीवन तुम्हारा रहे, प्रभुके मङ्गल-रसमय नामको एक क्षणभरके लिये न भूलना ।

ऐं इनका त्रीजमन्त्र है । पूरा मन्त्र है—'ॐ तत् सत् ॐ ऐं शारदायै नमः' आप इसको जा सकते हैं । शारदा-देवी (शिवकी तरह) बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाती हैं । नाराज होना तो जानती ही नहीं, सचमुच ही शारदा अपार क्षमाशीला एवं स्नेहमयी हैं । किसी कविने इनके बारेमें कहा है—

चिन्तन-सी गहरी नीली आँखोंमें

स्नेहका-सा तार है समाया ।

शुभ्र कुसुमोंसे मुस्कानमें

असीम प्यार है छाया ।

आप इनपर सहज भरोसा कर सकते हैं । एक बात और आपको बता दूँ । शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि नवजात बालक या बालिकाको अथवा उनके विद्यारम्भके दिन श्वेत चन्दन घिसकर उससे उनकी जिह्वापर (एँ) माता, पिता, ब्राह्मण या कोई भी श्रद्धायुक्त व्यक्ति शारदादेवीका स्मरण करके लिख दे तो वह बालक सत्यवादी, मधुरभाषी, निर्लोभ एवं विद्वान् होता है । आप भी चाहें तो शारदाको जिह्वाग्रपर प्रतिष्ठित कर सकते हैं, उनसे प्रार्थना करनेभरकी देर है— झूठे एवं कठोर शब्दोंका उच्चारण करना साध्यभर छोड़नेकी चेष्टा करें । प्रार्थना तो कभी छोड़ें ही नहीं तो निश्चय ही आपकी प्रार्थना सुन ली जायगी ।

शारदा अपार कृपामयी हैं । ये शारदा (सार यानी मूलरस अर्थात् विद्या) देनेवाली हैं । ये शरत्कालीन पूर्णिमाकी शुभ्र कान्तिका-सा वर्ण रखनेवाली हैं । अतः इनका नाम शारदा है । ये सदा सरस रहती हैं इसलिये हम इन्हें सरस्वती कहते हैं; जितने भी कवि, ज्ञानी, कलाकार हुए हैं और होंगे, वे सभी इन 'शुभ्रा' के कृपा-कटाक्षसे धनी हैं । ये शुभ्रा सादा जीवन पसंद करती हैं, इसलिये ये ब्रह्माकी पुत्री तथा हरकी मानस-कन्या तपस्विनी हैं, इनकी एलायिता केशावली कृष्णा-गुरुके धूमके समान फैली हुई है, श्वेताम्बरा शारदा केवल श्वेत कुसुमोंके ही आभरणोंको पसंद करती हैं । इनका वाहन भी दुग्धफेन-सदृश शुभ्र मराल ही है । मराल (हंस) जल, स्थल और आकाश—तीनों स्थानोंमें ही स्वच्छन्दतासे विचरण कर सकता है । इससे वह यह सूचित करता है कि विद्याकी अबाध गति है । मराल जल तथा दूधके मिश्रणसे दूधको अलग कर पी लेता है, इससे उसकी सारग्राहिता एवं विचारशीलता व्यक्त होती है । विचारशील पुरुष शास्त्रोंके अध्ययनसे उसका सार ही ग्रहण करते हैं ।

इनका नाम 'भारती' क्यों पड़ा ? इसके सम्बन्धमें एक सुन्दर कहानी है । एक बार आर्यावर्तमें भयानक दुर्मिश्र पड़ा । प्राणियोंके घोर कष्ट देखे नहीं जाते थे । यह देखकर 'भरत' नामक मुनिने द्रवित होकर हिमालयकी घाटीमें तपस्या करके 'शुभ्रा' को प्रसन्न करना चाहा । परम कृपामयी सरस्वती

शीघ्र ही प्रकट हो गयीं और वर माँगनेके लिये कहा । ऋषिने उन्हें लोगोंके दुःखकी करुण-कथा सुनायी । शारदाका हृदय विगलित हो उठा, उन्हें इतना भी धीरज न रहा कि इन्द्रको वर्षा करनेकी आज्ञा दे देतीं, वे स्वयं करुणासे पित्रलकर नदी बन गयीं, भरतजी शङ्ख बजाते हुए उन्हें लेकर दुर्मिश्र-पीडित क्षेत्रोंसे गुजरे । चारों ओर हरियाली छा गयी । प्राणियोंका दैन्य-दुःख तथा संताप ऐसे मिट गया मानो कभी था ही नहीं और सब परम सुखी, प्राज्ञ तथा धर्मात्मा बन गये । शास्त्रोंसे हम जानते हैं कि ब्राह्मण, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत, वेद और वेदाङ्ग सरस्वतीके पुनीत तटपर ही लिपिबद्ध किये गये थे । आज भी प्रयागके त्रिवेणी-संगममें, जहाँ तीनों वहिनें—गङ्गा, यमुना और सरस्वती मिलती हैं, स्नान करनेसे एक अपूर्व दिव्यताका अनुभव होता है । आज भले ही स्थूल रूपमें सरस्वती नदी नहीं दीखती, परन्तु वह जन-मानसके हृदयमें नित्य प्रवहमान है ।

शारदा विद्या देती हैं । कुछ लोग भ्रान्तिसे ज्ञानकी निन्दा करते हैं; उन्हें अज्ञानमें भोलापन, श्रद्धा एवं उदारता झलकती है । किंतु यह निरा भ्रम है । यह बात सही है कि एक बार दुष्टकी बुराई करनेकी क्षमता विद्यासे कुछ हदतक बढ़ जाती है । जो दुष्ट इसलिये भोला-भाला नजर आता था कि उसमें उगनेकी बुद्धि नहीं थी, थोड़ी-सी विद्या निश्चय ही उसका असली स्वरूप प्रकाशमें ले आती है, परन्तु जब महान् दुर्वृत्त या अविश्वासी भी सत्यको जाननेकी गहरी जिज्ञासा लेकर विद्याके असीम उपवनमें आता है, तब वह भी कृतकृत्य हो जाता है । उसका अविश्वास गहरे विश्वासके रूपमें बदल जाता है । जीवनकी कायापलट हो जाती है । श्रीकाण्ड लियो टॉलस्टाय, जो सच्चमुच लियो (सिंह) नामको सार्थक करते थे, ये असीम बलशाली, कामी, विपुल वैभवसम्पन्न थे और 'धर्म' के प्रति इनकी गहरी अनास्था थी । टॉलस्टायके अपने ही शब्दोंमें—'अब धर्मका युग लड़ चुका है, विज्ञानके सिवा किसी चीजपर विश्वास रखना मूर्खता है'—किंतु संसार जानता है कि जिस धर्मकी टॉलस्टाय निन्दा करते थे, उसीकी खोजमें वे सब कुछ भूटकर दिवाने बन गये, फकीर बन गये और प्रेम तथा अहिंसाके रूपमें उसे पा लिया । मेरे एक परिचित हैं जो स्वभावसे श्रीकृष्ण-द्वेषी हैं, एवं राम और भगवान् शंकरके

संख्या ८]

भक्त हैं। उन्होंने गीताके बारेमें सुना और प्रतिज्ञा की कि जिस ग्रन्थको सुनकर एक भाईने (अर्जुन) एक भाईकी (कर्ण) कुरुक्षेत्रके युद्धमें अधर्मपूर्वक हत्या की; उस ग्रन्थको मैं मिटा डालूँगा। मैं युक्तिपूर्वक ऐसी समा-लोचनाएँ लिखूँगा कि फिर कोई भी गीता नहीं पढ़ेगा।' गुस्सा, खीझ एवं घृणा—तीनोंसे भरकर उन्होंने गीताको उठा लिया; क्योंकि बिना पढ़े और समझे वे समालोचना कैसे लिख सकते? उनका क्रोध एवं खीझ प्रथम अध्याय-तक जारी रहा। द्वितीय अध्यायसे घटने लगा एवं चतुर्थ-पञ्चम अध्यायमें उनके चेहरेपर आश्चर्य छा गया। दशम तथा एकादश अध्यायतक उनकी आँखोंमें श्रद्धा आ गयी। उनकी आँखें गहरी चिन्तामें खो गयी थीं। वे तन-मनकी सुध खो बैठे थे। अन्तमें भाई साहबने यह निष्कर्ष निकाला कि गीतामें बहुत-सी बातें सही हैं, पर बहुत-सी बातें गलत भी हैं। अतः वे फिर गीताका दृढ़ अध्ययन कर उन गलत विचारोंका खण्डन करेंगे। ऐसा निश्चय किया। यों उन्होंने सैकड़ों बार गीताको पढ़ डाला, पहलेकी ही भाँति लवलीन होकर। किसी एक भी श्लोकका उन्होंने खण्डन नहीं किया। गीताके लिये ही वे श्रीकृष्णके कुछ अंशतक प्रशंसक बन गये। गीताको कण्ठस्थ करनेका प्रयास वे कर चुके हैं। अब वे गीताके ऐसे कायल हैं कि प्रायः गीतासे उद्धरण देते हैं।

विद्या ही बताती है कि सांसारिक भोगकी वस्तुएँ नश्वर तथा तुच्छ हैं, विद्या हमारे लिये नेत्रोंके समान हैं। बड़े-बड़े विद्वान् वीतरागी तथा निष्काम हुए हैं। मैत्रेयीने विद्याके बलपर ही कहा था—

‘येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम् ।’

प्रकाण्ड पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महामना मालवीय, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र, आचार्य जगदीश, श्री-अश्विनीकुमार दत्त, सर आशुतोष आदि इस बातके प्रमाण हैं कि आज भी वास्तविक शिक्षित व्यक्ति परोपकारको जीवनका धर्म बनाते हैं। अतः विद्या मनुष्यको स्वार्थी बनाती है यह मानना महान् भ्रम है। अवश्य ही विद्याको केवल पढ़ना ही नहीं, जीवनमें उतारना चाहिये।

विद्यादान सब दानोंसे बढ़कर है; क्योंकि विद्या कभी घटती नहीं है, वरं दान करनेपर बढ़ती है। कोई इसे छीन नहीं सकता। विद्या देनेवाले गुरुकी महामहिमा है।

इसलिये शास्त्रोंमें इसकी महिमा गायी जाती है। कहा गया है—

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते

कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम् ।

लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥

विदेशमें, दुःखमें तथा मृत्युके बाद भी विद्या मनुष्यकी सेवा करना भूलती नहीं।

स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।

विद्या मनुष्यको सर्वपूज्य, यहाँतक कि शत्रुओंद्वारा भी पूज्य बना देती है। आर्किमिडिजने अपने राज्यकी रक्षाके लिये रोमनोंके सैकड़ों जहाज सूर्यकी किरणोंको केन्द्रित करके जला डाले, फिर भी रोमन सेनापतिका दृढ़ आदेश था कि वाणीके उस वरपुत्रपर कोई हाथ न उठावे। महापण्डित रावण जब मृत्युशय्यापर पड़े थे तो उनके विजेता भगवान् राम लक्ष्मणके साथ नम्रतापूर्वक उनके पास आ खड़े हुए तथा उन्होंने रावणसे नीतिकी सीख माँगी। उस बुझती हुई प्रखर प्रतिभा-ज्योतिने सारमें यही कहा—

शुभस्य शीघ्रम् अशुभस्य कालहरणम् ।

ठीक इसी तरह भीष्मकी शर-शय्यापर विजयी युधिष्ठिरको हम जिज्ञासुरूपमें पाते हैं।

यह द्वितीय विश्वयुद्धकी बात है। जर्मन लोग प्राणपणसे युद्ध कर रहे थे। उन्होंने एक अंग्रेज अफसरको घेर लिया। उसे अकेला तथा निहत्था-देखकर भी एक साथ उसपर वीस राइफलें सज गयीं, मौतकी घबराहटमें उसने यही कहा—I am a doctor! (मैं एक डाक्टर हूँ।) बीसों राइफलें झुक गयीं और उसे वे आदरपूर्वक वहाँ ले गये, जहाँ उनके सज्जत मौतकी बड़ियाँ गिन रहे थे। डाक्टरने ऑपरेशनद्वारा सज्जतकी जान बचायी और उन्हें युद्धके उपरान्त ससम्मान अपने देश लौटने दिया गया। वस्तुतः विद्यामें ऐसी सम्मोहनी है—

गरुड सुधा गिपु कण्ड मितार्ह ।

गोपद सिंधु अनल सितलार्ह ॥

आजका सारा विश्वान, सारी सभ्यता शुभ्राकी अनवरत उपासनाका ही परिणाम है, फिर भी विद्या हमें नम्र ही बनाती है।

विद्यां ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।

पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मस्ततः सुखम् ॥

सुकरात-से शानी यही कहते थे कि मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि मैं कुछ नहीं जानता । न्यूटन-से महान् गणितज्ञ और भौतिक शास्त्रके पण्डितका कथन है—मैं अगर औरोंसे कुछ देख सका हूँ तो विशालकाय कंधोंपर चढ़कर ही ।

आज सर्वत्र 'रमा' की ही अन्ध उपासना दिखायी देती है, 'शुभ्रा' की लोग यदि करते हैं भी तो बस 'रमा' के कृपा-कटाक्षकी प्राप्तिके लिये ही । परन्तु वे सोच लें—चञ्चला रमाको वे बौध न सके तो ? उनकी अन्ध-आराधनासे वे अन्ध उलूक अवश्य बन जायेंगे ।

मेरा आपसे पुनः यही निवेदन है कि आप 'शुभ्रा' को वाणी और हृदयमें स्थान दें, जीवनमें उनके निर्देशोंको उतारें । चारों ओर अँधेरा छाया है, प्रकाश फैलाइये । शास्त्रोंमें बिना भटके उनके मूल उपदेशोंको जीवनमें उतारिये । एक उदाहरण लीजिये—

शास्त्रोंमें कहा गया है; 'यज्ञ करना चाहिये ।' आपके यज्ञ करनेसे हो सकता है कि आपका भूखा पड़ोसी और भी उदास हो । यज्ञके अष्ट फलोंको वह नहीं जानता-मानता हो, आप साध्यानुसार उसकी सहायता करें, यज्ञ (होम) करना छोड़कर जप-यज्ञ करें । इससे किसीको दुःख नहीं होगा और निश्चय ही एक प्रभुनाम-जप अनन्त अश्वमेध यज्ञोंसे श्रेष्ठ है । गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट कहा है—

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्येकमक्षरम् ।

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावरानां हिमालयः ॥

आप अपने जीवनका ध्येय परोपकार, शानोपार्जन एवं ईश्वरा-राधन बनाइये, सादा जीवन बिताइये एवं सबमें प्रेममय प्रभुको देखिये । यही 'शुभ्रा' की सच्ची उपासना है । शुभ्राकी सेवासे आप प्रभुतक सहज ही पहुँच सकते हैं । जहाँ 'शुभ्रा' आपको न ले जा सके, वहाँ आपको और कोई भी नहीं पहुँचा सकेगा । 'शुभ्रा' आपको उस अव्यक्त, अनामयके पास आखिरी मंजिलतक पहुँचा देगी । उसके बाद तो प्रभु-कृपा ही है । किंतु आप हताश न हों, विद्या एक धन है, शक्ति है एवं धन और शक्तिके रूपमें यह सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी धर्म ही है, मुक्तिको देनेवाली है, 'सा विद्या या विमुक्तये'

वही 'शुभ्रा' श्रद्धा, विश्वास, भक्ति और प्रेमके रूपमें आपको इष्टतक पहुँचाती है । वह ज्ञानके प्रकाशरूपमें लाइयों-गड्डों और कँटीली झाड़ियोंसे बचाती है । शुभ्रा ही बताती है कि वृष्णकी प्रेमसे, लोभको त्यागसे और क्रोधको क्षमासे कैसे जीता जा सकता है ? बुराईको अच्छाईसे जीतनेका प्रयास पापसे वृष्ण करना है, परन्तु पापियोंपर करुणा करना है । यह 'शुभ्रा' का ही सिद्धान्त है ।

एक बार महर्षि दुर्वासा अमरावतीसे जा रहे थे । शारदासे उनकी भेंट हो गयी । शुभ्राने ऋषिको विनयसहित नमस्कार किया; कुशल-श्रेम पूछा । ऋषि किसी कारणवश क्षुब्ध थे, सदा-हास्यमयी शुभ्राको देखकर उनको क्रोध आ गया । ऋषिने शाप दिया कि 'तुम धरतीपर मानवी बनकर जन्म लोगी ।' किंतु शुभ्राके चेहरेपर एक भ्रान्त रेखातक न झलकी । उन्होंने महामुनिकी चरण-धूलि मस्तकपर चढ़ाते हुए कहा—'आपका शाप शिरोधार्य है । महामुने ! आपका कल्याण हो । आपका यश नित्य वृद्धिको प्राप्त हो, सारे वेद-वेदाङ्ग एवं स्मृतियाँ आपके मानसमें विमल होकर विराजें । मुझे अबोध पुत्रीके समान जानकर मेरी त्रुटिको चित्तमें न धरें । आपने नीतिके लिये शाप देकर मेरा बड़ा ही कल्याण किया ।'

शापके बदले वरदान देनेवाली इस अपूर्व कृपामयी-को हम अपने जीवनकी पथ-प्रदर्शिका बनावें । अहंकार, लोभ, मोह तथा दुःखके पास रहनेपर भी वे आपको छू न सकेंगे ।

पुनः मैं अपनी बहनोंसे और माताओंसे अनुरोध करूँगा कि आप हर एक शुभ्राकी प्रतिमा हैं । आप अपनी उन करोड़ों बहनोंको प्रकाशमें लाइये जो अन्धकारमें डूबी हैं, प्रत्येक मानवके—चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, जीवनका आदर्श सीमित नहीं है । नाल्पे सुखमस्ति । प्रत्येकका अपने परिवारके प्रति ही नहीं, विश्वके प्रति कर्तव्य है । पारिवारिक मूल्योंको पूरा करते हुए उन्हें आगे बढ़ना है । निश्चय ही इनमें कठिनाइयाँ आयेंगी, परन्तु जो हलाहल पीकर होठोंसे सुधा बरसायें, वे ही महादेव हैं और जो दुखियोंके हाहाकारपर अपनेको पिघलाकर उनके आँसुओंको प्रसन्नतामें बदल दें, वे ही वरेण्या शुभ्रा हैं ।

शिक्षकका धर्म और उसके आदर्श

(लेखक—अध्यापक श्रीमानिकलालजी 'दोषी')

समाजमें सद्गुणी और दुर्गुणी—दोनों प्रकारके व्यक्ति पाये जाते हैं, जिनका जन्मदाता वस्तुतः शिक्षक ही होता है। यथार्थमें शिक्षक ही समाजका निर्माता होता है। चूँकि बालक शालामें कोमल एवं स्वच्छ हृदय लेकर आता है। उसके मनपर शिक्षक चाहे जिस रूपसे अपना प्रभाव अङ्कित कर सकता है। इसलिये शिक्षकका यह धर्म हो जाता है कि वह स्वयं सद्गुणोंका संचय और आचरण करके बालकमें सद्गुणोंका ही अङ्कुर उत्पन्न करे; क्योंकि आजका बालक ही भावी नागरिक होगा। इतिहासका वास्तविक निर्माता शिक्षक ही होता है। समाज तथा देशकी बहिर्मुखी उन्नति करना ही शिक्षकका उद्देश्य होना चाहिये; क्योंकि शिक्षकद्वारा व्यक्त किये गये विचार ही छात्रोंकी अमर धरोहर होते हैं।

जिस देशके शिक्षक अपने कार्योंको अपना धर्म मानकर करते हैं, उनसे ही राष्ट्र-हितकी सम्भावना हो सकती है। समाज एवं राष्ट्रकी अवनतिमें शिक्षक ही 'दोषी' है। शिक्षकके आदर्श निम्न प्रकार हैं (जिनका शिक्षकमें होना अनिवार्य है)—

(१) **चरित्र**—शिक्षकका चरित्र उच्चकोटिका होना चाहिये; उसका आचरण एवं व्यवहार आदर्श रूप होना चाहिये। चरित्रवान् शिक्षकोंके विचारोंका प्रभाव छात्रोंपर अमिट होता है।

(२) **कार्यमें रुचि**—अध्यापन एक कला है। उसका नित्य-नव विकास होता है। अतः शिक्षकको अपने कार्यमें लान एवं उत्साहसे विकास करते रहना चाहिये।

(३) **मनोविज्ञानका ज्ञान**—मनोविज्ञान वह साधन है, जिसकी सहायतासे शिक्षक अपने ज्ञानको बालकोंमें सरलतापूर्वक प्रविष्ट कर सकता है।

(४) **समयकी नियमितता**—बालकोंमें अनुकरणकी प्रवृत्ति विशेष होती है। अतः आदर्श शिक्षकको अपने सब कार्य विलकुल ठीक समयपर ही करने चाहिये।

(५) **धैर्य**—बालकोंमें जिज्ञासा-प्रवृत्ति विशेष होती है। अतः छात्रोंद्वारा प्रश्न करनेपर उन्हें धैर्यपूर्वक उत्तर देना चाहिये; धैर्यपूर्वक ही उनसे उत्तर निकलवाना

चाहिये। क्रोधित तो होना ही नहीं चाहिये। ऊबना भी नहीं चाहिये।

(६) **ज्ञान-पिपासा**—आदर्श एवं सफल शिक्षकको नित्य नवीन ज्ञान प्राप्त करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। अपने विषयका विशेष तथा अन्यान्य विषयोंका भी साधारण ज्ञान अवश्य होना चाहिये।

(७) **गुणदर्शन**—शिक्षककी वातचीत और व्यवहारमें दूसरोंके गुण देखकर उनका आदर करनेकी प्रवृत्ति होनी चाहिये; न कि दोष देखकर निन्दा करनेकी। गुणदर्शनका आदर्श बालक ग्रहण कर लेंगे तो वे अपने जीवनमें सर्वत्र गुण ही ग्रहण करनेमें अभ्यस्त हो जायेंगे, जो जीवनका एक परम लाभ है।

(८) **न्यायप्रियता**—शिक्षकको बालकोंके नित्यप्रति होनेवाले विवादोंका पक्षपातरहित निर्णय देना चाहिये; जिससे अनुशासन बना रहे। छात्रोंमें समान व्यवहार रखना चाहिये।

(९) **सहयोगकी भावना**—निर्धन छात्रोंको अन्य छात्रोंसे पढ़नेकी सामग्रीका उचित सहयोग दिलवाना एवं यथासाध्य स्वयं देना चाहिये।

(१०) **बालकोंके स्नेह और सम्मान**—शिक्षकको छात्रोंके प्रति सच्चे हृदयसे स्नेहशील होना चाहिये और उनका यथोचित सम्मान भी करना चाहिये। उच्च कक्षाओंके छात्रोंसे मित्रका-सा व्यवहार होना चाहिये। इस व्यवहारसे शालाका अनुशासन भंग नहीं होने पाता।

(११) **वेश-भूषा एवं साज-सज्जा**—'सादा जीवन, उच्च विचार' इस सिद्धान्तपर शिक्षकका जीवन आधारित होना चाहिये; कपड़े एवं उनके पहननेका ढंग सादा-सीधा तथा साफ-सुथरा होना चाहिये।

(१२) **विनोदप्रिय**—अध्यापन-कार्यमें छात्रोंकी थकानको दूर करनेके लिये शिक्षकको समय-समयपर शिष्ट और उपदेशपूर्ण हास्य-विनोद भी करना चाहिये; प्रसन्नचित्त रहना चाहिये।

(१३) **पाठकी तैयारी**—प्रत्येक शिक्षकको कक्षामें जानेसे पूर्व नवीन पाठकी तैयारी कर लेनी चाहिये। इससे कक्षामें अध्यापन सरलतासे सम्पन्न होता है।

अगस्त ६—

(१४) धर्म-निरपेक्षता—हर धर्मसे सम्बन्धित छात्र कक्षामें पढ़ने आते हैं, अध्यापनके समय शिक्षकका झुकाव किसी धर्म-विशेषकी ओर न होना चाहिये ।

(१५) राजनीतिसे दूर—देशमें चल रही दलगत राजनीतिसे दूर रहना चाहिये, दलोंके विचारों एवं नीतियोंसे परिचित रहे, पर सभी दलोंसे तटस्थ भाव रखे ।

(१६) देश-भक्त—आदर्श शिक्षकको अपने देशके प्रति भक्तिपूर्ण भावनाएँ रखनी चाहिये । उसे छात्रोंमें राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करना चाहिये ।

(१७) नेतृत्वकी क्षमता—शिक्षक अपनी कक्षाका नेता होता है । उसे अपने छात्रोंका ठीक-ठीक नेतृत्व करना चाहिये । छात्रोंको अनुशासन-बद्ध करनेकी क्षमता होनी चाहिये ।

(१८) चित्रकार शिक्षक—चित्रकलाद्वारा छात्रोंके मानस-पटलपर समस्त गुण सरलतासे अङ्कित किये जा सकते हैं । अतः शिक्षक चित्रकार हो तो बहुत उत्तम है ।

(१९) सुधाकार शिक्षक—सुधाकार शिक्षक ही देश और जातिके लिये आत्मोत्सर्ग करनेवाले नागरिक तैयार करता है ।

(२०) कलाकार शिक्षक—कलाद्वारा शिक्षक बालकोंमें भाव-सौन्दर्य एवं कल्पनाकी सृष्टि कर सकता है । शिक्षा ही एक कला है । कलाके प्रति उसमें प्रेम होना चाहिये जिससे छात्रोंको शिक्षा दे सके । सभी शिक्षकोंमें उपर्युक्त आदर्श होना आवश्यक है ।

विद्यार्थी-धर्म ही जीवनकी आधार-शिला है

(लेखक—श्रीसुदामाप्रसादजी त्रिपाठी 'दीन', शास्त्री एम्० डी० एच्०)

मानव-जीवनको सुखमय व्यतीत करनेके लिये हमारे पूर्वजोंने जीवनके चार विभाग किये, जिनमें सबसे पहला जीवन, जिसे विद्यार्थी-जीवन कहते हैं, समग्र जीवनकी नींव होता है । वह जिस परिस्थितिमें, जिन रूपोंमें पलता है उसीमें आगेका पूर्ण जीवन भी रमण करता है । लाख प्रयत्न करनेपर भी विद्यार्थी-जीवनकी छाप सहजमें नहीं दूर होती । अतः विद्यार्थीके लिये यह अत्यन्त उपयोगी होनेके साथ-साथ आवश्यक है कि वह अपने धर्मको भलीभाँति पहचान ले । धर्मका लक्षण लिखते हुए श्रीमनुजीने कहा है कि—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

(२ । १२)

वेद, स्मृति, सत्-आचार और मनकी प्रसन्नता (किसी भी विषयमें जहाँ एकसे अधिक पक्ष बताये गये हों वहाँ जिस पक्षके ग्रहण करनेमें अपना मन प्रसन्न हो) —यही चार धर्मके साक्षात् लक्षण हैं ।

धर्मका वास्तविक अर्थ कर्त्तव्य होता है । धर्म-परिवर्तन वास्तवमें अर्थ-हीन शब्द है । सम्पूर्ण पृथ्वीके जलमयी हो जानेपर कहीं भी जाइये उस समय एक जलराशिसे दूसरी जलराशिमें निमग्न होना ही पड़ेगा । इसीलिये तो कहा है कि 'पूर्णं पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते' धर्म-परिवर्तनके समर्थक इसके आश्रयकी थाह कभी नहीं पा सकते ।

धर्म एक रस है जो कर्त्तव्यका आलोक प्रदान करता है और अन्तमें कर्त्तव्यस्वरूप बनकर धर्माधिकारीके जीवनको सौभाग्यके साँचेमें ढालता है ।

विद्यार्थी-जीवनके प्रभातमें धर्म सूर्यकी तरह चमकता हुआ नाना प्रकारकी तीक्ष्ण रश्मियोंवाली संयमशीलताको लेकर उसे प्रकाशमान करने तथा सोये हुए जीवनके सपनेको सँजोनेके लिये आता है । इसलिये विद्यार्थीको अपने धर्मकी सिद्धिके लिये सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये । इसके लिये पर्याप्त श्रद्धा और विश्वासकी महती आवश्यकता होती है । बिना श्रद्धासे धर्मकी सिद्धि सम्भव नहीं है । जैसा गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें कहा है—

श्रद्धा बिना धर्म नहीं होई । बिनु महि गंध कि पावइ कोई ॥

कविनिउ सिद्धि किबिनु बिसवासा । बिनु हरि भजन न भव भय नासा ॥

इसी प्रकार गोस्वामीजीने मर्यादापुरुषोत्तमका आदर्श दिखाकर विद्यार्थीका प्राथमिक धर्म दर्शाया है—

प्रातकाल उठि के रघुनाथा । मातु पिता गुरु नावहि माथा ॥

और मनुजीने विद्यार्थीके लिये आचार्य-हितमें तत्परता तथा उनके सामने उठने-बैठने और बोलने आदिकी विधि बताते हुए कहा है कि—

चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा ।

कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च ॥

शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ।

नियम्य प्राञ्जलिः तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥

(२ । १९१-१९२)

आचार्यके कहनेपर अथवा न कहनेपर भी विद्यार्थी अपने अध्ययनमें और आचार्यके हितमें सदैव प्रयत्नशील रहे। शरीर, वचन, बुद्धि, इन्द्रिय और मनको अपने वश में करके दोनों हाथ जोड़कर गुरुके मुखकी ओर देखता हुआ स्थित हो (बैठे नहीं) ।

जब गुरुजी विद्यार्थीको आज्ञा दें उस समय किस प्रकारसे आज्ञापालन किया जाय, यह मनुस्मृति बतलाती है—

प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत् ।

नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ॥

(२ । १९५)

विद्यार्थीको स्वयं सोये हुए, आसनपर बैठे हुए, खते हुए और मुँह फेरे हुए गुरुकी आज्ञाका स्वीकार या उनसे सम्भाषण नहीं करना चाहिये ।

गुरुर्वह्ना गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।

—मानता हुआ विद्यार्थीका यह भी धर्म है कि यदि सत्-शास्त्रोंके वचन कहीं समझमें न आयें या कहींपर उन वचनोंमें अपनी बुद्धिमें संदेह हो जाय तो महापुरुषोंके आचरणोंको लक्ष्य मानकर उनके अनुसार चलना उपयोगी होता है। जैसा कि महाभारतमें यशके प्रश्नोंका समुचित उत्तर देते हुए महाराज युधिष्ठिरने बताया है—

तर्कोऽप्रतिष्ठः स्मृतयो विभिन्ना

नैको ऋषिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां

महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

तर्ककी कोई प्रतिष्ठा नहीं, श्रुतियाँ भी भिन्न-भिन्न मत बताती हैं, एक भी ऐसा ऋषि नहीं जिसकी वाणी प्रमाणित हो और धर्मका तत्त्व गुहामें छिपा है अतः जिस मार्गसे महापुरुष गये हैं वही सन्मार्ग है, उसीपर चलना श्रेयस्कर है।

विद्यार्थीको मौखिक उपदेशकी अपेक्षा आदर्श आचारका संस्कार इतनी दृढ़तासे ग्रहण करना चाहिये जिससे कि उनकी छाप आजीवन उसे आत्मबल प्रदान करती रहे। 'यन्त्रवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्' के सिद्धान्तानुसार वर्तमान कालका मुद्रित संस्कार विद्यार्थीके भावी जीवनमें प्रेरणा प्रदान करता ही है। इसीलिये विद्यार्थीका विषय चाहे गणित हो या भूगोल, इतिहास हो या अर्थशास्त्र, उसे अपने धर्मकी प्रवृत्तिको सदैव जाग्रत् रखना चाहिये। धर्मका तात्पर्य पूजा-पाठसे नहीं है। धर्म उन कामोंकी समष्टिका नाम है जो सर्व-मङ्गलकारी है। अपना तथा समस्त विश्वका कल्याण करनेवाला है। यह ध्यान देनेकी बात है कि विद्यार्थीका कल्याण समाजके कल्याणसे पृथक् नहीं हो सकता। विद्यार्थीके बहुतसे ऐसे गुण हैं जिनका विकास समाजमें रहकर ही हो सकता है। इसलिये समाजको ध्यानमें रखकर ही आगे बढ़ना विद्यार्थी-धर्मका आदर्श होना चाहिये। विद्यार्थीको पशु, पक्षी और देव आदिको भी अपने समाजका अङ्ग मानना चाहिये। इन सभीका ऋण विद्यार्थीपर रहता है इसलिये उसे इस ढंगसे अपना धर्म निभाना है जिससे पूर्वजोंने जो प्रकाश छोड़ रखा है वह पीछे आनेवालोंतक पहुँच जाय। इसी विस्तृत कर्त्तव्य-राशिको धर्मकी संज्ञा दी जाती है।

कहनेका सारांश यह है कि ज्ञान-विज्ञान और कला-शिल्पकी जानकारी तथा प्रयोगनिपुणताके साथ अपने अन्तःकरणका संशोधन, शीलका उद्बोधन, त्याग-सदाचार और सेवामें नित्य-प्रवृत्ति, आचरणका उन्नयन, भगवान्में श्रद्धा-विश्वास और संकुचित 'स्व' के बन्धनसे मुक्ति—ये विद्यार्थीके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण धर्म हैं। इनके द्वारा ही मानवताका विकास और देवकी ओर गतिशीलता हो सकती है तथा इन्हीं धर्मोंका उपयोग अपने जीवनमें करता हुआ विद्यार्थी समस्त ऋणोंसे मुक्त होकर परम श्रेयको प्राप्त कर सकता है।*

* विद्यार्थीमें निम्नलिखित सद्गुणों तथा सदाचारका विकास एवं विस्तार परमावश्यक है—

- (१) पूर्ण मनोयोगके साथ विद्याध्ययन करना, (२) माता-पिता-गुरु आदिके प्रति आदर-बुद्धि और नित्य उनके चरणोंमें प्रणाम करना, (३) फैशन—शौकीनीसे वचना, (४) गंदे साहित्य, चित्र, कुसंगतसे बचे रहना, (५) नित्य भगवान्का स्मरण करना, (६) अपना काम अपने हाथसे करना—परावलम्बी न होना, (७) व्यर्थ खर्चकी तथा अधिक खर्चकी आदत न डालना, (८) आत्मविश्वास तथा सफलतामें विश्वास रखना, (९) किसी भी जीवको दुःख न पहुँचाना—दीन-दुखियोंके श्री विशेष स्नेह रखना, उनकी यथासाध्य सेवा करना, (१०) धर्मके अनुसार आचरण करना, (११) व्यवस्था मानना और (१२) मधुर भाषण करना तथा सदा सबका सम्मान एवं हित करना ।

दक्षिण भारतकी तीर्थ-यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ १०५९ से आगे]

शेषाचलके दक्षिण-पूर्वमें बीस मीलकी दूरीपर सुधर्म नामक चन्द्रवंशी राजा तोंडराज्यका पालन करते थे। उनके आकाशराजा और तोंडमान नामक दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र आकाशराजाको राज्यभार सौंपकर राजा सुधर्म तपस्या करने चले गये।

आकाशराजाके शासनमें प्रजा सुख-शान्तिसे रहती थी। वह राजभक्त, सत्यमार्गी एवं परोपकारी थी। राजा भी अपनी प्रजाको निजी संतानकी तरह देखता था। प्रजाको सुखी रखनेमें कोई कसर नहीं रखता था। परंतु राजाके मनमें एक चिन्ता सदा सताती रही और वह थी संतान-हीनताकी। इस तरह बहुत-सा काल बीत गया।

एक दिन आकाशराजाने अपने गुरु शुक महर्षिको बुलाकर अपना यह दुःख बताया तो उन्होंने कहा—‘पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करनेसे अवश्य संतान प्राप्त हो सकती है।’ वस, आकाशराजाने वह यज्ञ करनेका निश्चय किया और एक शुभ दिनमें यज्ञकुण्ड बनानेके लिये सोनेके हलसे जमीन जोतने लगे। तब यह हल लकड़ीके एक संदूकको जा लगा। उसे बाहर निकालकर खोलनेपर उसके भीतर स्वर्णमय सहस्र कमलके बीच देदीप्यमान कन्या दीख पड़ी। ज्यों ही राजा उस कन्याको हाथोंमें उठा लेनेको उद्यत हुए, त्यों ही यह आकाशवाणी सुनायी दी—‘हे राजा ! पूर्वजन्मके पुण्यफलसे अब तुम्हें यह कन्या प्राप्त हुई है। इसे अपनी पुत्री मानकर इसका पालन-पोषण करो। तुम्हारा जन्म सफल हुआ। उस कन्याके कारण तुम और तुम्हारे कई पीढ़ियोंके लोग मोक्षपद प्राप्त कर सकेंगे।’

यह सुनकर आकाशराजाने आनन्द-विमोह हो उस कन्याको उठा ले जाकर अपनी पत्नी धरणी देवीके हाथोंमें दिया और कहा—‘यह कन्या साक्षात् लक्ष्मी हैं, जो हमें अपने पूर्वजन्मके पुण्यसे प्राप्त हुई हैं।’ तब धरणी देवी खुशी-खुशी उस कन्याको अन्तःपुरमें ले चली।

आकाशराजाने अपने दरबारके सभी ब्राह्मणोंसे प्रार्थना की कि इस कन्याका नामकरण किया जाय। ब्राह्मणोंने कन्याका नाम पद्मावती रक्खा और उसे अनेक शुभ आशीर्वाद दिये।

राजाने उन्हें दान-दक्षिणा देकर संतुष्ट किया। धरणी देवी पद्मावतीको बड़े लाड़-प्यारसे पालती रही। इस तरह कुछ वर्ष बीत गये।

पद्मावती सयानी हो गयी। वह अपनी सखियोंसे खेलती हुई बड़े आनन्दसे समय बिताती थी। एक दिन नारद मुनि बूढ़ेके वेषमें आकर उसके सामने खड़े हुए। उन्हें देखकर वह बहुत डर गयी और अपनी सखियोंके पास भाग जानेको उद्यत हुई। तब नारदजीने उससे कहा—‘बेटी ! मुझे डरो मत। मैं कोई पराया नहीं हूँ। मैं तुम्हारा कुलगुरु हूँ।’ तब पद्मावती उन्हें प्रणाम करके लज्जाके मारे चुपचाप खड़ी रही। नारदने मुस्कराते हुए कहा—‘बेटी ! डरो मत। तुम अपना बायाँ हाथ मुझे दिखाओ।’ यह कहकर नारद वहाँ बैठ गये। पद्मावतीने अपना बायाँ हाथ फैलाया तो नारदने उसे अपने दायाँ हाथमें लेकर देखते हुए यों कहा—‘तुम्हारा हाथ सर्व शुभ लक्षणोंसे शोभित है। इस हाथकी-जैसी रेखाएँ साधारण मनुष्योंके हाथोंमें अप्राप्य हैं। सुनो, अब तुम्हें इन रेखाओंके कुछ शुभ लक्षण बता रहा हूँ। तुम्हारे हाथमें मत्स्य, कूर्म, छत्र तथा चामरके आकार-वाली रेखाएँ हैं, जिनका फल यह होना चाहिये कि स्वयं भगवान् विष्णुसे तुम्हारा विवाह होगा। तुम्हारे सर्वाङ्ग शुभ लक्षण देखकर विष्णुदेव तुमसे प्यार करेंगे।’ यह सुनकर पद्मावतीने लज्जावश आँखें मूँद लीं और मनमें विष्णुका ध्यान किया। फिर इस गुप्त वेषधारीको प्रणाम करके आँखें खोलकर देखा तो सामने नारदजी निजी रूपमें प्रत्यक्ष हैं। उन्हें देखकर पद्मावती अत्यन्त हर्षित हुई और उन्हें प्रदक्षिणा-पूर्वक प्रणाम किया। तब वे उसे अनेक आशीर्वाद देकर चले गये। तबसे वह सर्वदा विष्णुके ध्यानमें लगी हुई समय बिताती रही।

उधर शेषाचलपर वकुला देवी श्रीनिवासकी सेवा करती रही। वे वल्मीकमें सुखसे अपना समय बिता रहे थे। एक दिन उन्होंने वकुलसे कहा—‘माँ ! मैं मृगया खेलने जाऊँगा और इस क्षेत्रमें रहनेवाले भक्तोंसे मिलूँगा। हिंस पशुओंकी बाधासे उनकी रक्षा करके वापिस आ जाऊँगा।’ यह सुनकर

संख्या ८]

वकुलने कहा—‘वत्स ! तुम मृगया खेलने तो जाओ; पर जल्दी लौट आना ।’ ऐसा कहकर वकुलने खीर तथा अनेक प्रकारकी खाद्य वस्तुएँ बनायीं और श्रीनिवासको खूब खिलाया । बाद उन्हें आवश्यक शिकारी वेश-भूषा दी । वे हाथमें तीर-कमान लिये हुए शिकारीके वेपमें खड़े हो गये । उन्हें देखकर वकुल सोचमें पड़ गयी कि ये यज्ञरक्षा करनेके लिये विश्वामित्रके साथ जानेवाले रामचन्द्र हैं या दुष्ट कंसका वध करने जानेवाले कृष्ण । वह चकित होकर उन्हें देखती रह गयी । श्रीनिवास तो सब तरहसे तैयार होकर श्वेताश्वपर चढ़े और वकुल देवीकी अनुज्ञाके लिये पलभर ठहरे । तुरंत वकुलने उनसे कहा—‘बेटे ! शीघ्र जाकर सकुशल लौट आओ ।’

श्रीनिवास घोड़ेपर सवार हो जंगलमें प्रविष्ट हुए । रास्तेमें हिरण्यपशुओंका शिकार किया और पुण्य-स्थलोंमें रहनेवाले भक्त लोगोंका कुशल-समाचार मालूम कर लिया । कुछ दूर चलनेके बाद उन्हें एक मस्त हाथी दीख पड़ा । वह बहुत दूरतक उनका पीछा करता हुआ चला गया और आखिर आकाशराजाके उस उद्यानवनमें जा पहुँचा जो नारायणपुरमें अगस्त्याश्रमके पास है । वहाँ हाथीने पीछेकी ओर मुड़कर श्रीनिवासको देखा और सँड़ ऊपर उठाकर प्रणाम किया । फिर जोरसे चिंगाड़कर चला गया ।

उस समय वहाँ उद्यानवनमें पद्मावती अपनी सखियोंके साथ पुष्पचयन कर रही थी । हाथीकी यह चिंगाड़ सुनकर वे सब भयभीत हो गयीं । सखियाँ पद्मावतीके पास आकर बोली कि ‘अब हम अन्तःपुरको चली जायँ ।’ इतनेमें श्रीनिवास पद्मावतीको देखकर उसके पास आने लगे । उन्हें देखकर पद्मावती अपनी सखियोंसे बोली कि ‘देखो, कोई किरात हमारी तरफ आ रहा है । तुम उसके पास जाकर उसका सारा वृत्तान्त मालूम कर लो और उससे कहो कि इस उपवनमें उसको मृगया नहीं खेलना चाहिये ।’

पद्मावतीकी आज्ञाके अनुसार वे सखियाँ श्रीनिवासके पास चलीं और उनसे यों पूछा—‘तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है ? तुम कहाँसे आये हो और इस उपवनमें क्यों घुस आये ? इस उपवनमें तुमको मृगया नहीं खेलना चाहिये । ये सब समाचार जान लेनेके लिये हमें अपनी राजकुमारीने यहाँ भेजा है ।’ श्रीनिवासने उनसे कहा कि ‘मैं अपना सारा वृत्तान्त तुम्हारी राजकुमारीको ही बताऊँगा ।’ फिर वह उनके साथ पद्मावतीके पास पहुँचा और कहा—‘मैं एक मस्त

हाथीका पीछा करते हुए यहाँ आ गया । बताओ, वह हाथी अब कहाँ चला गया ?’ यह सुनकर पद्मावती और उसकी सखियाँ उन्हें पागल समझकर हँस पड़ीं । तब वे भी हँस पड़े । फिर पद्मावतीने उनसे अनेक प्रश्न किये—‘तुम कौन हो ? तुम इस मस्त हाथीका पीछा करते हुए कहाँसे आ रहे हो ? तुम्हारा गाँव कौन-सा है ? तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारे माँ-बाप कौन हैं ?’

श्रीनिवासने इन प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार दिया—‘मैं शेषाचलपर रहनेवाला हूँ, मेरा वंश सिंधुओंका वंश है । मेरे पिताका नाम वासुदेव है और माताका नाम देवकी है । मेरे भाईका नाम बलराम है । सुभद्रा मेरी बहन और अर्जुन मेरा मित्र है । पाँचों पाण्डव मेरे बान्धव हैं । कृष्णपक्षके अष्टमी दिवसको मेरा जन्म हुआ । मैं काला हूँ । इसलिये माँ-बापने मुझे कृष्ण नाम दिया । यही है मेरा वृत्तान्त । अब मैं तुम्हारा वृत्तान्त जानना चाहता हूँ । इसलिये तुम अपने माँ-बापके नाम, अपने कुल-गोत्र आदि सब सविस्तर बताओ ।’ तब पद्मावतीने कहा—‘मैं आकाशराजाकी पुत्री हूँ । मेरा नाम पद्मावती है । मेरी माँ धरणी देवी है । मेरा वंश चन्द्रवंश है और गोत्र अत्रिका है ।’ ये वचन सुनकर श्रीनिवासने उनसे कहा—‘तब तो मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ और तुम भी इसको स्वीकार करो ।’ यह सुनते ही पद्मावती वेहद क्रोधमें आकर बोली—‘रे मूर्ख ! तू क्या बकता है ? चल अभी इस उपवनको छोड़कर चला जा ।’ श्रीनिवास पद्मावतीके और भी पास आकर बोला—‘मेरा मन तुमपर लगा है । किसी भी तरह तुमसे मेरा विवाह होना ही चाहिये । इसीलिये मैं तुमसे ऐसा बोलता हूँ ।’ इसपर पद्मावती बोली—‘हमारी आज्ञा लिये बिना तू इस उपवनमें घुस आया इसलिये अपनी सखियोंके द्वारा तुझे कठिन दण्ड दिलाना चाहती हूँ । तुझे पागल समझकर अभीतक तुझसे इतनी बातें बोलीं । शायद इसीलिये तू इस तरह बड़-बड़कर बक रहा है । अब तू एक क्षण भी यहाँ रहेगा तो तेरी जानकी खैर नहीं । तुरंत यहाँसे चला जा ।’ फिर श्रीनिवासने कहा—‘मेरी जान लेना तुम्हारे वंशकी बात नहीं है । मैं तुम्हारे प्राणोंका भी प्राण हूँ । तुमको मुझसे अवश्य विवाह करना चाहिये ।’ ऐसा कहकर श्रीनिवास पद्मावतीके निकट जाने लगा । अब पद्मावती अपना क्रोध नहीं सँभाल सकी और तुरंत अपनी सखियोंसे श्रीनिवासपर पत्थर फेंकवाये । तब वे पत्थरोंके प्रहारसे अपनेको बचाकर वहाँसे भाग चले और सीधे

वल्मीकमें जा मौन साधकर लेट गये। वहाँ उपवनमें पत्थरों-की मारसे श्रीनिवासका घोड़ा मूर्छित हो गया।

श्रीनिवासको पत्थरोंसे मार भगानेके बाद पद्मावती और उसकी सखियोंने शीघ्र अन्तःपुरमें लौट जाना चाहा। परंतु श्रीनिवासपर पत्थर फेंकवानेके बादसे पद्मावतीके मनकी प्रकृति बदल गयी। वह न उद्यानमें रहना चाहती थी, न अन्तःपुर-को चलना चाहती थी। वह कुछ भी नहीं बोल सकती थी। श्रीनिवासका जो रूप उसके मन-मुकुरपर प्रतिविम्बित था, अब वह उसके हृदयमें अङ्कित हो गया। वह स्तब्ध रह गयी। पद्मावतीकी यह हालत देखकर सखियाँ सहम गयीं और तुरंत उसे रथपर बिठाकर अन्तःपुरमें ले चलीं। फिर उन्होंने धरणीदेवीसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तदनन्तर यह सब समाचार आकाशराजाको मालूम हुआ तो उन्होंने तुरंत गुरु शुक महर्षिको बुलवाकर उनसे सब कुछ निवेदन किया। शुकने कहा—‘पद्मावती उपवनमें रहते समय डर गयी और इसी कारणसे उसका मन चञ्चल हो गया। उसको स्वस्थ करनेके लिये एक उपाय बताता हूँ, सुनो। अगस्त्यके आश्रममें शिवकी जो मूर्ति है, ग्यारह ब्राह्मणोंसे उसका अभिषेक कराकर, वह पवित्र जल पद्मावतीपर छिड़कनेसे वह स्वस्थ हो जायगी।’ यह सुनकर राजाने अभिषेकके लिये आवश्यक सामग्री मँगवायी और ग्यारह ब्राह्मणोंको बुलवाकर शिवका अभिषेक करनेके लिये उनसे प्रार्थना की। वे ब्राह्मण तुरंत अगस्त्यके आश्रममें चले गये और वहाँ यथाविधि शिवका अभिषेक करते रहे।

इधर शेषाद्रिपर वल्मीकमें श्रीनिवास मौन साधे लेटे थे। वकुलादेवी स्वादिष्ट भोजन बनाकर श्रीनिवासके पास ले चली और उनसे बोली—‘बेटे ! उठकर स्नान करो। अब भोजन करनेका समय हो गया।’ पर श्रीनिवासने कुछ भी जवाब नहीं दिया। वह चुप रह गया। फिर वकुला बोली—‘हे श्रीनिवास ! दिनमें सोनेकी तुम्हारी आदत नहीं है। अब क्यों तुम इस तरह लेटे हुए हो ?’ यह कहकर उसने श्रीनिवासकी तरफ देखा तो उनकी आँखें खुली हुई हैं, वह कुछ भी नहीं बोलते।’ यह देखकर वकुलाने उनसे पूछा—‘वत्स ! तुमने इस तरह मौन क्यों साध रखा है ? मृगया खेलते समय क्या तुमने किसीको हानि पहुँचायी है या भक्त लोगोंको हिंस्र पशुओंसे कोई बाधा मिली है ?’ वकुलाने इस तरह उनसे अनेक प्रश्न किये, पर उन्होंने किसीका भी उत्तर

नहीं दिया। आखिर वकुलाने पूछा कि ‘क्या तुम किसी सुन्दरीको देखकर उसपर मोहित हुए हो ?’ यह प्रश्न सुनकर श्रीनिवासने सम्मतसूचक ढंगसे अपना सिर हिलाया। तब वकुलाने कहा—‘तब तो शीघ्र उठो और स्नान करके भोजन करो। मैं उस भाग्यशालिनीका पता लगाऊँगी, जिसने तुमको मुग्ध कर दिया और उससे तुम्हारा विवाह करूँगी।’ यह सुनकर श्रीनिवास संतुष्ट हुए और स्नान करके उन्होंने भोजन किया। तब वकुलाने श्रीनिवाससे पूछा—‘तुम जिसपर मोहित हुए हो, वह सुन्दरी कहाँ है ? उसके कुल, गोत्र और नाम क्या हैं ? तुम क्यों उससे विवाह करना चाहते हो ? उससे तुम्हारी भेंट कैसे हुई ? ये सब बातें सविस्तर कहो।’

वकुलाके ये सब प्रश्न सुनकर श्रीनिवासने यों कहा—‘माँ ! यहाँसे एक योजनकी दूरीपर नारायणपुरम् नामक एक नगर है। वहाँ आकाशराजा नामक एक चन्द्रवंशी राजा राज्य करता है। पद्मावती नामकी उसकी पुत्री उपवनमें फूल तोड़ रही थी। उस समय मैं एक मस्त हाथीका पीछा करता हुआ उस उद्यानमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ उस मस्त हाथीने पीछे मुड़कर सँड ऊपर उठाकर मुझे प्रणाम किया और बड़े जोरसे चिंगाड़कर चला गया। वहाँ दिव्य सुन्दरी पद्मावती-को देखकर मैं उसपर मोहित हो गया। उसे अपनी इच्छा बताकर मुझसे विवाह करनेको कहा। यह सुनकर वह बड़े क्रोधमें आयी और अपनी सखियोंसे मेरे ऊपर पत्थर फेंकवाये। मगर मैं इसके बदलेमें कुछ भी नहीं कर सका; क्योंकि उसपर मेरा मन लगा हुआ है। उन पत्थरोंकी मारसे अपनेको बचाकर यहाँ भाग चला। मेरा घोड़ा तो पत्थरोंके प्रहारसे घायल होकर वहाँ मूर्छित हो गया। किसी भी तरहसे हो, अब पद्मावतीसे मेरे विवाहका प्रयत्न करना चाहिये।’

यह सब सुनकर वकुलाने फिर श्रीनिवाससे पूछा कि ‘तुम पद्मावतीसे ही क्यों विवाह करना चाहते हो ?’ यह सुनकर श्रीनिवासने फिर कहना शुरू किया—‘माँ ! मैंने रामावतारमें रावण और कुम्भकर्णका वध करके विभीषणको लंकाका राज्य दिया। सीता कुछ कालतक लंका में रही। इसलिये सीतासे अग्निप्रवेश कराया गया। इस अवसरपर अग्निदेवने मुझे दो सीताओंको सौंपा। तब मैंने अग्निदेवसे पूछा कि यह दूसरी सीता कौन है ?

‘अग्निदेवने कहा—यह वेदवती है। वह पिताकी इच्छा-के अनुसार विष्णुदेवसे विवाह करनेके लिये हिमाञ्चल प्रान्त-

संख्या ८]

में तपस्या करती रही। रावणने उससे मिलकर अपनेसे विवाह करनेको कहा। वेदवतीने इन्कार किया और उसे अपनी इच्छा स्पष्ट बता दी। फिर भी रावण उसकी बातपर ध्यान न देकर उससे बलात्कार करनेको उद्यत हुआ। लाचार होकर वेदवतीने अपनी तपस्याकी महिमासे वहाँ अभिकुण्ड तैयार किया और रावणको यह शाप देकर उसमें प्रवेश किया कि मेरी-जैसी स्त्रीके द्वारा तुम अपने वंशसहित निर्मूल हो जाओ।

तब वेदवतीको मैंने अपनी पत्नी स्वाहादेवीके पास रक्खा। जब रावण सीताको ले जा रहा था, तब उससे मिलकर मैंने कहा—‘हे रावण ! निजी सीता मेरे पास है। श्रीरामने उसको मेरे पास रक्खा है। तुम जिसको लिये जा रहे हो वह माया सीता है। मैं निजी सीताको तुम्हें सौंप दूँगा। इसलिये तुम माया सीताको छोड़ दो, इसे ले जाओ।’ रावणने इन बातोंका विश्वास करके निजी सीताको छोड़ दिया और वेदवतीको ले चला।

श्रीनिवासने फिर कहा—‘माँ ! सुनो, तब सीताने प्रणाम करके मुझसे प्रार्थना की कि जिसने मेरे लिये लंकामें कई कष्टोंको उठाया ऐसी वेदवतीको स्वीकार कीजिये।’ सीताको अपनी स्वीकृति-सम्पत्ति देकर मैंने कहा कि ‘मैं इस अवतारमें एकपत्नीव्रतका पालन करता हूँ और इसीलिये कलियुगमें वेदवतीसे अवश्य विवाह करूँगा। अपने इसी वचनके अनुसार अब मुझे पद्मावतीसे विवाह करना चाहिये।’

श्रीनिवासकी ये सब बातें सुनकर वकुला चकित हो गयी और उनसे कहा कि ‘मैं अभी जाकर धरणीदेवीसे मिलूँगी और उन्हें समझाकर यह कार्य सम्पन्न करूँगी।’

वकुला उसी क्षण वहाँसे निकली और नारायणपुरम्की तरफ चली। कुछ दूर जानेके बाद रास्तेमें उसने देखा कि अगस्त्यके आश्रमके पास बड़े वैभवसे शिवकी पूजा चल रही है। तब उसने वहाँकी दासियोंसे पूछा कि ‘वहाँ क्या हो रहा है ?’ उन्होंने यों कहा—‘नारायणपुरम्के राजा आकाशराजकी पुत्री पद्मावती अपने उपवनमें जब विहार कर रही थी तब एक किरात मृगया खेलता हुआ वहाँ आ पहुँचा। वह पद्मावतीको देखकर पागल-सा हो गया और उससे विवाह करनेको कहा। यह सुनकर पद्मावती बड़े क्रोधमें आयी और अपनी सखियोंके द्वारा उसपर पत्थर फेंकवाये। उस समयसे लेकर पद्मावतीका चित्त चञ्चल है।

उसे स्वस्थ करनेके लिये अब यहाँ शिवका अभिषेक किया जा रहा है। अभिषेकका पवित्र जल उसपर छिड़का जायगा।’ यह कहकर उन्होंने वकुलासे पूछा कि ‘तुम कौन हो और कहाँ जा रही हो ?’ वकुलाने जवाब दिया कि ‘मैं धरणीदेवीके दर्शन करने जा रही हूँ।’ इतना कहकर वकुला नारायणपुरम्की तरफ बढ़ गयी।

उधर वकुलाके शेषाचल छोड़नेके दूसरे ही क्षणसे श्रीनिवासका मन बड़े संदेहमें पड़ गया कि वकुलाके द्वारा कार्य सफल होता है या नहीं। इसलिये वे स्वयं पुलिन्दस्त्री (पुल्कसी) का वेष धरकर नारायणपुरम् खाना हुए। गोदमें बच्चेको उठाकर अब यह पुलिन्द-स्त्री नारायणपुरम्की गलियोंमें ‘भविष्य बताऊँगी’ यह कहती हुई घूमने लगी। यह समाचार दासियोंके द्वारा धरणीदेवीको मालूम हुआ तो उसने तुरंत पुलिन्द-स्त्रीको अन्तःपुरमें बुलवाया और उसे एक उचित आसनपर बिठाकर उससे कहा कि ‘मेरे मनमें एक प्रबल इच्छा है और उसे ठीक-ठीक बताओगी तो तुम्हें मुँहमाँगी भेंट दूँगी।’ यह सुनकर उसने धरणीदेवीसे कहा—‘हे रानी ! मैं अपने कुलदेवताकी कृपासे सारा भविष्य सही-सही बता दूँगी। इसमें जरा भी संदेह मत करो। मगर पहले मुझे और मेरे बच्चेको भोजन दो। भोजन करनेके बाद मैं भविष्य बताकर तुम्हें संतुष्ट करूँगी।’ यह सुनकर धरणीदेवी बहुत खुश हुई और पुलिन्द-स्त्री तथा उसके बच्चेको पाँच प्रकारके भक्ष्य तथा खीरके साथ स्वादिष्ट भोजन दिया। भोजन करनेके बाद पुलिन्द-स्त्रीने ताम्बूल माँगा और तुरंत उसे वह दिया गया। फिर उसने धरणीदेवीको स्नान करके आनेको कहा। इतनेमें पुलिन्द-स्त्रीने अपनी टोकरीसे आवश्यक सामग्री बाहर निकालकर रख दी और हाथमें मंत्र-दंड-जैसी एक लकड़ी लेकर भविष्य कहनेके लिये तैयार बैठ गयी। धरणीदेवीने स्नान करके दुकूल वस्त्रोंको पहन लिया और पुलिन्द-स्त्रीके पास आ बैठी। तब उसने रानीसे पूछा कि ‘तुम्हारा कुलदेव कौन है ?’ धरणीदेवीने जवाब दिया कि ‘हमारा कुलदेव शेषाद्रिवासी है। तब पुलिन्द-स्त्रीने इस तरह भविष्य बताना शुरू किया।

‘माँ ! तुम्हारी बात सच है। लो, शेषाद्रिवासी तुम्हारे सामने ही है। वह तुम्हारा भविष्य ठीक-ठीक बता सकता है। सुनो, सुनो, हे रानी ! जब तुम्हारी पुत्री पद्मावती

उपवनमें विहार करती रही तब श्रीनिवास मृगया खेलता हुआ इस उपवनमें आ पहुँचा। सखियोंके साथ फूल तोड़ती रहनेवाली पद्मावतीका लवण्य देखकर श्रीनिवास उसपर मोहित हो गया और उससे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। पद्मावतीने उसे एक किरात समझकर अपनी सखियोंके द्वारा उसपर पत्थर फेंकवाये। पत्थरोंकी मारसे अपनेको बचाकर वहाँसे जाते समय श्रीनिवासने एक बार पद्मावतीको अपना निजी स्वरूप दिखाया और वाद वहाँसे चले गये। उसी क्षणसे तुम्हारी पुत्रीका मन श्रीनिवासपर लगा और वह अपनी सुध भूली हुई है। यदि श्रीनिवाससे इसका विवाह किया जाय तो इसका मन स्वस्थ हो जायगा। ऐसा नहीं करेंगी तो अनतिकालमें वह मर जायगी। यह सुनकर धरणीदेवीने पद्मावतीके द्वारा सच्ची बात मालूम कर ली और पुल्कसीसे पूछा कि वे यहाँ आकर हमसे विवाहका प्रस्ताव नहीं करें तो श्रीनिवाससे पद्मावतीका विवाह कैसे किया जाय? तुरंत पुलिन्द-स्त्री बोल उठी कि 'अभी थोड़ी देरमें शेषाद्रिसे एक बूढ़ी औरत कन्याकी खोजमें यहाँ आयेगी और उसके द्वारा सभी कार्य सफल हो जायेंगे।' तब पुलिन्द-स्त्री धरणीदेवीसे कई तरहके पुरस्कार पाकर वहाँसे चली गयी। अन्तःपुरसे बाहर आकर श्रीनिवासने, जो अभीतक पुलिन्द-स्त्रीके वेपमें थे, अपना निजी रूप पाया और शेषाद्रि वापिस लौट आये।

तदनन्तर अगस्त्यके आश्रमसे अभिषेकका पवित्र जल लाया गया और वह पद्मावतीपर छिड़का गया। तब दासियाँ एक बूढ़ी औरतके साथ वहाँ आ पहुँचीं और धरणीदेवीसे बोलीं कि वकुलादेवी आपके दर्शन करनेके लिये आयी हैं। धरणीदेवीने वकुलाका स्वागत करके उससे कुशल-समाचार पूछा और उसे एक उचित आसनपर बिठाकर यों प्रश्न किया—'माई! आप कहाँसे आ रही हैं और आपके आगमनका उद्देश्य क्या है?' वकुलाने जवाब दिया—'मैं तुम्हारी पुत्रीके विवाहके बारेमें प्रस्ताव करने आयी हूँ।' यह सुनकर धरणीदेवीने कहा—'हम तो और एक वरकी खोजमें हैं। फिर भी वरके निवास, कुल, गोत्र, नाम, नक्षत्र आदि बतायें तो विवाहपर विचार किया जायगा।' वकुला खुश होकर बोली—'वरका निवास शेषाचल है। उसका वंश चन्द्रवंश है, वसिष्ठ-गोत्र है, उसका नक्षत्र श्रवण है। नाम कृष्ण है। फिर उसके बन्धु-बान्धवोंके बारेमें सुनो। वसुदेव उसका पिता है और देवकी उसकी माता। बलराम उसका वंशभाई है। अर्जुन उसका मित्र और पाण्डव उसके बान्धव हैं। वर सुन्दर, बलवान्, विद्यावान्, धनवान्, बुद्धिमान् एवं सदाचारसम्पन्न पच्चीस वर्षीय युवक है।'

यह सुनकर धरणीदेवीने वकुलासे पूछा कि ऐसे 'सर्वशुभ-लक्षणसम्पन्न वरका विवाह अभीतक क्यों नहीं हुआ?' वकुलाने जवाब दिया—'हे रानी! बाल्यहीमें उसका विवाह हो चुका। किंतु संतान-हीनताके कारण उसका दूसरा विवाह करनेका विचार है। वस, बात यही है; इसको छोड़कर उसमें और कोई दोष नहीं है।' यह सुनकर धरणीदेवी संतुष्ट हुई और अपने पति आकाशराजाके पास जाकर उनसे ये सभी बातें सविस्तर कह सुनायीं जो पुलिन्द-स्त्री तथा वकुलासे कही गयीं। सारा वृत्तान्त जानकर आकाश-राजाके आनन्दकी सीमा न रही और उन्होंने श्रीनिवाससे अपनी पुत्रीका विवाह करनेका निश्चय कर लिया।

अब आकाशराजाने बृहस्पतिको बुलवाया और उनसे श्रीनिवासका वृत्तान्त पूछा। उन्होंने कहा—'श्रीनिवासका वृत्तान्त मुझे अच्छी तरह नहीं मालूम है, परंतु सदा उसी क्षेत्रमें रहनेवाले शुक महर्षि उसका वृत्तान्त खूब जानते हैं। इसलिये उन्हें बुलवाकर मालूम कर लीजिये।'

तुरंत आकाशराजाने अपने भाई तोंडमानको बुलवाकर कहा—'भाई! अभी शुकके आश्रमको जाओ और उनसे ऐसा कहकर लिवा लाओ कि आकाशराजाने पद्मावतीके विवाहके विषयमें परामर्श करनेके लिये आपको बुलाया है।' तोंडमान शीघ्र शुकके आश्रमको चले गये और उन्हें राजाका संदेश सुनाकर साथ लिवा लाये। शुक मुनीन्द्रको देखते ही राजाने दण्ड-प्रणाम करके उनका स्वागत किया और एक उचित आसनपर बिठाकर उनसे इस प्रकार बोले—'हे मुनीन्द्र! मैंने शेषाद्रिवासी श्रीनिवाससे अपनी पुत्री पद्मावतीका विवाह करनेके विषयमें परामर्श करने आपको बुलाया है। इसलिये अब आपसे श्रीनिवासका वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ।'

शुक मुनीन्द्रने श्रीनिवासका वृत्तान्त कहना आरम्भ किया—'हे राजा! श्रीनिवास साक्षात् परब्रह्म हैं। ऋषि-मुनिलोग उनके दर्शन प्राप्त करनेके लिये अनेक वर्षोंतक घोर तपस्या करते हैं। सब भोग-विलास छोड़कर केवल कंद-मूल-फलपर निर्भर रह जो सदा-सर्वदा उन्हींके चिन्तन, मनन और भजनमें अपनेको अर्पित कर देते हैं, उन्हें भी उनका दर्शन-लाभ दुर्लभ ही होता है। इसलिये यह आपका उनका दार्शन-लाभ दुर्लभ ही होता है। इसलिये यह आपका जो अनेक जन्मोंके पुण्यफलके कारण ही सम्भव हो सकता है। इस कन्यादानके द्वारा आपके कई पीढ़ियोंके लोग भगवान्के कृपापात्र बन सकते हैं। इसलिये आप इस कार्यमें विलम्ब मत करें। शीघ्र आप अपने बन्धु-बान्धवोंको बुलवाकर यह शुभ कार्य सफल करें। इससे आपका जन्म पवित्र हो

संख्या ८]

जायगा और आपके पितर लोग बैकुण्ठवासी बनेंगे। आपके कारण इस विवाहके शुभ अवसरपर हम परमात्माके दर्शन करेंगे। यह सुनकर आकाशराजाने उसी समय अपने सब वन्दु-बान्धव तथा मित्रोंको बुलवाकर उनसे कहा—‘भाइयो ! मैंने श्रीनिवाससे अपनी पुत्री पद्मावतीका विवाह करनेका निश्चय किया है। इसके लिये आपलोग अपनी सम्मति दें तो मैं अभी इस सभामें प्रतिज्ञा कर दूँगा।’ यह सुनकर वे सब प्रसन्न हुए और एककण्ठसे बोले उठे कि आपका यह प्रस्ताव हम सबको स्वीकार है। तब राजाने उन सबके सामने श्रीनिवाससे अपनी पुत्री पद्मावतीका विवाह करनेकी प्रतिज्ञा की। फिर वे सब खुशी-खुशी अपने-अपने स्थानको लौट गये।

आकाशराजाने अन्तःपुरमें जाकर धरणी देवीसे यों कहा—‘तुम शेषाचलसे आयी हुई वकुला देवीको विवाहके निश्चयका यह शुभ समाचार बताकर उसे शेषाचल भेज दो।’ उसी तरह धरणीदेवीने वकुलासे यह कहकर भेज दिया कि ‘आपका कार्य सफल हुआ है और शीघ्र जाकर श्रीनिवाससे यह शुभ संवाद कह दीजिये।’ तदनन्तर आकाशराजाने शुक मुनीन्द्रके परामर्शसे श्रीनिवासके लिये भी एक पृथक् पत्रिका भेजी, जिसमें अपनी पुत्री पद्मावतीको विवाह कर अपनी भार्या बनानेकी प्रार्थना श्रीनिवाससे की गयी थी। आकाशराजका यह पत्र लेकर स्वयं शुकदेवजी शेषाचल पहुँचे, जिन्हें देखते ही श्रीनिवास प्रणामकर गले मिले। आशीर्वचनके साथ शुकदेवजीने शुभ संवाद-सूचक आकाशराजाकी वह पत्रिका श्रीनिवासके कर-कमलोंमें समर्पित कर दी। श्रीनिवास यह पत्रिका पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए और तत्क्षण ही उन्होंने अपना स्वीकृति-सूचक पत्र आकाशराजाके नाम लिखकर शुकदेवजीके हवाले कर दिया।

इधर पत्रोंके आदान-प्रदानके बाद नारायणपुरम्से उसी समय लौटी वकुलाके निकट जा श्रीनिवासने प्रणाम कर समाचार पूछा। वकुलाके द्वारा सब वृत्त जानकर श्रीनिवासने विवाहके लिये आवश्यक तैयारियाँ करनेके निमित्त शेष और गरुड़के द्वारा ब्रह्मा आदि सभी देवताओंको बुलवाकर उनसे कहा—‘मैंने आकाशराजाकी पुत्रीसे विवाह करनेका निश्चय कर लिया है। हमें इष्ट-मित्रों और परिवारके साथ आकाशराजाके नगरको पहुँचना है। विवाहकी शुभ तिथि वैशाख शुक्ल दशमी है। अतः इसके पूर्व ही हमें यहाँके सब कार्य समाप्त करना है। हे ब्रह्मा ! इस विवाहकार्यके लिये आवश्यक धन मेरे पास नहीं है, अतः कार्यकी सफलताके लिये ऋण लेना आवश्यक होगा। यह कार्य

आपको करना चाहिये।’ श्रीनिवासके ये वचन सुनकर सभी देवगण आनन्दसे भर गये। तब ब्रह्माने कुवेरसे कहा—‘इस विवाह-कार्यके लिये श्रीनिवासको कुछ ऋण दिया जाय।’ कुवेरने जवाब दिया—‘केवल मौखिक आधारपर किसीको भी ऋण कैसे दिया जा सकता है ? स्वर्ण, आभूषण, घर या जमीन गिरवी रखे बिना ऋण देना सम्भव नहीं है।’ यह सुनकर ब्रह्मा बोले—‘अब श्रीनिवासके पास न स्वर्ण है, न घर है। गिरवी रखनेके लायक कोई भी चीज नहीं है। इसलिये ऋण-पत्र लेकर एक करोड़, चौदह लाख रामनिष्कोंका ऋण दो। हर वर्ष एक लाख रामनिष्कोंका व्याज चुकाया जायगा और कलियुगके अन्तमें पूरा मूलधन चुकाया जायगा।’ कुवेरने यह स्वीकार कर श्रीनिवाससे उसी तरह एक ऋणपत्र लिखा लिया। इस ऋणपत्रके साक्षी बने ब्रह्मा और पुष्करिणीके किनारेपर रहनेवाले पीपलके दो पेड़।

कुवेरसे धन लेकर विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं। सब देवतागण भिन्न-भिन्न कार्योंमें नियुक्त किये गये। तदनन्तर ब्रह्माने जाकर श्रीनिवाससे कहा—‘सब कुछ तैयार है और शीघ्र मङ्गल-स्नान कीजिये।’ परंतु अब श्रीनिवासका मन लक्ष्मीकी अनुपस्थितिके कारण बहुत व्याकुल था। श्रीनिवासकी यह मनोव्यथा अनुभव कर ब्रह्माने श्रीनिवाससे कहा—‘आप क्यों इस तरह व्याकुल होते हैं ? हममेंसे किसी एकको भी अभी लक्ष्मीकी लाने भेज दीजिये।’ तब श्रीनिवासने सूर्यको बुलाकर उनसे कहा—‘तुम करवीपुर जाकर लक्ष्मीको लिवा लाओ।’

श्रीनिवासके आज्ञानुसार सूर्य करवीपुर पहुँचे। वहाँ लक्ष्मीको नमस्कार कर उनसे श्रीनिवासकी बात कह सुनायी और उन्हें रथपर बिठाकर शेषाचल आ पहुँचे। तब श्रीनिवास लक्ष्मीके सामने आये। इस प्रकार सामने आये पतिको देख लक्ष्मीदेवी तत्क्षण रथसे नीचे उतरों और भक्तिपूर्वक उनके पाँव धोकर चमेलीके फूलोंसे उनकी पूजा की। फिर उन्होंने कपट-नाटकके सूत्रधार श्रीनिवाससे पूछा कि ‘अब मुझे बुलानेका क्या हेतु है ?’ श्रीनिवासने उत्तर दिया—‘हे लक्ष्मी ! मैंने रामावतारमें तुमको जो वचन दिया था, उसे पूरा करनेका अब समय आ गया है। इसलिये तुम्हारी इच्छाके अनुसार अब वेदवतीसे विवाह करनेको तैयार हूँ।’ श्रीनिवासके ये वचन सुन लक्ष्मी परम संतुष्ट हुई। इस बीच ब्रह्माने लक्ष्मीसे कहा—‘विलम्ब हो रहा है, श्रीनिवासका मङ्गल-स्नान करानेकी तैयारी कीजिये।’ (क्रमशः)

मधुर

दिव्य प्रेमकी परमोज्ज्वल चिदानन्दमयी मूर्ति
श्रीराधाजी श्यामसुन्दरसे कहती हैं—

देख रही सुन रही सभी जो
सुनने और देखने योग्य ।
पर मैं जुड़ी सदा ही तुमसे
भोक्ता तुम्हीं, तुम्हीं सब भोग्य ॥
मेरा दर्शन श्रवण हो रहा
सभी सहज तुममें संन्यस्त ।
मुझे बना माध्यम तुम रखते
नित सेवा-लीलामें व्यस्त ॥
सुनना कहना तथा देखना
करना सब चलता अश्रान्त ।
होने पर देते न कभी तुम
उनसे भ्रान्त तथा आक्रान्त ॥
कर तुम रहे विविध लीला
सब बना नगण्य मुझे आधार ।
नित्य दिव्य बल कला शक्ति
निजसे करते लीला विस्तार ॥

मेरे श्यामसुन्दर ! जो कुछ भी यहाँ सुनने और देखनेयोग्य है, वह सभी मैं सुन भी रही हूँ और देख भी रही हूँ । पर वस्तुतः अन्तरसे तो सदा-सर्वदा ही केवल तुम्हींसे जुड़ी हूँ, यथार्थमें तुम्हीं भोक्ता हो और सारे भोग्य भी तुम्हीं हो । देखने-सुननेवाले भी तुम्हीं हो और देखने-सुननेके सारे पदार्थ भी तुम्हीं हो । मेरा देखना और मेरा सुनना—सभी सहज ही केवल तुम्हींमें संन्यस्त हो रहा है । मुझे माध्यम बनाकर तुम्हीं मुझे नित्य सेवा-लीलामें संलग्न रखते हो । इसीसे सुनना, देखना, कहना और करना—यहाँ सभी कुछ निरन्तर चल रहा है । पर इस सुनने-देखने आदिसे मुझे न तो कभी तुम भ्रममें पड़ने देते हो और न वे क्रियाएँ मुझपर कोई भी प्रभाव ही डाल सकती हैं । तुम मुझे कभी इस भ्रममें नहीं पड़ने देते कि मेरी इन्द्रियाँ, मेरे सुखके

लिये विषयोंमें लगी हैं और न कभी इन्द्रिय तथा उनके कोरे भी विषय मुझपर आक्रमण करके मुझे अपने वशमें कर सकते हैं । वस्तुतः मुझ नगण्यको आधार बनाकर तुम्हीं विविध प्रकारकी समस्त लीलाएँ कर रहे हो । इन लीलाओंमें जो दिव्यता है, वह तुम्हारी ही है । तुम ही अपने दिव्य बल, दिव्य कला और दिव्य शक्तिसे नित्य-निरन्तर लीला का विस्तार कर रहे हो ।

चरण तुम्हारे पावनमें आ
बसी पूर्ण मेरी आसक्ति ।
भोग-राग मिट गया, हुई
प्राणोंकी तुममें ही अनुरक्ति ॥
नहीं छोड़ने देते ममता
मुझे, छोड़ते कभी न आप ।
एकमात्र ममतास्पद मेरे
तुम्हीं बने रहते बे माप ॥
सब कमोंका प्रेरक है अब
केवल यह ममता-संबन्ध ।
बँधी इसीमें मैं, तुमने भी
है स्वीकार क्रिया यह बन्ध ॥
स्वयं बँधे ममतामें, मुझको
बँध किया मायासे मुक्त ।
रहे देख यों मुझे, देखता
भोगोंको ज्यों विषयासक्त ॥

श्यामसुन्दर ! मेरी सारी आसक्ति पूर्णरूपसे केवल तुम्हारे पावन चरणोंमें ही आकर सदाके लिये बस गयी है । लोक-परलोकके भोगोंका सारा अनुराग नष्ट हो गया है । मेरे प्राणोंकी केवल तुम्हींमें अनुरक्ति हो गयी है । तुमने मेरी सारी ममताको केवल अपनेमें ही लगा लिया है, उस ममताको मुझे कभी छोड़ने देते ही नहीं । केवल तुम्हीं एकमात्र 'मेरे' हो, यह अनुभव कभी तनिक भी हटता ही नहीं और न तुम ही मेरे प्रति अपनी ममताका त्याग करते हो—सदा मुझे केवल

अपनी ही वस्तु मानते हो। प्रियतम ! केवल तुम्हीं
एकमात्र सदा-सर्वदा मेरे परिमाणरहित ममतास्पद बने
रहते हो। मेरे सारे कर्मोंका यदि कोई प्रेरक है तो
वह केवल यह अनन्य ममताका सम्बन्ध ही है। मैं
सदा इसीसे बँधी हूँ और तुमने भी इस पवित्र ममताके

बन्धनको स्वीकार कर लिया है। मुझे मायासे मुक्त
करके तुमने अपनी अनन्य ममतासे बाँध लिया है और
खयं तुम भी मेरी ममतामें बँध गये हो और इसलिये
मेरी ओर यों ललचायी दृष्टिसे देखते रहते हो जैसे
विषयासक्त मनुष्य विषयभोगोंकी ओर देखता रहता है।

सदुपयोग

[कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

निर्जन वनमें संत अपनी धूनीके समीप पद्मासन
लगाये बैठे थे। मुखमण्डलपर अपूर्व तपस्तेज झलक रहा
था। पास ही दो सिंह-शावक आपसमें कल्लोल कर रहे
थे। तने बोरीलालको देखते ही स्नेहसनी मधुर वाणीमें
कहा—बेटा ! यहाँ क्यों आया ? चिन्ता तो तेरे घरपर ही
बैठी है, जा घरको ।

बोरीलाल संतके वचनोंका अर्थ समझ न सका और
विनीत भावसे अपनी व्यथा सुनाने लगा। किंतु अनेक
अनुनय-विनय करनेपर भी संत फिर नहीं बोले।

निराश हो वह संतजीको साष्टाङ्ग प्रणाम कर घरकी
ओर चल दिया। मार्गमें उसका विचार-प्रवाह चला—
‘ये कैसे संत हैं ! न बात सुनी, न समाधान किया।
जन्ता तो इन्हें उच्चकोटिके संत बताती है। मुझे भी
आशा थी कि संत धन-प्राप्तिका कोई कारगर उपाय अवश्य
बतारेंगे, जिससे मेरी शारदाके विवाहकी चिन्ता मिटेगी।
पत्नीने कहा था—‘मैं आपको अकेला कभी नहीं जाने
दूँगी। सम्भव है, कोई हिंसक पशु आक्रमण कर बैठे तो
मैं साहसके साथ उसका सामना कर आपकी रक्षा करनेमें
सहायक बनूँगी।’ मैंने पत्नीसे कहा था—‘प्रिये ! तुम
जाको राखें साइयाँ, मारि सकैं नहीं कोय।

—इसपर अटल विश्वास रखो।’ इस तरह पत्नीको
समझाकर मैं संतके पास आया था। अब खाली हाथ
लौटकर पत्नीको कैसे मुँह दिखाऊँगा।’ यह सोचते-सोचते
बोरीलाल खिन्न मनसे घर लौट आया। वहाँ जो उसने

देखा, उससे उसके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। एक
परिचित व्यक्ति बैठा हुआ इसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

नमस्कारके पहले ही वह व्यक्ति बोल उठा—‘यह
लो, आपके १०००) रुपये। छः वर्ष बीत जानेपर भी
यह निधि आपको देना मैं भूला नहीं था, जिसे आज
देकर संतोषकी साँस ले रहा हूँ।’

बोरीलाल रुपये देख एवं व्यक्तिकी बातें सुनकर
आश्चर्यचकित हो गया। भगवान्को हजारों धन्यवाद देने
लगा। संतकी वाणी सत्य हुई, उसकी मनःकामना सिद्ध
हुई। बोला—‘भाई साहब ! आप इस घोर कलिकालमें
मनुष्यके रूपमें देवता हो।’

ओवरसियर बोरीलालके द्वारा रामप्रकाश ठेकेदारको
एक बड़ी निधिका पुल बनानेका ठेका दिलवाया गया था
और १०००) रुपया दस्तूरी (घूस) लेना निश्चय हुआ
था। उसके पश्चात् बोरीलालका स्थानान्तर अन्यत्र हो गया।
उस बातको शनैः-शनैः छः वर्ष बीत जानेसे बोरीलाल समझ
बैठा था कि अब यह निधि कदापि नहीं आनी है।
बोरीलालको जवान पुत्रीके विवाहकी जो चिन्ता थी, वह इस
अर्थ-प्राप्तिसे कुछ दूर हो गयी और मनमें उन्हीं संतके
दर्शनोंकी लालसा बलवती बन गयी।

(२)

‘अरे भाई ! यह रिश्तका पैसा फलता नहीं है। मैंने
अपने जीवनमें एक नहीं, अनेक घूसखोरोंको गिराइते
और दरन्दरेके भिलारी होते देखा है। सच मानो, मेरे
पिताजी रिश्त नहीं लेते थे और इसी ईमानदारीसे

उन्होंने सरकारी बकायाके कोई दो लाख रुपये, जिसे पहलेके अधिकारियोंने घूस ले-लेकर छोड़ रक्खा था, परगनेके लोगोंसे वसूल करके राजाजीको दिये थे। जिससे नरेश उनकी ईमानदारी, स्वामिभक्ति और कर्तव्य-निष्ठाको देखकर उनपर अत्यन्त प्रसन्न थे। किंतु घूस न लेनेका प्रण होनेपर भी जब वे मौन होकर नित्य भगवान्की पूजा-पाठ करने बैठते, तब अवसर पाकर कोई स्वार्थी घूसकी निधि उनके आसनके नीचे सरका जाता था। पिताजीके द्वारा अस्वीकृतिका संकेत करते रहनेपर भी वह व्यक्ति नहीं मानता। निदान वह निधि तो घरमें रह ही जाती। परंतु उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि पिताजीकी मृत्युके बाद हमारा घर चौपट हो गया। मेरी माताने चक्की पीस एवं खेतोंमें मजूरी कर-करके मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया।

बोरीलाल रियायट तहसीलदार शान्तिकुमारकी उपर्युक्त चेतावनी सुनकर आश्चर्यमें पड़ गया। पर, अचानक पायी निधिको त्यागनेमें त्याग-भावना चाहिये, जो बोरीलालमें थी नहीं। वह रिश्तत लेनेकी कलामें अभ्यस्त हो रहा था, अतः तहसीलदारकी सत्य बातको स्वार्थवश न मानकर बोला—‘अजी साहब ! कई बड़े-बड़े अधिकारी घूस लेकर ऐशो-आरामकी जिंदगी बेखटके बिता रहे हैं, उनका कुछ नुकसान कभी होते देखा नहीं।’ ‘बोरी ! भूलो मत, अभी नहीं तो भविष्यमें उन्हें जरूर कुफल मिलनेवाला है।’ तहसीलदारने कहा।

तहसीलदारका स्पष्ट उत्तर सुनकर बोरीलालके मनमें संदेह और भय उत्पन्न हुआ। क्या मैं ये रुपये ठेकेदारको वापस लौटा दूँ। सयानी शारदाके विवाहके निमित्त पड़ोसी हमें ताने सुनाते हैं। आजकल कालेजका जीवन दूषित गिना जाता है। तब अब क्या करूँ।

ये विचार बोरीलालके अन्तरमें निरन्तर चलते रहे। एक दिन उसके परम मित्र हरिवल्लभ गोशालाका जीर्णोद्धार कराने हेतु सलाह करनेको आये। नगरसे कुल ४००) रुपया चंदेमें एकत्र हुआ था। ६००) रुपयेकी कमी थी, जो कहाँसे पूरी हो ? बोरीलाल बोला—‘देखो, मैं कुछ उपाय सोचूँगा।’

पत्नी प्रियंवदासे, एक दिन संध्या-समय, बोरीलालने कहा—‘सोचा है तुमने, कई भुक्त-भोगियोंने मुझको अपनी

बीती सुनाते हुए सावधान किया है कि घूसकी निधि घरकी अन्य पूँजीको भी अपने साथ बरबाद कर देती है। कहीं ऐसा न हो कि शारदाका विवाह इन रुपयोंसे कर देनेपर वह सुसरालमें सुख न पावे; क्योंकि यह खरे पसीनेका पैसा तो है नहीं। जिसे सारी दुनिया बुरा बताती है, वह घूसका—मुफ्तका पैसा घरमें आया है। हमें आगे इज्जत-आबरूसे रहकर ईमानदारीकी आयसे बच्चोंका पालन-पोषण करते हुए उनमें उत्तमोत्तम संस्कार भरने हैं। तुम्हारी क्या सम्मति है ?’

‘मेरी इकलौती शारदाका सुहाग अमर रहकर वह पतिकी आशमें चलती हुई खूब सुख भोगे। किंतु यदि इस घूसके धनसे परमात्मा न करे, उसके कुल अनिष्ट होनेकी सम्भावना हो, तो धिक्कार है ऐसे पैसेको। मैं भगवान् सूर्यनारायणकी भक्तिमें तन्मय हूँ उनके ‘आदित्य-हृदय’ स्तोत्रमें वर्णित विधिके अनुसार साधना कर पुत्रके समान यह पुत्री पायी है। हे दीनदयाल दिवाकर देव ! आप ही ब्रह्मा, शिव और विष्णुरूप माने गये हैं। * आपकी शारदा बेटीका बाल भी बाँका न हो।’

पति उत्तर पानेकी प्रतीक्षामें था। प्रियंवदा मन-ही-मन उपर्युक्त प्रार्थना करती हुई बोली—‘जब दूसरा प्रबन्ध नहीं है, तो इन्हीं रुपयोंसे शारदाका विवाह करना होगा। वर भी सुयोग्य मिल गया है, ऐसे सुअवसरको कैसे छोड़ दिया जाय। आप चिन्ता न करें। कृष्ण-वरुणालय मेरे भगवान् भास्करकी दयासे कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा।’

बोरीलाल अपने मनमें छिपी लालसाको पुष्ट करनेवाला पत्नीका उत्तर सुनकर प्रसन्न हुआ। पर उसके निष्पाप हृदयके एकान्त कक्षसे धीमी ध्वनि आयी—‘खोटा पैसा है, मोह छोड़ इसका।’ उसके चित्तमेंसे दूसरी चेतावनी यह भी ध्वनित हो रही थी—‘अभी तो इस निधिका उपयोग कर लो, आगे घूस न लेनेकी तौबा कर दो।’ परंतु करना क्या ? उसे अबतक तो घरमें घूसके इस धनको देख-देखकर अनुपम आनन्द होता रहता था, किंतु अब वही धन काले साँपकी तरह दिखायी दे रहा

* उदये ब्रह्मरूपस्तु मध्याह्ने तु महेश्वरः ।

अस्तामाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिस्तु दिवाकरः ॥

(भविष्यपुराण)

संख्या ८]

है। फिर भी यदि कोई उससे दृढ़तापूर्वक कह दे कि 'अनिष्टकी भावना छोड़, कर दे इसी धनसे पुत्रीका विवाह।' तो बोरीलालको इतना भारी हर्ष हो कि मानो दीनको काँटका खजाना मिल गया हों। किंतु मनस्तापको मिटानेका कोई आधार उसे नहीं मिला। मन-मस्तिष्क, भावना-भरोसा, भय-निर्भयता सभी उसके अधरमें झूल रहे थे। मनःस्थिति डाँवाडोल होनेसे पश्चात्तापके मारे उसकी यह दशा हो रही थी—

मरकर भी गिरफ्तारे-सफर है मेरी हस्ती।
दुनिया मेरे पीछे है, तो उकड़वाँ मेरे आगे ॥

(अर्श मस्तिश्यानी)

पत्नी बोल उठी—'किन विचारोंमें डूबे हो ? गोशालाका जीर्णोद्धार ?' पत्नीके प्रश्नमें मानो यह ध्वनि सुनकर बोरीलाल चौंक पड़ा। बोला—'क्या कहा तुमने ? अबकी बार जरा फिर कहना।' 'कहते-कहते दस वर्ष बीत गये। लड़की दो-चार बच्चोंकी माँ भी हो जाती। जाति-बन्धुओंके ताने सुन-सुनकर मेरा तो हृदय छलनी हो गया है, पर आपको परवा नहीं।' पत्नीकी रोषभरी बातें सुनकर बोरीलालको पुनः चिन्ता व्याप गयी। संक्षेपमें बोला—'मैं कुछ सोच रहा हूँ।'

(३)

'बड़े-बड़े संत-महात्माओं, योगी-यतियों, विरक्त-परमहंसों एवं भगवत्-भरोसे रहनेवाले दीनोंके मुखसे मैंने सुना है कि हरि ही सब समय सर्वत्र न जाने किस रूपमें आकर निहाल कर जाते हैं। मुझे तो प्रसुका दृढ़ विश्वास है। वे ४००) के ४००००) पलक मारते कर सकते हैं। नरसी मेहताके मायरेकी कथा प्रसिद्ध है।' इन विचारोंसे बोरीलालके चेहरेपर प्रसन्नता छा गयी और उसने विना किसी सोच-विचारके ६००)६० गोशालाके जीर्णोद्धारमें सहर्ष लगा दिये। पत्नीको शत भी नहीं होने पाया।

इधर, दीनबन्धु श्रीभगवान्का स्मरण कर शारदाका विवाह रच दिया गया। पाणिग्रहण-संस्कार हो जानेके पश्चात्

१-परलोक।

जब वरातियोंको भोजन करानेका समय आया, तो भोजन-सामग्रीका पूरा प्रबन्ध, हजारों उपाय करनेपर भी न हो सका। बोरीलाल सब ओरसे निराश हो चुपचाप भवनके एक शान्त कोनेमें छिपकर बैठ अधम-उधारन भगवान्से आँसू बहाकर प्रार्थना करने लगा। भोजनका समय ज्यों-ज्यों समीप आता जाता था, त्यों-त्यों उसकी प्रार्थनाका वेग अधिकाधिक बढ़ता जा रहा था। वह श्रीराधाकृष्ण भगवान्के पदारविन्दोंमें माथा टेककर, हृदयमें उनके दिव्य स्वरूपका ध्यान करते हुए गद्गद वाणीसे अटल विश्वासके साथ निरन्तर प्रार्थना करता ही गया। भगवान् तो कातर पुकार सुनते ही दौड़े आकर भक्तोंके कार्य सँवारते ही हैं। बोरीलालका आर्त्तनाद भी उन्होंने सुना। उसी समय रामपद बोहरेने आकर विवाह-मण्डपके एक एकान्त स्थानमें थैलीमेंसे कलदार रुपये उड़ेलकर ढेर कर दिया। वह लंबा-चौड़ा बलिष्ठ व्यक्ति अधिक व्याजसे ऋण देता और ऋणकी वसूलीमें कर्जदारकी इज्जत विगाड़नेमें जरा भी संकोच नहीं करता था। इसीसे लोग उसे स्वार्थी, असभ्य, लड़ाकू, लठैत और बेहद सूदखोर मानव समझते थे। आज वह कैसे रुपये लेकर आ गया, यह आश्चर्यकी बात थी।

इसी बीच बोरीलाल भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम कर चरणोदक ले आँसू पोंछता हुआ बाहर आया। उसे देखते ही रामपद बोला—'भाई ! जितना रुपया आपको चाहिये, उतना इस ढेरमेंसे ले लीजिये। मैं इन रुपयोंको कमी भी आपसे वापस नहीं लूँगा। यह भगवान्की शपथ लेकर कहता हूँ। सच मानो। रुपये लेनेमें संकोच जरा-सा भी मत करो।'

बोरीलाल बड़े असमंजसमें पड़ गया। पर अन्तमें रामपदके बहुत आग्रह करनेसे उसने आवश्यकतानुसार धन लेकर एक बड़े प्रीतिभोजकी व्यवस्था उसी समय कर दी। बोरीलालके मनको संतोष तो हुआ; किंतु इसका भेद किसी-को मालूम नहीं होने पाया।

×

×

×

यद्यपि बोरीलालने ६००) रुपये गोशालामें लगाये थे। घरमें केवल ४००) रहे थे; पर बात फूट गयी। केस चला

और बोरीलालको पापके प्रायश्चित्त-स्वरूप कारागारमें भी रहना पड़ा। अब उसके सामने गृहस्थी पालनेकी चिन्ता पुनः आ खड़ी हुई। उसे भारी पश्चात्तापके साथ तहसीलदारकी सीख याद आने लगी।

बेकारीमें कुछ मास वर्षोंकी भाँति बीते। नौकरी पानेके लिये जहाँ भी बोरीलाल गया, वहाँसे इन्कार ही मिला। भूखे रहनेकी घड़ी आ गयी। परंतु 'चींटीको कन, हाथीको मन' देनेवाले प्रभु फिर उसपर सहज ही प्रसन्न हुए। बोरीलालको रामप्रकाश ठेकेदारके यहाँ ससम्मान नौकरी मिल गयी।

परंतु अभी चिन्ता समूल नष्ट होनेका प्रश्न कहाँ। रामपदके रुपये ब्याजसमेत लौटाने हैं—यह चिन्ता बोरीलालके मनको निरन्तर ठेस पहुँचाती रहती थी। ईमानदारी, मानवता, मेल-जोल बनाये रखनेकी नीति; प्रत्युपकार करनेकी भावना—अब उसमें पूरे तौरपर उदय हो आयी थी। वह पत्नीसे बोला—'गृहस्थीके सभी खर्चोंमें कमी करके धन एकत्र करो। हम सप्ताहमें दो दिन उपवास करके बालकोंको भरपेट खिलायेंगे। यों पैसा बचाकर रामपदका ऋण चुकायेंगे। वह मानव नहीं देवता है। उसने समाजमें हमारी लाज रखकर हमारी पुत्रीके विवाहका यश लिया है।' पत्नी प्रियंवदाने पतिके आज्ञानुसार बचत करना आरम्भ कर दिया। कौड़ी-कौड़ी जोड़नेसे माया जुड़ जाती है, इस कहावतके अनुसार कुछ दिनोंमें इनके पास ऋण चुकाने योग्य निधि एकत्र हो गयी।

परंतु यह क्या ! रामपद तो रुपये लेता ही नहीं। उसने स्पष्ट कह दिया—'भैया ! आप जानते हैं 'चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय'—मैं इस सिद्धान्तका आदमी हूँ। पर सर्वशक्तिमान् भगवान्ने मुझे स्वप्नमें आज्ञा दी है कि—'नींद छोड़, अभी जाकर बोरीलालके यहाँ विवाहमें रुपयोंका ढेर कर दे। नहीं तो तेरी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जायगी।' मैं इसी भयसे काँपता हुआ रुपयोंसे भरी थैली लेकर तुम्हारे घर आया था। अब जो तुम रुपये लौटाने

आये हो, ये मेरे किस कामके ? ये तो श्रीभगवान्के हो चुके।''

इधर, बोरीलालका विशेष आग्रह था कि मैं तो ऋण चुकाऊँगा ही अन्यथा अगले जन्ममें न जाने क्या-क्या यातनाएँ देकर यह मुझे वसूल किया जायगा। दोनोंने स्नेहभरी हठ पकड़ ली। अन्तमें सोहनलाल शास्त्रीने आकर समझाया कि 'दोनों एक राय मिलाकर इस निधिको किसी धार्मिक कार्यमें व्यय कर दो।' तदनुसार उन रुपयोंसे अनाथोंको भोजनकी व्यवस्था करा दी गयी। अनाथ इन्हें अशेष आशीर्वाद देने लगे। नगर-निवासियोंके चित्तपर भी इस पुण्य-कार्य एवं त्याग-भावनाका उत्तम प्रभाव पड़ा।

इस घटनासे रामपदका जीवन ही बदल गया। उसने बोरीलालको अपना गाढ़ा मित्र बना लिया। दोनों एक दूसरेके सुख-दुःखमें सम्मिलित होने लगे।

उत्तरावस्थामें रामपदने कई तीर्थोंकी यात्राएँ कीं और वहाँ पावन नदियोंके घाट जहाँ-जहाँ जीर्ण-शीर्ण हो गये थे, उन सबका जीर्णोद्धार अपने धनसे करवाया। शेष धनका एक धर्मार्थ ट्रस्ट कायम कर दिया। ट्रस्टके ट्रस्टी भी धार्मिक प्रवृत्तिके सज्जन थे। उन्होंने रामपदकी सम्पत्तिका दीनजनोंकी सहायतामें सदुपयोग करनेके सिवा ऐसे पठित युवकोंको तैयार करना आरम्भ किया, जो गाँवोंमें जाकर खेतीकी उपजको बढ़ानेमें पूरी-पूरी दिलचस्पी लें और किसानोंकी आवश्यकताओंको पूरी करानेमें योग दें। इस उपयोगी योजनासे कई बेकार पठितोंको धंधा मिल गया। उनका अनुसरण कर अन्य देशभक्त पुरुष भी दत्तचित्त होकर अन्न, शाक-सब्जी, फलदि अधिक मात्रामें उत्पन्न करने लगे। देशके इस अत्यावश्यक कार्यको परिश्रमके साथ करते रहनेमें इन कार्यकर्ताओंने अनेक कठिनाइयाँ सामने आनेपर भी कभी हार नहीं मानी। वे जाने हुए थे कि—

मुश्किल मुझे कहती है, बस अब काम न कर।

मकसद मुझे कहता है कि आराम न कर॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

अंग्रेज व्यापारीकी आदर्श ईमानदारी और सत्यपरायणता

एक जमाना था जब कि लोग व्यापारमें ईमानदारीको सर्वोच्च स्थान देते थे और तभी व्यापारियोंका यह आदर्श एवं अनुकरणीय सिद्धान्त था—‘जाय लाख रहे साख’ अर्थात् लाखों रुपये भले ही चले जायें, पर यदि व्यापारीकी साख—वाजारमें प्रतिष्ठा एवं मर्यादा कायम है तो उसका सब कुछ बना है; कुछ नहीं बिगड़ा है। खेद है कि आजके लोगोंकी मनोवृत्ति ठीक इसके विपरीत हो गयी है। धन पासमें होना चाहिये। धन ही सब कुछ है। इज्जत चाहे दो कौड़ीकी भी न हो। नीचे एक ऐसे ही भारतमें व्यापार करनेवाले अंग्रेज व्यापारीकी एक आदर्श एवं अनुकरणीय सच्ची घटनाका उल्लेख किया जाता है, जिसने वाजारमें अपनी साख तथा प्रतिष्ठा कायम रखनेके लिये बहुत बड़ी आँच सही; पर धन्य है उसकी नीयत, सत्यपरायणता एवं ईमानदारीको। इतने बड़े घाटेमें भी वह नहीं नटा एवं अपने नाम तथा इज्जतको किसी भी प्रकार उसने कलंकित नहीं होने दिया। वह चाहता तो आजकलकी तरह बड़ी ही आसानीसे बेईमानी करता और उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता।

घटना बिल्कुल सत्य है। सम्बन्धित लोगोंके नाम जान-बूझकर नहीं दिये गये हैं।

श्री ‘ग’ ने शेयर वाजारमें नया-नया काम शुरू किया था। उन दिनों अंग्रेज बड़े साहबके पीछे-पीछे शेयर वाजारके दलालोंका झुंड-का-झुंड मँडराया करता था। साहबोंकी दलालीमें दो लाभ होते थे। एक तो यों ही दलालीमें एकके चार बनते थे, दूसरे दलालीके अतिरिक्त ‘टिप’ मिलनेकी भी सम्भावना रहती थी। किसीपर बड़े साहबकी कृपादृष्टि पड़ जाती थी तो वह मालोमाल हो जाता था।

एक सुविख्यात यूरोपियन कम्पनीके बड़े साहब इन दिनों शेयरवाजारमें लम्बा-चौड़ा काम किया करते थे। श्री ‘ग’ भी उनके पास पहुँचे। पहले तो वहाँ बड़े-बड़े भारी भरकम दलालोंके सामने उनकी दाल न गली; किंतु बादमें न जाने क्या सोचकर साहबने काम देना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे

व्यापार बढ़ा। लाखों शेयरोंके सौदे भुगत गये। श्री ‘ग’ की दलाली चमक उठी। उनकी प्रसन्नताका पारावार न रहा।

अचानक एक दिन बड़े साहबका बेहरा उनके घर पहुँचा। रातके दस बज चुके थे। श्री ‘ग’ ने इस असमयमें बेहरेको देखा तो उनका माथा ठनका। बेहरेसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि ‘साहब दो-तीन दिनोंसे न खाता; न पीता है और न सोता ही है। वह पागलकी भाँति अपने कमरेमें चक्कर काटता रहता है।’ बेहरेने कहा कि ‘साहबने उन्हें बुलाया है।’ श्री ‘ग’ धवराये हुए बेहरेके साथ साहबके बंगलेपर पहुँचे। देखा, साहब सचमुच पागलकी भाँति कमरेके अंदर चक्कर काट रहा है। श्री ‘ग’ को देखकर उसने दरवाजे बंद कर लिये और दराज खोलकर एक पिस्तौल निकालकर मेजपर रख दी। श्री ‘ग’के माथेपर पसीना आ गया।

‘मुझे शेयर वाजारमें सात लाख रुपयेका घाटा हुआ है।’ साहबने भरपूर हुए स्वरमें कहा। ‘इतना रुपया मैं एक साथ नहीं दे सकता।’

श्री ‘ग’के मुँहसे बोल न फूटा। वे विक्षिप्तकी भाँति बैठ गये। भविष्यके सारे स्वप्न एक ही क्षणमें भङ्ग हो गये।

‘यदि तुम मुझपर दबाव डालोगे तो आत्महत्याके अतिरिक्त मेरे सामने अन्य कोई मार्ग न रहेगा। किंतु स्वयं मरनेके पहले मैं तुम्हें भी मार डालूँगा।’

साहब इज्जतदार व्यक्ति था। उसके विरुद्ध मुकदमा करनेसे केवल इसीकी नहीं बल्कि उस विराट कम्पनीकी ख्याति भी मिट्टीमें मिल जाती, जिसका वह बड़ा साहब था। इसके अतिरिक्त उस साहबकी कम्पनीके बिगड़नेके साथ-साथ उससे अनुबन्धित कई छोटे-छोटे व्यापारियोंके फर्म भी नाहक वैसे ही पिस जाते, जैसे गेहूँके साथ घुन भी पीसा जाता है। यह भी भय था। दूसरे उन साहबका सब लोगोंके प्रति व्यवहार-वर्ताव भी ऐसा मधुर था, लोगोंको उनकी नीयतपर पूरा-पूरा विश्वास था कि इन्हें सचमुच जोर घाटा लगा है। अतः व्यावहारिक दृष्टिपर बात बनाये रखनेके लिये श्री ‘ग’ने इन सब बातका ध्यान रखकर इतना ही कहा—‘ठीक है। आपको गहरा घाटा अवश्य लगा है जिसे आप एकाएक नहीं चुका सकते। फिर भी आपकी नेकनीयती एवं ईमानदारीपर मुझे पूरा-पूरा यकीन है। जब भी आपके

पास इतने सारे रुपये हो जायँ, आप दे दीजियेगा । बाजारवालोंको आपपर पूरा विश्वास है, नहीं भी हो तो कोई बात नहीं ।'

'तुम क्या फालतू बकता है ।' साहबने आत्मसम्मानके साथ कहा । हम इंगलिस्तानवासी व्यापारमें इस तरहका न तो व्यवहार ही करते और न कभी बेईमानी ही करते हैं । मुझपर विश्वास रखो—तुम्हारा पाई-पाई चुकाऊँगा । पर एक साथ नहीं, किशतोंमें हों ।' अन्तमें बीस हजार रुपयेकी मासिक किशतपर मामला तय हुआ । किंतु श्री 'ग' रुपयेको डूबा हुआ समझकर निराश हो चुके थे । उनकी फर्मवाले भी उनकी जान खा रहे थे । भविष्य पूर्णतः अन्धकारमय प्रतीत हो रहा था ।

आशा न थी और साहब चाहते तो बड़ी आसानीसे घाटेका रुपया बिना चुकाये ही हजम कर सकते थे । लोगोंको उनकी ईमानदारीपर जरा-सा भी संदेह न रहता और वे लोगोंकी दृष्टिमें वैसे ही बने रहते । पर वे एक ईमानदार आदर्श व्यापारी थे । फिर भी श्री 'ग' साहबके आदेशके अनुसार पहली तारीखको उनके आफिसमें पहुँचे । वहाँ पहुँचते ही उन्होंने देखा कि उनका चेक पहलेसे तैयार है । साहबने बिना कुछ कहे-सुने चुपचाप चेक उनकी ओर बढ़ा दिया ।

यह क्रम चलता रहा । प्रति मास पहली तारीखको श्री 'ग' साहबके आफिसमें जाते और अपने चेकको मेजपर रखा हुआ पाते । एक वर्ष बीत गया । एक दिन सदाकी भाँति पहली तारीखको श्री 'ग' अपना चेक लेनेके लिये पहुँचे तो साहबने कुछ चेक देकर हिचकिचाते हुए कहा—

'तुमसे एक बात कहनी है ।'

'कहिये ।' श्री 'ग' ने आग्रहके स्वरमें अनुरोध किया ।

'मैं बूढ़ा हो गया हूँ । तूमसे आफिस आनेमें बड़ा कष्ट होता है । यदि तुम एक महीनेकी किशत छोड़ दो तो मैं मोटर खरीद दूँ ।'

श्री 'ग'की आँखोंमें आँसू आ गये । बातके धनी साहबने अपना घाटा चुकानेके लिये मोटरतक बेच डाली थी । घरके सारे खर्चे घटा दिये थे । जिस व्यक्तिके एक इशारेपर लाखोंके वारे-न्यारे हो जाते थे, उसकी यह हालत ।

बढ़ समय भी चला गया । साहबने अपना सारा घाटा चुका दिया । इसके बाद अपनी कम्पनीसे अवकाश ग्रहण करते समय उनकी आँखोंमें विजयकी जो मुस्कराहट देखी गयी, वह लाखों व्यक्तियोंके हृदयमें एक गहरी रेखा अङ्कित कर गयी । आज भी श्री 'ग' 'बड़े साहब' की बातोंको याद करके रोमाञ्चित हो उठते हैं ।

—बल्लभदास विज्ञानी 'ब्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार

(२)

ऊँची नैतिकता

दिनाङ्क १ । ७ । ६६ का दिन था । मुझे वेतन लेना था । अतः रसीदी टिकट प्राप्त करने हेतु मैं कार्यालयसे गोलार्गज डाकघर पहुँचा । डाकवाबू कार्यरत थे । भीड़ अधिक थी । इसी बीचमें एक वृद्ध सज्जन हाँफते हुए आये और डाकवाबूसे बोले—'वाबूजी ! आपने मुझे एक सौका नोट अधिक दे दिया है ।' यह कहकर उन्होंने वह सौका नोट उनके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया । मैं और उपस्थित सभी व्यक्ति यह सच्चाई देखकर दंग रह गये । डाकवाबूने पुनः धनका वितरण-विवरण देखा और बोले, 'जी हाँ, भूलसे सचमुच एक नोट सौका मैं अधिक दे गया था ।' उन वृद्ध सज्जनने वह सौका नोट प्रसन्नमुद्रासे वापस कर दिया और तत्क्षण डाकघरसे चले गये । उनके जानेके बाद एक व्यक्ति बोला, 'धन्य है ऐसे ईमानदारको जो यों सौ रुपये वापस कर गये हैं ।' डाकवाबू बोले, 'ये सज्जन हमारे डाक-विभागके ही रिटायर्ड कर्मचारी हैं । आज पेन्शन लेने आये थे ।' मेरे नेत्र यह घटना देखकर हर्षसे अश्रु-प्लावित थे और मुझे बीस वर्ष पूर्व कहे हुए अपने स्वर्गीय पिताके शब्द याद आये, जब उन्होंने किसी प्रसङ्गपर मुझे बताया था कि 'डाक-विभागके कर्मचारी बड़े ईमानदार होते हैं ।'

—कृष्णमोहन शुक्ल एम्. ए.

(३)

हृदय-परिवर्तनका आदर्श उदाहरण

अक्सर यह कहा जाता है कि पुलिस-विभागमें भ्रष्टाचार बेईमानी और रिश्तखोरीका बोलबाला है ।

किन्हीं अंशोंमें यह सत्य भी हो सकता है, पर इस विभागमें भी हमें कई ऐसे सज्जन पुरुषोंके दर्शन होते हैं जो ईमानदारी तथा कर्तव्यपरायणतापर डटे रहकर अपना कार्य सुचारुरूपसे चलाते हैं ।

• मेरे एक मित्र हैं जो पुलिस विभागमें एक उच्च पदपर कार्य कर रहे हैं। वे कर्तव्यपरायण सदाचारनिष्ठ एवं ईमानदार व्यक्ति हैं। पूरे आस्तिक हैं। नित्य स्नान-संध्या किये बिना भोजन ग्रहण नहीं करते। उनके कथनानुसार उनका नाम गुप्त ही रक्खा जा रहा है।

एक दिन मैं अपनी आदतके अनुसार उनसे पूछ बैठा—

‘भाई साहेब ! आप इस विभागमें रहते हुए भी इतने सज्जन, ईमानदार और सरल-हृदय कैसे हैं ? नित्य आपको क्रूर-से-क्रूर अपराधियोंका सामना करना पड़ता है। अनेक बार बाहर दौरेपर जाना पड़ता है फिर भी आप इस अनैतिक एवं भ्रष्टाचारी युगमें किस प्रकार सच्चे अर्थोंमें मानवता धारण किये हुए हैं ?’ वे बोले—‘भाई व्यासजी ! क्या बताऊँ, जीवनमें एक ऐसी घटना घटी जिसके कारण मैं नास्तिकसे आस्तिक—दानवसे मानव बना।’

मैं बोला—‘यदि एतराज नहीं हो तो कृपया मुझे अपने जीवनकी वह महत्त्वपूर्ण घटना सुनाइये।’

वे बोले—‘लगभग दस वर्ष पूर्वकी घटना है। उन दिनों मैं कोटा जिलेके एक कस्बेमें थानेदारके पदपर कार्य कर रहा था। यह तो आप जानते ही हैं कि थानेदारको क्या मिलता है केवल १५०) रुपये मासिक। फिर ऊपरसे पुलिस अफसरोंका प्रतिदिनका आना-जाना। घरका कौटुम्बिक खर्च अला। इतनेसे रुपयोंसे क्या होता। मैं रिश्वत लेता था।

अपराधियोंसे घूस खाकर उनके अपराधोंपर पर्दा बालता था।

एक दिनकी बात है—गाँवके दो पड़ोसियोंके बीच एक दीवारको लेकर झगड़ा हो गया। झगड़ेने लड़ाईका उग्र रूप धारण कर लिया। एक व्यक्तिने लाठीसे दूसरे व्यक्तिको इतना मारा कि उसने वहाँ दम तोड़ दिया। पुलिसमें सूचना पहुँची। मैं दो सिपाहियोंको लेकर घटनास्थल-पर जाँचके हेतु पहुँचा। वहाँ देखा कि मृत व्यक्तिके आस-पास काफी भीड़ लगी हुई है। हत्यारेको कई व्यक्तियोंने पकड़कर बाँध रक्खा है। मृत व्यक्तिकी पत्नी एवं बच्चे विलख-विलखकर रो रहे हैं। उसका भाई बदला लेनेकी धमकी दे रहा है। उसकी आँखोंमें खून उतर आया था। लोगोंने उसे रोक रक्खा था। बड़ा रोमाञ्चकारी दृश्य था।

मैंने अपराधीको हिरासतमें ले लिया। आवश्यक कार्यवाही करने हेतु थानेपर लौट आया।

अगस्त ८—

रात्रिको अपराधीके सगे-सम्बन्धी मेरे पास आये और प्रार्थना करने लगे—‘थानेदार साहब ! अपराधीसे गलती तो हो गयी। मरा हुआ तो अब जी नहीं सकता। अब तो इस गरीबको आप किसी तरहसे बचाओ। यदि इसे फाँसी हो जायगी तो इसका घर बरबाद हो जायगा। आप ये दो सौ रुपये लीजिये और इसे किसी तरहसे बचाइये।’

लोभने आँखोंपर पर्दा डाल दिया। मैंने रुपये ले लिये। अपनी रिपोर्टमें मैंने लिखा—‘जिस व्यक्तिका कत्ल हुआ है उसे चार पाँच व्यक्ति लाठियोंसे मार रहे थे, ऐसा गाँव-वालोंसे सुना गया। इसलिये मैं कह नहीं सकता कि किसके हाथसे वह मरा।’

मैंने दो-तीन झूठे गवाह भी ऐसे तैयार कर लिये जो अपराधीको बचानेमें सहायता दे सकते थे। इस प्रकार रिश्वत लेकर मैंने अपना कार्य पूरा कर दिया।

अब ईश्वरकी विचित्र लीला देखिये !

दूसरे दिन मेरा छोटा पुत्र, जो पाँच वर्षका था, अचानक बीमार हो गया। उसे कै-दस्त हुए और १०५ डिग्री बुखार चढ़ गया। डाक्टरको बुलाया वह भी उसे ठीक नहीं कर सका।

मुझे आश्चर्य हुआ कि कल तो यह ठीक था, आज इसे न जाने क्या हो गया। रात्रिभर मैं बच्चेके पास बैठा जागता रहा। उसकी दशा खराब होती जा रही थी। मैं और मेरी पत्नी चिन्तामें डूबे हुए थे। पत्नी आस्तिक विचारोंकी थी, पूजा-पाठमें विश्वास करती थी। उसने कहा—‘यह सब आपके पापोंका फल है। रिश्वतका पैसा पापका पैसा है। ईश्वर उसका दण्ड इस प्रकार देता है। पापके दो सौ रुपये लेनेके कारण ही यह बीमार पड़ा है ! मुझे विश्वास है यदि आप दो सौ रुपये वापिस लौटा देंगे तो शायद बच्चा ठीक हो जाय।’

वैसे मैं नास्तिक विचारोंका था, पर इस संकटने आस्तिक एवं धर्मपरायण-सा बना दिया।

मैंने ईश्वरसे प्रार्थना की—‘हे प्रभो ! यदि बच्चा सुबहतक ठीक हो जायगा तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवनमें कभी रिश्वतका पैसा नहीं दूँगा। ये दो सौ रुपये भी लौटा दूँगा और धर्मनिष्ठ होकर अपना कर्तव्य पालन करूँगा।’

ईश्वरका चमत्कार देखिये। सुबह चार बजे ही बच्चेकी हालतमें सुधार हो गया। सुबह होते-होते वह स्वस्थ हो

गया। मैंने दो सौ रुपये अपराधीके सम्बन्धीको वापिस लौटा दिये। पुरानी रिपोर्ट फाड़ डाली और नयी रिपोर्ट घटनाके अनुसार सही लिखी। न्यायालयसे अपराधीको आजन्म कारावासका दण्ड मिला। उसे अपनी करनीका फल मिलना ही था। उस दिनसे मैं पूर्ण आस्तिक हो गया। ईमानदारीके साथ अपना कर्तव्यपालन करने लगा। ईश्वरकी कृपासे दो वर्ष पश्चात् ही मेरी पदोन्नति हो गयी। आज मेरे दो बच्चे कालेजमें उच्च शिक्षा पा रहे हैं। घरमें सुख-शान्ति है। मैंने अपने जीवनमें यही देखा कि ईमानदारीका पैसा ही फलता-फूलता है।”

वास्तवमें हृदय-परिवर्तनकी यह एक पठनीय घटना है।

—श्यामनोहर व्यास एम्. ए. एस. सी०

(४)

बदला चुकाया जाता है

घटना लगभग नब्बे वर्ष पूर्वकी है पर सर्वथा सत्य है। केवल पात्रोंके नाम घटनाका क्रम बनाये रखनेके लिये रखे गये हैं।

धनीराम नामक व्यक्ति नागौर जिलेके एक गाँवमें रहता था। नाम तो धनीराम था परन्तु प्रारम्भके कारण उसके माता-पिताकी मृत्यु बचपनमें ही हो गयी थी। जो कुछ पैसा-वैसा था, वह भाई-बन्धुओं तथा कुटुम्बियोंने बाँट लिया। येनकेन प्रकारेण बालपन व्यतीत कर धनीराम युवा हुआ। महाजन था। जवान था। कार्य करनेकी लगन थी, अतः अथक परिश्रम कर वह कुछ अपने पैरोंपर खड़ा हुआ। वर्ष बीतते गये, परन्तु दरिद्रताके कारण विवाह-सम्बन्ध नहीं हो सका। कन्याविक्रयका युग था। अतः इधर-उधरसे उधार लेकर धनीरामने एक कन्याके पिताको राजी कर विवाह कर लिया। विवाहके समय बालिकाकी अवस्था १२ वर्षकी थी।

वर्ष भरके अंदर-अंदर ही लोगोंने अपने रुपयोंके लिये धनीरामको तंग करना प्रारम्भ कर दिया। धनीरामने सोचा। अभी पत्नीकी अवस्था छोटी है एवं इधर लोग पैसके लिये तंग करते हैं; अतः क्यों नहीं विदेश जाकर धन कमाया जाय ताकि जिंदगी आरामसे कटे। बात जँच गयी एवं धनीराम घरसे विदेशके लिये चल पड़ा।

महाजन वही है जो व्यापारमें खुद कमाता है एवं दूसरेको भी लाभ पहुँचाता है। धनीराममें कार्य करनेकी लगन थी, अतः उसी लगनके कारण उसने तीन-चार वर्षमें अच्छा धन कमा लिया। अब उसे घरकी याद सताने लगी। सोचा एक बार घर चला जाय।

धनीराम अपने कमाये हुए धनको लेकर यात्रा करता हुआ फुलेरा पहुँचा। फुलेरासे उसने अच्छी देखकर एक घोड़ी खरीदी एवं शेष रास्ता घोड़ीद्वारा तय करनेका निश्चय किया। उस समयतक रेल या मोटरका इतना प्रचार नहीं था। रात्रिको किसी गाँवमें ठहर जाता एवं प्रातःकाल फिर यात्राके लिये आगे बढ़ जाता। चलते-चलते वह नागौर जिलेकी परबतसर नामक तहसीलके पास पहुँचा। उस दिन रात्रि-विश्राम उसने एक ठाकुरके रावलेमें किया।

ठाकुर रणजीतसिंह क्षत्रिय थे, परन्तु उनका धंधा (व्यापार) बड़ा अवाञ्छनीय था। भूले-भटके यात्रियोंको लूटना ही उनका काम-धंधा था। परमात्माने घर बैठे गङ्गा भेज दी। ठाकुरसाहब बहुत प्रसन्न हुए एवं रात्रिको मरदाना बैठकमें धनीरामको सुलानेकी व्यवस्था कर दी। ठाकुरसाहब जब अंदर जनानामें जाने लगे तो द्वारपालको सचेत करते गये कि ‘पछी पिंजरेसे उड़ न जाय।’ धनीरामको उस आवाजकी भनक पड़ गयी। उसे रात्रिको नींद नहीं आयी। करवट बदलते हुए रात बितायी। प्रातःकाल द्वारपाल ज्यों ही दरवाजा खोला एवं लोटा ले हाथ-मुँह धोने बाहर आया तो धनीरामने इसे अच्छा अवसर समझा, धीरेसे घोड़ीपर सवार हो रावलेके बाहर हो गया। धनीरामने सोचा ‘परमात्माने रक्षा की। अब तो गाँव तथा घर नजदीक है। राततक घर पहुँच जाऊँगा।’

‘अपनी चिंती होय नहीं, भावी होय सो होय।’

ठाकुरसाहबकी जब आँखें खुलीं तो वे झट बाहर आये। बाहर आनेपर देखा कि चिड़िया पिंजरेसे उड़ गयी है। द्वारपालपर लाल-पीले हुए। ठाकुरसाहबकी जोर-जोरकी आवाज सुनकर ठाकुराइन ऊपर मेड़ीपर चढ़ी एवं उसने बताया कि सेठ अभी तो आधा मील दूर ही गया है। ठाकुरसाहबने झटसे अपने घोड़ेपर जीन कसी एवं उसका पीछा किया।

प्रातःकालकी मीठी-मीठी हवा चल रही थी। घोड़ा सरपट भगा जा रहा था। थोड़ी ही देरमें उसे घोड़ी दिखायी देने लगी। धनीरामने ज्यों ही मुड़कर पीछे देखा उसने ठाकुरको सरपट अपना पीछा करता हुआ पाया। उसने घोड़ीको तीन-चार चाबुक लगाये पर घोड़ी घोड़ेकी आवाजपर वहीं रुक गयी। धनीरामने बहुत कोशिश की, पर घोड़ी टस-से-मस नहीं हुई। इतनी ही देरमें ठाकुरसाहबकी विकराल मूर्ति उसके सामने आ पहुँची।

ठाकुरके अभिप्रायको समझकर धनीरामने ठाकुरसाहबके

संख्या ८]

प्राणीकी भीख माँगी । अपनी पत्नीकी अवस्थाका वर्णन किया, परंतु पापी ठाकुरके हृदयमें दया कहाँ थी । ठाकुरने तलवारसे सेठका मस्तक धड़से अलग कर दिया और वहीं खड़ा खोदकर लाशको गाड़ दिया । जो कुछ सोना-चाँदी जवाहरात नगद थे, सब लेकर घोड़ीके साथ प्रसन्न-मुद्रामें ठाकुर घर पहुँचे । ठाकुराइनने ठाकुरका खूब स्वागत किया । समय व्यतीत होता गया ।

उस घटनाके एक-दो मास बाद घोड़ी मर गयी एवं दस मास बाद ठाकुरके यहाँ एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ । ठाकुरके घरमें पुत्ररत्न उत्पन्न होनेकी खुशियाँ मनायी जाने लगीं । पुत्रका नाम कुलदीपसिंह रखवा गया । पुत्र दिनोंदिन चन्द्रमाकी कलाके समान बढ़ता गया ।

ठाकुरसाहब बड़े सुखसे दिन व्यतीत कर रहे थे । पुत्रकी कमी थी, वह भी परमात्माने पूरी कर दी । पुत्र दिनोंदिन बड़ा होने लगा । पढ़ाई आदिकी उचित व्यवस्था घरपर कर दी गयी ।

कुँवरके जवान होते ही विवाहकी दौड़-धूप होने लगी । ठीका आदिका रिवाज जोरोंपर था । ठिकानेके साथ-साथ ही गुणसम्पन्न कुँवर था । अतः विवाह आदिका कार्य बड़ी धूम-धामसे सम्पन्न हो गया । दुलहिनके रूप तथा गुणपर ठाकुराइन फूली नहीं समा रही थी । जो कोई भी आता, उससे ठाकुराइन अपनी पुत्रवधूके गुण गाया करती थी ।

ईश्वरके घर न्याय होता है, फेरेके दिनसे ही कुँवर कुलदीपसिंहको बुखार आने लगा । लोगोंने सोचा यात्रा आदिके कारण बुखार आ गया है । इलाज, झाड़ू-फूँक आदि भी किया गया, परंतु फल आशाके विपरीत हुआ । इलाज ज्यों-ज्यों किया गया, रोग बढ़ता ही गया । तीन-चार मासमें फूल-सी सुकुमार देह सूखकर काँटा हो गयी । सभी दुखी थे । सुखी परिवारपर ईश्वरका प्रकोप हो गया था । वैद्य, डाक्टर, ओशा आदिका खूब इलाज करवाया गया पर कोई लाभ दृष्टिगत नहीं हुआ ।

गरमीके दिन थे । रोगीको प्रातःकाल कुछ नोंद आयी । ठाकुरसाहब अपने लाडले पुत्रके सिरहाने कुर्सीपर बैठे परमात्मासे पुत्रकी दीर्घायुके लिये प्रार्थना कर रहे थे । अकस्मात् उनकी दृष्टि पुत्रके मुखपर पड़ी । अठारह वर्षकी घटना आँखोंके सामने सजीव हो उठी । श्रीधनीराम सेठका अन्तिम कालका चेहरा कुँवरके चेहरेसे पूरा-पूरा मिल रहा था । सेठके अन्तिम समयके शब्द ज्यों-के-त्यों ठाकुरको

सुनायी देने लगे । ठाकुरने भयसे आँखें मींच लीं । कुँवरको खाँसी आयी, आँखें खुल गयीं । खाँसी इतने जोरकी आयी कि घरके सभी प्राणी उसी कमरेमें एकत्रित हो गये । खाँसी बंद नहीं हो रही थी । कुँवर छटपटा रहा था । अन्तिम काल समीप था । घरके सभी लोग पलंगके चारों ओर खड़े आँसू बहा रहे थे । अकस्मात् ठाकुर साहबके मुँहसे निकल पड़ा । यह किस जन्मका बदला चुकाया जा रहा है भगवन् !

कुँवरने एकटक पिताकी ओर देखा और कहा मैं धनीराम सेठ हूँ, अपना बदला चुकाने आया था । बदला पूरा हुआ । ठाकुरको काटो तो खून नहीं । ठाकुराइन साहिवा आगे बढ़ी । पूछा, मेरा क्या कसूर था जिस कारण तुमने मेरे पेटमें नौ मास बिताये ? कुँवरने जवाब दिया—‘आप यदि ऊपर चढ़कर मुझे नहीं बताती तो मैं बच जाता ।’ ठाकुराइन लज्जासे पीछे हट गयी । पुत्रवधू अपने आपको नहीं रोक सकी, कुलकी लज्जाको तिलाञ्जलि देकर बोली—‘मेरा क्या अपराध था, प्राणनाथ !’ उत्तर था ‘तुम घोड़ी थी, यदि घोड़ेके मिलनेकी लालसा तुम्हारे मनमें न होती तो ठाकुर मुझे नहीं पकड़ सकता ।’ वार्तालाप ज्यों ही समाप्त हुआ कुँवरने अपनी आँखें सदाके लिये बंद कर लीं । लोगोंके मुँहसे धीरेसे दबी-सी आवाज आ रही थी—पापका बदला चुकाया जाता है !

—शिवचन्द्र बहुरा

(५)

निःस्पृह गरीब दम्पतिकी आदर्श सेवापरायणता

यह एक सत्य घटना है, कल्याण-प्रेमियोंके अनुकरणार्थ नीचे लिखित है ।

दिनाङ्क २७।४।६६ दिन बुधवारकी रात है । छत्तीसगढ़-के दुर्ग जिलेके अन्तर्गत खरा नामका ग्राम है । वहाँके नवयुवक व्यवसायी सेठ भीखमचन्द जैन उक्त दिनाङ्कके ६ बजे शामको अपने मोटर-साइकलसे अहिवारा नामक ग्रामसे अपने ग्राम खराकी ओर रवाना हुए । बीचमें एक निर्जन स्थानमें उनकी गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो गयी और उक्त युवक गाड़ीसे गिर पड़े तथा रातभर वहीं कराहते हुए पड़े रहे । दूसरे दिन करीब ११ बजे दिनको कुसमी ग्रामके निवासी एक मजदूर-दम्पति (खेदूराम—बिसरीनबाई) मजदूरी करके भूखे-प्यासे अपने गाँवकी ओर लौट रहे थे । रास्तेमें अकस्मात् उनकी दृष्टि मरणासन्न तड़फते हुए युवक भीखमचन्दकी ओर पड़ गयी । निर्धन मजदूर-दम्पतिकी मानवता जाग उठी । उन लोगोंने

तत्क्षण आधा मील दूरसे पानी लाकर कराहते हुए व्यापारी युवकके मुँहमें डाला और उसे हवा करने लगे। तदनन्तर दोनों पति-पत्नी उस घायल युवकको उठाकर किसी तरह छः मील दूर एक गाँवमें ले गये। वह व्यवसायी युवक, जो मृत्युके कगारपर पहुँच चुका था, करीब ५ तोला स्वर्णाभूषण पहने था तथा २००) कीमतकी घड़ी बाँधे था।

यह क्षेत्र इस वर्ष भयङ्कर अकालग्रसित है। लोग दाने-दानेको तरस रहे हैं। इसके बावजूद भी निर्धन मजदूर-दम्पति-ने उस धनपर कोई लालच नहीं किया तथा कष्ट झेलते हुए उस युवकके प्राण बचाये। अस्पतालमें चिकित्सा करानेपर करीब बीस-पचीस दिनोंके बाद रोगी युवकको स्वास्थ्य-लभ हुआ।

इस तरह निःस्पृह सेवा-धर्म माननेवाले मजदूर-दम्पतिका कार्य प्रशंसनीय ही नहीं, अपितु अनुकरणीय है।

—माखनलाल चौबे, शिक्षक

(६)

आदर्श बालक

शम-शमकर वर्षा हो रही थी। जूनका महीना था। मैं इस डरावनी काली रातमें विजलीके कौंधनेपर गीत-सा अनुभव करता था। मैं छोटा नागपुरमें वन-पर्वतसे घिरे एक गाँवमें रह रहा था। मेरे मकानसे हटकर कुछ दूरीपर उराँवोंका मकान था। यहाँसे बाजारकी दूरी छः मील थी। मेरा विद्यालय मेरे मकानसे तीन मीलकी दूरीपर था। एक रातमें जब तूफान वर्षासे सबके शरीर थरथरा एवं ठिठुर रहे थे, मुझे जोरोंका ज्वर चढ़ा हुआ था। मैं बहुत ही भयभीत हो गया था। पीड़ा काले बादलोंकी तरह मेरे शरीर-मनमें उमड़-धुमड़ रही थी। परमपिता परमेश्वरके स्मरणमें ही लगा हुआ था।

मनमें रह-रहकर यह बात उभर उठती थी कि आज मेरे माँ-बाप भी मुझसे दूर ही हैं, स्कूल भी अभी नहीं खुला है, न तो कोई पास आता है। यह सब बात सोच-सोचकर मैं भगवान्को कोस ही रहा था कि हे परमपिता ! किसीको भेज दो। इतनेमें किसीने मेरे दरवाजेकी कुंडी खटखटायी। मैंने पूछा—‘आप कौन हैं?’ उत्तर मिला—‘मैं हूँ रामदुलारे पाल गरेड़ी बालक। मैं आज वर्षाके कारण घर न जा सका, आपके कराहनेकी आवाज सुनकर मैंने कुंडी खटखटायी है।’ थोड़ी ही देरमें देखता हूँ कि वह अपरिचित बालक

डाक्टरको साथ लिये आ रहा है। मेरी चिकित्सा डाक्टरने की। उस बालकने मेरी भरपूर सेवा की। वह बालक देखनेमें बड़ा ही दिव्य मालूम पड़ रहा था। मैं जब कुछ दिनोंमें उस अपरिचित बालककी सेवासे अच्छा हुआ तो मैंने उससे पूछा—‘बालक ! तुम्हारा परिचय ?’ उसने कहा—‘बाबू ! मैं बगलकी ही जोवरईया वस्तीका रहनेवाला हूँ। मैं धीरे-धीरे उठा कि उसकी सेवाका कुछ पुरस्कार तो दूँ, ज्यों ही कमरेसे लौटता हूँ, देखता हूँ कि वहाँसे बालक दूर जा चुका है। मुझे उस दिनसे भगवान्पर वड़ी आस्था जम गयी कि वे अनाथोंके नाथ हैं। संसारके पालक हैं। आज इस घटनाको हुए कई वर्ष गुजर चुके, तो भी इसकी स्मृति ताजी है।

—देवव्रत एम्. ० ए०

(७)

अनुष्ठानका आश्चर्य प्रभाव

करीब १२-१३ वर्षकी अवस्थासे मुझे एक बुरी कुटेव हो गयी थी—इस आदतके फलस्वरूप कई प्रकारके अवाञ्छनीय रोग मेरे शरीरमें उत्पन्न हो गये। इतनेपर मैं उस कुटेवको न छोड़ सका। मैंने अपने रोगोंकी बात लज्जावश किसीसे कही नहीं और न उसका कोई इलाज ही किया। मेरे विवाहकी बात चली—उस समय भी लज्जावश अपनी स्थिति किसीसे नहीं बतलाई परंतु यथासाध्य काफी कोशिश की जिससे मेरा विवाह न हो। पर मेरी एक भी नहीं चली। मैं भीतर-ही-भीतर रो रहा था। मैं भगवान्की पुकार आन्तरिक हृदयसे करता रहा। कैसे मेरी नौका पार लगेगी। आखिर भगवान्पर विश्वास करके मैंने विवाह करा लिया। पत्नी आयी। पर मैं खुद भीतर बहुत ही कुढ़ रहा था। दुर्भाग्यवश मेरी पत्नीको भी प्रदर की बड़ी वीमारी थी। हम दोनों ही संतानके पक्षसे निराश हो चुके थे। हम दोनों अपने आपको दोषी बताते। दोनों एक दूसरेपर संतान न होनेका दोष नहीं देते। हम दोनोंको एक और चिन्ता बनी रही कि यदि दो-तीन वर्षके अंदर संतान नहीं होगी तो लोग हमलोगोंको बुरे रोगोंसे ग्रस्त और वाँझ समझेंगे।

संयोगवश एक बार ‘कल्याण’के विशेषाङ्कमें षष्ठीदेवी-स्तोत्र तथा रामरक्षा-स्तोत्रकी महिमा पढ़नेका अवसर मिला। दूबतेको तिनकेका सहारा मिला। षष्ठी-स्तोत्र तथा रामरक्षा-स्तोत्रकी निम्न पंक्तियोंके पढ़नेसे मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि यदि नियमित पाठ किया जाय तो निश्चय ही संतान होगी। षष्ठीदेवीके स्तोत्रमें है—

संख्या ८]

‘षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति च वत्सरम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम् ॥’

और रामरक्षा स्तोत्रमें है—

एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत् ।
स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ॥

पूर्ण विश्वासके साथ मैंने दोनों स्तोत्रोंका पाठ शुरू किया । जिस समय स्तोत्र पाठ शुरू किया उस समय हम दोनों पति-पत्नीमें पूर्ववत् रोग वर्तमान था । परंतु मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराघवेन्द्र तथा भगवती श्रीषष्ठी माताके प्रति पूर्ण विश्वास कर हमलोगोंने पाठ करना जारी रखा । दुःखमें भगवान् ही सहायता करते हैं ।

स्तोत्रोंका पाठ करते केवल छः-सात मास बीते होंगे कि मेरी पत्नीके गर्भके लक्षण दिखलायी दिये । भगवान् श्री-राघवेन्द्र तथा श्रीषष्ठीमाताकी असीम अनुकम्पासे हमें संतानका मुख देखनेका सुअवसर मिला, जिसके लिये हम दोनों सर्वथा निराश हो चुके थे ।

हम दोनोंको आज भी बड़ा आश्चर्य लगता है कि हम दोनोंमें इस प्रकारके भीषण रोगोंकी मौजूदगीमें कैसे गर्भ-धारण तथा संतानका जन्म हुआ । प्रभुकी लीला विचित्र है । यह भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा जगज्जननी माताकी कृपाके सिवा और कुछ नहीं । उनके चरणोंमें बारबार प्रणाम है ।

अन्तमें मेरा निवेदन है कि यदि कोई महानुभाव किसी कारणवश संतान न होनेसे निराश हों, वे श्रीभगवान् राम तथा षष्ठीमातापर पूर्ण विश्वास रखते हुए रामरक्षास्तोत्र तथा षष्ठीस्तोत्रका पाठ नियमित रूपसे अवश्य आरम्भ कर दें—मुझे पूर्ण विश्वास है प्रभुकी कृपासे उन्हें निश्चय संतान होगी ।*

‘रामरक्षास्तोत्र’ ‘कल्याण’के ३९ वें वर्षके विशेषाङ्कमें प्रकाशित हो चुका है । अतः यहाँ केवल षष्ठीदेवीस्तोत्र दे रहा हूँ—

* ऐसे और लोगोंके भी अनुभव हैं परंतु यदि प्रतिबन्धक प्रकृत होता है तो थोड़े अनुष्ठानसे नया प्रारम्भ नहीं बनता । अतएव व्यापार अनुष्ठान करते रहना चाहिये । कदाचित् फल न भी हो तो हानि तो है ही नहीं ।

—सम्पादक

श्रीषष्ठीदेवीस्तोत्रम्

ध्यानम्—षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां प्रतिष्ठाम्य च सुप्रभाम् ।

सुपुत्रदां च सुभगां दयारूपां जगत्प्रसूम् ॥

श्वेतचम्पकवर्णाभां रक्तभूषणभूषिताम् ।

पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे ॥

मन्त्र—ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा । (यथासाध्य जप करें)

स्तोत्रम्

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वकामशुभावहम् ।

आज्ञाप्रदं च सर्वेषां गूढं वेदेषु नारद ॥

प्रियव्रत उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्धयै शान्त्यै नमो नमः ।

शुभायै देवसेनायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥

वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः ।

सुखदायै मोक्षदायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥

शक्तिषष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः ।

मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥

सारायै शारदायै च पारायै सर्वकारिण्यै ।

बालाधिष्ठात्र्यै देव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥

कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम् ।

प्रत्यक्षायै च भक्तानां षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥

पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु ।

देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥

शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा ।

हिंसाक्रोधवर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥

धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि ।

धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥

भूमिं देहि प्रजां देहि विद्यां देहि सुपूजिते ।

कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥

इति देवीं च संस्तुत्य लेभे पुत्रं प्रियव्रतः ।

यशस्विनं च राजेन्द्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥

षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति च वत्सरम् ।

अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम् ॥

वर्षमेकं च या भक्त्या संस्तुत्येदं शृणोति च ।

सर्वपापविनिर्मुक्ता महाबन्ध्या प्रसूयते ॥

वीरं पुत्रं च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम् ।

सुचिरायुष्मन्तमेव षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥

काकबन्ध्या च या नारी मृतापत्या च या भवेत् ।

वर्षं श्रुत्वा लभेत् पुत्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥

१—पाठकर्ता पुरुष हो तो ‘प्रियां’ कहे और स्त्री हो तो ‘प्रियं’ कहे ।

रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति चेत् ।

मासेन मुच्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥

प्रणाम-मन्त्र

जय देवि जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि ।

प्रसीद मम कल्याणि नमस्ते षष्ठी देवते ॥

—एक अनुभवप्राप्त

(८)

एक मुर्गीकी हत्याका परिणाम ! तीन पुत्रोंका संहार !!

शेखपुरा (पाकिस्तान) का समाचार है कि एक पाकिस्तानी सज्जन अपने घरमें एक मुर्गी लाये और अपने दो बालकोंके सामने छतपर उसे काटना प्रारम्भ किया । बालकोंकी आयु सात और चार वर्षकी थी । ये दोनों एक ओर खड़े देख रहे थे । बेचारी मुर्गी चूँ-चूँ कर रही थी । उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा है । कभी वे हँसते और कभी उदास हो जाते । अन्ततः जब मुर्गी लहूलुहान हो गयी तो उसने दम तोड़ दिया । इसपर उनका पिता कहीं नीचे चला गया ।

इतनेमें दोनों बालकोंको क्या सूझी कि उन्होंने भी वही नाटक दोहरानेकी सोची । बड़े लड़केने छोटे भाईको धरती-पर लिटा दिया और जिस प्रकार उसके पिताने मुर्गीको दवा रक्खा था, उसी प्रकार बड़े भाईने छोटे भाईको दबाये रक्खा और साथ ही उसकी गर्दनपर छुरी चलाना प्रारम्भ कर दिया । जब उसकी गर्दन कटने लगी तो उसने चीखना-चिल्लाना आरम्भ कर दिया ।

नीचे किसी और कमरेमें उनकी माता अपने चार मासके नन्हे शिशुको नहला रही थी । दूसरे बालककी चीखें सुनकर वह बेचारी ऊपर भागी । जब ऊपर आकर उसने देखा तो उसके होश उड़ गये; क्योंकि छोटे बच्चेकी गर्दन शरीरसे अलग हो चुकी थी ।

इतनेमें बड़ेको यह अनुभव हुआ कि उसने कोई अन्धेर कर दिया है । जब उसने देखा कि उसका छोटा भाई तो मर चुका है तो उसने भयके मारे छतसे छलाँग लगा दी । माँ बेचारी पागलोंकी भाँति कभी एक बालकको देखती और कभी दूसरेको । जब बड़ा लड़का छतसे गिरा तो उसने जोरसे एक चीख मारी और दम तोड़ दिया । इस प्रकार चार वर्षीय बालक खूनमें लथपथ पड़ा दम तोड़ चुका था और बड़ा छतसे गिरनेसे समाप्त हो गया !

बेचारी माँ पागलोंकी भाँति फिरती रही, परंतु उसे क्या पता था कि उसके दुर्भाग्यका अभी अन्त नहीं हुआ । पाँच दस मिनट वह इधर-उधर भटकनेके पश्चात् अचेत हो गयी । इतनेमें माँको होश आया और उसको स्मरण हुआ कि उसका चार मासका नन्हा शिशु पानीमें है । वह अधीरतासे नीचे भागती गयी, परंतु वह जाकर देखती है कि वह चार मासका नन्हा शिशु भी पानीमें गोते खाकर दम तोड़ चुका है । इस प्रकार दस मिनटके भीतर बदकिस्मत माँको अपने हृदयके तीनों टुकड़ोंसे हाथ धोना पड़ा !

जैसा कार्य माँ-बाप करते हैं, वैसा ही संतान । इसलिये बापने मुर्गी मारी तो बेटेने अपने भाईको मारा और स्वयं भी मरा । हिंसाका फल बहुत बुरा है । क्या मांसखोद्य और हिंसकलोग इस घटनासे शिक्षा ग्रहण करेंगे ? (धर्हिंसा)

—वल्लभदास विन्नानी 'व्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्याकांक्षार

(९)

किसकी सहायता

कुछ ही दिन पहलेकी बात है । छुट्टियोंके दिन थे । मैं अपने एक मित्रके विवाहमें उसके गाँव गया था । वह गाँव मऊ (आजमगढ़) के पास पड़ता है ।

लौटते समय मैं गाड़ी आनेसे कुछ पूर्व ही मऊ स्टेशनपर आ गया था । शामका समय था । मैं एक बेंचपर बैठ गया और एक पुस्तकके पन्ने उलटने लगा । गाड़ी शायद कुछ लेट थी । अभी मैं पुस्तकके पन्ने उलट ही रहा था कि एक दो सालके लगभगका बच्चा, मेरा पैट खींचने लगा । लड़केकी मासूम आँखोंने मुझे पुस्तक बंद करनेको बाध्य कर दिया और बच्चेको गोदमें उठाकर मैं प्रेसफार्मपर टहलने लगा । कुछ ही समयमें गाड़ी आती हुई दिखायी दी । मैंने एक दूसरी बेंचपर बैठे दम्पतिसे पूछा—पर उन्होंने कहा 'यह बच्चा हमारा नहीं है ।' यह सुनते ही मैं दंग रह गया । अभीतक मैं बच्चेको उन्हींका समझ रहा था ! गाड़ी आ गयी । मैं उसको गोदमें लिये प्रेसफार्मपर इधर-उधर उसके माता-पिताको ढूँढने लगा । गाड़ीमें लोग उतर-चढ़ रहे थे । पर मैं बच्चेको अकेला छोड़कर भी न जा सकता था; क्योंकि छोड़ते समय उसकी मासूम शक्ल मेरे सामने आ जाती थी । अन्तमें मैंने रेलवे कर्मचारियोंका ध्यान लड़केकी ओर आकर्षित करना चाहा किंतु उन्होंने कोई ध्यान न दिया । गाड़ी छोड़नेपर सुबह चार बजे ही गाड़ी मिलती । पर मैं उसको

संख्या ८]

कृष्णामरी आँखोंकी बेवसीकी उपेक्षा न कर सका। मैं भगवान्‌से प्रार्थना करता रहा कि नाथ ! इसके माता-पिता मिल जायँ। उसे लेकर मैं पुलिस-स्टेशनकी ओर चल दिया, वहाँ पहुँचने पर उसके माता-पिता मिल गये जो कि बच्चेके बारेमें रिपोर्ट लिखवा रहे थे ! वे वहींके रहनेवाले थे ! मुझे उन्होंने बहुत धन्यवाद दिया।

अब मैं पुनः स्टेशनपर जा रहा था। गाड़ी तो मेरे सामने ही जा चुकी थी। मैं पुनः पुस्तकमें खो गया, इसी तरह कुछ घंटे बीत गये। सामनेसे दो कुली बातें कर रहे थे कि बनारसवाली गाड़ी लाइनसे उतर गयी। मेरी उत्सुकता बढ़ी। स्टेशन जाकर पूछा तो बात सच निकली। यह सुनते ही मेरी आँखोंके आगे वही मासूम सूरत आ गयी। यात्रियोंमेंसे बहुत जल्मी हुए और कोई क्षति नहीं हुई। पर उनकी परीशानीका पता सहज ही लगाया जा सकता था !

मैं अब सोचता हूँ कि मैंने बच्चेको बचाया या अपने आपको। अगर मैं उसको वहीं छोड़ देता तो आगे क्या होता मैं सोच भी नहीं सकता ! अब मैंने किसकी सहायता की, इसका आप ही अनुमान लगाइये।

—श्रीसुरेन्द्रकुमार जैन

(१०)

पिछड़ा कौन ?

पिछड़ेमें पिछड़े समझे जानेवाले इस गाँवमें मेरी शिक्षक-के पदपर कुछ ही दिन हुए नियुक्ति हुई थी। इस गाँवमें केवल चालीस घरोंकी बस्ती थी। इनमेंसे पंद्रह घर पक्के यानी मिट्टीके थे, शेष पचीस घास-फूसके। गिरनेको तैयार खड़ा जीवित एक ठाकुरजीका जीर्ण मन्दिर था।

आज सबेरे जल्दी उठकर दँतुअन कर रहा था। इसी समय देखा कि गाँवके मुखिया गंगाभाईका लड़का धना और सुखीका लड़का देवा घर-घर घूमकर माँगकर झोलीमें कुछ इकट्ठा कर रहे थे। सुखी समझे जानेवाले मुखिया लोगोंके लड़के इस प्रकार क्या माँग रहे थे, यह जाननेकी तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी। रास्ते जाते एक बच्चेको भेजकर मैंने गंगाभाईको बुलवाया। वे तुरंत ही आ गये।

मैंने उनसे पूछा—‘सबेरे-सबेरे तुम्हारे ये जवान क्या माँगने निकले हैं ?’

‘महाशयजी ! यह बात बताने-जैसी नहीं है।’

‘क्यों ?’

‘यह बात ऐसी है कि जितनी ही प्रकट होती है, उतना ही अधिक दोष लगता है, इसलिये माफ करें।’

‘बस, गंगाभाई ! मुझपर तुम्हारा इतना ही विश्वास है ?’ मैं दयापात्र-सा होकर उनकी ओर देखता रहा।

गंगाभाईने मेरे मुखकी ओर देखकर कहा—‘बुरी लगी मेरी बात महाशयजी ? अच्छी बात है—आपको दुःख होता हो तो मुझे दोष ग्रहण करके भी आपको बात बतानी पड़ेगी।’

आठ वर्ष हुए इस गाँवका सर्वप्रिय शंभुभाई पाँच छोटे-छोटे बच्चे तथा जवान पत्नीको संसारमें निराधार छोड़कर टी० बी० के रोगसे चल बसा। ‘ऊपर आकाश और नीचे धरती’ की दशामें पड़े हुए इन छः प्राणियोंका हृदय विदीर्ण कर देनेवाला रुदन सुना नहीं जाता था। इनके करुण क्रन्दन-को सुनकर सारा गाँव ही आँखोंसे आसुओंकी धारा बहाता हुआ रो उठा। सबके हृदयमें यह चिन्तानल जल रहा था कि बिना किसी आधारके यह स्त्री पाँच नन्हे-नन्हे बच्चोंको कैसे पाल-पोसकर बड़ा बनायेगी ? इसका साहस जरूर ही टूट जायगा और दुःखका भार सहन न हो सकेगा तो यह अवश्य ही किसी कुँए-तालाबकी शरण लेगी !

रात्रिको मन्दिरके चौकमें इसपर विचार करनेके लिये गाँव इकट्ठा हुआ। गाँवभरमें इन निराधारोंके प्रति अनुकम्पा तो भरी ही थी। अतः सबने सर्वसम्मतिसे निर्णय किया कि ‘शंभुके बच्चे बड़े होकर स्वयं कमाने लग जायँ, तबतकके लिये इनका पालन-पोषण गाँव करे।’ इस कार्यके लिये गाँवने यह व्यवस्थाकी कि किसीके सामने हाथ फैलानेमें इनको बुरा न लगे इसलिये गाँवके दो जवान प्रति सप्ताह शंभुके घर जाकर गंगासे पूछ लें कि उसको किस-किस वस्तुकी जरूरत है। अन्नकी जरूरत हो तो घर पीछे पाँच सेर अन्न इकट्ठा करके वे स्वयं ही शंभुके घर पहुँचा आयें। तेल या कपड़े-जैसी चीजकी जरूरत हो तो लुहाणा सेठकी दूकानसे गाँवके खाते नाम लिखाकर गंगा वह चीज ले आवे। क्या किया जाय महाशयजी ! गाँवकी गरीब बस्ती दुखी हो तो दूसरे गाँवमें उसकी कैसी बेइज्जती हो और ऊपरवाला भगवान् भी उस गाँवसे रूठ जाय। इसका डर भी तो रखना चाहिये न ? फिर इसमें हमलोग कोई नयी बात तो करते नहीं। यह तो गाँवका कर्तव्य है जिसे गाँवको पूरा करना ही चाहिये।

पिछड़ेमें पिछड़े समझे जानेवाले गाँवकी इस अपूर्व मानवताके दर्शनसे मेरा हृदय गाँवके चरणोंमें झुक गया। मैंने

गंगाभाईसे पूछा—‘आप इस बातके कहनेमें हिचकते क्यों थे ? हम शिक्षित लोग तो कहीं दस-पाँच रुपये चन्दा देते हैं तो हमारा नाम अखबारोंमें छपे, ऐसी अपेक्षा रखते हैं और यदि कहीं किसी संस्थामें सौ दो सौ रुपये दान किये हों तब तो बड़े-बड़े अक्षरोंमें हमारे नामकी तस्ती बहाँ लगे, ऐसा आग्रह रखते हैं और आप इस बातको दूसरेसे कहनेमें भी दोष मानते हैं ?’

गंगाभाईने कहा—एक हाथसे दिये हुए दानका दूसरे हाथको पता लग जाय तो भी दोष लगता है; यों जो बात दूसरे हाथको भी नहीं बतायी जा सकती, तब फिर दूसरे मनुष्यको तो कैसे कही जा सकती है ?

इस बातको सुनकर मैं देरतक विचारता रहा कि हममें पिछड़े हुए कौन हैं ? हम हैं या वे हैं ? पढ़े-लिखे लोग हैं या वे बे-पढ़े लिखे ? कुछ समझमें नहीं आता । आप ही बताओ भाई ! पिछड़े हुए कौन हैं ? ‘अखण्ड आनन्द’

—नबीभाई. रा.मनसूरी

(११)

मधुमेहकी एक अन्य अचूक दवा

आपके फरवरी ६६ के अङ्कमें मधुमेहकी दवा सहदेई-

के बारेमें उल्लेख आया है । सहदेई ज्वरके लिये भी राम-बाण ओषधि है, लेकिन सबको इसका मिलना कठिन है । इसलिये मैं मधुमेहके लिये अपना अनुभव कल्याणके पाठकों के समक्ष रख रहा हूँ । मधुमेहके रोगियोंको चाहिये कि किसी मिट्टीके पात्रमें पावभर शुद्ध कुँआ या गन्नाजल रातमें रख लें । इसी जलमें पलाशपुष्प पाँच नग जो हर जगह आसानीसे मिल जाता है, डाल लें । सुबह उस फूलको उसी जलमें मलकर छान लें और कुल एक बारमें वासी मुँह पी जावें । हर हफ्ते फूलकी मात्रा एक-एक करके बढ़ाते जावें । चार सप्ताहमें रोग निर्मूल हो जायगा । अनुराधा नक्षत्रमें तोड़े हुए पुष्पोंसे और भी शीघ्र लाभ होता है । जिन लोगोंको इस विषयमें और कुछ पूछ-ताँछ करनी हो, वे निम्नाङ्कित पतेपर कर सकते हैं । इस प्रयोगसे अन्य प्रकारके प्रमेहमें भी काफी लाभ होता है । मूत्रकृच्छ्र तथा पूयमेह (सुजक) तक रोग भी ठीक होते देखे गये हैं ।

अथर्ववेदमें भी इसे उत्तम ओषधि बताया गया है ।

डा० पन्नालाल गर्ग, अध्यक्ष
पलाश प्रयोगशाला, पीरपुर हाउस
लखनऊ (उ० प्र०)

श्रद्धाञ्जलि

कुछ दिनों पूर्व सनातन-धर्मके प्रकाण्ड वयोवृद्ध विद्वान्, प्रबल समर्थक, सफल वक्ता और महान् लेखक पूज्यपाद महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगिरधरजी शर्मा महाराजका काशीवास हो गया । सनातन-धर्मका एक देदीप्यमान प्रबल प्रतापी सूर्य अस्त हो गया । आप महान् विद्वान् होनेपर भी बड़े विनीत और मधुरभाषी थे । विद्याविनयसम्पन्न ब्राह्मणत्वके मूर्तिमान् स्वरूप थे । भारतीय संस्कृतिके महान् मर्मज्ञ और प्रचारक थे । आपके शरीरपातसे सनातन-धर्म जगत्की, संस्कृतके विशाल क्षेत्रकी कपी पूर्ण न होनेवाली कितनी भयानक क्षति हुई है, यह कहना सम्भव नहीं है । ‘कल्याण’ तथा ‘गीताप्रेस’के प्रति आपका विलक्षण ममत्व था और इन्हें आपका नित्य आशीर्वाद प्राप्त था । ‘कल्याण’में समय-समयपर आपके अनेक विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं । कई बार आपने गीताप्रेसमें गोरखपुर पधारनेकी भी कृपा की थी । मुझ नगण्यपर तो आपका आदर्श वात्सल्य था । कितना स्नेह करते थे । पिछले दिनों आपकी रुग्णावस्थामें मैं दर्शन करने गया था तो लेंटे-लेंटे बड़ी धीमी ध्वनिसे मुझे कितने आशीर्वाद दिया । कितना स्नेह प्रदान किया । मैं कह नहीं सकता । समस्त विश्वमें आपकी जोड़ीके संस्कृतके विद्वान् तथा भारतीय सनातन-धर्म तथा संस्कृतिके मर्मज्ञ वक्ता और लेखक बिरले ही हैं । आपके देह-त्यागसे समस्त विश्वकी ही हानि हुई है, परन्तु सनातन-धर्मका तो एक आधार ही नष्ट हो गया । हमलोगोंकी व्यक्तिगत जो हानि हुई है, वह भी अकथनीय है । अवश्य ही वे मुक्तात्मा थे, उनके लिये दुःखका कारण नहीं है । मैं आज श्रद्धापूर्व हृदयसे उनके श्रीचरणोंमें श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूँ ।

—हनुमानप्रसाद पौदार

श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत

महाभारत (सचित्र, सरल हिंदी-अनुवादसहित)

सम्पूर्ण ग्रन्थ छः खण्डोंमें पूरा हुआ है। आकार २२×३० आठ पेजी

(द्वितीय खण्ड बहुत दिनोंसे अप्राप्त था, जिसके कारण पूरा सेट एक साथ लेनेवाले सज्जन रुके हुए थे। अब द्वितीय खण्ड छप गया है, अतः जिन्हें लेना हो तो वे तुरंत मँगवा सकते हैं।)

प्रथम खण्ड—आदि और समापर्व, रंगीन चित्र ९, सादे ४०, लाइनचित्र १०८,
पृष्ठ-संख्या ९२६, कपड़ेकी जिल्द ... १३.२५

द्वितीय खण्ड—वन और विराटपर्व, रंगीन चित्र १२, सादे ४०, लाइनचित्र २१४,
पृष्ठ-संख्या १११०, कपड़ेकी जिल्द ... १५.००

तृतीय खण्ड—उद्योग और भीष्मपर्व, चित्र रंगीन २३, सादे ३६, लाइनचित्र ८०,
पृष्ठ-संख्या १०७६, कपड़ेकी जिल्द ... १५.००

चतुर्थ खण्ड—द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक और स्त्रीपर्व, चित्र रंगीन १३, सादे ३१, लाइनचित्र ९१,
पृष्ठ-संख्या १३४६, कपड़ेकी जिल्द ... १८.००

पञ्चम खण्ड—शान्तिपर्व, चित्र रंगीन १०, सादे ३१, लाइनचित्र १६, पृष्ठ-संख्या १०१४,
कपड़ेकी जिल्द ... १३.७५

षष्ठ खण्ड—अनुशासन, आश्वमेधिक, आश्रमवासिक, मौसल, महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहणपर्व,
चित्र रंगीन १२, सादे ३८, लाइनचित्र ५५, पृष्ठ-संख्या १११२, कपड़ेकी जिल्द ... १५.००

सम्पूर्ण ग्रन्थका मूल्य ९० रुपया, कमीशन १५) सैकड़ाकी दरसे १३)५० बाद तथा रजिस्ट्री-खर्च ७० पैसा, कुल ७७)२० लगता है। मँगवानेवाले निकटस्थ रेलवे स्टेशनका नाम स्पष्ट लिखनेकी कृपा करेंगे।

एक नयी पुस्तक !

प्रकाशित हो गयी !!

आत्मोद्धारके सरल उपाय

लेखक—ब्र० श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आकार डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या २६८, मुरलीमनोहरका सुन्दर तिरंगा चित्र, मू० ७५
पैसे। डाकखर्च ८५ पैसे। कुल १.६०।

ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजीके पिछले दिनों 'कल्याण' में प्रकाशित लेखोंका यह संग्रह पुस्तकरूपमें प्रकाशित किया गया है। १७ अप्रैल १९६५में भगवती भागीरथीके पुनीत तटपर उनके देह त्यागकर ब्रह्मलीन हो जानेके पहले जितने लेख वे 'कल्याण'के लिये दे गये थे, उन सबका इस पुस्तकमें समावेश है।

श्रीगोयन्दकाजीके सिद्धान्तों, उपदेशों तथा वचनोंसे लाखों-लाखों नर-नारी आध्यात्मिक लाभ उठा चुके हैं और उठा रहे हैं। उनका यह अन्तिम ग्रन्थ उन सबके लिये विशेष लाभदायक हो सकेगा, ऐसी आशा है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीगीता-रामायणकी आगामी परीक्षाएँ

आगामी गीता-परीक्षाएँ दि० २०, २१ नवम्बर १९६६ को तथा रामायण-परीक्षाएँ दि० ८, ९ जनवरी १९६७ को होनेवाली हैं। नवीन केन्द्रोंके लिये प्रार्थनापत्र दि० ३० अगस्ततक भेज देने चाहिये।

व्यवस्थापक—गीता-रामायण-परीक्षा-समिति, पो० स्वर्गाश्रम (देहरादून)

सम्पूर्णरूपसे गोरक्षा आवश्यक

[आस्तिक जनतासे पुनः अपील]

‘कल्याण’के गताङ्कमें भारतकी आस्तिक जनतासे अपील की गयी थी कि समस्त भारतमें पूर्णरूपसे गोवध बंद होनेका कानून शीघ्र बने, इसके लिये सरकारको सद्बुद्धि प्राप्त हो, जनतामें गोरक्षाके लिये त्याग और बलिदानकी भावना उत्पन्न हो, आन्दोलनमें शुद्ध प्रवृत्तताका उदय हो तथा भारतका जन-जन गोरक्षाके लिये पुकार उठे—एतदर्थ अपने-अपने धर्म तथा विश्वासके अनुसार भगवान्की आराधना की जाय, दैवी अनुष्ठान किये जायँ, भगवन्नाम-संकीर्तन-जप आदि हों, यथादि किये जायँ, भगवन्-प्रार्थना की जाय। हर्षका विषय है कि देशकी जनताने भगवदाराधनाका पवित्र

कार्य प्रारम्भ कर दिया है। मेरे पास कई संस्थाओंके तथा व्यक्तिगत पत्र भी आये हैं और आ रहे हैं, जिनमें विभिन्न प्रकारसे भगवदाराधना तथा दैवी अनुष्ठानोंके प्रारम्भ करनेके शुभ संदेश हैं। पर अभीतक यह कार्य देशव्यापी नहीं हो पाया है। इसलिये पुनः आस्तिक जनतामात्रसे तथा संस्थाओंसे सादर अनुरोध किया जाता है कि वे शीघ्रातिशीघ्र नगर-नगर, गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले तथा घर-घरमें भगवदाराधन तथा दैवी अनुष्ठानोंका कार्य प्रारम्भ कर दें और उसकी सूचना मेरे नाम ‘कल्याण-कार्यालय’ गोरखपुरको भेजते रहें।

एक अखिल भारतीय सर्वदलीय गोरक्षा-समिति बनने जा रही है—जिसमें सभी प्रान्तोंके विभिन्न सम्प्रदायोंके तथा मतोंके बड़े-बड़े आचार्य, महात्मागण, नेतागण सम्मिलित होंगे। मेरी सब महानुभावोंसे यह विनीत प्रार्थना है कि सब महानुभाव इस विषयमें एकमत होकर एक सङ्घटनके द्वारा एक आवाज उठावें। अलग-अलग करनेपर शक्ति बिखर जायगी।

मेरे पास ऐसे व्यक्तिगत पत्र भी आ रहे हैं, जो आमरण या समयकी अवधिसे अनश्नव्रत करने तथा सत्याग्रह आदि हों तो उसमें भाग लेनेको प्रस्तुत हैं। यह बहुत संतोषकी बात है। ऐसे लोग उत्साहपूर्वक तैयार रहें और इसकी सूचना ‘भारत गोसेवक-समाज’, ३ सदर थाना रोड, दिल्ली ६ को भेज दें।

इस समय गोरक्षाके लिये देशभरके सभी वर्गोंमें उत्साह, एकता तथा त्यागकी भावना प्रबल होनी चाहिये, जिससे सुव्यवस्थितरूपसे सफल चेष्टा हो सके। —हनुमानप्रसाद पोद्दार

कल्याणका चालू वर्ष (‘जनवरी’ ६६) का विशेषाङ्क अभीतक मिलता है।

‘धर्माङ्क’

(पृष्ठ-संख्या—७००, बहुरंगे चित्र १४, दोरंगा १, सादे चित्र ४ तथा रेखा-चित्र ८१, वार्षिक मूल्य रु० ७.५० पैसे तथा सजिल्दका रु० ८.७५ पैसे।)

यह—धार्मिक चेतना, धर्मके लक्षण, धर्मका स्वरूप, धर्मकी महत्ता, मानव-धर्म, गीता-धर्म, सनातन धर्मका स्वरूप, अहिंसाधर्म, धर्मका यथार्थ रहस्य क्या है? धर्मके विविध स्वरूप, भागवतधर्म, गोसेवाधर्म और उसके आदर्श, राष्ट्रके प्रति हमारा धर्म, समाजके प्रति हमारा धर्म आदि अनेक सर्वोपयोगी और सर्वग्राह्य विषयोंपर भारतवर्षीय महान् विचारकों, मनीषियों, महात्माओं और दार्शनिक विद्वानोंके गम्भीर तथा विचारपूर्ण लेखोंका अभिनव तथा अपूर्व पूर्व संग्रह है। आज इसका जितना ही प्रचार होगा, उतना ही धर्म-ज्योतिका विस्तार होगा। जिसके फलस्वरूप आजका मार्ग-भ्रष्ट, अशान्त, दुखी मानव पुनः सन्मार्गपर चलकर सच्चे सुख-शान्तिको प्राप्त कर सकेगा।

अतएव कल्याणके चालू वर्षके नवीन ग्राहक बनने और बनानेवालोंको शीघ्रता करनी चाहिये; नहीं तो समाप्त हो जानेपर कल्याणके अन्य पुराने विशेषाङ्कोंकी भाँति यह भी दुर्लभ हो जायगा।

कर्म

23



चरन

वर्ष ४०

[अङ्क ९]

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-कालियपर कन्हैयाकी क्रीड़ा [कविता]	११४९
२-कल्याण ('शिव')	... ११५०
३-उपदेशवचनामृत (अनन्तश्रीविभूषित श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य १००८ श्रीस्वामी श्रीकृष्णबोधश्रमजी महाराज, संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीकृष्ण- प्रसादजी शर्मा)	... ११५१
४-प्रीति (संकलयिता—श्री 'माधव')	... ११५४
५-श्रीकृष्णकी अद्भुत प्राप्ति [कविता] (महाकवि रसखान)	... ११५४
६-आत्मप्राप्ति और विज्ञान (साइंस) (श्रीमाताजी श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी)	... ११५५
७-गौकी महिमा (श्रीपीताम्बरापीठ- संस्थापक श्री १००८ स्वामीजी महाराज)	११५९
८-संत-वाणी (संकलनकर्ता और प्रेषक— श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका)	... ११६१
९-वन-वैभव [कविता] (विद्यावाचस्पति पद्मश्री डा०हरिशंकरजी शर्मा डी० लिट्०)	११६८
१०-मनुष्य जितना अधिक काममें व्यस्त रहता है, उतना ही अधिक जीवित और स्वस्थ रहता है ! (डा० श्रीराम- चरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	... ११७०

कल्याण, सौर आश्विन २०२३, सितम्बर १९६६

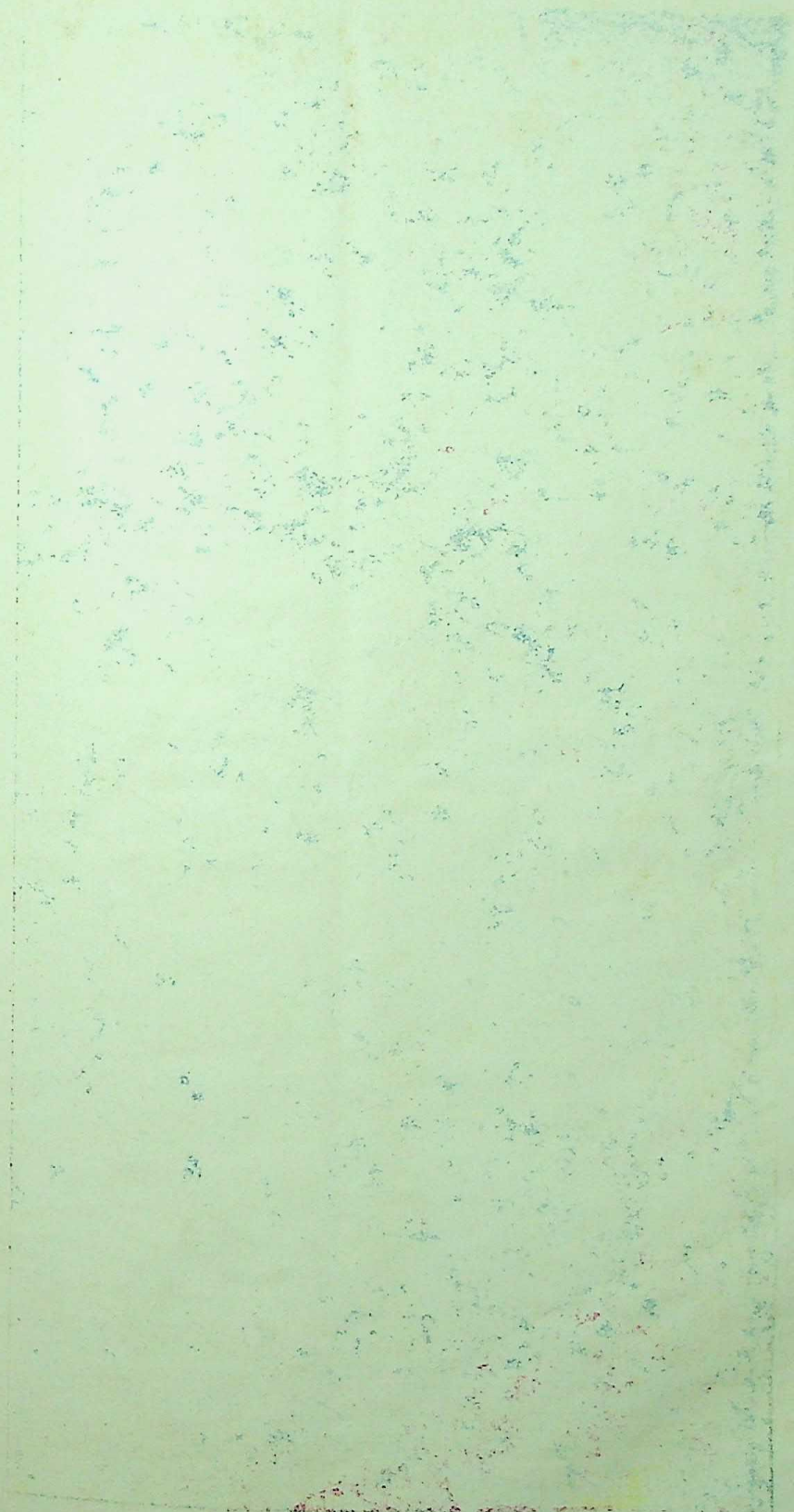
विषय	पृष्ठ-संख्या
११-सनातन-धर्म (आचार्य श्रीललितकृष्णजी गोस्वामी)	... ११७३
१२-ग्रह-शान्ति [कहानी] (श्री 'चक्र')	... ११७७
१३-कामके पत्र	... ११८१
१४-उदात्त संगीत [कविता] (डा० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	... ११८३
१५-गोसेवा और गोहत्या-निरोधके निमित्त आमरण अनशन (श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)	... ११८५
१६-दक्षिण भारतकी तीर्थ-यात्रा (सेठ श्री- गोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)	... ११९२
१७-पुण्यश्लोक वै० आचार्य श्रीराघवाचार्यजी महाराज (श्रीश्रीकान्तजी शास्त्री, एम्० ए०)	... ११९७
१८-सभीमें भरे तुम्हीं भगवान् [कविता]	११९८
१९-मधुर	... ११९९
२०-भारतीय प्राचीन शास्त्रके महान् पण्डित डॉ० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल	... १२००
२१-पतनोन्मुख जगत्	... १२०३
२२-पढ़ो, समझो और करो	... १२०६
२३-गोरक्षा-महाभियान	... १२१०

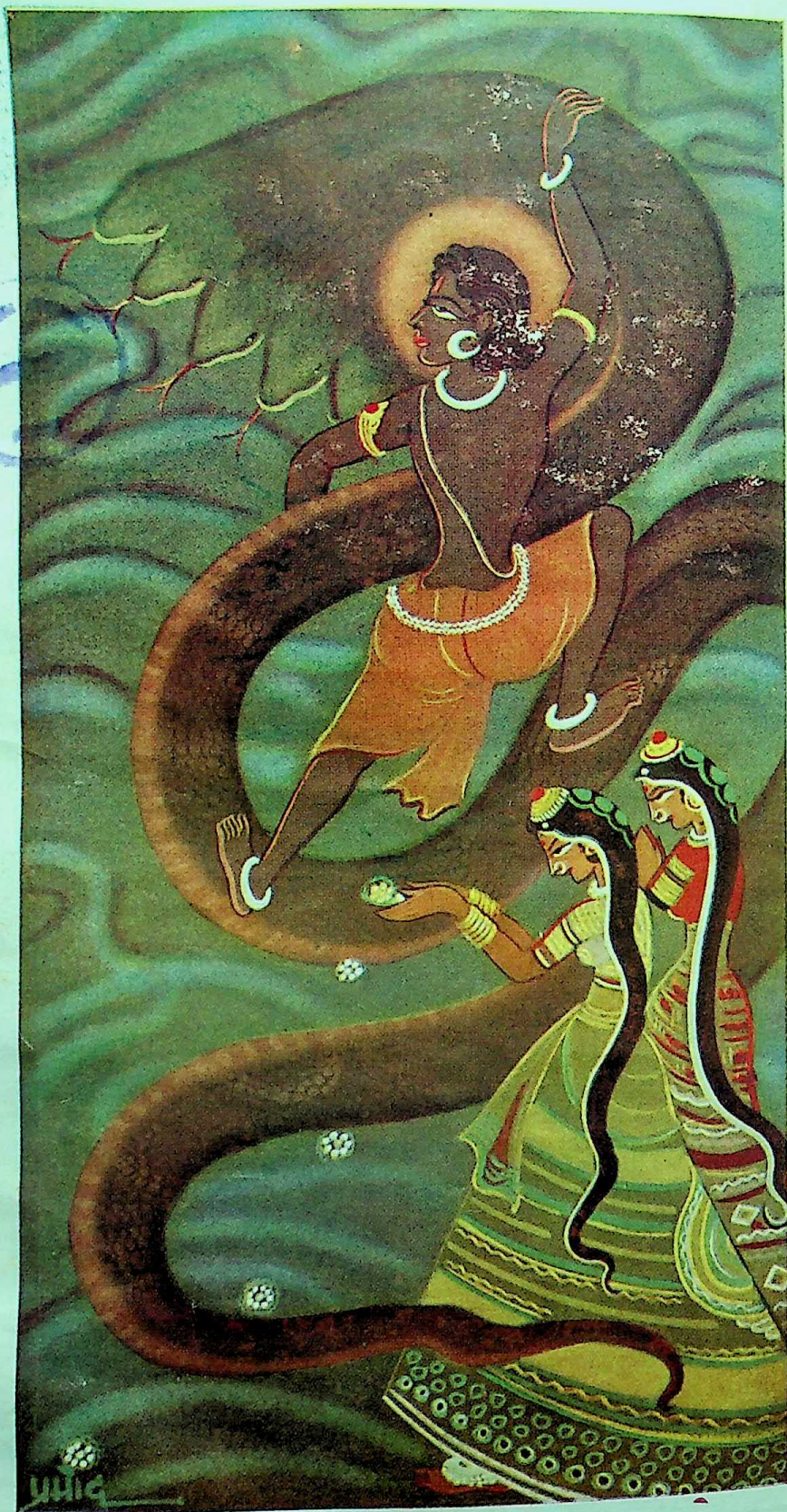
चित्र-सूची

१-बाल-माधुरी	(रेखाचित्र)	... मुखपृष्ठ
२-कालिय-दमन	(तिरंगा)	... ११४९

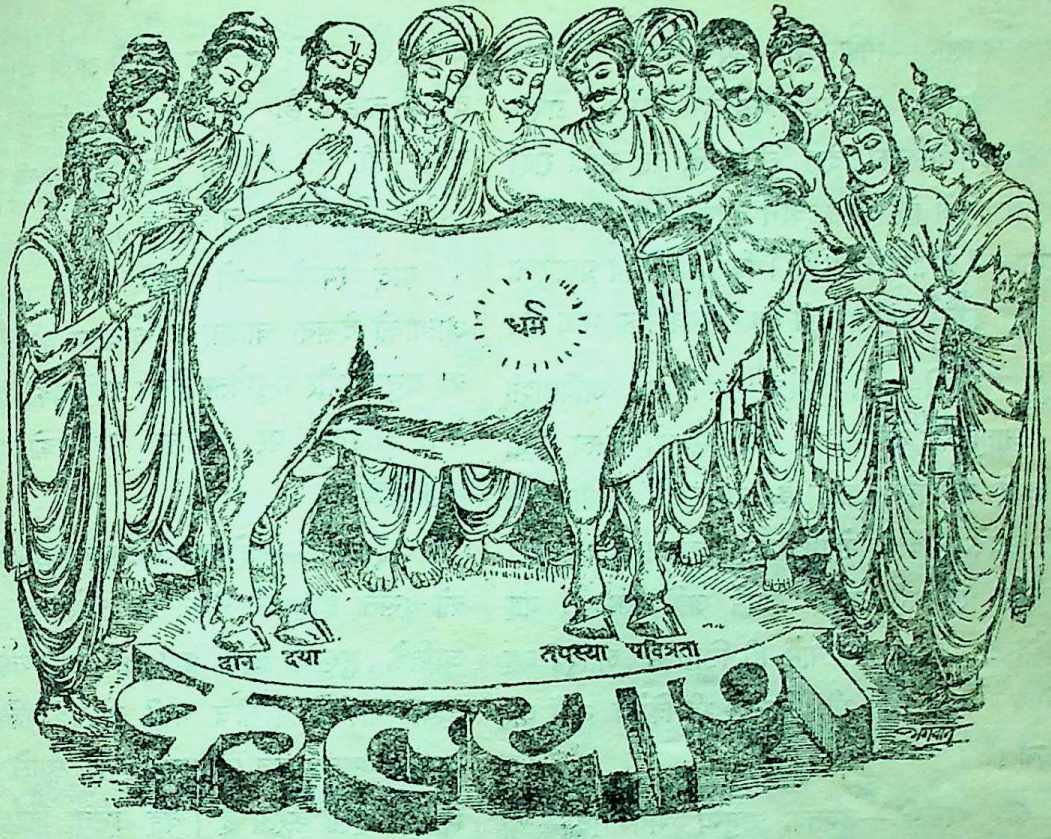
वार्षिक	मूल्य	जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय ॥	साधारण प्रति
भारतमें	रु० ७.५०	जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥	भारतमें ४५ पै०
विदेशमें	रु० १०.००	जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥	विदेशमें ५६ पै०
(१५ शिल्लिङ्ग)			(१० पैस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर





ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्ब्रह्मर्षिराजर्षिर्भविर्दृशूद्वैरपि वन्द्यते स जयताद्वर्मो जगद्धारणः ॥

वर्ष ४० }

गोरखपुर, सौर आश्विन २०२३, सितम्बर १९६६

{ संख्या ९
पूर्ण संख्या ४७८

कालियपर कन्हैयाकी क्रीड़ा

क्रीडत कल कुँमर कान्ह कालिय बदन पर ।
चढ़े चलत ठुमुक ठुमुक, चमकत कुंडल बर ॥
कर कंकन, भुजाबंद, कंठहार मनहर ।
नयन सुविसाल, भाल दमकत सुचि तमहर ॥
बिनवत कालीयघरनि कलित कुसुम कर धर ।
अघरहित भक्त भयो सर्प पाय विमल बर ॥

कल्याण

याद रक्खो—भगवान् ही अपने संकल्पसे अनन्त विश्वके अनन्त चराचर भूतोंके रूपमें प्रकट हैं, जो इस सत्यको देख लेता है, वह सर्वत्र सदा सबमें भगवान्‌के ही मङ्गल दर्शन करता है। वह सभीको अनन्यभावसे प्रणाम करता है। किसीसे किसी प्रकारका विरोध तो करता नहीं। वही सच्चा भगवान्‌का भक्त है।

याद रक्खो—जो सर्वत्र सबमें एक अविनाशी नित्य आत्माको देखता है और सबको नित्य एक अविनाशी आत्मामें देखता है, वह सबमें आत्मानुभूति करके सबके साथ आत्मोपम व्यवहार करता है। उसका आत्मरूप 'स्व' ही सबके रूपमें अभिव्यक्त है, वह देखनेवाला भी उस आत्मामें ही स्थित है अतएव वह 'स्व'स्थ है। वह भी किसीसे भी विरोध नहीं कर सकता।

याद रक्खो—जबतक मनुष्य भगवान्‌को या आत्माको सबमें नहीं देखता और सबको भगवान्‌में या आत्मामें नहीं देख पाता, तबतक उसकी स्थिति प्रकृतिमें रहती है, इसीसे उसे 'प्रकृतिस्थ' कहते हैं। यही जीव है। वह प्रकृतिमें होनेवाले परिवर्तनको—सृजन-संहारको अपने लिये मानता है। इसीसे सुखी-दुखी होता है, प्रकृतिके गुणोंको भोगता है। इन गुणोंका सङ्ग ही उसके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है।

याद रक्खो—इस प्रकृतिस्थ जीवमें भी पूर्वकर्मानुसार या वर्तमानके सङ्ग एवं वातावरणके अनुसार जितना-जितना 'स्व' का विस्तार होता है, उतने-उतने ही उसके विचार और कर्म उदार तथा पवित्र होते हैं, एवं जितना-जितना 'स्व' का संकोच होता है, उतना-उतना ही उसके विचार और कर्म अपवित्र होते हैं। जैसे एक आदमी मानव, पशु-पक्षी आदि चेतन

जीव तथा वृक्षादि अचेतन भूतोंमें अपने समान आत्माको देखना चाहता है, वह जड़, चेतन किसी भी प्राणीको दुःख नहीं देना चाहता। सभीको सुखी बनाना तथा सभीका हित करना चाहता है।

याद रक्खो—जो मनुष्य चेतन प्राणियोंमें तो आत्माको देखना चाहता है, अचेतन वृक्षादिमें नहीं। वह मनुष्य और मनुष्येतर चेतन प्राणियोंको तो दुःख नहीं देना चाहता, पर अचेतन वृक्षादिको काटने-छेदनेमें नहीं हिचकता।

याद रक्खो—जो मनुष्य मनुष्यतक ही केवल आत्माको देखता है, दूसरे चेतन प्राणियोंमें नहीं, वह मनुष्य-जातिके सुखके लिये पशु-पक्षी, कीट-पतङ्गोंकी हिंसा-हत्या करनेमें संकोच नहीं करता; बल्कि आवश्यक मानकर मानव-सुख या मानव-हितके भ्रमसे उनकी विना संकोच हिंसा करता है। वह इतना निर्दय हो जाता है कि उन मूक प्राणियोंको प्राण-वियोगके समय पीड़ासे छटपटाते देखकर आनन्द लाभ करता है, मनोरञ्जन मानता है और हँसता है। वह मानव-शरीरमें एक प्रकारका क्रूर असुर ही है।

याद रक्खो—जो मनुष्य और भी गिरा हुआ होता है, वह केवल अपने देश, जाति, धर्म, मत, पंथ, दल आदि तक ही अपने 'स्व'को सीमित कर देता है, वह अपने देशके नामपर विदेशीको, जातिके नामपर दूसरी जातिके मनुष्यको, धर्मके नामपर दूसरे धर्मके मानवको, मत, पंथ और दलके नामपर दूसरे मत, पंथ और दलके मनुष्योंका वध करनेमें गौरवका अनुभव करता है। वह मनुष्य भी मनुष्यरूपमें पिशाच ही है।

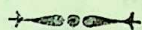
याद रक्खो—उससे गिरा हुआ जो मनुष्य अपने कुटुम्बतक ही 'स्व' मानता है, वह अपनी ही जातिके अपने ही भाइयोंको क्षुद्र कौटुम्बिक स्वार्थके लिये मार

डाकता है और उसमें गौरव तथा लाभकी अनुभूति करता है।

याद रखो—सबसे गिरा हुआ मनुष्य वह है जो अपने निजके शरीरतक ही 'स्व' को सीमित रखता है। वह अपने शरीरके आराम तथा सुखके लिये माता-पिता, वीर-वृद्धोंतककी हिंसा-हत्या कर डालता है। ऐसा मनुष्य प्रत्यक्ष ही राक्षस है।

याद रखो—इन सब मनुष्योंमें नीचेसे उत्तरोत्तर ऊँचे हैं। ऊँचेसे उत्तरोत्तर नीचे हैं। तुम्हारा कर्तव्य यही है कि तुम सबमें भगवान्को देखकर पूज्यभावसे सबको सुख हो—सबका हित हो ऐसे विचार-कार्य करो; या सबमें अपने आत्माको ही समझकर सबके साथ यथायोग्य आत्मोपम व्यवहार करो।

‘शिव’



उपदेशवचनामृत

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य १००८ श्रीस्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीकृष्णप्रसादजी शर्मा)

‘मनुष्यको चाहिये कि वह शुभ, परहितकारी एवं पवित्र वचन बोले।’

‘बलका अहंकार, तपस्याका अहंकार, धन इत्यादिका अहंकार मनुष्यको पतनकी ओर ले जाता है।’

‘चिन्ताओं, नाना प्रकारके संकल्प-विकल्पोंसे सांसारिक प्राणी दुखी रहते हैं, परंतु भगवत्कृपासे ये एक क्षणमें ही मिट जाते हैं। अतः उन्हींकी शरणमें जाना चाहिये।’

‘जबतक अहंकार रहता है, प्रभु नहीं आते। गजेन्द्रने सहस्र दिव्य वर्षोंतक अपने बलके अहंकारपर ग्राहसे युद्ध किया। जब उत्साह भङ्ग हो गया, तब प्रभुकी शरणमें जानेपर ही उसका मोक्ष हुआ।’

‘दो ही वस्तुएँ प्राणीको इस संसार-सागरमें डूबनेसे बचाती हैं—अपना पुण्य और भगवान्। अतः शुभ कर्मोंके द्वारा पुण्य संचय करो और उन अकारण करुणकी शरणमें जाओ।’

‘मन संसारको सत्य समझता है, इसीलिये भजनमें नहीं लगता। यदि कोई मस्तकपर मृत्युको देखता रहे तो

उसे संसारके विषय तो क्या, भूख-प्यास भी न रहेगी और झूठ, परस्त्रीगमन इत्यादि तो सूझेगा भी नहीं।’

‘संसारमें लोग धनवानोंकी स्तुति करते हैं। वे यदि धनवानोंके बजाय भगवान्की स्तुति करें तो बन्धनसे ही न छूट जायँ।’

‘भगवान्के बलका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। जिसे जितना विश्वास हो उसे उतनी ही शक्ति-सिद्धि मिल जाती है। प्रभुके बलका पता नहीं चल सकता।’

‘प्रातः सूर्योदयसे पूर्व उठकर स्नान, संध्या-वन्दनादि करके जो सूर्यको नमस्कार करता है, एक सहस्र जन्ममें भी वह कभी दरिद्री नहीं हो सकता। अतः चाय, बिस्कुट, अंडे, अखबार इत्यादिको छोड़कर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर उक्त कार्योंका सम्पादन करो।’

‘भगवान्की प्रसन्नता-अप्रसन्नताकी जाँचकी कसौटी माद्धम है ? अरे ! जब मनुष्यको चिन्ताएँ सतायें तो जानो प्रभु नाराज हैं तथा चिन्ताएँ न व्यापें तो समझना चाहिये कि वे प्रसन्न हैं।’

‘गुरुके समक्ष कभी अपना महत्त्व प्रकट न करो। उनके समक्ष तो नम्र रहनेमें ही कल्याण है।’

‘देवताओंका पूजन करने जाओ तो पवित्र देवतावत् होकर ही जाना चाहिये। मलिन-वस्त्र स्नानमुख होकर देवताके समीप जानेमें पाप लगता है।’

‘मनुष्यके भीतर है क्या सिवा दोषोंके—काम-क्रोध, मद-लोभके। अतः बुद्धिमानी यही है कि प्रभु-भजनमें लगाकर मनुष्य इस शरीरका सदुपयोग कर ले।’

‘ब्राह्मणसे कभी उसके धन एवं विद्याके सम्बन्धमें न पूछे। अपितु आपका तप तो बढ़ रहा है, त्रिकाल-संध्या-वन्दनादि तो ठीक चल रहा है? गायत्रीका जप तो खूब चल रहा है? इत्यादि इस प्रकारके प्रश्न करने चाहिये।’

‘जो लोग गङ्गाजीपर जाकर श्राद्ध, तर्पण इत्यादि नहीं करते उन्हें पाप लगता है, तीर्थदेवता उन्हें शाप दे देते हैं।’

‘जिस वस्तुको दान कर दिया जाता है, संकल्प कर दिया जाता है, उसे घरमें नहीं रक्खे। उसे छूना भी नहीं चाहिये। यह नहीं कि धर्मादाके धनको ब्याजपर लगाकर फिर उसमेंसे दान-दक्षिणा इत्यादि दे। इससे पाप लगता है।’

‘संसारकी वस्तुओंमें नीयतकी प्रधानता रहती है। जब नीयत अच्छी रहती है सब वस्तुएँ सुलभ रहती हैं। नीयत खराब होते ही वस्तुएँ संसारसे लुप्त हो जाती हैं। अतः संसारमें ईमानदारीका महत्त्व है। वैईमानी-बदनीयतीका नहीं।’

‘संसारमें मनुष्य वही है जिसके कुछ नियम हों। बिना नियमके जो जीवन-यापन करते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं कहा जा सकता।’

‘भगवान्ने जितनी भी योनियाँ बनायी हैं, उनमें कुछ-न-कुछ विशेषता—विलक्षणता रक्खी है; अतः किसी भी प्राणीका अपमान नहीं करना चाहिये।’

‘धर्मका बल बहुत बड़ा होता है। जिसके भीतर धर्मका बल होता है वह कभी भी, कहीं भी नहीं घबराता।’

‘सत्यवादीको कभी भय नहीं होता, वह निर्भय विचरता है। अतः सत्य बोलनेका अभ्यास करना चाहिये।’

‘भगवान् भक्तके पुरुषार्थकी ह्याति बढ़ाते हैं, उसका यश फैले, ऐसे उपाय करते हैं। भक्तका अपमान उन्हें कथमपि सहन नहीं होता। अतएव साधुओं एवं भक्तोंका कभी अपमान न करे।’

‘कथा-श्रवणसे श्रद्धा बढ़ती है, भक्ति दृढ़ होती है अतः नित्य कथाश्रवण-सत्संग किया करो।’

‘मनुष्यको चाहिये सदा पवित्र रहे; श्राद्ध, तर्पण, संध्यावन्दनादि शुभ कृत्य पवित्र होकर करे। सनातन-धर्ममें शौचाचारका विशेष महत्त्व है। अतः सदा शरीरसे शुद्ध एवं मनसे पवित्र रहना चाहिये।’

‘भगवान्को प्रसन्न करना हो तो सदाचारका पालन करो। तप करो। दुराचारीके भाग्यमें प्रभुदर्शन कहाँ?’

‘जो तप करता है, कष्ट सहन करता है, प्राणोंको संकटमें डालता है, वही आगे चलकर कल्याणका दर्शन करता है। यह नहीं कि संसारके मौज-मजे भी लेते रहो और कल्याणको भी प्राप्त कर लो। अतः तप, त्याग, व्रत, जप इत्यादिमें मनुष्यको लगे रहना चाहिये।’

‘संसारमें एक वह मनुष्य है जो नोट बटोरे और इधर-उधर खाक छानता भटके, और एक वह है जो राम-का भजन करे। मरते समय कौन आनन्दपूर्वक देह त्याग करेगा और मरनेके बाद किसको क्या मिलेगा—यह स्वयं ही सोच लो।’

‘युद्धसे जो न घबराता हो, वही शासक होनेयोग्य

संख्या ९]

है। राजा होकर भी जो युद्धसे डरता है, पृथ्वी उसे निगल जाती है।'

‘राजा (शासक) को कभी शान्तिपूर्वक नहीं बैठना चाहिये। सदा-सर्वदा (धर्म तथा धर्मराज्यके रक्षार्थ) युद्धके लिये तत्पर, सन्नद्ध रहना चाहिये।’

‘युद्ध कोई बुरी वस्तु नहीं है अपितु बड़ी उत्तम वस्तु है। (अवश्य ही होना चाहिये धर्मयुद्ध) जो गति वेदज्ञ ब्राह्मणको मिलती है, वही धर्मयुद्धमें प्राण न्योछावर करनेवालेको मिलती है। रण भी रणमेव यज्ञ ही है।’

‘राष्ट्र सदा बलि चाहता है; जबतक उसके निवासी बलि देते रहते हैं, वह सुरक्षित रहता है। अन्यथा नष्ट हो जाता है; अतः राष्ट्रनिवासियोंको सदा बलिदानके लिये तैयार रहना चाहिये।’

‘शासक राष्ट्रकी दुर्बलतापर दृष्टि रखे और राजधानीमें तब प्रवेश करे जब सारे राष्ट्रको सुरक्षित समझे। अन्यथा रामके समान राष्ट्रमें घूमता रहे, कंटकोंको हटाता रहे; कदापि राजधानीके भवनोंमें शान्तिसे न बैठे।’

‘जो स्वयं आनन्दमें निमग्न है, कर्तृत्वविहीन है, निर्विकार है, सर्वदा वही अन्योकी सच्ची सेवा कर सकता है।’

‘जो जितना महान् होता है उसे उतना ही कम तथा उतनी ही अधिक देरमें क्रोध आता है और उतनी ही सरलता-शीघ्रतासे वह प्रसन्न हो जाता है।’

‘जो संसारमें आकर कामसेवनसे बचेगा, वही अमृत पी सकता है।’

‘आप हम सब अपने आत्माके बलको भूले हुए हैं तभी तो केवल अर्थोपार्जनमें फँसे हैं। चोर-बाजारी, गोहत्या, रिश्वत, भ्रष्टाचार जारी हैं, मन्दिरोंकी मर्यादा

भ्रष्ट हो रही है, देशमें अनाचार फैल रहा है और सब कुछ सहन कर रहे हैं।’

‘मनुष्यको धर्मात्मा, महामना, उदारचेता होना चाहिये, कृपण अधर्मी नहीं।’

‘जिन बातोंको सुनने-कहनेसे काम, क्रोध, लोभ, मोह उत्पन्न हों, उनसे पाप लगता है और जिनके सुननेसे भगवान्की भक्तिका प्रादुर्भाव हो, बुद्धि निर्मल हो वे ही पुण्यात्मक हैं। अतः कथा-श्रवण-कीर्तनमें रत रहना ही चाहिये।’

‘कलियुगमें मनुष्योंके कल्याणके लिये भगवान् रामसे अधिक किसीका चरित्र हो नहीं सकता। रामके चरित्रसे मनुष्योंका सर्वविध कल्याण होता है, पतनके लिये रामचरित्रमें स्थान ही नहीं है; उससे न काम उत्पन्न होगा, न क्रोध, न लोभ और न मोह। अतः कल्याणच्छुकोंको रामका चरित्र सुनना और रामके शरण जाना चाहिये।’

‘मनुष्य-जीवनकी सफलता, सार्थकता इसीमें है कि कम-से-कम भारतवर्षमें जन्म लेकर तो भगवान् रामकी भक्ति करे, उनकी शरणमें जाय।’

‘तीर्थ-यात्रा भी एक यज्ञ है। तीर्थकी ओर धीरे-धीरे यात्रा करे, प्रत्येक चार कोसपर विश्राम करे, संन्या-वन्दन, बलिवैश्वदेव, दान इत्यादि करते हुए शान्तिपूर्वक प्रसन्नचित्त होकर यात्राकी ओर चले।’

‘जो तीर्थ-यात्राको जाता है उसके पितर साथ जाते हैं। जो तीर्थपर जाकर श्राद्ध-तर्पणादि नहीं करता उसके पितर उसे शाप दे देते हैं।’

‘भगवान्को वेदोंकी रक्षाकी चिन्ता रहती है और आजकल वेदोंकी भाषा संस्कृतको शीघ्रातिशीघ्र मिटाकर अंग्रेजीको रखनेकी चेष्टाएँ हो रही हैं; अतः भगवान् हम आप सबसे अप्रसन्न हैं; उन्हें प्रसन्न करना हो तो वेदोंका प्रचार करो, संस्कृत पढ़ो।’

[—पूज्य आचार्यचरण आजकल मेरठ श्रीकृष्णबोधदण्डी आश्रममें विराज रहे हैं। चातुर्मास्य चल रहा है। उन्हींके उपदेशोंमेंसे कुछ वाक्योंका यह संकलन है।]

प्रीति

[एक महात्माका प्रसाद]

(संकलयिता—‘श्रीमाधव’)

प्रीतिके बिना प्रीतमसे अभिन्नता नहीं होती। प्रीति बीजरूपमें सभीमें विद्यमान है, परंतु जब हम उसे व्यक्ति, वस्तु, अवस्था आदिमें आबद्ध कर देते हैं, तब वह आसक्ति, लोभ, मोह, जड़ता आदि विकारोंमें बदल जाती है ठीक जैसे नदीका निर्मल जल किसी गड्ढेमें आबद्ध होनेसे विकृत होकर अनेक विषैले कीटाणु उत्पन्न करता है।

प्रीति तो प्रीतमका स्वभाव है। उसे सब ओरसे हटाकर अपने प्रीतमकी ओर ही स्वतः प्रवाहित होने देना चाहिये। अनन्तकी प्रीति भी अनन्त है। उसका कभी अन्त नहीं होता। इसी कारण वह नित नूतन रस प्रदान करनेमें समर्थ है। हम वस्तु आदिकी प्राप्तिमें भले ही असमर्थ हों, परंतु प्रीतिकी प्राप्तिमें असमर्थ तथा परतन्त्र नहीं हैं; क्योंकि प्रीतिसे हमारी जातीय एकता है। प्रीतिका कभी नाश नहीं होता।

यदि प्रीति समस्त विश्वकी ओर प्रवाहित हो तो उसका नाम ‘विश्वप्रेम’ हो जाता है। ‘स्व’की ओर प्रवाहित हो तो उसे ‘आत्मरति’ कहते हैं और वही यदि अनन्तकी ओर प्रवाहित हो तो उसीका नाम ‘प्रभुप्रेम’ हो जाता है। सभीके प्रति होनेवाली प्रीति अथवा देहसे अतीत

अपने प्रति होनेवाली प्रीति साधना है और अनन्तके प्रति होनेवाली प्रीति साध्य है। इस दृष्टिसे प्रीति साधन भी है और साध्य भी, नित्य भी है और अनन्त भी।

प्रीति सभीमें विद्यमान है। जो उसका सदुपयोग करते हैं, वे दिव्य तथा चिन्मय जीवनकी ओर गतिशील होते हैं और जो दुरुपयोग करते हैं वे जड़ता आदि विकारोंमें आबद्ध हो जाते हैं। प्रीतिका सदुपयोग वही कर सकते हैं जो सब प्रकारकी चाहसे रहित हैं। चाहसे युक्त प्राणी तो प्रीतिका दुरुपयोग करता है। प्रीतिके दुरुपयोगमें अपना विनाश है और प्रीतिके सदुपयोगमें जीवन है।

किसी मान्यता-विशेषमें आबद्ध प्रीति ही सीमित होकर संघर्ष उत्पन्न करती है, जो विनाशका मूल है। सभी मान्यताओंसे अतीत सत्तामें होनेवाली प्रीति विमु होकर शान्ति तथा अभिन्नता प्रदान करती है। नित्य-योगमें ही प्रीतिकी प्राप्ति है। विवेकयुक्त जीवनमें ही प्रीतिका प्रादुर्भाव होता है। प्रीति जिसका जीवन है, उसकी दृष्टिमें सृष्टि नहीं रहती, कारण कि प्रीति प्रीतमसे अभिन्न कर देती है और सारा विश्व उसके लिये प्रीतममय हो जाता है।

श्रीकृष्णकी अद्भुत प्राप्ति

कंस कुट्यो सुनि बानी अकासकी
ज्यावनहारहि मारन धायो।
भादव सावरी आठईको
रसखान महाप्रभु देवकी जायो ॥

रैन अंधेरीमें लै वसुदेव
महाबनमें अरने धरि आयो।
काहु न चौजुग जागत पायो
सो राति जसोमति सोवत पायो ॥

—महाकवि रसखान

आत्मप्राप्ति और विज्ञान (साइंस)

(श्रीमाताजी श्रीअरविन्दाश्रम, पांडिचेरी)

‘सूर्यकी रचनाको या मंगलग्रहकी रेखाओंको देखना निस्संदेह एक बड़ी भारी प्राप्ति है, किंतु जब तुम्हारे पास एक ऐसा यन्त्र होगा जिससे तुम मनुष्यकी आत्मा-को वैसे ही देख सकोगे जैसे कि तुम एक चित्रको देखते हो तो भौतिक विज्ञानके चमत्कारोंपर तुम्हें हँसी आयगी, मानो वे बच्चोंके खिलौने हों।’

—श्रीअरविन्द (‘विचार और सूत्र’)

यह उसी बातका चलता क्रम है जो हम अभी उन लोगोंके विषयमें कह रहे थे जो ‘देखना चाहते हैं।’ ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीरामकृष्णने कभी विवेकानन्दको कहा था ‘तुम भगवान्को उसी भाँति देख सकते हो जैसे कि तुम मुझे देखते हो और उनकी आवाज उसी प्रकार सुन सकते हो जैसे कि तुम मेरी आवाज सुनते हो।’ कुछ लोग इस बातको इस अर्थमें लेते हैं कि यह भगवान्के पृथ्वीपर हाड़-मांसके शरीरमें विद्यमान होनेकी घोषणा थी। मैं कहती हूँ ‘नहीं; उनके कहनेका यह तात्पर्य नहीं था! वे जो कहना चाहते थे वह यह कि यदि तुम सच्ची चेतनामें प्रवेश करो तो तुम भगवान्की आवाज सुन सकते हो (मैं तो कहूँगी कि भौतिक श्रवणोंसे जो तुम सुन सकते हो उससे कहीं अधिक स्पष्ट तुम उसकी आवाज सुन सकते हो और भौतिक दृष्टिसे जो तुम देखते हो उससे कहीं अधिक स्पष्ट रूपसे उसे देख सकते हो)।’ आह, किंतु……झटसे ज्योंही तुम अपनी आँख फाड़कर देखने लगते हो कि वह कोई अवास्तविक वस्तु हो जाती है।

प्रश्न—क्या भौतिक विज्ञानके चमत्कारोंपर आपको हँसी आती है?

उत्तर—चमत्कार, बड़ी अच्छी बात है, यह उनका विषय है। पर अपनी मान्यताओंपर दृढ़तापूर्वक अड़े रहने-

की जो उनकी वृत्ति है, उसीपर मुझे हँसी आती है। वे समझते हैं कि वे जानते हैं। वे सोचते हैं कि उन्हें कुंजी प्राप्त हो गयी है, इसीपर हँसी आती है। वे समझते हैं कि उन्होंने जो कुछ जान पाया है उसके बलपर वे प्रकृतिके स्वामी बन गये हैं—यह बचकानापन है। जबतक वे सर्जनकारी शक्ति और संकल्पके सम्पर्कमें नहीं आते, कोई-न-कोई वस्तु सदा ही उनसे छूट जाया करेगी।

इस बातको तुम बड़ी आसानीसे परख सकते हो। एक वैज्ञानिक समस्त दृश्य तत्त्वोंकी व्याख्या कर सकता है, वह भौतिक शक्तियोंका प्रयोग भी कर सकता है और उनसे मनचाहा काम भी करा सकता है, और स्थूल भौतिक दृष्टिसे वे विस्मयकारी परिणामोंपर पहुँचे हैं। पर यदि तुम उनसे केवल यह प्रश्न करो, यह सरल प्रश्न! ‘मृत्यु क्या है?’ वस्तुतः वे इसके विषयमें कुछ भी नहीं जानते। वे तुम्हें भौतिक रूपसे जिस प्रकार वह घटता है उसका वर्णन कर देते हैं, किंतु यदि वे सच्चे हैं तो उन्हें यह कहनेको विवश होना होगा कि इस व्याख्यासे कुछ भी स्पष्ट नहीं होता।

सदा ही एक ऐसा क्षण होता है जब विज्ञान कोई व्याख्या नहीं दे पाता; क्योंकि ज्ञान…… ज्ञानका अर्थ है शक्ति।

अन्ततः जड़वादी विचारको—वैज्ञानिक विचारको, जो अधिक-से-अधिक पता लग सकता है वह यही तथ्य है कि वह भविष्यको नहीं देख सकता, वह बहुत-सी वस्तुओंका पूर्वज्ञान प्राप्त करता है; किंतु पार्थिव घटनाएँ किस प्रकार अभिव्यक्तिमें आती हैं यह उन वैज्ञानिकोंकी दृष्टिसे परेकी वस्तु है। मेरा विचार है कि बस एक इसी वस्तुको वे स्वीकार कर

सकते हैं—एक आकस्मिकता होती है, अदृष्टका एक क्षेत्र होता है जिसे उनकी सारी गणना पकड़ नहीं पाती ।

मेरी कभी किसी आधुनिक वैज्ञानिकसे, जिसे आधुनिकतम ज्ञान प्राप्त हो बातचीत नहीं हुई, अतः मुझे इसका पूरा निश्चय नहीं है । मुझे पता नहीं कि वे किस हद तक अदृष्ट या अप्रत्याशितको स्वीकार करते हैं ।

मेरे विचारमें श्रीअरविन्द जो कहना चाहते हैं वह यह कि जब मनुष्य आत्माके सम्पर्कमें आता है और आत्माका ज्ञान प्राप्त होता है तो वह ज्ञान उनकी अपेक्षा इतना अधिक आश्चर्यजनक होता है कि प्रायः अपेक्षाकी हँसी होती है । मैं नहीं समझती कि उनके कहनेका तात्पर्य है कि आत्माका ज्ञान तुम्हें भौतिक जीवनके सम्बन्धमें उन वस्तुओंका ज्ञान प्रदान करता है जो तुम भौतिक विज्ञानसे नहीं सीख सकते ।

वात केवल एक ही है (मुझे पता नहीं कि विज्ञान यहाँतक पहुँच पाया है या नहीं), और वह है भविष्यको देखनेकी अक्षमता । पर सम्भव है कि वे कहें कि यह इसलिये कि अभीतक वे एतद् विषयक यन्त्रों और नियमोंकी पूर्णतापर पहुँच नहीं पाये । जैसे कि शायद वे समझते हैं कि जिस समय पृथ्वीपर मनुष्य प्रकट हुआ उस समय यदि उनके पास वे यन्त्र होते जो आज उनके पास हैं तो वे पशुके मनुष्यमें रूपान्तरको अथवा पशुके अंदर 'कोई वस्तु' होनेके पश्चात् मनुष्यके प्रादुर्भावको पहलेसे जान ले सकते । मुझे उनकी अति आधुनिक स्थापनाओंके विषयमें कोई जानकारी नहीं (श्रीमाँ मुस्कराती हैं) । ऐसी अवस्थामें, आज एक ऐसी वस्तु जो पहले नहीं थी, उसके आनेसे वातावरणमें जो अन्तर आया है, उसे उन्हें जान सकना चाहिये; क्योंकि यह

अब भी भौतिक क्षेत्रकी वस्तु है । * किंतु मेरा ख्याल है कि श्रीअरविन्द यह नहीं कहना चाहते थे । मेरा विश्वास है कि श्रीअरविन्द यह कहना चाहते थे कि आत्माका जगत् तथा आन्तरिक सत्य भौतिक सत्योंकी अपेक्षा इतने अधिक आश्चर्यजनक हैं कि सभी भौतिक आश्चर्योंपर तुम्हें हँसी आने लगती है—यही अर्थ ठीक जान पड़ता है ।

प्रश्न—किंतु जिस कुञ्जीकी आप चर्चा कर रही हैं और जो उनके पास नहीं है, क्या वह आत्मा ही नहीं है ? क्या वह आत्माकी शक्ति ही नहीं है जो जड़-पदार्थपर उसे बदलनेके लिये कार्य कर रही है—भौतिक चमत्कार करनेके लिये भी ? क्या आत्मामें वह शक्ति नहीं है ?

उत्तर—उसके पास वह शक्ति है और वह निरन्तर उसका प्रयोग भी कर रही है, किंतु मानव-चेतनाको उसका पता नहीं, उसके प्रति सचेतन होनेसे बड़ा

* एक साधकके यह पूछनेपर कि 'क्या यह कोई वस्तु अतिमानसिक शक्ति नहीं ?' श्रीमाँने उत्तर दिया था: 'मैं इसे कोई नाम नहीं देना चाहती; क्योंकि लोग इसका एक मत बना लेंगे । ऐसा ही तब हुआ था जब १९५६ में वह घटना घटी जिसे हम 'पहली अतिमानसिक अभिव्यक्ति' कहते हैं । मैंने बड़ी चेष्टा की कि लोग इसे किसी मतका रूप न दें । किंतु यदि मैं कहूँ 'अमुक दिनपर अमुक घटना घटी' तो वह बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिख दी जायगी और तब यदि किसीने इससे कुछ भिन्न बात कही तो उसे कहा जायगा 'तुम इससे कुछ भिन्न बात कही तो उसे कहा जायगा 'तुम नास्तिक हो ।' मैं यह नहीं चाहती । तथापि यह निर्विवाद सत्य है कि अब वातावरण बदल गया है; उसमें एक नवीन वस्तु प्रवेश कर गयी है—इसे 'अतिमानसिक सत्यका अवतरण' कहा जा सकता है; क्योंकि हमारे लिये इन शब्दोंका एक अर्थ है । किंतु मैं इसे उद्घोषणाका रूप नहीं देना चाहती; क्योंकि मैं यह नहीं चाहती कि इस घटनाके नामकरणका एकमात्र यही शास्त्रीय और सच्चा तरीका हो । इसीलिये मैं अपने इस वाक्यको जान-बूझकर अस्पष्ट छोड़ देती हूँ ।

संख्या ९]

मारी अन्तर आता है। किंतु वह सचेतन होता है एक ऐसी वस्तुके प्रति जो वहाँ सदा विद्यमान होती है। और जिसे अन्य लोग इसलिये अस्वीकार करते हैं कि वे उसे देख नहीं पाते।

उदाहरणार्थ, मुझे इसका अध्ययन करनेका अवसर मिला था। मेरे लिये परिस्थितियाँ, पात्र, सभी घटनाएँ और सभी सत्ताएँ किन्हीं विशेष 'नियमों'के अनुसार चलती हैं—यदि इन्हें नियम कहा जा सके—जो कठिन नहीं हैं, रुढ़ नहीं हैं, किंतु जिन्हें मैं देखती हूँ और जो मुझे दिखलते हैं कि इसका परिणाम यह होगा और उसका वह, और क्योंकि ऐसा है इसलिये उसके साथ यह घटेगा, यह अधिकाधिक यथार्थ होता जाता है। यदि आवश्यक हो तो मैं इसके बलपर भविष्यवाणी भी कर सकती हूँ। किंतु उस क्षेत्रमें करग और परिणामका यह सम्बन्ध मेरे लिये बिल्कुल स्पष्ट है और तथ्योद्गारा अनुमोदित है—पर जैसा कि श्रीअरविन्द कहते हैं, उन लोगोंमें जिनमें कि यह दृष्टि और यह आत्माकी चेतना नहीं है उनमें परिस्थितियाँ अन्य नियमोंके अनुसार अभिव्यक्तिमें आती हैं—तृतीय नियमोंके, जिन्हें वे वस्तुओंके स्वाभाविक परिणाम समझते हैं। ये नियम बिल्कुल तलीय होते हैं और गहन विश्लेषणके आगे नहीं टिक पाते, किंतु उनमें आन्तरिक क्षमता नहीं होती और इसलिये यह उन्हें अखरता नहीं, यह उन्हें स्वाभाविक प्रतीत होता है।

मेरे कहनेका मतलब यह है कि इस आन्तरिक ज्ञानमें वह शक्ति नहीं होती कि उन्हें विश्वास दिला सके। इसलिये किसी घटनाके विषयमें मैं जब देखती हूँ; ओह, यह तो बिल्कुल (मेरी दृष्टिमें), बिल्कुल स्पष्ट है; मैंने भगवान्की शक्तिको वहाँ कार्य करते देखा है, मैंने अमुक परिणाम उत्पन्न होते देखा है, और यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि यह बात घटेगी; मेरे लिये वह

बिल्कुल स्पष्ट होता है, किंतु मैं जो जानती हूँ उसे कहती नहीं; क्योंकि यह उनके अनुभवसे बिल्कुल मेल नहीं खाता। वह उन्हें वहकी हुई बातें या झूठे दावे प्रतीत होंगे। कहनेका तात्पर्य यह कि यदि तुम्हें स्वयं अनुभूति न हुई हो तो दूसरेकी अनुभूति तुम्हें विश्वास नहीं दिला सकती, वह विश्वासोत्पादक नहीं होती।

यह शक्ति जड़ पदार्थपर उतना काम करनेवाली नहीं होती—यह बात तो निरन्तर घटती रहती है—किंतु, जबतक तुम सम्मोहनके प्रयोगका रास्ता न छो (जिनका कोई अर्थ नहीं निकलता और जो न किसी लक्ष्यपर ही ले जाता है), यह समझको खोलनेवाली होती है (खोपड़ीके ऊपर भेदनेकी मुद्रा), यही काम बड़ा कठिन है—जिस वस्तुका तुम्हें अनुभव नहीं वह निरस्तित्व है।

यदि उनके सामने किसी प्रकारका चमत्कार भी घटे, तो वे उसकी कोई भौतिक व्याख्या करेंगे। वह उनके लिये कोई चमत्कार नहीं होगा—इस अर्थमें कि वहाँ भौतिक शक्तियों और सत्ताओंसे भिन्न किसी अन्य शक्ति और सत्ताका हस्तक्षेप हुआ है। उसके लिये वे कोई अपनी भौतिक व्याख्या कर लेंगे, वह उनमें विश्वास नहीं उत्पन्न करेगा।

समझ तुम्हें तभी आ सकती है जब तुमने स्वयं अपनी अनुभूतिमें उस क्षेत्रको छुआ हो।

और तुम देखते हो—भली प्रकार देखते हो—कि जिस मात्रामें कोई वस्तु जाग्रत होती है, उतनी ही समझकी सम्भावना होती है। उसीका तुम सहारा लेते हो, वही आधार होता है।

प्रश्न—तो, इसका निष्कर्ष यह निकला कि 'जड़ पदार्थका रूपान्तर' उतनी महत्त्वपूर्ण बात नहीं जितनी कि सत्य अभिव्यञ्जनाके प्रति सचेतन होना।

उत्तर—ठीक यही मैं कहना चाहती हूँ। रूपान्तर

कुछ हदतक बिना व्यक्तिके सचेतन हुए भी घटित हो सकता है ।

लोग कहते हैं न कि एक भारी अन्तर आ गया है । जब मनुष्यका प्रादुर्भाव हुआ तो पशुके पास इसके जाननेका कोई साधन नहीं था । बस, यहाँ भी, मैं कहती हूँ कि ठीक वही बात है । मनुष्यकी सभी प्राप्तिओंके बावजूद उसके पास यह साधन नहीं है । कुछ वस्तुएँ घटित हो सकती हैं, पर इसका ज्ञान उसे बहुत बादमें ही होगा, जब कि उसके अंदर 'कोई वस्तु' इतनी काफी विकसित हो जाय कि वह देख पाये ।

यदि वैज्ञानिक प्रगति अपनी चरम सीमापर पहुँच जाय, जहाँ सचमुचमें ऐसा आभास होता है कि यहाँ प्रायः कोई भेद नहीं रहा, जब वैज्ञानिक लोग तत्त्वके उस एकत्वपर पहुँच जायँ और ऐसा प्रतीत हो कि इस अवस्था और उस अवस्था (भौतिक और आध्यात्मिक) के बीच बस अब एक छोटा-सा गलियारा रह गया है—प्रायः इन्द्रियातीत या अलक्ष्य, तब भी यह सम्भव नहीं । उस एकत्वको जाननेके लिये व्यक्तिके अंदर पहले उस अन्य वस्तुकी अनुभूति होनी चाहिये, अन्यथा वह उसे नहीं जान सकता ।

और ठीक इसीलिये, क्योंकि उन्होंने 'व्याख्या करने' की योग्यता प्राप्त कर ली है, वे बाह्य वस्तुओंकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि वे आन्तरिक वस्तुओंके अस्वीकारमें ही पड़े रहते हैं—वे कहते हैं कि ये, जिन वस्तुओंका उन्होंने अध्ययन किया है, उसीके आगेके क्रमके-जैसी हैं ।

किंतु, क्योंकि उसकी अपनी रचना ही कुछ इस प्रकारकी है कि कोई भी ऐसा मानवप्राणी नहीं जिसे अपनी सूक्ष्म सत्ताके—अपनी आन्तरिक सत्ताके, अपनी अन्तरात्माके साथ सम्बन्धका कम-से-कम एक बिम्ब—एक छाया, एक आरम्भ न प्राप्त हो, इसलिये उनके अस्वीकारमें

सदा एक त्रुटि रहती है; किंतु उसे वे कमजोरी समझते हैं—यही उनकी एकमात्र शक्ति है ।

जब सचमुचमें तुम्हें अनुभूति होती है—उच्चतर शक्तियोंका अनुभव तथा ज्ञान और उनके साथ तादात्म्य—तभी तुम बाह्य ज्ञानकी सापेक्षताको देख पाते हो, किंतु जबतक यह नहीं हुआ है, तबतक नहीं; तुम नहीं देख सकते, तुम अन्य सत्तोंको अस्वीकार करते हो ।

मेरा ख्याल है कि श्रीअरविन्दके वचनका तात्पर्य यही है; जब दूसरी चेतना विकसित होगी तभी जाकर वैज्ञानिक मुसकरायगा, वह कहेगा, हाँ, वह बहुत ठीक था; किंतु.....

वस्तुतः एक अवस्था दूसरी अवस्थातक नहीं ले जा सकती, जबतक कि भागवत-कृपाका चमत्कार न हो । यदि अन्तरमें पूर्ण सचाई हो, जिससे कि वैज्ञानिक उस बिंदुको, जहाँ वह दूसरी अवस्था उसकी पहुँचके बाहर रह जाती है, देख सके, उसका उसे पूर्ण ज्ञान हो और वह उसे समझ सके, तब वह उसे उस दूसरी चेतनाकी अवस्थामें ले जा सकती है, किंतु उसकी प्रक्रियाओं-द्वारा नहीं । यह आवश्यक है.....आवश्यक है कि कोई वस्तु अपने स्वत्वका त्याग करे और नये तरीकोंको, नये बोधोंको, नये स्पन्दनको, आत्माकी नयी अवस्थाको स्वीकार करे ।

तब, यह प्रश्न है व्यक्तिगत । यह किसी वर्ग या श्रेणीका प्रश्न नहीं—प्रश्न है उस वैज्ञानिक विशेषका जो तैयार है.....दूसरी वस्तु बननेके लिये ।

हम केवल एक बात निश्चयके साथ कह सकते हैं कि जो कुछ भी तुम जानते हो, चाहे वह कितना भी सुन्दर क्यों न हो, उसकी तुलनामें कुछ भी नहीं है जो तुम तब जान सकते हो, यदि तुम दूसरे तरीकोंको अपनाओ । बस यही ।

पिछले दिनों मेरे कार्यका सारा उद्देश्य यही रहा, जाननेकी इस अनिच्छापर कैसे क्रिया की जाय ! यह

सख्या ९]

बहुत दिनोंसे चली आ रही है और यह उसीका क्रम है जो श्रीअरविन्दने अपने एक पत्रमें कहा था; उन्होंने कहा था कि भारतने अपने तरीकोंद्वारा आध्यात्मिक जीवनके लिये उसकी अपेक्षा बहुत ही अधिक कार्य किया है, जितना कि यूरोपने अपने संशयों और शङ्काओंके द्वारा। बिल्कुल यही बात है। यह एक प्रकारका अस्वीकार है—ज्ञानकी उस प्रणाली-विशेषको माननेसे अस्वीकार करना जो कि विशुद्ध भौतिक प्रणाली न हो, और अनुभवका तथा अनुभवकी वास्तविकताका अस्वीकार—कैसे उन्हें इसका विश्वास दिलाया जाय ?.....और

तब कालीका अपना तरीका है—खूब पिटाई करनेका। किंतु मेरे विचारमें वह थोड़ेसे परिणामके लिये बहुत विनाश है।

यह भी एक भारी समस्या है। लगता है कि सारे प्रतिरोधोंको ठीक करनेका बस एक ही तरीका है, प्रेमका। किंतु ठीक इसीको विरोधी शक्तियोंने इस प्रकार विकृत कर दिया है कि बहुतसे सच्चे लोग, सच्चे जिज्ञासु, इस विकृतिके कारण, इस प्रणालीके विरुद्ध कवचके-जैसे बन गये हैं। कठिनाई यही है। इसीलिये इसमें समय लग रहा है। फिर भी.....

गौकी महिमा

(व्याख्याकार—श्रीपीताम्बरापीठ-संस्थापक श्री १००८ स्वामीजी महाराज)

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य

कृष्णा धाना रोहिणीर्धनवस्ते ।

तिलवत्सा ऊर्ममस्मै दुहाना

विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ॥

(अथर्व० १८।४।३४)

शब्दार्थ—चित्रवर्णकी, कपिल वर्णवाली गौएँ, नील वर्णकी, श्वेत वर्णकी, काले रंगकी, रोहिणी—लाल रंगकी गौएँ इस लोकके धारण-पोषणमें समर्थ होती हैं और उन्हें धाना भी कहते हैं। दुधार गायें तुम्हें प्राप्त हों। इस लोककी पुष्टिके लिये सब घेनु निरापद—निराकुल होकर सुखी एवं निर्भय विचरें।

व्याख्या

मन्त्रमें 'गौ'की रक्षा करनेकी आज्ञा दी गयी है। गौ शब्द 'गम् गतौ' धातुसे बना है, जिसका अर्थ गति, प्राप्ति, ज्ञान और मोक्ष है, जिससे इन चारों अर्थोंकी प्राप्ति हो, उसे वेदमें गौ कहा गया है। इसके अतिरिक्त गौका अर्थ वाणी, किरण, पृथिवी, प्राणीविशेष, इन्द्रिय आदि भी किये जाते हैं। तथापि मन्त्रमें मुख्यरूपसे प्राणी-विशेषका ही ग्रहण किया गया है। यह प्राणी सारे विश्वमें पाया जाता है। मनुष्यके लिये कल्याणकारी होनेसे

भारतवर्षमें इसका स्थान पूज्य रूपमें माना गया है। साक्षात्, परम्परा-सम्बन्धसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्तिका यह हेतु माना गया है। ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंमें भी प्राचीन कालमें इसकी सेवा की जाती थी, 'कामधेनु'संज्ञक गौको महर्षि वशिष्ठने अपनी याज्ञिक क्रियाओंके लिये रक्खा था। उस गौमें सभी प्रकारकी कामनाओंके पूर्ण करनेकी सामर्थ्य थी। यह भी एक गौकी जाति है, परंतु इस समय यह नहीं देखी जाती, इसकी जाति लुप्त हो गयी है।

आदिनारायणने श्रीकृष्णरूपसे अवतार लेकर गौकी रक्षा की थी, इसीसे 'गोविन्द' और 'गोपाल' उनके नाम पड़े थे। देवाधिदेव श्रीमहादेवका नाम 'वृषभध्वज' और 'पशुपति' कहा गया है। ये नाम भी गौसे ही सम्बन्धित हैं। चित्र, कपिलवर्ण, नील, श्वेत, कृष्ण वर्ण, लाल रंगकी गायें धारण एवं प्रजाके पोषणमें समर्थ हैं, कपिल एवं कृष्ण वर्णकी गौ अधिक दूध प्रदान करती है, क्षयरोगकी निवृत्ति भी इनसे होती है। इनके गोबर एवं मूत्रसे अनेक रोग नष्ट होते हैं। पञ्चगव्यका पान अनेक पापोंके दूर करनेके लिये धर्मशास्त्रमें स्वीकार

किया गया है। अन्त समयमें गौका दान सद्गति देनेवाला है। इसका दूध, घी, मट्ठा मनुष्यके लिये अत्यन्त हितकारी है। इसका एक नाम 'अध्न्या' भी है, जिसका प्रयोग वेद-मन्त्रोंमें अनेक स्थानोंमें किया गया है। इसका अर्थ है कि 'इसे कभी भी मारना नहीं चाहिये।' जिस देशमें गौकी सेवा होती है, वहाँ सभी प्रकारकी सम्पन्नता रहती है। जहाँ इसका वध होता है, वहाँ दरिद्रता, क्लेश, रोग, भय आदि रहते हैं। भारतवर्षमें गौका महत्त्व बहुत माना जाता रहा है, परन्तु जबसे वैदेशिक प्रभाव देशमें आये हैं, तभीसे इस पवित्र भूमि-पर भी गोवध-जैसा जघन्य कार्य होने लगा है। स्मरण रखना चाहिये कि राज्याधिकारी इसे जवतक जारी रखेंगे तवतक सुखी नहीं रह सकते।

माता रुद्राणां दुहिता वसुनां

स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।

प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय

मा गामनःगामदितिं वधिष्ट ॥

(ऋग्वेद ८।१०१।१५)

शब्दार्थ-विचारवान् पुरुष ! मैं तुमसे कहता हूँ कि निरपराधी अदिति देवताओंकी मातास्वरूप गायको मत मार। यह गाय अमृतकी नाभि अर्थात् मूल है। यह रुद्र देवताओंकी माता, वसुदेवोंकी बेटी और आदित्य देवोंकी भगिनी है।

व्याख्या

पूर्वके मन्त्रमें गौके प्रकार तथा लौकिक एवं धार्मिक उपयोगका विषय बताया गया है। इस मन्त्रमें गायके आध्यात्मिक स्वरूपका परिचय दिया गया है। इस प्रसंगमें गौको अमृतकी नाभि बताया गया है। अमृत ब्रह्मतत्त्वको कहते हैं, जो कभी भी मृत्युके पासमें नहीं आता, यह गाय उसका हेतु है, इसीलिये उसे 'अदिति' कहते हैं। प्रजापति परमात्माकी दो शक्तियाँ हैं,

जिन्हें दिति एवं अदिति कहते हैं। दितिसे दैत्यशक्तिका प्राकट्य होता है और अदितिसे देवता उत्पन्न होते हैं, इसलिये अदितिको देवमाता भी कहते हैं। अदिति ही इस लोकमें गौरूपसे प्रकट होती है। इसीलिये इसे भी लोकमें गोमाता कहते हैं। जैसे माता अपनी संतानका सर्वथा हित करती है, ऐसे ही गौ भी जगत्के हितके लिये प्रकट हुई है। इससे कोई भी अपराध नहीं होता, इसलिये श्रुति इसे अनागा अर्थात् निरपराध बताती है। दैत्य और देवताओंका युद्ध होता रहता है। दैत्यलोग गौकी हिंसा करते हैं। आदित्य या देवता गौका पालन करते हैं। गौ दोनोंकी भलाई एक-सी ही करती है, परन्तु अशुभकी आसुरी सम्पदके लोग इसे नहीं समझते हैं। अदिति या शक्तितत्त्व अपने सत्त्वरज-तम गुणोंका विस्तार करती है, जिससे आदित्य, वसु और रुद्र नामके देवता प्रकट होते हैं। बारह मासके कालतत्त्वके विभाजक द्वादश आदित्य कहे जाते हैं। जिनकी भगिनी गायको कहा गया है। रुद्रोंकी संख्या एकादश है। अध्यात्ममें एकादश इन्द्रियाँ इससे ली जाती हैं। इनकी उत्पत्ति प्रकृतिसे होती है। इससे इनकी माता कही गयी है। वसु आठ हैं, इनसे गायकी उत्पत्ति या मुख्यतः आविर्भाव होनेसे उनकी दुहिता या कन्या कही जाती है। इस प्रकार ३१ देवताओंका सम्बन्ध गायसे है। इन्द्र और प्रजापति इन देवताओंके ऊपर हैं। कुल मिलाकर ये ही तैंतीस कोटि देवता तुष्ट होकर मनुष्यका कल्याण करते हैं। सारे संसारकी नियामक पराशक्ति ही अदिति कही जाती है। वही मन्त्रमें गायके रूपमें अभिव्यक्त रूपसे कही गयी है। इसकी सेवा जगन्माताकी ही उपासना है। गौके शरीरमें सभी देवताओंका वास है। इसलिये गौकी पूजासे सभी देवता पूजित हो जाते हैं।

(वैदिक उपदेश—प्रथम भागसे)

संत-वाणी

(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका)

१-मनुष्यकी असली माँग है—ऐसा 'रस' जिसमें नीरसताकी गन्ध न हो, ऐसा आनन्द जिसमें दुःखका मिश्रण न हो, ऐसा जीवन जिसमें मृत्युका भय न हो और ऐसा ज्ञान जिसमें किसी प्रकारका संदेह न हो। इस माँगकी पूर्ति किसी वस्तु, व्यक्ति और परिस्थितिके द्वारा नहीं हो सकती। इसकी पूर्ति तो एकमात्र प्रभु-प्रेमसे ही हो सकती है।

२-संसार और शरीरसे विमुख होकर अपनेको प्रभुके समर्पण करके उनपर निर्भर हो जानेसे अर्थात् उनकी अहैतुकी कृपाके आश्रित होनेसे स्वतः ही प्रभु-प्रेमका प्राकट्य होता है। यह साधन अनन्त और अमोघ है।

३-साधकको चाहिये कि मृत्युपर्यन्त दिन-रातके चौबीस घंटोंमें जो कुछ भी करे, प्रभुकी प्रसन्नताके लिये ही करे। उनके प्रेमकी लालसाके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारकी कामना न करे, अपने पूरे जीवनको साधनरूप बना ले। भजन-स्मरण, खान-पान, आचार-व्यवहार और साधु-सेवा-अतिथि-सत्कार आदि कर्मोंमें प्रीति और भावका भेद न करे।

४-जिसका कभी वियोग नहीं होता, उस प्रभुपर विश्वास कर लेनेपर तथा संसारमें ममताका नाश होनेपर प्रभु-प्रेम स्वतः प्रकट हो जाता है। फिर निर्वासना, निर्वैरता, निर्मलता, समता, मुदिता आदि दिव्य गुण स्वतः उत्पन्न होने लगते हैं।

५-साधककी प्रभुके नाते प्राणिमात्रके साथ प्रेमकी एकता होनी चाहिये। सबके प्रति उसे समानभावसे प्रेम करना चाहिये। किसीको अपना और किसीको पराया मानकर राग-द्वेष नहीं करना चाहिये। आसक्ति और स्वार्थको लेकर जो प्रियता होती है, वह प्रेम नहीं है, वह तो मोह है। सबपर जो समान-भावसे प्रेम है, वह भगवान्‌से है।

६-भगवान्‌की प्राप्तिका उपाय उनसे मिलनेकी ऐकान्तिक लालसा है। किसी प्रकारकी योग्यता या साधनके बलसे भगवान् नहीं मिलते। अतः किसी भी साधकको किसी प्रकारकी योग्यताके अभावमें भगवान्‌की प्राप्तिसे निराश नहीं होना चाहिये।

७-करने योग्य कामको भगवान्‌का काम समझकर पूरा कर लेनेके बाद प्रभु-प्रेमकी लालसा और चित्तकी स्थिरता स्वाभाविक ही जाग्रत् रहनी चाहिये। उस समय व्यर्थ चिन्तन और संकल्पोंका रस नहीं लेना चाहिये।

८-अपनेको भगवान्‌का समझ लेनेसे तथा कामनाके त्यागसे 'दीनता'का नाश हो जाता है और सबको भगवान्‌का समझ लेने तथा ममताका त्याग कर देनेसे 'अभिमान'का नाश हो जाता है। अतः साधकको दीनता और अभिमानसे रहित हो जाना चाहिये।

९-जब साधक प्रभुकी प्राप्तिके लिये व्याकुल हो जाता है और जगत्‌रूप खिलौनेसे सर्वदा विरक्त हो जाता है, तब प्रभु भी करुणासे व्याकुल हो जाते हैं, फिर उनके मिलनेमें विलम्ब नहीं होता।

१०-साधकको चाहिये कि एकमात्र प्रभुको ही अपना सर्वस्व माने, प्रभुपर ही विश्वास करे, प्रभुमें ही सम्बन्ध रखे। प्रभुसे ही प्रेम करे। प्रभुकी ही निरन्तर स्मृति तथा सर्वत्र प्रभुकी ही सत्ताका अनुभव करे।

११-जो प्रभु नित्य अनन्त ऐश्वर्य और रसके भण्डार हैं, उन अपने नित्य साथी परमेश्वरकी ही साधकको वास्तवमें आवश्यकता है। वे कभी जीवका साथ नहीं छोड़ते। जीव स्वयं ही संसारको अपनाकर उनसे विमुख हो गया है। प्रभुसे साधककी देश-कालसे दूरी नहीं है। अतः यह धारणा कर लेना कि अमुक स्थानमें जानेपर और अमुक समयपर ही प्रभु मिलेंगे, प्रमादमात्र है।

१२-साधकको चाहिये कि अपनेको प्रभुके समर्पण करके उनपर निर्भर रहे और जो कुछ भी हो, उसमें उनकी कृपाका दर्शन करते हुए सदा संतुष्ट रहे।

१३-जबतक प्रभुकी प्राप्ति न हो जाय, उनके विरहकी व्याकुलता बढ़ती रहनी चाहिये। भगवान्‌का चिन्तन-स्मरण निरन्तर स्वाभाविक होना चाहिये, ताकि विषय-चिन्तनका समूल नाश हो जाय।

१४-साधकको समझना चाहिये कि संसार और शरीरसे मेरा वास्तविक सम्बन्ध नहीं है, यह तो स्वीकृति मात्र है और

अनित्य है। मेरे तो एक प्रभु ही हैं। उन्हींसे मेरा नित्य सम्बन्ध है।

१५—प्रेम जिसके प्रति होता है, उसके लिये भी रसरूप होता है। इस दृष्टिसे प्रेमका बड़ा महत्त्व है। मनुष्य-जीवनकी पूर्णता प्रेमसे अभिन्न होनेमें ही है। प्रेमकी जागृति श्रमसाध्य नहीं है। वह तो एकमात्र अपनत्वसे ही होती है।

१६—साधकको अपने लक्ष्यकी प्राप्तिसे कभी किसी भी परिस्थितिमें निराश नहीं होना चाहिये; क्योंकि अपने लक्ष्यकी आवश्यकताका अनुभव और व्याकुलता ही एकमात्र उसकी प्राप्ति का सहज, सरल और अचूक उपाय है। अतः निराशाके लिये साधकके जीवनमें कोई स्थान ही नहीं है।

१७—साधकका लक्ष्य वही हो सकता है जो सत्य है, जिसका परिवर्तन नहीं होता, जिसका त्याग नहीं हो सकता और जो कभी अलग नहीं होता। ऐसे एकमात्र प्रभु ही हैं। उन्हींको पानेके लिये सर्वस्वका त्याग कर देना चाहिये।

१८—मनुष्यको जब जो परिस्थिति मिलती है, वह उसका सदुपयोग करके अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर हो, इसीके लिये ही मिलती है। इस रहस्यको न समझनेके कारण मनुष्य उसमें अच्छी-बुरीके भेदकी कल्पना करके राग-द्वेषमें फँस जाता है। अतः साधकको प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग करके लक्ष्यकी ओर बढ़ते रहना चाहिये।

१९—साधकको चाहिये कि वह संयोगकालमें ही वियोगका दर्शन करके अर्थात् इसका वियोग निश्चित है यह मानकर किसी भी व्यक्ति, पदार्थ, देश, काल या परिस्थितिमें आसक्त न हो। किसी भी प्राणी-पदार्थ-परिस्थितिको अपने सुख-दुःखका आधार न माने। दृश्यमात्रमें सर्वथा असंग हो जाय।

२०—भोगोंकी चाहका उत्पन्न होना और उसका पूर्ण होना—इसीको भोगी मनुष्य सुख मानते हैं। यह बड़ा भारी दोष है। दीनता, अभिमान, भय, चिन्ता, लोभ, मोह, क्रोध आदि सब विकार भोग-वासनासे ही उत्पन्न होते हैं। सतत परिवर्तनशील अनित्य वस्तुओंको नित्य माननेसे ही भोगोंकी चाह उत्पन्न होती है।

२१—मनुष्यको चाहिये कि किसीको दुःख न दे। दुःख देनेवालेको स्वयं दुखी होना पड़ता है; क्योंकि जो दिया जाता है, वही बढ़कर वापस मिलता है।

२२—किसीको दुःख देकर मिलनेवाले सुखका साधकको

त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि उसका परिणाम भयानक दुःखका भोग अनिवार्य है। अतः ऐसे दुःखको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिये, जो किसीके सुखमें हेतु है।

२३—वस्तु-परिस्थितिकी प्राप्ति प्रभुके विधानसे होती है। कामनासे नहीं होती। अतः कामनापूर्तिको महत्त्व देना और अपूर्तिमें व्यथित होना प्रभुके विधानका अनादर करना है। साधकको कामनाका सर्वथा त्याग करके प्रभुके विधानके अनुसार प्राप्त परिस्थितिमें सदैव प्रसन्न रहना चाहिये।

२४—अपनेको शरीर माननेवाली स्वीकृति ही कामनाकी जननी है। अतः देहभावका त्याग, करके निष्काम होना परम आवश्यक है। निष्काम हो जानेपर साधककी गति अपने स्वरूपकी ओर होती है, जो ज्ञानमें हेतु है।

२५—जब मनुष्य कामनारहित हो जाता है, तब उसमें वर्तमान कर्तव्य-कर्म पूरा करनेकी सामर्थ्य अपने आप आ जाती है। कामनायुक्त मनुष्य वर्तमान कर्तव्य-कर्मको विधिवत् नहीं कर सकता।

२६—जैसे-जैसे कर्ता निष्काम और निर्मम होता जाता है, वैसे-ही-वैसे सभी अवस्थाओं और परिस्थितियोंसे अतीतके जीवनकी माँग जाग्रत् हो जाती है।

२७—कर्तव्य-पालनमें पराधीनता नहीं है। निष्कामता कर्तामें होती है, कर्ममें नहीं। निष्काम हो जानेपर कर्ता कर्मके फलसे असंग हो जाता है। निष्काम कर्मके द्वारा ही सुन्दर कर्म प्रकट होता है।

२८—कर्तव्यपरायणता मनुष्यके जीवनका मुख्य अङ्ग है। ज्यों-ज्यों उसमें कर्तव्यपरायणता आती जाती है, त्यों-ही त्यों करनेकी आसक्ति, पानेकी लालच, जीनेकी आशा और मरनेका भय नष्ट होता जाता है तथा प्रत्येक परिस्थितिमें कर्तव्य-पालन हो सकता है।

२९—कर्तव्यपरायणता विद्यमान आसक्तिका नाश कर देती है। अपना हित एकमात्र आसक्तिरहित होनेमें ही है। अतः कर्तव्यपरायणता परम आवश्यक है, परंतु फलकी आसक्ति हितकर नहीं है।

३०—कर्तव्यपरायणताद्वारा कर्मासक्तिका नाश करना निष्काम भावसे भोगासक्तिका नाश करना तथा देशभिमानी

रहित होकर मृत्युके भयका नाश करना साधकके लिये परम आवश्यक है ।

३१-कर्तव्यनिष्ठ होनेके लिये प्रत्येक साधकको अपने जाने हुए अकर्तव्यका त्याग करना आवश्यक है । कर्तव्य पूरा हो जानेपर विश्राम, विश्वप्रेम तथा अनेकतामें एकताका दर्शन अपने-आप बड़ी ही सुगमतासे हो जाता है ।

३२-कर्मफलकी आसक्ति और कामना रहते हुए मनुष्य कर्म करनेकी आसक्तिसे तथा कर्तापनके अभिमानसे रहित नहीं हो सकता, इसलिये साधकको प्रत्येक क्रिया फलकी कामनासे रहित होकर करनी चाहिये ।

३३-दूसरोंके कर्तव्यपर दृष्टि रखनेवाला मनुष्य अपने कर्तव्यको भूल जाता है और कर्तव्यको भूल जाना ही अकर्तव्यको जन्म देना है । अतः साधकको दूसरोंके कर्तव्यपर दृष्टि नहीं रखनी चाहिये ।

३४-जो काम सर्वहितकारी नहीं है, वह साधकका कर्तव्य नहीं है तथा जो काम स्वाधीनतासे पराधीनताकी ओर ले जानेवाला है, वह भी कर्तव्य नहीं है ।

३५-जो काम पराधीनता, जडता तथा अभावमें बाँधनेवाला है, वह अहितकारक है । अतः वह अकर्तव्य है । उसकी उत्पत्ति देहजनित सुखकी आसक्तिसे होती है । अतः देहाभिमानका त्याग परम आवश्यक है ।

३६-कर्तव्य-पालनकी अवहेलना करना, उससे अपनेको वञ्चित रखना साधककी भूल है । अतः साधकको प्रत्येक परिस्थितिमें कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिये । प्राप्त परिस्थितिका सदुपयोग ही मनुष्यका कर्तव्य है ।

३७-साधकको जो कार्य कर्तव्यरूपसे प्राप्त हो, उसमें छोटे-बड़ेकी भावना नहीं करनी चाहिये । साधारण काम भी कुशलतापूर्वक पवित्र भावसे ठीक-ठीक किया जाय तो वह किसी भी उत्तम-से-उत्तम माने जानेवाले कर्मसे कम महत्त्व नहीं रखता ।

३८-कर्तव्यकार्यको वर्तमानमें ही पूरा कर लेना चाहिये । उसे भविष्यपर नहीं छोड़ना चाहिये । शरीरके साथ हितका व्यवहार करना कर्तव्य है । उसके विपरीत करना तथा शरीरकी चिन्ता करना और रोगका भय करना अकर्तव्य है ।

३९-वर्ष, आश्रम, जाति, देश, काल आदिमें जो

साधककी 'मैं' और 'मेरेपन'की स्वीकृति है, उसे नाटकमें स्वीकार किये हुए स्वाँगकी भाँति समझना चाहिये । उसे सत्य मानकर राग-द्वेष नहीं करना चाहिये । निष्काम-भावसे कर्तव्यका पालन करते समय यह नहीं भूलना चाहिये कि मैं उनका हूँ, जो इसके स्वामी हैं; और उन्हींकी प्रसन्नताके लिये यह खेल है ।

४०-संयमका अभाव और स्वार्थका भाव—ये ही मनुष्यके पतनमें हेतु हैं । अतः इनका त्याग करके दूसरोंके कर्तव्यकी आलोचना न करते हुए सावधानी और उत्साहपूर्वक अपने कर्तव्यका पालन करते रहना चाहिये ।

४१-साधकको परदोष-दर्शनकी आदतका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये । दोष करनेकी अपेक्षा भी दोषोंका चिन्तन अधिक पतनका हेतु है ।

४२-दूसरोंका दोष न देखकर स्वयं निर्दोषिता प्राप्त करनेसे साधकको निराश नहीं होना चाहिये । अपने दोषोंको गहराईसे देखकर उनको मिटानेके लिये तत्परतासे चेष्टा करते रहना चाहिये । दोषोंका सर्वथा नाश न होनेतक चैनसे नहीं रहना चाहिये ।

४३-जिससे साधकको अपने कर्तव्यका ज्ञान प्राप्त हो, जो उसके साधनका निर्माण कर दे, वही गुरु है । गुरुमें जो दिव्य ज्ञान है, वही गुरुत्व है । उसका आदर करके उसके अनुसार अपना जीवन बना लेना—यही शिष्यका शिष्यत्व है ।

४४-जो मनुष्य शरीरका तथा मनका दास नहीं रहता, वह बड़ी सुगमताके साथ संसारकी दासतासे छूट जाता है ।

४५-शरीर 'मैं' नहीं हूँ और शरीर 'मेरा' नहीं है । इस रहस्यको समझकर देहाभिमानका सर्वथा त्याग कर देनेके बाद भी साधकमें व्यक्तित्वका मोह छिपा रहता है । अतः उसका भी त्याग करना परम आवश्यक है ।

४६-व्यक्तित्वके मोहके कारण ही साधकपर मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति और सद-असद व्यवहार आदिका प्रभाव पड़ता है । उसकी समानता सुरक्षित नहीं रहती ।

४७-व्यक्तित्वका मोह ही अन्य व्यक्तियोंमें और परिस्थितियोंमें मोह उत्पन्न कर देता है । अतः व्यक्तित्वके

मोहका नाश होनेपर ही साधक साधनमें अग्रसर हो सकता है।

४८—व्यक्तिगत सुखका प्रलोभन व्यक्तित्वके मोहको पुष्ट करता है। व्यक्तित्वके मोहसे युक्त मनुष्य सबके लिये अनुपयोगी सिद्ध होता है।

४९—साधकको लोकरञ्जन और आत्म-ख्याति आदिके प्रलोभनसे बचनेके लिये भी बहुत सावधान रहनेकी आवश्यकता है। साधकके जीवनमें आगे चलकर इस प्रकारके विघ्न प्रायः आया करते हैं।

५०—असंगता और निष्कामता दोनों ही साधकके जीवनमें परम आवश्यक हैं। असंगतासे निष्कामता उत्पन्न होती है और निष्कामतासे असंगता पुष्ट होती है। इस प्रकार दोनों परस्पर सहयोगी हैं।

५१—जिसकी सेवा की जाय, उसके सुख-दुःखसे सेवकको सर्वथा असंग रहना चाहिये। उसमें हर्ष-शोक नहीं करना चाहिये तथा अपनेमें किसी प्रकारके अभिमानको भी स्थान नहीं देना चाहिये।

५२—प्राणियोंकी सेवा करना साधन है। परंतु जो मर जाय, उसमें मोह करना, उसके लिये शोक करना, उसका स्मरण या चिन्तन करना असाधन है। अतः साधकको इसका त्याग कर देना चाहिये।

५३—सेवकको किसी प्रकारके सुखके लालचका और दुःखके भयका आश्रय न लेकर भगवान्‌के नाते कर्तव्य-पालनके भावसे सेवा करनेका स्वभाव बना लेना चाहिये।

५४—साधकको प्राप्त शक्ति और वस्तु आदिके द्वारा दूसरोंके मनकी ऐसी चाहको, जिसमें किसीका अहित न हो और जिसमें भगवान्‌की सम्मति हो, भगवान्‌के नाते निष्काम भावसे सेवाके रूपमें यथासाध्य पूरी करते रहना चाहिये।

५५—साधककी प्रत्येक प्रवृत्ति सहज ही सर्वहितकारी भावसे सेवामय होनी चाहिये। उसमें यह अभिमान भी कभी नहीं आना चाहिये कि मैंने किसीका कोई उपकार किया है, बल्कि यह समझना चाहिये कि इनके लिये मिली हुई शक्ति और पदार्थोंको ही, मैंने इनकी वस्तु इनके पास पहुँचानेवाले एक सेवककी भाँति इनको दी है। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है।

५६—साधकको जो सामर्थ्य और सामग्री दूसरोंकी सेवाके लिये मिली है, उसका उपयोग अपने व्यक्तिगत सुखके सम्पादनमें करना अन्याय है; क्योंकि सेवाकी सामग्रीको अपने सुख-भोगमें लगाना एक प्रकारकी चोरी है और ऐसा करना अपने द्वारा अपना अहित करना है।

५७—प्रत्येक कर्मके साथ सर्वकल्याणकारी भाव बराबर रहना चाहिये। तभी वह कर्म सत्यपर अग्रसर करने-वाला हो सकेगा। अतः कर्ताको कर्म करनेके पहले सर्व-हितकारी भावकी अपनेमें स्थापना कर लेनी चाहिये।

५८—जो स्वयं आवश्यकतारहित होकर दूसरोंकी आवश्यकता-पूर्तिका साधन बन जाता है, वही सेवा कर सकता है। अपनी आवश्यकता रखते हुए दूसरोंकी आवश्यकता पूरी करना भोग है, सेवा नहीं है।

५९—साधकको चाहिये कि मिली हुई वस्तु, योग्यता तथा सामर्थ्यका अपने सुखमें उपयोग न करे। समाजकी सेवामें उपयोग करे तथा उसको अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति न समझे, समाजकी धरोहर समझे।

६०—जब मनुष्य अपनी हानिका कारण किसी दूसरेको नहीं मानता तथा दूसरोंसे सुखकी आशा भी नहीं करता, अपितु प्राप्त वस्तु, सामर्थ्य आदिका परहितकी भावनासे दूसरोंकी सेवामें उपयोग करता है, तब वह साधनमें अग्रसर हो सकता है।

६१—जो वर्ग उत्पादनमें असमर्थ है, उसीकी सेवाके लिये समस्त शक्ति और पदार्थ है। इस भावसे विचारशील साधक सेवापरायण होकर सेवाकी भावनाका विस्तार करते हैं।

६२—सेवकको सेवामें रत रहकर भी किसीसे अपने लिये किसी वस्तु आदिकी या सम्मान आदिकी आशा कभी नहीं करनी चाहिये। सुख-भोगकी आशा और कामनासे उसे सर्वथा असंग रहना चाहिये।

६३—जो मनुष्य अपने विवेकका आदर नहीं करता, वह सद्गुरुओंसे एवं गुरुजनोंसे मिले हुए उपदेशका भी आदर नहीं कर सकता। अतः प्रत्येक मनुष्यको अपने विवेकका आदर अवश्य करना चाहिये।

६४—अपने विवेकका आदर करनेपर अहंकार और

ममताका नाश हो जाता है। फिर दुःखका भय और सुखकी दासता भी नहीं रहती।

६५—यह सभी समझ सकते हैं कि जिसको जो कुछ भी—वस्तु, सामर्थ्य, योग्यताके रूपमें प्राप्त है, वह किसीकी देन है। वह उसकी अपनी व्यक्तिगत वस्तु नहीं है। फिर भी उसमें ममता करना उसको अपनी मानते रहना; यह अपनी जानकारीका अन्यास करना है।

६६—ममताके कारण मनुष्य मिली हुई वस्तु आदिमें आसक्त हो जाता है, इस कारण वह उनका सदुपयोग नहीं कर सकता। अतः साधकको चाहिये कि ममताका सर्वथा त्याग करके वस्तु आदिका सदुपयोग करे।

६७—जो 'मैं' नहीं है और 'मेरा' नहीं है, उसका विश्वकी सेवामें उपयोग करनेके लिये उसमें 'मैं' और 'मेरे'की स्वीकृति प्रतीकमात्र होनी चाहिये। उस स्वीकृतिका अनुसार निष्कामभावसे कर्तव्य-पालन करनेसे उस स्वीकृतिका प्रभाव साधकके जीवनपर नहीं पड़ता। वह सेवामें विलीन हो जाता है।

६८—ममताका नाश होनेसे निष्कामता अपने आप प्रकट होती है। तब अशान्ति और सब प्रकारके विकारोंका नाश हो जाता है। साधकको उस शान्ति और निर्विकारतामें भी आसक्त नहीं होना चाहिये।

६९—साधन-सम्पत्ति ही साधकका जीवन है। अतः किसी भी कामना-पूर्तिके लोभसे या किसी प्रकारके भी दुःखके भयसे विचलित होकर साधन-शक्तिका व्यय नहीं करना चाहिये। प्रत्येक परिस्थितिमें निर्भय और लोभरहित रहना चाहिये।

७०—साधकके द्वारा सद्गुण और सदाचारका पालन स्वाभाविक होना चाहिये। किसी प्रकारके भयसे, लोभसे या ईर्ष्यासे किया गया आचरण वास्तविक नहीं होता।

७१—किसी भी परिस्थितिके सम्बन्धमें साधकको दूसरोंकी बराबरी करनेकी अभिलाषा नहीं रखनी चाहिये। हर समय प्रभुके विधानमें संतुष्ट रहना चाहिये।

७२—साधकके जीवनमें ऐसा भाव नहीं रहना चाहिये कि अमुक समय तो साधनका है और अमुक नहीं है।

उसकी तो हर समय प्रत्येक प्रवृत्ति साधनमय ही होनी चाहिये।

७३—जीवनको उपयोगी बनानेके लिये कर्तव्यपरायणता, असंगता और प्रभुके साथ अपनत्वका स्वीकार करना परम आवश्यक है।

७४—भोजनकी शुद्धिके लिये आवश्यक है कि सत्यता और पवित्रतापूर्वक उपार्जन की हुई वस्तु हो और वह वस्तु—अन्नादि पदार्थ भी पवित्र हों, पवित्रतासे ही भोजन बनाया जाय और पवित्र भावसे ही उसे भगवत्प्रसाद-रूपमें खाया जाय। इसीको भोजनकी पवित्रता कहा जा सकता है।

७५—श्रम, संयम, सेवा और सदाचार—ये चारों शिक्षाके अङ्ग हैं तथा त्याग और प्रेम विद्याके अङ्ग हैं। गुणसे मनुष्यका विकास होता है और गुणके अभिमानसे पतन होता है।

७६—किसी प्रकारके अधिकारको स्वीकार करके दूसरोंसे अपने मनकी बात पूरी करानेकी इच्छा, कामना या आशा साधकको कभी नहीं करनी चाहिये। इसके त्यागसे ही वह लोभ और क्रोधसे रहित हो सकता है।

७७—किसी भी व्यक्ति या जीवको, पदार्थ या परिस्थिति-को अपने सुख-दुःखका हेतु नहीं मानना चाहिये; क्योंकि जिसको सुखमें हेतु मानेगा, उसमें राग हो जायगा और जिसको दुःखमें हेतु मानेगा, उसमें द्वेष हो जायगा। फलतः साधक राग-द्वेषरहित नहीं हो सकेगा।

७८—साधकको अप्राप्त वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदिके प्राप्त होनेकी कामना नहीं करनी चाहिये तथा प्राप्तको अपने मनकी बात पूरी करनेमें नहीं लगाना चाहिये।

७९—किसी भी व्यक्ति, पदार्थ और परिस्थितिमें साधकको आसक्त नहीं होना चाहिये; क्योंकि जिसमें आसक्ति हो जाती है, उसके न रहनेपर भी उसका चिन्तन होता रहता है, जो साधनमें बड़ा विघ्न है।

८०—प्रतिकूल परिस्थितिमें भगवान्की विशेष कृपा इसलिये है कि उसके बिना शरीर और संसारसे अहंता, ममता और आसक्तिका नाश होना बहुत ही कठिन है।

८१—जो सुख सुरक्षित रखना चाहते हुए भी चला

जाता है, उसकी दासताको स्वीकार कर लेना तथा जिस दुःखसे सर्वतोमुखी विकास होता है, उससे भयभीत होना— उसके महत्त्वको न अपनाना प्रमाद है।

८२—गुणका अभिमान रहते हुए मनुष्यको अपने दोष दिखायी नहीं देते, इस कारण वह दोषोंका त्याग नहीं कर सकता। इसलिये गुणका अभिमान स्वयं बड़ा भारी दोष है।

८३—साधकको किसी प्रकारके गुणका अभिमान या उसका सुख-भोग नहीं करना चाहिये। अभिमानसे गुण दोषके रूपमें बदल जाता है, विकास रुक जाता है और अभिमान बढ़ जाता है। उसमें वास्तविकता नहीं रहती। केवल दिखावा रह जाता है। वह दम्भाचारका रूप धारण कर लेता है।

८४—साधकको नेता, प्रचारक या उपदेशक नहीं बनना चाहिये। अपने दोषोंका सुधार करनेके लिये परस्पर बातचीत करना नेतागिरी या उपदेशक बनना नहीं है। जब किसी साधनकी बात दूसरोंके सामने करनेका अवसर आ जाय, तब उसमें अपने सुधारका लक्ष्य रखते हुए ही बोलना चाहिये।

८५—जो मान्यता और सिद्धान्त साधकको प्रेमसे दूर करके राग-द्वेषमें बाँधनेवाले हों, वे चाहे कितने ही सुन्दर क्यों न हों, उनमें साधकका हित नहीं है। अतः साधकको उन्हें स्वीकार नहीं करना चाहिये।

८६—अपने मनकी बात पूरी करनेके लिये किसी प्रकारका संगठन नहीं करना चाहिये। संगठनके हितकी दृष्टिसे उसमें आवश्यक समयके लिये सहयोग देना बुरा नहीं है। परंतु उसमें अभिमान, बड़प्पन या किसी प्रकारके सुख-भोगको स्थान कभी नहीं देना चाहिये।

८७—साधकको जिस समय न तो कोई काम कर्तव्य-रूपमें प्राप्त हो, न किसी कार्यके लिये क्रियाशक्तिका वेग हो—उस समय कर्म करना आवश्यक नहीं है। उस निवृत्तिकालमें प्रभुका स्मरण-चिन्तन स्वाभाविक होना चाहिये। एकमात्र प्रभुके प्रेममें ही निमग्न रहना चाहिये।

८८—जब कभी साधकको ऐसा प्रतीत हो कि मेरे आवश्यक और शुद्ध संकल्प भी पूरे नहीं हो रहे हैं तब

समझना चाहिये कि प्रभु मुझे अपनानेके लिये, अपना प्रेम प्रदान करनेके लिये मेरे मनकी बात पूरी न करके अपने मनकी बात पूरी कर रहे हैं। इस प्रकार उनके संकल्पमें अपने संकल्पको मिलाकर आनन्द-मग्न हो जाना चाहिये।

८९—आवश्यक और शुद्ध संकल्पोंकी पूर्तिमें भी साधकको सुख-भोग न करके प्रभुकी अहैतुकी कृपाका अनुभव करते हुए उनके विश्वास और प्रेमको पुष्ट करते रहना चाहिये।

९०—योग, बोध और प्रेम किसी क्रियाके फलरूपमें प्राप्त नहीं होते; क्योंकि क्रियाकी उत्पत्ति कर्ताभावसे होती है। कर्ताभाव शरीरके साथ एकता माननेपर होता है और शरीरमें अहंता, ममता रहते हुए योग, बोध और प्रेम नहीं हो सकते।

९१—संकल्पकी अपूर्तिमें दुःख, क्रोध, अप्रसन्नता आदि विकारोंकी उत्पत्ति होती है और पूर्तिमें सुख, अभिमान आदि विकारोंकी उत्पत्ति होती है। अतः साधकको प्रत्येक परिस्थितिका उपयोग संकल्प-निवृत्तिमें ही करना चाहिये।

९२—व्यापारका उद्देश्य एक देशकी उत्पादित वस्तु आदिको दूसरे देशके लिये उपयोगी बना देना है। अतः व्यापारीवर्गके हृदयमें यह सद्भावना रहनी चाहिये कि सभीको आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त होती रहें। इस भावसे व्यापार एक बड़ी आवश्यक सेवा है।

९३—शरीरका निर्वाह, कुटुम्बका पालन और सर्व-साधारणकी आवश्यकता-पूर्तिके उद्देश्यसे सेवाके रूपमें व्यापार करना व्यापारीका कर्तव्य है। धनके लालचसे नहीं।

९४—जिस समय साधकको कोई करनेयोग्य काम प्राप्त न हो, उस निवृत्तिकालमें किसी प्रकारका चिन्तन नहीं करना चाहिये। अनिच्छासे होनेवाले व्यर्थ-चिन्तनसे सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये। सर्वथा संकल्परहित होकर प्रभु-प्रेममें निमग्न रहना चाहिये।

९५—मनुष्यके जीवनमें भावकी पूर्ण शुद्धि न होनेपर ही व्यर्थ और बुरे संकल्प अपने-आप उत्पन्न होते रहते हैं। अतः साधकको चाहिये कि उनसे सर्वथा असंग रहते हुए अपने भावको शुद्ध बनाये।

संख्या ९]

१६-जिसका वियोग हो जाना निश्चित है, जो हर समय मनुष्यसे अलग हो रहा है, उसके संयोगकी इच्छा रखना, उसमें ममता या आसक्ति रखना मनुष्यकी भूल है। अतः साधकको नाशवान् परिवर्तनशील संसारसे सर्वथा निःसंग हो जाना चाहिये।

१७-बुरे कर्मोंको बुरा समझ लेनेके बाद भी वे छूटते नहीं, इसके कारणपर विचार करनेपर पता चलता है कि उन कर्मोंके द्वारा प्रतीति मात्र मिलनेवाले सुखभोगके रसकी आसक्ति साधकमें छिपी रहती है। उसका त्याग करना परम आवश्यक है। रसका सर्वथा नाश होनेपर ही साधकका जीवन निर्दोष हो सकता है।

१८-कर्मफलकी आसक्तिका नाश न होनेके कारण साधक कर्तापनके अभिमानसे और करनेकी आसक्तिसे रहित नहीं हो सकता। अतः साधकको प्रत्येक कर्तव्यकर्म फलकी कामनासे रहित होकर ही करना चाहिये।

१९-जो कुछ होता है और हो रहा है, वह सर्वसुहृद् प्रभुके विधानसे ही हो रहा है। इस रहस्यको समझकर साधकको प्रत्येक परिस्थिति और घटनासे सदैव प्रसन्न रहना चाहिये। किसीमें राग-द्वेष नहीं करना चाहिये। उसका तो इतना ही काम है कि अपने द्वारा होनेवाली क्रियामें सावधान रहे, किसीका अहित न करे।

१००-शरीर और संसारके स्वरूपकी वास्तविकता जान लेनेपर जीनेकी आशाका और मरनेके भयका नाश हो सकता है। अतः शरीरके रहते हुए भी जीनेकी आशाका तथा मरनेके भयका त्याग कर देना चाहिये। ऐसा भाव रखना चाहिये कि शरीर रहे तो भी अच्छा, न रहे तो भी अच्छा।

१०१-साधकको अपने साथियोंके साथ माने हुए सम्बन्धके अनुसार प्रत्येक व्यवहार निष्काम, निष्कपट, पवित्र भावसे प्रभुके नाते आवश्यकतानुसार उनके हितकी दृष्टिसे करना चाहिये।

१०२-साधकको चाहिये कि मनुष्य-शरीर साधनका

धाम है। साधन-सम्पन्न जीवन ही मनुष्य-जीवन है। यह विषयोंका उपभोग करनेके लिये नहीं है। भोग-वासनाका नाश करनेके लिये भगवान्ने कृपा करके मनुष्य-शरीर दिया है। अतः तत्परतासे साधनपरायण हो जाना चाहिये।

१०३-प्रतीति मात्र ही नाशवान् असत् वस्तु आदिकी निन्दा करना, उसकी चर्चा करना, उससे सम्बन्ध जोड़ना है। अतः साधकको चाहिये कि असत्को असत् जानकर उससे असंग हो जाय।

१०४-वैराग्यमें वृणा या द्वेषके लिये कोई स्थान नहीं है। वह तो दृश्यसे असंग करके साधकमें भगवान्के प्रति श्रद्धा और प्रेमकी पुष्टि करनेवाला है।

१०५-जो भगवान्से वस्तु, परिस्थिति या किसी प्रकारके सुखकी कामना करता है, वह तो उन वस्तु आदिका ही दास है, भगवान्का नहीं। अतः सब प्रकारकी कामनाओंका त्याग कर देना चाहिये।

१०६-जबतक मनुष्य अपनी प्रसन्नताका हेतु किसी दूसरे व्यक्तिको, पदार्थको, परिस्थितिको या अवस्थाको मानता रहता है, उनकी आवश्यकताका त्याग नहीं करता, तबतक वह अपने जीवनमें दीन, हीन और पराधीन ही बना रहता है।

१०७-भोगोंका भोग करनेसे उनको भोगनेकी शक्तिका हास और भोगवासनाकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। इस कारण जीवनमें अभावका अभाव कभी नहीं होता। अतः साधकको चाहिये कि भोगवासनाका सर्वथा त्याग कर दे।

१०८-निर्वासना किसी अन्यकी दी हुई नहीं मिलती, अपनेको ही प्राप्त करनी पड़ती है। इसके लिये वासनाओंका सर्वथा त्याग करना परम आवश्यक है। वासनाका त्याग कर देनेसे जब जीवन पवित्र हो जाता है, तब उसमें चिन्मयता, दिव्यता, मुदिता, स्वाधीनता, निर्भयता आदि दिव्य गुण अपने-आप प्रकट हो जाते हैं।

वन-वैभव

(रचयिता—विद्यावाचस्पति पद्मश्री डा० हरिशंकरजी शर्मा डी० लिट्०)

अति शान्त भावसे खड़े हुए, तप-निष्ठ, योगि, यति, ज्ञानी हो ।
तुम मूक-मौन, अविचल, अवाक् अपनी कह रहे कहानी हो ॥
तुम गुल्म, लता, तरु-पुंज रूप, सब जीवोंके हित-साधक हो ।
तुम वीतराग, विश्रुत, वदान्य, निष्काम कर्म-आराधक हो ॥

सुन्दर सुहावनी हरियाली मन हरती, प्रमुदित करती है ।
वन-विभुता, शुचिता, श्री-सुषमा नित हर्ष हृदयमें भरती है ॥
विहँगोंके वृन्द बैठ तुमपर कलरव करते गुण गाते हैं ।
कुछ रैन-बसेरा लेते हैं, कुछ नियमित नीड बनाते हैं ॥

तुम सुख-दुख अनुभव करते हो, तुम कृश-पृथु रोगी होते हो ।
तुम खाते हो, तुम पीते हो, तुम जगते हो, तुम सोते हो ॥
तुम बेला, जुही, चमेली हो, चम्पा, गुलाब गुलकी लड़ियाँ ।
केवड़ा, वकुल, रजनीगन्धा, सुन्दर सरोजकी पंखड़ियाँ ॥

तुम जड़ी, वूटियाँ, कन्द, मूल, रस, औषध, प्राण-प्रदायक हो ।
अस्त्रोंके आवश्यक अवयव, शस्त्रोंके सबल सहायक हो ॥
तुमसे ले वंशी, वंशीधर, धर अधर मधुर ध्वनि गाते थे ।
चर-अचर विमोहित होते थे, सुख पाते थे, हर्षाते थे ॥

पट-अन्न-दान दे-देकर तुम तन ढकते, भूख मिटाते हो ।
अपना वैभव, अपनी विभूति यों हाथों-हाथ लुटाते हो ॥
पत्ते-पत्तियाँ, सीक-तिनके, कलियाँ-फलियाँ उपजाते हो ।
शोभासे वन भर देते हो, सुरभित घर-नगर बनाते हो ॥

मधुकी महिमापर मुग्ध विश्व, तरु ! तुमसे ही मधु पाता है ।
पाकर वसुधाका सुधा-स्रोत जन-जन कृतार्थ हो जाता है ॥
सब रंग-विरंगे रंगोंकी छबि-छाया तुम्हीं दिखाते हो ।
रंग-रंगमें रंग जमाते हो, तुम होली-फाग मचाते हो ॥

तीखे, कटु, अम्ल, कषाय तुम्हीं, मिसरी, गुलकंद, मिठाई हो ।
तुम चाय, मसाले, मेवा हो, रोटी, शर्बत, ठंडाई हो ॥
तुम स्नेहरूप वन वल्लीसे नित प्रणय-भाव दरसाते हो ।
तम-तोम जगतका छेद-वेध, जलकर प्रकाश फैलाते हो ॥

तुम चरखा, करघा, खादीसे भारतकी भक्ति सिखाते हो ।
अति उच्च तिरंगे झंडेमें वन राष्ट्र-भाव लहराते हो ॥
दे प्राण-प्रदायक प्राणवायु, विष-वायु स्वयं खा लेते हो ।
यों जगतीतलके जीवोंको तरु ! प्राण-दान तुम देते हो ॥

वन-उपवनमें वर्षा-जलकी तुम रोक-थाम कर लेते हो।
पृथिवीके पोषक तत्वोंको यों व्यर्थ न बहने देते हो॥
तुम जलाघातसे पृथिवीकी दृढ़ देह न कटने देते हो।
इस मा वसुन्धराके तनकी तरह ! शक्ति न घटने देते हो॥

तुमसे नदियाँ संयममें रह मर्यादाहीन न होती हैं।
बेढव बाढ़ोंमें बह-बहकर जल-जीवन व्यर्थ न खोती हैं॥
तुम शाख-शाखपर लाख लोद प्रभुता-प्रमाद दर्शाते हो।
तन क्षीण, दीन, धनहीनोंको तरह ! लखपती बनाते हो॥

जलपर जहाज वन तरते हो, वन यान-विमान विचरते हो।
फरनीचरसे घर भरते हो, हल खेती-क्यारी करते हो॥
तुम कंटक-सखा हितैषी हैं, संकटसे सदा बचाते हैं।
संरक्षक वीर सिपाही हैं, कुसुमोंका कोश रखाते हैं॥

तुम शीत, घाम, वर्षा, तुषार, नतमस्तक हो सह लेते हो।
असहाय, अरक्षित जीवोंको अपनाते, आश्रय देते हो॥
पत्थर, ईंटोंकी चोटें खा प्रतिकूलमें फट बरसाते हो।
तुम हिंसाहीन भावनाका सुखदायक दृश्य दिखाते हो॥

भगवान् रामने राज्य त्याग तुमको आवास बनाया था।
श्रीकृष्णचन्द्रने कुञ्जरूप तुमको सप्रेम अपनाया था॥
तुम ! बैठ तुम्हारी छायामें मुनि गौतम बुद्ध कहाये थे।
खा-खाकर पत्ते गिरिजाने पञ्चानन-से पति पाये थे॥

तुम शकुन्तलाके प्रिय परिजन, ऋषि-मुनियोंके घर बालक हो।
गति, मति, संस्कृतिके संचालक, तुम प्राणिमात्र-प्रतिपालक हो॥
ऋषि वाल्मीकिकी प्रतिभाने प्रेरणा तुम्हींसे पायी थी।
कवि कालिदासने काव्य-कला तुमहींसे छिटकायी थी॥

तुलसी, रवि, सूर रमे तुममें, गुरु गाँधीने गुण गान किया।
मुनियोंने शीतल छायामें मानवको ज्ञान प्रदान किया॥
धिस-धिसकर भी सौरभ देते, तुम यज्ञाहुति वन जाते हो।
इस त्याग-तपस्याके कारण मस्तकपर आसन पाते हो॥

तुम देवों या नरदेवोंपर वन पत्र-पुष्प चढ़ जाते हो।
मालाओंमें छिद-विधकर भी ग्रीवाका विभव बढ़ाते हो॥
वनकर कपाट-पट प्रहरीसे जन-धनकी रक्षा करते हो।
मञ्जूषोंमें बहुमूल्य वस्तु, मणि-द्रव्य, धरोहर धरते हो॥

अंधे, लँगडोंकी लकड़ी हो, अबल्लोंके सबल सहारे हो ।
 तुम पत्र, लेखनी, पुस्तक हो, तुम ज्ञानाधार हमारे हो ॥
 झंझाके झोकों-झटकोंसे तुम झूम-झूम झुक जाते हो ।
 नय-विनय, त्यागमय संयमसे घर-घरमें पूजा पाते हो ॥

जलकर गर्मी-प्रकाश देते, भोजन, पय, पेय पकाते हो ।
 तुम वायु विशुद्ध बनाते हो, बादलको बल पहुँचाते हो ॥
 तुम चिता सुप्त मृत देहोंकी, क्षण-भरमें गति करनेवाले ।
 'जौहर' बन राज-पुत्रियोंमें जीवन-ज्वाला भरनेवाले ॥

लेकर कुठार काटा शरीर फिर छिन्न-भिन्न प्रत्यङ्ग किया ।
 आतपने त्रस्त किया तुमको बोटी-बोटीको जला दिया ॥
 पर, धन्य-धन्य हे कर्मवीर ! कर्तव्यकर्ममें मग्न रहे ।
 सर्वस्व समर्पण करके भी हित-साधनमें संलग्न रहे ॥

मनुष्य जितना अधिक काममें व्यस्त रहता है, उतना ही अधिक जीवित और स्वस्थ रहता है !

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच० डी०)

शतं जीव शरदो वर्धमानः ।

(अथर्ववेद ३।११।४)

अर्थात् सौ वर्षोंतक उन्नतिशील जीवन जिओ । जीवन-
 शक्तिको ऐसे संयमसे खर्च करो कि सौ वर्षोंतक पूर्ण कर्म-
 शील रह सको ।

वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् ।

(अथर्ववेद १९।३७।२)

अर्थात् अपने शरीरको भगवान्का दिव्य मन्दिर समझ-
 कर उसकी पूरी देख-भाल रखो । शरीरमें तेज, साहस,
 ओज, आयुष्य और बलकी वृद्धि करो ।

अश्मानं तन्वं कृधि ।

(अथर्ववेद १।२।२)

अर्थात् शरीरको पत्थर-जैसा सुदृढ़ बनाओ । श्रम और
 तितिक्षासे शरीर मजबूत बनता है ।

मेरे पड़ोसमें एक सरकारी कर्मचारी पचपन वर्षकी
 पकी आयुमें सरकारी नौकरीसे रिटायर हुए । वे यह कहा
 करते थे कि 'सरकारी दफ्तरसे मुक्त होनेपर कोई काम-
 काज न रहेगा, तो बड़े आनन्दसे रहेंगे, बस, स्वास्थ्य-ही-

स्वास्थ्य बनायेंगे । शेष जिंदगी मजेदारीसे गुजरेगी तथा
 कठोर कार्य और नियन्त्रणसे फुरसत रहेगी ।'

और एक दिन उन्हें पेन्शन मिली । कामसे छुट्टी मिल
 गयी । अब वे सारे समयके खुद मालिक थे । फुरसत-ही-
 फुरसत थी ।

उन्हें फुरसत तो मिली, पर मन भारी रहने लगा और
 स्वास्थ्यको तो मानो जंग ही लग गया । दो-चार दिन तो
 इधर-उधर दूकानों, मिलनेवाले मित्रोंके घर और मुहल्लेमें
 बैठकर दिन कटे, पर फिर उनका मन न लगा । एक दिन,
 चार दिन, एक मास, दो मास ! आखिर कहाँतक बैठे रहें ?
 जिंदगी बड़ी लंबी, पता नहीं इसकी जड़ कहाँतक चले ?
 निठल्ले जीवनसे बैठे-बैठे ऊब गये ! बीमार हो गये ! यह
 बीमारी बढ़ती गयी और उन्होंने खाट ही पकड़ ली ! डाकरी
 इलाज चलने लगा । जो व्यक्ति कुछ मास पूर्व मजेमें आठ
 घंटे श्रम करता था, आज वही खटियापर पड़ा डाक्टरको
 नब्ज दिखा रहा था और मौतकी घड़ियाँ गिन रहा था !

खाटपर पड़े-पड़े परमात्माकी कुछ ऐसी प्रेरणा हुई कि
 'बेकामका निठल्ला जीवन तो मानो जंग लग-लगाकर अकाल-

मृत्युको प्राप्त करना है। एक प्रकारकी आत्महत्या है। जबतक शरीर चले, तबतक कुछ-न-कुछ करना चाहिये।

बस, वे अपने पुराने दफ्तर गये। संयोगसे उन्हें उसी दफ्तरमें दैनिक मजदूरीपर फिर मामूली-सा काम मिल गया। उन्होंने उसीको ले लिया।

महान् आश्चर्य ! भगवान्की लीला ! दो-चार दिन तो कठिनाईसे दफ्तर गये, पर तीन-चार दिन बाद शरीरकी मशीन फिर चल निकली। कार्य करनेसे जंग लगे पुर्जे फिर पूर्ववत् काम करने लगे। काममें लगे रहनेसे अब उन्हें इतनी फुरसत ही न थी कि वे बुढ़ापे, कमजोरी या बीमारीकी निरर्थक कायरतापूर्ण कल्पनाओंमें लगे रहें।

आज वे उसी प्रकार दफ्तरमें जाते हैं। जवानोंकी तरह काम करते हैं। पैसा बहुत कम मिलता है, पर उसकी परवा नहीं करते। प्रतिदिन शिकंजोंमें कसे हुए जिंदगी आगे चल रही है। सुबह दस बजेसे शाम पाँच बजेतक काममें दिन बीत जाता है। उनकी धर्मपत्नी मर चुकी है। घरपर कोई काम नहीं है, पर फिर भी कार्यमें व्यस्त रहते हैं। अपने जीवनका निचोड़ वे इन शब्दोंमें व्यक्त करते हैं—

‘मैं दवा-दारूसे भी कामको आदमीकी सबसे बड़ी दवाई मानता हूँ। जो लाभ कीमती दवाइयाँ नहीं करती, वह कर्ममय जीवनसे सहज ही हो जाता है। कर्मसे जीवन और स्वास्थ्य बढ़ते हैं। कुछ-न-कुछ शारीरिक और मानसिक काम करते रहनेसे आदमी अधिक जी सकता है। प्रकृतिके दीर्घजीवी जानवर कर्ममय हैं। अगर स्वस्थ और दीर्घजीवी बनना है, तो जिंदगीके आखिरी दम तक कर्ममें लगे रहिये।’

८० वर्षीय छात्रा

पेरिसका एक समाचार है कि बर्फ-जैसे सफेद बालोंवाली एक परदादी ६० वर्ष पूर्व विवाहमें पतिसे मतभेद होनेके कारण छोड़ी गयी थी। उसने अपने लिये काम ढूँढ़ा, तो उसे अनुभव हुआ कि पढ़ने-लिखनेके कार्यमें वह सबसे अधिक आनन्द ले सकती थी। उसने व्यस्त रहनेके लिये पुनः पेरिसके सारबोन विश्वविद्यालयमें पढ़ना शुरू कर दिया। ८० वर्षीया यह उत्साही महिला १९०५ में भी सारबोन विश्वविद्यालयकी विशिष्ट छात्रा थी; क्योंकि उस जमानेमें वह विज्ञानका अध्ययन कर रही थी। इस महिलाके तीन पुत्र, सात पौतियाँ तथा एक प्रपौत्री हैं। मानसिकरूपसे स्वस्थ

और दीर्घजीवी बननेके लिये वह कामको जरूरी मानती है। अब उसने अंग्रेजी एवं जर्मन अध्ययन करनेके लिये विश्वविद्यालयमें प्रवेश लिया है।

वह कहा करती है, ‘मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवसे इस नतीजेपर पहुँची हूँ कि आदमीकी मशीनको लगातार चलते रहनेसे वह बहुत दिनोंतक चलती रहती है। मनुष्य जितना अधिक किसी उपयोगी काममें लगा रहता है, उतना ही उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है।’

यहाँ हमें महात्मा गाँधीजीकी वह उक्ति याद आती है, जिसमें उन्होंने कहा है कि ‘सच्चा विद्यार्थी वही है, जिसको विद्योपार्जनकी सच्ची भूख लगी हो, जो विद्याप्राप्तिकी कठिनाइयोंको देखकर आनन्दित होता हो और जो विद्याको ही साध्य और केन्द्र बनाकर अन्य सब बातोंको भूल जाता हो। यदि कोई यह समझकर विद्या पढ़े कि वह उसे अर्थ-प्राप्तिका उद्देश्य सिद्ध करेगी, तो जीवनमें लक्ष्य प्राप्त करनेका उच्चादर्शन मिलेगा और न तब उसका श्रम ही सार्थक होगा।’

एक सौ पंद्रह वर्षका डाकका कर्मचारी

धनवादमें एक सौ पंद्रह वर्षकी दीर्घ आयु भोगकर अभी हालहीमें एक डाकविभागका कर्मचारी इस असार संसारसे विदा हुआ है। लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते हुए सुने गये हैं।

परिचित व्यक्तियोंका कहना है कि उक्त कर्मचारी पोस्टमैनका काम पैदल करता था। जीवनभर खूब घूमता-फिरता रहा। निठल्ले और आलसी जीवनसे उसे अत्यन्त घृणा थी। उसने साइकिल भी लेना पसंद नहीं किया था। अपनी इतनी लंबी आयुमें भी स्वभावसे बड़ा शान्त था। उसको कभी कोई नशा करते नहीं देखा गया और न कभी क्रोध !

अपने सेवाकालके बाद भी उसने पूरे साठ सालतक विश्राम भत्ता पाया था। नाती-पोतोंसे भरा-पूरा परिवार छोड़कर जानेवाले इस कर्मचारीका स्वास्थ्य टहलने, घूमने-फिरने और किसी-न-किसी काममें अपनेको व्यस्त रखनेके कारण पूर्णतया सुरक्षित था। जब कभी उससे किसीने उसके स्वास्थ्यके विषयमें पूछा, तो उसने एक ही बात कही, ‘मैं कभी निठल्ला नहीं रहता, कुछ-न-कुछ करता रहता हूँ। मेरा विश्वास है कि काम करनेसे ही आदमी स्वस्थ और दीर्घजीवी बन सकता है।’

१५९ वर्षकी आयुमें भी घुड़सवारी

मास्को सोवियत संघके अजरबैजान गणराज्यके सबसे बूढ़े शिराली मिसलिमोवने बाकूमें अपना १५९वाँ जन्म-दिवस मनाया । बाकूमें उनके सम्मानमें एक समारोह आयोजित किया गया । मिसलिमोवने घरसे बाकूतक ६ मीलकी दूरी कारसे तय करनेसे इन्कार कर दिया । वे कुछ दूर पैदल और फिर घोड़ेपर सवार होकर समारोह स्थलतक गये । 'तास'के अनुसार इतने वृद्ध होनेपर भी मिसलिमोव बहुत चुस्त हैं । वे पैदल चलने और भेड़ पालनेमें व्यस्त रहते हैं । खाली नहीं बैठते । काममें रुचि है । वे कभी शराब नहीं पीते, न सिगरेट ही; पर वे अधिकतर सब्जियाँ और फल आदि खाते हैं । उनकी पत्नीकी आयु ८५ वर्ष है और उनका सबसे बड़ा पोता ६५ सालका है ।

रूसमें बढ़ती हुई आयु

रूसमें प्रायः लोग लंबी आयु प्राप्त करते हैं । पिछले दिनों समाचार-पत्रोंमें छपा था कि १५८ वर्षीय एक किसान मखमूद इवाजोव, जिन्होंने कृषिदर्शनीमें भाग लिया था, सोवियत संघमें अपनी लंबी आयु और संतुलित धार्मिक जीवनके लिये विख्यात हैं । उनके कार्यकी प्रशंसास्वरूप गतवर्ष (सन् १९६५) सोवियत सरकारने उन्हें 'आडर आफ रेड बैनर आफ लेबर' (श्रमके लाल झंडेका पदक) से विभूषित किया है । उनके अनुभव कुछ इस प्रकार हैं ।

'आदमीको कुछ-न-कुछ शारीरिक और मानसिक मेहनत करते रहनेसे जिंदगीमें रस आता है और शरीरके जीवाङ्ग भलीभाँति काम करते रहते हैं । निष्क्रिय बैठनेसे उनमें जंग लग जाता है और वे समयसे पहले ही वृद्धावस्था धारण कर लेते हैं । जैसे बहते रहनेसे जल स्वच्छ और स्वास्थ्यदायक रहता है, ऐसे ही कार्यसे स्नायु-तन्त्र सक्रिय रहते हैं । जीवाङ्गकी यौवनशक्ति बनाये रहनेके लिये सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात 'काम' है । अनेक लोगोंकी यह बातक गलती है कि वे यह समझते हैं कि बूढ़े व्यक्तिको काम नहीं करना चाहिये, या कम धूमना-फिरना चाहिये । मैं तो अपने अनुभवसे कहता हूँ कि जबतक चले शरीर, मस्तिष्क और आत्मापर कार्यका बोझ डालते रहना चाहिये । सब अवयवोंको अधिक-से-अधिक दिन सक्रिय रखना चाहिये । निठल्ले बैठना शरीर और मन—दोनोंके लिये हानिप्रद है ।'

आयु बढ़नेमें काम निर्णायक भूमिका पाठ अदा करता है । यह सुविदित है कि सुव्यवस्थित कामके बलपर ही आदमी अधिक जी सकता है ।

खाली बैठनेका दूषित प्रभाव

एक और शरीर-विज्ञान-शास्त्री इवान पत्रोविच पावलोव कहा करते हैं, 'एक क्लर्क अपना काम करते हुए, जो बहुत ज्यादा कठिन नहीं होता, सत्तर वर्षतककी उम्रतक ठीक चलता रहता है, परंतु ज्यों ही वह अवकाश ग्रहण करता है और फलतः अपने नित्यप्रतिका ठर्रा छोड़ देता है, जीवाङ्ग काम करनेमें असमर्थ हो जाते हैं और वह जल्दी मर जाता है । वृद्धावस्थामें पूरी तरह हर तरहका काम छोड़ देनेवाले प्रत्येकके साथ आमतौरपर यही होता है । हमें कई ऐसे मामलोंका पता है, जिसमें अपेक्षाकृत स्फूर्तिमान, प्रसन्नचित्त तथा दृष्ट-पुष्ट पेन्शनपर अवकाश ग्रहण करते हैं, सहसा निर्वल हो गये हैं और बीमार पड़ गये हैं । यही कारण है कि अवकाश ग्रहण करनेके बाद व्यक्तिको कदापि काम-काज करना पूरी तरह नहीं छोड़ देना चाहिये । उसे अवश्य ही कुछ हल्के काम—जैसे वागवानी, संगीत, साहित्यकार्य, धूमना-फिरना, यात्राएँ करना, पालतू पशु पालना, चिड़ियोंको दाना देना, खूब नहाना, खुली हवामें निवास करना, छोटे बच्चोंके साथ खेलना या उन्हें पढ़ाना, भक्ति, पूजन करना, मन्दिरोंकी सफाई आदि करना इत्यादि जीवनदायी कार्य करने चाहिये । कार्य ही जिंदगीकी पहचान है ।'

सारा संसार कर्ममय है

वास्तवमें समग्र संसार कर्ममय है । निष्क्रियता तो साक्षात् मृत्यु है । काम करते रहनेवाला आदमी ही स्वस्थ, स्वाधीन, विकार तथा उद्वेगसे रहित, प्रसन्नचित्त और उदार होता है । कर्मकी पूर्णतामें ही जीवको आनन्द मिलता है ।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने यही बात इन शब्दोंमें कही है—

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

...

...

...

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ॥

अर्थात् कर्मनिष्ठ न रहकर कोई क्षणभरके लिये भी जीवित नहीं रह सकता । प्रत्येक जीवका प्रकृतिजनित

स्वभाव है कि वह कुछ-न-कुछ कर्म करता रहे। यदि कोई इस जीवनका अन्य प्रयोजन न भी माने, तो केवल जीवित रहनेके लिये ही कर्म करना आवश्यक है। सारा संसार ही कर्ममय है।

फिर आप क्यों अपने आपको अधिक आयुका समझकर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हैं? कुछ तो कीजिये ही।

विश्वके संचालनको देखिये। प्रकृतिके कार्य-कलापके मार्गमें कौन-सा नियम काम कर रहा है? जीवका क्या लक्षण है? जीवित और निर्जीव पदार्थमें क्या भेद है? वे कौन-से गुण हैं, जिनसे हम जीवितको निर्जीवसे अलग कर सकते हैं? इन गुणोंको ठीक-ठीक समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है।

कर्मणाभि भान्ति देवाः परत्र कर्मणैवेह प्लवते मातरिश्वा ।
अहोरात्रे विदधन् कर्मणैवातन्द्रितो शश्वदुदेति सूर्यः ॥

अर्थात् आप जानते हैं स्वर्गमें देवी-देवता क्यों अक्षय

ज्योतिसे चमकते रहते हैं? वायु क्यों रात-दिन डोला करता है? उसमें क्यों चेतना और स्पन्दन रहता है? भगवान् सूर्य युगयुगान्तरमें अविरल गतिसे क्यों दिन-रात बनाते रहते हैं? यह सब प्रकृति, यह संसार, यह समाज, यह महान् विश्व—सब क्यों चल रहे हैं?

इसका एकमात्र कारण है 'गति', अर्थात् कर्मशीलता।

दूसरे शब्दोंमें यह सब दिन-रात, प्रतिपल, प्रतिक्षण कर्ममें लगे रहते हैं। एक मिनिट भी नहीं रुकते। कभी आराम नहीं करते। जगत्में सब संचर-अचर कर्मनिरत हैं। सारा विश्व कर्ममय है।

यह विश्व कर्मक्षेत्र है। आलसियों और निटल्लोंके लिये यहाँ कोई स्थान नहीं है। आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक सुख-शान्ति प्राप्त करनेका मार्ग कुछ-न-कुछ काम करते रहना है। कर्ममें व्यस्त रहा कीजिये। अवश्य ही कर्म सत् होना चाहिये।

सनातन-धर्म

(लेखक—आचार्य श्रीललितकृष्णजी गोस्वामी)

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन ।

'ब्रह्मकी आनन्दरूपताको जाननेवाला किसीसे भी भयभीत नहीं होता' इस वाक्यमें वही सत्य निहित है, जिसे बादरायण व्यास हम सबके लिये जिज्ञासा कहते हैं। सांसारिक द्विविधाओंसे प्रताडित व्यक्ति जब किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है, तब वह ऐसे सत्यकी खोजमें लगता है जिससे उसे शाश्वत शान्ति मिल सके। इस खोज-दृष्टिको ही ऋषियोंने दर्शन कहा है। यह दर्शनप्रवृत्ति साधारण-से-साधारण अज्ञानी व्यक्तिके जीवनमें भी होती है, किंतु वह उसकी अत्यन्त दुःखकातर अवस्थामें ही हो पाती है। इसलिये अधिक देरतक टिक नहीं पाती। वह व्यक्ति जागतिक विचित्रताओंमें उलझकर उसे खो बैठता है। सांसारिक प्रताडनाओंको निरन्तर सहनेवालेमें यह दर्शन-प्रवृत्ति क्रमशः स्थायी होने लगती है और वह कुछेक अंशोंमें दार्शनिक हो जाता है। ऐसे व्यक्तिको यदि किसी सुबुद्ध मुलझे हुए साधक दार्शनिकका साहचर्य प्राप्त हो जाता है तो उसकी प्रवृत्ति स्थायी हो जाती है।

एक पढ़ा-लिखा अनेक विद्याओंका पारङ्गत विद्वान् भी

अपनी विवेक-बुद्धिसे सांसारिक सुख-दुःखों और उनके कारणोंको भलीभाँति समझनेके बाद उसी वास्तविक सत्यको खोजता है, जिससे वह चिर-शान्ति पा सके। इस प्रकार साधारण और विशिष्ट—सभी प्रकारके व्यक्ति एक ही परम सत्यकी खोज करते हैं।

किसीके भी द्वारा उस सत्यकी खोज कर लेना या जान लेनामात्र पर्याप्त नहीं है, अपितु उसको प्राप्त कर अपना लेनेमें ही सफलता और शान्ति है। अपना लेनेका मतलब होता है, आत्मीय कर लेना। कोई भी वस्तु आत्मीय तभी हो सकती है, जब कि उसे बार-बार सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय, एकाग्रचित्तसे सुना जाय, मनन किया जाय और बार-बार उसीका ध्यान किया जाय—'आत्मा वारे ! द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निद्रिध्यासितव्यः' का यही तात्पर्य है। इस प्रकारके अभ्याससे ही अच्छी या बुरी सभी वस्तुएँ आत्मीय होती हैं। प्रायः हम सबका अभ्यास मैं और मेरे देखने, सुनने, मनन और चिन्तन करनेका है, इसलिये ये ही हमारे आत्मीय हैं, बाकी सब हमारी दृष्टिमें भिन्न हैं। हमारी यह दृष्टि ही हमारी

शान्ति छीन लेती है। हमारी दृष्टि यदि 'मैं-मेरे और तू-तेरे' से हटकर 'सब एकके' पर टिक जाय तो वही सही दर्शन-दृष्टि होगी, इसे ही महात्मा बुद्धने 'सम्यग्-दर्शन' कहा है। ऐसी दृष्टिवाला ही दार्शनिक होता है। उसकी दार्शनिकता तभी स्थायी हो सकती है, जब कि वह उपर्युक्त चार प्रकारके अभ्याससे उसे आत्मसात् कर ले। आत्मसात् करनेवाले व्यक्ति ही संसारके असंख्य मनुष्योंका मार्गदर्शन कर उन्हें आत्मसात् करा सकते हैं, वे ही आचार्य कहे जाते हैं। श्रीनिम्बार्क, शंकर, रामानुज आदि इसी क्रोटिके आचार्य थे। वह ऐसी कौन-सी परम सत्य वस्तु है, जिसके लिये हम निःशंक निर्विवाद-रूपसे कह सकें कि 'हम सब इसी एकके हैं' ? ऐसी सर्वोत्तम वस्तु तो वही कही जा सकती है जो सर्वव्यापक सर्वजनीन हो। व्यापकताका द्योतक ब्रह्म शब्द उसीका स्थानीय है, इसे ही हम निःशंक होकर सर्वजनीन कह सकते हैं। वह ब्रह्म है क्या ? यही जिज्ञासा है। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' में वादरायण इसीपर विचार करते हैं।

सांसारिक पदार्थोंके भोगसे सुख होता है और उसके फलस्वरूप शान्ति भी मिलती है। फिर भी लोग दुखी क्यों देखे जाते हैं ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। संसारकी विभिन्नता ही दुःखका मुख्य कारण है। संसारमें शीतलता, उष्णता आदि विभिन्नताएँ एक साथ रहती हैं, इसलिये सुख-दुःख आदि विपरीत भाव भी एक साथ होते रहते हैं। ये विभिन्नताएँ मनुष्यकल्पित हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता, यह उसके वशकी बात नहीं है। यह कल्पना प्रकृतिकी अपनी स्वाभाविक वस्तु है, किंतु इस कल्पनाका सूत्र प्रकृतिके अपने हाथमें भी नहीं है। इसका सूत्रधार तो वही व्यापक है, जिसके आधारपर सुनियोजित नियमसे यह सारा जगत् संयमित होकर अनादिकालसे एक-सा चला आ रहा है। अनेक सृष्टि और प्रलय होनेके बाद भी, इसके विचित्र रूपमें रंचमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ है। विधाता वैसे-के-वैसे रूपमें ही इसकी कल्पना करता है 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा-पूर्वमकल्पयत्।' उस विधाताने ऐसी कल्पना क्यों की ? कैसे की ? इत्यादि प्रश्न उपस्थित किये जाते हैं। वेदान्तदर्शन उत्तर देता है कि उसने ऐसी कल्पना कुतूहलवश लीला करनेके लिये की और वह स्वयं ही साकार कल्पनाके रूपमें प्रकट हो गया; जगत्के निर्माणमें किसी भी उपकरणकी आवश्यकता उसे नहीं हुई, वस्तुतः सारा विराट् विश्व उसी-की साकार कल्पनीय मूर्ति है। उसको न समझनेके कारण

ही हम दुःख अनुभव करते हैं। इस प्रकार दुःखका दूसरा कारण है, हमारी समझ अर्थात् विराट् विश्वमें विभिन्नता देखनेकी प्रवृत्ति। हम भूल जाते हैं कि हम इस विराट् व्यापक ब्रह्मरूप जगत्की एक इकाईमात्र हैं। श्रीकृष्णने अर्जुनको विराट् विश्वरूप दिखलाकर उसको स्मरण दिलाया था कि 'तू इस अखण्ड विराट्की एक अखण्ड शक्ति है, तू इस प्रकारकी शक्तियोंका संगठन करके विराट्की कल्पना करेगा तभी तेरा कल्याण होगा।' यदि हम विस्तृत जगत्की विभिन्नताओंको एकत्र करके एक कड़ीसे जोड़ दें, तो दीखने-वाली और अनुभवमें आनेवाली सारी विभिन्नताएँ हमें एक-सी दीखने लगेंगी। इसे ही गीतामें 'समत्वं योग उच्यते' कहा है। शीत-उष्ण, सुख-दुःख, मानापमान आदि विपरीत भावनाओंको एक ही रूपमें मानकर व्यवहारमें लाना बहुत ही कठिन है। यह बात कहनेमें सरल, सुननेमें सरल और मनसे मान लेनेमें भी सरल है; परंतु करनेमें उतनी सरल नहीं है। वाणी, मन आदिकी गति इसमें नहीं है, कहने, सुनने और समझनेके बाद भी सबकी स्थिति जैसी-की-तैसी बनी रहती है, यही तथ्य 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इस उपनिषद्-वाक्यमें बतलाया गया है। हम इस समत्वयोगके सिद्धान्तको जाननेके बाद भी जहाँ-के-तहाँ बने रहे, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हमने उस वस्तुको तो जाना ही नहीं, जिसके जाननेसे सब कुछ अपने-आप ज्ञात हो जाता है। हमारी जिज्ञासा वैसी-की-वैसी ही बनी रही।

हम उस वस्तुको खोजनेके लिये शास्त्रोंका अध्ययन करें या विद्वानोंका सत्संग करें, इन सबसे तो पूरा समाधान होनेसे रहा; तो क्या निराश होकर चुप बैठ जायँ और सांसारिक प्रताडनाओंको सहते रहें ? बुद्धिमान् प्राणीके लिये यह शोभाकी बात भी नहीं है। शास्त्र या विद्वान् जो कुछ भी बतलाते हैं, वह भी इस संसारमें सही अनुभव करके ही सही बतलाते हैं। जो कुछ भी दीखता है, उसके आधारपर ही उसका समाधान करना, सही समाधान है। शास्त्र और विद्वान् दीखनेवाले तथ्योंमें अपनी पैनी दृष्टि जमाकर उस अन्तिम अदृष्ट तथ्यतक पहुँच जाते हैं, जिसको देख लेने-मात्रसे, सारे समाधान आपने-आप हो जाते हैं। शास्त्रोंमें दृष्टान्तकी बहुलता ही उसकी अपनी सफलता है। शास्त्रोंका कुशल वक्ता भी वही है, जो दृष्टान्तकुशल है, ऐसा शास्त्रका निर्देश भी है—'दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता'

शास्त्राध्ययन और उपदेश एकमात्र मार्ग-प्रदर्शनमात्र ही करते हैं; उसपर चलकर आत्मसात् करना हमारा अपना ही कर्तव्य है। इसके लिये हमें सतत प्रयास करना चाहिये। हताश होकर बैठ जानेसे लाभ नहीं। स्वतः ही अपने कष्टोंके निवारणके लिये उस परम सत्य तथ्यको खोजकर अपना उद्धार करना चाहिये। 'उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्' में श्रीकृष्णका यही उद्घोष है। ऐसा ही उद्घोष उपनिषदोंका भी है—'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' अर्थात् उठो, जागो और उस श्रेष्ठताको प्राप्तकर कृतार्थ हो जाओ।

इसलिये हमें शास्त्र और अपने पूर्वज ऋषियोंके निर्दिष्ट मार्गपर चलकर जगत्की दैनिक घटनाओं और भुक्तियोंमें ही परम सत्यकी खोज करनी चाहिये। हमारा लक्ष्य शान्ति प्राप्त करना है। हम संसारकी जिन वस्तुओंसे शान्ति पाते हैं, उसका मूल कारण कौन है? हमारा आकर्षण किसी वस्तुकी ओर क्यों होता है? इत्यादि जिज्ञासाओंकी निष्पत्तिसे ही हमें परम सत्यकी प्राप्ति हो सकती है या यों समझें कि इसकी निष्पत्ति ही परम सत्य है।

हम किसी भी कार्यमें रुचिपूर्वक संलग्न होते हैं, उसका मुख्य कारण है सुख। जब मनुष्यको सुख प्राप्त होता है, तभी वह कुछ करता है। बिना सुख मिले कोई कुछ नहीं करता। इसलिये सुखकी जिज्ञासा करनी चाहिये। संसारकी हर वस्तुमें सुख है, स्त्री, बच्चे, घर, धन आदि सभीसे हमें सुख मिलता है, इसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते। जगत्की वस्तुओंको दुःखदायी कहकर उन्हें छोड़नेका प्रयास करना अपनेको दुःखकी परम्परामें सदाके लिये डुबो देना मात्र है, ऐसा कहकर हम अपनेको बहुत बड़े भुलवेमें डालते हैं। इतिहासमें किसी भी त्यागी महापुरुषने सांसारिक सुखोंसे छुटकारा पा लिया हो, ऐसा कहना कठिन है। सभीको इन सुखोंने अपनी ओर आकृष्ट किया है। उनकी सारी तपस्या और प्रयास इनके समक्ष पिछड़ गये हैं। आज भी संन्यासी, साधु या महंत इन सुखोंसे छूटकर पलायन करनेमें असमर्थ हैं। ये सांसारिक सुख हमें चिरशान्ति नहीं दे पाते। उसका मुख्य कारण है कि हम इस विस्तृत सुखका संग्रह नहीं करते; यदि हम इनका संग्रह करके एक रूपमें इनका आस्वाद करने लगें तो हमें चिरशान्ति मिल सकती है। सुखकी बहुलता ही वास्तविक चिरन्तन सुख है। सुख भिन्न-भिन्न वस्तुओंमें बिखरा पड़ा है, हम स्वार्थवश

उसका अपने-अपने लिये ही आस्वादन करते हैं, इसलिये वह हमें अल्प मात्रामें ही मिल पाता है। वस्तुतः सुख अल्पमें नहीं, प्रचुरतामें है अर्थात् व्यष्टि (अकेले) में नहीं, समष्टि (समूह) में है। यही ब्रह्मका व्यापक विराट् रूप है, इसे ही विशेषरूपसे जिज्ञास्य कहा गया है 'भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः' इस भूमानामधारी सुखपुञ्जको जान लेनेपर ही ब्रह्मसम्बन्धी जिज्ञासा पूरी होती है। भूमा ब्रह्म सुखपूर्ण है, उसकी ही साकार कल्पना यह जगत् भी सुखपूर्ण है; इस सुखपूर्ण जगत्से पूर्ण सुखको समेटकर गठरी बाँध लेनेपर पूर्ण सुख ही पल्ले पड़ता है। ऐसी वैदिक ऋषियोंकी सुख-सम्बन्धी धारणा है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

इस पूर्णताको प्राप्त कर लेनेके बाद ही मनुष्यकी भेद-बुद्धि समाप्त हो जाती है। हमारा बौद्धिक दृष्टिकोण ही तो भिन्नता और अभिन्नता करानेवाला है, हमारी दृष्टिमें सुखसे भिन्न संसारमें कोई दूसरी वस्तु नहीं है तो हम सुखी-ही-सुखी हैं। केवल दृष्टिमात्रसे सुख नहीं मिलता। अपनी सुखानुभूतियोंको सभीकी सुखानुभूतियोंमें मिला देनेपर ही सुख प्राप्त हो सकता है। हमें जिन वस्तुओंसे सुख या दुःख मिलता है, वैसे ही अन्योको भी मिलता होगा, ऐसा समझते हुए ऐसा व्यवहार करना होगा कि अन्योकी सुख-सुविधा हमारे द्वारा भंग न हो, सभी हमारे समान सुख-सुविधाओंसे जीवन-यापन कर सकें। ऐसा करनेपर संसारकी सारी द्विविधाएँ—विपरीतताएँ अपने-आप समाप्त हो जायँगी, फिर सुख-ही-सुख है। इस व्यवहारमें व्यक्ति किसीको दूसरा नहीं देखता, किसीको दूसरे रूपमें नहीं सुनना चाहता और न किसीको अपनेसे भिन्न मानता है। वही भूमाका रूप है—'यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद् विजानाति सैव भूमा' इसीके लिये हम निश्चिन्त होकर कह सकते हैं कि 'हम सब इसी एकके हैं।'

नन्दका अर्थ भी सुख ही किया गया है, वही इस गो अर्थात् पृथिवीके कुल अर्थात् समूहमें व्याप्त है। उस बिखरे हुए नन्दका संग्रहीत रूप आनन्द है—(आ समन्तात् नन्दयति इति आनन्दः) यही उस व्यापक विराट् ब्रह्म श्री-कृष्णका वास्तविक रूप है। नन्दके गोकुलमें उस आनन्दकन्दके अवतारका एकमात्र प्रयोजन है; सम्यक् दृष्टिवाले साधु

व्यक्तियोंकी रक्षा करते हुए, विभिन्न दृष्टिवाले दुष्टोंका संहारकर, आनन्दधर्मकी जन-जनमें स्थापना करना। शास्त्र का यही दृष्टान्त है।

समत्वयोगसे ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। इस आनन्दके दो निवासस्थल हैं। एक दृष्टि और दूसरा मन। विशिष्ट सुखस्वरूप ब्रह्मके ये ही दो निवासस्थान बतलाये गये हैं। इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि हम उदार-दृष्टि और उदार-मानस हों; यही हमारी ब्रह्मभावकी प्राप्ति है। उदार-दृष्टिकोण और उदार-मानस व्यक्ति अपनेको ब्रह्मके समकक्ष पहुँचाकर ब्रह्मका-सा सुख प्राप्त कर सकता है। ऐसे व्यक्तिके लिये ही किन्हीं अंशोंतक 'अहं ब्रह्मास्मि' की बात संगत हो सकती है।

मैं भी संसारकी एक इकाई हूँ; इसलिये बिखरे हुए आनन्दका एक अंशमात्र ही हूँ। सारी इकाइयोंको अपने सुखसे मिलाकर ही आनन्द-रसका रसास्वादन कर आनन्दी हो सकता हूँ; आनन्द नहीं। इकाइयोंकी पूर्णता शून्यके संयोगसे ही है। सारी इकाइयोंके सुख जब एक परिधिमें संगठित होंगे, तभी उनका पूर्ण शून्यात्मक रूप होगा। आनन्द विमु और व्यापक है; मैं अणुरूप एकांशमात्र हूँ, अतः मुझे 'अहं ब्रह्मास्मि' कहनेका अधिकार प्राप्त नहीं। मैं अंशोंका संग्रह करके एक ऐसा नुक्तिका मोदक भोग लगाकर गणेश हो सकता हूँ; जिससे मुझे मुद और मङ्गल प्राप्त हों तथा ऋद्धि और सिद्धियाँ मेरे चारों ओर मण्डलाकार होकर मुझे पूर्ण करती रहें। श्रवण, ग्राहक और पाचन शक्तिके द्योतक गणेशके बृहत् कान, सूँड़ और उदर हैं। यदि गणेश बननेकी कामना है तो सभीके सुख-दुःखोंको विशाल कानोंसे सुनें; सभीके सुख-दुःखोंको बड़ी दूरसे सूँघें तथा उनको उदरस्थ करके पचानेकी सामर्थ्य उत्पन्न करें। यह सामर्थ्य समत्वयोगकी साधना करनेपर ही आनन्दरूपकी प्राप्तिमें हो सकती है।

आनन्दमय ब्रह्म ऊपरसे नीचेतक आनन्दरससे परिपूर्ण है; उसका वास्तविक रूप हंसके समान समुज्ज्वल विवेक-पूर्ण है। प्रेम उसका शिरःस्थानीय; मोद अर्थात् विषयभोग-जन्य सुख दाहिना पंख; प्रमोद अर्थात् विवेकजन्य सुख बाँया पंख तथा आनन्द आत्मा एवं पूँछमें ही उसकी प्रतिष्ठा (आधार) है।

तस्य प्रियमेव शिरः, मोदो दक्षिणपक्षः, प्रमोदो उत्तरपक्षः, आनन्द आत्मा, ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा ॥

ऐसे आनन्दमय हंसकी आधाररूप पूँछको पकड़कर ही हम जगत्में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं। पूँछमें आनन्दकी क्रियात्मकता है। क्रियात्मक आनन्द ही जगत्में प्रतिष्ठाका आधार है। इस परमहंसके पीछे चलकर ही हममें हंस होनेके लक्षण प्रकट हो सकते हैं। यह वह प्रेमानन्दमय रस है, जिसमें सारा विश्व ओत-प्रोत है 'रसो वै सः'। इसको पीकर ही हम भी आनन्दी होते हैं 'रसः प्लेवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।' यही प्रेमानन्दमय समुज्ज्वल रस जिज्ञास्य और प्राप्य है। आनन्दी जीवकी रसानुभूतिको लक्ष्य करके ही विश्वनाथ पञ्चानन साहित्यदर्पणमें 'ब्रह्मानन्दसहोदरः' कहते हैं अर्थात् परिपूर्ण रसस्वरूप ब्रह्मानन्द जीवकी रसानुभूतिमें उदरस्थ है। यही सिद्धान्तरूपमें सत्य, शिव और सुन्दर है। प्रेम इसकी सत्यता; आनन्द इसकी शिवता तथा मोद और प्रमोद इसकी सुन्दरता है। विना मोदरूपी दाहिने पंखके यह हंस उड़ नहीं सकता। प्रेमके आधार संसारके स्त्री, धन, पशु, पक्षी आदि विषय ही हैं। इनमें ही सुख प्राप्त करना और कराना मोद है। विवेकपूर्ण मोद ही प्रमोद है, जो कि समत्वयोगसे मोदके संग्रहसे मङ्गलमय प्रमोद होता है। ये दोनों पक्ष ही कल्याणमय शिव तथा आनन्दमय सत्यस्वरूप प्रेमकी प्राप्ति करा सकते हैं। मोदमें शिवकी, प्रमोदमें सत्यकी स्थिति है। हमें तो सत्य, शिव, सुन्दर त्रिभंगी रूपको ही जानना है, जिसमें जीव, जगत् और माया तीनोंका भेद भंग होकर एकमात्र आनन्द हो जाता है। यही आनन्दकन्दका आस्वाद है।

हमारे भय आदिके कारण हमारे ही द्विविधात्मक विचार और व्यवहार ही हैं। हम सब 'मैं-मेरे और तू-तेरे' से भयभीत हैं। 'द्वितीयाद् वै भयं भवति' दोसे ही भय होता है; यह स्वाभाविक सिद्धान्त है। 'अहं ब्रह्मास्मि' में भी अहंकारके द्योतक स्थूल और सूक्ष्म अहं और अस्मि ब्रह्मके आगे-पीछे लगे हुए हैं; इसीलिये 'अहं ब्रह्मास्मि' कहनेवाले अभिमानी भी भयभीत हैं—'तत्त्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य' श्रुतिने यह बात स्पष्ट कर दी है। ये अभिमानी विद्वान् अभिन्नतासे कोसों दूर पड़े हैं। अभिन्न तो वे ही हैं जो प्रेमानन्द-रसमें निमग्न हैं; रसिक भावुक भक्तोंकी किसी भी भय नहीं। वे ही सही अर्थोंमें विद्वान् हैं।

हम सब परमानन्द-रसको पीनेकी चेष्टा नहीं करते

इसीलिये द्वैत-अद्वैतके पन्चडेमें पड़े हुए त्रिशंकुके समान उलटे लटके हुए हैं। प्रेमानन्दमय समुज्ज्वल हंसमार्गके अनुसरणमें ही हमारे व्यावहारिक जीवनका सामंजस्य हो सकता है। यही व्यावहारिक परमार्थ है। ब्रह्मने सारी सृष्टि आनन्दमय लीलाके लिये की है, अतः हम उस लीलाके साधनमात्र होकर लीलाका आनन्द पा सकते हैं। इस

प्रेममयी लीलामें सब दो होकर भी एक और एक होते हुए भी अनेक अर्थात् भिन्न-भिन्न हैं; क्योंकि चक्राकार पूर्ण रहस्य लीलामें सबके बीचमें आनन्दमय कुण्डला साहचर्य है। इस आनन्दमयकी लीलाका चक्र सनातन है, इस चक्रके प्रवर्तनमें ही धर्मकी पूर्ण स्थिति है। अतः 'यतो धर्मचक्रस्ततो जयः'।

ग्रह-शान्ति

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

'मनुष्य अपने कर्मका फल तो भोगेगा ही। हम केवल निमित्त हैं उसके कर्म-भोगके और उसमें हमारे लिये विन्न होनेकी कोई बात नहीं है।' आकाशमें नहीं, देवलोकमें ग्रहोंके अधिदेवता एकत्र हुए थे। आकाशमें केवल आठ ग्रह एकत्र हो सकते हैं। राहु और केतु एक शरीरके ही दो भाग हैं और दोनों अमर हैं। वे एकत्र होकर पुनः एक न हो जायँ, इसलिये सृष्टिकर्ताने उन्हें समानान्तर स्थापित करके समान गति दे दी है। आधिदैवत जगत्में भी ग्रह आठ ही एकत्र होते हैं। सिररहित कवन्ध केतुकी वाणी अपने मुख राहुसे ही व्यक्त होती है।

'मनुष्य प्रमत्त हो गया है इन दिनों। अतः उसे अपने अपकर्मोंका फल भोगना चाहिये।' शनिदेव कुपित हैं, भूतल-पर मनुकी संतति जब उनके पिता भगवान् भास्करकी उपेक्षा करने लगती है, मनुष्य जब संध्या तथा सूर्योपस्थानसे विमुख होकर नारायणसे पराङ्मुख होता है, शनि कुपित होते हैं। यह उनका स्वभाव है। सूर्य भगवान् के अतिरिक्त वे केवल देवगुरुका ही किञ्चित् संकोच करते हैं।

'कलिका कुप्रभाव मनुष्योंको श्रद्धा-विमुख बनाता है।' बृहस्पति स्वभावसे दयालु हैं। उन्हें यह सोचकर ही खेद होता है कि धरा जो रत्नगर्भा है, अब अकालपीडिता, संघर्षसंवेस्ता, रोग-पीडिता होकर उत्तरोत्तर अभाव-ग्रस्त होती जायगी। विश्वसृष्टाकी महत्तम कृति मानव अब क्षुत्क्षाम, कंकाल-कलेवर, अशान्त भटकता फिरेगा।

'हम कर क्या सकते हैं?' बुध जो बुद्धिके प्रेरक हैं,

प्रसन्न नहीं थे। उनके स्वरमें भी खेद था—'हम शक्ति और प्रेरणा दे सकते हैं, किंतु मनुष्य आजकल ऐसी समस्त प्रेरणाओंको विकृत बना रहा है। वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंके दुरुपयोगपर उतर आया है।'

'देवताओंका मनुष्य अर्चन करे। उन्हें अपने यज्ञीय भागसे पुष्ट करे और देवता मनुष्योंको सुसम्पन्न, स्वस्थ, सुमङ्गलयोजित रखें, यह विश्रान ब्रह्माजीने बनाया था।' अकस्मात् ही देवराज इन्द्र आ गये थे उस सभामें। वे वज्रपाणि रुष्ट थे—'मनुष्यने यज्ञका त्याग कर दिया। पितृ-तर्पणसे उसने मुख मोड़ लिया। अब वह कुछ हवन-श्राद्ध करता भी है तो स्वार्थ-कलुषित होता है वह। सम्यक् विधि न सही, अल्पप्राण, अल्पशिक्षित नरका अज्ञान क्षमा किया जा सकता है; किंतु जब उसमें सम्यक् श्रद्धा भी न हो, जब वह दान तथा पूजनके नामपर भी स्वजन, सेवक तथा अपने स्वार्थके पूर्ति-कर्ताओंका ही सत्कार करना चाहे, उसके कर्म सत्कर्म कहाँ बनते हैं?'

'देवता और पितर हव्य-कव्यकी अप्राप्तिसं स्वतः दुर्बल हो रहे हैं।' देवराजने दो क्षण रुककर कहा। 'हमारे आशीर्वादकी मनुष्यको अपेक्षा नहीं रही है। वह अपने बुद्धिबलसे ही सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहता है। अतः आप सबका यह योग यदि धरापर आपत्तियोंका क्रम प्रारम्भ करता है तो इसमें न आपका दोष है और न देवताओंका।'

'युद्ध, अकाल, महामारी—बहुत दीर्घकालतक चलेगा यह प्रभाव।' सुरगुरुने दयापूर्वक कहा। 'अल्पप्राण आज-

का अवोध मनुष्य आपकी कृपाका अधिकारी है। कलिके कल्मसे दलित प्राणी आपके कोपके योग्य नहीं।'

'मैं कोई आदेश देने नहीं आया। आप सब यदि आपकी अर्चा धरापर हो अथवा आप कृपा करना चाहें, अपने कुप्रभावको सीमित कर सकते हैं।' देवराजने कहा। 'वैसे विपत्ति विश्वनियन्ताका वरदान है मनुष्यके लिये। उसे वह प्रमादसे सावधान करके श्रीहरिके सम्मुख करती है। मनुष्य भगवान्‌के अभिमुख हो, यही उसकी सबसे बड़ी सेवा है।'

'आप चाहते हैं कि मनुष्य भोगविवर्जित रहे? संगीत, कला, विनोद तथा विलास केवल सुरोंका स्वत्व बना रहे?' शुकाचार्यने व्यंग किया।

'मैं आचार्यसे विवाद नहीं करूँगा। वैसे वैभव देकर मनुष्यको विप्रयन्मुख कर देना उसका अहित करना है, यह मैं मानता हूँ। मनुष्य तो आज वैसे ही बहिर्मुख हो रहा है।' देवराजने अपनी बात समाप्त कर दी। 'मैं केवल एक प्रार्थना करने आया था। ब्रह्मावर्तके उस तरुणकी चर्चा अनेक बार आपने देवसभामें सुनी है। देवताओं, पितरोंकी ही नहीं, आप सबकी (ग्रहोंकी) वह सत्ता मानता है, शक्ति मानता है और फिर भी सबकी उपेक्षा करता है। उसे विशेष रूपसे आप ध्यानमें रखेंगे।'

'जो आस्थाहीन हैं, उनपर दया की जा सकती है। वे अज्ञ अभी समझते ही नहीं; किंतु जो जानता है, आस्था रखता है, वह उपेक्षा करे—मैं देख लूँगा उसे।' क्रूर ग्रह मङ्गलके सहज अरुण नेत्र अंगार बन गये।

'वह आश्रम-वर्णविवर्जित एकाकी मानव लगता है कि देवराजके लिये आतङ्क बन गया है।' शुकाचार्यने फिर व्यंग किया। 'किंतु वह न तपस्वी है और न शतक्रतु बननेकी सामर्थ्य है उसमें। धर्माचरणके कठोर नियमोंकी उपेक्षाके समान ही वह अपने स्वलतोंको भी महत्व तो देता नहीं। ऐसी अवस्थामें उसका देवराज विगाड़ भी क्या सकते हैं? कुसुमधन्वाकी वहाँ विजयका कोई अर्थ नहीं। वह इच्छा करे तो आज अमरावती उसकी होगी, यह आशंका हो गयी लगती है। अतः उसे संवस्त करनेको अब हम सब ग्रहगण इन्द्रकी आज्ञाके आधार बने हैं।'

× × ×

'वत्स! तुम्हें विशेष सावधान रहना है इन आगे आने-वाले महीनोंमें।' अमलने ब्रह्मावर्तमें गङ्गा-स्नान करके

नित्यार्चन किया और जाकर जब ब्रह्माजीके मन्दिरमें ठहरे उन साधुको प्रणाम करके बैठ गया तो वे बोले—'अष्टग्रहीका योग तुम्हारे व्ययस्थानमें पड़ता है। वैसे भी शनि, मङ्गल तथा सूर्य तुम्हारे लिये अनिष्टकर रहे हैं और राहु-केतु किसी-को कदाचित् ही शुभद होते हैं। तुम ग्रह-शान्तिका कुछ उपाय कर लो तो अच्छा।'

'आप जैसी आज्ञा करें।' अमलने प्रतिवाद नहीं किया। वे साधु वृद्ध हैं, विरक्त हैं, पर्यटनशील हैं। ज्योतिषके उत्कृष्ट ज्ञाता लोग इन्हें कहते हैं। बिना पूछे अकारण कृपाछ हुए हैं अमलपर; अतः इनके वचन काटकर इन्हें दुखी करना वह चाहता नहीं। वैसे कोई जप-तप, अनुष्ठान-पाठ करना अमलके स्वभावमें नहीं है। सकाम अनुष्ठान-के नामसे ही चिढ़ है उसे।

'जिसे रूष्ट होकर जो कुछ बिगाड़ना हो, बिना रूष्ट हुए ही वह उसे ले ले।' अमल अनेक बार हँसीमें कहता है। परिवारमें कोई है नहीं। न धर है, न सम्पत्ति। सम्मान अवश्य है समाजमें; किंतु वह उससे सर्वथा उदासीन है। बच रहा शरीर। वह कहता है—'यह कुत्ते, शृगाल, पक्षियों, कछुओं अथवा कीड़ोंका आहार—इसे अग्नि लेगी या कोई और लेगा, इसकी चिन्ता मूर्खता है। कल जाना हो इसे तो आज चला जाय।'

'मृत्यु उतनी दारुण नहीं है, जितने दारुण हैं रोग। शरीर देखने, सुनने, चलनेकी शक्तिसे रहित, वेदना-व्याकुल खाटपर पड़ा सड़ता रहे...' एक दिन एक मित्रने कहा था।

'कन्हाई न असमर्थ होता कभी, न निष्करण। उसके स्वभावमें नटखटपन तो है; किंतु कृपणता नहीं है।' अमल हँसा था। 'ये सारे अभाव, सारे कष्ट तबतक, जबतक इनको प्रसन्नतासे सहा जाय। ये असह्य बनेंगे तो श्रीकृष्ण डाँट खायेंगे। इनको विवश सहना पड़े उसे, जो नन्दके लालका कोई न होता हो।'

'मैंने सुना है कि तुम अनुष्ठानमें अरुचि रखते हो। ग्रहोंमें सबसे उत्पीडक शनि ही हैं। तुम नील, मणि धारण करो। उससे राहु-केतुकी भी शान्ति हो जायगी। शनि अनुकूल हों तो शेष सबके अरिष्ट अधिक अनर्थ नहीं करते।' साधुने समझाकर कहा।

'जैसी आपकी आज्ञा।' आश्चर्य ही है कि अमलने कोई आपत्ति नहीं उठायी। वैसे उसे कोई जप-तप बतावे

संख्या ९.]

तो कह बैठता है—'व्यायाम मेरे बशका नहीं। बाजीगरों—
नटों और मल्लोंके लिये मैंने उसे छोड़ दिया है।'

X X X

अष्टग्रहीका योग आ रहा था। गङ्गातट अनुष्ठानों, ब्रह्मोंके मण्डपोंसे सजा था। शतचण्डी, सहस्रचण्डी तथा श्रीमद्भागवतके सप्ताह चल रहे थे स्थान-स्थानपर। अष्टोत्तर-शत सप्ताह भी हुए। अखण्ड कीर्तन, अखण्ड रामायण-पाठके पवित्र स्वर दिशाओंको उन दिनों गुञ्जित करते रहते थे। कलमें जैसे सत्ययुग उतर आया था। आतङ्क स्वयं तामस सही, उसमें मनुष्यको कितनी सत्त्वोन्मुख करनेकी शक्ति है, उस समय यह प्रत्यक्ष हो गया था।

'गं गणपतये नमः।' सर्वविघ्नविनाशक भगवान् गणपति-की पूजा तो प्रत्येक पूजन, यज्ञ, अनुष्ठानके प्रारम्भमें होनी ही थी। सभी पाठ-पारायण मण्डपोंमें पार्वती-नन्दनकी प्रतिष्ठा, पूजा हुई—हो रही थी।

'मं मङ्गलाय भौमाय भूमिसुताय नमः।' युद्धप्रिय, रक्तविकारकारी, रक्तोद्गारी अंगारककी शान्तिके लिये रक्त वस्त्र, रक्त चन्दन, लाल पुष्पका सम्भार तो था ही, लाल-गाय, ताम्र तथा मसूरका दान भी अनेक लोगोंने किया। बहुतोंने मूँगा पहना।

'शं शनिश्चराय सूर्यसुताय यमानुजाय नमः।' तैल और लोहेका दान तो शनिवारको अनेक लोग नियमपूर्वक करते हैं। उस समय काले तिल, उड़द, काले अथवा नीले वस्त्रोंका दान बहुत लोगोंने किया। अनेक ग्रह-शान्ति-समारोहोंमें अपराजिताके पुष्प अर्चनमें प्रयुक्त हुए। हाथी-दान किसीने किया या नहीं, पता नहीं; किंतु भैंसका दान सुननेमें आया। जौहरियोंके यहाँ उन दिनों नीलमके ग्राहक भी पर्याप्त आये।

राहु-केतुकी शान्तिके लिये भी मन्त्र-जप हुए। काली वस्तुओंका दान हुआ। वैदूर्य (लहसनियाँ) की अँगूठियाँ पहनीं लोगोंने। इनके अतिरिक्त भगवान् सूर्यकी भी अर्चा हुई। 'आं आदित्याय नमः' पर्याप्त सुन पड़ा। सूर्यको रक्त कर्णिकार पुष्प तथा रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र अर्पित हुए। रविवारको लवणहीन एकाहार व्रत भी बहुतोंने किया। कमसे-कम एक स्थानपर लाल रंगके वृषभ (साँड़)को छोड़ा गया, यह मुझे पता है। लाल मणि तो मिलती नहीं। माणिक उन लोगोंने अँगूठियोंमें लगाया, जिन्हें सूर्य प्रतिकूल पड़ते थे।

'मले मले कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जप-दान।'

यह बात उन दिनों सर्वथा सार्थक हुई। जहाँ नवग्रह-पूजन हुआ, उन स्थानोंको छोड़ दें तो चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्रकी अकेले-अकेले अर्चना प्रायः नहीं हुई। एक जौहरीने बतलाया था—'सामान्य समयमें अनेक लोग चन्द्रमाकी संतुष्टिके लिये मोती, बुधके लिये पन्ना, गुरुके लिये पुखराज और शुक्रके लिये हीरा लेने आते थे; किंतु इस कालमें इन रत्नोंका विक्रय अत्यल्प हुआ। लोग जैसे इनका उपयोग ही भूल गये।'

ब्राह्मणोंको भी श्वेत, पीत, हरित, धान्य, वस्त्रादि केवल नवग्रह-पूजन-जैसे अवसरोंपर ही प्राप्त हुए।

'तुम्हें नीलम नहीं मिला कानपुरमें?' ऐसे समयमें अमलको अँगूठीरहित देखकर उन साधुने एक दिन पूछ लिया। वैसे भी उत्तम नीलम कठिनाईसे मिलता है और अष्टग्रहीके दिनोंमें कानपुर-जैसे महानगरमें भी उसका न मिलना कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी।

'नीलम? आपने तो मुझे नीलमणि धारण करनेको कहा था। मैं कानपुर तो गया ही नहीं।' अमलने सहज भावसे कहा। 'नीलम तो रत्न है—पत्थर है। वह मणि तो है नहीं। विश्वमें आज मणि—स्वतःप्रकाश रत्न कहीं मिलता नहीं। केवल रत्न हैं जो दूसरे प्रकाशमें चमकते हैं। वैसे भी मैं पत्थरोंमें नहीं, प्रकाशपुञ्जमें आस्था रखता हूँ। इस नश्वर शरीरको सज्जित करनेकी अपेक्षा मैंने हृदयको यशोदा मैयाके लाड़ले नीलमणिसे अलंकृत करना अच्छा माना। आपका तात्पर्य समझनेमें मैंने भूल तो नहीं की?'

'भूल तो मैं कर रहा था—'साधुने अमलको दोनों भुजाओंमें भर लिया। 'तुम्हारा उपाय तो भव-महाग्रहको शान्त कर देनेमें समर्थ है। क्षुद्र ग्रहोंकी शान्तिका अर्थ तब क्या रह जाता है!'

X X X

'आप सब एक क्षुद्र मनुष्यका भी कुछ नहीं कर सके?' अष्टग्रहीको बीते पृथ्वीपर पूरे लः महीने हो चुके थे। देवलोकमें वे पुनः एकत्र हुए थे देवराजके आमन्त्रण-पर। देवराजको कोई आक्रोश इसपर नहीं था कि पृथ्वीपर कोई महाविनाश नहीं हुआ। जो यज्ञ, अनुष्ठान, दान मनुष्योंने किये थे, उसे प्राप्तकर देवाधिप संतुष्ट हुए थे। उन्हें क्षोभ केवल यह था कि उन्होंने जिस व्यक्तिविशेषको लक्ष्य बनाया था, वह भी अप्रभावित ही रह गया था।'

‘किसीका अमङ्गल करना मेरा स्वभाव नहीं है। वक्र होनेपर भी मैं केवल व्यय करता हूँ और बृहस्पति अशुभ कर्मोंमें अर्थ-व्यय तो करायेगा नहीं।’ देवगुरुने इन्द्रको झिड़क दिया। ‘वक्की होकर भी जो मैं नहीं करता, व्यय-स्थानमें स्थित होकर मैंने वह किया है। अमलने अपने छोटेमे संप्रहका प्रायः सब कुछ दुखियों, दीनों, अभावग्रस्तों-को दे दिया है।’

‘व्ययस्थानपर स्थित बुध जब गुरुके साथ हो, केवल सुरुगुरुकी सहायता कर सकता है।’ आकारसे कुछ टिंगने, गठीले और गोल मुखवाले बुधने कहा—‘देवराज सहस्राक्ष हैं। उन्होंने देखा है कि इसमें मैंने कोई प्रमाद नहीं किया है।’

‘आप दोनोंसे पहले भी अधिक आशा नहीं थी।’ देवेन्द्रने उलाहना दिया। ‘आपने तो उस प्रतिपक्षको प्रबल ही बनाया। दान और धर्म व्यक्तिको दुर्बल तो बनाया नहीं करते। संसारमें कोई कंगाल हो जाय, इससे हम देवताओं-का क्या लाभ?’

सुरेन्द्र भूलते हैं कि ‘अम्भोधिसम्भवा बुधकी भी कुछ होती है।’ आचार्य शुक्र व्यंगप्रवीण हैं। उनका स्वभाव सुरोंपर कटाक्ष करना है—‘बुध उसके प्रतिकूल हो कैसे सकते हैं, जो श्रीके परम श्रेयका आश्रित हो।’

‘आपने भी तो कुछ किया नहीं।’ इन्द्रके मुखसे सहज निकल गया।

‘शुक्रसे सुर स्वहितकी आशा कबसे करने लगे?’ दैत्याचार्यने फिर कटाक्ष किया। ‘द्वादश भवनमें स्थित शुक्र शुभ होता है शक्र! सूर्यके साथ मेरा प्रभाव अस्त न हो गया होता, श्रीकृष्णके उस आश्रितको अमित ओज दे आता। मैंने उसकी श्रद्धा और संयमको शक्ति नहीं दी, उसे आनन्दोपलब्धिका शुभ मार्ग नहीं दिखलाया, यह आक्षेप मेरे प्रतिस्पर्धी बृहस्पति भी मुझपर नहीं कर सकते।’

‘श्रीकृष्णने मेरे वंशको कृतकृत्य किया, धन्य किया मुझे।’ नित्य सौम्य अत्रितनय चन्द्रमा उठ खड़े हुए। ‘वैसे भी रमाके नाते वे मेरे पूजनीय स्वजन हैं। उनका कोई आश्रय लेता हो—मेरी अनुकूलता-प्राप्तिके लिये उसे क्या और कुछ करना आवश्यक रह जाता है? उसके लिये यह विचार व्यर्थ है कि चन्द्र अष्टम है अथवा द्वादश। उसे तो मेरा सदा आशीर्वाद प्राप्त है।’

‘हम दोनों तुम्हारे मित्र नहीं हैं।’ राहुने रुख स्वरमें बिना संकेत पाये ही बोलना प्रारम्भ किया। ‘वैसे भी हमारे साहसकी सीमा है। जिसके चक्रका आतङ्क अब भी हमें विह्वल करता है, उसके आश्रितपर हमारी छाया अनिष्ट बनकर नहीं उतर सकती। हम उसका रोप नहीं—कमसे-कम उदासीनता तो पा सकते हैं अनुकूल बनकर। उसकी श्रद्धा-पूजाका स्वप्न हम नहीं देखते।’

‘मैंने सुरेन्द्रकी आज्ञाका सम्मान किया है।’ युद्धके अधिष्ठाता मङ्गल उठे। रक्तारुण वस्त्र, विद्रुममाल उन ताम्रकेशीके अंगारानेत्र इस समय शान्त थे—‘अमलको ज्वर आया, थोड़ी चोट लगी और रोप आया। अब मैं इसका क्या करूँ कि वह अपना क्रोध श्रीकृष्णपर ही व्यक्त करता है। वे मेरे पूज्य पिता हैं। अपनी माता भूदेवीके उन आराध्यपर जब उनका कोई स्नेह-भाजन रुष्ट होता है, भौम इतना अशिष्ट नहीं है कि वहाँ उपद्रव करता रहे। फलतः विजयका नीरव वरदान तो मुझे अपनी धृष्टताका मार्जन करनेके लिये देना पड़ा। अमलने उसे मनोजयमें प्रयुक्त किया, शत्रुजयमें भी कर सकता था और सुरेन्द्र! इस समय आप उसके शत्रु हैं, यह आप भूले नहीं होंगे।’

‘श्रीकृष्ण मेरे स्नेहभाजन हैं।’ भगवान् सूर्यने बड़े मृदुल स्वरमें कहा। ‘महेन्द्र उनके किसी जनका अनिष्ट चाहेंगे तो यह चिन्तन स्वयं उन्हें भारी पड़ेगा। स्वर्गका सम्मान मुझे अपनी पुत्री कालिन्दीसे अधिक प्रिय नहीं है।’

‘न मुझे है।’ इस बार कृष्णवर्ण, निम्ननेत्र, भयानक-कृति शनैश्चर खड़े हुए। ‘यमसे मेरा इस त्रिपयमें सर्वथा मतैक्य है। यमुना मुझे यमसे कम प्रिय नहीं है। कालिन्दी-कान्त जिसके स्वजन हैं, उसका अपकार न यम करेंगे और न शनैश्चर। मैंने स्वर्गकी ओर दृष्टि नहीं उठायी—यही मेरा कम अनुग्रह नहीं है।’

‘सुरेन्द्र! तुमसे मेरे शिष्य दैत्य-दानव अधिक बुद्धिमान हैं।’ शुक्राचार्य फिर बोले। ‘श्रीकृष्णको जो भूलसे भी अपना कहता है, उसकी ओर वे देखते ही नहीं और तुम आशा करते हो कि ग्रह उसे उत्पीड़ित करेंगे? सम्यक् ग्रह-शान्ति—सबकी सर्वानुकूलता श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें रहती है देवाधिप!’

इन्द्रने मस्तक झुका लिया था।

कामके पत्र

(१)

तेरह मुख्य साधन

सप्रेम हरिस्मरण । तुम्हारे बहुत-से पत्र इकट्ठे हो गये । कल फोनपर भी बात हुई । इधर मैं पत्र नहीं लिख सका, तो कोई विचार न करना । मनुष्यको नीचे लिखी बातोंका निरन्तर ध्यान रखना चाहिये ।

१-भगवान्का स्मरण नित्य-निरन्तर बना रहे ।

२-भगवान्के गुणोंका चिन्तन हो । संतोंके चरित्रका स्मरण हो, पर दूसरेके दोषोंका स्मरण-चिन्तन कभी न हो ।

३-भोगोंकी कामना तो हो ही नहीं । भोग मलवत् अथवा विषवत् अप्रिय लगें ।

४-दूसरेकी उन्नति देखकर चित्तमें प्रसन्नता हो और दूसरेको दुखी देखकर करुणा हो ।

५-मान-वड़ाईकी चाह न हो । मरनेके बाद भी लोग मुझे अच्छा कहें, इस तरहकी इच्छा न रहे ।

६-दूसरेके अधिकारकी रक्षा करनेका प्रयत्न किया जाय । अपने अधिकारको छोड़ दिया जाय ।

७-अपने शारीरिक आरामके लिये कंजुस बने और दूसरोंका दुःख दूर करनेके लिये उदार बने ।

८-अपने लिये न्यायसे अधिक प्राप्त करनेकी इच्छा न हो, दूसरेको उदारतापूर्वक दिया जाय ।

९-बारंबार अपने दोष देखे जायँ और उन्हें निकालनेकी भरपूर चेष्टा की जाय ।

१०-भगवान्की कृपाका आश्रय सदा-सर्वदा बना रहे ।

११-केवल भगवान् ही मेरे हैं और मैं केवल भगवान्का ही हूँ—इस प्रकार भगवान्को ही एकमात्र ममतास्पद माने और अपनेको केवल भगवान्की ही वस्तु माने ।

१२-जहाँतक बने, जीभके द्वारा निरन्तर नामका जप होता रहे ।

१३-इन्द्रियोंको और मनको विषयोंसे रोककर निरन्तर भगवान्में लगाये रखनेका प्रयत्न हो ।

सि० ५—

तुम्हारे सारे प्रश्नोंका उत्तर ऊपरकी १३ बातोंमें आ गया । उन्हें जीवनमें उतारनेकी चेष्टा करनी चाहिये ।

(२)

शान्तिलाभका उपाय

सप्रेम हरिस्मरण । आपका कृपापत्र मिला । उत्तरमें निवेदन है कि भगवान् जीवमात्रके परम सुहृद् हैं—‘सुहृदं सर्वभूतानाम्’ उनकी वाणी है । अतएव हम चाहे कैसे भी हों, भगवान् तो हमारे सुहृद् हैं ही । अवश्य ही भगवान्के सौहार्दका अनुभव विभिन्न प्रकारसे होता है और विभिन्न प्रकारसे ही भगवान् हमारा भला करते हैं । कहीं मीठी दवा दी जाती है, कहीं कड़वी । कहीं मामूली लेप लगानेसे काम हो जाता है और कहीं अङ्ग चीरना पड़ता है । दोनोंमें ही हित और कल्याण भरा हुआ है । इसलिये सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ सर्वथा निर्भ्रान्त सर्वलोकमहेश्वर भगवान्को अपना सुहृद् मानना चाहिये और इतने बड़े होकर जब हम-सरीखे नगण्यके वे सहज सुहृद् हैं, तो कृतज्ञताके नाते उनके अनुकूल हमारे विचार और कार्य भी होने चाहिये । भगवान् ने तो कहा है कि ‘मुझे सुहृद् जान लेनेपर ही शान्ति मिल जायगी—‘ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।’ पर उन्हें सुहृद् जान लेनेपर उनके प्रतिकूल जीवन रहे, वह सम्भव नहीं । आप उन्हें सुहृद् मानिये और शान्ति-लाभ कीजिये । शान्ति प्राप्त करनेका सबसे सीधा उपाय यही है । दूसरा उपाय है—कामना, स्पृहा, ममता और अहंतासे सर्वथा रहित हो जाना ।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।

निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

(गीता २ । ७१)

शेष भगवत्कृपा ।

(३)

भगवान्का प्रत्येक विधान मङ्गलमय

सप्रेम हरिस्मरण । आपका पत्र मिला । उत्तर कुछ देर-से जा रहा है, सो क्षमा कीजियेगा । आपने अपनी जो परिस्थिति लिखी, वह जागतिक दृष्टिसे अवश्य ही बड़ी

दुःखप्रद है, परंतु यहाँ जो कुछ भी परिणामरूपमें परिस्थितियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब हमारे परिणाममें मङ्गलके लिये पूर्वकर्मानुसार श्रीभगवान्‌के द्वारा निर्मित होती हैं। जैसे आपरेशन करवानेपर शरीरका विपरहित होकर नीरोग हो जाना, मित्रके रूपमें घरमें बसे हुए चोरका नाश हो जाना, किसी छोटी वस्तुका नाश होकर उससे कहीं अधिक महत्त्वकी बहुत बड़ी वस्तुका प्राप्त हो जाना, ये जैसे हमारे लाभके लिये होते हैं, इसी प्रकार यहाँकी किसी अनुकूल मानी हुई परिस्थितिका नाश भी परिणाममें उससे कहीं अधिक महत्त्वकी अच्छी परिस्थितिकी प्राप्तिके लिये ही होता है। कर्मोंका फल देनेवाले भगवान् परम न्यायकारी होनेके साथ ही परम दयालु हैं और वे सबके सहज सुहृद् हैं। उनके द्वारा निर्मित कोई भी फल ऐसा नहीं हो सकता, जिसमें हमारा कल्याण न हो। फिर वे भगवान् सुहृद् होनेके साथ ही सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वश हैं और सर्वलोकमहेश्वर हैं। उनके द्वारा भूल नहीं हो सकती। ऐसी अवस्थामें किसी भी परिस्थितिको प्रतिकूल समझकर दुखी होना और अशान्त होना तो भगवान्‌के सौहार्दपर अविश्वास करना है। भगवान्‌ने साफ शब्दोंमें घोषित किया है—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

‘मैं सारे प्राणियोंका सुहृद् हूँ—इस बातको जानते ही शान्ति मिल जाती है।’ जाननेका अर्थ होता है विश्वास करना। वे सुहृद् तो हैं ही, रहेंगे ही। हमारा विश्वास न होनेसे ही हमें शान्ति नहीं मिलती। अतएव आपकी वर्तमान परिस्थिति निश्चय ही आपके भविष्यके मङ्गलके लिये है। मानो बड़ा सुन्दर भविष्य काली भयंकर नकाब डाले आपके सामने खड़ा है। नकाबके अंदरकी चीज सामने आते ही आप परम सुखी हो जायेंगे और विश्वास करनेपर तो अभी सुखी हो जायेंगे। भगवान्‌के मङ्गलविधानपर, उनकी नित्य अहैतुकी कृपापर विश्वास कीजिये। शेष भगवत्कृपा।

(४)

अपने विचार शुद्ध रखिये

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निम्नलिखित निवेदन है—दूसरे अपना कर्तव्यपालन करते हैं या नहीं अथवा कहाँतक करते हैं, हमें यह देखनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें तो इस बातपर ध्यान रखना है कि

हम अपने कर्तव्यका पालन कहाँतक कर रहे हैं और यदि उसमें कहीं त्रुटि हो तो उसे पूर्ण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इसीमें लाभ है।

जहाँतक बने, अपने मनको नित्य-निरन्तर सद्‌विचारोंसे भरे रखना चाहिये। सद्‌विचारोंका मनमें संग्रह होता रहे, इसलिये वर्तमान सत्पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये, सत्पुरुषोंके जीवन-प्रसंगोंको, उनके उपदेशोंको पढ़ना-सुनना चाहिये और सदाचारको समुन्नत करनेवाले ग्रन्थोंका स्वाभाव्य करना चाहिये। हमारे अंदर यदि सद्‌विचारोंका बहुत बड़ा संग्रह होगा और उसीमें वृत्तियाँ यदि लगी रहेंगी तो बाहरी वातावरणके दोषोंसे और असद्‌वृत्तियोंके प्रभावसे हम अधिकशतः बचे रहेंगे। हमारे अंदर उनका प्रवेश होना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य हो जायगा और साथ ही हमारे अंदर भरे हुए सद्‌विचारोंका जो स्वाभाविक ही बाहर निकास होगा, उससे वातावरणके दूषित प्रवृत्तियोंपर बड़ा शुभ प्रभाव पड़ेगा। वातावरण न्यूनतमिक अपनी प्रबलता और दुर्बलताके अनुपातसे शुद्ध होगा और यों स्वाभाविक ही लोकसेवा भी बनती रहेगी।

बात यह है कि प्रत्येक मनुष्यके अंदर अपने अच्छे-बुरे विचार होते हैं और वह जिस वायुमण्डलमें रहता है, उसमें भी अच्छे-बुरे विचार भरे रहते हैं। बाहरी वायुमण्डलके विचारोंका प्रभाव उस वायुमण्डलमें रहनेवाले व्यक्तिपर पड़ता है और उस व्यक्तिके अंदरके भाव-विचारोंका प्रभाव बाहर-के वायुमण्डलपर पड़ता है। यह आदान-प्रदान नित्य ही स्वाभाविक चलता रहता है। यदि अच्छे विचारवाला पुरुष भी दूषित वायुमण्डलमें पहुँच जाता है, तो उस दूषित वातावरणका प्रभाव (यदि उस पुरुषके अपने विचार-परमाणु बहुत अधिक और सबल नहीं होते तो उसकी सबलता-दुर्बलताके अनुपातसे) पड़ता है और उसके अंदर-से निकलनेवाले भाव-विचारोंके परमाणुओंका प्रभाव बाहरके विचार-परमाणुओंपर पड़ता है और यदि दोनों सजातीय हों तो एक-दूसरेके बलको बढ़ा देते हैं। जैसे कोई क्रोधी आदमी क्रोधपूर्ण वातावरणमें पहुँच जाय तो उसका क्रोध बढ़ जाता है और बाहरके वातावरणमें भी क्रोधके परमाणु अत्यन्त पुष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार अच्छे-बुरे विचार-परमाणुओंका परस्पर प्रभाव पड़ता है। अतएव मनुष्यको चाहिये कि जहाँतक हो सके, अपने अंदरको बहुत ही उच्च

संख्या ९]

श्रेणीके सद्भाव, सद्विचार और सद्बृत्तियोंसे भरे रखते । जहाँतक बने, दूषित वातावरणमें जाय ही नहीं । यदि कहीं जानेका काम पड़ जाय तो अपने विशुद्ध भाव-विचारोंके सबल परमाणुओंद्वारा बाहरके दूषित विचार-परमाणुओंको परास्त करता रहे सावधानीके साथ । इसमें उसका और स्वाभाविक ही वह जहाँ रहता है, उस वायुमण्डलमें रहनेवाले लोगोंका कल्याण होता है और जब अपने भाव-विचार अत्यन्त पवित्र हो जाते हैं, तब आस-पासका वायुमण्डल दूर-दूरतक इतना विशुद्ध हो जाता है कि वहाँ दुरे विचारोंके परमाणु प्रविष्ट ही नहीं हो सकते । कौएके शरीरमें रहनेवाले संत श्रीकाकभुशुंडिजीके आश्रममें इतनी विशुद्धि आ गयी थी कि जिस पर्वतपर उनका आश्रम था, उसके आस-पास

सारे संसारमें व्याप्त रहनेवाले मायारचित दोष-गुणोंका प्रवेश नहीं हो पाता था ।

मायाकृत गुण दोष अनेक । मोह मनोज आदि अविवेका ॥
रहे व्यापि समस्त जग माहीं । तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं ॥

वहाँ एक योजनतक अविद्याका प्रवेश नहीं हो सकता था—

व्यापिहि तहँ न अविद्या जोजन एक प्रजंत ।

अतएव जहाँतक बने, भगवान्की कृपाके अपरिमित बलका भरोसा रखते हुए भगवान्का स्मरण करते रहना और अपने हृदयमें भगवान्को प्रसन्न करनेवाले दैवी सद्विचारोंका निरन्तर अर्जन, संग्रह और संवर्द्धन करते रहना चाहिये । शेष भगवत्कृपा ।



उदात्त संगीत

[मनका सौदा]

(रचयिता—डॉ० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

(१)

(४)

किरणोंके पथसे अपना प्राणेश्वर आकर
कलियोंके उरमें चटकीला रँग भरता है ।
उस वंशीधरके रासचक्र आवर्तनमें
जड़-चेतनका कण-कणतक नर्तन करता है ॥

अकबर महान् हो यदि अपने ऐश्वर्योंमें
शंकराचार्यने यदि दिमाग आला पाया ।
तो मैं भी तो हूँ शहन्शाह अपने दिलका
मैं क्यों मानूँ मैं छोटा ही बनकर आया ॥

(२)

(५)

उस हृदय-देवताके इस सुन्दर जग तनुमें
होगी कुरूपता कहाँ, सभी रमणीय यहाँ ।
दुख भी सुखका उत्तेजक हो उर-मार्जक है
करुणाके सागरका कण भी स्पृहणीय यहाँ ॥

जीवन-वातीका तेल न गड़गेमें केवल,
वह फैला है रस-रूप गगनमें, जल-थलमें ।
जगमग रहता आया है उसके हाथ दिया
आवृत रहता निर्वाण कि जिसके अंचलमें ॥

(३)

(६)

जीवन-समुद्रमें हवा और पानी दोनों
रचते रहते हैं खेल अमिट निज रंगोंमें ।
बुलबुला किसी दिन मिटता हो तो भले मिटे
जबतक है तबतक खेले मस्त तरंगोंमें ॥

झड़ गया फूल, पर छोड़ गया वे वाग कि जो
फिर नये-नये फूलोंके साज सजाते हैं ।
मरना निवृत्ति, जीना प्रवृत्ति है जीवनकी
जो गये, नये रूपोंमें वे फिर आते हैं ॥

(७)

चिनगारी लाखों बर्नीं, बर्नीं, बिनसीं फिर-फिर
अविचल ही उनसे रहा, अनल तेजस आकर ।
यह रूप-विलास-विविधता ही जिसकी शोभा
वह ज्यों-का-त्यों है, रूप-विधाता नट-नागर ॥

(८)

तुम उस नट-नागरकी मुरलीकी तान अरे !
है सातों लोकों व्याप्त बुम्हारा ही सरगम ।
आशा उल्लास उमंगोंके हो स्रोत अघट,
क्या जाने क्यों तुम पाल रहे सिकुड़नका भ्रम ॥

(९)

क्यों हृदय तुम्हारा सकरेपनमें कैद हुआ ?
सीमित नश्वर तुम नहीं, असीम अनश्वर हो ।
तुम देह ? अरे क्या जीव ? नहीं, तुम हो आत्मा
तुम प्रतिमाके चैतन्य, न प्रतिमा-पत्थर हो ॥

(१०)

तुम नश्वर हो कि अनश्वर हो, अणु या विभु हो,
छोड़ो उन बातोंको यदि उनपर प्यार नहीं ।
पर शान्ति और आनन्द और मनकी मस्ती
ये बातें भी क्या मित्र ! तुम्हें स्वीकार नहीं ?

(११)

तन प्यारा किसको नहीं, किसे धनसे चिढ़ है,
पर क्या जीवनकी हलचल तन-धन ही तक है ?
तन हो या धन हो, सब मनके ही साधन हैं,
वह साध्य कौन है जिसका यह मन साधक है ?

(१७)

दुनियाको हक है वह अपने पथसे विचरे,
मुझको भी हक है मस्त रहूँ निज मस्तीमें ।
अपने-अपने मनका सौदा सब लेते हैं,
बाज़ार बड़े हैं ईश्वरकी इस वस्तीमें ॥

(१२)

तन-मन-धन जिसके लिये सधे उसको दूँदो,
जीवन तीनोंकी ही संतुलित त्रिपाई हो ।
तब सहसा सजित होगा वह वन गुलदस्ता,
जिस साध्य-सुमनकी तुमने आस लगाई हो ॥

(१३)

सब ऐसी ही मंजिलसे कहते हैं कि जहाँ
रविका प्रकाश घेरोंमें घिरकर रहता है ।
जिस मंजिलमें घेरोंके बन्धन टूट चुके,
कोई-कोई है उस मंजिलसे कहता है ॥

(१४)

जब सफल वही, निर्द्वन्द्व समझदारी जिसमें
तब सही समझदारी है जो गा लेता है ।
दुनिया समझे जीवनमें खोया-खोया हूँ,
मैं अपने गीतोंमें सब कुछ पा लेता हूँ ॥

(१५)

मैं रीझ रहा हूँ यदि अपनी ही मस्तीमें
तो खीझ सकेगी क्यों दुनिया नाहक मुझपर ।
वह खीझे तो उसको ही खीझ मुवारक हो,
मैं रीझ लुटाने आया हूँ उसके पथपर ॥

(१६)

जैसे मैं उसकी खीझ न लेना चाह रहा,
बह चाहे तो स्वीकारे रीझ न मेरी भी ।
दोनों अपनी-अपनी राहोंमें मस्त रहें,
सकरे स्थलहीमें होती है धक्का-धक्की ॥

गोसेवा और गोहत्या-निरोधके निमित्त आमरण अनशन

(लेखक—श्रीप्रसुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

अमृतं ह्यव्ययं दिव्यं क्षरन्ति च वहन्ति च ।
अमृतायतनं चैताः सर्वलोफनमस्कृताः ॥ॐ

छप्पय

गोसेवा अति श्रेष्ठ आर्यको परम धरम है ।
गोसेवा व्रत सतत सबनिको मुख्य करम है ॥
गोसेवा नहीं करी व्यर्थ खोयो तिनि जीवन ।
गोसेवाके निमित्त करो अरपन तन मन धन ॥

गोसेवामें निहित हैं, सतत धेनु, भू, करन-जय ।
गोरक्षकूँ कबहुँ नहीं, तीनि लोकमें शोक भय ॥

मेरे पास आजकल बहुतसे पत्र आते हैं । बहुतसे भाई तो गो-हत्या बंद करानेके निमित्त मेरे साथ अनशन करनेकी अनुमति माँगते हैं । अबतक ३८ व्यक्तियोंको आमरण अनशन करनेकी अनुमति दी जा चुकी है । ऐसे पत्र बराबर आ रहे हैं । मेरा अनुमान है, हजारों नहीं तो सैकड़ों व्यक्ति तो मिल ही जायेंगे ।

कुछ लोगोंके ऐसे भी पत्र आते हैं कि आप गो-हत्या-बंदीके लिये अनशन न करके गोपालन तथा गोसेवामें लग जाइये । उनके पत्रोंका बहुत ही संक्षेपमें सारांश यहाँ देता हूँ । उनका कहना है—

१-आप चंदा करके अच्छी-अच्छी गौएँ रखें । लोगोंको शुद्ध दुग्ध, शुद्ध घृत दिलानेकी व्यवस्था करें ।

२-अच्छे बैल कृषकोंको दें ।

३-लोगोंको गौका ही दूध, दही, घृत खानेका उपदेश करें । लोग गौका दूध, घृत खाने लगेंगे, तो गौके दूधकी माँग बढ़ जायगी । ग्वाले अपने-आप गौ पालने लगेंगे ।

४-सब आदमी अपने घरमें एक-एक गौ रखें, गौको न बेचनेकी उनसे प्रतिज्ञा करा लें ।

५-बूढ़ी गौओंके रखनेका प्रबन्ध करें । चंदसे उनके भोजनका प्रबन्ध कर दें । 'कल्याण'के डेढ़ लाख ग्राहक हैं । एक-एक रुपया भी देंगे तो लाखों रुपये हो जायेंगे । आपको कोई मना नहीं करेगा ।

* गौएँ विकाररहित हैं, दिव्य अमृत धारण करती हैं और दुहनेपर अमृत ही देती हैं, वे अमृतकी आधार हैं, वे सम्पूर्ण लोकद्वारा नमस्कार करने योग्य हैं ।

६-लोगोंसे प्रतिज्ञा करावें कोई कसाईके हाथों गौ न बेचें, जब गौ बेचेंगे ही नहीं, तो फिर अपने-आप गोहत्या बंद हो जायगी ।

७-गौओंकी खादको इकट्ठा कराके उसकी बिक्री करें ।

८-ग्राम-ग्राममें गोचरभूमि छुड़ानेका प्रबन्ध करें, जिससे गौएँ वहाँ चर सकें ।

९-अच्छी नस्लके लिये अच्छे साँड़ तैयार करावें ।

१०-गौओंके लिये अच्छा दाना-चारा-ग्वार-खरी-भूसीका प्रबन्ध करावें, इन कामोंके करनेसे बहुत उपकार होगा । मरनेसे क्या लाभ ?

यह मैंने कई आये हुए पत्रोंका सार दे दिया । ये सब बातें बहुत ही उपयोगी हैं । इनकी उपादेयतामें किसीको भी शंका नहीं । किंतु व्यवहारमें इनका पालन हम कैसे कर सकेंगे ? यदि ये बातें हो जायें और कोई भी गौओंको कसाइयोंके हाथ न बेचें, कसाइयोंको उधार रुपये न दें, सब गौके चमड़ेकी बनी वस्तुओंका उपयोग छोड़ दें, विदेशोंको गोमांस और गोमांससे बनी वस्तुएँ, आँत, सींग, हड्डी, रक्त भेजना बंद कर दें तो अपने-आप गोहत्या बंद हो जायगी । किंतु क्या हमारे ऐसा उपदेश देनेसे लोग मान सकते हैं ? यदि हमारे उपदेशको लोग मान लें तो हमलोग तो अनादिकालसे चिल्ला रहे हैं 'चोरी मत करो 'मा गृधः कस्यस्विद् धनम्' । अस्तेय व्रत धारण करो ।' सभी चोरी करना छोड़ दें तो फिर पुलिस, न्यायालय इनकी आवश्यकता ही न पड़े । हमलोग कबसे उपदेश करते हैं कि 'सब लोग परस्परमें प्रेमसे रहो, लड़ाई-झगड़ा मत करो, किसीके प्राणोंको मत लो ।' यदि सभी हमारी बातोंको मान लें तो फिर सब राष्ट्रोंको इतनी सेना रखनेकी आवश्यकता ही न पड़े । किंतु इतना उपदेश करनेपर भी लोग स्वार्थसिद्धिके लिये लड़ते-झगड़ते हैं, चोरी-बेईमानी, व्यभिचार-दुराचार करते हैं, घूस, उत्कोच, रिश्वत लेते हैं, झूठ बोलते हैं, हत्या करते हैं । इनके लिये कानून बने हुए हैं । चोरी, ज़ारी, हिंसा, असत्य आदिको रोकनेको कड़े-से-कड़े कानून बने हैं, उनमें प्राणदण्डतकका विधान है, इतने विधान होनेपर भी लोग इनसे सर्वथा बिरत नहीं होते, तो फिर जनताके ऊपर ही छोड़ दिया जाय, तो ये अपराध कितने बढ़ जायेंगे इसे स्वयं ही सोच लें ।

ऊपरसे सोच लेना तो सहज है, देखने-सुननेमें भी वह सुन्दर सरल और चित्ताकर्षक बातें लगती हैं, किंतु उन्हें बिना राज्यसत्ताकी सहायतासे व्यवहारमें उतारा जाना तो बहुत ही कठिन पड़ता है। इस विषयमें मैं एक छोटा-सा दृष्टान्त दूँ। यह आजसे ३०, ४० वर्ष पुरानी बात है। तब महामना मालवीयजी हिंदू विश्वविद्यालयके लिये प्रयत्न कर रहे थे। उसी समय बहुत-से योजना बनानेमें दक्ष लोगोंने एक योजना बनायी।

देशमें २८ करोड़ हिंदू हैं। उनसे प्रार्थना की जाय कि वे प्रत्येक एकादशीका व्रत रखें और उस दिनके भोजनका जितना अन्न बचे उसे विद्याके निमित्त दान कर दें। उन दिनों चार आनेमें दोनों समयका भोजन चल जाता था। योजना बनानेवालोंने कहा—महीनेमें दो एकादशी पड़ती है। दो दिन उपवास करना धर्मकी दृष्टिसे, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी बहुत ही उपयोगी तथा लाभप्रद है। आठ आने प्रति व्यक्ति दे तो १४ करोड़ मासिक आय हो जायगी। इससे कितने विश्वविद्यालय चल सकते हैं।

देखनेमें यह योजना बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है, कोई कठिन भी नहीं लगती। महीनेमें आठ आना कोई अधिक भी नहीं। किंतु बिना सत्ताकी सहायतासे कोई उपवास करेगा? कोई आठ आना मासिक देगा? यदि सत्ताकी आज्ञा हो उपवास करनेकी, तब तो झखमारके लोगोंको उपवास करना ही पड़ेगा। चोरीसे चुपके-चुपके भोजन भले ही कर लें। आठ आने तो उन्हें जमा करने ही होंगे। स्वेच्छासे आयकर (इनकमटैक्स) कौन देता है। सत्ताकी आज्ञासे विवश होकर प्रत्येक आयवालेको देना ही पड़ता है।

जितने सुझाव लोग देते हैं, उनकी भावना अच्छी ही है और वे स्नेहवश हमलोगोंके प्राणोंकी रक्षाके लिये उदार-भावसे ही देते हैं, किंतु इन विषयोंपर हमने विचार न किया हो सो बात नहीं। हम मानते हैं जबतक लोग गौके ही दूध और घृतादि सेवनकी प्रतिज्ञा न करेंगे गौकी रक्षा नहीं हो सकती। अनेकों वर्षोंसे हम गोदुग्ध, गोघृत, गोदधि, गो-छाछको छोड़कर दूसरी भैंस आदिकी ये चीजें नहीं लेते। किंतु इसमें कितनी कठिनाइयाँ हैं, इसे हम ही जानते हैं। शुद्ध गोदुग्ध विपुल मात्रामें जनताको मिले, इसका प्रबन्ध तो होना ही चाहिये, किंतु इसके लिये भी हमें सरकारी सहायता तथा प्रोत्साहनकी आवश्यकता है। उसके बिना

हम कुछ भी नहीं कर सकते। हमारी सरकार मत्स्य-पालन, कुक्कुट-पालन, सूअर-पालनका प्रबन्ध कितनी तत्परतासे करती है।

सभी मन्त्री वही कहते हैं गोरक्षाके प्रति हमारी हार्दिक सहानुभूति है, किंतु हमारी सरकारकी नीति मत्स्यपालन, कुक्कुट-अंडा-पालन और सूअर-पालनकी नीतिको बढ़ावा देनेकी है। सूअर-पालनपर पानीकी तरह रुपये बहाये जाते हैं। मुर्गा-पालनका भी बड़ा जोर-शोर है। अभी हालके उत्तरप्रदेशके कृषि-विभागद्वारा प्रकाशित 'कृषि और पशुपालन' पत्रमें मुर्गियोंकी भोजनव्यवस्थापर विचार किया गया है, जिससे उनका पर्याप्त विकास हो, वे खूब अंडा-मांस दे सकें। मत्स्ययोजना तो धूम-धामसे चल ही रही है।

हमारे यहाँ ब्रजमण्डलमें हिंदुओंकी बात तो छोड़ दीजिये, मुसल्मानतक मांस नहीं खाते थे। हमलोग जानते तक नहीं थे कि मछली भी खायी जाती है। मुसल्मानी शासनमें स्थान-स्थानपर पत्थरके शिलालेख लगाकर सम्पूर्ण ब्रजमण्डलभरमें किसी भी पशु-पक्षीको मारनेकी मनाही की गयी थी। वे शिलालेख अभीतक गड़े हुए हैं। अंग्रेजी शासनमें भी समस्त तीर्थ-स्थानोंमें यमुनाजीके घाटोंपर लिखा रहता था—'मछली मारना—पकड़ना मना है।'।

आज ब्रजके गाँव-गाँवके तालाबोंमें सरकारकी ओरसे मछली-पालन कराने मछलीके बीज भेजे जाते हैं। मछली-पालनसे लाभ समझाया जाता है और मछलियोंके लिये गाँव-गाँवमें फौजदारियाँ होती हैं। सरकार जब इन कामोंको इतनी तत्परतासे, इतना भारी व्यय करके फैला रही है तो क्या वह गोपालनको प्रोत्साहन नहीं दे सकती? किंतु प्रोत्साहन दे कैसे। उसके विदेशी विशेषज्ञोंने तो उसे यह निर्णय दिया है कि गोपालन एक हातिकारक व्यापार है। हमारे प्रान्तके पशुपालन-विभागके डाइरेक्टरने अपनी पशुपालन-विभागीकी रिपोर्टकी भूमिकामें लिखा है—'आना-पाईका हिसाब जोड़नेपर गौ लाभप्रद सिद्ध नहीं होती, यही नहीं उसके पालनसे हानि ही है। अतः धार्मिक मान्यतासे कोई गौको रखता है तो रखे; किंतु सक्को चाहिये कि दूधके लिये तो भैंस रखें और खेतीके लिये ट्रैक्टर रखें।'।

पता नहीं कैसे इनके विदेशी विशेषज्ञ हैं, जो गौ रखनेको हानिप्रद व्यापार समझते हैं। यह बात तो हमने नहीं सुनी। गौसे कभी किसीको हानि हुई हो यह तो परम आश्चर्यकी बात है। जो गौ प्रतिवर्ष एक बछड़ा या बछड़ी देती हो, वर्षभरमें ६-७ महीने दूध देती हो, खाद और ईंधनके लिये गोबर देती हो, मरनेपर भी जो अपना चमड़ा दे जाती हो, उस गौसे कभी किसीको हानि हो सकती है ?

मिछले वर्ष जब मैंने गोव्रत किया था, तो एक बंगालिन विधवा माता मेरे पास एक ग्यामन काली गौ लेकर आयी कि 'महाराज, आप इसे स्वीकार कर लें।' मैंने कहा—'यह तो पहले व्यातकी अच्छी ग्यामन नयी गौ है, तुम गरीब हो ऐसी गौ क्यों दे रही हो ?' उसने बताया, 'वह बहुत गरीब विधवा है, भजनाश्रममें कीर्तन करके ६ आने नित्य पाती है। ३-४ वर्ष पूर्व मैंने एक गौ पाली थी, मैं नित्य घास ले आती थी, गौके बछड़ा हुआ। वह मैंने २००) में बेच लिया। उसकी ३ बछिया मेरे पास हैं, सबकी सेवा कर नहीं सकती, गौको मैं बेचना चाहती नहीं। एक आप ले लेंगे तो बोझ हल्का हो जायगा। गौका दूध बेचकर मैं खर्च चलाती हूँ।' कितना सस्ता और गरीबोंके योग्य व्यापार है। पूरा निर्वाह एक गौके पीछे वह कर रही है। बालकपनमें हमने हजारों विधवाएँ ऐसी गाँवोंमें देखी थीं जो दिनमें अनाज पीसकर उसकी पिसाईसे अपना भोजनका खर्च चलातीं और एक गौ रखकर उसके घीको, बछड़ोंको बेचकर १०-५ वर्षमें हजार-पाँच सौ रुपये इकट्ठा करतीं। रुपया होते ही उनकी इच्छा होती, इन रुपयोंसे तीर्थ-व्रत हो जायँ। अथवा मेरे नामसे एक कूआँ, एक छोटी-सी धर्मशाला तिवारी बन जाय, कोई प्याऊ लग जाय। गो-पालन तो सबसे सस्ता और सबके उपयोगी लाभप्रद घरेलू व्यापार है।

आप कहेंगे—'अब घास कहाँ है, गोचरभूमि सब हट गयी, गौओंको खड़ी होनेकी जगह नहीं, अब गोपालन बढ़ा कठिन हो गया है। कैसे गौ रखें ?' यह हम जानते हैं, गौएँ रखनेसे इसका हमें भी बड़ा कटु अनुभव है, किंतु यह सब भी तो सरकारकी उपेक्षाके ही कारण हुआ है। बलवान् लोगोंने बलपूर्वक गोचरभूमियोंको जोत लिया,

सरकारने अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलनकी आँधीमें उन्हें रोका नहीं। अधिक अन्न तो उपजा नहीं, दूध, दही, घृत तथा बैलेंका हास अवश्य हुआ। सरकार यदि अधिक दूध उपजाओका आन्दोलन करती तो हमारे बच्चोंको दूध मिलता, अच्छे बैल मिलते और सर्वोत्तम गौकी खाद मिलती; फिर हमें खादके लिये अमेरिका या दूसरे देशोंका मुँह ताकना न पड़ता।

बैलोंकी आज यह दशा हो गयी है कि हजार-हजार रु० से कमका कोई बैल ही नहीं मिलता। आप आधुनिक मशीनों-से खेती करनेको कहते हैं। उनका उपयोग जिनके पास १००-२०० बीघा भूमि है, जो धनी किसान हैं, वे भले ही कर लें, उन्हें भी नित्य किसी-न-किसी वस्तुके लिये रोना पड़ता है, आज मशीन चलानेको तैल नहीं, आज मशीनका अमुक पुर्जा खराब हो गया है। हमने तो मशीन लगाकर भी अनुभव कर लिया है। आज इंजनका नोज़िल खराब है। तोले-दो-तोले भरका छोटा-सा पुरजा है। ६०-६५ रुपयेमें आता है। तनिक-सा छेद होता है, किस समय खराब हो जाय। मैं तो कई बार उसे मँगा चुका। तैल भी विदेशोंसे आता है, मशीनके पुरजे भी विदेशसे। जब भी मशीन खराब हो १००-२०० रुपये लगाकर ठीक करो। इसे धनी ही किसान कर सकता है वह भी पढ़ा-लिखा चलता-पुरजा।

जब सब कामोंपर पढ़े-लिखे धनी ही अधिकार कर लेंगे तो ये बेचारे अनपढ़ गरीब किसान क्या करेंगे। इतने कल-कारखाने भी तो नहीं कि उनमें कुलीका ही काम कर सकें। फिर कुलीमें और गरीब किसानमें कितना अन्तर है।

एक गरीब किसान है, उसके पास दो बीघा जमीन है, एक बैल है, एक गौ उसने रख ली है। एक बैल दूसरे गरीब किसानका लिया। दोनों साझी हो गये। ४-५ बीघा खेत उन्होंने कर लिया। किसान, किसानकी स्त्री, बाल-बच्चे सभी उसीमें जुटे हैं। मेंढ़पर साग-सब्जी, लौकी, तुरई बोलें। मेंढ़परसे घास खोदकर गौको खिला लिया। मट्ठा बच्चोंने पी लिया। घी बेच लिया। खेतके अन्नसे निर्वाह हो गया, भूसा, करवीसे गौका निर्वाह हो गया। यद्यपि उनपर एक पैसा नकद नहीं रहता। गङ्गा नहाने भी जायँगे तो पास-पड़ोसीसे २) कर्ज करके जायँगे। वे दो रुपये उन्हें अन्न देकर चुकाने पड़ेंगे, किंतु सालभर किसी तरह परिवारवालों-का पेट तो पाल लेते हैं।

जिनके पास अधिक भूमि हो, बंजर हो, लाखों रुपये हों, वे मशीनोंसे खेती करें, किंतु जो गरीब हैं, ग्रामीण किसान हैं उनको तो हल-बैलसे ही खेती करनेमें लाभ है। यह तभी सम्भव है जब उन्हें सस्ते सुन्दर बैल मिलें। सरकार ट्रैक्टर खरीदनेको तो कर्ज देती है। बैल खरीदनेको नहीं देती। जब बैलोंका उपयोग कम हो जायगा तब गौको कौन रखेगा। गौ तो तभी लाभप्रद है जब उसके बछड़ों-से काम लिया जाय। बछड़े तभी अच्छे मिलेंगे जब अच्छी गौओंका कटना बंद हो। मैंने सुना है ३० हजार गौएँ सम्पूर्ण भारतमें सूर्योदयसे पूर्व नित्य कट जाती हैं। ये तो वे आँकड़े हैं, जो सरकारी कागजोंमें लिखे जाते हैं। गाँवोंमें कसाई चोरी छिपे घरोंमें जो हजारों गौओंको नित्य काट देते हैं वे इनसे पृथक् हैं। बूढ़ी गौएँ तो बहुत कम काटी जाती हैं। उनके काटनेसे कसाइयोंको लाभ नहीं; क्योंकि उनके शरीरमें मांस नहीं होता, चमड़ा भी उनका अच्छा नहीं। लाभ तो उनको जवान पुष्ट गौओंको काटनेसे है।

आजसे १२-१३ वर्ष पूर्व कलकत्तेको कटने जाती हुई ३० गौओंको छुड़ाकर हम अपने आश्रममें लाये थे। कसाइयोंने अदालतमें बयान दिया हम कसाई हैं। गौओंको कटवाने कलकत्ता ले जा रहे हैं। वे गौएँ कितनी सुन्दर थीं। एक तो जिस दिन छुड़ायी उसी दिन व्यायी बछड़ी। हमने उसका नाम 'वत्सला' रक्खा। जब मैंने गोव्रत किया, हमारे साथी गौको जौ खिलाकर उनके गोबरमें जो जौ निकलते उन्हींको धोकर उसीकी रोटी खाकर रहते थे। मैं अन्न नहीं खाता हूँ। फलाहारी कूटकी रोटी खाता हूँ। कूट कड़वा होता है, अतः कोई गौ खाती नहीं थी। वत्सला ही दो-ढाई सेर कूट नित्य खा लेती थी। उसीके गोबरके कूटको खाकर मैं रहता था। वत्सला ६-७ बार आश्रममें व्यायी। हमने उसे बाहर भेजनेकी बहुत चेष्टा की। वह रोती रही, छटपटाती रही। ट्रकमेंसे कूटकर भाग आयी। आश्रममें ही उसका शरीरान्त हुआ। सभी गौएँ जवान थीं, सुन्दर थीं। सात-सात, आठ-आठ बार व्यायीं। छःछः, सात-सात सेर दूधकी थीं। वे तो औरैयाकी ओर-से लायी गयी थीं। हरियानेसे जो गौएँ आती हैं वे १५-१५, २०-२० सेर दूधकी होती हैं। ग्वाले एक ब्यान तो उन्हें रखते हैं। बच्चेको तुरंत मार देते हैं जिससे दूध न पिलाना पड़े। जब वे दूध देना बंद कर देती हैं, कसाईको

आधे-तिहाई दामपर बेच देते हैं। कसाईकी छुरीसे कट जाती हैं। यदि वे १५ वर्ष जीतीं तो १५ बच्चे देतीं और हजारों मन दूध देतीं।

मान लो ३० हजार ही गौ नित्य कटती हैं, तो एक वर्षमें एक करोड़से अधिक कटीं। एक गौ पूरी अवस्थातक जीवित रहती तो १० बच्चे देती। कितने बच्चोंकी हानि हुई, आप हिसाब लगावें।

मैं तो हिसाब जानता नहीं। सरकारी रिपोर्ट सब अंग्रेजीमें छपती हैं। यदि ३० हजार गौएँ नित्य कटती हैं, आगे भी कटती रहें तो आप कैसे नस्ल-सुधार, गोसंवर्धन कर सकते हैं। आप प्रवाहको तो रोकते नहीं, बाँध बनानेकी चेष्टा करते हैं तो कितने दिन आपका बाँध रुकेगा। प्रवाहको रोककर बाँध बाँधें तब ठीक भी है।

(१) आप कहते हैं 'अच्छी गौ रखकर उनके दूध-घृतका व्यापार करो।' अरे बाबा, अब अच्छी गौएँ रहीं कहाँ? वे तो सब कसाइयोंकी छुरियोंसे कट गयीं। आगे उनकी नस्ल भी समाप्त होती जा रही है। जैसे काशीके पण्डितोंके सब लड़के वकील, इंजिनियर, अफसर हो रहे हैं। यही दशा रही तो काशीमें एक भी पण्डित न रह जायगा; क्योंकि आगे उनकी परम्परा समाप्त हो रही है। मेरे ही परिचित वेद-वेदाङ्गोंके दिग्गज पण्डितोंके १९॥ प्रतिशत लड़के अंग्रेजी पढ़ रहे हैं। आगे पण्डित कहाँसे होंगे? यही दशा गौओंके वंशकी है। मैं वृन्दावनमें रहता हूँ। वृन्दावन भरमें एक गौ नहीं जो २० सेर दूध या १५ सेर भी देती हो। मेरे पास बड़ी-बड़ी गौएँ हैं। उनमें दो-तीन १५-१६ सेर दूधकी हैं। जब गौएँ ही न मिलेंगी तो हम रखेंगे कहाँसे, अतः सबसे पहले तो गोवधन होनेका कानून बनना चाहिये। फिर चोरी-छिपे जो काटेंगे उन्हें हम देख लेंगे।

(२) जब अच्छी गौएँ ही नहीं मिलतीं तो हम अच्छे बैल कहाँसे दें। फिर जब ट्रैक्टर ही काम करने लगेंगे तो बैलोंको कौन पूछेगा। गोवध बंद हो, तो अच्छे बछड़े हों। बछड़ोंका उपयोग हो तो लोग बैलोंसे खेती करने लगें।

(३) आप गौके दूधकी बात कहते हैं। यह तो सरकारकी थोथी दलील है।

बंबई आदिमें जो दुग्ध वितरण होता है, सब भैंसोंका दूध दिया जाता है। भैंसें ही रखी जाती हैं। सरकारी

संख्या ९]

दृष्टिमें गोदुग्धको कोई स्थान ही नहीं। शहरोंकी वात छोड़ दीजिये। गाँवोंमें गौका दूध नहीं मिलता। दुधालू गौएँ कट जाती हैं, बिना दूधकी सूखी गौएँ रह जाती हैं। सरकार गोदुग्धके अतिरिक्त किसीको दूध ही न माने, तब सबको गौका ही दूध पीना पड़ेगा। मैंने सुना है, यूरोपके समस्त देशोंमें भैंसें होती ही नहीं। वहाँ दूधके माने है गौका दूध।

दिल्लीके एक सज्जन बता रहे थे कि हमारे यहाँ एक यूरोपियन आये। उनको भैंसका दूध दिया गया। सूँघकर ही उन्होंने कहा 'यह किस जानवरका दूध है, इसमें दुर्गन्ध आ रही है।' तब उन्हें भैंस दिखायी गयी कि इसीका दूध है। वह दूध उन्होंने फेंक दिया। जब उन्हें गौका दूध दिया गया तो पी गये। इस प्रकार यदि हमारी सरकार गौको मान्यता दे, उसीका दूध शहरोंमें वितरण करे, तब देखिये तीस-तीस सेर दूधकी हजारों-लाखों गौएँ हो जायँ। वैसे मैं तो गौके अतिरिक्त किसीका दूध-घृत व्यवहारमें लेता नहीं, किंतु हमारी तरह सबको सुविधा नहीं हो सकती। अतः सर्वप्रथम कानूनसे गोवध बंद हो तभी गो-दुग्ध पीनेका प्रचार-प्रसार सम्भव है।

४-अब रही एक-एक गौ रखनेकी बात सो दिल्ली आदि शहरोंमें कुत्ता, घोड़ा, मोटरें तो रख सकते हैं, गौएँ नहीं रख सकते। श्रीजयदयाल ढालमियाकी पत्नी कई बार कह चुकीं मुझे एक अच्छी-सी गौ जब ब्याइ पड़े तो दीजिये। मेरे यहाँ पंद्रह-पंद्रह, सोलह-सोलह सेरकी गौएँ हैं। मैंने कहा—ले जाओ। तो जयदयालजीने कहा—जितनी गौएँ अभी हैं उन्हें ही रखने नहीं देते। रोज इन्स्पेक्टर आता है। मैं कैसे रखूँ—और वे नहीं ले गये। वड़े शहरोंकी छोड़ें। छोटे गाँवोंमें भी गौ रखना असम्भव हो गया है। एक गौको पढ़ा-लिखा आदमी रखे जो सरकारी नौकर हो तो उसे ४, ५) रोज दाना-भूसा नौकरके लग जाय जो १५०) ही महीनेमें निर्वाह करता है। वह गौ कैसे रखे? यह तो ग्वाला ही रख सकते हैं जब कि उन्हें सरकारी प्रोत्साहन हो और अच्छी दुधालू गौएँ प्राप्त हों। वे तभी प्राप्त होंगी जब गोवध कानूनसे बंद हो जाय।

५-अब बूढ़ी गौओंकी भी समस्या सुरक्षाकी बात है। हमारी सरकारने गोसदनकी एक योजना बनायी थी। वह योजना कागजी थी, व्यावहारिक नहीं। उसमें बताया

था कि जहाँ घास हो, जंगल हों, पीनेका पानी हो, वहाँ बूढ़ी गौएँ रखी जायँ। अपने-आप चर आवें, पानी पी लें, उनकी चराईपर १) महीना या २) महीनेका व्यय रक्खा गया था। इटावेके पास मोहवा और नैनीतालके पास कोई स्थान चुना। वहाँ सौ-पचास गौएँ रखी भी गयीं। महोवामें यमुनाके खादर हैं। वर्षामें तो वहाँ घास हो जाती है चार-पाँच महीने, बाकी वहाँ घास नहीं होती। पानीका भी कोई प्रबन्ध नहीं। हाँ, मरे हुए पशुओंका चर्म कमानेको १५।२० हजार रुपये लगाकर मकान और औजार लगा दिये थे और उसका इंचार्ज भी शायद कोई मुसल्मान ही था, बहुत-सी गौएँ तो भूखी-प्यासी मर गयीं। ग्वालेको क्या पड़ी जो बूढ़ी फँसी गौको निकालता। ऐसे गोसदन तो कसाई-खानोंसे भी बुरे हैं। बूढ़ी गौओंकी सुरक्षा तो किसानके ही घर हो सकती है। ४ बैल हैं, २-४ गौएँ हैं। ८-१० पशुओंकी जूठन ही इतनी बचती है जितनेसे दो-तीन बूढ़ी गौओंके पेट भर जायँ। उनकी खाद उसे सुफ्तमें मिल जाती है। घरमें बूढ़े आदमी भी तो रहते ही हैं। अच्छी-अच्छी चीजें बच्चोंको दी जाती हैं, बूढ़े अपना निर्वाह कर ही लेते हैं। चंदासे भी जो बूढ़ी लूली-लँगड़ी अपाहिज गौओंको रखें तो बड़े पुण्यका काम है; किंतु बूढ़ी गौओंकी रक्षा बैलेंसे खेती करनेसे ही होगी। ट्रैक्टरवाले तो जवान गौ भी नहीं पालते, बूढ़ियोंकी वात तो अलग रही। एक ट्रैक्टरवाले धनी जमींदार हैं। उनके कई खेतीके फार्म हैं, बाग-बगीचा है। एक बहुत बड़िया गौ उनके पास थी, १८-१९ सेर दूध उनके घरमें दिया है। एक वर्ष वह ग्याभन नहीं हुई। उनको वह भारी पड़ गयी, मेरे यहाँ कर गये। मेरे यहाँ अब भी वह है। १६-१७ सेर दूध उसने हमारे यहाँ भी दिया है।

अमेरिकाकी नकल भारतमें नहीं हो सकती। उस देशका क्षेत्रफल हमारे देशसे त्रिगुना-चौगुना है और वहाँकी जनसंख्या यहाँसे चौथाई भी नहीं है। वहाँ मीलों लंबे जंगल पड़े हैं। खेतीका वहाँ नया आविष्कार है। हमारे यहाँ तो हजारों-लाखों वर्षोंसे खेती होती है। ये मशीनकी खेती १००।५० वर्ष भले ही अच्छी हो, सबको दूर-फिरकर पुराने ही ढंगपर आना पड़ेगा। अतः सरकार कूओंको, बैलोंको प्रोत्साहन दे। गोवधको मनुष्यवधके समान ही अपराध घोषित कर दे। तभी गौके दुग्धकी, बैलोंकी, बूढ़ी गौओंकी रक्षा होगी, नल्ल सुधरेगी और गरीब किसानोंकी आजीविका चलेगी।

सित० ६—

६—यही बात कसाइयोंके हाथ गौ न बेचनेकी भी है, जो धर्मभीरु हैं वे तो अब भी नहीं बेचते, प्रतिज्ञा भी कर लेंगे; किंतु जिनका एकमात्र उद्देश्य पैसा पैदा करना है, वे प्रतिज्ञा करके भी पालन न करेंगे। एजेन्ट, दलाल, व्यापारी, इन्स्पेक्टर, डाक्टर—ये दस-दस पाँच-पाँच रुपये लेकर ही गौको कटानेमें सहायक होते हैं, उन्हें शासन ही रोक सकता है।

७—विदेशी खाद कृषकोंको अनिवार्य है, गौकी खादको कोई पूछता ही नहीं।

८—गोचरभूमिको गरीब आदमी तो राजाके भयसे, धर्मके भयसे जोतेगा ही नहीं। यह तो शासकोंके पिछलग्गुओंका ऐसा साहस होता है। भूमिदानवालोंने भी इस विषयमें बहुत अनर्थ किया है। सरकार गोचरभूमिकी रक्षाके पक्षमें हो तो गोचरभूमिको कौन जोतेगा? यह काम हमारे उपदेशसे नहीं होगा, शासनकी कठोरतासे होगा। शासन तभी कठोरता करेगा जब वह गोरक्षाको मान्यता दे।

९—साँड़ तो हमारे यहाँ धर्मभावसे सहस्रों छोड़े जाते थे, उनमें कुछ बेकार भी होते थे। अब शनैः-शनैः यह प्रथा बंद हो गयी। सरकारी साँड़ बहुत मँहगे होते हैं। शासनका बहुत अधिक व्यय होता है। शासन जितना व्यय साँड़ोंपर करता है, उससे आधा भी किसी संस्थाको दे तो उससे अच्छे और इससे दुगुने-तिगुने साँड़ तैयार हो जायँ। भारतसे अभी धर्मभावना मरी नहीं। यदि कोई प्रबन्ध करे तो लाखों मनुष्य अब भी अपने नामसे एक-एक साँड़ छोड़नेको तैयार हैं। किंतु हमारी सरकार धर्मनिरपेक्ष ठहरी, धर्मका नाम सुनते ही उसके प्राण निकलने लगते हैं।

१०—हम दाना-चारा कैसे पैदा करें। गौओंका सबसे बढ़िया खाद्य गौ-आहार (ग्वार) है। उद्योग-पतियोंने स्थान-स्थानपर कारखाने लगा रखे हैं, ग्वारका असली सत्त निकालकर उसे अमेरिका आदिमें भेजते हैं। उससे मनमाना द्रव्य कमाते हैं। हमें केवल ग्वारकी भूसी मिलती है, जिसमें तनिक भी दम नहीं। और भी गौओंका आहार विनौला, खली आदि विदेशोंको भेजी जाती है। इनका जाना कानूनसे बंद कर दिया जाय, ज्वारके सत्त (गमग्वार) के कारखाने बंद कर दिये जायँ तब हमारी गौओंको आहार मिले। गौओंका मुख्य आहार तो विदेश

भेज देते हो और फिर हमें दोष लगाते हो। विदेशोंकी गौएँ इतना दूध देती हैं, यहाँकी गौएँ दूध ही नहीं देती। अरे बाबा! दें कहाँसे, अच्छी नसलकी जवान गौओंको तो तुम कटवा देते हो, गौओंके आहारके सत्तको विदेशोंमें भेज देते हो। गोचरभूमि छीन लेते हो। फिर कहते हो हम तो सूखे, विदेशी दूध (मक्खन निकाले हुए मट्टाके चूर्ण) से निर्वाह कर लेंगे। तो फिर तुम्हें दूध कहाँसे मिले।

कुछ लोग कहते हैं, बूढ़ी अनुपयोगी गौएँ उपयोगी दुधारू गौओंके चारेको खा जाती हैं। यदि अनुपयोगी गौओंको काट दिया जाय, तो उपयोगी गौओंको चारा मिलेगा, दूध बढ़ेगा। अतः अनुपयोगी गौओंकी हत्यापर प्रतिबन्ध न लगाना चाहिये। कुछ कहते हैं, अब ही गौओंको चारा नहीं मिलता, बहुत-सी प्यासी मर जाती हैं जब गोवध बंद हो जायगा, तब बहुत-सी गौएँ भूखी-प्यासी मर जायँगी। इससे तो अच्छा है, उनकी कसाई-खानोंमें ही हत्या कर दी जाय। कुछ कहते हैं, जबतक आप गोचरभूमि नहीं छुड़वाते, अनुपयोगी गौओंके रहनेका, पालनका प्रबन्ध नहीं करते, तबतक गोहत्या रोकना व्यर्थ है।

यदि हिंदुओंकी भावनाका कोई आदर नहीं है, यदि गौको धार्मिक मान्यता न देकर उसे एक निरा दुधारू पशु ही मानना है, तो मैं उनसे पूछता हूँ, क्या कसाई-खानेमें सब बूढ़ी, टेढ़ी, बीमार अनुपयोगी गौओंका ही वध होता है? कदापि नहीं। उनके वधसे वधियोंको क्या मिलेगा? वध तो उपयोगी, नयी दृष्ट-पुष्ट गौओंका ही अधिक होता है। तब आपकी ये सारी दलीलें बेकार हैं! यदि आप हिंदुओंकी धार्मिक भावनाका आदर करते हों, तब तो आप ऐसी दलील दे ही नहीं सकते। तब तो यह दलील मनुष्योंपर भी लागू हो सकती है। आज अन्नका सर्वत्र अभाव है, रुपयेमें बारह आने लोग अप्पेट रहते हैं। बूढ़े, बीमार, कोढ़ी, बेकार, साधु आदि उपयोगी कामकाजी लोगोंके अन्नको खा जाते हैं। अतः ६० वर्षके ऊपरको, बेकार, मँगता, बीमार, साधु आदिको मरवा दिया जाय, जो लोक नरमांस खाते हों वहाँ उनका मांस-हड्डी आदि बेची जाय, डाक्टरी पढ़नेवालोंको शव बेच दिये जायँ, इससे आमदनी भी होगी और अन्न भी बचेगा। क्या कोई इस दलीलको मान सकता है? जब बेकार

संख्या ९.]

ल्लाड़े, लूले, बूढ़े, कोढ़ीकी हत्या करनेपर भी फाँसीकी सजा हो सकती है, तो गौके शरीरमें तो ३३ कोटि देवताओंका वास है, वह चाहे कैसी भी गौ हो उसके हत्यारेको तो ३३ कोटि बार फाँसी होनी चाहिये। हम तो कहते हैं जयतक गोहत्या बंद न होगी तबतक गौकी उन्नतिका—संरक्षणका कोई भी कार्य असम्भव है।

फिर हम गोसंवर्धन आदिके कार्योंसे उदासीन भी नहीं। अपनी शक्तिके अनुसार गौ पालते हैं, गोचरका प्रबन्ध करते हैं। सरकारकी ओरसे जो बंधन आदिमें दूध वितरणके लिये भैंस ही रखी जाती थी, वहाँ गौओंको भी रखवाया गया है। सूखी जवान गौओंको जो ग्वाले स्थानके अभावमें अपने यहाँ न रखकर कसाइयोंको बेच देते थे, उनके संरक्षणके लिये भी हमारे श्रीमान्करजी उद्योग कर रहे हैं। एक करोड़ रुपयेकी लागतसे उनके लिये विहारमें रखनेका, उनको ग्याभन करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। और भी गोचर-भूमि, चारे आदिके भी प्रयत्न हो रहे हैं। किंतु ये सभी प्रयत्न तबतक सफल न होंगे, जबतक सम्पूर्ण गोहत्या कानूनसे बंद न होगी। आजकी सरकार दो ही आन्दोलनोंके सामने झुकती दीखती है। या तो तोड़-फोड़, मार-धार-हत्या-आग लगाना आदि हिंसात्मक कार्य किये जायें, या कोई ऐसा आदमी अनशन करे जिसके पीछे सशक्त जनसमूह हो। हमलोग तोड़-फोड़ हिंसाके कार्य तो कर ही नहीं सकते। हमारे बाल-बच्चे नहीं, रुपये हमारे पास संग्रह नहीं। हम तो बस अनशन करके प्राण ही दे सकते हैं तो उसके लिये प्रस्तुत हैं। सैकड़ों-हजारों आदमी एक साथ प्राण देंगे, तो इस धर्मनिरपेक्ष सरकारके कानोंमें कुछ तो जूँ रेंगेगी। यदि हमारा समाज इतना मुर्दा हो गया कि इतने लोगोंके मरनेपर भी इसमें चेतना न आवे, इसके रक्तमें उबाल न आवे तो ऐसे निर्जीव समाजमें जीते रहनेसे भी क्या लाभ! यदि हमारे बलिदानसे गौकी रक्षा हो गयी, समाजने सरकारको विवश करके गोरक्षाका कानून बनवा लिया तो हमारा मरना सार्थक हो जायगा। इसीलिये हमने विवश होकर इस अन्तिम अल्लाहका आश्रय लिया है। जो भाई-बहिन हमारे इस बलिदान-यज्ञमें होता बनकर आहुति देना चाहें वे मैदानमें आ जायें।

कुछ लोगोंकी आशा थी कि सरकार लोकसभामें गोहत्या-बंदीपर वक्तव्य देते हुए भारतीय जनताको कुछ आश्वासन देगी; किंतु खाद्यमन्त्रीके वक्तव्यको पढ़कर सबकी आशा निराशामें परिणत हो गयी। सरकारने उन्हीं घिसी-पिटी बातोंको दुहरा दिया है जो वह १९५४से कहती आ रही है। खाद्य-मन्त्रीने यह घोषणा की है कि सम्पूर्ण गोवंशकी हत्या बंद करनेके सम्बन्धमें सरकारका संविधानमें कोई संशोधन करनेका इरादा नहीं है और यह विषय राज्योंके अधिकारमें है।

इस प्रकारका वक्तव्य देकर सरकारने भारतकी धार्मिक भावनाको ठुकरा दिया। इससे स्पष्ट है कि हमारे वर्तमान शान्तिमय आन्दोलनसे सरकारके रुखमें तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ है। वास्तवमें सरकारने वक्तव्यके द्वारा हमें चुनौती दी है कि हम तो अपनी पुरानी नीतिपर ही अडिग हैं, तुम्हें जो करना हो सो करो। अतः मेरी समस्त भारतीय जनतासे आग्रहपूर्वक प्रार्थना है कि इस आन्दोलनको अधिकाधिक प्रबल बनावें। अधिकाधिक लोग धरना देकर, प्रदर्शन करके जेलोंको भर दें। गोपाष्टमीसे स्थान-स्थानपर सम्पूर्ण देशमें अनशन आरम्भ कर दिया जाय। जो आमरण अनशन न करें वे गोपाष्टमीके दिन एक दिनका सांकेतिक अनशन करें। आन्दोलन जितना ही प्रबल होता जायगा, सरकार उतनी ही झुकती जायगी। ऐसी कोई शक्ति नहीं जो प्रबल आन्दोलनके सम्मुख न झुक सके तथा बहुमतकी माँगको ठुकरा सके। अतः हमें अब इस आन्दोलनमें पूरी शक्ति लगा देनी चाहिये। सरकारसे सहज ही कोई आशा करना व्यर्थ है। जो लोग वक्तव्यकी आशामें आशावान् थे उन्हें अब पता चल गया होगा। किसी शायरने कहा है—

‘बहुत सुनते थे शोर पहलूमें, जो चीरा तो कतरे खून निकला।’

मेरा विचार आगामी २२ सितम्बरको गोधाम-तीर्थयात्रा ट्रेनसे चलकर दूर-दूरतक गोरक्षा-अभियानका प्रचार करनेका है और गोपाष्टमीसे कुछ दिन पहले ही लौटकर गोलोक-बृन्दावनमें आमरण अनशन करनेका है—

मुझे इस पतेपर पत्र दें।

—प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

(गोलोक-संकीर्तन-भवन, वंशीवट)

बृन्दावन (मथुरा)

दक्षिण भारतकी तीर्थ-यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ ११३३से आगे]

श्रीनिवास नवरत्नजटित पीढ़ेपर बैठायें गये । सुगन्धित जल मँगवाया गया । पार्वती, सरस्वती, सावित्री आदि देव-स्त्रियाँ मङ्गलस्नान करने लगीं । इसी समय यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि श्रीनिवासका मङ्गलस्नान कौन करावे । श्रीनिवास दुःखित स्वरमें ब्रह्मासे बोले—‘न मेरे माँ-बाप हैं, न भाई-बहन; और न मेरे कोई बन्धु-बान्धव ही हैं । फिर कौन मुझे आशीष देकर मेरा मङ्गल-स्नान करावे ?’ इसपर ब्रह्मा बोले—‘हे पुरुषोत्तम ! आपके बन्धु-बान्धव क्यों नहीं हैं । क्या हम सब आपके बन्धु नहीं हैं ? आप तो स्वयं परमात्मा हैं और आपकी पत्नी जगन्माता हैं । सारा संसार आपका कुटुम्ब है । अतः आप क्यों व्यर्थ दुःखित होते हैं ।’ यह कहकर ब्रह्माने लक्ष्मीकी ओर देखा, तब लक्ष्मी श्रीनिवासका मनोभाव समझ गयीं और उनसे बोलीं कि ‘मैं स्वयं आपका मङ्गल-स्नान कराऊँगी ।’ यह सुनकर श्रीनिवासने संतुष्ट हो वशिष्ठ आदि मुनियोंसे मङ्गल-स्नानके लिये अनुज्ञा माँगी । सब मुनियोंने हर्षित हो उन्हें अनेक आशीर्वाद दिये । तब अनेक प्रकारके सुगन्धित द्रव्यों तथा पुण्य-तीर्थोंके पवित्र जलसे स्वयं लक्ष्मीने श्रीनिवासका मङ्गल-स्नान कराया । यह दृश्य देखकर देवगण हर्ष-विभोर हो श्रीनिवासकी स्तुति करने लगे । स्नानोपरान्त कुबेरने श्रीनिवासको दुकूल वस्त्र और बहुमूल्य आभरण अर्पित किये और उन्होंने उन सबको धारण किया । तदनन्तर ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाकर मोतियोंके पीढ़ेपर आसीन हो विधिपूर्वक संकल्प लिया ।

तदनन्तर महर्षि वशिष्ठने श्रीनिवाससे उनके कुल देवता शमीका, जो कुमारधाराके पास हैं, पूजन करने तथा उसकी एक छोटी शाखा तोड़कर लानेके लिये श्रीनिवाससे कहा । श्रीनिवासने मुनिके आज्ञानुसार अपने कुलदेव शमीका पूजन किया और वराहस्वामीकी अनुज्ञा लेकर उन्हींके निकट उस शमी वृक्षकी प्रतिष्ठा कर दी । कुलदेवताकी पूजा-समाप्तिके बाद श्रीनिवासने अग्निदेवको बुलाकर भोजनकी तैयारीके लिये कहा । श्रीनिवासकी आज्ञा पाकर अग्निदेवने पापनाशन तीर्थको सूपपात्र, आकाशगंगा तीर्थको खीरपात्र, देवीतीर्थको शाकपात्र, तुंबुरुतीर्थको चित्रान्नका पात्र बनाकर पाकक्रिया प्रारम्भ की । इस प्रकार शेषाचलमें स्थित तीन सौ चौदह तीर्थोंका विभिन्न पात्रोंके रूपमें

उपयोग कर विविध भौतिकी भोज्यसामग्री अनतिकालमें अग्निदेवने तैयार कर दी । श्रीनिवासने सब देवताओंको भोजन करने बुलाया । जब सभी देवगण अपनी-अपनी जगह आकर बैठे तो पंक्तिबद्ध बैठे देवगणोंके समूहसे पाण्डवतीर्थसे लेकर श्रीशैलतकका सारा दृश्य शोभायमान हो उठा । भोजन-पदार्थ परोसे गये और परोसना पूर्ण होनेपर ब्रह्माने सब पदार्थ सर्वप्रथम अहोविलके नृसिंहस्वामीको अर्पित किये । तदनन्तर उपस्थित सभीने भोजन किया । भोजनोपरान्त श्रीनिवासने विनम्रभावसे सभी अतिथियोंसे कहा—‘परीव होनेके कारण मैं केवल थोड़ा-सा रूखा-सूखा भोजन दे सका, फिर भी आपलोगोंने कृपाकर उसे स्वीकार किया, जिससे मैं कृतार्थ हो गया ।’ श्रीनिवासके विनम्र वचन सुनकर देवता बोले—‘आपका दिया हुआ भोजन अमृतके समान है जिसे पाकर हम तृप्त तो हो ही गये, फिर आपकी यह अमृतमय वाणीके कारण तो धन्य भी हो गये ।’ श्रीनिवासने उन सबको चन्दन और ताम्बूल दिये, जिन्हें देवताओंने अपने मुक्ति-मार्गके रूपमें स्वीकार किया । सबके भोजन कर लेनेके बाद श्रीनिवासने भोजन किया और सबने उस दिन शेषाचलपर विश्राम किया ।

दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीनिवासने ब्रह्मासे परामर्श कर आकाशराजाके नगरको प्रस्थानकी तैयारी प्रारम्भ की और कुछ ही कालमें श्रीनिवास गरुड़पर, शंकर नन्दीश्वरपर, ब्रह्मा हंसपर और शेष सब देवता अपने-अपने वाहनोंपर चढ़कर निकल पड़े । श्रीनिवासके आगे ब्रह्मा, दाहिनी ओर रुद्र और बायीं तरफ वासुदेव जा रहे थे । मेरी, मृदंग आदि मङ्गलवाद्य बज रहे थे । ऋषि-मुनि, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर आदि सब सुशोभित प्रभु श्रीनिवासके दूल्ह-रूपके दिव्य-दर्शन कर उनपर पुष्प-वृष्टि कर जय-जयकार कर रहे थे । बारात जब पद्मतीर्थपर पहुँची तो वहाँ मुनि शुक्रदेवजीने दंड-प्रणाम कर श्रीनिवाससे कहा—‘हे परमात्मा ! यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं आपको इस रूपमें सब देवताओंके साथ जाते हुए देख सका । मैं धन्य हुआ और मेरा जन्म पावन हो गया । अब आप कृपाकर थोड़ी देर यहाँ विश्राम कर मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये ।’ यह सुनकर श्रीनिवासने कहा—‘आप तो विरागी

संख्या ९]

आपके लिये असुविधाजनक होगा। अतः आप हमारे लिये अनावश्यक श्रम न उठावें। हम नारायणपुर जाकर आकाशराजाके महलमें भोजन करेंगे।' फिर शुकदेवजी बोले—'आपका कहना यथार्थ है—मैं एक अकिंचन ब्रह्मचारी हूँ और आप सबके भोजनका प्रबन्ध करना सचमुच ही कठिन है; फिर भी आपकी कृपासे कुछ भी कठिन नहीं। यह भी सत्य है, केवल आपके भोजन करनेसे चौदहों लोक तृप्त होते हैं, इसलिये इस अलभ्य लाभसे वञ्चित न कर कृपा कुछ कन्द, मूल, फल खाकर मुझे संतुष्ट कीजिये।' शुकदेवजीके ये वचन सुनकर वकुला श्रीनिवाससे बोली—'तुमको अवश्य शुकदेवकी इच्छापूर्ति करनी चाहिये। पहिले आकाशराजाने इन्हेंके द्वारा शुभ-पत्रिका भेजी और इन्होंने राजाको समझाकर तुम्हारे इस विवाहके प्रयत्नमें बड़ी सहायता की है।' तदनन्तर श्रीनिवासने शुकदेवकी कुटीमें जाकर उनके द्वारा भक्तिपूर्वक समर्पित कन्द-मूल-फलोंको खाया। यह वृत्त जानकर देवता-गण जब कुछ क्रोधित हुए तो श्रीनिवासने उन्हें तृप्त करनेके लिये डकार ली। उस समय उनके मुँहसे निकली हुई वायुने सभी देवताओंको तृप्त कर दिया। फिर सभी प्रसन्नमन वहाँसे आकाशराजाके नगर नारायणपुरकी ओर चल दिये।

इधर आकाशराजाने अपने सारे नगरको बड़े वैभवसे अलंकृत कराया। बड़े-बड़े पंडाल बनवाये और जगह-जगह बंदनवार बँधवाये। नगर-निवासियोंको सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण दिलवाकर अलंकृत करवाया। जगह-जगह सुगन्धित द्रव्योंको छिड़कवाकर परिमल-युक्त बनवाया। जब श्रीनिवास वारातसहित नारायणपुरके निकट पहुँचे तो आकाशराजाने वारातका आगमन निकट जान पद्मावतीका मङ्गलस्नान करवा उसे अमूल्य वस्त्र-परिधानोंसे सुसज्जित एवं आभूषणोंसे अलंकृत कर हाथीपर बैठाया और वे श्रीनिवासके स्वागतार्थ सपरिवार वारातकी अगवानीके लिये चल पड़े। कुछ ही समयमें राजा श्रीनिवासके सम्मुख जा संतुष्ट-मनसे विनयपूर्वक विनम्र वाणीमें यों बोले—'हे श्रीनिवास! आज मेरे व्रत सफल हुए। मैं कृतार्थ हुआ। मेरे बान्धवोंको मुक्ति-मार्ग प्राप्त हुआ। मेरे पितर वैकुण्ठ-वास करेंगे और मेरा राज्य एवं उसके सभी निवासी आज पवित्र हो गये।' ऐसा कहकर आकाशराजाने वस्त्राभरणों एवं गन्धाक्षतोंसे श्रीनिवासका पूजन कर उनका स्वागत किया। पद्मावती और श्रीनिवास दोनोंका परिचय कराया

गया और मङ्गल वाद्यध्वनियोंके बीच दोनोंको नगरकी सुन्दर सुवासित गलियोंमें घुमाकर रत्नखचित मन्दिरमें ले जाया गया।

मन्दिरमें प्रवेश करनेके बाद तोंडमानने सभी वरातियोंको भोजनशालामें भोजन करा संतुष्ट किया। भोजनोपरान्त चन्दन, ताम्बूल देकर सभीको अपने-अपने स्थान विदा किया। श्रीनिवास, लक्ष्मी और वकुलमालिकाको उन्हींके पास भोजन भेजा गया। भोजन करनेके बाद रातको ये तीनों वहाँ आरामपूर्वक सोये।

दूसरे दिन सवेरे श्रीनिवासने वशिष्ठको बुलाकर कहा—'हे वशिष्ठ! लक्ष्मी, ब्रह्मा, पुरोहित, माता और मैं, हम पाँचोंको आज भोजन नहीं करना चाहिये।' फिर कुवेरको बुलाकर कहा—'आज रातको तेरहवाँ षड़ीको शुभमुहूर्त है और उस समय ब्राह्मणोंका भोजन नहीं हो सकता। इसलिये मुहूर्त समयके पहले ही ब्राह्मणोंके भोजनका प्रबन्ध करानेके लिये तुम आकाशराजासे कहो।' कुवेरने आकाशराजासे सब बात कर उसी प्रकार सबके भोजनकी व्यवस्था करा दी। सभी देवता एवं विप्रवृन्द भोजन कर संतुष्ट और सुखी हो मङ्गलकामनाएँ करने लगे।

धरणी देवीने मङ्गल-स्नान करके सब प्रकारके आभूषणोंसे अपनेको अलंकृतकर श्रीनिवासके पाँव धोकर पूजा करनेके लिये ब्राह्मणोंद्वारा स्वर्ण-पात्रोंमें पुण्य जल भरवाकर रक्वा। पुरोहित वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। तदनन्तर धरणी देवी स्वर्ण-कलशोंका पुण्य जल श्रीनिवासके दिव्य चरण-कमलोंपर डालती गयीं और आकाशराजा उन्हें धोकर उस पवित्र जलको अपने तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके सिरपर छिड़क पुण्य-लाभ लेने लगे। राजाने यह कहकर कि 'मेरा जन्म सफल हुआ और मेरे बन्धु-बान्धव पवित्र हो गये'—अपनी तृप्ति व्यक्त की।

शुभ मुहूर्त निकट आ गया। आकाशराजाने श्रीनिवासको अनेक अमूल्य आभरण, हस्तकङ्कण, कर्ण-भूषण, मोतियोंके हार, मरकत-माला, वज्र-वैडूर्यखचित नाग-वन्धन, सुजवन्द, अंगूठियाँ, भारी नवर्त्तनजटित किरिटी, अनेक स्वर्ण-पात्र, दुकूल वस्त्र आदि समर्पित किये। फिर शुभ-हस्तमें मन्त्रयुक्त जल छोड़कर उन्हें अपनी कन्या पद्मावती-को दान दिया। कन्यादानकी इस मङ्गल-क्रियाके पश्चात् जब वर-वधू दोनोंके हाथोंमें कङ्कण बाँधे गये; ब्रह्मा आदि देवतागण शुभ आशीर्वचन कहने लगे; मेरी, मृदंग आदि

मङ्गलवाद्य बजने लगे; रंभा, उर्वशी, मेनका, तिलोत्तमा आदि देवदासियाँ नाचने लगीं; तुंबुरु, नारद आदि गाने लगे; गरुड़, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर आदि श्रीनिवास और पद्मावतीपर पुष्प-वृष्टि करने लगे; इस शुभ घड़ीमें श्रीनिवासने पद्मावतीके गलेमें मङ्गल-सूत्र बाँध दिया। तब सब देवताओंने पद्मावती एवं श्रीनिवासपर नवरत्नोंके अक्षत डालकर नानाविधि आशीर्वाद दिये। तदनन्तर सप्त-ऋषियोंने शास्त्रोक्त विधिसे होम-क्रिया करवायी। विवाहका क्रम समाप्त होनेके बाद राजाने ब्राह्मणोंको भूरि-भूरि दक्षिणा दे संतुष्ट किया। वे राजाको आशीर्वाद दे अपने-अपने स्थानको चले गये। तदनन्तर श्रीनिवास, लक्ष्मी, वकुला, धरणीदेवी, पुरोहित, आकाशराजा आदिने भोजन किया।

देवता और ब्राह्मणोंने बड़े वैभवसे ओत-प्रोत विवाह-के आमोद-प्रमोदमय इन पाँच दिनोंको बड़े आनन्दपूर्वक बिताया। आकाशराजाने पद्मावतीको ऐरावतपर चढ़ाकर जनवासमें श्रीनिवासके यहाँ भेजा। श्रीनिवासने पद्मावतीके साथ आकाशराजाके पास जाकर कहा कि 'हम बन्धु, मित्र, परिवारसहित शेषाचलको जाना चाहते हैं; अतएव आप हमें आशीर्वाद देकर विदा कीजिये।' तब आकाशराजाने धरणीदेवीके साथ पद्मावती तथा श्रीनिवासके पास आकर कहा—'हमें नहीं मालूम कि हम किस प्रकार आपको आशीर् दें। आपके आशीर्वादसे ही सब देवगण और मानव सकुशल रहते हैं। इसलिये आपका ही आशीर्वाद और अनुग्रह हमारा परम सौभाग्य है।' इतना कह राजाने श्रीनिवास और पद्मावतीके सिरपर हाथ रख उन्हें जनवासके लिये विदा किया। फिर राजा पुत्रसहित दायज लेकर श्रीनिवासके पास गये। यह देखकर श्रीनिवासने राजासे कहा—'आपने स्वयं दायज लेकर आनेका कष्ट क्यों उठाया? अपने पुत्रके द्वारा क्यों नहीं भेज दिया?' यह सुनकर राजा विनयपूर्वक बोले—'आपसे अपनी पुत्रीका विवाह कर मुझे जो अपार आनन्द मिला है, उसमें ये छोटे-छोटे कष्ट, जिनके द्वारा बार-बार आपके दर्शनका मुझे अवसर मिलता है, मैं सदा पाते रहना चाहता हूँ।' तब श्रीनिवास बोले—'हे राजन्! आप किसी संदेह एवं संकोचके बिना अपने मनकी इच्छा प्रकट कीजिये।' यह सुनकर राजाने कहा—'आपके अनुग्रहसे हमलोगोंको सब मङ्गल प्राप्त है। मैं आपसे एक ही वर चाहता हूँ। मुझे, मेरे बान्धवोंको और मेरी प्रजाको आपके चरणकमलों-

पर अटल भक्ति प्रदान कीजिये।' इसपर श्रीनिवासने प्रेमके वशीभूत हो 'ऐसा ही हो'—कह राजाको सयुज्य देकर तथा स्यालक वसुदानको आशीर्वादसहित पीताम्बर देकर विदा किया।

श्रीनिवास अनेक दास-दासियाँ, हाथी, घोड़े, धान, घी, गुड़, शक्कर, इमली आदि सभीका दायज साथ लिये हुए सुवर्णमुखी नदीके प्रान्तमें पहुँचे और ब्रह्मा तथा शंकरसे बोले कि 'छः मासतक विवाहकी दीक्षा-समाधि होनेके पहले मैं पर्वतपर नहीं चढ़ सकता। इसलिये तबतक यहाँ अगस्त्यके आश्रममें रहूँगा।' ऐसा कहकर श्रीनिवास अगस्त्यके आश्रममें ठहर गये और ब्रह्मा आदि देवताओं-को यथायोग्य वस्त्र एवं आभूषण देकर अपने-अपने स्थान जानेकी आज्ञा दी। वे अनेक प्रकारसे श्रीनिवासकी स्तुति करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये। फिर श्रीनिवासने लक्ष्मीसे कहा—'तुमको जो वर दिया था उसके कारण अब मुझे पद्मावती मिली है। कुछ कालतक मुझे इसके साथ सुख-दुःखोंका अनुभव करना है।' लक्ष्मीने कहा—'इस पद्मावतीने वेदवतीके रूपमें मेरे लिये रावणके पास कई कष्टोंका अनुभव किया था। मेरे लिये आपने उससे विवाह करके मेरी इच्छा-पूर्ति कर जो अनुग्रह किया उससे मैं धन्य हो गयी।' ऐसा कहकर लक्ष्मीने पतिको प्रणाम किया और आज्ञा लेकर वे कोल्हापुर चली गयीं।

इधर श्रीनिवास पद्मावतीके साथ अगस्त्यके आश्रममें सुखपूर्वक दिन बिता रहे थे। एक दिन नारायणपुरसे श्रीनिवासके पास एक दूत आया और प्रणाम कर बोला—'आकाशराजा मरणासन्न-दशामें हैं और अपनी पुत्री तथा जामाताको देखनेके लिये व्याकुल हैं।' यह सुनकर श्रीनिवास पद्मावती और अगस्त्यको साथ लेकर नारायणपुर जा पहुँचे। राजाके समीप जा श्रीनिवासने उन्हें प्रणाम किया; पर आकाशराजा अचेतन-अवस्थामें थे, अतः इनके आगमनका वृत्त न जान सके। श्रीनिवासने जोर-जोरसे बार-बार आवाज दे राजाको जगाना चाहा; पर उनकी अचेतना दूर न हुई। यह देखकर श्रीनिवास लौकिक मनुष्यकी भाँति बड़े जोरसे विलाप करने लगे। कुछ काल बाद राजाको चेत हुआ और श्रीनिवासको अपने निकट देख वे बोले—'अपने पुत्र और भाईको आपके हाथोंमें सौंप रहा हूँ; आप इनकी रक्षा कीजिये।' फिर पत्नी धरणीदेवीको

सहगमन कर स्वर्ग पहुँचनेकी अनुज्ञा देकर राजाने प्राण छोड़ दिये। धरणीदेवीने सहगमन किया। स्वर्गलोके विमान आया और वे दोनों उसपर चढ़कर स्वर्ग चले गये। वसुदानने शास्त्रोक्तविधिसे दाह-संस्कार किया। तदनन्तर श्रीनिवास पद्मावतीके साथ अगस्त्य-आश्रमको लौट पड़े।

आकाशराजाके निधनके पश्चात् राज्यपर अधिकारके लिये तोंडमान और वसुदानमें झगड़ा शुरू हो गया। दोनों युद्ध करनेके लिये तत्पर हो गये और श्रीनिवास इस द्विविधामें पड़ गये कि किसकी सहायता करें। अन्तमें उन्होंने तोंडमानको अपने शंख एवं चक्र दिये और स्वयं वसुदानकी सहायता करने खड़े हो गये। तोंडमान तथा वसुदानमें प्रचण्डरूपसे युद्ध होने लगा। कुछ समय बाद तोंडमानके चलाये हुए चक्र-प्रहारसे श्रीनिवास जमीनपर गिरकर मूर्छित हो गये। पद्मावतीको यह वृत्त ज्ञात हुआ और वह अगस्त्यको साथ ले रणभूमिमें पहुँच विलाप करने लगी। कुछ काल बाद श्रीनिवास होशमें आये और अपने निकट रुदन करती पद्मावतीको देख क्रोधमें आ बोले—'स्त्रियोंको युद्ध-भूमिमें नहीं आना चाहिये और अभी तुम यहाँसे चली जाओ।' यह सुनकर अगस्त्य बोले—'हे परमात्मा! ऐसी कौन-सी बात है जो आप नहीं जानते।' पद्मावतीने तोंडमान और वसुदानमें संधि करानेका निश्चय किया है और इसीलिये मैं उसे यहाँ लिवा लाया हूँ। उनमें संधि कराना हमारा परम कर्त्तव्य है। दोनोंको अब यहाँ बुलाकर उनके मनोभावोंको जान लेना आवश्यक है।' अगस्त्यके इस कथनपर श्रीनिवासने उसी समय तोंडमान और वसुदानको बुलाकर कहा—'तुम दोनों राज्यके विषयमें अपने-अपने उद्देश्य प्रकट करो।' तब वे दोनों बोले—'आकाश-राजाके मर जानेके बाद आप हमारे लिये पितृ-तुल्य हैं और आपकी आज्ञा माननेको हम सर्वथा प्रस्तुत हैं।' इतना कह दोनों हाथ जोड़कर खड़े रह गये। तब श्रीनिवासने उन्हें गले लगाकर कहा कि 'आकाशराजाका सर्वस्व तुम दोनोंको बराबर-बराबर बाँट लेना चाहिये।' दोनोंने इस निर्णयको स्वीकार कर लिया और इसके अनुसार तोंडमानको तोंडराज्य मिला और वसुदानको चोलराज्य। इसके बाद श्रीनिवास उन्हें आशीर्वाद देकर पद्मावतीके साथ फिर अगस्त्यके आश्रमको लौट गये।

कुछ काल बाद राजा तोंडमान श्रीनिवासके दर्शनके

लिये अगस्त्य-आश्रममें जा पहुँचा। श्रीनिवासने राजासे कुशल-समाचार पूछ प्रश्न किया कि 'आपके आनेका हेतु क्या है?' राजाने कहा—'हे श्रीनिवास! मैंने मुनिवरोंसे सुना है कि आप पुराण-पुरुष परमात्मा, वेदवेद्य और मोक्षप्रद देव हैं। इसलिये आपके दिव्य दर्शनकी लालसासे मैं यहाँ आया हूँ।' तब श्रीनिवास बोले—'तुम्हारे भाईने मुझसे अपनी कन्याका विवाह कर मुझे गृहस्थ बना दिया। परंतु बसनेके लिये मेरा कोई घर नहीं है। यह बड़े अपमानकी बात है कि आकाशराजाका जामाता दूसरोंके घरमें रहे। अतएव तुम मेरे लिये एक मन्दिर बनवाकर कृतार्थ हो जाओ। इस कार्यके लिये तुमसे अधिक उपयुक्त और समर्थ पात्र और कोई नहीं है। इससे मिलनेवाली कीर्त्ति प्राप्त करनेके लिये तुम ही योग्य हो।' ये वचन सुनकर तोंडमान बोला—'आप मन्दिरके लिये योग्य स्थल दिखावें, मैं सहर्ष मन्दिर बनवानेके लिये तैयार हूँ।' तब श्रीनिवास पद्मावती और तोंडमानको साथ लेकर शेषाद्रि पहुँचे और वहाँ उस वल्मीकको दिखाया, जहाँ वे पहले बस चुके थे। फिर उन्होंने तोंडमानसे कहा—'यहाँपर मन्दिर बनवाओ। इसका मुख्य द्वार पूर्वकी ओर रहे और इसके तीन प्राकार, दो गोपुर, एक ध्वज-स्तम्भ और सप्त द्वार हों। जहाँ वल्मीक है वहाँ आनन्दनिलयका निर्माण हो जाय और उसको घेरे हुए पहला प्राकार बनाया जाय। पहले प्राकारमें वैकुण्ठ-द्वार और दूसरे प्राकारमें पाकशालाएँ, यज्ञशालाएँ, परिमलगृह, कल्याणमण्डप आदिका निर्माण हो। तीसरे प्राकारमें आस्थानमण्डप, धान्यशालाएँ, छोटे-बड़े भोजनालय आदि बनवाये जायें। तुमने पूर्वजन्ममें जिस पुष्पकूपका निर्माण किया था, अब उसका पुनरुद्धार किया जाय।' यह सुनकर तोंडमान चकित हुआ और श्रीनिवाससे प्रार्थना की कि 'आप कृपा कर यह वृत्तान्त बता दीजिये कि पूर्वजन्ममें मैंने क्यों और कैसे इस कूपका निर्माण किया था?'

श्रीनिवासने तोंडमानके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताते हुए कहा—'कभी पहले चोलराज्यमें वैखानस नामक एक ऋषि वास करते थे। वे कृष्णावतारकी महिमा सुनकर कृष्णके रूपमें भगवान्के दर्शन करनेके उद्देश्यसे घोर तपस्या करने लगे। उनकी उग्र तपस्यासे प्रसन्न हो विष्णु जब प्रत्यक्ष हुए तो वैखानसने प्रणाम करके कहा—'हे विष्णुदेव! मैं श्रीकृष्णके दिव्यरूपके दर्शन करना चाहता

हूँ ।' यह सुनकर विष्णुने कहा—'तुमको श्रीकृष्णके रूपको नहीं देखना चाहिये । तुम्हारे लिये श्रीनिवासरूपी भगवान् आराधना एवं दर्शनके योग्य हैं । श्रीकृष्ण भगवान् ही आजकल श्रीनिवासके रूपमें शेषाचलपर विराजमान हैं । तुम वहाँ जाओ और उनकी पूजाकर अपनेको कृतार्थ करो ।' इतना कहकर विष्णु अन्तर्धान हो गये ।

विष्णुके वचन सुनकर वैखानस तुरंत वहाँसे निकले और शेषाचलको जा रहे थे कि मार्गमें रंगदास नामक एक भक्तने उनसे मिलकर पूछा कि 'आप कहाँ जा रहे हैं ?' वैखानसने जवाब दिया कि मैं शेषाद्रिको जा रहा हूँ । तब रंगदासने प्रणाम कर कहा कि 'मुझे भी शेषाचलको जाना है ।' ऐसा कहकर वह भी वैखानस ऋषिके साथ चला । कुछ दूर जानेके बाद रंगदासने ऋषिसे पूछा कि 'आप किस कार्यके निमित्त शेषाचल जा रहे हैं ?' ऋषिने जवाब दिया—'मैं कुछ कालतक रहकर श्रीनिवासकी पूजाकर उनका दिव्य दर्शन पाना चाहता हूँ ।' ये वचन सुनकर रंगदासने सोचा कि इसके साथ जाऊँ तो मैं भी श्रीनिवासका ध्यान करके उनके दर्शन पा सकता हूँ । ऐसा सोचकर वह ऋषिसे बोला—'हे स्वामिन् ! मैं भी आपके साथ चलकर वहाँ कुछ कालतक रहना चाहता हूँ । वहाँ मैं आपकी सहायता और सेवामें रहूँगा ।' ऋषिने रंगदासका कहना मान लिया और दोनों शेषाद्रिपर जा पहुँचे ।

शेषाद्रि पहुँचनेके बाद वैखानसने रंगदाससे कहा—'पुष्पोसे श्रीनिवासकी पूजा करके उनको प्रसन्न करना और दर्शन पाना आसान है । पूजाके लिये आवश्यक पुष्प कहाँ मिलते हैं ? इसलिये तुम एक पुष्पवाटिका लगाओ और रोज उसके फूल तोड़कर मुझे ला दिया करो ।' ऋषिके आज्ञानुसार रंगदासने एक पुष्पवाटिका लगा दी और उसे साँचने और हरी-भरी रखनेके लिये निकट ही एक कुआँ खुदवा दिया । वह रोज भगवान् श्रीनिवासकी पूजाके लिये बड़ी श्रद्धासे फूल तोड़कर वैखानसको ला देता था । इस तरह कुछ काल बीत गया ।

ग्रीष्म ऋतुके एक दिन गन्धर्वराजा अपनी स्त्रीके साथ पुष्करिणीमें जव क्रीड़ाएँ कर रहे थे, रंगदास थोड़ी देरतक उनको देखता हुआ वहाँ रह गया और ठीक समयपर पूजाके लिये फूल नहीं ला सका । मन्दिरके पास वैखानस

फूलोंकी प्रतीक्षा करता रहा । आखिर कुछ समयके बाद रंगदास फूल लेकर दौड़ता हुआ आया और ऋषिसे फूल लानेमें हुए विलम्बका कारण बताकर तथा उसके कारण श्रीनिवासकी पूजामें देर हो गयी, यह पश्चात्ताप करता हुआ क्षमा-याचना करने लगा । सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीनिवास पश्चात्तापसे परितप्त भक्त रंगदासका मनोभाव समझ गये और प्रत्यक्ष होकर बोले—'तुम मेरी मायाके द्वारा मोहित होकर वहाँ गन्धर्वोंकी जलक्रीड़ा देखते रह गये । तुम्हारी भक्ति मैं अच्छी तरह जानता हूँ । तुम यह शरीर छोड़कर नारायणपुरके राजा सुधर्मके पुत्र होकर जन्म लोगे और तोंडराज्यका पालन करोगे ।'

'हे तोंडमान ! तुम वही रंगदास हो । इस प्रकार तुमने पूर्वजन्ममें पुष्पवाटिकाके पोषणके लिये कूपका निर्माण किया और मेरी पूजाके लिये बहुत कालतक तुम पुष्प देते रहे । इसीलिये तुम इस जन्ममें इस तरह राजा तोंडमान बने और तुमने मेरी भक्ति पायी । अब मेरे लिये यह मन्दिर बनवाकर सुकीर्ति प्राप्त करो ।' यह सुनकर तोंडमानने श्रीनिवासको प्रणामकर कहा कि 'मैं आपको इच्छानुसार शीघ्र मन्दिर बनवा दूँगा ।' जब श्रीनिवास पद्मावतीके साथ अगस्त्य-आश्रमको जाने लगे तो तोंडमान भी उनके साथ ही उन्हें आश्रमतक पहुँचा उनसे विदा लेकर शेषाचल वापिस लौट गया ।

तोंडमानने मन्दिर-निर्माणके लिये आवश्यक साधन-सामग्री जुटा ली और अनतिकालमें श्रीनिवासके इच्छानुसार आनन्दनिलय, गोपुर, प्राकार, मण्डप, पाकशालाएँ, भोजनालय, यज्ञशालाएँ, परिमलगृह, आस्थान-मण्डप आदिसे सम्पन्न मन्दिरका निर्माण करवाया और पुष्पकूपका पुनरुद्धार भी किया । फिर शेषाचलपर श्रीनिवासके दर्शनार्थ मन्दिरतक जानेवाले भक्तलोगोंकी सुविधाके लिये सोपान-मार्ग और बीच-बीचमें कूप आदि भी बनवाये । बाद राजा तोंडमानने अगस्त्यके आश्रममें जाकर श्रीनिवासको प्रणाम करके कहा—'आपकी आज्ञा और इच्छाके अनुसार मैंने मन्दिरका निर्माण पूरा करा दिया है । अब आप सत्वर वहाँ पधारनेकी कृपा करें ।' यह सुनकर श्रीनिवासने आनन्दसे कहा—'मैं तुम्हारी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अब शीघ्र ही उस मन्दिरमें प्रवेशकर तुम्हारी इच्छा-पूर्ति करूँगा ।' ऐसा कहकर श्रीनिवासने ब्रह्मा आदि देवताओंको बुलवाया

और सबको साथ लेकर मङ्गल-ध्वनिसे अगस्त्य-आश्रमसे विदा हो शेषाचलपर पहुँच तोंडमानद्वारा निर्मित आनन्द-निलयमें प्रवेश किया। वहाँ श्रीनिवास बड़े आनन्दसे रहने लगे। इसीलिये यह मन्दिर आनन्दनिलय नामसे प्रसिद्ध हुआ।

आनन्दनिलयमें श्रीनिवासकी मुद्रा इस तरह है। वे पद्मावतीको अपने वक्षपर रखकर, शङ्खचक्रविहीन हो, अपने बायें हाथको कटिपर रखे हुए और अपने दाँ हाथसे अपने चरण-कमलोंको दिखाते हुए विराजमान हुए। उन्होंने कहा—‘मेरी यह मुद्रा ही इङ्गित करती है कि मेरे चरण-कमल ही भक्त लोगोंको वैकुण्ठ हैं और जो गृहस्थ सदा मेरी पाद-सेवामें लगे रहते हैं, उनके लिये यह संसार-सागर केवल बुलबुल ही है। मैं कलियुगमें भक्तलोगोंको दर्शन देता रहूँगा।’

ब्रह्माने श्रीनिवासको प्रणाम किया और कहा कि ‘मेरे मनकी एक प्रबल इच्छा है जिसे सफल करनेकी कृपा करें।’ श्रीनिवासने कहा—‘आपकी इच्छा अवश्य पूर्ण करूँगा।’ तब ब्रह्मा यों बोले—‘मैं आपके सान्निध्यमें दो अखण्ड ज्योतियाँ जलकर रहूँगा और लोक-कल्याणकी प्रतीक इन ज्योतियोंका सदा प्रव्वलित रहना आवश्यक है। आप कलियुगके अन्ततक तोंडमानद्वारा निर्मित इस आनन्दनिलयमें वास कर भक्तोंको दर्शन देते हुए उनकी मनोकामनाओंको सफल करते रहें। मैं आपका जो ब्रह्मोत्सव करना चाहता हूँ उसे कृपया स्वीकार करें। यही मेरा अभीष्ट है।’ श्रीनिवासने आनन्दमग्न हो—‘एवमस्तु’ कह ब्रह्माको आश्वस्त कर दिया।

ब्रह्माके द्वारा प्रव्वलित दो अखण्ड ज्योतियाँ आज भी श्रीनिवासके निकट जल रही हैं। (क्रमशः)

पुण्यश्लोक वै० आचार्य श्रीराघवाचार्यजी महाराज

(लेखक—श्रीश्रीकान्तजी शास्त्री, एम्० ए०)

१४ अप्रैल, १९६६ के ‘दैनिक हिन्दुस्तान’में श्री-आचार्यपीठ, बरेलीके पीठाधीश्वर स्वामी राघवाचार्यजी महाराजके आकस्मिक महाप्रयाणका संवाद पढ़कर मैं स्तब्ध रह गया। अभी दो दिन पहले अपने सम्पादकत्वमें प्रकाशित आचार्य-पीठ बरेलीका मुख-पत्र [आचार्य] स्वामीजीने मेरे पास भिजवाया था और मैं तदर्थ उन्हें पत्र लिखने जा रहा था कि इस बीच दुष्ट कालने कुटिलता की और स्वामीजीकी नश्वर काया हठात् इस लोकसे उठ गयी। उनके तिरोधानसे हिंदू-धर्म, संस्कृति एवं दर्शनका महान् व्याख्याता तथा सनातनी जगत्का समर्थ नेता उठ गया।

स्वामीजी अंग्रेजी, संस्कृत, तमिल, हिंदी, उर्दू एवं कुछ अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाण्ड पण्डित एवं भारतीय दर्शन तथा संस्कृतिके समर्थ व्याख्याता थे—और उनके व्यक्त जीवनका प्रत्येक क्षण भारतीयताकी गौरव-गरिमाको पुनः प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टामें अर्पित रहा। भारतीय विचार-सम्प्रदायपर उनको यथेष्ट गर्व था—और जन-जनतक भारतीय संस्कृतिकी महिमाकी पहुँचानेकी दृढ़ लगन एवं आकांक्षा जैसी उनमें थी, वैसी अन्य धर्माचार्योंमें मिलना कठिन है।

व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक एवं प्रभावशाली था।

दृष्टि मर्मभेदिनी थी—स्वभाव अत्यन्त सरल। बात-बातमें कहकहा एवं हँसीका जव दौर चलता, तब उनके इर्द-गिर्द बैठे हुए लोगोंको ऐसा लगता मानो वे किसी धर्माचार्यसे नहीं, अपितु अपने एक सखासे बातें कर रहे हों। जब धर्मसंस्कृति एवं भारतीय दर्शनोंकी वे व्याख्या प्रस्तुत करने लगते, एक समौ बँध जाता। विचारोंकी ऊँचाईके साथ-साथ विषय-निरूपणकी उनकी सरल एवं प्राञ्जल शैली आधुनिकतासे सर्वथा ओतप्रोत थी, जिससे न केवल पुरानी परिपाटीके आस्थावान् लोग ही, बल्कि अधुनातन व्यक्ति भी उनकी दृढ़ तार्किकताके समक्ष मौन होनेको बाध्य हो जाता। उनके कलकत्ता-प्रवासमें न जाने कितनी ही बैठकोंमें इन पंक्तियोंके लेखकको सम्मिलित होने एवं उनकी विचार-गङ्गामें अवगाहन करनेका स्वर्ण-सुयोग मिला था। विविध सांस्कृतिक प्रश्नोंपर उनके साथ वर्षों शास्त्रीय वादविवाद पत्रोंके माध्यमसे हुआ और जब कभी वे कलकत्ता पधारते, मेरी सुधि रखते और फोनकी घंटीकी टनटनाहटके साथ उनकी गुरु-गम्भीर वाणी—‘मैं राघवाचार्य बोल रहा हूँ’—सुनायी पड़ती। जबतक कलकत्तेमें रहते, नित्य-प्रति उनके दर्शनको जाता और उनके उदात्त विचारोंकी गठरी बाँधे प्रसन्नतापूर्वक लौटता। वे मुक्तहस्त अपने विचारोंका दान देते थे।

उन्नत स्कन्ध और प्रशस्त ललाटे युक्त उनके सुडौल शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग जैसे दृढ़ और समर्थ थे—वैसी ही उनकी वाणी भी दृढ़, गम्भीर एवं ओजपूर्ण थी। आचार्य-जी-जैसा वाग्मी मुझे कम दिखायी पड़ा। ४-४ घण्टे तक अविराम गतिसे पूरी दृढ़ता एवं ओजके साथ गम्भीर-से-गम्भीर विषयोंपर व्याख्यान देते थे—और क्या मजाल कि कोई श्रोता अपने स्थानसे जरा भी हिले-डुले। स्वामीजी महान् वक्ताके साथ-साथ कुशल लेखक एवं विचारक भी थे। उनका चिन्तन सर्वथा मौलिक था—और सनातनधर्म-की व्याख्या करनेमें वे समन्वयात्मक दृष्टि रखते थे। वे उन सनातन धर्मावलम्बियोंमें नहीं थे, जो आधुनिकताको सर्वथा 'अस्पृश्य' मानकर अपनी शुचिताकी काशीको अलग-अलग रुद्रके त्रिशूलपर ही अधिष्ठित रखनेके आग्रही हैं। यही कारण था कि आधुनिक रोशनीके लोग भी स्वामीजीके प्रति आकृष्ट होते थे। स्वामीजी भौतिकवाद और अध्यात्मवाद-को एक साथ ही जीवनमें व्यवहार करनेके पक्षपाती थे। उनका अध्यात्मवाद जीवनकी ठोस धरतीपर खड़ा था और दैनन्दिन जीवनमें उठनेवाले प्रश्नोंका समाधान वे आध्यात्मिक दृष्टिसे प्रस्तुत करनेका प्रयास करते थे।

भारतीय इतिहासके सम्यन्धमें भी उनकी एक नयी दृष्टि थी। स्वामीजीका कहना था कि अंग्रेज शासकों एवं लेखकोंद्वारा भारतीय इतिहासको पर्याप्त तोड़ा-मरोड़ा गया है और जनताके समक्ष जो इतिहास प्रस्तुत किया गया है, उसका रूप अत्यन्त विकृत है। यही कारण है कि भारतीय

जनता भारतीयतासे विमुख होती जा रही है—और पाश्चात्य सम्यताके चाकचक्रमें पड़कर दिग्भ्रान्त हो गयी है। उनके मतानुसार विशुद्ध राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे भारतीय इतिहासका पुनर्लेखन होना चाहिये—इसे स्वामीजी राष्ट्रधर्म मानते थे। भारतीय अनुशीलनसमितिकी स्थापना भी उन्होंने इसी दृष्टिसे की थी।

एक बात और। भारतीय जनतामें अपने अवतारोंके प्रति जो श्रद्धा अक्षुण्ण बनी हुई है, उसका लाभ उठाकर परम्परागत अपनी गद्दीको सुरक्षित रखना एवं न्यस्त स्वार्थोंका पोषण करना उन्हें कदापि अभीष्ट नहीं था, बल्कि अन्य धर्माचार्योंद्वारा इस 'आस्था'का गलत उपयोग होते देखकर वे अत्यन्त मर्माहत होते थे और वार्तालापके क्रममें अपना वेदना-जन्य क्षोभ भी वह जब-तब प्रकट करते थे—अखिल भारतीय स्तरपर भारतीय जनताकी इस 'आस्था'का संवल लेकर एक अत्यन्त व्यापक सांस्कृतिक अभियान चलानेकी दिशामें उनका पिछले कई वर्षोंसे चिन्तन चल रहा था और यदि कालने इस बीच ऐसी कुटिलता न की होती, तो उस दिशामें स्वामीजीके दृढ़ पग उठते ही। किंतु अब तो ये बातें अतीत जैसी हो गयी हैं। हाँ, स्वामीजीकी स्मृतिका संवल लेकर उनकी परिकल्पनाको साकार रूप देनेके लिये धर्म-संस्कृतिके क्षेत्रमें काम करनेवालोंको अवश्य ही आगे आना चाहिये—यही स्वामीजीका उचित स्मारक भी होगा।

सभीमें भरे तुम्हीं भगवान्

दुःख-सुख सारे हर्ष-विषाद । मान-अपमान, शोक-आह्लाद ॥
अमरता-मरण, ज्ञान-अज्ञान । नरक-अतिघोर, परम कल्याण ॥
सभीमें भरे तुम्हीं भगवान् । सभी करते तब लीला-गान ॥
दृश्य, द्रष्टा, दर्शनके भेद । सभी तुममें, तुम सदा अमेद ॥
इसीसे नित्य शान्ति आनन्द । हृदयमें बसे नित्य स्वच्छन्द ॥
दीखता मधुर तुम्हारा रूप । सदा सर्वत्र पवित्र अनूप ॥
मिट गया सारा ममता-मोह । छा रहे चिदानन्द-सन्दोह ॥
हुआ संकल्पतमोंका नाश । छा गया चारों ओर प्रकाश ॥

मधुर

एकनिष्ठ एकाङ्गी प्रेम-समर्पण

हो चाहे तुम सर्वदोषमय,
दोषरहित, गुणमय, गुणहीन ।
निर्मल मन अति हो चाहे,
हो चाहे मन अत्यन्त मलीन ॥
प्यार करो, चाहे दुकराओ,
आदर दो, चाहे दुत्कार ।
तुम ही मेरे एक प्राणधन,
तुम ही मेरे प्राणाधार ॥

सच्चा प्रेम न गुण देखता है, न व्यवहार । वह तो समर्पणमय होता है, इसीसे वह कहती हैं—‘तुम चाहे सारे दोषोंसे भरे हो, या सर्वथा दोषरहित हो; गुणरूप हो या गुणोंसे रहित हो; अत्यन्त निर्मल मनवाले हो या अत्यन्त मलीन-मन हो; मुझे प्यार करो या ठोकर मार दो, आदर दो चाहे दुत्कारो ! पर मेरे तो एकमात्र प्राणधन हो और एकमात्र तुम्हीं मेरे प्राणोंके आधार हो ।

कोटि गुना हो कोई तुमसे
बढ़कर सुघड़ रूप-गुणधाम ।
मैं तो नित्य तुम्हारी ही हूँ,
नहीं किसीसे कुछ भी काम ॥
फूट जायँ वे पापिनि आँखें,
बहरे हो जायँ वे कान ।
देखें सुनें भूलकर भी जो
अन्य किसीका रूप, बखान ॥

‘कोई चाहे कितना ही गुना अधिक तुमसे सुन्दर हो, रूपवान् हो तथा गुणोंका निवास हो, मुझे किसीसे भी कुछ भी काम नहीं है; मैं तो बस नित्य एक तुम्हारी ही हूँ। वे पापिनी आँखें फूट जायँ जो भूलकर भी दूसरे किसी रूपको देखें और वे कान बहरे हो जायँ जो भूलकर भी किसी दूसरेका वर्णन सुनें ।

निन्दा करो पेटभर चाहे,
मैं नित तुम्हें सराहूँगी ।
दारुण दुःख सदा दो तो भी
मैं तुमहीको चाहूँगी ॥
बदतरसे बदतर हालतमें
भी तुमको न उलाहूँगी ।
मरकर भी तुमको पाऊँगी,
संतत प्रेम निबाहूँगी ॥

‘तुम चाहे पेटभर मेरी निन्दा करो पर मैं तो नित्य तुम्हारी सराहना ही करूँगी, (क्योंकि मुझको तुममें कभी कोई दोष-दुर्गुण दीखता ही नहीं); तुम भले ही मुझे दारुण दुःख दो, पर मैं तो सदा केवल तुमको ही चाहूँगी । बुरी-से-बुरी हालतमें भी मैं तुमको कभी उलाहना नहीं दूँगी (क्योंकि मुझे उसमें भी तुम्हारा प्रेम-दान ही दिखायी देगा) । मैं मरकर भी तुम्हींको प्राप्त करूँगी और यों निरन्तर प्रेमको अचल बनाये रखूँगी ।

नहीं कभी उपजेगी मेरे
मनमें अन्य किसीकी चाह ।
नरकोंकी, दुर्गतिकी, कुछ भी
मुझे नहीं होगी परवाह ॥
एक तुम्हारा ही बस होगा
मुझपर सदा पूर्ण अधिकार ।
एक तुम्हीं बस नित्य रहोगे
मेरे परम जीवनाधार ॥

‘मेरे मनमें कभी भी दूसरे किसीकी भी चाह नहीं उत्पन्न होगी । न मुझे नरकोंकी तथा दुर्गतिकी ही कुछ भी परवाह होगी । मुझपर सदा-सर्वदा बस एक तुम्हारा ही पूर्ण अधिकार होगा और एकमात्र तुम्हीं बस नित्य-निरन्तर मेरे जीवनके परम आधार रहोगे ।’

यह है समर्पणमय प्रेमका आदर्श !

भारतीय प्राचीन शास्त्रके महान् पण्डित डॉ० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल

भारतके महान् दार्शनिक विद्वान् पुरातत्त्वविद् डॉ० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवालका गत २६ जुलाई १९६६ को काशी विश्वविद्यालयके सुन्दरलाल चिकित्सालयमें देहावसान हो गया। श्रीअग्रवालजी आरम्भसे ही बड़े अध्ययनशील थे और उन्होंने वेदोंसे लेकर पुराण तथा इतिहासतकका बड़ा गम्भीर अध्ययन किया था। अपने अध्ययनके फलस्वरूप उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की है और अभी करनेमें लग ही रहे थे। वे गतवर्ष ऋषिकेश गीता-भवनमें पधारे थे और बहुत दिनोंतक वहाँ हम-लोगोंके समीप ही ठहरे थे। वहाँ उनके स्वास्थ्यमें बड़ा लाभ हुआ था। उन्होंने एक दिन अपने लिये मुझसे बताया कि मैं पहले पुराणोंको सर्वथा गप्प मानता था; पर अब अध्ययन करनेपर मैं उनका भक्त हो गया। मैं उनकी प्रायः प्रत्येक चीजका समर्थन करता हूँ और बुद्धिवादियोंकी समझमें आ जाय इस प्रकार युक्तिसङ्गत रूपमें व्याख्या उनकी करता हूँ, सो भी केवल आध्यात्मिक अर्थ करके नहीं, वर्णनके अनुसार ही अर्थ करते हुए भी। उन्होंने मुझसे कहा था 'मैं विदेशी विद्वानोंको आह्वान करता हूँ कि वे मेरे पास आवें और स्वच्छन्दतापूर्वक उन्हें हिंदू-धर्मके प्रति जहाँ जो संदेह हों, बतायें, मैं समाधान करूँगा।' और वे ऐसे कई विद्वानोंके सम्मेलन कर चुके, जिनमें अनेक विदेशी विद्वान् आये और पूरा समाधान प्राप्त करके सहर्ष लौटे।

मेरा-उनका लगभग ३० वर्षसे अधिकका परिचय था। जब वे लखनऊ रहते थे, तब पहले-पहल मुझसे उनकी भेंट हुई थी। तभीसे प्रेमका सम्बन्ध चलता रहा। 'कल्याणके' वे बड़े प्रेमी, हितैषी तथा लेखक बने रहे। गतवर्ष उन्होंने बातचीतके सिलसिलेमें मुझसे कहा था कि 'कल्याण'का आप एक 'वेदाङ्क' नामक विशेषाङ्क निकालिये। उसमें वेदोंके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चुने हुए मन्त्रोंकी व्याख्या मैं लिखूँगा, जो सर्वमान्य तो होगी ही, वेदोंका तथा वैदिक संस्कृतिका महत्त्व विस्तार करनेवाली होगी। पिछले दिनों उन्होंने लिखा था कि मैं उसकी रूप-रेखा बना रहा हूँ। पर यह कौन जानता था कि इतनी जल्दी वे पार्थिव शरीरसे मुक्त हो जायेंगे। उनके

देहावसानसे भारतीय प्राचीन विद्या-विशारदका जो स्थान खाली हो गया है, उसकी पूर्ति सहज ही सम्भव नहीं है।

हमारे सम्मान्य तथा श्रीअग्रवालजीके परम मित्र हिंदी-जगत्के प्रख्यात सम्मान्य पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदीने श्रीअग्रवालजीके अन्तिम दो पत्र 'कल्याण'में प्रकाशनार्थ भेजे हैं। श्रीचतुर्वेदीजीने उनसे आत्मचरित लिखनेका अनुरोध किया था, उसपर उन्होंने इन दोनों पत्रोंमें संक्षेपमें अपने जीवनपर प्रकाश डाला है। पत्र महत्त्वके हैं, इसलिये नीचे प्रकाशित किये जा रहे हैं—

डॉ० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवालके चतुर्वेदीजीके नाम महत्त्वपूर्ण दो अन्तिम पत्र।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय

९—६—६६

प्रिय श्रीचतुर्वेदीजी

एक ही डाकसे आपके दो पत्र मिले। ३-६-६६ का फिरोजाबादसे, जिसमें आपने लिखा कि पृथिवीपुत्रकी एक प्रति आपको प्रिंसिपल गर्गसे मिल गयी। दूसरा पत्र ७-६-६६ का नयी दिल्लीसे, जिसमें आपने लिखा है कि पृथिवीपुत्रकी दो प्रतियाँ आपने मास्को भेजनेके लिये नयी दिल्लीकी सोवियत एम्बेसीको दे दी है। इससे अनुमान होता है कि मेरे प्रकाशक रामप्रसाद एण्ड संसने पुस्तककी पाँच प्रतियाँ आपके पास भिजवा दी हैं।

मेरा जन्म १९०४ में मेरठ जिलेके खेड़ा नामक गाँव में हुआ। मेरे पितामह ठेठ गाँवके व्यक्ति थे। उनकी शिक्षा लगभग नहींके बराबर थी। थोड़ी हिंदी पढ़ लेते थे और अपना हिसाब-किताब मुड़ियामें लिखा करते थे। पर वे अत्यन्त प्रखर बुद्धिके पुरुष थे। सत्य और न्यायमें उनकी बड़ी निष्ठा थी। सन् ४० तक लगभग दो मास प्रति वर्ष मैं उनके पास रहा करता था। वे शरीरसे लंबे-चौड़े और दृष्ट-पुष्ट थे। मुझे प्राचीन भारतीय आर्यजनोंकी हजारों पीढ़ियोंके दर्शन उनके चलते-फिरते व्यक्तित्वमें दिखाती पड़ते थे। वे आस-पासके दस-तीस गाँवोंमें बेताजके बादशाह थे। उनके चरित्रसम्बन्धी गुणोंका मुझपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। मैंने जीवनमें उनसे बहुत कुछ सीखा। जब मैं ६ वर्षका था, मेरी माताका देहान्त हो गया। मेरा लालन-

पालन दादीने किया। वे जनपदीय गुणोंकी मूर्त आत्मा थीं। कुटुम्बकी निस्स्वार्थ सेवा उनका जीवनव्रत था। वे न गिनती गिन सकती थीं और न रुपये-पैसे रख सकती थीं। वैदिक पुरन्धि या पोथिन् शब्द उनमें सच्चे अर्थोंमें घटित होता था। गाँवका सारा मुहल्ला उन्हें अपनी पुरखिन मानता था। वे घरभरमें मुझे सबसे अधिक स्नेह करती थीं। मेरी सभी माँ वे ही थीं। भारतीय संस्कृतिके अनेक छिपे हुए मातृगुण मैंने लगभग ४० वर्षोंतक उनमें देखे।

मेरी शिक्षाका आरम्भ देहाती मदर्समें हुआ। अपने पितामहकी कुशाग्र बुद्धि और उत्तम स्मृति मुझे विरासतमें मिली। मेरे पिताजी ५ भाई थे। घरभरमें कुछ अंग्रेजी पढ़नेका संयोग उन्हें ही मिल गया। जब वे सन् १९२२ में लखनऊमें नौकरी और व्यापारके सिलसिलेसे गये तो मेरी शिक्षाका क्रम ठीकसे चल निकला। हमारे देशमें जितनी शिक्षा कोई पा सकता है, वह सब पिताजीने मेरे लिये सुलभ कर दी। हाईस्कूल, इन्टर, बी० ए०, एम० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्० तककी सीढ़ियाँ मैंने पार कर लीं।

मेरे पितामह गाँवके किसान थे, उन्होंने बहुत वर्षोंतक किसानी की थी। उनके मुकाबिलेमें १०-५ गाँवोंका कोई किसान ठहरता न था। आगे चलकर वे लेन-देन और जमींदारीका काम करने लगे। वे ठेठ पृथिवीपुत्र थे। जब हम उन्हें लखनऊ ले आते तो वे ५-७ दिनमें ही उखड़े हुए जान पड़ते और अपने ग्रामजीवनके लिये भटक जाते थे। वे प्रातःकाल ४ बजे उठ जाते थे और अपनी जमींदारीमें कई मीलका चक्कर लगाते थे। मैं भी उनके साथ जाया करता था। तीसरे पहर वे अपनी दुकड़ियामें बैठकर चौधरी, पंडित, मुकदम, नम्बरदार और अन्य गाँवोंके मित्रोंको भागवतकी कथा सुनाया करते थे। वे बच्चे सनातनधर्मी थे, जिस साँचेके लोग इस देशमें कई सौ पीढ़ियोंसे होते आये हैं। वे दोपहरको स्नानके बाद विष्णुसहस्रनामका पाठ करते, सायंकालको गाँवसे बाहर शिवमन्दिरमें शिवके दर्शन करके और घृत-दीप जलाकर तब भोजन करते थे। मैं भी उनके साथ जाया करता था। कुछ ही लोग गाँवमें ऐसे पुरखे होते हैं जो पुरानी बातोंको मानते हैं।

मुझे कई तरहके संस्कार अपने बाबासे और अपने प्रारम्भिक गाँवके जीवनसे मिले। महाभारत, भागवत और रामायण अपने इन महान् ग्रन्थोंको तैयार करना और पढ़ना

मैंने उन्हींसे सीखा। अभीतक मैंने महाभारतके २४००० श्लोकोंपर एक सांस्कृतिक व्याख्या समाप्त की। उसका नाम 'भारत सावित्री' है और वह लगभग ८०० पृष्ठोंके तीन खण्डोंमें समाप्त हुई है। १८ पुराणोंकी सांस्कृतिक और धार्मिक व्याख्या लिखनेका मेरा संकल्प है। उनमेंसे चार पुराणोंपर अबतक लिख चुका हूँ। यदि रूसी जनता हमारे मस्तिष्क और हृदयको निकटसे जानना चाहे तो उसे पुराणोंके चार लाख श्लोकोंका साहित्य देखना चाहिये।

सन् १९४०में मेरे मनमें जनपदीय आन्दोलनका विस्फोट हुआ, उसकी कहानी 'मधुकर' और 'लोकवार्ता' से आपको ज्ञात है। अब यह आन्दोलन अपने देशकी भाषाओंमें ठहर गया है। सुनता हूँ कि जनपदीय रुससे जनपदीय सामग्री १६ लाख श्लोकोंके बराबर है। अपने देशमें भी इससे कम नहीं है। रूसी विद्वानोंको न्यौता है कि वे यहाँ आवें और काम करें। रूस और भारतके सम्पर्कका लोकवार्ताद्वारा एक नया मोर्चा खुल सकेगा। जनताको इसमें पहल करनी चाहिये। आपकी यात्रा सफल हुई होगी, महाशय गोरकीके देशको मेरा नमस्कार कहियेगा।

भवदीय
वासुदेवशरण

—२—

काशी हिंदू विश्वविद्यालय

९-६-६६

प्रिय श्रीचतुर्वेदीजी,

पहला पत्र अभी लिखकर इच्छा हुई कि दूसरे पत्रमें भी अपनी जीवन-कहानी कहता जाऊँ। ऐसा सुखकर न्यौता अभीतक किसीने नहीं दिया था, पर मैं आपका यत्नमान हूँ, इसलिये पूरी मात्रामें ब्रह्मभोज करानेसे ही आप छकेंगे।

अब अपने साहित्यिक शरीरका कुछ परिचय दे डालूँ। लगभग सन् १९१५ से मेरी रुचि संस्कृत विद्याकी ओर हुई। मेरे पिताजीका परिचय पं० जगन्नाथजीसे हो गया। वे अवधमें प्रतापगढ़ जिलेके सात्त्विक ब्राह्मण हैं। मैं इधर हाईस्कूल भी न कर पाया था कि पिताजीने मुझे पण्डितजीको सौंप दिया। यह पूर्वजन्मका संयोग था। पण्डितजीने मुझे पुराने ढंगकी संस्कृत बिद्यामें डाल दिया। वे मेरे गुरु ८८ वर्षके हैं। मेरे लिये ज्ञानका नया क्षेत्र खुल गया। संस्कृत पढ़ते हुए मैं बहुत दूर निकल गया। पण्डितजीकी

कृपासे मेरा परिचय पाणिनिके महान् ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' से हो गया। पाणिनिका ग्रन्थ अष्टाध्यायी भारतीय जनपदीय जीवनका दर्पण है। १९२९ में जब मैंने प्राचीन इतिहासमें एम० ए० कर लिया तो मेरे गुरु डा० राधाकुमुद मुकर्जीने आग्रहके साथ मुझे अष्टाध्यायी विषयपर ही शोध-कार्य करने-को कहा; क्योंकि वे जानते थे कि मुझमें उसकी विशेष योग्यता थी। मैंने बारह वर्षतक उस विषयपर कार्य किया। १९४१ में मेरा ग्रन्थ 'इन्डिया एज नोन टू पाणिनि' समाप्त हो गया और मुझे पी०एच्० डी० उपाधि मिली। फिर १९४६ में उसी ग्रन्थके परिवर्धित रूपपर मैं डी० लिट्० की उपाधिके योग्य समझा गया। ७ वर्ष बाद १९५३ में वह ग्रन्थ पहली बार छपा और तब सारे विश्वमें, जहाँतक संस्कृत विद्या पढ़ी जाती है, मुझे बहुत यश प्राप्त हुआ, देश और विदेशमें उस ग्रन्थके कारण मेरा यश फैल गया। आजतक विद्वान् सम्मानके साथ उस ग्रन्थको पढ़ते हैं। इसका हिंदी अनुवाद भी मैंने स्वयं ही किया। पाणिनि व्याकरणके विद्वान् तो ये ही, किंतु वे विलक्षण जनपदीय सहानुभूतिके व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी भूमिको निकटसे जाना और प्यार किया। घरके भीतर और बाहरके जीवनका सूक्ष्म वर्णन उनके ग्रन्थमें है। मेरा जन्म गाँवमें हुआ था, इसलिये मैं उसकी सच्ची व्याख्या कर सका।

यहाँपर मैं कह दूँ कि मेरा मन कुछ ऐसा है कि उसे बहुत-से विषयोंमें रुचि होती गयी। जैसे किसी घरमें बहुत-से द्वार और खिड़कियाँ हों, ऐसा ही कुछ मेरा मन है।

उसमें पचासों विषय भरे हुए हैं। वह मेरा अक्षय भण्डार है। १९३१ में एम० ए० करनेके दो वर्ष बाद ही मुझे मथुराके पुरातत्त्व-संग्रहालयका अध्यक्ष चुन लिया गया। वहाँ मैंने भारतीय कला और मूर्ति-शास्त्रका अध्ययन किया। फिर १९४० में मैं लखनऊ संग्रहालयका अध्यक्ष हो गया। वहाँ १९४६ के आरम्भमें नयी दिल्लीके राष्ट्रीय संग्रहालयका अध्यक्ष-पद मुझे मिला। फिर वहाँसे १९५२ के अन्तमें हिंदू विश्वविद्यालयके कला-विभागका अध्यक्ष होकर यहाँ आ गया और तबसे आजतक यहीं हूँ। मैं स्थान बदलना नहीं चाहता। अपनी रुचिके अनुकूल कार्य चाहता हूँ। संस्कृत विद्या और भारतीय कला—इन दो

विषयोंमेंसे जो मेरा परिचय हुआ, वह दिन-प्रतिदिन गाढ़ा होता गया। मैंने सोचा कि इन दो शास्त्रोंको निकट लाना चाहिये। मैंने संस्कृत साहित्यकी सहायतासे कला और पुरातत्त्व-सम्बन्धी सहस्रों शब्दोंका उद्धार किया। यूनानी कलाके लिये ही कुछ ऐसा काम हुआ था, यह हमारा कार्य उससे कम महत्त्वका नहीं है। उसका कुछ नमूना मेरी लिखी 'इन्डियन आर्ट' Vol. I में है जो अभी छपी है। यदि रूसी विद्वानोंको इन्डियन आर्ट पढ़ना हो तो वे मेरी उस आँखसे उसे पढ़ें। जैसा मेरा स्वभाव है मैंने भारतीय शब्दोंमें अपनी कलाकी कहानी कही है। यदि मैं जीवित रहा तो इस कथाको और आगे ले चढ़ूँगा। अब मुझे भारतीय कलाका अध्ययन करते हुए ३५ वर्ष हो गये हैं और मुझे इसका विश्वास है जो दृष्टिकोण मेरी समझमें आया, वही ठीक है। पश्चिमके सब विद्वानोंको एक दिन उसी विन्दुपर आना होगा। जनपदीय दृष्टिकोण, भारतीय कला, संस्कृत साहित्य—इन तीन विषयोंके अतिरिक्त भारतीय संस्कृतिके कितने ही विषय मेरे मनमें भरते चले गये। उन्हींमें भारतीय भूगोल, पुराणसाहित्य और वैदिक साहित्यकी ओर मेरा मन सन् २० से ही खिंचता था; पर विशेष खिंचाव पिछले सात वर्षोंमें हुआ है। जबसे मैंने दीर्घतमस ऋषिके अस्थवाभीय सूत्रकी व्याख्या लिखी, तबसे मेरा विश्वास हो गया है कि वेदविद्या सृष्टिविद्या है और उसके सदृश ऊँची अन्य कोई विद्या नहीं है। प्राणविद्या या जीवनी-शक्तिकी विद्या ही वेदविद्या है। यही सनातनी योगविद्या या प्राण-विद्या है; पर मेरी कही हुई बातको लोग अभी समझ नहीं पा रहे हैं। इस विषयपर मैंने लगभग ६ ग्रन्थ लिखे हैं। यदि मैं यूरोपीय विद्वानोंके सामने अपनी बात रख सकता तो वे ये जान लेते कि मानवके नित्य जीवनके लिये जो तत्त्व वेदोंमें कहे गये हैं वे सबसे अधिक मूल्यवान् हैं। मुझे इस बातका संतोष है कि मेरे जीवनका सायंकाल वेदविद्याके सम्पर्कसे बीत रहा है। आप नामसे चतुर्वेदी हैं पर वेदके अक्षरसे कभी भेंट नहीं की। अतः मेरी बात आपको शेल-चिल्ली या ऊलजलूल कहनेवाले सागर पण्डित जैसी जान पड़ेगी।

जनपदीय
वासुदेवशरण

पतनोन्मुख जगत्

[पतनमें उत्थानका भ्रम]

मनुष्यकी बुद्धिपर जब तमोगुण छा जाता है, तब उस बुद्धिका प्रत्येक निश्चय सत्यसे विपरीत ही होता है। ऐसी तामसी बुद्धिका स्वरूप बतलाते हुए भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।

सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥

(गीता १८।३२)

“पार्थ! तमोगुणसे ढकी हुई जो बुद्धि ‘अधर्म’को भी ‘यह धर्म’ है ऐसा मान लेती है तथा इसी प्रकार अन्य सब पदार्थोंको भी (हानिको लाभ, बुरेको भला, अनित्यको नित्य, असत्को सत्) विपरीत मानती है, वह बुद्धि तामसी है।”

“यह तामसी बुद्धि मनुष्यको मानवतासे गिराकर घोर असुर-भावापन्न बना देती है। उस समय इस विपरीत निश्चय करनेवाली बुद्धिके कारण वह भगवान्, आत्मा, परलोक, धर्म, कर्तव्य और त्याग आदि मानवोचित सभी सद्भावोंसे रहित होकर केवल ‘कामोपभोगपरायण’ हो जाता है। ‘अर्थ’ और ‘अधिकार’—दो ही उसके सामने लक्ष्य रह जाते हैं और वह किन्हीं भी—(सर्वथा अनुचित एवं पूर्णरूपसे अन्याय्य) साधनोंके द्वारा इन दोकी प्राप्ति, सुरक्षा और संवर्धनके कार्यमें प्रमत्त होकर लग जाता है। कामना और क्रोध ही उसके संवल हो जाते हैं और वह दिन-रात अशान्त-चित्त, जीवनके अन्तिम क्षणतक चिन्तासे ग्रस्त तथा अनाचार एवं पापमय कर्मोंमें सतत रत रहता है”—भगवान् ने इस आसुर-मानवके जीवनका चित्र खींचते हुए कहा है—

“ये आसुर-मानव जगत्को केवल कामहेतुक देखते हैं और इस दृष्टिका अवलम्बन करके पतितस्वभाव, अल्पबुद्धि, सबके अहितमें लगे हुए जगत्के नाशके लिये वे उग्र कर्म करते रहते हैं। वे दम्भ, मान और मदसे युक्त मनुष्य किसी प्रकार भी पूर्ण न होनेवाली नयी-नयी कामनाओंका आश्रय लेकर, मोहवश असत्वादों (Isms) को ग्रहणकर

अशुद्ध आचरण करते रहते हैं। मृत्युपर्यन्त रहनेवाली असंख्य चिन्ताओंसे ग्रस्त वे लोग भोगोंकी प्राप्ति तथा उनके उपभोगमें ही लगे रहते हैं और इस कामोपभोगपरायणताको ही जीवनका निश्चित लक्ष्य मानते हैं। वे सैकड़ों-सैकड़ों आशाकी फाँसियोंसे बँधे हुए काम-क्रोधके परायण होकर केवल अन्यायपूर्वक अर्थ (धन और अधिकार) के संचयकी चेष्टामें लगे रहते हैं। वे आत्म-कल्याण या परमात्माकी बात जरा भी न सोचकर केवल यही सोचा करते हैं कि—मैंने आज यह प्राप्त कर लिया, मेरे मनमें जो और प्राप्त करनेकी इच्छा है उसको भी प्राप्त कर ही लूँगा। मेरे पास इतना तो यह धन है और यह धन फिर मेरा हो जायगा। उस शत्रुको तो मैंने आज मार दिया, उन दूसरे सब शत्रुओंको भी मैं मार दूँगा। मैं सबका शासक हूँ, ऐश्वर्यका भोगी हूँ, सफलजीवन हूँ, बलवान् हूँ, सुखी हूँ, मैं बड़ा बुद्धिमान् हूँ, बड़े कुटुम्बवाला—जनताका नेता हूँ। मेरे समान दूसरा है कौन ?” (देखिये—गीता अध्याय १६ श्लोक ८ से १५ तक ।)

इस प्रकार असुर-मानव निरन्तर भोगचिन्तामें ही लगा रहता है। ऐसे मनुष्यका क्या स्वरूप है और वह परिणाममें क्या प्राप्त करता है, इसके सम्बन्धमें भगवान् कहते हैं—

“ऐसे अपनेमें ही श्रेष्ठताका अभिमान रखनेवाले गर्वोन्मत्त लोग धन, मान, मदसे युक्त होकर नाम-मात्रके लिये (लोगोंको केवल दिखलानेके लिये—स्वार्थबुद्धिसे) शास्त्रविधिसे रहित मनमाना यज्ञ (सेवा आदि) करते हैं। वे अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध आदिके परायण, सबमें दोष देखने तथा सबकी निन्दा करनेवाले मनुष्य अपने तथा दूसरोंके देहोंमें स्थित सुझ अन्तर्यामी ईश्वरसे द्वेष करनेवाले होते हैं। ऐसे ईश्वरसे द्वेष करनेवाले अशुभ कार्योंमें लगे हुए क्रूर हृदयके नीच मानवोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही पटकता हूँ। वे मूढ़

मुझको (भगवान्को—जो मानव-जन्मका एकमात्र लक्ष्य है) न पाकर जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं और फिर उससे भी नीची गति— (नरकों)में जाते हैं ।” (गीता १६ । १७ से २०)

फिर मानवको उपदेश करते हुए भगवान् उसके कल्याणका अमोघ साधन बतलाते हैं—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।

आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥

(गीता १६ । २१-२२)

“काम, क्रोध और लोभ—ये तीन प्रकारके नरक-के द्वार आत्माका पतन करनेवाले हैं। अतएव इन तीनोंका त्याग करना चाहिये। अर्जुन ! इन तीनों नरकोंके द्वारोंसे जो मुक्त है, वह अपने कल्याणका आचरण करता है और इससे वही परमगति (यहाँ सब प्रकारके सात्त्विक सुख और अन्तमें भगवत्प्राप्ति) लाभ करता है ।”

उपर्युक्त चित्रसे आजके मानवका जीवन-चित्र मिलाकर देखिये। मानो भगवान्ने आजका पूरा चित्र खींच दिया है। आज हम काम-क्रोध-लोभसे ग्रस्त हैं और हमारे सारे विचार और कर्म इन्हींकी प्रेरणासे और इन्हींके प्रभुत्वमें होते हैं। फिर चाहे हम किसी भी ‘बाद’को माननेवाले हों। जगत्के समस्त मानव एक ही प्रभुकी संतान या आत्मस्वरूप हैं। वे चाहे साम्राज्यवादी, पूँजीवादी, साम्यवादी, समाजवादी और भारतीय क्षेत्रमें कांग्रेसी, समाजवादी, प्रजासमाजवादी, वाम या दक्षिण साम्यवादी, पूँजीवादी, जनसंघी, हिंदूसभाई, रामराज्यवादी, पनातनी, अकाली, उद्योगपति, मजदूर, शासक, शासित—कोई भी क्यों न हो, हैं सब हम ही। और आज जितने भी प्रगतिशीलसे प्रगतिशील कहे जानेवाले अधिकांश लोग—खास करके नेतागण—केवल भौतिक भोगवादी ही हैं और येनकेनप्रकारेण अपने ‘अहं’का मद बढ़ाना और अत्यन्त संकुचित ‘स्व’ में स्थित हुए स्वार्थ-साधन करना चाहते हैं। आजका समष्टि और व्यष्टि जगत् सभी प्रायः प्रकृतिस्थ होकर प्रकृतिकी गुलामीमें लगा है। प्रकृतिपर विजय प्राप्त करके—प्रकृतिके वन्धनसे छूटकर—स्वस्थ—आत्मस्थ या

भगवत्-शरणागत होनेकी बात कोई नहीं सोचता। चन्द्रलोकादि-में पहुँचना प्रकृतिपर विजय कहा जाता है, पर यह विजय नहीं है, प्रकृतिका बड़ा वन्धन है। आत्माकी प्रातिका साधन कदापि नहीं। यही कारण है कि आजका मानव सर्वथा अशान्त, संदेहशील, भयातुर और चिन्तामग्न है; क्योंकि वह लक्ष्यहीन, केवल प्रकृतिकी आँधीमें उड़ा जा रहा है। इसीसे वह मोहवश जगत्के विनाशकी बात सोचता है। एक दूसरेको शत्रु मानकर उसके नाशका आयोजन करता है, उसका सारा विज्ञान इसी विनाशका प्रलयानल भड़कानेमें लगा है। नीच स्वार्थकी सिद्धिके लिये नीच-से-नीच विचार तथा कर्म करनेमें भी नहीं हिचकता। हमारा अध्यात्म-प्रधान भारत भी आज उसी ओर द्रुतगतिसे दौड़ रहा है, इसीसे वह आत्मविस्मृत होकर प्रकृतिपरायण होता जा रहा है। अपनी अध्यात्मप्रधान त्यागमयी संस्कृतिको भुलकर भोग-प्रधान विषयमयी संस्कृतिको अपना रहा है। ईश्वर और धर्मपर अनास्थाका पोषण करने लगा है। कर्मफल तथा परलोकको भूलकर केवल ऐहिक सुखभोगके लिये उच्छृङ्खल अधर्मपूर्ण आचरणमें लगा है। हमारी धार्मिक क्षेत्रकी फूट, राजनीतिक क्षेत्रकी गंदी दलबंदी, भ्रष्टाचार, दलबंदी, एक दूसरेको गिरानेके विचार तथा कर्म, उच्चस्तरके जीवनके नामपर भोग-प्रधान बाह्याडम्बरपूर्ण विलास जीवन, जीवमात्रकी हिंसा-हत्या करके अपने लिये भोगसामग्रीका उत्पादन, सृजन तथा संग्रह, गोहत्याकी वृद्धि, पदलोलुपताके कारण अन्याय-असत्यका आश्रय, धनके लिये खाद्य वस्तुओं तथा दवाइयोंतकमें मिलावट, रिश्तखोरी, चोरबाजारी आदि; गंदे चलचित्रोंका प्रसार, विद्यार्थियोंकी उद्दण्डता और अनुशासनहीनता आदि सब इसी तामस बुद्धिके अवश्यम्भावी उपरिणाम हैं। इस विपरीत बुद्धिके कारण आज हम ‘विनाश’को ‘विकास’कानाम दे रहे हैं। नीयत खराब न होनेपर भी आज बुद्धिकी तामसिकता हमें पतनको ही उत्थान, अवनतिको उन्नति, दुर्गतिको प्रगति और निम्नताको उच्चता बतला रही है। तमोगुणका स्वाभाविक परिणाम है—पतन। नीचतम गुण-वृत्तियोंमें स्थित तामसी मनुष्योंकी अधोगति ही होती है।

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥

(गीता १४ । १८)

यहाँतक पतन हो गया है कि जैसे कसाई नये-नये तरीकों-से पशुओंकी हत्या करके उनसे व्यापार करके धन कमाता

संख्या ९]

है, वैसे ही हमारी सरकार भी भारतीय जनताको अन्न तथा गोदुग्ध आदि पवित्र खाद्यपदार्थोंसे विरक्ति करवाकर मांस, मछली, अंडे आदिके गुण बतला-बतलाकर उन्हें खानेके लिये प्रेरणा दे रही है। इतना ही नहीं, वह करोड़ों रुपये मांस-अंडोंके लिये, पुष्ट सुअर, मुर्गी आदिको बढ़ानेके लिये, जगह-जगह मछलियोंकी पैदाइशके लिये व्यय कर रही है और इसमें जनताका हित मान रही है! सरकारके संचालक दूसरे कोई नहीं हैं—हमी लोग हैं, पर हमारी बुद्धि ही विकृत हो रही है जो हमें कसाई बननेमें लाभ दिखला रही है। इसीका परिणाम है—प्रान्त-प्रान्तमें नये-नये बृहत् वैज्ञानिक कसाईखानोंकी योजना!

अभी कुछ समय पहले समाचार छपा था कि आगरासे २१ मीलपर हजरतपुर नामक स्थानमें बत्तीस करोड़ रुपये लगाकर सरकार एक बड़ा भारी कसाईखाना खोलना चाहती है जो एशियामें सबसे बड़ा होगा। इसके लिये डेन्मार्कसे स्वयंचलित यन्त्र मँगवाये जा रहे हैं। इस कसाईखानेमें प्रतिदिन १५,००० तक पशुओंके स्वयंचलित यन्त्रद्वारा काटे जानेकी व्यवस्था की जानेवाली है और उन मारे हुए पशुओंका मांस सुखाकर डिब्बोंमें पैक करके विदेश भेजनेकी योजना बनायी जा रही है!

यहाँतक कि राजस्थानकी सरकार भी युगोस्लेविया सरकारसे मिलकर एक विशाल चमड़ेका कारखाना खोलने जा रही है!

यह असंख्य मूक पशुओंकी हिंसा, मांस-चमड़े-हड्डिका

व्यापार कसाईपन नहीं तो क्या है? और यह आयोजन क्यों किये जा रहे हैं—केवल पैसोंके लिये? अध्यात्मप्रधान भारतका कैसा भयानक पतन है!

दूसरे पशुओंके मांसकी तो बात ही क्या है—आज देशमें ऐसी अनेक पत्र-पत्रिकाएँ हैं जो गोमांसभक्षणतकका प्रचार करती हैं। अनेकों होटलों तथा क्लबोंमें गोमांस दिया जाता है।

अब तो एक सदस्य महोदयने खाद्यके अभावको मिटानेके लिये चूहा खानेकी स्पष्ट राय दी है और दुर्भाग्यतः एक जापानी खाद्यविशेषज्ञ (?) डाक्टर के० ओकाडाने इस सुझावका समर्थन करते हुए कहा है कि 'चूहोंमें प्रोटीनकी मात्रा अधिक होती है, अतएव उनका उपयोग खाद्यपदार्थके रूपमें किया जा सकता है।' इस प्रकार विदेशी विशेषज्ञ गुरुका समर्थन भी मिल गया। जैसे विदेशी विशेषज्ञोंकी सम्मतिपर गौको आर्थिक हानि करनेवाली मानकर उसे अवाध कटवाया जा रहा है, वैसे ही अब इन विशेषज्ञ महोदयकी रायपर चूहोंका भोजन नहीं किया जायगा—यह कौन कह सकता है?

इस प्रकार पतनकी परम्परा बढ़ रही है और पता नहीं इसकी रुकावट कहाँ जाकर होगी। पर यह निश्चित है कि जितना पाप बढ़ेगा, उतना ही दुःख तो बढ़ेगा ही। दुर्गति भी निश्चित होगी ही। भगवान् सबको सद्बुद्धि दें, सबका कल्याण करें।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

गोरक्षा-महाभियान

[पृष्ठ १२१२ के साथ पढ़िये]

गोरक्षा-अभियान-समिति गुजरात शाखाके प्रमुख चिरकालसे गोरक्षार्थ अपना जीवन उत्सर्ग करनेवाले प्रसिद्ध गोभक्त श्रीशम्भु महाराज बड़े जोरोंसे प्रचार-कार्य कर रहे हैं और गोपाठमीसे एक हजार भाई-बहनोंको साथ लेकर आमरण अनशन करनेवाले हैं। सैकड़ों नाम तो लिखे जा चुके हैं।

इसी प्रकार जामनगरके गोसेवक श्रीअर्जुन भगत प्रचार-कार्यमें लगे हैं और बहुत लोगोंके साथ दिल्ली जाकर अनशन करनेवाले हैं।

दिल्ली आर्यसमाजके प्रचारक वेद-पथिक पं० श्रीधर्मवीरजी आर्य झंडाधारी भी योगिराज श्रीसूर्यदेवजीके साथ आमरण अनशन करने जा रहे हैं।

बम्बईमें 'सम्पूर्ण गोरक्षा-अनुरोध-समिति'की ओरसे प्रसिद्ध संत स्वामीजी श्रीगंगेश्वरानन्दजीकी अध्यक्षतामें एक विशाल सभा हुई, इससे स्वामी चिन्मयानन्दजी आदि महात्मा गुरुजी श्रीगोलवलकरजीके साथ ही दो पारसी महानुभावोंने जरथोस्त्र पारसी धर्मके अनुसार भी गोरक्षापर बड़ा जोर दिया।

बम्बईके 'चिन्मय मिशन', विश्वहिंदूपरिषद्, श्रीसनातनधर्म-शिक्षासमिति और बंबई मिष्ठान्नव्यवसायी सहकारी मंडलकी ओरसे माननीय राष्ट्रपति, श्रीप्रधानमन्त्री, श्रीयहमन्त्री, खाद्यमन्त्री तथा विभिन्न राज्योंके मुख्य मन्त्रियोंके नाम तार भेजकर सम्पूर्ण गोबध-बंदीकी माँग की गयी है।

सित० ८—

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आदर्श सदाशयता

श्रीरामजीवन तथा गोविन्दनारायण दोनोंमें प्रेम था और एक ही साथ कारोबार करते थे। मामा-भूवाके भाई थे। दुर्भाग्यवश दोनोंकी पत्नियोंमें एक दिन झगड़ा हो गया। झगड़ा यहाँतक बढ़ा कि दोनों भाइयोंको अलग-अलग होकर अपना-अपना अलग काम करनेको मजबूर होना पड़ा। दोनोंको ही दुःख था पर परिस्थिति ही ऐसी हो गयी थी। रामजीवन बड़ा था, गोविन्दनारायण छोटा। झगड़ेमें मूलमें भूल थी वस्तुतः गोविन्दनारायणकी स्त्रीकी। उसने रामजीवनपर मिथ्या लाञ्छन लगाया था। रामजीवनकी पत्नी बहुत सहती रही। पर अन्तमें दोनोंने ही कम-ज्यादा विवेकका त्याग कर दिया।

कुछ समय बाद दैवदुर्विपाकसे गोविन्दनारायण बीमार पड़ गया। रोग बढ़ते-बढ़ते टी० बी०का दूसरा स्टेज आ गया। गोविन्दनारायणने अपनी पत्नीका अनुचित पक्ष लेकर बड़े भाई रामजीवनको बहुत ही अनुचित तथा कटु शब्द कहे थे वरं उसपर हाथतक उठा लिया था। पर रामजीवन बाहरसे शान्त रहा। कुछ भी बोला नहीं। केवल कारोबार अलग करनेकी बात कही और गोविन्दनारायणने जैसे चाहा, वैसे ही सारी उचित-अनुचित बातें मानकर बँटवारा कर लिया। लेकिन उसके मनमें बड़ा विषाद रहा और सोचा कि गोविन्दनारायणसे बोलनेसे कभी शायद मैं विवेक खो बैँहूँ, उसने मिलना-बोलना बंद कर दिया था। अब भाईकी बीमारीके कारण बहुत बार उसके मनमें मिलनेकी तथा सेवा करनेकी आयी, परंतु बीमारी, कारोबारमें घाटा तथा पत्नीकी अनुचित सलाहके कारण गोविन्दनारायण खटियापर पड़ा-पड़ा भी रामजीवनकी बड़ी कटु आलोचना करता रहता। बात सब रामजीवनतक पहुँचती, इसलिये मिलने, सेवा-सँभाल करनेका मन होनेपर भी वह जानेसे हिचकता था। घरमें रोज ही बात होती। रामजीवनकी स्त्री कमली बड़ी साध्वी थी। वह बार-बार पतिसे कहती—‘आप जाते क्यों नहीं? कुछ माँगने तो जाते नहीं, सेवा करने जाते हैं, गोविन्दनारायणजी इस समय बीमार हैं, खर्चते तंग हैं, आपके भाई हैं—उनकी सेवा हर-हालतमें

करनी ही चाहिये।’ यद्यपि रामजीवनने डाक्टरसे कह दिया था कि गोविन्दनारायणको तो पता न लगे, पर अच्छी-से-अच्छी दवा आप दें—रोज एक-दो बार देख लें। गोविन्दसे कुछ भी न लें। बिल मैं चुका दूँगा और तबसे लगभग दो हजारके बिल उसने चुका भी दिये थे। यह भी उसने नेक पत्नी कमलीके अनुरोधसे ही किया था।

आज सुना कि बीमारी कुछ बढ़ी है तो कमलीने बहुत जोर देकर कहा कि ‘आप अभी जरूर चलिये, मैं भी साथ चलाँगी।’ दोनों पति-पत्नी गये। गोविन्दनारायणने उनको देखते ही मुँह फेर लिया। डाक्टर भी बैठे थे। असलमें बीमारीके होने तथा बढ़नेमें प्रधान कारण था घाटा। उसीकी परीशानीने गोविन्दको टी० बी० का शिकार बना दिया था। यह बात डाक्टरने भी रामजीवनसे कही थी। रामजीवन चुपचाप बैठकर गोविन्दके सिरपर हाथ फेरने लगा। हाथ फेरते-फेरते उसके नेत्रोंसे आँसू टपक पड़े। भाईकी दशा उससे देखी नहीं गयी। डाक्टरसे पहले बात हो चुकी थी—इशारा पाकर डाक्टर चले गये। रामजीवनकी पत्नी कमली गोविन्दनारायणकी स्त्रीके पास अलग बैठी उसे मना रही थी। पहले-पहले तो वह कड़ी बोली—पर इस समय बड़ी दुखिया थी—रो पड़ी। पति बीमार, घरमें घाटा, तीन-तीन बच्चोंके पालनका भार। सचमुच बड़ी परीशान थी। कमलीकी आँखोंसे भी आँसू वह चले। दोनोंके आँसुओंने बहुत कुछ मानस-कलमषको धो दिया।

उधर रामजीवनकी आँखोंमें आँसू देखकर गोविन्द भी सिसकियाँ भरकर रोने लगा। उसके मनमें अपनी करनीका पश्चात्ताप जगा। अब रामजीवनको कुछ साहस हुआ और उसने अस्सी हजार रुपयेके नोटोंकी थैली गोविन्दनारायणके हाथमें थमाकर कहा—‘भैया! मेरी शपथ है—बोलना मत। मैंने पता लगाया, तो मालूम हुआ तुम्हें साठ-पैंसठ हजारका घाटा है। मुझे बड़ी चिन्ता हो गयी और मेरे तथा तुम्हारी भाभीके दुःखका पार न रहा। हमलोग मजेमें रोटी खायें, धन जमा रखें—और तुम घाटेमें तथा बीमारीमें झूलते रहो—यह हमसे कैसे देखा जाय? भैया! मुझसे तथा तुम्हारी भाभीसे भूल हुई हो सो क्षमा करो—ये अस्सी हजार

संख्या ९]

रूपे हैं। मैं दान नहीं दे रहा, न उपकार कर रहा। ये तुम्हारे ही हैं। तुम मेरे हो—मेरा सब कुछ तुम्हारा है।' यों कहकर रामजीवनने गोविन्दका सिर उठाकर अपनी गोदमें रख लिया।

गोविन्दकी विचित्र स्थिति थी। वह किसी अभूतपूर्व आनन्दका अनुभव कर रहा था। वह बताया नहीं जा सकता। उसकी आधी बीमारी तो तुरंत समाप्त हो गयी। रामजीवन और उसकी स्त्री कमली वहीं रहने लगे। सारा खर्च रामजीवन ही देता। तीन-चार महीनेमें गोविन्द अच्छा हो गया। रामजीवनके आग्रहसे फिर कारोबार साथ करने लगे। उजड़ा घर बस गया, बिगड़ी वृत्ति सुधर गयी। नरकसे वैकुण्ठ हो गया। इसका सारा श्रेय था—रामजीवन-पत्नी कमलीको। वह साक्षात् देवी थी और रामजीवन भी ऐसी सत्स्त्रीको पाकर धन्य था। कमलीकी सदाशयता आदर्श है।

—हरमुखराय अग्रवाल

(२)

शारीरिक श्रमका गौरव

कुछ समय पूर्व मैं अमेरिका गया था और वहाँ एक धनी कुटुम्बका मेहमान था। उन मेरे यजमानके तीन-चार मोटरगाड़ियाँ थीं। बहुत सुखी कहा जाय, ऐसा कुटुम्ब था। जीवनमें पर्याप्त सुविधाएँ इस कुटुम्बको प्राप्त थीं।

एक दिन मैंने उनसे शिक्षासम्बन्धी चर्चा छेड़कर पूछा—'अपने बच्चोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें आपके क्या विचार हैं।'

उन्होंने जरा हँसकर कहा, 'चलिये—अपने बाहर घूम आयें।'

मैंने सोचा कि यह धनी पुरुष शिक्षासम्बन्धी चर्चाको टालना चाहते होंगे। पर उन्होंने कहा था इसलिये मैं उनके साथ गाड़ीमें बैठ गया। गाड़ी एकके बाद एक रास्ता काटती हुई आगे बढ़ी। हम शहरके लगभग एक किनारे पहुँच गये तब मेरे यजमानने ब्रेक मारकर गाड़ी रोक दी और वे नीचे उतरे। मैं भी उनके साथ नीचे उतर गया।

वहाँ एक जवान लड़का झाड़ू देता हुआ एकदम दौड़ा आया।

'पापा (पिताजी)'

इसके पिताने पूछा—'क्यों?'

उसके चेहरेपर हँसी थी। उसके मन इस कामके

करनेमें जरा भी हल्कापन नहीं था। श्रमका गौरव था। उस लड़केने हँसकर कहा—'देखिये पापा! मैंने कितना अच्छा रास्ता साफ किया है।'

अमेरिका-जैसे देशमें एक धनाढ्य पिता-पुत्रकी ये बातें सुनकर मैं तो दंग ही रह गया। हमारे यहाँ तो सभी लोग यही चाहते हैं कि कहीं झाड़ू देने तथा श्रमका काम न करना पड़े। इसके लिये जितने पैसे भी खर्च करने पड़ें, हम खर्च करते हैं और यहाँ जिसके पास लाखों डालर हैं, वह अपने लड़केके द्वारा रास्ता साफ करवानेमें गौरव मानता है।

अब मेरी समझमें आया कि यजमान मुझे किसलिये यहाँ लाये थे। मेरे प्रश्नका उत्तर मुझे मिल गया। फिर, मानो उत्तर अधूरा न रह गया हो, उन्होंने हँसकर कहा—'यदि आपको मेरे बच्चेका यह काम अच्छा लगा हो तो एक विदेशी यजमानके तौरपर इसको दो पंक्तियोंका सर्टिफिकेट लिख दीजिये।'

मैंने बड़े ही संकोचका अनुभव किया और कहा—'इसमें मेरे सर्टिफिकेटकी क्या जरूरत है?' इसपर वे हँसकर बोले—'मेरे लड़केको विश्वविद्यालयका सर्टिफिकेट तो मिलेगा ही। वह न भी मिले तो यह सुखते जीवन बिता सके, इतनी सम्पत्ति है। परंतु मेरे लड़केके विकासकी चाभी तो इस काममें है। छोटे-से-छोटा काम जो आदमी लगनसे कर सके और उसमें गौरव माने, वही देशको ऊँचा ले जाता है।'

हम गाड़ीमें बैठे, युवक विद्यार्थी वापस लौटकर अपने काममें लग गया। अमेरिकामें सैकड़ों युवक प्रतिदिन तड़के ही ऐसे कामोंमें लग जाते हैं। हमारे देशमें भी जब ऐसी मानस-स्थिति होगी, तभी देशका स्वरूप पलटेगा। 'अखण्ड आनन्द'

—रामचल परीख

(३)

हमारे लिये 'अजेय' की स्मृति आज भी ताजी है

घटना १२ मईकी है। मैं भोपाल स्टेशनके द्वितीय श्रेणीके विश्राम-गृहमें था। लगभग साढ़े दस बजे एक नवयुवक एक लड़कीके साथ आया। मैं समझ नहीं पाया कि ये बहिन-भाई थे या इनका और कोई रिश्ता था। इतनेमें कुली पाँच-छः पान लगवाकर लाया। नवयुवकने

उन्हें लेकर एक-एक पान सभीको दिया। फिर कुलीने अपना पारिश्रमिक माँगा, उस नवयुवकने तुरंत १) का नोट दे दिया। इस बातसे यह स्पष्ट हो गया कि नवयुवक उदार था।

करीब साढ़े ग्यारह बजे गाड़ी आयी। हम भी चले और वे दोनों भी। उनका सामान एक कुलीने उठाया और दूसरे कुलीने मेरा। परंतु एक छोटा-सा एयर बैग, जिसमें सामान ज्यादा था, मेरे पास बच रहा था। उस नवयुवकने मुझसे कहा—‘चाचाजी! सामान ज्यादा प्रतीत होता है। लाइये, मैं ले लूँ।’

मैंने कहा ‘ठीक है।’ इससे ज्ञात हुआ कि नवयुवकके अंदर सेवा और परोपकारकी भावना भी थी।

गाड़ीमें सामान रखनेके बाद हमलोगोंमें बातें शुरू हुईं। मुझे पता पूछनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं थी; क्योंकि उसके बक्सपर स्वयं ही नीचे लिखा पता अंकित था।

“रामदत्त तिवारी ‘अजेय’ संचालक सुभाष क्लब, चरखारी।”

विभिन्न विषयोंपर बातें होने लगीं और उस नवयुवकने बहुत ही सुन्दर-सुन्दर विचार मुझे सुनाये, जिन्हें सुनकर मैं बड़ा प्रभावित हुआ।

ईश्वरके विषयमें उस नवयुवकने कहा—

‘परमात्माकी इच्छाके विरुद्ध बुद्धका एक पत्ता भी नहीं हिल सकता।’

आजके वर्तमान कर्मचारियोंके आन्दोलनके विषयमें भी अजेयने कहा कि ‘सभी अधिकारोंका झंडा उठाते हैं मगर कर्तव्य-पालन एक प्रतिशत ही करते हैं।’

‘यदि आप कर्तव्योंका पालन करेंगे तो अधिकार छायाकी भाँति आपका अनुसरण करेंगे।’

जब मुसीबतका प्रसङ्ग छिड़ा तो श्रीअजेयजीने कहा—

‘अन्धकारमें छाया भी साथ छोड़ देती है।’ इस प्रकार कई विषयोंपर श्रीअजेयजीने मार्मिक विषयोंपर प्रकाश डाला जो वास्तवमें सराहनीय था।

अन्तमें, मेरा स्टेशन बीना आनेवाला था, तब मैंने अपनी शंका समाप्त करनेके लिये पूछा कि ये आपकी कौन हैं? नवयुवक कुछ हँसा और बोला ‘कोई नहीं।’ मैंने फिर पूछा तो श्री ‘अजेय’ने तो कुछ नहीं कहा; परंतु वे

देवी बोलीं—‘श्रीमान्जी! मेरा नाम कुमारी अनिता है। मैं तिवारीजीके साथ ग्रीष्मावकाशमें भोपाल गयी थी। करीब १२वें दिन लौट रही हूँ। मैं झाँसीमें रुक जाऊँगी और तिवारीजी चरखारी जायेंगे। कहिये और कुछ जानकारी चाहते हैं?’ इतनेमें मेरा स्टेशन आ गया और मैंने अपना सामान उतारा। स्टेशनपर मेरा चिरंजीव राजीवकुमार उपस्थित था। प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। परंतु इस प्रसन्नतामें मैंने अपना एक बैग, जिसमें करीब ८५०) नकद तथा ५००)का एक चेक रक्खा था, वहींपर छोड़ दिया और मैं उनको नमस्कार करते हुए चल दिया। जब घर पहुँचा तब रुपयोंकी याद आयी तो मेरे होश उड़ गये। स्टेशनपर भागा आया मगर क्या था, वहाँसे तो चिड़िया उड़ गयी थी। मलिन मनके साथ मैं लौट आया। कोई बरा ही न था। क्या करूँ, क्या न करूँ—कुछ समझमें नहीं आता था। भाग्यके निर्णयपर छोड़ दिया था मैंने तो।

परंतु १८ मईको ८५०) रुपयेका मनीआर्डर एक पोस्टमैन लाया। मेरी खुशीका ठिकाना न रहा। ८५०) की रकम श्रीअजेयने मनीआर्डरके द्वारा भेजी थी; क्योंकि उस बैगपर मेरा पता लिखा था। दूसरे दिन १९ मई बृहस्पतिवारको एक रजिस्ट्री तथा एक पार्सल आया। देखनेपर ज्ञात हुआ कि रजिस्ट्रीमें चेक रक्खा है तथा पार्सलमें बैग! मैं तो दंग रह गया इस अद्भुत ईमानदारी और कर्तव्यपरायणताको देखकर और मैंने मुक्तहृदयसे उनको आशीर्वाद दिया और सराहा। अब भी ईश्वरसे यह प्रार्थना करता हूँ कि श्रीरामदत्त तिवारी ‘अजेय’के समान ही इस भारतमें युवक तैयार हों, ताकि भावी राष्ट्रका कल्याण हो सके। श्री‘अजेय’की प्रशंसामें जो कुछ भी लिखा जाय सब थोड़ा है। वे जहाँ भी रहें आरामकी जिंदगी बितावें।

—रामनाथ अग्रवाल, साहित्यरत्न टी० टी० नगर (भोपाल)

(४)

ईमानदारी

एक वर्ष पूर्वकी घटना है। एक दिन माताजी खेतकी ओर जा रही थीं। पगडंडीके समीप ही उन्होंने एक साधारण-सा पर्स पड़ा देखा। उन्होंने उसको उठा लिया, खोलकर देखा तो उसमें २७००) नगद, कुछ रेजगारी तथा एक पञ्जा हुजिया था। यह देखते ही उनके आश्चर्य और

खुशीका ठिकाना न रहा। सोचने लगीं कि मुझे कितना धन मिला है, मैं इसका अपने घरके लिये उपयोग करूँगी। यह सोचते-सोचते उन्हें लगा मानो कोई कह रहा है कि जिसका यह धन खोया है, उसके दिलपर क्या वीत रही होगी। माताजीने सोचा कि आज यहाँ वागपतमें पशुओंकी वेंठ लगती है। यह पगडंडी भी वहाँ जाती है। निश्चय ही यह धन किसी व्यापारीका होगा। निश्चय किया कि मैं इसको वहाँ जाकर लौटाऊँगी तो माताजी वापस दो मील उस मेलेमें आयीं तथा अधिकारीको सूचना दी। यह सोचकर कि यह धन जिसका है, उसीको मिलना चाहिये, वहाँ मुनादी करायी गयी कि इस प्रकार मुझे रुपये मिले हैं, जिसके हों, पहचान बताकर ले लें। वहाँपर माताजी बैठ गयीं। सँझ होने लगी, मगर कोई नहीं आया तो उन्होंने वह पर्स कई आदमियोंके समक्ष, अधिकारीपर जमा कराना चाहा कि इस बीच देखा कि एक उदास बूढ़ा आदमी गिरता-पड़ता आ रहा है। उसने आते ही कहा कि बाबूजी मेरे खोये हैं। माताजीने उसे सँभाला एवं पहचान तथा संख्या पूछी तो उसने सब ठीक-ठीक बता दिया। माताजीने वह पर्स उसको दे दिया, तब उसकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा और उसने खुश होकर माताजीको (५००) देने चाहे, पर माताजीने स्पष्ट मना कर दिया। अधिक आग्रहपर एक सौ रुपये उसी समय मन्दिरके पुजारीको दिला दिये गये। माताजी अपना काम पूर्ण न करके घर लौट आयीं। माताजीको बड़ी खुशी थी। घर आकर उन्होंने सारी बातें बतायीं। माताजीकी इस ईमानदारीपर मैं उनसे चिपट गया। सोचने लगा कि भारतमें ऐसी ही माताएँ हों तो निश्चय हम अपने गतवैभवको पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

—कंवर्सन वर्मा, आचार्य 'सरस्वती शिशु-मन्दिर', मेरठ

(५)

‘धर्मके काममें देर कैसी?’

शंभुभट्ट जाम साहेबके राजवैद्य थे। उन्हें लोगोंके दुःख-दर्द दूर करनेकी विशेष चिन्ता रहती। अतएव वे कितने ही रोगियोंको अपने खर्चसे घर रखकर दवा, पथ्य, खुराक, दूध-फल आदि देकर इलाज करते। उनके यहाँ एक दिन एक मेमन महिला दस-बारह वर्षके अपने लड़केको लेकर दवा कराने आयी। भट्टजीने रोगीकी जाँच-पड़ताल की और सारी बातें पूछीं। महिला ने कहा—‘दादा! बच्चेको दो महीनेसे पेटावमें खून-मवाद पड़ रहा है, दवा वैद्य-डाक्टरोंकी की, पर रोग मिटता नहीं है। यह एक ही लड़का है। इसके पिता गुजर गये हैं। मैं तुम्हारे विश्वासपर आयी हूँ।’

भट्टजीने फिर जाँच की, तदनन्तर बोले—‘माई! तेरे लड़केको प्रमेह-जैसा रोग है। इसे हम यहाँ दवाखानेमें रखेंगे। खाना-पीना जो आवश्यक होगा, यहाँसे दिया जायगा। दो-चार महीने रहेगा और अच्छा हो जायगा। खर्चके लिये तुझे कोई चिन्ता नहीं करनी है।’

वह रोगी लड़का अब्दुलगनी वहाँ तीन महीने चिकित्सा होनेपर अच्छा हो गया और महिला लड़केको लेकर भट्टजीकी आज्ञा पाकर अपने घर चली गयी। इस बातको लगभग बीस वर्ष बीत गये।

जामनगर-नरेश विभाजी जामका स्वर्गवास हो गया और स्टेट मेनेजमेंटके अधिकारमें आ गया। गोरे साहब अधिकारीने जाम साहेबका स्मारक बनानेके लिये धन संग्रह करनेको एक समिति बनायी और दरबार किया। उसमें राजके भाई-बन्धु, सेठ-साहूकार, अफसर तथा प्रजाके अगुआ लोग आये। धन इकट्ठा करनेको चन्दा लिखा जाने लगा। कागज पहले भट्टजीके हाथमें आया, उन्होंने (१०००) की कोरी॥ भर दी। फिर नगरसेठके हाथमें आया। नगरसेठके सामने देखकर दीवान साहेबने पूछा—‘सेठ! दस हजार कोरी भरियेगा न?’ सेठने कहा—‘दीवान साहेब, भट्टजीने एक हजार कोरी भरी है, अतः इससे अधिक मैं नहीं भर सकता, मैं भी हजार ही भरूँगा!’ भट्टजीने कहा—‘लाओ मैं सुधार दूँ।’ कागज लेकर भट्टजी एक हजारपर एक शून्य और चढ़ाकर उसे दस हजार बना दिया। दीवान साहेबने कहा—‘लीजिये सेठजी! दस हजार कोरी भरिये। भट्टजीने दस हजार कर दी है।’ सेठ बोले—‘बाबा, भट्टजीपर तो जाम बापूके चार हाथ हैं, वे तो अभी एक सुन्नी और चढ़ा देंगे।’ भट्टजीने कहा—‘लाओ कागज।’ और कागजमें दस हजारपर एक सुन्नी और चढ़ाकर एक लाख कोरी कर दी। नगरसेठने दस हजार भरकर हाथ जोड़ते हुए कहा—‘मेरी तो इतनी ही औकात है।’

दूसरे दिन गाँवमें बात फैली। भट्टजीने चिट्ठेमें एक लाख कोरी भरी। किसीने कहा—‘भट्टजीका हाथ तो तंगीमें है, वे कहाँसे कब देंगे?’ यों चर्चा चल रही थी। एफ्रिका नेटालके प्रवासी सेठ अब्दुल्ला भाई अपनी दूकानपर बैठे-बैठे सब सुन रहे थे। कुछ ही क्षणों बाद उन्होंने अपने मुनीमसे कहा—‘यह रकम भट्टजीकी ओरसे अपने देनी है। बचपनमें उन्होंने मेरी बहुत देख-भाल करके मुझे अच्छा किया था। लाख कोरी अर्थात् दो हजार

* ‘कोरी’—उस समय एक चाँदीका सिक्का होता था।

गिन्नियाँ। तुम थैलीमें भरकर पहलेसे तैयार रखो। मैं दुपहरको भट्टजीकी सेवामें हो आऊँगा।'

भट्टजीके दवाखानेके प्रवेशद्वारमें कचहरी थी, वहाँ हिसाब-किताब लिखनेवाले मुनीम गुमास्ते बैठते। दुपहरके बाद चार बजे अब्दुल्ला सेठ आकर मुनीम भाईशंकरको सलाम करके बैठ गये।

सेठने पूछा—भाईशंकरजी, भट्ट दादाने जाम साहेबके स्मारकमें लाख कोरी भरी है—यह क्या सच्ची बात है ?

मुनीमने कहा—हाँ ! बात सच्ची है भाई !

‘तो वे यह रकम कब भरेंगे ?’

‘भाई ! भगवान् चार-आठ दिनोंमें दे देंगे तब भर दी जायगी।’

सेठने कहा—तो भाई, हमारी दूकानसे यह रकम अभी ले आओ। धर्मके काममें देर कैसी ? भट्टजी महाराजका

मुझपर बड़ा उपकार है। बचपनमें मुझे अपने यहाँ रखकर दवा आदि की और मुझे अच्छा किया था।

मुनीम बोले—‘भट्टजीसे बात करके कल ले आऊँगा।’

अब्दुल्ला सेठने कहा—मुझे कहाँतक धरोहरकी रखवाली करनी है ? अभी गाड़ीमें मेरे साथ चलो। मेरा आदमी आपको गिन्नियोंकी थैलीके साथ यहाँ पहुँचा जायगा। भट्टजी उलाहना दें तो मेरा दोष।

सेठने मुनीमजीको दो हजार गिन्नियाँ गिन दीं और एक अरब सिपाहीके साथ गाड़ीमें बैठाकर भट्टजीके घर पहुँचा दिया। शामको भट्टजी रोगियोंको देखकर जब घर लौटे, तब भाईशंकर मुनीमने उनको सब बातें बतलायीं। भट्टजीने प्रभुका आभार मानते हुए कहा—‘भाईशंकर ! देखा न धर्मकी चाल कितनी तेज होती है। कल सवेरे ही राजकी तिजोरीमें भर आना और सेठको संध्याके समय चाय-पानीके लिये बुलाते आना।’ ‘अखण्ड आनन्द’

—वैद्य मणिशंकर पोपटलाल भट्ट

गोरक्षा-महाभियान

[गोहत्या सर्वथा बंद हो, इसके लिये भगवदाराधन, देवाराधन, व्रत तथा अन्यान्य कार्यक्रम]

‘कल्याण’के गताङ्कमें प्रकाशित लेखोंके अनुसार देशके विभिन्न स्थानोंसे बड़े उत्साहपूर्ण पत्र आ रहे हैं। भगवदाराधन, देवाराधनका कार्यक्रम उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। अपने-अपने विश्वासके अनुसार लोग आराधना-उपासना कर रहे हैं। कई जगह बड़े विष्णुयाग और महारुद्रयाग हो रहे हैं, अखण्ड रुद्राभिषेक चल रहे हैं। वेदपाठ, श्रीमद्भागवत-पारायण, वाल्मीकिरामायणपाठ, दुर्गासप्तशतीके अनुष्ठान, गायत्री-जप-अनुष्ठान, महामृत्युञ्जयजप, विष्णुसहस्रनामपाठ, दुर्गा-मन्त्रजप, प्रणवजप, षोडशनामात्मक भगवन्नाममन्त्र-जप, रामनाम-जप, रामरक्षास्तोत्रपाठ, शंकरसहस्रकलशा-भिषेक, नारायणकवच-पाठ, शिवपञ्चाक्षरमन्त्र-जप, श्रीराम-चरितमानसपारायण-अनुष्ठान, सुन्दरकाण्ड-अनुष्ठान, राधा-

उपासना आदि तथा विभिन्न प्रकारके व्रत-उपवास, मौन-धारण आदि अनेकविध आराधनाके समाचार मिल चुके हैं।

प्रसिद्ध संत श्रीहरिबाबाजी बाँधपर कई गाँवोंके महानुभाव कीर्तन कर रहे हैं।

कई सज्जनोंने आत्मसमर्पण, आमरण अनशन, सब प्रकारसे पूर्ण सहयोग, जनमत तैयार करनेमें सहयोग और अभियान-समितिके सदस्य बनने-बनानेकी बातें लिखी हैं। कई स्थानोंपर सभाएँ हुई हैं, जुद्धस निकले हैं। कई जगह गोवधनिवारिणी समितियाँ और संघ बन गये हैं।

इन सब संवाद देनेवालोंमें उत्तरप्रदेश, मध्य-प्रदेश, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, बिहार, काश्मीर, राजस्थान, हिमाचल, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल, आन्ध्र,

संख्या ९]

मैसूर आदि प्रायः सभी राज्योंके लोग हैं, पुरुष भी और महिलाएँ भी। मैं उन सबका हृदयसे कृतज्ञ हूँ और मेरी सभी देशवासियोंसे विनीत प्रार्थना है कि वे अपने-अपने विश्वासके अनुसार स्वयं अधिक-से-अधिक यथा-साध्य भगवदाराधना, देवाराधना करें तथा दूसरोंसे करनेके लिये प्रार्थना-अनुरोध करें जिससे गोमाताकी प्राण-रक्षामें दैवी शक्तिकी सहायता मिले।

सर्वदलीय केन्द्रीय गोरक्षा-अभियान-समितिका निर्माण हो चुका है। प्रत्येक प्रदेशमें गोरक्षा-अभियान-समितियाँ बनायी जा रही हैं। दिल्ली, बम्बई और कलकत्तामें अभियान-समितियाँ बन चुकी हैं। अपने-अपने स्थानोंमें सभी गोभक्तोंको ऐसी समितियाँ बनानी चाहिये। ये समितियाँ गोवध बंद करानेके लिये भगवदाराधन, देवाराधनका प्रचार करेंगी। सदस्य बनायेंगी, गोरक्षा-महाभियानकी सफलताके लिये यथाशक्ति धन प्रेषित करायेंगी और अपने-अपने स्थानोंमें ऐसे सत्याग्रही भर्ती करेंगी जो काम पड़नेपर गोहत्याबंदीके लिये सत्याग्रह करें।

इस महान् कार्यमें सभी भाई-बहिनोंको सक्रिय सहयोग देना चाहिये। गत १ अप्रैलसे श्रीगवानन्दजी आदि साधु-महात्मा दिल्लीमें आन्दोलन चला रहे हैं। इस समय पूज्य स्वामीजी श्रीब्रह्मानन्दजीकी प्रेरणासे साधु धरना दे रहे हैं। अबतक लगभग १५० साधु जेल जा चुके हैं। सनातनधर्म-सभा, आर्यसमाज, हिंदूमहासभा, राष्ट्रीयसेवकसंघ, सिख, जैन आदि सभी संस्थाएँ तथा सभी जातिके लोग एवं साधु-महात्मा आदि गोहत्या बंद करानेमें प्रयत्नशील हैं।

सनातनधर्म-सभा आगामी ५ सितम्बरको दिल्लीमें एक लाख नर-नारियोंका प्रदर्शन करने जा रही है। हिंदूमहासभाके अध्यक्ष महोदय तथा श्रीब्रजेशजी स्थान-

स्थानपर बड़े जोरोंसे लोगोंको जगा रहे तथा उनमें उत्साह भर रहे हैं।

लखनऊमें मुसलमानोंकी संस्था 'जमाते ईमानो हिन्द' की कार्यसमितिकी बैठक हुई है। जिसमें एक प्रस्तावके द्वारा हजरतअलीके एक कथनका स्मरण कराते हुए मुसलमानोंसे कहा गया है कि सरकारद्वारा गोवधबंदीका आदेश जारी होनेके पहले ही वे स्वयं इस कार्यको छोड़ दें।

अनशन करनेकी प्रतिज्ञा करनेवाले सज्जनोंकी संख्या बढ़ रही है। मेरे पास और श्रद्धेय श्रीब्रह्मचारीजी महाराजके पास पचासों पत्र आ चुके हैं और प्रतिदिन आ रहे हैं। गोपाष्टमीतक इनकी संख्या हजारों नहीं तो सैकड़ों तो हो ही सकती है।

कलकत्तेमें एक सज्जनने तथा गुजरातके एक सज्जन-ने केवल जल पीकर रहना आरम्भ कर दिया है। काशी मुमुक्षु-भवनमें एक मौनीबाबाजीने, जो गोहत्या-निवारणार्थ वर्षों पहले अन्न त्याग चुके थे, अब लगभग १७ दिनोंसे जलका भी परित्याग कर दिया है। ये विदेशमें शिक्षा-प्राप्त हैं और उच्च सरकारी अधिकारी भी रह चुके हैं। इनकी स्थिति चिन्तनीय है। यदि इन्होंने जल ग्रहण नहीं किया तो कहा नहीं जा सकता कि 'कल्याण' के ग्राहकोंके पास इस अङ्कके पहुँचनेतक उनकी क्या स्थिति होगी।

प्रसिद्ध गोभक्त श्रीरामचन्द्रजी शर्मा 'वीर'ने दिल्लीमें छः दिन हुए, अनशन प्रारम्भ कर दिया है और उनका वजन घट रहा है। योगिराज श्रीसूर्यदेवजीने जन्माष्टमीसे अनशन करने और उसके पश्चात् जीवित समाधि लेने-तककी बात कह दी है। जैन मुनि श्रीसुशीलकुमारजी प्राणोंकी आहुति देनेपर तुले हैं।

आगामी गोपाष्टमीसे गोवर्धनपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी धार्मिक व्रतके द्वारा प्राणबलिदान और श्रीब्रह्मचारीजी आभरण अनशन करनेवाले हैं।

इन सभीकी परम त्यागमयी तथा बलिदानमयी गोभक्ति परम आदरणीय है। इन सभी महात्माओंके श्रीचरणोंमें मेरे प्रणाम ! अवश्य ही मैं यह प्रार्थना करूँगा कि गोपाष्टमीके पहले अनशन करनेवाले महानुभाव जल्दीमें प्राण देनेकी बात न सोचकर सब साथ ही करते तो अच्छा था।

एक और संतोषकी बात है कि 'संसदीय गोमंच' के नामसे संसद्के सात सदस्योंकी एक सुसंगठित समितिका निर्माण किया गया है। जिसके सदस्य हैं—

(१) सेठ गोविन्ददासजी

(२) श्रीकमलनयन बजाज

(३) श्रीवापूजी अणे

(४) श्रीअटलबिहारो बाजपेयी

(५) श्रीहरिविष्णु कामथ

(६) श्रीडाह्याभाई पटेल और

(७) श्रीप्रकाशवीरजी शास्त्री—ये इस समितिके संयोजक हैं।

यह समिति संसद् तथा संसद्के बाहर गोहत्या-बंदीके पक्षमें जनमत संग्रह करेगी और इस समस्याको सुलझानेके लिये सरकार तथा जनताको सहयोग देगी।

जगद्गुरु अनन्तश्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीनिरञ्जन देवतीर्थजी, जगद्गुरु अनन्तश्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीकृष्णबोधधामजी, जगद्गुरु अनन्तश्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्रीअभिनवतीर्थजी, महात्मा श्रीकरपात्रीजी महाराज, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, जैन मुनि श्रीसुशील-कुमारजी, स्वामीजी श्रीगुरुशरणदासजी, स्वामीजी श्रीगणेशानन्दजी, सरसंघ संचालक श्रीगोलवलकरजी आदि महानुभावोंका आशीर्वाद ही नहीं, त्यागमय सक्रिय सहयोग भी प्राप्त है।

भागलपुरमें बिहार-गोरक्षा-सम्मेलन हो चुका है। अभी कलकत्तेमें पश्चिम बंग गोरक्षा-सम्मेलन होने जा रहा है। और भी कई जगह सम्मेलन हुए हैं तथा हो रहे हैं। नेपालसे एक सज्जन लिखते हैं कि गोवध-निवारण-का जो महाभियान आरम्भ होनेवाला है, उसमें बतलाइये हमलोग क्या सेवा करें। आप यह प्रकाशित कर दें कि गोरक्ष (नेपाल) देशमें गोवधनिषेधके लिये हजारोंकी संख्यामें लोग प्राण देनेको प्रस्तुत हैं। वे गोवध-निवारणार्थ जगह-जगह कीर्तन, यज्ञ तथा भोजन-वस्त्रादि वितरण कर रहे हैं।

इस प्रकार इस समय भगवत्कृपासे सभी ओर उत्साहसे कार्य हो रहा है। पर भारत-सरकारकी घोषणा निराशाजनक है, उसने राज्योंपर सारी बातें ढाल दीं। अतएव अब तो और भी प्रबलरूपसे सर्वत्र आन्दोलन करनेकी आवश्यकता है। किसीका भी जरा भी अनिष्ट न चाहते हुए, न करते हुए भगवत्कृपाके बलपर सम्पूर्ण रूपसे गोवधबंदीके लिये देशभरमें सब प्रकारसे निर्दोष परंतु बहुत ही प्रबल प्रयत्न करना पड़ेगा।

इस प्रकार भगवत्कृपासे सभी ओरसे आन्दोलनमें उत्तरोत्तर प्रगति होती रही, बल बढ़ता रहा तो आशा है भारतके भालसे यह गोहत्याका कलङ्क दूर हो जायगा।

भगवदाराधनाकी सूचना मेरे नाम—कल्याण-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुरके पतेसे भेजें। अन्य सब प्रकारकी सूचनाएँ श्रीविश्वम्भरप्रसादजी शर्मा, मन्त्री केन्द्रीय गोरक्षा-अभियान-समिति, ३ सदर थाना रोड, दिल्ली ६ के पतेपर भेजें। (पृष्ठ १२०५ देखिये)

दिनाङ्क २५ अगस्त

हनुमानप्रसाद पोद्दार

स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजका कार्यक्रम

सम्मान्य स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज आजकल कहाँ हैं और उनके प्रवचनादिका क्या कार्यक्रम है, इस सम्बन्धमें कई सज्जन पूछा करते हैं अतएव इस विषयमें यह निवेदन है कि स्वामीजी महाराज बम्बईमें वापस कर रहे हैं। वे इस समय वहाँ तुलसीनिवास, डी० रोड, चर्चगेटमें ठहरे हैं। आजकल वे प्रातःकाल ७।। से ८।। तक माधवबाग श्रीलक्ष्मीनारायण-मन्दिरके प्राङ्गणमें तथा संध्याको ६।। से ७।। तक चर्चगेट तुलसीनिवासमें ही प्रवचन करते हैं। आगामी आश्विन कृष्ण प्रतिपदा दिनाङ्क २९।९।६६ से उनका सिद्धान्त वाडी, दादीसेठ अग्यारीलेनमें ठहरनेका और पूरे श्राद्धपक्षभर केवल संध्याको माधवबागमें प्रवचनका कार्यक्रम है। तदनन्तर नवरात्रमें धोबीतालाव मैदानमें एक पंडालके अंदर दुपहरसे संध्यातक श्रीरामचरितमानसके सामूहिक नवाहपारायण करानेका कार्यक्रम है। बम्बई-निवासियोंको खास तौरपर सत्संगसे लाभ उठाना चाहिये।

दशहरे और दीपावलीके शुभ त्यौहारोंपर

भगवान् श्रीविष्णु, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीशिव तथा भगवती लक्ष्मी, दुर्गा आदिके भव्य दर्शन

गीताप्रेस, गोरखपुरकी सुन्दर-सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित चित्रावलियाँ मँगवाइये

(१) चित्रावली आकार १५×२० इञ्च न० १, २, ३, ४—

इनमें प्रत्येकमें २ सुनहरे तथा ८ बहुरंगे सुन्दर चुने हुए चित्र हैं। प्रत्येकका मूल्य रु० ३.५०, डाकखर्च प्रत्येकका रु० १.१५। चारोंका एक साथ मूल्य १४ रु०, बाद कमीशन ८७ पैसा, बाकी १३.१३, डाकखर्च २.०७, कुल १५.२०।

(२) चित्रावली आकार ११×१४। इञ्च न० १—

इसमें १२ सुन्दर बहुरंगे चित्र हैं। मूल्य रु० २.५०, डाकखर्च १ रु०।

(३) चित्रावली आकार १०×७। इञ्च न० १, २, ३—

इनमें प्रत्येकमें २ सुनहरी और १८ बहुरंगे चित्र हैं। प्रत्येकका मूल्य रु० १.६५, डाकखर्च प्रत्येकका १ रु०। तीनोंका एक साथ मूल्य डाकखर्चसहित कुल ६.२०।

(४) कल्याण चित्रावलि नं० १, २, ३, ४, प्रत्येकका मूल्य रु० १.३१, डाकखर्च प्रत्येकका रु० १.०४। चारोंका एक साथ मूल्य डाकखर्चसहित कुल ६.७५।

ये 'कल्याण' या 'कल्पतरु'के वचे हुए चित्रोंकी बनायी जाती हैं। प्रत्येकमें २५ बहुरंगे चित्र हैं। मूल्य सस्ता है।

विशेष सूचना

१-चित्रावलियोंके चित्र अलगसे नहीं मिलते। और भी किसी तरहके चित्र फुटकर नहीं मिलते।

२-एकसे अधिक चित्रावलियाँ मँगवानेपर डाकखर्चमें प्रति चित्रावली ५५ पैसे रजिस्ट्रीखर्चकी बचत होगी। बड़े आर्डरका माल रेलसे मँगवानेसे बहुत बचत होती है।

विशेष जानकारीके लिये चित्रावलियोंकी सूची अलगसे मँगवाइये। यहाँ आर्डर भेजनेके पहले स्थानीय पुस्तक-विक्रेतासे माँगिये। उनसे लेनेपर डाकखर्चकी पूरी बचत हो सकती है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

‘गोरक्षा-महाभियान’सम्बन्धी कुछ सूचनाएँ

भारतवर्ष एवं विश्वके सर्वविध कल्याणके लिये एवं धर्मकी रक्षा और उसकी शक्ति बढ़ानेके लिये भारतवर्षमें गौका वध पूर्णरूपसे सदाके लिये बंद होना ही चाहिये। जबतक गोवध होता रहेगा, नये नये अकल्याण, उपद्रव, दुःख तथा विनाशकी सृष्टि होती रहेगी।

केन्द्रीय सरकारकी घोषणा आशाप्रद नहीं है। उसमें पुराना राग ही अलापा गया है। अतएव यथाशक्ति दिल्लीमें तथा भारतमें और सभी जगह गोवधबंदीके लिये निर्दोष आन्दोलन करना है।

विभिन्न धर्मोंकी जितनी संस्थाएँ हैं, सभी अपने-अपने विश्वास तथा मान्यताके अनुसार भगवत्प्रार्थनाका आयोजन करें। संस्थाओंकी ओरसे सभाएँ हों—शान्ति तथा व्यवस्थाके साथ जुलूस निकाले जायँ, प्रदर्शन हों, प्रस्ताव पास किये जायँ और प्रस्तावोंकी प्रतिलिपि अपने प्रदेशके मुख्य मन्त्री, केन्द्रके प्रधान मन्त्री तथा गृहमन्त्री और माननीय राष्ट्रपति महोदयकी सेत्रामें भेजें।

पूर्णतया गोवधबंदीके लिये करोड़ों नर-नारियोंके हस्ताक्षर करवाकर राष्ट्रपतिको भेजे जायँ।

जगह-जगह सभाएँ हों और उनमें यह प्रस्ताव हो कि भारतसरकार तुरंत विधानको बदलकर या तमाम राज्यसरकारोंसे कहकर सम्पूर्ण भारतमें पूर्णतया गोवधपर प्रतिबन्ध लगा दे।

जहाँ गोवधनिषेधक कानून हैं वहाँ बैल-साँड़ मारनेकी छूट है। अतएव पूर्णतया गोवध निषेधका अर्थ यह है कि सब तरहकी तरुण-बूढ़ी गौएँ, बछड़े, बछड़ी, बैल, साँड़—कोई भी न मारे जायँ। अभी तो बंगाल आदिमें जवान-जवान दुधारू गौएँ निकम्मी बतायी जाकर काटी जाती हैं।

जितनी भी देशभरकी व्यापारी संस्थाएँ—चेम्बर आदि हैं तथा मजदूरोंकी जितनी संस्थाएँ (युनियन) हैं, सब प्रस्ताव स्वीकृत करके केन्द्र-सरकारके उच्चाधिकारियोंको तथा माननीय राष्ट्रपति एवं प्रधान मन्त्रीको लिखें कि वे अविलम्ब गोवध बंद कर दें।

यह भी सबको समझाया जाय कि किसी भी प्रकारसे गोवधके समर्थक किसीको भी चुनावमें वोट नहीं दिया जाय।

जनतामें त्यागकी भावना जाग्रत की जाय और यदि कहीं अहिंसापूर्ण सत्याग्रहका आयोजन हो तो उसमें सम्मिलित होकर जेल जानेके लिये लाखों-लाखों लोग तैयार हों। इसके लिये पूर्ण प्रयत्न किया जाय और स्थान-स्थानपर संस्थाओंद्वारा उनके नाम लिखे जायँ तथा सबकी सूची ‘मन्त्री’, ‘गोरक्षा-महाभियान-समिति’, ३ ‘सदर थाना रोड, दिल्ली ६’ को भेजी जाय। इसी प्रकार आमरण अनशन करनेकी इच्छावालोंके हस्ताक्षरयुक्त नाम-पते भी भेजे जायँ। आन्दोलनके संचालनके लिये धन आदि भी इसी पतेपर भेजा जाय और इस सम्बन्धमें कुछ भी जानकारी प्राप्त करनी हो तो उपर्युक्त पतेपर ही पत्र-व्यवहार किया जाय।

कल्याण



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-विश्वामित्रके साथ श्रीराम-लक्ष्मण [कविता] (गीतावली-श्रीतुलसीदासजी)	१२१३
२-कल्याण ('शिव')	१२१४
३-श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी (पावन जन्माष्टमी- महोत्सवपर लोकपूज्य श्रीशारदाचन्द्र- मौलीश्वरसेवा-निविष्ट-चित्त श्रीशारदा- पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य- महास्वामिपादका संदेश)	१२१५
४-गो-महिमा और गोरक्षाकी आवश्यकता (ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्री- जयदयालजी गोयन्दका; प्रेषक-श्री- शालिग्रामजी)	१२१६
५-सावधान ! तुम साधक हो ! [श्रीस्वामी पथिकजी महाराजका उपदेशामृत] (प्रेषक- 'कश्चित्')	१२१८
६-आगेकी भूमिका (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा, वी० ए०, एल्-एल् वी०)	१२१९
७-गीतोक्त साधन-सम्पत्ति (संकलनकर्ता और प्रेषक-श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका)	१२२०
८-केवल आश तुम्हारी ही है [कविता] (श्रीशिवशंकरलालजी त्रिवेदी, वी० ए०, एल् टी०)	१२२४
९-पूर्णपरात्पर भगवान् श्रीकृष्णका आविर्भाव (श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके मङ्गल- महोत्सवपर हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन)	१२२५
१०-अपना रूप और अपनी मुक्ति (श्रीराधाकृष्णजी)	१२३१
११-मन्त्र-सिद्धि [कहानी] (श्री 'चक्र')	१२३४
१२-भक्तिमार्ग—इन्द्रियनिग्रहका सरलतम मार्ग है (श्रीअगरचन्द्रजी नाहटा)	१२३८

कल्याण, सौर कार्तिक २०२३, अक्टूबर १९६६

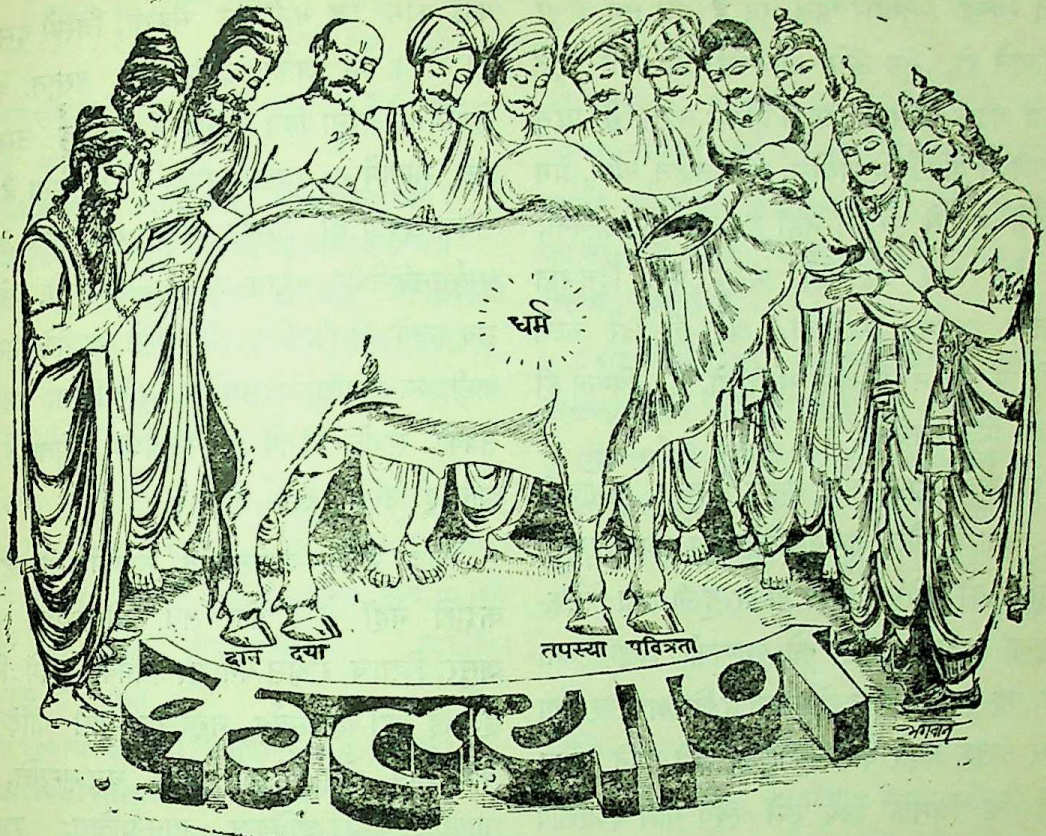
विषय	पृष्ठ-संख्या
१३-धन्ना भक्त-अन्न बोया कहीं, उपजा कहीं (क० मा० गोपालजी शर्मा; शास्त्री, सा० रत्न)	१२४०
१४-तुलसीका उपमान कमल और उसके भाव (डा० श्रीगोपीनाथजी तिवारी)	१२४२
१५-जीवनकी संव्यामें (श्रीश्रीरामनाथजी सुमन)	१२४५
१६-आप अपने काममें रस लेते हैं ! (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	१२४९
१७-नाटकके अभिनेताकी भाँति ममता- आसक्ति न रखकर उचित कार्य करो [कविता]	१२५२
१८-बस, तनिक-सी देर हो गयी थी ! (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)	१२५३
१९-धर्म-निरपेक्ष (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)	१२५५
२०-क्या प्रदर्शन ही जीवन है ? (श्रीसुन्दरलालजी बोहरा)	१२५८
२१-कटोले किसपर ? (श्रीरामकृष्णप्रसादजी वी० ए०, वी० एल्०, एडवोकेट)	१२६०
२२-संयुक्त परिवार जो वियुक्त होते जा रहे हैं (श्रीकृष्णकुमारजी त्रिवेदी, एम्० एस्-सी०, साहित्यरत्न)	१२६२
२३-राष्ट्रीय एकताके लिये गोरक्षा अनिवार्य है (श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी)	१२६३
२४-मानवता जब दानवता बन जाती है (श्रीदुर्गेश)	१२६४
२५-दक्षिण भारतकी तीर्थ-यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)	१२६५
२६-श्रीभगवन्नाम-जपके लिये प्रार्थना (चिम्नलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री)	१२७०
२७-पढ़ो, समझो और करो	१२७२

चित्र-सूची

१-देवी उमा	(रेखाचित्र)	मुखपृष्ठ
२-विश्वामित्रके साथ श्रीराम-लक्ष्मण	(तिरंगा)	१२१३

वार्षिक मूल्य } जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनन्द भूमा जय जय ॥
भारतमें रु० ७.५० } जय जय विश्वरूप हरि जय । नय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
विदेशमें रु० १०.०० } जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥
(१५ शिल्लिङ्ग)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्ब्रह्मर्षिराजर्षिर्भिर्विद्वद्भिरपि वन्द्यते स जयताद्वर्मो जगद्धारणः ॥

वर्ष ४० }

गोरखपुर, सौर कार्तिक २०२३, अक्टूबर १९६६

{ संख्या १०
पूर्ण संख्या ४७९

विश्वामित्रके साथ श्रीराम-लक्ष्मण

बोड राजसुवन राजत मुनिके संग ।

नखसिख लोने, लोने बदन, लोने लोयन, दामिनि-वारिद-वर वरन अंग ॥
सिरनि सिखा सुहाइ, उपवीत पीत पठ, धनु-सर कर, कसे कटि निखंग ।
मानो मख-रुज निसिचर हरिवेको सुत पावकके साथ पठये पतंग ॥
करत छाँह घन, बरवै सुमन सुर, छवि वरनत अतुलित अनंग ।
तुलसी प्रभु बिलोकि मग-लोग, खग-मृग प्रेममगन रंगे रूप-रंग ॥

—गीतावली—तुलसीदासजी

कल्याण

याद रखो—तुम्हारे पास धन है और तुम प्रचुर धन कमाते हो, तुम ऊँचे अधिकारी हो और बहुत लोग उच्च पदके कारण तुम्हारी प्रतिष्ठा करते हैं परंतु तुम्हारा जीवन यदि ईश्वर-विश्वास, सर्वभूतहित, त्याग, प्रेम आदि दैवी गुणोंसे सम्पन्न नहीं है और तुम कामना, क्रोध, लोभ तथा अहंकारके फंदेमें फँसे दिन-रात अशान्तिका अनुभव करते हो, अंदर-ही-अंदर जलते रहते हो तो तुम न तो अभी सुखी हो, न भविष्यमें ही तुम्हें सुख मिल सकता है।

याद रखो—कामनावाला मनुष्य निरन्तर अभावकी आगमें जलता है और कामनापूर्तिमें लोभ तथा कामनाकी अपूर्तिमें क्रोध-क्षोभके वशमें होकर दुखी तथा विवेक-शून्य हुआ रहता है। क्रोध तो मनुष्यको राक्षस बना देता है, वह इतना नृशंस हो जाता है कि अपनेपर तथा दूसरोंपर घातक प्रहार कर बैठता है, ऐसी हानि पहुँचा देता है कि जिसके लिये उसे स्वयं भारी पश्चात्ताप करना पड़ता है। लोभ तो पापका वाप ही है। लोभी मनुष्य ऐसा कौन-सा जघन्य पाप है, जो नहीं करता। इन सबका मूल है अविद्याजनित अहंकार। अतएव इन सबसे बचकर जो ईश्वरपर अटल विश्वास रखता है, वही सुखी रहता है और उसीका भविष्य भी सुखपूर्ण होता है।

याद रखो—ईश्वरमें विश्वास रखनेवाला नित्य निर्भय, निश्चिन्त तथा कर्तव्यपरायण रहता है। पाप-ताप-दैन्य उसके पास आ नहीं सकते; क्योंकि वह सदा-सर्वदा ईश्वरकृपाके प्रकाशमें रहता है और रहता है भगवत्कृपाके संरक्षणमें।

याद रखो—जिस मनुष्यके हृदयमें सर्वभूतहितकी प्रबल भावना है, वह अपने धन तथा अधिकारका उपयोग समस्त प्राणियोंके हितमें ही करेगा। ऐसा

कोई काम वह नहीं कर सकता, जिसमें दूसरे प्राणीका तनिक भी अहित होता हो। वस्तुतः वह सबके हितमें ही अपना हित मानता है, अतएव उसका स्व-क्षुद्र सीमामें न रहकर सर्वत्र फैल जाता है, अतएव सबका स्वार्थ ही उसका अपना स्वार्थ बन जाता है। 'सर्वभूतहितैषी' मनुष्य जो कुछ करता है, सोचता है, सब सबके हितके लिये ही। ऐसे पुरुषोंके पास रहने-वाली धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा, बुद्धि-विद्या, बल-पराक्रम, सबका सबके हितमें ही सदुपयोग होता है। पारथ त्याग ही उसका स्वार्थ होता है।

याद रखो—शान्ति-सुख त्यागमें ही है भोगमें कदापि नहीं है। भोग तथा भोगाकाङ्क्षा मनुष्यको असुर, पिशाच, राक्षस बनाकर पतनके गर्तमें गिरा देती है, वह यहाँ-वहाँ सर्वत्र नरक-यन्त्रणासे पीड़ित रहनेको बाध्य होता है। प्रचुर धन-सम्पत्ति, मकान-जायदाद, पद-अधिकार, मान-प्रतिष्ठा, पूजा-कीर्ति, लौकिक विद्या-बुद्धि उसे कदापि शान्ति-सुख तो दे ही नहीं सकते, वरं इनके कारण उसकी अशान्ति, दुःखोंकी अनुभूति तथा भयानक शारीरिक और मानसिक पीड़ा और भी बढ़ जाती है।

याद रखो—त्याग ही प्रेमकी आधार-भित्ति है। जहाँ त्याग है वहीं प्रेम है और जहाँ प्रेम है, वहाँ अनन्त सुख है। प्रेमका स्वरूप ही है—जिसके प्रति प्रेम है उसके सुख-हितके लिये सहज ही सर्वस्व त्याग तथा उसके सुख-हितके लिये ही जीवनकी प्रत्येक चेष्टा-क्रियाका होना। प्रेममें देना-ही-देना है। अतएव वहाँ सहज सुहृदता, सहज आत्मीयता अपने-आप रहती है तथा परम सुख-शान्तिके द्वारा उसका जीवन आनन्दमय बन जाता है। वास्तवमें परमेश्वर ही प्रेम है और प्रेम ही परमेश्वर है।

‘शिव’

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी

[पावन जन्माष्टमी-महोत्सवपर लोकपूज्य श्रीशारदाचन्द्रमौलीश्वर-सेवा-निविष्ट-चित्त श्रीशारदापीठाधीश्वर
जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य-महास्वामिपादका संदेश]

श्रीकृष्ण-शब्दसे समस्त पापोंका अपकर्षण करनेवाला—
यही अर्थ बोधित होता है—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ।

तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥

“कृष्” धातु सत्ताका वाचक है और ‘ण’ निर्वृति
(परमानन्द) का बोध कराता है। इन दोनों—
सत्ता और आनन्दके समवेतरूप परब्रह्म ही ‘श्रीकृष्ण’
नामसे अभिहित होते हैं।”

शास्त्रके उपर्युक्त वचनसे यही निश्चित होता है
कि सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा ही ‘श्रीकृष्ण’ शब्दका
अर्थ है। वे ही भगवान् धर्म-संस्थापनके लिये पृथ्वीपर
अवतीर्ण हुए—यह श्रीमद्भगवद्गीतामें उद्घोषित
किया गया है। यथा—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

‘साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पापकर्म
करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी
तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट
हुआ करता हूँ।’

—यह गीता-वचन है।

यहीं विचार यह होता है कि आश्चर्यमें डालनेवाले
असंख्य प्रापञ्चिक व्यवहारोंमें सबसे अधिक आश्चर्य-
जनक बात है आत्मस्वरूपकी विस्मृति ही। इस
नैसर्गिक आत्मविस्मृतिसे सभी मनुष्य असंख्य क्लेश
भोगते हैं। यह निश्चित है कि प्रायः जनताका
अपरिहार्य रोग जन्म-मृत्युरूपे संसार ही है। यह
संसार अत्यन्त असह्य क्लेशोंका कारण है। इस भयानक
रोगसे अपनेको मुक्त करनेके लिये भगवान्की दयाका
ही सबको सम्पादन—अर्जन करना चाहिये। समस्त
पुरुषार्थोंका मधुर फल सर्वशक्तिमान् भगवान्के
कारुण्यराशिसे पूर्ण प्रसाद (अनुग्रह) की उपलब्धि
ही है—इसमें संदेहके लिये लेशमात्र अवसर नहीं है।

भगवदाज्ञारूप शास्त्रने इस भवरोगकी शामक औषध
आत्मतत्त्वका बोध एवं आत्मतत्त्व-बोधमें सहायक निष्काम-
कर्मके अनुष्ठानको ही बताया है और आत्मविस्मृति-
का नैसर्गिक मूल है—देहात्मबोधरूप मिथ्या ज्ञान, जिसे
‘अविद्या’ कहते हैं।

इस विश्वप्रपञ्चमें शान्तिका प्रवाह तथा शाश्वत
सुखका दर्शन धर्मकी वृद्धिसे ही सम्भव है। इसके
विपरीत धर्मकी हानिसे विपरीत फल अर्थात् अशान्तिका
प्रवाह एवं स्थायी दुःख ही दृष्टिगोचर होगा। धर्मका
हास होनेपर अधर्मका बल बढ़ जाता है। साधुताका
बहिष्कार—निर्वासन हो जाता है। असाधुता तीव्रतर हो
जाती है। ऐसे अवसरपर भगवान् मनुष्यरूपमें अवतरित
होते हैं। द्वार नामक तीसरे युगमें साधुओंके अत्यन्त
पीड़ित होनेपर, जिन्हें भगवान्के सिवा दूसरी कोई गति
नहीं होती, भगवान् वैकुण्ठनाथ मानव-शरीरको ग्रहणकर
पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए और उन्होंने लोककी रक्षा की।
इस अवतारमें उन्होंने भगवान्ने सनातनधर्मका उपदेश
करते हुए अर्जुनको निमित्त बनाकर आत्मज्ञानियोंको भी
उपदेश दिया। श्रीकृष्णने उपनिषदोंके परम रहस्यका
ज्ञान लोगोंको गीताका उपदेश देकर करवाया, जो
गीता अमृतकी वर्षा करनेवाली एवं स्वयं भी अमृतरूपा
है तथा स्वरूप एवं विषय दोनों ही दृष्टियोंसे अन्य सभी
विद्याओं—शास्त्रोंसे बहुत आगे बढ़ी-चढ़ी है। इसीलिये सभी
भारतवासी इन भगवान् श्रीकृष्णकी अवतरण-तिथिके दिन
पूजा-अर्चनाद्वारा उन्हें परितुष्ट करनेमें प्रवृत्त होते हैं।
वह मङ्गलमय दिवस जन्माष्टमी अथवा कृष्णाष्टमी वर्तमान
पराभव नामक संवत्सरमें सौर भाद्रपदके कृष्णपक्षमें
बुधवार दिनाङ्क ७।९।६६ को पड़ता है।

उस दिन दिनभर उपोषित रहकर निष्कपट भक्ति-
पूर्वक भगवद्गीताके अध्ययन एवं स्तोत्रपाठ आदिके द्वारा
भगवान् राधापतिकी आराधना करके उनके अत्यन्त महिमा-
शाली अनुग्रहका पात्र सभी मनुष्योंको बनना चाहिये।

गौ-महिमा और गौरक्षाकी आवश्यकता

(लेखक—ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीजयदयालजी गोयन्दका)

आज भारतवर्षकी जैसी दुर्दशा है, उसे देखकर विचारवान् पुरुषमात्र प्रायः दहल उठेंगे; भारतवर्षकी वह पुरानी सभ्यता, उसकी शिक्षाप्रणाली और उसका बल, बुद्धि, तेज आदिसे भरा हुआ जीवन आज कहाँ है ? जिस भारतवर्षसे अन्य समस्त देशोंके सहस्रों नर-नारी शिक्षा ग्रहण कर अपना जीवन उन्नत बनाते थे, आज उसका वह अलौकिक गौरव कहाँ है ? आज तो वह सर्वथा बलहीन, विद्याहीन, बुद्धिहीन, गौरवहीन और धनहीन होकर अपदस्थ हो गया है । इस अवनतिका कारण क्या है ? विचार करनेसे अनेकों कारण जान पड़ते हैं । उन्हीं कारणोंमेंसे पशुओंका हास भी एक प्रधान कारण है ।

× × ×

सब पशुओंकी उन्नतिकी बात तो दूर रही, पशुओंमें सर्वश्रेष्ठ गौएँ, जिनका महत्त्व शास्त्रोंमें धर्मकी दृष्टिसे भी बहुत अधिक बतलाया गया है और जिसका आदर्श स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने व्रजमें गौओंको चराकर दिखलाया है तथा जिसे वैश्योंके लिये धर्मका प्रधान अङ्ग बतलाया है (गीता १८।४४), जो देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य आदि सबको अपने दूध-दहीके द्वारा तृप्त करनेवाली हैं, आज उनकी कितनी उपेक्षा तथा क्रूर हिंसा हो रही है, यह देखकर चित्तमें खेद हुए बिना नहीं रह सकता । प्रतिवर्ष लाखोंकी संख्यामें गौओंका हास होता चला जा रहा है तथापि हिंदू जनता उनकी रक्षासे इस प्रकार उपराम-सी हो रही है, मानो उसे इस बातकी खबर ही नहीं है । इसका भयानक परिणाम यह हो रहा है कि मनुष्य-जीवनके लिये धर्म और स्वास्थ्य दोनोंकी दृष्टिसे अत्यन्त आवश्यक माने हुए दूध, घी, दही आदिका सर्वसाधारणके लिये प्राप्त होना

कठिन होता जा रहा है । दूध, दहीके अभावसे भारतीय संतानका स्वास्थ्य किस प्रकार गिरता जा रहा है, यह तो धर्मको न माननेवाले भी प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं ।

गोधन हमारा सबसे बड़ा धन है—उससे हमारा धर्म-कर्म सब कुछ चलता है तथा हमारे शरीरोंका पोषण होता है । गाय और बैलोंके बिना हमारा जीवन ही कठिन हो जायगा । ऐसी दशामें प्रत्येक भारतवासी-का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह गौओंकी रक्षाके लिये तन, मन और धनसे भी कटिबद्ध हो जाय । प्रत्येक भारतीय गृहस्थको चाहिये कि वह कष्ट सहकर भी कम-से-कम एक गौ अपने घरमें अवश्य रखे । जिस समय भारतमें गौओंकी अधिकता थी, उस समय हमारा यह भारतवर्ष सुख-समृद्धिसे पूर्ण था । यहाँ दूध-दहीकी नदियाँ-सी बहती थीं । जिस मक्खन और घीके आज हमलोगोंको दर्शन दुर्लभ-से हो रहे हैं, उसे भगवान् श्रीकृष्ण अपनी बाल्यावस्थामें बंदरोंको छुटाते थे । अकेले नन्दबाबाके यहाँ नौ लाख गायें थीं और एक-एक राजा लाख-लाख गायोंका दान कर देते थे । आज हमारे गो-धनका जो भयंकर हास दृष्टि-गोचर हो रहा है, वह हमारे ही प्रमादका दुष्परिणाम है । हमें चाहिये कि अब भी चेतें और इस छुटते हुए धनको बचानेकी चेष्टा करें ।

× × ×

प्राचीन समयमें लोग गौरक्षाके लिये बड़े-बड़े कष्ट सहनेको तैयार रहते थे, गौके प्राण बचानेके लिये अपने प्राणोंकी भी आहुति देनेमें नहीं हिचकते थे । महाराज दिलीपकी गोभक्ति और अर्जुनका गौरक्षा-व्रत इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं । राजा दिलीप चक्रवर्ती

संख्या १०]

सम्राट् थे । गुरु वसिष्ठकी आज्ञासे उन्होंने उनकी गौ नन्दिनीकी सेवाका भार अपने ऊपर ले लिया । इतने बड़े सम्राट् होनेपर भी उन्हें गो-सेवा करनेमें लज्जा नहीं आयी । वे स्वयं उसे चरानेके लिये जंगलमें ले जाते और इष्टदेवीकी भाँति उसकी सेवामें दत्तचित्त रहते । वे उसके बैठनेपर बैठते, खड़े होनेपर स्वयं खड़े हो जाते, उसके भरपेट चर लेनेपर ही स्वयं अपनी भूख शान्त करते और उसको जल पिलाकर ही स्वयं जल ग्रहण करते । एक दिन नन्दिनी हरी-हरी घाससे सुशोभित हिमालयकी कन्दरामें प्रवेश कर गयी । उस समय उसके हृदयमें तनिक भी भय नहीं था । राजा दिलीप हिमालयके सुन्दर शिखरकी शोभा निहार रहे थे । इतनेमें ही एक सिंहने आकर नन्दिनी-को बलपूर्वक धर दबोचा । राजाको उस सिंहके आनेकी आहटतक नहीं मालूम हुई । सिंहके चंगुलमें फँसकर नन्दिनीने दयनीय स्वरमें बड़े जोरसे चीत्कार किया । राजाने सहसा पर्वतकी ओरसे दृष्टि हटाकर गौके चिल्लानेका कारण जानना चाहा । उन्होंने देखा, गौका मुख आँसुओंसे भीगा हुआ है और उसके ऊपर भयङ्कर सिंह चढ़ा हुआ है । यह दुःखपूर्ण दृश्य देखकर राजा व्यथित हो उठे । उन्होंने सिंहके पंजेमें पड़ी हुई गौको फिरसे देखा और तरकससे एक बाण निकालकर उसे धनुषकी बोरीपर रक्खा तथा सिंहका वध करनेके लिये धनुषकी प्रत्यक्षाको खींचा । इसी समय सिंहने राजाकी ओर देखा । उसकी दृष्टि पड़ते ही उनका सारा शरीर जड़प हो गया । अब उनमें बाण छोड़नेकी शक्ति न रही । इससे वे बड़े विस्मित हुए । जब राजाने देखा कि और किसी उपायसे गौकी रक्षा होनी कठिन है, तब वे स्वयं जाकर सिंहके सामने पड़ गये और उससे कहने लगे कि 'तू इस गायको छोड़ दे और इसके बदलेमें मेरे मांससे अपनी भूख शान्त कर ले ।' वह सिंह और कोई नहीं था, नन्दिनीकी माया थी । राजा-

की परीक्षाके लिये ही उसने यह माया रची थी । राजाके इस अनुपम त्यागको देखकर नन्दिनी प्रसन्न हो गयी । थोड़ी देरके बाद राजाने देखा कि कहीं कुछ नहीं है, अकेली नन्दिनी मौजसे घास चर रही है ।

× × ×

अर्जुनके गोरक्षा-व्रतकी बात भी प्रसिद्ध ही है । देवी द्रौपदीके सम्बन्धमें देवर्षि नारदके उपदेशसे पाण्डवोंमें परस्पर यह तय हो गया था कि द्रौपदी पारी-पारीसे पाँचों भाइयोंके पास रहेंगी और जिस समय वे एक भाईके पास एकान्तमें होंगी, उस समय कोई दूसरा भाई यदि उनके कमरेमें चला जायगा तो उसे बारह वर्षतक क्षत्र्य-पूर्वक राज्यसे बाहर रहना होगा । एक समयकी बात है, कुछ लुटेरे एक ब्राह्मणकी गौको चुराकर लिये जा रहे थे । ब्राह्मणने आकर अर्जुनके सामने पुकार की । अर्जुनके धनुष-बाण उस समय महाराज युधिष्ठिरके कमरेमें थे, जो उस समय देवी द्रौपदीके साथ एकान्तमें थे । अर्जुन धर्म-संकटमें पड़ गये । यदि वे शस्त्र लेने युधिष्ठिरके कमरेमें जाते हैं तो नियम भङ्ग होता है, जिसके दण्डस्वरूप उन्हें बारह वर्षका निर्वासन भोगना पड़ता है; और यदि वे अपने धनुष-बाण नहीं लाते तो ब्राह्मणकी गौकी रक्षा नहीं हो सकती । अन्तमें उन्होंने दोनों पक्षोंके बलाबलका विचार करके यही निश्चय किया कि नियम-भङ्गके लिये कठोर-से-कठोर दण्ड भोगकर भी मुझे गौकी रक्षा हर हालतमें करनी चाहिये । यह निश्चय करके वे चुपचाप महाराज युधिष्ठिरके कमरेमें चले गये और अपने धनुष-बाणको ले आये । ब्राह्मणकी गौको डाकुओंके हाथसे छुड़ाकर ब्राह्मणके सुपुर्द कर दिया और फिर महाराज युधिष्ठिरके पास आकर उनसे नियम-भङ्गके दण्डरूपमें बारह वर्षतक वनमें रहनेकी आज्ञा माँगी । आज्ञा ही नहीं माँगी, युधिष्ठिरके समझानेपर भी वे न रुके और वनवासके लिये चब्र दिये तथा इस प्रकार

अपने लिये कठोर दण्ड स्वीकार करके भी अपने गोरक्षा-
न्तको निबाहा । जिन दिनों हम भारतवासी गो-माताके
लिये इस प्रकार प्राण देने और घोर-से-घोर कष्ट
उठानेके लिये तैयार रहते थे, उन्हीं दिनों हम अपनेको
सच्चा गोरक्षक कह सकते थे । आजकल तो हमलोग
गो-रक्षाका खाली दम भरते हैं ।

x x x

गो-रक्षाके लिये यह आवश्यक है कि हमलोग गौओंके प्रति
अपने कर्तव्यको समझें, और दृढ़तासे उसका पालन करें ।

उनके लिये चारा सुगमतासे मिल सके—इसके लिये अधिक-से-

अधिक गोचरभूमि छुड़वानेका प्रयत्न करें; गौएँ, बछड़े और
साँड़-बैल कसाइयोंके हाथोंमें तथा बूचड़खानोंमें न जाने पायें—
इसके लिये प्राणपणसे चेष्टा करें, गौओंके पालन-पोषण
तथा आरामका अधिक-से-अधिक ध्यान रखें, बूढ़ी तथा
ठाठ गायोंकी तथा बछड़ोंकी रक्षाका भी समुचित प्रयत्न
करें एवं गौओंकी नस्ल सुधारनेके लिये अच्छे-अच्छे
साँड़ोंकी व्यवस्था करें ।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये ।

x x x

—प्रेषक, शालिग्राम

सावधान ! तुम साधक हो !

[श्रीस्वामी पथिकजी महाराजका उपदेशामृत]

(प्रेषक—'कश्चित्')

जब तुम्हें यह ज्ञान हो चुका है कि देह नाशवान्
है और आत्मा अविनाशी है तब भय तो नहीं ही होना
चाहिये । भगवान्को मानते हो तो विश्वास रखो ।
उनके विधानमें कहीं भूल हो नहीं सकती । तुम सदा
निर्भय रहो । परमेश्वरपर विश्वास करनेसे और कर्तव्यका
पालन करनेसे भय नहीं रहेगा ।

आहार नपा-तुला और विवेकपूर्ण होना चाहिये ।
जबतक भोजनमें खादका पक्ष है तबतक सात्त्विकता,
पवित्रता नहीं आ सकती । हर एक इन्द्रियकी खुराक
सात्त्विक होनी चाहिये । वर्तमानको तुम सँभाल लो तो
भविष्यको भगवान् सँभाल लेगा । ध्यान रखना, जब
कभी संकट आ जाय, कोई कष्ट असह्य प्रतीत हो तब
उपवास करो और प्रभुसे प्रार्थना करो । प्रार्थना परम
प्रभुसे सम्बन्धित कराती है ।

बुढ़ापा रूपको, निराशा धैर्यको, मृत्यु प्राणको, निन्दा
धर्मचर्चाको, क्रोध श्रीको, काम लज्जाको और अभिमान

सबको हरण कर लेता है । सभा वही जिसमें वृद्ध हों,
वृद्ध वही जो धर्मतत्त्वके ज्ञाता हों, धर्म वही जिसमें
सत्य हो, सत्य वही जो छल, कपट, दम्भसे रहित हो ।

तुम्हारे अनेकों दुःख दूर हो जायेंगे यदि मोहको
छोड़ दो । तुम्हारा मोह नष्ट हो जायगा यदि मिले
हुएको अपना न मानकर भगवान्का मानते रहो ।
मानकी चाह, भोगकी चाह, धनकी चाह रहते शोक,
भय, दुःख नहीं मिटते ।

सब क्रियाओंसे रहित हो जाओ । ध्यान छोड़ दो
तब ध्यान होगा । जब तुम कुछ नहीं करोगे तब उसका
बोध होगा जो तुममें है, नित्य है, निरन्तर है । मैं शरीर
नहीं हूँ—आत्मा हूँ, यही ज्ञान-संन्यास है । संन्यास लिया
नहीं जाता, हो जाता है । राग-विरागका अभाव संन्यास
है । वृत्तिको अन्तर्मुखी करो, भीतर 'स्व'में स्थिर करो ।
आसक्ति, ममता, लोभ, मोह छूटे बिना आत्माका बोध
न होगा । 'मैं' को जान लेनेसे आसक्ति, ममता, लोभ,
मोह आदि दोष स्वतः छूट जाते हैं ।

संख्या १०]

तब लगी कुसल न जीव कहँ सपनेहुँ मन विश्राम ।
जब लगी भजत न रामपद सोक धाम तजि काम ॥

भीतर ही खोज करो, पूछो और चुप हो जाओ ।
मौन होकर उतरकी भीतरी ही प्रतीक्षा करो । शब्दमें नहीं, शून्यमें समाधान है । स्वयंको जाने बिना ज्ञानकी प्राप्त नहीं मिलती । जब 'मैं' नहीं रहता तब समाधि है । धैर्यको शुद्ध साक्षी चैतन्यसे तन्मय करो । जिसके बाहर कोई नहीं है और भीतर भी कोई नहीं है वही एकान्त है । अनेकता जहाँ नहीं रहती वहीं एकान्त है । तन एकान्तमें बैठा हो, मनमें स्मृतियोंकी भीड़ भरी हो, वहाँ एकान्त नहीं है ।

विचारकी जहाँ समाप्ति है सत्यका वहीं आरम्भ है ।
जो 'स्व' स्थ है, वही साधु है । शान्तिसे, निरन्तर आनन्दसे, समतासे ही साधुता सिद्ध होती है । बाह्य केशमात्र आडम्बर है । किसी प्रकारकी प्रतिकूलतामें हानि, अपमानमें क्रोध या क्षोभ न हो, हम शान्त, शून्य बने रहें, विरोधीमें प्रभुका दर्शन हो—यही साधुकी सिद्धावस्था है । अखण्ड शान्ति, समता, सरलता प्राप्त होनेपर ही साधुता पूर्ण होती है ।

पूर्ण स्वतन्त्र बनो । स्वतन्त्र वही है जो किसीके बन्धनमें नहीं है और जिसके बन्धनमें कोई नहीं है । आप अपने जीवनको जानें । जीवन जन्म-मृत्युके मध्यमें नहीं है प्रत्युत जन्म-मृत्यु जीवनके अन्तर्गत हैं । सत्यके बोधके लिये अपने-आपको जानो । तुम असीम हो, किंतु अपनी बनायी हुई सीमाओंसे घिरे हो । असीममें होकर सीमाओंको जान लो । सत्य आत्माकी अनुभूति समतामें ही होती है । राग-द्वेषकी विषमता दूर होनेपर समता प्राप्त होती है । स्वयंमें स्थिर होना ही समता है । अन्यके आश्रयमें ही विषमता है ।

कुछ जानना है तो अपनेको जानो,
कुछ मानना है तो प्रभुको ही मानो ।
कुछ करना है तो करो सबकी सेवा,
जीवन प्रभुमय बिताना ही होगा ॥
छोड़ो अहंता ममता जगतकी,
परमात्मासे ही प्रीति जोड़ो ।
देखो पथिक तुम जिनकी शरण हो,
उनपर विश्वास लाना ही होगा ॥

आगेकी भूमिका

'मालिक ! आगेकी भूमिका बताओ ! क्या करना है ? कैसे करना है ? क्या होना है ? कैसे होना है ?'

'बताना क्या है ! वह तो तुममें प्रारम्भमें ही लिख दी गयी । अभीतक तदनुसार करते आये । आगे भी तदनुसार ही करोगे । बेकार अभिनेतासे नेता बननेका प्रयास मत करो ! केवल सोना ही नहीं चमकता है, पीतल भी चमकता है । हरियाली सदैव ही जीवनप्रदायिनी नहीं होती; मृग-मरीचिकामें भटकना भी देती है अनेक बार ।'

'मुझमें आस्था है, तो निश्चित-मन कर्त्तव्य-कर्म किये जाओ ! उलझन-द्वन्द्वोंमें पड़ो नहीं ! पड़ना ही पड़े, तो रमो नहीं ! अनासक्त धर्म धारे जाओ, जिये जाओ !'

—बालकृष्ण बलदुवा (बी० ए०, एल्-एल्-बी०)

गीतोक्त साधन-सम्पत्ति

(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका)

१—समस्त प्राणियोंके महान् ईश्वर भगवान्के प्रभाव को भलीभाँति न जाननेके कारण ही मूर्ख लोग मनुष्य-रूपमें अवतरित भगवान्को साधारण मनुष्य समझकर उनका अनादर करते हैं, अतः साधकको भगवान्की महिमापर दृढ़ विश्वास करके उनसे प्रेम करना चाहिये ।

२—साधकको चाहिये कि भगवान्को सबका आदि और अविनाशी जानकर सब प्रकारसे उनपर विश्वास करके अनन्यभावसे निरन्तर उनका कीर्तन-स्मरण-चिन्तन और नमस्कार करते हुए प्रेमपूर्वक संलग्न रहते हुए उनकी उपासना करें ।

३—जो साधक भगवान्के अनन्य भक्त होकर भगवान्का चिन्तन करते हुए उनकी निष्कामभावसे उपासना करते हैं, उन सदैव भगवान्में संलग्न भक्तोंके लिये आवश्यक वस्तु वगैरहकी प्राप्ति और रक्षाकी व्यवस्था भगवान् स्वयं करते हैं ।

४—भगवान्का प्रेमी भक्त पत्र, पुष्प, फल और जल आदि जो कुछ साधारण वस्तु भी प्रेमपूर्वक भगवान्के समर्पण करता है, उस प्रेमपूर्वक दी हुई वस्तुको भगवान् स्वयं खा लेते हैं, यह विश्वास करके साधकको चाहिये खान-पान, यज्ञ, दान और तप आदि जो कुछ भी करे, प्रेमपूर्वक भगवान्के समर्पण करता रहे ।

५—भगवान् सभी प्राणियोंमें समान हैं, उनका किसीमें भी राग-द्वेष नहीं है । अतः जो कोई भी उनका भजन-स्मरण करता हुआ प्रेमपूर्वक अपनेको उनमें लगा देता है वह भगवान्में और उसमें भगवान् प्रत्यक्ष प्रकट रहते हैं ।

६—यदि कोई अत्यन्त दुराचारी मनुष्य भी भगवान्का अनन्य भक्त होकर भगवान्का भजन करता है तो

उसे साधु पुरुष ही समझना चाहिये; क्योंकि उसका निश्चय बड़ा उत्तम है, इस कारण वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है और सदा रहनेवाली शान्तिको प्राप्त कर लेता है । भगवान्के भक्तका कभी पतन नहीं होता । भगवान्की इस महिमाको समझकर साधकको दृढ़ विश्वासपूर्वक भगवान्का भक्त हो जाना चाहिये ।

७—स्त्री, वैश्य और शूद्र तथा जो कोई चाण्डाल आदि नीच योनिको प्राप्त मनुष्य भी भगवान्की शरण हो जाता है, तो वह भी भगवान्को प्राप्त हो जाता है । अतः साधकको किसी भी परिस्थितिमें भगवान्की प्राप्तिसे निराश नहीं होना चाहिये । उसाह-पूर्वक भगवान्के भजन-स्मरणमें लगे रहना चाहिये । यह मनुष्य-शरीर अनित्य और सुखरहित है । इसका भरोसा नहीं करना चाहिये ।

८—साधकको चाहिये कि अपना मन भगवान्के समर्पण करके भगवान्के मनवाला हो जाय, अर्थात् अपने मनकी बातको पूरी करनेकी इच्छाका सर्वथा त्याग करके भगवान्की प्रेरणाके अनुसार हर एक क्रिया उनकी मर्जीके अनुसार करे । हर एक परिस्थितिमें भगवान्की इच्छा मानकर सदा प्रसन्न रहे ।

९—साधकको एकमात्र भगवान्का ही भक्त हो जाना चाहिये । एकमात्र भगवान्को ही अपना मानकर सर्वथा भगवान्का होकर रहना चाहिये । इस भावसे साधकका जब भगवान्में अनन्य प्रेम हो जाता है, तब शरीरसे तथा संसारसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता ।

१०—साधकको एकमात्र भगवान्का ही पूजन करना चाहिये अर्थात् भगवान्के अनुकूल आचरण

संख्या १०]

करना चाहिये । हर एक क्रियामें उसका यह लक्ष्य रहना चाहिये कि वह भगवान्‌को प्रिय है न ?

११—साधकको चाहिये कि हर एक प्राणीमें भगवान्‌का दर्शन करते हुए भगवान्‌को नमस्कार करे अर्थात् किसीके साथ अकड़-ऐंठका व्यवहार न करे, सबके साथ सरल, विनम्र और निष्कपट आचरण करे ।

१२—साधकको एकमात्र भगवान्‌से अविचल सम्बन्ध स्वीकार कर लेना चाहिये । अन्य किसी भी व्यक्ति या वस्तुसे किसी प्रकारके सम्बन्धको सच्चा नहीं मानना चाहिये । केवल कर्तव्यपालनके लिये स्वांगकी भौति मानना चाहिये ।

१३—जो साधक इस रहस्यको भलीभाँति समझ लेता है कि भगवान् जन्मादिसे रहित, अनादि और सम्पूर्ण लोगोंके सर्वोत्तम स्वामी हैं—वह मनुष्योंमें श्रेष्ठ ज्ञानी है । अतः वह सब कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है ।

१४—जो साधक भगवान्‌में ही अपना चित्त लगाये रहते हैं, जिन्होंने अपना जीवन भगवान्‌के समर्पण कर दिया है, हर समय आपसमें भगवान्‌की चर्चा करते हैं, सदा भगवान्‌के ही गुणप्रभावका वर्णन करते हैं, उसीमें संतुष्ट रहते हैं और उसीमें रमण करते हैं । उन निरन्तर भगवान्‌में लगे रहनेवाले प्रेमपूर्वक भगवान्‌को भजनेवाले साधकोंको भगवान् वह बुद्धियोग प्रदान कर देते हैं, जिससे वे भगवान्‌को प्राप्त हो जाते हैं ।

१५—जो साधक भगवान्‌का काम समझकर कर्तव्य-कर्म करता है तथा एकमात्र भगवान्‌का ही भक्त है, सब प्रकारकी आसक्तिसे रहित हो गया है तथा सब प्राणियोंमें जो सर्वथा वैरभावसे रहित हो गया है, वह निस्संदेह भगवान्‌को ही प्राप्त होता है ।

१६—भगवान्‌की त्रिगुणमयी माया बड़ी ही दुस्तर है । बड़े-बड़े तपस्वी भी इसमें फँस जाते हैं, जो साधक

एकमात्र भगवान्‌के ही शरण हो जाते हैं, वे इस मायासे सहजमें ही पार हो जाते हैं ।

१७—जो साधक भगवान्‌के नामका जप करता हुआ और उनका स्मरण करता हुआ शरीर-त्याग करता है, वह परमगति-स्वरूप परमात्माको ही प्राप्त होता है । इसलिये हर समय भगवान्‌का स्मरण करते हुए ही साधकको कर्तव्यका पालन करना चाहिये ।

१८—भगवान्‌के आश्रित हो जानेवाला साधक सदा समस्त कर्तव्य-कर्मोंका आचरण करता हुआ बाहरसे क्रियाका त्याग न करके भी भगवान्‌की कृपासे अविनाशी परमपदको प्राप्त कर लेता है ।

१९—साधकको चाहिये कि समस्त कर्मोंको मनसे भगवान्‌के अर्पण करके बुद्धियोगका आश्रय लेकर भगवान्‌में चित्त लगाकर निरन्तर भगवान्‌के परायण हो जाय ।

२०—भगवान्‌में चित्त लगा देनेवाला साधक भगवान्‌की कृपासे सब प्रकारकी कठिनाइयोंसे पार हो जाता है । पर यदि वह अहंकार करके भगवान्‌की बात नहीं मानता तो उसका पतन हो जाता है ।

२१—भगवान् सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित हैं । शरीररूप यन्त्रमें आरुढ़ हुए सब प्राणियोंको उनके स्वभावके अनुसार घुमाते रहते हैं । साधकको सर्वभावसे उनके शरण हो जाना चाहिये । उनकी कृपासे ही वह परम शान्तिको और नित्य-धामको प्राप्त हो जाता है ।

२२—साधकको चाहिये कि सब धर्म-कर्मोंका आश्रय छोड़कर एकमात्र भगवान्‌के ही शरण हो जाय । तब उस शरणागत भक्तको वे सब पापोंसे मुक्त कर देते हैं और स्वयं उसे मिल जाते हैं ।

२३—जिस परमेश्वरसे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है, जिससे यह समस्त विश्व व्याप्त है, उस परमात्माकी अपने कर्तव्य-कर्मोंके द्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धि

प्राप्त कर लेता है। अतः साधकको चाहिये कि अपने कर्मोंके द्वारा भगवान्का पूजन करता रहे।

२४—साधकको शाखाज्ञाके अनुसार यज्ञ, दान और तपस्वरूप हर एक करनेयोग्य काम भगवान्का नाम पहले उच्चारण करके ही आरम्भ करना चाहिये।

२५—इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका सेवन न करनेसे विषयोंका सम्बन्ध ऊपरसे तो छूट जाता है, परंतु भीतरसे उनकी आसक्ति बनी रहती है, इस कारण कालान्तरमें फिर उनकी कामना उत्पन्न हो जाती है। उस आसक्तिका नाश भगवान्में प्रेम होनेपर ही होता है।

२६—प्रमथन स्वभाववाली इन्द्रियाँ यत्न करनेवाले सावधान मनुष्यके मनको भी बलात्कारसे विषयोंमें लगा देती हैं। अतः साधकको चाहिये कि पहले इन इन्द्रियोंको अपने वशमें करके भगवान्के शरण होकर साधन-परायण हो जाय।

२७—साधकको चाहिये कि अपने मनको सदैव भगवान्में लगाये रखते हुए ही सब कर्म भगवान्के समर्पण करके तथा आशा और ममतारहित होकर आवश्यक कर्मोंका आचरण करे।

२८—साधकके हृदयमें भगवान्का भक्त बननेकी अभिलाषा हर समय जाग्रत रहनी चाहिये तथा उसकी पूर्तिके लिये भगवान्ने जो अपने प्रिय भक्तके लक्षण बताये हैं, उनके अनुसार आचरण करना चाहिये—उनको अपने जीवनमें उतारना चाहिये।

२९—साधकको समझना चाहिये कि समस्त शरीरोंमें जीवात्माके साथ उसका परम सुहृद् परमेश्वर भी रहता है जो शरीर और जीवात्मा—दोनोंको जाननेवाला है, उसीके शरण होना है।

३०—जो परमेश्वर जाननेके योग्य है, जिसको जानकर साधक अमर हो जाता है, वह अनादि परब्रह्म इन्द्रियातीत होनेपर भी सब जगह सब इन्द्रियोंका काम करनेमें समर्थ है, वह आसक्तिरहित और सबका धारण-पोषण करनेवाला, गुणातीत होते हुए ही सब गुणोंका भोक्ता है, उसे ऐसा जानना चाहिये।

३१—वह परमात्मा सब प्राणियोंके बाहर और भीतर समान भावसे व्याप्त है, अचल रहकर ही सब जगह विचरण करता है। वह दूर-से-दूर और निकट-से-निकट है। विभागरहित होनेपर भी विभक्तकी भाँति प्राणियोंमें स्थित है, सब ज्योतियोंका भी ज्योति, अज्ञानसे सर्वथा अतीत, सबके हृदयमें स्थित है। उसे जानना चाहिये।

३२—इस शरीरमें जीवके साथ-साथ साक्षीरूपमें देखनेवाला उपद्रष्टा, इसको सम्मति देनेवाला, इसका भरण-पोषण करनेवाला दूसरा भोक्ता परमेश्वर भी है, जो कि परमात्मा नामसे कहा गया है और सर्वथा विलक्षण है।

३३—उस परमात्माको कितने ही साधक तो अपने भीतर अपने-आप ध्यानके द्वारा देखते हैं। अन्य कितने ही साधक सांख्ययोगके द्वारा और दूसरे कितने ही साधक कर्मयोगके द्वारा देखते हैं। साधकको चाहिये कि जो साधन अपने लिये सुगम हो, उसीके अनुसार साधनपरायण हो जाय।

३४—जो साधक शरीर और आत्माके भेदको विवेकरूप नेत्रोंद्वारा जान लेते हैं तथा प्राणियोंको प्रकृतिसे छुड़ानेवाले परमात्माको भी जान लेते हैं, वे परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।

३५—साधकका निश्चय दृढ़ होना चाहिये अर्थात् एकमात्र भगवान्पर तथा उनकी प्राप्तिके साधनोंपर विकल्परहित अचल और दृढ़ विश्वास होना चाहिये, अन्य किसीपर नहीं। साधक मन और बुद्धिको भगवान्के

संख्या १०]

समर्पण कर दे, इनको अपना न माने, सर्वदा असंग होकर किसी प्रकारकी कामना और जिज्ञासा न रखे ।

३६-साधकको चाहिये कि अपने अनुकूल व्यक्ति, वस्तु और परिस्थिति आदिके मिलनेपर हर्षित न हो और प्रतिकूल व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति आदिके मिलनेपर दुःखी, विषादग्रस्त या उद्विग्न न हो । हरेक अवस्था और घटनामें सदैव सर्वथा समभावसे आनन्द-मग्न रहे ।

३७-साधकको चाहिये कि विद्वान् ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालतक सभी मनुष्योंमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और पशु-पक्षी आदि प्राणियोंमें परमात्मा समानभावसे परिपूर्ण हैं—इस रहस्यको समझकर सबको समानभावसे प्रिय समझे, किसीसे भी आचार या सम्बन्धको लेकर प्रियतामें भेद न करे ।

३८-जिन साधकोंका मन समतामें स्थित हो गया है, उनके द्वारा इस लोकमें जीवनकालमें ही संसारपर विजय प्राप्त कर ली गयी; क्योंकि परब्रह्म परमात्मा निर्दोष और सम है, इसलिये जो समतामें स्थित हैं, वे ब्रह्ममें ही स्थित हैं, अतः साधकको समतामें स्थित रहना चाहिये ।

३९-सर्वत्र समानभावसे परिपूर्ण परमात्माका दर्शन करनेवाला साधनसम्पन्न मनुष्य सब प्राणियोंमें परमात्माको और सब प्राणियोंको परमात्मामें देखता है । इस कारण उसके राग-द्वेष नष्ट हो जाते हैं ।

४०-साधकको किसी भी परिस्थितिमें न तो हर्षित होना चाहिये, न द्वेष करना चाहिये, न शोक करना चाहिये और न किसी भी प्रकारकी आकांक्षा ही करनी चाहिये । सदैव शुभ और अशुभ सम्बन्धसे रहित रहना चाहिये । हरेक परिस्थितिको साधन-सामग्री समझना चाहिये ।

४१-साधकको शत्रु और मित्रमें तथा मान और अपमानमें एवं अनुकूलता और प्रतिकूलताजनित सुख

और दुःखमें सदैव राग-द्वेषरहित और सम रहना चाहिये ।

४२-साधकको चाहिये कि निन्दा और स्तुतिको समान समझे, भगवान्का स्मरण-चिन्तन करनेका स्वभाव बना ले, रहनेके स्थानको अपना न माने, बुद्धिको स्थिर रखे, विचलित न होने दे ।

४३-साधकको हरेक काम आसक्तिका त्याग करके कर्मके पूर्ण होने और न होनेमें समभाव रखते हुए उसके फलमें भी सम रहते हुए करना चाहिये ।

४४-समत्व बुद्धिसे युक्त निष्कामी मनुष्य कर्मोंके अच्छे-बुरे फलका त्याग करके जन्म-मृत्युके बन्धनसे सदाके लिये छूट जाते हैं और परमपदको प्राप्त हो जाते हैं ।

४५-चल और अचल समस्त उत्पत्तिशील प्राणी शरीर और आत्माके संयोगसे ही उत्पन्न होते हैं । उन जन्मने-मरनेवाले प्राणियोंमें समभावसे नित्य स्थित अविनाशी परमेश्वरको जो देखता है वही यथार्थ देखता है । इस रहस्यको समझकर साधकको चाहिये कि परमात्माको ही अपना सर्वस्व माने ।

४६-सब प्राणियोंमें समतायुक्त साधक भगवान्की परम भक्तिको प्राप्त हो जाता है और उस भक्तिके द्वारा भगवान्को तत्त्वसे वह जैसा और जो है, जान लेता है । उसके बाद वह भगवान्में ही प्रवेश कर जाता है ।

४७-साधकको मिट्टी, पत्थर, सुवर्णमें समानभाव रखना चाहिये । अर्थात् सर्वथा लोभसे रहित रहना चाहिये । तभी वह लाभ-हानिमें सम रह सकता है ।

४८-साधकको स्वाभाविक समतायुक्त करुणाभावसे सम्पन्न होना चाहिये । किसी प्रकारका भेदभाव नहीं रहना चाहिये ।

४९—इन्द्रियोंके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि समस्त विषयोंमें आसक्तिका सर्वथा अभाव अर्थात् वैराग्य स्वाभाविक होना चाहिये। शरीरको कभी भी अपना स्वरूप नहीं मानना चाहिये। साधकको शरीरसे सर्वथा असंग रहते हुए अहंभावका नाश कर देना चाहिये।

५०—जन्मना, मरना, बुढ़ापा और रोग आदिका होना—इन सब विकारोंमें दुःखरूप दोषको बार-बार देखकर साधकको समझना चाहिये कि ये सब विकार शरीरमें हैं। मेरा इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

५१—साधकको पुत्र-स्त्री-धन और घर आदिसे अपना किसी प्रकारका सम्बन्ध स्वीकार नहीं करना चाहिये। सदैव असंग और विरक्त रहना चाहिये।

५२—कर्मफलका त्याग करनेवाला साधक सदा स्थित रहनेवाली शान्तिको प्राप्त होता है और सकामी मनुष्य

कामनाके कारण फलमें आसक्त होकर बन्धनमें पड़ा रहता है। अतः साधकको कर्मफलका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

५३—सब कर्मोंको ईश्वरके समर्पण करके और कर्म करनेकी तथा कर्मफलकी आसक्तिका त्याग करके जो साधक कर्म करता है, वह कर्मोंके फलरूप पुण्य-पापसे उसी प्रकार लिप्त नहीं होता, जैसे कमलका पत्ता जलमें रहता हुआ भी जलसे निर्लिप्त रहता है।

५४—जो साधक न तो किसी प्रकारकी कामना करता है और न कभी किसीसे भी द्वेष करता है, उसको कर्म करते हुए भी सदा संन्यासी ही समझना चाहिये; क्योंकि वह हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित हो जानेके कारण सुखपूर्वक संसारके बन्धनसे (शेष आगे)

केवल आश तुम्हारी ही है

भूला पथ भ्रमित हूँ जगमें,
आगे पीछे संग न साथी।
छोड़ चली वैभवकी किरणें,
जिन्हें समझता था मैं थाती।

डगमग चरण मार्ग अधियारा,
सूझ न पड़ता कहीं किनारा।
हिय कंपित, कंपित दोनों कर,
कैसे पार करूँ भव-धारा।

श्रद्धा, संवल, भक्ति न पूजा,
ज्ञान, ध्यान, तप, त्याग न सूझा।
माया-मंडित इस नगरीमें,
भटक रहा कण-कण अनवृक्षा।

इस नैराश्य भरे जीवनमें,
केवल आश तुम्हारी ही है।
मन-मन्दिरमें वास करो प्रभु,
यह प्रति साँस तुम्हारी ही है।

—शिवशंकरलाल त्रिवेदी (वी० ए०, एल० टी०)

पूर्णपरात्पर भगवान् श्रीकृष्णका आविर्भाव

(श्रीकृष्णजन्माष्टमीके मङ्गलमहोत्सवपर हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन)

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥
नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥
नमोऽकिञ्चनविक्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥

श्रीकृष्णकृष्णसख वृष्णयुष्मावनिधुग्-

राजन्यवंशदहजानपवर्गवीर्य ।

गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार

योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥

(श्रीमद्भागवत १।८।२१, २२, २७, ४३)

आज पूर्णपरात्पर स्वयं भगवान्के मङ्गलमय प्राकट्यका महान् मङ्गलमय, महान् मधुर और महान् पवित्र दिवस श्रीकृष्णजन्माष्टमी है। दुर्दान्त राजाओंके रूपमें प्रकट दैत्योंके साथ ही घोरकर्मा अन्यान्य असुरोंके भयानक तथा प्रचण्ड अत्याचारोंसे प्रपीडित और असह्य भारसे आक्रान्त, संत्रस्त दुःखिनी वसुधरा गौके रूपमें सृष्टिकर्ता ब्रह्माके पास पहुँची। तदनन्तर ब्रह्माकी सम्मतिके अनुसार भगवान् शंकर आदि देवताओंके साथ क्षीरसागरके तटपर जाकर भगवान्को पुकारने लगी। क्षीराब्धिशायी पुरुषरूप भगवान् ही व्यष्टि वसुधराके स्वामी हैं। इसलिये पृथ्वीदेवी इन्हींको अपनी व्यथा-वेदना सुनाया करती है। वहाँ ब्रह्मादि देवोंने भगवान्का स्तवन किया। ब्रह्माजीकी समाधि हो गयी और उसी समाधिस्थ अवस्थामें ब्रह्माजीको भगवान्की आकाशवाणी सुनायी दी। उसे सुनकर ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—भगवान्को पहलेहीसे धराके संतापका पता है। वे ईश्वरोंके ईश्वर धराका भार हरनेके लिये अवतरण करें, उसके पहले ही तुम देवगण यदुकुलमें जन्म लेकर लीलामें योग देनेके लिये प्रस्तुत रहो। वे साक्षात् परम पुरुष भगवान् वसुदेवके घरमें प्रकट होंगे, उनकी सेवाके लिये तथा उनके साथ ही उनकी प्रियतमा (श्रीराधाजी) की सेवाके लिये देवाङ्गनाएँ भी वहाँ जन्म-धारणा करें।

वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः ।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुखिनः ॥

(श्रीमद्भागवत १०।१।२३)

क्षीरोदशायी भगवान्के कथनका स्पष्ट अर्थ यह है कि क्षीराब्धिशायी नहीं, स्वयं साक्षात् परम पुरुष पुरुषोत्तम ही श्रीवसुदेवजीके यहाँ अवतीर्ण होंगे।

विभिन्न कल्पोंमें होनेवाले श्रीकृष्णके अवतारोंके विभिन्न वर्णन मिलते हैं, कहीं वे भगवान् विष्णुके अवतार हैं, कहीं नारायणके, कहीं वामनके, कहीं सितकृष्णकेशरूप अंशावतार तो कहीं नारायणश्रृंगिके अवतार बताये गये हैं। पर इस सारस्वत कल्पमें स्वयं भगवान् ही अपने सम्पूर्ण अंश-कला-वैभवोंके साथ पूर्णरूपसे प्रकट हुए हैं। इस अवतारमें विभिन्न अवतारोंके विभिन्न लीलाकार्य इन्हीं एकके द्वारा सुसम्पन्न होते हैं; क्योंकि वे सभी इन स्वयं पूर्ण भगवान्के अन्तर्गत हैं। सम्पूर्ण पुरुष, अंश, कला, विभूति, लीला, शक्ति आदि सभी इन्हींमें प्रतिष्ठित हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार पृथ्वीदेवी देवताओंको साथ लेकर सर्वलोकमहेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके गोलोकमें जाती है। देवताओंके प्रार्थना करनेपर भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अवतार धारण करना स्वीकार कर लेते हैं। इतनेमें वहाँ एक दिव्य रथ आता है और उसमें वे उतरकर शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज नारायण महाविष्णु महेश्वर श्रीकृष्णके दिव्य शरीरमें लीन हो जाते हैं। तदनन्तर दूसरे दिव्य रथपर धराधीश श्रीविष्णु पधारते हैं और वे भी राधिकेश्वर भगवान्में विलीन हो जाते हैं। अब अवतारके लिये मानुषी तत्वकी प्रयोजनीयता सामने आती है तो वहाँपर उपस्थित नारायण श्रृंगि भी इन्हींमें समा जाते हैं। इस प्रकार महाविष्णु, विष्णु और नारायणरूपको अपनेमें मिलाकर ही स्वयं भगवान् वसुदेवजीके यहाँ प्रकट होते हैं।

देवकीजीके छः पुत्रोंको जन्म होते ही क्रूर कंसने एक-एक करके मार दिया था। भगवान्के आदेशसे देवकीके सप्तम गर्भको महामाया ने वसुदेवजीकी दूसरी पत्नी रोहिणीजीके गर्भमें स्थापित कर दिया। इसीलिये उनका नाम 'संकर्षण' पड़ा। तदनन्तर भगवान् वसुदेवजीके मनमें आकर उनके मनसे देवकीके मनमें आ गये। वे प्राकृत जीवोंकी भाँति गर्भस्थ नहीं थे। तथापि देवकीको लीलासे गर्भ-स्थिति-सा प्रतीत हुआ तथा अपने ही गर्भसे उनका जन्म होना भी

ज्ञान पड़ा। उनका पूर्ण वात्सल्यभाव तथा भगवान्की भक्तवश्यता ही इसमें प्रधान हेतु है। एक दिन देवताओंने कंसके कारागारमें आकर स्तुति की, जो 'गर्भस्तुति'के नामसे विख्यात है।

भाद्रपदकी कृष्णपक्षकी अँधियारी अर्धरात्रि थी। अत्याचारी क्रूर कंसका कदर्य कारागार था। पर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य प्राकट्यके समय सभी कुछ परम मङ्गलमय, परम शोभन तथा परम पवित्र हो गये। काल सारे शुभगुणोंसे सम्पन्न तथा परम शोभामय हो गया। उस समय चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रमें स्थित थे और आकाशमें सभी नक्षत्र, ग्रह, तारे शान्त और सौम्य हो गये थे। सभी दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं और आकाशमें तारे जगमगा उठे; नदियोंका जल निर्मल हो गया और रात्रिके समय भी सरोवरोंमें असंख्य कमलोंकी पंक्तियाँ विकसित हो उठीं, वनोंमें वृक्षोंकी श्रेणियाँ विभिन्न वर्णोंके सुगन्धित पुष्पोंसे लद गयीं। शुक-पिकादि पक्षी मधुर ध्वनि करने लगे और मधुपानमें प्रमत्त मधुकरोँकी मधुर गुञ्जारसे सारी वनभूमि मुखरित हो उठी, परम पवित्र शीतल मन्द-सुगन्ध सुखद वायु अपने स्पर्शसे सबको सुख देती हुई बहने लगी। यों समस्त प्रकृति आनन्दोत्फुल्ल हो गयी। पञ्चभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश परमाह्लादसे पूर्ण हो गये।

याज्ञिक द्विजोंके अग्निकुण्डोंकी जो अग्नियाँ कंसके क्रूर अत्याचारसे निर्वापित हो गयी थीं, इस समय अपने-आप जल उठीं। असुरद्रोही साधुओंका अत्याचार-पीड़ित चित्त सहसा प्रसन्नतासे पूर्ण हो गया। अजन्मा भगवान्के इस दिव्य आविर्भावके समय स्वर्गमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ एक ही साथ त्रिना ही वजाये बजने लगीं। संगीतकला-निपुण हाहा, हूहू, तुम्बुरु आदि गन्धर्व-किन्नरगण भगवान्के पवित्र गुणोंका गान अत्यन्त मधुर स्वरमें करने लगे और सिद्ध-चारणगण भगवत्-स्तवनमें प्रवृत्त हो गये। विद्याधरियाँ और अप्सराएँ विषयविलासको विस्मृत कर श्रीगोविन्द-गुणगानमें प्रमत्त गन्धर्व-किन्नरोंके गोविन्दगुणगानकी शुद्ध सुधामयी तालोंमें ताल मिलाकर मधुर-मधुर नृत्य करने लगीं। देवगण सहसा जाग उठे और आनन्दमग्न हो उसी क्षण नन्दनवनमें जा पहुँचे तथा स्वर्गके पारिजात आदि सौरभित सुमनोंकी पृथ्वीपर वर्षा करने लगे। परमानन्दसिन्धुके पवित्र प्राकट्यके समय धराके सतसिन्धु मृदु मन्द गर्जना करते हुए उचाल

तरल तरङ्गोंकी भङ्गिमा दिखा-दिखाकर नाचने लगे। समुद्रका मधुर गर्जन सुनकर दिक्प्रान्तवर्ती मेघसमुदाय भी मुखरित हो उठे। इसी समय मध्यरात्रिके निशीथमें सबके हृदयोंमें रहनेवाले जनार्दन भगवान् देवरूपिणी देवकीके गर्भसे आविर्भूत हुए, मानो पूर्वदिशामें षोडशकला-परिपूर्ण चन्द्रमा उदय हुआ हो। (जैसे भगवान्का देह दिव्य था, वैसे ही देवकीजीका शरीर भी दिव्य ही था, इसीसे उन्हें 'देवरूपिणी' कहा गया।)

निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने।

देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः।

आचिरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः॥

(श्रीमद्भागवत १०।३।८)

अतुलसौभाग्य श्रीवसुदेवजीको अनन्त भास्कर तथा अनन्त सुधांशुके सहस्र महान् शीतल सुखद प्रकाश दिखायी दिया और उसीमें दर्शन हुए दिव्य वस्त्राभूषणों तथा शंख-गदा-चक्र और पद्मसे सुशोभित दिव्य नीलश्यामकलेवर चतुर्भुज महान् अद्भुत बालकके। भगवान्का मङ्गलमय दिव्य शरीर अप्राकृत ही नहीं, दिव्य भगवत्स्वरूप है, उनका वह स्वरूपभूत भगवद्देह नित्य अतर्क्य-अचिन्त्य ऐश्वर्य-माधुर्य-सौन्दर्य-सम्पन्न चिन्मय है और परिच्छिन्न होकर भी नित्य विभु है। न वह कर्मजनित है, न पञ्चभूतोंसे निर्मित है और न उसमें देह-देहीका भेद है। वह नित्य सच्चिदानन्दमय है।

देवकीजी इस चतुर्भुज दिव्य रूपके तीव्र तेजको सह नहीं सकी और उन्होंने भगवान्से इस रूपका संवरण करके शिशुरूपमें दर्शन देनेकी प्रार्थना की। भक्तवत्सल भगवान्ने वसुदेव-देवकीको पूर्वजन्मोंकी स्मृति दिलाकर यह बतलाया कि 'मैं सर्वेश्वर प्रभु ही तुम्हारा पुत्र बना हूँ।' और फिर तुरन्त वे प्राकृत शिशुरूपमें प्रकट हो गये। तदनन्तर श्रीवसुदेवजीने भगवान्का आदेश पाकर उन शिशुरूप भगवान्को नन्दालयमें ले जाकर श्रीयशोदाजीके पास सुला दिया और बदलेमें वे यशोदासे प्रकट हुई जगदम्बिका महा-मायाको ले आये। ले जानेके समय कारागारके सब द्वार खुल गये, प्रहरीगण सो गये, मार्ग निर्जन हो गया, यमुनाजीने रास्ता दे दिया एवं नन्दालयमें सब निद्राग्रस्त हो गये। अतएव उन्हें ले जाकर यशोदाजीके पास सुलाने तथा कन्या-को लेकर कारागारसे बापस लौट आनेकी क्रियाका भगवान्की

संख्या १०]

विचित्र अवतनवटनापटीयसी मायाके प्रभावसे किसीको पता तक न लगा ।

इसके बाद तो जो सर्वतोमुखी सर्वकल्याणकारिणी सर्वानन्दमयी विविधवैचित्र्यरूपा लीला आरम्भ हुई, वह वधाधामसे अन्तर्धान होनेतक अबाध गतिसे चलती ही रही । उसका एक-एक प्रसंग जीव-जीवनकी कृतार्थताके लिये पर्याप्त है । उन लीलाओंको सुनकर, सुनाकर, गाकर संसार-सागरमें पड़े हुए मानव अनायास ही तर जाते हैं । भगवान् लीला करते ही इसीलिये हैं कि उनका श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण करके सहज ही मानव कृतार्थ हो जाय । कुन्तीदेवी भगवान्का स्तवन करते समय भगवान् श्रीकृष्णके अवतारके प्रयोजनोंका उल्लेख करती हुई कहती हैं—

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ।

यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥

अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ।

अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥

भारावतारणायान्ये भुवो नाव इवोद्धौ ।

सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थितः ॥

भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ।

श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः

स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।

त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं

भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥

(श्रीमद्भागवत १ । ८ । ३२-३६)

हे भगवान् ! आपने अजन्मा होकर जन्म क्यों लिया है, इसका हेतु बतलाते हुए कोई महानुभाव कहते हैं कि आपने पुण्यश्लोक राजा युधिष्ठिरका यश बढ़ानेके लिये ही पदुवंशमें जन्म लिया है (पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः) अथवा मलयाचलकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये जैसे उसमें चन्दन प्रकट होता है, वैसे ही राजा यदुकी कीर्ति बढ़ानेके लिये आपने उनके वंशमें अवतार लिया है । दूसरे कोई कहते हैं कि श्रीवसुदेव तथा देवकीने पूर्वजन्ममें (सुतपा और पृथ्वीके रूपमें) आपसे पुत्ररूपसे प्रकट होनेकी प्रार्थना की थी, इसी कारण आप अजन्मा होते हुए भी जगत्का कल्याण (साधुओंका परित्राण) और देवद्रोही असुरोंका वध (उद्धार) करनेके लिये वसुदेव-देवकीके पुत्र बनकर प्रकट हुए हैं । कु

लोगोंका कथन है कि दैत्योंके भारी भारसे समुद्रमें डूबते हुए जहाजकी भाँति पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही आपने भूतलपर अवतरण किया है । इस प्रकार अन्यान्य मतोंको बतलाकर कुन्तीदेवी अपना मत प्रकट करती हुई कहती हैं कि 'इस संसारमें अज्ञानसे कामना होती है, कामनाओंके वशमें होकर मनुष्य सकामकर्म करते हैं और उनके परिणाम-स्वरूप कर्मबन्धनमें जकड़े हुए वे नाना प्रकारके क्लेश भोगते हैं, उन दुखी मनुष्योंको संसारके क्लेशोंसे मुक्त करनेवाली प्रेमभक्तिप्रदायिनी दिव्य लीलाएँ करनेके विचारसे ही आपने यह अवतार ग्रहण किया है । जो लोग प्रेम तथा भक्तिभावसे भरे हुए आपके विविध विचित्र लीलाचरित्रोंको दूसरोंसे सुनते हैं, स्वयं गाकर तथा स्मरणकर आनन्दित होते रहते हैं, वे शीघ्र ही आपके उस चरणकमलका दर्शन प्राप्त करते हैं जिससे जन्म-मृत्युका प्रबल प्रवाह सदाके लिये शान्त हो जाता है ।'

वास्तवमें वे अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण क्या हैं ? कैसे हैं ? क्यों प्रकट होते हैं ? इसका रहस्य उनके अपने सिवा और कोई नहीं जानता । वे स्वयं कहते हैं 'न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।' 'मेरे प्राकट्यके रहस्यको देवता और महर्षिगण कोई नहीं जानते ।'

पर उन्होंने स्वयं यह बतलाया है कि 'मैं अजन्मा, अव्ययात्मा और सम्पूर्ण भूतोंका ईश्वर रहते हुए अपनी प्रकृतिको स्वीकार करके अपनी मायासे (लीलासे) उत्तम रीतिसे प्रकट होता हूँ ।' 'जब-जब धर्मकी हानि तथा अधर्मका अभ्युत्थान होता है, तब-तब मैं अपनेको प्रकट करता हूँ' और 'साधु पुरुषोंका परित्राण, दुष्टोंका विनाश तथा धर्मसंस्थापनके लिये मैं युग-युगमें उत्तम रीतिसे प्रकट होता हूँ ।' इस प्रकार गीता अध्याय ४ के तीन (६, ७, ८) श्लोकोंमें अपने अवतार ग्रहण होनेकी बात पृथक्-पृथक् रूपसे भगवान्ने कही है और उसके कारण बतलाये हैं । छठे श्लोकमें अपनेको अजन्मा, अविनाशी तथा सब भूतोंका ईश्वर होनेपर भी जन्म लेने, अन्तर्धान होने तथा पराधीन बालक बननेका संकेत करके अपने विरुद्धधर्माश्रयी परात्पर पूर्ण पुरुषोत्तमके साक्षात् प्रकट होनेका स्पष्ट निरूपण किया है । सातवेंमें सदुपदेशादिके द्वारा धर्मग्लानिका तथा अधर्मके अभ्युत्थानका नाश करनेवाले 'आचार्य'-स्वरूपका वर्णन है और आठवेंमें साधुपरित्राण, असुरहनन तथा धर्मस्थापन-

रूप तीन प्रयोजन बतलाये गये हैं। वास्तवमें सच्चा अधर्म है—भगवद्विमुखता, भोगप्रियता और कामपरवशता। इसी कामरूप अधर्मका नाश तथा पवित्र त्यागमय प्रेमधर्मकी स्थापना होनी चाहिये। कामोपभोगपरायण आसुरी वृत्ति ही उत्तरोत्तर काम-क्रोध आदि षड्रिपुओंको प्रबल बनाकर साधुवृत्तिको संकटमें डाल देती है। अतः उस भोगाभिमुखी काममयी आसुरवृत्तिके नाशमें ही वस्तुतः अधर्मका संहार, दुष्कृतोंका विनाश तथा साधुओंका परित्राण है। स्वयं अवतीर्ण होकर प्रेममयी परम मधुर रसपूर्ण पवित्र लीलाके द्वारा 'विशुद्धप्रेम-धर्म'की स्थापना करके भगवान् यही करते हैं। यह प्रेमधर्म जबतक प्राप्त नहीं होता, तबतक परमहंस अमलात्मा मुनिगण भी परम कृतार्थ नहीं होते। इसीसे भगवान्के अवतारका प्रयोजन बतलाते हुए कुन्तीदेवीने कहा है—

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ।

भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥

(श्रीमद्भागवत १।८।२०)

‘आप निर्मल हृदयवाले विचारशील परमहंस मुनियोंके हृदयमें अपनी प्रेममयी भक्तिका उदय करनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। हम अल्पबुद्धि अबलाएँ आपको कैसे पहचान सकती हैं ?’

अतएव भगवान् श्रीकृष्णके लीला, गुण, कर्म ही ऐसे प्रेम-सुग्ध कर देनेवाले होते हैं कि उन्हें देख-देखकर सुन-सुनकर जिनके अज्ञानकी ग्रन्थि टूट गयी है और जो नित्य आत्मामें ही रमण करते हैं, वे मुनि भी भगवान्की अहैतुकी भक्ति—भगवान्में विशुद्ध प्रेम करने लगते हैं।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्मे ।

कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्यभूतगुणो हरिः ॥

(श्रीमद्भागवत १।७।१०)

भगवान्की लीलाएँ आत्माराम मुनियोंको भी प्रेम प्रदान करके उनको सर्वाङ्ग सम्पूर्णतया कृतार्थ कर देती हैं। यह स्वयं भगवान्के अवतारका प्रयोजन है, ऐसा कुछ प्रेमी महापुरुष महात्माओंका कथन है। विरक्तशिरोमणि श्रीशुक-देवजी राजा परीक्षितको भगवान्के अवतारका प्रयोजन बहुत योद्धेमें बतलाते हैं—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।

अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥

(श्रीमद्भागवत १०।२९।१४)

राजा परीक्षित ! जन्म-मृत्यु आदि विकारोंसे रहित, प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अविषय, प्राकृत गुणोंसे रहित और स्वरूपगत दिव्य कल्याणगुणस्वरूप षड्गुणैश्वर्यपूर्ण प्रभुकी अभिव्यक्ति—उनका प्राकट्य मनुष्योंके परम कल्याणके लिये ही होता है और वह परम कल्याण पूर्णरूपसे विशुद्ध भक्ति-प्रेममें ही निहित है।

कुछ महानुभावोंका अनुभव है कि जो प्रेमी साधुजन प्रियतम भगवान्के सिवा अन्य किसीको जानते ही नहीं और जो लीला-पुरुषोत्तम भगवान्के विषम वियोगानलमें दग्ध होते रहते हैं, उन्हें अपने मधुर मिलनके द्वारा प्रेम-सुधारस प्रदान करके उनके उस अतुलनीय अनुपम भयानक दुःख-दावानलको सदाके लिये बुझा देने और अपने ही द्वारा उनके जीवनमें उँडले हुए उस प्रेमसुधारसका पान करनेके लिये ही भगवान् अवतीर्ण होते हैं।

यों भगवान् अपनी अवतारलीलामें अधिकारी भक्तोंको परम कल्याणरूप पञ्चमपुरुषार्थ 'प्रेम' प्रदान करके उन्हें तो अपनाते ही हैं। साथ ही भौतिक जगत्में अत्याचारपरायण पापानल-विदग्ध असुरों और आसुर-भावपन्न राजाओंका वध करके अपने कृपापूर्ण 'हृत्कारिणीदायक' स्वभावसे उनका परम कल्याण करते हैं और उनके अत्याचारसे उत्पीड़ित भजनवञ्चित साधुओंको अत्याचारसे विमुक्त करके उनका परित्राण करते हैं। इस प्रकार अधर्मके अभ्युत्थानमें प्रधान हेतुरूप असुरोंका वधके व्याजसे उद्धार करके वर्णाश्रम-धर्म तथा गो-ब्राह्मण-साधुके संरक्षणरूप निर्मल धर्मका संस्थापन करते हैं, जिससे मर्त्यजगत्के साथ ही देवजगत् का भी कल्याण होता है।

भगवान् श्रीकृष्णकी लीला अनन्तमुखी है। जैसे श्री-भगवान्में सब प्रकारके ज्ञान, क्रिया, शक्ति, भाव आदि निहित हैं; क्योंकि वे ही सबके मूल उद्गम हैं, वे ही आधार हैं और वे ही सबको गति देनेवाले हैं, वैसे ही भगवान्की लीलाएँ भी अनन्त प्रकारकी होती हैं—विभिन्न प्राणियोंको उन-उनके क्षेत्रमें सन्मार्गपर लाकर उनका परम कल्याण करनेवाली। इसीलिये भगवान्की लीलाओंमें सभी रसोंका समावेश है, उनमें सभीके लिये सदुपदेश है, सत्-शिक्षा है, एवं सत् आदर्श है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, जिसमें वे सर्वोपरि गुरु न हों। तभी तो वे जगद्गुरु हैं। और जो जिस भावके उनके सामने आता है, उसको उसी भावके अनुसार अपने

लीलाचरित्रके द्वारा शिक्षा देकर वे उसका परम कल्याण करते हैं। जो जैसा सम्बन्ध जोड़कर उनके सम्पर्कमें आना चाहता है, उसके उसी सम्बन्धको वे स्वीकार कर लेते हैं; क्योंकि सहज ही वे 'सर्वभूतसुहृद्' हैं—'सुहृद् सर्वभूतानाम्।' इसीलिये वे वसुदेव-देवकी और नन्द-यशोदाके परम सुख-स्वरूप सुपुत्र हैं; ब्रजवालों, सुदामा-जैसे दरिद्रों तथा अर्जुन-उद्धवादि-जैसे वीरों विद्वानोंके सखा—मित्र हैं; श्रीगोपाङ्गनाओंके मधुरतम प्राणवल्लभ हैं एवं द्वारकाकी ऐश्वर्यमयी महिषियोंके पूज्य पति हैं; गौओंके अनन्य सेवक हैं, पशु-पक्षियोंके बन्धु हैं; असुर-राक्षसोंके शत्रु हैं; ज्ञानियोंके ब्रह्म हैं, योगियोंके परमात्मा हैं, भक्तोंके भगवान् हैं, प्रेमियोंके परम प्रेमास्पद हैं; राजनीतिज्ञोंमें निपुण राजनीतिविशारद हैं; शूरवीरोंमें अतुल पराक्रमी महान् वीर हैं; शरणागतोंके परम रक्षक हैं, शिष्योंके परम ज्ञानदाता गुरु और सन्मार्ग-दर्शक हैं।

सभी कार्योंमें वे परम कुशल हैं, कर्मकौशल उनकी लीलामें सहज है। जहाँ जो काम करते हैं पूर्णतम अनुभवी पुरुषके रूपमें करते हैं। कोई भी कला उनसे बची नहीं। पर सभी कलाओंकी लीलाओंमें सहज लोककल्याण निहित है। कला केवल कलाके नहीं, कल्याणके लिये।

वे संगीतशास्त्रके महान् आचार्य हैं। बड़े-बड़े संगीतज्ञ उनके शिष्य हैं। उनकी वाद्यकला अनिर्वचनीय है। मुरलीकी सुरिली ध्वनि ब्रह्मलोकतक पहुँचकर सबको सम्मोहित कर लेती है। जड़को चेतन और चेतनको जड़ बना देती है। कोटि-कोटि ब्रजसुन्दरियाँ मुरलीकी ध्वनि सुनकर उन्मत्त-सी हो जाती हैं और सारे संसारके सम्पूर्ण सम्बन्धोंको भूलकर प्रियतम श्रीकृष्णके पास पहुँच जाती हैं एवं उन्हें सर्वात्म-समर्पण करके परमहंस ज्ञानी-मुनियों और सर्वपूज्य देवताओंके लिये भी परम पूजनीय बन जाती हैं।

उनकी नृत्यकला तो सर्वथा विलक्षण है। शिवनृत्य 'ताण्डव' और पार्वतीनृत्य 'लास्य' कहलाता है, परंतु भयानक विष उगलनेवाले विषधर भुजंगमके सहस्रों फणोंपर धिरक-धिरककर नृत्य करना नृत्यकलाकी पराकाष्ठाके भी परेकी वस्तु है और उसका उद्देश्य है—कालियके समस्त पापोंका विनाश करके उसे प्रेमभक्ति प्रदान करना। उनका महारासनृत्य तो बड़े-बड़े तत्त्वज्ञोंके लिये रहस्यकी वस्तु है।

मल्लविद्याके तो आप परमाचार्य ही बन गये। देखनेमें

नन्हे-से होकर ऐसी पैतरेवाजी की कि मल्लविद्याभिमानी मुष्टिक-चाणूरका कचूर ही निकल गया। वहाँ कुवल्यापीडका विनाश, धनुषमंग और कंसका वध करके आपने अपने बल-पौरुषकी धाक जमा दी।

उन्होंने भला छोड़े हाँकना कब किससे सीखा था? पर इस कलामें वे सबके गुरुस्थानीय हैं। दाल्य-सरीखे अश्वसंचालन-कुशल भी उसके सामने अपनेकी नगण्य मानते हैं। पर उनका यह सारथ्य कर्म है—केवल मित्रधर्मका आदर्श रखनेके लिये और धर्मयुद्धमें अर्जुनको विजय दिलानेके लिये।

उनकी वाग्मिता प्रसिद्ध है। कौरवोंकी समामें उनका भाषण सुननेके लिये दूर-दूरसे बड़े-बड़े बूढ़े ज्ञानी, श्रोत्रिय, पण्डित, विद्वान् ऋषि पधारे थे।

उनका दिव्य तेज तथा ऐश्वर्य इतना विलक्षण है कि उसके सामने सभी सहज नतमस्तक हो जाते हैं। उनके समकालीन महान्-से-महान् ज्ञानी-विश्वानी, ज्ञानवृद्ध-वयोवृद्ध, धर्मशील-तपस्यारत, ऋषि-महर्षि, वीर-पराक्रमी, शान्तिप्रिय और विकट योद्धा—सभी उनमें श्रद्धा करते और उनके लोकातीत ऐश्वर्यको देखकर चकित होते थे। साध्वन् भगवान् वेदव्यास, देवर्षि नारद, पितामह भीष्म, नाना उग्रसेन, विदुर, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, धृतराष्ट्र, कर्ण, गान्धारी, कुन्ती आदि विभिन्न भावों तथा विचित्र स्वभावोंमें युक्त पुरुष और नारियाँ उन्हें ईश्वरबुद्धिसे देख-देखकर अपनेको कृतार्थ मानते थे।

उनकी 'भगवद्गीता' जगत्के अध्यात्म-साहित्यका ही नहीं, नैतिक जगदाकाशका भी नित्य निरन्तर वर्द्धनशील परमशान्तिदायक तथा प्रकाशदायक परमोज्ज्वल दिव्य सूर्य है, जो समस्त जगत्को अपनी ओर आकृष्ट किये है और जिसको सभी अपने-अपने क्षेत्रमें सर्वथा सफल पथप्रदर्शक मानकर अपनाये हुए हैं—एकान्त अरण्यवासी विरक्त महात्मा भी, लोकमान्य तिलक-सरीखे कर्मयोगी भी, गांधीजी-सरीखे राजनीतिक नेता भी, कुशल व्यापारी भी और महान् क्रान्तिकारी भी। ध्वंसके ज्वालामुखीके मुखपर बैठा हुआ आजका आत्मविस्मृत, तमोऽभिभूत भौतिक-विज्ञान-मदमत्त मानव यदि भगवान् श्रीकृष्णकी सर्वकल्याणमयी श्रीमद्भगवद्गीताका आश्रय लेकर उससे प्रकाश प्राप्त करे तो उसे सच्चे विज्ञानकी दिव्य ज्योति प्राप्त हो सकती है।

विकास तथा कल्याणका सच्चा मार्ग मिल सकता है और जगत् प्रलयाग्निके भीषण भयसे मुक्त हो सकता है।

निष्कामताका परम आदर्श उनके लीलाचरित्रमें प्रत्यक्ष है। वे सर्वथा निष्काम आत्मा होकर भी लोकसंग्रहार्थ यथायोग्य कर्म करते हैं। अत्याचारी राजाओंका वध करते हैं, पर स्वयं किसीके भी राज्यपर कभी अधिकार नहीं करते।

किसी भी अच्छे कार्यको वे सहज ही स्वीकार करते हैं। न उन्हें कभी हर्ष होता है; न विषाद; न मानका बोध होता है; न अपमानका एवं न गौरवका भान होता है; न लज्जाका। पाण्डवोंके राजसूय यज्ञमें बड़े-बूढ़े शानी ऋषि-मुनियों तथा भीष्मादि गुरुजनोंके सामने वे अपनी सर्वांगपूजा स्वीकार करते हैं और उसी यज्ञमें समागत अतिथि-अभ्यागतोंके चरण धोनेका कार्य भी करते हैं। महाभारत-रणमें जहाँ वे एक प्रकारसे पाण्डवोंकी समरनीति-समिति के अध्यक्ष हैं, वहीं वे अर्जुनके रथपर लगाम-चाबुक हाथमें लिये घोड़े हाँकते हैं। 'तोत्रवेत्त्रैकपाणयः'—

वे जहाँ पूर्णतम भगवान् हैं, वहाँ पूर्ण मानवके रूपमें भी आदर्श व्यवहार करते हैं। पाण्डव-कौरव युद्ध न हो, इसके लिये वे स्वयं संधिदूत बनकर कौरव-सभामें जाते हैं और सभी भौतिक समझाकर, युद्ध न हो, इसका प्रयत्न करते हैं। पर दुर्योधनके न माननेपर वे पाण्डवोंको युद्धके लिये स्पष्ट आदेश भी देते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णका एक छोटे-से-छोटा चरित्र भी आदर्श, स्मरणीय, मननीय और जीवनमें उतारने लायक है। अवश्य ही उनकी अप्राकृत अलौकिक भगवत्ताकी नकल तो हो नहीं सकती, उसकी नकल करने जाना भी तो पतनके गर्तमें गिरना है। पर उनके लोकसंग्रहार्थ किये हुए सभी लीला-चरित्र अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार सर्वथा अनुकरणीय हैं।

वे निश्चित ही स्वयं भगवान् हैं। पर कोई उन्हें महा-पुरुष माने, योगेश्वर माने, परम पुरुष माने, महामानव माने, पूर्ण मानव माने, अपूर्ण मानव माने, निपुण राजनीतिज्ञ माने, कुटिल राजनीतिज्ञ माने, कला-निपुण माने या कुछ भी माने—कोई कैसे भी वस्तुतः उनके सम्पर्कमें आ जायगा तो उसका कल्याण निश्चित है। अवश्य ही उसके साधन विभिन्न होंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण सत्य हैं, नित्य हैं, उनमें उत्पत्ति-विनाश नहीं है। उनका शरीर सच्चित्-भगवदानन्दस्वरूप

है। तथापि लीलाकी दृष्टिसे आज उनके प्राकट्यके महामहोत्सवका पुण्य पर्व-दिवस है। हम सभीको भक्ति-प्रणत-चित्तसे उनके पावन चरणरज-कणमें अनन्त नमस्कार करना; उनकी परम पावन लीलाओंका स्मरण-कीर्तन करना और उनके परम पावन नामोंका कीर्तन-गान करना और उनके आदर्श उपदेशोंको तथा लीलाचरित्रोंको यथा-साध्य यथायोग्य जीवनमें उतारकर अपने जीवनको सफल बनाना चाहिये।

जन्म अजन्मा अविनाशीका हुआ आज अति मंगल-धाम।
कंस क्रूरके कारागृहमें, नैद-घरमें प्रगटे अभिराम॥
परम स्वतन्त्र, अखिल लोकोंके एकमात्र जो ईश महान्।
भक्तोंके हो परार्थीन, वे प्रगटे भक्तिवश्य भगवान्॥
ग्वाल-बालकोंके संग खेले विविध प्रकार गाँवके खेल।
वन-वनमें गो-वत्स चराये, किया वन्य जीवोंसे मेल॥
दधि लूटा, गायन-चोरी की, खूब मचाया शुचि हुडदंग।
खूब लकाया, नयी नयी रच लीला, सबको लेकर संग॥
दैत्य-दानवोंका वध करके किया सहज उनका उद्धार।
लघु अंगुलीपर गोवर्धन धर, इन्द्रदर्पका किया संहार॥
मुरली मधु वजा, सबको कर मोहित, हरी चित्त-सम्पत्ति।
दावानल पी, कालिय वशकर, ब्रजकी दारुण हरी विपत्ति॥
मिट्टी खा, फिर दिखलाया मुहमें माताको विश्व अगाध।
हो आश्चर्यचकित सुख पाया, उपजी नयी-नयी सुख-साध॥
गोपीजनके वसन-हरण कर किया आवरण-भंग पवित्र।
महारास कर प्रेम-रसनयी भगवत्ता की सिद्ध विचित्र॥
मथुरा पहुँच, किया धोबीका, कुब्जाका मंगल उद्धार।
मार कुवलयाको, मुष्टिक-चाणूर मल्लका कर संहार॥
कंस क्रूरका किया कचूमर, देकर उग्रसेनको राज।
करने लगे विविध लीला फिर ज्ञान-शक्ति-लीला-रसराम॥
कालयवनका सहज दमन कर, जरासंधका हर अभिमान।
बसे द्वारकामें जा माधव, किये विवाह अष्ट सविधान॥
भौमासुरका वध कर सोलह सहस राजकन्या ले साथ।
आये, की कामना पूर्ण, उनको पकड़ा निज मंगल हाथ॥
पांडव-राज-सभामें वध कर किया सहज शिशुपाल निहाल।
कर स्वीकार अग्रपूजनको, ऊँचा किया युधिष्ठिर माल॥
पांडव-कौरव समराङ्गणमें दे अर्जुनको गीता-ज्ञान।
अखिल लोक अध-तम-हारी जो मार्गदर्शिका ज्योति महान्॥

संख्या १०]

दे अनन्य आश्रय अर्जुनको किया नित्य निजजन स्वीकार ।
 दिव्य लोकमें दिव्य देह धर, करता जो सेवा अविकार ॥
 भेते सर्वेश्वर जो सर्वातीत, सर्वमय, सर्वधार ।
 प्राकृत-गुण-विरहित जो नित कल्याण-गुण-गणोंके आगार ॥
 अखिल-सामृतसिन्धु, नित्य सौन्दर्य परम माधुर्य-निधान ॥
 परम स्वतन्त्र, प्रेमवश लेते प्रेमीको निज प्रियतम मान ॥
 फल-फल प्रेम बढ़ाते रहते, करते नित नव-नव रसदान ।
 नित्य तृप्त, नित नव रस आस्वादन करते, करते रस-पान ॥
 राजनीतिविद् कुशल, राज्यनिर्माता, नित्य पूर्ण निष्काम ।
 सबके दुःखहर्ता सुख-दाता, सबके नित्य सहज हितधाम ॥
 परम सखा प्रिय, परम प्रियतम, परम पिता, गुरु, बन्धु ललाम ।
 सहज सुहृद्, शरणागतवत्सल, परम वदान्य आत्माराम ॥

प्रकटे आज देव-मुनि-गो-द्विज-रक्षक सत्य-धर्म-आधार ।
 करो सभी मिल मुक्तकण्ठसे उनका पुनः-पुनः जयकार ॥
 जय वसुदेव देवकीनन्दन, जय नन्द-नन्द यशोदालाल ।
 जय प्रेमीजन, मुनि-नन-मोहन, जयति सुकोमल हृदयविशाल ॥
 जय नन्दबाबा, जयति यशोदा, जय गोपी, जय गैया-ग्वाल ।
 जय वंशी, जय यमुना जय जय, जय वृन्दावन, द्वापरकाल ॥
 जय वसुदेव-देवकी जय-जय, जयति कंसका कारागार ।
 जय रोहिणि बलराम जयति जय, जय उद्धव अक्रूर उदार ॥
 जय मथुरा द्वारिका जयति जय, पटरानी हरि-उरकी माल ।
 जय षोडश सहस्र हरि-गृहिणी, जयति धनंजय कुन्तीलाल ॥
 जय गीता, भारत महान् जय, जयति भागवत लीला-सार ।
 जय प्रेमी-ज्ञानी-जन करते जो प्रभुका महिमा विस्तार ॥
 बोलो वसुदेव-देवकीनन्दन, नन्द-यशोदालालकी जय ।

अपना रूप और अपनी मुक्ति

(लेखक-श्रीराधाकृष्ण)

उन्नीसवीं शताब्दी जा रही थी ।

दक्षिण भारतके एक छात्रके मनमें एक भाव था जो प्रश्न बनकर उठता था और उसके उस प्रश्नका समाधान नहीं हो पाता था । वह जानना चाहता था कि 'मैं कौन हूँ ?' परन्तु उसके इस प्रश्नका कोई संतोषजनक समाधान नहीं मिलता था ।

उस युवकका नाम था शिवप्रकाशम् पिल्ले । वह निरन्तर इस गुत्थीको सुलझानेमें लगा रहता कि मैं कौन हूँ ? इस गूढ़ समस्यापर चिन्तन किया, मनन किया, दर्शनशास्त्र उसने पढ़े, दर्शनशास्त्रकी परीक्षाएँ पास कीं; किन्तु मनको प्रबोध न मिला । अन्तःकरणमें उठा हुआ प्रश्न उठा ही रह गया और शिवप्रकाशम्को जीविकाके क्षेत्रमें उतर आना पड़ा । अकोट जिलेके माल-महकमेमें उसे नौकरी मिली और वह अपने काममें लग गया । सरकारी काम था, उलझा हुआ काम । कभी यहाँ जाना, कभी वहाँ जाना । कामकी भीड़में मनका प्रश्न मूर्च्छित हो गया । सन् १९०२ ईस्वीमें माल उगाहनेके लिये शिवप्रकाशम्को अरुणाचलम्में जाना पड़ा । वहाँ जाकर उसने सुना कि यहाँ एक ब्राह्मण तपस्वी रहते हैं । वे बड़े सिद्ध हैं, बहुत ही बड़े महात्मा हैं । तब शिवप्रकाशम्के मनमें प्रश्नकी वार्तिका फिरसे जल उठी ।

उसने पूछा—'वे ब्राह्मणस्वामी प्रश्नोंका उत्तर तो देते हैं ?'

लोगोंने कहा—'ब्राह्मणस्वामी मौन रहते हैं । बोलते नहीं । चाहो तो लिखकर या इशारोंसे बात कर सकते हो ।'

ये ब्राह्मणस्वामी और कोई नहीं, तपःपूत महर्षि रमण थे । महर्षि रमण नाम तो बादमें पड़ा । उस समय वे ब्राह्मणस्वामीके नामसे ही विख्यात थे । शिवप्रकाशम् पिल्ले उनके पास पहुँचे और उन्होंने अपना प्रश्न रक्खा । महर्षिने उनके कुछ प्रश्नोंका जवाब इशारोंमें दिया, कुछका जवाब तमिळमें लिखकर दिया । उसके बाद शिवप्रकाशम् पिल्लेने 'अनुग्रह अहवल' नामक पुस्तक तमिळमें लिखी जिसमें उन्होंने अपने प्रश्नों और महर्षिके उत्तरोंको लिपिवद्ध कर दिया था । वे प्रश्न और उत्तर बड़े कामकी चीज हैं । यहाँ उस वार्तालापका रूप दिया जा रहा है ।

शिवप्रकाशम् पिल्लेका पहला प्रश्न था—'स्वामीजी ! ब्रतलाइये कि मैं कौन हूँ ? मुझे किस प्रकार मुक्ति प्राप्त हो सकती है ?'

स्वामीजीने उत्तर दिया था—'सदा विचार करो कि मैं कौन हूँ ?' इसी प्रकारके विचारके द्वारा तुम्हें अपने

स्वरूपका ज्ञान हो जायगा। तुम्हारी मुक्तिका भी यही मार्ग है। इसी चिन्तनके द्वारा तुम्हें मुक्ति मिल जायगी।

परंतु इतनेपर भी बात खुली नहीं। उत्तर पाकर भी शिवप्रकाशम् खाली हाथ रह गये। तब उन्होंने अपने प्रश्नको फिर दुहराया। पूछा—‘मैं कौन हूँ?’

स्वामीजीने उत्तर दिया—‘पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंमेंसे एक भी (मैं) नहीं। ये ज्ञानेन्द्रियाँ अपना जो लक्ष्य रखती हैं, जो कामना करती हैं उनमेंसे एक भी (मैं) नहीं। कर्मेन्द्रियाँ भी (मैं) नहीं। वह न प्राण है और न मन। स्मृति-विहीन सुषुप्ति भी (मैं) नहीं है।’

फिर भी बात बनी नहीं, फिर भी प्रश्नका उत्तर नहीं मिला, फिर भी जिज्ञासा बनी रही। यह भी (मैं) नहीं, वह भी (मैं) नहीं, तब (मैं) है कौन? शिवप्रकाशम्ने पुनः अपना प्रश्न दुहराया—‘तो मैं कौन हूँ?’

स्वामीजीका उत्तर था—‘इन सारी वस्तुओंके निराकरणके बाद जो शेष बच जाता है वही (मैं) है। वही चैतन्य है, वही सद्बस्तु है।’

वही चैतन्य है, वही सद्बस्तु है। तब शिवप्रकाशम्का चौथा प्रश्न था—‘चैतन्यका क्या स्वभाव है?’

स्वामीजीने उत्तर दिया—‘वही सच्चिदानन्द है। उसीको मौन कहते हैं, वही आत्मा है। उसमें ‘अहम्’का बोध भी नहीं होता। केवलमात्र वही वस्तु रहनेवाली है। भेददृष्टिके कारण जीव, जगत् और ईश्वर—इन तीनोंका अलग-अलग आभास होता है। ये तीनों शिवस्वरूप हैं, तीनों सद्बस्तुसे अभिन्न हैं।’

शिवप्रकाशम्के प्रश्नका उत्तर मिल चुका था। परंतु वे यहीं पहुँचकर रुके नहीं। आगे उन्होंने प्रश्न किया—‘शिवरूपी उस देवदेव—सद्बस्तु—को किस प्रकार प्रत्यक्ष किया जा सकता है?’

स्वामीजीने इस गूढातिगूढ प्रश्नका नितान्त सरल उत्तर दिया—‘यदि गायब हो जाय तो द्रष्टाका रूप भलीभाँति जान सकते हो।’

परंतु शिवप्रकाशम् सोच रहे थे कि सामने सारा संसार है। संसारकी उलझन और सुलझन है। नाना प्रकारके विषय हैं, जिनपर मन भौंरेकी भाँति मड़राता है। ऐसी दुनियामें रहकर केवल द्रष्टाको ही देख सकनेका आनन्द। उन्होंने

प्रश्न किया—‘मनमें विषयोंके रहते हुए, आँखोंके द्वारा विषयोंको देखते हुए, क्या इस शिवस्वरूपकी अनुभूति नहीं रह सकती?’

‘नहीं रह सकती!’ स्वामीजीका उत्तर था—‘द्रष्टा और दृश्य रस्सी और उससे बासनेवाले साँपके समान है—रज्जौ यथाहे भ्रमः! जबतक यह साँप और रस्सीका भ्रम दूर नहीं होता, तबतक यह विश्वास जम नहीं पायेगा कि यह जो है सो केवल रस्सी ही है।’

शिवप्रकाशम् पिल्लेने पूछा—‘तब, बाहरके ये दृश्य कब अदृश्य होंगे?’

स्वामीजीने जवाब दिया—‘सभी भावनाओं और सभी कर्मोंके मूलमें जो मन है, वह जब अदृश्य हो जायगा तब बाहरके ये दृश्य भी गायब हो जायेंगे।’

मूल बात मनपर आ पहुँची। शिवप्रकाशम्ने मनको जाननेके लिये पूछा—‘मनका क्या स्वभाव है?’

स्वामीजीने उत्तर दिया—‘संकल्प और विकल्प ही मन हैं। शक्तिके रूपोंमें यह एक है। जागतिक दृश्योंके स्वरूपमें यह मन दिखलायी देता है। शिवरूपी आत्मामें जब मन लय हो जायगा तब आत्मानुभूति प्राप्त होगी। जबतक मन काम करता रहेगा, तबतक दुनिया ही दिखलायी देगी, आत्मा नहीं दीखेगा।’

उसके बाद शिवप्रकाशम्का सवाल था—‘मन किस प्रकार लय होगा?’

स्वामीजीने उत्तर दिया—‘मैं कौन हूँ?’ इस प्रश्नके आत्मविचारको जारी रखनेसे ही मनोलय हो जायगा। ‘मैं कौन हूँ?’ का विचार भी एक प्रकारका विचार ही है, परंतु इस विचारसे दूसरी सारी भावनाओंका नाश होगा और इसके बाद इसका भी लोप हो जायगा। अंगार चिताको भस्म कर देगा और फिर आप भी राख बन जायगा। तब आत्माकी अनुभूति प्राप्त होगी, तब मैंवाला अलग सत्ताका भाव मिट जायगा। प्राण, जो साँसोंको चलानेका कार्य करता है, वह भी रुक जायगा। प्राण और अहम्का विचार, दोनोंका मूल एक है। इसलिये अहंकार या अभिमानसे खाली होकर, उनका त्याग करके काम करना चाहिये। यदि यह दशा प्राप्त हो गयी तो पत्नीमें भी विश्वजननीका भान होने लगेगा। आत्मामें इसी अहंकारके अर्पणका नाम ही सच्ची भक्ति है।

संख्या १०]

ये बातें सुननेमें जितनी सरल हैं, करनेमें उतनी ही कठिन हैं। इससे भी सरल उपाय अगर मिल जाता तो कितना अच्छा होता। शिवप्रकाशमूने पूछा—‘क्या मनोलयके और कोई दूसरे उपाय नहीं?’

स्वामीजीने इस प्रश्नका उत्तर दिया था—‘विचारको छोड़ और कोई सच्चा शक्तिशाली मार्ग नहीं है। अन्य मार्गोंसे भी मनोलय होता है, परंतु क्षणभरके लिये। उसके बाद तत्काल पूर्वकर्मोंका उत्थान हो जाता है।’

फिर भी बहुत-सी वासनाएँ ऐसी हैं जो बड़ी गहराईमें पड़ी हुई हैं, जैसे आत्मरक्षाकी भावना। इस तरहकी गूढ़ भावनाओंके बारेमें शिवप्रकाशमूने पूछा—‘निगूढ़ भावनाएँ स्व शान्त होती हैं?’

स्वामीजीने उत्तर दिया—‘जैसे-जैसे आत्माकी परम शान्तिमें गोते लगाओगे वैसे-वैसे वासनाएँ ढीली पड़ती जायँगी, तुमसे अलग होती जायँगी और मिटती जायँगी।’

मगर ये वासनाएँ एक जन्मकी हैं तब तो ऐसा तो है नहीं कि धूलकी तरह वासनाओंको बटोरा और फिर झाड़कर फेंक दिया। जन्म-जन्मकी वासनाओंको लेकर मनुष्य संसारमें आता है। शिवप्रकाशमूने पूछा—‘कई जन्मोंकी प्रारब्ध-वासनाओंका बिल्कुल नाश हो जाना क्या सम्भव है?’

इस प्रश्नके उत्तरमें ब्राह्मणस्वामीने प्रचलित धारणाओंके विपरीत एक नया विश्वास दिया। उनका उत्तर था—‘इस प्रकारकी शंकाओंको पास न फटकने दो। दृढ़ संकल्पके द्वारा आत्माकी शान्तिमें गोते लगानेवाला मन उसी आत्म-विचारसे बारंबार आत्मोपलब्धिका स्वाद ले-लेकर अन्तमें वही हो जायगा। यदि शंका जाग्रत् हो जाय तो उसके समाधानके लिये प्रयत्न करनेकी भी आवश्यकता नहीं। जिस ‘मैं’को संदेह हुआ है, उसी ‘मैं’को जाननेका यत्न करो।’

तब शिवप्रकाशमूने तेरहवाँ प्रश्न किया—‘विचार करनेकी कोई अवधि है? किस समयतक विचार किया जाय?’

शिवप्रकाशमूके इस प्रश्नका उत्तर ब्राह्मणस्वामीने तत्काल लिखकर दिया था और शिवप्रकाशमूने उसे तत्काल कागजपर उतार भी लिया था। स्वामीजीका उत्तर था—‘जबतक मनमें रहकर वासनाएँ संकल्प-विकल्प करती हैं तबतक विचार करो। जबतक किलेमें शत्रु घुसे हुए हैं तबतक उन्हें निकाल-बाहर करना ही पड़ेगा। बाहर निकलते ही एक-एकका गला घोट दो। आखिर किसी दिन किला

शत्रुओंसे खाली हो जायगा और अपने कावूमें आ जायगा। संकल्पों और विकल्पोंपर छापा मारो। एक-एकको विचार-मार्गसे मिटा दो। विचारों और संकल्पोंके अङ्कुरित होते ही उन्हें मिट्टीमें मिला देना ही वैराग्य है। आत्मानुभूति होनेतक एक ही विचारकी आवश्यकता है। वह यही कि आत्मा ही सद्बस्तु है। इस विचारकी सदा आवश्यकता होती है। तैलधारावत् जो आत्मविचार हो वही वाञ्छनीय है।’

उसके बाद शिवप्रकाशमूका अन्तिम प्रश्न यह था—‘इस संसारमें जो कुछ हो रहा है वह क्या ईश्वरके संकल्पका फल नहीं है? यदि है तो ईश्वरको ऐसा संकल्प क्यों पैदा हुआ?’

स्वामीजीका सरल उत्तर था—‘ईश्वरको किसी प्रयोजनकी आकाङ्क्षा नहीं। वह किसी भी कर्मसे बद्ध नहीं होता। संसारके व्यवहार उसे छू नहीं पाते। इसके लिये उपमान आकाश और सूर्य हैं।’

‘आकाशके नीचे और सूरजके सामने क्या कुछ नहीं होता, मगर आकाश और सूरजको कुछ भी नहीं व्यापता। वह केवल साक्षी है। ईश्वरकी भी वैसी ही बात है। जो कर्ता है वही भोक्ता है। कर्म और कर्मफलसे ईश्वरका सम्बन्ध नहीं।’

उस दिन एक बात यह भी हुई कि शिवप्रकाशमू बार-बार यह पूछते रहे कि मेरे लिये विशेषरूपसे कोई राह बतलाइये; लेकिन ब्राह्मणस्वामीने इस बातका कोई उत्तर नहीं दिया। यह कदाचित् इसलिये कि भगवान्‌के दरबारमें कोई भी व्यक्ति विशेष नहीं और किसीके लिये भी भिन्न मार्ग नहीं। जो सत्य है वह सबके लिये एक समान है।

जो हो, सन् १९१३ में शिवप्रकाशमूकी धर्मपत्नीका स्वर्गवास हो गया। वे एक बार फिर असमंजसमें पड़े। अब उनके सामने सवाल आया कि क्या पुनः विवाह करके गृहस्थी स्वीकार की जाय? वैसे उन्हें पहलेसे ही वैराग्य हो चुका था और उन्होंने त्यागपत्र देकर १९१० में ही सरकारी नौकरीसे मुक्ति पा ली थी। वे गणेशजीके भक्त थे। एक रात उन्होंने अपने मनके प्रश्न लिखकर गणेशजीकी मूर्तिके सामने रख दिया और प्रार्थना की कि आज इन प्रश्नोंका उत्तर दे दीजिये। परंतु गणेशजी उन्हें दूसरे रूपमें प्रतीत देना चाहते थे, इसलिये उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। दार-

दाँव देखकर वे पुनः अरुणाचलम् पहुँचे और ब्राह्मणस्वामीके सम्मुख उपस्थित हुए। उस समय वे विरुपाक्षि गुफामें रहते थे। लोग आ रहे हैं, लोग जा रहे हैं। हर तरहके आदमी हैं, हर प्रकारके प्रश्न हैं। परंतु ब्राह्मणस्वामीके पास सबके लिये केवल एक ही उपदेश था—‘अपनेको जानो, आत्मानुभूति करो, आत्मसाक्षात्कार करो।’ शिवप्रकाशम् पिल्ले वहाँ बैठे रहे। उनके प्रश्न उनके होठोंतक आकर रुक गये। स्वामीजीके सम्मुख वे अपने प्रश्नोंको रख भी नहीं सके और उन्हें उत्तर मिल गया। शिवप्रकाशम्ने पाया कि ब्राह्मणस्वामीका जीवन ही उनके प्रश्नोंका उत्तर है। ब्राह्मणस्वामी ब्रह्मचारी हैं। विवाहकी उन्हें कोई कामना नहीं, उनके

सम्मुख विवाहका कोई प्रश्न ही नहीं। इस प्रकार शिवप्रकाशम्को अपने एक प्रश्नका उत्तर मिल गया। दूसरा प्रश्न था—धन-सम्बन्धी। सो शिवप्रकाशम्ने देखा कि ब्राह्मणस्वामी स्वयं गरीब हैं। गरीब हैं, फिर भी धनकी कोई कामना नहीं। कभी धनकी बाततक नहीं उठाते। इस हालतमें भी इतने सुखी हैं कि मानो सारे संसारकी सम्पदा उन्हें ही मिल गयी हो। जो कोई उनके पास आता है, उससे भी कहते हैं कि ‘सांसारिक लालसाओंको छोड़ो, आत्मचिन्तन करो, आत्मानुभूति प्राप्त करो।’

शिवप्रकाशम् पिल्लेको इससे बढ़कर बढ़िया उत्तर मिल नहीं सकता था।



मन्त्र-सिद्धि

[कहानी]

(लेखक—श्री चक्र)

मुझे अपनी पर्वतीय यात्राके समय कुछ पन्ने देखनेको मिले थे। उस समय मैं गंगोत्तरी जा रहा था। भैरवचट्टी छोटी है और गंगोत्तरी पहुँचनेके लिये वह अन्तिम चट्टी है। वहाँ प्रातः पहुँचा था। मध्याह्न विश्राम, भोजन करके चल देना था। इस अल्प समयमें तीन संन्यासियोंके एक यात्रीदलसे परिचय हो गया। उनमें जो सबसे वृद्ध थे, उन्होंने वे पन्ने दिखलाये थे।

उनको वे पन्ने नैपाल होकर कैलास जाते समय मुक्तिनाथमें एक नैपाली भार-वाहकसे मिले थे और उसने बताया था कि कोई भूयानी बकरी चरानेवाला कहीं पर्वतीय गुफासे उन्हें उठा लाया था। वह चरवाहा और वह नैपाली दोनों अपठित थे। वृद्ध संन्यासीने उन्हें सँभालकर रखा था।

पन्ने थोड़े ही थे और उनमें भी आगे-पीछेका भाग भाँगकर ऐसा हो गया था कि पढ़ा नहीं जा सकता था। दैनन्दिनीके अंश वे नहीं थे; क्योंकि उनमें तिथि नहीं थी और क्रमवद्ध कुछ लिखा भी नहीं था। लेकिन लिखनेकी शैली दैनन्दिनी-जैसी थी। कभी तो वर्षों पश्चात् उसके लेखकको लिखनेका स्मरण हुआ जान पड़ता था।

एक बात और—मैं यात्रामें था। मुझे गंगोत्तरी

पहुँचनेकी त्वरा थी। वे तीनों संन्यासी गंगोत्तरीमें मुझे दूर ठहरे और कब नीचे लौट गये, मुझे पता नहीं। मैंने कोई प्रतिलिपि उन पन्नोंकी नहीं की। केवल स्मृतिके आधारपर ही उसका विवरण लिखने बैठा हूँ। प्रयत्न कर रहा हूँ कि उन पन्नोंका विवरण उसी ढंगसे और जहाँतक बन पड़े उन्हीं शब्दोंमें लिखा जाय, जैसा उन पन्नोंमें था।

×

×

×

माता-पिता बचपनमें अनाथ छोड़ गये। मुझे भीख नहीं माँगनी पड़ी, यही क्या कम है। पढ़ता मैं कहँसि; किंतु अपने इस स्वभावका क्या करूँ? जो आश्रय देगा, खिलाने-पहनावेगा, वह काम लेगा ही। काम करनेमें मुझे आपत्ति नहीं है, लेकिन आश्रयदाता सिरपर बैठकर तो रक्खेगा नहीं। वह डाँटेगा, तिरस्कार करेगा और भगवान्ने स्वभाव ऐसा दे दिया कि किसीकी आधी बात सही नहीं जाती। वे सम्बन्धी थे, बड़े थे, विद्वान् थे। उन्होंने डाँट दिया तो क्या हो गया? समझता हूँ यह सब; किंतु सहन जो नहीं होता। उनसे झगड़कर आया हूँ। अब वहाँ जाना तो सम्भव नहीं है।

×

×

×

संख्या १०]

केवल छः पैसे पास थे। तीन दिन चने चवाकर काट दिये। अब ! गरमीके दिन हैं। कहीं वृक्षके नीचे पड़ा रहा जा सकता है। घरके नामपर तो खंडहर भी नहीं है। कल क्या ! रोजी-रोजगार कुछ चाहिये पेटके गड़ढेको भरनेके लिये। व्यापारके लिये पूँजी न हो तो परिचय अवश्य चाहिये। वह कहाँसे आवे ? नौकरी ! लेकिन अठारह वर्षके केवल साधारण हिंदी पढ़े लड़केको जो नौकरी मिलेगी—नौकरका अपमान न हो, हो सकता है ? अपमान तो होगा ही। वह सहा जायगा ?

एक उपाय सूझता है—किसी साधुका शिष्य बना जा सकता है यदि वहाँ न टिक सका, वहाँ भी अपमान मिला तो ? शिक्षा माँगी जा सकेगी ? नहीं, यह करनेकी अपेक्षा उपवास करके मर जाना सरल है।

x

x

x

इधर आठ दिनसे आम खाकर आनन्दसे रहा हूँ। वृक्षोंपर चढ़ा न जाय, पत्थर न मारे जाय तो अपने आप उनके आँधीसे गिरे आम उठाकर ले लेनेमें कोई बगीचिका रक्षक बाधा नहीं देता। अब जबतक आमका मौसम है, पेट पालनेकी चिन्ता तो गयी।

कल मिला वह साधु गँजेड़ी था। उसका प्रलोभन व्यर्थ था। मैं ऐसे व्यक्तिका न शिष्य बन सकता, न उसकी सेवा कर सकता। लेकिन उसकी एक बात ठीक थी कि मन्त्रानुष्ठानके बिना सिद्धि नहीं मिल सकती। सुखी, सम्मानित जीवन बितानेके लिये मन्त्र-सिद्धि मेरे लिये आवश्यक है। कौन दिखलायेगा इसका मार्ग ? साधुने कुछ नाम लिये हैं, कुछ पते बतलाये हैं। मुझे उन सबके पास भटकना तो पड़ेगा। भटके बिना कोई पारस पाता है कभी ?

x

x

x

ओह ! मैं भी किस प्रपञ्चमें पड़ गया। तीन वर्षसे भटक रहा हूँ। लंबी-चौड़ी बातें बहुत बनायी जाती हैं; किंतु भीतर तथ्य कुछ नहीं है। बहुत हुआ तो थोड़ी हाथकी सफाई, कुछ ओषधियोंके प्रयोग, कुछ धोखाधड़ी। अधिकांश धूर्त हैं, कामिनी-काञ्चनके क्रीतदास और अपने नाम-रूपकी पूजाके भूखे ! और वे सिद्ध कहलाते हैं। मेरे पास क्या रक्खा है कि कोई मुझे ठगना चाहेगा। मुझे शिष्य-सेवक बनानेकी अवश्य उत्सुक मिलते हैं ये लोग।

मैंने सेवा की है और सेवाने ही उनका भंडा फोड़ा है। मैं उनके दम्भमें सम्मिलित हो जाऊँ ? छिः ! मुझे घृणा है इससे ! चोर-डाकू ही तो हैं ये सब एक प्रकारके। इनमें अनेक तो आचारहीन हैं। इनका दम्भ, इनकी कीर्ति, इनकी पूजा—लेकिन समाज तो मूर्ख है। जो बिना श्रम किये अत्यधिक लाभ चाहते हैं, वे ठगे जायेंगे ही।

x

x

x

‘हे भगवान् !’ आज प्राण बच गये, यही बहुत हुआ। और ढूँढ़ो मन्त्र-सिद्ध ! कितना प्रेम प्रदर्शन किया था इस हत्यारे कापालिकने। मैं इसकी ख्याति सुनकर इतनी दूर आसाम आया और यह जैसे उल्लाससे मिला, मिलना ही चाहिये था, उसको तो अनायास बलिपशु मिल गया था।

स्मरण करके अब भी रोमाञ्च हो आता है। मुझे अर्धरात्रिको श्मशान ले गया था वह। पता नहीं क्या-क्या पूजन-हवन करता रहा और तब एक धागेका सिरा मेरे हाथमें बाँधकर धागेको लेकर दूर कहीं अन्धकारमें जा छिपा। बड़ा लंबा धागा था। उसमें एक अंडा, मुर्गा, बकरा और सबसे अन्तमें मैं। मैं धागेको अन्धकारमें देख नहीं पाता था; किंतु अंडा फट्से फूटा तो चौंका। कुछ क्षण पश्चात् मुर्गा चीखकर मर गया। मैंने हाथसे धागा खोलकर झट पासके वृक्षकी जड़में बाँध दिया। मेरे वहाँसे हटते-हटते बकरा तिल्लया और गिर पड़ा। मैं भागा—दूरसे देखा कि वह वृक्ष ऊँची लपटोंसे घिर गया है, जिसमें मैंने अपने हाथका धागा बाँधा था।

श्मशानसे भागकर यहाँ आ छिपा हूँ। रात्रिकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी यहाँसे भागनेके लिये। कान पकड़े—अब किसी तान्त्रिकके चक्करमें नहीं पड़ूँगा।

x

x

x

भगवान् भी कितने दयालु हैं। मुझे कहाँ पता था इन उदार विद्वान्का। मैं तो विपन्न, क्षुधा-मूर्छित मार्गपर पड़ा था। ये कृपालु मुझे उठा लिये। तीन दिनसे इनके यहाँ टिका हूँ। मन्त्रानुष्ठानका ठीक मार्ग बतलाया है इन्होंने। इतना भटकनेके पश्चात् आज लगा है कि मैं अपने मार्गको देख सका हूँ।

ये शास्त्रज्ञ न मिलते, मुझे कहाँ पता था कि मन्त्रोंमें इतना श्रमेला है। अच्छा है कि मुझे अपना राशिनाम स्मरण है। किसे कौन-सा मन्त्र जप करना चाहिये, इसमें

उसकी आवश्यकता पड़ती है, यह बात मेरी कल्पनामें नहीं थी। पता नहीं इन्होंने क्या-क्या समझाया है। मन्त्रोंमें ऋणी-धनी आदि जाने कितने निर्णय आवश्यक हैं। मुझे केवल इतनेसे प्रयोजन है कि मेरे उपयुक्त मन्त्र ये निर्णय करके बतला दें।

X

X

X

मैंने समझा था, उतनी सरल बात नहीं है। अंगन्यास, करन्यास, अक्षरन्यास, मातृकान्यासादि कितने तो न्यास हैं। मुद्रा है और यन्त्र-कवचादि हैं मन्त्रके साथ। फिर मन्त्रका उत्कीर्णन, जागरण, सप्राणीकरण है। कितने भी विस्तार हों, कितनी भी उलझन हो, करना है तो यह सब सीखना भी है। मैं सीखूँगा—समय ही तो लगेगा।

बस एक बात अटपटी है। ये श्रद्धेय स्वयं दीक्षा देना नहीं चाहते। मेरा आग्रह-अनुरोध सब व्यर्थ चला गया है। मुहूर्त इन्होंने निकाल दिया है। बिना दीक्षाके मन्त्र सप्राण नहीं होता और दीक्षा लेना है एक साधुसे। जयसे आसामके उस तान्त्रिकका सम्पर्क मिला, साधुमात्रसे मुझे धृणा हो गयी है। साधुओंसे भय लगता है। लेकिन साधुने दीक्षा देना स्वीकार कर लिया है। दूसरा कोई मार्ग दीखता नहीं है।

X

X

X

आज पूरे पंद्रह वर्ष हो चुके। मेरा अनुष्ठान क्यों फलप्रद नहीं हो रहा है? मैंने कहीं प्रमाद किया हो, स्मरण नहीं आता। यह पर्वतीय प्रदेश पुण्यभूमि है। यहाँके ग्रामजन श्रद्धालु हैं और उनके इतने श्रमसे उपार्जित, श्रद्धार्पित आहारमें अन्नदोष भी सम्भव नहीं है। इनका श्रम ईमानदारीका यह पवित्र उपार्जन—तब दोष कहाँ है?

मैं आठ पुरश्चरण पूरे कर चुका हूँ। त्रिकाल-स्नान, एकाहार, लगभग चौदह घंटे प्रतिदिनकी साधना क्या थोड़ी होती है? प्रथम पुरश्चरणके पश्चात् तो मुझे अब अपना आसन भी मध्यमें परिवर्तित नहीं करना पड़ता। मैं अभ्यस्त हो चुका हूँ स्थिर बैठे रहनेका।

शुद्ध पवित्र देश, पवित्र आहार, प्रमादरहित अनवरत साधन और कोई आचार-दोष नहीं; किंतु मेरा मन्त्र उज्जीवित क्यों नहीं होता? मन्त्र-देवताने अवतक मुझे दर्शन देनेकी कृपा क्यों नहीं की? कहाँ त्रुटि है मेरे साधनमें?

मन्त्रशास्त्र सत्य नहीं है—ऐसी बात मेरा हृदय स्वीकार

नहीं करता। मैं अपने मन्त्रका प्लावन, ताडन, दाहनादि सप्त संस्कार भी सम्पन्न कर चुका। अब लौटना पड़ेगा मुझे। यदि वे परमोदार विद्वान् जीवित हों—दूसरा कोई मुझे दीख नहीं पड़ता।

X

X

X

बड़ा संकोच हुआ यहाँ आकर। मैं इन अतिशय वृद्ध एवं विद्वान्को कैसे बतलाऊँ कि केवल केशोंकी जटा बन जाने तथा दाढ़ी बढ़नेसे मैं उनका प्रणम्य नहीं हूँ। कितने श्रद्धालु और उदार हैं वे।

‘अश्रद्धया हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः।’

आज यह सूत्र सुना दिया इन्होंने। मन्त्रमें श्रद्धा न हो—वह निश्चय फलप्रद होगा, ऐसी दृढ़ आस्था न हो तो मन्त्र अपनी शक्ति प्रकट नहीं करता; किंतु मेरी श्रद्धा तो शिथिल कभी नहीं हुई। बिना श्रद्धाके कोई दीर्घकाल तक इतना श्रम कर सकता है?

एक बात मुझे स्वीकार है—मैं बहुत त्वरापूर्वक मन्त्रोच्चारण करता हूँ। मन्त्र-संख्या पूर्ण करनेपर मेरा ध्यान विशेष रहता है। मेरा चित्त, पता नहीं कहाँ-कहाँ जाता रहता है। स्थिर चित्तसे, स्वस्थ गतिसे, मन्त्रार्थ चिन्तन-पूर्वक जप मैंने नहीं किया है।

यहाँ भी गङ्गातट है। पण्डितजीका सान्निध्य है। जनपदसे बाहर एकान्तमें एक झोंपड़ीकी व्यवस्था वे कल कर देनेको कहते हैं। अब एक पुरश्चरण यहाँ करना उचित होगा।

X

X

X

मुझे चिन्ता नहीं है कि दो वर्षके स्थानपर ढाई वर्ष इस पुरश्चरणमें लगे हैं। मुझसे अधिक चिन्ता तथा निराशा तो पण्डितजीको मेरी असफलतासे हुई है। वे इन ढाई वर्षोंमें मेरे संरक्षक, निरीक्षक, प्रतिपालक सभी रहे हैं। कितने खिन्न गये हैं आज वे यहाँसे। उनके वे भरे-भरे नेत्र, कान्तिहीन मुख—बिना कुछ कहे वे यहाँसे लौट गये हैं। उनके लिये मनमें चिन्ता हो गयी है।

X

X

X

पण्डितजी तो यहाँसे जाकर सीधे अपने उपासना-कक्षमें बैठ गये हैं। उनका पूरा परिवार विनित है। उन्होंने अन्न-जल कुछ नहीं लिया सायंकाल तक। अजस्र अश्रु झर रहे हैं उनके नेत्रोंसे। किसीकी ओर दृष्टि उठाकर वे नहीं

संख्या १०]

देखते हैं। कोई संकेत नहीं किया उन्होंने मेरे वहाँ जानेपर भी।

हे प्रभो ! हे दयामय ! उन वृद्धपर दया करो ! मुझे इस विप्रको पीड़ा पहुँचानेके पापसे बचाओ !

× × ×

आज प्रातःकाल ही पण्डितजी आ गये थे। कितने प्रसन्न थे वे। 'आप मेरे अनुरोधको स्वीकार करके एक पुरश्चरण और कर लें !' कितना आग्रह था उनके स्वरोंमें। मैं तो निराश हो चुका था; किंतु उनका इतना आग्रह है तो दो ढाई वर्ष और सही। जीवनमें अब कुछ करना भी तो नहीं है। इतने दिनोंके अभ्यासने ऐसा बना दिया है कि जिम्मा मन्त्र-ज्ञा फिये बिना मानती नहीं है। अब कोई कामना भी तो नहीं रही। मन्त्रदेवताका साक्षात्कार—लेकिन किसलिये ? एक कुनूहलमात्र लगता है। मैं क्या माँगूँगा ? मनमें हँदकर भी कुछ पाता नहीं हूँ।

वे कह गये हैं—'आज अच्छा दिन नहीं है। कल शेष विचार करूँगा।' आज वे श्रान्त भी बहुत थे। कल अर्धनिश निर्जल व्रत किया उन्होंने। उनका वृद्ध शरीर, व्रत और रात्रि-जागरण उनको थका तो देगा ही। आज उनके लिये विश्राम आवश्यक था।

× × ×

आज पण्डितजीने एक अपरिचित तथ्य प्रकट किया है। मन्त्र-साधन त्रिपाद होता है। मन्त्र, मन्त्रदेवता (इष्ट) तथा गुरुमें दृढ़ श्रद्धा—इस साधनके चरण हैं। एक भी चरण भंग हो तो साधन पंगु होकर असफल हो जाता है।

मन्त्र और इष्टमें मेरी श्रद्धा कभी शिथिल नहीं हुई; किंतु मन्त्रदाता उन साधुमें मेरी श्रद्धा प्रारम्भमें ही नहीं थी। पण्डितजी कहते हैं—'गुरुका देह एवं दैहिक व्यापार दृष्टि देनेकी वस्तु नहीं। वह तो चिन्मय वपु मन्त्र-देवताका स्वरूप है। गुरु-देह तो इष्टका पीठ है। मन्त्र-दीक्षा, नाद-परम्परा बीज जहाँसे प्राप्त हुआ, उस उद्गममें श्रद्धा शिथिल हो जायगी तो मन्त्रका शक्तिप्रवाह बाधित हो जायगा।'

'अब उनका शरीर तो रहा नहीं। आप उनके आश्रममें अनुष्ठान करें। उनकी पादुकाएँ वहाँ हैं। उनका पूजन

प्रतिदिन करते रहें।' पण्डितजीने यह बात अपनी ओरसे नहीं कही है। उन्होंने मुझे बताया नहीं; किंतु लगता है कि कल अपने आराध्यकक्षमें उन्हें इस आदेशका आभास हुआ है।

× × ×

वह शत-शत चन्द्रोज्ज्वल दिव्य ज्योति—अब भी उसके स्मरणसे देहका कण-कण आनन्दविभोर हो उठता है। मैं पादुका-पूजन करके प्रणत हुआ और सम्पूर्ण स्थान उस स्निग्धोज्ज्वल प्रकाशसे परिपूर्ण हो गया।

मन्त्रका वह अकल्पनीय सुधा-संगीत जो उस प्रकाश-राशिसे ही झर रहा था; प्राणोंको सिद्धित कर रहा था। मैंने मस्तक उठाया और कब्रतक मैं मुग्ध, आत्मविस्मृत देखता रहा; मुझे कुछ पता नहीं है। ज्योतिर्मय मन्त्राक्षर और उन्होंने नृत्य करते मानो एक मूर्ति बनायी। किसकी मूर्ति—कहना कठिन है। चन्द्रमौलि, गङ्गाधर, नीलकण्ठ, त्रिलोचन, भस्माङ्गभूषित, सर्पसज्जित मेरे मन्त्रदेवता भगवान् शिव और मेरे मन्त्रदाता जटाजूटधारी वे साधु क्षणार्धमें एक और क्षणार्धमें दूसरी मूर्तिमें वह प्रकाश परिवर्तित होता रहा।

'वरं ब्रूहि !' जव सुनायी पड़ा, मैं किञ्चित् सावधान हुआ। मैं क्या माँगता ? पूरे अनुष्ठान-कालमें जो सोचनेपर मनमें नहीं आया, सहसा मुखसे निकल गया—'देव ! यह शिशु अज्ञ है। जो आपको परम प्रिय हो, वही दें आप !' यहाँ अक्षर मिट गये हैं।

× × ×

मेरे वे परम श्रेय आज नहीं रहे। श्मशानकी चिताग्निमें उनके शरीरकी आहुतिका साक्षी रहा मैं। साक्षी ही तो—मुझे इधर कोई सुख-दुःख स्पर्श कहाँ करते हैं। मैं—पर मैं कौन ? मेरा पाञ्चभौतिक देह क्या हुआ ? यह मन्त्राक्षरोंका कण-कण घनीभाव और यह नीलसुन्दर मयूर-मुकुटी—यह आनन्दका उल्लसित सागर, किसने सोचा था कि यह वरदानमें मिला करता है।

मुझे अब हिमालयकी ओर जाना है। हिमालय इसके आगेके पृष्ठ पढ़ने योग्य स्थितिमें नहीं थे।

भक्तिमार्ग इन्द्रियनिग्रहका सरलतम मार्ग है

(लेखक—श्रीअगरचन्द्रजी नाहटा)

मानव-जीवनमें उपासनाका बड़ा महत्त्व है । उपासनासे सद्गुणोंका विकास होता है और परमात्म-स्थितिकी प्राप्ति होती है । सद्गुणोंके विकासका सबसे प्रधान साधन है सद्गुणी व्यक्तियोंका आदर—भक्ति, पूजा, सेवा और सद्गुणोंकी आराधना । आराधना और उपासना एक ही है ।

उपासनाका अर्थ है—समीप बैठना या रहना और वह दो तरहसे होता है । (१) परमात्मा और सद्गुरुके पास बैठना, (२) आत्मा या आत्मीय गुणोंके पास रहना । वास्तवमें हम इन दोनों तत्त्वोंसे बहुत दूर बैठे हुए हैं । परमात्माको भूल-से गये हैं । कभी दुःख-दर्दके समय ही उनका स्मरण हो आता है । यदि उनके नामकी माला भी फेरते हैं तो हमारा मन इधर-उधर भटकता रहता है । इसलिये हम परमात्माके समीप नहीं पहुँच पाते । इसी प्रकार सद्गुरुओंके पास पहले तो हम अधिक समय बैठते नहीं हैं । यदि बैठते हैं तो भी मन घर और बाहरके कामोंमें लगा रहता है । उनकी वाणीको हम जीवनमें सक्रिय स्थान नहीं देते, उनकी साधनासे हम कर्तव्यकी प्रेरणा ग्रहण नहीं करते, तब उनकी उपासना करते हैं—यह कह ही कैसे सकते हैं ? आत्मासे भी हम बहुत दूर हैं । उसके दर्शन-अनुभवका प्रयत्न नहीं करते । शरीरमें ही आत्मबुद्धि की हुई है । इसलिये आत्माकी उपासना हम नहीं कर रहे हैं, यह निश्चित है ।

उपासना और वासनामें विरोध है । अतः जहाँ-तक हमारा मन वासनाओंमें भटकता है, वहाँतक सच्ची उपासना हो ही नहीं पाती । बाहरी दिखावा तो ढोंग है, उपासना नहीं ।

उपासनामें उपास्यके साथ तल्लीन हो जानेकी परमावश्यकता है, जबतक वह स्थिति प्राप्त नहीं होती,

साधकका चरम विकास नहीं हो सकता और उस स्थितिको प्राप्त करनेके लिये इन्द्रिय-निग्रहकी अत्यन्त आवश्यकता है । जबतक इन्द्रियोंके विषय-भोगोंमें हमारा मन लगा रहता है और तन जुड़ा रहता है, तबतक उपासनामें तल्लीनता नहीं आ सकती ! इसलिये सभी धर्मोंमें इन्द्रियदमनको महत्त्व दिया गया है । इन्द्रियोंके बहिर्मुखी होनेसे हमारा मन चञ्चल रहता है । कभी सुन्दर स्त्रियों या अन्य वस्तुओंके रूपके दर्शनमें मन ललचाता है । कभी मधुर संगीत सुननेके लिये हम बड़े उत्सुक हो जाते हैं । कभी विविध रसोंका आस्वादन करनेको जिह्वाकी लोलुपता नजर आती है । कभी सुन्दर पदार्थोंके प्रति आसक्ति देखी जाती है और कभी कोमल वस्तुओंके स्पर्शके लिये मन ललचा उठता है । इन पाँचों इन्द्रियोंके विविध विषयोंमें मन भटकता रहता है, तब उपासनामें तल्लीनता आयेगी ही कैसे ?

जैन-धर्ममें संयम और तपको बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है और इसका प्रधान कारण इन्द्रियोंका निरोध करना ही है । संयमके १७ प्रकारोंमें पाँच इन्द्रियोंका दमन सम्मिलित है ही और तपका अर्थ है—इच्छाओंका निरोध । इसमें भी इन्द्रियदमनकी ही प्रधानता है । पाँचों इन्द्रियोंमेंसे एक-एक इन्द्रियपर भी अंकुश न रहनेसे कितना दारुण दुःख उठाना पड़ता है, इस विषयमें हाथी, हिरन, मत्स्य आदिकें दृष्टान्त दिये गये हैं और यह कहा गया है कि जब एक-एक इन्द्रियकी विषयासक्तिका परिणाम इतना दारुण है तो जिनकी पाँचों इन्द्रियाँ छूटके साथ विषय-भोगोंमें लगी हुई हैं, उनका क्या हाल होगा ! यह तो प्रत्येक व्यक्ति स्वयं सोच ले ।

संख्या १०]

‘इन्द्रियपराजयशतक’ नाम प्राचीन प्राकृत ग्रन्थमें इसका बड़े सुन्दर रूपसे विवेचन एवं बोध-उपदेश प्राप्त होता है। उसकी कुछ गाथाओंका हिंदी पद्यानुवाद बुद्धलाल श्रावकका बनाया हुआ नीचे दिया जा रहा है। इसके प्रारम्भमें ही कहा गया है कि वही शरीर और पण्डित प्रशंसनीय है जिसके चरित्र-धनको इन्द्रियरूपी चोरोंने नहीं छूटा।

शूर वीर पण्डित वही, सदा प्रशंसागार।

चरित्र-धन जाको नहीं, हरत अज्ञ बटमार ॥

दूसरी गाथामें कहा गया है कि इन्द्रिय चपल तुरंगके समान है, दुर्गति-गर्तमें खींच ले जाती है, यह जानकर सत्पुरुषोंके वचनरूपी लगामसे इन्द्रियरूपी घोड़ोंको वशमें करना चाहिये। इन्द्रियोंको थोड़ी-सी ढीली छोड़नेपर बहुत दुःख उठाना पड़ता है। तुच्छ विषय-भोगोंमें सुख नाममात्रका है और दुःखका पार नहीं है। देवलोकके देव इन्द्रियदमन नहीं कर सकनेके कारण ही मोक्ष नहीं पा सकते। विषयभोगोंमें ही वे लगे रहते हैं, अतः व्रत-नियम ग्रहण नहीं कर पाते। मनुष्य व्रती बननेके कारण ही मोक्ष पा सकता है।

सभी व्रत-नियमोंका उद्देश्य है—इन्द्रियोंका निग्रह। जबतक इन्द्रियाँ वशमें नहीं, तबतक न तो अहिंसा-धर्मका पालन हो सकता है, न अपरिग्रहका। अधिकांश पाप इन इन्द्रियोंकी आसक्तिके कारण ही किये जाते हैं। साधनामें चित्तकी एकाग्रता और अन्तर्मुखताकी बड़ी आवश्यकता है। विषयासक्तिवाले व्यक्तिकी चञ्चलता मिट नहीं सकती; क्योंकि कभी अच्छा खानेकी इच्छा होती है, कभी देखने, सुनने, सूँघने आदिकी। इच्छाओंका अन्त नहीं। एककी पूर्ति हुई कि दूसरी अनेक इच्छाएँ तैयार। अतः उपासकको इन्द्रियनिग्रह अवश्य करना चाहिये।

इन्द्रिय-निग्रहका अर्थ है—बाह्य पदार्थोंके आकर्षण-का न रहना या कम हो जाना। अन्तर्मुखी बनना, बाह्य

विषयोंकी ओर दौड़नेवाली इन्द्रियोंको रोकना। इन्द्रियोंका निग्रह करके हमें उन्हें अपने वशमें लाना है। वे स्वच्छन्द न रहकर हमारे अधीन हो जायँ और हम उनसे जो काम लेना चाहें, उन्हें जहाँ ले जाना चाहें, वहाँ ले जा सकें, ऐसा अभ्यास कर लेनेसे इन्द्रियाँ हमारी उपासनामें बाधक न रहकर साधक बन सकती हैं। जैन आगमोंमें कहा गया है कि ‘जे आसत्ता ते परिसत्ता’ अर्थात् ‘जो कर्म बन्धनके कारण हैं, वे मुक्तिके कारण भी बन सकते हैं।’ यदि हम अपने इन्द्रियोंके सदुपयोग करनेकी कलाको सीख लें तो इस शरीर और इन्द्रियोंके द्वारा हम आत्मोत्थान कर सकते हैं। कानोंका विषय है सुनना, अतः यदि हम विकारवर्द्धक और मनको चञ्चल करनेवाली क्रोधादि कषाय राग-द्वेष आदि उत्पन्न करनेवाली बातोंको न सुनकर सत्पुरुषोंकी वाणीको सुनें तो हमारा उद्धार सहज ही हो सकता है। इसी तरह अन्य इन्द्रियोंका भी हम सदुपयोग करके अपनी उपासनाको आगे बढ़ा सकते हैं।

एक-एक इन्द्रियके संयमसे कितनी अद्भुत शक्तियोंका विकास होता है, इसका कुछ विवरण पातञ्जल-योगसूत्रमें पाया जाता है। वास्तवमें इन्द्रियाँ अपने-आपमें भली-बुरी कुछ भी नहीं हैं। उनको प्रेरणा देनेवाला आत्मा है। अतः हमें मनको वशमें करना आवश्यक है और वह वशमें होगा आत्माके द्वारा; क्योंकि सर्वोपरि सत्ता आत्मा ही है। हमने अपना भान भुल दिया है अर्थात् अपनी अनन्त शक्तियोंको हम भूल बैठे हैं। इसीलिये मन हमपर हावी हो गया है, पर अभ्यास और वैराग्यके द्वारा विवेक और ज्ञानकी लगामसे मनरूपी घोड़ेको वशमें किया जा सकता है। यदि हम अपनी इन्द्रियों और मनकी एकाग्रताके साथ उपासना करेंगे तो सच्ची उपासना होगी और वैसी उपासनासे ही हमारा कल्याण हो सकेगा। परमात्मा और आत्माकी दूरीको

उद्देश्य है। उपास्य और उपासकके अभिन्न हो जानेमें ही उसकी सफलता है।

भक्तिमार्ग उपासनाकी एक विशिष्ट प्रणाली है। उसमें भी इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर प्रभुकी सेवा-पूजामें लगाना होता है। नेत्रोंको प्रभु-दर्शनमें, कानोंको प्रभुके गुण-श्रवणमें लगाना आवश्यक है। इन्द्रिय-सदुपयोग भी वही है। जिस प्रकार शरीर एवं इन्द्रियोंका दुरुपयोग पाप एवं दुःखका कारण है, उसी तरह प्रभुकी भक्ति आदि सदनुष्ठानोंमें लगाना आत्मोन्नतिका प्रशस्त पथ है।

हम अपनी इन्द्रियोंकी शक्तिको भक्ति आदि स्कार्योंमें लगायें एवं विषयवासनाओंसे बचायें, यही आत्मोन्नति-का सरल मार्ग है। मनको प्रभु एवं सद्गुरुकी भक्तिमें लगायें। प्रभुके गुण-गान-कीर्तनमें मस्ती अनुभव की जाय, इससे बिना प्रयासके ही इन्द्रियाँ विषयोंसे निवृत्त हो जाती हैं। भक्तका मन भगवान्में ही लगा रहेगा, दूसरी ओर जायगा ही नहीं। अतः इन्द्रियनिग्रहका सरलतम उपाय है—इन्द्रियों एवं मनके उपास्य भक्तिमें लगाये रखना।

धन्ना भक्त—अन्न बोया कहीं, उपजा कहीं

(लेखक—क० मा० गोपालजी शर्मा, शास्त्री, सा० रत्न)

सम्पूर्ण भारत धन्ना जाट या धन्ना भक्तकी सरस कहानीसे सुपरिचित है। उत्तर भारतमें तो घर-घर इसकी चर्चा मिलेगी। कहते हैं कि यह जातिकी जाट था किंतु बचपनमें ही इसका प्रभु-चरणोंमें अनुराग हो गया था। घरमें जो कुछ पाता, उसे साधु-ब्राह्मणोंकी सेवामें लगा दिया करता था। किंतु ऐसा किये जानेपर भी प्रभुकी ऐसी महिमा थी कि सब वस्तुएँ वैसी-की-वैसी पायी जाती थीं; किसी वस्तुमें कोई कमी न आने पाती थी। किसीको कुछ पता न चला कि किसे क्या खिलाया गया है या क्या दिया गया है। धन्नाके माता-पिता भी बड़े उदार थे। प्रभु-भक्ति और साधु-ब्राह्मणोंके चरणोंमें अनुराग तथा लोकसेवाका भाव यह सब बड़े सौभाग्यसे अनेक जन्मोंके पुण्य-कर्मोंसे प्राप्त होता है। कहीं भगवान् या महापुरुषोंकी कृपा हो जाय तो इस जन्ममें भी यह सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

एक दिन धन्नाके पिता और माता—दोनों ही भोजन कर खेतमें काम करने चले गये। धन्नाको आज्ञा हुई, 'बेटा ! ये बोनेके लिये गेहूँ रखे हैं, इन्हें

सामनेवाले खेतमें बो देना।' अभी माता-पिताने घरसे बाहर पाँव ही रक्खा था कि एक साधुओंका टोला हरिकीर्तन करता हुआ उधर आ निकला और धन्नाके द्वारपर अलख जगा दी। साधुओंकी विविधविध वेशभूषा तिलक-मुद्रा आदिको देखकर धन्ना बड़ा प्रसन्न हुआ और उनके हरि-कीर्तनसे तो मन्त्र-मुग्ध-सा हो गया। हरि-कीर्तन करते हुए सब साधुओंने धन्नाके आँगनमें अपने-अपने आसन लगा दिये। धन्नाने एक पत्रित जलकी गगरी भरकर रख दी और वह घरके भीतर चला गया। घरका कोना-कोना छान मारा, किंतु कहीं भी किसी प्रकारके अन्नका दानातक दिखायी न दिया जो इन साधुओंको खिलाया जाता। बड़ा हताश, आकुल और चकित था वह। मनमें कहने लगा आज यह क्या बात है, भगवान् परीक्षा तो नहीं ले रहे हैं ? अच्छा, देखता हूँ आज भक्त और भगवान्में किसकी विजय होती है। खेतमें बोये जानेके लिये रखे हुए गेहूँके बीजके थैलेको उठाया और वे चक्कीमें डालकर पीसे जाने लगे। चक्कीकी गूँजके स्वरमें स्वर मिलाकर रामधुन भी हो रही है। आनकी आनमें सब

संख्या १०]

गेहूँ पीसे गये। चूल्हा जलाया और बड़े प्रेमसे दलिया पकने लगा। तैयार होनेपर प्रथम भगवान्‌को भोग लगाया और फिर साधुओंको पंक्तिमें बिठाकर दलिया परोसा जाने लगा। आज धन्नामें न जाने कहाँसे अपार प्रेम और श्रद्धाभाव उमड़ पड़ा है। दलिया परोसा जा रहा है और साथ-साथ रामधुन चल रही है। यह दलिया इतना स्वादिष्ट, सरस और मधुर था कि साधुओंने बड़े प्रेमसे उसका भोग लगाया। वास्तवमें यह मधुरता और सरसता तो धन्ना भक्तके हार्दिक प्रेमभावकी थी। सब साधु तृप्त हो गये और बड़े प्रसन्न हुए। अपने-अपने आसन उठाकर सब चल पड़े और धन्नाको आशीर्वाद दिया—‘बेटा! तुममें श्रद्धाका निवास और भक्ति-भाव सदा बना रहे।’

अब साधुओंका टोला निकल जानेपर धन्ना भक्तको बड़ी चिन्ता हुई कि पिताजी आयेंगे और क्रुद्ध होकर कहेंगे तुमने खेत क्यों नहीं जोता है। मुझे भगवान्‌पर पूर्ण विश्वास है, वे अश्व मेरी सहायता करेंगे। मैंने कोई पाप तो किया नहीं है, भगवान् सब कुछ देख रहे थे। अच्छा, रामभरोसे सब ठीक हो जायगा। हल-को कंधेपर रक्खा और बैलोंको छोड़ दिया। बैल भी झूमते-झामते उसी खेतकी ओर चल पड़े जिसे बोया जाना था। बैलोंको जोतकर हल चलाया जाने लगा और साथ-साथ रामधुनका प्रवाह भी उमड़ पड़ा। धन्नाके प्रत्येक काममें रामधुन ही उसका साथ दिया करता था। नाममें बड़ा बल है। खेतमें कई बार हल चलाया गया। भूमि कोमल पड़ गयी और उसके अनन्तर पटेल फेरकर उसे समतल कर दिया गया। बीजका एक दाना भी न डाला गया, डाला भी कहाँसे जाता। बीजके दाने तो सब-के-सब साधुओंको खिलाये गये थे। अब माता-पिताके क्रोधका भय मनसे जाता रहा। विचार किया कि माता-पिता जब खेतको देखेंगे तो बड़े प्रसन्न होंगे कि बेटेने खेतको बड़े प्रेम और

परिश्रमसे बोया है। मैंने जो कुछ किया है उसे भगवान् देख रहे थे, अब वे ही जानें। मार्गमें खेतसे आते-आते धन्नाके माता-पिताने जब उस खेतको देखा तो बड़े प्रसन्न हुए। किसीको यह पतातक भी न था कि खेतमें बीज तो डाला ही नहीं गया है।

एक दिन धन्नाके पिता खेतका चक्कर लगाते-लगाते उधर निकल पड़े, जिस खेतको धन्नाने जोता है। उसे देखकर आश्चर्य-चकित रह गये। जो खेत पहले बोये गये थे, उनमें अङ्गुरका कहीं नामतक नहीं है किंतु इस खेतमें घने और मोटे-मोटे अङ्गुर निकल आये हैं। देखते-देखते यह खेत लहलहाने लगा। गेहूँ इतना ऊँचे चढ़ गया कि खड़ा मनुष्य कहीं दिखायी भी नहीं देता है। जो भी इस खेतको देखता है, वह चकित-सा रह जाता है और कहने लगता है कि कितना अच्छा बीज होगा। वास्तवमें यह सब धन्ना भक्तकी साधु-सेवा तथा प्रभु-भक्तिका प्रभाव और फल था।

कनक काटी गयी। खलिहानमें डालकर दाना और भूसा अलग-अलग किया गया। इतना मोटा-मोटा दाना निकला कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। जो भी दाना देखता, वह झट कह उठता कि यह तो कोई अनोखी आश्चर्यमयी असाधारण बात प्रतीत होती है। यह सब धन्ना भक्तकी निर्भरा भक्ति और प्रभु-विश्वासका फल है। यही कारण है कि धन्नाकी पुकार-पर भगवान् दहसेरासे प्रकट होकर भोग लगाते हैं और धन्ना भक्तकी गौओंको वन-वन चराते फिरते हैं। मुख्य निर्भरा भक्तिपर प्रभुकी रीझ कुछ अनोखी ही है।

(काँगड़ा प्रदेशकी नूरपुर तहसीलमें एक दुर्गमय वाथू नामका अत्यन्त प्राचीन विशाल मन्दिर है। इस मन्दिरमें तीन अद्भुत वस्तुएँ बड़े चावसे दिखायी जाती हैं—गुड़ड़ी, धन्नाका दहसेरा और गेहूँके दाने। ये तीनों वस्तुएँ बड़ी सुरक्षित रखी हैं। ये गेहूँके दाने

बहुत ही मोटे-मोटे हैं। सम्भव है ये धन्नाके उसी खेतके हों।)

धन्नाजाटका भक्ति-भाव और प्रभु-विश्वास अब और भी बढ़ गया है। खेतसे गेहूँ घर लाये गये। गेहूँ घर आनेपर साधुओंका वही टोला फिर आ गया और पुकार की 'बेटा ! दलिया खिलाओ।' धन्ना दलिया परोस रहा है और साथ-साथ रामधुन चल रही है। आज तो उसके आनन्दकी सीमा ही नहीं है। धन्ना भक्त रामभक्ति-सम्प्रदायके आचार्य स्वामी रामानन्दजीका शिष्य था।

भक्त नाभादासने अपनी भक्तमालमें इस घटनाका इस प्रकार उल्लेख किया है—

धन्य धनाके भजनको, बिनहिं बीज अंकुर भयो ।
घर आये हरिदास तिनहिं गोधूम खवाये ।
तात-मात-डर खेत थोथ लांगूल चलाये ॥
आसपास कृषिकार खेतकी करत बढ़ाई ।
भक्त-भजनकी रीति प्रगट परतीति जु पाई ॥
अचरज मानत जगतमें कहुँ वै वयो ।
धन्य धनाके भजनको बिनहिं बीज अंकुर भयो ॥

तुलसीका उपमान कमल और उसके भाव

(लेखक—डा० श्रीगोपीनाथजी तिवारी)

हिंदीके कवियोंमें गोस्वामी तुलसीदासजीने 'शब्द'-प्रयोगपर बड़ा ध्यान दिया है। शब्दमें शक्ति है जो काव्यको सशक्त बनाती है। जो कवि इस शक्तिको ध्यानमें रखकर अपने काव्यमें शब्दको उपयुक्त स्थानपर बिठाता है, वह स्वयं भी ऊँचा आसन पाता है। शब्दका प्रयोग, उपमेय, उपमान और धर्मरूपमें होता है। गोस्वामीजीने उपमान-प्रयोगमें भी बड़ी सावधानी बरती है, 'कमल' एवं उसके पर्यायोंके प्रयोगसे ही यह सिद्ध हो जाता है। भारतीय साहित्यमें कमलको विशिष्ट गौरव मिला है। ऐसा महत्त्व अन्य पुष्पोंको प्राप्त नहीं हुआ है। कमलमें कोमलता, आर्द्रता, वंश, विकास, सुगन्धि, कान्ति, स्निग्धता, सरलता, माधुरी आदि गुण प्राप्त होते हैं। फलतः शरीराङ्गोंके उपमानरूपमें कमलका प्रयोग कवियोंका प्रिय विषय रहा है। अब भी सरोजसम्पन्न सरोवरको देखनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि सरोवर अपने नेत्रोंसे निहार रहा है, करकमलोंसे बुला रहा है अथवा अपने मुखको ऊपर उठाकर सौन्दर्य दर्सा रहा है, सहृदय कवि कब इस कमनीय दृश्यसे अछूता रह सकता था। फलतः भारतीय कवियोंने पूरी विचक्षणता, सहृदयता एवं विलक्षणतासे कमल एवं इसके पर्यायोंका प्रयोग अपने काव्यमें किया है। गोस्वामी तुलसीदासजीके साहित्यमें भी कमलको बड़ा गौरवपूर्ण पद प्राप्त है।

भक्त-परम्परामें एक परिपाटी गृहीत होती रही है। वह यह है कि चरणोंके उपमानरूपमें कमलका प्रयोग चरणोंके पश्चात् हुआ है जब कि अन्य अङ्गोंके साथ ऐसा निश्चित क्रम नहीं दिखलायी पड़ता। श्रीमद्भागवतमें भी कमल उपमानका प्रयोग चरणके पश्चात् प्राप्त होता है—

कृष्णपादाब्जसेवया । (श्रीमद्भा० १।१२।४)
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ।
(श्रीमद्भा० १।८।३६)

येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात् । (१।८।३७)
सरतां तत्पदाम्बुजम् । (१।१८।४)

भक्तोंने इस प्रणालीको सादर ग्रहण किया है। सूरदासने भी इस प्रयोगको ध्यानमें रखकर लिखा है—

चरन कमल बंदौ हरि राई । (सू० सा० १)

विमुख भयो हरि चरन कमल तजि, मन संतोष न आयो ।
(सू० सा० २७)

जो कोउ प्रीति करै पद अंबुज, उर मंडत निरमोलक हार । (२)
बंदौ चरन सरोज तिहारे । (सू० सा० ९४)

गोस्वामी तुलसीदासजी तो ये ही चरणोपासक दास। वे भला क्यों न भगवान्के चरणोंको कमल उपमानसे पूर्व रखकर चरणोंको उपमानसे अधिक गौरव देते। उपमेय

चरणको पहले रखनेसे प्रयोगमें कई विशेषताएँ आ जाती हैं—

- (१) चरणकी ओर पहले ध्यान जाता है ।
- (२) चरणको कमलसे श्रेष्ठतर स्थान प्राप्त होता है ।
- (३) उपमेय पहले लानेसे उपमाका रूप बदल जाता है और इस प्रकार परिणाम-अलंकार बन जाता है । परिणाम अलंकारके रूपमें चरणोंसे शुभ परिणामकी आशा रखी गयी है ।

इक्कीस कमल एवं पर्यायोंका प्रयोग चरणोंके साथ प्राप्त होता है । ये इक्कीस शब्द संत बनादासने दो दोहोंमें गिनाये हैं—

कमल कंज पंकज जलज सरसिज नलिन सरोज ।
नीरज बारिज पंकरुह जलरुह पदुम पयोज ॥
पुंडरीक अरविंद सरोरुह सरसीरुह जलजाम ।
अंबुज राजिव तामरस राम चरन अस लाम ॥

कुछ उपमानोंका प्रयोग चरणोंके साथ द्रष्टव्य है । वैसे तो सभी उपमान चरणोंके साथ प्रयुक्त हैं; किंतु कुछ उपमान विशेषतया गृहीत हुए हैं । ये हैं सरोज, पद्म—

सरोज—

एकौ पल न कबहुँ अलोल चित सित दै पद सरोज सुमिरौ ।
(वि० प० १४१)
चरन-सरोज बिसारि तिहारे, निसदिन फिरत अनेरो ।
(वि० प० १४३)
तजि हरि-चरन-सरोज सुधारस, रबिकर जल लय लायो ।
(वि० प० १९९)
सेवहु सिव चरन सरोज रेनु ।
(वि० प० १३)
विस्तु-पद-सरोज जासि, ईस-सीसपर बिभासि ।
(वि० प० १७)
बिचरहिं अविनि अविनीस-चरनसरोज मन-मधुकर किये ।
(वि० प० १३५)
तन मन बचन मोर पनु साँचा । रघुपति पद सरोज चितु राचा ॥
(रा० च० मा०)
जे पद सरोज मनोज-अरि उर सर सदैव बिराजहीं ।
(रा० च० मा०)
चरन सरोज घूरि धरि सीसा । मुदित महीपति पाइ असीसा ॥
(रा० च० मा०)

पंकज—

रघुवंस-कुमुद-सुख-प्रद निसेस
सेवत पद-पंकज अज-महेस ।
(वि० प० ६४)
प्रीति-प्रतीति राम-पद-पंकज सकल सुमंगल खानी ।
(वि० प० १९४)
बिनु तव कृपा राम-पद-पंकज सपनेहुँ भगति न होई ।
(वि० प० ९)
देहि कामारि ! श्रीराम-पद-पंकजे भक्ति अनवरत गत-मेद-माया ।
(वि० प० १०)
हरि-पद-पंकज पाइ अचल भइ ।
(वि० प० ८६)
बहुरि राम पद पंकज धोए ।
(रा० च० मा०)
मव सिंधु अगाध परे नरते । पद पंकज प्रेम न जे करते ॥
करि प्रेम निरंतर प्रेम लिएँ । पद पंकज सेवत सुख हिऐँ ॥
(रा० च० मा०)
अब देखिअ प्रभु-पद-पंकज गत-मान ।
(वि० प०)
लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली ।
(रा० च० मा०)

पद्म—

राम-पद-पद्म-मकरंद-मधुकर पाहि ।
(वि० प० २९)
युगल पद पद्म सुख सब पद्मालय ।
(वि० प० ५१)

कमल—

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता ।
(रा० च० मा०)
प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए ।
(रा० च० मा०)
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ।
(रा० च० मा०)
चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे ।
(रा० च० मा०)
रिपुसूदन पद कमल नमामी ।
(रा० च० मा०)
गुरु पद कमल फलोदत प्रीते ।
(रा० च० मा०)
तौ जनि तुलसिदास निसि-वासर हरि-पद-कमल बिसारहि ।
(वि० प० ८५)
तुलसिदास हरि-चरन-कमल बर देहु गति अविनासी ।
(वि० प० ९)

किंतु ऐसी बात नहीं है कि, कमलका प्रयोग अन्य अङ्गोंके साथ न हुआ हो ।

हुँ कर कमल सुधारत बाना ।
(रा० च० मा०)
देव—कमल लोचन कला, कोश ।
(वि० प० ५६)
जे हर हृदय कमल मँह गोए ।
(रा० च० मा०)

कंजका प्रयोग चरणोंके साथ बहुत हुआ है—

विष्णु-पद-कंज-मकरंद इव अनु वर वहसि ।

(वि० प० १८)

गयउ समा दरबार तब सुनिरि राम पद कंज ।

(रा० च० मा०)

पुलक सरीर नयन जल लोचन ।

गहे राम पद कंज..... ॥ (मा०)

पद कंज द्वन्द्व मुकुंद राम रमेश नित्य नमामहे । (मा०)

साथ ही कंजका प्रयोग अन्य अङ्गोंके साथ भी प्राप्त होता है—

नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुन ।

(वि० ४५)

प्रफुल्ल कंज लोचन । मदादि दोष मोचन ॥ (मानस)

कमलके रंगोंके विषयमें भी गोस्वामीजीका प्रयोग इसी प्रकारका है । उन्होंने एक स्थानपर चार रंगोंके कमलोंका अंकन किया है—

मानिक मरकत कुलिस पिरोजा । चीरि कोरि पचि रचे सरोजा ॥

(मा०)

माणिक्यसे लाल कमल बनाये गये । इसी प्रकार मरकतसे नील कमल निर्मित किये गये । कुलिससे श्वेत कमल बनाये गये तो पिरोजासे पीत कमल ।

गोस्वामीजीने इन चारों रंगोंके कमलोंका अंकन किया है; किंतु विशिष्ट कमल पर्यायविशिष्ट रंगके साथ ही प्रयुक्त हुआ हो ऐसी बात नहीं है । कमल और कंजको ले लें । इनका प्रयोग हाथ, पैर, मुख एवं हृदयके उपमानरूपमें हुआ है । इससे ऐसा भासित होता है कि स्यात् कविको कमल और कंजसे लाल कमल अभिप्रेत हो । वे एक स्थानपर कहते भी हैं—

कंज लोचन, कंज मुख, कर कंज, पद कंजारुन ।

(वि० प० ४५)

यहाँ 'अरुण' विशेषण चारों अङ्गोंके साथ प्रयुक्त है । ये चारों अङ्ग लाल हैं । अतः कंज भी लाल कमलके लिये लाया गया है । 'कंजारुन' ही इस बातका खण्डन कर देता है । यदि कंजका अभिप्राय रक्त-कमल है तो कंजके साथ 'अरुण' के प्रयोगकी क्या आवश्यकता थी । अन्यत्र वे 'नील कंज' को भी स्वीकृति देते दिखायी पड़ते हैं—

लोचन बिसाल नव नील कंज ।

(वि० प० १४)

कोशलेन्द्र नवनीलकंजामतनु ।

(वि० प० ४६)

कमलके विषयमें भी यह धारणा बन सकती थी, किंतु कमल लाल और श्वेत दोनों रंगोंका वर्णित है—

श्वेत कमल

जहँ बिलोक मृग सावक नैनी ।

जनु तहँ बरिस कमल सित खेनी ॥ (मानस)

लाल कमल

जावक जुत पद कमल सुहाए ।

मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाप ॥ (मानस)

लोहित ललित लघु चरन कमल चार ।

(गीतावली बाल० १०)

इन उदाहरणोंसे सिद्ध है कि गोस्वामीजीने किसी विशेष कमलको विशिष्ट रंगके रूपमें नहीं माना है । तामरसे उनका अभिप्राय सदा अवश्य नील कमल है—

श्याम नव तामरस-दाम द्युति वपुष । (वि० प० ६०)

स्याम तामरस दाम वरन वपु । (वि० प० ६३)

श्याम विशेषण लगाकर ही वे तामरसको नीलकमल बनाते हैं; किंतु नेत्रोंके उपमानरूपमें भी 'तामरस' प्रयुक्त है—

काम-मद-मोचन, तामरस-लोचन । (वि० प० १२)

यहाँ नेत्रोंके कालेपनको सामने रखकर ही यह प्रयोग हुआ है ।

जैसे पदोंके साथ पद्म, पंकज, सरोजका प्रयोग दिखलायी पड़ता है वैसे ही नेत्रोंके साथ 'राजीव'का—

अरुन राजीवदल-नयन, सुषमा-अयन । (वि० प० ५०)

राज-राजेंद्र राजीव-लोचन राम । (वि० प० ४४)

अरुन कर चरन मुख नयन राजीव । (वि० प० ४६)

नील जलदाम तनु स्याम, बहु काम छवि, राम राजीव-लोचन ।

(वि० प० ४९)

तरुन रमणीय राजीव लोचन ललित वदन । (वि० प० ६०)

जगदीस रघुनाथ राजीव-लोचन राम । (वि० प० ७७)

महाराज राजीव-बिलोचन । (वि० प० २२२)

पेसे मये तो कहा तुलसी जु पै

सजिव-लोचन राम न जाने ।

(कवितावली)

संख्या १०]

राजीवव्यतलोचनं दृतजटाजूटेन संशोभितम् । (मानस)

नव राजीव नयन ससि आनन ।

(वि० प० ६३)

राजीव विलोचन भवमय मोचन ।

(मानस)

इस विवेचनसे स्पष्ट है कि गोस्वामीजी शरीराङ्गोंके लिये कमल-पर्यायोंका प्रयोग जी भरकर करते हैं। चरणके पश्चात् उपमान लाकर वे चरणोंको गौरव एवं सम्मान देते हैं। 'कर'के सम्बन्धमें भी वहाँ ऐसा किया गया है जहाँ करके सौन्दर्यसे अधिक करकी कल्याण-शक्ति अपेक्षित है।
उदाहरण—

जेहि कर कमल कठोर संभु धनु भंजि जनक संसय मेख्यो ।

जेहि कर कमल उठाइ बंधु ज्यों परम प्रीति केवट मेख्यो ॥

जेहि कर कमल कृपालु गीघ कहँ, पिंड देइ निज वाम दियो ।

(वि० प० १३८)

सिर परसे प्रभु निज कर कंजा ।

तुरत उठाए करुना पुंजा ॥

(मानस)

अन्य अङ्गोंसे पूर्व ही कमल एवं इसके पर्याय प्रयुक्त हैं। इस क्रममें कहीं-कहीं परिवर्तन हुआ है, विशेषतया ऐसे स्थलोंपर जहाँ सौन्दर्यसे अधिक आर्द्रता एवं स्निग्धताकी आवश्यकता पड़ी है।

जीवनकी संध्यामें

(लेखक—श्रीश्रीरामनाथजी सुवन)

सुबह-सुबह टहलने निकला था और प्रकृतिमें खोया हुआ चला जा रहा था। मुझे कुछ भी ध्यान न था कि किधर निकल आया हूँ, कहाँ जा रहा हूँ। बस, इतनी अनुभूति थी कि चल रहा हूँ। प्रभाती वायु मनको उमंगोंपर नचा रही थी और मैं बस छड़ी बुमाता, गुनगुनाता चला जा रहा था कि सहसा आवाज आयी—
'जय रामजी, भाई साहब ।'

देखा, दूसरी ओरसे लौटते हुए मेहरोत्राजी हैं। खड़ा हो गया, दुआ-सलाम हुई। बहुत समय बाद भेंट हुई थी। हाल-चाल पूछे गये। उसी सिलसिलेमें मैंने पूछा—'भाई! आजकल दिखायी नहीं पड़ते। क्या करते हो?'

वे बोले—कोई विशेष बात नहीं है। रियायत हो गया हूँ और अब कहीं आने-जानेका मन नहीं करता। दिन काट रहा हूँ। बहुत किया, अब तो चलाचलीकी वेला है।'

बातचीतके बाद मैं अपने रास्ते चला गया। परंतु मेरे मनमें मेहरोत्राजीकी बात टकराती रही। लगा—वे ठीक तो कहते हैं, परंतु ठीक कर नहीं रहे हैं। चलाचलीकी वेला है तो चलनेकी तैयारी कहाँ है? समय कम रह गया है; अब हमें भगवान्में नियोजित होना चाहिये, हमारे चारों ओर जो प्राणिजगत् है, उससे

हमारा सम्बन्ध मधुर होना चाहिये। दूसरोंको अपनाकर अपने क्षुद्र 'अहं'को व्यापक करना चाहिये। जगतमें विभुका जो रूप व्याप्त है उसके सौन्दर्यको देखना और उसके रससे आर्द्र हो उठना चाहिये। अभी तो कामका समय आया है; सारी जिन्दगी किया क्या, अब तो करना है। हाँ, कामका रूप बदल देना होगा।

×

×

×

हमारे देशमें बुढ़ापा बहुत जल्दी आता है। जीवनकी दोपहरीमें ही संध्या आ जाती है। बच्चे, जवान सबमें यह बुढ़ापा व्याप्त हो गया है। जीवन शिथिल और अनियन्त्रित होकर रह गया है। बात यह है कि बुढ़ापा शरीरकी अवस्थाकी अपेक्षा एक मानसिक स्थिति अधिक है। बहुत-से लोग तेजीके साथ बूढ़े होते हैं—जैसे जवानोंके उपवनमें एकाएक तेज आँधी आ जाय और पत्ते झड़ जायँ। इसके विरुद्ध कुछ ऐसे होते हैं कि उनकी आयु मालूम होनेपर आश्चर्य होता है। एक दिन मेरे एक मित्रने छोटी मानी जानेवाली जातिकी एक ऐसी स्त्रीसे मुझे परिचित कराया जो आठ बच्चोंकी माँ थी और देखनेमें पचीस-तीसकी मालूम पड़ती थी; जब कि उसकी वास्तविक आयु छापन वर्षकी थी। मैं दंग रह गया; क्योंकि इस अवस्थामें भी उसमें वही शोखी, वही चञ्चलता, वही मस्ती, वही बेहोशी, वही आकर्षण था जो भरी

जवानीमें होता है। बात यह थी कि अपनी गरीबीमें भी वह सदा प्रसन्न रहती थी और उत्साहपूर्वक अपने काम करती थी। उसके पास इतना समय नहीं था कि वह अभावोंका रोना रोती या अपनी किस्मतपर झींकती। इस आन्तरिक उत्फुल्लताने उसके जीवन-भारको हल्का कर दिया था।

बहुत दिन पहलेकी बात है जब मैं अजमेर (राजस्थान) में रहता था। प्रातःकाल मेरे साथ एक जैन सज्जन श्रीकोठारी, जिनकी अवस्था उस समय ७५ वर्षकी थी, घूमनेके लिये जाया करते थे। एक दिन वे अपने साथ एक और सज्जनको लाये, जो देखनेमें उनके भाईसे लगते थे और स्वास्थ्यमें उनसे कुछ अच्छे ही थे; उनकी चाल वही थी जो जवान आदमीके दृढ़ एवं तेज चरणोंकी होती है। पूछनेपर मालूम हुआ कि वे उनके पिताश्री हैं और उम्र ९६ वर्षकी है। मैं उन्हें देखता ही रह गया। उनमें बुढ़ापेका केवल यही एक लक्षण था कि बाल कुछ पक चले थे।

कुछ समय पूर्व वेदोंके प्रसिद्ध भाष्यकार श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीको ९० वर्षसे अधिक अवस्थामें बच्चोंकी तरह हँसते, चलते-फिरते और घंटों काम करते देखकर उनकी अदम्य इच्छाशक्तिपर मुझे आश्चर्य हुआ था। जीवनकी संध्यामें भी उनमें जीवनके उपःकालका ओज था। इस समय वे ९९ वर्षके हो चुके हैं और ऋग्वेदपर हिंदी भाष्य लिख रहे हैं; इसी प्रकार प्रयागमें ही मैंने एक उर्दू कविके पिताको कुछ साल पहिले देखा था जो १०४ वर्षकी अवस्थामें भी नित्य त्रिवेणी-स्नान करने पैदल जाया करते थे।

विदेशोंमें तो दीर्घायु तथा वृद्धावस्थामें नियमित कार्य करनेके उदाहरण और भी अधिक हैं। अभी-अभी १८० वर्षकी आयुमें सोवियत रूसके एक नागरिका देहान्त हुआ है। भारतीय योगविद्यामें तो यौवन एवं आयुकी सीमा सैकड़ों वर्षोंतक बढ़ायी जा सकती है और उसके रहस्योंकी जानकारी रखनेवाले विद्वज्जनको इसकी जानकारी है कि अब भी कई सौ वर्ष आयुवाले योगिराज वर्तमान हैं और निरन्तर अपनी शिष्य-परम्पराका पथदर्शन अगम्य स्थानोंसे करते रहते हैं।

हम आँखें खोलकर हर जगह ऐसे उदाहरण देख सकते हैं जिनमें बहुत अधिक आयु होनेपर भी यौवनकी स्फूर्ति विद्यमान है। बुढ़ापा दूर रखनेका एक संतोष-जनक और कलापूर्ण मार्ग है—बूढ़ा होनेसे इन्कार करना। जो लोग सदा स्फूर्तिका जीवन बिताते हैं, सदा किसी उपयोगी कार्यमें लगे रहते हैं, शुभ भावनाओंसे भरे रहते हैं, जिनके मनमें ईर्ष्या नहीं, काम नहीं, क्रोध नहीं, लोभ नहीं, सहज प्रेम और आनन्द है, वे शीघ्र बूढ़े नहीं होते। स्वर्गीया श्रीमती बेसेण्ट अपनेको अस्सी वर्षकी 'युवती' कहती थीं और उस अवस्थामें भी इतना काम करती थीं कि हम-किशोरोंको लज्जाका बोध होता था। जो आदमी अपनी उम्र नहीं याद रखता, जिसे बार-बार याद नहीं दिलाया जाता कि वह बूढ़ा हो रहा है, जो अंदरसे हल्का और आह्लादसे भरा है, जिसमें यौवनकी उम्रों हैं, जिसमें उड़नेके स्वप्न और कल्पनाएँ हैं, जो निराशा-जनक बातें नहीं करता और सदा आशा एवं विश्वाससे पूर्ण रहता है उसको बुढ़ापा बहुत देरसे आता है या मृत्युतक आता ही नहीं। ऐसे आदमी हँसते-खेलते दुनियासे विदा हो जाते हैं, वे बूढ़-बूढ़ रिसते हुए एक दिन रिक्त नहीं होते, अन्ततक उनका घड़ा रससे भरा और छलकता ही रहता है।

हमारे देशमें हर अवसरपर आदमीको उसकी आयुकी ओर संकेत करनेकी बुरी प्रथा चल गयी है। हमें बार-बार बताया जाता है कि तुम इतने बड़े हो गये, तुम्हारी इतनी उम्र हुई। स्त्रियाँ यदि ४०-४५ की हुई तो केहने लगती हैं कि अब क्या हमारे खाने-पहिननेके दिन हैं। जो अपने मनमें समझे हुए हैं कि चालीस सालके बाद शरीरमें वृद्धावस्थाके लक्षण प्रकट होने लगते हैं, पचास सालमें वृद्धावस्था आ जाती है और ६० सालके बाद तो मृत्युके तटपर पहुँच जाते हैं, उन्हें तो शीघ्र बुढ़ापा आना ही है। ऐसे आदमियोंको मृत्यु एवं विनाश वृद्धावस्था एवं रोगोंसे कोई बचा नहीं सकता। वे तो स्वयं ही अपनी जड़ काट रहे हैं। विचार हमारे भविष्यका अग्रदूत है। यदि हमारा मन बूढ़ा हो जायगा तो वृद्धावस्था आकर रहेगी, किंतु जो अपनी आयुको भूल जायगा, संयमपूर्ण जीवन बिताते हुए भी सदा अपनेको तरुण मानता रहेगा, वह तरुण बना रहेगा। किसीने

बिल्कुल ठीक कहा है कि जवतक मन स्वीकृति न दे तवतक शरीर वृद्ध हो ही नहीं सकता। याद रखिये, जरा पहले मनमें आती है बादमें शरीरपर उसका प्रभाव पड़ता है। जब हम देखते हैं कि हमारी अवस्थाके हमारे साथी और मित्र बूढ़े हो चले या मरते जा रहे हैं तब हमारा धीरज छूटने लगता है और हम समझने लगते हैं कि अब हमारी भी चलाचलीकी वेला आ गयी। इसका अनिष्ट-परिणाम यह होता है कि हम समयके पहले वृद्ध हो जाते हैं।

यदि हम अपने मनमें अच्छी तरह समझ लें कि हम वृद्ध नहीं होंगे; यदि हम अपने मनमें तरुणाईके सपने सँजोये रखें, मनको आशा, उत्साह और उल्लाससे भरा रखें तो जल्दी वृद्ध नहीं होंगे। खिजाव लगाकर या नकली दाँतके प्रयोगसे बुढ़ापेकी गति नहीं रोकी जा सकती परंतु मनको जवान रखने और यौवनकी धारणामें ही उठने-बैठनेसे दीर्घकालतक उसका आगमन रोका जा सकता है। निराश मनःस्थितिका रक्त-घटकोंपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और वे शिथिल तथा निर्जीव हो जाते हैं; जब कि आन्तरिक उत्फुल्लता उनको शक्तिमान्, गतिमान् बनाती है।

अप्रिय बातोंको भूलनेकी आदत डालिये

देरतक यौवनको स्थिर रखनेके लिये जीवनमें हुई अप्रिय एवं दुःखद बातोंको भूल जानेकी आदत डालनी चाहिये। दुःखद प्रसंगोंके काँटोंको दिलसे निकालकर फेंक देना और प्रसन्न तथा मस्त रहना दीर्घ-यौवनका प्रथम सूत्र है। नव्ये वर्षकी आयुमें भी तरुणी दीखनेवाली एक बहिन-से जब मैंने पूछा कि 'क्या बात है जो आप इस अवस्थामें भी अपनी ताजगी बनाये हुए हैं।' तब उन्होंने उत्तर दिया—'इसीलिये कि मैं अप्रिय बातोंको भूल जाना जानती हूँ।'।

विचारोंका अपूर्व प्रभाव

संसारमें आज बहुत-से ऐसे लोग हैं जो १२० वर्षकी आयु मनुष्यकी सामान्य आयु मानते हैं। प्रयागके श्रीकेदार-नाथ गुप्त तो इसके समर्थनमें अंग्रेजी-हिंदीमें बराबर लिखते रहते हैं और वृद्धावस्थामें भी तरुण बने हुए हैं। खूब चल्ते हैं, खूब काम करते हैं। पेरिसके डा० मेचनिकाफने

तो बहुत वर्ष पूर्व लिखा था कि मनुष्योंको कम-से-कम १२० वर्षकी उम्रतक जीना चाहिये। कुछ समय पहले चिकित्सा-विज्ञानके प्रसिद्ध पत्र 'लैंसेट'में एक ऐसी घटना छपी थी जिससे शरीरपर विचारोंके अद्भुत प्रभावका पता चलता है। एक युवती स्त्रीको उसके प्रेमीने किसी कारण छोड़ दिया था। उसके वियोगमें तीव्र दुःखके कारण, वह पागल-सी हो गयी। उसे इसकी अनुभूति ही न रह गयी कि समय कितना और कैसे बीत गया। उसे बस, इतना विश्वास था कि मेरा प्रेमी फिर मेरे पास आयेगा और मुझसे मिलकर रहेगा। वर्षोंतक उसका यही क्रम बना रहा कि वह नित्य खिड़कीके पास बैठी उसके आगमनकी प्रतीक्षामें आँख बिछाये रखती। धीरे-धीरे बहुत वर्ष बीत गये और उसकी अवस्था ७० तक पहुँच गयी। उस समय कुछ अमरीकी डाक्टरोंने उसकी जाँच की और उनमेंसे एक भी यह नहीं कह सका कि इसकी अवस्था बीससे अधिक है। न उसका एक बाल पका था; न उसके मुँहपर कोई झुर्री या शिकन थी। उसके सब अङ्ग वैसे ही कोमल और स्निग्ध थे जैसे नवयुवतियोंके हुआ करते हैं। इसका कारण यही था कि वह युवावस्थामें अपने प्रेमीके लिये पागल हुई और कभी वृद्ध होनेका विचार ही उसके मनमें नहीं आया। समय उसके लिये ठहर गया। वह यही अनुभव करती रही कि मैं वही युवती हूँ और मेरा प्रेमी मुझसे मिलनेके लिये आता ही होगा। उसके मनमें कभी यह न आया कि बिछोहको बहुत दिन बीत गये हैं, अब मैं तीसकी हुई, अब चालीसकी हुई, अब प्रतीक्षा करते मुझे ५० वर्ष बीत गये हैं। सदा यही विश्वास बना रहा कि मैं उसी समय और अवस्थामें हूँ जिसमें मेरा प्रेमी मुझे छोड़ गया है। इसी अदभ्य विश्वासने वार्द्धक्यकी ओर शरीरकी गति रोक दी, समयका व्यवधान उसके लिये नष्ट हो गया। शरीरका हास थम गया।

जरा इसलिये हेय है कि उसे मृत्युका द्वार समझा जाता है। इसलिये मृत्युतक ले जानेवाली जराको दूर रखना हमारा कर्तव्य है। वेदके ऋषि स्पष्ट आदेश देते हैं—

मा मृत्योः उद्गातवशम् ।

अर्थात् मृत्युके अधीन मत हो ।

हमारी पुरानी प्रार्थना भी है—मृत्योर्मा अमृतं गमय । मृत्युसे मुझे अमृतकी ओर ले चलो । हमारे देवता कभी

बूढ़े नहीं होते, परन्तु उनके उपासक हम न जाने कैसे वृद्धावस्थाको जीवनका एक सत्य मान बैठे ।

इसलिये पहली बात तो यह है कि हम वृद्धावस्थाको अपने पास फटकने न दें । विचारोंको, उमंगोंको सदा जवान रखें । यदि मन बूढ़ा न होगा, निराश न होगा, थकेगा नहीं तो शरीर भी न थकेगा । कम-से-कम दस-वीस वर्ष तो हम आसानीसे बुढ़ापेको दूर ठेल दे सकते हैं और इसका जरा-सा, अत्यन्त सरल नुस्खा है कि आप भूल जायें कि बूढ़े हैं या बूढ़े हो रहे हैं । यह न समझें कि अब कामका नहीं, विश्रामका समय है और अब क्या काम होगा ? होमरने अपना ओडैसी महाकाव्य वृद्धावस्थामें ही लिखा था । व्यास-ने महाभारत एवं वाल्मीकिने रामायण वृद्धावस्थामें ही लिखी थी । पैरेडाइज लॉस्ट भी वृद्धावस्थाकी ही रचना है । सेना-पतिने कवित्त-रत्नाकर साठ वर्षकी अवस्थामें लिखा था । मतिरामका रसराज भी वृद्धावस्थामें लिखा गया था । भूपण-ने ६० वर्षकी अवस्थामें शिवराजभूषण जैसे वीररसपूर्ण ग्रन्थकी रचना की थी ।

जो लोग यह न कर सकें उनके लिये दूसरा मार्ग है—शान्तिपूर्वक, निरुद्धेग होकर वृद्धावस्थाको ग्रहण करना । जिसने जीवनको उचित रीतिसे बिताया है उसे वृद्धावस्थामें भी चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं । प्रभात ही सुन्दर नहीं होता, संध्या भी सुन्दर होती है । आवश्यकता है उसका सौन्दर्य देखनेकी, उसकी सुषमा हृदयंगम करनेकी ।

यह दानका समय है । आत्मदानका समय है । आपने आजतक संवर्ष किये हैं, लड़ाइयाँ लड़ी हैं । आज जब दुकान समेटनेका समय आया है तब पुराने शत्रुओंको भूल जाइये, सबके प्रति मैत्रीभाव, करुणाका भाव, सहानुभूतिका भाव धारण कीजिये । आज सबको कुछ देकर जाइये । और कुछ न हो तो आशीर्वाद ही दे जाइये । यही संन्यास है—संसारके क्षुद्र बन्धनोंसे ऊपर उठकर सबकी सेवाकी भावना, सबके कल्याणकी भावना, सबके सुख और आनन्दकी भावना, सबसे जुड़

जानेकी भावना । मनको निर्मल कीजिये, मलको धुल जाने दीजिये ।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मनुष्य जितना ही किसी उपयोगी, अपने मन एवं रुचिके काममें लगा रहता है, उतनी ही देरतक उसकी जवानी बनी रहती है । इसलिये संन्यासका यह अर्थ नहीं है कि आप निष्क्रिय हो जायें । वास्तविक सक्रियताका समय तो अब आया है । अपने संचित ज्ञान एवं अनुभवोंकी पूँजी बाँटनेका समय यही है ।

सर्वसामान्यके लिये वृद्धावस्थाका सबसे अच्छा कार्यक्रम बच्चोंमें मिलकर उन्हींका हो जाना है । उनमें मिलो, उनसे खेलो, उनके बन जाओ । हँसो, कूदो, नाचो । देखो बुढ़ापा कहाँ भाग जाता है और यह भी देखो कि कितना आनन्द, कितनी शान्ति है इसमें ।

इसके अतिरिक्त अध्ययन, मनन, लेखन, प्रवचन, तीर्थाटन, भ्रमण जो भी काम आपके लिये रुचिकर हो, उसमें लग जाइये । संध्यामें संसारके सब प्राणी अपने घरोंकी ओर मुख करते हैं । रँभाती और कूदती गायोंको देखिये, आकाशचारी खगबुन्दको देखिये, सब अपने निवासकी ओर जा रहे हैं । सब अपने गृहमें समाहित हैं, उसीसे भरे हुए हैं । आज आप भी अपने गृहका, अपनेपनका वातावरण अपने चतुर्दिक् क्षरने-फैलने दीजिये । यदि पाठशालामें पढ़ानेका काम कर रहे हैं तो समझिये कि घरमें बैठे अपने बच्चोंको पढ़ा रहे हैं, यदि किसी संस्थामें हैं तो हृदयसे विश्वास कीजिये वही आपका घर है । अभीतक जो घरके बाहर था उसे भी आज घर या घरका बन जाने दीजिये, सब कुछ निजत्वकी सीमामें आने दीजिये । सब अपने हैं, आज कोई पराया नहीं है । आज अर्पणकी अन्तिम पूर्णाहुति देकर जीवनको सार्थक कर लेना है । देखो, मुस्कराती शान्तिका आँचल पसारे आती हुई, समस्त दाह-ताप, दुःख-दैन्यको अपनी गोदमें समेट लेनेवाली संध्याको देखिये । वह क्या कम सुन्दर है, वह क्या कम सुखद है, वह क्या कम मोहक है ? तब दुःख क्या है, चिन्ता क्या है ?

आप अपने काममें रस लेते हैं !

(लेखक—पं० श्रीकृष्णदत्तजी मट्ट)

आप कोई भी काम करते हैं, फिर वह छोटा हो या बड़ा, खेतीका हो या दुकानदारीका, नौकरीका हो या मजदूरीका, लिखनेका हो या पढ़नेका, जूता गाँठनेका हो या कपड़े धोनेका, विश्वविद्यालयमें छात्रोंको पढ़ानेका हो या सड़कपर झाड़ू लगानेका, दफ्तरका हो या बाहरका, डाक्टरका हो या कम्पाउण्डरीका, आदमियोंको पानी देनेका हो या पेड़ोंको पानी देनेका, मैनेजरीका हो या चपरासीका, होटलमें तश्तरी साफ करनेका हो या वर्तन माँजनेका—मेरा आपसे एक ही सवाल है और वह यह कि आप अपने काममें रस लेते हैं या नहीं ?

यदि मेरे सवालका जवाब 'हाँ' में है, तो मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपको दाद देता हूँ। आपकी प्रशंसा करता हूँ।

कारण, आप सफलताके मार्गपर हैं।

आप उन्नतिके मार्गपर हैं।

आप विकासके मार्गपर हैं।

× × ×

परंतु यदि आपका उत्तर 'ना' में है तो स्थिति खतरनाक है। चिन्ताजनक है। आपके ही लिये नहीं, दूसरोंके लिये भी।

अफसोसकी बात यही है कि आज सौमें नव्वे लोग तो अवश्य ही ऐसे हैं जो अपने काममें कोई रस नहीं लेते। काम कर रहे हैं, क्योंकि मजदूरियाँ हैं। काम करना पड़ता है। उसके बिना न रोटियाँ चलेंगी, न बीबी सीधे मुँह बात करेगी। बच्चे भी मुँह फुलाये घुमेंगे, घरवाले और पास-पड़ोसी भी दुत्कारेंगे।

ऐसे लोग काम तो करते हैं, पर बेमनसे। कामसे छुट्टी होनेपर दफ्तरसे, कारखानेसे ऐसे भागते हैं मानो जेलखानेसे कैदी। घड़ीसे एक मिनट भी यदि किसी दिन ज्यादा रुकना पड़े तो उन्हें लगता है कि कहाँकी यह आफत आ गयी।

इन लोगोंको अपने गिने गण्डोंसे मतलब। मालिकको धाया हो या सुनाफा, इनके ठंगेसे। इनके कारखानेमें, इनके दफ्तरमें आग लगे तो लगे, इन्हें कोई परवाह नहीं, बशर्त कि इनकी नौकरी बरकरार रहे।

ये लोग जो काम करते हैं, उससे मालिकका, दुकानका, कम्पनीका, कारखानेका या देशका कोई लाभ होता है या नहीं—इससे उन्हें कोई वास्ता नहीं। इन्हें सिर्फ अपनी रोटियोंकी चिन्ता रहती है। दूसरे लोग जहन्नुममें जायँ तो जायँ।

जो काम इन्हें सुपुर्द किया जाता है, उसे पूरा करनेकी इनकी जिम्मेदारी है, ऐसा ये नहीं मानते। समयसे उसे पूरा करनेकी तो कोई बात ही नहीं। फिर उसे अच्छे ढंगसे, उत्तम रीतिसे, बढ़िया प्रकारसे करनेका तो प्रश्न ही कहाँ उठता है ?

× × ×

और बेमनसे काम करनेका नतीजा ?

खेतोंमें अच्छी फसल नहीं आती। बगीचोंमें अच्छे फल नहीं आते। व्यापारमें धाया होता है। वाणिज्य डूब जाता है। बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ दिवाला बोल जाती हैं। बड़े-बड़े कारखाने चौपट हो जाते हैं। मतलब, जिधर देखिये नुकसान-ही-नुकसान, धाया-ही-धाया।

मनुष्य तबाह हो जाता है। देश तबाह होता है। संसार तबाह होता है।

× × ×

बेमनसे काम करनेवाला व्यक्ति खुद तो डूबता ही है, अपने साथ दूसरोंको भी ले डूबता है। उसके चेहरे, उसके रंग-ढंग, उसके व्यवहार, उसकी बातचीत—सबसे एक ही आवाज निकलती है—

मैं तो डूबूँगा मगर यादको ले डूबूँगा।

असंतोष, निराशा, निरुत्साह उसके जीवनमें नीचेसे ऊपरतक ओतप्रोत रहता है।

वह न तो स्वयं विशेष उन्नति कर पाता है और न दूसरोंको ही उन्नतिके रास्तेपर जाने देता है।

उसकी जिंदगीकी गाड़ी लस्टम-पस्टम चलती है। कभी तो उसका मालिक ही उसे छुड़ा देता है, कभी वह खुद

काम छोड़ बैठता है। फिर इधर-उधर ठोकरें खाता है। भला क्या मजा है ऐसी जिंदगीमें ?

× × ×

पर जो लोग काममें रस लेते हैं, उनकी स्थिति ही दूसरी रहती है। वे मानते हैं—

जहँ जहँ जाऊँ सोइ परिकरमा;

जो कलु कलुँ सो पूजा ।

बात है सन् १९०७ की।

अमेरिकाके पेंसिलवेनिया राज्यके जान्सटाउनकी। खिलाड़ी फ्रैंक बेटगरको उसके कामसे मुक्त कर दिया गया।

उसे ऐसी कोई कल्पना तक न थी।

वह सीधा पहुँचा मैनेजरके पास।

पूछा—‘महाशय, मेरा कुसूर ?’

कुसूर यह है फ्रैंक कि तुम सुस्त हो। खेलके मैदानमें तुम इस तरह गेंद खेलते हो मानो २० सालका कोई खिलाड़ी जैसे-तैसे गेंद ढो रहा हो। यह सुस्ती नहीं तो क्या है ?

फ्रैंकने जवाब दिया—‘बात सुस्तीकी नहीं है श्रीमान्। मुझे भीड़से डर लगता है। उस डरसे बचनेको मैं ऐसा करता हूँ।’

गलत है तुम्हारा यह तरीका। खैर, अबतक जो हुआ सो हुआ। आगे तुम जहाँ जाओ, तुम अपना यह तरीका छोड़ दो। अपनेको जगाओ और जो भी काम करो उसमें रस लो, उसमें जीवन डालो, उसमें प्रेरणा उँढेलो।

× × ×

फ्रैंक बेटगरको उस समय १७५ डालर (१ डालर अब लगभग सात रुपया) मासिक वेतन मिलता था। मरता क्या न करता ? उसने चेस्टर जाकर २५ डालर मासिकपर नौकरी स्वीकार कर ली। तीन दिन बाद एक साथी खिलाड़ी डैनीने फ्रैंकसे कहा। ‘क्या मर रहे हो तुम, यहाँ फ्रैंक ? क्यों नहीं किसी अच्छी जगह चले जाते ?’

‘चला तो सब कुछ जाऊँ, पर कहीं गुंजाइश भी तो हो।’

एक हफ्ते बाद डैनीने कोनेक्टिकट राज्यके न्यू हेवनमें फ्रैंकको काम दिलाया—परीक्षणके तौरपर। वहाँ फ्रैंकको कोई न जानता था।

फ्रैंकने सोचा कि क्यों न मैं यहाँ अपना तरीका बदल दूँ ? क्यों न मैं इस ढंगसे खेदूँ कि सारी हवा ही बदल जाय ? उसने वही किया।

जिस क्षणसे फ्रैंक बेटगर खेलके मैदानमें उतरा, उस क्षणसे उसने वह उत्साह और जोश दिखाया कि लोग देखकर हैरान रह गये। सभीको लगा कि इस आदमीमें तो जैसे सैकड़ों बिजलियाँ भरी हैं। जिधर जाता है जोशकी लहर फैला देता है। गेंद फेंकनेमें, पकड़नेमें, आगे बढ़ानेमें—हर काममें उत्साह।

न्यू इंग्लैंड लीग, जिसमें फ्रैंक खेल रहा था, खेलमें तो जीती ही, उसके सभी खिलाड़ियोंमें भी कई गुना उत्साह भर गया। चारों ओर उसकी तारीफ हो उठी।

दूसरे दिन अखबारोंमें इस नये खिलाड़ीकी जो तारीफ छपी, उसकी कटिंग काटकर उसने अपने पुराने मैनेजरके पास भेज दी।

दस दिनके भीतर फ्रैंक बेटगरको २५ डालरकी जगह १८५ डालर मिलने लगा।

क्यों ?

महज इसलिये कि उसने अपने काममें रस लेना शुरू कर दिया। पहले दिन तो उसने काममें रस लेनेका स्वाँग भर ही किया था, पर दूसरे दिनसे वह उत्साह और प्रेरणा उसके जीवनका अङ्ग बन गयी।

दो साल बाद फ्रैंककी आमदनी ३० गुनी बढ़ गयी।

× × ×
डेल कानेंगी जिसकी चिन्ताहरणवाली किताब—‘हाउ टू स्टाप वौरींग एण्ड स्टार्ट लिविंग’ ७ लाखसे ऊपर और मित्र बनानेकी कलावाली किताब—‘हाउ टू विन फ्रेंड्स एण्ड इन्फ्लूएन्स पीपुल’ ५० लाखसे ऊपर विक्रि चुकी है—पहले मोटरें बेचता था। मोटरकी मशीन कैसी है, मोटर कैसी चलती है—इन सब बातोंमें न तो उसे कोई रस था, न वह कोई रस लेना चाहता था। पर धंधा तो उसे कोई करना ही था।

जी ऊबता था। काममें मन नहीं लगता था। यों काम वह करता था, उसमें उसने उन्नति भी की थी। तरकी भी उसे मिली थी। पर कामसे लौटनेपर रोज उसका जी कचोटता। निराशा, चिन्ता, कड़वाहट और विद्रोह उसमें उपनता।

संख्या १०]

‘क्या है मेरी जिंदगी ! रात-दिन इसी तरह मोटर बेचता रहूँगा क्या ? ऐसे ही समाप्त हो जायगा मेरा जीवन ? क्या-क्या स्वप्न देखे थे कालेजके दिनोंमें । मैं लिखना चाहता हूँ, पढ़ना चाहता हूँ पर’

पैसे तो अच्छे मिल रहे थे, पर क्या पैसे ही सब कुछ हैं । मनुष्य जो कुछ करना चाहता है, जो-जो करनेके सपने संजोता है, उन्हें न कर पाये तो जीवनका क्या मजा ?

लाचार, एक दिन कार्नेगीने नौकरी छोड़ दी । वह लिखनेके लिये जीना चाहता था और जीनेके लिये लिखना ।

सोचा रातमें प्रौढ़ोंको व्याख्यान देना सिखाऊँगा, दिनमें पढ़ूँगा, लिखूँगा । उसने कोलम्बिया विश्वविद्यालयको और न्यूयार्क विश्वविद्यालयको इसके लिये लिखा, पर कोई उसकी सेवा लेनेको तैयार न हुआ ।

तब ‘यंगमैन क्रिश्चियन असोसियेशन’का दरवाजा खट-खटया । कहा, ‘आपलोग मुझे केवल २ डालर रोज दे दीजिये ।’ पर असोसियेशन इसके लिये भी तैयार न हुआ । असोसियेशनने कई बार ऐसे प्रयत्न किये थे, पर असफलता ही हाथ लगी थी । इसलिये वह ऐसा खतरा क्यों ले ?

कार्नेगीने कहा, तब आपलोग खर्च काटकर मुनाफेमें ही मुझे कुछ कमीशन दे दीजिये ।

इसके लिये असोसियेशन तैयार हो गया ।

कार्नेगी प्रौढ़ोंको व्याख्यान देना, बोलना सिखाने लगा । उसकी आमदनी अनिश्चित थी । लोग किस्तोंपर फीस देते थे । चाहे जब बंद कर सकते थे । इसलिये कार्नेगीको अपने काममें अपनी पूरी ताकत लगानी पड़ी ।

पूरा रस लेकर वह काममें जुटा ।

नतीजा ?

जिस असोसियेशनने उसे २ डालर रोज देनेसे इन्कार कर दिया था, वही उसे ३० डालर रोज कमीशन देने लगा ।

धीरे-धीरे कार्नेगीकी व्याख्यानमाला अमेरिकाके ८६३ शहरोंमें चालू हो गयी ।

काममें रस लेनेसे उसके जीवनकी साध पूरी हुई । उसने खून पढ़ा, खून लिखा और मानवको व्यवहार-कुशल, मैत्रीपूर्ण और निश्चिन्त बनानेमें, उसके सुखमें वृद्धि करनेमें अद्भुत योगदान दिया ।

X

X

X

काममें रस लेनेसे मनुष्यका आनन्द कितना बढ़ता है इसका मजा मुक्तभोगी ही जानते हैं । वर्तेन्ड रसेल लिखते हैं—

मैं दो आदमियोंको जानता हूँ जिनका जीवन मैंने आनन्दसे ओतप्रोत देखा ।

एक था कुँआ खोदनेवाला । वह हड्डिकड़ा, मस्त आदमी । जमकर काम करता और हमेशा मगन रहता । वह १८८५ में जब पार्लमेन्टके लिये चुना गया तो उसे पता लगा कि पढ़ना और लिखना भी कोई चीज होती है ?

दूसरा आदमी है उनके बगीचेका माली ।

उसे खरगोशोंसे बड़ी नफरत है ।

७० से ऊपर है । पर वह दिनभर सुबहसे शामतक काममें जुटा रहता है । पहाड़ी रास्ता पारकर साइकिलसे १६ मील दूर घरपर जाता है रोज शामको और सुबह उतना रास्ता पार करके आता है कामपर ।

हाँ, उसके आनन्दका स्रोत दिनरात अविरल गतिसे बहता रहता है और उसके प्रेरणास्रोत हैं ये खरगोश ।

X

X

X

और वह नामदेव माली, जिसका वर्णन करते हुए डाक्टर अब्दुलहक कहते हैं—

‘नामदेव मकवरा रविया दुर्गानी’के बागमें माली था । जातिका डेढ़ । मकवरेका बाग मेरी देखरेखमें था । मैंने अपने छोटे बंगलेके सामने उद्यान सजानेका काम नामदेवके सुपुर्द किया ।

लिखते-लिखते कभी नजर उठाकर देखता तो नामदेव को सदा अपने काममें व्यस्त पाता । कभी-कभी देखता कि नामदेव एक पौधेके सामने बैठा उसकी क्यारी साफ कर रहा है । क्यारियाँ साफ करके हौजसे पानी लिया और धीरे-धीरे डालना शुरू किया । पानी डालकर डोलको ठीक किया और चारों ओरसे पौधेको मुड़-मुड़कर देखा । देखता जाता था और मुसकराता और मन-ही-मन आनन्दसे भर जाता । यह देखकर मुझे आश्चर्य भी होता और प्रसन्नता भी । काम उसी समय होता है, जब उसमें रस आने लगे ।

वह अपने काममें मगन रहता ।

वह निस्संतान था । अतः वह अपने पौधों और पेड़ोंको ही संतान समझता और बाल-बच्चोंकी भाँति उनका

पालन-पोषण तथा देख-रेख करता था। उन्हें हरा-भरा और खिलखिलाकर हँसता देख ऐसे खुश होता जैसे माँ अपने बच्चोंको देखकर होती है। प्रायः वह एक-एक पौधेके पास बैठता, उनको प्यार करता, झुक-झुककर उन्हें ऐसे देखता मानो चुपके-चुपके उनसे बातें कर रहा हो। जैसे-जैसे वे बढ़ते और फूलते-फलते, उसका जी भी वैसे ही बढ़ता और फूलता था। उन्हें पूरे खिले और हिलोरें लेते देखकर उसके चेहरेपर आनन्दकी लहरें दौड़ जातीं।

वह स्वयं भी साफ-सुथरा रहता और वाटिकाको भी ऐसा स्वच्छ-पवित्र रखता, मानो भोजनालय हो। क्या मजाल जो कहीं घास-फूस या कंकड़-पत्थर पड़ा रहे। खुरपे, क्यारियाँ, नियमसे सिंचाई और टहनियोंकी काटछाँट, समयपर झाड़ना-बुहारना। तात्पर्य यह कि सारे उद्यानको उसने दर्पण बना रखा था।

नामदेव सांसारिक बातोंको अनसुना-सा करके अपने काममें लगा रहता। न प्रशंसाकी इच्छा, न पुरस्कारकी परवा।

एक साल वर्षा बहुत कम हुई। कुँओं और बावलियोंमें नाममात्रको पानी रह गया। बागपर आफत टूट पड़ी। किंतु नामदेवका उपवन हराभरा था। वह दूर-दूरसे एक-एक घड़ा पानीका सिरपर उठाकर लाता और पौधोंको सँचता। जलकी कमी और बढ़ी तो उसने रातों-रात पानी ढोकर लाना प्रारम्भ किया।

डाक्टर सिराजयार जंग नामदेवके गुणोंसे भलीभाँति परिचित थे और उसका आदर करते थे। उसे मकबरेसे शाही बाग ले गये। उसे तो बस कामकी धुन थी। कामसे सच्चा लगाव और इसीमें उसकी जीत थी।

एक दिन न मादूम क्या बात हुई कि शहदकी मक्खियोंकी आफत खड़ी हो गयी। सब माली भाग-भागकर लुप गये। नामदेवको खबर भी न हुई कि क्या हो रहा है। वह बराबर अपने काममें लगा रहा। मक्खियोंका एक भयावना झुंड एकाएक उस गरीबपर टूट पड़ा। इतना काटा, इतना काटा, कि वह वेदम हो गया। अन्तमें इसीसे उसका प्राणान्त हो गया। किंतु मैं कहता हूँ, उसने आत्म-बलिदान किया।

वह अत्यन्त सरल स्वभावका था। उसके मुखपर प्रसन्नता और होठोंपर सदा मुसकराहट खेलती थी। छोटे-बड़े हर-एकसे झुककर मिलता। निर्धन था। वेतन भी कम, तो भी अपनेसे गरीब बन्धुओंकी सहायता करता रहता था। कामसे प्रेम था और आखिर काम करते ही संसारसे विदा हो गया।—‘अमिट रेखाएँ’

× × ×

काश, हम नामदेव-जैसे लोगोंसे काममें रस लेनेकी प्रेरणा ले सकें। धन्य और कृतार्थ हो उठेगा हमारा जीवन!

नाटकके अभिनेताकी भाँति ममता-आसक्ति न रखकर उचित कार्य करो

रक्खो मत आसक्ति कर्ममें, फलमें ममता किसी प्रकार।
भलीभाँति सब कर्म करो समुचित पद्धतिसे विना विकार ॥
जैसे नट नाटकमें रखता कहीं नहीं ममता-आसक्ति।
पर वह यथायोग्य सब अभिनय करता बन वैसा ही व्यक्ति ॥
भूल न हो अभिनयमें, विगड़े कहीं न नाट्यमञ्चपर खेल।
रसका उचित उदय हो, पर मनमें न कहीं हो विग्रह-मेल ॥
वैसे ही ईश्वरके इस जग-नाट्यमञ्चपर भली प्रकार।
खेलो अपना खेल यथोचित तत्प्रीत्यर्थ स्वाँग-अनुसार ॥

बस, तनिक-सी देर हो गयी थी !

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भयानक दुर्घटना

रेल बड़ी तीव्र गतिसे सरपट भागी चली जा रही थी। सामने कुछ फासलेपर एक मोड़ था और आगे एक जंक्शन स्टेशन था, जहाँ दो रेलें एक साथ चलकर टकराकर चूर-चूर हो सकती थीं। कंडक्टर एक रेलको रोकनेमें तनिक-सा लेट हो गया था, पर वह समझता था कि दूसरी रेल दूसरी लाइनपर आनेसे पूर्व यह रेल मुख्य लाइनपर आ चुकेगी और दुर्घटना बच जायगी। उफ् ! एकाएक दूसरी लाइनपर भी दूसरी ट्रेनका एंजिन संयोगसे ठीक उसी वक्त आता दिखायी पड़ा। तेज रफतार ! सिग्नल डाउन। भागते हुए दोनों एंजिन ! एक क्षणमें भयानक टकराहटके साथ दोनों एंजिन दुर्घटनाग्रस्त हो गये। हजारों मुसाफिरोंकी करुण चीत्कारसे वातावरण भर गया ! कितनोंहीकी जानें गयीं, कितने ही घर बरबाद हो गये। कोई पिस गया, तो किसीकी टाँग-हाथ कट गये। कितने ही बुरी तरह घायल हो गये। जान और मालका बहुत बड़ा नुकसान हो गया !

इस सबका क्या कारण था ?

कारण एक व्यक्ति था। यह थी उस व्यक्तिकी थोड़ी-सी लापरवाही। तनिक-सी सुस्ती ! उसे सिग्नल देनेमें जरा देर हो गयी थी। उसके क्षणभरके आलस्यने अनेकोंके प्राण लिये थे !

सहायक सेना तनिक देरसे पहुँची !

फ्रांसके महायुद्धकी एक घटना है।

एक बड़ा युद्ध भयानक रूपमें चल रहा था। सैनिकोंके दस्ते एकके बाद एक शत्रुपर वायुवेगसे आक्रमण कर रहे थे। आठ घंटेतक घमासान मारकाट चलती रही। पहाड़ीके दूसरी ओरके सैनिक प्राणपणसे रक्षात्मक कार्यवाही कर रहे थे। दोनों सेनाएँ पूरी तरह थककर चकनाचूर हो चुकी थीं। एक पकड़ और लड़ लेते, तो विजय पूरी हो जाती। एक मजबूत सहायक सेनाको तुरंत बुलाया गया था। प्रतिक्षण सहायक सेनाके आनेकी उत्कट प्रतीक्षा की जा रही थी। विजेता पक्षको अब विश्वास हो गया था कि वे अवश्य जीत जायेंगे। उन्हें अपनी सहायक सेनाके समयपर पहुँच जानेका पूर्ण विश्वास था। इसलिये उन्होंने अपनी रक्षा करनेवाली रिजर्व फौजको भी आक्रमण करनेवाली फौजमें परिणत कर लिया और पहाड़ीके छिपे स्थानोंसे निकल-निकलकर शत्रुपर आक्रमण करने लगे। उन्हें पता था कि सहायक सेना उनके साथ आ जायगी और विजय उनके हाथमें रहेगी।

लेकिन हाय ! सहायक सेना वक्तपर न पहुँची। उधर उत्सुक आँखें लगी रहीं कि सहायक सेना अब आयी, अब आयी ! ग्राउची नामक सेनाध्यक्ष समयपर न पहुँचा।

नतीजा क्या हुआ ? क्या आप जानते हैं ?

शाही सेना पराजित हुई। वाटर लूके सुप्रसिद्ध युद्धमें नैपोलियन बुरी तरह पराजित हुआ। वह सेंट हैलिनामें कारावासमें बंदी बना लिया गया और एक बंदीके रूपमें ही मर गया।

यह सब आखिर क्यों हुआ ? नैपोलियन युद्धविद्यामें अति प्रवीण था। उसने अनेक विकट युद्ध जीते थे। युद्ध-सम्बन्धी उसका अनुभव बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उसके पराजित होनेमें उसका कोई कसूर नहीं था।

गलती यह हुई कि उसका एक मार्शल सहायक सेना-सहित मददके लिये तनिक देरसे पहुँचा था और एक महान् योद्धाकी पराजयका कारण बना था।

काश, वे जरा जल्दी करते !

व्यापारके क्षेत्रमें एक प्रसिद्ध फर्म दिवालियापनके विरुद्ध जूझ रही थी। कैलिफोर्नियामें उस फर्मकी बहुत-सी स्थायी पूँजी जमा थी। उन्हें यह आशा थी कि एक निश्चित अवधिके भीतर वहाँसे रुपया जरूर आ जायगा। यदि वह रुपया आ जायगा, तो उस फर्मकी साख, उसके मालिकोंकी इज्जत और उसकी भावी समृद्धि सब सुरक्षित थी।

लेकिन दुर्भाग्यकी चोट ! नियतिका कुटिल चक्र ! एक सप्ताहके बाद दूसरा सप्ताह बीतता गया और वहाँसे सोना न आया।

अन्तमें वह अभागा आखिरी दिन भी आ पहुँचा, जब फर्मको तमाम बड़ी मूल्यवाली हुंडियोंका भुगतान निश्चितरूपसे करना ही था। अब श्रृण बढकर आखिरी सीमापर पहुँच चुका था। फिर भी आशाके झीनेसे सूत्रमें फर्मके मालिकोंकी इज्जत लटक रही थी। उन्हें उम्मेद थी कि कैलिफोर्नियासे सुरक्षा-फंडमेंसे आपत्तिकालकी चढ़ी हुई रकमका भुगतान करनेके लिये जरूर रुपया आवेगा।

सुबह होते ही केविलग्रामद्वारा जल्दीसे-जल्दी रुपया भेज देनेका जोरदार तकाजा किया गया।

सबको पूर्ण आशा थी कि कोई लापरवाही नहीं होगी और संचित राशि आपत्तिसे पूर्व पहुँच जायगी।

पर दुर्भाग्य ! शोक ! जब स्टीमर आया, तो मालूम

हुआ कि रुपया कुछ देरसे पहुँचा था और तबतक यह स्टीमर वहाँसे चल चुका था।

अगला स्टीमर दिवालिया फर्मके लिये चढ़ी रकमका डेढ़ गुना रुपया लेकर आया, किंतु हाय ! तबतक फर्म दिवालिया घोषित हो चुकी थी। तनिक देर हो जानेकी वजहसे उसकी साख और मालिकोंकी प्रतिष्ठा पूरी तरह धूल-धूसरित हो चुकी थी।

कारण यह था कि रुपयेकी सहायता भेजनेवालोंने रुपया जरा देरमें भिजवाया था ! काश, वे तनिक-सी जल्दी करते तो साख, यश और प्रतिष्ठा सब कुछ बच सकती थी !

निर्दोषको फाँसी लग गयी !

एक अपराधीको मनुष्यकी हत्या कर देनेके अपराधमें फाँसीका हुकम हुआ। वह फाँसीके लिये ले जाया जा रहा था। उसने परिस्थितियोंसे विवश होकर एक दुष्ट हत्यारेका सामना किया था। स्थिति ऐसी थी कि या तो वह उसे मारे अथवा उसके छुरेके नीचे प्राणत्याग दे। उस साहसीने दुष्टको परास्त तो कर दिया, किंतु अब हत्याका अपराध उसके ऊपर था।

कानून अंधेकी लाठी है। इसकी पहुँचके भीतर जो भी जब कभी आता है, सजा पाता ही है।

इस व्यक्तिके पक्षमें जनता थी। सैकड़ों व्यक्तियोंने इसको मुक्त कर देने तथा दया दिखानेके लिये प्रार्थनापत्र भेजे थे। जनता उसके पक्षमें थी और सबको पूरी आशा थी कि सजासे एक दिन पूर्व मुक्तिकी आशा जरूर आ जायगी। अपराधीको सजासे छोड़ दिया जायगा। जेलर-तकको विश्वास था कि कैदीको मुक्त कर दिया जायगा।

लेकिन प्रतीक्षाके बावजूद प्रातःकाल आ गया। समय भागा चला जा रहा था और काले मुखवाली मौत अपने विकराल जबड़े खोले अपराधीको भक्षण करने चली आ रही थी।

अन्तिम क्षण आ पहुँचा। फाँसीकी तैयारियाँ हो रही थीं, फिर भी सबको राजाशाके समयपर पहुँच जानेकी आशा थी। मनुष्य आशाके उज्ज्वल प्रकाशके सहारे अन्तिम क्षणतक जीता है।

शायद राजदूत अपराधीकी मुक्तिका परवाना लाता होगा ! अब आया ! वह आया ! पर कोई भी न आया। अपराधीको फाँसीके तख्तेपर चढ़ा दिया गया। मृत्यु-जैसा काला कपड़ा उसके नेत्रोंपर ढक दिया गया। नीचेकी चटकनी दबायी गयी।

अब मरी हुई लाश छटपटाती हुई लटक रही थी।

आत्मा चली गयी थी, निर्जीव शरीर हवामें हिल रहा था। ठीक इसी मौकेपर दूरसे एक घुड़सवार तेज रफ्तारसे भागा आता हुआ दिखायी दिया। सबकी आँखें उधर लगी हुई थीं।

वह राजदूत था। बंदीकी मुक्तिका आदेश लेकर बदहवास घोड़ेको भगाये चला आ रहा था। उसके हाथमें आज्ञा-पत्र था, जो उसने दूरसे ही ऊँचा उठाकर उत्तेजित भीड़को दिखाया।

परंतु हाय ! वह तनिक देरसे पहुँचा था। एक व्यक्तिकी जान तनिक ही जल्दी करनेसे बच सकती थी। गलती यही हुई कि राजाशा लानेवाला राजदूत तनिक देरसे घटनास्थलपर पहुँचा था।

ये सब घटनाएँ जीवनके एक महत्वपूर्ण सूत्रको स्पष्ट करती हैं और वह यह कि हम समयकी पाबंदीका बेहद ध्यान रखें। कर्त्तव्य-पूर्तिमें देर और आलस्य कदापिन करें।

तनिक-सी देरीसे सैकड़ोंकी हानि हो सकती है। व्यक्तिकी जान जा सकती है। वर्षोंकी इज्जत धूलमें मिल सकती है। आनन्द, समृद्धि, सुखशान्ति गायब हो सकती है।

लोग धर्मके शिक्षण, परमार्थके कार्योंको करनेकी सोचते ही रहते हैं, कलपर टालते जाते हैं, यहाँतक कि टालते-टालते वह उत्तम संकल्प मन्द पड़ जाता है।

पाँच मिनिटका समय कितना छोटा होता है, पर उसीका सदुपयोग जीवनको बदल सकता है। पिछड़ जाने या देर कर देनेपर भयंकर हानि हो सकती है।

यदि हम कोई अच्छा गुण अपने चरित्रमें विकसित करना चाहते हैं, तो वह समयकी पाबंदी (Punctuality) है। हमारा जीवन घड़ीकी सूईपर चलता रहे। हम अपने जीवनको नियमित बनावें, आलस्य न करें। जो कार्य जिस वक्त होना है, निश्चित रूपसे उसी वक्त हो। हमें अपने दैनिक जीवनको भी क्रमबद्ध, योजनाबद्ध और निश्चित रूपरेखाके अनुसार बनाना चाहिये। जीवनका सदुपयोग समयका अधिकाधिक ऊँचे कार्योंमें नियमानुसार व्यय करनेसे ही सम्भव है। संसारके काल-चक्रमें कहीं भी अनियमितता नहीं। लोक और दिक्पाल, पृथ्वी और सूर्य, चन्द्र तथा शेष सब ग्रह, नक्षत्र आदि समयकी गतिसे गतिमान हैं। समयकी अनियमितता होनेसे सृष्टिका कोई काम नहीं चलता। समस्त सृष्टिक्रममें यही नियम चल रहा है। फिर आप ही क्यों अनियमित रहें ?

धर्म-निरपेक्ष

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

‘अब समय आ गया है कि भारतको एक हिंदू-राष्ट्र घोषित कर दिया जाय ।’

‘यदि ऐसा हुआ तो हम प्राणपणसे उसका विरोध करेंगे, किसी भी दशामें हम भारतको हिंदुओंका पाकिस्तान नहीं बनने देंगे ।’

‘और इसी भारतके एक भागको, जिसे कलत्तक भारत कहलानेपर गर्व था, तुमने मुसलमानोंका पाकिस्तान कैसे बनने दिया ? उस समय तुम्हारा बल-पौरुष कहाँ चला गया था ? आज भी तुम्हारे पास उस मुसलमानोंके पाकिस्तानको धर्म-निरपेक्ष बनानेकी कौन-सी योजना है ? उसके सामने तो तुम निरन्तर घुटने टेकते रहनेको ही सबसे बड़ी राजनीति समझते हो । यह सारा बल-पौरुष तुम्हारा हिंदुओंके लिये ही है । इसका अर्थ यह हुआ कि तुम्हारे सारे सिद्धान्त शान्तिप्रिय समुदायके लिये हैं, जिसे तुम भूलसे निर्बल समझ बैठे हो । तो फिर क्या भारतको हिंदूराष्ट्र घोषित करनेके लिये हमें यह सिद्ध करना आवश्यक होगा कि हम भी अशान्त हो सकते हैं ?’

‘यह तुम्हारी इच्छा है । यदि हम मुसलमानोंको पाकिस्तान बनानेसे नहीं रोक सके तो तुम्हींने कौन-सा रोक दिया । पाकिस्तानका विरोध तो धर्म-निरपेक्षों और हिंदू-राष्ट्रवादियों—दोनोंने मिलकर किया था । यद्यपि विरोधके आधार दोनोंके भिन्न-भिन्न थे । तुम समूचे भारतको हिंदू-राष्ट्र घोषित करना चाहते थे, हम समूचेको धर्म-निरपेक्ष । पाकिस्तानका निर्माण तुम्हारी-हमारी दोनोंकी सम्मिलित पराजयका सूचक है—हिंदू-राष्ट्रवादियोंकी धर्म-निरपेक्षोंपर विजयका नहीं ।’

‘तो क्या जिन साम्प्रदायिक मुसलमानोंको तुम-हम मिलकर भी पाकिस्तान बनानेसे नहीं रोक सके, वे तब फिर भारतमें सक्रिय नहीं हैं ? क्या तुम-हम उन्हें नया पाकिस्तान बनानेसे रोक देंगे ? भारत-

विभाजनके पश्चात् क्या तुमने यह देखा कि भारतमें केवल वे ही मुसलमान रह पायें जो एक राष्ट्रीयताको हृदयसे स्वीकार करते हों । क्यों उन मुसलमानोंको आज भी सहन किया जा रहा है जो इस्लामके नामपर पृथक् भाषा, पृथक् प्रान्त, धारा-सभाओं और सरकारी नौकरियोंमें संरक्षणकी माँग कर रहे हैं ? क्या यह सब धर्मनिरपेक्षता है ? क्या धर्म-निरपेक्षताका अर्थ यही है कि हिंदू अपने ही देशमें छुटता-पिटता और अपमानित होता रहे, अपनी ही भूमिमें बैठकर वह अपने धार्मिक त्यौहार, उत्सव और अनुष्ठान मनानेसे रोक दिया जाय ?’

‘यह देश हिंदुओंका नहीं सभीका है ।’

“और ‘सभी’का अर्थ है हिंदुओंको छोड़कर शेष ‘सभी धर्म’ । इस देशमें सभीको धार्मिक स्वतन्त्रता है, नहीं है तो केवल हिंदुओंको । आज संसारमें ईसाइयोंके देश हैं, मुसलमानोंके देश हैं, यहूदियोंके देश हैं । नहीं है तो केवल हिंदुओंका । अभी-अभी इस बीसवीं शतीमें संसारके अग्रगामी देशोंने, जिनमें नाक ऊँची रखनेके लिये तुम अपनेको धर्मनिरपेक्ष घोषित किये हुए हो, उन अग्रगामी विकासशील देशोंने मिलकर अथक प्रयत्नोंद्वारा यहूदियोंके धर्मराज्यकी स्थापना करवायी है । तुम्हारी धर्मका नाम लेते हुए नाक कटती है और जिस संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके आगे नाक रगड़ते-रगड़ते अमेरिकन राष्ट्रपति जानसनकी कुर्सीके आगेका फर्श भी घिस गया है, वहाँ आज भी राष्ट्रपति अपना प्रथम भाषण बाइबिल हाथमें लेकर देता है । वहाँ आज भी प्रतिवर्ष नवम्बरके चौथे बृहस्पतिवारको राष्ट्रीय स्तरपर ईश्वरका स्मरण और यशोगान किया जाता है । उस अमेरिकाके राष्ट्रपति, जिनकी अनु-कम्पाके बिना धर्मनिरपेक्ष भारत देने-दानेको तरस जाता है, सार्वजनिक रूपसे अपनी धार्मिक भावनाका

प्रदर्शन करनेमें झेंपते नहीं, गर्वका अनुभव करते हैं । कैसा सौभाग्यशाली देश है अमेरिका, कैसे-कैसे ईश्वर-भक्त राष्ट्रपति उसे मिले हैं । सभीके उद्धरण दूँगा तो दिन निकल आयेगा । तुम्हारे संतोषके लिये केवल दो दे रहा हूँ और वह भी इस बीसवीं शतीके । सुनो । राष्ट्रपति रूजवेल्टने क्या कहा—

—“Thus from the earliest recorded history, Americans have thanked God for their blessings. In our deepest natures, in our very souls, we, like all mankind, since the earliest origin of mankind, turn to God in time of happiness. In God we trust.”—

—“अपने सुख-वैभवके लिये अमेरिकन सदासे भगवान्‌का धन्यवाद करते आये हैं । कल्पके आदिसे लेकर अबतक समस्त मानव जातियोंकी भाँति अमेरिकन भी स्वभावतः सुख-समृद्धिमें प्रभुके प्रति कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकते । प्रभुकी अनुकम्पामें हमारी दृढ़ आस्था है ।” और अब आइजनाहावरकी भी वाणी सुन लो—

“We are grateful for the plentiful yield of our soil...we rejoice in the beauty of our land... we deeply appreciate the preservation of those ideals of liberty and justice which form the basis of our national life, and the hope of international place...Let us be especially grateful for the religious heritage bequeathed us by our forefathers,—”

‘हम कृतज्ञ हैं उस प्रभुके, जिसने हमें ऐसी उर्वरा भूमि प्रदान की, ऐसे सुन्दर देशमें हमें जन्म दिया, जिसे देखकर हम मग्न हो उठते हैं । हमें गर्व है कि हम स्वतन्त्रता और न्यायके उन आदर्शोंको सुरक्षित रख सके जो हमारे राष्ट्रीय जीवनके आधार

और विश्वशान्तिके प्रकाश-स्तम्भ हैं और सबसे अधिक हम प्रभुके कृतज्ञ हैं उस धार्मिक जीवनकी परम्पराके लिये, जो हमें अपने पूर्वजोंसे उत्तराधिकारके रूपमें मिली है ।’

इंग्लैंडके शासक आज भी अपने नामके आगे धर्मरक्षक (Defender of the faith) की उपाधि लगाते हुए गर्वका अनुभव करते हैं । उनका राज्याभिषेक ईसाई पादरियोंद्वारा गिरजाघर (Westminster Abbey) में सम्पन्न होता है । आज भी इंग्लैंड और अमेरिका, फ्रान्स और जर्मनी, इटली और स्पेनमें सैकड़ों क्राइस्ट्स कालेज वर्तमान हैं । भारतवर्षमें अकेले एक हिंदूविश्वविद्यालय काशीके साथ भी हिंदूनामका जुड़ा रहना भी शासकवर्गको सहन नहीं । धर्मनिरपेक्षका अर्थ भारतवर्षमें लिया जा रहा है ‘हिंदुत्वका समूलोच्छेद ।’ जिन अभारतीय तत्त्वोंके बोटोंके मोहमें पड़कर भारतको धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया था, वे तबतक भारतको धर्मनिरपेक्षताका प्रमाणपत्र देनेके लिये तैयार नहीं, जबतक भारतमें हिंदुत्वका एक भी चिह्न शेष है । धर्मनिरपेक्षताकी माँग है मुसलमानोंकी ओरसे, ईसाइयोंकी ओरसे, कम्युनिस्टोंकी ओरसे और नास्तिकोंकी ओरसे तथा बड़े-बड़े भोगस्वामियोंकी ओरसे जिससे कि वे इस देशमें हिंदुत्वकी जमी हुई जड़ोंको उखाड़ फेंकें और सुविधापूर्वक अपनी नयी पौध लगा सकें । जब विश्वके मानचित्रमें ईसाइयोंके पाकिस्तान हैं, मुसलमानोंके पाकिस्तान हैं, यहूदियोंका पाकिस्तान है तो फिर एक राष्ट्र एक देश हिंदुओंका भी होना चाहिये । जब तिलकने ‘स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है’ का मन्त्र राष्ट्रमें फूँका था तो क्या उनका तात्पर्य इसी धर्मनिरपेक्ष स्वराज्यसे था । जब खुदीराम बोस और कन्हैयालाल दत्त गीताकी पोथी लेकर पाँसीपर झूले थे तो क्या इसी धर्मनिरपेक्ष राज्यकी आशामें ? कभी सोचा है, लोकमान्य तिलक और योगी अरविन्दकी

पवित्र आत्मा तुम्हारे इस धर्मनिरपेक्ष राज्यको देख-देखकर क्या कहती होगी ?

भारतको हिंदू-राष्ट्र घोषित कर दिया जाय तो भी समस्या हल नहीं होगी । फिर झगड़ा चलेगा वैदिकों और जैन-बौद्ध-जैसे अवैदिकोंका और वैदिकोंमें भी सनातनियों तथा आर्यसमाजियोंका और सनातनियोंमें शाक्त, शैव और वैष्णवका और वैष्णवोंमें कृष्णोपासकों तथा रामोपासकोंका और कृष्णोपासकोंमें भगवान्का मुकुट उत्तर अथवा दक्षिणकी ओर रखनेवालोंका । ये झगड़े तो कभी भी समाप्त नहीं होंगे, चलते ही रहेंगे ।

धर्मनिरपेक्षोंमें भी पूँजीवादी, समाजवादी और कम्युनिस्ट निरन्तर लड़ते रहते हैं और फिर कम्युनिस्टोंमें भी वामपन्थी तथा दक्षिणपन्थी और उनमें भी अनेक भेद । हिंदू-राष्ट्रसे मेरा अभिप्राय किसी मत-मतान्तरसे न होकर हिंदू-जीवन-पद्धतिसे है । उसे लोग भारतीय जीवनपद्धति अथवा आर्यजीवन-पद्धति भी कहते हैं । यदि मुसलमान और ईसाई उस जीवन-पद्धतिको स्वीकार करें तो वे भी हिंदू-राष्ट्रके अङ्ग समझे जायेंगे । हमारा कुरआन और वाइविल, मुहम्मद और ईसा, मसजिद तथा गिरजासे कोई विरोध नहीं है; परंतु हम चाहते हैं कि जो विदेशी जातियाँ भारतमें आकर बसें वे या तो यहाँकी जीवन-पद्धतिको स्वीकार करें और यदि वे अपनी विदेशी लिपि, विदेशी भाषा, विदेशी संस्कार और विदेशी प्राचीन जन्म-भूमियोंसे चिपके रहना चाहते हैं तो उन्हें यहाँकी नागरिकतासे त्यागपत्र देना होगा । जिन तत्त्वोंने पाकिस्तानकी माँग की थी, वे तत्त्व आज भी धर्मनिरपेक्ष भारतमें वर्तमान हैं । उनको राष्ट्रीय परिवेशमें लानेका आपने क्या प्रयत्न किया ? आओ, हम घोषणा करें कि भारतका इतिहास मुहम्मद बिनकासिमके आक्रमण और वास्कोडिगांमाकी भारतयात्रासे प्रारम्भ न होकर मत्स्यावतार, गङ्गावतरण और रघुकी दिग्विजयसे

प्रारम्भ होता है । १५ अगस्त ही नहीं—दशहरा, दीवाली, होली, सङ्क्रान्ति, वसन्त और तीज भी राष्ट्रीय पर्व हैं । गङ्गा और यमुना, गोदावरी और कृष्णा, नर्मदा और कावेरी राष्ट्रनद हैं और यह कि भारतकी राजनीति भारतके हित, भारतके स्वार्थ और भारतकी परम्पराके अनुकूल चलेगी । वह अरब, ईरान अथवा पाकिस्तान, चीन अथवा रूस, इंग्लैंड अथवा अमेरिकाकी ओर मुँह करके देखनेवालोंद्वारा निर्धारित नहीं होगी । भारतको हिंदू-राष्ट्र घोषित करनेसे हमारा अभिप्राय है विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोण, जो अपने-आपमें पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष है । तभी उसे जैन, बौद्ध, सिक्ख, आर्यसमाज, शैव, वैष्णव, शाक्त सभीने स्वीकार किया है । वह संस्कृति-निरपेक्ष और राष्ट्रनिरपेक्ष नहीं है, तभी उसकी ओर आज हजारों वर्ष बीत जानेपर भी एक रागात्मक चेतना बनी हुई है । उसमें आज भी प्राण फूँकनेकी शक्ति है । हम हिंदू-राष्ट्रवादी ही सच्चे धर्मनिरपेक्ष हैं । हम धर्मनिरपेक्ष और धर्मनिरपेक्षताकी आड़में चलनेवाले राष्ट्रद्रोहमें भेद करना जानते हैं । आओ, आज ललकार दें कि धर्मनिरपेक्षताके नामपर किसी विदेशी लिपि, किसी विदेशी भाषा और किसी विशेष सम्प्रदायको संरक्षण प्राप्त नहीं होगा । धर्मनिरपेक्षताके नामपर हम अपनी संस्कृति, अपने धर्म, अपने सशस्त्र और अपनी जीवन-पद्धतिको नष्ट नहीं होने देंगे । विज्ञान जानकारी दे सकता है, चेतना नहीं । वह मार्ग प्रशस्त कर सकता है; परंतु लक्ष्य स्थिर करना उसकी सीमाके बाहर है । विज्ञान चन्द्रलोक एवं मङ्गललोकमें ले जा सकता है परंतु अपने पड़ोसीके प्रति भी सहायुभूति उत्पन्न करानेमें वह असमर्थ है । राष्ट्रको बड़े-बड़े उद्योग विज्ञान देगा, परंतु राष्ट्रमें रागात्मक चेतना केवल अपनी संस्कृति-के द्वारा ही जगायी जा सकती है । धर्मनिरपेक्षताकी वेदीपर हम इन सबकी बलि नहीं दे सकते । हम आत्मघात नहीं करेंगे । हम अमर हैं ।

क्या प्रदर्शन ही जीवन है ?

(लेखक—श्रीसुन्दरलालजी बोहरा)

अन्तःकरणकी शुद्धिके बिना व्यक्तिके चरित्रमें निखार नहीं आ सकता। कुत्सित अन्तःकरणवाले व्यक्तिको हर क्षण दूषित विचार घेरे रहते हैं। तामसिक अन्तःकरणवाला व्यक्ति उपलब्ध मधुर रसको भी मदिरामें बदलनेकी चेष्टा करता है। ऐसे व्यक्तिके जीवनमें अशान्ति और उदण्डता पूर्णरूपेण व्याप्त रहते हैं। उसकी वाणी और कार्य इतने तामसिक हो जाते हैं कि सत्त्वगुणका उसके समीप फटकना ही दुष्कर हो जाता है। उसकी हर क्रियामें अहंकारकी छाया स्पष्ट प्रतीत होती है। यदि कहीं सत्साहित्य और सत्संगतिसे वह कुछ समयके लिये दूर रह जाता है, तो वह एक पूरा नट बन जाता है। वह अपने भले-बुरे, प्रत्येक कार्यकी प्रसिद्धि चाहता है। ऐसे व्यक्तिका आत्मसुख इसीमें निहित है कि उसकी हर बे-सिर-पैरकी बातको लोग सुनें और उसे वाहवाही दें। इस प्रकार उसका अहं (Ego) असामान्य रूपसे अमर्यादित हो जाता है। अपने अहंके प्रदर्शनके दौरानमें वह अनेक लोगोंसे ईर्ष्या मोल लेता है; बिना जाने-पहचाने लोगोंकी घृणाका पात्र बनता है; अनेकों व्यक्तियोंसे व्यंग-प्रधान झिड़कियाँ सुनता है, फिर भी वह 'खाँग' भरना बंद नहीं करता। विज्ञापनके युगमें रहकर भी यदि उसका साझोपाझ विज्ञापन न हुआ तो उसका जीवित रहना ही निरर्थक है !

राष्ट्रमें आज सर्वत्र ऐसे ही प्रदर्शन और प्रदर्शकोंकी ही भीड़ लगी है। व्यक्ति अपनी आँखोंसे अन्धे बनकर राहजनोंकी आँखोंसे अपने आपको देखना चाहते हैं। घर बर्बाद हो जाय, कोई परवा नहीं; स्वास्थ्य क्षीण हो जाय, कोई चिन्ता नहीं; कर्जदार बन जायँ, कोई विषाद नहीं—हमारी कलंगी

सबसे ऊपर रहनी चाहिये। चारण-भाटोंके हवाई घोड़ोंपर सवार होकर असंख्य राजा-महाराजा मिट्टीमें मिल गये; शायरों और चापझूसोंकी वाहवाहियोंपर झूम-झूमकर न जाने कितने नवाब कंगाल बनकर रह गये; अपनेको पुजवाने और प्रतिष्ठित करानेके भ्रममें न जाने कितने साधक भ्रष्ट हो गये; अपने-आपको पर्देपर देखकर विभोर होनेवाली न जाने कितनी सम्भ्रान्त युवतियाँ वाराङ्गनाएँ बन गयीं; अपनी विद्वत्ताका सिक्का जमानेके मदमें असंख्य विद्वान् अष्टावक्रद्वारा परास्त कर दिये गये—फिर भी व्यक्तिके अहंका अशिवत्व सहजमें मिटता नहीं। आखिर सिर थामकर मिट्टनको लिखना ही पड़ा—“Fame is the last infirmity of the noble mind”—यशोलिप्सा व्यक्तित्वकी अन्तिम दुर्बलता है। वित्तैषणा और पुत्रैषणासे विरक्त होना सहज है, किंतु लोकैषणाके अष्टबाहु (Octopus) से बचना तो 'तलवारकी धार पै धावनो है'।

प्रत्येक व्यक्ति औरोंसे सहानुभूतिकी अपेक्षा करता है। यह व्यक्तिका अर्जित दोष नहीं है। 'हमें भी कोई सुने' चित्तमें इस प्रकारकी चुलबुलाहटका होना प्रकृति-जात है। अध्ययन और अभ्यासके द्वारा हम इस प्रकारके नैसर्गिक संस्कारका उदात्तीकरण कर सकते हैं; किंतु इसका पूर्णरूपेण वाष्पीकरण तो तभी हो सकता है जब जीवात्माका इस देहसे कोई सम्बन्ध ही नहीं रहे। जहाँ जीवित शरीर है, वहाँ सहानुभूतिका भाव भी है। लेकिन जहाँ यह सहानुभूतिका भाव अपने कल्पित नामको वाहवाहीका चोला पहनानेकी ताकमें भटकता है, वहाँ साधक (व्यक्ति) निश्चितरूपसे भ्रष्ट हो जाता है। व्यक्ति मानापमानके जालमें उलझकर उन्मत्त हो जाता है। उसके अन्तःकरणपर अहंकारका एकच्छत्र राज्य ही

जाता है। मन, बुद्धि और चित्त तमोगुणी अहंकारके अर्दली बनकर रह जाते हैं।

हमारे हर कार्यमें आज लोकदिखावा है। जुद्धस निकालना और भीड़ लगाना—ये दो ही हमारे जीवनके दो महान् कार्य हैं। चाहे किसी मृत व्यक्तिकी रथी निकालनी हो अथवा किसी किशोरका यज्ञोपवीत-संस्कार करना हो—सिक्कोंकी बौछार होनी चाहिये, एवं फोटोग्राफ़ोंको किरायेपर लाकर फोटो खिंचवाने चाहिये। जहाँ विवाहको संस्कार माना जाता था और शास्त्रीय कर्मकी प्रधानता थी, वहाँ आज शास्त्रीय कर्म तो गौण हो गया है और बाहरी आडम्बरमें होड़ लग गयी है। हजारों लाखों रुपये जो गरीबोंकी भूख मिटानेमें लगने चाहिये थे, फोटो, सजावट, रोशनी, रिशेप्शनमें व्यय हो जाते हैं !

जहाँ खादी अथवा रेजीसे काम चल सकता है वहाँ माखमल और नायलन लानेकी चेष्टा की जाती है। बड़ी-बड़ी होटल-पार्टियोंका आयोजन किया जाता है। ग्रामोफोनके रिकार्ड बजा-बजाकर सारी बस्तीकी नींद हराम कर दी जाती है; विद्यार्थियोंको अपने अध्ययनसे विरक्त किया जाता है; वासना-प्रधान गीतोंको गुँजा-गुँजाकर समस्त गाँव अथवा बस्तीके वातावरणको दूषित तथा उत्तेजित किया जाता है। यज्ञोपवीत-जैसे पवित्र संस्कारके अवसरपर भी नाच-गानका कार्यक्रम रहता है। सभी कार्य बाहरी दिखावेके आडम्बरपूर्ण और अत्यन्त खर्चीले हो गये हैं। यही मानो जीवनका उच्च स्तर है ! इसीलिये कुत्सित उपायोंद्वारा धनका संग्रह किया जाता है। सही अर्थमें आज राष्ट्रमें व्याप्त रिश्वतखोरी, कालाबाजार एवं गबनके सारे दुष्कर्मोंके पीछे हमारी प्रदर्शनकी प्रवृत्ति ही प्रधान है।

आज सम्पूर्ण राष्ट्र नट बन गया है। और तो और, हम आत्म-कल्याणके कार्योंको भी 'अप-डेट' बनाना चाहते हैं। वह कीर्तन ही 'नीरस' है

जिसमें बाहरी बनावट-सजावट न हो। फिल्मी गानोंकी तर्जमें जबतक भजनोंका आलाप न किया जाय तबतक कीर्तन अथवा जागरणका 'जमना' ही कठिन है। लोग कीर्तन-स्थलपर अत्यधिक बन-ठनकर जाते हैं। मुँहमाँगा पारिश्रमिक देकर गवैयोंको बुलाया जाता है। सही शब्दोंमें आज हमारे कीर्तन आदिके पुनीत कार्यक्रम भगवच्चर्चाके साधन न रहकर सुरीले स्वरोंकी प्रतियोगिताके दंगल बनकर रह गये हैं !

यह 'विण्डो ड्रेसिंग' और 'वैनिटि शो' की कुत्सित व्याधि हमारे शिक्षण-संस्थानोंमें तो असाध्य ही होती जा रही है। जो शिक्षण-संस्थान अपने 'वार्षिक दिवस' अथवा 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' पर अधिक-से-अधिक पैसा खर्च कर सकता है; अधिक-से-अधिक आधुनिकतम आयोजनका कार्यक्रम बना सकता है; पोडशवर्षीया किशोरियोंको सभा-मञ्चपर नचाकर दर्शकोंसे तालियाँ पिटा सकता है, वही संस्थान आजकी परिभाषामें अधिक उन्नत एवं आधुनिक (Advanced) है !

हम जन-सेवा करना चाहते हैं, किंतु संवाददाताओं और फोटोग्राफ़रोंकी सेनाको साथ लेकर ! जलश्रय बनकर तैयार है; विद्यालयका भवन बन चुका है; चिकित्सालयमें ओषधियाँ और डॉक्टर आ चुके हैं, लेकिन 'उद्घाटन'के अभावमें ये चमगादड़ोंके आवास-स्थल ही बने रहेंगे। प्रतिवर्ष इन उद्घाटन-समारोहोंपर लाखों रुपये पानीकी तरह बहाये जाते हैं। सड़कें तोड़ी जाती हैं, तोरण-द्वार बनाये जाते हैं। जिस संस्था अथवा स्थलका उद्घाटन करना होता है वहाँ एक सप्ताह तो तैयारियाँ करनेमें ही लग जाता है। इसके उपरान्त भी राष्ट्रकी आर्थिक स्थिति स्वस्थ नहीं है।

आज घर-घरमें वक्ता और नेता भरे पड़े हैं। हरेक व्यक्ति बोलनेके लिये उतावला है; सहिष्णु एवं संयमित रहकर विचारवान् बनना किसीको भी पसंद नहीं है। आज तो जिस किसीको भी अक्षर-ज्ञान हो गया है, वह

अपने आपको कवि कालिदाससे कम नहीं समझता; जिस किसीको भी गीताका एक श्लोक याद हो गया तो वह अपने आपको जगद्गुरु शंकराचार्य मान बैठे; यदि किसीको रामायणकी एक अर्द्धाली याद हो गयी तो वह स्वयंको गोस्वामी तुलसीदास मान बैठे हैं। गम्भीरता तो आज अजायबघरकी वस्तु हो गयी है। प्रत्येक व्यक्ति अपना फोटो खिंचवानेको आतुर है। अपनेको 'शिक्षित' कहानेवाला जनसमुदाय अपनी ही छायाके पीछे बावला है। पर्दे (Veil) वाले स्वयंको पर्दे (Screen) पर देखनेको व्यग्र हैं। समझमें नहीं आता, यह किस प्रकारकी जिज्ञासा है ?

राष्ट्रमें जिधर भी देखिये 'अहं'का और नम्रताका

प्रदर्शन (ego and exhibition) है। हम अपने प्रत्येक अर्जित गुणका पैसे और प्रदर्शनमें मूल्याङ्कन करते जा रहे हैं। कला, साहित्य और समाज-कल्याणकी प्रचलित आधुनिक परिभाषाओंने हमारे अन्तःकरणको कलुषित और विक्षुब्ध ही किया है, दिनोदिन हमें उद्वण्ड और आवारा बनाया है। यही कारण है कि आज हम आध्यात्मिक धनमें दिवालिये बनते जा रहे हैं जो हमारी अनादिकालीन सम्पत्ति थी और सारा संसार जिसके लिये भारतको विश्वगुरु मानता था। सही शब्दोंमें—

कारवां ईमान का आज खूबसूरत हो गया।

इल्म हिन्दुस्तान में सिर्फ मकसद हो गया ॥

कंट्रोल किसपर ?

(लेखक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी बी० ए०, बी० एल्०, एडवोकेट)

'कंट्रोल' शब्द अंग्रेजी भाषाका है, लेकिन इसका पर्यायवाची शब्द अपनी भाषामें प्रतिबन्ध, नियन्त्रण या दमन कहा जा सकता है। स्वराज्य-प्राप्तिके पूर्व राजकीय कार्योंमें 'कंट्रोल' शब्दका जितना व्यवहार नहीं था उससे कई गुना अधिक आज स्वराज्य-प्राप्तिके बाद इस शब्दका व्यवहार हो रहा है। सरकारको जो भी आदेश देने हैं उसके लिये एक कंट्रोल-ऑर्डर निकल जाता है जो क्रमशः देशके लिये कानूनका स्थान ले लेता है और इस प्रकार केन्द्र और प्रान्तीय सरकारोंको मिलाकर सैकड़ों ऐसे कंट्रोल-कानून बने हैं जिससे स्थिति सुधरनेकी जगह बराबर बिगड़ती ही जा रही है।

इसका कारण है कि जहाँ कंट्रोलका नियम बनना चाहिये वहाँ कंट्रोल न जारी कर गलत-गलत स्थानोंपर कंट्रोलका कानून लागू किया जाता है और उसका

परिणाम उल्टा होता है। जैसे जल-प्रवाहको रोक दिया जाय तो धाराएँ इधर-उधर फूटकर पानी बहाना शुरू कर देंगी, वही दशा आज कंट्रोलोंकी है। जहाँ एक कंट्रोल लागू हुआ वहाँ चोर-बाजारका जन्म हुआ। ऐसे कंट्रोलके पहले जो वस्तुएँ मुख्य बाजारमें मिलती थीं, वही जहाँ कंट्रोल हुआ कि वे चोर-बाजारमें चली गयीं और इस प्रकार अपने देशमें एक नया बाजार खुल गया है। गाँव या शहर जहाँ-जहाँ बाजार है, साथमें एक चोर-बाजार भी है, जिसमें वही वस्तुएँ जिनपर कंट्रोल लागू है किसी प्रकार जनताको उपलब्ध होती ही हैं, लेकिन बहुत जगह वस्तुओंमें मिलावट कर दी जाती है और इस मिलावटका दुष्परिणाम आज जन-साधारणके सामने प्रत्यक्ष है।

कहा जाता है कि ये कंट्रोल जनकल्याणके लिये सरकार बनाती है; लेकिन यह विचार नहीं किया जाता

कि यह कितनी कुरीतियोंकी जननी है। चोरी, बेईमानी, झूठ, कपट, दगाबाजी, नफाखोरी इत्यादि तो इससे उत्पन्न होते ही हैं लेकिन एक विशेष और वस्तु है घूसखोरी। घूसखोरीपर अभीतक कोई कंट्रोल नहीं है, जो जैसे और जितना घूस ले ले। अगर अन्य प्रचलित कंट्रोलोंके साथ घूसखोरीपर भी कंट्रोल किया जाय तो धीरे-धीरे सरकारी सलाहकार कंट्रोलका आर्डर निकालना ही बंद कर देंगे। कंट्रोल जिसका सचमुच अर्थ है दमन। दमन होना चाहिये किसपर ? सीधी-सादी जनतापर या लोभी-बिलासी अधिकारियोंपर ? अन्न-वस्त्रपर या पापकी कमाइयोंपर ?

कंट्रोल या दमन, इसके विषयमें अपने प्राचीन ग्रन्थोंमें एक कहानी है। ब्रह्माजीके पास देवता, मनुष्य और असुर शिक्षा लेने गये तो ब्रह्माजीने उन्हें 'द' इस अक्षरकी शिक्षा दी और शिक्षा देनेके बाद क्रमशः उनसे प्रश्न किया कि उन्होंने इससे क्या समझा। देवताओंने बतलाया कि चूँकि उन्हें विशेष भोग प्राप्त हैं इसलिये उन्हें अपने ऊपर दमन रखना चाहिये अर्थात् उन्हें अपनी इन्द्रियोंपर कंट्रोल रखना चाहिये। यहाँ भाव यह है कि विशेष भोगप्राप्त तो यहाँ अधिकारी ही वर्ग है, इसलिये इस दृष्टान्तके अनुसार अधिकारी वर्गको अपने ऊपर कंट्रोल या दमन रखना चाहिये कि वे लोग कोई ऐसा काम न करें जिससे या जिसको देखकर कोई कुरीति जड़ पकड़े। अन्न-वस्त्र या आवश्यक सामान, जिसपर कंट्रोल लागू किया जाता है और जो जनताके हाथोंमें आता है, उसे ब्रह्माजीके द्वारा दिये हुए उपदेशके अनुसार 'द' यानी दान करना चाहिये ताकि वस्तुओंका एक जगह व्यर्थ संग्रह न हो, उनका प्रचार और प्रसार हो और वे सर्वसाधारणको उचित मूल्य या उचित समयपर उपलब्ध हो सकें। उसी प्रकार

हमलोगोंमें जो असुर-स्वभावके व्यक्ति हैं उनके लिये ब्रह्माजीका उपदेश 'द' यानी दयाभाव है। उन्हें अपने द्वेषहिंसाजनित आन्दोलनोंद्वारा उत्पात नहीं करना चाहिये बल्कि अपनी हिंसात्मक वृत्तियोंको दबाकर सबके साथ दयाभाव रखना चाहिये।

इसी भावमें ब्रह्माजीके द्वारा दिये गये उपदेशके आधारपर कंट्रोल या दमनका कानून लागू करना चाहिये। हमलोगोंमें निश्चय ही तीन प्रकारके व्यक्ति हैं, देवता, मनुष्य और असुर। देवताकी संज्ञा उन अधिकार-प्राप्त व्यक्तियोंसे है जो आज शासन-मूत्रद्वारा कार्य-संचालन कर रहे हैं। उन्हें अपनी वृत्तियोंपर कंट्रोल करके यथार्थमें जनता-जनार्दनकी सेवा करनी चाहिये, न कि कुरीतियोंका विस्तार करना या कराना चाहिये। इसी प्रकार जो अपनेमें सही अर्थमें मनुष्य हैं और जिन्हें भगवान् ने सभी सुविधाएँ दे रखी हैं उन्हें अन्य व्यक्तियोंपर जो उन सुविधाओंसे वञ्चित हैं दान करना चाहिये ताकि व्यर्थकी संग्रह-प्रवृत्ति जो आजकल फैली है उसका विनाश हो और साथ ही आसुरी प्रवृत्तिके मनुष्य अपने हिंसात्मक भावोंको छोड़कर सबके साथ दयाभाव अपनावें, न कि द्वेष-वैरभरे आन्दोलनमें पड़कर छट-खसोट करें और देशकी सम्पत्ति नष्ट करें। इसी भावसे कंट्रोलकी नीति बरतनी चाहिये, व्यर्थका Food Zone या अन्न-क्षेत्र बनाकर इधरका अन्न उधर न जाय और उधरका अन्न इधर न आये और इस प्रकार आचार-विचार करना ब्रह्माजीके द्वारा दिये गये उपदेशका अपमान करना है। यह सम्पूर्ण भारत अपना है, हम सभी भारतीय एक हैं और सबकी भलाईमें ही हमारी भलाई निहित है; इसी भावसे सब कार्य इस देशका होना चाहिये और यही वास्तविक कंट्रोल है।

संयुक्त परिवार जो वियुक्त होते जा रहे हैं

(लेखक—श्रीकृष्णकुमारजी त्रिवेदी, एम्. एस्. सी., साहित्यरत्न)

जैसे-जैसे हम भौतिकताकी ओर बढ़ते जा रहे हैं, लगता है वैसे-ही-वैसे हम अपनी संस्कृति, अपने दायित्व और अपनी अच्छी परम्पराओंको भूलते जा रहे हैं। हमारे सम्बन्ध बहुत कुछ दिखावेभरके रह गये हैं, हमारा दृष्टिकोण संकुचित हो रहा है, हम शङ्कालु हो गये हैं। परिवारमें आत्मीयताके स्थानपर अपने-परायेका प्रश्न बढ़ रहा है। भाई भाईके प्रति आज उस आत्मीयताका अनुभव नहीं करता जिसका कुछ समय पहले करता था; पिता-पुत्रके सम्बन्धोंकी मधुरता बहुत कुछ समाप्त हो चुकी है; पुत्रको उसके पाँवोंपर खड़ा कर देनेवाला पिता ही बादमें पुत्रकी उपेक्षा एवं तिरस्कारका शिकार बनता है।

पिता-पुत्र और भाई-भाईके सम्बन्ध निकटतम सम्बन्ध हैं और जब इन सम्बन्धोंकी यह दुर्दशा हो रही है तो अन्य सम्बन्धोंकी बात करना ही व्यर्थ है। माताएँ और बहनें भी अपनी पूर्व-प्रतिष्ठाको नहीं बनाये रख पा रही हैं।

एक समय था, जब वृद्ध आदर एवं श्रद्धाके पात्र होते थे, परिवारके प्रमुखके रूपमें पूज्य होते थे, उनके अनुभव सुने जाते थे, उनके उपदेश माने जाते थे और प्रत्येक कार्यमें उनकी राय ली जाती थी। उनकी आज्ञा सर्वोपरि होती थी, उनको प्रत्येक प्रकारसे प्रसन्न रक्खा जाता था, उनकी सेवा करनेमें गर्व एवं गौरवका अनुभव होता था। आज वे ही वृद्ध भार बन रहे हैं, उनके विचार दकियानूसी और पुराने कहे जाते हैं, उन्हें ही उपदेश दिया जाता है और किसी भी काममें राय देनेपर डाँट दिया जाता है। जबतक वे अपने हाथसे काम करनेमें समर्थ होते हैं, तबतक तो गनीमत है; परंतु जैसे ही उनके हाथ-पाँव शिथिल पड़ने लगते

हैं, उन्हें सहायकी आवश्यकता प्रतीत होने लगती है, वैसे ही उनके जीवनके कटुतम दिन प्रारम्भ हो जाते हैं; उनकी सेवा करना तो दूर रहा, उनसे सीधे मुँह बात करनेकी भी कृपा नहीं की जाती।

आखिर ऐसा हुआ कैसे? हम इतने परिवर्तित कैसे हो गये? इसकी चरम परिणति क्या होगी?

ये कुछ प्रश्न हैं जो अपने उत्तरकी अपेक्षा करते हैं—समाजसे, नयी पीढ़ीसे, दार्शनिकोंसे और विचारकोंसे।

गोदीमें पला हुआ शिशु जब शिक्षित होकर आत्म-निर्भर बन जाता है तो अपने उपकारकोंको भूलने लगता है; शादी होते ही अपना अलग परिवार बसा लेता है, पहले जो अपने थे, वे पराये हो जाते हैं और अपने इस लघु परिवारमें वह किसी प्रकारका हस्तक्षेप सहन नहीं करता।

परंतु क्या पति-पत्नीका यह छोटा-सा परिवार भी सकुशल रह पाता है? धीरे-धीरे गृहकलह प्रारम्भ होता है, तलाकके द्वारा परिवार और छोटा हो जाता है और फिर अन्त आत्महत्यामें होता है।

व्यक्तिगत रूपसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी कोशिश की जाती है; इस प्रकारकी स्वतन्त्रतामें धर्म, न्याय एवं सदाचारका कोई स्थान नहीं होता।

इस सबका परिणाम क्या होता है?

धर्माधर्मका अविवेक, शराब, दुराचार, अनीति एवं कुरीतियोंका प्रसार; सामाजिक पतन, उच्छृङ्खलता, अनुशासनहीनता एवं जघन्यतम अपराधोंकी वृद्धि। किसी भी प्रकारसे अपने आपको संतुष्ट करनेका प्रयास—

फिर चाहे उसके लिये जो कुछ भी करना पड़े। समाचारपत्र उठाकर पढ़ जाइये—भ्रूणहत्या,

बलात्कार, आत्महत्याके समाचार प्रचुर मात्रामें मिलेंगे ।

पुस्तकालयमें चले जाइये—धार्मिक और सत्साहित्य पढ़ता हुआ शायद ही कोई मिले ।

पुस्तक-विक्रेताके यहाँ कुछ देर बैठ जाइये—जासूसी, अश्लील एवं काम-सम्बन्धी पुस्तकोंके अतिरिक्त अन्य पुस्तकोंकी कोई पूछ नहीं ।

रामायण और गीता-जैसे बहुमूल्य ग्रन्थरत्न अलमारियोंमें बंद होते जा रहे हैं, उनके या तो दूसरे अर्थ निकालनेके प्रयास हो रहे हैं; या उन्हें कोरा बक्कास कहा जा रहा है ।

सच्चे साधु संतोंको भी ढोंगी, पाखण्डी और जाने क्या-क्या

कहा जाता है; उन्हें समाजका शत्रु निरूपित किया जा रहा है ।

हम क्या होने जा रहे हैं ?

अभी बहुत समय नहीं हुआ है; हमारे पाँव लड़खड़ा रहे हैं, गिरनेसे पहले ही सँभल जानेकी आवश्यकता है; सद्-असद्-विवेककी आवश्यकता है ।

राष्ट्रके भावी कर्णधारोंसे मेरा अनुरोध है कि वे पारिवारिक प्रतिष्ठा, सामाजिक उन्नति एवं विश्व-शान्ति-के लिये प्रयास करें ।

भगवान्से प्रार्थना है कि वे हमें रसातल जानेसे बचायें; हमारी रक्षा करें ।

राष्ट्रीय एकताके लिये गोरक्षा अनिवार्य है

(लेखक—श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी)

गोहत्या-निरोधके लिये भारतीय जनगणकी अनादि कालसे चली आयी जिस परम्परागत सांस्कृतिक भावना-की आंशिक अभिव्यक्ति भारतीय संविधानमें हुई है वह कुछ दिनोंसे उत्तरोत्तर सुव्यवस्थित और सुसंगठित विराट् आन्दोलनका रूप धारण करती जा रही है, यद्यपि विगत दो दशाब्दियोंमें घोरतम भौतिकवादी विचारधाराके भरपूर प्रचारद्वारा इस भावनाको निर्मूल करनेका भरसक प्रयास हुआ है, जिसका ही यह प्रभाव है कि आज अनेक साधु-महात्मातक गोहत्या-निरोधके आर्थिक पक्ष-पर प्रमुख रूपसे बोल-लिख रहे हैं । गोहत्या-निरोधके पक्षमें जो तर्क सत्तारूढ़ दलको तथा भारतीय लोकमत-को सबसे अधिक चमत्कारपूर्ण रीतिसे प्रभावित कर सकता है और जिसकी प्रायः सब ओरसे-उपेक्षा हो रही है, वह यह है कि भारतकी बहुचर्चित भावात्मक एकता-के लिये गोहत्या-निरोध अनिवार्य है । खेद है कि इस सत्यको असत्यके रूपमें प्रस्तुत करके अनेक लोग अपनी तामसी बुद्धिका परिचय दे रहे हैं, जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता-

में कहा है कि तमोगुणसे आवृत (तामसी) बुद्धि अधर्मको धर्म मानती है तथा सब चीजें उसे उलटी ही दिखायी देती हैं । जो भावात्मक एकताका सर्वोपरि साधन है (गोरक्षा), उसीको तामसी बुद्धिके कारण भावात्मक एकताका सबसे बड़ा बाधक कहकर घोषित, प्रचारित किया जा रहा है ।

कुछ लोग हैं जो गोहत्या तो बंद होने नहीं देते और कहते हैं कि भैंसकी हत्या बंद करो । गोरक्षकोंको भैंसकी या बकरीकी हत्या बंद होनेसे कोई विरोध ही नहीं है । जो भैंसकी हत्या बंद कराना चाहते हों वे पहले गोहत्या तो बंद होने दें, जिसके लिये इतनी पुरानी आवाज उठी हुई है । कुछ लोग हैं जो कहते हैं कि केवल हिंदू-धर्ममें ही तो गोहत्याका निषेध है, अन्य धर्मोंमें तो नहीं है । यदि यह मान लिया जाय कि अन्य धर्मोंमें गोहत्याका निषेध नहीं है, फिर भी प्रश्न यह है कि अन्य धर्मोंमें गोहत्या अनिवार्य भी तो नहीं है । धर्मानुसार जो अनिवार्य नहीं है उसके लिये

इस दुराग्रहको प्रोत्साहन क्यों दिया जाय कि हमारा धर्म गोहत्यासे हमें रोकता नहीं, इसलिये हम गोहत्या अवश्य करेंगे ।

अच्छा तो यह होता कि अन्य धर्मोंके अनुयायी हमारे वे देशबन्धु, जिनमेंसे अधिकांशके पूर्वज श्रीचागलके शब्दोंमें हिंदू थे, धर्मनिरपेक्षता और भावात्मक एकताके नामपर गोहत्या-निरोधके लिये पहल करते कि गोहत्यासे हमारे बहुसंख्यक देशवासियोंके धर्म-पालनमें बाधा होती है अतः आओ हम गोहत्या बंद कर दें । अब भी समय है कि अन्य धर्मोंके धार्मिक नेता गोहत्या-निरोध आन्दोलनमें हिंदू नेताओंको बराबरीसे सहयोग देकर पुण्यलाभ करें । इससे भावात्मक एकताकी जड़ें मजबूत होंगी, जिसका आधार वह धर्मनिरपेक्षता है, जिसका श्रेय श्रीमोरारजी देसाईके शब्दोंमें हिंदुओंको ही है, जिनकी धार्मिक मान्यताओंके विषयमें स्व० पण्डित जवाहरलाल नेहरू-जैसे सर्वथा धर्मनिरपेक्ष नेताने भी कहा है—‘याद रखिये कि हिंदुस्तानमें अधिकतर हिंदू-धर्म है और हिंदू-धर्मके जो ऊँचे सिद्धान्त हैं, मेरा विचार है कि उनका मुकाबला शायद कोई भी न कर सके । बहुत ऊँचे दर्जेके विचार हैं और हमें प्रेमसे उनकी रक्षा करनी है ।’

हिंदू-धर्मकी मानवतापरक, बुद्धि-परक व्याख्या करते हुए महात्मा गाँधीने कहा था—‘हिंदुओंकी पहचान तो उनके गोरक्षाके सामर्थ्यसे होगी । मेरी दृष्टिमें तो गोरक्षा मनुष्यजातिके विकासमें एक चमत्कारपूर्ण घटना है । गोरक्षाका अर्थ है ईश्वरकी सम्पूर्ण मूक सृष्टिकी रक्षा । गोरक्षा संसारको हिंदू-धर्मका दिया हुआ प्रसाद है और तबतक हिंदू-धर्म बराबर जीवित रहेगा, जबतक हिंदूलोग गोरक्षा करनेके लिये प्रस्तुत हैं ।’

उन्नतिका अर्थ है दया, सहानुभूति और प्रेमके भावोंका उत्तरोत्तर विस्तार, जिसका सर्वमान्य भारतीय प्रतीक गोरक्षा है । महात्मा गाँधी सत्य और अहिंसाको एक ही वस्तुके दो पक्ष मानते थे । सत्तारूढ़ दलने ‘सत्यमेव जयते’को अपनाया है तो अहिंसाके नामपर गोहत्या-निरोधको भी अविलम्ब घोषित करना चाहिये । जबतक गोहत्या-निरोधकी घोषणा नहीं होती तबतक तो असत्यकी ही विजय हो रही है । भगवान् बुद्धके वाल्य-कालकी कथामें आता है कि मारनेवालेसे बचानेवाला श्रेष्ठ होता है । इस दृष्टिसे गोरक्षाकी आवाजमें बल है । यह सत्य, मानवता और राष्ट्रीयताकी आवाज है जिसकी विजय अवश्यम्भावी है । जो होना ही है उसीके लिये प्रयत्न और प्रार्थना करनेमें हमलोग तो निमित्तमात्र हैं ।

मानवता जब दानवता बन जाती है

एक चित्रमें एक ओर एक वनवासिनी हिरनको दुलार रही है । बराबरके एक चित्रमें कुछ वन्य-पशु डरके मारे भाग रहे हैं, पीछे एक अहेरी लक्ष्य साध रहा है । कितनी विषमता है ! एक ओर वन्य-पशु शान्ति-सुखसे स्नेहमय मानवसे प्यार पा रहा है, दूसरी ओर हिंसकसे भयभीत होकर त्राण पानेके लिये व्याकुल है । सचमुच मनुष्यका सौम्य भाव पशुको भी विश्वासपूर्ण बना लेता है और क्रूर भाव सबको भयभीत कर देता है ।

आँखोंके सामने दो चित्र और भी नाच जाते हैं—एकमें एक शेर एक मनुष्यको अपना भक्ष्य बना चुका है और दूसरेमें समर्थ रामदासका प्यारा भक्त शिवाजी सिंहनीका दूध दुह रहा है । बलसे—दमन करके नहीं, सिंहनीकी स्नेहभरी आज्ञा प्राप्त करके ।

कितना सुन्दर आदर्श है मानवताका ! यही मानवता जब दानवतामें परिणत हो जाती है तब उसका रूप कितना भयानक हो जाता है । यहाँतक कि उस समय उसकी विवेकशक्ति और शान्ति भी उससे डरकर दूर भाग जाती हैं ।

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ ११९७ से आगे]

श्रीवालाजीकी नित्य-सेवाका कार्यक्रम नीचे लिखे अनुसार है जो प्रातः पाँच बजे सवेरे प्रारम्भ होकर साढ़े नौ बजे रात्रि शयनपर्यन्त चलता रहता है। ये विविध सेवा-दर्शन सशुल्क और निःशुल्क भी होते हैं—

सेवा	शुल्क	सेवाका समय
१-सुप्रभातम्	५ बजे सवेरे
२-विश्वरूपदर्शनम्	निःशुल्क	७ ”
३-तोमाल सेवा	१२) रुपया	९ ”
	(५ व्यक्ति जा सकते हैं)	
४-कोछव	साढ़े ९ ”
५-अर्चना (सहस्रनामोंसे)	७) रुपया	१० ”
६-नैवेद्य (पहला घण्टा)	१२ बजे
७-धर्म-दर्शन	निःशुल्क	साढ़े १२ बजे
८-अर्चना (अष्टोत्तर नामोंसे)	७) रुपया	ढाई बजे
९-नैवेद्य (दूसरा घण्टा)	(४ व्यक्ति जा सकते हैं)	३ बजे शामको
१०-आर्जित उत्सव	(नियत शुल्क अदा करना)	५ बजे शामको
११-तोमाल सेवा	साढ़े ८ बजे रातको
१२-अर्चना		
१३-नैवेद्य		
१४-धर्म-दर्शन	निःशुल्क	९ बजे रातको
१५-एकान्त सेवा	१३) रुपया	साढ़े ९ ”
	(५ व्यक्ति जा सकते हैं)	

गुरुवारको धर्मदर्शन नहीं होते। इसके बदले पुष्पमालाओंसे अलंकृत भगवान्‌के दर्शन होते हैं, जिसे 'पूलंगिदर्शन' कहते हैं। इस दर्शनको पानेके लिये प्रत्येक यात्रीको एक रुपया शुल्क जमा करना होता है।

शुक्रवारको दोपहरमें धर्मदर्शन नहीं होते। इसके बदले १) रु० शुल्क जमा करनेपर प्रत्येक यात्री रात्रिमें वही पूलंगिदर्शन कर सकते हैं। इसके साथ ही प्रत्येक शुक्रवारको दोपहरमें भगवान्‌ वालाजीका अभिषेक किया जाता है। इस समय भी दर्शनार्थियोंके लिये एक रुपया

शुल्क जमा करना पड़ता है। इस दर्शनको 'पुलिकापुदर्शन' (तिरुमंजन) कहते हैं। इस दिन तोमाल सेवा और अर्चनाकी सेवाएँ शामको क्रमशः चार और पाँच बजे की जाती हैं। इसके बाद शामको पाँच बजेके बाद 'धर्म-दर्शन' होते हैं। फिर रात्रिमें धर्म-दर्शन नहीं होते। प्रत्येक शुक्रवारको अभिषेकके बाद भगवान्‌के ललाटपर कर्पूर लगाया जाता है, जिसे गुरुवारको निकालते हैं। इसे 'श्रीपादरेणु' कहते हैं, जो भगवान्‌का उत्तम प्रसाद समझा जाता है।

सुप्रभातम् भगवान्की पहली सेवा है, जिसका उद्देश्य भगवान्को जगाना है। इस समय 'सुप्रभातम्' के श्लोकोंका पठन किया जाता है। इसके बाद शुद्धिकी क्रिया चलती है जिसका मतलब मन्दिरको साफ कर देना है। तोमाल सेवाके समय भगवान्को पुष्पमालाओंसे अलंकृत किया जाता है। इस समय प्रधान बारह अल्वारोंके बारह पद गाये जाते हैं, फिर इसी समय भगवान्की भोगमूर्तिका अभिषेक भी किया जाता है। कोलुवका मतलब भगवान्का दरबार है। इस सेवाके समय भगवान्की कोलुव मूर्तिको रजत-सिंहासनपर बिठाकर स्वर्णमय द्वारके बाहर रंग-मण्डपमें ला बिठाते हैं। तब भगवान्को पिछले दिनके आय-व्ययका विवरण सुनाते हैं और पञ्चाङ्गश्रवण भी कराया जाता है। इसके बाद सहस्रनामोंके पाठके साथ भगवान्की अर्चना की जाती है। तदनन्तर नैवेद्यकी सेवा चलती है। इस सेवाके समय स्वर्णमय द्वारके निकटवाले दोनों बड़े वण्टे करीब आधे घंटे तक बजाये जाते हैं। नैवेद्यके अनन्तर दिव्य प्रबन्ध पढ़ा जाता है; फिर धर्मदर्शनके लिये भक्तोंको अवकाश दिया जाता है। भगवान्के दर्शन कर मन्दिरसे बाहर आते समय 'गारुवाकिलि' यानी सुनहले दरवाजेपर यात्रियोंको भगवान्को निवेदित प्रसाद बाँटा जाता है।

लगभग ढाई बजे अष्टोत्तर शतनामार्चनाके समय एक सौ आठ नामोंसे भगवान्की स्तुति करते हुए उनकी पूजा की जाती है। प्रतिदिन भगवान्की अन्तिम सेवा है एकान्त सेवा। इस सेवाका उद्देश्य भगवान्को शयन कराना है। इस समय भोग श्रीनिवास मूर्तिको चाँदीके हिंडोलेपर लियाते हैं और दूध तथा फलोंका नैवेद्य चढ़ाते हैं। इसके बाद ताम्बूल भी निवेदन किया जाता है। इस समय भगवान् श्रीवेंकटेश्वरके महान् भक्त कविवर श्रीताल्लपाक अन्नमाचार्यजीके तेलुगु पद गाये जाते हैं। अन्तमें वहाँ उपस्थित लोगोंको भगवान्को निवेदित फल तथा दूधका प्रसाद बाँटा जाता है। इस सेवाको समाप्त करनेके बाद दरवाजे बंद करके ताला लगा उसपर लाखकी मुहर लगायी जाती है।

इस मन्दिरका प्रबन्ध पहले महन्तोंके अधिकारमें था। सन् १९३३में सरकारने इस मन्दिरका अधिकार महन्तोंके हाथसे छीनकर एक कमेटीको सौंप दिया। यही कमेटी आज 'देवस्थानम्' कमेटीके नामसे कार्य कर रही है। सरकारद्वारा 'देवस्थानम्' कमेटी नियुक्त होनेके बाद

इस कमेटीने बड़ा उपयोगी कार्य किया है। तिरुपतिसे बालाजीका वह बारह मील लम्बा मोटर-मार्ग, जो लगभग बीस लाख रुपयेकी लागतसे बनाया गया है, इसी 'देवस्थानम्' कमेटीद्वारा निर्मित हुआ है। इसके अलावा अनेक संस्थाएँ इस कमेटीके द्वारा संचालित हैं। इनमें कुछ स्कूल, कॉलेज, कोढ़ियोंका चिकित्सालय, अनाथालय, सुव्यवस्थित छोटे-बड़े अनेक विश्रामालय और विशेषकर तिरुपतिमें भगवान् वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, जिसे 'देवस्थानम्' कमेटी तीन लाख रुपयेका वार्षिक अनुदान देती है, प्रधान रूपसे उल्लेखनीय है। इस विद्यालयकी स्थापना सन् १९५४में हुई। 'देवस्थानम्' कमेटीका अपना एक मुद्रणालय भी है जिससे क्षेत्र और मन्दिर-सम्बन्धी चित्र और साहित्यका प्रकाशन होता है। एक मासिकपत्रिका भी निकलती है। इस मुद्रणालयद्वारा प्रकाशित पुस्तकें, पत्रिकाके लेख तथा क्षेत्र-सम्बन्धी अन्य साहित्यका हिंदी, तेलुगु, तमिल, कन्नड़ और अंग्रेजीमें प्रकाशन किया जाता है, जिससे क्षेत्रकी गतिविधियों, उसके कार्यों तथा साधन-सुव्यवस्थाओं और तीर्थ-माहात्म्यसे सर्वसाधारणके परिचयमें बड़ी सहायता मिलती है। तिरुपति रेलवेके समीप देवस्थानम् कमेटीकी एक विशाल धर्मशाला है, इसमें रेलवे बुकिंग आफिस, डाकघर, पूछताछघर, अस्पताल आदि धर्मशालाके पृथक्-पृथक् कमरोंमें रखे गये हैं। एक बड़ा जलपान-गृह भी है जिसमें भोजनादिकी भी सुन्दर व्यवस्था है। इस तरह यात्रियोंके लिये यह धर्मशाला बड़ी सुविधाजनक हो गयी है। धर्मशालाके सामने उससे लगे हुए मैदानमें बसस्टैंड है, जहाँसे प्रातः पाँच बजेसे सात बजे संख्यापर्यन्त बालाजी तथा अन्य मार्गोंके लिये मोटरोंका आवागमन जारी रहता है।

इस वेंकटाचल क्षेत्रमें श्रीवेंकटेश्वर बालाजीके अतिरिक्त अन्य अनेक तीर्थ हैं, इनमें स्वामिपुष्करिणी, पापविनाशन तीर्थ, आकाशगंगा तीर्थ, चक्रतीर्थ, यात्रालितीर्थ, तुम्बुरुतीर्थ, कुमारधारातीर्थ, पाण्डवतीर्थ, रामकृष्णतीर्थ, वैकुण्ठतीर्थ, अस्थितीर्थ, कटाहतीर्थ, फल्गुणीतीर्थ, सनक-सनन्दनतीर्थ, कायरसायनतीर्थ, देवीतीर्थ तथा कपिलतीर्थ या आलवतीर्थ आदि प्रमुख हैं। ये सभी हमारे पूर्व ऋषि-मुनियोंद्वारा सेवित, पौराणिक कथाओं और विशेष माहात्म्यसे अलंकृत हैं। आज भी श्रद्धालु जनता एक बड़ी संख्यामें इन पुण्यस्थलोंपर जाकर स्नान, दर्शन, दान-पुण्य आदिके

द्वारा अपनी भाव-भक्ति अर्पित करती है। प्रायः उपर्युक्त सभी पुण्यतीर्थोंकी अलग-अलग पर्व-तिथियाँ भी निश्चित हैं, जिनमें यात्री इन तीर्थोंका सेवन कर अपनेको बड़भागी मानते हैं।

पाठकोंकी सुविधा और जानकारीके लिये इन तीर्थोंके नाम और पर्व-तिथि भी यहाँ दे रहे हैं—

तीर्थका नाम	पर्व-तिथि
१-स्वामिपुष्करिणीतीर्थ	धनुर्मासकी (अगहन या-मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष द्वादशी (वैकुण्ठ द्वादशी) अरुणोदय काल।
२-आकाशगंगातीर्थ	मेषकी संक्रान्तिमें चित्रा नक्षत्र-युक्त पूर्णिमा।
३-पापविनाशनतीर्थ	पुण्यमासकी शुक्ल या कृष्णपक्ष सप्तमी जो पुण्य या हस्तनक्षत्र-युक्त हो।
४-पाण्डवतीर्थ (गोगर्भ)	वृष राशिमें सूर्यके रहते समय (वैशाख मासमें) शुक्ल या कृष्णपक्षकी द्वादशी।
५-रामकृष्णतीर्थ	मकर राशिमें सूर्यके रहते समय पुष्य नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा।
६-तुम्बुरुतीर्थ (घोणतीर्थ)	मीन मासकी (चैत्र मास) उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा।
७-कुमारधारिकातीर्थ	कुम्भमासमें (माघ मास) मघा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा।
८-कपिलतीर्थ (आल्वारतीर्थ)	कार्तिक मासकी पूर्णिमा या अमावस्या।
९-पद्म सरोवर (तिरुचानूर या मंगापुरम्)	वृश्चिक राशिमें सूर्यके रहते समय मार्गशीर्षमासकी शुक्ल-पञ्चमी।

श्रीवेंकटेश्वर भगवान्को भक्तों, दर्शनार्थियोंद्वारा जो धन भेंट होता है, वही तिरुमल-तिरुपति देवस्थानम्की प्रधान आय है। इस कमेटीकी प्रबन्ध-व्यवस्थाके अन्तर्गत पाँच मन्दिर हैं। तिरुपतिमें गोविन्दराज स्वामीका मन्दिर तथा कोदंडराम स्वामीका मन्दिर, कपिलतीर्थमें कपिलेश्वर स्वामीका मन्दिर और तिरुचानूर (मंगापुरम्) में पद्मावतीका मन्दिर। प्रधान क्षेत्र और आयका प्रधान स्रोत श्रीवेंकटेश्वर बालाजीका मन्दिर ही है। हमें बताया गया कि बढ़ती हुई दर्शनार्थियोंकी संख्याके

कारण प्रतिवर्ष यह आय बढ़ती ही जा रही है। इन दिनों देवस्थानम् कमेटीकी आय लगभग एक करोड़ वार्षिक हो गयी है। जितनी आय बालाजीके इस मन्दिरकी है, उतनी कदाचित् देशके किसी मन्दिरकी नहीं। फिर इस आयका जैसा यहाँ सद्व्यय होता है, वैसा किसी अन्य मन्दिरका नहीं।

भारतवर्ष धर्मप्राण संस्कृतिवाला देश है। यहाँकी जनतामें धार्मिक भावनाएँ कूट-कूटकर भरी हैं, जिनका प्रदर्शन हमारे कुम्भ-पर्वों, सूर्य-चन्द्र-ग्रहण और मकर संक्रान्ति-जैसे अवसरोंपर सदा होता रहता है। आजकलके पढ़े-लिखे लोगोंमेंसे कुछ ऐसी बातोंको अंध-श्रद्धा, अंध-विश्वास कह जाते हैं, परंतु कहनेसे क्या होता है, जनताकी भावनाओंकी अवहेलना नहीं की जा सकती। भिन्न-भिन्न देशोंमें वहाँकी जनताकी भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रवृत्तियाँ हैं, उनमेंसे भी अनेक वृत्तियोंका मजाक उड़ानेवाले वहाँ भी मौजूद हैं जिस प्रकार भारतमें। पर जिस प्रकार उनकी संख्या मुट्ठीभर है, उसी प्रकार भारतीय जनताकी धार्मिक वृत्तियोंको अंध-श्रद्धा, अंध-विश्वास कहनेवालोंकी संख्या भी अंगुलियोंपर गिनी जा सकती है। एक ओर पूजन-अर्चनद्वारा बालाजीके मन्दिरमें जनताकी धार्मिक भावनाओंको संतुष्ट किया जा रहा है और दूसरी ओर जो भेंट-पूजासे यहाँ धन एकत्रित होता है, उसके एक बड़े भागसे, जैसा ऊपर कहा गया है, अनेक संस्थाएँ चलायी जाती हैं, जिनमें एक विश्वविद्यालय भी है। एक ओर आस्तिक भक्तजनोंको यहाँ अध्यात्म-सुख प्राप्त होता है तो दूसरी ओर मन्दिरकी ओरसे ही आधिभौतिक सुख-शान्ति, जो सच्ची शिक्षामें निहित है, की भी व्यवस्था है। इस दृष्टिसे यह मन्दिर हमारे अध्यात्म-सुखके साथ हमारी आधिभौतिक समृद्धिका भी मन्दिर है। जहाँ एक ओर निरी आध्यात्मिकता प्राणीको संसार-विमुख कर अकर्मण्य बना देती है, वहाँ दूसरी ओर निरी आधिभौतिकता जीवनको नीरस और पतनोन्मुख कर देती है। अतः उसके साथ आधिभौतिक साधनोंका भी समन्वय कर मन्दिर-कमेटीने सोनेमें सुगंधका मिश्रण कर दिया है।

नौ सितम्बरके प्रातःकाल ज्यों ही हमने मन्दिरमें प्रवेश किया, देखा एक विशाल नरसमूह कतार बाँधे खड़ा है। पट खुलनेमें कुछ विलम्ब था, अतः सभी दर्शनार्थी उत्सुकतासे सिर ऊँचा कर अपनी उत्कण्ठा प्रकट कर रहे थे। इनके पहनाव और कुछ दूरतक आकृतियोंसे भी अधिकांश लोग उत्तरभारतके ही दिखे। दक्षिणवासी पुरुष

अपनी विकण्ड धोतियोंसे और स्त्रियाँ अपने दक्षिणी पहनाबके साथ दायों तरफ छिड़ी नाकसे इस दीर्घाकार कतारमें सहज ही पहचानी जा सकती थीं। मन्दिरके भीतर दक्षिण और उत्तरके मानवोंकी यह लम्बी कतार, जिसमें जाने कितने लोग थे, न जाने कौन कितनी दूरसे आया था, कौन किस जातिका था और किस गाँवका रहनेवाला—समझना कठिन था। प्रायः सभी अवस्थाओं, सभी वर्गों और विभिन्न वेश-भूषा और विभिन्न आकृतियोंके लोग इस कतारमें थे। इस समय सभीके चेहरोंपर एक उत्सुकता एक लालसा नजर आ रही थी, वह थी श्रीवेंकटेश्वरस्वामी श्रीबालाजीके दर्शनकी। देव-दर्शनकी लालसाभरी इस लम्बी कतारमें हमने प्रभु-दर्शनके पूर्व भारतीय अध्यात्मके भारतीय दर्शन और भारतीय संस्कृतिका जो समन्वित रूप देखा, उसमें हमें भारतीय देवत्वके नाना मुख-स्वरूपोंका प्रत्यक्ष दर्शन हो गया। उत्तर और दक्षिणके मानवोंकी इस कतारमें, जिसमें भारतकी विभिन्न भाषाओं, भिन्न-भिन्न जातियों, वर्गों और समुदायोंके लोग थे। भारतीय संस्कृति मूर्तरूप हो उठी थी। इस वैविध्यपूर्ण कतारमें हमें हिमालयसे लेकर कन्याकुमारीतकका भारत दिखा। भारतकी यह भावात्मक एकता, जो यहाँ परिलक्षित हुई, इसका केन्द्रबिन्दु हमारा अध्यात्म है। इस आधिभौतिक जगत्में आधिभौतिक भोग-विलासों, सुख-साधनोंके अभ्यस्त मानवोंने यदि किसी वादको अपनाया है, तो अध्यात्मवादको। जगतीके सुख-दुःख, संतोष-संतापके द्वन्द्वमें उलझे आदमीका अन्तर्निर्वाह हमारे अध्यात्ममें ही निहित है, जो एक विशाल वट-वृक्षकी भाँति सभीका आश्रय और आरामदाता है।

मन्दिरके पट खुलते ही दर्शनार्थियोंकी आकुलता बढ़ी। धीरे-धीरे पंक्तिबद्ध दर्शनार्थी एकाग्रभावसे आगे बढ़ते, श्रीबालाजीके दर्शनसे लोचन-लाभ ले, दण्डवत्-प्रणाम कर कृतकृत्य हो जाते। हमलोगोंने भी लोचन-लाभ लिया और बड़ी देरतक प्रभु-चरणोंमें अपनी भाव-सरिता बहाते रहे। श्रीवेंकटेश्वर बालाजीकी बड़ी विशाल मूर्ति है। यह मूर्ति श्याम पाषाणकी है। ऊँचाई ऊँचे पूरे मानवसे कम नहीं। सारे अङ्ग दृष्ट-पुष्ट, सिरके ऊँचे मुकुटके कारण ऊँचाई और अधिक प्रतीत होती है। ललाटपर जो कपूरका श्वेत तिलक रहता है, उससे दोनों नेत्र भी ढके रहते हैं। हृदयपर लक्ष्मी-की प्रतिमा धारण है। चार भुजाएँ हैं, चरणारविन्दोंके भी स्पष्ट दर्शन होते हैं।

श्रीबालाजीकी स्तुति

आनन्दके, श्रीगिरि हृदयपर,
द्वारिका मानों बसी है।
स्वर्ण-गरुड-ध्वज, शिखरपर,
स्वर्णमय श्रीकी हँसी है॥
श्री अचलके चरण, धोते,
तीर्थमय निर्झर सरोवर।
सवन तरु, तन्वी लताएँ,
यहाँ अमरोंकी धरोहर॥
हरित द्युति बनकी, चतुर्दिक,
सुमनका सौरभ उड़ाती।
पूर्ण जीवन रस सफलता,
त्रिविध तापोंको कुड़ाती॥
गगन छूते गोपुरोंमें
सुचिर गौरवकी कथाएँ।
कर गये उत्कीर्ण शिल्पी,
अमर कर ये गत प्रथाएँ॥
स्वच्छ सप्रम निज भवनमें,
श्रीसहित प्रभु वेंकटेश्वर।
चरण-पंकजमें समर्पित,
भक्तजन शुचि-सुमन सादर॥
प्रातः, सायंतनी पुजा,
स्वयं है कर्म दर्शन।
व्यर्थ, जन-जीवन, न जावे,
अवधि सीमित एक भी क्षण॥
विजयनगरीके अधीश्वर,
चोल, पाण्ड्य, अनेक नरपति।
भेंट करते थे अपरिमित,
चरणसेवनमें अचल मति॥
मेरु-सम सञ्चित हुए जो,
कोष सात्त्विक देव धनके।
आज वे, कल्याणमें रत,
विविध विधिसे, दीन जनके॥
अभय देता कर-कमल यह,
भटकते जनका सहारा।
खो चुका जग जो, उसे तो,
एक आश्रय है तुम्हारा॥

श्रीवेंकटेश्वर क्षेत्रके कुछ अन्य तीर्थोंके दर्शन भी हमने किये। जिनमें प्रधानरूपसे पापविनाशकतीर्थमें, जो श्रीबालाजी-के मन्दिरसे तीन मील दूर उत्तरमें है, हमलोगोंने स्नान-पूजन किया। श्रीबालाजीसे पापविनाशन हम एक रिजर्व मोटर-द्वारा गये। यह स्थान पार्वत्यक्षेत्रमें स्थित है। मोटर-पड़ावसे कुछ दूर पैदल रास्तेसे पापविनाशन पहुँचा जाता है। इस पैदल-मार्गमें यत्र-तत्र बन्दरोंसे भेंट होती है, जिन्हें यात्री लोग कुटाने खिलते हैं। यहाँके ये बन्दर मथुरा-वृन्दावनकी भँति यात्रियोंके सौजन्य-स्वागतके लिये उन्हें राह चलते पकड़ते हैं और तभी छोड़ते हैं जब वे यात्रियोंसे कुछ प्रसाद पा जाते हैं। पापविनाशनमें अरण्य-खण्डोंमें बहता एक निर्झर 'पापविनाशन-गंगा' नामसे विख्यात है, जिसमें यात्रीगण स्नान कर पाप-मुक्ति और पवित्रताका अनुभव करते हैं। हम लोगोंने भी इस साफ स्वच्छ शीतल जल-धारामें स्नान कर अपना श्रम-ताप बुझाया।

हमने श्रीबालाजीमें तीन रात्रि मुकाम किया और अपने इस तीर्थवासमें विभिन्न दर्शन, पूजन, भोग, ब्राह्मण-भोजन आदिका प्रसाद ले, इस क्षेत्रके अन्य तीर्थोंके दर्शन, स्नान-पूजन आदिसे निवृत्त हो दिनांक ११ सितंबरके प्रातःकाल पुनः मन्दिरमें जा भगवान् श्रीवेंकटेश्वर बालाजी-को साष्टाङ्ग प्रणाम कर इस लोकोपकारी आध्यात्मिक और आधिभौतिक उत्कर्षवाले तीर्थ-क्षेत्रसे विदा ली।

तिरुमले बालाजीसे हमलोग तिरुपति लौटे और यहाँ-के मन्दिरोंके दर्शन किये। इनमें प्रधान हैं पञ्चावतीका मन्दिर, तिरुपतिनाथ गोविन्दराजजीका मन्दिर और श्रीकोदण्डराम-का मन्दिर।

तिरुपतिमें हमने श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय भी देखा। इस विश्वविद्यालयका अभी विकास हो रहा है, परन्तु पाठ्यक्रम भारतके अन्य विश्वविद्यालयोंके सदृश ही है। भारतीय संस्कृति धार्मिक संस्कारोंसे बँधी हुई है, फिर स्वतन्त्रताके बाद देशमें निर्माणका युग चल रहा है। यह निर्माण दो प्रकारका है—एक पार्थिव वस्तुओंका, दूसरा नयी पीढ़ीका। देशमें इस समय जो भ्रष्टाचार, घूसखोरी आदि सामाजिक पाप हो रहे हैं, इनका निवारण नयी पीढ़ीके उचित निर्माणद्वारा ही हो सकता है। पार्थिव निर्माणमें हमें थोड़ी-बहुत सफलता अवश्य मिली है। परन्तु नयी पीढ़ीका निर्माण उस ढंगसे अभीतक आरम्भ ही नहीं हुआ,

जिससे नयी पीढ़ी चरित्रवान् बन सके। शिक्षाप्रणालीपर ही बहुत दूरतक नयी पीढ़ीका निर्माण अवलंबित रहता है। सदाचार, जिसका शिक्षासे गहरा सम्बन्ध है, विद्यार्थी-जीवनका प्रथम पाठ होता है। यह ठीक है कि हमारी वर्तमान शिक्षाप्रणाली हमें दुराचारी बननेका संकेत नहीं करती, पर यहाँतक होता देखा गया है कि गलत सिद्धान्त भी दोषपूर्ण शिक्षाप्रणालीके कारण नयी पीढ़ीको मान्य हो जाते हैं। द्वितीय विश्वव्यापी युद्ध जिन सिद्धान्तोंपर मुसोलिनी और हिटलरने लड़ा, वे सिद्धान्त ठीक हैं और इटली तथा जर्मनी-का उत्कर्ष उन्हीं सिद्धान्तोंसे सम्भव है, इसका इटली और जर्मनीकी नयी पीढ़ीको विश्वास हो गया था। यह हुआ था प्रधानतया उस कालकी वहाँकी शिक्षाप्रणालीके कारण। भारतकी शिक्षाप्रणाली दोषपूर्ण है, इसे सभी शिक्षाशास्त्री स्वीकार करते हैं। न जाने कितने आयोग और समितियाँ भारतसरकार शिक्षाप्रणालीमें परिवर्तनहेतु विचार करनेके लिये नियुक्त कर चुकी है। इनके प्रतिवेदन निकल चुके हैं, परन्तु अबतक शिक्षा-प्रणाली प्रायः वैसी ही चल रही है, जैसी अंग्रेजीराज्यके समय थी। इससे न तो नयी पीढ़ी-का चरित्रनिर्माण हो रहा है और न उसे नौकरी, वकालत और डाक्टरीके सिवा कोई अन्य मार्ग जीविकोपार्जनके लिये मिल रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि जीवनके विभिन्न स्तरोंकी सुविधाके बावजूद शिक्षाके अभावमें देशके नवयुवक वर्गकी एक बहुत बड़ी संख्या बेकारी और बेरोज-गारीमें अपना समय बर्बाद कर रही है और इसका नतीजा यह होता है कि खाली समय और खाली दिमागके कारण इन नवयुवकोंका मस्तिष्क शैतानका घर बन जाता है, जो अन्ततोगत्वा सामाजिक अपराधों और अनाचारोंके शिकार बनते हैं। अतः अनाचारके स्पष्ट संकेत और निषेधकी आवश्यकता न होनेपर भी देशकी शिक्षाप्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिसमें हमारी संस्कृतिके मूल तत्त्वोंके साथ रचनात्मक कार्योंका भी उसमें समावेश हो। वैज्ञानिक मशीनरी अथवा औद्योगिक शिक्षा आधिभौतिक दृष्टिसे भले ही आदमीको उन्नत बना दे, किंतु आधिभौतिक उन्नतिका तो आज जो प्रत्यक्ष परिणाम अणु और उद्‌जन बम है, इनसे हमारा कल्याण होनेवाला नहीं है और न इन अणु आयुधोंसे युक्त वैज्ञानिक शक्तिसम्पन्न राष्ट्रोंके अनुसरणमें ही हमारी प्रतिष्ठा है। हमारी प्रतिष्ठा तो अपने जिस पृथक् अस्तित्वके कारण है, उसीकी हमें हिफाजत करनी है और

निर्विवाद रूपसे हमारा यह पृथक् अस्तित्व भारतकी पुरातन संस्कृति है, जो अधिभूत और अध्यात्ममें समन्वयकी है। अपनी इसी समन्वयात्मक और सहयोगात्मक प्रवृत्तिके कारण हमारी संस्कृति सर्वकल्याणकारी बन गयी है। तिरुपति विश्वविद्यालय जो एक आध्यात्मिक अधिष्ठानका शिक्षा-संस्थान है, इसकी शिक्षाप्रणाली तो हमारे अधिभूत और अध्यात्मका एक ऐसा उदाहरण होना चाहिये जो भारत तो क्या विश्व-दुर्लभ हो। देवस्थानम् कमेटीने देवस्थानसे प्राप्त आय, जो जनताके द्वारा होती है, जन-कल्याणके लिये उसके विभिन्न लोकोपकारी मार्गोंद्वारा अर्पित कर न केवल एक स्तुत्य कार्य किया है वरं धार्मिक प्रतिष्ठानोंके लिये एक

आदर्श कायम कर दिया है। इस विश्वविद्यालयके पाठ्य-क्रममें परिवर्तन कर तथा कुछ नये सिद्धान्त अपनाकर विश्वविद्यालयको हम एक ऐसा शिक्षा-संस्थान बना सकते हैं जिसमें शिक्षाप्राप्त स्नातक देशके आधिमौलिक और आध्यात्मिक—दोनों क्षेत्रोंके आदर्शनागरिक बनकर देश और समाजका मार्ग-दर्शन कर सकें।

तिरुपतिमें हम देवस्थानम् कमेटीकी उसी धर्मशालामें ठहरे जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। दिनांक ११ सितम्बरको ही अपराह्नमें हम तिरुपतिसे मोटर बसद्वारा रवाना होकर छः बजे संध्याको कांजीपुरम् पहुँचे।

(क्रमशः)

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

सुमिरु सनेहसों तू नाम रामराय को । संवल निसंवल को, सखा असहाय को ॥ १ ॥
भाग है अभागहूँ को, गुन गुनहीन को । गाहक गरीब को, दयालु दानि दीन को ॥ २ ॥
कुल अकुलीन को, सुन्यो है बेद साखि है । पाँगुरे को हाथ-पाँव, आँधरे को आँखि है ॥ ३ ॥
माय-बाप भूखे को, आधार निराधार को । सेतु भवसागर को, हेतु सुखसागर को ॥ ४ ॥
पतितपावन राम-नाम सो न दूसरो । सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे जीव ! तू प्रेमपूर्वक राजराजेश्वर श्रीरामके नामका स्मरण कर, उनका नाम निर्वल (अवलम्बनहीन) के लिये संवल (पूरा अवलम्बन) है, जिसका कोई सहाय नहीं है उसका सहायक है। यह रामनाम भाग्यहीनका भाग्य और गुणहीनका गुण है, (रामनाम जपनेवाले भाग्यहीन और गुणहीन भी परम भाग्यवान् और सर्वगुणसम्पन्न हो जाते हैं।) यह गरीबोंका सम्मान करनेवाला ग्राहक और दीनोंके लिये दयालु दानी है। यह रामनाम कुलहीनोंका उच्च कुल (राम-नाम जपनेवाले चाण्डाल भी सबसे ऊँचे समझे जाते हैं) और लँगड़े-खलोंके हाथ-पैर तथा अंधोंकी आँखें है (रामनाम जपनेवाले संसार-मार्गको सहजहीमें लौट जाते हैं।) —इस सिद्धान्तका वेद साक्षी है। यह राम-नाम भूखोंका माँ-बाप और निराधारका आधार है। संसारसागरसे पार जानेके लिये यह पुल है और सब सुखोंके सार भगवत्प्राप्तिका प्रधान कारण है। रामनामके समान पतित-पावन दूसरा कौन है, जिसके स्मरण करनेसे तुलसीके समान ऊसर भी सुन्दर (भक्ति-प्रेमरूपी प्रचुर धानकी) उपजाऊ भूमि बन गया।

आजके इस आधि-व्याधि, रोग-शोक, द्रोह-द्वेष, वैर-हिंसा, अकाल, अवर्षा, अतिवर्षा, अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार आदिसे पीड़ित तथा भगवद्विमुखतारूप दुर्भाग्यसे युक्त मानवको इन सभीसे सहज मुक्त कर सर्वाङ्गीण सुखी बनानेके लिये तथा मनुष्य-जीवनके लक्ष्य मोक्ष या भगवान्के प्रेमकी प्राप्ति करानेके लिये एकमात्र 'भगवन्नाम' ही परम साधन है। इस समय चारों ओर अशान्तिके बादल छाये हैं, युद्धकी भीषणता सिरपर सवार है। इसीलिये 'कल्याण'के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे प्रतिवर्षकी भौति प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक स्वयं प्रेमके साथ अधिक-से-अधिक नाम-जप करें तथा प्रेमपूर्वक प्रेरणा करके दूसरोंसे करायें। यही परम हित है। गत वर्षकी भौति इस वर्ष भी—

संख्या १०]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

—इस उपर्युक्त १६ नामवाले परम पवित्र मन्त्रके २० (बीस) करोड़ जपके लिये ही प्रार्थना की जाती है ।

नियमादि इस प्रकार हैं—

१—यह श्रीभगवन्नाम-जप जपकर्ताके, धर्मके, विश्वके—सबके परम कल्याणकी भावनासे ही किया-कराया जाता है ।

२—इस वर्ष इस जपका समय कार्तिक शुक्ला १५ सोमवार (२८ नवम्बर १९६६) से आरम्भ होकर चैत्र शुक्ला १५ सोमवार (२४ अप्रैल १९६७) तक रहेगा । जप इस समयके बीच किसी भी तिथिसे करना आरम्भ किया जा सकता है, पर इस प्रार्थनाके अनुसार उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ला १५ सं० २०२४ को समझनी चाहिये । पाँच महीनेका समय है । उसके आगे भी जप किया जाय, तब तो बहुत ही उत्तम है । करना चाहिये ही ।

३—सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध-युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं ।

४—एक व्यक्तिको प्रतिदिन 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥'—इस मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप तो अवश्य करना चाहिये । अधिक कितना भी किया जा सकता है ।

५—संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे, अँगुलियोंपर अथवा किसी अन्य प्रकारसे रखी जा सकती है ।

६—यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय । प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए—सब समय इस मन्त्रका जप किया जा सकता है ।

७—बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जन-से जप करवा लेना चाहिये । पर यदि ऐसा सम्भव न हो तो स्वस्थ होनेपर या उस कार्यकी समाप्तिपर प्रतिदिनके नियमसे अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये ।

८—घरमें सौरी-सूतकके समय भी जप किया जा सकता है ।

९—स्त्रियाँ रजोदर्शनके चार दिनोंमें भी जप कर सकती हैं; किंतु इन दिनोंमें उन्हें तुलसीकी माला हाथमें लेकर जप नहीं करना चाहिये । संख्याकी गिनती किसी काठकी मालापर या किसी और प्रकारसे रख लेनी चाहिये ।

१०—इस जप-यज्ञमें भाग लेनेवाले भाई-बहिन ऊपर दिये हुए सोलह नामोंके मन्त्रके अतिरिक्त अपने किसी इष्ट-मन्त्र, गुरु-मन्त्र आदिका भी जप कर सकते हैं । पर उस जपकी सूचना हमें देनेकी आवश्यकता नहीं है । हमें सूचना केवल ऊपर दिये हुए मन्त्र-जपकी ही दें ।

११—सूचना भेजनेवाले लोग जपकी संख्याकी सूचना भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि भेजनेकी भी आवश्यकता नहीं है । सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखना चाहिये ।

१२—संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं । उदाहरणके रूपमें यदि कोई 'हरे राम हरे राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥'—इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपे तो उसके प्रतिदिनके मन्त्र-जपकी संख्या एक सौ आठ (१०८) होती है, जिनमेंसे भूल-चूकके लिये आठ मन्त्र बाद देनेपर १०० (एक सौ) मन्त्र रह जाते हैं । अतएव जिस दिनसे जो बहिन-भाई मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ला पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर सूचना भेजनी चाहिये ।

१३-सूचना प्रथम तो मन्त्र-जप आरम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र-पूर्णिमातक जितना जप करने का संकल्प किया गया हो, उसका उल्लेख रहे तथा दूसरी बार चैत्र-पूर्णिमाके बाद, जिसमें जप प्रारम्भ करने की तिथिसे लेकर चैत्र-पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या हो।

१४-जप करनेवाले सज्जनोंको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव कम हो जायगा। स्मरण रहे—ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साह-वृद्धिमें सहायक बनते हैं।

१५-सूचना संस्कृत, हिंदी, मारवाड़ी, मराठी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी अथवा उर्दूमें भेजी जा सकती है।

१६-सूचना भेजनेका पता—‘नाम-जप-विभाग,’ ‘कल्याण’-कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)
प्रार्थी—चिम्मनलाल गोस्वामी
सम्पादक—‘कल्याण,’ गोरखपुर

पढ़ो, समझो और करो

(१)

चिन्तनीय घटना

कुछ दिन पहलेकी बात है। मैं कलकत्तेमें थी। भवानीपुर जानेके लिये एक ६ नम्बरकी बसमें सवार हुई। गरमीकी दोपहरी; सख्त धूप। बसमें बहुत भीड़ न थी। मैं एक सीट-पर बैठ गयी। धर्मतल्लेसे तीन-चार कालेजकी लड़कियाँ बसमें सवार हुईं। यथास्थान बैठ गयीं। कुछ ही देरमें इनमें होनेवाली बातचीत सुनायी पड़ी। मैंने सामने देखा, वहाँ एक नवयुवक बैठा था। ऐसा लगा कि वह बाहरके दृश्यों-को देखनेमें तन्मय था। लड़कियाँ बिना ही कारण उसकी ओर देखकर हँस रही थीं। उसकी वेप-भूषा जरा शिथिल थी, पर नवयुवकने कोई ध्यान नहीं दिया। लड़कियोंकी ओरसे उसकी उपेक्षा रही।

अब लड़कियोंकी दिशा बदली। खिड़कीके पास एक बंगाली बुढ़िया माई बड़े संकोचसे बैठी थी। उसके हाथ-में एक पोटली थी, जिसे उसने जोरसे पकड़ रक्खा था। वे कालेजकी लड़कियाँ उस बेचारी वृद्धाकी भी निर्लज्ज दिलगी उड़ाने लगीं और निरंकुश हँसने लगीं। मुझे यह अच्छा नहीं लगा। वृद्धा और भी संकोचमें पड़ी और उसकी गहरी बैठी हुई आँखोंसे करुणाका सागर-सा उमड़ता दिखायी दिया। उसके चेहरेपर शिकन पड़ी हुई थी। मुँहमें दाँत नहीं थे। लाचार बुढ़िया माई इधर-उधर विकलतासे दृष्टि फिराती हुई उन लड़कियोंकी ओर दीनतासे देख रही थी। उस नवयुवक-

की एक दृष्टि वृद्धापर पड़ी और एक उन लड़कियोंपर। तदनन्तर वह फिर बाहरके दृश्य देखने लगा। मेरे उतरने-का स्थान आ गया। मैं उठी। मैंने देखा वह वृद्धा और नवयुवक भी उठ रहा था। पोटलीको लेकर उतरनेमें वृद्धा-को तकलीफ होती थी। अतः उस युवकने पोटली ले ली और वृद्धाको उतरनेमें मदद की। लड़कियोंने यह देखा और इसपर भी नाक-भौंह सिकोड़े। मैं सामनेकी दूकानपर बिस्कुट खरीदने लगी। मुझे लगा कि वृद्धा माईको जहाँ जाना था, उस स्थानको वह नहीं पहचान रही थी। युवकने उससे पूछा, रिकशा बुलाया और स्थानकी पूरी जानकारी रिकशेवाले-को देकर वृद्धाको रिकशेमें बिठाया और रिकशेवालेको किराये-के पैसे देकर युवक वहाँसे चला गया। वृद्धाका सिर झुका हुआ था कृतज्ञतावश। उसने आशीर्वाद देनेके लिये हाथ-फैलाया, पर युवक तो चला गया था। रिकशेवालेको सवारी और पैसे दोनों मिल गये थे, इसलिये वह चल दिया। मैंने मन-ही-मन युवकको प्रणाम किया।

कहाँ वे शिक्षित कहलानेवाली कालेजकी युवतियाँ; कहाँ यह अशिक्षित-सा और कई अंशमें गँवार-सा दीखनेवाला मानवताका परिचय देता हुआ नवयुवक ! अपनेको शिक्षित माननेवाली ये लड़कियाँ सच्चे अर्थमें कितनी शिक्षित थीं, यही विचारणीय है। यह शिक्षाका दोष है या उनके असंस्कारी मानसका। पर यह बड़ा ही दुःखजनक और भविष्यके सम्वन्धमें चिन्तनीय। (अखण्ड आनन्द)

—उषा साह

(२)

मुनीमजीकी आदर्श ईमानदारी, नेकनीयती और अनुपम त्याग

कुछ वर्षों पहलेकी विल्कुल सत्य घटना है जिससे सम्बन्धित लोगोंके नामादि नहीं दिये गये हैं। बात है उस जमानेकी जब व्यापारी अपने आदर्श और सही सिद्धान्तपर चलते थे। उनका भी एक धर्म था; एक मर्यादा थी, जिसे पालन करना वे अपना परम कर्तव्य समझते थे। चाहे कर्तव्य-पालन और आदर्श रखनेमें कितना ही नुकसान उठाना पड़े, इसकी उन्हें परवा नहीं थी। हर हालतमें वे अपनी नेकनीयती और ईमानदारीपर जरा-सी भी आँच नहीं आने देते थे। अस्तु;

कलकत्तेमें एक बहुत बड़ा बोहरा व्यापारी-फर्म था। जिसके नवयुवक मालिक प्रायः बम्बई रहते थे। उनकी कलकत्ता गद्दीका कारवार एक वयोवृद्ध मैनेजर सँभालते थे, जो पुराने एवं अनुभवी होनेके साथ ही मालिककी नजरोंमें परम विश्वासी एवं ईमानदार भी थे। कलकत्तेकी गद्दीके वे ही सर्वेसर्वा थे और लोग उन्हेंको सब कुछ समझते थे। मालिक उनकी कार्यकुशलता एवं नेकनीयतीपर इतना प्रसन्न था कि मुश्किलसे सालमें एकाध बार दिखावेकी जाँच-पड़तालके लिये आता। फर्म बहुत धनी था—करोड़पति समझिये, जिसमें जहाजी (आधीकटी रंगूनी) सुपारी, तेल तथा नारियलके रेशेकी रस्सी आदिका थोक व्यापार होता था। फर्म बहुत ही पुराना एवं प्रतिष्ठित होनेसे बाजारमें उसकी पर्याप्त साख एवं धाक थी। सतपीढ़िया साहूकारोंमें उसकी गिनती थी। अपनी परम्परागत नीति एवं ध्येयके अनुसार मालिककी ओरसे कलकत्ता मैनेजरको सख्त हिदायत थी कि अपने परम्परागत पैतृक व्यवसायमें भले ही कितना ही घाटा हो जाय, फर्म उसे भोगेगा—देनदार होगा; पर किसी भी प्रकारके सट्टे-फाटकेकी सौदेबाजीमें वह एक पाई भी नहीं देगा। इस कारण उस फर्ममें एक पाईका भी सट्टा-फाटका नहीं होता था। इससे वह फर्म सभीका विशेष श्रद्धाभाजन था। उस समय फाटकेबाजीको बहुत निम्नकोटि-का व्यवसाय समझा जाता; चाहे उसका करनेवाला बहुत बड़ा करोड़पति ही क्यों न हो; उसके स्थायित्वपर लोगोंका भरोसा नहीं रहता था। इसके विपरीत माल लेने-बेचने तथा साहूकारीका धंधा करनेवाले अत्यन्त साधारण व्यापारीपर भी लोगोंका विश्वास था और उसका स्थायित्व समझा जाता था।

उपर्युक्त फर्म भी ऐसा ही था; उसकी कलकत्ता गद्दीके मुनीम (मैनेजर) बहुत ही व्यवहारकुशल; कार्यपटु एवं प्रत्युत्पन्नमति (Presence of mind) होनेके कारण बहुत ही लोकप्रिय थे। उनकी जान-पहचान तथा सम्पर्क भी अन्य बड़े व्यापारियोंसे था। धीरे-धीरे उनकी जान-पहचान मैदान आदिमें घूमते समय नामी फाटकेबाजोंसे होती जो शेयर-हैसियन आदिमें खूब लंबा सट्टा करते थे। धीरे-धीरे सम्पर्क बढ़ा। संगका रंग चढ़ता ही है। इन मुनीमजीका भी यही हाल हुआ और उनपर भी फाटकेका रंग चढ़ ही गया और सटोरियोंकी बातोंसे प्रभावित हो वे लंबे-चौड़े शेयर भारी मात्रामें खरीदका फर्मके नाममें फाटका कर ही बैठे। यह फर्म पुराना और प्रतिष्ठित था; इसकी बाजारमें बड़ी साख थी; अतः उन्हें सौदा करनेमें कोई दिक्कत नहीं हुई। उनमें एक ही आत्मबल था—वह यह कि 'मालिक तो सौदा स्वीकार करेगा नहीं; अतः यदि जरा-सा भी बाजार विपरीत होगा तो मैं सारा सौदा काट दूँगा। घाटेमें सौदा कभी नहीं रखूँगा।' ऐसी नीतिवाले भले ही भाग्यवश न भी कमा सकें, पर प्रायः नुकसान उन्हें नहीं उठाना पड़ता है।

फाटकेकी कमाई आदिमें पूर्णतया भाग्यबल ही साथ देता है। इन मुनीमजीको भी प्रसुक्ता एवं भाग्यने खूब साथ दिया और बाजार धीरे-धीरे इकधारा तेजी चलने लगा; जिससे इनके सौदेमें भी लाभ बढ़ने लगा। बाजार ज्यों-ज्यों बढ़ रहा था, त्यों-त्यों सौदेका नफा भी बढ़ रहा था। इससे मुनीमजीकी हिम्मत और पकड़-शक्तिमें भी और वृद्धि हो रही थी। फाटकेके नफेके सौदेमें ऐसी ही मनोवृत्ति बन जाती है। चूँकि अभी भी बाजारके और अधिक ऊँचे बढ़नेकी धारणा थी इसलिये मुनीमजीने सारा सौदा खड़ा रखवा। बाजार संयोगवश खूब बढ़ा और जब अपनी एक निर्दिष्ट सीमापर आकर रुका तो सटोरियोंकी रायसे उन्होंने अपना सारा सौदा उन्हीं ऊँचे भावोंमें काट दिया; जिससे छः-सात लाख रुपये इनको मिले। इससे सब जगह व्यापारी-जगतमें हलचल-सी मच गयी; क्योंकि उस समय इतने रुपयोंका लेन-देन भी बहुत बड़ा समझा जाता था। यद्यपि गद्दीमें अच्छी खासी कमाई हुई; पर जहाँ जिस फर्ममें सात पीढ़ीसे फाटकेका नामोनिशान भी नहीं था; वहाँ इतना बड़ा फाटका वस्तुतः एक चर्चाका विषय बन ही गया एवं लोगोंका इस फर्मपर भी अंगुली उठानेका अवसर मिल गया।

बात चाहे अच्छी हो या बुरी, छिपती नहीं। हलचल बम्बईतक पहुँची। कारवारके सिलसिलेमें गये हुए कुछ कलकत्तेके व्यापारियों आदिने फर्मके मालिकको कलकत्तेकी सारी कथा कह सुनायी। सुनते ही फर्मके मालिकके होश-हवाश गुम हो गये। वह ऐसा हो गया मानो काटो तो खून नहीं। बस, तुरंत ही बिना खबर दिये वह कलकत्ते आया और आते ही सारी बातोंकी जाँच करके मुनीमजीसे जवाब तलब किया—‘आपको अच्छी तरह मालूम है कि हमारी गद्दीमें पीढ़ियोंसे फाटकेवाजी नहीं होती। सब लोग इस बातको जानते हैं। यदि इतने बड़े नफेकी जगह आज घाटा होता तो फर्म कैसे उसे चुकाता। आपमें इतना दुस्साहस कहाँसे आ गया?’ मुनीमजीने सिर नीचा कर लिया। बात तो फर्मके साख, सिद्धान्त एवं नीतिकी थी। मालिक भी बहुत आदर्शवादी, अपने बातका धनी, नेकनीयत एवं दीन-ईमानका पक्का था। अतः उसने बड़ी संजीदगीसे कहा—‘कोई बात नहीं मुनीमजी! हमारे यहाँ तो कभी फाटका हुआ नहीं, अतः यह इस फाटकेकी तमाम कमाई आप लेकर अब फर्मसे अलग हो जायँ। आपने लंबे असेतक फर्मकी सेवा की है। मैं आपसे बहुत प्रसन्न हूँ। फाटकेमें यह धन भी, आपकी दूरदर्शिता, अच्छी सूझ-बूझ एवं विलक्षण प्रतिभासे आया है। अतः यह धनराशि अब आप ही स्वीकार करें और साथ ही रिटायर हो जायँ। वैसे भी आपकी उम्र इस लायक हो चली है।’ मालिकने पुनः जोर देकर कहा कि ‘कुछ भी हो फाटकेकी कमाई मैं नहीं रख सकूँगा, यह मेरा दृढ़ सिद्धान्त है।’

लेकिन बाहरे मुनीमजी! धन्य है आपकी ईमानदारी एवं नेकनीयतीको। यदि वे चाहते तो आजके मनुष्यकी तरह इतनी बड़ी धनराशिको बड़े आनन्द और गौरवके साथ ले लेते और मालिक तथा जनताकी नजरोंसे वास्तविक ईमानदार भी बने ही रहते, किसीको भी उनकी नेकनीयती-पर संदेह जरा-सा भी नहीं होता। पर धन्य है उनकी विलक्षण बुद्धि एवं त्याग-भावनाको। उन्होंने तपाकसे उत्तर दिया—‘नफा फर्ममें हुआ है, उसीका है। भला मैं उसे कैसे ले सकता हूँ। यह तो उल्टी बात हुई। यदि आपको फाटकोंकी कमाईसे इतनी नफरत है तो दे दीजिये इसे अनाथालयमें दानस्वरूप।’

ये शब्द मालिकको तीरकी तरह लगे, फिर भी उसने एक बार रोवके स्वरमें कहा—‘भलीभाँति सोच लीजिये मुनीमजी।

आयी लक्ष्मीको इस प्रकार गवाँ देना कहाँतक बुद्धिमानी है। ऐसे मौके बार-बार नहीं हाथ आते और फिर इतनी बड़ी सम्पत्तिको इस प्रकार देनेवाला भी आपने जीवनमें कभी नहीं देखा होगा। इतनेपर भी आप नहीं मानेंगे तो मैं आपको.....’

‘बस, आगे कुछ मत कहिये और यह भी सुन लीजिये कि हाथ आयी हुई इतनी बड़ी सम्पत्तिका त्याग करनेवाला भी आपने जीवनमें शायद कभी न देखा होगा।’ मुनीमजीने बात काटते हुए कड़ककर कहा—‘शायद आपको मालूम नहीं कि यदि मुझे ही मालदार बननेकी इच्छा होती तो मैं भला फर्मके नाम सौदा क्यों करता। आपकी कृपासे मैं ब्रेखटके बिना किसी झंझटके अपने नाममें बड़े मजेमें सारा सौदा कर सकता था। सबको मेरी नेकनीयती एवं नामपर पूरा भरोसा है। इस प्रकार अपना सौदा करते हुए भी आपकी नजरोंमें मैं ईमानदार बना रहता, पर ऐसा करना मैंने उचित नहीं समझा।’ यह कहकर सज्जन मुनीमजीने सारी चाभियाँ आदि मालिकको सँभला दीं एवं वहाँसे त्यागपत्र देकर मालिकके छोटे भाईके यहाँ नौकरी कर ली। उसने उनकी ईमानदारीसे प्रसन्न हो उन्हें तुरंत ही वही मैनेजरका पद दे दिया।

बात आगे बढ़ चुकी थी, जिसे उस समाजके दूसरे भी व्यवसायी सुन चुके थे। अन्तमें उसी मालिकने अपने शुभचिन्तकों—मित्रों आदिके सत्परामर्शसे एक बड़ा अस्पताल, जिसकी वहाँ उन दिनों कमी थी, बनवानेका निश्चय किया, जिसमें उस धन-राशिका सदुपयोग हो सके। अस्पतालकी स्थापनाके लिये एक सभा बुलायी गयी, जिसमें एक विलक्षण मार्मिक दृश्य उपस्थित हुआ। मालिक मुनीमजीके निःस्वार्थ त्यागकी प्रशंसा कर इस अस्पतालका प्रमुख आधार-स्तम्भ उनको बता रहा था और मुनीमजी मालिकके त्याग एवं दानको ही इसका श्रेय सिद्ध कर रहे थे। दोनोंमें कौन बड़ा इसका निर्णय तो न हो सका, पर उपस्थित सज्जनोंने देखा कि दोनों ही महानुभावोंके अश्रुपात हो रहे थे। दोनों महानुभावोंके गले मिलनेका अपूर्व दृश्य था। अब शब्दोंकी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी थी। मुनीमजी गद्गद हो मालिकको निहार रहे थे और मालिक मुनीमजीको आज भी वह अस्पताल जनता-जनार्दनकी सेवा करता हुआ अपनी आपबीती सुनाकर लोगोंको सत्प्रेरणा दे रहा है।

(३) ऋण-मुक्ति

मेरे पिता श्रीभगवानसहायजी अग्रवाल पारसौली नामक ग्रामके पटवारी थे ।

हालतु है सबही विधि सों जब रंकता गरि मचावत रंक सों ।

—वाली लोकोक्तिसे बाधित हो इसी ग्रामके चौ० खरगसिंह अपने कष्टनिवारणार्थ मेरे पिताजीके पास आये तथा इच्छित धन ऋणरूपमें प्राप्तकर खुशी-खुशी अपने घर पहुँचे । धनको यथास्थान लगा अपना दुःख दूर किया । कहते हैं कि विपत्ति कभी अकेली नहीं आया करती, अतः चौधरी साहबके घर धनाभाव बढ़ता ही गया और दैवयोगसे इन्होंने अपना नश्वरशरीर त्यागकर संसारसे हमेशाके लिये विदा ले ली ।

समय किसीकी प्रतीक्षा किये बिना ही चलता चला गया । करीब ३० सालकी बात हो गयी । इधर मेरे पिता भगवानसहायजी भी अपने इस लौकिक स्थानको छोड़ परलोकवासी हो गये ।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः

स पण्डितः स श्रुतिमान् गुणज्ञः ।

स एव वक्ता स च दर्शनीयः

सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ॥

न जाने किस कुछड़ीमें रुपया-पैसा संसारमें आया, जिसने आज हमारे ऊपर ऐसा अधिकार कर लिया है कि हम उसके गुलाम बन गये हैं । आज तो जिस किसी प्रकारसे भी सभ्यताका एकमात्र लक्ष्य केवल पैसा बटोरना ही है । इस अवस्थामें एक भारतीय ललना बहन पदमोके द्वारा जो आदर्श त्याग-कार्य हुआ है, वह क्या हम आजके मानवोंके लिये कुछ भी प्रेरणाप्रद नहीं है ?

पदमो बहन चौधरी खरगसिंहजीके बड़े लड़के हरीरामकी पत्नी हैं । चौधरी साहबके तीन लड़के थे; जिनमें दो आज भी मौजूद हैं । पदमोके पति भी संसारसे विदा हो गये । यह विधवा औरत अपने ससुरके द्वारा लिये गये ऋणसे मुक्ति पानेके लिये हमारे घर आयी और अपने हिस्सेके यानी तिहाई ऋणका धन मेरे बड़े भाईके हाथमें थमाते हुए अति भावुकतासे कहा कि 'ये लीजिये अपना पैसा' । मेरे पिता इस दुनियामें नहीं रहे । विद्यमान हैं हम ही दोनों भाई । हमारे आश्चर्यका ठिकाना न रहा; क्योंकि हमने आज अनायास आश्चर्यजनक रीतिसे अप्राप्त धनको प्राप्त किया ।

धन्य है भारतीय नारी । जिनके अंदर आज भी ऐसी धर्मपरायणता विद्यमान है । —बाबूलाल अग्रवाल

(४)

गोमाताका अनशन तथा चमत्कार

आप विश्वास करें या न करें, पर बात विलकुल सत्य है । मेरे गाँव बेरछासे पाँच मील दूरपर एक गाँव है—सावदी कोटडी । बटना उसी गाँवकी है । इस क्षेत्रमें दो सालसे अच्छी बरसात न होनेके कारण प्रायः अकालक्रीसी स्थिति होती जा रही थी । मनुष्य तो इस अनाजक्री कमी एवं बढ़ती हुई महँगाईमें किसी प्रकार अपना पेट भर रहे थे । परंतु चारेकी कमीके कारण गाय-भैंस एवं अन्य पालतू पशुओंकी मृत्यु-संख्या बढ़ती जा रही थी । पशुओंका भूसा-चारा विलकुल समाप्त हो गया था । कृषक पीपल आदिके कुछ पत्ते खिलाकर पशुओंको जीवित रखनेकी कोशिश कर रहे थे । पानी न गिरनेके कारण चारों ओर त्राहि-त्राहि मच रही थी । इस स्थितिको वहाँ एक गोमातासे नहीं देखा गया । मध्यप्रदेशके जिला रतलाम परगना आलोटके उपर्युक्त गाँव सावदी कोटडीमें एक गोमाताकी एक सफेद रंगकी बछड़ी है जिसकी उम्र लगभग दो सालकी है, उस बछड़ीने गत २५ जून ६६ से चारा खाना एवं पानी पीना बंद कर दिया । दो-तीन दिनोंतक जब बछड़ीने चारा-पानी नहीं खाया-पिया, तब बछड़ीके पालकने समझा कि इसको कुछ बीमारी है तो उसके 'दाग' (लोहा गरम करके चिपकाया) लगाया । यह एक देशी इलाज है । पर उसके बाद भी बछड़ीने चारा-पानी शुरू नहीं किया । चारा-पानी न खानेके बावजूद भी उसके स्वास्थ्यमें कोई फर्क नहीं पड़ा । बछड़ी बैठती नहीं थी । रात-दिन पेड़के नीचे खड़ी रहती । इस प्रकार उसने दस दिन निकाल दिये । दस दिनके बाद वह रोज, उसी गाँवमें एक श्रीकृष्ण-मन्दिर है, उस मन्दिरमें जाती एवं श्रीकृष्णमूर्तिके सामने विलकुल पास जाकर अपना सिर झुकाये ८-१० मिनट खड़ी रहती । इस प्रकार जब लोगोंने उसे मन्दिरमें जाते देखा एवं उसके १३-१४ दिन बीत जानेके बाद भी उसके स्वास्थ्यमें अन्तर न देखकर उस बछड़ीको देवीका रूप समझा । ग्रामवासियोंने एक हवन शुरू किया । वे जब उस बछड़ीका जुलूस गाँवमें निकालते तो वह बछड़ी ग्रामीणोंके आगे-आगे चलती । जिस समय हवन हुआ, उस समय हवनमें भी करीब आधा घंटा आकर वह बैठी । बछड़ीने अपना अनशन बराबर चालू रखा । उसके

चारा-पानी छोड़नेके १७वें दिन शामको बड़े जोरसे वर्षा हुई। नदी-नालोंमें बाढ़ आ गयी। कृषकोंने शान्तिकी साँस ली तथा खरीफकी बुवाईकी तैयारी कर दी। जिस दिन पानी गिरा, उसी दिनसे बछड़ीने चारा-पानी लेना शुरू कर दिया। जिसपक्षु जातिको हमलोग बहुत कुछ अज्ञान समझते हैं, उसने अपने जोरदार अनशनसे भगवान्को झुका दिया। अनशन करके जल बरसाया और प्यासे जड़-चेतन प्राणियोंके प्राण बचाये। अब भी बछड़ी स्वस्थ है एवं हजारोंकी संख्यामें लोग उसके दर्शनार्थ पहुँच रहे हैं।

—ठा० जशवंतसिंह

(५)

मुझे इस प्रकारका पैसा नहीं चाहिये

इसके पिताजी मरनेके पहले वहीमें हिसाब लिख गये थे, उसमें कुटुम्बियोंको दी हुई रकमका ब्यौरा था। उस रकमका जोड़ हजारों तक पहुँचता था। वहीके अन्तिम पृष्ठपर लिखा था—

‘कुटुम्बियोंको संकटके समय ये रकमें दी थीं। मैंने उगाहनेकी चेष्टा की, पर कोई फल नहीं हुआ। मेरी मृत्युके बाद वे लोग यदि तुझको रकम दें तो ठीक है, नहीं तो तेरे लिये मैं जो कुछ छोड़ जाता हूँ, उसीमें संतोष करना। इस रकमके लिये कभी भी कोर्ट-कचहरीकी सीढ़ियों मत चढ़ना। मैं भी वहाँ तक कभी नहीं गया।’

इस बातको समय बीत गया। पुत्रको पिताकी सम्पत्तिमें तथा उत्तराधिकारमें जो कुछ मिला था और अपनी छोटी-सी नौकरीसे जो कुछ मासिक आमदनी होती थी, वह उसीसे कुटुम्बका निर्वाह कर रहा था। उसके साथ कुटुम्बके दो-तीन निराधार लड़के भी रहकर पढ़ रहे थे। मनमें संतोष था। ज्यादा पैसा इकट्ठा करनेकी हाय-हाय नहीं थी। सीधा-सादा सरल हृदयका मनुष्य था वह। पर कुछ परोपकारी बननेवाले बार-बार उसे तंग करते, कहते कि तेरा पिता इतनी बड़ी रकम लोगोंमें पावनी छोड़ गया है। तू उसकी वसूलीके लिये कोई चेष्टा नहीं करता। जरा कड़ा बन, बाकी सारा काम हमलोग कर लेंगे। तेरे बापका पैसा मुफ्तका नहीं था।

इस सीधे-सादे भले आदमीका मन यह सब करनेको तैयार न था, पर ये परोपकारी भी छोड़नेवाले नहीं। अन्तमें कुटुम्बके लोगोंसे रुपये वसूल करनेकी पूरी जिम्मेवारी

इन्होंने अपने सिर ले ली। इसके बाद दबाव डाला तो बेचारा डिग गया। फिर तो नोटिसवाजी और कोर्टमें केस शुरू हो गये। ३-४ दिवानी अदालतोंमें उन लोगोंपर डिग्री हो गयी। कोर्टने उनकी चल-अचल सम्पत्तिपर जब्तीका वारंट निकाला। कोर्टका बेलिफ उन परोपकारी जनोंके तथा उसके साथ एक सम्बन्धीके यहाँ गये। पंचकी हाजिरीमें बेलिफके आदमियोंने उस सम्बन्धीके घरसे फर्नीचर, खाने-पीनेका सामान तथा और चीजें निकालना शुरू किया। इस प्रकार अचानक जब्ती आनेके कारण वह कुटुम्ब बड़ी परीशानीमें पड़ गया। उन लोगोंके लिये यह बड़ा ही दुःख था कि उनके बाप-दादोंके हाथकी चीज इज्जत-आवरुके साथ नीलाम होने जा रही है। कुटुम्बमें एक वृद्धा मौंजीने रोते-रोते उसके पैर पकड़ लिये और कुटुम्बकी इज्जत बचानेके लिये नीलाम रोकनेके निमित्त वह बड़ी करुण प्रार्थना करने लगी।

बस, अब क्या था। उस मनुष्यका मोम-जैसा क्रोमल हृदय तत्काल पिघल गया और वह मौंजीके पैरसे चिपटकर उन्हींके साथ सुबक-सुबककर रोने लगा। यह न मानने-योग्य दृश्य था। जिसके वहाँ जब्ती आती है, उसका तो रोना स्वाभाविक है, पर जब्ती लेकर आनेवालेका सुबक-सुबककर रोना यह बिल्कुल नयी बात है।

उसने जोरसे पुकारकर कहा—‘बेलिफ साहब ! यह सब रहने दें। रोक दें नीलाम। मुझे इस प्रकारका पैसा नहीं चाहिये।’

पंच, बेलिफ और बेलिफके आदमी सभी आश्चर्य-चकित होकर सब उसकी ओर देख रहे थे। उसने फिर कहा—‘चलिये, सब पैसा मुझे मिल गया। अब मुझको इससे अधिक कुछ नहीं चाहिये।’

रोष दोनों सम्बन्धियोंके यहाँ जानेवाली जब्तीके वारंट भी रद्द करवा दिये। इतना सब होनेके बाद इस मनुष्यके सिरपरसे पहाड़का-सा एक बोझ दूर हो गया और वह हल्का फूल-सा बन गया।

आज वह मनुष्य सरकारी नौकरी कर रहा है। क्लर्क है, बहुत थोड़ा वेतन मिलता है, पर उसीमें संतोष मानकर अपना काम चला रहा है। कुटुम्बके जो निराधार बालक उसके पास रहकर पढ़ रहे थे, वे उच्च-शिक्षा प्राप्त करके पाखें निकलते ही उड़ गये। (अखण्ड आनन्द)

—बी० जे० कापड़ी

गोरक्षा-महाअभियान

गोरक्षा-महाअभियान-समितिका निर्माण हो गया है। उसके कार्यकर्ताओंका निर्वाचन हो चुका है। दिल्लीमें साधुओंका धरना अभी तक जारी है और सैकड़ों साधु जेल जा चुके हैं। साधुओंके नये-नये जत्थे दिल्ली आ रहे हैं। गत ५ सितम्बरको दिल्लीमें सनातनधर्म-प्रतिनिधि सभाकी ओरसे जो प्रदर्शन हुआ, उसमें एक लाखसे ज्यादा लोग थे और उसमें सनातनधर्म, आर्यसमाज, हिंदूमासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ, नामधारी सिख, जैन और बौद्ध—यों हिंदूमात्रने साथ दिया था। अब आगामी नवम्बरमें लोकसभाके अधिवेशन आरम्भ होनेके समय एक बहुत बड़ा प्रदर्शन करनेकी तैयारी चल रही है। सोचा जा रहा है उसमें पाँच लाख आदमी हों।

उस दिन प्रधान मन्त्री श्रीइन्दिराजीने श्रीसुशीलकुमारजी जैन आदिकों जो कुछ कहा, उससे कुछ आश्वासन तो मिलता है और इसी आश्वासनपर वाराणसीके मौनी बाबाने अपने अनशन-व्रतको बुरा शिथिल कर दिया है। पं० श्रीरामचन्द्रजी वीर दिल्लीमें अनशन कर रहे हैं और उनका वजन बहुत कम हो गया है। उन्हें सरकारने गिरफ्तार करके जेल भेज दिया है। वास्तवमें गोवधवन्दीका प्रश्न केन्द्रीय सरकारसे ही सम्बन्ध रखता है। अलग-अलग राज्योंके नामपर इसे टाला जा रहा है, जो सर्वथा अनुचित है और यदि ऐसी ही बात है तो संविधानको बदलना कोई अनहोनी बात नहीं। इसी बार संविधान बदला गया है और आवश्यक होनेपर फिर भी बदला जा सकता है। हमारे आन्दोलनमें शान्तिके साथ प्रबलता भी होनी चाहिये और आन्दोलन होना चाहिये देशव्यापी।

श्रद्धेय श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी ता० २२ सितम्बरको गोधाम-तीर्थयात्रा ट्रेनके द्वारा सारे भारतमें गोरक्षा-महाअभियानके संदेशका प्रचार और देशवासियोंको तैयार करनेके लिये निकल गये हैं। हमारे पास भारतके प्रायः सभी प्रदेशोंसे सैकड़ों पत्र आ रहे हैं जिनमें गोरक्षाके लिये अपने-अपने विश्वासके अनुसार भगवत्-आराधना करनेकी बात तो है ही, बहुत लोग आमरण अनशन और सत्याग्रह करनेके लिये भी अपना नाम लिखाना चाहते हैं। गुजरातके शम्भू महाराज एक हजार आमरण अनशन-कर्ता तैयार कर रहे हैं। बम्बईकी 'सम्पूर्ण गोरक्षा-अनुरोध-समिति'की ओरसे बहुत अच्छा प्रचार-कार्य हो रहा है। श्रद्धेय स्वामी श्रीगङ्गेश्वरानन्दजी महाराज बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं। 'कल्याण' के गताङ्कमें प्रकाशित महाअभियान-समितिकी सूचनाके अनुसार देशमें सब लोगोंको इस महान् पुण्यकार्यमें अपनी-अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार तन-मन-धनसे यथायोग्य सहयोग देना चाहिये।

‘कल्याण’के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क

- १ मानवता-अङ्क—पृष्ठ-संख्या ७०४, चित्र बहुरंगे ४०, इकरंगे ६१, रेखाचित्र ५९, मूल्य रु० ७.५०।
 - २ संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क—पृष्ठ ७०४, चित्र बहुरंगे १७, सादे तथा रेखा १५०, मू० रु० ७.५०, सजिद्ध रु० ८.७५।
 - ३ संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त-पुराणाङ्क—पृष्ठ ७०४, चित्र बहुरंगे १७, इकरंगे तथा रेखा १२६, मूल्य रु० ७.५०, स० ८.७५।
- डाकखर्च सबमें हमारा

व्यवस्थापक—‘कल्याण’ पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

‘कल्याण’-प्रेमियोंसे प्रार्थना

(१) ‘कल्याण’का आगामी विशेषाङ्क ‘श्रीरामवचनामृताङ्क’ होगा। पहले ‘श्रीकृष्णवचनामृताङ्क’ प्रकाशित हुआ था, उसे पाठकोंने बहुत ही पसंद किया था। तभीसे ‘श्रीरामवचनामृताङ्क’ की बड़ी माँग थी। भगवत्कृपासे इस बार उस माँगकी पूर्ति हो रही है। ‘श्रीकृष्णवचनामृताङ्क’ की भाँति ही इस ‘श्रीरामवचनामृताङ्क’ में मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके विविध विषयोंपर समय-समयपर कहे हुए आदर्श वचनोंका संग्रह होगा। रामगीता रहेगी। साथ ही कथाप्रसङ्ग भी रहेंगे। यह अङ्क बड़े-बड़े विद्वानोंसे लेकर सर्वसाधारणके लिये भी बड़ा उपयोगी होगा। रंगीन तथा सादे चित्र भी पर्याप्त मात्रामें रहेंगे।

(२) गत वर्ष गीताप्रेसमें घाटा विशेष रहा ही था, इस वर्ष खर्च और भी बहुत बढ़ गया। इसलिये ‘कल्याण’का वार्षिक मूल्य रु० ८.५० (आठ रुपये पचास पैसे) किया गया है। गत वर्ष ही बढ़ानेका प्रस्ताव था, पर नहीं बढ़ाया गया। इस ‘श्रीरामवचनामृताङ्क’ की माँग बहुत अधिक होनेकी सम्भावना है। अतएव पुराने ग्राहकोंको रु० ८.५० (आठ रुपये पचास पैसे) तुरंत मनी-आर्डरद्वारा भेजकर ग्राहक बन जाना चाहिये।

(३) रुपये भेजते समय मनीआर्डरके कूपनमें पुराने ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या लिखनेकी कृपा अवश्य करें और नाम, पता, ग्राम, मुहल्लेका नाम, डाकघर, जिला, प्रदेश—सब बहुत साफ-साफ बड़े अक्षरोंमें लिखें। नये ग्राहक हों तो कूपनमें ‘नया ग्राहक’ लिखना कृपया न भूलें। रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भेजें। इस वर्ष मनीआर्डर-फार्म अभी प्राप्त नहीं हो सके, इसलिये इस अङ्कके साथ नहीं जा रहे हैं। ग्राहक महोदय अपने डाकघरसे फार्म लेकर ही मनीआर्डर भेजनेकी कृपा करें। उन्हें कष्ट तो होगा। पर विवशता है और इसके लिये हम क्षमा चाहते हैं। रु० ८.५० मनीआर्डरसे भेजकर पूरे वर्षके ही ग्राहक बनें।

(४) जिन पुराने ग्राहक महोदयोंको किसी कारणवश अगले वर्ष ग्राहक न रहना हो, वे कृपया एक कार्ड लिखकर सूचना दे दें, जिससे डाकखर्चकी हानि न उठानी पड़े।

(५) गीताप्रेसका ‘पुस्तक-विभाग’ तथा ‘कल्याण-कल्पतरु-विभाग’ ‘कल्याण-विभाग’से पृथक् हैं। अतः पुस्तकोंके तथा ‘कल्पतरु’ के लिये उन-उनके व्यवस्थापकोंके नाम अलग पत्र-व्यवहार करना चाहिये और रुपये भी अलग-अलग उन्हींके नामसे भेजने चाहिये।

(६) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनता है और बहुत देरसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य रु० १०.०० (दस रुपये) है।

(७) आजीवन ग्राहक अब नहीं बनाये जायँगे।

(८) इस ‘श्रीरामवचनामृताङ्क’में लेख प्रायः नहीं जायँगे। अतः बिना माँगे कोई महानुभाव लेख कृपया न भेजें।

व्यवस्थापक—‘कल्याण’ पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) उ० प्र०

गवचना-
मृताङ्क
की
विषयोंप
रहेंगे।
था सादे

गया।
है। गत
अधिक
त मनी-

लेखनेकी
त साफ-
रूपये
अङ्कके
की कृपा
८.५०

हो, वे

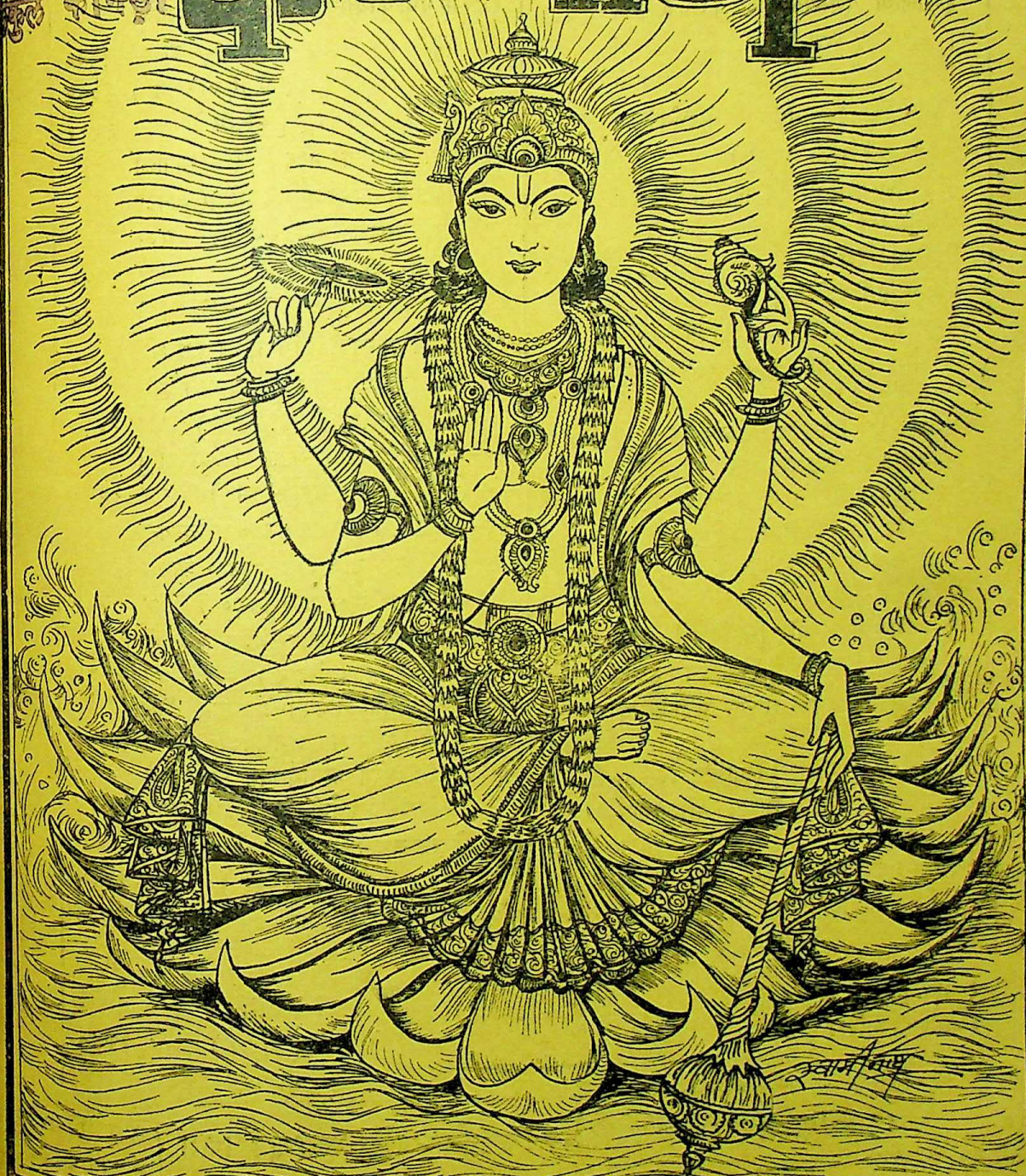
पृथक्
करना

जानेकी

कोई

प्र०

कल्याण



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-श्रीराधा-गोविन्द-युगल [कविता] ...	१२७७
२-कल्याण ('शिव') ...	१२७८
३-गोहत्या पूर्णरूपसे बंद करानेके लिये बलिदान (परम पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्री स्वामीजी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी, गोवर्धनपीठाधीश्वरकी महती घोषणा) ...	१२७९
४-गो-रक्षा परम धर्म है (ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्री जयदयालजी गोयन्दकाका दिव्य संदेश) ...	१२८३
५-प्रार्थना [कविता] ...	१२८४
६-गीतोक्त साधन-सम्पत्ति (संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका) ...	१२८५
७-सावधान ! (साधुवेषमें एक पथिक) ...	१२८९
८-रसस्वरूप श्रीकृष्ण और भावस्वरूप गोपाङ्गनासमन्वित श्रीराधाजीका तत्त्व-महत्त्व (श्रीराधाष्टमी-महोत्सवपर गोरखपुरमें हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन) ...	१२९२
९-वृषभानुद्धारपर भीड़ [कविता] ...	१३०२
१०-श्रीकृष्ण [कविता] (पाण्डेय पं० श्री-रामनारायणदत्तजी शास्त्री, साहित्याचार्य 'राम') ...	१३०३
११-श्रीराधा [कविता] (पाण्डेय पं० श्री-रामनारायणदत्तजी शास्त्री, साहित्याचार्य 'राम') ...	१३०३
१२-श्रीराधा और गोपीजनका स्वरूप [कविता] ...	१३०३

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष २०२३, नवम्बर १९६६

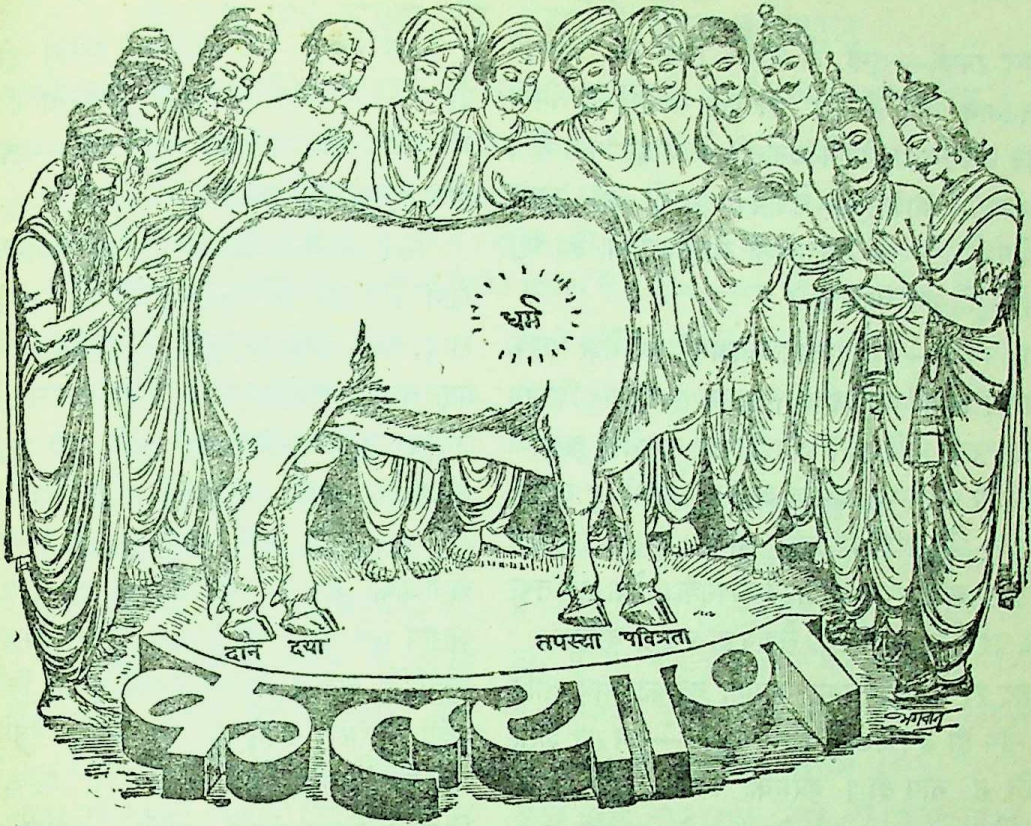
विषय	पृष्ठ-संख्या
१३-ज्ञानकी साधना (श्रीश्रीरामनाथजी 'सुमन') ...	१३०४
१४-मा गृधः कस्यस्विद्धनम् (श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार, एम० ए०, एल्० टी०) ...	१३०६
१५-गौ—लोकमाता [कहानी] (श्री 'चक्र') ...	१३०९
१६-गो-वध सर्वथा बंद हो [कविता] ...	१३११
१७-हिंदू वेष-भूषा और हिंदी भाषाको अपनानेमें गर्वका अनुभव करें ! (डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी-एच्० डी०) ...	१३१२
१८-अन्ध-परानुकरणता [कविता] ...	१३१६
१९-दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा (सेठ श्री-गोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव) ...	१३१७
२०-गोरक्षामें सबकी रक्षा [कविता] (श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम') ...	१३२०
२१-बालिद्वीपकी उपासना (डा० लोकेशचन्द्र एम० ए०, डी० लिट्०; डा० शारदा रानी एम० ए०, डी० लिट्०) ...	१३२१
२२-गोवंशकी हत्या शीघ्र-से-शीघ्र बंद हो (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ...	१३३१
२३-मनुष्यमात्रसे सविनय प्रार्थना, हमारे रामके आमरण अनशनकी सूचना (परम श्रद्धेय आचार्य अनन्तश्री स्वामी श्रीवीरराघवाचार्यजी महाराजका वक्तव्य) ...	१३३४
२४-गोहत्या-समस्या—सरकार और मुसलमान (श्रीअतीकुर्रहमान फ़िदवई) ...	१३३५
२५-पढ़ो, समझो और करो ...	१३३७

चित्र-सूची

१-भगवान् नारायण	(रेखाचित्र) ...	मुखपृष्ठ
२-श्रीराधा-गोविन्द-युगल	(तिरंगा) ...	१२७७

वार्षिक मूल्य } जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत-चित्त-आनंद भूमा जय जय ॥
 भारतमें रु० ७.५० }
 विदेशमें रु० १०.०० } जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
 (१५ शिल्लिङ्ग) } जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभितर्पणाद् वृषपुत्रैर्ब्रह्मर्षिराजर्षिभिर्विदुःशूद्रैरपि वन्द्यते स जयताद्वर्मा जगद्धारणः ॥

वर्ष ४० }

गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष २०२३, नवम्बर १९६६

{ संख्या ११
पूर्ण संख्या ४८०

श्रीराधा-गोविन्द-युगल

भावमयी श्रीराधिका, रसमय श्रीगोविन्द ।
उभय उभय-मुखकंज पै खिन्धि रहे नैन मिलिद ॥
मधुर अधर मुरली धरे ठाढ़े स्याम त्रिभंग ।
राधा-उर उमग्यो सु-रस रोमाञ्चित अंग-अंग ॥
नील-पीत-पट दुहुँनके भूषन-भूषन देह ।
होड़ लगी अति दुहुँन मै बड़त छिनहि छिन नेह ॥
मोरमुकुट सिर चंद्रिका त्रिभुवनमोहन रूप ।
करत परस्पर पान दोउ नित रस दिव्य अनूप ॥

कल्याण

याद रखो—तुम्हें जो जीवन मिला है, जीवनमें जो तन-मन मिले हैं तथा जो कुछ भी सामग्री मिली है, सब भगवान्की सेवामें लगानेके लिये ही मिला है। इन सबको भगवान्की सेवामें लगानेमें ही इनका सदुपयोग है और जो भगवान्की सेवामें लगाता है, वही वास्तवमें बुद्धिमान् पुरुष है।

याद रखो—इन सबको भगवान्में लगानेपर उसके फलस्वरूप नित्य अखण्ड अनन्त अमर दिव्य चिन्मय परमात्मसुखकी प्राप्ति होगी और भोगोंमें लगानेपर अस्थायी सुखकी और परिणामतः अनन्त असीम पतनकी, दुःखोंकी, विनाशकी और नरकोंकी प्राप्ति होगी। इस बातको ध्रुव निश्चित समझकर मनुष्यको अपने जीवनके प्रत्येक क्षण तथा प्रत्येक पदार्थको भगवान्की सेवामें ही लगाना चाहिये।

याद रखो—शरीरका आराम, नामका नाम आदि सब भोग ही हैं। यद्यपि न तो आत्मा—तुम वह शरीर है और न नाम ही। शरीरका निर्माण माता-पिताके रजवीर्यसे गर्भमें हुआ है और जन्मके पश्चात् नामकी कल्पना होती है। मरनेके बाद भी यह शरीर तो रहता ही है और शरीरका नाम भी रहता है पर शरीरमें-से चेतनरूप तुम निकल जाते हो। तुम्हारे आनेसे ही शरीरमें चेतनता आयी थी और तुम्हारे निकलते ही शरीर अचेतन मुर्दा हो गया, पर मोहवश तुमने शरीर और नामको ही आत्मा—अपना स्वरूप मान लिया, इसलिये उन्हींके 'आराम' तथा 'नाम'के लिये सदा चिन्तित, चेष्टायुक्त और कर्मपरायण रहते हो। इसीके लिये नये-नये विज्ञानका आविष्कार, कार्योंका विस्तार, विविध कला-कौशलका प्रचार, नये-नये भोग-वस्तुओंके निर्माणके लिये उत्पादनगृह—कारखानोंका प्रसार तथा विविध प्रकारके अनन्त प्रयत्न करते हो और जीवनभर सफलता-असफलताके आने-जानेमें दिन-रात सुखी-दुखी होते रहते हो—कभी भी द्वन्द्व-दुःखसे मुक्त नहीं हो सकते।

याद रखो—भोग-कामनासे प्रसित होनेके कारण ही तुम जीवनभर अशान्ति, जीवनभर चिन्ता तथा जीवनभर विभ्रान्तचित्त रहते हो—सफलतामें भी और असफलतामें भी।

याद रखो—भोग-कामना ही अनर्थोंकी अनन्त खान है। इसी कामनाकी पूर्तिके लिये पाँचों इन्द्रियोंके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन पाँच विषयोंका सेवन, पद तथा अधिकारप्राप्तिके लिये प्रयत्न, धनके लिये उचित-अनुचित अथक कर्म करते रहते हो। नयी-नयी समष्टिगत तथा व्यक्तिगत विकासकी योजनाएँ, रेल, तार, सड़क, यान, मकान आदिके निर्माणके प्रयत्न, बाधाओंको हटानेके प्रयत्नमें कलह, संघर्ष, विनाशका आश्रय लेते रहते हो। भोग-कामना असंख्य पापोंकी जननी है, अतएव भोग-कामनाकी पूर्तिके लिये तुम मन, वाणी, शरीरसे पापमूलक बुरे कर्म, मनमें अहंकार, अभिमान, ममता, राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, वैर, हिंसा आदिका पोषण, वाणीसे असत्य, कटु, रूक्ष, अश्लील, अभिमानपूर्ण व्यर्थ तथा अपना-पराया अहित—अमङ्गल करनेवाले वचनोंका उच्चारण एवं शरीरसे हिंसा, व्यभिचार, अनाचार, अभक्ष्य भोजन-पान, मदभरी चेष्टाएँ और अन्याय तथा अधर्मयुक्त आचरण करते हो। इन सब दुष्कृत्योंका कारण है तुम्हारे विषया शरीरमें तथा नाममें 'मैं' भावना तथा उनके 'आराम-नाम' की नित्य वर्द्धनशील कामना।

याद रखो—तुम इसी उषेड़-बुनमें—इसी अशान्ति-दुःखपूर्ण स्थितिमें ही मर जाते हो। जीवन भगवान्की सेवामें नहीं लग पाता और वह व्यर्थ अनर्थमें नष्ट हो जाता है। अतएव आजसे, अभीसे ही सावधान होकर अपने जीवनके प्रत्येक क्षणको तथा शरीर, वाणी, मनकी प्रत्येक चेष्टाको भगवान्की—केवल भगवान्की सेवामें ही लगाकर जीवनको कृतार्थ तथा सफल बनाओ।

‘शिव’

गोहत्या पूर्ण रूपसे बंद करानेके लिये वलिदान

[सबसे पहले मेरा, तदनन्तर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीस्वामी श्रीश्रीकृष्णबोधाश्रमजीका]

(परम पूज्यपाद श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्री स्वामीजी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी, गोवर्धनपीठाधीश्वरकी महती घोषणा)

[कुछ दिनों पूर्व मेरठमें पूज्यपाद श्रीजगद्गुरु महाराजने एक विराट् सभामें गोरक्षाके सम्बन्धमें जो स्पष्ट घोषणा की थी, उसको मैंने लिख लिया था, वही नीचे दी जा रही है । इसमें कहीं कोई भूल हो तो वह मेरी है—श्रीश्रीआचार्यचरणकी नहीं । 'कल्याण'के पाठक इसे ध्यानसे पढ़ें, यह मेरी विनीत प्रार्थना है । प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदास, पिलखुवा]

गोमाताकी अद्भुत महिमा

हिंदुओ ! सनातनधर्मियो ! अपनी इस कायरताका परित्याग करो और अपनी परमपूजनीया प्रातःस्मरणीया गोमाताकी और अपने सनातनधर्मकी, हिंदूधर्मकी, पवित्र हिंदू जातिकी तथा हिंदू सभ्यता-संस्कृतिकी रक्षा करनेके लिये आगे आओ । पूज्या प्रातःस्मरणीया गोमाताकी बड़ी ही अद्भुत विलक्षण महिमा है । पूज्या गोमाताके शरीरमें ३३ करोड़ देवी-देवताओंका वास बताया गया है । जिस पूज्या गोमाताकी रक्षाके लिये और जिस पूज्या गोमाताकी सेवाके लिये अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परात्परब्रह्म भगवान् श्रीराघवेन्द्र प्रभुका अवतार होता है, भगवान् श्रीराघवेन्द्र प्रभु गोमाताकी रक्षा करते हैं और अपने हाथोंसे स्वयं ही सेवा करते हैं । जिस पूज्या गोमाताकी रक्षाके लिये अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परात्परब्रह्म भगवान् कृष्णके रूपमें अवतीर्ण होते हैं और परात्परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण जिस गोमाताको जंगल-जंगल चरानेके लिये नंगे पाँवों जाते हैं, गोमाताकी रक्षा करते हैं, गोमाताकी अपने हाथोंसे सेवा करते हैं, गो-हत्यारे पापात्माओंको दण्ड देते हैं, उन्हें मौतके घाट उतारकर मुक्ति-दान करते हैं और अपना गोपाल नाम रखाते हैं । साक्षात् परात्पर ब्रह्म होकर भी भगवान् श्रीकृष्ण गोमाताको नंगे पाँवों जंगलोंमें चराने जानेके कारण अपने पाँवोंमें अरण्यके काँटे चुभवाते हैं और भगवान् श्रीरामब्रह्मने भी जिस पूज्या गोमाताकी रक्षाके लिये, जिस सनातनधर्मकी रक्षाके लिये १४ वर्षका वनवास स्वीकार किया और

अपने पाँवोंमें अरण्यके काँटे चुभवाये । जिस पूज्या गोमाताकी इतनी अद्भुत विलक्षण महिमा है कि जिसे साक्षात् भगवान् वेद भी—

‘गावो विश्वस्य मातरः ।’

—गाय समस्त विश्वकी माता है, कहकर पुकारते हैं—बड़े ही घोर दुःखके साथ कहना पड़ता है कि आज उसी पूज्या गोमाताके ऊपर घोर विपत्तियाँ आयी हुई हैं । आज उन्हीं पूज्या गोमाताओंको काट-काटकर उनका गो-मांस विदेशोंको सप्लाई किया जा रहा है । आज देशमें गो-दुग्धकी जगह गो-रक्तकी नदियाँ बह रही हैं । आज हमारे धर्मपर और हमारी हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिपर चतुर्दिक् आक्रमणोंपर आक्रमण हो रहे हैं और फिर भी हम अपनेको भगवान् श्रीरामका, भगवान् श्रीकृष्णका भक्त बतानेवाले इन सब घोर अनर्थोंको बेंटे-बेंटे टुकुर-टुकुर देख रहे हैं । हमारे कानोंपर तनिक भी जूँ नहीं रेंग रही है; फिर भला, हम काहेके तो भगवान् श्रीरामके भक्त हैं और काहेके भगवान् श्रीकृष्णके भक्त हैं और काहेके हम साधु-संत महात्मा ही हैं !

यदि वास्तवमें हम भगवान् श्रीरामके सच्चे भक्त हैं और यदि हम वास्तवमें भगवान् श्रीकृष्णके सच्चे भक्त हैं और यदि हम वास्तवमें सच्चे रूपमें साधु-संत-महात्मा हैं तो जब हमारे परम इष्टदेव परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण भी गोमाताकी रक्षाके लिये और हिंदूधर्मकी, हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिकी रक्षाके लिये अपने पाँवोंमें जंगलके-अरण्यके काँटे लगने सहन कर सकते हैं तो हमें तो अपने

सिरके बल चलकर भी और अपने सिरमें काँटे चुभने सहन करके भी पूज्या गोमाताकी रक्षा करनी चाहिये और अपनी हिंदू सभ्यता-संस्कृतिको बचाना चाहिये । अपनी गोमाताकी, धर्मकी तथा सभ्यता-संस्कृतिकी रक्षाके लिये आगे न आना और पीछे हटना, मुख मोड़ना और बैठे-बैठे देखते रहना कदापि शोभा नहीं देता है और न कदापि यह उचित ही है ?

हमें पाँच लाख नहीं—सच्चे पाँच बलिदान देनेवाले गो-भक्त चाहिये

आज गोमाताकी रक्षा केवल भाषण देनेमात्रसे नहीं होनेवाली है और न गोमाताकी रक्षा सभाओंमें प्रस्ताव पास कर देनेमात्रसे ही होनेवाली है । गोमाताकी रक्षा तो तभी होगी कि जब एक भी सच्चा गो-भक्त अपने प्राणोंकी बाजी लगानेके लिये तैयार हो जायगा और गोमाताके लिये अपने प्राणोत्सर्ग कर देगा । क्या आप यह नहीं जानते और देखते कि अकेले ही एक रामाद्धने अपने प्राणोंपर खेलकर आन्ध्र प्रान्त बना डाला था और अकेले ही संत फतेहसिंहने मरनेकी धमकी देकर पंजाबी सूबा बना डाला तो यदि एक भी सच्चा गो-भक्त गोमाताकी रक्षाके लिये और देशसे गोहत्याका काला कलंक मिटानेके लिये अपने प्राणोंकी बाजी लगा दे तो देखें कि फिर भला, गोहत्या कैसे बंद नहीं हो सकती ? एक लाख नवयुवकोंकी आवश्यकता नहीं है । पुलिस और फौज उन्हें अपनी गोछियोंका निशाना बना देगी और फिर भी इस जालिम कांग्रेसी सरकारके कानोंपर तनिक भी जूँ नहीं रेंगेगी । हमें तो आज समस्त भारतमें अत्यन्त प्रभावशाली, सच्चे गोभक्त तथा अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहनेवाले धर्मप्राण केवल ५-६ व्यक्ति चाहिये जो प्रसन्नताके साथ प्राणोंकी बाजी लगाकर गोहत्या बंद कराना चाहते हों ?

सबसे प्रथम गोरक्षार्थ बलिदान मेरा होगा

अभी हम पिलखुवामें भक्त रामशरणदासके स्थानपर गये

थे तो हमें पिलखुवामें ही भक्त रामशरणदासने दिल्लीसे पधारे गोहत्याके विरोधमें प्रदर्शन करनेवाले साधुओंमेंसे स्वामी गावानन्दहरिजी आदि साधुओंसे मिलया था, जिन्होंने हमारे सामने गोहत्या बंद करानेके सम्बन्धकी सब बातें रखी थीं और हमने उनका पूर्ण समर्थन किया था । हम पिलखुवासे सीधे दिल्ली गये और हमने अपनी मानमर्यादाका भी कुछ विचार न करके और शंकराचार्य होकर भी स्वयं जैनमुनि सुशीलकुमारके स्थानपर गये और गोहत्या बंद करानेके सम्बन्धमें उनसे हमारी खुल करके सब बातें हुईं । वहाँ उस समय जैनमुनि श्रोतुश्री ठाकुरजी संत कृपालसिंहजी और स्वामी गणेशानन्दजी आदि-आदि थे । हमने उनके सामने स्पष्ट शब्दोंमें ये बातें रखी थीं कि यदि आप वास्तवमें सच्चे हृदयसे भारतसे गोहत्याका काळा कलंक मिटाना चाहते हैं और यदि आप वास्तवमें सच्चे हृदयसे गोरक्षा करना चाहते हैं तो सबसे पहले आप स्वयं ही गोहत्या बंद करानेके लिये मैदानमें आइये, और किसीकी भी आवश्यकता नहीं है । हमने उनसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा था और आज भी हम आपके इस मन्त्रसे विराट् सभामें घोषणा करके कह रहे हैं कि गोहत्या बंद करानेके लिये हमें समस्त देशमेंसे कुल ५-६ व्यक्ति चाहिये । ५-६ प्रभावशाली व्यक्ति मैदानमें आ जायँ और गोहत्या बंद कराने और गोरक्षा करानेके लिये उद्यत हो जायँ तो इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि गोहत्या अवश्य ही बंद हो जायगी । वे ५-६ व्यक्ति हैं चारों मठोंके जगद्गुरु शंकराचार्योंमेंसे एक जगद्गुरु शंकराचार्य । हमें चाहिये श्रीस्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज । हमें चाहिये राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघके गुरु गोलवलकरजी और हमें चाहिये पंजाबके सनातनधर्म-प्रतिनिधि सभाके गोस्वामी श्रीगणेशदत्तजीके उत्तराधिकारी श्रीस्वामी गणेशानन्दजी महाराज और हमें चाहिये जैनमुनि सुशीलकुमारजी और संत कृपालसिंहजी ।

हमें स्वामीजी श्रीनारदानन्दजीके कथनानुसार एक लाख मनुष्य नहीं चाहिये। हमें चाहिये बस खाली जगदाचार्य स्वामी नारदानन्दजी महाराज। फिर देखिये इस देशसे यह गोमाताकी हत्या बंद होती है या नहीं? चारों मठोंके जगद्गुरु शंकराचार्योंमेंसे हमें अभी एक शंकराचार्य चाहिये सो उनमें सबसे पहले मैं शंकराचार्य स्वयं अपना नाम देता हूँ। मैं सबसे पहले गोहत्या बंद करानेके लिये अपना वलिदान दूँगा और अपने प्राणोत्सर्ग करूँगा। या तो मैं यह भारतका महान् कलंक गोहत्या बंद करा दूँगा, गोहत्याका काला कलंक सदा-सर्वदाके लिये भारतके भालसे मिटा दूँगा, नहीं तो मैं अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगा और फिर मेरे बाद दूसरे नम्बरपर इनमेंसे कोई एक होंगे।

अन्य महानुभावोंको भी कहा-लिखा है। पर अन्य कोई तैयार हों या न हों। मैं तो स्वयं गोहत्या बंद करानेके लिये आगे आकर अपने प्राणोंकी बाजी लगानेवाला हूँ। यह एक बड़ी ही प्रसन्नताकी बात है कि हमें दो-तीन ऐसे महापुरुष हमारे साथी मिल भी गये हैं कि जो हमारे साथ गोहत्या बंद करानेके लिये अपने प्राणोंकी बाजी लगा करके बैठेंगे। हम उन महापुरुषोंका नाम बताना नहीं चाहते थे, पर लीजिये हम आपको उनमेंसे एक महापुरुषका शुभ नाम तो बता ही देना चाहते हैं। वे और कोई नहीं हैं, वे हैं आपके चिरपरिचित पूज्यपाद जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर अनन्त-श्रीविभूषित श्रीस्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज। ये आज ७५ वर्षके वयोवृद्ध महापुरुष हैं और गोरक्षाके लिये सहर्ष प्राणोत्सर्गको तैयार हो गये हैं। इन्होंने हमसे यह आज्ञा की थी कि इस गोहत्याको बंद करानेके लिये सर्वप्रथम हमारा नाम होना चाहिये और बादमें किसी दूसरेका नाम होना चाहिये। पर हमने उनसे यह

कह दिया है कि 'नहीं महाराज! सर्वप्रथम हमारा नम्बर होगा और हमारी मृत्युके पश्चात् दूसरे नम्बर पर आपका शुभ नाम आयेगा।'

क्या ही अच्छा हो कि मेरठसे ही इस आन्दोलनका सूत्रपात हो। कारण कि आपका यह जिला मेरठ ही सन् १८५७ के स्वतन्त्रता-आन्दोलनमें अग्रणी रहा है और सर्वप्रथम मेरठके धर्मवीर श्रीमंगलपाण्डेने ही इस स्वतन्त्रता आन्दोलनका श्रीगणेश किया था तथा अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोह मेरठसे ही प्रारम्भ हुआ था। वह भी पूज्या गोमाताको लेकर ही हुआ था, उसका भी कोई दूसरा अन्य कारण नहीं था। जब कट्टर सनातनधर्मी हिंदू-सैनिकोंको यह माहूम हुआ कि इन कारतूतोंमें हमारी पूज्या गोमाताकी चर्चाका प्रयोग होता है तो फिर क्या था वे सनातनधर्मी हिंदूवीर सैनिक भड़क उठे, उनका खून खौल उठा और सारे देशमें आग फैल गयी। पूज्या गोमाताका प्रश्न था। अंग्रेजोंको लेनेके देने पड़ गये और उनके प्राणोंपर आ बनी। आज भी उसी हमारी पूज्या प्रातःस्मरणीया गोमाताका प्रश्न हमारे सामने है। यदि आपके इस मेरठसे ही यह प्रारम्भ हो तो इसका भी श्रेय मेरठको ही प्राप्त होगा।

गोहत्या बंद कराना साधु-संतोंका परम कर्तव्य है

जहाँ गोहत्या बंद कराना और जहाँ गोरक्षा करना प्रत्येक भारतीय हिंदूका प्रत्येक आवाल-वृद्ध नर-नारीका परम कर्तव्य है और परम धर्म है वहाँ साधु-संतोंका और धर्माचार्योंका भी गोहत्या बंद करानेमें और गोरक्षा करानेमें भाग लेना यह सर्वप्रथम कर्तव्य है और परम धर्म है। हम साधु-संत हैं, हम धर्माचार्य हैं; इसलिये धर्मकी रक्षा करना, हिंदू-सम्यक्ता-संस्कृतिकी रक्षा करना, पूज्या गोमाताकी रक्षा करना, देवमन्दिरोंकी रक्षा करना और वर्णाश्रमधर्मकी रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है और परम धर्म है। गोमाताकी रक्षाका

सबसे बड़ा उत्तरदायित्व हमारे ही ऊपर है। केवल इन बेचारे गृहस्थियोंके ऊपर ही नहीं है। हमने अपने इस जीवनमें बड़े-बड़े आनन्दोपभोग किये हैं। पूर्वजन्ममें हम कभी इन्द्र भी बने होंगे और हमने स्वर्गके सुखोपभोग भी किये होंगे, कभी हम देवता भी बने होंगे और कभी पुत्र-पौत्रादिके सुखका भी हमने उपभोग किया होगा। पर—

‘क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।’

—के अनुसार हमारे पुण्य क्षीण होनेपर हमें इस लोकमें आना पड़ा है। हम सनातनधर्मी हिंदू हैं। हम पुनर्जन्मको मानते हैं; इसलिये यदि हमने कभी पूर्व-जन्ममें पाप किये होंगे तो पूर्वजन्मोंमें हम कभी उन पापोंके फलस्वरूप कीट-पतंग आदि भी बने होंगे, गधे-घोड़े भी बने होंगे तथा शूकर-कूकर भी बने होंगे। हमने सब प्रकारके सुख-दुःख देख लिये हैं और हमने बड़े-बड़े ऐश्वर्य भोग लिये हैं। अब तो हमारे लिये बस धर्म-रक्षार्थ, गोरक्षार्थ बलिदान होना और प्रसन्नताके साथ अपना प्राणोत्सर्ग कर देना ही शेष है और अब हमने गोहत्याके इस काले कलंकको दूर करनेके लिये अपने प्राणोंकी आहुति दे देनेका पूर्ण निश्चय कर लिया है। जबतक हम धर्मप्राण ऋषियोंके परम पवित्र देश भारतवर्षसे गोहत्याका काला कलंक दूर नहीं कर लेंगे और गोरक्षा नहीं कर लेंगे, पैर पीछे नहीं हटायेंगे। अब तो हम गोरक्षार्थ मर जायेंगे और गोरक्षार्थ मरकर अपना सश-सर्वदाके लिये स्वर्गाक्षरोंमें नाम लिखा जायेंगे। यदि हम गोरक्षार्थ मर गये और फिर भी इस जाळिम गोहत्यारी सरकारने हमारे मरनेकी कोई परवा नहीं की और गोहत्या बंद नहीं की तो जबतक ये सूर्य-चन्द्रमा रहेंगे तबतकके लिये इन शासकोंका नाम कलंकित रहेगा और काले अक्षरोंमें लिखा जायगा। हमारे सफेद बाल हो गये हैं और यह जीवन भी क्षणभंगुर है। इधर हमारे पीछे क्या होगा—इस बातकी भी हमें कोई विशेष

चिन्ता नहीं है। अब तो हमें गोरक्षार्थ, धर्मरक्षार्थ हँसते-हँसते अपने प्राणोत्सर्ग कर गोहत्याके कलंकको दूर करके ही दम लेना शोभा देता है।

सरकार अपने दिये वचनको पूरा करे

हम आजकी इस भारतीय कांग्रेसी सरकारको यह चेतावनी दे देना चाहते हैं कि वह समय रहते चेते और अब भी सावधान होकर जरा समझदारीसे काम ले और अखिलम्ब इस गोहत्याके काले कलंकको भारतसे दूर कर दे। हम भारतके प्रधान मन्त्री स्वर्गीय श्रीलालबहादुर शास्त्रीसे स्वयं उनके स्थानपर जाकर मिले थे और उन्होंने उस समय हमें यह पूर्ण आश्वासन दिया था—पूर्ण विश्वास दिलाया था कि हम अब शीघ्र ही गोहत्या बंद कर देंगे और इस समय देशमें जो चार नये-नये बूचड़खाने बननेवाले हैं उन्हें भी हम बननेसे रोक देंगे। यह आश्वासन हमें प्रधानमन्त्री श्रीलालबहादुर शास्त्रीने श्रीगुलजारीलाल नन्दाके सामने दिया था। वे उस समय वहाँपर उपस्थित थे। अब यदि प्रधान मन्त्री श्रीलालबहादुर शास्त्रीकी मृत्युके पश्चात् उनके द्वारा किये देशका सर्वनाश करनेवाला ताशकन्द-समझौता माना जा सकता है और उसका पालन किया जा सकता है तो फिर उनके द्वारा गोहत्या बंद करनेका आश्वासन देनेके वचनोंका पालन क्यों नहीं किया जा सकता ? पता नहीं इस अन्धी और बहरी सरकारके कानोंपर हमारे बार-बार प्रार्थना करनेपर भी जूँ क्यों नहीं रेंगती और गोहत्या-जैसे घोर पापको बंद करनेमें इसे क्या आपत्ति है ?

गोहत्या बंद होते ही भारत सर्वप्रकारसे सुखी हो जायगा

यह हम आज डंकेकी चोट घोषणा करके कहते हैं कि जबतक इस धर्मप्राण भारतमें गोहत्याका काला कलंक जारी है और जबतक इसमें पूर्णरूपेण गोरक्षा नहीं होगी, तबतक इस देशमें आप चाहे खूब प्रयत्न

क्यों कदापि सुख-शान्ति नहीं होगी तथा देशमें आयी नाना प्रकारकी घोर विपत्तियाँ भी कदापि दूर नहीं होंगी। यदि इस सरकारने देशसे गोहत्या बंद कर दी और इसे ऐसी सदबुद्धि आ गयी तो हम इसे यह विश्वास दिलाते हैं कि भारतसे गोहत्याके बंद होते ही सारी घोर विपत्तियाँ स्वतः ही दूर हो जायँगी और फिर यह अन्नकी समस्या भी स्वतः ही हल हो जायगी तथा वर्षा आदिका न होना या अतिवृष्टि या अनावृष्टि आदिकी सब समस्याएँ भी हल हो जायँगी। यह देश

सर्वप्रकारसे सुख-शान्तिसे, धनधान्यसे सम्पन्न हो जायगा। गोहत्यासे बढ़कर कोई दूसरा घोर पाप नहीं है और जबतक देशमें गोहत्याका यह घोर पाप जारी रहेगा, तबतक देशमें लाख प्रयत्न करनेपर भी सच्ची सुख-शान्ति नहीं होगी। यह हमारी स्पष्ट घोषणा है। इसलिये यदि देशका कल्याण चाहते हो तो अविश्वम्भ गोहत्या बंदकर भारतका मुख उज्ज्वल करो।

बोलो गोमाताकी जय।

बोलो सनातनधर्मकी जय॥

गो-रक्षा परम धर्म है

(ब्रह्मलीन पूव्यपाद अनन्तश्री जयदयालजी गोयन्दकाका दिव्य संदेश)

.....गो-रक्षा सर्वसाधारणका परम धर्म है; क्योंकि गौ धार्मिक और आर्थिक—सभी दृष्टियोंसे इहलोक और परलोकमें सब प्रकारसे सबके लिये परम हितकारी और सर्वश्रेष्ठ पशु है। गौएँ सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता हैं। वे सबको सुख देनेवाली हैं। जो अपने अभ्युदयकी इच्छा रखता हो, उसे गौओंको सदा दाहिने करके चलना चाहिये।

मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।

वृद्धिमाकाङ्क्षता नित्यं गावः कार्याः प्रदक्षिणाः॥

(महा० अनुशासन० ६९।७)

गौमें सब देवता विराजमान हैं (महा० आश्वमेधिक० ९२)। गौके दूध, दही, घीसे मनुष्य, देवता, पितर, ऋषि—सबकी तृप्ति होती है। इनके बिना यज्ञ तो किसी तरह भी नहीं हो सकता। गौके ये सब पदार्थ मानव-जीवन-रक्षाके लिये परमोपयोगी हैं। दूध, दही, घीकी तो बात ही क्या, गौके गोबर, गोमूत्र भी स्वास्थ्यके लिये परम हितकर और पवित्र हैं। इसीलिये कहा गया है कि मनुष्य प्रतिदिन शरीरमें गोबर लगाकर स्नान करे। सूखे हुए गोबरपर बैठे।

उसपर थूक न फेंके, मल-मूत्र न छोड़े तथा गौको कष्ट न दे।*

यही नहीं, गोबर-गोमूत्रमें तो लक्ष्मीका निवास बतलाया गया है (महा० अनुशासन० ८२।२४)। एवं गोबर-गोमूत्रको खेतीके लिये सबसे बढ़कर खाद माना गया है। गौका बछड़ा (बैल) खेतीके लिये जितना उपयोगी है, उतना दूसरा कोई पशु नहीं है तथा दानोंमें भी गोदानकी सबसे बढ़कर महिमा कही गयी है। गोदानसे बढ़कर कोई पवित्र दान नहीं है। गोदानके फलसे श्रेष्ठ दूसरा कोई फल नहीं है तथा संसारमें गौसे बढ़कर दूसरा कोई उल्लूक प्राणी नहीं है।†

अतः गौ हमलोगोंके लिये सब प्रकारसे परम हितकारक प्राणी है। गौ शुद्ध, सरल, निराविषभोजी

* गोमयेन सदा स्नायात् करीषे चापि संविशेत्।

श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि प्रतिघातं च वर्जयेत्॥

(महा० अनुशासन० ७८।१९)

† नातः पुण्यतरं दानं नातः पुण्यतरं फलम्।

नातो विशिष्टं लोकेषु भूतं भवितुमर्हति॥

(महा० अनुशासन० ८०।१९)

तथा उत्तम गुणोंसे युक्त होनेके कारण पशुओंमें सात्त्विक है। सभी दृष्टियोंसे गौकी बड़ी भारी महिमा है।

× × ×

प्राचीन कालमें एक-एक नगरमें लाखों गौएँ रहा करती थीं। वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डके ३२ वें सर्गमें कथा आती है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके पास त्रिजट नामक एक ब्राह्मण आये और उनसे धनकी याचना की। श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा—‘विप्रवर ! मेरे पास बहुत-सी गौएँ हैं। आप अपना डंडा जितनी दूर फेंक सकेंगे, वहाँतककी सब गौएँ आपको मिल जायँगी।’ ब्राह्मणदेवने वैसा ही किया और उनको हजारों गौएँ प्राप्त हो गयीं, जिससे वे बड़े ही प्रसन्न हुए।

विचार कीजिये, जहाँ विनोदके रूपमें एक याचकको इस प्रकार हजारों गौएँ दानमें दी जाती हैं, वहाँ दाताके पास कितनी गौएँ हो सकती हैं ? भागवत दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें वर्णन मिलता है कि नन्द-उपनन्द आदि गोपोंके पास लाखों गौएँ रहा करती थीं। श्रीकृष्णके जन्म-महोत्सवपर ही नन्दजीने दो लाख गौओंका दान किया था (अ० ५)। राजा नृगका इतिहास प्रसिद्ध ही है कि वे हजारों गौओंका दान प्रतिदिन किया करते थे (भागवत दशम स्कन्ध उत्तरार्ध ६४)। महाभारतकालमें राजा विराटके पास लगभग लाख गौएँ थीं, जिनका हरण करनेके लिये कौरवोंकी विशाल सेनाने त्रिगर्तराज सुशर्माके साथ दो भागोंमें

विभक्त होकर विराटनगरपर चढ़ाई की थी (महा० विराट० ३५)।

उस समय गौओंकी संख्या पर्याप्त होनेके कारण दूध, दही, घी, मक्खनकी भरमार रहती थी, पर आज तो औषध-सेवनमें अनुपानके लिये भी गौका शुद्ध घी प्राप्त होना कठिन हो रहा है। फिर यज्ञ और दैनिक खान-पानके लिये तो प्राप्त होना बहुत ही कठिन है। इस समय लाखों दुधार गौएँ तो किपी-किसी जिलेमें भी मिलनी कठिन हैं। हमें समझना चाहिये कि गौ आध्यात्मिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक—सभी दृष्टियोंसे परम उपयोगी है।

× × ×

अतएव हमलोगोंको सभी प्रकारसे गौओंकी भली-भाँति रक्षा करनेका पूरा प्रयत्न करना चाहिये। गौओंकी रक्षाके लिये गोचरभूमि छोड़नी चाहिये। हरेक भाईको यथाशक्ति अपने घरमें गौ रखकर उसका पालन करना चाहिये। इस समय तो गौओंका हास बहुत अधिक मात्रामें हो गया और हो रहा है। जगह-जगह कसाईखाने खुल गये और खुल रहे हैं। सरकारकी ओरसे १४ वर्षकी गौका वध करनेपर प्रतिबन्ध होनेपर भी कानूनके विरुद्ध छोटे-छोटे बछड़े-बछड़ी और गौओंकी हिंसा हो रही है। इसलिये सभी मनुष्योंको गोरक्षाके लिये तेजीसे जीतोड़ प्रयत्न करना चाहिये, जिससे गोवध कतई बंद हो और गोधनकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो, इसमें सभीका सब प्रकारसे हित है।

(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीसालिगयाम)

प्रार्थना

भगवन् ! ऐसी सन्मति दो, हो जिससे गोहत्या सब बन्द ।
पुण्यभूमिका महापाप यह मिटे सर्वथा आनन्दकन्द ॥
फूलें फलें पुनः भारतमें गो-धन सुखपूर्वक स्वच्छन्द ।
बढ़े दूध-दधि-घीकी सरिता, बढ़े प्रजाजनमें आनन्द ॥

गीतोक्त साधन-सम्पत्ति

(संकलनकर्त्ता और प्रेषक—श्री हरिकृष्णदासजी गोयन्दका)

[गताङ्क पृष्ठ १२२४ से आगे]

५५—जब साधक न तो इन्द्रियोंके शब्द आदि विषयोंमें आसक्त होता है और न कर्मोंमें ही आसक्त होता है, तब वह सब प्रकारके संकल्पोंसे स्वाभाविक ही रहित हो जाता है। अतः उसका संसार-समुद्रसे अनायास उद्धार हो जाता है।

५६—जो साधक समस्त कामनाओंका सर्वथा त्याग करके सब प्रकारकी आवश्यकतासे रहित हो जाता है, उस अहंता और ममतारहित साधकको सदा रहने-वाली नित्य शान्ति मिलती है।

५७—जिस साधकके समस्त कर्मकामनाके संकल्पसे रहित होते हैं अर्थात् जिसके मनमें फलकी कामनाका संकल्प नहीं होता, वही बुद्धिमान् है; क्योंकि उसके वे कर्म बाँधनेवाले नहीं होते।

५८—जो साधक कर्मफलकी आसक्तिका त्याग करके अर्थात् कर्मफलके रूपमें मिलनेवाले समस्त भोगोंमें सर्वथा अनासक्त होकर नित्य तृप्त है, वह सब कर्म करते हुए भी वास्तवमें कुछ नहीं करता।

५९—शरीरधारी मनुष्यके द्वारा सब कर्मोंका पूर्णतया त्याग नहीं हो सकता, इसलिये जो कर्मफलका त्यागी है, वही वास्तवमें त्यागी है। अतः साधकको समस्त कर्मोंके फलका त्याग कर देना चाहिये।

६०—जिस साधकका कर्मोंमें कर्तापन नहीं रहता और जिसकी बुद्धि कर्मफलमें लिस नहीं होती अर्थात् जो कर्मका फल नहीं चाहता, वह कर्म करता हुआ भी न तो वास्तवमें कर्म करता है और न उसके फलसे ही बँधता है।

६१—साधकको हरेक कर्तव्य कर्मफलकी कामनाका

त्याग करके परम श्रद्धापूर्वक शास्त्रके आज्ञानुसार विधि-विधानसे ही करना चाहिये।

६२—यह मनुष्य-शरीर क्षेत्र है; क्योंकि इसमें किये हुए कर्मोंका फल प्राणी नाना योनियोंमें भोगता है। जो इसको जानता है वह क्षेत्रज्ञ अर्थात् आत्मा है। अतः साधकको चाहिये कि इसको पाकर अपना उद्धार कर ले।

६३—विवेकके प्रकाशमें शरीर और आत्माके भेदको जान लेनेका नाम अध्यात्मज्ञान है। उस ज्ञानमें साधकको सदैव सावधान रहना चाहिये। कभी भी शरीरको अपना स्वरूप नहीं मानना चाहिये।

६४—प्रकृतिसे सम्बन्ध रखनेवाला जीव ही सुख-दुःखके रूपमें प्रकृतिजनित गुणोंका उपभोग करता है। अच्छी-बुरी योनियोंमें बार-बार जन्म लेनेका कारण गुणोंका सङ्ग ही है। अतः साधकको गुणोंके सङ्गका त्याग कर देना चाहिये।

६५—साधकको हरेक परिस्थितिमें सदैव निर्भय रहना चाहिये। किसी भी व्यक्ति या प्राणीसे भयभीत नहीं होना चाहिये। अपनेको शरीरसे अलग समझना चाहिये तथा तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये साधनमें अच्छी प्रकार लगे रहना चाहिये। आलस्य या प्रमाद नहीं करना चाहिये।

६६—साधकमें स्वाभाविक साधन-सम्पत्तिका तेज होना चाहिये, जिससे उसके सामने कोई साधारण मनुष्य भी अन्यायका आचरण न कर सके तथा सात्त्विक धृति अर्थात् सात्त्विक विचारोंको और भावोंको धारण करनेकी शक्ति भी होना चाहिये।

६७—किसी प्रकारके अच्छेपनको या बड़प्पनको स्वीकार करके आदर या सम्मानकी इच्छा रखना ही मानित्व है। साधकको इसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

६८—किसी प्रकारके गुण, अवस्था, जाति, अधिकार या पदके आधारपर अपनेको बड़ा और दूसरोंको छोटा, नीचा या पतित समझकर उनका तिरस्कार करना—अनादर करना अतिमानता है। अभिमान भी इसीको कहते हैं। इसका साधकको सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

६९—स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरोंमेंसे किसी भी शरीरके सम्बन्धको लेकर अपनेमें व्यक्तिभावको स्वीकार कर लेना ही अहंकार है। अतः साधकको चाहिये कि अहंकारसे सर्वथा रहित हो जाय।

७०—धन, जन, विद्या, जाति, आश्रम आदिको लेकर जो अपनेमें बड़प्पनकी स्वीकृति है जिसको घमंड कहते हैं, वह दर्प है। साधकको इसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

७१—शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति तथा धनकी शक्ति, सेना आदि मनुष्योंकी शक्ति आदि सब प्रकारके सामर्थ्यका नाम बल है। इन सबके सम्बन्धसे अपनेको बलवान् शक्तिशाली न मानना ही बलका परित्याग करना है।

७२—अपने सुखभोगके लिये धन, वस्तु, मकान आदिका संग्रह करना और उनको अपना मानना परिग्रह है। साधकको इस मान्यताका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

७३—अप्राप्त वस्तुकी, मकान आदिकी प्राप्ति की चाह तथा प्राप्तके बने रहनेकी चाह और प्रतिकूलके नाशकी चाहका नाम काम है, साधकको इस कामनाका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

७४—अपने प्रतिकूल और शास्त्रविरुद्ध व्यवहार अपने द्वारा भूलसे भी किसीके प्रति प्रतिकूल व्यवहार

करनेवालेपर तथा आज्ञा न माननेवालेपर जो क्षोभ और उत्तेजनात्मक भाव होता है, उसका नाम क्रोध है। साधकको क्रोधका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

७५—साधकको अपना जीवन ऐसा बना लेना चाहिये, जिससे किसीको भी किसी प्रकारका कष्ट या उद्वेग न हो तथा वह स्वयं भी किसीके व्यवहारसे कभी भी विचलित या उद्दिग्ध न हो।

७६—साधकको सब प्रकारकी आवश्यकतासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध, हरेक परिस्थितिमें अपने कर्तव्यपालनमें सावधान, पक्षपातरहित और सब प्रकारकी व्यथासे रहित एवं समस्त कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित रहना चाहिये।

७७—साधकको समस्त प्राणियोंमें द्वेष-भावसे रहित होना चाहिये। अर्थात् न तो किसीको बुरा समझना चाहिये, न किसीका अनिष्ट करना चाहिये, न किसीकी उन्नतिमें बाधक होना चाहिये, न किसीको अपना वैरी या द्वेषी मानना चाहिये और न किसीको अपने दुःखमें हेतु ही मानना चाहिये। तभी साधक द्वेष-भावसे रहित रह सकता है।

७८—साधकको सबके प्रति निष्काम मित्रभाव रखना चाहिये। अर्थात् उसकी सदा ही समानभावसे सबके हितमें प्रवृत्ति होनी चाहिये। किसीसे भी किसी प्रकारके स्वार्थ-साधनकी भावना नहीं रखनी चाहिये।

७९—साधकको ममतासे रहित होना चाहिये। अर्थात् किसी भी व्यक्तिको या पदार्थको कभी भी अपना नहीं मानना चाहिये। उनसे किसी प्रकारके सुखभोगकी कामना या आशा नहीं करनी चाहिये। भगवान् के नाते सबको समानभावसे अपना मानना ममता नहीं है।

८०—साधकको क्षमाशील होना चाहिये अर्थात्

हो जानेपर तत्काल क्षमा माँग लेनी चाहिये तथा पुनः वैसी गलती न करनेका दृढ़ संकल्प कर लेना चाहिये एवं किसीका व्यवहार अपने प्रतिकूल प्रतीत हो तो तत्काल उसे क्षमा कर देना चाहिये। अपने मनमें उसका कोई अपराध नहीं समझना चाहिये।

८१—साधकको ऐसे वचन बोलना चाहिये जो किसीके लिये उद्वेग करनेवाले न हों, जो सत्य हों, प्रिय हों और सर्वहितकारी हों। इसके विपरीत कभी नहीं बोलना चाहिये।

८२—वास्तवमें न होनेपर भी अपनेमें किसी प्रकार के गुणका या श्रेष्ठताका प्रदर्शन करना दम्भ है। साधकको दम्भका सर्वथा त्याग करके दम्भरहित हो जाना चाहिये।

८३—किसीका अहित चाहना, किसीकी हानिमें प्रसन्न होना, किसीका किसी प्रकारसे अहित करना आदि यह सब हिंसाके भाव हैं। साधकको हिंसाका सर्वथा त्याग करके हिंसारहित हो जाना चाहिये।

८४—मनमें तथा वाणीमें किसी प्रकारके छल-छिद्र-का न रहना, जिस समय जो परिस्थिति हो उसे बिना किसी प्रकार छिपाये प्रकट कर देना ही सरलता है। साधकको सदैव सरल रहनेका स्वभाव बना लेना चाहिये।

८५—सत्यतापूर्वक शुद्ध व्यवहारसे धनकी, उसके द्वारा प्राप्त अन्नसे भोजनकी, जल-मृत्तिका आदिसे शरीर-की तथा यथायोग्य बर्तावसे आचरणकी शुद्धि तो बाहर-की शुद्धि है। एवं राग-द्वेष और कपट आदि विकारोंका नाश होकर अन्तःकरणका शुद्ध हो जाना भीतरकी शुद्धि है। जीवनमें दोनों प्रकारकी शुद्धि लाकर साधक-को सर्वथा शुद्ध हो जाना चाहिये।

८६—साधकको चाहिये—मन, वाणी और शरीरको अपने वशमें रखवे, अन्तःकरणके निर्मल, स्वच्छ और राग-द्वेषरहित होनेपर ही ये सब वशमें होते हैं। फिर

साधकके जीवनमें किसी प्रकारकी पराधीनता नहीं रह जाती।

८७—अच्छी प्रकार आचरण किये हुए परधर्मरूप श्रेष्ठ कर्मोंकी अपेक्षा अपना गुणरहित साधारण कर्म भी कल्याणकारण है; क्योंकि अपने छिये विधान किये हुए कर्मोंको करता हुआ मनुष्य पापको प्राप्त नहीं होता। अतः साधकको स्वधर्मका पालन करना चाहिये।

८८—साधकको हर समय निष्काम विशुद्ध भावसे सम्पन्न रहना चाहिये तथा ध्यानमें निमग्न रहना चाहिये। विशुद्ध भावसे ही साधक अपने साधनमें अग्रसर हो सकता है।

८९—काम, क्रोध और लोभ—ये तीनों नरकके द्वार हैं और मनुष्यका पतन करनेवाले हैं। अतः साधकको इनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। इनके रहते हुए साधनमें उन्नति नहीं हो सकती।

९०—नरकके द्वाररूप काम, क्रोध और लोभसे रहित होकर साधक जब अपने कल्याणकी चेष्टा करता है तब वह परमगतिरूप मोक्षको प्राप्त होता है।

९१—साधकको समझना चाहिये कि कर्तव्य और अकर्तव्यका निर्णय करनेके लिये शास्त्र ही प्रमाण है। अतः साधकको हरेक कार्य शास्त्रके विधानानुसार ही करना चाहिये।

९२—जो मनुष्य शास्त्रके विधानका त्याग करके अपने इच्छानुसार आचरण करता है, वह न तो सुखको प्राप्त होता है, न कार्यकी पूर्णताको प्राप्त होता है और न परमगतिको ही प्राप्त होता है। अतः साधकको शास्त्र-आज्ञानुसार कार्य करना चाहिये।

९३—जो भोजन करनेके पदार्थ आयु, बल, आरोग्यता, सुख और प्रियताको बढ़ानेवाले, अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले, रसयुक्त, चिकने, स्थायी और प्रिय हों वे ही

सात्त्विक हैं । अतः साधकको शरीररक्षाके उद्देश्यसे सात्त्विक पदार्थोंका ही सेवन करना चाहिये, राजस-तामस भोजन नहीं करना चाहिये ।

९४—साधकको चाहिये कि किसीकी सहायताके उद्देश्यसे जब किसीको कुछ देना हो तो उससे प्रत्यु-पकारकी आशा न करके, यथायोग्य देशमें, उचित समयपर और यथार्थ पात्रको ही देना चाहिये । जिसको दिया जाय उसे सम्मानपूर्वक तथा किसी प्रकारके क्लेशका अनुभव न करके अपनी शक्तिके अनुसार देना चाहिये ।

९५—मन और इन्द्रियोंसहित शरीरका मनुष्यके वशमें हो जाना ही इनका संयम है । अतः साधकको सदैव मन और इन्द्रिय आदिपर अपना अधिकार रखना चाहिये । अपने आपको सब प्रकारसे अपने वशमें रखना, किसी भी परिस्थितिमें विचलित न होना ही स्थिरता है । अतः सदैव अविचलभावसे स्थिर रहना चाहिये ।

९६—साधकको स्वभावसे ही एकान्त स्थानका सेवन करना चाहिये । उसमें किसी प्रकारकी ममता या आसक्ति नहीं होनी चाहिये तथा जनसमुदायमें स्वाभाविक ही वैराग्य होना चाहिये—घृणा या द्वेष-पूर्वक नहीं ।

९७—साधकका खानपान शुद्ध और सात्त्विक तथा सब प्रकारसे उचित होना चाहिये और उसे सबके साथ यथायोग्य सम्बन्धके अनुसार स्वार्थत्यागपूर्वक सेवाभावको सुरक्षित रखते हुए वर्तव्य करना चाहिये । कर्तव्य-कर्मोंका पालन भी यथायोग्य करना चाहिये तथा सोना और जागना भी शरीरके हितकी दृष्टिसे यथायोग्य ही करना चाहिये, सुखभोगके लिये नहीं । तभी वह साधननिष्ठ हो सकता है ।

९८—साधकको चाहिये कि पंकज्यसे उत्पन्न होने-वाली समस्त कामनाओंका समूल त्याग करके इन्द्रिय-समुदायको मनके द्वारा अपने वशमें करके क्रम-क्रमसे

संसारके चिन्तनसे उपरत हो जाय । मनको परमात्मामें स्थित करके किसी प्रकारका चिन्तन न करे ।

९९—विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे होनेवाले भोग, जो आरम्भमें सुखरूप प्रतीत होते हैं, परिणाममें दुःखके ही हेतु हैं; क्योंकि सब उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं । अतः बुद्धिमान् साधकको न तो उनमें आसक्त होना चाहिये और न सुखबुद्धिसे उनका सेवन ही करना चाहिये । केवल शरीरके निर्वाह-की दृष्टिसे उनका उचित तथा सीमित उपयोग करना चाहिये ।

१००—अविनाशी तत्त्व आत्माका कोई भी विनाश नहीं कर सकता और शरीर अवश्य ही नाश होने-वाला है, यह सदैव रह नहीं सकता । इस रहस्यको समझकर साधकको चाहिये कि साधनपरायण होकर अपने लक्ष्यकी प्राप्ति करे ।

१०१—साधकका कर्म करनेमें अर्थात् अपने कर्तव्यका पालन करनेमें ही अधिकार है, उसके फलमें कभी भी किसी प्रकारका अधिकार नहीं है । अतः साधकको कभी भी कर्मोंके फलकी इच्छा नहीं करनी चाहिये तथा कर्म न करनेमें अर्थात् अकर्मण्यताके सुखमें भी आसक्त नहीं होना चाहिये ।

१०२—जो साधक राग-द्वेषका त्याग करके अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा साधनोपयोगी विषयोंका शरीरनिर्वाहकी दृष्टिसे सेवन करता है, उसका मन शान्त और शुद्ध हो जाता है ।

१०३—जो साधक सब प्रकारकी आसक्तिसे रहित होकर मनके द्वारा इन्द्रियोंको वशमें करके उनके द्वारा यथायोग्य साधनोपयोगी आचरण करता है, वह अपने साध्यकी ओर अग्रसर हो सकता है ।

१०४—साधकको चाहिये कि अपनी परिस्थिति और योग्यताके अनुसार जिस समय जो कर्म उसके लिये करना आवश्यक हो और जो उसका कर्तव्य हो,

उसे अनासक्त भावसे अवश्य पूरा कर दे; क्योंकि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। आसक्तिरहित होकर कर्मोंका आचरण करनेवाला मनुष्य परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

१०५—प्रत्येक इन्द्रियके प्रत्येक विषयमें रागद्वेष रहते हैं। अतः साधकको उनके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे रागद्वेष ही साधनमें विघ्न करनेवाले शत्रु हैं। अतः हरेक काम रागद्वेषसे रहित होकर करना चाहिये।

१०६—अपने-आप जो कुछ अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त हो, उसीमें जो साधक संतुष्ट रहता है, जो सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे अतीत है तथा जिसमें

मत्सरताका दोष नहीं है, वह कर्म करके भी बँधता नहीं है।

१०७—साधकको चाहिये कि अज्ञानसे उत्पन्न हृदयमें स्थित संशयका विवेकरूप खड्गके द्वारा छेदन करके निश्चयपूर्वक अपने साधनमें संलग्न हो जाय, तत्परतासे साधन करता रहे।

१०८—जो मनुष्य अभिमानका आश्रय लेकर यह मान लेता है कि 'मैं कर्म नहीं करूँगा, एकान्तमें रहूँगा'—उसका वह निश्चय मिथ्या है; क्योंकि उसका स्वभाव उसको बलात् कर्म करनेमें लगा देगा। अतः साधकको चाहिये कि भगवान्की आज्ञाके अनुसार भगवत्सेवाके भावसे अपने कर्तव्यका पालन करता रहे।

सावधान !

(लेखक—साधुवेषमें एक पथिक)

मानव-जीवनमें गतिके आरम्भसे विराम-स्थल, विश्राम-धामतक 'सावधान' सर्वसिद्धिमें सहायक मन्त्र है। पशु-को दण्डद्वारा सावधान किया जाता है; मानव शब्द-द्वारा सावधान होता है। जो मानव 'सावधान' शब्द सुन-पढ़कर सावधान नहीं होता, उसमें पशु-प्रकृतिकी प्रधानता है।

जहाँ कहीं खतरा होता है, हानि-आक्रमण दुर्घटनाकी आशंका होती है, वहीं लिखा रहता है—'सावधान'।

स्टेशनोंमें भीड़के स्थलोंमें लिखा होता है—'सावधान', पर हम प्रायः देखते हैं कि किसीकी जेब कट गयी है, किसीको पैसे कम वापस किये गये हैं और किसीसे अधिक ले लिये गये हैं। तीर्थ-स्थलोंमें मन्दिरों, घाटों, बसों और रेल-यात्रामें अपने सामानकी सुरक्षाके लिये सावधान रहनेकी सूचना पढ़ते-सुनते हुए भी बक्स उतर जाने, बिस्तर चले जाने, सामान भुङ्ग जानेकी सूचनाएँ मिलती ही रहती हैं।

अपने शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये खादिष्ट और पौष्टिक भोजनमें सदा सावधान मनुष्य अधिक संख्यामें अस्वस्थ देखे जाते हैं। अपनी संतानको सदा सुखी देखनेकी कामनासे उनकी शिक्षामें सहस्रों रुपये खर्च करते हुए माता-पिता उनकी उस असावधानीको नहीं देख पाते, जिससे शिक्षा-कालमें ही मनमें वस्तुओंकी दासता-विलासिता बढ़ती जाती है, जो प्रत्येक सुखके अन्तमें दुःखका भोग लाती है।

अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिये मनुष्यकी अपेक्षा बिल्ली, बगले, चूहे और चींटी आदि छोटे-छोटे जन्तु अधिक सावधान हैं; क्योंकि उन्हें परमार्थका ज्ञान नहीं है।

सावधान रहते हुए भी प्रारम्भवश लोभीजनोंकी धन-हानि हो ही जाती है; सम्मानके लिये सावधान रहते हुए भी अपमान और अपकीर्तिके अवसर आ ही जाते हैं। तनके लिये सावधान रहते हुए भी प्रायः चोटें लगती रहती हैं, अङ्ग-भंग होते देर नहीं लगती।

परिवारमें सावधान रहते हुए भी सम्बन्ध-विच्छेदकी घटनाएँ होती रहती हैं।

सभ्य मानव रागियोंसे धोखा खाकर विरागियोंपर विश्वास करता है, भोगियोंसे हटकर त्यागियोंमें श्रद्धा करता है, अज्ञानियोंकी बातें न सुनकर ज्ञानियोंकी सुनता है, आसक्तकी ओरसे मुख मोड़कर विरक्तकी ओर देखता है, तथापि भूल-भ्रान्ति और अज्ञानकी निवृत्तिके लिये सावधान न रहनेके कारण जिधर विश्वास, श्रद्धा और आस्था रखता है उधर ही धोखेमें रहता है। प्रश्न है कि जब जन्मसे मृत्युतक संयोग-वियोग, लाभ-हानि, यश-अपयश तथा रोग-क्लेशादि द्वन्द्व निश्चित हैं, तब कोई प्रतिकूल तथा ईश्वर-तन्त्राधीन घटनाओंसे बचनेके लिये कहाँतक सावधान रहेगा ? गुरुजनोंकी तो यही सम्मति है कि आप बाह्य प्रतिकूलताओंसे सावधान रहनेकी अपेक्षा आकस्मिक अनुकूलता अथवा प्रतिकूलतामें कर्तव्य-पालनके लिये सावधान रहें। आप दुःखसे न डरते हुए उस दोषसे सावधान रहें जिसके कारण दुःख भोगना पड़ता है।

आपको धन-रक्षामें सावधान रहनेके साथ-साथ उस लोभसे भी सावधान रहना चाहिये जो धन-संचयकी दासतामें जकड़ देता है। आपको पद-विकार-रक्षामें सावधान रहनेके साथ-साथ उस अहंकारसे भी सावधान रहना चाहिये, जिसे मान अत्यन्त प्रिय लगता है और उसी मात्रामें अपमानका दुःख भोगना पड़ता है। आपको परिवार-रक्षामें सावधान रहनेके साथ-साथ उस मोहसे भी सावधान रहना चाहिये जिसके कारण ही वियोग होनेपर घोर दुःख होता है। आपको भोग-सामग्रीकी रक्षामें चिन्तित रहनेके साथ-साथ उस सुखोपभोगकी तृष्णासे सावधान रहना चाहिये जिसके कारण परिग्रह-संग्रहका व्यसन पड़ जाता है, कहीं शान्ति नहीं मिलती।

यदि आपको सावधान ही होना है तो देहासक्तिसे सावधान रहना चाहिये, इसके कारण ही अनेक वस्तुओं और व्यक्तियोंमें आसक्ति हो जाती है जो मनुष्यकी

स्वाधीनताका हरण कर लेती है। आसक्तियोंके रहते मानव विरक्त नहीं हो पाता तथा विरक्त हुए बिना प्रभुका भक्त नहीं हो पाता।

हमें यह भी समझाया गया कि मनुष्यके जीवनमें प्रारब्धके अनुसार ही अनुकूल-प्रतिकूल, सुजन-दुर्जनका संयोग हुआ करता है। आपको किसी छली, कपटी, धूर्त, दम्भी तथा पाखण्डीसे सावधान रहनेकी अपेक्षा अपने साथ रहनेवाले मनरूपी साधनके सदुपयोगके लिये सावधान रहना चाहिये। यदि आपने मनको इन्द्रियोंके विषय-रसास्वादमें लगा दिया तो शक्तिका हास और अन्तमें विनाश निश्चित है और यदि उसे प्रभुमें लगाया, तो दैवीगुणोंका विकास और सत्य ज्ञानका प्रकाश प्राप्त होना निश्चित है। मनके दुरुपयोगसे मनुष्य घोर बन्धनमें जकड़ जाता है और सदुपयोगसे साधक बन्धनसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जो मनको अपना मानकर संसारमें लगाता है, वह असावधान भोगी है, जो उसे प्रभुका मानकर उन्हींमें लगाता है वही सावधान योगी है। आप उस बुद्धिसे भी सावधान रहें जिसके द्वारा अविवेकपूर्वक मनको कारण न मानकर कर्ता मान लेते हैं।

आप भविष्यकी चिन्तासे चिन्तित होकर अनिष्टसे बचनेके लिये सावधान रहनेकी अपेक्षा उस चित्तसे सावधान रहें जिसकी वृत्तियोंद्वारा असत् अनित्यका चिन्तन करते हुए उन्हींसे तद्रूपता प्राप्त करते हैं और वृत्तियोंको विषयाकार बनाकर भोगी बन जाते हैं, सावधान होकर उन्हींका निरोध कर आप योगसिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। आप चित्तकी वृत्तियोंको सावधान होकर देखें, इनकी गतिमें ही प्रवृत्ति होती है तथा इनके शान्त होनेमें ही निवृत्ति है। चित्त जड वस्तुके चिन्तनसे जडमय हो जाता है और चिन्मात्र स्वरूपके चिन्तनसे चिन्मयता प्राप्त करता है। अशुद्धके चिन्तनसे इसमें अशुद्धि और शुद्धके चिन्तनमात्रसे शुद्धि आ जाती है। चित्तकी बहिर्मुखी वृत्ति नाम-रूपका रागी और अन्तर्मुखी वृत्ति आत्मानुरागी बना देती है। सावधान साधक

चित्तको विषयचिन्तनसे मोड़कर भगवान्‌के चिन्तनमें जोड़ देते हैं, चित्तके चिन्तनको सावधान रहकर देखते रहना है तथा प्रभुके चिन्तनमें इसे जोड़ते रहना है। यदि आप असङ्ग हो सकें, तो न तोड़ना है, न जोड़ना है।

हमें यह भी समझाया गया है कि अहंकारसे सावधान रहना चाहिये। बाहरके शत्रु संसारसे मिली हुई वस्तुएँ ही छीन सकते हैं, पर अहंकार तो उस सर्वस्वका हरण कर लेता है जो हमें अनन्तसे मिला है। यह अहंकार समस्त दैवी निधिको अपनी मानकर स्वयं ही ज्ञानी, ध्यानी, बलवान्, धनवान्, विद्वान्, दयावान्, श्रीमान्, शक्तिमान्, त्यागी, तपस्वी और उदार—सब कुछ बन बैठता है। यह अहंकार ही असीममें रहकर उसका सब कुछ सीमित बना देता है, अमृतमें रहकर मृत्युका दुःख दिखाता है; अविनाशीसे सत्ता पाकर विनाशका बार-बार दर्शन कराता है। यह नित्य आत्मा-में रहकर अनित्य देहकी ममतामें बाँध देता है। यह निरन्तर वर्तमानमें स्थित रहकर भूतके मनन और भविष्यकी चिन्तामें व्यस्त-व्रस्त करता रहता है।

सावधान होकर यह समझ लेनेकी बात है कि जहाँ चित्त और बुद्धि साधकको बन्धनसे मुक्त बनानेमें—परमार्थसिद्धिमें नित्य सहायक हैं वहीं अहंकार और मन संसारमें फँसानेमें सदा सहायक रहते हैं। स्वयं भगवान् भी सावधान करते हैं कि यह अहंकार ही सत्य, शान्ति, अमरत्व, मुक्ति और भक्तिसे विमुख रखनेमें अग्रगण्य है, इसीलिये आप अहंकारको सावधान होकर बुद्धियोग-द्वारा प्रभुकी शरण लेकर पहचान लें। अहंकारके भीतर जो कुछ भी है उसे प्रभुका ही जानकर उन्हींके लिये उसका सदुपयोग करें। केवल 'अहं' अनन्तकी अन्तः-करणमें स्फुरित चैतन्य ज्योति है। यह चिन्मय ज्योति जब प्रकृतिके तत्त्वोंसे, नाम-रूपसे लिपट जाती है, तब आकारित होकर अहंकार बन जाती है।

गुरु-विवेकका आश्रय लेनेपर स्पष्ट दीखता है कि लोभी प्राणी धनकी प्राप्ति और उसकी रक्षाके लिये, मोही प्राणी अपने सुखद संयोगकी प्राप्ति तथा उसे सुरक्षित रखनेमें और अहंकारी व्यक्ति अपने पदाधिकार-की प्राप्ति तथा प्राप्तको सुरक्षित रखनेके लिये सावधान हैं। आश्चर्य तो यह देखकर होता है कि कोई भी लोभी या मोही या अहंकारी अपनी सम्पत्ति या संयोग या अधिकारको सदा सुरक्षित नहीं रख सका। आगे भी नहीं रख सकेगा। प्राणी जो कुछ भी संसारमें पायेगा, उसे एक दिन खोयेगा और खोनेके पश्चात् रोयेगा; रोनेके बाद पुनः उसीको पाना चाहेगा जिसे छोड़ा है—यही जीवकी महान् असावधानी है।

परम प्रभु अपनी अहैतुकी कृपाके द्वारा जिसे सदबुद्धि और श्रद्धा प्रदान करते हैं, वही सावधान होकर अपने अहं और सम्बन्धजनित आकार—अहंकारको सावधान होकर देख पाता है। अहंका अनन्त चिद्घन सिन्धुमें बिन्दुकी भाँति नित्य युक्त अनुभव करना ही स्वरूपानुभूति है, सम्बन्धजनित आकारको अस्वीकार करना ही मुक्तिप्रद असङ्गता है, किसीके साथ मिठकर अपनेको कुछ न मानना ही शान्तिप्रद त्याग है। अपने आपमें अनन्त सन्निधानन्दघन परम तत्त्वकी अखण्ड अनुभूति ही भक्तिप्रद अनुराग है। सत्य परमात्मामें 'स्व' को देखना और 'स्व' की सीमामें स्वीकृत कल्पित 'पर' को—अनित्य असत्को देखना ही सम्यक् दर्शन है।

जो साधक सत्-असत्, नित्य-अनित्य, 'स्व'-पर, अहं-अहंकारको तथा जो कुछ मिला है उसे और जिससे मिला है उसको देखता है, वही सावधान है। यथार्थदर्शी ही सावधान है। असत्, अनित्य, परको देखनेवाला सदा असावधान है। जो प्राणी प्रभुकी शरणमें है वही सावधान है; शरणरहित जिसका मरण है, वह असावधान है।

रसस्वरूप श्रीकृष्ण और भावस्वरूपा गोपाङ्गनासमन्वित श्रीराधार्जिका तत्त्व-महत्त्व

(श्रीराधाष्टनी-महोत्सवपर गोरखपुरमें हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन)

नवललितवयस्कौ नव्यलावण्ययुञ्जौ
नवरसचलचित्तौ नूतनप्रेमवृत्तौ ।
नवनिधुवनलीलाकौतुकेनातिलोलौ
स्मर निभृतनिकुञ्जे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥
द्रुतकनकसुगौरस्निग्धमेघौघनील-
च्छविभिरखिलवृन्दारण्यमुद्गासयन्तौ ।
मृदुलनवदुकूले नीलपीते दधानौ
स्मर निभृतनिकुञ्जे राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥

रसब्रह्म

श्रुतियोंमें विभिन्न नामोंसे परात्पर ब्रह्म-तत्त्वका वर्णन किया गया है और प्रसंगानुसार वह सभी सत्य है तथा सभीमें एक पूर्ण सामञ्जस्य है। अन्न, प्राण, मन, विज्ञान (तैत्तिरीय उप० ३।३।५) आदि विभिन्न नामोंका निर्देश करनेके पश्चात् श्रुतिने 'आनन्द' के नामसे ब्रह्मका वर्णन किया—

आनन्दो ब्रह्मेति न्यजानात्, आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि
भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं
प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । (तैत्तिरीय उप० ३।६)

अर्थात् यह निश्चयपूर्वक जाना कि 'आनन्द' ही ब्रह्म है, आनन्दस्वरूप परात्पर तत्त्वसे ही ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर आनन्दके द्वारा ही जीवित रहते हैं और अन्तमें आनन्दस्वरूपमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं ।

श्रुतियोंने विभिन्न प्रकारसे 'आनन्दब्रह्म' का सविस्तर वर्णन किया । परंतु परात्पर तत्त्वके स्वरूप-निर्देशकी चर्चा अभी अधूरी ही रह गयी । अतएव श्रुतिने परात्पर तत्त्वकी रसस्वरूपता या 'रसब्रह्म'की रहस्यमयी चर्चा करते हुए संक्षेपसे कहा—

यद्वै तत् सुकृतम् । रसो वै सः, रसश्चेवायं
लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ।

(तैत्तिरीय उप० २।७)

'जो स्वयं कर्ता—स्वरूप-तत्त्व है, वही रस है—पूर्ण रसस्वरूप है । उस रसरूपको प्राप्त करके ही जीव आनन्दयुक्त होता है ।'

जो 'आनन्दब्रह्म' जगत्का कारण है, यह 'रसब्रह्म' ही उसका मूल है । यह 'रसब्रह्म' ही 'लीलापुरुषोत्तम' और 'रसिक ब्रह्म' है । जैसे सविशेष धूप ही निर्विशेष या अमूर्त सुगन्धका विस्तार करता है, वैसे ही एक सविशेष रसतत्त्वके अवलम्बनसे ही 'निर्विशेष आनन्द-तत्त्व' का प्रकाश होता है । अतएव जैसे धूप ही सौरभकी प्रतिष्ठा है, वैसे ही 'रस' ही 'आनन्द' की प्रतिष्ठा है । सविशेष रस-ब्रह्ममें ही निर्विशेष आनन्दब्रह्म प्रतिष्ठित है । रसरूप भगवान् श्रीकृष्णने इसीसे 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' की घोषणा करके इस सत्य सिद्धान्तको स्पष्ट किया है ।

रसकी उपलब्धिमें भाव आवश्यक

इस 'रस'की उपलब्धि 'भाव' के बिना नहीं होती । 'भावुक' हुए बिना 'रसिक' नहीं हुआ जाता । 'भावग्राह्य' या भावसाध्य रसका प्रकाशन—आस्वादन भावके बिना सम्भव नहीं । अतएव जहाँ 'रस'का प्रकाश है, वहाँ भावकी विद्यमानता है ही । इसीसे प्रेमरसास्वादनकारी ज्ञानी पुरुषोंने यह साक्षात्कार किया है कि सृष्टिके मूलमें—प्रकाश और प्रलय सभी अवस्थाओंमें—भावपरिरम्भित, भावके द्वारा आलिङ्गित रसके उत्स—मूल स्रोतसे ही रसानन्दकी नित्य धारा प्रवाहित है । इस प्रकार जिस रस और भावकी लीलासे ही—उनकी नृत्यभङ्गिमासे ही समस्त विश्वका विविध विलास-वैचित्र्य सतत विकसित, अनुप्राणित और आवर्तित है, सभी रसों और भावोंका जो मूल आत्मा और प्राण है, वह एक महाभाव-परिरम्भित रसरज या आनन्दरस-विलास-विलसित महाभाव-स्वरूपिणी श्रीराधासे समन्वित श्रीकृष्ण ही (दूसरे शब्दोंमें अभिन्नतत्त्व श्रीराधामाधव ही) समस्त शास्त्रोंके तथा महामनीषियोंके द्वारा नित्य अन्वेषणीय परात्पर परिपूर्ण तत्त्व है ।

भावका अभिप्राय—भक्ति

'भाव' शब्दका अभिप्राय 'भक्ति'से है । भगवान् भावसाध्य—भावग्राह्य हैं, इसका अर्थ है—वे भक्तिके प्राप्त होते हैं । भगवान्ने कहा है—मैं एकमात्र अनन्य भक्तिके ही ग्राह्य हूँ—'भक्त्याहमेकया ग्राह्यः' । यही परमानन्दका रसास्वादन

है। भक्तिशून्य या भावरहित होकर कोई भी (किसी भी विषयसे किसी भी परिस्थितिमें) इस आनन्दको प्राप्त नहीं कर सकता और समस्त भक्तिकी मूल आकर हैं—श्रीराधा। जैसे समूर्त रसराज श्रीकृष्णसे ही समस्त रसोंका आविर्भाव हुआ है, वैसे ही मूर्तिमती महाभावस्वरूपिणी श्रीराधासे ही अमूर्त और मूर्त सभी भावोंका—विभिन्न भक्ति-भावोंका, भक्ति-स्वरूपोंका विस्तार हुआ है और भावानुसार भक्ति-स्वरूपोंमेंसे स्वरूपानुसार ही रसतत्त्वकी उपलब्धि होती है। जैसे एक ही प्रकाश-व्योतिके नीले, पीले, लाल, हरे आदि विविध वर्णोंके स्फटिकोंपर पड़नेसे विविध वर्णविशेष दिखायी देते हैं, वैसे ही भक्तिके रूपमें प्रकट श्रीराधा ही अमूर्त भावविशेषके रूपमें दास्य, सख्य, वात्सल्यादि भाववाले विभिन्न भक्तोंमें उसी रूपमें प्रकट होकर उसीके अनुसार उसीके उपयोगी रसतत्त्वको प्राप्त कराती हैं। पटरानी-रूपमें, लक्ष्मी आदिके रूपमें, गोपीरूपमें जितनी भी भगवान्की कान्ता देवियाँ हैं, वे सभी श्रीराधाकी समूर्त अवस्थाविशेष हैं। जिस अवस्थामें महाभावरूपा स्वयं राधा और रसराज श्रीकृष्ण प्रेमविलास-वारिधियोंमें लीलायमान हैं, जहाँ 'रमण' और 'रमणी'की भेदबुद्धिकी भी कल्पना नहीं रह जाती, वह सम्पूर्ण रस-भावाद्वैत ही विशुद्ध प्रेमविलासकी असीम सीमा है—निरवधि अवधि है।

शक्ति और शक्तिमान्

श्रीराधाजी भगवान् श्रीकृष्णकी नित्य अभिन्न स्वरूपा-शक्ति हैं। शक्तिमान्में शक्ति दो रूपोंमें रहती है—'अमूर्त' रूपमें और 'मूर्त' रूपमें। शक्तिमान्में जो शक्तिकी नित्य सत्ता है, वह अमूर्त है और जो स्वरूपसे सर्वथा सर्वदा सब प्रकारसे अभिन्न होते हुए उस दिव्य शक्ति-सत्ताकी अधिष्ठात्रीरूपमें भिन्न रूपसे प्रकट विविध विचित्र स्वरूपभूता लीलामयी—लीलाकारिणी है, वह मूर्त है। भगवान्के अचिन्त्यानन्त स्वरूपोंसे जैसे 'आनन्द'स्वरूप प्रधान है, वैसे ही उनकी अचिन्त्यानन्त शक्तियोंमें आनन्दरूपा 'ह्लादिनी' शक्ति प्रधान है। स्वयं रसरूप रसराज भगवान् जिस दिव्य आनन्दमयी शक्तिके द्वारा स्वरूपानन्दका रसास्वादन करते हैं और प्रेमी भक्तोंको स्वरूपानन्द-रसका आस्वादन कराते हैं उसी शक्तिका नाम 'ह्लादिनी' है। वही स्वरूपतः नित्य अभिन्न और लीलामयी अधिष्ठात्री मूर्तिके रूपमें नित्य भिन्न है, वही श्रीराधा हैं। ये ही भक्ति-साम्राज्यमें प्रविष्ट होकर

लीलासे ही क्रमशः धनताकी अवस्थामें उन्नत होती हुई रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव—नाम धारण करती हैं। यह महाभाव-प्रेमरसकी मूर्तिमान् दिव्य सजीव प्रतिमा ही श्रीराधा हैं। ये श्रीराधा परम पावन श्रीकृष्ण-प्रेमकी ही प्रगाढ़तम अवस्था 'मादनाख्य महाभावस्वरूपा' हैं। इसीको प्रेमराज्यके अनुभवी पुरुषोंने 'श्रीकृष्णप्रणयविकृति' कहा है। यह मादनाख्य महाभाव श्रीकृष्णप्रणयका ही परमधन विकार है, चरम और परम परिणति है, अवश्य ही वह नित्य है। विकार और परिणति लीलामें ही हैं।

पूर्णब्रह्मके तीन रूप

परात्पर पूर्णब्रह्म-तत्त्वके तीन रूप हैं—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्। 'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयुते' (श्रीमद्भागवत)। परात्पर तत्त्व रसरूप है, अतः इन तीनों ही रूपोंमें रस-स्वरूपता विद्यमान है। पर लीला-भेदसे तीनोंमें भेद है। ब्रह्म रसस्वरूप है, पर उस निर्विशेष निर्धर्म निष्क्रिय निर्गुण निराकार तत्त्वमें शक्तिका प्राकट्य नहीं है, अतः ब्रह्म तत्त्वतः 'रसरूप' होनेपर भी 'रसिक' नहीं है। परमात्मामें सगुण निराकार होनेसे शक्तिका आंशिक प्रकाश है, वह साक्षी है, द्रष्टा है, पर 'रसिक' वह भी नहीं है और पदैश्वर्यपूर्ण पूर्णशक्तिविकसित भगवत्स्वरूपमें शक्तिका विविध विचित्र विकास होनेके कारण जितने भगवत्स्वरूप हैं, सभी रसस्वरूप होनेके साथ ही 'रसिक' भी हैं। परंतु सभी (तत्त्वतः अभिन्न) भगवत्-स्वरूपोंमें समस्त रसोंका एक ही साथ पूर्ण प्रकाश नहीं होता। सम्पूर्ण रसलीला-विलासमण्डित केवल श्रीकृष्ण ही अखिलरसामृतमूर्ति हैं। अतएव श्रीकृष्ण 'रसिकशेखर' हैं। इन 'रसिकशेखर' श्रीकृष्णका परम रस जिसके द्वारा आत्मादित होता है और श्रीकृष्ण जिस अत्युन्नत भावमयी राधाके रसास्वादनके लिये लालायित रहते हैं, वही मादनाख्य महाभावरूपा शक्ति है। वही महाभावरूपा श्रीराधा हैं।

भक्तिके भेद और प्रेमाभक्तिके पाँच स्तर

भक्तिके कई भेद हैं—सामान्य भक्ति, श्रीकृष्णमें कर्मार्पणादिरूप आरोपसिद्धा भक्ति, कर्ममिश्रा-ज्ञानमिश्रा आदि सङ्गसिद्धा भक्ति, अकिञ्चना या केवला स्वरूपसिद्धा भक्ति आदि। इनके प्रकार बहुतसे हैं—तवधा, एकादशधा,

शतधा, सहस्रधा आदि । जो लोग कर्म, ज्ञान तथा भोग आदिकी भाँति भक्तिको साधनका अङ्ग मानते हैं वे अपने-अपने स्तरके भावानुसार मोक्षतकको प्राप्त हो सकते हैं परंतु उन्हें पञ्चम पुरुषार्थरूप 'भगवत्प्रेम'की प्राप्ति नहीं होती । उनकी वह साधन-भक्ति सकाम होनेपर भोग-प्रदायिनी और निष्काम होनेपर अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा मोक्षप्रदायिनी होती है ।

प्रेमरूपा भक्तिके पाँच स्तर हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर । आनन्दस्वरूप निर्विशेष ब्रह्ममें शक्तिकी अभिव्यक्ति नहीं है, परमात्मामें शक्तिका आंशिक विकास होनेके कारण वहाँ ह्लादिनी चित्-शक्तिका भी अस्तित्व किंचित् प्रकट है । अतएव 'शान्त' भक्त भगवान्में ममतायुक्त न होनेपर भी सामान्यरूपसे माधुर्यका अनुभव करता है, पर उसकी यह साधारण माधुर्यकी अनुभूति भगवान्के ऐश्वर्यज्ञानको ढक नहीं सकती । यहाँतक कि श्रीवैकुण्ठका जो माधुर्यानुभव है, उसमें भी ऐश्वर्यकी अनुभूति प्रत्यक्ष प्रकट रहती है । माधुर्यभावके साधनसे ही उत्पन्न प्रेमविशेष ही वास्तविक माधुर्यका अनुभव है । यही सर्वोत्तम रसास्वादन है । इस माधुर्य-रसास्वादनमें ऐश्वर्यादिका अनुभव सर्वथा अदृश्य हो जाता है । श्रीवैकुण्ठसे लेकर द्वारकातक सभी धामोंमें माधुर्यके साथ ऐश्वर्यका पूर्ण प्रकाश है । यद्यपि उसमें कुछ तारतम्य है और इसी ऐश्वर्यशून्य माधुर्यके विकासकी दृष्टिसे ही प्रेमीजन द्वारकामें श्रीकृष्णको पूर्ण, मथुरामें पूर्णतर और व्रज-गोकुलमें पूर्णतम कहते हैं ।

कृष्णस्य पूर्णतमता व्यक्ताभूद् गोकुलान्तरे ।

पूर्णता पूर्णतरता द्वारकामथुरादिषु ॥

(भक्तिरसावृतसिन्धु)

इसका कारण यह है कि व्रजकी लीलामें श्रीकृष्णके माधुर्यका पूर्ण प्रकाश है । यहाँ भगवान् 'देव' नहीं हैं, 'नर-मनुष्य' हैं, अखिलब्रह्माण्डाधिपति परमेश्वर नहीं हैं—'निज-जन' हैं । भगवान् यहाँ 'नरवपु' में नरलीला करते हैं । अवश्य ही यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि भगवान्की यह 'नरलीला' प्राकृत नर-लीला—कर्मजनित पाञ्चभौतिक जडदेहसम्पन्न जीवके कर्मविशेष नहीं हैं । यह नराकृति नित्य सत्य सच्चिदानन्द—परमब्रह्मकी स्वरूप-लीला है । यहाँ जड मायाका राज्य नहीं है, भगवत्स्वरूपा चिच्छक्ति योगमायाका साम्राज्य है—विशुद्ध प्रेम, अनन्य प्रीति, एकमात्र शुद्ध माधुर्यका राज्य

है । वैसे तत्त्वतः भगवत्स्वरूपमें पूर्ण, पूर्णतर और पूर्णतमका कोई भेद नहीं है । उनका कोई भी स्वरूप खण्ड, अपूर्ण, जड वस्तुओंकी भाँति परस्पर भिन्न या प्रतियोगी नहीं है । वे नित्य ही सम रूपसे पूर्ण हैं । श्रुतिमें कहा है—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

माधुर्यादि गुणसमूहके प्रकाशके तारतम्यकी दृष्टिसे ही उन्हें पूर्णतम, पूर्णतर और पूर्ण कहा गया है, जो लीला-साम्राज्यमें सार्थक और यथार्थ है ।

'नर-भाव'की भगवान्की लीला, 'नरके कर्म' नहीं

परंतु यह बार-बार स्मरण रखना है कि इस माधुर्यका अर्थ पूर्णैश्वर्यमय नित्यस्वरूपस्थित श्रीभगवान्की 'नरभाव'की, मधुरतम लीला है । इस 'नर-भाव' में प्राकृत मनुष्यके कर्मकी कोई कल्पना नहीं है । यह केवल भगवत्सम्बन्धयुक्त है । भगवान्की ही चिन्मयी लीला है । भगवदैश्वर्यविहीन केवल मनुष्य-भावको, चाहे वह कितना ही सुन्दर हो, शुद्ध माधुर्य नहीं कहा जा सकता । भगवान्का यह 'नर-भाव' मनुष्यमें दिव्य प्रेमसुधार समय स्व-भाव—स्व रूप वितरणके लिये ही है । ईश्वरभाव रहनेसे ऐश्वर्यका प्रकाश रहता है और ऐश्वर्यमें मनुष्यके साथ समजातीयता न रहनेसे प्रेमास्पद भगवान् और प्रेमी मानवक, निकटतम, निर्बाध, निःसङ्कोच मिलन नहीं हो सकता । मनुष्य ईश्वरको बहुत दूर मानता है और अपनेसे सर्वथा भिन्नजातीय तथा बहुत ही ऊँचा मानता है, उसमें ईश्वरके प्रति मान-सम्भ्रम रहता है, उनसे भय लगा रहता है और समीप जानें सदा ही उसे हिचक होती है । पर पूर्णैश्वर्यमय स्वयं भगवान्का ऐश्वर्य जब उनकी इच्छासे ही माधुर्यके द्वारा आच्छादित हो जाता है, तब प्रेमास्पद भगवान् मनुष्यसे बनकर प्रेमी मनुष्यके बहुत समीप पहुँच जाते हैं और सजातीय नर लीलाके द्वारा परस्पर रसास्वादन करते-करते हुए दिव्यरसका प्रवाह बहाते हैं । साधारण 'मनुष्य' और 'नराकृति परब्रह्म'में भेद यही है कि मनुष्य कर्मवद्ध पाञ्चभौतिक जन्ममरणधर्मा देहयुक्त है और भगवान्के स्वरूप, गुण, क्रिया आदि सभी वस्तुएँ उनसे नित्य अभिन्न, स्वरूपभूत, चिदानन्दधन हैं, अप्राकृत—दिव्य हैं और उनमें देह-देहीका भेद नहीं है ।

माधुर्य

'माधुर्यका अर्थ जैसे पूर्णैश्वर्यमय स्वयं भगवान्की दिव्य 'नरलीला' है, वैसे ही अशेष-अचिन्त्य-अतुल सौन्दर्य, लालित्य,

सौन्दर्य, औदार्य, वैदग्ध्य आदि परम आकर्षक गुणसमूह भी हैं। वह ऐसा माधुर्य है जो चराचर समस्त जगत् के साथ ही स्वयं श्रीकृष्णके चित्तको भी आकर्षित तथा विमोहित करता है। उन नराकृति परब्रह्मके नर-वपुका असमोर्ध्व सौन्दर्य, माधुर्य, वैचित्र्य, वैदग्ध्य ही उनका 'रूपमाधुर्य', 'वेणुमाधुर्य', 'प्रेममाधुर्य' और 'लीलामाधुर्य' है। यह माधुर्यचतुष्टयी स्वयं भगवान् श्रीव्रजेन्दनन्दन श्रीकृष्णमें ही प्रकाशित है, अन्यत्र कहीं नहीं। यही इस रूपकी विशेषता है।

अखिल-अनन्त-अतुल सौन्दर्यसुधासागर, कोटि-कोटि कन्दर्पलावण्याश्रय, रासरसिकशेखर, नित्य निरतिशयानन्द-स्वरूप, दिव्यदीप्तिच्छटाविभूषित, आत्मारामरणाकर्षी, मुनिमनमोहन भगवान् श्रीकृष्णका मधुरातिमधुर स्वरूप नित्य किशोर है। जिसके क्षणभरके लिये दृष्टिपथमें आते ही वा जिसकी क्षणिक स्मृतिसे ही आनन्दान्धुधि उमड़ उठता है। वह किशोर रूप धर्मी है एवं बाल्य और पौगण्ड उस नित्य किशोर स्वरूपके धर्मी हैं। पाँच वर्षतक कौमार, दस वर्षतक पौगण्ड और पंद्रह वर्षतक कैशोर माना जाता है। इसके बाद यौवन है। बाल्यरसमें कौमार, सख्यरसमें पौगण्ड और उज्ज्वलरसमें कैशोर वयस्की उपादेयता है। श्रीकृष्णका नित्य-स्वरूप किशोर है। धर्मीके बिना धर्मीका सत्ता नहीं होती, अतः कैशोरके बिना बाल्य और पौगण्डकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। बाल्य और सख्यरसके आवेशमें नित्यकिशोर श्रीकृष्णमें ही क्रमसे कौमार और पौगण्डकी अभिव्यक्ति होती है। इसी प्रकार श्रीराधाजी तथा उनकी काव्यूहस्वरूपा गोपाङ्गनाएँ भी नित्य किशोरी हैं।

कैशोर-रूपमें ही श्रीराधा और उनकी काव्यूहस्वरूपा सख्यशक्तियोंके साथ दिव्य रसलीला होती है। ब्रजके अतिरिक्त कहीं भी काम कषायशून्य नहीं है। उसमें किसी-नकिसी रूपमें आत्मसुखकी कल्पना-क्रेदागन्ध-रूप कषाय रता ही है। परंतु श्रीराधा और उनकी काव्यूहस्वरूपा ब्रजाङ्गनाएँ नित्य स्व-सुख-काम-क्रेदा-कल्पना-गन्धशून्य हैं। एकमात्र श्रीकृष्ण-सुखके लिये उनका श्रीकृष्णके साथ समन्व है। श्रीकृष्णप्रेमसी ब्रजाङ्गनाओंके समस्त उद्यम, समस्त प्रयत्न केवल श्रीकृष्ण-सुख-विधानके लिये ही होते हैं।

तासां श्रीकृष्णसौख्यार्थमेव केवलमुद्यमः ।

(उज्ज्वलनीलमणि)

ब्रजाङ्गनाओंका—विशेषरूपसे श्रीराधाका जीवन केवल

श्रीकृष्ण-सुखमेव ही है। उनका खान-पान, शयन-जागरण, व्यवहार-वर्ताव, आशा-आकांक्षा, भोग-त्याग तो सब श्रीकृष्णके सुखार्थ हैं ही, उनका भगवान् श्रीकृष्णके भयानक वियोग-व्यथासे पीड़ित विरह-तापदग्ध-देहमें प्राणोंकी रक्षाके लिये होनेवाला आर्त क्रन्दन भी श्रीकृष्ण-सुखके लिये है। श्रीकृष्णके वियोगमें वे परम संतप्ता हैं, मिलनसे उन्हें क्षीतल परमानन्दकी प्राप्ति होगी, पर इस अपने दुःखनाश और आनन्दलाभके लिये वे नहीं रोती-कराहती। उनके उस आर्त क्रन्दनमें भी केवल श्रीकृष्णसुख ही तात्पर्य है। वस्तुतः मिलन और वियोग—'सम्भोग' और 'विप्रलम्भ'—दोनों ही रति हैं और दोनोंमें ही परमानन्द-रसकी अनुभूति रहती है। संसारके प्राणी-पदार्थोंके वियोगमें जहाँ केवल दुःख-ही-दुःख, रोना-ही-रोना है, वहाँ भगवान् के वियोगमें प्रेमीके मनमें प्रियतम श्रीकृष्णकी सुखरसमयी संनिधिका अनुभव होता है। संयोग तथा वियोग दोनोंमें ही; संयोगमें बाहर और वियोगमें भीतर। वरं संयोगमें जहाँ समय, स्थान आदिकी निर्बाध स्थिति नहीं है, बहुतांश प्रतिबन्धक हैं और केवल एक ही स्थानपर परस्पर मिलन तथा दर्शन होते हैं, वहाँ वियोगमें समय-स्थानकी कोई बाधा नहीं, सर्वत्र निर्बाध स्वतन्त्र स्थिति है और एक ही जगह नहीं, उस श्रीकृष्णवियोगके दिव्योन्मादमें सर्वत्र श्रीकृष्णका मिलन, उनके मधुर दर्शन प्राप्त होते हैं। श्रीराधाजी कहती हैं—

संगमविरहविकल्पे वरमिह विरहो व संगमसखः ।

एक स एव सङ्गे क्षिप्रवत्सवि सम्मयं विरहे ॥

मिलन और विरह—इन दोनोंमें यदि विकल्प हो तो इनमें प्रियतमका विरह ही श्रेष्ठ है, उसके मिलनकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि मिलनमें केवल एक ही जगह वे एक ही होते हैं पर उनके विरहमें तो तीनों लोक ही तन्मय (श्रीकृष्णमय) हो जाते हैं।

जित देखी जित सखसखी है ।

वहाँ एक निजुल्लसलके मधुर दर्शनका सकेत किया जाता है जिससे यह पता लगता कि परम दुःखद वियोगमें सुखद मिलनके लिये होनेवाला क्रन्दन भी अपने सुखके लिये नहीं, सर्वथा केवल श्रीकृष्णसुखके लिये ही है।

रसमय रसिकेन्द्रशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य परम रसमयी श्रीराधाके साथ निजुल्लसने विराजमान हैं। एक

अन्तरङ्ग सेविका सखी उनके पास है। नाना प्रकारका दिव्य रसालाप हो रहा है। श्रीराधा उस समय परमानन्दस्वरूप प्रियतम श्रीकृष्णको विशेष सुखानुभव करते जानकर आह्लाद-सुधासरितामें बही जा रही हैं। उनमें परमानिर्वचनीय रसमत्तताका आविर्भाव हो रहा है। श्रीकृष्णने उनकी मिलन-रसमत्तताको देखकर यह इच्छा की कि 'राधाका विरहजनित तीव्र संताप कैसा होता है, उसमें किस प्रकारकी स्थिति होती है, यह भी देखा जाय।'

सत्यसंकल्प श्रीकृष्णकी ऐसी इच्छा होते ही श्रीराधाके अनुरागसागरमें अकस्मात् आत्यन्तिक बाढ़ आ गयी। यह संवर्धित प्रगाढ़ अनुराग ही प्रेमोत्कर्ष है। इस अवस्थामें एक ऐसी विलक्षण तृष्णाका उदय होता है, जिससे बार-बार अनुभूत प्रियतम श्रीकृष्णका सङ्ग भी अननुभूत प्रतीत होता है। इस प्रगाढ़ अनुरागजनित प्रबल तृष्णामें निरन्तर निर्वाध श्रीकृष्ण-मिलन होनेपर भी ऐसा मालूम होता है कि श्रीकृष्ण मिले ही नहीं। कभी-कभी प्रेमोत्कर्षकी स्थितिमें यहाँतक हो जाता है कि प्रत्यक्ष अति समीपमें स्थित व्यवधानशून्य मिलनकी स्थितिमें भी उनके अमिलनकी अनुभूति होती है।

प्रियस्य संनिकषेऽपि प्रेमोत्कर्षस्वभावतः।

या विश्लेषधियाऽऽर्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्यमुच्यते ॥

(उज्ज्वलनीलमणि)

‘प्रियतमके पास रहनेपर भी प्रेमके उत्कर्षके कारण उनके न रहनेकी—विरहकी स्फूर्ति होती है और उससे भौतिक-भौतिके विरहविकारोंका विकास होता है, तो उसे ‘प्रेमवैचित्त्य’ कहते हैं।’

श्रीराधाके ऐसे प्रेमवैचित्त्यका एक उदाहरण इस प्रकार दिया गया है—

आभीरेन्द्रसुते स्फुरत्यपि पुरस्तीवानुरागोत्थया

विश्लेषज्वरसम्पदा विवशधीरत्यन्तमुद्धूर्णिता ।

कान्तं मे सखि दर्शयेति दशनैरुद्गूर्णशष्पाङ्कुरा

राधा हन्त तथा व्यचेष्टत यतः कृष्णोऽप्यभूद्विस्मितः ॥

‘रसिकशेखर ब्रजेन्द्रनन्दनके समीप उपस्थित होनेपर भी परमानुरागमयी श्रीराधा विषम विरहतापसे विकल हो गयी और अत्यन्त उद्धूर्णित होकर दाँतोंमें तृण दबाकर कहने लगीं—‘सखि ! मेरे प्रियतम प्राणवल्लभ कहाँ हैं ? उनके तुरन्त दर्शन कराओ ।’ श्रीराधाकी इस प्रेमविह्वलताको देखकर श्रीकृष्ण विस्मित हो गये ।’

श्रीराधाके शरीरमें प्रेमवैचित्त्यके कारण विविध प्रकारके विरह-विकार उत्पन्न हो गये और स्वजन-प्रेमरसास्वादनपरायण श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण राधाकी विचित्र विरह-भङ्गिमा—परम अद्भुत प्रेमविकार-वैचित्त्यको देख-देखकर मुग्ध होने लगे। देखते-ही-देखते राधाका विरह-विकार अत्यन्त प्रबल हो गया और वे जोर-जोरसे क्रन्दन करने लगीं—

कहाँ गये तुम, कहाँ छिपे ? हे नाथ ! रमण ! जीवन-आधार ! विरह-प्रेमवैचित्त्य-विकल राधा कर उठी करुण चीत्कार ॥ विषम विरह-दावानलसे हो रहा दग्ध यह दीन शरीर । प्राण-पखेरू उड़ा चाहता, त्याग इसे, हो परम अधीर ॥ यद्यपि मैं अतिशय अयोग्य हूँ सहज मलिन गुण-रूप-विहीन । मान बढ़ाकर तुमने मेरा, मुझे कर दिया धृष्ट, अदीन ॥ लगी मानने तुम्हें प्राणवल्लभ, मैं मनमें कर अभिमान । लगा, तुम्हें मिलता होगा मुझसे कुछ सुख विशेष रसखान । ॥ परमानन्दसुधापाव तुम हो नित्य अनन्त अगाध अपार । क्या आनन्द तुम्हें दे सकती गुण-दरिद्र मैं दोषागार ॥ तो भी तुम मुझसे मिलते हो, हृदय लगाते, देते स्नेह । बरसाते रहते तुम संतत मुझपर प्रेम-सुधा-रस-मेह ॥ कोटि-कोटि सुन्दरियाँ हैं—गुण-शील-रूप-सौन्दर्यनिधान । उन्हें छोड़, तुम मुझे निरन्तर देते रहते शुचि रसदान ॥ निश्चय ही मिलता होगा तुमको इससे अतिशय आनन्द । मुझसे बिलुप्त हो रहे तुम उस सुखसे वंचित हे स्वच्छन्द ॥ विरह-वेदनासे यदि प्रियतम मेरे चले जायेंगे प्राण । वंचित सदा रहोगे फिर तुम इस सुखसे, प्राणोंके प्राण । ॥ करुण विलाप करोगे फिर तुम मेरे लिये नित्य नंदलाल । रह जायेंगे प्राण तो दुःख न होगा तुम्हें रमण ! उर-माल ॥ मिलकर प्राण बचा लो मेरे अभी तुरन्त परम सुकुमार । करो शीघ्र आनन्दलाम फिर प्रियतम हे ब्रजराजकुमार । ॥ तुम्हें तनिक सुख होता तो, रहता न मुझे प्राणोंका मोह । कोटि-कोटि हैं प्राण निछावर तुमपर परानन्द-संदोह ॥

‘हे नाथ ! हे रमण ! हे मेरे जीवनके आधार ! तुम कहाँ चले गये ? कहाँ जा छिपे ? प्रेमवैचित्त्य-विरहसे व्याकुल राधा करुणस्वरमें चीत्कार करने लगीं । प्राणनाथ ! तुम्हारे विरहकी विषम ज्वालाओंसे मेरा यह दीन शरीर दग्ध हुआ जा रहा है । मेरा प्राणपखेरू अत्यन्त अधीर हो उठा है और वह इस देह-पिंजरको त्यागकर उड़ ही जाना चाहता है । यद्यपि मैं अतिशय अयोग्य हूँ, सहज ही मलिन

तथा गुणरूपसे रहित हूँ, पर तुमने मुझ अयोग्यका मान बढ़ाकर मुझे धृष्ट बना दैन्यभावसे दूर कर दिया। मैं मनमें अभिमान करके तुमको अपना प्राण-वल्लभ मानने लगी। हे रसखान ! मुझे लगा कि मुझसे तुमको कुछ विशेष सुख मिलता होगा। प्राणनाथ ! तुम परमानन्द-सुधाके नित्य अनन्त अगाध अपार समुद्र हो, ऐसे तुमको मैं गुणोंकी दरिद्र तथा दोषोंकी आगार क्या आनन्द दे सकती हूँ। इतनेपर भी, तुम मुझ नगण्यसे मिलते हो, मुझे हृदय लगाते हो और स्नेह देते हो एवं नित्य निरन्तर मुझपर प्रेम-सुधा-रसकी वर्षा करते रहते हो। प्रियतम ! मुझसे सर्वथा श्रेष्ठ गुण, शील, रूप और सौन्दर्यकी निधान करोड़ों-करोड़ों सुन्दरियाँ हैं। तुम उनको छोड़कर अपना पवित्र रस निरन्तर मुझे देते रहते हो। इससे ऐसा समझमें आता है कि तुमको मुझसे अवश्य अतिशय आनन्द मिलता है। (मैं योग्य नहीं भी हूँ तो भी तुम मेरे प्रति विशेष स्नेह रखनेके कारण मुझसे आनन्द पाते होओगे।) अब तुम मुझसे विछुड़ गये, इससे तो हे निरङ्कुश ! तुम उस मुझसे मिलनेवाले आनन्दसे वञ्चित हो रहे हो और यदि कहीं भीषण विरहवेदनासे मेरे प्राण चले जायँगे तब तो हे मेरे प्राणोंके प्राण ! तुम इस सुखसे सदाके लिये वञ्चित हो जाओगे। फिर तुम, हे नन्दलाल ! मेरे लिये सदा करुण विलाप करते रहोगे और यदि मेरे प्राण रह जायँगे तो फिर हे रमण ! हे मेरे कण्ठहार ! तुमको यह दुःख नहीं होगा। इसलिये तुम अभी शीघ्र-से-शीघ्र मिलकर मेरे परम सुकुमार प्राणोंको बचा लो। प्रियतम ! ब्रजराजकुमार ! मुझे प्राणदान देकर तुम शीघ्र आनन्द प्राप्त करो ! मैं इसीलिये प्राण बचाना चाहती हूँ कि तुमको सुख मिले, तुम्हें जरा भी दुःख न हो। तुम्हें यदि मेरे मरनेसे कहीं तनिक भी सुख होता तो मुझे प्राणोंका मोह नहीं रहता। मैं प्रसन्नतासे मरती, अपनेको परम सौभाग्यशालिनी समझती। हे परमानन्दसंदोह ! मेरे तो कोटि-कोटि प्राण तुमपर सदा न्योछावर हैं।

यों प्रेमवैचित्र्योन्मादिनी प्रबल विरहसंतप्ता श्रीराधा विलाप करती-करती मूर्छित होकर प्रियतम श्यामसुन्दरकी गोदमें डुलक पड़ीं। अभीतक तो अखिलरसामृतमूर्ति राधाप्राण श्रीकृष्ण राधाकी विचित्र प्रेमावेशभङ्गिमाको देख-देखकर मुग्ध और पुलकित हो रहे थे। पर अब उनसे

नहीं रहा गया। उन्होंने दृढ़ संकल्पके साथ श्रीराधाके मस्तकके केशोंको सहलते हुए बड़े मधुर स्वरमें कहा—

उठो प्राणप्रतिमे ! मैं कबसे आया बैठा तेरे पास। कबसे तुझे निहार रहा हूँ देख रहा शुचि प्रेमोच्छ्वास ॥ धन्य पवित्र प्रेम यह तेरा, हूँ मैं धन्य प्रेमका पात्र। नित्यानन्द-विधायिनि मेरी, तू ही एक हृदिनी मात्र ॥

‘मेरी प्राणप्रतिमा राधा ! उठो, मैं कबसे आकर तुम्हारे पास बैठा हूँ, मैं कबसे तुमको और तुम्हारे पवित्र प्रेमोच्छ्वासको देख रहा हूँ। तुम्हारे इस पवित्र प्रेमको धन्य है, मैं भी धन्य हूँ जो तुम्हारे इस प्रेमका पात्र हूँ। राधे ! मेरा नित्य आनन्दविधान करनेवाली तुम्हीं हो और एकमात्र तुम्हीं मेरी हृदिनी—आह्लादरूपा हो।’

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा प्रबुद्ध किये जानेपर राधाका ‘प्रेमवैचित्र्य’ भंग हो जाता है। वे अपनेको प्रियतम श्रीकृष्णके क्रीडमें देखकर परम सुखी हो जाती हैं।

श्रीब्रजराजनाओंके प्रेममें कोई भी उपाधि, आवरण या किसी प्रकारका कोई अन्य हेतु नहीं है। वहाँ न ऐश्वर्यज्ञान है, न धर्माधर्मज्ञान है, न भाव-उत्पादनके लिये रूपगुणादिकी आवश्यकता या स्मृति है और न स्वसुखानुसंधान ही है। जो रमण-रमणी-बोध कान्ताभावका जीवनस्वरूप है—ब्रजराजनाओंके पवित्र प्रेममें उसका भी अभाव है। वहाँ है केवल और केवल सहज परम त्यागस्वरूप अनुराग-महासागरका महाप्लावन और ब्रजराजनाएँ हैं नित्य निरन्तर उसीमें पूर्णतया निमग्न, उसमें अपनेको सर्वथा खोयी हुई। उनकी प्रत्येक गतिविधि, प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक क्रिया सर्वथा श्रीकृष्णसुखमय श्रीकृष्णानुरागकी ही एकमात्र अभिव्यक्ति है। जिस परमानन्दसे परात्पर तत्त्व अनादिकालसे सदा ही आनन्दी है, श्रीराधा उसी परात्पर ब्रह्मकी परमानन्ददायिनी शक्तिका अनादिमूर्तिविग्रह हैं। वे परमानन्ददायिनी भगवत्स्वरूपा पराशक्ति ही कायव्यूहस्वरूपमें असंख्य मूर्तियोंमें प्रकट होकर स्वयं रसराजको अत्यन्त चमत्कारपूर्ण परमानन्द प्रदान करती रहती हैं। अनादि अनन्तकाल श्रीराधाकी यह स्वरूपानुबन्धी कृष्णानुकूलता—कृष्ण-सुखप्रदानकी पराकाष्ठा उत्तरोत्तर वर्धमान रहती है, यही परमाश्चर्य है। श्रीराधा-कृष्णका यह मधुरतम लीला-विलास प्राकृत नीच कामोपभोग नहीं है, यह केवल कृष्ण-सुखमयी प्रीतिका अनुभाव है। यह भगवत्प्रीति

भगवत्स्वरूपा ह्लादिनीका ही परिपाक-विशेष है। जबतक प्राकृत जीवगत कामके संस्कार या इस प्रकारका कोई कामजनित पुरुष या नारीरूपका अभिमान रहेगा, तबतक कायव्यूहरूपा ब्रजाङ्गनासमन्वित श्रीराधा और रसराज भगवान् की दिव्य मधुरतम प्रेमलीलाका रहस्य समझमें नहीं आ सकता।

सच्चिदानन्द-शरीर श्रीकृष्ण और गोपाङ्गनाएँ

जो जिस विषयकी कामनावाले होते हैं, वे उस विषयमें ही दीन हैं। अर्थकामी अति दरिद्र एक पैसेके लिये दीन-दरिद्र है तो सार्वभौम सम्राट् सारी पृथ्वीका राज्य प्राप्त करनेके लिये दीन-दरिद्र है। दरिद्र तथा सम्राट् दोनों ही कामनाके कारण दीन हैं और उनकी यह दीनता कभी मिट नहीं सकती; क्योंकि समस्त प्राकृत विषयभोग अपूर्ण और विनाशी हैं। अतएव नयी-नयी कामना उठती रहती है; कामनाकी पूर्णतया निःशेष पूर्ति कभी होती ही नहीं और जबतक कामना है, तबतक दीनता है। एकमात्र भगवान् ही नित्य पूर्णकाम हैं, वे कदापि दीन नहीं हैं। उनमें जो यह भक्तोंके प्रेमरसके आस्वादनकी कामना-सी देखी जाती है, वह कामना नहीं है, वह तो स्वरूप-वितरणके लिये उनका प्रेम-अनुग्रह है; क्योंकि अपना ही स्वरूपभूत रस प्रेमियोंको वितरण करके उनसे वे वही रस लेते हैं और जितना लेते हैं, उससे असंख्यगुणा अधिक देते रहते हैं। जगत्को पवित्र प्रेमका पाठ सिखाते हुए वे त्याग तथा केवल 'देने'की ही महत्ताका परिस्थापन करते हैं। जगत्के विषयानुरागी मायाग्रस्त प्राणीमात्र भीषण कामानलसे जल रहे हैं। कामका अर्थ है जो पाञ्चभौतिक शरीर अन्न-जलादिके द्वारा संवर्धित है और मल-मूत्र जिसका परिणाम है, उसके वृक्ष करनेकी इच्छा। प्राकृत वस्तुमें कभी विशुद्ध रसका उदय नहीं हो सकता। जो लोग प्राकृत वस्तुओंमें रस मानते हैं, वे वस्तुतः भ्रममें हैं। कृमि, भस्म या विष्टा जिस नश्वर प्राकृत शरीरका परिणाम है, उसमें कभी रस नहीं उत्पन्न होता। विरस या कुरसका ही उदय होता है। दिव्यरसके स्वरूप तो एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। अतः उनके सिवा किसीमें भी कभी परकीया रसकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। जो वैसा मानते करते हैं, वे निश्चय ही नरकगामी होते हैं। वस्तुतः लौकिक स्वकीय रस भी वह दिव्य रस नहीं है। अतएव नित्य सच्चिदानन्दधनविग्रह भगवान् और उनकी स्वरूपाशक्तियाँ, जो श्रीकृष्णके रमण—

स्वरूप-वितरण-लीलाकी उपकरणरूपा हैं, वे अन्न-जलादिके द्वारा परिपुष्ट प्राकृत देहयुक्त नहीं हैं। इसलिये उनका यह रसविलास, उन देवियोंकी सर्वात्मसमर्पण-क्रिया और भगवान्का उन्हें स्वीकार करना कदापि लौकिक कामविलास नहीं है। वह विशुद्ध रसका ही विशुद्ध विलास है। नित्य पूर्णकाम, पूर्णैश्वर्यरूप भगवान्में सर्वात्मसमर्पण करना ही परम धर्म है और यही जीवका परम सौभाग्य है। इसमें नारी-पुरुषका भेद नहीं है। भगवान् सबके आत्मा हैं। सब देवियोंके पतियोंके भी आत्मा हैं, सबके परम आधार हैं, अतः उनमें अनन्य अनुराग करना ही चरम पुरुषार्थ है।

भगवत्स्वरूपा भगवती साक्षात् लक्ष्मीजी श्रीभगवान्का स्तवन करती हुई (श्रीमद्भागवत ५। १८) कहती हैं—

स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषिकेश्वरं स्वतो
द्वाराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ।
तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं
प्रियं धनार्थं यतोऽस्वतन्त्राः ॥१९॥
स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं
समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।
स एक एवेतरथा मिथो भयं
नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥२०॥
या तस्य ते पादसरोरुहार्हं
निकामयेत्साखिलकामलम्पटा ।
तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो
यद्भग्नयाच्चा भगवन् प्रतप्यते ॥२१॥
मत्प्राप्तयेऽज्ञेयसुरासुरादय-
क्षान्त उग्रं तप ऐन्द्रियेधियः ।
श्चते भवत्पादपरायणाश्च मां
विन्दन्त्यहं त्वद्भुदया यतोऽजित ॥२२॥
स त्वं ममाप्यभ्युत कीर्णिं वन्दितं
कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ।
बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया
क ईश्वरस्येहितमूहितुं विशुः ॥२३॥

‘भगवन् ! आप इन्द्रियोंके अधीश्वर हैं, स्त्रियाँ तरह-तरहके कठोर व्रतोंके द्वारा आपकी ही आराधना करके अन्य लौकिक पतियोंकी इच्छा किया करती हैं, किंतु वे पति उनके प्रिय पुत्र, धन एवं आयुकी रक्षा नहीं कर सकते; क्योंकि वे स्वयं ही परतन्त्र हैं। सच्चा पति (रक्षा करनेवाला

ईश्वर) वही है, जो स्वयं सर्वथा निर्भय हो और दूसरे भयभीत लोगोंकी सब प्रकारसे रक्षा कर सके। ऐसे पति एकमात्र आप ही हैं। यदि एकसे अधिक ईश्वर माने जायें तो उन्हें एक दूसरेसे भय होनेकी सम्भावना है। अतएव आप अपनी प्राप्तिसे बढ़कर और किसी लाभको नहीं मानते। भगवन् ! जो स्त्री आपके चरणकमलोंका पूजन ही चाहती है और किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करती, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। किंतु जो किसी एक कामनाको लेकर आपकी उपासना करती है, उसे वही वस्तु आप देते हैं और जब भोग समाप्त होनेपर वह वस्तु नष्ट हो जाती है, तो उसके लिये उसे संतप्त होना पड़ता है। अजित ! मुझे पानेके लिये इन्द्रियमुखके अभिलाषी ब्रह्मा, रुद्र आदि समस्त सुरासुरगण घोर तपस्या करते रहते हैं किंतु आपके चरणकमलोंका आश्रय लेनेवाले भक्तके सिवा मुझको (आपकी सेविका लक्ष्मीको) कोई नहीं पा सकता; क्योंकि मेरा मन तो सदा आपसे ही लगा रहता है। अच्युत ! आप अपने जिस वन्दनीय कर-कमलको भक्तोंके मस्तकपर रखते हैं, उसे मेरे सिरपर भी रखिये। वरेण्य ! आप मुझे केवल श्रीलालनरूपसे अपने वश-स्थलमें ही धारण करते हैं, सो आप सर्वसमर्थ हैं। आप अपनी मायासे जो लीलाएँ करते हैं, उनका रहस्य कौन जान सकता है ?

आनन्दकी तरतमता और सर्वोच्च प्रेमानन्द

भुक्तिमें लौकिक आनन्द तथा ब्रह्मानन्दकी तरतमताके विषयमें विचार किया गया है। उससे यह सिद्ध होता है कि आनन्द 'निर्विकोष' नहीं है, उसमें तारतम्य है। तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा गया है कि मनुष्य युवक हो, साधुस्वभाव हो, वेदोंका अध्ययन कर चुका हो, कर्मकुशल हो, हृदयस्थशरीर हो, बलवान् हो और धनवैभवसे परिपूर्ण सारी पृथ्वी जिसके अधिकारमें हो, उसे जो आनन्द प्राप्त होता है, वह मनुष्यलोकका एक श्रेष्ठ आनन्द है। इस मनुष्यानन्दसे सागुना आनन्द मनुष्यगन्धर्व (जो कर्मसाधनाके द्वारा गन्धर्वत्वको प्राप्त हुआ हो) को है। मनुष्यगन्धर्वोंके आनन्दसे सौगुना आनन्द देवगन्धर्व (जन्मगत गन्धर्व) को है। इससे सौगुना आनन्द चिरस्थायी पितृलोकके पितरोंको है। उनसे सौगुना आनन्द आजानज (शास्त्रोक्त कर्मविशेषके अनुष्ठानसे जो देवलोकमें पहुँचे हों) नामक देवताओंको है। उसका सौगुना कर्मदेवोंको, उनसे सौगुना (आठ वसु,

एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, इन्द्र आदि) देवताओंको, उनसे सौगुना इन्द्रको, इन्द्रसे सौगुना बृहस्पतिको और उससे सौगुना प्रजापति ब्रह्माको है। पर ये एक-से-एक बढ़कर समस्त आनन्द 'ब्रह्मानन्द'की तुलनामें सर्वथा तुच्छ हैं। उस ब्रह्मानन्दका यथार्थ परिमाण हो ही नहीं सकता। इसीसे श्रुति कहती है—

‘यतो वाचो निर्वर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चेति ।’
(तैत्तिरीय उप० २।१।१)

‘मनके सहित वाणी आदि सभी इन्द्रियाँ उसे न पाकर जहाँसे लौट आती हैं, उस ब्रह्मके आनन्दका ज्ञाता विद्वान् किसीसे भी भय नहीं करता ।’

उस ब्रह्मानन्दसे भी परम उत्कृष्ट है—भक्त्यानन्द । भक्तिरसानृतसिन्धुमें कहा है—

ब्रह्मानन्दो भवेदेव चेत् परार्द्धगुणीकृतः ।
नैति भक्तिसुखान्मोधेः परमाणुतुलामपि ॥
(१।१।३८)

‘परार्द्धकालपर्यन्त की हुई समाधिके द्वारा उपलब्ध ब्रह्मानन्द भी श्रीकृष्णभक्तिसुधा-समुद्रके साथ तुलना करनेपर एक परमाणुके समान भी नहीं ठहरता ।’

प्रह्लाद कहते हैं—

त्वत्साक्षात्करणाद्वाद्बिभृद्विस्थितस्य मे ।
सुखानि गोष्पदायन्ते ब्रह्मण्यपि जगद्गुरो ॥

‘जगद्गुरो ! तुम्हारे साक्षात्कारजनित विशुद्ध आनन्द-समुद्रमें निमग्न मेरे लिये ब्रह्मानन्द भी गोष्पद (गौका खुर टिके—इतनेसे गड्ढे) के समान प्रतीत होता है ।’

श्रीमद्भागवतमें ऋषियोंने तथा प्रचेतागणने कहा है—

तुलयां लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताप्तिषः ॥
(१।१८।१३; ४।३०।३४)

‘भगवत्प्रेमी भक्तोंके लवमात्रके सङ्गके साथ स्वर्ग और मोक्षकी भी तुलना नहीं की जा सकती, फिर मनुष्योंके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है ?’

प्रश्न होता है ब्रह्मानन्दकी अपेक्षा भक्त्यानन्द—भगवत्सेवानन्द—प्रेमानन्द श्रेष्ठ क्यों है ? वह इसलिये है कि

ब्रह्मानन्द एकरूप है, उसमें विलास या नव-नवायमानता (नित्य नया-नया विकास) नहीं है । भगवत्सेवानन्दमें अनन्त विचित्र-विलास है । भगवत्सेवानन्दमें भी श्रीकृष्ण-सेवानन्द सर्वश्रेष्ठ है । परंतु गोपीभावापन्न माधुर्य-रसप्रेमी भक्त 'सेवानन्द' (सेवासे मिलनेवाला आनन्द) भी नहीं चाहते । वे तो केवल 'अहैतुकी सेवा' चाहते हैं । सेवानन्दमें सेवकके मनमें अपने आनन्दका अनुसंधान, आवेश, अभिसंधि या पिपासा रह सकती है । पर श्रीकृष्णके माधुर्य-प्रेमी भक्त उस आनन्दको भी विघ्न मानते हैं, यदि वह सेवामें बाधक हो ।

एक दिन निकुञ्जमें एक गोपी श्रीराधामाधवको पंखा झल रही थी । श्रीराधामाधवको पंखेकी हवासे सुख मिला और उनकी सुखमयी सुखाकृतिको देखकर गोपीको इतना आनन्द प्राप्त हुआ कि उस आनन्दके कारण उसमें 'स्तम्भ' नामक सात्त्विक भावका उदय हो गया, इससे हाथमें जडता आ गयी और क्षणभरके लिये पंखा झलना रुक गया । इस विघ्नको देखकर गोपीने अपने उस आनन्दको धिक्कार देकर उसका बड़ा तिरस्कार किया और भविष्यमें ऐसे आनन्दकी प्राप्ति न हो—इसका निश्चय किया ।

विशुद्ध माधुर्यमें ऐश्वर्यका अदर्शन तथा विशुद्ध प्रेममयी गोपाङ्गनाओंकी महिमा

भगवान्के प्रति होनेवाली भक्तिमें भेद रहता है । यहाँतक कि ब्रजधामके माधुर्य प्रेमकी अनुभूतिमें भी तारतम्य पाया जाता है । दास्य, सख्य, वात्सल्य—मधुररसके ही अङ्ग हैं, पर इनमें भी रूप तथा कर्ताके भेदसे तरतमता आ जाती है । वैसे, शान्तरस—(शान्तरस वस्तुतः माधुर्यकी कोटिमें बहुत ही थोड़े अंशमें आता है) की अपेक्षा दास्यप्रेममें, दास्यकी अपेक्षा सख्यप्रेममें, सख्यकी अपेक्षा वात्सल्यप्रेममें श्रेष्ठता है । उन सबकी अपेक्षा ब्रजाङ्गनाओंके माधुर्यमें उत्कृष्टता है, किंतु ह्लादिनीके विकासकी तरतमताके अनुसार इनके प्रेम तथा माधुर्यमें भी तारतम्य है । इन सब गोपाङ्गनाओंमें भी ह्लादिनी-सार महाभावरूपा श्रीराधाका प्रेम सर्वश्रेष्ठ है । श्रीराधामें सभी प्रकारके प्रेमका पूर्ण प्रकाश है । यद्यपि ब्रजके दास्य, सख्य तथा वात्सल्य-प्रेममें ऐश्वर्यका विकास नहीं है । दास्यभावके प्रेमी श्रीकृष्णको सेव्य मानव मानकर, सखागण अपने-अपने भावानुसार समानरूपसे सखा मानकर, वात्सल्य-प्रेममयी यशोदा और नन्दबाबा उन्हें पुत्र

मानकर ही उनसे यथोचित प्रेम करते हैं । ऐश्वर्यकी भावना उनमें कभी जाग्रत् ही नहीं होती, इसीसे सखा गोपवाल्क श्रीकृष्णको हार जानेपर उन्हें धोड़ा बना लेते और उनपर चड़्ढी करते हैं । नन्द-यशोदा वरुणलोकका आश्चर्य और मोहनके मुखमें विश्वरूपका दर्शन करनेपर भी उन्हें अपना पुत्र ही मानते हैं, कभी परमेश्वर नहीं मानते । वसुदेव-देवकीके समान उनमें ऐश्वर्ययुक्त भक्ति नहीं है और कायव्यूहरूपा गोपाङ्गनाओंसहित श्रीराधा तो उन्हें अपना परमप्रेष्ठ मानती हैं एवं सर्वथा श्रीकृष्णसुखवाञ्छामयी होकर नित्य-निरन्तर उनकी स्वच्छन्द सेवामें सतत प्रवृत्त रहती हैं । उनके सामने भगवान्का ऐश्वर्यमय चतुर्भुज रूप भी कभी प्रकट नहीं हो सकता । इसीसे भगवान् श्रीकृष्ण अपनेको उनके नित्य ऋणी मानते हैं । बदला चुका ही नहीं सकते । वे कहते हैं—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां

स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।

या माभजन् दुर्जरगोहशृङ्खलाः

संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥

(श्रीमद्भा० १० । ३२ । २२)

'गोपाङ्गनाओ ! तुमने मेरे लिये घर-बारकी उन कठिन बेड़ियोंको तोड़ डाला, जिन्हें बड़े-बड़े योगी-यती भी नहीं तोड़ पाते । मुझसे तुम्हारा यह मिलन सर्वथा विशुद्ध तथा सर्वथा निर्दोष है । यदि मैं देवताके शरीरसे—अमरजीवनसे अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्यागका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता । मैं सदाके लिये तुम्हारा ऋणी हूँ । तुम अपने सौम्य स्वभावसे, प्रेमसे मुझे उन्मृष्ट कर सकती हो । परंतु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ ।'

भगवान्की यह नित्य प्रतिज्ञा है कि जो जिस भावसे शरण होकर मुझे जैसे भजता है, वैसे ही मैं उसे भजता हूँ—उसके भजनके अनुरूप फल प्रदान करता हूँ—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् । (गीता)

परंतु श्रीगोपाङ्गना और विशेषरूपसे श्रीराधाजीके लिये भगवान्की यह प्रतिज्ञा सदा असफल ही रहती है । इसका कारण यही है कि श्रीराधा तथा गोपाङ्गनाएँ न तो धर्मार्थ कामनावाली हैं तथा न वे मोक्षकी ही कामना करती हैं । उनकी तो कामना, लालसा, स्पृहा, इच्छा, वृण्णा, वासना—

कुछ भी कहें, एकमात्र है 'प्रियतम श्रीकृष्णका सुखविधान' । उनकी मनोकामना पूर्ण करें तो श्रीकृष्णको उनसे सुख ही प्राप्त करना पड़ेगा । श्रीकृष्ण बदलेमें कुछ दे ही नहीं सकते । अतएव यहाँ श्रीकृष्ण कभी भी दाता नहीं हैं, सदा ऋणी हैं और यह ऋण नित्य नव-नव रूपमें बढ़ता ही जाता है । एवं चमत्कारकी बात तो यह है कि ऋणदाता गोपसुन्दरियाँ अपनेको सदा-सर्वदा लेनेवाली अनुभव करती हैं और श्रीकृष्ण उनके इस बढ़ते हुए ऋणको सदा बढ़ाते ही रहना चाहते हैं । प्रेमका अद्भुत चमत्कार !

श्रीकृष्णके साथ काम, कर्म, लोक, धर्म, शास्त्र, मोक्ष आदि किसी भी भाव, वस्तु या मनोरथसे शून्य विशुद्ध प्रेममय निरुपाधिक संयोग एकमात्र श्रीव्रजाङ्गनाओंका ही है । ऐसा और कहीं भी न हुआ है, न है । इन गोपियोंकी मूल आधाररूपा और इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं—श्रीराधाजी, जो अचिन्त्य-अनिर्वचनीय परम त्यागकी सहज सुन्दर दिव्य चेतन प्रतिमा हैं । श्रीराधा अङ्गी हैं—गोपाङ्गनाएँ उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं । वे श्रीराधामाधवके अद्भुत अनिर्वचनीय कामगन्ध-लेशशून्य दिव्य विलासरसके आस्वादनवैचित्र्यका सम्पादन करनेवाली हैं, उनके रसास्वादनकी उपकरणरूपा हैं । श्रीराधाजी भी नित्य अपने हृदयकी परम पवित्र स्नेह-सुधा इन गोपाङ्गनाओंके जीवनमें उँडेलती रहती हैं और इनके द्वारा श्रीकृष्णका सुखसम्पादन होते देखकर नित्य प्रमुदित-प्रफुल्लित रहती हैं ।

भगवान् श्रीकृष्णके सखा बृहस्पतिजीके शिष्य परम शानी उद्धव व्रजमें श्रीगोपाङ्गनाओंकी प्रेम-विह्वलता तथा भगवान् श्रीकृष्णमें उनकी प्रेम-तन्मयताको देखकर प्रेमानन्द-पूर्ण हृदयसे श्रीराधामुख्या गोपियोंको नमस्कार करते हुए कहते हैं—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥
आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥

या वै श्रियार्चितमजादिभिरासक्तमै-
योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ।
कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरम्य तापम् ॥
वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
X X X X
(श्रीमद्भा० १० । ४७ । ६०—६३)

‘भगवान् श्रीकृष्णने रासोत्सवके समय इन व्रजाङ्गनाओंके गलेमें अपनी भुजा डाल-डालकर इनके मनोरथ पूर्ण किये । इन्हें भगवान्ने जिस कृपा-प्रसादका वितरण किया, इन्हें जैसा प्रेमदान दिया, वैसा प्रेम भगवान्की परम प्रेयसी नित्यसङ्गिनी, नित्य वक्षःस्थलविहारिणी लक्ष्मीजीको भी प्राप्त नहीं हुआ । कमलकी-सी सुगन्ध और कान्तिसे सम्पन्न देवाङ्गनाओंको भी वह नहीं मिला, फिर दूसरी स्त्रियोंकी तो बात ही क्या है ? मेरे लिये सबसे श्रेष्ठ यही होगा कि मैं इस वृन्दावनधाममें कोई क्षुद्र झाड़ी, लता या ओषधि ही बन जाऊँ । जिससे इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलि मुझे निरन्तर सेवन करनेको मिलती रहे । इन गोपियोंकी कैसी महिमा है, जिनका त्याग अत्यन्त कठिन है, उन स्वजनोंका तथा आर्यपथ—लोकवेदकी श्रेष्ठ मर्यादाका सहज परित्याग करके इन्होंने भगवान्की पदवीको—उनके परम प्रेमको प्राप्त कर लिया है, जिसको श्रुतियाँ नित्य ढूँढ़ती रहती हैं, पर पाती नहीं (नेति-नेति पुकारकर रह जाती) हैं । स्वयं भगवती लक्ष्मीजी जिनकी पूजा करती रहती हैं, ब्रह्मा, शंकर प्रभृति परम समर्थ देवता तथा पूर्णकाम आत्माराम एवं बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका चिन्तन करते रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णके उन्हीं दुर्लभ चरणारविन्दोंको रासलीलाके समेय गोपाङ्गनाओंने अपने वक्षःस्थलपर धारण किया और उनका आलिङ्गन करके अपने हृदयके (चिरकालीन) तापको—विरह-वेदनाको शान्त किया । उन नन्दबाबाके व्रजमें रहनेवाली गोपाङ्गनाओंकी चरणधूलिको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।’

भगवान् श्रीकृष्णकी भाँति ही श्रीराधारानीका दिव्य ‘सच्चिदानन्द षणु’ नित्य है और जैसे भगवान् श्रीकृष्णका लीलासे आविर्भाव होता है, वैसे ही प्रियतम श्रीकृष्णके सुखसम्पादनार्थ और लौकिक दृष्टिसे त्यागमय परम प्रेमकी दीक्षा-शिक्षा देकर विश्वको पवित्र करनेके लिये श्रीराधा-

जीका भी मङ्गलमय आविर्भाव हुआ करता है। आज वही राधा-रानीके मङ्गलप्राकट्यका महामहोत्सव पर्व है।

श्रीराधारानीने तथा उनकी अङ्गभूता श्रीगोपाङ्गनाओंने अपने सर्वत्यागमय अनिर्वर्तनीय परम प्रेमके द्वारा ही रसमय भगवान् श्रीकृष्णके यथार्थ स्वरूपके दर्शनका एवं उनके यथार्थ मिलनका सौभाग्य प्राप्त किया। श्रुतियोंके तथा महापुरुषोंके द्वारा नित्य अन्वेषणीय रासविहारी ब्रजेन्द्र-नन्दन भगवान् श्रीकृष्णकी परम दुर्लभ सर्वज्ञ-प्रेमसेवाका सर्वज्ञपूर्ण नित्य अधिकार प्राप्त किया। इस गोपीप्रेम या राधा-प्रेमके यथाशक्ति यथार्थ अनुकरणसे ही इस दिव्य प्रेमराज्यमें प्रवेश प्राप्त हो सकता है और वह श्रीराधारानी अथवा उनकी अङ्गभूता ब्रजाङ्गनाओंके आनुगत्यजनित अनुग्रहके बिना प्राप्त नहीं हो सकता; क्योंकि परम त्यागमय प्रेमकी शिक्षा इस विषय-जगत्में तो सम्भव ही नहीं; साधन-जगत्में भी परम दुर्लभ है। प्रायः सभीमें किसी-न-किसी प्रकारकी कामना वर्तमान रहती है—भले ही वह ऊँची-से-ऊँची अपवर्ग-मोक्ष-कामना ही क्यों न हो। विशुद्ध प्रेमसेवाका वास्तविक स्वरूप तो ये श्रीगोपाङ्गनाएँ ही हैं—श्रीराधाजी ही हैं। अतः परम प्रेमस्वरूपिणी श्रीगोपाङ्गनाओंके तथा परमोत्कृष्ट श्रीकृष्णप्रेम-शिरोमणिस्वरूपा श्रीकृष्णकी

हृदयेद्वरी नित्यनिकुञ्जेश्वरी महाभावस्वरूपा श्रीराधाजीके आनुगत्यसे ही इस दिव्य प्रेमके स्वरूपका कुछ पता लगा सकता है और प्रेमराज्यमें प्रवेशका अधिकार मिल सकता है। श्रीराधाजीके प्रत्यक्ष आनुगत्यकी हमारी स्थिति न हो तो उनकी किंकरी किसी मंजरी-सखीका आनुगत्य करके सच्चिदानन्दधनरस—प्रेमविग्रह परम प्रियतम श्रीकृष्णकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त करना चाहिये। आइये—एक साधक भक्तके साथ मिलकर उन्हींकी भागामें हम मंजरियोंमें प्रधान श्रीरूपमंजरीकी प्रार्थना करें—

श्रीरूपमशरि निजेश्वरयोः पदाब्ज-

सेवामृतैरविरतं परिपूरितासि।

त्वत्पादपङ्कजगतौ मयि दीनजन्तौ

दृष्टिं कदा विदिरसि स्वकृपाभरेण॥

हे श्रीरूपमञ्जरी ! आप अपने स्वामी श्रीकृष्ण एवं स्वामिनी श्रीराधाके चरणकमलोंकी विविध सेवारूप अमृतसे नित्य-निरन्तर परिपूर्ण रहती हैं। देखें वह दिन कब आता है, जब आप मुझ दीनपर अपनी कृपाभरी दृष्टि डालेंगी ! मुझे तो आपके चरणकमलोंका ही सहारा है।

बोलो, रस और भावरूप श्रीराधामाधवकी जय-जय।

वृषभानुद्वारपर भीड़

द्वार वृषभानुके आजु भई भीर री।
उमंगि चलयो रसनिधि छाँड़ि निज तीर री॥
गोप-गोपि बाल-वृद्ध तजि धन-धाम री।
खिचे-से आये सब खोय घर-काम री॥
दधि अच्छत दूब हरद कुंकुम भरि थार री।
आय जुरे अगनित जन सजि-सजि सिंगार री॥
नाचत सब नारि-नर छाँड़ि सकल लाज री।
छिरकत दधि-हरद करत आनँद धुनि गाज री॥
गुनीजन गावत सब नाचत दै ताल री।
आनँद-मद-माते गीत गावत रसाल री॥

भइ आज सबकी मनभाई सुखद बात री।
नाचि उठे अंग-अंग पुलकित भये गात री॥
आये अज, ईस, इंद्र, बरुन अरु कुबेर री।
लच्छी, सुरसती, सती, सची देवि ढेर री॥
धरि कै ग्वाल-गोपी-तन करत कीर्ति-गान री।
किंनर गंधर्व बने गोप भरत तान री॥
जय जय वृषभानु जयति भानु कीर्ति रानि री।
सब के हित भये आजु परम सुखदानि री॥
बरसि रह्यौ रस अनूप भूप भानु-द्वार री।
भये सब सबके आनन्द-आगार री॥

श्रीकृष्ण

(पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, साहित्याचार्य, 'राम')

(१)

श्रीकृष्णावतार

तमांसपनुदन्नथो कुलमपि द्रावयन् रक्षसां
सुसत्त्वमिव भावयन् विबुधवृन्दमुद्धावयन् ।
मनांस्यमलयन् सतां सुकृतपुञ्जमुज्जीवयन्
हरन्निह भुवो भरानवतरञ्जयेन्माधवः ॥

तमोगुणको हटाने, तमःप्रधान प्रकृतिवाले राक्षसोंके
कुलको मार भगाने, उत्तम सत्त्वगुणको प्रकट करने, सत्त्व-
प्रधान देवताओंको उन्नतिशील बनाने, सत्पुरुषोंके मनको
निर्मल—प्रसन्न करने, पुण्यपुञ्जको उज्जीवित बनाने तथा
भूमिके भारको उतारनेके लिये यहाँ अवतार लेनेवाले
श्यामसुन्दर माधवकी जय हो ।

(२)

जै कन्हैया लालकी

हड़ हुई कंसकी नृशंसताकी दुष्टताकी
बाँकी हुई अकुटि कराल महाकालकी,
ज्योति जागती-ती एक प्रकट अमंद हुई
बंद हुई कारामें असुर नरपालकी ।
जाया देवकीने उसे पाया जसुदाने किंतु
थलमें कमल खिला, बात थी कमालकी,
जाग सानुराग श्रद्धा-सिद्धियोंकी पूँज उठी,
गूँज उठी जै-जैकार जै कन्हैया लालकी ॥

श्रीराधा

(१)

श्रीराधाका स्वरूप

अलख अरूप नील रूपमें लखाता जहाँ,
दिव्य वह दर्पण स्वरूप राधिकाका है;
तृप्तिकी न चाह नित्य प्रीतमके तर्पणको,
प्रीतिरस वर्षण स्वरूप राधिकाका है ।
आँसुओंके हारका सिंगार हेतु साँवरेके,
सतत समर्पण स्वरूप राधिकाका है;
तृष्णा नहीं त्याग, अधिकार नहीं सेवा सदा,
प्राप्ति नहीं अर्पण स्वरूप राधिकाका है ॥

(२)

श्याम ही राधाके जीवन

मान लिया आली ! बनमाली हैं निठुर अति,
लीक निज प्रीति अलीक वे लखाते हैं;
पूत हैं बड़ेके किंतु धूतपन छोड़ते न,
गेह-गेह गोपियोंके गोरस चुराते हैं ।
रुचि-अनुसार अभिसार करें श्याम सखी !
दायें या कि बायें चलें तो भी मुझे भाते हैं;
साँसके समान यों खछंद गमनागमसे
मेरे प्राणप्यारे मुझे संतत जिलाते हैं ॥
(राधाष्टमी-महोत्सवमें लिखित और पठित)

श्रीराधा और गोपीजनका स्वरूप

जितना जितना मनसे आत्मसुखेच्छाका होता है त्याग ।
उतना उतना ही विशुद्ध बनता जाता मनका अनुराग ॥
फिर केवल प्रियतम-सुखकी ही एक अभीप्सा उठती जाग ।
फिर केवल वह प्रियसुखका ही साधन बन रहता बड़भाग ॥
स्तुति-निन्दा, शुभ-अशुभ, प्रियाप्रिय, लाभ-अलाभ, मान-अपमान ।
बन्धन-मोक्ष, नरक-सुरपतिगृह हो जाते सब द्वन्द्व समान ॥
एकमात्र प्रियतम-सुख-जीवन, एकमात्र प्रियतम भगवान् ।
राधा-गोपीजनका पावन दुर्लभ यही स्वरूप महान् ॥

ज्ञानकी साधना

(लेखक—श्रीश्रीरामनाथजी 'सुमन')

विद्या या ज्ञानको आचरणमें लाना ही ज्ञानकी सच्ची साधना है। खेतमें केवल बीज छींट देनेसे ही कर्तव्यका अन्त नहीं हो जाता; वस्तुतः यह तो कर्तव्यका आरम्भ है। उसमें उपयुक्त मात्रामें खाद देनी पड़ती है; फिर बार-बार उसकी सिंचाई करनी पड़ती है। निरर्थक घास-पात उसकी शक्तिको चूस न लें, इसलिये निराई करना भी आवश्यक होता है। फिर उसे नाशक कीड़ों-मकोड़ोंसे भी बचाना पड़ता है; तब कहीं एक वृक्षका पूरा स्वप्न साकार होता है।

क्या यह शिक्षित होनेका प्रमाणपत्र है ?

इसी प्रकार पुस्तकी विद्या या सैद्धान्तिक ज्ञानको बार-बार अपने जीवनमें उतारनेकी आवश्यकता पड़ती है। जब तुम उदार भावनाओंकी बातें कर रहे होते हो तब क्या तुम्हें उस दिनकी 'कफे' वाली घटनाका स्मरण आता है जब तुम बातचीतके सिलसिलेमें इतने उत्तेजित हो गये कि गाली-गलौज और हाथापाईपर उतर आये थे ? वह ज्ञानका प्रदर्शन था या अज्ञानका ? तुम्हारी सम्यक्ताका या असम्यक्ताका ? तुम्हारी विद्याका या कुरुचिका ? इसी प्रकार जब उस दिन शिक्षक पढ़ा रहे थे तब नरेशका उनकी दूसरी ओर देखनेपर चौंच बनाना तुम्हें और दूसरे चन्द्र लड़कोंको कैसा अच्छा लगा था ? क्या वह नरेशकी या तुम्हारी विद्याभिरुचि या एक युनिवर्सिटीके छात्र होनेका प्रमाणपत्र था ?

अभी उस साल एक विश्वविद्यालयके कुछ छात्रोंने अपने कुलपतिके घरकी स्त्रियोंका अपमान किया; एक कालेजके लड़केने कठोर पर ईमानदार परीक्षा-निरीक्षकको छुरा मार दिया; इसलिये कि उसने नकल करनेके निषिद्ध कामसे उसे रोका था। उस दिन अखबारोंमें पढ़ा, छात्रोंने बसें जला दीं; कालेजकी प्रयोगशाला तथा कार्यालयके शीशे एवं फर्नीचर तोड़ दिये। आये दिन हम इस प्रकारके समाचार पढ़ा करते हैं। कभी हमारे छात्र विनयके लिये प्रसिद्ध थे; आज उद्दण्डताके लिये विख्यात हो रहे हैं। अवश्य ही इस उद्दण्डताके पीछे कुछ सामाजिक पीड़ाएँ भी होंगी, परंतु इससे उसका समर्थन नहीं होता।

अशिष्टता किसी भी सम्यक्ता, किसी भी उत्तम जीवन-क्रमका अंश नहीं हो सकती। अनुशासन सम्यक्ताका प्राण है; संयम संस्कृतिका मूल है; समाजकी उन्नतिका सोपान है।

किंतु वह इसलिये भी अनिवार्य है कि व्यक्ति स्वयं अपनी महत्ताकी उपलब्धि भी उसके बिना नहीं कर सकता।

जब गूंगी पुस्तकें बोलने लगेंगी

तनिक विचारसे तुम अध्ययन-कालको कलाका सौन्दर्य प्रदान कर सकते हो। जरा-सा विनम्र होकर तुम अपने शीलकी छाप अध्यापकोंपर लगा सकते हो; जरा शिष्ट होकर तुम अपने गुरुजनों एवं अभिभावकोंको अपने प्रति आश्वस्त एवं प्रशंसापूर्ण बना सकते हो; जरा प्रेम दिखाकर तुम लोगोंका दिल जीत सकते हो। अपने विषय, अपने ग्रन्थ, अपने अध्यापकके प्रति जरा अधिक ध्यान देकर तुम न केवल विश्वासपूर्वक परीक्षामें अपनी अच्छी श्रेणी ला सकते हो वरं अपने अर्जित ज्ञानको उपयोगी भी बना सकते हो। आवश्यकता इतनी ही है कि जब तुम पढ़ो, तब पुस्तकोंको बोझ समझकर न पढ़ो; उनके साथ समय यों बिताओ, मानो किसी मित्र या हितैषीके साथ बैठे हो। जरा-सा अपना रुख बदल दो; देखोगे कि ये गूंगी किताबें सचमुच तुमसे बोलने लगी हैं; अपने दिलकी बातें कहने लगी हैं; तुम्हारे जीवनसे अपनेको जोड़ने लगी हैं। तब वे जड़ पुस्तकें नहीं रह जायँगी; वे तुम्हारे जीवनमें, तुम्हारे हृदयमें प्रवेश करेंगी। तब वही शुष्क ज्ञान बोझ न होकर नवीन स्फूर्ति एवं प्रेरणासे मनोरम हो जायगा।

झूठी विद्याका दम्भ

आजकल यह भी दिखायी पड़ता है कि झूठी विद्याने झूठा अभिमान उत्पन्न कर दिया है। कई प्रकारका दम्भ झूठी विद्याके साथ मिल गया है। कुछ विदेशी व्यक्तिवाचक नाम या विचारधाराओंका उल्लेख कर श्रोताओं या पाठकोंपर धाक जमानेकी चेष्टा, मित्रोंमें बहुपठित कहलाये जानेका लोभ इसी प्रकारका एक दम्भ है। इन नामोंसे हम विज्ञापित करते हैं कि हम बहुत जानते हैं और दूसरोंका ज्ञान दकियानूसी या पुरातनपन्थी है। ऐसे लोग इतना भी नहीं जानते कि ज्ञानके क्षेत्रमें पुरातन या नूतन-जैसा कुछ नहीं है। जो सत्य है वह सनातन है, पुरातन है। उस सनातन-पुरातनपर अपरिचयका परदा पड़ जाता है। उस परदेको उधाड़कर उसका दर्शन करना ही नूतन है। इस प्रकार पुरातन ही नव-नव रूपोंमें प्राणोंमें आता है, प्रज्ञामें अवतीर्ण होता है;

आँखोंमें झींझ हो उठता है। पुराणमें जो पुनरावतरण ही मूल्य है। हम यह भी देखते हैं कि हम अपने या दूसरे देशोंके पुरातन साहित्यका जितना पढ़े ही तिरस्कार करते हैं। यह सत्य नहीं है; अज्ञानका जो तिमिरावरण हमारे मन-बुद्धिपर छा गया है, उसे ही जड़की भाँति पकड़कर हम बैठ जाते हैं।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि छात्र जब घर जाते हैं तब अपने माता-पितासे अपनेको विकसित और विशिष्ट समझनेका गर्व कभी-कभी उनमें दिखायी देता है। यह वृत्ति जीवन-कालमें भड़ी एवं कुर्वन्निर्माण रेखाओंके उदयके समान है। ऐसे समय तुम्हें याद नहीं रहता कि तुम्हारे शिक्षणके लिये वे ही गरीब कितना कष्ट उठाते हैं; अपने प्रति न जाने कितनी सुविधाओंका त्याग करते हैं; कभी-कभी आवश्यक भोजन एवं वस्त्रतकका त्यागकर तुम्हारी पढ़ाईका भार उठाते हैं। तब क्या तुम जो बन रहे हो उसमें केवल तुम्हारा पुरुषार्थ है? नहीं; उसके पीछे न जाने कितनोंका त्याग; न जाने कितनी वेदनाकी थड़ियोंकी प्रेरणा; न जाने कितना आत्मपीड़न है? तुम्हारे निर्माणमें जिनका मौन दान है, जिनके रक्तदानसे, जीवनदानसे, कण-कणके त्यागसे तुम बढ़ रहे हो; उभर रहे हो; उठ रहे हो; पनप रहे हो; उनके प्रति कृतज्ञवृत्तिका न होना तो न केवल वास्तविक विद्याका उपहास है वरं मानवताका ही तिरस्कार है। जिस दिन तुम इसे समझोगे, अनुभव करोगे, सच्ची मृदुता एवं रससे भर उठोगे और वास्तविक विद्या प्राप्त कर अपने कुलका मस्तक ऊँचा करोगे।

फिर मान भी लें कि तुम साक्षरतामें, पुस्तकी-ज्ञानमें अपने पालकोंसे बढ़े-चढ़े हो, किंतु इससे यह कहाँ सिद्ध होता है कि वास्तविक ज्ञानकी पूँजीमें भी तुम उनसे ऊँचे हो? विद्या तो सद्गुणोंके संस्कारके लिये है; वह मानवमें जो श्रेष्ठ शक्तियाँ मूर्च्छित पड़ी हुई हैं, उन्हें जगाकर जीवनमें उनका विनियोग करनेके लिये है; वह मानवकी पशुताको पराजित कर उसमें चारित्र्य एवं श्रेष्ठ संकल्पोंकी उदात्तताके विकासके लिये है। क्या इनमें वे लोग तुमसे आगे नहीं हैं? उनमें दूसरोंके लिये स्वयं कष्ट सह लेनेकी जो वृत्ति है; उनमें संतानके भविष्यके लिये त्याग करनेकी जो सहज प्रेरणा है; उनमें साधुताके प्रति जो आस्था है; उनमें कठिनाइयों और आपदाओंके बीच चलते हुए भी सन्मार्गसे न डिगनेका जो बल है; वह क्या शिक्षाका ही प्राप्य नहीं है? उसने उनके जीवनको एक अन्तःसौन्दर्य प्रदान किया है और

मानवकी उस महिम्नासे उन्हें अभिष्ट कर दिया है, जिसके बिना जीवन जीवन नहीं, अन्ध-मरण है।

मानवको खण्डित करनेवाली शिक्षा

हम यह भी देखते हैं कि बहुत जगह शिक्षासे हमारे हृदयको सामान्य मानवसे काटकर दूर कर दिया है। यह एक भयावह स्थिति है। भिन्न-भिन्न शिक्षित एवं अभिष्ट जन-समाजके बीच एक दीवार खड़ी कर दी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जाति या देशकी मुख्य मानस-धारासे शिक्षितवर्ग बहुत दूर होता जा रहा है। जीवनमें परापूर्व करनेपर जिन्हें पढ़नेका हम प्रत लेते हैं, सरकारी या गैर-सरकारी सेवाओंद्वारा जिनकी सेवाका हम दम भरते हैं, उनको जानते ही नहीं; ऊपरसे जानकर, उनके बीच रहकर भी अंदरसे नहीं जानते। विभेदके अन्धकारके मानस-कारागारमें बंद हमारी अपनी मिथ्या कल्पनाएँ हमें नित्य उनसे दूर ले जाती हैं। विराटसे मानवका मिलन, न कि विच्छेद, शिक्षाका लक्ष्य है; पर यहाँ हो यही रहा है कि शिक्षासे हमें बान्धन बना दिया है और जातिकी जीवन-धारासे अपनेको अलग रखनेमें ही हम प्रसन्न-मूढ़ हैं। हमें इतना भी स्मरण नहीं रह गया है कि जो शिक्षा खण्डित करती है, केवल संशय देती है विश्वास नहीं; जो मानवको मानवसे दूर करती है, जिसमें अमेद-भावनाका विकास नहीं है, वह वस्तुतः शिक्षा ही नहीं है।

जन्मभूमिकी उपेक्षा

जिस मिट्टीमें हम पैदा हुए हैं; जिस समाजमें पले हैं; जिस वातावरणमें साँस लेते हैं; जहाँकी जलवायु हमारी शिरा-शिरामें प्रवाहित है; जहाँकी ज्योति हमारी आँखोंको प्रदीप्त करती है; जहाँकी हरियाली हमारे मन-प्राणमें बसी हुई है; जहाँकी चाँदनीमें हमारे सपने साकार होते हैं और भावनाएँ नृत्य करती हैं; जहाँकी नदियाँ न केवल हमारी प्यास बुझातीं, हमें अन्नदान करती हैं वरं हजारों वर्षके हमारे अतीतकी मौन गाथा हमारे कानोंमें कह जाती हैं, उसमें ही अपनेको खोजना और पाना, अपने साथ उसका सामञ्जस्य, बल्कि मिलन-निमज्जन ही वास्तविक एवं जीवन्मयी शिक्षा है।

जीवन-मूल

यह स्नातककाल, यह विद्योपार्जनकाल, यह ब्रह्मचर्यका समय जीवनका मूल है। यदि जड़ मजबूत न हुई, यदि

उसमें धुन लगा गया तो ऊपरसे बड़ा और हरा-भरा दीखने-वाला सम्पूर्ण वृक्ष एक दिन सहसा इस प्रकार ढह जायगा, मानो कभी था ही नहीं। याद रखिये, जीवन-भर आपको खर्च-ही-खर्च करना है। आज कमानेका, पूँजी एकत्र करनेका, संचयका समय है। इसीपर भविष्यकी सम्पूर्ण उठान, सम्पूर्ण सुख-वैभव और सम्पूर्ण सफलता निर्भर है। इसलिये इसे चुहलमें, खिलवाड़में न बिताओ। आज जीवनके महलकी नींव दी जा रही है; इसमें कर्तव्यकी कोई उपेक्षा क्षमा न की जायगी।

मुकुन्दको देखो, माता-पिता इतने गरीब थे कि कभी उसे दूध न जुटा पाये; सूखी रोटियाँ भी कभी मिलीं, कभी नहीं मिलीं। परंतु उसने हिम्मत न हारी। श्यामलालके यहाँ रसोई बनाता, शामको ट्यूशन करता और रातको पढ़ता था। परंतु इतनी कठिनाइयोंके बीच भी तुमने कभी उसे मलिन, उद्विग्न, क्रुद्ध या अशिष्ट न देखा होगा। उत्तेजनाओं-

के बीच भी सदा शान्त रहता, क्रोध और उपहासका जवाब मुस्कराकर देता, व्यंगका स्वागत मृदु वचनोंसे करता था। गुरुजनके प्रति श्रद्धावान्, अपने एवं दूसरोंके प्रति ईमानदार, श्रमसे न भागनेवाला, स्वयं पीड़ित होते हुए भी दूसरोंके दुःखमें भाग लेनेको सदा तैयार। वही मुकुन्द इतना बढ़ा कि हमारे देशका एक अत्यन्त उच्च अधिकारी हो गया है। और आज भी वह उतना ही विनयशील तथा नम्र है। विद्या उसके जीवनमें उतर आयी है।

इसलिये ब्रह्मचर्यमय-जीवनकी कलाके उदय तथा ज्ञानकी साधनाके लिये तुम जरा अपने प्रति सच्चे बनो; अपनी वृत्तियोंपर अनुशासन रखो; संयमसे रहना सीखो; सीखनेकी, जाननेकी, जिज्ञासाकी नम्रवृत्ति धारण करो; अपने हृदयको उच्च भावनाओंसे रसमय एवं उदार होने दो और तब देखो कि तुम्हारी कठिनाइयाँ किस प्रकार गल गयी हैं और मार्ग कैसा सरल एवं सुखद हो गया है।

मा गृधः कस्यस्विद्धनम्

(लेखक—श्रीसुरेशचन्द्रजी वेदालंकार एम्० ए०, एल्० टी०)

‘मा गृधः कस्यस्विद्धनम्’ यह उपनिषद् और वेदका वाक्य है। इसका अर्थ है ‘किसी धनका लोभ मत करो, संसारमें धन किसका है?’ अर्थात् धन किसीका नहीं है। धनकी इतनी उपेक्षा करनेका मतलब यह नहीं कि समाजमें धनका महत्त्व है ही नहीं? भर्तृहरिजी महाराजने धनके महत्त्वको बतलाते हुए कहा है—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः

स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।

स एव वक्ता स च दर्शनीयः

सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥

अर्थात् जिस मनुष्यके पास सम्पत्ति है, वह कुलीन, पण्डित, अनुभवी, गुणज्ञ, वक्ता और दर्शनीय है। इस संसारमें सारे गुण स्वर्णमें ही विद्यमान हैं।

सचमुच धनकी बड़ी महिमा है। धनके बिना मनुष्यका कुछ दिन भी गुजारा चल नहीं सकता, धनके बिना मनुष्य-समाजकी रक्षा नहीं हो सकती, सरकार धनके बिना निर्बल है, संस्थाओंकी सत्ता धनके बिना बची नहीं

रह सकती। साधु, संन्यासी, महात्मा तथा ब्रह्मचारी भी धनके बिना अपना काम नहीं चला सकते। यदि किसीके पास सभी गुण विद्यमान हों पर धन न हो तो उसके गुणोंका विकास रुका रहता है, उसकी योग्यता अयोग्यतामें परिवर्तित हो जाती है। किसीने ठीक ही कहा है—

शीलं शौचं क्षान्तिर्दाक्षिण्यं मधुरता कुले जन्म।

न विराजन्ति हि सर्वे वित्तहीनस्य पुरुषस्य ॥

अर्थात् शील, शौच, क्षमा, कुशलता, मधुरता और कुलीन वंशमें जन्म—ये सब वस्तुएँ धनहीन मनुष्यको नहीं प्राप्त होती हैं। इसीलिये आज लोग कहते हैं—

धनं संचय काकुत्स्थ धनमूलमिदं जगत्।

अन्तरं नैव पश्यामि निर्धनस्य मृतस्य च ॥

हे राजन् ! धनका संचय करो; क्योंकि इस संसारका आधार धन ही है। मैं मरे हुए और निर्धन व्यक्तिमें कोई अन्तर नहीं देखता। सचमुच धनहीन व्यक्ति अत्यन्त हीन गया-गुजरा प्राणी है। इसी बातको ध्यानमें रखते हुए भीष्म पितामहने महाभारतमें युधिष्ठिर महाराजसे कहा है—

संख्या ११]

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।

इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥

मनुष्य अर्थका दास है। अर्थ संसारका स्वामी है, वह किसेका दास नहीं है। महाराज ! इसी धनके कारण मैं कौरवोंसे बंधा हुआ हूँ ।

इतना ही नहीं, भारतीय संस्कृतिमें चार प्रकारके पुरुषार्थ माने गये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ये चार वस्तुएँ ही ऐसी हैं जिन्हें प्रयत्न करके प्राप्त करना होता है। पुरुषार्थका अर्थ है वह वस्तु जिसे मनुष्यको अपने पुरुषार्थसे प्राप्त करना चाहिये। पुरुषार्थका अर्थ कृतार्थता, पराक्रम, सार्थकता आदि है। सचमुच भारतीय संस्कृति दैन्य और निराशाके गीत गानेवाली नहीं। भारतीय संस्कृति धनको निक्कड़ नहीं समझती। इसीलिये यहाँ अर्थ भी एक पुरुषार्थ है। द्रव्य, सम्पत्ति त्याग्य नहीं। प्रयत्नके द्वारा द्रव्य संचय कीजिये, सम्पत्ति अर्जन कीजिये। भारतीय संस्कृतिमें धनसे परहेज नहीं। यह न तो भिक्षु संस्कृति है और न भोगवादी संस्कृति है। यह धनको पचा लेनेवाली संस्कृति है। यह देखते हुए ही तो 'संत तुकाराम' जैसे महात्माने भी कहा है—

सद् व्यवहारोंसे जोड़ो धन, उसे व्यय करो बन उदार मन ।

वेदमें स्पष्ट रूपमें मनुष्यको आदेश देते हुए कहा गया है—'शतहस्त समाहर सहस्र विकिर' अरे लोगो ! सैकड़ों हाथोंसे धन लाओ और हजार हाथोंसे उसे वितरित करो, उसे दूसरोंको देते चलो, उसके प्रति लालच मत करो, उससे चिपटकर मत बैठो। यह धन-संचय मनुष्यके अंदर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओंको घुसाकर उसका सर्वनाश कर देता है। अनुभवी पुरुषोंने इसीलिये कहा है—

द्रव्येण जायते कामः क्रोधो द्रव्येण जायते ।

द्रव्येण जायते लोभो मोहो द्रव्येण जायते ॥

धनसे काम, क्रोध, लोभ, मोह पैदा होते हैं। इतना ही नहीं, इससे भी आगे कहा है—

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।

भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥

एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।

तस्मादनर्थमर्थारूपं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥

(श्रीमद्भागवत ११।२३।१८-१९)

चोरी, हिंसा, मिथ्याभाषण, पाखण्ड, काम, क्रोध, अहंकार, मद, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा और व्यसन—दाराव, जूआ, व्यभिचार—ये पंद्रह अनर्थ मनुष्योंमें धनके ही कारण माने गये हैं। इसलिये अपना कल्याण चारनेवाला पुरुष 'अर्थ' नामक 'अनर्थ'को दूरसे ही त्याग दे। इस धनके प्रति लोगोंको सावधान करते हुए हिंदी-कवि 'गिरिधरदास'ने भी लिखा है—

दौलत पाय न कीजिए सपनेमें अभिमान ।

चंचल जल दिन चारि को ठाँउ न रहत निदान ॥

ठाँउ न रहत निदान, जियत जगमें जस लीजै ।

मीठे वचन सुनाय विनय सब ही को कीजै ॥

कह गिरिधर कविराय अरे यह सब घर तौलत ।

पाहुन निसिदिन चारि रहत सब हो के दौलत ॥

भगवान्का कौन प्यारा है ? इसका उत्तर देते हुए

'दादूदाल'ने कहा है—

ग्रंथ न बाँधे गाठड़ी, नहिं नारी सूँ नेह ।

मन इन्द्रिय स्थिर करै छाँड़ि सकल गुण देह ॥

गाँठमें जो द्रव्य नहीं बाँधता, कामवासनामें जिसकी प्रीति नहीं, मन और इन्द्रियोंको जिसने अचञ्चल कर लिया है और दैहिक गुणोंका परित्याग कर दिया है, उसीको स्थितप्रज्ञ संत कहना चाहिये ।

इस प्रकार हमें कभी-कभी धन दुर्गुणोंका कारण प्रतीत होने लगता है। इतिहासके पन्नोंको खोलकर जब धनियोंके जीवन-वृत्तान्तोंको हम पढ़ते हैं तो इस धनसे चिपटनेका भयंकर परिणाम हमें दिखायी देता है। 'हिंदी-मिलाप'में एक बार यह प्रकाशित हुआ था कि 'सन् १९२३में शिकागोके एक होटलमें संसारभरके बड़े-बड़े धनियोंकी एक सभा हुई। इस सभामें दुनियाकी सबसे बड़ी लोहा-कम्पनीके प्रधान विद्यमान थे। अमेरिकाके नेशनल सिटी बैंकके अध्यक्ष, अमेरिकाकी सबसे बड़ी गैस-कम्पनीके प्रधान, गेहूँका सबसे बड़ा सट्टा करनेवाले न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंजके प्रधान, अमेरिकाकी हालस्ट्रीटके सबसे बड़े गोदामके स्वामी, सारी दुनियाके देशोंके सैटलमेंट बैंक-प्रधान भी थे। यह संसारके उन इने-गिने धनियोंमें थे जिनको स्वयं पता नहीं था कि उनके पास कितनी बनराशि है। परंतु पच्चीस वर्षके पश्चात् धनके लोभी इन व्यक्तियोंकी दशा क्या हुई वह भी सुनिये। दुनियाकी सबसे बड़ी

लोहेकी कम्पनीके प्रधान चार्ल्स दीवाल्या होकर मरे। दुनियाकी सबसे बड़ी गैस-कम्पनीके अध्यक्ष हार्वर्ड पागल्लोंके अस्पतालमें भर्ती हुए। दुनियाकी सबसे बड़ी व्यापारी-कम्पनीके प्रेसीडेंट सेमुअल जीवनके अन्तिम दिनोंमें भिखारी और अपराधी बनकर भटकते रहे। गेहूँका सट्टा करनेवाले मरनेसे पूर्व दीवाल्या हुए। न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंजके प्रधान विटने जेलखानेमें पड़े और बंदीगृहमें उनकी मृत्यु हुई। सबसे बड़े गोदामके स्वामीने आत्महत्या कर ली। दुनियाके सारे देशोंके बैंकोंके प्रधान फ्रेजरने भी आत्महत्याका मार्ग पकड़ा। ठीक ही कहा गया है—

अर्थस्योपार्जने दुःखमर्जितस्य च रक्षणे।

नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं दुःखभाजनम् ॥

धनके कमाने, कमाकर रक्षा करनेमें दुःख है। नाश और व्ययमें दुःख है—ऐसे धनपर धिक्कार है, जो दुःख-ही-दुःखका कारण है। यह दुःख दूर कैसे हो? इसके लिये मनुष्यको अपने हृदयमें यह भावना लानी चाहिये कि धन उसका नहीं है, यह तो प्रभुकी सम्पत्ति है और जिस दिन चाहे वह मुझसे ले सकता है। इस प्रकार धनी व्यक्ति धनका ट्रस्टी है। प्रभुको दीन बहुत प्यारे हैं। हैं भी तो वे दीनवन्धु। इसलिये हमें इस धनका प्रयोग उन दीनोंके लिये, दुखियोंके लिये करना चाहिये।

काम करवाकर उचित पैसे न देना, पैसे लेकर काम-चोरी करना, दूसरोंके परिश्रमका अनुचित लाभ उठाना, बिना उपजके लगान वसूल करना, व्याजके नाम पूँजी ही हड़प लेना, सीधे-सादे लोगोंको धोखा देकर उनका हक छीन लेना तो प्रत्यक्ष पाप है ही। अपने पास जो कुछ हो, उसे भगवान्का न समझकर अपने भोगके लिये ही उपयोग करना भी अपराध है। अतएव सारी सामग्रीको भगवान्की समझकर जहाँ-जहाँ जरूरत हो, वहाँ-वहाँ उसका उपयोग करना, देना चाहिये, पर कहीं भी न दातापनका अभिमान हो, न लेनेवालेपर अहसान लादा जाय, न बदला चाहा जाय—यही समझा जाय कि भगवान्की वस्तु भगवान्की सेवामें लगकर सार्थक हो गयी।

वस्तुतः उतनी ही वस्तुपर अपना अधिकार है जो

हमारे उदरपोषणके लिये आवश्यक हो। अधिकपर अधिकार मानना तो चोरी है और इस प्रकार चोरी करनेवाला दण्डका पात्र है।

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

(श्रीमद्भागवत ७।१४।८)

भारतीय संस्कृतिका तो यह नाद ही है—

करूँगा मैं सब जगत् अशोक।

आनन्दपूर्ण होंगे त्रिलोक ॥

इसीलिये तो महाभारतकारने जोरदार शब्दोंमें चिल्लाकर कहा है—

दरिद्रान् भर कौन्तेय !

‘हे युधिष्ठिर ! दरिद्रोंका भरण-पोषण कर !’ यह है धनके प्रति वैदिक या सनातन भारतीय संस्कृतिकी भावना। जिस देश, समाज और जातिमें प्रत्येक मनुष्य औरोंके भूखा न रहनेके बाद स्वयं भोजन करता है उसी समाजमें सभी व्यक्ति सुखी रह सकते हैं। इसीलिये वेदमें कहा है—

केवलाघी भवति केवलादी।

‘अकेला भोजन करनेवाला केवल पापको ही खाता है।’ कितनी उच्च है यह विचारधारा। इसीकी प्रतिध्वनि भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीता (३।१३) में की है—

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।

‘अर्थात् जो पापीलोग अपने शरीर-पोषणके लिये ही पकाते (कमाते) हैं, वे तो पापको ही खाते हैं।’ जिस समाजमें बिना दूसरेको खिलाये खाना पाप समझा जाय, वहाँ स्वाभाविक सुख-शान्ति विराजमान हो सकती है। अफ्रीकाकी जंगली जातियोंमें आज भी दूसरोंको खिलाकर खानेकी भावना पायी जाती है। Modern Review नामक पत्रिकामें एक टिप्पणी लिखी गयी थी जिसका शीर्षक था The savage अर्थात् जंगली। उसमें जंगली परिवारका वर्णन करते हुए बतलाया गया था कि तीन दिनोंतक भूखे रहनेके बाद जब उस परिवारको शिकार मिला और उसने उसे पका लिया तो परिवारका मुखिया बाहर निकला और उसने जोर-जोरसे चिल्लाकर कहा ‘क्या कोई

भूखा है—वह भोजन कर ले ।' तीन बार कहनेपर भी जब कोई न आया तब परिवारवालोंने भोजन किया । भारतीय सनातन और वैदिक धर्ममें तो प्रतिदिन वलिवैश्व-देव-यज्ञकी भावना और प्रथा विद्यमान है । इसलिये हमें धनके प्रति लालचकी भावनासे अपनेको बचाना है और अपनेको उस धनका स्वामी न समझकर उसे प्रभुकी सम्पत्ति मानकर उसे प्रभुके बनाये, दीन बन्धुके पुत्रोंके लिये अर्पित करनेका उपदेश इस छोटेसे वाक्यमें दिया गया । आइये, हम धन कमाते हुए भी इस धनको अपने प्रभुकी सेवामें लगानेका प्रयत्न करें । ठीक ही तो है—

जैसे एक सुहृदके हृदयकी प्रेम-भावनासे प्रेम स्वयमेव पगे दूसरेके मनमें ।
जैसे मिले ज्ञानीसे विनल ज्ञान सज्जनको शील उपजावे संत सुजन सदनमें ॥
वैसे ही प्रदीप्त होगी जब ज्ञान-वर्द्धी तभी होंगे प्रतिबुद्ध प्रभु मानस-भवनमें ।
होंगे मेरे मनमें विराजमान दीनबन्धु देखूंगा उन्हें मैं जब दीन-दुःखी-जनमें ॥

यह तभी सम्भव है जब हम 'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' की भावना अपने अन्तःकरणमें लायेंगे ।

गौ—लोकमाता

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

गावों लोकस्य मातरः ।

सृष्टिके इतिहासमें सजीव संसारपर एक साथ इतने संकट कदाचित् ही आये हों । लगता था प्राणिसृष्टि सर्वथा क्षत हो जायगी । संकट सदा धर्मकी उपेक्षासे आते हैं; किंतु ऐसा संकट जब कि मनु प्रजापति एवं जिनपर प्रजाकी परम्परा बनाये रखनेका दायित्व है—सभी संव्रस्त हो उठे थे । महाशक्ति चामुण्डा संसारको चाट लेनेपर तुल गयी थीं ।

क्या हुआ कि मनुष्य धर्ममराङ्मुख हो गया था । कलियुगमें मनुकी संतान प्रायः इन्द्रियलोलुप हो जाती है । तामस मन्वन्तरके इस पञ्चदश कलियुगमें वह कुछ अधिक उच्छृङ्खल, अपने स्थूल ज्ञानपर अधिक आश्रित, अधिक गर्वोद्धत हो गयी । उसने प्रकृतिके कुछ रहस्य क्या जान लिये, समझ लिया कि वही सृष्टिका कर्ता-धर्ता है । उसने रोगोंको पराजित किया, एक सीमातक शरीरको अमर कर लिया, कुछ नवीन प्राणी बना लिये और सौरमण्डलके दो-तीन ग्रहोंमें उसके उपनिवेश बन गये । ईश्वर, धर्मको उसने धता बता दिया । सदाचार उसके शब्द-कोषमें दुर्बलताका पर्यायवाची बन गया और इस प्रमादमें उसका औदित्य बढ़ता गया—बढ़ता गया और लो अब महाविद्या चामुण्डा उद्दाम नृत्य करने लगी है । क्षुद्र मानव-मानवका क्षुद्र विज्ञान क्या अब चामुण्डाके चरणोंकी गति अवरुद्ध कर लेगा ?

मानवकी चर्चा व्यर्थ है । प्रजापति पथ नहीं पा रहे हैं । स्वयं सृष्टिकर्ता संव्रस्त हैं । यह शिव-वशविहारिणी किसीकी स्तुति नहीं सुनती । कोई मर्यादा नहीं मानती । यह सहज प्रचण्डा और इसका खप्पर क्या कभी भरा है कि आज भर जायगा ।

शाश्वत सरिताओंकी धाराएँ शुष्क-प्राय हैं । पृथ्वी अनुदिन प्राणि-शून्य होती जा रही है और बढ़ता जा रहा है मरुस्थल । तृण, गुल्म, तरुओंसे रहित धरित्री कंकाल दीखने लगी है । यह अवर्षण है ? ऐसा भी अवर्षण होता है, जिसका आदि-अन्त ही न जान पड़े ?

मानवके प्रयत्न—मानवके अहंकारका मेरुदण्ड उसका विज्ञान आज भग्नपृष्ठ, असहाय पड़ा है । वैज्ञानिकोंके यन्त्र कुछ नहीं बतलाते कि क्या हो रहा है । वायुमण्डलमें बाष्प बने तो वे वर्षा करा लें; किंतु यहाँ तो समुद्रका स्तर तीव्रतासे गिरता जा रहा है, सागर सूखते जा रहे हैं और वायुमें बाष्पका पता नहीं है ।

पृथ्वीकी चुम्बकीय शक्ति घट गयी है । चुम्बकीय गुठली किसी कारण क्षीण हो गयी है । वैज्ञानिकोंने अपने ढंगसे विवेचन किया—'वायुहीन-जलहीन ग्रहोंकी स्थिति पृथ्वी प्राप्त करने जा रही है । इस प्रलयते बचनेका कोई मार्ग नहीं है ।

विशानने अपने सब हथियार डाल दिये । हथियार उसे डालने ही थे । कोई एक बिपत्ति थी उसके सम्मुख । अचानक भूकम्प और ज्वालामुखी फटने प्रारम्भ हो गये थे । भूमण्डलकी लगभग सभी मुख्य वेधशालाएँ, यन्त्रागार, अनुसंधान-केन्द्र उनके पेटमें चले गये । मनुष्यने जहाँ अपने यन्त्र एकत्र करनेका प्रयत्न किया, धराके गर्भसे वहीं ज्वालामुखी फट पड़ा । मानवके प्रयत्न ध्वस्त करनेपर प्रकृति उतर आयी थी ।

अमरत्व, रोगजय, नवीन प्राणि-सर्जनका अहंकार किसी काम नहीं आया । पता नहीं कहाँसे नवीन-नवीन रोगाणुओं की सेना उतरने लगी । तीव्र संक्रामक रोगाणु और वे भयंकर-तम विष भी पचा लेते थे । जनपदोंको उन्होंने ऐसे समेटना प्रारम्भ किया जैसे कृषक नहीं, कृषि काटनेवाली मशीन खेतोंको समेटती है ।

आस्थाहीन, आचारहीन, धर्महीन मानव—अपंग विशानको लेकर असहाय अब क्या करे ? वह तो मृत्युकी अवश प्रतीक्षा करने लगा था ।

× × ×

सृष्टिकी एक मर्यादा है । हम उसे जानें न जानें, मानें न मानें, उल्टक-समुदायके जानने-माननेका प्रभाव दिवसकी सत्तापर पड़ा नहीं करता । सृष्टिकी संचालक, नियामक, संरक्षक कुछ शक्तियाँ हैं । कलाप-ग्रामके कल्पान्त तापस, मनु, प्रजापति, पितृगण एवं देवता । अकाल-प्रलय हो जाय तो उनकी सत्ता बनी रहेगी ? उनका दायित्वके प्रति प्रमाद वह क्षमा कर देगा, जो सबका परम नियन्ता है ?

प्रजापति, पितृगण, देवता क्या करें ? चामुण्डाके सम्मुख उनका वश कहाँ चलता है । मनु और जन, तप, महर्लोकोंके तापस, ऋषि, मुनि उतर आये धरापर । उनके लोक कर्मलोक नहीं हैं । अपने लोकोंमें वे कुछ करते—कोई परिणाम नहीं था । कलापग्रामके कल्पान्तजीवियोंको उन्होंने प्रत्यक्ष सहयोग दिया ।

यज्ञ—लेकिन यज्ञसे तुष्ट होकर देवेन्द्र वर्षा तो तब करें, जब उन्हें ऐसा करने दिया जाय । यज्ञ होते हैं—सविध, सम्यक् पूर्ण यज्ञ हिमगिरिकी अधित्यकामें वे विशुद्ध सत्त्व ऋषि करते हैं । मेघमाला उठती है और ऊँहरी छूटती है—

श्रुतिकी मर्यादा रक्षामात्रके लिये फुहारें मात्र । चामुण्डाकी हुंकारके सम्मुख सांवर्तक मेघ ही नहीं ठहर पाते तो सामान्य कादम्बिनी कैसे ठहरेगी ?

‘हम अवश हैं !’ इन्द्र साक्षात् प्रकट हुए ऋषियोंके सम्मुख । वे जानते हैं कि इन तापसोंका अनुष्ठान अमोघ रखनेका दायित्व उनपर है और इनका कोप—दीनवदन देवेन्द्रने अपनी असमर्थता प्रकट की । कोई ऋषि अवशपर क्रोध करके शाप कैसे दे सकता था ?

‘महाविद्या महाशक्ति चामुण्डाके रोपका उपशम ?’

‘वह उपशान्त होनेको प्रस्तुत नहीं है ।’

‘उसे शान्त तो होना चाहिये ।’

‘उसे किसीका शाप स्पर्श नहीं करता ।’

ऋषि-मुनियों एवं तापसोंकी सम्पूर्ण मण्डली कोई मार्ग नहीं पा रही थी और उनमें प्रत्येकको शत है कि जब प्राणी-को कोई पथ प्राप्त न हो, उसे क्या करना चाहिये । उनके नेत्र बंद हुए और परमप्रभुको उन्होंने साथ ही पुकारा—शब्दोंमें नहीं, अन्तरकी वाणीमें, जिसे वह अन्तरका वासी ठीक समझता है ।

‘हम लोकमाताका आवाहन करेंगे !’ कोई उस अनन्त करुणावर्णको पुकारे और पथ न पावे ? पथ प्राप्त हो गया था । एक साथ ऋषियोंके स्वरमें सुरभी-स्तवन नगाधिराजके शिखरोंमें गूँजने लगा । स्तवनके स्वर उच्च होते गये और उनमें भाव-विह्वलता आयी । सहज शुद्ध अन्तःकरण ऋषियोंके कण्ठसे गूँजती वह परा वाणी, गगन परिपूत हो गया उस नादसे ।

शत-शत चन्द्रज्योत्स्ना-चिनिन्दक ज्योति—ऋषियोंके नेत्र एक वार ऊपर उठे और एक साथ उन्होंने भूमिपर मस्तक धर दिये ।

‘हुं’ एक गम्भीर ध्वनि गूँजी । अनन्त वात्सल्य, अपार कारुण्य अतुलनीय आशीर्वाद-धारा जैसे धरित्रीको धो गयी । उन करुणावरुणाख्याको स्तुतिकी अपेक्षा कहाँ और आशीर्वाद तो उनकी सहज हुंकृति है ।

‘चामुण्डे !’ इस प्रकार कोई उन महाशक्तिको पुकारेगा, मुर भी इसकी कल्पना नहीं कर सकते; किंतु सहज सिद्धीसे भरा था वह स्वर—‘बहुत हो गया ! शान्त हो अब !’

‘तू जा ! चामुण्डा गो-बलि नहीं लेती !’ अट्टहास करती वह कराली क्रोधसे चिल्लायी—‘मेरे खप्परका ब्याघ्र मत बन !’

‘मेरी संतानोंको अभय दे !’ गम्भीर बना रहा स्वर—‘तू लोकमाता है। शान्त हो जा !’

‘नहीं !’ ब्रह्माण्ड फट जाय ऐसा गर्जन ।

‘नहीं !’ कामधेनुके कर्ण खड़े हुए । नेत्रोंमें अरुणिमा आयी । सिर झुका लिया उन्होंने और हुंकार किया । वह हुंकार—उन नथुनोंसे महाज्वाला लपकी और भागी चामुण्डा । उसके कपालकी महाम्नि पीली पड़ चुकी थी ।

जो निखिल ब्रह्माण्डमयी हैं, उनको दौड़नेकी अपेक्षा कहाँ थी । दौड़ रही थी चामुण्डा—किन्तु केश, अस्त-व्यस्त चामुण्डा भाग रही थी । उसका खड्ग, उसका कर-कपाल, सब मलिन-कान्ति और वह महाप्रलयकी अधिदेवी, त्रिलोकीको आर्त करनेवाली स्वयं आर्त भाग रही थी । उसे भागनेको भी स्थान नहीं मिल रहा था ।

सहाकी उपेक्षा कर चुकी वह और वे लोकवितामह चाहें तो भी उसकी सहायता नहीं कर सकते, वह चामुण्डा जानती है किंतु यह आज क्या हो रहा है ? उसे आज कैलासमें भी क्या प्रवेश नहीं प्राप्त होगा ? इतना उग्र, इतना प्रचण्ड तो उसने भगवान् शिवके वृषभको कभी नहीं देखा । यह नित्य शान्त धर्म, किंतु आज तो वह हुंकारमें ज्वालमाला उगल रहा है । आयातोद्यत वृषभ—चामुण्डा आज उसके लिये अग्रविता हो गयी है और वृषभका प्रतिकार करनेमें भी अपनेको समर्थ नहीं पाती ।

‘देवर्षि !’ अचानक नारदजी दीख गये तो प्राणोंको आश्वासन प्राप्त हुआ ।

‘देवि ! उन वात्सल्यमयीमें रोष कभी आता नहीं । माता कभी रुष्ट नहीं होतीं ।’ देवर्षिने कहा—‘सर्वेश्वरेश्वर मयूरमुकुटी जिनकी पद-चन्दना करते हैं, उन गोलोक-महेश्वरीका प्रतिकार कहाँ नहीं है ।’

‘मातः !’ चामुण्डाको मार्ग मिल गया और लोकमाताको पुकारने कहाँ जानेकी आवश्यकता तो नहीं होती ।

‘चामुण्डे !’ स्वरमें अपार वात्सल्य गूँजा—‘प्रलयके अतिरिक्त तू उद्धत नहीं बनेगी । आवश्यक होनेपर भी तेरा आघात सीमित एवं मर्यादित रहेगा ।’

‘आपके आदेशकी मर्यादा मानेगी आपकी वह अशुभ पुत्री !’ चामुण्डाने स्वीकार किया—‘सकारण क्रोध भी चामुण्डाका शान्त हो जायगा यदि आपकी कोई संतान—कोई गौका आश्रय ले लेगा । गो-पूजकमें चामुण्डा दूर रहेगी ।’

× × ×

धराके उपद्रव सहसा शान्त हो गये । पृथ्वी शस्य-श्यामला हो गयी । वैज्ञानिकोंने कहा—‘पृथ्वीकी गुठली स्वतः आकर्षण शक्ति-सम्पन्न हो गयी है ।’

काश, मानवमें सद्बुद्धि आती ! वह गो-सेवा सीख लेता ! उधर कैलासमें प्रश्न करनेपर भगवान् शशाङ्क-शेखर देवी उमासे कह रहे थे—‘देवि ! तुम महाविद्यारूपमें दशधा हो । लोकमाता हो; किंतु तुम जानती हो कि सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी आह्वादिनी शक्तिका ही अंश तुममें है । गोलोकेश्वरी कामधेनु ही सच्चे अर्थमें लोकमाता हैं । वे उन परम पुरुषकी मूर्त सङ्घिनी शक्ति हैं । यह निखिल लोक—समस्त लोकोंमें जो स्थूल-सूक्ष्म अभिव्यक्ति है सब उन कामधेनुकी ही संकलामिव्यक्ति है । वे किसीको भी अपनेमें लय कर लेनेमें सहज समर्थ हैं । उनकी—उनकी मूर्तिभूता गौओंकी सेवा ही लोकालयमें श्रेयस्करी है ।’

गो-वध सर्वथा बंद हो

गो-हत्या होगी नहीं जबतक पूरी बंद । तबतक होगा देशमें कहीं न सुख-स्वच्छन्द ॥ असुर-भाव नित बढ़ेगा, होगा नहीं विकास । होता ही नित रहेगा दुःखद घोर विनाश ॥ सबको प्रभु शुभ बुद्धि दें, हरे मोह-अज्ञान । एक स्वरसे सभी लें गोवध-बंदी मान ॥ करे घोषणा शुचि सुखद सत्वर यह सरकार । पाप मिटे, फैले सुयश, हो ध्वनि जय-जयकार ॥

हिंदू वेश-भूषा और हिंदी भाषाको अपनानेमें गर्वका अनुभव करें !

(लेखक—डॉक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्. ए., पी-एच. डी.)

अंग्रेजीके एक लेखक टामस फुलरने लिखा है—

‘वेश-भूषाकी सादगी सज्जनताका चिह्न है। उससे हमारी आध्यात्मिक भावनाएँ जीवित रहती हैं। वेश-भूषासे आदमीका धर्म, जाति, देश और संस्कृति सब कुछ स्पष्ट हो जाते हैं। स्वच्छ और भद्र वस्त्र पहने व्यक्तिके लिये सभी ऊँची सोसाइटीके दरवाजे खुले रहते हैं, जब कि बहुमूल्य भड़कीले वस्त्र व्यक्तित्वका ओछापन व्यक्त कर देते हैं और इस दिखावटीपन और नकलचीपनसे हम दूसरोंकी दृष्टिमें घृणाके पात्र बनते हैं। अच्छे गुणों और उत्तम चरित्रके विकासके लिये आपके वस्त्र भी सम्यो-जैसे रहें।’

हिंदू वेश-भूषा ही आरामदायक और सादा है

प्रत्येक जाति और देशवाले अपनी-अपनी पोशाकोंको श्रेष्ठ बतलाते हैं, किंतु सारा विश्व इस तत्त्वको भलीभाँति जानता और स्वीकार करता है कि भारतीय वेश-भूषा आकर्षक है। पुरुषोंद्वारा पहनी हुई धोती, कुर्ता, जकेट और हिंदू-नारीद्वारा पहनी हुई साड़ी विश्वमें सबसे सुन्दर और आरामदायक मानी गयी है। विश्वके जिन-जिन स्थानोंपर भारतके प्रधान मन्त्री श्रीलालबहादुर शास्त्री धोती और कुर्तेमें गये, उनकी पोशाकको सबसे अच्छा समझा गया था। इसी प्रकार श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित और श्रीमती इन्दिरा गाँधीकी भारतीय साड़ी स्वच्छता, सुन्दरता और शालीनतामें सर्वश्रेष्ठ गिनी गयी।

पोशाकके साथ संस्कृति और धर्मका सम्बन्ध है। प्रत्येक धर्म और संस्कृतिको स्पष्ट करनेवाली वेश-भूषा भी अलग है। वैसी पोशाक पहिननेसे एक विशेष प्रकारके भाव और विचार मनमें उत्पन्न होते हैं। निरक्षर व्यक्तिक अन्धानुकरणमें पाश्चात्य ढंगके कोट पेन्ट, टाई और हैट-बूट, मोजोंमें देखे जाते हैं! टूटी-फूटी गिटपिट अंग्रेजी भाषा बोलकर वे झूठे दम्भकी पूर्ति मात्र करते हैं। अंग्रेजी पोशाक पहनते ही मनमें ऐंठ, अकड़, झूठी शान, विलासिता और शेखीके ओछे भाव उदय होते हैं। मुसल्मानी पोशाकके साथ ऐश्वर्य, इन्द्रिय-भोगकी लम्पटता, विलासिता, वासनाकी तड़क-भड़क जुड़ी हुई है। पोशाक, वेश-भूषा और भाषाके साथ संस्कृति, चरित्र और धर्म का सम्बन्ध है।

हुआ रहता है। अंग्रेजी और मुस्लिम संस्कृति और धर्म ‘खाओ, पिओ, मौज उड़ाओ’ के भोगवाद और इन्द्रिय-लोभपतापर खड़ी हैं। ये भोगलिप्सा और क्षुद्र सांसारिकताको ही महत्त्व देते हैं। वहाँ कुत्सित नग्नता, अश्लीलता और लम्पटता फैली हुई है। पाश्चात्य समाजमें सर्वत्र वासनात्मक पशु-प्रवृत्तियाँ फैली हुई हैं। ये देश केवल बाहरी बनावटी सौन्दर्य (क्या उसे वास्तवमें सौन्दर्य कहें?) टोपटाप, झूठे दिखावेको ही प्रधानता देते हैं। उनके यहाँ नित्य नये-नये फैशन निकलते रहते हैं। इन सब जातियोंमें नाना भोगोंकी अवृत्त इच्छाएँ भरी पड़ी हैं। यह भोगेच्छा और वासनामय जीवन उनके विचारों और बुद्धिको भौतिक स्तरसे ऊपर नहीं उठने देते। छोटी वस्तुओं, नीचे आदर्शों और मांस-मदिराका पाशविक स्वाद चखते-चखते ये लोग उच्च जीवन-मूल्योंको ही भूल गये हैं। पाश्चात्य और मुस्लिम संस्कृतियोंकी पोशाकों और वेश-भूषामें जो फैशनपरस्ती, झूठी शेखी, बाहरी सजावट, भोगविलास इत्यादि हैं, वह मनुष्यकी पञ्चेन्द्रियोंका पाशविक सुख है।

आप एक दिनके लिये अंग्रेजी या मुसल्मानी पोशाक पहनिये, आप उन्हीं-जैसे विचारोंको मनमें अनुभव करेंगे। आप फौजी पोशाक पहिनते हैं, तो आपके मनमें हिंसा, पशुता, आतङ्क, दुष्टता और दूसरोंपर अत्याचार तथा दम्भके भाव भर जाते हैं। मुसल्मानी पोशाकमें वासना और स्वार्थपरता, प्रदर्शन तथा ओछापन मनमें पैदा हो जाते हैं।

आज भारतीय नौजवान जो फैशनपरस्ती कर रहे हैं, अश्लील फिल्मोंमें काम करनेवाले अभिनेताओं-जैसी अर्द्धनग्न और चुस्त पोशाकें पहनते हैं, ट्रंजिस्टर लगाये हुए आवाग-गर्दी करते शहरोंकी सड़कोंपर चक्कर लगाते हैं, ढेर-ढेर सिग्रेट और पानकी दूकानों, होटलों और सिनेमाघरोंके आगे भीड़ किये रहते हैं, यह महज एक फैशन और दिखावा भर है। इस प्रकारके अन्धानुकरणमें कौन-सा सौन्दर्य है? ऐसी आधुनिकता केवल झूठे प्रदर्शनकी मरुमरीचिका मात्र ही है।

हिंदी भाषा और धर्म का सम्बन्ध है। पोशाक, वेश-भूषा और भाषाके साथ संस्कृति, चरित्र और धर्म का सम्बन्ध है।

कुरता, जाकट, चप्पल इत्यादि इस देशके हिंदूधर्म, मौसम और आर्थिक हैसियतके अनुसार सस्ते, सुविधा-जनक और उचित हैं। इनमें सद्भाव और सौहार्दका वातावरण उत्पन्न होता है। इनमें स्वच्छता, सुन्दरता और आराम भी अधिक रहता है; मनुष्य व्यर्थके दिखावेसे भी बचा रहता है। सौजन्य, सरलता, सादगी, विनयशीलता, सज्जनता हमारी संस्कृति और धर्मकी विशेषताएँ रही हैं। इस पोशाकके प्रयोगसे हमारी आध्यात्मिक भावनाएँ जीवित रहती हैं। हम अधिक रंगीन और भड़कीले वस्त्रोंको आदमीका ओछापन मानते हैं। अधिक बनावट, शृङ्गार और प्रदर्शनपूर्ण वेश-विन्यासको आडम्बरपूर्ण मानते हैं। यह तड़क-भड़क हमारे यहाँ हीन समझी गयी है। कम-से-कम वस्त्र रखकर प्रकृतिसे तादात्म्य स्थापित करना; अपने शरीरको व्यर्थके साज-शृङ्गार, टीप-टाप, फैशनपरस्तीसे दूर रखना; सादा जीवन और उच्च विचार धारण करना—यही हमारा दृष्टिकोण रहा है और आगे भी रहना चाहिये।

पाश्चात्य देशोंमें जहाँ प्रकृतिपर विजय प्राप्त करनेकी भावना रहती है, भारतीय संस्कृति और हिंदूधर्मने उनके साथ अपनापन स्थापित करनेका विनीत प्रयत्न किया है। हिंदूधर्ममें हिमालय—कैलाश-जैसे पर्वत; गङ्गाजी-यमुनाजी, गोदावरी-जैसी नदियाँ; वन, वृक्ष, उपवन पवित्र माने गये हैं। वहाँ ईश्वरका निवास माना गया है। भारतके हिंदू साधु-संन्यासी ही नहीं; जनता भी प्रकृतिकी गोदमें सदा आनन्द लेते रहे हैं। वे प्रकृतिमें दासीकी कल्पना न कर उसे माताके रूपमें देखते और श्रद्धा व्यक्त करते हैं। प्रकृतिके वन, लता, पर्वत, नदी, पशु-पक्षी, वृक्षोंके साथ उन्होंने सदा अपनेपनका अनुभव किया है। हमारे पर्वतों और नदियोंके निकट ही हमारे तीर्थों और मन्दिरोंकी स्थापना हुई है। वन, उपवन और ग्राम हमारी संस्कृतिके सुन्दर प्रतीक रहे हैं।

अतः ग्रामीण वेश-भूषा और प्रकृतिके साहचर्यमें रहनेसे आनेवाली सादगी, स्वच्छता, स्वास्थ्य, विनय-शीलता और उदारता हमारी पोशाकमें भी पायी जाती है। टीप-टापको ओछेपनकी निशानी माना गया है। थोथी कृत्रिमता, बनावटीपन, रंग-बिरंगे आधुनिक शृङ्गार-प्रसाधनोंसे हमारे यहाँ सदा विरक्ति रही है। भारतीय

संस्कृति यह मानती है कि जितनी ही कृत्रिमता हमारे जीवनमें आयेगी और पोशाकके सम्बन्धमें जितनी अस्वा-भाविकताको हम अपनाते जायेंगे, उतने ही उच्च जीवनमें दूर हटते जायेंगे।

भारतीय पोशाककी सादगीका अर्थ दीनता या दरिद्रता नहीं है, वरं यह है कि बिना आडम्बरके उपयुक्त और आवश्यक वस्तुओंका शुद्धतत्पूर्वक प्रयोग करना। यह सादगी, स्वच्छता, निरभिमानीता हमारे नित्य व्यवहारमें मिली हुई होनी चाहिये। वस्त्र बहुत मूल्यवान् न हों, टैंगलीन, डेकारौन और नाइलोन-जैसा बहुत मूल्यवान् न हों; बारीक रेशमके न हों। इनकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। हम तो मोटे सफेद खदरके प्रेमी रहे हैं, किंतु वह स्वच्छ होने चाहिये। तड़क-भड़कके, रंग-बिरंगे या बेढव फैशनके वस्त्र व्यर्थ थोथेपनके प्रतीक हैं। कम कपड़े पहिनने चाहिये, पर उनकी सफाईका पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये। भारतीय विचारोंकी तो यही मान्यता है कि जेवर लानेकी अपेक्षा तो कुछ अधिक कपड़े बनवा लेना और स्वच्छ रखनेपर थोड़ा व्यय करना अधिक उपयोगी है। मन, विचार, वेश-भूषा और वातावरणकी सादगी एवं स्वच्छता उच्च आध्यात्मिक जीवनकी ओर खींच ले जानेकी अद्भुत क्षमता रखते हैं।

हिंदी भाषाके साथ हिंदू-धर्म और संस्कृति जुड़ी हुई है

भाषाकी गुलामी सबसे बुरी है; क्योंकि भाषाके साथ उसी देशकी संस्कृति और धर्मको भी गुप्तरूपसे अपनाता पड़ता है। जिस भाषाको हम प्यार करते हैं, अपना लेते हैं या भरपूर प्रशंसा किया करते हैं, उस देशके धर्म, परम्पराओं, वीर पुरुषों तथा संस्कृतिको भी अपनाते लगते हैं। भाषाकी आड़में धर्म और संस्कृतिका भी प्रचार किया जाता है। भाषाके प्रत्येक शब्द, मुहावरे और कहावतोंके पीछे उस देशका धर्म, संस्कृति और संस्कार बोलते हैं। धर्म भाषाके कपड़े पहिनकर दैनिक व्यवहारमें प्रकट होता है। अनेक शब्दोंका निर्माण ही धर्मके स्रोतसे बनता है। भाषा और धर्मका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

अंग्रेजोंकी कूटनीति, अंग्रेजीकी गुलामी

जब अंग्रेजोंने भारतको जीता था, तब वे व्यापारिक सफलता तथा राजनीतिक विजयमात्रसे ही संतुष्ट नहीं हुए

थे । राजनीतिक गुलामी ऊपरी और बाहरी शासकीय गुलामी है । शासन दण्ड और भयके बलपर चलता है । उन्होंने हिंदुस्थान (इस हिंदुओंके मुल्कको) मानसिक दृष्टिसे भी गुलाम बनानेकी योजना बनायी ।

वह मानसिक गुलामी कैसे उत्पन्न की गयी ?

जब कोई वीर जाति निर्बल जातिको जीतती है तो प्रायः उसे सब ओरसे गुलाम बनानेका प्रयत्न करती है । वह उसपर अपनी भाषा और साहित्यका बोझ डाल देती है । उन्हें बरबस विजितोंकी भाषा और साहित्यका अध्ययन करना पड़ता है । उस भाषाको सीखनेवालोंको पुरस्कार और प्रशंसापत्र वितरित किये जाते हैं । पराजित जाति शासक जातिके वीर पुरुषों, जातीय आदर्शों और धर्मकी तारीफ उस साहित्यमें घुमा-फिराकर बार-बार पढ़ते हैं, चित्रोंमें देखते हैं, कविताओंमें गाते हैं, उसीके मानसिक वातावरणमें रहते हैं । अतः चुपचाप विजित जाति शासक जातिके धर्मको भी स्वीकार करती जाती है, उनके आदर्शों और रीति-रिवाजोंको भी ग्रहण कर लेती है ।

शारीरिक निर्बलता और पराजयका बुरा नतीजा यह होता है कि वह हर दृष्टिसे जीतनेवाली जातिको अपनेसे श्रेष्ठ समझने लगती है । इससे विजित जातिमें मानसिक और सांस्कृतिक दासता बढ़ती है । दूसरेकी भाषा और उसके साहित्यमें उस जातिकी प्रशंसा पढ़ते-पढ़ते निर्बल जातिको मनमें ऐसा प्रतीत होने लगता है कि शासकोंका सब कुछ श्रेष्ठ है और स्वयंका सब कुछ दीन-हीन और बेकार है । यह भाषाकी गुलामी है ।

अधिक दिनोंतक विदेशी भाषा पढ़ते-पढ़ते पराजित मनुष्य विदेशियोंको ही उत्तम तथा उनके साहित्य, संस्कृति, आदर्शों, रीति-रिवाजों और विचारोंको ही सर्वश्रेष्ठ मानने लगता है । उनकी पुरानी कथा-कहानियों और जातीय आदर्शोंको ही सर्वोत्तम गिनता है । मनोविज्ञानका यह नियम है कि बार-बार जिस बातका (चाहे वह गलत और निराधार ही क्यों न हो) उल्लेख किया जाता है, वही हमें सत्य प्रतीत होने लगती है । इस प्रकार दीर्घकाल-तक विदेशी भाषा और साहित्य पढ़ते-पढ़ते कोई भी जाति अपना स्वयंका जातीय गौरव और अतीत सांस्कृतिक

स्वर्णिम वैभव भूल जाती है । इस प्रकार मानसिक गुलामी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है ।

भारतमें यह मानसिक दासता विदेशी भाषा और साहित्यके माध्यमसे बहुत दिनोंसे चली आ रही है । भाषाकी आड़में धर्म भी फैलाया जाता रहा है । खेद है कि भाषाओंकी ओटमें दूसरे धर्मोंका गुन प्रचार करनेवाले सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक तथ्यपर किसीने ध्यान नहीं दिया ।

उर्दू तथा इस्लामकी गुलामी

भारतमें दिमागी गुलामीका प्रारम्भ उर्दू और इस्लाम-धर्मसे हुआ था । जब मुसल्मानोंने हिंदुओंकी पारस्परिक फूटके कारण भारतको जीत लिया तो उन्होंने भी उर्दू-भाषाके माध्यमसे हिंदू-राष्ट्रमें इस्लामका प्रचार किया था । उर्दू और फारसीका राज्य फैला । ये ही राज्य-भाषाएँ घोषित की गयीं । हिंदू-जनताको मार-कूट और आतंक-द्वारा उर्दू पढ़नेपर जोर डाला गया । जिन्होंने उर्दू नहीं पढ़ी, उन्हें सरकारी नौकरी और राज्यसे कोई प्रोत्साहन नहीं मिला । दूसरी ओर डर या लालचसे जिन हिंदुओंने उर्दू और फारसीका ज्ञान प्राप्त कर लिया, उन्हें राज्य-सरकारकी ओरसे प्रोत्साहनस्वरूप अच्छी नौकरियाँ, भरपूर इनाम, सम्मान और सार्वजनिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई ।

उर्दू और फारसीकी आड़ लेकर इस्लाम-धर्म फैलाया गया । चुपचाप अनेक हिंदुओंका धर्म परिवर्तन कर उन्हें मुसल्मान बनाया गया । मुसल्मानोंके आदर्शों और इस्लामी संस्कृतिका बड़ा प्रचार हुआ । उर्दूके बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे और लोकप्रिय बनाये गये । यह सब मुस्लिम जीवन-पद्धति, इस्लामके नियम, आदर्श, वेश-भूषा, सिद्धान्तों और आदर्शोंका प्रचार था । एकाएक इस्लामने करवट ली ।

अंग्रेजों और अंग्रेजी-भाषाकी गुलामी

जमाना बदल । इस बार एक दूसरी विदेशी जातिने हमें आ दयाया । भाषा, संस्कृति, वेश-भूषा और आदर्शोंमें फिर एक बड़ा तूफान आया ।

उर्दू—फारसी, और इस्लाम-धर्मका युग जैने समाप्त हुआ और अंग्रेजी भाषा और साहित्यका नया युग प्रारम्भ हुआ । ईसाई धर्म-गुरुओंने अंग्रेजी-भाषा और साहित्यके माध्यमद्वारा ईसाई-धर्मका प्रचार-कार्य शुरू किया ।

लार्ड मैकालेने अंग्रेजीके प्रचार-प्रसारमें सर्वाधिक दिलचस्पी दिखायी। पहले अंग्रेजी पढ़ाकर क्लर्क बनाये गये, उन्हें अच्छी नौकरियाँ दी गयीं, पुरस्कार और सार्वजनिक प्रशंसा दे-देकर अंग्रेजीको सार्वजनिक मान्यता दी गयी और इस प्रकार जब काफी लोग अंग्रेजी पढ़े-लिखे हो गये तो उसे राज्यभाषा बना दिया गया।

राज्याश्रय पाकर मानसिक दृष्टिने भारतपर अंग्रेजीका राज्य छा गया। हम अंग्रेजोंका अनुकरण करने लगे, अंग्रेजी पोशाक पहनने और अंग्रेजी बोलनेमें गर्वका अनुभव करने लगे !

छोटी कक्षाओंमें अंग्रेजी कक्षा तीन और अंग्रेजीके माध्यमे चलनेवाले स्कूलोंमें बच्चोंको अंग्रेजी पढ़ाना चालू किया गया। अंग्रेजीको छायामें हिंदू बालकोंमें ईसाइयोंके धर्म, संस्कृति, देवता, रहन-सहनके तरीके, आदर्शों और जीवन-पद्धतियोंका गुप्तरूपसे प्रचार-प्रसार किया गया। बहुतसे हिंदुओं, विशेषतः अछूत वर्गके व्यक्तियोंने ईसाई-धर्म ही ग्रहण कर लिया। बच्चोंके लिये अनेक मिशनरी शिक्षण-संस्थाएँ चलीं। इनमें शिक्षा क्रम, ईसाई-धर्मके प्रचारका अधिक प्रबन्ध था। बच्चोंको बाइबिलकी सुन्दर प्रतियाँ सुफ्त दी जाती थीं और अनेक संस्थाओंमें, छोटी तथा बड़ी कक्षाओंमें ईसाई-धर्मके प्रारम्भिक संस्कार बालकेके लिये बाइबिल पढ़ाये जाती थी। धीरे-धीरे हिंदुस्तानी लोग अंग्रेजीको ही संस्कारकी सर्वश्रेष्ठ भाषा समझने लगे। कुछ तो सरकारी नौकरियोंके लोभसे, कुछ पैशन और अनुकरण-वृत्तिके कारण। हिंदुस्तानपर अंग्रेजी भाषाकी गुलामी छा गयी। विदेशी वस्तु चाहे कितनी ही बुरी क्यों न हो, दूरीके कारण उसके प्रति सहज आकर्षण होता है। अंग्रेजीके प्रति यही आकर्षण बढ़ा। अधिभ्रित जनतापर अंग्रेजी दंगसे रहने, अंग्रेजी पोशाक पहनने और अंग्रेजी बोलनेका बड़ा प्रभाव पड़ता रहा।

इसके विपरीत अंग्रेजीके मायाजालके कारण हिंदु-सानियोंके मनपर अपने साहित्य, हिंदू-संस्कृति, वैदिक धर्म, भारतीय वेश-भूषा और संस्कृतिके प्रति हीनत्वकी भावनाएँ छा गयीं।

निष्कर्ष यह है कि भाषा, साहित्य और वेश-भूषाके साथ किसी भी देशका धर्म, संस्कृति और जातीय आदर्श जुड़े हुए रहते हैं। ये संस्कार क्रोमलहृदय बच्चोंके मनपर

बड़ी आसानीसे बैठ जाते हैं। जब हमारे बच्चे अंग्रेजी भाषा और साहित्य पढ़ते हैं तो गुप्तरूपसे उनके मनपर अंग्रेजोंके बड़प्पनके विचार बैठ जाते हैं। हम ईसाई-धर्म, उनके देवी-देवता, भौतिकवाद, उच्छृङ्खलता, रीति-रिवाज, वासनालोलुपताके प्रशंसक बनते हैं। अंग्रेजीमें हम ईसाइयोंकी वीर-गाथाएँ पढ़ते हैं। उन्हें पढ़ते-पढ़ते हम उसी मानसिक वातावरणमें निवास करते हैं। उनके ही आदर्श और विचार हमें श्रेष्ठ जँचते हैं। हिंदू-धर्म और भारतीय संस्कृतिकी अपेक्षा हमें उनका धर्म और संस्कृति ही श्रेष्ठ जँचती है। हम उन युद्धोंका हाल पढ़ते हैं, जिनमें वे विजयी हुए थे। इस प्रकार विदेशियोंके पौरुष, श्रेष्ठता और वीरताके भाव हमारे गुप्त मनपर सजबूतीने जम जाते हैं और इस प्रकार एक तरहकी मानसिक गुलामी हमपर छा जाती है। यह मानसिक गुलामी आज इस हिंदुओंके देशपर छाया हुई है। इस केंचुलीकी अविलम्ब त्याग देना चाहिये।

हिंदी और संस्कृत ही हमारे धर्मकी रक्षा कर सकती है

हिंदी और संस्कृत-भाषाओंके साथ हिंदू-धर्म, भारतीय संस्कृति तथा हिंदूजातिके पुरातन श्रेष्ठतम संस्कार जुड़े हुए हैं। संस्कृत हमारी गौरवशाली प्रशस्त परम्पराओंकी प्रतिनिधि है। संस्कृतमें संस्कारका सर्वश्रेष्ठ साहित्य, आध्यात्मिक ज्ञान और मौलिक विचार-सम्पत्ति भरी हुई है। संस्कृतते ही विश्वकी सब भाषाएँ निकली हैं। अथ्यात्म, दर्शन और मनोविज्ञानकी ऊँचाई सब हमारे धर्म-ग्रन्थोंमें, जो संस्कृतमें हैं, भरी हुई है। दर्शनशास्त्रमें जितना ऊँचा भारत उठा है, संस्कारका अन्य कोई देश आजतक नहीं उठा है। हिंदुओंके पास आध्यात्मिक ज्ञानकी जो प्रशस्त और स्थायी सम्पदा है, हमारे वीरोंकी जो शौर्य-गाथाएँ हैं, हिंदूजातिके जो उच्चतम संस्कार हैं, वे सब संस्कृत और हिंदीमें संक्षिप्त हैं।

हिंदू-धर्म, हिंदू-संस्कृति, भारतीय विचारधारा, अथ्यात्म, नीति आदिकी रक्षा और प्रसारके लिये संस्कृत और हिंदीका व्यापक प्रचार-प्रसार हिंदुओंके इस देशके लिये सबसे बड़ी आवश्यकता है।

संस्कृत और हिंदी पढ़ना हमारे धर्मका अविभाज्य अङ्ग है। जो इन्हें नहीं जानता वह हिंदू कैसा ! हिंदी देशमें भावात्मक एकता पैदा कर सारे राष्ट्रको एक सूत्रमें

आवद्ध कर सकती है। संस्कृत और हिंदीके विद्वानोंका यह नैतिक कर्तव्य है कि दोनोंके विकास और उनके प्रचारका कार्य करें और उनके वाङ्मयकी पुरानी विचार-सम्पत्तिको जन-साधारणतक पहुँचानेका प्रयास करें। लोगोंका यह भ्रम दूर करना चाहिये कि संस्कृत भाषामें वेदशास्त्रों और व्याकरणके अतिरिक्त अन्य जीवनोपयोगी साहित्यका अभाव है। संस्कृत वाङ्मयमें अनमोल साहित्यिक और दार्शनिक विचार-सम्पत्ति है। जो भाषा जन-साधारणके जितनी समीप रहती है, वह उतनी ही विकसित और चिरंजीवी रहा करती है। इसके विपरीत जन-सम्पर्क छूट जानेपर वह अकालमें ही अतीतकी वस्तु बन जाती है। संयोगवश संस्कृत भाषाके साथ भी यही दुर्भाग्य रहा है। खेद है कि संसारके सर्वश्रेष्ठ साहित्यसे भरी-पूरी होनेपर भी वह एक अतीतकी मृत-भाषा मानी जाने लगी है, किंतु इस ओर कुछ समयसे लोगोंमें संस्कृतके अध्ययनकी रुचि बढ़ने लगी है। यह एक अच्छा लक्षण है, किंतु इस उगती हुई अभिरुचिकी रक्षा और विकास करनेके लिये उसे हिंदीकी सहायता और सहयोगकी आवश्यकता है। समग्र संस्कृत-साहित्य अब हिंदीके माध्यमसे देशके कोने-कोनेमें प्रचारित होना चाहिये। इस उगती हुई अभिरुचिकी रक्षा और विकास करनेके लिये संस्कृत और हिंदीके जानकार और विद्वानोंको अधिक परिश्रम करना चाहिये, तभी यह अभिरुचि स्थायी एवं उपयोगी हो सकती है।

ब्रिटिश गुलामीके कड़वे दिनोंमें अनिवार्य अंग्रेजीके अध्ययन और अध्यापनसे हिंदुस्तानके प्राचीन-गौरव, हिंदू-धर्म, हिंदू-आचार-विचार, हिंदू-विचारधारा और भारतीय संस्कृतिको बड़ी हानि पहुँची है। हम हिंदुओंकी प्रशस्त परम्पराओंको भूल पाश्चात्य देशोंके वेश, भाषा और भौतिकवादी दृष्टिकोणकी नकल करने लगे हैं। सांस्कृतिक जाग्रति और देशकी भावात्मक एकता उत्पन्न करनेके

लिये हिंदीको अधिकाधिक अपनानेकी आज बड़ी भारी आवश्यकता है।

हम पाश्चात्य जीवन-पद्धति और विचारधाराका अन्धानुकरण न करें

यथासम्भव हम अपने देश, धर्म, भाषा और संस्कृतिके प्राचीन गौरवको पुनः लानेका प्रयत्न करें। अपने देशकी सादगीसे रहें। कोई भी देश दूसरोंके अन्धानुकरणसे बड़ा नहीं बनता। अपनी ही विशेषता उत्पन्न करनी चाहिये। अपनी भाषा, संस्कृति और वेश-भूषामें ही देशका उत्थान सम्भव है। जार्ज बर्नार्डशाने सत्य ही कहा है—

‘ऐसा व्यक्ति, जिसका अपनी निजी भाषापर अधिकार नहीं हो, कभी भी दूसरी भाषामें कुशलता प्राप्त नहीं कर सकता।’

हिंदी भाषा हिंदुस्तानके ४३ प्रतिशत भारतवासियों-द्वारा प्रयुक्त होती है। यह यू० पी०, राजस्थान, बिहार और मध्यप्रदेशकी प्रमुख भाषा है। इसके पीछे हिंदू-धर्म, भारतीय संस्कृति और हमारे देशके युग-युगके पवित्रतम संस्कार छिपे हुए हैं। इस भाषाका उद्गम संस्कृतसे होनेके कारण यह बँगला और मराठीके भी समीप है।

अतः प्रत्येक हिंदूको हिंदी भाषा और हिंदू वेश-भूषाको अपनानेमें गर्वका अनुभव करना चाहिये। इन तत्त्वोंके प्रचारसे हिंदू-धर्मका व्यापक प्रसार और भावात्मक एकताकी स्थापना हो सकती है। हिंदीका प्रचार हिंदुत्वका प्रसार है। हिंदू-धर्मकी समस्त उत्कृष्ट मान्यताएँ, जातीय आदर्श, महत्वाकांक्षाएँ, प्रतिनिधि विचार, प्राचीन वैभव और भावी उन्नति इसी भाषाको व्यापक बनानेमें निहित हैं। प्रत्येक हिंदू अपना धर्म समझकर हिंदीमें प्रकाशित धार्मिक साहित्यका अध्ययन करे। परिवारमें धार्मिक पुस्तकालय स्थापित करे और हिंदी धार्मिक साहित्य खरीदकर दान करे।

अन्ध-परानुकरणता

(निज) देशमें ही आज हम पूरे विदेशी हो गये। मानसिक दासत्वसे सब रत्न घरके खो गये ॥ साफ कुर्त्ता, श्वेत धोती, मिरजई, पगड़ी हटी। कोट औ पतलूनके सँग नेक-टाई आ उठी ॥ खाने लगे जूँठन सभीकी मेजपर रक्खी हुई। भोजकी पशु-रीति निकली ‘वफे’ नामक यह नई ॥ मातृभाषा छोड़, अंग्रेजी लगे हम बोलने। पश्चिमी रँगमें रँगें हम लगे हिलने-डोलने ॥ बाल भी कह रहे ‘माताजी’ ‘पिताजी’ अब नहीं। ‘ममी’, ‘डैडी’ और ‘पापा’ बोलते हैं सब कहीं ॥ अंध-पर-अनुकरणताका सब तरफ ही जोर है। इसीसे अब पतनका भी कहीं ओर न छोरे है ॥

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ १२७० से आगे]

कांचीप्रवेशके साथ ही हमें यहाँ एक नयी बात मालूम हुई। भारतकी पुण्यप्रद प्रसिद्ध सात पुरियोंमें साढ़े तीन पुरियाँ विष्णुकी हैं और साढ़े तीन शिवकी। अयोध्या, मथुरा और द्वारका—ये तीन पुरियाँ विष्णुकी और माया अथवा हरिद्वार, काशी और अवन्तिका अर्थात् उज्जैन—ये तीन पुरियाँ शिवकी। कांची आधी विष्णुकी और आधी शिवकी। तदनुसार कांचीपुरम्के दो भाग हैं: शिवकांची और विष्णुकांची।

कांचीपुरम्की गौरवगरिमाके सम्बन्धमें महाकवि कालिदास कहते हैं—

पुष्पेषु जाती पुरुषेषु विष्णु-

नदीषु गङ्गा नगरेषु कांची।

जिस प्रकार पुष्पोंमें श्रेष्ठ मालती, पुरुषोंमें श्रेष्ठ विष्णु और नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा हैं, उसी प्रकार नगरोंमें श्रेष्ठ 'कांची' है।

इसकी धार्मिक पवित्रताकी पुष्टिमें भी प्रसिद्ध निम्न श्लोक कहा गया है, जिसके अनुसार कांचीपुरम् भारतकी सात मोक्षदायिनी पुरियोंमेंसे एक है—

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।

पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

धार्मिक महत्ताके अतिरिक्त यह नगर चिरकालसे दर्शन, संगीत और चित्र तथा शिल्प आदि कलाओंमें प्रगतिशील रहा है। इसके अतिरिक्त इस नगरको प्राचीन कालमें शिक्षाका केन्द्र होने और देशके अनेक संतों, भक्तों, दार्शनिकों, कलाकारों और राजनीतिज्ञोंको जन्म देनेका गौरव प्राप्त हुआ है। अर्थशास्त्रके महान् लेखक चाणक्य और कर्णाटक-संगीतके शाता श्रीश्याम शास्त्रीका जन्मस्थान यही रहा है।

इस तरह अनुपम गुणोंसे युक्त यह नगरी दक्षिणके अन्य प्राचीन नगरोंकी भाँति वेगवती नदीके तटपर बसी है। सड़कके मार्गद्वारा यह मद्राससे ४५ मील दक्षिण-पश्चिममें स्थित है। इसे कांची, कांचीपुरम् और कांचीपुरी आदि अनेक नामोंसे पुकारा जाता है; किंतु इसका सर्वाधिक प्रचलित और लोकप्रिय नाम 'कांचीपुरम्' ही है। कुछ ग्रन्थोंमें इसे 'सत्यव्रत क्षेत्रम्' अर्थात् सत्यके अनुसंधानका क्षेत्र भी कहा गया है।

कांचीपुरम्की महत्ताका आधार केवल पौराणिक न हो कर ऐतिहासिक भी है। भारतका शताब्दियोंका इतिहास इस नगरके साथ सम्बन्धित है। सैकड़ों वर्षोंतक यह नगर पल्लव राजाओंकी राजधानीके रूपमें रहा। ईसापूर्व तीसरी शताब्दीसे ९वीं शताब्दीतक पल्लवोंने उत्तरमें कृष्णा नदीसे दक्षिणमें कावेरी नदीतक इसी नगरको केन्द्र बनाकर राज्य किया। उन्होंने अनेक सड़कों एवं भव्य मन्दिरोंके निर्माणसे इस नगरको सुन्दर एवं साधनसम्पन्न बनानेका प्रयत्न किया। चीन, श्याम और फीजी आदि देशोंको यहाँसे राजदूत भेजे गये। पल्लवोंका प्रमुख बंदरगाह मामल्लपुर वर्तमान महाबलीपुरम् था। राजधानीने इस बंदरगाहतक नगर एवं सड़कोंके जरिये यातायातकी पूरी व्यवस्था थी। पल्लवोंके शासनकालका वृत्तान्त अब भी नगरमें अनेक पत्थरोंपर खुदा मिलता है। जिनपर छठी शताब्दीके प्रसिद्ध पल्लव शासक सिंहविष्णु, सातवीं शताब्दीके महेन्द्र वर्मन प्रथम और महेन्द्र वर्मन द्वितीय एवं आठवीं शताब्दीके परमेश्वर वर्मन और नान्दी वर्मनका परिचय मिलता है।

पल्लव राजा विद्वान् और कलाप्रेमी थे। वर्तमानमें जो कलाकृतियाँ देखनेको मिलती हैं वे पल्लवोंकी कलाप्रियताकी द्योतक हैं। यद्यपि वे अपने शासनकालमें शान्तिपूर्वक नहीं रह पाये। चालुक्य और कदम्ब-शक्तियोंके साथ उन्हें निरन्तर संघर्ष करते रहना पड़ा। धीरे-धीरे उनकी शक्ति घटती गयी और नवीं शताब्दीमें चोल एवं पाण्ड्य राजाओंके संयुक्त आक्रमणमें अन्तिम पल्लव राजा 'उःपराजित' की मृत्युके साथ पल्लववंशका अन्त हो गया।

पल्लवोंके अन्तके बाद चोलवंशका शासन स्थापित हो गया। आदित्य चोलने कांचीपुरम्को अपनी उत्तरी राजधानी बनाया। चोलोंका राज्य १०वींसे १३वीं शताब्दीतक रहा और इस बीच उन्होंने कांचीपुरम्के अंदर और बाहर अनेक भवनोंका निर्माण कराया। मन्दिरोंका कलात्मक सौन्दर्य बढ़ानेमें भी इन्होंने विशेष योग दिया।

१४वीं शताब्दीके मध्यमें चोल उत्तराधिकारियोंकी दुर्बलताका लाभ उठाकर मुस्लिम शासकोंने कुछ समयके लिये कांचीपुरम्पर अधिकार कर लिया, किंतु शीघ्र ही

विजयनगरम्के राजाओंने उन्हें पराजित कर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। लगभग तीन सौ वर्षतक कांचीपुरम् विजयनगरके राजाओंके अधीन रहा। उन्होंने इस नगरीके कलात्मक और सांस्कृतिक विकासमें बहुत रुचि ली। मन्दिरोंको गोपुरों और मण्डपोंसे सजाने और समृद्ध करनेका प्रयत्न किया।

१४वीं और १५वीं शताब्दीमें कांचीपर अनेक आक्रमण हुए। पहले बीजापुरके सुल्तान मुहम्मदशाहका आक्रमण हुआ। फिर गोलकुण्डाके सुल्तानने अधिकार कर लिया। ३० वर्ष बाद मराठोंका आधिपत्य हो गया और फिर औरंगजेबके सेनापति जलफिकर खाने उन्हें भी उखाड़ फेंका। उसके बाद १८वीं सदीके मध्यतक यह मुसल्मानोंके ही अधीन रहा। तदनन्तर अंग्रेजी राज्य आनेपर कांचीपुरम् ब्रिटिश साम्राज्यमें विलीन हो गया। अंग्रेजोंसे पूर्व सन् १७५७ और १७६० में फ्रांसीसियोंने भी यहाँ शक्ति-परीक्षणका प्रयत्न किया था। कर्नाटक-युद्धके दिनोंमें स्थानीय मन्दिर दुर्गोंके रूपमें प्रयुक्त हुए थे।

इस तरह यह ऐतिहासिक नगर न जाने कितने सम्राटोंका वैभव, पराभव, कितने सुल्तानोंकी रौनक और मुर्दानगी तथा कितनी शक्तियोंका उत्थान-पतन देख चुका है। आप कांचीके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक निकल जाइये, न जाने कितने मन्दिर अपना शताब्दियों और अनेक युगोंकी कलात्मक भव्यता लिये हुए आपको भारतीय संस्कृतिके चिरन्तन आदर्श, श्रद्धा एवं भक्तिका संदेश देंगे। भारतकी विविधतामें एकताका रहस्य इन्हीं स्थलोंमें छिपा है और इसीलिये ये स्थल हमारी आत्मा 'भारतीयता'के देवस्थल बने हुए हैं। हमारे ये देवस्थान या देवस्थल ही उत्तर एवं दक्षिण भारतके मध्य एक अटूट शृङ्खलाका निर्माण किये हैं।

कांचीपुरम् मन्दिरोंका नगर माना गया है। विशेषकर शैव और वैष्णव-मन्दिरोंका यहाँ बाहुल्य है। शैवोंके यहाँ २७५ और वैष्णवोंके लगभग १०८ पवित्र स्थल हैं। मन्दिरोंके निर्माणकी परम्परा यहाँ छठी शताब्दीमें पल्लव राजाओंसे प्रारम्भ हुई। पल्लव प्रारम्भमें शैवमतावलम्बी थे। बादमें उनके अनुगामी वैष्णव हो गये। इसीलिये पल्लवकालमें यहाँ शैव और वैष्णव दोनों प्रकारके मन्दिरोंका निर्माण हुआ। तदनन्तर हिंदू-धर्मके महान् सुधारक एवं अद्वैत-दर्शनके प्रवर्तक श्रीशंकराचार्यने भी यहाँ अपने सिद्धान्तोंका

प्रचार किया। कामाक्षी-मन्दिर उनका जीता-जागता स्मारक है। इस मन्दिरमें श्रीशंकराचार्यकी प्रतिमा स्थापित है और कोई भी पर्व आनेपर सबसे पहले उन्हींकी पूजा होती है। अप्रैलमें यहाँ शंकर-जयन्ती भी समारोहपूर्वक मनायी जाती है। फरवरी-मार्च मासमें 'ब्रह्मोत्सव' होता है। मन्दिरमें भगवान् विष्णुकी तीन प्रतिमाओंमें उनके सोने, बैठने तथा खड़े होनेकी तीन मुद्राएँ अङ्कित की गयी हैं। गायत्री-मण्डप भी दर्शनीय है। मन्दिरमें दक्षिणकी ओर 'लिंगप्पा' भी है जिसमें भगवान् शिवका लिङ्ग स्थापित है।

कांचीपुरम्में हमलोग एक गुजराती धर्मशालामें ठहरे। जैसा ऊपर कहा गया है, यों तो कांचीपुरम् मन्दिरोंका नगर कहा गया है और काशी तथा वृन्दावनके सदृश यहाँ अनेक मन्दिर हैं, परन्तु इनमें प्रधान रूपसे निम्नलिखित मन्दिर प्रसिद्ध हैं—१-कैलास, २-वैकुण्ठ, ३-शिवकांचीका शिव-मन्दिर, ४-विष्णुकांचीका विष्णु-मन्दिर, ५-कामाक्षी देवी, ६-वासन भगवान्।

कैलास और वैकुण्ठ-मन्दिर सबसे पुराने हैं। इनकी स्थापत्य-कला दक्षिणके मन्दिरोंके गोपुरवाली स्थापत्यकलासे सर्वथा भिन्न है। इस स्थापत्य-कलामें द्वारोंके गोपुर नहीं हैं। गोपुरोंवाले मन्दिरोंमें मन्दिरके शिखरोंके स्थानपर द्वारोंके गोपुरोंकी प्रधानता रहती है। कैलास और वैकुण्ठ मन्दिरोंमें, शिखरोंकी प्रधानता है। इनका निर्माण पल्लवकालमें सन् ६७४ ईस्वीसे ८०० ईस्वीके बीच हुआ है। सबसे प्राचीन द्रविड़ स्थापत्यकलाके इन दोनों मन्दिरोंमें दर्शन होते हैं। कैलास और वैकुण्ठ—ये दो मन्दिर प्रधानरूपसे विदेशी पर्यटकोंके आकर्षणका केन्द्र रहते हैं।

शिवकांचीके शिवमन्दिर और विष्णुकांचीके विष्णु-मन्दिरका जो वर्तमान रूप है, वह विजयनगरके प्रसिद्ध राजा कृष्णदेव रायका बनवाया हुआ है। इन दोनों मन्दिरोंमें दक्षिणकी जिस गोपुरवाली स्थापत्यकलाकी अब सर्वाधिक प्रसिद्धि हो गयी है, उस गोपुरवाली स्थापत्यकलाके दर्शन होते हैं। शिवकांचीके शिवमन्दिरका प्रधान गोपुर तो १८८ फुट ऊँचा है। इस गोपुरका फाटक जितना ऊँचा है और इसके जैसे विशाल कपाट हैं, वैसे हमने कहीं नहीं देखे। इसके सिवा इस मन्दिरमें एक हजार स्तम्भवाला एक मण्डप भी है, परन्तु इन स्तम्भोंमें कोई विशेषता नहीं है। शिव-कांचीके मन्दिरको जो मार्ग गये हैं, उनमेंसे एक मार्गके

उभय ओर वट-वृक्ष लगे हैं। शिवजीके जटाजूटके सदृश अपनी जटाएँ बढ़ाये इन वृक्षोंकी वरोहोंको देख हमें जान पड़ा ये वृक्ष भी अपने आराध्यकी अर्चना-आराधनामें अज्ञात-कालसे अमंग आसन लगाये उन्हींकी तरह उन्हींके निकट जमे हैं।

शिवकांचीके शिवमन्दिरमें शिवजी और पार्वतीजीकी प्रतिमाएँ भी हैं और शिवलिङ्ग भी। शिवलिङ्ग बालूका बताया जाता है; परन्तु हमें तो यह श्याम पाषाणका ही दृष्टिगोचर हुआ। कहते हैं बालूके शिवलिङ्गपर तैल आदिके आवरण हैं, जिनसे इस लिङ्गका यह रूप हो गया है। इस शिवलिङ्गपर जल-दूध आदिका अभिषेक न होकर इसके नीचेकी जलहरी-पर होता है।

विष्णुकांचीके मन्दिरमें गोपुर तो है ही, परन्तु इसकी विशेषता है इसका सौ स्तम्भोंवाला मण्डप। ये पाषाणके स्तम्भ दक्षिणकी इस कालकी स्थापत्य-कलाके स्तम्भोंमें जो शार्दूल निर्मित होते हैं उन शार्दूलोंसे युक्त हैं। इसीके साथ इन स्तम्भोंपर एक अन्य प्रकारका बड़ा सुन्दर खुदाईका काम भी है। विष्णुकांचीके मन्दिरकी एक ऐतिहासिक विशेषता और है। श्रीरामानुजाचार्यका बहुत काल इस मन्दिरमें बीता है। रामानुजसम्प्रदायका प्रचार प्रधानतया इसी मन्दिरसे हुआ है। उस समय इस मन्दिरमें गोपुर नहीं थे; क्योंकि गोपुरवाली कलाका विकास पंद्रहवीं शताब्दीके आसपास हुआ। परन्तु गोपुरोंके सिवा भी इस मन्दिरका रामानुजाचार्यके समय कैसा रूप था, यह आज नहीं कहा जा सकता।

विष्णुकांचीके विष्णुमन्दिरमें भगवान् विष्णुकी मूर्तिको नाम है—‘भगवान् वरदराजकी मूर्ति’। इसी मन्दिरमें तीन मन्दिर हैं—एक भगवान् वरदराजका मन्दिर, दूसरा लक्ष्मी-जीका और तीसरा नृसिंजीका। वरदराज-मन्दिरकी कुछ ऐतिहासिक विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओंमें दो प्रधान हैं। पहली यह कि श्रीरामानुजाचार्यके समय इस मन्दिरके प्रधान महात्मा श्रीकांचीपूर्ण एक शूद्र थे। श्रीरामानुजाचार्यने इन्हें अपना गुरु बनाया। कहा जाता है भगवान् वरदराज महात्मा कांचीपूर्णसे बातचीत करते थे और श्रीरामानुजाचार्यकी कुछ प्रधान शंकाओंका भगवान् वरदराजने कांचीपूर्णके द्वारा समाधान किया। भगवान् वरदराजने श्रीरामानुजाचार्यको जो संदेश भेजा, वह निम्नलिखित है—

संदेश

जब रामानुज अगले दिन कांचीपूर्णके पास गये तो उन्होंने कहा—‘वत्स ! कल रात श्रीवरदराजने मुझे तुम्हें बतानेके लिये यह संदेश दिया है—

१—मैं परम तत्त्व हूँ और प्रकृतिका आधारभूत कारण हूँ, जो सृष्टिका कारण है।

२—हे महान् मतिवाले ! जीव एवं ईश्वरका भेद स्वतः-सिद्ध है।

३—जो लोग परम मोक्षके इच्छुक हैं, उनके लिये भगवान्के चरणकमलोंमें आत्मसमर्पण सर्वोत्तम उपाय है।

४—यदि मेरे भक्त अपने जीवनके अन्तिम क्षणमें मुझे विस्मृत भी कर दें, तब भी उनकी मुक्ति निश्चित है।

५—जैसे ही मेरे भक्त देह-त्याग करते हैं, वे परम पद प्राप्त कर लेते हैं।

६—महात्मा पूर्णाचार्यके पास शरण लो, जो सर्वगुण-सम्पन्न हैं। शीघ्र रामानुजके पास जाओ और उसे मेरे इस संदेशसे सूचित करो।

यह सुनते ही रामानुज भावविह्वल हो नृत्य करने लगे। वरदराजके मन्दिरके सामने उन्होंने दण्डवत् किया। जो ६ संदेह उनके मनको सदा आकुल रखते थे, वे अब पूर्णतया समाप्त हो गये।

इस मन्दिरकी दूसरी ऐतिहासिक विशेषता है श्री-रामानुजाचार्यका वर्षातक इस मन्दिरमें निवास और श्री-वैष्णव-सम्प्रदायके सिद्धान्तोंका यहाँसे प्रसार। श्रीरामानुजाचार्यका जन्मस्थान कांचीपुरम्के निकट पेरम्बदुर है। पिताकी मृत्युके पश्चात् अपनी माताके साथ श्रीरामानुजाचार्य कांचीपुरम् पधारे और फिर श्रीरंगम् जानेके पूर्वतक अर्थात् लगभग साठ वर्षकी अवस्थातक उनका कांचीपुरम्में निवास-स्थान रहा तथा भगवान् वरदराज उनके इष्ट। श्रीरामानुजाचार्यका देहावसान उनकी १२० वर्षकी अवस्थामें हुआ। जीवनके प्रथम साठ वर्षसे अधिक समय उनका कांचीपुरम्में ही व्यतीत हुआ।

कामाक्षीके मन्दिरकी कामाक्षी देवी कुमारी हैं। कहा जाता है कांचीमें कामाक्षी विराजी हैं, मदुरामें मीनाक्षी और काशीमें विशालाक्षी। मीनाक्षी और विशालाक्षी विवाहिता हैं। कामाक्षी देवीके मन्दिरमें कोई विशेषता नहीं है।

वामन भगवान्के मन्दिरकी वामनमूर्ति विलक्षण है। दक्षिणके अन्य मन्दिरोंकी भाँति श्याम पाषाणकी दीर्घाकार आकाश-पाताल छूती हुई वामन-भगवान्की यह मूर्ति दर्शकके मनमें उसके दर्शनके साथ ही राजा बलि और वामन भगवान्की प्रसिद्ध कथाका स्मरण दिला देती है। पृथ्वी नापते हुए भगवान् वामनके द्वारा मूर्तिका एक पैर उसकी आधार-शिलापर तथा दूसरा पैर आकाशकी ओर जिस भावपूर्ण

ढंगसे उठाया गया है, उसे देख हमारी प्राचीन उत्कृष्ट मूर्ति-कलाका चित्र हमारे सामने आ जाता है। भारतीय कलाकारोंने अतीतकालमें सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तुओंमें और दीर्घाकार पाषाण-शिलाओंपर अपनी पैनी सूझ-बूझमें पैनी छैनी और हथौड़ी-द्वारा कलाकी जो आकृतियाँ, रूप-स्वरूप उतारे थे, आज भी वे उस कालके भारतकी कला-समृद्धिकी याद दिलाते हैं। वामन भगवान्‌की यह मूर्ति, जो एक ही पाषाण-शिलापर निर्मित है, कलाकारके श्रम, साहस और शक्तिके साथ उसके कला-कौशलको बड़े प्रभावशाली ढंगसे व्यक्त करती है। सारी मूर्ति और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुबड़ ढले हुए-से और आकर्षक हैं। फिर मूर्तिका आकार ऐसा कि यदि उसके आकाशमापी पैरको देखें तो सिर दर्द करने लगे और यदि जमीनपर स्थित पैरको देखें तो गर्दन। सारी मूर्ति देखते ही बनती थी।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि कांची आधी विष्णुपुरी है और आधी शिवपुरी। एक समय शैवों और वैष्णवोंका देशमें काफी झगड़ा था, उसे मिटाकर देशकी एकता बनाये

रखनेके लिये इस देशके आचार्यों, संतों, भक्तों और राजाओंने अनेक प्रयत्न किये। सम्राट् हर्षवर्धन और गोस्वामी तुलसीदासजीके प्रयत्न इस सम्बन्धमें ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। शिवकांची और विष्णुकांची मिलकर जिस कांचीपुरम्‌का नया निर्माण हुआ है, वह इसी प्रयत्नका प्रतिकल है! शैवों और वैष्णवोंकी एकताका यह प्रयत्न जो उसी कालमें किया गया था, आज भी परम्परारूपसे विविध रूपोंमें चलता रहता है। होली शिवजीके विवाहकी तिथि मानी जाती है। इस दिन रथपर भगवान् शिवका बड़ा भारी जुलूस निकलता है। भगवान् शिव विष्णुकांची पधारकर एक दिन विष्णुकांचीमें अतिथिरूपसे निवास करते हैं। इसी प्रकार वैशाखमें भगवान् विष्णुका रथपर एक बहुत बड़ा जुलूस निकलता है। वे शिवकांची पधारकर शिवकांचीमें दो दिन अतिथिके रूपमें रहते हैं। अतीतकालमें हुए शैवों और वैष्णवोंके संघर्षके कारण कांचीपुरम्‌के जिस रूपके दर्शन हमें होते हैं, उसे देख हमारे मनमें अनेक ऐसी बातें उठती हैं जिनका हमारे आधिमैतिक जीवनसे भी गहरा सम्बन्ध है। (कनशः)

गोरक्षामें सबकी रक्षा

निरपराध गौको मत मार ।
 निरपराधकी हत्या भीमा, घातकपर करती कटु वार ॥
 जो वेसमझ बुद्धिके मारे, हत्यारे, ढोते अघ-भार ।
 तू चेतन है, ज्ञानवान है, मत कर गौपर पाप-प्रहार ॥
 यह भोली निर्दोष जन्मकी, क्या जाने प्रतिरोध-प्रसार ।
 मर जायेगी, सह न सकेगा, पर तू देवोंका प्रतिकार ॥
 वसु देवोंकी यह दुहिता है, अंग-अंगमें वासक-सार ।
 रुद्रोंकी जननी प्रसिद्ध है, प्राण-प्रसविनी, शक्ति अपार ॥
 आदित्योंकी यह भगिनी है, यही दिव्यताका आधार ।
 केन्द्र अमरताका मंगलमय, प्राप्त इसे है देव-दुलार ॥
 देव सगे सम्बन्धी इसके, कभी न वेठेंगे चुप मार ।
 टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे, होगा वधिकोंका संहार ॥
 मांस तुझे ही चाट जायगा, जिसपर तेरा इतना प्यार ।
 सोच-समझ लें, गौके वधमें, तेरे वधका खुलता द्वार ॥
 ओरे ! आत्मवध यह गोवध है, मत चल इसकी ओर असार ।
 गोरक्षामें सबकी रक्षा, सबका हित, सबका उपकार ॥

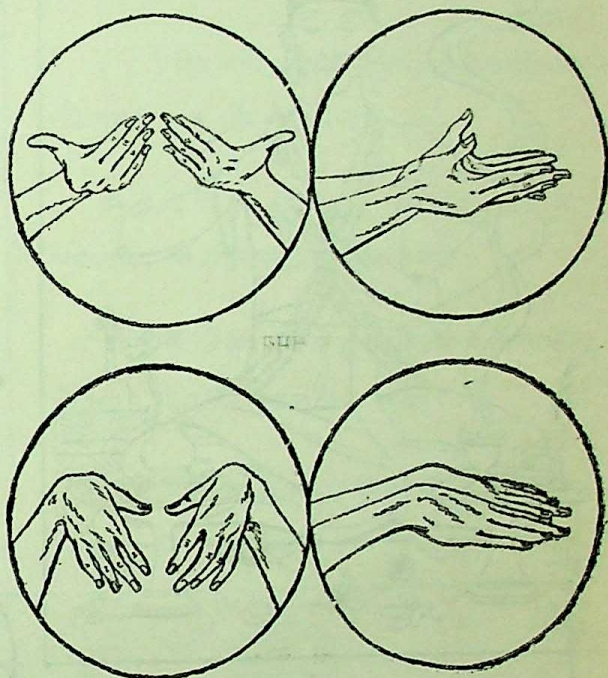
—मुंशीराम शर्मा 'सोम'

बालिद्वीपकी उपासना

(लेखक—डॉ० लोकेशचन्द्र एम्० ए०, डी० लिट०; डॉ० शारदा रानी एम्० ए०, डी० लिट०)

इण्डोनीसियाका प्राचीन नाम नूसान्तर (नूस-द्वीप) अथवा तत्पुरुष, वामदेव) का स्मरण है—

अथवा द्वीपान्तर है। द्वीपान्तरमें 'अन्तर' समूहवाची है; अर्थात् द्वीपोंका समूह द्वीपान्तर। यह वहाँके प्रख्यात ऐतिहासिक ग्रन्थ नागरकृतागममें इसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। इन द्वीपोंकी मालामें रामायणके बालिकी स्मृतिकी सजीव बनाये हुए बालिद्वीप है। पंद्रहवीं शतीमें जब जावामें इस्लामकी विजय हो गयी तब इसी छोटेसे द्वीपमें महान् मजपहित् वंशके उत्तराधिकारियों और अन्य हिंदुओंने शरण ली। भारतसे बाहर यह हिंदूधर्मका एक प्राचीन प्रहरी है जहाँ चारों वर्ण, भयार वरुण, भयार शिव और विराट् हिंदू साहित्य हमारे अन्तर्गतों और साधकोंकी वाट जोड़ रहा है। आज हम वहाँकी उपासनाका दिग्दर्शन करावेंगे। यह ताड़पत्रपर लिखे हुए 'सूर्यसेवन' नामक ग्रन्थमें वर्णित है।



ॐ अं कं कसोलकाय साध्याय नमः। (आवाहना)
 ॐ अं कं कसोलकाय ईशानाय नमः। (प्रतिष्ठा)
 ॐ अं कं कसोलकाय अघोराय नमः। (योग)
 ॐ अं कं कसोलकाय तत्पुरुषाय नमः। (क्रम)
 ॐ अं कं कसोलकाय वामदेवाय नमः। (विसर्जन)

आवाहना, प्रतिष्ठा, योग, क्रम और विसर्जन—इन पाँच मुद्राओं (?) ने पञ्चमूर्तिका सम्बन्ध जोड़ा गया है।

(२) इसके उपरान्त 'करशोधन' है जिसके लिये निम्न मन्त्र हैं—

ॐ शोधय मां स्वाहा। (दायाँ हाथ)
 ॐ अतिशोधय मां स्वाहा। (बायाँ हाथ)
 इसके तुरंत पश्चात्—
 ॐ ॐ आत्मतत्त्वात्म शोधय (लो० शुद्ध) मां स्वाहा।
 ॐ क्षमासंप्रणाय नमः स्वाहा।

बालिके उपासना-पण्डित 'पदण्डा' कहलाते हैं। ये प्रायः शैव हैं। उपासनासे पूर्व पदण्डा बाह्यशुचि बनता है। वस्त्र, मेखला, उत्तरीय, योगपट आदि धारणकर पैर, मुँह, हाथ धोता है। फिर पद्मासनमें बैठता है जिसके लिये पारिभाषिक बालि शब्द 'पशील' है। प्रत्येक प्रक्रिया मन्त्रसे सम्पन्न होती है।

(१) तालविधान (लोन्तारमें तलवेदन) मुद्राके साथ धूपपात्रपर पदण्डा निम्न मन्त्र उच्चारण करता है जिसमें शिवकी पञ्चमूर्ति (साध्य, ईशान,

ॐ श्रीपशुपतये हूं फट्

ॐ श्रेयो भवतु । ॐ पूर्ण भवतु । ॐ सुखं भवतु ।



ॐ अं हृदयाय नमः ।

ॐ अर्काय शिरसे नमः ।

ॐ भूर्भुवःस्वर्वालिनीशिखायै नमः ।

ॐ हूं कवचाय नमः ।

ॐ रः फट् अस्त्राय नमः ।

(अनुष्ठ)

(मध्यमिका)

(अनामिका)

(कनिष्ठा)

(तर्जनी)

दायें हाथका शोधन निम्न मन्त्रसे—

ॐ इं नमः ।

ॐ तं नमः ।

ॐ अं नमः ।

ॐ बं नमः ।

ॐ सं नमः ।

(अनुष्ठ)

(तर्जनी)

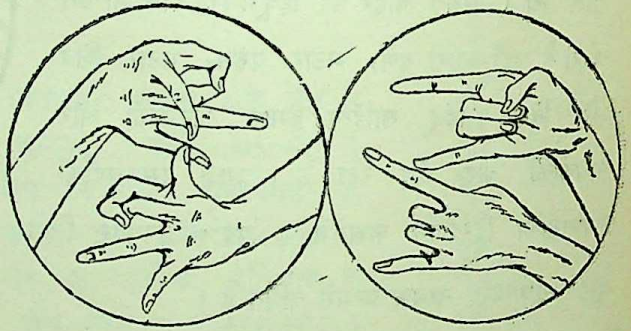
(मध्यमिका)

(अनामिका)

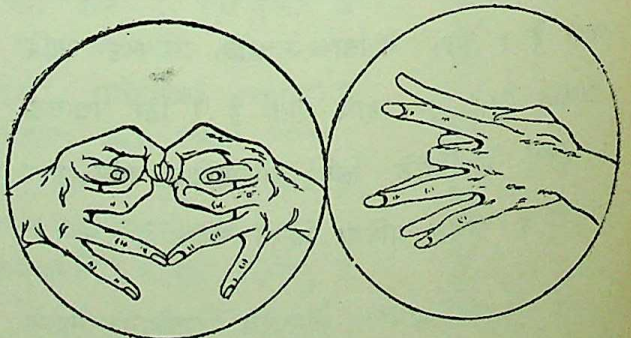
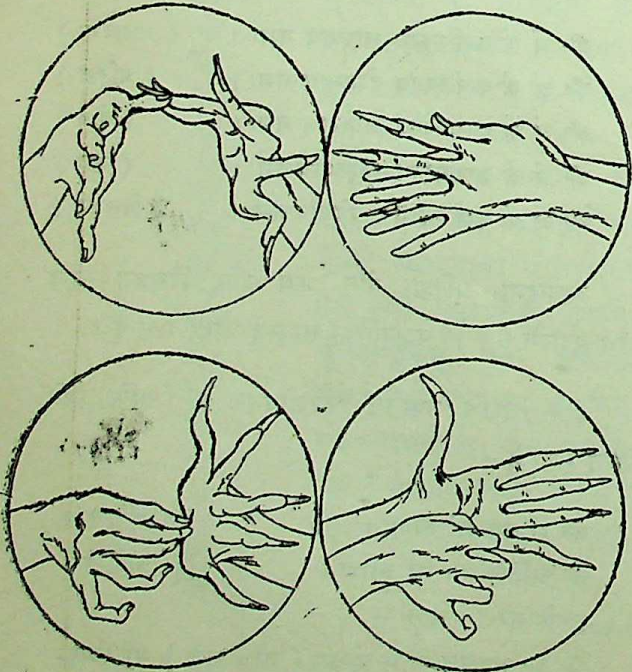
(कनिष्ठा)

‘वं नेत्र’ नामक मुद्रा और मन्त्रोच्चारणद्वारा करतल-
को पोंछते हैं—

ॐ वं नेत्राय नमः ।



(३) इस क्रियाके बाद नाराच-मुद्रा—

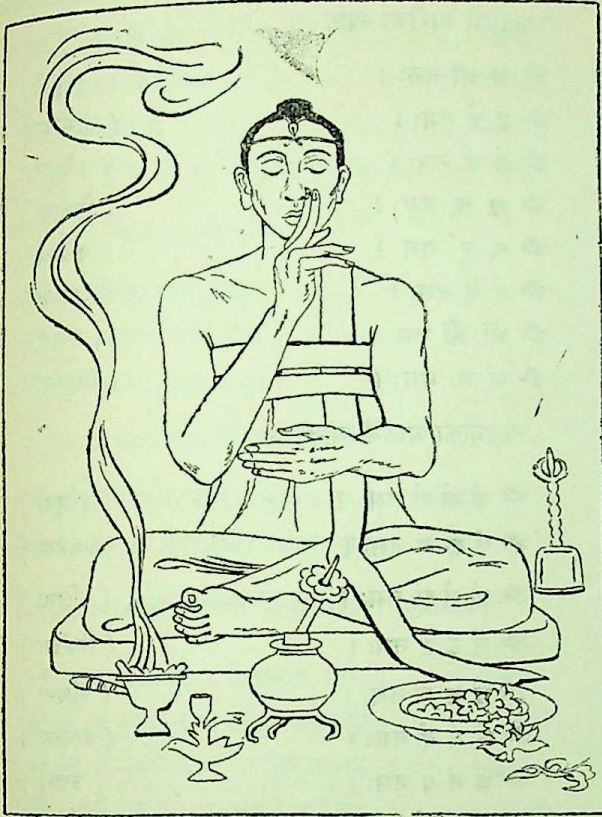


(४) फिर प्राणायाम होता है—पूरक, कुम्भक

पुण्य हाथमें लेकर बायें हाथका शोधन निम्न मन्त्रसे होता है—

ॐ रं नेत्राय नमः ।

और पूरक ।



(५) चुपचाप अस्त्रमन्त्रका जप करके 'प्रथम तोय-
तीर्थ' बनाया जाता है—

ॐ अं हृदयाय नमः ।

ॐ अर्काय शिरसे नमः ।

ॐ भूर्भुवःस्वर्ज्वालिलिनीशिखायै नमः ।

ॐ हूं कवचाय नमः ।

ॐ बं नेत्राय नमः ।

ॐ हूं रः फट् अस्त्राय नमः ।

(६) प्रथम तोय-तीर्थका प्रारम्भ निम्नसे होता है—

ॐ परमशिवगङ्गाय नमः ।

ॐ हां हीं वौषट् परमशिवामृताय नमः ।

(७) जलपर 'व्यक्षर' (अ उ म) लिखते हुए,
अक्षरकी उत्पत्ति और स्थितिकर्मोंके मन्त्रोंका उपांशु
उच्चारण करते हैं—

उत्पत्ति—ॐ अं इ व स त अ । ॐ ॐ य न म
शि वा । ॐ ॐ मं उं अं नमः । ॐ देवप्रतिष्ठायै
नमः ।

स्थिति—ॐ ॐ स व त अ इ । ॐ ॐ न म शि
वा य । ॐ ॐ अं उं मं नमः ।

(८) फिर अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डलका
'त्रिमण्डल' मन्त्र और त्रितत्त्वमुद्रा—

ॐ इं हिं त्रिं क्प्रे अश्रं उं द्वादशकालात्मने सत्त्वरजो-
ऽधिपतये । ॐ अग्निमण्डलाय नमः स्वाहा ।

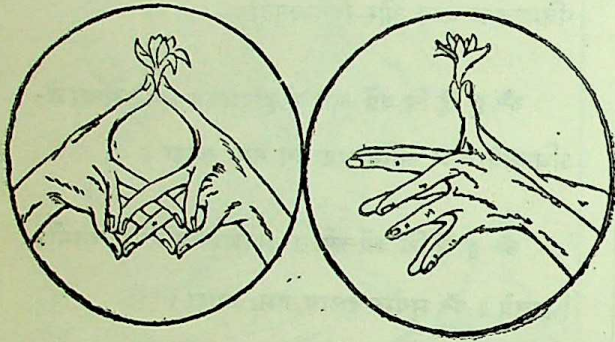
ॐ इं हिं त्रिं क्प्रे अश्रं उं द्वादशकालात्मने सत्त्वतमोऽ-
धिपतये । ॐ सूर्यमण्डलाय नमः स्वाहा ।

ॐ इं हिं त्रिं क्प्रे अश्रं उं द्वादशकालात्मने सत्त्वसोमा-
धिपतये । ॐ चन्द्रमण्डलाय नमः स्वाहा ।



(९) अमृत-मुद्रामें पदण्डा गङ्गाकी स्तुति करता है ;
क्योंकि तीर्थ-तोयोंमें गङ्गा पावनतमी है—

ॐ गङ्गादेवि महापुण्ये गङ्गे सहस्रमेधिनि ।
गङ्गातरङ्गसंयुक्ते गङ्गादेवि नमोऽस्तु ते ॥
ॐ श्रीगङ्गामहादेवि अनुपमामृतजीवनि ।
ॐ काराक्षरभुवनपदामृतमनाहरे ॥
ॐ उत्पत्तिक सुरसं च उत्पत्ति तव गौरश्च ।
उत्पत्ति सर्वहितं च उत्पत्ति वश्रिवाहिनम् ॥



(१०) सप्ततीर्थ-मन्त्र—

ॐ अं गङ्गायै नमः ।
ॐ अं सरस्वत्यै नमः ।
ॐ अं सिन्धवे नमः ।
ॐ अं विपाशायै नमः ।
ॐ अं कौशिक्यै नमः ।
ॐ अं यमुनायै नमः ।
ॐ अं सरयुवे नमः ।

(११) पद्ममुद्रामें 'ॐ अनन्तासनाय नमः' से अनन्तासन
ग्रहण कर 'चतुरैश्वर्य-मन्त्र' बोलता है—

ॐ ऋं धर्माय सिंहरूपाय श्वेतवर्णाय नमः स्वाहा ।
(आग्नेया)
ॐ ॠं ज्ञानाय सिंहरूपाय रक्तवर्णाय नमः स्वाहा ।
(नैऋत्या)
ॐ लृं वैराग्याय सिंहरूपाय पीतवर्णाय नमः स्वाहा ।
(वायव्या)
ॐ लृं ऐश्वर्याय सिंहरूपाय कृष्णवर्णाय नमः स्वाहा ।
(ऐशान्या)

(१२) पद्ममुद्रामें 'ॐ पद्मासनाय नमः' से पद्मासन
लगाकर स्वर-व्यञ्जन न्यास करता है—

अष्टदलमें स्वरोंका न्यास—

ॐ अं आं नमः । (पूर्वा)
ॐ इं ईं नमः । (आग्नेया)
ॐ उं ऊं नमः । (दक्षिणा)
ॐ ऋं ॠं नमः । (नैऋत्या)
ॐ लृं लृं नमः । (पश्चिमा)
ॐ एं ऐं नमः । (वायव्या)
ॐ ओं औं नमः । (उत्तरा)
ॐ अं अं नमः । (ऐशान्या)

व्यञ्जनोंका मध्यमें न्यास—

ॐ कं खं गं नमः । (पूर्वा)
ॐ घं ङं चं नमः । (आग्नेया)
ॐ छं जं झं नमः । (दक्षिणा)
ॐ ञं टं ठं नमः । (नैऋत्या)
ॐ ढं ढं णं नमः । (पश्चिमा)
ॐ तं थं दं नमः । (वायव्या)
ॐ धं नं पं नमः । (उत्तरा)
ॐ फं बं भं नमः । (ऐशान्या)

अन्तःस्थ और ऊष्मोंका कर्णिकामें न्यास (पसं यरलव
रिं ब्रो कूट, कर्णिकायाम्)—

ॐ मं नमः । (पूर्वा)
ॐ यं नमः । (आग्नेया)
ॐ रं नमः । (दक्षिणा)
ॐ लं नमः । (नैऋत्या)
ॐ वं नमः । (पश्चिमा)
ॐ शं नमः । (वायव्या)
ॐ षं नमः । (उत्तरा)
ॐ सं नमः । (ऐशान्या)
ॐ हं नमः । (मध्य)

(१३) नौ शक्ति—

ॐ रां दीप्तायै नमः । (पूर्वा)
ॐ रीं सूक्ष्मायै नमः । (आग्नेया)
ॐ रुं जयायै नमः । (दक्षिणा)
ॐ रुं भद्रायै नमः । (नैऋत्या)
ॐ रं विमलायै नमः । (पश्चिमा)

ॐ रै त्रिभुज्यै नमः । (वायव्या)

ॐ रौ असोघायै नमः । (उत्तरा)

ॐ रौ त्रिबुतायै नमः । (ऐशान्या)

ॐ रं । (रः) सर्वतोमुखिन्यै नमः । (मध्य)

(१४) त्रितत्त्व-मन्त्र—

ॐ ॐ शिवतत्त्वाय नमः ।

ॐ ॐ विद्यातत्त्वाय नमः ।

ॐ ॐ आत्मतत्त्वाय नमः ।

(१५) कूटमन्त्रके दो पाठ मिलते हैं—

ॐ हां हीं सः परमशिवादित्याय नमः । अथवा

ॐ हां हीं सः शिवसूर्यपरमतेजःस्वरूपाय नमः ।

(१६) ब्रह्माङ्ग अथवा शिवीकरणका न्यास—

ॐ अं कं कसोल्लकाय ईशानाय नमः । (शिर)

ॐ अं कं कसोल्लकाय तत्पुरुषाय नमः । (मुख)

ॐ अं कं कसोल्लकाय अघोराय नमः । (हृदय)

ॐ अं कं कसोल्लकाय वामदेवाय नमः । (उपस्थ)

ॐ अं कं कसोल्लकाय साध्याय नमः । (पाद)

(१७) शिवाङ्ग-न्यास—

ॐ अं हृदयाय नमः । (हृदय)

ॐ अर्काय शिरसे नमः । (शिर)

ॐ भूर्भुवःस्वर्वाल्लिनीशिखायै नमः । (केशाय)

ॐ हूं कवचाय नमः । (पृष्ठ)

ॐ भां नेत्राय नमः । (नेत्र)

ॐ हूं रः फट् अस्त्राय नमः । (बाहु)

(१८) गर्भमन्त्र—

ॐ अं कं कसोल्लकाय शिवगर्भहृदयाय नमः ।

(१९) अष्टग्रह—

ॐ सं सोमाय श्वेतवर्णाय नमः । (पूर्वा)

ॐ वुं बुधाय चामीकरवर्णाय नमः । (दक्षिणा)

ॐ वृं बृहस्पतये पीतवर्णाय नमः । (पश्चिमा)

ॐ भां भार्गवाय श्यामवर्णाय नमः । (उत्तरा)

ॐ अं अंगाराय रक्तवर्णाय नमः । (आग्नेया)

ॐ शं शनैश्चराय कृष्णवर्णाय नमः । (नैऋत्या)

ॐ रां राहवे राज्यवद्वर्णाय नमः । (वायव्या)

ॐ कें केतवे धूम्रवर्णाय नमः । (ऐशान्या)

(२०) चतुःसन्ध्या अथवा चतुस्तर्पण—

ॐ अं शुक्ल्यै नमः । (पूर्वा)

ॐ अं भक्त्यै नमः । (दक्षिणा)

ॐ अं कृष्ण्यै नमः । (पश्चिमा)

ॐ अं जम्बिकायै नमः । (उत्तरा)

(२१) चतुर्ऋषि—

ॐ अं सर्वदेवेभ्यो नमः । (सामने)

ॐ अं सप्तऋषिभ्यो नमः । (दाएँ)

ॐ अं सप्तपितृभ्यो नमः । (बाएँ)

ॐ अं सरस्वत्यै नमः । (पीछे)

(२२) घण्टा-स्तव—

ओंकारः सदाशिवस्त्वं जगन्नाथ हितंकर ।

अभिवादवदनीयं घण्टाशब्दः प्रकाश्यते ॥

घण्टाशब्दं महाश्रेष्ठं ओंकारं परिकीर्तितम् ।

चन्द्रनादबिन्दुना दत्तं स्फुलिङ्गशिवतत्त्वं च तम् ॥

ॐ घण्टा आयान्तु पूज्यन्ते देवाः अभवभवकर्मसु ।

वरणलब्धसंदेहं वरं सिद्धिः निःसंशयम् ॥

(२३) पङ्कजम् अथवा ॐ क्षमस्व (नीचे संख्या ४६

देखिये)—

ॐ क्षमस्व मां महादेव सर्वप्राणहितंकर ।

मां मोच सर्वपापेभ्यः पालयस्व सदाशिव ॥

पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः ।

त्राहि मां सर्वपापेभ्यः केनचिन्मम रक्षतु ॥

क्षन्तव्याः कायिका दोषाः क्षन्तव्या वाचिका मम ।

क्षन्तव्या मानसा दोषास्तत्त्वमार्दं क्षमस्व माम् ॥

हीनाक्षरं हीनपादं हीनमन्त्रं तथैव च ।

हीनभक्तिं हीनविधिं सदाशिव नमोऽस्तु ते ॥

ॐ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं महेश्वर ।

यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥

(२४) सङ्स्कार वे (=जल-संस्कार)—

ॐ हां हीं सः वौषट् परमशिवाभृताय नमः ।

ॐ हां हीं सः श्युं सदाशिवाभृताय नमः ।

ॐ हां हीं सः श्युं अं उं मं ॐ ।

स्वस्ति स्वस्ति [सर्वदेवेभ्यो भूतसुखप्रेतेभ्यो नमः]

क्षि क्षि । य वा शि म न । इ स ब त अ ।

भूतिर् भूतिर् भूर् भुवः स्वः (स्वाहा) ।

ॐ अं इं उं ऋं मां वं (उः वार) ।

ॐ इ अ क श, म र ल व उ, नमो नमः स्वाहा ।

ॐ अ र क स, म र ल व य, उ नमो नमः स्वाहा ।

ॐ देवप्रतिष्ठायै नमः । ॐ अर्धनारीश्वराय नमः ।

ॐ प्रधानपुरुषसंयोगाय नमः ।

कूटमन्त्र । ॐ हां हीं सः परमशिवादित्याय नमः ।

(२५) सप्ततीर्थ अथवा अप्सु देवमन्त्र—

अप्सु देव पवित्राणि गङ्गादेवि नमोऽस्तु ते ।

सर्वक्लेशविनाशिनी तोयेन परिशुध्यते ॥

सर्वपापविनाशिनि सर्वरोगविमोचने ।

सर्वविघ्नविनाशिनि सर्वभोगमवाप्नुयात् ॥

(२६) सप्त ओंकार-मन्त्र—

ॐ ॐ परमशिव शून्यात्मने नमः ।

ॐ ॐ सदाशिव निष्कलात्मने नमः ।

ॐ ॐ सदाशिव अन्त्यात्मने नमः ।

ॐ ॐ महादेव निरात्मने नमः ।

ॐ मं ईश्वर परात्मने नमः ।

ॐ उं विष्णु अन्तरात्मने नमः ।

ॐ अं ब्रह्मा आत्मने नमः ।

(२७) स्तव-भटार (=भटार-स्तव)—

ॐ प्रणम्य भास्करं देवं सर्वक्लेशविनाशनम् ।

परमादित्यशिवार्थं भुक्तिमुक्तिवरप्रदम् ॥

(२८) सप्तगङ्गा—

ॐ गङ्गा सरस्वती सिन्धु विपाशा कौशिकी नदी ।

यमुना महती श्रेष्ठा सरयू च महानदी ॥

ॐ गङ्गा सिन्धु सरस्वती सुयमुता गोदावरी नर्मदा

कावेरी सरयू सहेन्द्रतनया चर्मण्वती वेणुका ।

भद्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता च या गण्डकी

पुण्याः पूर्णजलाः समुद्रसहिताः कुर्वन्तु मे मङ्गलम् ॥

ॐ गङ्गादेवि महापुण्ये नमस्ते विश्वभामिनि ।

यमुने परमपुण्ये नमस्ते परमेश्वरि ॥

नर्मदे च देवि पुण्ये नमस्ते लोकाराधिनि ।

धरिण्यै मलहारिण्यै नमस्तुभ्यं महेश्वरि ॥

दैविको दैविकजस्त्वं शिवपृष्ठं नमोऽस्तु ते ।

नैरञ्जने जगत्क्लेशहारिण्यै ते नमो नमः ॥

मन्दाकिनि सुरदेवि नमस्ते मलहारिणि ।

जम्बुशङ्ख महादेवि देवी देवनियोगतः ॥

सेरूपदक्षिणां कृत्वा क्लेशान् नारायणप्रिय ।

पर्वताश्वमुखपुण्ये क्षिणुक्लेशान् विनाशय ॥

क्षीरेक्षुश्च दधि घृतं क्षुरयक्षीव निर्मलम् ।

पातु नः क्लेशानां युष्मभ्यं तु नमो नमः ॥

ॐ नमस्ते भगवति गङ्गे नमस्ते शीतले नदि ।

सलिलं विमलं तोयं स्वयम्भूतीर्थभाजनम् ॥

ॐ सुभिक्षे अष्टस्तेयदोषकिल्बिषनाशने ।

पवित्रे सुमहातीर्थे गङ्गायापि महोदधिः ॥

ॐ वज्रपाणि महातीर्थे पापशोकविनाशने ।

नदि पुष्पालये निस्थं नदि तीर्थतया प्रिये ॥

ॐ तीर्थोदधि सकुम्भञ्च वर्णदेह महात्मनाम् ।

मुनीनां मङ्गलस्ताश्च ह्येवापि सदिवौकसः ॥

ॐ सर्वविघ्ना विनश्यन्तु सर्वः क्लेशो विनश्यतु ।

सर्वदुःखविनाशाय सर्वपापं विनाशय ॥ नमः स्वाहा ॥

ॐ पञ्चाक्षरं महापुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ।

पापकोटिसहस्राणामगदं भवसागरे ॥

लोन्तारमें उत्तरार्धका पाठ बहुत भ्रष्ट है—अदरध (•)

भवेत् सगर (•) ।

(२९) इसके उपरान्त निम्न मन्त्रते तुम्हें बलुल्वत् अर्थात् कल्पक नामक पुष्प जलमें डाला जाता है । यदि यह उपलब्ध न हो तो अन्य किसी सुगन्धित पुष्पका प्रयोग किया जाता है । मन्त्र—

ॐ इ अ क श म र ल व य नमो नमः स्वाहा ।

ॐ ॐ कुर्मैदजये जीवत् । शरीर रक्ष ण्डदु सिमे ।

ॐ म्मुं सः वौषट् मृत्युञ्जयाय नमः । [सः वौषट्] ।

(३०) इसके उपरान्त पञ्चोपचार हैं—गन्ध (चन्दन)

अक्षत (बीज), पुष्प, धूप, दीप । मन्त्र—

गन्ध—ॐ श्रीगन्धेश्वरि अमृतेभ्यो नमः स्वाहा ।

अक्षत—ॐ कुंकुमबीजाय नमः ।

पुष्प—ॐ पुष्पदन्ताय नमः ।

घूप—ॐ अग्निर् अग्निर् ज्योतिर् ज्योतिः ।

ॐ घूपं समर्पयामि ।

दीप—ॐ दीपं समर्पयामि । स्वाहा ।

इसकी व्योम मुद्रा है ।

(३१) उदकाङ्गलि—

ॐ अं खं खसोक्ताय नमः ।

ॐ ग्रीं क्षमाकरणाय नमो नमः स्वाहा ।

(३२) पाद्यार्घ्य (मन्त्र का नाम 'पं पाद्य' है)—

वसः सुकु (पैर धोना) ॐ पं पाद्याय नमः ।

ॐ अं अर्घ्यद्वयाय नमः ।

वसः हस्त (हाथ धोना) ॐ जं जीवशुद्धाय नमः ।

कमुः कमुः (कुह्ला करना) ॐ चं चमनीयाय नमः ।

रउप् (मुख धोना) ॐ ग्रीं शिवग्रीवाय नमः ।

सङ्कपि । इसका शब्दार्थ 'समाप्त' है । इसमें घण्टा बजाना और विशेष मुद्रा है । यह कई प्रक्रियाओंके उपरान्त पाया जाता है ।



(३३) मृत्युञ्जय अथवा दीर्घायुर् अथवा सप्तवृद्धि—

ॐ दीर्घायुर्वल्लवृद्धिशक्तिकरणं मृत्युञ्जयः शाश्वतं
रोगादिक्षयकुष्ठदृष्टकलुषं चन्द्रप्रभाभास्वरम् ।

हिं-मन्त्रं च चतुर्भुजं त्रिनयनं व्यालोपवीतं शिवं
शीतं चामृतमध्य सा सुखकरं जीवत्सयाभ्यासङ्कम् ॥

इवेताम्भोरुहकर्णिकापरिगतं देवासुरैः पूजितं
मृत्युक्रोधबलं महाकृतमयं कर्पूररेणुप्रभम् ।

त्वां वन्दे हृदये भक्तिशरणं प्राप्यं महाप्रस्तुमैः
शान्तं सर्वगतं निरन्तमभवं भूतात्मनिर्विगुणम् ॥

श्रीद्रं भक्तिविमुक्तिं 'करणं व्याप्तं जगद्धारणं
मौलीबन्धकिरीटकुण्डलधरं चैतन्यदुष्टक्षयम् ।

वन्दे मृत्युजितं सजप्यारहोमन्त्रादिदेवं हरिं
मुक्त त्वं जतुवं समाधि सततं चैतन्यदुष्टक्षयम् ॥

ॐ मृत्युञ्जयदेवस्य यो नामानीहानुकीर्तयेत् ।

दीर्घायुष्यमवाप्नोति संग्रामे विजयी भवेत् ॥

ॐ आत्मतत्त्वात्म शोधस्य मां स्वाहा ।

ॐ प्रथमं शुद्धं द्वितीयं शुद्धं तृतीयं शुद्धं चतुर्थं शुद्धं
पञ्चमं शुद्धं शुद्धं शुद्धं वारि अस्तु ।

ॐ आयुर्वृद्धिर्शोवृद्धिर्वृद्धिः प्रज्ञासुखश्रियाम् ।

धर्मसंतानवृद्धिश्च संतु ते सप्त वृद्धयः ॥

यावन्मेरौ स्थिता देवा यावद् गङ्गा महीतले ।

चन्द्रार्कौ गगने यावत् तावत् तावद् विजयी भवेत् ॥

ॐ दीर्घायुस्तु तदस्तु । ॐ अविघ्नस्तु तदस्तु ।

ॐ शुभस्तु तदस्तु । ॐ श्रेयो भवतु । ॐ सुखं भवतु ।

ॐ पूर्णं भवतु । सप्तवृद्धिरस्तु ।

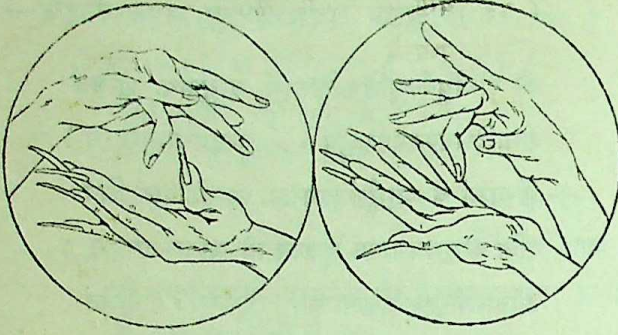
(३४) मभस्म अर्थात् पदण्डा अपने शरीरपर चन्दन
लेप करता है । मन्त्र—

ॐ इदं भस्म परं गुह्यं सर्वपापविनाशनम् ।

सर्वरोगप्रशमनं सर्वकलुषनाशनम् ॥

ॐ वामदेवगुहाय नमः । ॐ सं बं तं अं इं नमः

स्वाहा । ॐ भूर्भुवः स्वः ।



धर्मजाति—

ॐ ॐ प्रधानपुरुषसंयोगाय बिन्दुदेवाय भोक्त्रे
जगन्नाथाय ।

देवदेव्यादिसंयोगाय परमशिवाय नमो नमः ।

(३५) पदण्डा सिरपर निम्न मन्त्रसे शिरोवेष्ट
पहिनता है—

शिरोवेष्टं महादिव्यं पवित्रं पापनाशनम् ।
कुशाग्रं प्रतिगृह्णाति परमशिवशून्यं ते ॥
स्वस्ति मे सर्वतो नित्यं दिव्यं शास्त्रं च निर्भयम् ।
सपुत्रपौत्री ऋद्धिश्च बान्धवाः ससुखा नित्यम् ॥
ॐ ॐ क्षमासम्पूर्णाय नमः ॥

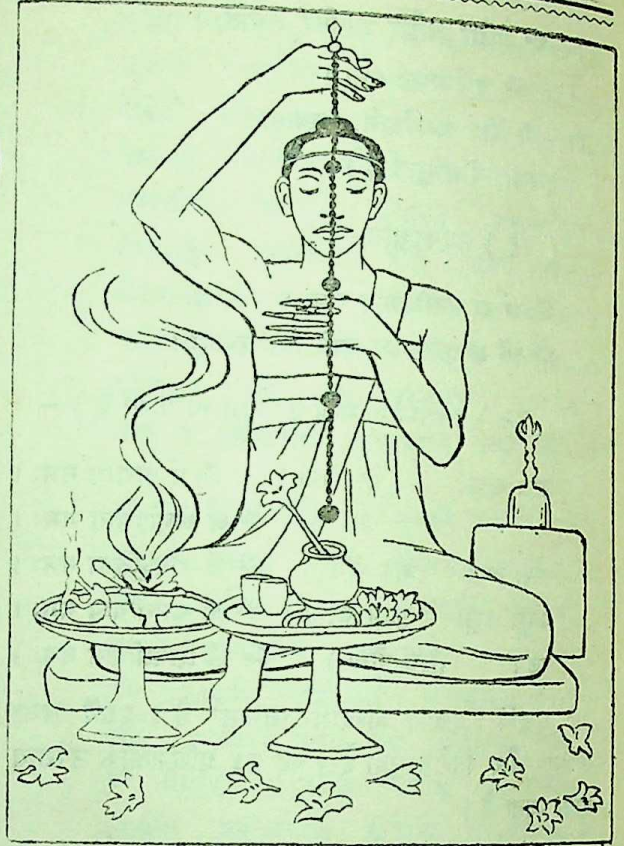
(३६) पदण्डा निम्न मन्त्रसे शिवसूत्र अर्थात्
यज्ञोपवीत धारण करता है—

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमभ्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥
परगुह्यात्मं त्रिगुणं त्रिगुणात्मकम् ।
अरिवं कोटिसूर्यप्रकाशं चन्द्रकोटिहृदयम् ।
इति वेदमन्त्र गायत्री मात्रमात्र षडक्षर सर्वदेवपिता
स्वयम्भू भर्गो देवस्य धीमहि ।
सङ्कपि (ऊपर संख्या ३२ देखिये)

(३७) कौपीन और मेखलाका धारण निम्न
मन्त्रमे होता है—

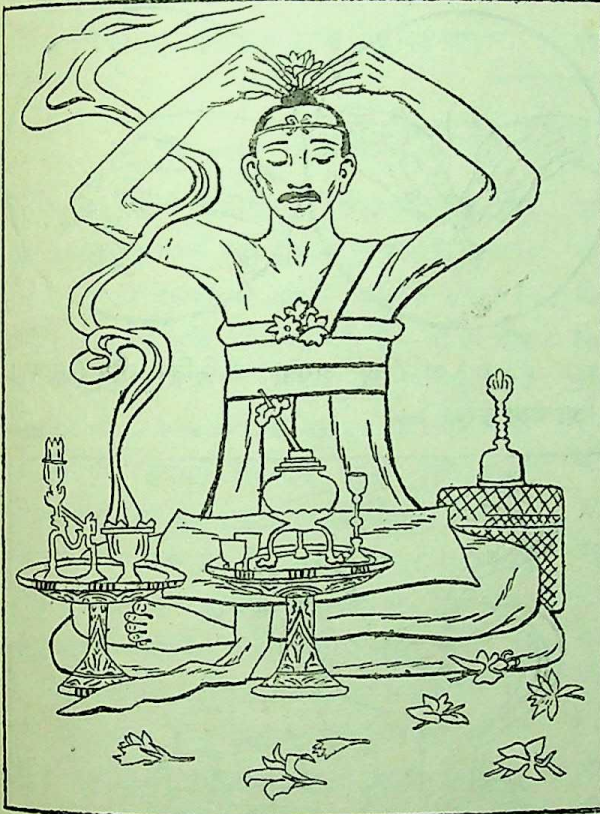
कौपीनं ब्रह्मा संयुक्तं मेखला विष्णुः संस्मृतः ।

वैहि (?) सर्वकरो देव बन्धिसंयुक्तः सदाविद्यमानः ।



(३८) इस प्रकार शिवसूत्र, कौपीन, मेखला धारण कर पदण्डा १०८ मनकोंकी गणित्री ले उपांशु जप करता है और ध्यानमें मग्न हो जाता है। उसकी आत्मा शरीरको छोड़ 'डिलि आत्मा'में लीन हो जाती है। वह शिखान्त (तुङ्गुडि रम्बुत्) द्वादशांगुलमें आ जाती है। अग्निपुराण ३०३। १४ में भी यही वर्णन है—

आत्मानं योजयित्वा शिखान्ते द्वादशांगुले ।
संशोष्य दग्ध्वा स्वतनुं प्लावयेदमृतेन च ॥



(३९) इसके उपरान्त जब शिव डिलि आत्मामें विराजमान हो जाते हैं, पदण्डा ग्री-मन्त्रका उच्चारण करता है—

ॐकारादि परमं मन्त्रं, मंकारं तीक्ष्णमेव च ।
देवार्चा उंकारं मन्त्रं, अंकारं देवतर्पणम् ॥
देवार्चनं च ग्री-मन्त्रं, ग्री-मन्त्रं तर्पणं तथा ।
भोक्तृलक्षणं ग्री-मन्त्रं, ग्री-मन्त्रं तृप्तिकरणम् ॥
क्षमाकरणं ग्री-मन्त्रं, ग्री-मन्त्रं अनुग्राहकम् ।
अन्त्येष्टि चैव ग्री-मन्त्रं, ग्री-मन्त्रं देवसंघरम् ॥

(४०.) पदण्डा अञ्जलि करता है—

ॐ आदित्यस्य परं ज्योतीं रक्ततेजो नमोऽस्तु ते ।

श्वेतपङ्कजमध्यस्थे भास्कराय नमो नमः ॥

(४१) पदण्डा निम्न मन्त्रले पायुक् (छोटे पात्र) में पड़े हुए जलका 'अमृतीकरण' करता है, जो अर्चनाके अन्तमें भक्तोंको वितरण किया जाता है—

ॐ एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।

अनुकम्पय मां भक्त्या गृह्यमाणो दिवाकर ॥ । य नमो नमस्ते ॥

(४२) जलको पूत करनेका एक और 'शिवामृत-मन्त्र' है जिसका अन्त कूटमन्त्र और 'सङ्कपि' से होता है—

ॐ ॐ शिवामृताय नमः । ॐ ॐ सदाशिवामृताय नमः । ॐ ॐ परमशिवामृताय नमः । ॐ कस्मूं शिवामृताय नमः । ॐ कस्मूं सदाशिवामृताय नमः । ॐ कस्मूं परमशिवामृताय नमः । ॐ ॐ गङ्गामृताय नमः । ॐ ॐ चन्द्रामृताय नमः ।

ॐ शिवशुद्धात्मने स्वाहा । ॐ शुद्धात्मने स्वाहा ।
ॐ शुद्धात्मने स्वाहा । ॐ हां ह्रीं सः परमशिवामृताय नमः । सङ्कपि ।

(४३) इसके उपरान्त शिवका स्तोत्र 'स्तव-भटार' है—

ॐ स्तम्भभेरुपरिवर्तसमस्तलोकं
विम्बाधिदेवनिचतवाजिकराय ।

जम्बोरतीव गगनाय समस्तनेत्र-
मम्बरविन्दुशरणाय नमो नमस्ते ॥

दिव्यापोमूर्तिपरमेश्वरभास्कराणां

ज्योतिःसमुद्रपरिरक्षित न तनय ।

भूःसप्तलोकभुवनत्रयसर्वनेत्र-

मादित्यदेव शरणाय नमो नमस्ते ॥

कालाय काष्ठरवि भास्कर बालदेव

भक्त्या मूर्तिपरिवृत सुनिष्कुटाय ।

रत्नाय रत्नमणिभूषितसंयुताय

त्रैलोक्यनाथशरणाय नमो नमस्ते ॥

(४४) 'राजमन्त्र' अर्थात् 'स्तव-सूर्य'—

ॐ ह्रीं श्रीं ज्वालिने नमः ।

ॐ ह्रीं हूं रत्नपतये नमः ।

ॐ ह्रीं क्रौं कुलपुत्राय नमः ।

ॐ ह्रीं कुं कुलपुत्राय देवाय नमः ।

(४५) 'त्रिभुवन-मन्त्र'—

परमशिव त्वं गुह्यं शिवतत्त्वपरायण ।

शिवस्य प्रणतो नित्यं चण्डीशाय नमोऽस्तु ते ॥

नैवेद्यं ब्रह्माविष्णोश्च भोक्तृदेव महेश्वर ।

सर्वव्याधिना सर्वकार्यं च विजयम् ।

गुह्यातिगुह्यं प्राप्नुयात् यज्ञं तिल बते असः ॥

सिद्धिसकलामप्नोति परमशिव ॥

ॐ ॐ परमशिवाय नमः स्वाहा ॥

सङ्कपि ।

(४६) क्षमा-मन्त्र (ऊपर संख्या २३ देखिये)—

क्षन्तव्याः कायिका दोषाः क्षन्तव्या वाचिका मम ।

क्षन्तव्या मानसा दोषास्तत्प्रसादं क्षमस्व माम् ॥

हीनाश्रयं हीनपादं हीनमन्त्रं तथैव च ।

हीनभक्तिं हीनविधिं सदाशिव नमोऽस्तु ते ॥

क्षमस्व मां जगन्नाथ सर्वपापनिरन्तरम् ।

सर्वकार्यहीनदेहं प्राणा मम सुरेश्वर ॥

त्वं सूर्यस्त्वं शिवंकरः त्वं रुद्रवह्निर्लक्षणः ।

त्वमेव सर्वगतः कुरु मम कार्यं प्रजापते ॥

क्षमस्व मां महाशक्ते ह्यष्टैश्वर्यगुणात्मक ।

नाशयेत् सततं पापं सर्वमलोकदर्पणकारण नमः स्वाहा ॥

सङ्कपि ।

(४७) अनुग्रह-मन्त्र—

ॐ अनुग्रहमनोहरं देवदत्तानुग्राहकं, ह्यर्चनं सर्व-
पूजनं नमः सर्वानुग्राहकम् । देवदेवी महासिद्धि यज्ञिकण्ठ-
मूलत्वम् इदं, लक्ष्मीः सिद्धिश्च दीर्घायुर्निर्विघ्नसुखवृद्धिश्च ॥

ॐ ग्रीं अनुग्रहार्चनाय नमो नमः स्वाहा ।

ॐ अनुग्रहमनोहर नमो नमः स्वाहा ।

ॐ ग्रीं परममान्येष्टं नमो नमः स्वाहा ।

ॐ अन्त्येष्टि परमं पिण्डं देवमिश्रितं सर्वेष्टी ।

एकस्थानग्यूह सर्वदेव सुखप्रद नमो नमः ॥ स्वाहा ।

सङ्कपि ।

(४८) विष्णु-विष्णु—

ॐ विष्णुर्विष्णुरादित्यदे त्रिविष्णु प्रजापतेः

क्षेत्रे वाराहकल्पे प्रथमे चरणे कालयुगे ।

कालमासे कालातीते योगनक्षत्रमिताय

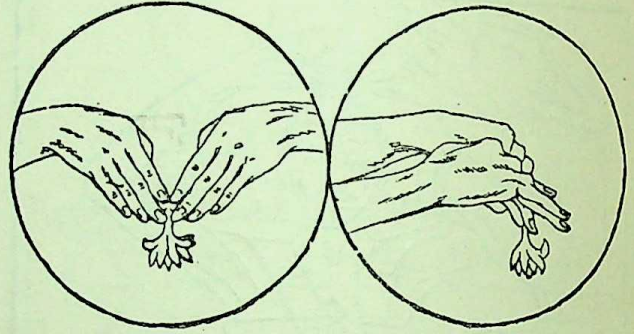
वेदोक्तिफलं प्रति कामनया सर्वप्रायश्चित्तं करिष्ये ।
सौभाग्यमस्तु तदस्तु अस्तु स्वाहा ।

(४९) एकपुष्प अथवा श्लोक-मन्त्र—

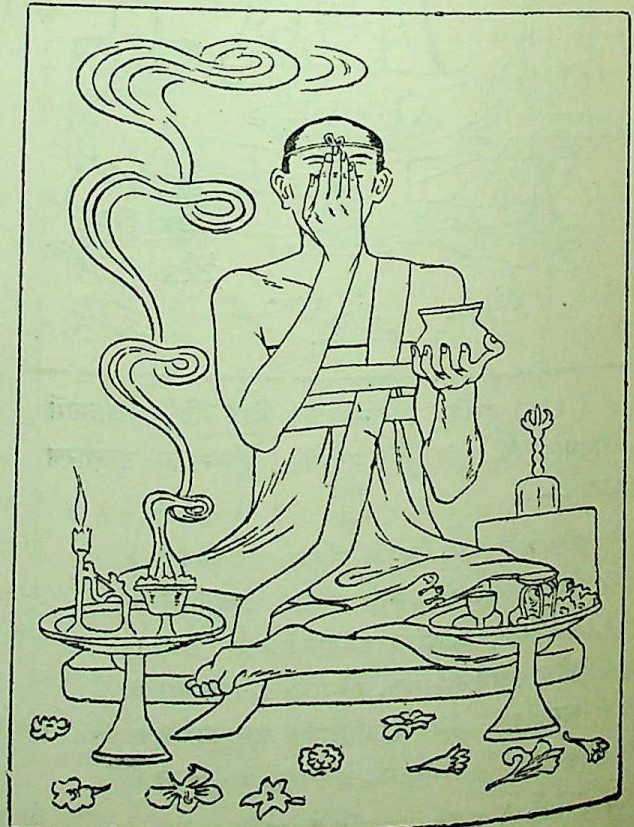
एकपुष्पं च निर्मलं पद्मसंयोगि संस्थितम् ।

एकपुष्प शिव त्वं च पश्चात् शरीरसंस्थितम् ।

(५०) इसके उपरान्त शिव पदण्डाके शरीरको
छोड़कर चले जाते हैं और आत्मा 'नुन्तु आत्मा' में पुनः
स्थान ग्रहण करती है—



(५१) अनिन्त्रिप् अथवा अनितिप् तोय (तोयका
आचमन करना)—



संख्या १४]

(५२) एक ताडपत्रके अनुसार इसके पश्चात् सात मन्त्र हैं जिनका प्रारम्भ निम्न है—

१. ॐकारात्म मन्त्रहृदय...
२. भावे सूर्य...
३. भाव्यं तं स्वर्ग...
४. मन्त्राणां सिद्धि...
५. क्षं क्षि क्षे क्षुं...
६. स्थूलं सूक्ष्मं परं...
७. हन्मूलं सदासूक्ष्मं...

(५३) सूर्यके दस नामोंके द्वारा दस अङ्गोंका न्यास...

ॐ सुं सूर्याय नमः (शिर) । ॐ भास्कराय नमः (मुख) । ॐ दिवंकराय नमः (बाहु) । ॐ अर्काय नमः (वक्षस्) । ॐ आदित्याय नमः (हृदय) । ॐ रवये नमः (उदर) । ॐ मातंगाय नमः (नाभि) । ॐ रथाय नमः (पार्श्व) । ॐ सरथाय नमः । ॐ अश्वाय नमः (पाद) ।

आचमन पूर्ण होते ही पदण्डा शिरोवेष्ट उतार देता है; क्योंकि उसमें अब शिव विराजमान नहीं, वह मनुष्य बन गया है। पुष्प पूत तोयमें डालकर उपासनाकी समप्ति होती है।

गोवंशकी हत्या शीघ्र-से-शीघ्र बंद हो

देशमें गोवंशके हत्या-निवारणके सम्बन्धमें आन्दोलन चल रहा है और वह अगले महीना तक बहुत प्रबल हो जायगा; ऐसी आशा है; पर सरकारकी ओरसे अभीतक उपेक्षा ही हो रही है। भारतवर्ष ऋषि-मुनियोंकी भूमि है—धर्मका क्षेत्र है। यहाँ गो-हत्याकी कल्पना भी नहीं होनी चाहिये, पर आज भारतीयोंकी स्वतन्त्र सरकार होनेपर भी भारतवासी अत्यन्त दुःखपूर्ण हृदयसे प्रतिदिन लगभग तीस हजार (३०,०००) गायोंकी वृंशस हत्या देख रहे हैं और सरकारसे इस महापापका परित्याग कर देनेके लिये अनुरोध कर रहे हैं। धर्मप्राण भारतमें गोहत्या-निवारणके लिये आन्दोलन करना और साधु-महात्माओंको जेल जाना तथा प्राणोत्सर्ग करना पड़ रहा है—यह वास्तवमें बड़ी लज्जा तथा दुर्भाग्यकी बात है। धर्मप्राण आर्यजनता अनादिकालसे गायको माता मानती आ रही है और गायमें सभी देवताओंका निवास देखती है, उसी गायकी हत्या बंद नहीं की जा रही है। आन्दोलन तो बहुत पुराने समयसे चल रहा है, पर अंग्रेजोंके जमानेमें विदेशी ईसाई सरकार होनेके नाते यह कहा जा सकता था कि आन्दोलनमें सफलता न मिलना कोई आश्चर्यकी बात नहीं; परन्तु जिस भारतीय सरकारकी नींव गोहत्याके सर्वथा बंद कर देनेकी प्रतिज्ञापर पड़ी, वन्दनीय महात्मा गाँधी, महामना मालवीयजी, लोकभान्य तिलक आदि सभी जननायकों ने खुले तौरपर यह घोषणा की कि 'स्वराज्य मिलते ही गो-हत्या बंद कर दी जायगी।' गाँधीजीने यहाँतक कहा कि 'विलासतके आन्दोलनमें मेरा सहयोग देना केवल गोरक्षाके लिये ही है। मैं गोरक्षाको स्वराज्यसे भी बढ़कर मानता हूँ।'

उन्हीं गाँधीजीके देशमें और उन्हींके अनुयायी कहलानेवाले लोगोंके शासनमें अवाधरूपसे गोहत्या चलती रहे और गो-हत्या-बंदीके लिये शान्तिमय आन्दोलन करने और बिना किसी उपद्रवके अपना प्राणोत्सर्ग करनेवाले साधु-महात्माओंके प्रति अवाञ्छनीय व्यवहार किया जाय, यह तो वास्तवमें हमारा घोर पतन है। सुना गया है कि त्याग-तपस्यानिष्ठ श्रीरामचन्द्रजी 'बीर' गिरफ्तार करके जेल भेज दिये गये। वहाँसे उन्हें इरविन अस्पतालमें भेजा गया और लोगोंके बहुत कहने-सुननेपर 'जनरल वार्ड'से अलग करके उन्हें एक बरामदेमें डाल दिया गया था। यदि यह सत्य है तो सरकारके लिये बड़े कलङ्ककी बात है। वस्तुतः आमरण अनशन करनेवालोंको जेलमें ठूसनेकी सरकारकी यह नीति सर्वथा आपत्तिजनक है। गोरक्षा-जैसे धार्मिक उद्देश्यके लिये आमरण अनशन तो एक प्रकारका तप है। महात्माजीने भी हरिजन-उद्धारके लिये आमरण अनशन किया था। जैन साधु आमरण अनशन करते हैं, जिसे 'संथारा' कहते हैं। सनातन-धर्ममें भी 'पराक' तथा 'संतापन' नामक ऐसे ही व्रतोंका विधान है। मातृभूमिकी रक्षाके लिये लाखों-लाखों नवयुवक रणाङ्गणमें मृत्युका वरण करते हैं। ये सभी त्याग, बलिदान और तप हैं। तपस्याकी इन प्रणालियोंका अर्थ 'आत्महत्याकी चेष्टा' कभी नहीं किया जा सकता। गोरक्षार्थ अनशन करनेवाले महात्माओंको जेलमें 'द करना प्रकारान्तरसे धार्मिक अधिकारोंमें हस्तक्षेप करनेके समान है।

कुछ दिनोंके पश्चात् ही यदि गो-हत्या सम्पूर्णतया बंद होनेकी घोषणा न हुई तो देशके वरिष्ठ और लाखों-

करोड़ों लोगोंके श्रद्धास्पद भगवान् शंकराचार्यकी गद्दीके अधीश्वर तथा बड़े-बड़े संत-महात्मा आमरण अनशन या धार्मिक व्रतादिके द्वारा प्राण-त्याग करनेवाले हैं। भगवान् न करें, यदि सरकारको सुबुद्धि न आयी, उन महात्माओंके साथ भी किसी प्रकारका दुर्व्यवहार किया गया और गोवंशका वध बंद नहीं किया गया एवं उन्होंने प्राण-त्याग कर दिये तो परिणाम कितना भयानक होगा यह कहा नहीं जा सकता। पूर्वकालमें असुरोंके राज्यमें ऋषि-मुनियोंपर ही तो अत्याचार होते थे। उसीकी पुनरावृत्ति हमारे अपने अहिंसा और सत्यके अनुयायी माननेवाले राज्यमें होगी, तो इससे अधिक बुरी चीज और क्या हो सकती है ?

मैं किसी भी राजनीतिक दलसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। अतएव केवल गो-हत्याका महापाप सदाके लिये बंद हो जाय, इसी पवित्र उद्देश्यसे केन्द्रिय सरकारसे प्रार्थना करता हूँ कि वह शीघ्र ही संविधानमें उचित परिवर्तन-परिवर्द्धन करके केन्द्रके द्वारा ही कानूनन सर्वथा गोवंशका वध बंद कर दे और अपने तथा देशके परम कल्याणमें कारण बने।

यह कहा जाना सर्वथा निरर्थक है कि गायें न मारी गयीं तो बिना दूधकी गायोंका भार बढ़ जायगा और उनको चारा-दाना कहाँसे दिया जायगा। सच्ची बात तो यह है कि भरण-पोषण करनेवाले श्रीभगवान् हैं। दूसरे, दूध न देनेवाली गायोंके गोबर-गोमूत्र आदिका ठीक-ठीक उपयोग किया जाय तो उससे इतनी आमदनी हो सकती है कि जिससे उन गायोंका खर्च मजेमें चल सकता है। अब तो गोबरसे नैस बनने लगी है तथा दक्षिणमें अंगूरकी खेती होने लगी है और उसके लिये गोबरकी माँग बेहद बढ़ गयी है। केवल व्यवस्था होनी चाहिये। पर खानेकी व्यवस्था हो सकनेपर भी उसके लिये तो कोई प्रयत्न न करना और मातृरूपिणी गायोंको मारकर उनका मांस खाने और बेचनेके लिये प्रोत्साहन देना तो सर्वथा राक्षसपन है। फिर तो यह भी कहा जा सकता है कि न कमा सकनेवाले बूढ़े माता-पिताओंको एक साथ ही मार दिया जाय। पर यह क्या मानवता है ?

एक बातसे मुझे बड़ा संतोष है। बहुत-से ऐसे अधिकारियोंको मैं जानता हूँ और काँप्रेसके भी बहुत-से ऐसे लोगोंसे परिचय है जो हृदयसे गोवध-बंदी चाहते हैं। उनसे मैं विनम्र निवेदन करना चाहता हूँ कि वे जरा साहस करके

अपना मत स्पष्ट प्रकट करें और शीघ्र-से-शीघ्र गोहत्याका सर्वथा निवारण हो—इस महान् पुण्यमें हिस्सा लें। मैंने स्वर्गीय राष्ट्रपति डा० श्रीराजेन्द्रप्रसादजीको भी उनके पत्रके उत्तरमें यही लिखा था। इसीके साथ मुझे इस बातसे भी बड़ा आनन्द है कि इस समय सारे देशमें जागृति होने लगी है और गोहत्याके विरोधमें बड़ी संख्यामें लोग त्याग और बलिदानके लिये तैयार हो रहे हैं। यह बड़ा शुभ लक्षण है। साथ ही देशभरमें अपनी-अपनी मान्यता और रुचिके अनुसार गोहत्या-निवारणके लिये भगवदाराधन और देवाराधन भी बहुत बड़ी मात्रामें चल रहा है। हजारों-लाखों नर-नारी भगवदाराधनमें लगे हैं। इसका दैवी शुभ फल तो अवश्यम्भावी है ही। इससे गोरक्षाके अनुकूल एक सुदृढ़ वातावरण भी निर्माण हो रहा है। मेरा अनुरोध है—सभी प्रदेशमें सभी लोग अधिक-से-अधिक भगवदाराधन और देवाराधन करें।

इधर ऐसे समाचार मिले हैं कि केन्द्रिय सरकारके सहृदय गृहमन्त्री श्रीनन्दाजीने कई राज्य-सरकारोंको शीघ्र गोहत्या-बंदीका कानून बनानेके लिये पत्र लिखे हैं। उन्होंने देशमें पूर्ण गोहत्या-निवारणका आश्वासन भी प्रकारान्तरसे दिया बताते हैं। मेरा-ऐसा विश्वास है कि माननीय श्रीनन्दाजी हृदयसे गोहत्या-बंदी चाहते हैं एवं कुछ और मन्त्री भी उनसे सहमत हैं। भगवान् सबको सुबुद्धि दें, जिससे पुण्य-भूमि भारतवर्षसे यह गोहत्याका महापाप सदाके लिये शीघ्र-से-शीघ्र सम्पूर्णतया मिट जाय। परन्तु कुछ राज्योंमें भी गोहत्या-निवारणका जो कानून बना हुआ है, वह अधूरा है; क्योंकि सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेके अनुसार भार न ढोनेवाले बैलोंकी हत्या करना उसमें अपराध नहीं माना गया और यों निकम्मे बैलोंके नामपर तरुण, निरन्तर दूध देनेवाली गायोंकी ही हत्या होती है, यह सर्वविदित है। अतएव गोवंश (गाय, बैल, साँड़, बछड़ा, बछड़ी सभी) की हत्याका निषेध होना आवश्यक है और इसके लिये संविधानमें परिवर्तन करना पड़ेगा। साथ ही यह कार्य अलग-अलग राज्योंका न होकर वस्तुतः केन्द्रका ही है; अतः केन्द्रको ही गोहत्यानिषेधका कानून बनाना चाहिये। पर इसके लिये आन्दोलनमें और भी प्रबलता आनी चाहिये। अभी दिल्लीमें आन्दोलन प्रगतिपर है। 'सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान-समिति' सुन्दर कार्य कर रही है। उसके विधानका निर्माण हो चुका है। 'सर्वोच्च समिति'

कार्यकारिणी समिति' आदि बन चुकी हैं। सदस्यों एवं संरक्षकोंमें देशके सम्मान्य सभी सम्प्रदायोंके महान् आचार्यों, नेताओं और साधु-महात्माओंके शुभ नाम हैं।

सत्याग्रह चल रहा है। सैकड़ों साधु जेल जा चुके हैं और जा रहे हैं। जेल जानेवाली महिलाओंमें एक नगरकी काँग्रेसकी अध्यक्ष वहन भी हैं। अभी-अभी [गत १८ ता० को ३०० व्यक्तियोंका एक जत्था महामण्डलेश्वर स्वामीजी श्रीआत्मानन्दजी महाराजके नेतृत्वमें जेल गया है। इसमें सम्भ्रान्त परिवारोंकी १०० महिलाएँ, १०० प्रतिष्ठित नागरिक तथा शेष साधु संत पुरुष हैं। २० ता० को भी सैकड़ों सत्याग्रहियोंका जत्था जानेवाला है। आर्यसमाजने भी सत्याग्रहका उद्घोष कर दिया है। आगामी ७ नवम्बरको अखिल भारतीय स्तरपर एक विशाल जन-प्रदर्शनकी योजना है। आशा की जाती है उसमें बड़े-बड़े साधु-महात्मा, महामण्डलेश्वर और सम्मान्य नेताओंके अतिरिक्त पाँच लाख नर-नारी सम्मिलित होंगे।

‘सम्पूर्ण गोरक्षा-अनुरोध-समिति’के संस्थापक प्रसिद्ध संत श्रद्धेय संत श्रीस्वामीजी श्रीगणेशानन्दजी महाराजने सत्याग्रही साधुओंके लिये दिल्लीमें अपनी ओरसे एक लंगर खोल दिया है। अयोध्याके महात्माओंने भी अपनी छावनी अलग खोल दी है। अयोध्या, वाराणसी, वृन्दावन और हरिद्वार आदि विभिन्न स्थानोंसे साधुओंके दल-के-दल दिल्ली पहुँच रहे हैं। आगामी विजयादशमीके दिन चलकर अनन्त-श्री जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराज, अनन्तश्री स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज तथा अनेक साधु-महात्मा दिल्ली पधार रहे हैं। ‘सनातनधर्म-प्रतिनिधि-सभा’के श्रद्धेय स्वामीजी श्रीगणेशानन्दजी महाराजने विराट् प्रदर्शनका नेतृत्व स्वीकार किया है। इस विराट् प्रदर्शनके संयोजक जैन-मुनि श्रीसुशीलकुमारजी नियुक्त हुए हैं और वे बड़े उत्साहसे कार्य कर रहे हैं। ‘भारत-साधु-समाज’के अध्यक्ष श्रद्धेय स्वामीजी श्रीगुरुचरणदासजी महाराज महान् प्रयत्न कर रहे हैं। सर-संघ-संचालक श्रद्धेय श्रीगोलवलकरजी जो सहयोग-सहायता कर रहे हैं, वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। प्रसिद्ध जैन-मुनि श्रीसुशीलकुमारजीका प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है। जैनियोंका शक्तिशाली संगठन हो गया है। मुनिजीकी

सभाओंमें ३० से ४० हजार तक लोग एकत्रित होते हैं। प्रसिद्ध गोभक्त पं० श्रीरामचन्द्रजी ‘वीर’ दीर्घकालसे दिल्लीमें आमरण अनशन कर रहे हैं। उन्हींके साथ उनके सुपुत्र तथा सत्-शिष्य हिंदीके प्रतिभाशाली प्रसिद्ध कवि और लेखक श्रीधर्मेन्द्र शर्माजी भी आमरण अनशन कर रहे हैं। वे पिता-पुत्र सारी हिंदूजातिके परम श्रद्धाभाजन हैं। मैं बड़ी श्रद्धासे उन्हें अभिवादन करता हूँ।

ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी महाराज अपनी गोधाम-यात्रा ट्रेनके द्वारा विभिन्न स्थानोंमें लाखों लोगोंको गोरक्षाका पवित्र संदेश सुना चुके हैं और सुना रहे हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघके लोगोंने बड़ा कार्य किया है और कर रहे हैं। हिंदू-महासभाके सम्मान्य नेता और कार्यकर्ता भी जी-जानसे जुट गये हैं। नामधारी सिख भी बड़ा सहयोग दे रहे हैं। यों सारे देशमें कार्य चल रहा है। भगवान्की कृपापर विश्वास रखते हुए सभीको अपनी-अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार इसमें भाग लेना चाहिये। जो समर्थ हैं वे दिल्ली जाकर सत्याग्रहमें भाग लें। विराट् प्रदर्शनमें सम्मिलित हों। अपने-अपने स्थानोंमें भगवदाराधन करें, प्रचार करें। स्थानीय प्रदर्शनोंमें सम्मिलित हों। सभाएँ करें, प्रस्ताव पारित करें और राष्ट्रपति तथा केन्द्रीय सरकारके प्रधान मन्त्री और गृहमन्त्रीके पास भेजें। करोड़ों हस्ताक्षर कराये जायँ और उन्हें भेजा जाय। जो लोग धनसे सहायता करना चाहें वे नीचे लिखे पतेपर सीधे बीमा, मनीआर्डर, चेक, बैंक ड्राफ्ट आदिके द्वारा धन भेजें। (अपरिचित लोगोंको धन न दें।) चारों तरफ त्यागकी लहर दौड़ जाय, जिससे गोमाताकी हत्या सदाके लिये बंद हो। अपनी-अपनी रुचि तथा शक्तिके अनुसार देशके सभी लोगोंको केन्द्रीय सरकारपर निर्दोष, परंतु प्रभावशाली ऐसा दबाव डालना चाहिये, जिससे सरकार आगामी गोपाष्टमीसे पहले-पहले सम्पूर्ण गोहत्या-बंदीकी घोषणा कर दे। पर सब किया जाय बड़ी शान्तिके साथ सबकी मङ्गलकामना करते हुए। हमारा कोई शत्रु नहीं है। सभीमें एक भगवान् हैं और इस दृष्टिसे सभी हमारे लिये आराध्य हैं।

आश्विन शुक्ल ६। २०२३
दिनांक १९। १०। ६६

} हनुमानप्रसाद पोद्दार
पो० गीताप्रेस, गोरखपुर
(३० प्र०)

मनुष्यमात्रसे सविनय प्रार्थना, हमारे रामके आमरण अनशनकी सूचना

(हरन भद्रेष आचार्य अनन्तबी स्वामी श्रीबीरराववाचार्यजी महाराजका वक्तव्य)

पूर्वजोंकी लोकोपकारिणी प्रथाका, परम्पराका गौरव-सम्मान रखनेवाले भारतवासी समस्त महानुभावोंसे निवेदन किया जाता है कि पुण्यतम आर्यावर्त देशके साम्राज्यका संचालन करनेवाले गोभक्तोंके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र शुद्ध श्वेत खादी वस्त्र धारण करनेवाले काँप्रेसी महानुभावोंको कानूनन गोहत्या बंद करनेके लिये किसी भी उपायसे मनावें।

ईश्वरने भिन्न-भिन्न श्रेणीके मनुष्योंको भिन्न-भिन्न शक्तियाँ प्रदान की हैं, परंतु समय देखते हुए अपने देश-भाइयोंके काम आनेवाली किसी भी वस्तुका नुकसान न करते हुए वर्तमान शासनको समझानेके लिये पूर्ण प्रयत्न करें।

यद्यपि शासकोंमें कतिपय ऐसे महानुभाव भी हैं, जो सच्चे हृदयसे गोहत्या-निषेधका कानून आवश्यक समझते हैं, परंतु वे कुछ तो शासनसूत्रको स्वाधीन रखनेकी चिन्ता एवं कुछ अपने गोवधाभिलाषी सहयोगियोंके दबावसे कानून-निर्माणके प्रयत्न करनेका साहस नहीं कर सकते।

बड़े खेदकी बात है कि स्वाधीन भारतके पहले कुछ रियासतोंमें गोहत्यापर तो प्रतिबन्ध था ही; हिरन, मोर इत्यादि पशु-पक्षियोंकी हत्या भी (विशेषकर राजस्थानमें) कानूनन निषिद्ध थी। परंतु आज अपनी भूख मिटानेके बहाने अन्य पशु-पक्षियोंको तो खुले तौरपर सरकार, भोजनके लिये उपयुक्त घोषित करती हुई दुग्ध, घृत आदि पौष्टिक आहार देनेवाली गौके संहारको बढ़ावा देनेके लिये नये-नये यान्त्रिक कसाईखाने जगह-जगह निर्माण करने जा रही है। सुनते हैं किसी देशवाले सभी प्राणियोंको (कीड़े-मकोड़े तक) खा जानेके अभ्यासी हो गये हैं। क्या उसी तरह भारतीय जनताकी आदतें बनाना जरूरी भी हो गयीं ? राम ! राम ! राम !

जनतामें मांसाहार-मद्यपान आदिको स्वतन्त्र भारतके कालमें अबतक बढ़ावा मिला। इससे हिंसा-प्रवृत्ति, अकर्मण्यता एवं नैतिक पतनकी वृद्धि हुई है। जगह-जगह होटलोंमें खुले आम अभक्ष्य-भक्षणमें जनता जब निःसंकोच प्रवृत्त होती है, इस अवस्थामें गोहत्या चालू रहे तो गोमांसके उपयोगसे कैसे बचाव हो सकता है ? सुना गया है कि दिल्ली, कलकत्ता, बम्बईके कुछ प्रसिद्ध होटलोंमें तो इसका निर्विरोध उपयोग होता है, जहाँ विदेशी अतिथियोंका एवं देशके सम्पन्न तथा अधिकारीवर्गका विशेषरूपसे आना-जाना रहता है।

किसीके पूर्वजोंने ईश्वर आदमसे लेकर आजतक

अभक्ष्य-भक्षण, अगम्यागमन, घूसखोरी, भ्रष्टाचार, गुंडागर्दी आदि प्राणियोंको संताप पहुँचानेके कार्य नहीं किये, परंतु कुसंगवश धनमदान्ध, पदमदान्ध आदि व्यक्ति करते देखे जाते हैं। ये जवन्य कार्य इनसे एवं इनकी औलादोंसे छूटने कठिन हैं; क्योंकि जबतक मनुष्य किसी नीच कार्यको नहीं करता, तभीतक घृणा तथा लज्जा रहती है। विशुद्ध धरानोंके बालक तथा पदाधिकारीजन उपर्युक्त होटलोंमें भोजन करते होंगे तो उनका हृदय गोहत्याके विरोधमें कैसे सहयोग कर सकेगा—‘यादश्च भक्षयेदन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी’। यों यदि होटलोंके द्वारा गो-मांसका जनतामें उपयोग बढ़ेगा तो भविष्यमें गोहत्या-निषेधके लिये शायद ही कोई भारतीय तैयार हो। अतः समस्त भारतीयोंका कर्तव्य है कि समय रहते ही इस पवित्र भारतभूमिपर गोहत्या बंद करानेके लिये हर सम्भव शान्तिमय उपायोंसे सरकारको शीघ्रातिशीघ्र विवश करे।

जो अगृही, अच्युतगोत्र, साधु-महात्मा, औल्या, फकीर आदि केवल ईश्वरके भरोसे रहते हुए प्राणिमात्रका भला चाहनेवाले हैं वे जिस दिन जो कुछ चाहें, सब कुछ कर सकते हैं।

यदि किसीके बुजुर्ग गो-भक्त रहे हों और वे अपने बदनमें खूनका बिन्दु उन्हीं बड़ेरोंका समझते हों तो उन भाइयोंको भी इस मौकेपर पूर्णतया सहयोग देकर हार्दिक सहानुभूति प्रकट करनी चाहिये।

यद्यपि कई वर्षोंसे ‘गोहत्या-निषेध’ कानूनके लिये समय-समयपर प्रार्थना की गयी। परंतु उन लिखित-कथित प्रार्थनाओंपर दीर्घ निद्रालु सरकारने कोई ध्यान नहीं दिया। अब प्रायः सभी वर्ग, समाज, संघ, सम्प्रदाय, मत, मजहब, पंथ एक राय होकर सरकारके समक्ष शान्तिमय उपायोंसे अनुरोध कर रहे हैं और अनेक संत एवं सम्प्रदायाचार्य, जैन मुनीश्वरगण, सिक्ख संतमहानुभाव तथा अन्य भी गोभक्त वीर गोहत्या-निषेधके लिये व्रत, उपवास एवं आमरण अनशनके लिये कटिबद्ध हो गये हैं तथा मेरे रामने भी निश्चय किया है कि आगामी गोपाष्टमीसे जब संत प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीजी महाराज कई महानुभावोंके साथ घृन्दावनमें आमरण अनशन प्रारम्भ करेंगे तब मेरे राम भी वहीं कार्तिक शुद्ध ११ (देवोत्थापनी) के दिन गोमाताके संरक्षणार्थ आमरण अनशन प्रारम्भ कर दूँगे।

इस कार्यमें सफलताके लिये समस्त प्राणियोंकी मङ्गल

कामना करते हुए हमारे राम सभी संत, सम्प्रदाय, पंथ, मत, मजहब, समाज, संघ, पार्टी आदिसे शुभसंकल्पकी कामना करते हैं।

नोट—जनता अपने-अपने शहर, ग्राम, कस्बोंमें सभाएँ करके सरकारको गोहत्या बंद करनेके लिये प्रस्ताव आदिसे निवेदन करे।

गोहत्या-समस्या—सरकार और मुसल्मान

(लेखक—श्रीअतीकुर्रहमान किदवाई)

हमारे देशमें गोवधकी समस्या वर्षोंसे विवादका कारण बनी हुई है। अंग्रेजोंके शासनमें हिंदू और मुसल्मानोंके मध्य इसी गोवधके झगड़ेने कैसी-कैसी दुःखद घटनाएँ उत्पन्न कीं और न जाने कितने मनुष्योंका रक्त बहाया गया और यह सिलसिला अभीतक जारी है।

अंग्रेजोंके जमानेमें भी हिंदुओंकी यही भावना थी कि गोवध बंद किया जाय; परंतु अंग्रेजकी नीति 'लड़ाओ और शासन करो' की थी। अतः अंग्रेजोंने इस समस्याको हिंदुओं और मुसल्मानोंके मध्य फूटके तौरपर बनाये रखा। हिंदू-मुसल्मान आपसमें लड़ते रहे और अंग्रेज दोनोंपर शासन करता रहा।

इस सिलसिलेमें देशके हिंदू और मुसल्मानोंने मिलकर कई बार प्रयत्न किया कि किसी सूरतसे यह विवाद सदाके लिये समाप्त हो जाय और मुसल्मान सदाके लिये गोहत्या करना छोड़ दें।

खिलाफत आन्दोलनके जमानेमें जब हिंदू और मुसल्मानोंने अंग्रेजोंके विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाया तो उस समय भी दोनोंके सामने गोहत्याका विवाद मौजूद था। अतः गान्धीजी और मौलाना मुहम्मद अलीने इस समस्यापर गम्भीरतासे विचार करना शुरू किया और इस परिणामपर पहुँचे कि हिंदू-मुसल्मानोंके मध्य घृणाका असली कारण गोवधकी समस्या है और इसे प्रत्येक सम्भव उपायसे समाप्त करना है। हिंदू-मुस्लिम-एकताके लिये यह तय पाया कि मुसल्मान गोहत्या बंद कर दें और संगठित होकर अंग्रेजोंके विरुद्ध मोर्चा बना लें। साधारण मुसल्मानोंने भी मौलाना मुहम्मद अली और गान्धीजीके इस विचारका जोरदार समर्थन किया और इसपर अमल भी शुरू हुआ; परंतु बादमें खिलाफत आन्दोलन ही दम तोड़ गया और इसके साथ ही दूसरी बातें भी भुला दी गयीं।

खैर! यह दौर अंग्रेजोंका था; परंतु आजादीके बाद देशके हिंदू ठीक ही यह आशा करते थे कि सरकार गोहत्या बंद करनेके मामलेमें इनकी धार्मिक भावनाओंका अवश्य ही सम्मान करेगी और देशभरमें गोवधपर प्रतिबन्ध लगा दिया जायगा। परंतु दुर्भाग्यसे ऐसा नहीं हुआ और हिंदुओंको सरकारके खैरियेसे निराशा हुई जिसे वे बार-बार व्यक्त करते रहे और अब इसका परिणाम यह हुआ कि देशभरमें सरकारके खैरियेके विरुद्ध घृणाकी भावना उत्पन्न हो गयी। जलसे-जलूस और प्रदर्शनोंने जोर पकड़ा। अब सरकारके सामने केवल यही सूरत शेष रह जाती है कि वह सारे देशमें गोवधपर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दे।

स्वाधीनताके बाद कांग्रेसी सरकारका यही खैरिया रहा है कि जब कोई समस्या अत्यन्त गम्भीर रूप धारण कर लेती है तो उस समय ही सरकार हरकतमें आती है और जनताकी रायके सामने झुक जाती है। गोवधकी समस्या भी अब गम्भीर रूप धारण कर गयी है और यदि तत्काल ही कोई प्रभावशाली कार्यवाई न की गयी तो समस्याकी गम्भीरता स्पष्ट ही है। इसलिये इससे पूर्व कि गोवधकी समस्या और भी गम्भीर रूप धारण करे, सरकारपर यह जिम्मेदारी है कि वह देशके करोड़ों हिंदुओंकी धार्मिक भावनाओंका सम्मान करे और इस झगड़ेको सदाके लिये समाप्त कर दे।

मद्यपान और गोवधके सम्बन्धमें सरकारके कानून त्रुटिपूर्ण और हास्यास्पद हैं। किसी राज्यमें मद्यपान कानूनी तौरपर बंद है तो किसी राज्यमें इसपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इसी प्रकार कई राज्योंमें गोवध कानूनी तौरसे बंद है और साथ ही कई राज्योंमें इसपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। कानूनमें समानताकी नितान्त आवश्यकता है; अन्यथा कानूनका कोई मूल्य नहीं रह जाता।

गोवधके विरोधमें वर्तमान आन्दोलनका जहाँतक

सम्बन्ध है वह मुसलमानोंके विरुद्ध नहीं है, बल्कि सरकारके विरुद्ध है और इसका वास्तविक उद्देश्य बड़े-बड़े बूचड़खानोंको बंद कराना है। आजादीके बाद गोवधपर जो कुछ भी प्रतिबन्ध लगाये गये, मुसलमानोंने उनका पूर्ण सम्मान किया है। जिन क्षेत्रोंमें गोवधपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, वहाँके मुसलमानोंकी यह जिम्मेदारी है कि वे समयकी नजाकतका अनुभव करें और कोई ऐसा मौका न दें जिससे कोई विरोधकी स्थिति उत्पन्न हो।

समय और समझ-बूझका तकाजा है कि मुसलमान और इनके नेता मैदानमें आयें और देशके अपने करोड़ों हिंदू भाइयोंके साथ गोवधके विरुद्ध आवाज उठायें और हिंदुओंको विश्वास दिलायें कि देशके मुसलमान गोवधके मामलेमें पूर्णरूपसे उनके साथ हैं। गोवधके विरोधमें जहाँ जलसे-जलूस हों और प्रदर्शन हों, उनमें भी मुसलमान सम्मिलित हों और गोवधपर प्रतिबन्धकी माँगका जोरदार समर्थन करें। जहाँतक साधारण मुसलमानोंका सम्बन्ध है वे गोहत्यासे बहुत दूर हैं। परंतु खेदकी बात है कि मुसलमानोंकी धार्मिक संस्थाओं और इनके नेताओंको अभीतक समयकी गम्भीरताका आभास नहीं हुआ है और वे भी आज संकीर्णतामें फँसे प्रतीत होते हैं। हालाँकि समयका तकाजा यही है कि वे मैदानमें निकलें और स्पष्ट शब्दोंमें गोवधकी निन्दा करें; क्योंकि अब समय आ गया है कि व्यर्थकी दलीलोंसे कुछ बननेवाला नहीं है, बल्कि अधिक विगड़नेका खतरा है।

आज मैं मुसलमानोंकी समस्याको जिस ढंगसे सोचता हूँ, उसका आधार ठोस वास्तविकतापर आधारित है और यही कारण है जो प्रायः मुसलमानोंको विभिन्न खतरोंसे अवगत करता रहता हूँ। परंतु दुर्भाग्यसे सत्ताप्रिय और अवसरवादी वर्ग हमेशा ही मुसलमानोंको गुमराह करता रहा है और आज भी उसका यही प्रयत्न है कि देशका मुसलमान तबाह व बर्बाद होता रहे, परंतु वह मुसलमानोंको कभी सही मार्ग दिखानेका प्रयत्न न करेगा। जब वस्तुस्थिति यह हो तो फिर आम मुसलमानोंकी क्या जिम्मेदारी है और इनका क्या फर्ज है? स्वयं मुसलमानोंको यह सोचना चाहिये कि उनके गुमराह नेता उनको किधर ले जा रहे हैं? आज मुसलमानोंके

हितमें यदि कोई बात है तो वह यही है कि आम हिंदुओंके हृदयमें इनके लिये स्थान हो। परंतु खेद है कि मुसलमानोंके नेता वास्तविकतासे पूर्णतः अनभिज्ञ हैं।

मेरी यह बात चाहे कितनी भी कटु क्यों न हो, परंतु फिर भी मैं यही कहूँगा कि मुसलमानोंको अब सरकारकी ओरसे बिल्कुल ही अपनी आँखें बंद करनी होंगी; क्योंकि सरकारके सहारेपर जीनेवालोंका कोई मूल्य नहीं होता।

आकोला और अन्य स्थानोंपर जो कुछ हुआ, वह निन्दनीय है। इस सिलसिलेमें मुसलमानोंकी ओरसे यदि कोई निन्दनीय हरकत हुई है तो वह अत्यन्त खेदपूर्ण और निन्दायोग्य है और यदि मुसलमान निर्दोष हैं और कोई शरारती हिंदू दोषी है तो वह भी निन्दनीय है। परंतु मैं यह बात भी साथ ही कह देना चाहता हूँ कि जब गोवधके विरोधमें जलूस निकला तो मुसलमानकी क्या जिम्मेदारी थी? यदि किसी शरारती व्यक्तिने जलूसपर पानी या पत्थर फेंके थे तो मुसलमानोंको एक-आवाज होकर मैदानमें आना चाहिये था और हिंदुओंको यह आश्वासन देना चाहिये था कि उनका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है और वे हिंदुओंके साथ हैं और यदि सौभाग्यसे मुसलमान पहलेहीसे इस जुलूसमें शामिल हो जाते तो यह खेदजनक घटना कभी घटित ही न होती। इसलिये मुसलमानोंका हित इसीमें है कि वे खुलकर मैदानमें निकल आयें और हिंदुओंके साथ मिलकर गोवधके विरुद्ध माँगका जोरदार समर्थन करें। यदि आज भी वे अपने घरोंमें बेखबर और उदासीन होकर बैठे रहे तो वे निश्चित ही इस प्रकारकी परीशानियोंमें पड़े रहेंगे।

आज आवश्यकता इस बातकी है कि देशमें गोवधके विरोधमें जो आन्दोलन चल रहा है उसके नेताओंसे मुसलमानोंके नेताओंको मिलना चाहिये और उन्हें आश्वासन दिलाना चाहिये कि मुसलमान उनके साथ हैं और इसका असली तौरपर प्रमाण भी उपस्थित करना चाहिये।

मुस्लिम-संस्थाएँ और मुसलमान नेता मेरे उपर्युक्त विचारोंसे बहुत परीशान होंगे, परंतु मेरे सामने और मुसलमानोंके सामने और कोई दूसरा रास्ता भी नहीं है। ('गाण्डीव')

पढ़ो, समझो और करो

(१)

उनका एहसान कैसे भूलें ?

राजस्थान की घटना है,* लगभग तीस वर्ष पहलेकी।
सेठ मातादीनजीकी आर्थिक दशा इधर कुछ वर्षोंसे ठीक नहीं थी। यद्यपि घरका बहुत बड़ा मकान था तथापि व्यापार कुछ भी नहीं रह गया था। पूर्वजोंकी बनायी हुई सम्पत्तिसे ही घरका खर्च चल रहा था।

मातादीनजीकी एक लड़की विवाहयोग्य हो गयी थी, उसीकी चिन्तामें वे दिन-रात घुले जाते थे। न तो कोई आमदनी ही थी और न किसी अन्य प्रकारसे ही रूपयोंका प्रवन्ध हो रहा था। अन्तमें मातादीनजीने अपनी हवेली बेचकर लड़कीके हाथ पीले करनेका निश्चय किया। लोगोंसे बातचीत चली। श्रीरामकिशोरजीने, जो कि उसी शहरके एक बहुत ही धनाढ्य सेठ श्रीजमनादासजीके यहाँ मुनीम थे, हवेलीकी कीमत २५,०००) रुपये लगायी। बातचीत तय हो गयी।

रामकिशोरजीने अपने सेठ जमनादासजीसे हवेलीके विषयमें बताया। सुनकर उदारहृदय सेठजी स्तम्भित रह गये। कम-से-कम डेढ़ लाख रुपयेकी हवेली केवल २५,०००) में विक्रि रही थी। सेठजीने सोचा, अवश्य ही सेठ मातादीनजी किसी परीशानीमें हैं। नहीं तो, इतनी बड़ी हवेली इतनी कम कीमतमें न बेचते। उन्होंने उस समय तो मुनीम रामकिशोरजीसे कुछ न कहा, परंतु दूसरे दिन बुलाकर वे कहने लगे—‘भाई रामकिशोर ! उस हवेलीको लेकर तुम सुखसे नहीं रह सकोगे, बेचनेवालेकी हाथ तुम्हें चैन न लेने देगी। अवश्य ही मातादीनजी किसी बड़ी परीशानीमें हैं, तभी यह हवेली बेच रहे हैं, नहीं तो, डेढ़ लाखकी हवेली केवल २५,०००) में बेचनेके लिये तैयार न होते। तुमने मेरी पिछले बीस वर्षोंसे सेवा की है। उसके परिश्रमिकमें मैं तुम्हें अपनी एक छोटी हवेली देनेकी सोच ही रहा था। तुम जानते ही हो मेरे कोई बाल-बच्चा तो है नहीं। अच्छा हुआ बात सामने आ गयी। कल ही तुम मेरी उस हवेलीकी रजिस्ट्री करवा लो, तुम्हारे पैसे भी बचेंगे तथा मेरी इच्छा भी पूरी होगी।’

उसी दिन श्रीजमनादासजीने मातादीनजीसे मिलकर सब हाल मातूम किया। परिस्थिति जानकर सेठ जमनादास-

* घटना सत्य है। नाम, सत्य और स्थान अवश्य बदल दिये गये हैं।

जीको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने मातादीनजीसे कहा—‘भाई ! तुम्हारे पिताजीके मेरे परिवारपर बहुत एहसान थे। अब तुम हवेली बेचनेकी बात अपने दिमागसे निकाल दो। मैं बच्चीके विवाहके लिये तुम्हें १५,०००) दे रहा हूँ। इनसे आनन्दपूर्वक बेटीका विवाह करो। साथ ही यह रुपये मैं तुम्हें कर्ज नहीं, भेंट दे रहा हूँ। यदि कभी तुम्हारे पास हो जाय तो मुझे वापस कर देना, नहीं तो, कभी यह ख्याल मत करना कि मैंने तुम्हें रुपये दिये थे। मैं यह बात किसीसे नहीं कहूँगा। तुम भी मत कहना।’

मातादीनजी यह सुनते ही गद्गद हो गये। दोनों पड़ोसी प्रेमपूर्वक गले मिले। बेटीका विवाह आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ तथा एक घर उजड़नेसे बच गया। आज भी सेठ मातादीनजीके परिवारके लोग सेठ जमनादासजीके एहसानको भूलें नहीं हैं।

धन्य है सेठ जमनादासजी—जैसे सहृदय पुरुषोंकी उदारताको।

—श्यामसुन्दर अग्रवाल (२५० कॉम, एल्-एल्० बी०)

(२)

कर्जकी अदायगी

आजके समाजमें बेईमानी करके दूसरोंकी सम्पत्तिपर कब्जा करना ही लोगोंका स्वभाव-सा बना जा रहा है। परंतु नीचे लिखे उदाहरणसे समझना चाहिये कि ऋण बिना चुकाये कभी मोक्ष नहीं होता है।

हमारे गाँवसे करीब ही एक नगला है। वहाँसे हर साल बछड़े लेनेके लिये गाँवोंके मनुष्य जाया करते हैं। यह घटना इसी सालकी है। रामदीन और कालीचरनने जाकर वहाँ बछड़े खरीदे। कुछ दूर हटकर जब बछड़ोंको गिना गया तो एक बछड़ा ज्यादा निकल। दोनों वहाँसे बछड़े हाँककर धीरे-धीरे अपने घरकी ओर चल दिये। रास्तेमें उस बछड़ेकी बात हुई। आखिर यह तय हुआ कि अपने-अपने बछड़े लेकर दूर हो जाओ। इस एक बछड़ेको कुछ चारेमें उलझा दो। यह अपने-आप जाकर जिसके बछड़ोंमें मिल जाय, वही उसका मालिक होगा। आखिर वह बछड़ा रामदीनके बछड़ोंमें जाकर मिल गया। शामको ही बछड़ोंको देखने गाँववाले घरपर आये। हरिशंकरने उमी बछड़ेकी बात की। रामदीनने ५००) बताया, लेकिन सौदा ३५०) में तय हो गया और सुबह रुपया देकर बछड़ा ले जानकी बात निश्चित हो गयी।

रातमें जब रामदीन मनेमें सो रहा था, उस समय

क्या देखता है कि बछड़ा सामने खड़ा कह रहा है कि 'ऐ रामदीन ! क्या तुम मुझे भूल गये ? मैं राम हूँ । तुम्हारा कर्जा मेरे ऊपर है । मैं उसे भरने आया हूँ और हरिशंकरपर मेरे भी रुपये हैं इससे मुझे ३५०) में मत बेचो; क्योंकि तुम्हारे १००) रुपये ही हैं । अतएव केवल १००) रुपयेमें ही मुझे बेचना । इससे मैं तुमसे उद्धार हो जाऊँगा और हरिशंकरसे भी मेरा कर्जा चुक जायगा । ऐसा न करोगे तो नुकसान उठाओगे ।'

आँख खुली । सुबह हरिशंकर आ गये । रामदीनने बछड़ा देनेसे इन्कार किया । तब पंचायत जुड़ी और रामदीनने गुस्सेसे कहा कि 'मैं बछड़ा तो दूँगा' पर दूँगा केवल १००) में, लीजिये आर ।' आखिर कुछ आदमियोंने यही ठीक बताकर बछड़ा हरिशंकरको दिलवा दिया ।

बछड़ा हरिशंकरके घर जाकर मर गया । शामको फिर पंचायत जुड़ी । आखिर रामदीनने सपनेवाला पूरा किस्सा सुनाया । बछड़ेकी लाशमें कोई जहरीली चीजका असर नहीं पाया गया तब बेचारे रामदीनको छोड़ा गया ।

पूरा किस्सा सुनकर गाँववाले दंग रह गये; क्योंकि रामूको मरे काफी दिन हो गये थे । मनुष्योंने कहा—'भैया ! बूढ़े कह गये हैं कि बैल बनकर भरोगे' सो यह बात सही ही है ।

यह घटना हमारे यहाँ आज भी चर्चा एवं सोच-विचारका विषय बनी हुई है । —रामदास 'सरोज'

(३)

शाह और बादशाह

पंद्रहवीं शतीमें गुजरातकी भूमिपर मुसलमानोंने अधिकार जमाया । नीचेके गुजरातमें महम्मद गिजनीकी दुहाई चलती । चाँपानेरकी रक्षा करनेमें पाटणके अन्तिम शूरवीर राजा वीरपनाई रावल पराजित हुए, मृत्युको वरण किया और उनके मस्तकको महम्मदने चाँपानेरके चौहटेपर लटकाया । इसके बाद छिन्न-भिन्न गुजरातको महम्मदने फिरसे बसाना आरम्भ किया । चाँपानेरको पुनः बसाया गया, पावागढ़को दुरुस्त करवाया । सुन्दर चाँपानगरी उसका प्रिय स्थान बना ।

एक समय महम्मद चाँपानेरके भव्य चन्दन महलमें ठहरा हुआ था । रोज दरबार लगता । सेठ-साहूकार दरबारमें हाजिरी भरते । उस समय चाँपसी मेहता चाँपा नगरीके नगरसेठ थे । दरबारमें उनकी हाजिरीका हिसाब रक्खा जाता ।

एक दिन चाँपसी मेहता दरबार जा रहे थे । उनके साथ बादशाहका मनभाया उमराव शादुल्लाखाँ था । रास्तेमें सामनेसे आते हुए बंभ वारोट (कवि) मिले । शाह-शादुल्लाकी जोड़ी देखकर वारोटकी कवित्वशक्तिके पाँखें आ गयीं । उन्होंने चाँपसी मेहताकी वंशावलीका वर्णन करते हुए झगड़शाहतकी पीढ़ीका गुणगान किया । बादशाहके द्वारा मान्य अमीर उमराव शादुल्लाखाँकी उपस्थितिमें एक मुफलिष बनियेकी विरुदावली गायी जाय—यह भला शादुल्लाखाँसे कैसे सहा जाता ? उस समय तो शादुल्लाखाँ गम खा गया, पर अवसर मिलते ही वह बादशाहका कान भरनेसे न चूका । उसने बादशाहको समझाया कि बनियेका गुणगान करके वारोटने खुद बादशाहका ही अपमान किया है ।

दूसरे दिन बादशाहने वारोटको दरबारमें बुलाकर कविता सुनानेको कहा । चाँपसी चले गये । उन्होंने आँखके इशारेसे वारोटको समझाना चाहा कि बड़ोंके साथ विवाद करनेमें कोई लाभ नहीं है; परंतु सत्यके अवतार-जैसे बंभ वारोट बादशाहोंके बादशाहकी भी किसी बातसे दबनेवाले नहीं थे । वारोटने झगड़शाहके वंशकी विरुदावलीका बखान करना शुरू किया । सभा वारोटके साहसपर मुग्ध हो गयी । शादुल्लाखाँ बिल्कुल टंडा हो गया । चाँपसीसेठको पसीना आ गया । बादशाह चुप रह गया, परंतु उसने मनमें गाँठ बाँधली ।

इस प्रसंगको कुछ ही दिन बीते थे कि गुजरातपर दुर्मिक्षकी विपत्ति आ पड़ी । अन्न-जलके अभावमें लोग व्याकुल हो गये । बादशाहको बनियोंकी परीक्षा लेनेका अवसर मिला । उसने वारोटको बुलाकर आदेश दिया कि 'तेरै बनियोंको जाकर कह दे कि तेरी गायी हुई विरुदावलीको सत्य प्रमाणित करनेके लिये वे अन्नका सदावत खोल दें और यदि एक भी मनुष्य भूखसे मर गया तो बनिये, जो अपनेको शाह कहते हैं, उनको मुखमें बासका तिनका लेना पड़ेगा और उनकी 'शाह' पदवी छीन ली जायगी । इतना ही नहीं, साथ ही तुझको भी बुरी तरह मार डाला जायगा ।'

सत्यके अवतार-जैसे बंभ वारोटने बादशाहकी चुनौती स्वीकार की । एक महीनेकी सुहलत माँगकर वह सीधा आया चाँपानेरके महाजनोंके पास । महाजनोंके मनमें वारोटके बचन और व्यवहारकी कीमत अङ्कित थी । पाई-पैसेकी संख्या बढ़नेवाले बंभ वारोटने गुजरातको चार महीने खिलने

की जिम्मेवारी अपने ऊपर ली। अब बचे आठ महीने। महाजन पाटन आये। पाटनके महाजनोंने दो महीनेकी व्यवस्था करना स्वीकार किया। इस प्रयत्नमें बीस दिन बीत गये। हाथमें बचे केवल दस दिन, और छः महीनेकी व्यवस्था करनी बाकी रही।

चाँपसी और दूसरे साहूकारोंकी चिन्ताका पार नहीं। पाटनसे महाजन धौलका-धन्धुका जानेके लिये चले। रास्तेमें हडाला ग्राम आया। थके हुए महाजन आराम करनेके लिये वहाँ ठहरे। हडालाके बनियोंने महाजनोंका स्वागत किया और उनमेंसे एकने महाजनोंसे अपने घर जलपान करनेके लिये प्रार्थना की, पर जलपानके लिये तो विचार करनेका भी समय न था। तथापि बनियेकी अत्यन्त विनम्रताके सामने महाजनोंको झुकना पड़ा। महाजनोंने जलपानसे निवृत्त होनेके बाद सारी स्थितिका बनियेको परिचय कराया। चाँपसी मेहताने चिन्ता धीरेसे बनियेके सामने रखकर पूछा—‘खेमा भाई ! इसमें तुम्हारा क्या भरा जाय ?’ खेमा सिर खुजलाने लगा—‘मेरा क्या ? मैं तो गरीब आदमी हूँ, पर लाओ, मेरी शक्तिके अनुसार भर दूँ।’ यों कहकर चिन्ता हाथमें लिया और गया अपने पिताके पास तथा सारी बातें उनसे कह दीं। पिताने कहा—‘बेटा ! लक्ष्मी न तो किसीकी हुई है और न होनेकी है। बड़ा भारी लंकापति भी हाथ घिसता ही चला गया। लक्ष्मी तो आती है और चली जाती है, पर बीता हुआ अवसर फिर हाथ नहीं आता। अतएव बेटा ! तेरे खेमा देदराणीके नामकी शोभा हो—ऐसी रकम भरना। देखना, मनको छोटा करके कहाँ बनियानीका दूध न लजा देना।’

बनिया चिन्ता लेकर महाजनोंके पास आया। महाजनोंने समझा—‘अयोग्यके सामने हाथ पसार दिया गया है।’ बनियेने चाँपसीके हाथमें चिन्ता लौटाते हुए कहा—‘मेहताजी ! जो ठीक समझो सो भर लो।’

चाँपसीने कहा—‘खुलासा कहो।’ खेमाने बड़ी नम्रतासे कहा—‘मेहताजी ! तुम्हारे सामने मैं तो बच्चा ही हूँ, पर तुम्हारा वचन नहीं लौटाऊँगा। अतः तुम्हारी इच्छा हो सो भर लो।’ महाजनोंने सोचा—बनिया टालमटोल कर रहा है, अतः स्पष्ट ही पूछ लेना चाहिये।

‘खेमाभाई ! पिताजीने जो कुछ कहा हो सो चिट्ठेमें

लिख दो न। बस, काम खतम हो गया।’ एक बुद्धिमान बनियेने बातका अन्त लानेके लिये कहा।

‘पिताजीने तो कहा है कि मौका बार-बार नहीं आता है, जो करना हो, वह ठीक-ठीक करना। देखना, कहाँ बनियानीका दूध न लजा जाय।’ महाजनोंको लगा व्यर्थमें समय जा रहा है। बनिया गोल्मटोल बातें करके पटाना चाहता है। अतएव सहज ही अधीर होकर महाजन बोले—‘अभी छः महीनेकी व्यवस्था करनी बाकी है और बचे हैं हाथमें केवल दस दिन। अतएव जल्दीसे कह दो न।’

‘बापजी ! तुम समझदार हो, लिख दो न जँचे सो। पर भीत देखकर भार रखना।’ बड़े लहजेसे खेमाने प्रत्युत्तर दिया। अब तो महाजनका धैर्य समाप्त हो चला। ‘देदराणी ! अब हमें जाने दो, अभी हमें धन्धुकाका लंबा रास्ता तय करना है।’

‘अब धन्धुका कैसा ? मेरे सेठ ! अब तो रातभर यहीं साथ रहो। सवेरे कलेवा करके घर लौट जाना।’ सयानी माँके लड़केको शोभा दे, ऐसे भावसे खेमाने कहा।

‘कलेवा तो करेंगे धन्धुकासे वापस लौटते समय। अब तो जो भरना है सो भर दो। तो हमलोग जायँ।’ चाँपसीने मूल विषयपर आकर कहा।

‘अब यहाँसे आगे जाओगे तो मेरा हडाला गाँव लाज मर जायगा अतएव लिखो.....’ ‘कितना ? तीन.....’

‘हाँ, तीन सौ साठ दिन मेरे।’ खेमाने गिनती करके कह दिया।

‘क्या ? क्या कहा ?’ एक महाजनने आश्चर्यसे कहा—‘खेमा देदराणी ! बनियेके बच्चेको सोच-विचारकर बोलना चाहिये।’ चाँपसीने हाथकी कलम ऊपर रखते हुए ही खेमाको समझाना शुरू किया।

‘मेहताजी ! इसीलिये तो तीन सौ पैंसठके बदले मैंने तीन सौ साठ कहा।’ खेमाने बदलेमें जवाब दिया। महाजन लोग तो इस मैले-कुचैले मोटे सोटे कपड़ेवाले बनियेकी ओर देखते ही रह गये।

तदनन्तर खेमा देदराणीको आगे करके हर्षसे भरे सब लोग चाँपानगर आये और बादशाहसे बोले कि ‘आपका एक वर्ष, तो हमारे सदाव्रतका डेढ़ वर्ष।’ बादशाह आश्चर्यचकित हो गया। खेमासे पूछा—‘देदराणी ! इतना कहाँसे कमा लिया ?’

‘बादशाह ! धंधेकी बरकत हिसाब और धनकी कीमत दान । इस बातको समझे सो बनिया ।’

बादशाहने सुधारकर कहा—“यह समझे वह ‘शाह’ और फिर कहा—“दुनियामें दो शाह हैं—एक बनिया और दूसरा बादशाह ।”

आज दुनियाके तख्तेपरसे बादशाह तो उठ गये, पर शाह-सौदागर आज भी हैं । ‘अखण्ड आनन्द ।’

—सुभद्रा रविवदन मारफतिया

(४)

महामृत्युञ्जय-मन्त्रकी महिमा

यह घटना सन् १९६५ के २२ दिसम्बरकी है ।

मेरे पतिदेव श्री एस० एन० सहाय, (डिप्टी-कलक्टर) प्रोजेक्ट-एक्जीक्यूटिव-अफसर, बसन्तपुर, सारन-जिला (विहार) में पद-स्थापित थे । उनको २२ दिसम्बर-को १० बजे दिनमें Co-ordination Committee की बैठकमें शामिल होनेके लिये छपरा जाना था । बसन्तपुरसे छपराकी दूरी ३२ मील थी और बससे जानेपर ३ घंटेसे कुछ कमका समय लगता था । २१ तारीख की शामको ही मेरे पतिदेवने छपरा जानेका निश्चय किया था, पर कार्यमें अत्यधिक व्यस्त रहनेके कारण उस समय नहीं जा सके । अतः २२ तारीखको खूब सवेरे ही उठे और दैनिक कार्यसे निवृत्त हो, सात बजेकी बस पकड़नेके खयालसे बस-स्टैंडको गये । बस मिल गयी और वे चले गये । उनके जानेके बाद मैं एक स्वेटर बुनने बैठ गयी । अभी उनको गये बड़ी देखकर १० मिनट भी नहीं हुए होंगे कि मुझे बड़ी घबराहट होने लगी । सरकारी कार्योंके निष्पादन हेतु उन्हें बराबर बाहर जाना ही पड़ता है, पर इसके पहले कभी भी मेरा मन नहीं घबराया था । मुझे लगा—कुछ अनहोनी दुर्घटना मेरे पतिदेवकी यात्रामें होनेवाली है । ऐसा प्रतीत हुआ कि बस बड़ी तीव्र गतिसे जा रही है, उसपर किसी तरहका नियन्त्रण नहीं है और मेरे पतिदेवको खतरेकी सम्भावना है । तत्क्षण मुझे भगवान्का स्मरण आया और मैं ‘महामृत्युञ्जय-मन्त्र’का जाप अपने पतिदेवके जीवन-रक्षार्थ करने लगी । कुछ जाप करनेके बाद ‘ॐ जय शिव, ॐ जय शिव’ मन-ही-मन गुन-गुनाने लगी । इस प्रकार १०-१५ मिनट और बीत गये । तबतक एक चपरासी घबराया हुआ आकर मुझसे कहने लगा—‘जिस बससे

साहब जा रहे थे, वह बस तो यहाँसे तीन मील जानेके बाद बिल्कुल उलट गयी, बहुत लोग घायल हुए हैं । पता नहीं, साहबकी हालत कैसी है ।’ (बस-दुर्घटनाके तुरन्त बाद उधरसे एक दूसरी बस आ रही थी, उसीसे यह सूचना लोगोंको मिल गयी थी ।) यह सब सुनते ही मेरा कलेजा धक्के कर गया । मन अत्यधिक घबरा गया । अभी सोच ही रही थी कि क्या करूँ कि देखती हूँ—सैकड़ों लोगोंसे घिरे मेरे पतिदेव काफ़ी धीमी चालमें पैदल ही अपने क्वार्टर-की ओर आ रहे हैं । उन्हें स्वयं चलते देखकर दिलको बड़ी शान्ति मिली । निकट आनेपर देखा उनका पैट बगैरह खून तथा पेट्रोलसे लथपथ था । शंका हुई कहीं दूट-फूट हो गयी है, जिससे इतना खून लगा है । लेकिन कुछ आश्वास होनेपर मेरे पतिदेव कहने लगे कि ‘यहाँसे जानेके कुल दस मिनट बाद ही यह दुर्घटना हो गयी । मैं बिल्कुल आगे ड्राइवरके बगलवाली स्टॉफ-सीटपर बैठा था । मेरे देखते-देखते ही बस-सड़कसे हटकर सड़कके किनारे एक बड़े गड्ढेमें जा गिरी । कुछ समयतक तो कुछ शांत ही नहीं हुआ कि क्या हो गया । पर कुछ होश सँभालकर मैंने ज़ूतेसे सामनेके शीशेको तोड़ा और तब बाहर निकला । उसमें और सारे लोग तो बुरी तरह घायल हुए थे । उनकी हालत अच्छी नहीं थी ।’ मेरे पतिदेवके साथ जा रहे चपरासीका तो सिर और पैर बुरी तरह फट गया था । लेकिन मेरे पतिदेवके शरीरसे एक बूँद भी खून नहीं निकला था । वह कपड़ोंपर लगा खून तो अगल-बगलके घायल व्यक्तियोंका खून था । मेरे पतिदेवको विशेष चोट नहीं लगी थी, केवल दाहिने हाथके अँगूठेमें एक हल्का-सा फ्रैक्चर होकर रह गया था । एक भीषण बस-दुर्घटनामें केवल इतना भर होकर रह जाना साक्षात् भगवत्कृपाका ही सुपरिणाम था ।

मुझे तो यही लगता है कि ईश्वरकी विशेष कृपासे मुझे दैवी प्रेरणा मिली, जिसके परिणाम-स्वरूप मैंने उसी क्षण ‘महामृत्युञ्जय-मन्त्र’ का जाप किया । जीवन-रक्षा करनेवाले महान् प्रभावकारी इसी मन्त्रके जापका ही शुभ परिणाम था कि मेरे पतिदेवकी जान बाल-बाल बच गयी । इस घटनाके बादमे मेरी आस्था इस मन्त्रमें और अधिक दृढ़ हो गयी है । इस मन्त्रकी महिमा असीम है । पूर्ण श्रद्धा और विश्वासके साथ इसमें आस्था रखना, नाना संकटोंमें मुक्त करनेवाला है ।

—श्री आनन्दमयी सहाय

सम्मान्य तथा प्रेमी ग्राहकों और पाठकोंको सूचना और निवेदन

(१) यह 'कल्याण'के ४० वें वर्षका ग्यारहवाँ अङ्क है। एक अङ्क और निकलनेपर यह वर्ष पूरा हो जायगा। ४१ वें वर्षका प्रथम अङ्क 'श्रीरामवचनामृताङ्क' नामक विशेषाङ्क होगा। इसमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके तत्त्व-स्वरूपके साथ ही विविध विषयोंपर उनके द्वारा कथित चुने हुए वचनोंका संग्रह रहेगा। वाल्मीकीय रामायण तो प्रधान है ही, अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, रामचरितमानस, विविध पुराण, नाटक आदि ग्रन्थों तथा विविध भाषाओंके रामचरित-सम्बन्धी ग्रन्थोंसे भी श्रीरामवचनोंका सुन्दर संकलन किया गया है। सुन्दर रंगीन तथा सादे चित्र होंगे। यह अङ्क सभी तरहके पाठकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी होगा।

(२) खर्च उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। इस साल भी बहुत बढ़ा है। गत वर्ष घाटा था ही। लोगोंने सुझाव दिया कि 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य १०) कर दिया जाय। पर इतना बढ़ाना उचित नहीं जँचा, यद्यपि वर्तमान महँगीकी दृष्टिसे दस रुपये अधिक नहीं हैं। अन्तमें केवल एक रुपया बढ़ाकर वार्षिक मूल्य ८.५० (आठ रुपये पचास पैसे) रक्खा गया है, जो वास्तवमें कम ही है। अतः आप वार्षिक मूल्य मनी-आर्डरसे तुरंत भेजकर ग्राहक बन जाइये। मनीआर्डर फार्म इसके साथ भेजा जा रहा है। रुपये भेजते समय मनीआर्डरमें अपना नाम, पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ-साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखना कृपया न भूलें।

(३) ग्राहक-संख्या न लिखनेसे आपका शुभ नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है। इससे विशेषाङ्ककी एक प्रति नये नम्बरोंसे तथा एक प्रति पुराने नम्बरोंसे वी० पी० द्वारा जा सकती है। यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें। सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा पाठिका-ग्राहिका देवियोंसे यह भी निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण'के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें। इससे भगवान्की सेवा होगी।

(४) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर अवश्य सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ 'कल्याण'-कार्यालयको हानि न सहनी पड़े।

(५) किसी कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो केवल 'विशेषाङ्क' और उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका ही मूल्य रु० ८.५० (आठ रुपये पचास पैसे) है।

(६) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनता है और बहुत विलम्बसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य रु० १० (दस रुपये) है।

(७) 'कल्याण'के आजीवन ग्राहक बनानेकी योजना बंद कर दी गयी है, अतएव आजीवन ग्राहकके लिये रुपये कोई महानुभाव न भेजें।

(८) 'श्रीरामवचनामृताङ्क'में लेख बहुत ही कम जायँगे। अतएव बिना माँगे लेख, कविता आदि न भेजें। कृपालु लेखकोंसे इसके लिये क्षमा-प्रार्थना है।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१-नाचत मुदित मोर [कविता] (संकलित—गीतावली)	... १३४१
२-कल्याण ('शिव')	... १३४२
३-श्रद्धाका स्वरूप (ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृत-वचन)	१३४३
४-श्रीकृष्णतत्त्व (पं० श्रीगोपालभट्टजी एम० ए०)	... १३४४
५-धर्मका प्रयोजन [कहानी] (श्री 'चक्र')	१३४७
६-'तुमिछाड़ा आर केह नाहि'क आमार' (श्रीफणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय)	... १३५१
७-शरणागत होकर भगवान्को भजो [कविता]	... १३५३
८-श्रीधाम पुरीके बड़े बाबा (श्रीब्रजगोपाल- दासजी अग्रवाल, एम० ए०)	... १३५४
९-जीवन धन्य हो जाय [कविता]	... १३५७
१०-कामके पत्र	... १३५८
११-वर्तमान स्वराज्यके अनुभव (श्रीकस्तूरमलजी बाँठिया)	... १३६३
१२-बुद्धि नष्ट हो गयी [कविता]	... १३७०
१३-भ्रष्टाचार और नैतिकता (श्रीवैजनाथजी शर्मा, एम० ए०, एम० एड०, सा० रत्न)	... १३७१
१४-प्रियतमके प्रति [कविता] (श्रीशिवशंकरलालजी त्रिवेदी, बी० ए०, एल्० टी०)	... १३७३

कल्याण, सौर पौष २०२३, दिसम्बर १९६६

विषय	पृष्ठ-संख्या
१५-मोह [कहानी] (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)	... १३७४
१६-महात्मा गांधीकी एक अद्भुत विशेषता (श्रीअगरचन्दजी नाहटा)	... १३७८
१७-नाथ देखि पद-क्रमल तुम्हारे (श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')	... १३८०
१८-दक्षिण भारतकी तीर्थ-यात्रा (सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)	... १३८१
१९-रीवाँके गोभक्त नरेश (श्रीमती शकुन्तला अग्रिहोत्री)	... १३८४
२०-श्रीभगवन्नाम-जप	... १३८६
२१-प्रभू—पुनर्जन्मकी एक घटना (श्रीमती उर्मिला वर्मा)	... १३८९
२२-गोमाताकी कृपा (श्रीमदनलालजी बुव)	१३९०
२३-उदात्त सङ्गीत [कविता] (डॉ० श्रीवलदेवप्रसादजी मिश्र)	... १३९१
२४-मैं भगवदिच्छासे ही भोरक्षा-महाभियान- समिति' में सम्मिलित हुआ (हनुमान- प्रसाद पोद्दार)	... १३९२
२५-गोहत्या-निरोध (हनुमानप्रसाद पोद्दार)	... १३९४
२६-पढ़ो, समझो और करो	... १४०१

चित्र-सूची

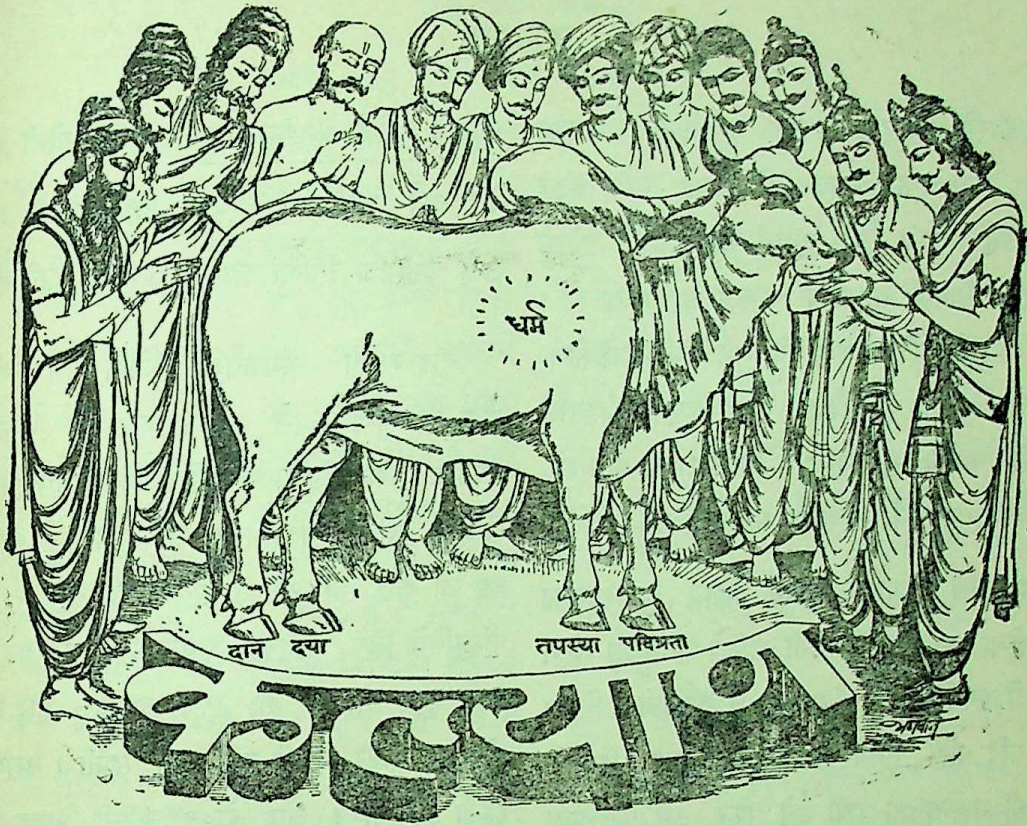
१-मयूरवाहन कार्तिकेय	(रेखान्चित्र)	... मुखपृष्ठ
२-रामदर्शनसे मुदित मोर	(तिरंगा)	... १३४१

वार्षिक	मूल्य	जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत-चित्त-आनन्द भूमा जय जय ॥	साधारण प्रति
भारतमें	रु० ७.५०	जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥	भारतमें ४५ पै०
विदेशमें	रु० १०.००	जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥	विदेशमें ५६ पै०
(१५ शिल्लिङ्ग)			(१० पैस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



लोके यस्य पवित्रतोभयविधा दानं तपस्या दया चत्वारश्चरणाः शुभानुसरणाः कल्याणमातन्वते ।
यः कामाद्यभिवर्षणाद् वृषवपुर्व्वर्षिराजर्षिर्भिर्विदुःशूद्रैरपि वन्द्यते स जयतादृमो जगद्धारणः ॥

वर्ष ४० }

गोरखपुर, सौर पौष २०२३, दिसम्बर १९६६

{ संख्या १२
पूर्ण संख्या ४८१

नाचत मुदित मोर

देखे राम-पथिक नाचत मुदित मोर ।

मानत मनहु सतड़ित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टँकोर ॥
कँपै कलाप वर बरहि फिरावत, गावत कल कोकिल-किसोर ।
जहँ-जहँ प्रभु विचरत, तहँ-तहँ सुख, दंडकवन कौतुक न थोर ॥
सघन छाँह-तम रुचिर रजनि भ्रम, बदन-चंद्र चितवत चकोर ।
तुलसी मुनि खग-मृगनि सराहत, भए हैं सुकृत सब इन्हकी ओर ॥
(गीतावली)

कल्याण

याद रखो—तुम सर्वनियन्ता, सर्वलोकमहेश्वर, सदा सर्वसुहृद् भगवान्‌के मङ्गल विधानको नहीं बदल सकते। यह सम्भव है—तुम्हारी अदूरदर्शिनी दृष्टिसे तुम्हें उस विधानका मङ्गलमय स्वरूप न दीखता हो। तुम्हारा तो इतना ही काम है कि तुम अपने दृष्टिकोण-के अनुसार परिणामपर विचार करते हुए भगवत्कृपासे जब जिस कर्मके सम्पादनकी कर्तव्यताका बोध हो, तब उसके सम्पादनमें यथाशक्ति यथाबुद्धि लग जाओ।

याद रखो—कर्तव्यपालनमें विशुद्ध भगवत्कृपाका आश्रय होना चाहिये और होनी चाहिये राग-द्वेषसे रहित तथा परिणाममें सबका मङ्गल चाहनेवाली निर्मल बुद्धि। यदि कहीं मनमें राग-द्वेष आ गया, किसीके अमङ्गलकी भावना आ गयी तो फिर उस कर्तव्यका सम्पादन यथार्थरूपसे नहीं होगा। राग-द्वेष तथा पर-अहितकी भावना मन-बुद्धिमें आते ही 'विवेक' नष्ट हो जाता है। फिर रागके प्रत्येक प्राणी, पदार्थ, परिस्थितिमें गुण-बुद्धि और द्वेषके प्रत्येक प्राणी, पदार्थ, परिस्थितिमें दोषबुद्धि हो जाती है एवं पर-अमङ्गलकी कामना पुष्ट होकर सत्कर्मका प्रयोग भी असत् उद्देश्यकी सिद्धिमें कराने लगती है। इस प्रकार पुण्य भी पाप बन जाता है। अतएव सावधान रहो।

याद रखो—तुम्हारा काम होना चाहिये केवल भगवत्प्रीतिके लिये—भगवत्पूजा-रूप उचित कर्म करना। न कर्मके पूर्ण होनेमें आसक्ति होनी चाहिये

और न कर्मके अनुकूल फलमें आसक्ति होनी चाहिये। जो कर्म कर्मासक्ति एवं फलासक्तियुक्त होते हैं, उन्हें आसक्ति निश्चितरूपसे दूषित कर देती है।

याद रखो—भगवान्‌की प्रीतिके लिये कर्म करने-वाला ही यथार्थरूपसे कर्तव्यपालन कर सकता है; क्योंकि उसकी बुद्धि राग-द्वेषरहित, निर्मल तथा बहुशाखा-वाली न होकर अव्यभिचारिणी भगवन्निष्ठ होती है। वह जो कुछ भी सोचता-करता है, सब भगवान्‌की परितुष्टिके लिये, उनकी अर्चनाके रूपमें करता है। कर्म पूरा हो, न हो; फल अनुकूल हो, प्रतिकूल हो—इस ओर उसकी दृष्टि नहीं रहती। उसकी दृष्टि रहती है, केवल और केवल अपनी विशुद्ध निष्ठाकी ओर—उसकी बुद्धिमें कहीं भी राग-द्वेष तो नहीं आ गया, कोई सीमित स्वार्थ तो नहीं आ गया, कहीं 'अहं' तथा 'मम' की पूजा तो नहीं होने लगी और कहीं किसी प्रकारसे भी भगवत्पूजाकी विस्मृति तो नहीं हो गयी? इसका वह बड़ी सावधानीसे ध्यान रखता है; क्योंकि यही पतन है।

याद रखो—भगवत्पूजाके लिये भगवत्प्रीत्यर्थ स्वधर्मरूप कर्तव्यपालनमें लगा हुआ पुरुष किसीका कभी अनिष्ट—अहित तो कर ही नहीं सकता, किसीके अहितकी कल्पना भी अपने मनमें कभी नहीं कर सकता। यही विशुद्ध भगवत्सेवारूप कर्मकी कसौटी है।

‘शिव’

श्रद्धाका स्वरूप

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृत-वचन)

ईश्वर, महात्मा और श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्रोंके वचनोंमें जो प्रत्यक्षसे भी बढ़कर विश्वास है, उसका नाम 'परम श्रद्धा' है। जो कुछ हमारी जानकारीमें आता है, उसे तो हम मानते ही हैं; परंतु जो हमारे ज्ञानमें नहीं है, उसके सम्बन्धमें उपर्युक्त प्रकारके वचनोंमें प्रत्यक्षसे भी बढ़कर जो श्रद्धा है, उसको 'परम श्रद्धा' कहते हैं। जैसे भगवान् सर्वसाधारणके देखनेमें नहीं आते, पर शास्त्रोंपर और महात्माओंपर विश्वास करके ऐसा दृढ़रूपसे समझ लेना कि 'निश्चय ही परमात्मा है'—यह परम श्रद्धाका एक स्वरूप है। सत्यवादी महात्मा पुरुष किसी एक साधारण मकानको सोनेका कह दें और श्रद्धालु पुरुषको उसी क्षण वह मकान सोनेका ही दीखने लगे—यह परम श्रद्धा है। श्रद्धाका यह भाव बड़ा अद्भुत है; क्योंकि वह मकान उसकी जानकारी तथा देख-रेखमें चूना, मिट्टी, पत्थर और ईंटोंसे बना हुआ है; पर जब संतके मुखसे निकल गया कि 'यह सोनेका है', तब तत्काल उसे वह सोनेका ही दीखने लग गया। यह सर्वोत्तम श्रद्धा है।

इससे निम्न श्रेणीकी श्रद्धामें मकान तो चूनेका ही दीखता है; किंतु उसके विश्वासमें वह सोनेका हो गया है। वह समझता है कि ऊपरसे वह मकान चूनेका दीखता है; परंतु भीतरसे सोनेका अवश्य हो गया। इस प्रकार चूनेका मकान देखते हुए भी उसे वह सोनेका ही समझता है। इससे और नीचे दर्जेकी श्रद्धामें वह कहता है कि 'यदि महात्मा कह देते कि मकान सोनेका बन जायगा तो वह सोनेका बन चुका होता, किंतु इनके मुखसे जिस समय यह बात निकली, उस समय यह मकान चूनेका ही था। अतः अब भी चूनेका ही है। हाँ! यह विश्वास अवश्य है कि यदि महात्मा

कह दें कि यह सोनेका बन जायगा तो सोनेका बन सकता है।' यह तृतीय श्रेणीकी श्रद्धा है। इससे भी नीची चौथे दर्जेकी श्रद्धा यह है, जिसमें वह समझता है कि जो बात सम्भव है, वह तो महात्माके कहनेसे अवश्य हो सकती है, पर यदि वे असम्भव बात कह दें तो वह नहीं हो सकती; जैसे महात्मा कह दें कि सूर्य ठंडा हो जायगा तो उनके कहनेसे वह ठंडा नहीं हो सकता; किंतु जो बात होनेवाली है, वह हो सकती है। जैसे किसीको लड़का या लड़की होनेवाली है, महात्मा कह दें कि यह होगा—तो वह बात हो सकती है; परंतु वे कह दें कि उसके पत्थर पैदा होगा तो यह असम्भव है। ऐसा नहीं हो सकता।

परंतु श्रद्धालु पुरुषके लिये सब सम्भव है। जैसे यादव बालकोंने साम्बको गर्भवती स्त्री सजाया और उसे मुनियोंके पास उनकी परीक्षाके लिये ले जाकर पूछा कि—'इसके क्या होगा?' मुनियोंने कह दिया कि 'इसके मूसल होगा।' तो वह मूसल ही निकल। मुनियोंने यादव बालकोंका कपट जान लिया। जानकर उन्होंने 'असम्भव' सी बात कह दी, पर वह सत्य हो गयी। साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया कि 'इस मूसलसे तुम्हारे कुलका नाश होगा' तो उससे उनका नाश ही हो गया।

अतएव जो पुरुष वास्तवमें परम श्रद्धालु है और जिसे संत-महात्माकी बातपर अचल विश्वास है, उसका तो यह निश्चय है कि महात्मा यदि असम्भव बात भी कह दें तो वह सम्भव हो सकती है और उनके कहनेसे सम्भव भी असम्भव हो सकती है।

(संकलनकर्ता और प्रेषक—श्रीशालिग्राम)

श्रीकृष्णतत्त्व

(लेखक—पं० श्रीगोपालभट्टजी एम्० ए०)

अपने देह, कुटुम्ब एवं संसारके अन्यान्य व्यवहारों-का निर्वाह करते हुए पाप-पुण्य, यश-अपयश, हानि-लाभ, जीवन-मरण, हर्ष-शोक आदि विविध द्वन्द्वोंके बीच फँसे इस मानव-जीवसे यदि कुछ श्रेय-प्रेयादिका साधन बन जाय और किसी जन्म-जन्मान्तरके पुण्यतन्तुसे कुछ भगवत्तत्त्वका आभास मिल जाय, तब तो समझ लेना चाहिये कि जीवका कल्याण निश्चित ही है। सौभाग्यसे ज्ञाननिर्धूतकल्मष सदगुरुजनोंकी कहीं कृपाविशेष हो जाय और उस जगदीश्वरके पावन चरणोंमें प्रेमभावपूर्णा अनुरागात्मिका भक्ति हो जाय, तब तो मानो जीवका बहुत बड़ा पुरुषार्थ सिद्ध हो गया। कहा ही गया है—‘नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते’ क्षीण-पाप मनुष्योंमें ही श्रीकृष्णके प्रति भक्ति उत्पन्न हो पाती है। पापका लेशमात्र भी रहेगा, तबतक भला जीव कैसे श्रीकृष्णकी भक्तिमें लग सकेगा। यदि कोई ऐसा कृतपुण्य जीव है तो उसकी श्रीकृष्णमें अवश्य ही प्रीति होगी। श्रीकृष्णतत्त्वका ज्ञान बड़ा कठिन एवं दुर्लभ है और यदि उसमें भक्ति हो जाय तब तो सोना और सुगन्ध दोनों ही मिल गये। इस भक्तिके भी श्रवण, कीर्तन आदि नौ प्रकार होते हैं। किसी भी साधनसे उसकी आराधना बन सकती है; परंतु यदि प्रेमरूपा भक्ति कदाचित् बन जाय तब तो कहना ही क्या है। श्रीव्रजराज नन्दबाबा एवं माँ यशोदाके श्रीकृष्णके बाललीलासुखके भाग्योदय एवं उनके प्रति अप्रतिम परमोत्कृष्ट प्रगाढ़ वात्सल्यभावके आख्यानका श्रवण करते ही महाराज परीक्षित भगवान् श्रीशुकदेवजीसे उनके इस दिव्य भाग्योदयका रहस्य पूछने लगे, तब श्रीशुकदेवजीने उन दोनोंके पूर्वजन्मोंकी तपश्चर्या और उसमें माँगे हुए वरदानमें इसी वात्सल्यभावसे परात्परतत्त्व श्रीकृष्णकी आराधनाकी एवं उनके प्रति अलौकिक प्रेमात्मी

कामनाके सौभाग्यका वर्णन श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार किया है—

नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् ।
यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥
पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदाराभकेहितम् ।
गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥
द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ।
करिष्यमाण आदेशान् ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥
जातयोनीं महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ।
भक्तिः स्यात् परमा लोके ययाञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥
ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनादर्दने ।
दम्पत्योर्नितरामासीद् गोपगोपीषु भारत ॥

(१० । ८ । ४६-४९, ५१)

रासलीला-प्रसङ्गमें भी श्रीगोपीजनोंके श्रीकृष्णके प्रति प्रगाढ़ प्रेमभावकी बात कहकर इस तथ्यकी पुष्टि की गयी है कि श्रीकृष्णमें प्रेमानुगा भक्ति कृतपुण्य-पुत्र जीवोंका ही भाग्यफल है।

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं

व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।

आजगुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः

स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥

दुहन्त्योऽभिययुः..... ।

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।

गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥

अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।

कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥

दुःस्सहप्रेष्टविरहतीव्रतापधुताशुभाः ।

ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥

तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः ।

जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीला-

वन्तर्गृहे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ।

वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ

प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥

संख्या १२]

सारे संसारके व्यवहारकार्य श्रीकृष्णके लिये ही हैं, उनकी ही पवित्र सपर्यासे उनके प्रति प्रगाढ़ प्रीति जाग्रत हो जाय, उनका कृपाप्रसाद मिल जाय—बस, यही तो जीवनका परमोत्कृष्ट पुरुषार्थ है। भक्ति-साधनामें श्री-गोपीजनोंकी भक्ति-साधनाको ही प्रमाण मानकर सभी भक्ति-सम्प्रदायाचार्योंने 'प्रमाणं तत्र गोपिकाः' कहा है। भक्ति-समाराधनाकी आचार्या गोपीजन हैं। 'गृहाणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम्' अपने दोनों पुत्रोंकी परम साधारण बालकोंकी तरह बाललीलाको देख-देखकर माँ यशोदा एवं श्रीरोहिणी माँ अपने घरके कार्योत्तकको कर सकने-का अस्सर न पाती थीं। यह उनके मनकी अनस्थित कृष्णामिका अवस्था थी। श्रीकृष्णकी इस बाललीलाका अवलोकन करते हुए गर्गमुनिद्वारा उपदिष्ट भगवत्तत्त्व-प्रबोधसे नन्दबाबा भी अपने भाग्यको अहोभाग्य मानते थे—'नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाश्रितम्।' अतः ज्ञात है कि श्रीकृष्णतत्त्व कितने जन्म-जन्मान्तरोंके पुण्योंका फल है और उस परात्परतत्त्वमें प्रेमानुगा भक्ति तो बहुत ऊँची साधना है। इसे 'तदर्थविनिवर्त्तित-सर्वकामाः' गोपीजनोंकी समाराधन-परम्परासे ही सीखा जा सकता है। 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' में श्रीकृष्ण भी इसी बातका आश्वासन अपने भक्तोंको देते हैं कि जिस भावसे तुम मुझे भजते हो, मैं उसी प्रकारसे तुम्हारा भजन करता हूँ।

सखी हों स्याम रंग रंगी।

देखि बिकाय गई वह मूरति सूरति माँहि पगी ॥

श्रीराधाकृष्णयुगलचरणोपासक श्रीगदाधर भट्टजी दक्षिण देशमें अपने गाँवके निकट एक कुएँपर बैठे इस पदका गान कर रहे थे; रास्तेसे दक्षिण-तीर्थयात्रा करते हुए कुछ वैष्णव व्रजभक्त चले जा रहे थे। उन्होंने यह पद सुना और याद कर लिया। यात्रासँ जोड़कर जब

वैष्णवोंने इस पदका गायन श्रीजीवगोस्वामीके सामने किया, तब प्रेमाश्रुपात करते हुए रोमाञ्चित हो श्रीजीवगोस्वामी उनसे बोले कि यदि ऐसे भक्त कहीं हों तो उन्हें अपने पास लाकर रखो। उनके सत्सङ्गसे तो श्रीकृष्णानुरागकी साधना सरल ही नहीं, प्रत्युत सरस हो सकेगी। उन्होंने उन वैष्णवजनोंको एक श्लोक लिखकर दिया—

अनाराध्य राधापदाम्भोजयुग्म-

मनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्गाम्।

असम्भाष्य तद्भावगम्भीरचित्तान्

कुतः श्यामसिन्धोः रसस्यावगाहः ॥

'जबतक श्रीव्रजेश्वरी राधारानीके चरणकमलोंकी उपासना न की और श्रीयुगलस्वरूप श्रीकृष्ण एवं श्री-राधाके नित्यविहारसे अलङ्कृत श्रीवृन्दावन-रज-रानीकी उपासना न की और उनकी ललित अनुरागमयी लीलाओंके श्रवण-कथनसे रसाप्लावितहृदय व्रजभक्तजनोंके बीच तद्भावगम्भीरचित्त रसिक महानुभावोंकी आराधना-सरणि न देखी और उस प्रकारकी अपनी चर्चा न बनायी, तबतक हम समझते हैं, श्रीकृष्णके श्याम रंगमें रँगना कैसे सम्भव हो सका और उस माधुरी मूर्तिके पुण्य दर्शनकर कैसे आप बिक गये? वह छवि तो क्षणभरको भी योगिजनोंके पूत हृदयमें नहीं छहर पाती। वे भला, कैसे आपके ध्यानमें पग गये? यदि ऐसे रसिक महानुभाव व्रजमण्डलके अतिरिक्त कहीं हों तो उन्हें लिवा लाओ, वे हमें व्रजवासका फल श्रीकृष्णानुराग अवश्य ही कृपा करके देंगे।' भक्तमण्डलीसे प्राप्त श्री-जीवगोस्वामीके इस संदेशको पाकर श्रीकृष्णानुरागके आतुर भक्त श्रीगदाधर भट्टजी तुरंत उनके साथ हो लिये और श्रीवृन्दावनधामकी ओर चल पड़े। श्री- 'नाभाजी' कृत 'भक्तमाल' एवं श्री'प्रियादास'जी कृत उसकी विवृतिके अनुसार उक्त श्री'गदाधर'भट्टजीके आख्यानसे तात्पर्य केवल मात्र इतना ही है कि श्री-

के लिये ब्रजेश्वरी श्रीराधारानीके चरणोंकी उपासना, श्रीवृन्दावनधामका समाश्रयण तथा तद्भावगम्भीरचित्तरसिक महानुभावोंका स्तसङ्ग ही एकमात्र साधन है ।

इस साधनमें जो संसारके सारे व्यवहार-बन्धनको छोड़कर—

सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना

बहव इव विहंगा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥

—युगलस्वरूप श्रीराधाकृष्णके ललितलीलारससिन्धुमें निमग्न उन महानुभावोंद्वारा उनके नित्यविहार, नित्य-लीलादिकी दिव्यभावनायुक्त चर्चाएँ जब सुननेको मिलती हैं, तब श्रीकृष्णतत्त्वका बोध हो पाता है । इससे दिव्यानुरागपथ आलोकित होता है, तभी परम कारुणिक दीनबन्धु ब्रजविहारीका कृपाप्रसाद उस दीन भक्तको मिलता है । भक्तवत्सल श्रीकृष्ण तो अपनी उस दिव्य कृपाका भंडार खोले बैठे हैं; परंतु कोई जीव द्वारपर कृपाका भाजन बने तो सही ।

इस जीवका बड़ा दुर्भाग्य है कि अपने पुरुषार्थपर अर्जित जन्म-जन्मान्तरोंके पुण्य या अपुण्यबलको अपना पुरुषार्थ और अपना भाग्य मानता है । बड़े कठिन परिश्रमसे प्राप्त शुष्कज्ञानको और कर्मको अपनी बड़ी निधि मानता है और इसके बलपर अर्जित भौतिक ऐश्वर्यको अपना सर्वस्व मानकर उसके अनुकूल एवं अननुकूल फलोंसे अपने आपको सुखी और दुःखी होनेकी कल्पना करता है । परंतु सभी भौतिक वस्तुओंके आपातमात्रमधुर, परिणाममें दुःखदस्वरूपको जानता हुआ भी उस भगवत्तत्त्वकी जिज्ञासामें बढ़ना नहीं चाहता, जो 'सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः' है— वस्तुतः उस परमार्थभूत अच्युतस्वरूप श्रीकृष्णके अतिरिक्त वाच्य कोई और भी तत्त्व है, यह समझना नहीं चाहता ।

विनाच्युताद् वस्तुतरां न वाच्यं

स एव सर्वं परमार्थभूतः ।

रे मन परसि हरि के चरन ।

सुभग-सीतल कमल-कोमल त्रिविध ज्वाला हरन ॥

त्रिविधज्वालाहरण, कमल-कोमल और सुभग-शीतल उन श्रीहरिके चरणोंकी उपासना न करता हुआ जीव न जाने किस दावानलकी लपटोंमें ही जलकर अपनी ऐहिक और पारलौकिक समस्त साधनाओंको निष्फल सिद्ध करनेकी ओर दौड़ा चला जा रहा है, कितना बड़ा उसका दुर्भाग्य है !

कलियुगपावनावतार श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके सिद्धान्तोंको संक्षेपमें बतलाते हुए भी इसी बातको कहा गया है—

**आराध्यो भगवान्ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता ।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्राग्रहो नः परः ॥**

‘भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णयुगलस्वरूप ही वास्तवमें आराध्यदेव हैं और उनकी नित्यविहारस्थली ही हमारी उपासनाकी जगह है और उपासनाकी वह शक्ति हमारी प्रमाणभूत आराधना-प्रणाली है, जिस भावसे ब्रजवधूजनोंने युगल-स्वरूप श्रीराधाकृष्णकी उपासना की है । श्रीमद्भागवत हमारी इस उपासनाका सिद्धान्तभूत प्रमाण-ग्रन्थ है और श्रीराधाकृष्णके युगलचरणों एवं उनकी नित्य विहारस्थली श्रीवृन्दावनधामके प्रति अत्यन्त अनुरागमयी भावना (प्रेम) ही हमारा सबसे बड़ा पुरुषार्थ है । संक्षेपमें श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुका यह मत है, जिसपर दृढ़ विश्वासपूर्वक हम अपनी कल्याण-साधनाकी चेष्टा करते हैं । इसीकी ओर हमारा उल्लेख आग्रह है ।’

उपर्युक्त प्रमाणसे भी यह सिद्ध हो जाता है कि आराध्य परमतत्त्व श्रीकृष्ण ही हैं, उन्हींकी अनुरागमयी उपासना जीवके कल्याणका एकमात्र साधन है ।

जानीत परमं तत्त्वं यशोदोत्सङ्गलालितम् ।

धर्मका प्रयोजन

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

‘धर्मस्य ह्यापवर्गस्य नार्थोऽर्थोऽप्यकल्पते ।’

(श्रीमद्भा० १।२।९)

‘भगवन् ! चरणाद्रि-चञ्चरीक यह जन अपने दिगन्तयशोधक परम भट्टारककी ओरसे श्रीचरणोंमें प्रणत है !’ राजकविने साग्रङ्ग प्रणिपात करके घुटनोंके बल बैठकर बद्धाञ्जलि प्रार्थना की । ‘साकार शास्त्राधि-देव द्वितीय द्वैपायन प्रमुपाद अमित पराक्रम चरणाद्रि-नाथके पुनीत संकल्पका सक्रिय अनुमोदन करनेकी अनुकम्पा करें । आपका आशीर्वाद भी पर्याप्त होगा उनके यज्ञकी सम्पूर्णताके लिये; किंतु हमारे महाराज अपने यज्ञीय आचार्यपीठपर इन चरणोंकी अर्चा करनेको अत्यन्त उत्कण्ठित हैं ।’

वाराणसी भगवान् विश्वनाथकी प्रिय पुरी तो है ही, वादेवीके वरदपुत्रोंकी सनातन क्रीडाभूमि भी है और विद्या तो वीतरागकी विभूति है । अब भी देववाणीके इस नगरके विद्वान् विद्याको विक्रयकी कम और वितरणकी वस्तु अधिक मानते हैं । अब भी किसी विद्याभिलाषी विद्यार्थीको निराश करना विद्वान्की गरिमाके विपरीत माना जाता है और यह जबकी बात कही जा रही है, उस समयको व्यतीत हुए तो अनेक शताब्दियाँ हो चुकीं । काशी विद्याका केन्द्र-विद्याकामी पूरे भारतके जनोंका परम तीर्थ और वहाँ भी जो सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग-निष्णात सर्वविद्वद्बृन्दवन्दित आचार्य चन्द्रमौलि—देशके सभी शासक उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर अपनेको कृतार्थ ही मानते हैं ।

चरणाद्रि वाराणसीका पार्श्ववर्ती राज्य है । उसके नरेश प्रायः भगवान् विश्वनाथकी वन्दना करने पधारते हैं । आचार्यके श्रीचरणोंमें प्रणिपात किये बिना अपनी

यात्रा तो कभी उन्होंने पूर्ण मानी नहीं; किंतु यज्ञीय आमन्त्रण देनेके लिये स्वयं आनेका साहस उन्हें नहीं हुआ । वीतराग, तपोधन आचार्यका क्या भरोसा—वे यदि अप्रसन्न हो जायँ, उनके असंतोषका प्रतिकार करनेकी बात तो दूर—उसे सहन कर लेनेकी शक्ति भी कदाचित् ही सुरपतिमें हो ।

राजकवि ब्राह्मण हैं और आचार्यके स्नेह-भाजन हैं । उन्हें सम्मुख पाकर आचार्यका चित्त क्षुब्ध नहीं होगा । प्रार्थनाकी स्वीकृतिकी यदि कहीं किञ्चित् सम्भावना है तो इसी प्रकार है । यह सोचकर ही राजकविको चरणाद्रि-नरेशने भेजा था । राजकविने अपनी प्रार्थना पुनः सुगायी—‘यह अयोग्य ब्रह्मवन्धु श्रीचरणोंके स्नेहसे धृष्ट हो गया है ! इसका यह अनुरोध—सुरोंकी श्रुति-सम्मत सेवाका परम सात्त्विक सम्भार श्रुतिके पारद्वयकी अध्यक्षताकी अपेक्षा करता है !’

‘तुम्हारे यजमानका संकल्प क्या है ? वे यज्ञ करके किस उद्देश्यकी पूर्ति चाहते हैं ?’ आचार्यने सीधे पूछ लिया ।

‘वे महाप्राण किसी लौकिक लोभमें नहीं हैं ।’ राजकविने कहा । ‘वे धर्मकाम हैं । क्रतु सुरेशकी संतुष्टिके संकल्पसे ही होगा और वह पारलौकिक अभ्युदयकी सिद्धि करेगा ।’

‘अपत्न सोमममृताऽभूम’

आचार्यने एक श्रुति बोल दी और कहा—‘यह पुष्पिता वाणी जिसे प्रलुब्ध करती है, उस बालोद्योगमें मेरे-जैसे वृद्धकी अभिरुचि सम्भव नहीं है ।’

‘भगवन् !’ राजकवि केवल सानुरोध सम्बोधन करके मौन रह गये ।

‘धर्म कामपूर्तिका साधन नहीं है ।’ आचार्यने शान्त स्वरमें कहा । ‘इस लोकमें धर्मानुष्ठानका फल-भोग कदर्य पुरुष चाहते हैं और स्वर्गोपलब्धि चाहते हैं किञ्चित् उदारचेता; किंतु दोनों कामपुरुषार्थी हैं—बालक हैं । धर्म स्थूल या सूक्ष्म देहकी तृप्ति-तुष्टिका साधन तो होता है; किंतु यह है उसका दुरुपयोग ही और ऐसे किसी दुरुपयोगमें सहयोगकी सम्भावना तुम मुझसे नहीं कर सकते ।’

‘भगवन् !’ राजकवि कुछ कहते—इसके लिये समय नहीं मिला । सम्पूर्ण शस्त्र, कवच एवं शिरस्त्राण दूर उतारकर कोशलके महासेनाध्यक्ष उसी समय आचार्यके सम्मुख दण्डकी भाँति भूमिपर गिरे—

‘शरणागतोऽस्मि !’

‘वत्स ! इस पुरीमें प्रत्येक जन श्रीविश्वनाथको शरणमें है । दण्डपाणि कालभैरव यहाँ पुरीपाल हैं । तुम माता अन्नपूर्णाके आश्रयमें अभय हो !’ आचार्यने खयं उठकर महासेनाध्यक्षको उठाया ।

‘आप यहाँ और इस प्रकार एकाकी ?’ राजकविने आगत सेनापतिकी ओर देखा ।

‘नहीं वत्स !’ आचार्यने रोक दिया । ‘विश्वनाथके शरणागतके सम्बन्धमें कुछ पूछनेका स्वत्व किसीको नहीं है । उन निखिल ब्रह्माण्डनायकके सम्मुख कभी कोई अपराधी नहीं होता । जगज्जननी अन्नपूर्णा केवल ममतामयी, वात्सल्यमयी हैं ।’

‘प्रभु !’ महासेनाध्यक्षने खयं कुछ कहना चाहा ।

‘नहीं—कोई आवश्यकता नहीं, कुछ कहनेकी ! तुम गङ्गास्नान करो और विश्वनाथ-अन्नपूर्णाके दर्शन कर आओ । तुम्हारी व्यवस्था वे जगन्माता कर देंगी ।’ गुरुदेवका संकेत पाकर एक विद्यार्थी आगन्तुक-के साथ जानेको उठ खड़ा हुआ ।

‘इस सेवाका सौभाग्य.....’ राजकविने प्रार्थना की । यह छिपानेका कोई प्रयास उन्होंने नहीं किया ।

‘अवश्य; किंतु विश्वनाथके आश्रितसे चरणाद्रिका कोई सेवक कुछ नहीं पूछेगा ।’ आचार्यने आदेश किया । ‘तुम उसका आतिथ्य कर सकते हो ।’

x

x

x

‘राजन् ! अब तुम्हारा सेनाध्यक्ष भगवान् गङ्गाधर-की शरणमें है और काशीमें शरण लेने आये कि सुरक्षाका दायित्व कुत्तेपर बैठनेवाले कराल देवतापर है, यह तुम जानते होगे !’ आचार्यने अपने पदोंमें प्रणत कोशल-नरेशसे कहा ।

‘भगवन् ! मर्यादा-पुरुषोत्तमके मङ्गल-पीठका यह क्षुद्र-सेवक इतना अज्ञ नहीं है कि यहाँ कोई धृष्टता करनेका साहस करेगा ।’ नरेशने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया । ‘उसका अपराध क्या है, यह प्रश्न अब यहाँ कहाँ उठता है ? वैसे मैं उसके पीछे ही आया था; किंतु जब पुरीके पार्श्वतक आ गया तो भगवान् विश्वनाथ एवं श्रीचरणोंके दर्शनका लोभ त्याग नहीं सका ।’

‘तुम विवेकवान् हो !’ आचार्य सुप्रसन्न हुए ।

‘एक जिज्ञासा अनेक वर्षोंसे है, किंतु साहस नहीं होता ।’ नरेशने सुअवसर देखकर ही कहा था ।

‘तुम्हें ब्राह्मणसे भी भय लगता है ?’ आचार्यके अधरोंपर स्मित आया ।

‘रघुवंशकी परम्परा ही यह है ।’ नरेशने विनम्र स्वरमें कहा । ‘यम और मृत्युसे भी निर्भय दो-दो हाथ कर लेनेका साहस ही रघुवंशीमें इसलिये है कि वह विप्रवंशसे और अच्युताश्रित जनोंसे भय करता है !’

‘मर्यादापुरुषोत्तमके तुम उचित स्वत्वाधिकारी हो !’ आचार्यने सुप्रसन्न कहा । ‘तुम्हारी जिज्ञासा क्या है ?’

‘परदुःखमञ्जक, महासम्राट् विक्रमका सुयश किस धर्मका सुफल है ?’ नरेशकी स्पर्धा कहाँ है,

‘वत्स ! सुयश धर्मका फल अवश्य है; किंतु धर्मका वही परम प्रयोजन नहीं है ।’ आचार्यका स्वर ऐसा स्नेहस्निग्ध हो गया, जैसे अपने शिशुको वे समझा रहे हों । ‘सुयश शरीरके नामका और नश्वर शरीरका नाम—क्या सचमुच यह तुम्हारा नाम है ? श्रीराघवेन्द्रके वंशधर हो तुम ! नामका सुयश क्या अज्ञान नहीं है ? इसका प्रलोभन तुम त्याग सकते हो !’

‘प्रभु !’ नरेशने सिर झुका लिया । वे गहन चिन्तनमें डूब जाते; किंतु इसका भी समय उन्हें मिलता नहीं था ।

‘भगवन् ! यह बेताल प्रणिपात करता है !’ दूसरे घन-गम्भीर स्वर सुनायी पड़ा । ‘बेताल भट्ट !’ आचार्य उठ खड़े हुए और उन्होंने आगे जाकर बलपूर्वक उज्जयिनीके महामन्त्रीको उठाया—‘नीतिशास्त्रके प्रकाण्ड पण्डितको इस प्रकार प्रणिपात करनेकी आवश्यकता नहीं है ।’

‘यह तो स्वत्व है इस जनका ।’ बेतालने कहा । ‘पुत्रके स्वत्वको पिता भी उससे छीन तो नहीं सकता ।’

‘तुमसे व्यवहारसम्बन्धी विवाद करके भला कोई विजयी हो सकता है ?’ आचार्यने हाथ पकड़कर बेताल भट्टको समीप लाकर एक आसन दिया । ‘शकारि सकुशल हैं ?’

‘श्रीचरणोंके दर्शनकी उत्कण्ठा लिये वे अनुमतिकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।’ इस बातने कोशलनरेशको जितना चौंकाया—आचार्य उतना नहीं चौंके ।

‘शकारिके शीलकी समता नहीं है !’ आचार्यने अपने छात्रोंसे कहा । ‘उन्हें ले आओ ।’

‘भगवान् महाकालका क्षुद्र प्रतिहार विक्रम प्रणिपात कर रहा है !’ सम्राट् भूमिपर गिरे और आचार्य उठाने उन्हें वेगसे आगे बढ़े ।

‘शकारि ! तुम बहुत समयसे आगे !’ लड़कप्राप्त

समाप्त हो जानेपर आचार्यने कहा—‘इस वृद्ध ब्राह्मणको तुमने एक अनपेक्षित उत्तर देनेसे बचा लिया । कोशलनरेश जानना चाहते हैं कि तुम्हारा सुयश किस धर्माचरणका परिणाम है ?’

‘मैं सम्राटका अनुचर हूँ ।’ कोशलका राज्य ही नहीं, राजधानी अयोध्याकी प्रतिष्ठा भी जिनके पुण्य करोंसे हुई उन्होंने शकारिके सम्मुख अपनी स्पर्धा नरेशको अत्यन्त लज्जाजनक लगी ।

‘विक्रम धर्म कहाँ कर पाता है प्रभु ?’ सम्राटने सरल श्रद्धाभरित स्वरमें कहा । ‘इस जनका सुयश भी क्या ? सुयश भगवान् महाकालका और यह सेवक कुछ सेवा कर पाता है—यह आपके आशीर्वादका सुपरिणाम ।’

अपने सम्राटके उत्तरसे बेताल भट्टके नेत्र उत्फुल्ल हो उठे । किंतु आचार्यने कहा—‘शकारि ! तुम सम्राट हो । अपनी प्रजाको धर्मका पथ प्रदर्शित करना भी तुम्हारा कर्तव्य है । तुम धर्मका प्रयोजन क्या मानते हो ?’

‘सेवक तो केवल प्रतिहार है महाकालका ।’ विक्रमका रथ-चक्र गम्भीरस्वरपूर्ण विनम्रतासहित गूँजा—‘धर्मका पथ तो वीतराग ब्राह्मणोंके पुण्य-प्रवचनोंसे प्रशस्त एवं प्रकाशित होता है । वैसे इस जनने धर्मका एक ही प्रयोजन जाना है—अन्तःकरण अर्थ एवं कामके लोभसे कलुषित न हो और श्रीउमा-महेश्वरके चरणोंमें अनुरागके योग्य वह बने ।’

‘धर्मसे जो सुयश मिलता है ?’ कोशल-नरेशने पूछ लिया ।

‘अज्ञान सत्कार्यके परम प्रेरकको न देखकर देहकी प्रशंसा करते हैं और उस प्रशंसापर लुब्ध भी अज्ञ ही होते हैं ।’ सम्राटने नरेशकी ओर सस्नेह देखकर कहा ।

‘भगवन् !’ लगता था कि आज कुछ ऐसा मुहूर्त ही

आ गया था कि किसीकी चर्चा पूर्ण होनेका अवकाश

नहीं मिलता था। यह चर्चा चल ही रही थी कि चरणाद्रिके राजकविने कुछ आतुरतापूर्वक प्रवेश किया। लेकिन वे सम्बोधनके साथ ही ठिठक गये। उन्हें इसकी कोई सम्भावना नहीं थी कि आचार्यके समीप स्वयं सम्राट् विक्रमादित्य उपस्थित होंगे और वह भी अपने मन्त्री बेताल भट्टके साथ। केवल कोशलनरेशके आनेका समाचार उन्हें मार्गमें मिला था।

‘वत्स ! इतनी व्याकुलता किस लिये ?’ आचार्यने पूछा।

‘श्रीचरणोंने हमें एकके आतिथ्यका सौभाग्य दिया था।’ दो क्षणमें राजकवि स्वस्थ हो गये और उपालम्भके स्वरमें बोले। ‘अब उन्होंने हमें इस सौभाग्यसे वञ्चित कर दिया है। वे न तो निवास स्वीकार करनेको प्रस्तुत हैं और न आहार ही। हमारी कोई सेवा लेना उन्होंने स्वीकार नहीं किया। वे तो उपोषित रहना चाहते हैं वाराणसीमें भी अनिश्चित कालतक !’

‘इसका अर्थ है कि वह अब माता अन्नपूर्णाको व्यथित करेगा।’ आचार्यके स्वरमें खेद आया। ‘माता-के अङ्कमें कहीं शिशु उपोषित रहा है ? अन्नपूर्णा काशीमें किसीको क्षुधातुर देख सकती हैं ?’

‘कौन हैं वे महाभाग ?’ शकारिने सहज जिज्ञासा की।

‘कोसलका सेनाध्यक्ष था वह।’ आचार्यने बतलाया। ‘अब तो विश्वनाथका आश्रित है। हम उसे देखेंगे।’

आचार्यके साथ सभी उठ खड़े हुए।

× × ×

‘मैं क्षत्रिय हूँ। दान स्वीकार करना मेरा धर्म नहीं है। तीर्थमें मैं किसीका कोई दान—कोई सेवा ग्रहण करूँ, यह आज्ञा आप मुझे नहीं देंगे।’ सेनाध्यक्षने आचार्यके साथ सम्राट्को, राजकविको, बेताल भट्टको

प्रणाम किया; किंतु कोशलनरेशकी ऐसी उपेक्षा कर दी, जैसे वे वहाँ हों ही नहीं। उसका आग्रह अनुचित भी कौन कहता ? वह कह रहा था—‘मेरे अपराधसे ही मेरा सर्वस्व छीना गया। आज मैं कंगाल हूँ और अब किसीकी सेवा नहीं करना चाहता। जो औदर-दानी है—उसीसे मुझे अर्थ लेना है।’

‘उससे तुम्हें अर्थ लेना है ?’ आचार्यने रोका। ‘इतने अज्ञ हो तुम कि उस मोक्षदातासे मिट्टीके डले लेनेको मचल रहे हो ?’

‘तब ? मेरा यह उपवासरूप धर्म क्या मुझे श्रेष्ठ सम्पत्ति नहीं दे सकता ?’ सेनाध्यक्षने कहा। ‘न दे। उपवास करके प्राणत्याग तो मैं कर ही सकता हूँ।’

‘तुम्हारा कुछ छीना नहीं गया है।’ कोशलनरेशने कहा। ‘तुम्हें अयोध्या रहनेसे भी वञ्चित नहीं किया गया है। केवल तुम्हें राजसेवासे मुक्त किया गया है।’

‘मेरा कुछ छीना नहीं गया ?’ वह चौंका। उसका आवेश शिथिल होने लगा। दुःख—सर्वस्व चले जानेका दुःख गया तो उसके आवेशका वेग भी चला गया।

‘तुम यहाँ यथेच्छ दान-पुण्य कर सकते हो। तुम्हारी सम्पत्ति अब भी तुम्हारी है।’ नरेशने आश्वासन दिया।

‘तब मैं उससे धर्म करूँगा।’ सेनाध्यक्ष शान्त हुआ। उसने आचार्यके चरण पकड़ लिये—‘भगवन् ! आप.....’

‘तुम किसलिये धर्म करोगे ?’ आचार्यने पूछा। ‘तुम देखते ही हो कि धर्मके संकल्पमात्रने तुम्हें तुम्हारी समस्त सम्पत्ति दिला दी है; किंतु दान, व्रत, यज्ञादि समस्त धर्म-कार्य संकल्पपूर्वक ही होते हैं।’

‘अक्षय सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये मैं धर्म करूँगा।’ सेनाध्यक्षका निश्चय दो क्षणमें स्थिर हो गया।

संख्या १२]

‘समस्त पृथ्वीका स्वर्ण और रत्नराशि तुम्हें मिल जाय—कोई उपयोग है उसका तुम्हारे लिये ?’ आचार्यके नेत्र उसके मुखपर स्थिर हो गये ।

‘नहीं है !’ सेनाध्यक्षको निर्णय करनेमें कुछ क्षण लगे । ‘किंतु तब धर्मका प्रयोजन क्या है ?’

‘धर्मका प्रयोजन है मोक्ष ! मोक्ष ही प्राणीका परम पुरुषार्थ है ।’ आचार्यका स्वर निर्णायक एवं स्थिर था ।

‘धर्मसे मोक्ष ?’ बेताल भट्ट चौंके ।

‘धर्मका परम प्रयोजन है अन्तःकरणकी शुद्धि ।’ आचार्यने उनकी ओर देखा । ‘अन्तःकरण शुद्ध होनेपर ही ज्ञान अथवा भगवत्प्रेमका उदय होता है ।’

राजकविने अपने कोमल मधुर स्वरमें श्रीमद्भागवतका एक श्लोक उच्चारित किया—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥
(१।२।८)

“तुमि छाड़ा आर केह नाहि’क आमार”

(लेखक—श्रीफणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय)

प्रस्तुत लेखका शीर्षक एक बँगला सूक्तिका शीर्षक है । इस शीर्षकका हिंदी प्रतिरूप है—‘तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है ।’ यह बँगला सूक्ति परम भागवत हनुमानप्रसादजी पोटारकी अध्यात्म-साधनाप्रसूत वास्तविक अनुभूतिकी बँगला भाषामें अभिव्यक्ति है । लोकसंग्रह ही भागवत पुरुषका स्वभाव होता है । अतएव उन्होंने अपनी अनुभूतिको लोक-संग्रहार्थ भाषामें रूपायितकर बँगला मासिकपत्र ‘उज्जीवन’ के माध्यमसे प्रकाशित करवाया था ।

जीवको उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज तथा जरायुज योनि क्रमशः प्रदान करते हुए विकासोन्मुख मनुष्यमें कौन रूपायित करता है ? केवल मात्र भगवान्की निहंतुकी कृपा ।

कबहुँक करि करुना नर देही ।

देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥

सूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन ।

जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन ॥

सूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।

यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

मानवजीवनसे पूर्वके जीवनतक जीवका विवेक विकसित नहीं होता । इसलिये वह न्याय-अन्याय,

सत्-असत्, मङ्गल-अमङ्गलकी विवेचना करनेमें असमर्थ रहता है । अपनी इस असमर्थताके कारण वह पाप-पुण्यके प्रभावसे भी मुक्त रहता है । पाप-पुण्यके अभावमें कर्म-बन्धनके विधि-विधान उसपर लागू नहीं हो पाते । अपने कर्मानुसार जीव जरायुज-जन्मपर्यन्त अनेक जन्म प्राप्त करता है । परंतु प्राक्-मानवजीवनपर्यन्त जीवोंकी उज्जीवन-विधि इसी प्रकारकी रहती है । मानवेतर अन्य जीवोंके उन-उनकी प्रकृतिके तथा कर्मोंके अनुसार मङ्गल-अमङ्गल तथा पालन-पोषण स्वयं माधव ही करते हैं, किंतु मानव-उज्जीवन-विधिमें अन्तर रहता है । वे माधव स्वयं श्रीकृष्णावतारमें अपने प्रिय सखा एवं भक्त अर्जुनसे कहते हैं—

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

(गीता ३।४)

अर्थात् ‘मानवजीवन कर्मप्रधान है । मनुष्य कर्म-विरत होकर क्षणमात्र भी नहीं रह सकता । अखतन्त्र-की भाँति उसे मायाजात सत्त्व, रजः और तमः—गुणोंके प्रभावसे निरन्तर कर्मरत होकर रहना पड़ता है—परंतु कर्म अच्छा करे या बुरा, वैध करे या निषिद्ध—यह उसके अधिकारमें है—कर्मण्येवाधिकारस्ते (कर्ममें तेरा अधिकार है) । पर ‘मा फलेषु कदाचन’ कर्मके

फलभोगमें कदापि नहीं, फलभोग तो कर्मानुसार भोगना ही पड़ता है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

‘किये हुए शुभ और अशुभ कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है ।’ अपने अनन्य सखा एवं भक्त उद्धवजीसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं—

सत्त्वसङ्गादधीन् देवान् रजसा सुरमानुषान् ।

तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः ॥

(श्रीमद्भा० ११ । २२ । ५१)

‘सत्त्वगुणजात कर्मके प्रभावसे ऋषि एवं देवता, रजोगुणजात कर्मके प्रभावसे मनुष्य तथा असुर, तमोगुणजात कर्मके प्रभावसे जडपदार्थ और तिर्यक् जन्म प्राप्त होता है ।’

इससे स्पष्ट है कि अपने शुभाशुभ कर्म फलप्रसू होकर पाशकी भाँति जीवको संसृति-चक्रके साथ बाँधते हैं । इसीलिये हम आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक जन्म, जरा, रोग, मृत्यु तथा पुनर्जन्मके निदारुण दुःखोंसे छुटकारा पाकर अक्षय आनन्द एवं शाश्वत शान्तिकी प्राप्ति के लिये तदनुकूल पथके अन्वेषणमें दत्तचित्त होकर लग जाते हैं । किंतु चित्त प्रसादानुभवसे निर्लेश, वञ्चित रह जाता है । इसलिये हताश और विफलमनोरथ होकर रह जाना पड़ता है ।

भगवान् तो प्राणोंके प्राण हैं, प्रियोंके प्रिय हैं, आत्माके आत्मा हैं और हैं सकलार्तिविनाशक ।

व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः ।

उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥

धनवान् हो या दरिद्र, ब्राह्मण हो या शूद्र, बल्कि चाण्डाल ही क्यों न हो,—ये विचार उसके लिये निष्प्रयोजन हैं । मनुष्यमात्रकी विपत्तिमें वे भगवान् दुःखित होते हैं । विपत्ति-पीड़ित मनुष्यके दुःखको वे अपने दुःखसे कहीं अधिक देखते हैं और हमारी

सुख-शान्तिसे वे पार्थिव पिताके समान प्रसन्न होते हैं । वे हम सब लोगोंको सुख-सम्पन्न बनानेके लिये सदैव आतुर रहते हैं । जटिल समस्याओंकी उत्पत्ति होनेपर जब उनका तुरंत समाधान करना आवश्यक होता है, तब वे अजन्मा, अविनाशी और समस्त भूत-प्राणियोंके महान् ईश्वर होते हुए ही अपनेको दिव्य मानवतनुमें आविर्भूत—

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।

(गीता ४ । ६)

—‘अपनी शुद्ध सत्त्वात्मिका प्रकृतिको स्वीकार कर स्वेच्छया अपनी योगमायाशक्तिसे दिव्य मानवस्वरूपमें प्रकट हो जाते हैं ।’ हमारे लिये तो कर्तव्यच्युत रहना हानिकारक तथा निन्दास्पद है । किंतु उनके लिये न कुछ भी हानिकारक है और न निन्दास्पद ही; क्योंकि वे सर्वप्रकारेण स्वयं सम्पूर्ण हैं । उन पूर्णतमको किसी प्रकारका न तो कभी कोई अभाव है, न कुछ प्राप्त करनेकी आवश्यकता और न उनका कोई कर्तव्य ही है । श्रुतिने कहा है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

‘ॐ’ वह पूर्ण है, यह पूर्ण है । पूर्णसे पूर्णकी उत्पत्ति होती है तथा पूर्णमेंसे पूर्ण निकाल लेनेपर भी पूर्ण ही शेष बच रहता है ।’

तथापि वे लोकसंग्रहार्थ सत्कर्तव्यपरायण रहते हैं, जिससे विश्वजन उनका मङ्गल अनुकरण करके अपने जीवनका उद्देश्य प्राप्त कर सकें ।

अबतक जितनी जो कुछ बातें कही गयी हैं, उनमें एकके अतिरिक्त जो त्रेता युगकी है, सभी द्वापर-युगीन भगवत्-लीलाकी हैं । अब लेखकी अप्रगति एवं समाप्तिके निमित्त उनके लीलासम्भूत रामावतारकी एक पावन घटनाकी ओर ध्यान आकृष्ट होता है । एक बार अनन्त सद्गुणाकर पुरुषोत्तम श्रीराम श्रोता बनते हैं और सुनिश्चाल ब्रह्मात्मव्य मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी प्रवक्ता ।

संख्या १२]

प्रवचनका आधार है—योगवाशिष्ठ रामायण । श्रोता—
शिष्य राम निश्चल, निर्वाक्, ध्यानमग्न चित्तसे श्रवण
कर रहे हैं और प्रवक्ता गुरु वशिष्ठ प्रवचनमें प्रेमपूर्ण,
मधुर, सुललित छन्दमय स्वर-रत हैं । आ गया प्रसङ्ग
मानव-मनकी चिरन्तन जिज्ञासा और मीमांसाका, गुरुदेवके
दिव्य कण्ठसे अमृतमय मीमांसा-सूक्ति उद्भूत हुई—

कास्ता दृशो यासु न सन्ति दोषाः

कास्ता दिशो यासु न दुःखदाहः ।

कास्ता प्रजा यासु न भङ्गुरत्वं

कास्ता क्रिया यासु न नाम माया ॥

वह कौन-सी दृष्टि है जो निर्दोष है ? वह कौन-सी
दिशा है जो दुःखदाह-रहित है ? कहाँ वह प्रजा रहती
है जो क्षणविनाशी नहीं है ? वह कौन-सी क्रिया है
जो मायालेश-मुक्त है ?

हे जना अपरिज्ञात आत्मा को दुःखसिद्धये ।

परिज्ञातस्त्वनन्ताय सुखायोपशमाय च ॥

हे दुःखपीडित विश्वजन ! आत्मा जबतक अपरिज्ञात
है, तभीतक दुःखका उद्भव होता है । आत्माका
परिज्ञान होते ही अक्षय आनन्द, शाश्वत शान्ति स्वतः
आविर्भूत हो जाती है । इसीसे 'आत्मानं विद्धि' श्रुतिका
सनातन सिद्धान्त है । आत्मज्ञानसे ही समस्त दुःखोंका
उपशम होता है और भगवान् ही आत्मा हैं—
'अहमात्मा' ।

यह भगवत्स्वरूपका ज्ञान श्रीभगवान् एवं
गुरुमहाराजकी कृपासापेक्ष है । अर्जुनने कहा है—

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'

ऐसा श्रद्धासमन्वित वचन गुरुनिष्ठ शिष्यके कण्ठसे
सहजभावेन उद्बोधित होता ही है । भगवद्-गुरुकृपाप्राप्त
श्रद्दालु शिष्यके आभ्यन्तरिक नेत्रोंमें जब सद्गुरुके द्वारा
वह दिव्य ज्ञानाञ्जन लगा दिया जाता है, तब वह
भगवत्स्वरूपके परिज्ञानका सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है ।
'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्' कहकर एकान्त गुरु-
निष्ठ शिष्य नम्रतापूर्वक अपनेको गुरु महाराजके परम
पूज्य पादपद्मोंपर समर्पित कर देता है ।

गुरुपदरज-अञ्जनके माहात्म्यके सम्बन्धमें तो कहना
ही क्या है ? गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें—

जथा सुअंजन अंजि दग साधक सिद्ध सुजान ।

कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान ॥

गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन । नयन अमिअ दग दोष बिभंजन ॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन । बरनउँ रामचरित भवमोचन ॥

उपासना, उपवास, पुरश्चरण आदि अनुष्ठान हैं ।
इनसे ज्ञानार्जन करना अत्यन्त दुर्लभ है । सरस वैधी
भक्तिको प्रीतिसे सानकर रागानुगा भक्तिमें परिणत
करनेसे ही वास्तविक भगवत्स्वरूपके ज्ञानकी उपलब्धि
सुरुभ होती है । गोस्वामी तुलसीदासजी अपना अनुभव
कितने सबल शब्दोंमें कह रहे हैं—

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा । किणुं जोग जप जस्य बिरागा ॥

शरणागत होकर भगवान्को भजो .

कबतक फँसे रहोगे विषयासक्ति-वासनामें, हो दीन ?
कबतक मनमें भरे रखोगे दुर्विचार दुर्भाव मलीन ?
जिन भोगोंके लिये हो रहे तुम लालायित सुखमय जान ।
घोर दुःख ही उपजेगा उनसे, बढ़ जायेगा अज्ञान ॥
छोड़ो सब आशा, ममता, आसक्ति, कामना, मद, अभिमान ।
एकमात्र शरणागत होकर भजो निरन्तर श्रीभगवान् ॥

श्रीधाम पुरीके बड़े बाबा

(लेखक—श्रीब्रजगोपालदासजी अग्रवाल, एम्० ए०)

जिन महापुरुषोंका शुभागमन जीवोद्धार और मानवता-की सेवाके लिये होता है, वे अपने छोटे-से परिवारके अस्तित्वको ही सब कुछ नहीं मान बैठते। उनकी दृष्टिमें सारा संसार एक विस्तृत परिवार ही होता है और वे स्वयंको मानवताका एक क्षुद्र-क्षुद्रतम अंश मानकर अपना सर्वस्व मानवताकी सेवामें लगा देते हैं। यह विश्व अच्छे-बुरेका अपूर्व सम्मिश्रण है और आजकलका मानव स्वभावतः प्रायः बुरेके प्रति सहज ही आकर्षित हो जाता है। ईश्वर-की एक विशेष शक्तिको लेकर आनेवाले महाजन यदि इस धरापर आते न रहें, तो मानवता किधर जाय, इसका कोई अनुमान नहीं लगा सकता। सिद्ध श्रीराधारमणचरण-दास बाबाजी महाशय ऐसे ही महान् पुरुषोंमेंसे एक हुए हैं। यहाँ उन्हींके पावन चरित्रका विगदर्शन करानेकी चेष्टा करता हूँ।

यशोहर जिलेके 'नड़ाइल' परगनामें 'महिषखोला' नामका गाँव है। यहींपर बंगान्द १२६० (सन् १८५३, ५४) की चैत्र शुक्ला त्रयोदशीके दिन श्रीयुक्त मोहनचन्द्र घोषकी द्वितीय पत्नी श्रीमती कनकसुन्दरीके गर्भसे एक पुत्र-रत्न जन्मा। बच्चेका नाम रक्खा गया—राइचरण। राइचरण अपने माता-पिताकी तीसरी संतान थे। आपके तीन भाई और एक बहन थी। पाँच वर्षके हुए, तभी आपके पिताजी स्वर्गवासी हो गये; जब आप नौ वर्षके हुए, तबतक आपके तीनों भाई भी इस दुनियासे विदा ले चुके थे।

'नड़ाइल हाईस्कूल'में राइचरणने शिक्षा प्राप्त की। पंद्रह वर्षके हुए और आपके विवाहकी बातें चलों, तो आपने पहले अपनी बहनका विवाह कराया। सत्रह वर्षकी उम्रमें आपका विवाह हुआ। कुछ दिन बाद आपकी माता भी इस दुनियाको छोड़ गयीं। आपके दो विवाह और हुए। पहली पत्नीसे एक पुत्र भी हुआ, किंतु वह जन्मके कुछ दिन बाद ही प्रभुको प्यारा हो गया। उसके दो वर्ष बाद दूसरी पत्नी भी इस दुनियासे चल बसी। यहाँ एक बात स्पष्ट करनी आवश्यक है। राइचरणके पिताने चार विवाह किये थे और आपने स्वयं तीन विवाह किये। यह बहु-विवाहप्रथा किसी प्रकारके ऐश्वर्य अथवा भोग-

विलासिताकी द्योतक न होकर उन दिनोंकी सामाजिक परिस्थितियोंके कारण थी। उन दिनों बंगालमें लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियाँ कहीं अधिक थीं और समर्थ लोग एकाधिक विवाह कर कन्यावालोंका उपकार करना कर्त्तव्य समझते थे।

राइचरणने सरकारी नौकरी भी की, परंतु जिसका आगमन सर्वशक्तिमान् प्रभुकी चाकरी और मानवताके त्राणके लिये हुआ हो, वह और किसी सरकारकी क्या नौकरी करेगा? आपने नौकरी छोड़ दी और एक दिन रातको माँ कालीका स्वप्नादेश पाकर घर-बार भी छोड़ दिया।

सीधे भवानीपुर पहुँचे और वहाँ सूर्यग्रहणके समय माँ कालीकी मूर्तिके आगे बैठकर मन्त्र-पुरश्चरण किया। आँख बंद किये मन्त्र-जप कर रहे थे कि देवीने प्रकट होकर आपके सिरपर हाथ रखकर कहा—'तुम सरयू-किनारे जाओ, वहाँ तुम्हें गुरु-प्राप्ति होगी और मनोवासना पूरी होगी।' माँने उन गुरुका वेश भी बता दिया ताकि उन्हें पहचाननेमें राइचरणको कोई परीशानी न हो। इधर सरयूपर श्रीशंकरारण्यपुरी महाराज आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे; आपके पहुँचते ही दोनोंने एक-दूसरेको पहचाना और गुरु-शिष्यका सम्बन्ध स्थापित हो गया। राइचरणका गुरु-प्रदत्त नाम हुआ राधारमणचरणदास। गुरु महाराजका उपदेश और आशीर्वाद प्राप्तकर उन्हींके आदेशानुसार आप तीर्थाटनके लिये चल पड़े। काशी, गया, मथुरा, वृन्दावन, नवद्वीप आदि होते हुए अन्तमें आप नीलाचलपुरी पहुँचे। आप दीर्घकाय थे; अनेक लोगोंके बीच खड़े होते, तो भी आपको काफी दूरसे देखा और पहचाना जा सकता था। इसी कारण, नीलाचलपुरी पहुँचनेके बाद आप 'श्रीधाम पुरीके बड़े बाबाजी' नामसे प्रसिद्ध हो गये।

दया, करुणा, त्याग, क्षमा आदि दैवी गुण आपमें कूट-कूटकर भरे थे और बचपनसे ही थे। आपके विद्यार्थी-जीवन तथा गृहस्थ-जीवनकी बहुत-सी ऐसी घटनाएँ हैं, जिनसे आपके चरित्रकी महानता स्पष्ट होती है। एक दिन भीषण गरमीमें एक विद्यार्थीको नंगे सिर घर जाते देखकर आपने अपना लुत्ता उसे दे दिया और स्वयं नंगे सिर घर लौटे। एक बार भारी ठंडके मौसममें एक व्यक्तिको

संख्या १२]

शीतले काँपते देख आपने अपना कीमती शाल उसे दे डाल। आपकी माँको जब यह पता चला, तो वह भी अपने लालकी त्याग-परोपकार-भावनाको देख गद्गद हुए बिना न रह सकीं।

एक अन्य अवसरपर आपने अपनेको यथार्थ ही मानवताका सेवक सिद्ध किया। एक बूढ़ा आदमी बाजारसे खरीदे अपने सामानकी गठरीको लिये सड़कके किनारे बैठा था; उसे ज्वर हो आया था और वह सामानको घरतक ले जानेमें असमर्थ था। आपको जब यह पता चला तो आप उसकी गठरी स्वयं उसके घरतक पहुँचा आनेके लिये तैयार हो गये। वह बुढ़ा बेचारा संकोचवश सिकुड़कर हाथ जोड़कर कहने लगा—‘बाबूजी ! मुझे न छूइये, मैं नीच जाति हूँ। मैं खुद चला जाऊंगा।’ आपने एक न सुनी। मानवता सेवाके क्षेत्रमें जाति-भेद नहीं मानती। आप उसकी गठरी स्वयं उठाकर ले गये और उसको घरतक पहुँचाकर आये।

आपके गाँवमें पानी और शिक्षाकी बहुत बड़ी समस्या थी। आपने दौड़-धूपकर एक पुष्करिणी तैयार करवायी और एक विद्यालय भी खुलवाया। दोनों ही बातोंमें आपने गाँववासियोंकी विशेष सेवा की। परोपकारिता और परदुःख-कातरताके ये बेजोड़ नमूने हैं।

अपने गुरु महाराजसे प्राप्त हुए आदेशोंमें एक विशेष आदेश यह था कि आप जगह-जगह हरिनामका प्रचार करें। हरिनामके प्रति आस्था और श्रद्धा आपमें आरम्भसे ही थी। लगभग पच्चीस वर्षकी उम्रमें, जब आप गृहस्थाश्रममें थे, आपने एक पदकी रचना की थी, जिसे आप प्रायः ही गाते थे। जीवनकी क्षणभङ्गुरताको अपने आगे रख मनको बार-बार हरिनामकी ओर आकर्षित करना उस बँगला पदका उद्देश्य है। मैंने उसका हिंदी अनुवाद पाठकोंके हितार्थ किया है और मैं उसे यहाँ देता हूँ—

और कब बोलेगा हरिनाम ?

यों ही सोच-विचार बीच दिन जायेंगे अविराम ॥

पद्म-पत्रपर पानी जैसे, उसी भाँति तेरा जीवन।

पानी ढलते देर न लगती, त्यों ही क्षणभङ्गुर यह तन ॥

देह-दीपकी बत्ती आँखें, जिनसे करता दिग्दर्शन।

काल-पवन होगा प्रचण्ड जब, कर लेगा तव ज्योति-हरन ॥

तू जो सोचे अन्तकालमें नाम सुनायेंगे निज जन।

तो तेरा भ्रम, सुन न सकेगा, हो जायेंगे बहिर करन ॥

१. हरिनाम

शास्त्र-वाक्य है—

हरेनाम हरेनाम हरेनामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

बड़े बाबाका दृढ़ विश्वास था कि हरिनाम सर्वशक्तिमान् है और विशेषरूपसे कलियुगमें तो भगवान्का नाम एकमात्र सहज साधन है।

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि भव उतरहिं पारा ॥

जिस नामके बलपर भव-सागर पार होते हैं, उस नामकी शक्तिसे हम किस असम्भव कार्यको सम्भव नहीं बना सकते ? बड़े बाबाने हरिनाम-शक्तिसे मृतकोंको जीवित किया, वृक्षोंको नचाया, पत्थरोंको गलाया और जानवरोंको सभ्य मनुष्योंकी तरह पंक्तिबद्ध बिठाकर भोजन कराया। नाम और नामी (हरिनाम और हरि) अभिन्न हैं। जो काम प्रभु कर सकते हैं, उसे उनका नाम भी कर सकता है। हरिनाममें बड़े बाबाका इतना विश्वास था; तभी तो आपने अपना समस्त जीवन उसके प्रचारमें लगाया। आप जहाँ कहीं जाते, अपने परिकरगणके साथ मृदंग-करतालोंके योगसे हरिनाम-कीर्तन करते हुए जाते। भारतमें, विशेषकर बङ्ग-उड़ीसा-अंचलमें हरिनाम-प्रेमकी जो अजस्र सरिता आपने अपने शिष्यादिके साथ प्रवाहित की, उसका वर्णन लेखनी नहीं कर सकती।

बड़े बाबा जानते थे कि इस युगका मानव सहज ही ईश्वर और ईश्वरके नामसे विमुख होता जा रहा है। इसके लिये फिर मानवको भी दोष नहीं दे सकते, कारण—कलियुगका कुछ ऐसा ही प्रभाव देखनेमें आता है। वे जानते थे कि चेतकों और जादू-टोनोंसे मुग्ध होनेवाले दुनियाके लोग हरिनामकी शक्तिमें आसानीसे विश्वास नहीं कर सकते, इसीलिये उन्हें बहुत-से असम्भव कार्य सम्भव कर उस शक्तिका प्रत्यक्ष परिचय देना पड़ा। यहाँ केवल दो घटनाएँ पाठकोंके आगे रखता हूँ—

एक बार बड़े बाबा दिग्नगर गये। वहाँ एक बहुत ही विशालकाय वट-वृक्ष था, जिसे हिंदू लोग देवताकी तरह बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे पूजते थे। वहाँके कुछ दुष्ट मुसलमान उसके डाल-पात काट देते थे। इससे धर्मप्राण व्यक्ति दुखी होते। मुसलमानोंसे जब कुछ कहा-सुना जाता, तो वे चिढ़कर यही उत्तर देते—‘क्या सभी जगह हिंदुओंके देवता रहते हैं, कभी कोई देवता दिखा भी

सकते हो ? जब यह दुःख-गाथा बड़े बाबाको सुनायी गयी, तो आपने स्वयं उस वृक्षका निरीक्षण किया। वृक्षकी कटी-फटी अवस्था देखकर आप भी बड़े दुखी हुए। आप अपने साथियों और स्थानीय व्यक्तियोंके साथ हरिनाम करते हुए स्थानीय मुसलमानोंके नेता हाराधनके घरके पास जा पहुँचे। कुछ समय उसके घरके चारों ओर कीर्तन कर उसे साथमें लेकर फिर सभी उस वृक्षके पास आये। वृक्षके चारों ओर कीर्तन होने लगा। थोड़ी देरमें सभीने देखा कि वृक्षकी शाखाएँ हिल रही हैं और पानीकी बूँदें भी वृक्षमेंसे गिर रही हैं। इतना ही नहीं, अब तो वह पूरा विशालकाय वृक्ष जड़समेत उठने-गिरने लगा। हरिनामकी इस अद्भुत शक्तिको देखकर हाराधन और स्थिर न रह सका। वह बड़े बाबाके पैर पकड़कर रोने लगा और अपने अपराधोंकी क्षमा-याचना करने लगा। बड़े बाबाने उसे गलेसे लगाकर कहा—‘यह सामान्य वृक्ष नहीं, पूर्वजन्मके कोई महापुरुष है, जो आज हरिनाम श्रवण कर आत्मविभोर होकर नाच उठे हैं। ये कल्पतरु हैं, इनपर दूध-जल चढ़ानेसे और दीपक जलानेसे मनोकामनाएँ पूरी होंगी।’ कुछ लोगोंको यह संदेह हुआ कि पेड़के ऊपर कोई आदमी है, जो उसके डाल-पातोंको हिला रहा है। मगर निरीक्षण करनेपर पता चला कि उनका यह भ्रम निराधार है। तबसे वहाँके हिंदू-मुसलमान सभी लोग उस वृक्षको कल्पतरु मानकर उसकी पूजा करते और उनकी मनोकामनाएँ भी पूरी होतों।

दूसरी घटना इस प्रकार है। बड़े बाबा उन दिनों पुरी-स्थित अपने शौजपीठा मठमें थे। एक दिन संध्या-समय जब आप मठके अधिकांश शिष्योंके साथ किसी गृहस्थके घर भोजनके लिये जानेको थे, आपके एक वृद्ध शिष्य गदाधरदासकी चीख सुनायी दी—‘बाबा, साँपने काट खाया, मैं मरा।’ उनका सारा शरीर नीला पड़ गया, जीभ पाँच-छः अंगुल बाहर निकल आयी। बड़े बाबाने उन्हें जमीनपर लिटा दिया और साथियोंसे कीर्तन शुरू करनेके लिये कहा। सभीने उन्हें घेरकर घमासान कीर्तन किया। थोड़ी ही देरमें बड़े बाबाने उनके सिरपर दो लातें मारीं। दूसरी लातके लगते ही गदाधर हड़बड़ाकर उठ बैठे और बड़े बाबाके पैर पकड़कर कहने लगे—‘बाबा ! आज मेरा मृत्यु-दिन था। मेरी जन्मपत्रीकी हर बात सही निकली। जन्मपत्रीके अनुसार आज ही संध्या-समय

पैरके इसी भागमें सर्पाघातके कारण मेरा मृत्यु-योग था। मैंने कितने ही पण्डितोंसे इसके प्रतीकारके लिये कहा-सुना, पर सभीने एक बात कही कि ‘मेरा और जीवन नहीं।’ अभी इस कूँके पास गया था कि न जाने कहाँसे साँपने आकर काट लिया। मैं तो समझ गया कि मृत्यु निश्चित है, पर कैसा आश्चर्य ! आपने मुझे बचा लिया।’

बड़े बाबा स्वयं सब कुछ करनेमें समर्थ थे, पर आपके चरित्रकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि आप सम्मानसे बहुत डरते थे। कितने ही असम्भव कार्य आपने अपने हाथोंसे किये, परंतु कर्त्तापनकी भावना आपमें कभी नहीं आयी। यही कारण था कि जब गदाधरदासने यह कहा कि आपने बचा लिया, तो बड़े बाबाने झूटते ही कहा—‘इसमें मेरा कोई हाथ नहीं; हरिनामकी शक्तिसे तुम्हारी जीवन-रक्षा हुई है।’ बादमें उनकी जन्मकुण्डली और अच्छे-अच्छे पण्डितोंको दिखायी गयी, तो पता चला कि उस दिनके बाद तो उनके जीवनका कोई योग ही नहीं। परंतु गदाधरदास उसके बाद भी चार-साढ़े-चार साल इस दुनियामें रहे।

‘जीवे दया, नामे रुचि, वैष्णव-सेवन’ (जीवोंपर दया, हरिनाममें रुचि, वैष्णव-सत्संग) बड़े बाबाके जीवनके मूलभूत सिद्धान्त रहे, जिनका आपने सम्यक् रूपसे दृढ़ताके साथ पालन किया। हरिनामके विषयमें प्रकाश डाल चुका हूँ। वैष्णव-सेवन भी बड़े बाबाने खूब किया। आप स्वयं एक उच्चकोटिके महात्मा थे, सर्वशक्तिमान् वैष्णव थे, परंतु अन्य वैष्णवोंके प्रति किसी प्रकारकी हीन-भावना आपने कभी न रखी। अन्य वैष्णवोंको हीन भला समझते भी कैसे ! बड़े बाबा तो जगत्को ‘गुरुमय’ मानते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी तो कहते थे—

सीय राम मय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

गोस्वामीजीके लिये विश्व था ‘सीय-राममय’ तो बड़े बाबाके लिये ‘गुरुमय’। प्रश्न उठ सकता है, क्या चोर-डाकू, कामी-लंपट आदि भी गुरु हैं ! भला ऐसे लोग दूसरोंको क्या तो शिक्षा देंगे और क्या सुमार्गपर लायेंगे ! उत्तरमें बड़े बाबाका कहना था। ‘भाई, गुरु दो तरहके होते हैं, अनुकूल और प्रतिकूल। जो लोग स्वयं सुमार्गी-सदाचारी हैं, उनसे तो हम सीख ही सकते हैं, इसमें

तो कोई संदेह ही नहीं। ऐसे लोग अनुकूल गुरु हैं। जो लोग अधर्मी, पाखंडी और दुराचारी हैं, वे भी हमें शिक्षा देते हैं। उनका आचरण परोक्षरूपसे हमें सुमार्गकी ओर प्रेरित करता है। कैसे? मान लीजिये, दो सिपाही किसी चोरको हथकड़ी डाले लिये जाते हैं। दर्शक उसे घृणा-उपेक्षाकी दृष्टिसे देखकर हँसते हुए चले जाते हैं। परंतु नहीं, घृणा-उपेक्षाका पात्र वह भी नहीं। क्या वह स्वयं प्रतिकूल आचरण कर आपको सुमार्गपर रहनेकी प्रेरणा नहीं दे रहा है? 'सावधान! चोरी मत करना; चोरी करोगे तो मेरी तरह जेल जाओगे।' इस प्रकार हर कुमार्गी हमारा प्रतिकूल गुरु है। बड़े बाबाका यह दृष्टिकोण उनकी महान् उदारता और विशाल हृदयताका द्योतक है। आपने सभी धर्म-वर्गोंके संत-महात्माओंका समादर किया; यह दूसरी बात है कि कोई बड़े बाबाको कुल सिखाने आया हो और उल्टा उनसे ही सीखकर गया हो। जब वैष्णवजनोंका सङ्ग प्राप्त न हो सके, तो धर्मग्रन्थोंका सङ्ग किया जाय।

जीवोंपर दया करना तो बड़े बाबाका स्वभाव ही था। जीवमात्रको बड़े बाबाने प्रभुके अंश, प्रभुके स्वरूपकी दृष्टिसे देखा। दीन-दुखीको देखते ही आप अस्थिर हो जाते।

ऐसे अनेक अवसर आये, जब आपने दुखियोंका दुःख, उनका रोग-शोक स्वयं ले लिया और उन्हें सदा-सदाके लिये पाप-ताप, दुःख-शोकसे मुक्त कर दिया।

हरिनामका प्रचार और पापी-तापी, अधर्मी-विधर्मी, पाखंडी लोगोंका उद्धार करनेके साथ-साथ बड़े बाबाने एक और महान् कार्य किया। प्रेमपुरुषोत्तम श्रीचैतन्य-देवकी लीलाएँ काल-प्रभावसे लुप्तप्राय हो चली थीं। आपने उन्हें फिरसे जाग्रत् किया। श्रीजगन्नाथदेवकी रथयात्रा, चंदनयात्रा, गुंडीचा मंदिर-मार्जन आदि सभी लीलाएँ एक नूतन उत्साह और श्रद्धाके साथ मनायी जाने लगीं। संकीर्तन और प्रेम-भक्तिकी मानो बाढ़ आ गयी। मैं उस महान् शक्तिसे कृपा-कटाक्षकी भीख माँगता हुआ इस पावन चरित्रको यहीं छोड़ता हूँ। जो लोग बड़े बाबाका चरित्र विस्तृत रूपमें पढ़ना चाहें, वे 'चरित-सुधा' (छः भागोंमें सम्पूर्ण) नामक बंगला पुस्तक और 'द लाइफ ऑफ लव' शीर्षक अंग्रेजी पुस्तक पढ़ें। प्राति-स्थान—व्यवस्थापक, श्रीराधारमण बाग, पो० नवद्वीप (नदिया)। 'चरित-सुधा' का हिंदी-अनुवाद डा० अवधविहारीलाल कपूर, प्रिन्सिपल, गवर्नमेण्ट कालेज, रामपुरकी देख-रेखमें प्रकाशित हो रहा है।

जीवन धन्य हो जाय

चित्त करे प्रभुका चिन्तन नित, करे सदा मन प्रभु-संकल्प ।
बुद्धि विचार करे नित प्रभुका, करे न किञ्चित् अन्य विकल्प ॥
रहे सदा जीवन प्रभुका ही, प्रभुकी सेवामें नित लीन ।
प्रभुकी शुद्ध प्रपत्ति रहे नित, भय-चिन्ता—ममत्व-मद-हीन ॥
प्रति प्राणी—प्रत्येक स्थलमें प्रतिपल दीखें श्रीभगवान् ।
रहे सभीके हित-सुखका ही सहज सदा ही अनुसंधान ॥
जगके प्रति परिवर्तनमें हो प्रभुकी लीलाका शुभ भान ।
सभी भले बुरे शब्दोंमें सदा सुन पड़े प्रभु-गुण-गान ॥
सुख-दुःखादि द्वन्द्व सब सुखकर हों उनमें पा प्रभु-संस्पर्श ।
भोगज हर्षोद्वेग मिटें सब, नित प्रभु-सन्निधिका हो हर्ष ॥
यन्त्री प्रभुके करकमलोंका बना रहूँ मैं यन्त्र अनन्य ।
प्रभु-लीलाका सहज क्षेत्र बन हो जाये यह जीवन धन्य ॥

कामके पत्र

जातिमें जन्मकी प्रधानता है

सम्मान्य महोदय ! सादर हरिस्मरण, आपका कृपापत्र मिला। जहाँतक हमलोगोंकी समझ है—जातिमें जन्मकी ही प्रधानता है, कर्मकी नहीं। गीताके 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः' श्लोकके सम्बन्धमें लिखा सो मेरी धारणामें आपने ठीक-ठीक उसका शब्दार्थ नहीं समझा है और अपनी मान्यताके अनुसार उसका अर्थ कर लिया है। आपने 'गीता-तत्त्वविवेचनी टीका'का उल्लेख किया सो ठीक है। 'गीता-तत्त्वविवेचनी'में उपर्युक्त श्लोकका अर्थ इस प्रकार किया गया है—

‘ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंका समूह गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक मेरेद्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि-रचनादि कर्मका कर्ता होनेपर भी मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू वास्तवमें अकर्ता ही जान।’

इस श्लोकके स्पष्टीकरणमें लिखा गया है। ‘अनादिकाल-से जीवोंके जो जन्म-जन्मान्तरोंमें किये हुए कर्म हैं, जिनका फलभोग नहीं हो गया है, उन्हींके अनुसार उनमें यथायोग्य सत्त्व, रज और तमोगुणकी न्यूनाधिकता होती है। भगवान् जब सृष्टि-रचनाके समय मनुष्योंका निर्माण करते हैं, तब उन-उन गुण और कर्मोंके अनुसार उन्हें ब्राह्मण आदि वर्णोंमें उत्पन्न करते हैं। अर्थात् जिनमें सत्त्वगुण अधिक होता है, उन्हें ब्राह्मण बनाते हैं, जिनमें सत्त्वमिश्रित रजोगुणकी अधिकता होती है, उन्हें क्षत्रिय, जिनमें तमोमिश्रित रजोगुण अधिक होता है, उन्हें वैश्य और जो रजोमिश्रित तमः-प्रधान होते हैं, उन्हें शूद्र बनाते हैं। इस प्रकार रचे हुए वर्णोंके लिये उनके स्वभावके अनुसार पृथक्-पृथक् कर्मोंका विधान भी भगवान् स्वयं ही कर देते हैं। अर्थात् ब्राह्मण शम, दम आदि कर्मोंमें रत रहें, क्षत्रियमें शौर्य-तेज आदि हों, वैश्य कृषि-गोरक्षामें लगे और शूद्र सेवा-परायण हों—ऐसा कहा गया है (१८।४१—४४)। इस प्रकार गुणकर्म-विभागपूर्वक भगवान्के द्वारा चातुर्वर्ण्यकी रचना होती है। यही व्यवस्था जगत्में बराबर चलती है।’

कर्मसे जाति माननेवालोंको इन पंक्तियोंपर विचार करना चाहिये। हम भी कर्मसे जाति मानते हैं, परंतु किस प्रकार ? इस जन्ममें जो कुछ कर्म होता है, उसीके अनुसार अगले

जन्ममें जाति प्राप्त होगी। इस प्रकार जातिमें जन्मकी ही प्रधानता सिद्ध होती है। कर्म तो भावी जन्ममें कारण मात्र है। यही बात उपनिषदोंमें भी कही गयी है। छान्दोग्योपनिषद्में जीवोंकी कर्मानुरूप गतिका वर्णन करते हुए यह स्पष्ट लिखा गया है कि—

‘तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीया योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ।’

(छान्दोग्य० ५।१०।७)

‘उन जीवोंमेंसे जो इस लोकमें रमणीय आचरणवाले (पुण्यात्मा) होते हैं, वे निश्चय ही उत्तम योनि—ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि अथवा वैश्ययोनि को प्राप्त करते हैं और जो इस संसारमें कपूय (अधम) आचरणवाले (पापात्मा) होते हैं वे अधमयोनि कुत्ते, सूकर अथवा चाण्डालकी योनि को प्राप्त होते हैं।’

स्मरण रहे, यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय और चाण्डाल आदि सबको ‘योनि’ कहा है। कर्मके अनुसार जाति माननेपर ब्राह्मण आदिकी कोई नियत योनि नहीं रह सकती। प्रत्येक मनुष्य भिन्न-भिन्न कर्मोंको अपनाकर प्रतिदिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बनता रहेगा।

इसिलिये ‘ब्राह्मणादि वर्णोंका विभाग जन्मसे मानना चाहिये या कर्मसे ?’ यह प्रश्न करनेपर गीतातत्त्वविवेचनीमें कहा गया है—

यद्यपि जन्म और कर्म—दोनों ही वर्णके अङ्ग होनेके कारण वर्णकी पूर्णता तो दोनोंसे ही होती है परंतु प्रधानता जन्मकी ही है। इसलिये जन्मसे ही ब्राह्मणादि वर्णोंका विभाग मानना चाहिये; क्योंकि इन दोनोंमें प्रधानता जन्मकी ही है। यदि माता-पिता एक वर्णके हों; और किसी प्रकारसे भी जन्ममें संकरता न आवे तो सहज ही कर्ममें भी प्रायः संकरता नहीं आती। परंतु सङ्ग-दोष, आहार-दोष और दूषित शिक्षा-दीक्षादि कारणोंसे कर्ममें कुछ व्यतिक्रम भी हो जाय तो जन्मसे वर्ण माननेपर वर्ण-रक्षा हो सकती है। तथापि कर्मशुद्धिकी कम आवश्यकता नहीं है। कर्मके सर्वथा नष्ट हो जानेपर वर्णकी रक्षा बहुत ही

संख्या १२]

कठिन हो जाती है। अतः जीविका और विवाहादि व्यवहार-के लिये जन्मकी प्रधानता तथा कल्याणकी प्राप्तिमें कर्मकी प्रधानता माननी चाहिये; क्योंकि जातिसे ब्राह्मण होनेपर भी यदि उसके कर्म ब्राह्मणोचित नहीं हैं तो उसका कल्याण नहीं हो सकता; तथा सामान्य धर्मके अनुसार शम-दमादिका साधन करनेवाला और अच्छे आचरणवाला शूद्र भी यदि ब्राह्मणोचित यज्ञादि कर्म करता है और उससे अपनी जीविका चलाता है तो पापका भागी होता है।

यदि मनुष्यके आचरण और कर्म देखकर उसके अनुसार उसकी जाति मान ली जाय तो क्या हानि है? इस प्रश्नके उत्तरमें कहा गया है।

‘जीविका कर्मफल भुगतानेके लिये ईश्वर ही उनके पूर्वकर्मानुसार उन्हें विभिन्न वर्णोंमें उत्पन्न करते हैं। ईश्वरके विधानको बदलनेमें मनुष्यका अधिकार नहीं है। आचरण देखकर वर्णकी कल्पना करना भी असम्भव ही है। एक ही माता-पितासे उत्पन्न बालकोंके आचरणोंमें बड़ी विभिन्नता देखी जाती है। एक ही मनुष्य दिनभरमें कभी ब्राह्मणका-सा तो कभी शूद्रका-सा कर्म करता है, ऐसी अवस्थामें वर्णका निश्चय कैसे होगा? फिर ऐसा होनेपर नीचा कौन बनना चाहेगा? खान-पान और विवाहादिमें अड़चने पैदा होंगी। फलतः वर्ण-विप्लव हो जायगा और वर्ण-व्यवस्थाकी स्थितिमें बड़ी भारी बाधा उपस्थित हो जायगी। अतएव केवल कर्मसे वर्ण नहीं मानना चाहिये।’

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि वर्णका मूल है जन्म, और कर्म उसके स्वरूपकी रक्षामें प्रधान कारण है। वर्तमान वर्णकी प्राप्तिमें पूर्वजन्मका कर्म कारण बनता है, इस प्रकार वर्ण या जातिमें जन्म और कर्म दोनों आवश्यक हैं। परंतु प्रधानता जन्मकी है। केवल कर्मसे वर्ण या जाति माननेवाले वास्तवमें जाति या वर्णको मानते ही नहीं।

अब मैं आपके पत्रपर विचार करता हूँ। आपने भविष्य-पुराण ब्राह्म-पर्वके दो श्लोकोंको अशुद्ध रूपमें उद्धृत करके जातिभेदका खण्डन किया है। आपके विचारसे मानव मात्रकी एक ही जाति है—मनुष्यजाति। इसके सिवा, जो जाति-कल्पना है, वह व्यर्थ है। जाति-पाँतका विरोध करनेवाले लोग प्रायः पुराणोंको मानते ही नहीं; परंतु आपने अपने मतकी सिद्धिके लिये पुराणोंका अपमान किया

है, यह प्रसन्नताकी बात है। आप अच्छी तरह जानते हैं कि पौराणिक मत जन्मसे जाति माननेके पक्षमें है। भविष्य-पुराणको ही आपने रक्षा-कवचकी भाँति अपना सहायक बनाया है; अतः उसीके प्रमाणसे आपके मतका खण्डन हो जाय तो आपको अधिक संतोष हो सकता है।

भविष्यपुराणमें कार्तिकेय पट्टीव्रतके माहात्म्यका प्रसंग लेकर कार्तिकेयजीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त आया है। वे छः माताओंके पुत्र हैं, इस बातपर आश्चर्य करते हुए प्रश्न उठाया गया है कि—

जातिः श्रेष्ठा भवेद् वीर उत कर्म भवेद् वरम् ?

अर्थात् जाति श्रेष्ठ है या कर्म ?

इस प्रश्नपर विचार करते हुए पहले उन लोगोंकी भर्त्सना की गयी है, जो जातिके अभिमानमें आकर कर्मकी अवहेलना करते हैं। वहाँ कहा गया है कि ‘कर्मसे ही मनुष्यमें उत्कर्ष आता है; केवल जातिका अभिमान व्यर्थ है। सब एक ही पिता—परमात्माके पुत्र हैं; अतः कोई ऊँचा, कोई नीचा नहीं। सबकी एक जाति है।’

इस विषयपर बड़े विस्तारके साथ विवेचन हुआ है। ये सारी बातें केवल इस उद्देश्यसे कही गयी हैं कि लोग कर्मका महत्त्व समझें। कर्म करें। कर्मकी ओरसे उदासीन होकर केवल जातिके अभिमानमें एँटे न रहें। जहाँ सबकी एक जाति बतायी गयी है, वहाँ आकृतिरूप जाति है। अर्थात् आकार तो चारों वर्णोंका एक-सा है; आकृतिरूपा जाति उनकी एक है। सनातनधर्मका यही सिद्धान्त है कि जन्मसे तो सभी एक आकार-प्रकारसे होते हैं; फिर वर्णके अनुसार जब बालकका संस्कार कर दिया जाता है और वह स्वधर्म-पालनमें लग जाता है तो उसमें वर्णगत उत्कर्ष जाग उठता है।

इसका तात्पर्य यही है। तीनों वर्णोंको अपने संस्कार कभी नहीं छोड़ने चाहिये—‘संस्काराद् द्विज उच्यते।’ संस्कारसे ही उनमें द्विजत्व जाग्रत् होता है। अतः प्रत्येक मनुष्यको अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार विहित कर्मका पालन करना चाहिये। यही गीताका स्वधर्म है।

भविष्यपुराणमें भी गीताकी ही भाँति प्रत्येक वर्णके स्वाभाविक कर्म बताये गये हैं। वहाँ गीता अठारहवें अध्याय-के अंतर्गत कर्मोंके लिये उपलब्ध होते हैं। स्वभाव प्रकृति-

को कहते हैं। प्रकृति जन्मसे ही होती है। जन्मसिद्ध कर्म ही वहाँ स्वाभाविक कर्म हैं।

इतना ही नहीं; आगे चलकर प्रकरणका उपसंहार करते हुए भविष्यपुराणमें जन्म और कर्मके समुच्चयको आदर दिया गया है; अर्थात् वर्णकी रक्षाके लिये जन्म और कर्म—दोनों आवश्यक हैं। जैसे दैव और पुरुषार्थ—दोनोंमें ही कार्य-सिद्धि होती है; उसी प्रकार पुरुष जन्म और कर्म दोनोंसे सिद्धिको प्राप्त होता है। जिस जातिमें जन्म हो, उसीके अनुसार कर्म करनेसे वह उन्नतिको प्राप्त हो सकता है। इसी अभिप्रायसे ब्रह्माजी कहते हैं—

ब्रह्मोवाच—

इदं शृणु मयाऽऽख्यातं तर्कपूर्वमिदं वचः ।
युष्माकं संशये जाते कृते वै जातिकर्मणोः ॥
पुनर्वचमिदं निबोधध्वं समासन्न तु विस्तरात् ।
संसिद्धिं यान्ति मनुजा जातिकर्मसमुच्चयात् ॥
सिद्धिं यच्छेद् यथाकार्यं दैवकार्यसमुच्चयात् ।
एवं संसिद्धिसायाति पुरुषो जातिकर्मणोः ॥

(भविष्य० ब्राह्मणपर्व ४५ । १—३)

मुझे आशा है कि उपर्युक्त पंक्तियोंसे गीताकी जाति-सम्बन्धी आपकी शंकाका समाधान हो जाना चाहिये। आप कृपया अपने मतपर एक बार फिर विचार कीजिये और ठीक समझमें आ जाय तो मानिये। मेरा आपका मत बदलनेका कोई भी आग्रह नहीं है। शेष भगवत्कृपा।

कुछ प्रश्नोंके उत्तर

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपके कई पत्र मिले। इतने लम्बे पत्रोंके उत्तर लिखना मेरे लिये सम्भव नहीं है। आपके प्रश्न भी बहुत अधिक हैं। उतनी ही बात पूछनी चाहिये, जितनीका सहजमें उत्तर दिया जा सके और जो विशेष कामकी हों। आपके कुछ प्रश्नोंका उत्तर मैं लिखवा रहा हूँ।

यह सत्य है कि सब लोग अपने-आपको संयममें नहीं रख सकते। जहाँ सात्त्विक विचार, सात्त्विक भाव अधिक होते हैं, वहाँ संयम करना सहज होता है; पर जहाँ रजोगुण-तमो-गुणकी अधिकता होती है, वहाँ संयममें बड़ी कठिनाई होती

है। अतएव मनुष्यको यह चाहिये कि वह इन्द्रियोंको और मनको तामसिक और राजसिक कार्यों—विचारोंसे जहाँतक हो सके, अलग रखनेका प्रयत्न करे। इन्द्रियोंके द्वारा ही बाहरकी चीज मनमें जाती है और फिर मन ही इन्द्रियोंके अधीन होकर बुद्धिपर अपना प्रभाव डालता है। अतएव पाँचों इन्द्रियोंको ठीक-ठिकानेसे सावधानीके साथ भगवान्के साथ जोड़े रहनेका प्रयत्न करना चाहिये। न बुद्धिमान् बनना चाहिये, न जरा भी ख्यातिकी इच्छा रखनी चाहिये और न भोगजगत्से अनावश्यक सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। चुपचाप भगवान्के साथ सम्पर्क बनाये रखना चाहिये।

मनुष्य जो परोपकार, सेवा, भजन, दान, साधन आदि कार्य करता है, ये शुभ कार्य बहुत अच्छे हैं, पर बहुत बार इन सब कार्योंके पीछे भी अधिकांशतः 'अहम्'की पूजाकामना छिपी रहती है और प्रायः उसके ये शुभ कार्य भी 'अहम्'के द्वारा संचालित होते हैं। इसलिये वह भगवान्की सहज कृपा होनेपर भी उसका अनुभव नहीं कर पाता। भगवान् उन्हें स्वीकार नहीं करते। अतएव अहंकी जड़ काटते हुए भगवदर्पण-बुद्धिसे ही साधना करनी चाहिये।

कहीं-कहींपर साधनमें जो दम्भ (अर्थात् बिना किये अपनेको अच्छा दिखलानेकी चेष्टा) आ जाता है, यह बहुत बड़ी बाधा है। अतएव इस दम्भिकताको मनसे, विचारसे और कार्यसे बिल्कुल निकाल देनेकी चेष्टा करनी चाहिये। मनुष्य जब दम्भ करने लगता है, तब उसके साधनका स्रोत रुक ही नहीं जाता, बल्कि बिल्कुल सूख जाता है।

मनुष्यके अंदर एक दुर्बलता यह है कि वह कम-से-कम जिस क्षेत्रमें रहता है, वहाँ एक महत्त्वका स्थान, एक प्रकारकी प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है। इसलिये वह कभी-कभी अपने ही साथी दूसरे साधकोंके व्यवहारमें दोष देखता है। उनके दोषोंका प्रचार करता है और प्रकारान्तरसे अपनेको निर्दोष साधक सिद्ध करना चाहता है। अपनेको उस क्षेत्रके आचार्यका अत्यन्त घनिष्ठ प्रियपात्र मनवानेकी चेष्टा करता है और इस प्रकार करनेपर उसका साधन सर्वथा प्रपञ्चमय हो जाता है एवं दूसरेकी निन्दा-स्तुतिमें ही जीवन जाने लगता है। अतएव इससे उसको भलीभाँति बचना चाहिये।

सबसे अच्छा साधन है—'अभिमान छोड़कर अपनेको सर्वथा दीन माने और भगवान्की सहज कृपापर विश्वास

संख्या १२]

करे।' दीन माननेका अर्थ यह नहीं कि वह केवल अपनेको 'दीन' मात्र कहे। उसको अपने अंदर अभिमानके योग्य कोई वस्तु-स्थिति दीखे ही नहीं और दूसरेमें गुण-ही-गुण दिखायी दें। तभी वास्तविक दैन्य प्रकट होता है और यह दैन्य भगवान् की बड़ी कृपा है। जैसे निगेटिव-पोजीटिव मिल जानेपर शक्तिका उदय होता है। इसी प्रकार वास्तविक दैन्य और भगवान् की अमोघ कृपापर विश्वास—ये दोनों जय मिल जाते हैं। तब वहाँ भगवान् के परमभावकी अभिव्यक्ति और वास्तविक शरणागतिये उत्पन्न निर्भयता और निश्चिन्तता आ जाती है।

आपके कुछ प्रश्नोंका यह संक्षिप्त उत्तर है। शेष भगवत्कृपा।

भगवान् और भगवती एक ही तत्त्व हैं

सप्रेम हरिस्मरण। आपके कई पत्र मिल गये। मैं उत्तर नहीं दे सका। क्षमा कीजियेगा। समग्र-ब्रह्म पुरुषोत्तम ही विभिन्न लीलाओंके सम्पादनार्थ, विभिन्न नाम-रूपोंसे अथवा अनाम-अरूपमें स्थित हैं। वे ही अन्तर्यामी हैं, वे ही स्वरूपतः बाहर प्रकट हैं। उनके सिवा वस्तुतः अन्य कोई भी सत्ता नहीं है।

अवश्य ही वे परम सुहृद् हैं। उनके सौहार्दमें विश्वास होना चाहिये। उन्होंने ही कहा है कि मैं सारे प्राणियोंका सुहृद् हूँ। इस बातको जान लेनेपर शान्ति मिल जाती है। भगवान् का सौहार्द जान लेनेपर प्रतिकूलता नामकी कोई वस्तु नहीं रहती। फिर उसका जीवन भागवत-जीवन हो जाता है। योग-क्षेमका भी कोई प्रश्न नहीं रह जाता। योग-क्षेम वे करें या योग-क्षेमका विनाश कर दें।

भगवान् पर विश्वास कीजियेगा। उनकी कृपासे आपकी सारी कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी। हम भगवान् के अनुकूल न रहकर उनको अपनी इच्छाके अनुकूल बनाना और देखना चाहते हैं, यह हमारी भूल है। पर बुद्धिमान् माता-पिता भी संतानकी हिताकांक्षा और उसके भविष्यके मङ्गलको सोचकर उसके इच्छानुसार सब नहीं करते, विपरीत भी करते हैं। अपने परम सुहृद् और परम ज्ञानस्वरूप भगवान् जो कुछ करते हैं, उसमें अवश्य ही हमारा मङ्गल ही भरा रहता है, इसमें कोई संदेहकी बात नहीं।

भगवान् और भगवती एक ही तत्त्व-वस्तुके दो नाम हैं। जैसे शक्ति और शक्तिमान्। शक्ति न होनेपर शक्तिमान्की

कोई सत्ता नहीं और शक्तिमान् न हो तो शक्ति रहे कहाँ? अतएव एक ही तत्त्व समझकर अपनी रुचिके अनुसार उपासना करनी चाहिये।

आपके लम्बे पत्रका संक्षिप्त उत्तर यही है। मैं पत्र बहुत कम लिख-लिखा सकता हूँ। क्षमा कीजियेगा। शेष भगवत्कृपा।

श्रीहनुमान्जीकी योगशक्ति

प्रिय महोदय, सप्रेम हरि-स्मरण। कृपा-पत्र मिला। आपकी शङ्का है कि हनुमान्जीने जब मशक-समान रूप धारण किया तो अंगूठी कहाँ रही? वास्तवमें हनुमान्जीके महत्त्वको न जाननेसे ही मनमें इस तरहकी शङ्का पैदा होती है। जो हनुमान्जी अपने पर्वताकार शरीरको क्षण-भरमें मच्छरके समान बना सकते हैं, वे उस अंगूठीको भी अपनी योगशक्तिसे इतनी छोटी कर सकते हैं कि मच्छर होनेपर भी लिये रह सकें। क्या इतनी साधारण बात भी समझमें नहीं आती?

श्रीरामेश्वर-स्थापना किस पण्डितने करायी? इस प्रश्नके उत्तरमें निवेदन है कि रामदलमें विद्वानोंकी कमी नहीं थी। स्वयं हनुमान्जी 'नवव्याकरणार्थवेत्ता' थे। उन्होंने सूर्यदेवसे सब शास्त्रोंका अध्ययन किया था। सीताजी भी अथर्व-रूपसे सदा भगवान् के साथ ही थीं, केवल स्थूल जगत्में अपहरणकी लीला चल रही थी, वह भी छायाकी। साक्षात् सीता तो पावकमें निवास करती थीं और पावक देवता सर्वत्र प्रकट हो सकते थे। फिर भी आप पण्डितके नाम तथा सीताकी उपस्थितिके विषयमें कुछ सुनना ही चाहते हैं तो सुनें। दन्तकथाओंमें सुनी हुई बात है, सम्भव है कहीं लिखी भी हो—'रामेश्वरजीकी स्थापना करानेके लिये स्वयं पण्डितप्रवर दशानन (रावण) जी ही पधारे थे। स्थापनाका कार्य सुचारु रूपसे चलानेके लिये कुछ समयतक-के लिये रावणने सीताजीको भी वहाँ उपस्थित कर दिया था।'

सत्य क्या है भगवान् जानें। शेष भगवत्कृपा।

'नारायण' नामकी महिमा

प्रिय महोदय, सप्रेम हरि-स्मरण। कृपा-पत्र मिला। धन्यवाद! आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

अजामिल जातिका ब्राह्मण था; परंतु एक शूद्र-

जातीय कुलटा स्त्रीमें आसक्त होकर उसीके साथ रहने लगा। उसने अपने छोटे पुत्रका नाम नारायण रखवा था। मृत्युके समय यमदूतोंके भयसे उसने अपने पुत्रको ही पुकारा। परंतु किसी भी निमित्तसे यदि भगवान्का नाम अन्त समयमें मुँहसे निकल जाय तो भगवान् उसका कल्याण अवश्य करते हैं। इस विरदका निर्वाह करनेके लिये भगवान्ने 'नारायण' नामका उच्चारण होते ही अपने दूत उसके पास भेज दिये और उन्होंने यमदूतोंके हाथसे उसको बचा लिया। यह भगवान्की नासमझी नहीं है। उदारता तथा अकारण करुणा करनेका स्वभाव है। जो लोग आपको चिढ़ाते हैं, वे अपनी ही हानि करते हैं, आपका कुछ भी नहीं बिगड़ सकता।

गीताका पाठ तथा उत्तम ग्रन्थोंका स्वाध्याय करनेवाला भी यदि क्रोध न छोड़ सके तो यह उसकी दुर्बलता ही है। क्रोध त्यागनेका उपाय है, सर्वत्र भगवद्दर्शन। प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक जीव भगवान्का स्वरूप है, ऐसा समझने और देखनेसे विरोधभाव शान्त होता है। शेष भगवत्कृपा।

वाल्मीकीय रामायणकी रचना

प्रिय महोदय, सप्रेम हरि-स्मरण। कृपा-पत्र मिला। धन्यवाद ! आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

१-स्त्री-जातिको अवला इसलिये कहते हैं कि वह अपने बलका प्रदर्शन नहीं करती। पति-पुत्रोंकी मङ्गल-कामनासे वह प्रेममयी-स्नेहमयी बनी रहती है।

२-वाल्मीकीय रामायणके अनुसार वाल्मीकिजीने उस समय रामायणकी रचना आरम्भ की, जब श्रीरामचन्द्रजी वनसे लौटकर राजसिंहासनपर आसीन हो चुके थे। पद्मपुराणके अनुसार श्रीराम-जन्मके पहले रामायणकी रचना हो चुकी थी। ये दोनों ही बातें कल्पभेदसे ठीक हैं। महर्षि वाल्मीकि योग-शक्तिसे सम्पन्न थे। वे ध्यान लगाकर

भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंकी बात देख सकते थे। शेष भगवत्कृपा।

एकादशी-व्रतकी साधारण विधि

प्रिय महोदय, सप्रेम हरि-स्मरण। कृपा-पत्र मिला। धन्यवाद ! एकादशी-व्रतकी साधारण विधि इस प्रकार है। प्रत्येक दशमीको दिनमें एक समय भोजन करके रातमें भगवान्का स्मरण करते हुए उपवास करे। ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक है। दूसरे दिन सवेरे स्नान-संध्या करके भगवान्से प्रार्थना करे—“भगवन् ! आज आपकी प्रसन्नताके लिये व्रत करूँगा, आपकी कृपासे यह पूर्ण हो।” फिर दिनभर निर्जल उपवास करे। ऐसा न हो सके तो जल-मात्र पीकर रहे। जलपान भी कई बार न करे, नहीं तो उपवास व्यर्थ हो जाता है। जो उपवासपूर्वक न रह सके, वह स्वल्पमात्रामें फलाहार करके रहे। यह फलाहार भी २४ घंटेमें एक बार होना चाहिये। उस दिन यथा-सम्भव मौन रहे। भगवान्का कीर्तन, जप, स्मरण, स्तोत्र-पाठ, लीला-कथा-श्रवण या पुराणपठन आदि कार्योंमें दिन व्रतवि। रातमें भगवान्के मन्दिरके समक्ष कीर्तन-पदगान आदि उत्सवमें रत रहे। जागरण करे। सवेरे स्नान-संध्यासे निवृत्त हो भगवान्का पूजन करके द्वादशीमें सात्त्विक अन्नसे पारण करे। उस दिन भी एक ही बार भोजन करना चाहिये। ये नियम प्रायः सभी एकादशियोंमें समानरूपसे पालन करने योग्य हैं। माघ शुक्ल तथा च्यैष्ठ शुक्ल एकादशीको निर्जल उपवास करना चाहिये। माघ कृष्ण एकादशीको षट्तिला कहते हैं। इस दिन तिलके उपयोगका विधान है। तिलका उबटन लगाकर नहाना, तिलमिश्रित जलसे नहाना, तिल दान करना, तिलके लड्डूका फलाहारके रूपमें ग्रहण करना आदि विशेष विधि है। एकादशी-व्रतके सिवा और भी बहुतसे व्रत हैं, जो अपनेसे बन सके, करना चाहिये। एकादशीका पालन सर्वोत्तम है। प्रत्येक कृष्णपक्षमें प्रदोषव्रत आता है, वह भी करना चाहिये और प्रत्येक पूर्णिमाको सत्यनारायण व्रत आता है, उसे भी करना उत्तम है। शेष भगवत्कृपा।

वर्तमान स्वराज्यके अनुभव

[श्रीश्रीप्रकाशजीके उद्गारोंपर विचार]

(लेखक—श्रीकस्तूरनलजी बाँठिया)

बाबू श्रीप्रकाशजी स्वाधीन भारतके शासकोंमें ऐसे हैं, जिन्हें विविध पहलुओंसे शासनतन्त्र देखने और परखनेके अनेक अवसर मिले हैं। वे केन्द्रीय मन्त्री भी रह चुके हैं, और पाकिस्तानमें हाई कमिश्नर—उच्चायुक्त और विभिन्न राज्योंके राज्यपाल भी। परन्तु जिन अनुभवोंसे उन्हें 'नवनीत' मासिकमें 'मैं इस स्वराज्यके लिये नहीं लड़ा था' लेख लिखनेकी प्रबल प्रेरणा मिली, वे शासनतन्त्रसे अवसर प्राप्त कर लेनेके बादके हैं। सरकारी कुरसीकी अवहेलना तानाशाहतक करनेका साहस कदाचित् ही करता है। परन्तु जिसने सरकारी कुरसी छोड़ दी, उसमें और जन-साधारणमें फिर कोई भी अन्तर नहीं रह जाता। तभी ऐसा व्यक्ति कर्मचारीकी उन अपरिहार्य शक्तियोंका अनुभव करता है, जिनके अत्याचारसे जन-साधारण कराहते और त्राण पानेके लिये नहीं चाहते हुए भी रिश्वतकी भेट चढ़ाकर राहत पाना ही श्रेष्ठ मानते हैं। जिन्हें जनतासे शक्ति प्राप्त हुई हो, वे भी शासनतन्त्रके प्रभावक अङ्ग बनकर वही सुर या तो आलापने लगते हैं अथवा उसका बचाव करने लगते हैं। स्व० पं० श्रीजवाहरलालजीको अपने जीवनमें ऐसा सुअवसर मिला ही नहीं; क्योंकि वे शासनके सर्वेसर्वा जीवनके अन्तिम क्षणतक बने रहे। एक बार उन्होंने उससे अलग होनेकी इच्छा भी व्यक्त की, परन्तु देशके गण्यमान्य जनोंने उन्हें अलग नहीं होने दिया, हालाँकि सभी यह अच्छी तरह समझते थे कि एक दिन ऐसा आयेगा ही जब उनके स्थान पर दूसरेको चुनना ही होगा। कदाचित् नेहरूजीको भी यह भ्रान्ति थी कि देशके यानको लक्ष्यतक पहुँचानेवाला दूसरा नाविक नहीं है। तभी तो मृत्युके एक दिन पूर्व भी वे यह कहते नहीं हिचकिचाये थे कि 'वे शीघ्र मरनेवाले नहीं हैं।' उन्हें तटस्थ होकर शासनतन्त्रके प्रति जनताकी यथार्थ भावना जानने और समझनेका अवकाश ही नहीं मिला और वह ऐसी स्थितिको आज पहुँच गया है जिनकी शिकायत बाबू श्रीप्रकाशजीके अतिरिक्त कौन इतने वेधक शब्दोंमें करता ? लेखका उपसंहार करते हुए श्रीश्रीप्रकाशजी कहते हैं—

'जो लोग समाजवादी समाजके निर्माण और इंसान-

इंसानमें समानता स्थापित करनेकी बातें करते हैं, वे आँखों-पर साफ चश्मा लगाकर देखें कि वास्तवमें हमारे चारों ओर हो क्या रहा है ? पचास वर्ष सार्वजनिक कामोंमें वितानेके बाद, जब मैं देखता हूँ कि जन-साधारणकी हालत क्या हो गयी है और सरकारी कर्मचारियोंके हाथमें कितनी शक्ति आ गयी है, तो मुझे असीम क्रोध होता है। निश्चय ही यह तो वह स्वराज्य नहीं है, जिसके लिये मैंने काम किया था। मुझे दुःख है कि अपने दुखिया देशके ये हाल देखनेको आज जिंदा हूँ। शासकोंसे मैं यही कहना चाहता हूँ कि ऐसे लोगोंपर राज्य करनेमें कोई गौरव और शान नहीं है, जो आत्म-सम्मान गँवा चुके हैं, जो रिश्वत लेना और देना स्वाभाविक समझते हैं, जिन्होंने यह बात मान ली है कि आदमीके लिये दो ही रास्ते हैं—या तो वह सरकारका पुर्जा बनकर गैर-जिम्मेदारान हुकूमत करे या गुलाम बनकर सत्ताधारियोंके हाथों अपना शोषण कराये, दुर्व्यवहार सहे।' (रेखाङ्कन इस लेखकका है।)

जब हम पार्लियामेंटरी स्वराज्यके लिये लड़े तो यह शिकायत क्यों ?

यह भारी विचारोत्तेजक उपसंहार है और हम भारतीयोंको स्वाधीनताकी समस्यापर फिरसे विचार करनेकी चुनौती देता है। जिस काल्पनिक स्वराज्य-जगत्में बाबूसाहब-जैसे तक रह रहे हैं, उससे हम स्वराज्यके वास्तविक जगत्में शीघ्रातिशीघ्र उतर आयें यही इष्टकर है। जिस स्वराज्यके लिये देश लड़ रहा था, इस विषयमें उस संग्रामके सुग्रीम कमांडर महात्मा गाँधीजी तो किसी भी मुगालतेमें नहीं थे, हालाँकि भारतीय स्वराज्यकी उनकी अपनी तस्वीर तो बिल्कुल दूसरी ही थी और उन्होंने संग्राम छेड़नेकी पूर्वसंध्याको स्पष्ट कह दिया था कि, अभी हिंदुस्तान उसके लिये तैयार नहीं है। ऐसा कहनेमें शायद ढिठाईका भास हो, लेकिन मुझे तो पक्का यकीन है। जिस स्वराज्यकी तस्वीर मैंने खींची है, वैसा स्वराज्य पानेकी मेरी निजी कोशिश जरूर चल रही है।... उसके लिये लोगोंकी आज जो तैयारी है,

उससे कहीं ज्यादा सादगी और त्यागकी जरूरत रहती है । उन्होंने जनवरी १९२१ के 'यंग इंडिया' के किसी अङ्कमें स्पष्ट कह दिया था कि 'इसमें कोई शक नहीं कि आज मेरी सामूहिक प्रवृत्तिका ध्येय तो हिंदुस्तानकी प्रजाकी इच्छाके अनुसार पार्लियामेंटरी ढबका स्वराज्य पाना है ।'

स्वाधीनता-घोषणाकी रात्रिके बारह बजेतक काँग्रेसी नेता आशा रखे हुए थे कि उनके अल्टीमेटमके परिणाम-स्वरूप ब्रिटिश शासन भारतको डोमीनियन स्टेटस दे देगा । जब वह नहीं मिला तो वचनबद्ध काँग्रेसियोंने देशका लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर दिया और २६ जनवरी १९३० को भारतके प्रत्येक नगर और गाँवमें पढ़े जाने और शपथपूर्वक प्रतिज्ञा लेनेके लिये एक घोषणापत्र तैयार किया, जिसका महत्त्वपूर्ण अंश कहता है—

'अंग्रेजी सरकारने भारतवासियोंकी स्वतन्त्रताका ही अपहरण नहीं किया है, बल्कि उसने आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे भारतवर्षका नाश कर दिया है । अतः हमारा विश्वास है कि भारतवर्षको अंग्रेजोंसे सम्बन्ध-विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेना चाहिये ।'

आज उन्नीस वर्ष स्वाधीनता भोगनेके पश्चात् देशकी स्थितिका विचार करते हैं तो यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि 'देशने चाहे आर्थिक और राजनीतिक तथाकथित उन्नति की हो, परंतु सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिसे तो वह और भी अवनत हुआ है ।'

गाँधीजीने काँग्रेसी नेताओंकी आन्तरिक आकाङ्क्षाका ठीक-ठीक अध्ययन दक्षिण अफ्रीकामें रहते-रहते ही कर लिया था । इसीलिये उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' के 'स्वराज्य क्या है ?' प्रकरणमें स्पष्ट कह दिया था कि 'हमें अंग्रेजी राज्य तो चाहिये, पर अंग्रेजी शासक नहीं चाहिये । ... हिंदुस्तानको अंग्रेज बनाना चाहते हैं ।' गाँधीजीने तब ही चेतावनी देते हुए कह दिया था कि 'हिंदुस्तान जब अंग्रेज बन जायगा तब वह हिंदुस्तान नहीं कहा जायगा, लेकिन सच्चा इंग्लिस्तान कहा जायगा और यह मेरे खयालका स्वराज्य नहीं है ।'

गाँधीजीकी यह भविष्यवाणी प्रतिदिन सत्य उतरती जा रही है । सन् १९४७ ही नहीं, बल्कि १९५४ तक हमारे

सामने इंग्लिस्तान बननेकी तस्वीर ही थी और इसीलिये हमने संविधान सभाद्वारा देशका जो संविधान बनाया, उसमें देश-को सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया । हमने इंग्लैंडकी संसद्-पद्धतिको अपनाया; परंतु उसको इंग्लैंडकी संसद्-जैसी शक्तिशाली नहीं बनाया और उसे राजसत्ता नहीं दी । ऐसी संसद् तो पार्लियामेंटोंकी माता इंग्लैंडकी संसद्से बदतरके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकती थी, जिसके विषयमें भी तो गाँधीजीने 'हिन्द स्वराज्य' में सन् १९०९ में स्पष्ट कहा था कि 'इंग्लैंडमें आज जो हालत है, वह सचमुच दयनीय—तरस आने लायक है । और मैं तो भगवान्से माँगता हूँ कि ऐसी हालत हिंदुस्तानकी कभी न हो । जिसे आप पार्लियामेंटोंकी माता कहते हैं, वह पार्लियामेंट तो बाँझ है और वेध्या है । ये दोनों शब्द बहुत कड़े हैं, तो भी उसे अच्छी तरह लागू होते हैं । मैंने उसे बाँझ कहा; क्योंकि अबतक पार्लियामेंटने अपने-आप एक भी काम नहीं किया । अगर उसपर जोर-दबाव डालने-वाला कोई न हो तो वह कुछ भी न करे, ऐसी उसकी कुदरती हालत है । और यह वेध्या है; क्योंकि मन्त्रिमण्डल जो उसे रखे उसके पास यह रहती है । आज उसका मालिक एसक्विथ है तो कल वालफर तो परसों कोई और । इन उन्नीस वर्षोंके स्वराज्यमें (पार्लियामेंटरी ढबके स्वराज्यमें) भारतको भी उसके बाँझपन और वेध्यापन दोनोंका ही पूरा-पूरा अनुभव हो चुका है । सम्भव है कि संसद्-पद्धतिके भारतीय आशिकोंको गाँधीजीका इंग्लैंडकी ओर इस लेखकका भारतीय संसद्को बाँझ और वेध्या कहना उतना ही पसंद न हो जितना गाँधीजीकी एक अंग्रेज महिला मित्रको नहीं हुआ था; परंतु उसके जीवनकी सच्ची व्याख्या करनेवाले दूसरे शब्द खोजनेपर भी नहीं मिलते हैं ।

स्वराज्य एक युगतक भोगते रहनेके पश्चात् १९५९ में काका कालेलकर साहिबने स्पष्ट स्वीकार किया था कि 'गाँधीजीके प्रयत्नका वही हाल हुआ जो दुनियाकी अन्य श्रेष्ठ विभूतियोंके प्रयत्नोंका होता आया है । भारतने, भारतके नेताओंने और एक ढंगसे सोचा जाय तो भारतकी जनताने भी गाँधीजीके द्वारा मिले हुए स्वराज्यरूपी फलको तो अपनाया; परंतु उनकी जीवन-दृष्टिको पूरी तरहसे अपनाया नहीं है । धर्मपरायण, नीतिप्रधान पुरानी संस्कृतिकी प्रतिष्ठा जिसमें नहीं है, ऐसी ही शिक्षापद्धति भारतमें आज

भी प्रतिष्ठित है। न्यायदान पश्चिमके ढंगसे ही हो रहा है। इसकी तालीम भी जैसी अंग्रेजोंके दिनोंमें थी, वैसी ही आज है। अध्यापक, वकील, डाक्टर, इंजीनियर और राजनीतिक—ये पाँच मिलकर भारतके सार्वजनिक जीवनको पश्चिमी ढंगसे चला रहे हैं। यदि पश्चिमके विज्ञान और यान्त्रिक कौशल्य (टेक्नालोजी) का हम सहारा न लें और गांधीजीके ही सांस्कृतिक आदर्शको स्वीकार करें तो भारत जैसा महान् देश सौदी अरबिया जैसे नगण्य देशकी कोटिमें पहुँच जाय, यह डर भारतके आजके सभी नेताओंको है।स्वाभाविक है कि इस तरहके नये भारतमें अंग्रेजी भाषाका ही बोलबाला रहे। सिर्फ (अंग्रेज और) अमरीका ही नहीं, किंतु रूस, जर्मनी, चैकोस्लोवेकिया, जापान आदि विज्ञानपरायण राष्ट्रोंकी मददसे भारत यन्त्र-संस्कृतिमें जोरसे आगे बढ़ रहा है और उसकी आन्तरिक निष्ठा मानती है कि यही सच्चा मार्ग है। यह नयी निष्ठा केवल नेहरूजीकी नहीं, किंतु करीब-करीब सारे राष्ट्रकी है। विनोबाजी-जैसोंने भी देख लिया है कि विज्ञान और यन्त्र-कौशल्यके बिना सर्वोदय अधूरा ही रहेगा।

इस सदीके महान् तेजस्वी चिन्तक महर्षि अरविन्दने भी अनेक शुभाशयी लोगोंके इस तर्कका कि भारतवर्षको पाश्चात्य संस्कृतिमें जो अच्छा है वह ग्रहण करना और जो अवाञ्छनीय है वह त्याग देना चाहिये, उत्तर देते हुए एक श्लोकर कहा है —

‘स्पष्ट है कि हम जब किसी चीजका ग्रहण करते हैं तो उसकी भलाई-बुराई भी साथ-साथ आयेगी ही। उदाहरणार्थ यदि हम वह भयंकर, दानवी और बाध्यकर वस्तु, महाशक्ति, वह आसुरी सर्जन, यूरोपीय उद्योगवाद—दुर्भाग्य ही है कि हमें परिस्थितियोंसे विवश होकर ऐसा करना पड़ रहा है—चाहे उसी रूपमें या उसके सिद्धान्तमें ग्रहण करते हैं तो हम अधिक सुविधाजनक परिस्थितियोंके कारण, उसके द्वारा चाहे हम हमारे धन और आर्थिक स्रोतोंका विकास कर लें, परंतु निःसंदेह ही उसके साथ-साथ सामाजिक वैमनस्य और नैतिक महामारियाँ एवं क्रूर समस्याएँ भी हमें ग्रहण करनी होंगी। मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि हम किस प्रकार जीवनमें आर्थिक लक्ष्यकी दासता और अपनी संस्कृतिके आध्यात्मिक सिद्धान्तोंको खोनेसे बचाये रख सकेंगे? देखा जाय तो पश्चिमको, दिन-दूनी रात-चौथानी

प्रगति करनेवाला यान्त्रिक-कौशल्य ही, महाभयका कारण हो रहा है और हम भी उसीकी ओर बरबस खिंचे चले जा रहे हैं।’

कांग्रेसी शासन और सरकारी कर्मचारी

बाबू श्रीप्रकाशजीकी पहली शिकायत है कि ‘जब मैं देखता हूँ कि सरकारी कर्मचारियोंके हाथमें कितनी शक्ति आ गयी है तो मुझे असीम दुःख होता है।’ प्रश्न यह उठता है कि क्या सरकारी कर्मचारियोंके हाथमें यह भारी शक्ति भारतीय स्वाधीनताके पश्चात् कांग्रेसी शासनमें ही आयी? भारतके आजके सरकारी कर्मचारियोंका इतिहास अभीका नहीं, बल्कि दो सौसे कुछ अधिक वर्ष पुराना है। अंग्रेजोंने सन् १७५७ के पलासीके युद्धमें विजय प्राप्त कर भारतमें अंग्रेजी राज्यकी नींव जमायी थी और यहाँके छोटे-से राज्यको एक साम्राज्यका रूप दिया था। उन सरकारी कर्मचारियोंने जो इंग्लैंडसे समय-समयपर आवश्यकतानुसार अधिकाधिक संख्यामें यहाँ भेजे जाते रहे थे। इन्हें इस सुदूर और अपरिचित एवं प्रतिकूल जलवायुवाले देशमें आनेके लिये अधिकतम वेतनका ही नहीं, बल्कि विशिष्ट अधिकारोंके भी प्रलोभन दिये जाते थे और उनकी ज्यादातियाँ सच होते हुए भी बरदाश्त की जाती थीं। इसी कारण उस देशमें यह कहावत चल पड़ी थी धनी होना चाहते हो तो भारतवर्ष जाओ। अंग्रेजीके ‘रिच’ शब्दके विभिन्न अक्षरोंकी व्याख्या ही यह हो गयी थी कि ‘रॉय इंडिया कम होम’ यानी ‘भारतको लूटो और घर लौट आओ।’ इसी कारण इन सरकारी कर्मचारियोंके पूर्वज अधिकांशतः समस्त भारतीयोंको ‘पतित जाति (डीजनरेट्स)’ के और ‘उनके लिये स्थापित शासनको, उसके खर्च एवं प्रकारके विषयमें रंचमात्र ननु-नच किये बिना, स्वीकार करने और सहते रहनेके ही एकमात्र अधिकारी’ मानते थे। इसी परम्परामें पोषित, पालित और आज भी प्रशिक्षित भारतीय कर्मचारियोंद्वारा स्वाधीनता-प्राप्तिके पश्चात् देशका शासन-शंकट कांग्रेसी शासकोंको खींच ले जाना था, परंतु जिनमें कांग्रेसके प्रति कोई निष्ठा एवं प्रेम नहीं था। देशके भूतपूर्व स्वामी अंग्रेजोंके तूर्ताफूर्त विदा हो जानेके पश्चात् देशमें व्यापक अराजकता फैलनेके निश्चित भयपर इन्होंने चुनौती देकर शानदार विजय पायी थी। अंग्रेज और मुसलमान ही नहीं, कुछ अन्य अहिंदू अनुभवी कर्मचारियोंके

देशसे यकायक चले जानेसे हुई प्रशासकोंमें असीम कमीके बावजूद, देशविभाजनसे लड़खड़ा रहे शासनतन्त्रको इन्होंने ही संभाला और विभाजनकी विभीषिकाका दृढ़तासे सामना करते हुए देशमें फिरसे शान्ति यथाशीघ्र स्थापित कर दी थी। सरकारी कर्मचारियोंकी इन सेवाओंसे कांग्रेसकी चोटीके नेतागण इतने प्रभावित हुए कि अंग्रेजी राज्यकालके उनके सब दुर्व्यवहारों यहाँतक कि देशद्रोही करतूतोंको भी भुला दिया गया और उन्हें भविष्यके लिये आश्वासित करनेको उनके सारे विशेषाधिकारोंका, जो उन्हें अंग्रेजी राज्यकालमें प्राप्त थे और जिनका विस्तारसे उल्लेख १९३५ के गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्टमें किया गया था, ज्यों-के-त्यों संविधानद्वारा संरक्षित कर दिये गये जब कि ऐसे विशेषाधिकार जनतन्त्र-शिरोमणि इंग्लैंड और अमरीका, जिनकी परम्परा एवं संविधानसे हमने अपने संविधानमें बहुत कुछ अपनाया है, किसी भी सरकारी कर्मचारीको एक भी प्राप्त नहीं है। ब्रिटिशोंने भारतीय नौकरशाहोंको चाहे जो वैतनिक एवं विशेषाधिकारोंके प्रलोभन दिये हों, परंतु इंग्लैंडके सरकारी कर्मचारियोंको तो सामान्यजनको प्राप्त वैसे अधिकारतक, उन्होंने नहीं दिये हैं।

इंगलिश कामन ला (English Common Law) के अनुसार वहाँ सब कर्मचारी तभीतक अपने पदपर रहते हैं जबतक राजा (क्राउन) की इच्छा है। अपने पदसे वे किसी भी समय, कारण बताये बिना, राजा (क्राउन) द्वारा वरतरफ, तनज्जुल या जहाँ चाहे वहाँ तब्दील किये जा सकते हैं, चाहे ऐसा करना सेवा-प्रसंविदकी किसी धाराविशेषके प्रतिकूल ही हो। इसके विरुद्ध ही नहीं, बल्कि बकाया वेतनकी वसूलीतकके लिये राजाके विरुद्ध न्यायालयमें जानेका कोई अधिकार उन्हें नहीं है। ऐसा सर्वथा अरक्षित सरकारी कर्मचारी वहाँ न तो कभी उद्धत हो सकता है, न कामचोर अथवा कामटरकाऊ ताकि उसे रिश्ततका प्रलोभन दिया जा सके। इंग्लैंडके सरकारी कर्मचारीकी संसार-प्रसिद्ध प्रतिष्ठाका एक प्रधान कारण यही है।

भारतीय सरकारी कर्मचारियोंके भारतीय संविधानमें विशेषाधिकार

भारतवर्ष तो विशेषाधिकारोंका देश है। इसकी यह परम्परा अंग्रेजोंकी चलायी हुई पर्याप्त पुरानी है। मुसल्मानी राज्यकालमें सिर्फ मुसल्मानोंको कुछ विशेषाधिकार प्राप्त रहते

थे, परंतु सभी सुलतानों और बादशाहोंने ऐसा नहीं किया। जो धर्मान्ध थे, उन्होंने ही ऐसा किया था। इसी पक्षपात-नीतिके कारण उनके राज्य भी नामशेष हो गये। अंग्रेजोंने भारतीयोंमें अविश्वास करते हुए पहले तो उन्हें सामान्यतक भी अधिकार नहीं दिये। सामान्य नौकरीके सिवा, उनके शासनमें अच्छे-से-अच्छा भारतीय किसी उच्च पदपर नियुक्त नहीं किया जाता था। ईस्ट इंडिया कंपनीसे भारतका शासन-तन्त्र ब्रिटिश शासनद्वारा जब संभाल लिया गया और धर्म, जाति या रंगका भेद नहीं रखते हुए सर्व-समानाधिकारकी घोषणा की गयी, तब भारतीयोंको शासनमें उनके योग्यतानुसार सम्मिलित किये जानेकी माँग जोर पकड़ने लगी और भारतीय कुछ उच्चतर पदोंपर भी कभी-कभी नियुक्त किये जाने लगे। ऐसी माँगें करनेमें धर्म-जाति-रंगके भेदभाव त्याग ऐक्यसूत्रमें बँधते भारतीय जब प्रतीत हुए तो राजनीतिक दृष्टिसे पहले मुसल्मानोंको सेवामें समादर मिलने लगा और बादमें चुनाव-पद्धतिके प्रचलनपर चुनावद्वारा पृथक् प्रतिनिधित्व भी दे दिया गया और फिर सिखों, एंग्लो-इंडियनों, अंग्रेज व्यापारियों आदिको भी विशेषाधिकार देकर पृथक्त्वकी भावनाको परिपोषित किया गया। उधर सरकारी नौकरोंके चुनावकी परीक्षाओंमें जब भारतीयोंको बैठनेकी इजाजत मिली तो भारतीयोंके अवरोधोंके निवारणकी माँग भी बढ़ी और परीक्षाएँ इंग्लैंड और भारतवर्ष दोनोंमें ली जाने लगीं। परंतु व्यवहारमें योग्यतम भारतीय भी अंग्रेज नौकरशाहके ऊँचे पदको बहुत ही कम पहुँचे। कोई भी भारतीय १९४७ तक गृहमन्त्री वित्तमन्त्री-जैसे पदपर अस्थायी तौरपर भी नहीं नियुक्त हुआ था। विशेषाधिकारोंको इस परम्पराको स्वाधीनता-प्राप्तिके पश्चात् भारतीय संविधानमें अपना लिया गया, जिसका ही एक उदाहरण है सरकारी कर्मचारियोंके विशेषाधिकार।

संविधानकी धारा ३१० (१) के अनुसार सरकारी कर्मचारी, राष्ट्रपति या राज्यपाल-जैसा भी हो, की इच्छा हो तभीतक पदालूढ़ रहता है। इस धाराके प्रारम्भमें ही स्पष्ट शब्दोंमें अन्य विषयोंके साथ धारा १२४, १४८, २१८ और ३२४ का उल्लेख है, जिनमें क्रमशः उच्चतम न्यायालयके न्यायाधीशों (सुप्रीमकोर्टके जज), महालेखा-परीक्षक (आडिटर जनरल), उच्च न्यायालयोंके न्यायाधीशों (हाईकोर्टके जज) और प्रधान निर्वाचन-आयुक्त (चीफ इल्युक्शन कमिशनर), इन चारमेंसे किसीको भी अपने पदोंसे तबतक नहीं हटाया जानेको कहा गया है, जबतक कि प्रत्येक संसद

या विधान-सभाद्वारा राष्ट्रपतिको सम्बोधन किये जानेपर उन्हें हटानेकी आज्ञा राष्ट्रपति जारी नहीं करे। ३१० (१) धाराके सामान्य नियमके कि सभी कर्मचारी, राष्ट्रपति या राज्यपाल जैसा भी हो, की इच्छा हो तभीतक पद भोगता है, ये चारों निश्चय ही विशिष्ट अपवाद हैं। इन विशिष्ट अपवादोंको वाद करते हुए, यह कहा जा सकता है कि हमारे संविधानकी धारा ३१० (१) में इंगलिश कामन लॉ (English Common Law) का नियम ही अपनाया है, जो कहता है कि सभी सरकारी कर्मचारी राजा (क्राउन) की इच्छा हो तभीतक पदपर रहते हैं।

परंतु धारा ३११ इस नियमको एकदम ही निस्तेज कर देती है; क्योंकि उसके विशिष्ट नियमोंकी अनुपालना ठीक-ठीक होनेपर ही, उपर्युक्त चार धाराओंके कर्मचारियोंके अतिरिक्त कर्मचारी भी राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल, जैसा भी हो, द्वारा वरतरफा, तनज्जुल अथवा तब्दील किये जा सकते हैं। यानी इनकी इच्छा ही पर्याप्त नहीं है।

अंग्रेजी राज्यकालमें आई० सी० एस०, आई० एम० एस० (सिविल), आई० पी० एस०, आई० ई० एस० जैसी अखिल भारतीय सेवाओंमें नियुक्तियाँ अधिकांशमें लंदन-स्थित भारतमन्त्रीद्वारा होती थीं और इसलिये इन्हें उनके सिवा कोई हटा या छेड़तक नहीं सकता था। इन सभी अखिल भारतीय सेवाओंके अधिकार १९३५ के गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट, भाग १० की कम-से-कम ४६ धाराओं-द्वारा सुरक्षित इसलिये कर दिये गये कि इस एक्टद्वारा शासनका अधिकतम भार भारतीयोंको सौंपा जा रहा था और उस समय इन सेवाओंमें ब्रिटिशोंकी ही संख्या अधिकतम थी। हमारे सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणतन्त्र संविधानमें उल्लिखित विशेषाधिकारोंसे उनकी तुलना करना सचिकर हो, आवश्यक नहीं है। इनका यहाँ निर्देशन ही स्पष्ट सिद्ध करता है कि संविधानसभाके सदस्योंने स्वाधीन भारतकी स्थितिका दीर्घ दृष्टिसे विचार किये बिना ही, थोड़ेसे शाब्दिक हेर-फेरके साथ सन् १९३५ के एक्टसे सीधा ही इन्हें ले लिया।

इसीलिये तो धारा ३११ स्पष्ट कहती है कि (१) कोई भी कर्मचारी जो संघ सरकारकी सिविल सर्विस, अथवा अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा या किसी राज्यकी सिविल सर्विसका सदस्य है, किसी ऐसे अधिकारीद्वारा वरतरफा किया

या हटाया नहीं जा सकता जो उसके नियुक्त करनेवाले अधिकारीसे निम्न श्रेणीका या उनके मातहत है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि उसको वही हटा सकता है जो उसको नियुक्त करे अथवा उसका डाइरेक्ट सुपीरियर यानी सीधा उच्च अफसर है। इतना ही पर्याप्त है कि ऐसा हटानेवाला उसकी ग्रेड-रैंक या श्रेणीका तो होना ही चाहिये।

(२) कोई भी लोक-सेवक (सिविल सर्वेंट) उस समयतक वरतरफा, तनज्जुल या तब्दील नहीं किया जा सकेगा, जबतक उसके विरुद्ध लगाये गये दोषोंकी सूची (चार्जशीट) उसे नहीं दे दी गयी हो और उसके उत्तर सुननेका उसे उचित अवसर नहीं दे दिया गया हो और ऐसी जाँचके पश्चात् उसे दिये जानेवाले दण्डकी सूचना भी पहलेसे उसे नहीं दी गयी हो ताकि उसके विरुद्ध शापन (रिप्रेजेंटेशन) देनेका उसे उचित अवसर मिल जाय। परंतु ऐसा शापन वह जाँचके समय दी गयी गवाहियों और पेश किये गये तथ्योंपर ही दे सकेगा। यह संरक्षण उसी कर्मचारीको प्राप्त होगा जो फौजदारी अपराधका अपराधी करार नहीं दिया गया है, अथवा अधिकारित अधिकारीको संतोष हो गया है कि उसके विरुद्ध जाँच करना उचित रीतिसे व्यवहार्य नहीं है अथवा राष्ट्रपति या राज्यपाल, जो भी हो, इस बातसे संतुष्ट हो गये हैं कि राज्यकी सुरक्षाकी दृष्टिसे इस प्रकारकी जाँच किया जाना इष्टकर नहीं है।

संविधानकी धारा ३११ मेंडेटरी (अनिवार्य) है

संविधानकी यह ३११ धारा मेंडेटरी (अनिवार्य) है। इसकी बातोंकी अनुपालना किये वगैर कोई कर्मचारी वरतरफा कर दिया अथवा हटा दिया जाय तो वह किसी भी न्यायालयसे ऐसी घोषणा प्राप्त कर सकेगा कि उसकी ऐसी वरतरफा या हटायें जानेकी आज्ञा प्रभावहीन (वायड) और प्रवर्तनहीन (इनआपरेटिव) है और वह कर्मचारी ज्यों-का-त्यों सिविल सर्विसेज यानी लोकसेवाका सदस्य बरकरार है। परंतु यह भी द्रष्टव्य है कि धारा ३११ द्वारा प्रदत्त संरक्षण किसी कर्मचारीको तभी प्राप्त होता है जब कि उसकी नियुक्ति नियमानुसार हुई हो। अतः लोकसेवा-आयोगकी सहमति जहाँ नियुक्तिके पूर्व अनिवार्य या आवश्यक हो और वह प्राप्त नहीं की गयी हो तो ऐसे नियुक्त कर्मचारीको यह संवैधानिक संरक्षण प्राप्त करनेका अधिकार नहीं है।

लोकसेवकोंकी अस्थायी नियुक्तियाँ और संरक्षित लोकसेवाएँ

अस्थायी नियुक्तियोंके कर्मचारियोंको भी कुछ संरक्षण प्राप्त है, जिसका विस्तारसे विचार करना यहाँ आवश्यक नहीं है। जिज्ञासु इसके लिये संविधान एवं उसके टीका-व्याख्या ग्रन्थोंको देखें, जहाँ सभी दृष्टियोंसे इसका विचार किया हुआ उन्हें मिलेगा। इतना ही कहना यहाँ पर्याप्त होगा कि सरकारी नौकरी, चाहे स्थायी हो या अस्थायी, ऊँची श्रेणीकी हो या नीची, प्राप्त करना इसीलिये चाहा जाता है कि वहाँसे हटानेमें भारी रुकावटें हैं, जिनको आसानीसे दूर नहीं किया जा सकता। किसी भी कर्मचारीपर फौजदारी जुर्म सिद्ध करना इतना आसान आजकी न्याय-पद्धतिमें नहीं होता; क्योंकि अपील उच्चतम न्यायालयतक, जो खर्च सहन कर सके, की जा सकती है। और 'तीतरके मुँह न्याय' की उक्ति-के अनुसार कई दोषी संदेह-लाभ (वैनीफिट आफ डाउट) के आधारपर निर्दोष घोषित हो जाते हैं; क्योंकि सौ दोषी भले ही मुक्त हो जायँ, पर एक भी निर्दोषी दण्डित नहीं हो, यह न्यायतुल्य है और दोषीके वकीलका अन्तिम वचावका अस्त्र यह होनेसे वह न्यायाधीशके मनमें ऐसी संदिग्धभावस्था उत्पन्न करनेका सदा ही प्रयत्न करता है। इसलिये यह भी कहा और माना जाने लगा है कि जबतक कोई पकड़ा और दोषी नहीं ठहराया जाय—साहूकार, ईमानदार है। ये सब सरकारी कर्मचारीको उद्धत, बेपरवा और अपनी ध्येयसिद्धिमें साहसी बनानेके कारण हैं।

अब संरक्षित सेवाएँ भी जान लें। हमारे संविधानके अनुसार अखिल भारतीय सेवाएँ ग्यारह हैं जो इस प्रकार हैं—(१) प्रशासनिक सेवाएँ (आई० ए० एस०), (२) वैदेशिक सेवाएँ (आई० एफ० एस०), (३) पुलिस-सेवा (आई० पी० एस०), (४) लेखापरीक्षण तथा हिसाब-सेवाएँ, (५) सैनिक लेखा-सेवाएँ, (६) रेलवे लेखा-सेवाएँ, (७) सीमा-कर और उत्पादनकर-सेवाएँ, (८) आयकर अधिकारी सेवाएँ, (९) डाक-तार-सेवाएँ, (१०) विद्युत् और इंजीनियरिंग-सेवाएँ और (११) न्यायपालिका सेवाएँ। राज्यीय यानी प्राविंशियल सेवाएँ भी इसी प्रकार सुरक्षित हैं। इस प्रकार संरक्षित एवं भयरहित होनेसे इनके सदस्य कुछ उद्धत कामचोर और कामटरकाऊ हो जाते हैं तो आश्चर्य क्या? ऐसे कर्मचारी रिश्ततखाऊ नहीं हों तो ही आश्चर्य

होगा। फिर आज तो युग ही बदला हुआ है जिसमें नैतिकताको नहीं, धनको ही, फिर चाहे जैसे भी वह कमाया गया हो या कमाया जाय, सर्वसम्मान मिलता है। अपवाद पहले भी थे और आज भी हैं। परंतु एक ही दल या राजाके दीर्घतम शासनमें अपवाद-अपवाद ही हो जाना अधिक सम्भव है; क्योंकि ऐसा शासन भ्रष्टाचार और औद्धत्यकी उर्वर भूमि है।

कर्मचारियोंको शक्तिशाली बनानेवाला हमारे देशमें एक दूसरा भी महत्त्वका कारण है। भारतीय लोकसेवाओंके अधीश्वर अभीतक पुराने आई० सी० एस० ही हैं, जो यह भुला नहीं सकते हैं कि उनके अंग्रेज पूर्वजों और साथियोंकी दृष्टिमें कलतक भी अच्छे-से-अच्छा भारतीय तुच्छ और अविश्वसनीय था। फिर प्रशासनिक सेवा-प्रशिक्षणकी परम्परा आज भी प्रायः सौ वर्ष पुरानी है, जिसका ध्येय इंग्लैंडको हर क्षेत्रमें भारतवर्षसे बड़ा-बड़ा और भारतको हर तरहसे हीन बनाना था। स्वाधीनता-प्राप्तिके पश्चात् न तो उसके पाठ्यक्रममें विशेष परिवर्तन हुआ है और न प्रशिक्षण तकनीकमें। यह तो सत्य है कि कांग्रेसी नेताओंका विश्वास सम्पादन कर पानेके लिये सनातन प्रशिक्षणमें ही प्रशिक्षित अनेक नौकरशाह वर्तमान परिस्थितियोंके अनुकूल अपना व्यवहार बदलनेमें सचेष्ट हैं और बहुत कुछ बदला भी है, परंतु पूर्वजोंके संस्कार एवं मूलभूत भावनाका एकदम ही परित्याग कर पाना उनके लिये सम्भव नहीं; क्योंकि उनका दृढ़ विश्वास है कि उनके बिना कांग्रेस सरकारें शासन सुचारुरूपसे नहीं चला सकती हैं और न कभी चला सकेंगी ही। भावी प्रशासकोंका प्रशिक्षण कितना पुरातन और दकियानूसी है, इसकी शिकायत तो उस दिन बंगलोरमें मैसूर राज्यके सचिवों और विभागाध्यक्षोंके सामने अभिभाषण करते हुए मैसूर राज्यके भूतपूर्व मुख्यमन्त्री और अभी हाल देसाई अ० भा० प्रशासन सुधार आयोगके सदस्य श्री हनुमन्थैयाने की थी कि मोटर, जीप और वायुयानोंके इस युगमें छुड़सवारीका अनिवार्य प्रशिक्षण कोई तुक नहीं रखता, फिर भी दिया जाता है। इसके एवजमें मोटर, जीप और वायुयान चलाने, सरम्मत कर लेने आदिकी उन्हें अनिवार्य शिक्षा दी जानी चाहिये, जिनको उन्हें हर घड़ी प्रयोग करना होगा। अंग्रेजीमें ही सारा प्रशिक्षण देना, जब कि अंग्रेजीको इस देशके शासनतन्त्र से एक दिन विदा लेना ही होगा और क्षेत्रीय एवं हिंदी

संख्या १२]

भाषामें शासन चलाना होगा, प्रशिक्षणकी पुरातनताका दूसरा उदाहरण है—ऐसा इस लेखकका कहना है।

बाबू साहबने 'सीमा-कर' और 'प्रशासन-विभाग'के कर्मचारियोंके व्यवहारकी शिकायत की है; क्योंकि उनका यह ताजा अनुभव है। न्यायविभागकी शिकायत तो अब शिकायत मानी ही नहीं जाती; क्योंकि वहाँ अन्याय न हो जानेके लिये अधिक-से-अधिक छान-बीनमें समय लगना आवश्यक है। वे सेवाएँ पूर्ण सुरक्षित हैं और यह संरक्षण उसी संविधान-सभाने दिया था, जिसके बाबू साहब भी सम्मान-नीय सदस्य थे। सम्भव है कांग्रेसी शासक-दलके नेताओंके प्रबलतम समर्थनके सामने बाबू साहब जैसेका इन विशेषाधिकारोंका विरोध असफल रहा हो, परंतु अधिकार-प्राप्तोंको अधिकारका नशा चढ़े बिना कबतक रह सकता था। वह मदहोश न हो, परंतु नशेकी लहर तकका अनुभव नहीं करे, यह नहीं हो सकता। अठारह वर्षने जो जनता इन्हें सहन कर रही है, उसमें सहनेका स्वभाव ही है, विरोध करनेका नहीं।

हम पार्लियामेंटरी स्वराज्यके लिये और देशका समग्र शासन अपने ही हाथोंमें लेनेके लिये लड़े थे, महात्मा गांधीजीके रामराज्यके लिये नहीं; यह हम आज क्यों भुला दिये जा रहे हैं। उस शासनकी बुराइयोंके हम शिकार तभी नहीं होते यदि हमने पार्लियामेंटरी पद्धतिके स्वराज्यको अपने संस्कारों एवं देशकी प्रकृतिके अनुकूल ढालनेका जरा भी प्रयत्न किया होता। परंतु ऐसा हमने नहीं किया और न आज भी कर रहे हैं। उपस्थित कठिनाइयोंका हल भी हम इंग्लैंड और अमेरिकीके न्यायालयोंकी फाइलों, लारिपोटोंमें ही खोजते हैं। जिस व्यक्त मताधिकारको इंग्लैंड और अमेरिकीने सदियोंके अनुभव एवं जनतामें पर्याप्त शिक्षा-प्रचारके पश्चात् प्रचलन किया, उसे हम सर्व-प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्यके जन्म एवं २० प्रतिशत जनसंख्याके साक्षरमात्र होते हुए भी प्रचलन कर देनेका मिथ्याभिमान भले ही करें, परंतु उसके परिणामोंको तो हमें भुगतना ही होगा। हमने यह भुला दिया कि सजग जनतन्त्रका एकमात्र लक्षण व्यक्त मताधिकार-प्रदान ही नहीं है। इसी भारी भूलके कारण हमें कई प्रकारके विशेषाधिकारोंकी अपने संविधानमें अवतारणा करनी पड़ी और इस प्रकार निहित स्वार्थोंको शक्ति मिली, जब कि सफल जनतन्त्रके लिये निहित स्वार्थ पक्षोंका शीघ्रातिक्रमिक हल होना चाहिए था।

सबसेका भूला सौझको भी घर लौट आये तो वह भूला नहीं कहाता। इसी तरह जितने शीघ्र संविधानमें निहित-स्वार्थधिकारी धाराएँ हम रद्द कर दें, हमारे लिये अच्छा है।

चाहे १९४७ से १९५० की अवधि कितनी ही भीषण संक्रान्तिकालकी देशके लिये रही हो, पर सरकारी कर्मचारियोंकी वरखास्तगी आदिको धारा ३११ के अनुरूप अव्यवहार्य बनाये रखनेसे सरकारी कर्मचारी कमी सेवा-परायण और कामपटु हो ही नहीं सकेंगे और न देशमें भ्रष्टाचारका ही उन्मूलन हो सकेगा, जिसकी शिकायत आज हरमुँहसे सुनायी देती है चाहे कांग्रेसी शासकोंको सब कुछ बकवास ही लगती हो। एक तरहसे सारा दोष जनताका है, जो अपने सार्वभौम अधिकारका प्रयोग करनेमें अपनेको असमर्थ समझ बैठी है। आज गाँधीजी-जैसा नेता हमें कोई प्राप्त नहीं, जिसके नेतृत्वमें जनताने शैतानी अंग्रेजी राज्यको मिटा दिया था। अंग्रेज कवि शैलीका यह कथन सच है—

Power, like a desolating pestilence
Poilutes, whate'er it touches.

पूर्वकालमें ऋषियोंने राजा और राज्यकी चक्कीमें पिसती प्रजाके रक्षणका नेतृत्व किया था। गांधीजी प्रकृतिसे संत होते हुए भी राजनीतिमें प्रजाके कष्ट निवारणके लिये लिप्त हुए और उन्होंने जनताका सहयोग पाकर विदेशी शासनका भारी भरकम जुआ गर्दनपरसे उतार फेंकवाया। 'कल्याण' प्राचीन ऋषियोंकी परम्पराका संदेश ही भारतीय जनताको पहुँचा रहा है। पाश्चात्य नीतिके अधानुकरणने भारतीयोंकी गर्दनपर भारतीयोंका ही जुआ गरदनतोड़ भारी कर दिया है, जिसे उतार फेंकनेकी चेतना जगाना आज अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिये 'कल्याण'के द्वारा बाबू श्रीप्रकाशजीकी शिकायतके कारणोंपर प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया गया है। महाभारतकी यह स्पष्टोक्ति सदा स्मरण रखते हुए हमें समय रहते चेतना ही होगा—

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम् ।
इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम् ॥
दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक्कालस्यैव वर्तते ।
तदा कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः प्रवर्तते ॥

दण्डनीतिं परित्यज्य यदा कात्स्न्येन भूमिपः ।

प्रजा क्लिश्नात्ययोगेन प्रवर्तते तदा कलिः ॥

अर्थात् 'राजाका कारण युग है और राजा युगका कारण है यानी युग बनानेवाला है। इसमें जरा भी संशय नहीं है कि राजा युगका प्रवर्तक होता है। यदि राजा दण्डनीति (पोलीटिक्स) के अनुसार उचित आचरण करता है तो कृत यानी सत्ययुग प्रवर्तता है और राजा जब दण्डनीति याने पोलीटिक्सका परित्याग कर देता है और उसके विरुद्ध आचरण करता है तो जनता-प्रजा दुखी हो जाती है और वही कलियुग है।'।

बाबू साहबने अपने उपसंहारमें यह भी शिकायत की है कि 'उस जनतापर शासन करनेमें कोई गौरव और शान नहीं, जिसने आत्म-सम्मान गँवा दिया है।' प्रश्न यह उठता है कि भारतीयोंके आत्म-सम्मानका नाश कब हुआ? हमने स्वाधीनता पाकर उसे दीत करनेके कोई प्रयत्न किये या नहीं किये? पर इनका उत्तर देनेसे पूर्व हमें यह समझना होगा कि बाबू साहब 'आत्म-सम्मान' किसे कह रहे हैं? यदि हम भारतीयोंने आत्म-सम्मान वस्तुतः गँवा दिया है तो कब और कैसे? इसके लिये हमें समग्र भारतीय इतिहासका सिंहावलोकन करना होगा और उसमें भी अंग्रेजी कालके लगभग ३०० वर्षके इतिहासको कुछ गहराईमें देखना होगा। भारतमें हिंदू राज्यका अन्त होकर उसके बादके एक हजार वर्षतक चाहे मुसलमानोंका राज्य रहा हो, परंतु यह भी सत्य है कि उस कालमें हिंदू या मुसलमान कोई भी भारतवासी गुलाम नहीं था और न तबका भारतीय किसी भी परिभाषासे 'गुलाम' कहा ही जा सकता है। मुसलमान सुल्तानोंने और मुगल बादशाहोंने भारतवर्षको अपना देश मान लिया था और इसीके लिये वे जीये और मरे तथा मरनेपर इसी भूमिमें दफनाये भी

गये थे। सभीने देशकी चतुर्मुखी समृद्धि-वृद्धिके लिये जनताके साथ हर तरहसे सहयोग किया और उसे प्रोत्साहन दिया।

अंग्रेजोंने उनसे कहीं अधिक व्यापक और शक्तिशाली राज्य चाहे यहाँ कायम किया हो, परंतु उनके लिये यह देश सदा ही विदेशी और उनके अपने देश इंग्लैंडकी समृद्धि-वृद्धिका परम साधन मात्र ही रहा। यहाँ मरनेपर भी वहीं दफनाये जानेकी उनकी सदा ही वृत्ति रही, हालाँकि शयकी वहाँ ले जानेके द्रुतगामी साधन आजकेसे तब उपलब्ध नहीं थे। यूरोपके अमेरिका-प्रवासियोंने अफ्रीकियोंको गुलामरूपमें खरीदकर अमरीकाकी श्री-समृद्धिमें वृद्धि की। परंतु अंग्रेज भारतीयोंको उनके अपने ही देशमें एक पैसा भी खर्च किये बिना, सिर्फ अपने देशके कानूनों अथवा उनके आधारसे बनाये नये कानूनोंद्वारा गुलाम बनाकर वह सब काम कराते रहे और करनेको हर-तरहसे विवश करते रहे, जिससे इंग्लैंड उनका देश समृद्ध-से-समृद्ध हो। जितना ही इंग्लैंड समृद्ध हुआ, भारतवर्ष उतना ही नहीं, बल्कि उससे कहीं अधिक रंक, निर्माल्य और पंगु हुआ। इस तरह भारतीयोंके आत्म-सम्मानका विचार अंग्रेजी राज्यकालकी नीतियोंसे पूरा-पूरा संलग्न है और पहलेकी चर्चा दूसरेकी चर्चा किये बिना नहीं की जा सकती है। भारतीयोंके आत्म-सम्मानका विषय भी सरकारी कर्मचारियोंकी असीम शक्तिसम्पन्नता-जितना ही महत्त्वका और गम्भीर है। और यह भी उतना ही सच है कि स्वाधीनताके बाद स्थापित हमारी अपनी ही सरकार और सरकारोंने इसे दीत करनेमें वास्तविक रूपसे बहुत ही कम प्रयत्न किया है; क्योंकि किसी भी भारतीय परम्परामें सार-तत्त्व उसे नहीं लगा, हालाँकि कभी-कभी उसके प्रति लोकदिखाऊ आँसू अवश्य ही बहाते वे रही हैं।

बुद्धि नष्ट हो गयी

देश, धर्मको भूले, भूले सर्वजीवहित, श्रीभगवान ।
छाया नीच स्वार्थ जीवनमें, छाया तमपूरित अज्ञान ॥
मानव दानव हुए, असुरता छायी जीवनमें सब ओर ।
भूल गये 'कर्तव्य'-'त्याग', 'अधिकार'-'अर्थ'—मदमें घनघोर ॥
नित्य विषय-चिन्तनसे क्रमशः उदय हो गये सारे दोष ।
बुद्धि नष्ट हो गयी, मिटा सच्चिन्तन, बने पाप-विष-कोश ॥

भ्रष्टाचार और नैतिकता

(लेखक—श्रीवैजनाथजी शर्मा, एम्० ए०, एम्० एड०, सा० रत्न)

आज भ्रष्टाचार-उन्मूलनका एक आन्दोलन-सा छिड़ गया है। क्या हम इस आन्दोलनमें सफल हो सकेंगे? यदि हाँ, तो कैसे? ये ऐसे प्रश्न हैं जिनपर पहलेसे ही गहराईमें पैठकर विचार कर लेना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो जाता है।

मानव-क्रिया-कलापोंका ऐसा कोई क्षेत्र शेष नहीं रहा, जिसमें भ्रष्टाचारने प्रवेश न कर रक्खा हो। शिक्षा हो अथवा शासन, व्यापार हो या मजदूरी—प्रत्येक क्षेत्रमें इसका बोलवाला है। यदि इसकी उत्तरोत्तर प्रगतिपर बाँध नहीं लगाया गया तो वह दिन दूर नहीं जब यह मानवको मानव न समझकर, भोगकी वस्तु जानकर हड़प कर जायगा।

नदी पर्वतसे निकलकर निर्दोष गुल्मों और लताओंको नष्ट करती हुई मैदानमें जा पहुँचती है। वहाँ उसकी गति मन्थर भले ही पड़ जाय, क्षेत्र बड़ा व्यापक हो जाता है। उसकी उस मन्द गतिपर भी बहुव्यापी क्षेत्रके कारण हम रोक नहीं लगा सकते। बाँध बाँधना चाहें तो नहीं बाँध सकते। सम्भव है कुछ समयके लिये अस्थायी तौरपर उसे रोकनेमें हम सफल भी हो जायँ, लेकिन उसका वह रूप और भी भयानक होगा। कभी भी वह उस बाँधको लाँघकर वह सकती है। अतः हमें यदि उसपर रोक लगानी ही है, उसके प्रवाहको मोड़ना ही है तो यह उसी स्थानपर सम्भव है जहाँ उसका मूल स्रोत है। भ्रष्टाचारका यदि हमें उन्मूलन करना ही है तो उस स्रोतकी खोज करनी ही पड़ेगी, जहाँसे निकलकर इसकी अनेक शाखाएँ बन गयी हैं।

भ्रष्टाचारका अर्थ है, भ्रष्ट+आचार। आचार और विचारका चोली-दामनका साथ है। हमारे बिना पहले

का कोई अस्तित्व नहीं। हमारे विचार यदि सत् हैं तो आचरण भी शुद्ध होंगे। हमारे आचरण तभी भ्रष्ट होंगे जब हमारे विचार भ्रष्ट हों। यदि भ्रष्टाचारको मिटाना है तो भ्रष्ट विचारोंकी उद्घाटनाओंपर रोक लगानी ही होगी।

बदलते हुए संसारके साथ आज हम इतने बदल चुके हैं कि अपनी उस संस्कृतिको भी भूल गये जिसके बलपर सभ्यताके क्षेत्रमें हम सबसे अग्रगण्य थे। एक समय था जब संसारके अन्य लोग हमारी सर्वकल्याणकारिणी संस्कृतिके सार तत्त्वोंको ग्रहण करनेके लिये यहाँ आया करते थे। आज यह समय है जब हम दूसरोंका अन्धा और सारहीन पतनोन्मुखी अनुकरण करनेमें लगे हैं! वात-वातमें दूसरोंका मुँह जोहना ही हमने सीखा है। हमारा उन्नत मस्तक अवनत होता जा रहा है। समझमें नहीं आता कि हम सच्चे अर्थमें विकासकी ओर जा रहे हैं अथवा विनाशके बीज बो रहे हैं। यदि हमें वास्तवमें भ्रष्टाचारका उन्मूलन करना ही है तो अपनी नीति बदलनी ही पड़ेगी। राजनीति नहीं, धर्मनीति। भूली हुई संस्कृतिको अपनाना ही पड़ेगा। तभी हम अपने अभियानमें सफल हो सकते हैं, अन्यथा नहीं; मानवके विचारोंको परिवर्तित किये बिना यदि हम भ्रष्टाचारको काटकर फेंक भी दें तो वह पुनः हरा हो जायगा। एककी अनेक शाखाएँ फूट पड़ेंगी। हमें उसे खोदकर फेंकना ही है तो अपने विचारोंमें परिवर्तन लाना ही होगा। दूसरोंके विचारोंको बदलना ही पड़ेगा। विचार-परिवर्तनके बिना हमें सफलता नहीं मिल सकती। यथा—

शिक्षा और भ्रष्टाचार !

शिक्षा—जैसे पावन क्षेत्रमें भी भ्रष्टाचारकी बुनियाद

उसी समय पड़ गयी, जब गुरु और शिष्यके पुनीत सम्बन्धोंको नये विचारोंने नया रूप दिया। दोनोंका ही दृष्टिकोण बदल गया। एकने शिक्षाको बेचना प्रारम्भ कर दिया, दूसरेने खरीदना। न गुरुके अंदर पवित्र स्नेह रहा और न शिष्यके अंदर गुरुके प्रति श्रद्धा। चाकू और पैसेमें वह शक्ति आ गयी जिसके बलपर अच्छे-से-अच्छा प्रमाणपत्र प्राप्त किया जा सकता है। बालकोंकी वह प्रार्थना—

मातु पिता गुरु आज्ञा जानें ।
अपना भला इसीमें जानें ॥

सारहीन हो चुकी है। गुप्तजीके वे विचार 'श्रद्धा-पर श्राद्ध न आडम्बरपर' निरर्थक माने जाने लगे हैं।

यह सब क्यों? केवल इसीलिये कि हमारे अंदर नैतिकताका अभाव हो गया है। शिक्षा शिक्षाके लिये न रहकर व्यवसायके लिये रह गयी है।

उन्मुक्त प्रेम और भ्रष्टाचार

प्रेम जीव-जगत्का एक परमावश्यक अङ्ग है, उससे पशु-पक्षी भी अछूते नहीं रहे। भाई-बहिनका प्यार कितना सात्त्विक है? माता और पुत्रका प्यार कितना वात्सल्य एवं श्रद्धामय है? किंतु आज हमें इन रूपोंमेंसे कोई भी अच्छा नहीं लगता। हमें उसका निकृष्टतम रूप ही, जिसमें नीच वासनाकी दुर्गन्ध है, अच्छा लगने लगा है। प्रेम-जैसी विशुद्ध अनुभूतिमें वासना-जैसे भ्रष्ट तत्त्वोंका प्रवेश ही भ्रष्टाचारका मूल कारण है। उसका सहयोगी है—पाश्चात्य सभ्यताका अन्धानुकरण, सिने-संसारका उन्मुक्त काम और हमारी भड़कीली वेशभूषा एवं विचार। उन्नतिशील देशोंसे हम तभी आगे निकल सकेंगे जब हम अपनी आत्माका विकास करें, उसे प्रेमके नामपर दूषित मोहके जंजालमें न पड़ने दें। हम अपने विचार बदलें, अपने अंदर नैतिकताके भाव भरें। यह तभी सम्भव है

जब हम अपनी प्राचीन संस्कृतिका आदर करें, धर्ममें विश्वास करें, सर्वदर्शी सर्वान्तर्यामी प्रभुपर विश्वास करें। अन्यथा हम कुछ अवोध अविकसित कलियोंके जीवनको नष्ट करनेके अतिरिक्त कुछ न कर सकेंगे।

व्यापार और भ्रष्टाचार

आजके व्यापारका केवल एक ही उद्देश्य रह गया है अधिक-से-अधिक धन संग्रह करना। हम दूसरोंके गलेपर छुरी चला सकते हैं, परंतु पैसे तो नहीं छोड़ सकते। जो भूखा नहीं रहा, उसे भूखकी पीड़ाका अनुभव नहीं। जिसका पेट भरा है, उसे दूसरोंकी चिन्ता नहीं। आज इन विचारोंमें कोई सार नहीं रहा—

साईं इतना दीजिये, जामें कुटुंब समाय।

मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥

संसार भूखों मरता है तो मरे। अतिथि भूखा जाता है तो जाय। हमारे सामने एक ही उद्देश्य रह गया है—'हमारा पेट भरे, हमारे कुत्तोंका पेट भरे। हम आरामसे जीवन बितायें, महल खड़े करें। दुनिया रोती है तो रोये, मरती है तो मरे।' भ्रष्टाचारको हम तभी उन्मूल कर सकेंगे, जब इन विचारोंको बदलेंगे, विचारोंमें नैतिकता लायेंगे, दूसरोंकी पीड़ाको अपनी समझेंगे। उनके दुःखमें सम्मिलित होंगे।

नौकरी और भ्रष्टाचार

समय-समयकी बात है। समयके परिवर्तनने हमें उस स्थितिमें ला पटका है, जहाँ हमारी योग्यताकी कोई पूछ नहीं। हमारे आँसुओंका कोई मूल्य नहीं। उन विचारोंमें कितनी सत्यता है जो एक विद्वान्ने एक इण्टरव्यूके समय कहे थे—

'No one is going to ask you, what is your qualification? Everyone will ask you what recommendations, sources and bribes you have?'

संख्या १२]

‘तुमसे कोई यह नहीं पूछेगा कि तुम्हारी योग्यता क्या है ? प्रत्येक तुमसे यही पूछेगा, तुम्हारे पास सिफारिशें क्या हैं, सूत्र क्या हैं और रिश्वत देनेके लिये कुछ है या नहीं ?’

क्या इसीका नाम मानवता है ? जहाँ एक व्यक्ति केवल इसलिये नौकरीसे वञ्चित रह जाय कि उसके पास पैसेका अभाव है, जान-पहचानकी कमी है । दूसरा इस बलका प्रयोग करके अपनेको सर्वशक्तिमान् समझने लगे । यदि हम सच्चे अर्थमें मानव हैं तो हमें अपनी सच्ची संस्कृतिको अपनाना ही होगा ।

फिर कहीं नौकरी मिल गयी तो पूरा काम ईमानदारीसे न करके मालिकको धोखा देना और मालिकको सीधा नौकर मिल गया तो उससे अधिक-से-अधिक काम लेकर भी न्याय्य मजदूरीके पैसोंसे वञ्चित रहना ।

भीख और भ्रष्टाचार

आज ऊँचे कहानेवाले लोग भी इसे सारहीन समझने लगे हैं—

मर जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज ।

परमारथ के कारणे, मोहि न आवै लाज ॥

वे इसे नहीं समझते कि—

माँगत माँगत मान घटे.....

वे तो अधिक-से-अधिक प्राप्त करनेके नये-नये ढंग अपनाने लगे हैं । स्वयंको साधु कहलानेवाले लोग धन

और सतीत्वका अपहरण करने लगे हैं । यह सब क्यों ? केवल विचारोंकी भ्रष्टताके कारण ।

सारांश यह कि आज छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा, अच्छे-से-अच्छा और बुरे-से-बुरा—कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं, जहाँ भ्रष्टाचार न हो । यह सब केवल विचारोंकी तामसिकता, विषयप्रवणता, नीच स्वार्थपरता तथा धर्महीनताके ही कारण है । मैं यह नहीं कहता कि हम दूसरे देशोंके साथ आगे न बढ़ें । हमें बढ़ना है, हम बढ़ेंगे, किंतु धर्मको साथ लेकर, अपनी सर्व-कल्याणमयी परमोदार संस्कृतिके आधारपर, उसके संरक्षणपर तथा पीड़ितोंको सहारा देकर, उनकी कठिनाइयोंको दूर कर, सर्वभूतहितकी सद्भावनाओंके बलपर । फिर इस प्रकार हम इतना बढ़ सकते हैं कि संसारका कोई भी देश हमसे आगे न जा सकेगा । हमें धार्मिक और नैतिक चरित्र-बलके सहारे बढ़ना है । तमसाच्छन्न बुद्धिके सहारे नहीं, जो एक दिन हमें विनष्ट भी कर सकती है । यदि हमने दूसरोंकी पीड़ा-पर ध्यान नहीं दिया, भूखोंकी पीड़ाको नहीं पहिचाना, परहितव्रत नहीं लिया तो उन दुखियोंकी आहें हमें भस्मसात् कर देंगी । उस समय न हमारा अस्तित्व ही रहेगा और न भ्रष्टाचार ही । भ्रष्टाचार मिट सकता है, धार्मिक नैतिक-बल और भावनाओंके सहारेसे ही, केवल कानूनसे या और किसी बलसे नहीं ।



प्रियतमके प्रति

जन्मका ले भार घर तक मृत्युके सौ-बार जाता ।
पर अकेलाका अकेला है किसीसे कुछ न नाता ॥
मार्गमें कुछ भ्रमित मुझको और भी हैं भ्रमित करते ।
है कहीं कुछ भी नहीं, पर लूटनेकी बात करते ॥
एक तड़पन-सी घुटन-सी स्वार्थका ताण्डव चतुर्दिक् ।
खेल मायाका कहो या व्यास है जड़ता चतुर्दिक् ॥

थक गया चल चल अँधेरे पंथपर मंजिल न पाई ।
कण्टकोंने पैर छेदे फिर तुम्हारी याद आई ॥
शूल हँसकर फूल बन जायें, जरा तुम मुस्कराओ ।
प्यारका बरदान बनकर तुम हमारे पास आओ ॥
—श्रीशिवशंकरलाल त्रिवेदी (बी० ए०, एल्० टी०)

मोह

[कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

‘खड़े रहियौ कदंबकी छँइयाँ,

गगरिया घर घर आऊँ । —खड़े रहियौ.....

पति पास ही खेतमेंसे रसभरे गन्ने काटकर ला रहा था। उनके छोटे-छोटे दुकड़े करके सोनी उन्हें कोल्हूमें पेर रही थी। रस निकलकर घड़ेमें इकट्ठा हो रहा था। पास ही भट्टीपर बड़े कड़ाहमें पहलेका रस औटकर राव बनता जा रहा था, गाढ़ा होनेपर गुड़ बन जायगा। सोनी कोल्हूके बैलोंको प्रेमभरी टिटकारीसे हँकती हुई उपर्युक्त भजन गा रही थी। उसे याद था कि ‘नृसिंह-मन्दिर’में चलकर वहाँकी झाड़ू-बोहारी करनेके पश्चात् पूजाकी सब सामग्रीको यथारिति सजाना है। बाबाजी महाराज मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। इस कामको नित्य करने जानेके लिये उसे पतिकी आज्ञा मिली हुई थी।

सुगनाकी पत्नी सोनी गर्भवती होनेपर भी काम कुर्तसि करती थी। दम्पतिमें बड़ा ही प्रेम था। दोनों खेती तथा घरके कामोंसे निवृत्त हो संध्या-समय नृसिंह-मन्दिरमें चले जाते और वहाँ सामूहिक कीर्तनमें सम्मिलित हो प्रेमसे हरिकीर्तन करते-करते भक्ति-रसमें इतने डूब जाते कि उन्हें तन-मनकी सुधि भी नहीं रहती थी।

× × ×

खाकी बाबा नृसिंहदासजी बड़े कायाकष्टी, नेमधर्म-साधक, भगवद्भक्त और जनप्रिय साधु थे। उनका नृसिंह-मन्दिर पहले दूर निर्जन स्थानमें था, जहाँ भक्तजन बहुत कम पहुँचनेसे भगवान्के भोग और साधुजीके भोजनकी व्यवस्था नहीं हो पाती थी। कभी कुछ न होनेपर बाबाजी धूनीकी भस्मको पानीमें घोल-छानकर पी जाते और श्रीभगवान्के छप्पन भोग छत्तीस प्रकारके व्यञ्जनोंका मानसिक भोग लगा देते थे। इस कठिनाईको मिटानेके लिये भक्तोंने नगरके पास ही नृसिंह-मन्दिर बनवाकर बड़े समारोहके साथ भगवान्की प्रतिष्ठा करा दी थी।

बाबाजी प्रतिवर्ष ग्रीष्मऋतुमें यथानियम चौरासी धूनी तपते थे, जिससे उनके तनका चर्म जला-जला-सा होकर उसमें चकत्ते पड़ जाते थे, किंतु तपस्याके प्रभावसे मुख-मण्डलकी कान्ति चमकती रहती थी। धूनीकी समाप्तिपर वे भक्तोंके चन्देसे एक बड़ा ब्रह्मभोज करते, जिसमें अगणित मनुष्योंके भोजन कर जानेके बाद भी प्रचुर सामग्री बची रहती थी, जिसे लोग बाबाजीका चमत्कार समझते थे। बाबाजीके रघु और राम—दो चेले थे। रघु प्रतिदिन कंधेपर काँवर लेकर ‘धनुप्रधारी राम’की ध्वनि लगाते हुए नगरसे भिक्षामें आटा लाता था। किंतु गँजिके व्यसनी इस भोलेभाले काले कुरूप अपढ़ चेलेसे बाबाजी सदा अप्रसन्न रहते थे। राम गौरवर्ण, निर्व्यसनी और पठित था, इससे उसका पूरा विश्वास करते थे।

(२)

‘देखना बेटी सोनी ! उस ढेलेके धक्का न लग जाय—दूर रहना उससे ।’ बाबाजी सोनीको इस तरह नित्य सावधान कर दिया करते थे। सोनी भी चेतावनीके अनुसार पूरा-पूरा ध्यान रखती थी ढेलेका। वह और दर्शनार्थी आश्चर्यके साथ नित्य देखते कि बाबाजीकी दृष्टि उस ढेलेपर ही लगी रहती है। यह लिपा-पुता स्वच्छ मिट्टीका बड़ा ढेला मन्दिरके कपाटोंको रोके रखनेका टेका (सहारा) था, जिसे बाबाजी रात्रिको कपाट बंद कर अपने सिराहने रख कर सोते थे।

बोरगाँवके भगवद्भक्त त्रिहारी जमींदारकी परगनेमें बड़ी प्रतिष्ठा थी। देवाल्योंका जीर्णोद्धार कराने और उनमें भगवान्की सेवा-पूजाकी उत्तम व्यवस्था करानेमें वे अपनी गाढ़ी कमाईका धन सहर्ष व्यय करते थे। वे नित्य नृसिंह-मन्दिरमें भगवान्के दर्शन करनेको आते और भक्तिभावसे यह स्तुति करते थे—

श्रीशोभाढयं नववननिभं रम्यवंशीनिनादं
प्रेमाधारं मधुरमधुरं पीतवस्त्रं सुमाल्यम् ।

गीताकारं निखिलसुखदं भक्तराजेन्द्रपूज्यं
वन्दे कृष्णं परमपुरुषं देवदेवाधिदेवम् ॥
—(स्व० पं० गिरिधरशर्मा 'नवरत्न')—

फिर बाबाजी उनको पास बैठाकर, माया-मोह छोड़ भगवान्‌का भजन करनेका उपदेश दिया करते थे। यह देख लोग आपसमें बातें करते कि 'बाबाजीने जमींदारजीको ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करनेकी कोई विधि बता दी है, इसीसे इनका वैभव बढ़ता जा रहा है।'

एक दिन जमींदारने बाबाजीसे भगवान्‌का ध्यान करनेकी विधि पूछी। बाबाजीने ढेलेपरसे थोड़ा ध्यान इटाकर कहा कि शास्त्रोंमें कई विधियाँ हैं, पर मैं तुम-जैसे बहुधंधी-के लिये सबसे सरल विधि बताता हूँ—पनिहारिन सिरपर जलपूर्ण घड़े रखकर मार्गमें चलती है। अभ्यास हो जाने-से घड़ोंको हाथोंसे पकड़ती भी नहीं। साथियोंसे हँस-हँसकर बातें करती और परिचित जनोंसे यथायोग्य अभिवादन भी करती जाती है। मार्गमें कंकड़-पत्थरोंसे बचती और कोई पूज्य वृद्धजन मिल जाते हैं, तो नीची दृष्टि कर आदरभावसे हाथ जोड़ उनसे प्रणाम करना भी नहीं भूलती, घर पहुँचकर आगेके कार्यक्रमोंकी याद भी रखती है। किंतु देखो, उस समय उसके चित्त-मन, बुद्धि-विवेक, ध्यान-धारणा सभी इन कामोंमें नहीं—बल्कि सिरपर रखे जलपूर्ण घड़ेकी ओर लगे रहते हैं कि 'यदि मैं कहीं थोड़ा भी हिली-डुली अथवा गर्दनमें तनिक लचक आनेसे संतुलन बिगड़ा तो पड़ा नीचे गिरकर फूटेगा, जल फैल जायगा। लोग तमाशा देखेंगे, मुझे लजित होना पड़ेगा।' तो, समझनेकी बात यह है कि वह जो सुरत या ध्यान घड़ेकी ओर लगा रहता है, ऐसे ही भगवान्‌का ध्यान तुम सब काम करते हुए किया करो।

कुछ दिनोंके पश्चात् जमींदारने आकर कहा कि 'महाराज ! मेरे ध्यानमें तो पनिहारिनकी जगह दूध-दही बेचने-वाली महिला आ जाती है, भगवान्‌का कोई स्वरूप ध्यानमें नहीं आता।' बाबाजी प्रसन्न होकर बोल उठे—'बहुत अच्छा। वहाँ इतना और ध्यान करो कि आनन्दकन्द, ब्रजचन्द्र, मोरमुकुटधारी, वनवारी, वंशीवज्रैया, श्रीकृष्ण-कन्हैया मानो उस गूजरीसे गोरस बेचनेका कर माँग रहे हों। बिल्कुल दानलीलाका ध्यान करते रहो।'।

जमींदारजीने अभ्यास आरम्भ किया। सतत

दीर्घकालीन अभ्यास सिद्ध होता ही है। जमींदारजीका ध्यान ठीक लगाने लगा और उनके हृदयमें भगवान्‌के लीलानन्द-के कारण शान्ति देवीने अपना आसन जमाना आरम्भ कर दिया।

(३)

नृसिंह-मन्दिरमें नित्य सामूहिक कीर्तन होता था। एक दिन महिलाओंने स-समारोह यह आयोजन किया। भगवान्‌की भक्तिमें सराबोर रतना नामकी एक महिलाको प्रेमावेश हो गया और साथ ही सभी महिलाएँ प्रेम-दीवानी-सी होकर रतनाका साथ देती कीर्तन-भजनमें तल्लीन हो गयीं।

कीर्तनसे घर जाकर सोनी ऐसी सोयी कि अरुणशिखाकी ध्वनि नहीं सुन पायी। मन्दिर पहुँचनेमें कुछ विलम्ब हो गया। इससे मनमें दुःख पाती हुई वह मार्गमें पछताती जल्दी-जल्दी जा रही थी—'बाबाजी महाराज आज मुझे अवश्य कामपरसे हटा देंगे। रिज्जक-रोटी देनेवाले हे भगवन् ! आप ही मेरे रक्षक हैं।' ऐसी आशंकाको लिये हुए वह बाबाजीके सामने पहुँचकर हाथ जोड़—मस्तक नवा विनीत भावसे, देर हो जानेके लिये क्षमा माँगने लगी। मनमें भय बना ही हुआ था कि पता नहीं, बाबाजी क्या कहेंगे।

किंतु शान्ति, सन्नाटा। सोनीने गर्दन उठाकर देखा, तो सामने बाबाजी नाराज होनेकी अपेक्षा चुपचाप उदास बैठे थे। आँखें सजल हो रही थीं। बोल नहीं पा रहे थे, मानो जिह्वाको पक्षाघात हो गया हो। अपनी उदासीको बहुत कठिनाईसे छिपाते हुए दर्शकोंको भगवान्‌का चरणामृत-तुलसी वितरण कर पा रहे थे। सबके चले जानेपर बाबाजी-को बहुत उदास तथा मौन देख भबभीत हुई सोनीने हिम्मत बटोर कर, काँपते हुए हाथ जोड़, बाबाजीसे पुनः क्षमा-याचना की। कुछ देरबाद बड़ी कठिनाईसे बाबाजी बोले—

'बेटी ! महा-अनर्थ हो गया। मैं लुट गया। बड़ा धोखा हुआ मेरे साथ। जिस वस्तुकी मैं वर्षोंसे रात-दिन रक्षा कर रहा था, जो मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी, जिसका भेद किसीको मालूम न था। मिट्टीका ढेला होनेसे जिसके चोरी चले जानेकी शङ्का तो मुझे बिल्कुल नहीं थी।' सोनी बीचमें बोलनेका उपक्रम करने लगी। इतनेहीमें बाबाजी फिर बोल उठे—'हाँ, हाँ, बेटी, वही ढेला, वही ढेला, राम लेकर भाग गया। उस ढेलेमें मेरे गृहस्थजीवनकी स्वर्ण-मुद्राएँ, हार-कंठे आदि थे। मुझे रामका पूरा-पूरा भरोसा हो गया था।

इसीसे मैंने उसको भेद बता दिया था। वह मुझे श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता नित्य सुनाया करता था। फिर भी न जाने किस पापके कारण उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी? पुलिसको भी मैं बदनामीके डरसे सूचना नहीं दे सकता। अबतक लोगोंकी धारणा थी कि मेरे पास कुछ नहीं है। ब्राह्मण-भोजन आदि चन्देसे होते थे। ओह ! मोह-माया, लोभ-लालच भी कितनी बुरी बला है। इससे बचना किसी महान् योगी-यती-सतीका ही काम है। मैंने इसके चक्करमें पड़कर अपने साधु-वेषको कलङ्कित किया है। मैं इस बलासे बचनेका उपदेश लोगोंको देता था। पर, हुआ यही कि—

‘पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहि ते नर न घनेरे ॥’

मैं सचमुच भगवान्की भक्ति तो करना चाहता था, पर मेरा मोह कितना दृढ़ था कि मैं मुहरों और गहनोंको बटोरे छिपाये रखता रहा। किसीको मैंने दिया नहीं; भोगा नहीं। लोगोंके सामने निःस्पृह निष्किञ्चन बना रहा। मेरे पास आनेवाले लोगोंने तो अपनी श्रद्धाके फलस्वरूप लाभ उठाया, अब भी उठा रहे हैं। कई लोगोंको शान्ति मिली, कई लोग कीर्तनका सच्चा रस पान करने लगे, पर मैं अभाग्य मोहवश कोराही रह गया। अच्छा हुआ—भगवान्ने उन वस्तुओंको हटाकर मेरा मोह भङ्ग कर दिया। पर बेटी ! अब तू भूलकर भी किसीसे यह हाल मत कहना। नहीं तो, मेरी प्रतिष्ठा मिट जानेसे भक्तोंका यहाँ आना-जाना बंद हो जायगा। उनकी भक्ति-साधनामें भी विघ्न होगा। पुलिस आकर उल्टे-सीधे सवाल पूछेगी। मान-मर्यादा भंग हो जानेसे मैं कहींका भी नहीं रहूँगा।’ सोनीने आश्चर्यसे चकित होकर बातको गुप्त रखनेकी ‘हाँ’ भर ली।

दिन जाते रहे। एक दिन सोनीका मन फिसल गया। उसने सहेली रामप्यारीके कानमें धीरे-धीरे सारी घटना सुना दी और प्रतिज्ञा करा ली कि भूल कर भी वह किसीसे न कहे। रामप्यारीने थोड़े दिन तो मनको रोका। अन्तमें अपनी साथिन गोपालीके कानमें चुपकेसे यह सब हाल कह दिया और किसीसे न कहनेका वादा करा लिया। इस तरह अपनी सहेलियोंमें कह-कहकर वे प्रतिज्ञा कराती रहीं। अन्तमें बात फैल जानेसे लोगोंको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। कुछ निठल्ले लोगोंका तो यही काम बन गया कि वे हाट-चाट, चौराहे-चबूतरोंपर बैठे लोगोंमें जाकर बाबाजीकी बुराईयाँ कर उन्हें हर तरह बदनाम करने लगे। कहा भी है—

कोई खूबी नहीं होती है, जिस इन्सानमें अय ‘दानिश’।
समझता है वह अपना फल, औरोंकी बुराईमें ॥

(४)

इधर, राम एक बड़े नगरमें ठाट-चाटसे रहने लगा। पड़ोसियोंको संदेह हुआ। संकेत पाते ही पुलिसका जवान कृपालसिंह आ पहुँचा। उसके द्वारा डराने-धमकानेके फल-स्वरूप रामने दो स्वर्णमुद्राएँ उसे घूसमें दे दीं। कृपालसिंह, रामको निर्भय रहनेका आश्वासन देकर स्वर्णमुद्राओंको निहारता हुआ खुशी-खुशी अपने घरकी ओर चला। मार्गमें एक व्यक्ति अपने पुत्रको धमका रहा था—‘क्यों तूने उसकी चीज बिना पूछे उठायी?’ दूसरोंकी चीजपर मन चलाना महापाप है। पुत्र काँपते-काँपते प्रतिज्ञा कर रहा था—‘अब कभी नहीं उठाऊँगा।’ यह वार्तालाप कृपालसिंहके कानोंमें पड़ते ही उसका अन्तर-ज्ञान झंकृत हो बोल उठा—‘इस धूलको जल्दी-से-जल्दी मुट्ठीमेंसे फेंक।’ इस विचारके आते ही उसने जाकर स्वर्णमुद्राएँ रामको वापस लौटा दीं और अपने कर्त्तव्यका पालन करते हुए उसे गिरफ्तारकर ऊँचे अधिकारीके सामने पेश कर दिया। सत्य घटना साबित होनेपर रामको कारागृहकी सजा मिली। वहाँके दुःखोंको भोगते-भोगते राम अत्यन्त पश्चात्ताप करता रहता था—‘हाय ! मैंने गुरुजीका अक्षम्य अपराध किया है। मुझ पापीका उद्धार कैसे होगा ! हे भगवन् ! आपने इतने पापियोंको तारा है, जितने आकाशमें तारे भी नहीं हैं। मुझे भी तारना होगा।’

इस प्रकार पश्चात्ताप-प्रार्थना करते-करते उसका समय बीतने लगा। वह कृश हो गया। अन्तमें अवधि पूरी हो जानेपर उसे जेलसे छोड़ दिया गया। अपने हृदयकी तपन बुझानेके लिये वह सीधा चलकर गुरुजीकी चरण-शरण लेनेके लिये आया। किंतु गुरुजी और गुरुभाई खु अव इस संसारमें नहीं रहे थे। मन्दिर दूसरेके अधिकारमें चला गया था। रामको इनका वियोग असह्य हो उठा। वह बार-बार जाकर मन्दिरकी सीढ़ियोंपर माथा टेक रुदन करता रहा। कौन जाने उसकी व्यथाको। नये अधिकारीने वहाँसे उसे हटवा दिया। अन्तमें रामने गुरु और गुरुभाईकी स्मृति-रक्षास्वरूप मन्दिरके पास ही एक कुटिया बना ली और उसमें रहकर गुरुजीके चित्रकी पूजा तथा हरिभजन

१-गौरव

करते लगा। धीरे-धीरे उसने अपने श्रमसे कुँआ खोद लिया, जिसमें मीठा जल निकल आनेसे नगरवासियों तथा पशुओंको जल-कष्ट न रहा। पशु तृप्ता मिटाकर वहीं घने वन्यक्षेत्रके नीचे बैठ विश्राम करते थे। 'धनुषधारी राम'की ढेर लगाकर राम नगरसे आया भिक्षामें ले आता और उसके व्यञ्जनका भोग भगवान्‌के लगाकर प्रसाद पा लिया करता था। इस तरह उसके निमेष, पल, घड़ी, दिन, मास, वर्ष बीतने लगे। किंतु अपने दुष्कर्मकी स्मृति उसके हृदयके एक एकान्त कक्षमें शूलकी भाँति रात-दिन चुभती रहती थी। वही प्रश्न उठता—'क्या प्रायश्चित्त करूँ—कैसे उद्धार होगा !'

× × × ×

एक दिन सरदार फतेहसिंह और पं० रामानन्द मार्गमें जाते-जाते रामकी कुटियाके सामनेसे बातें करते निकले। पण्डितजीने कहा—'यह झोंपड़ीवाला बड़ा गुरुघाती और पक्का चोर है।' सुनते ही सरदारजी बोल उठे—'भई ! ऐसी बातें रहने दो। जिस इन्सानसे गलती नहीं होती, वह इन्सान नहीं है। कहा है—'नहीं क्या-क्या सितम करती है, चढ़ती उम्र औ दरिया।' आपने देखा ही था—कसरती, गठीला, रौबीला, जवानीकी अँगड़ाई लेता हुआ, नये खूनसे सुर्ख, ब्रह्मचर्यसे दृष्टपुष्ट, गोरा बदन इसका। अब देखिये, पश्चात्तापकी आगमें झुलसते-झुलसते ऐसा तन हो गया है कि गौरसे देखनेपर भी पहचाना नहीं जाता। अब भला कहाँतक इसे लानत-मलामत देते रहोगे ? तौबा ही बड़ा भारी प्रायश्चित्त है। अब इसे संसारमें जीने दो।'।

यह वात्तालाप रामने सुन लिया। इससे उसको बड़ा उत्साह मिला। पश्चात्तापसे झुलते रहनेमें कुछ कमी हुई और जीवनमें प्रकाश लानेके लिये वह कुछ लोकोपकारके कार्य करनेमें जुट गया। जैसे—

(१) वहाँके शिकारियोंसे उपदेश देकर जीव-हिंसा करना बंद करवा दिया। अब वे लोग खेती करके अपने परिवारका पालन-पोषण करने लगे।

(२) जिन किसानोंने अधिक उपजके लालचमें आकर गोचर-भूमिमें खेती कर ली थी, उनसे निहारे कर-समझाकर वह जमीन छुड़वा दी, जिसमें फिर वास उत्पन्न होनेसे नगरके पशुओंको भर पेट घास चरनेके लिये मिलने लगा।

(३) नगरके देशभक्तोंके साथ गाँव-गाँव जाकर किसानोंको 'अधिक अन्न उपजाओ'का उपदेश देते हुए सरकारद्वारा प्रचारित अधिक अन्न उपजानेकी विधियाँ समझाता था। कुछ वृद्ध अनुभवी कृषक अपने अनुभवकी बातें सुनाते। इस प्रकार किसानोंको अधिक अन्न उपजानेका ज्ञान और उत्साह मिलता था।

(४) नित्य समयपर श्रीमद्भागवतका पाठ उपदेश-पूर्ण शैलीमें लोगोंको सुनाता था और भेट केवल निर्वाहके लिये स्वीकार करता था।

(५) जो आटा भिक्षामें लाता, उसमेंसे एक मुट्ठी आटा नित्य धर्मार्थ निकालकर घड़ेमें एकत्र करता और अधिक इकट्ठा हो जानेपर उसे दीन-दुखियोंमें बाँट दिया करता था।

(६) उसका कोई भी क्षण हरिस्मरणके बिना व्यतीत नहीं होता था।

× × × ×

दिन बहावकी तरह बहते गये। कुछ स्वार्थी लोगोंकी यह दुराशा दृढ़ होती गयी कि 'रामसे गुरुका चुराया धन येन केन प्रकारेण हथियाना चाहिये।' कोई कहता—'राम ! हम तुम्हें एक मन्दिरकी भारी सम्पत्तिका महन्त बना दें।' कोई कहता—'अमुक सुन्दर युवतीसे विवाह करा दें, उत्तरावस्थामें पत्नीका सुख भोगना।' कोई लालच देता—'मैं धनको तुम्हारे देखते-देखते बीसगुणा कर देनेकी अचूक विधि जानता हूँ।' आदि कई प्रलोभन दिये जाने लगे।

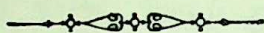
राम कुछ ललचाया, किंतु अन्तर्ध्वनि हुई—'मनको फौलादकी जंजीरोंसे जकड़ दो।' रामको जीवनमें अनेक ठोकरें खानेके बाद दुनियादारीका काफी अनुभव हो गया था, अतः उसने सबसे हाथ जोड़ विनयपूर्वक यही कहा—'कृपया क्षमा करें। मैं अब किसी भी प्रपञ्चमें फँसना नहीं चाहता। लोकोपकार करना और भगवद्भजनमें लीन रहना—यही मैंने अपना ध्येय बना लिया है।' और वह अपने ध्येयकी पूर्तिमें निरन्तर लगा रहा। 'जपात् सिद्धि'के अनुसार उसके तनमें नयी कान्ति और मनमें परम शान्ति व्याप्त हो गयी थी। जिसका उत्तम प्रभाव पड़नेसे पास आनेवाले व्यक्तियोंके संस्कार परिष्कृत हो जाते

थे। उसकी ओरसे प्रेम, सहानुभूति, दया, धर्मका व्यवहार देखकर लोग उसे महात्मा समझने लगे थे।

× × × ×

सोनीने जब सुना, तो वह निराई छोड़, दुधमुँहे बच्चेको सहेली रमाके पास रख, पतिके साथ अपने गुरु-भाईके पास आयी और स्नेहभरे मोती-से आँसू गिराती हुई बोली—‘भैया ! इतने दिन कहाँ कष्ट पाते रहे ?

मेरे पास क्यों नहीं आ गये, मैं अपने प्यारे भाईको तनिक भी कष्ट नहीं होने देती।’ अपनी गुरु-बहनके निश्चल, सरल, शुद्ध, ममत्व और अपनत्व-भरे मधुर वचनोंको सुनकर राम बोला—‘प्रिय बहन ! करनीका फल तो भोगना ही पड़ता है। फोड़ा था—जो पककर फूटा, वहा, अब वाप भरकर ठीक हो गया है। हाँ, उसका चिह्न तो रहेगा ही।’ इसके पश्चात् दोनों बहन-भाई एक दूसरेके सुख-दुःखमें काम आते रहे।



महात्मा गांधीकी एक अद्भुत विशेषता

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

इस विश्वमें असंख्य प्राणी जन्म लेते हैं और चले जाते हैं। इनमेंसे कुछ प्राणी ऐसे भी होते हैं जिनकी स्मृति लंबे समयतक बनी रहती है। वैसे तो कालके अनन्त प्रवाहमें बड़े-से-बड़े महापुरुषोंके नाम भी विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो जाते हैं, फिर भी जिन व्यक्तियोंका नाम अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा बहुत लंबे समयतक याद किया जाता है, उनमें कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जो साधारण व्यक्तियोंमें नहीं होतीं और उन विशेषताओंके कारण ही लोक-मानसमें वे अपना स्थान चिरकालके लिये बना लेते हैं। अपने जीवन या वाणीके द्वारा वे हजारों-लाखों वर्षोंतक मानव-समाजको प्रेरणा देते रहते हैं। इसीलिये भौतिक शरीरसे विद्यमान न रहने-पर भी उन्हें अमर माना जाता है।

वैसे तो एक ही कालमें भिन्न-भिन्न देशोंमें कई ऐसे व्यक्ति हुआ करते हैं, पर उन सबकी कीर्ति समान-रूपसे चिरस्थायी नहीं रहती। कुछ व्यक्तियोंको तो लोग बहुत ही जल्दी भूल जाते हैं और कुछकी स्मृति-परम्परा बहुत लंबे समयतक चलती रहती है। इन विशेषताओंवाले व्यक्तियोंमें भी अनेक प्रकारकी विशेषताएँ मिलती हैं और रुचि-भेदसे किसी व्यक्तिको उनकी कोई विशेषता अधिक आकृष्ट करती है तो दूसरे व्यक्तिको

दूसरी विशेषता। साधारण विशेषताएँ तो प्रायः हरएक व्यक्तिमें होती ही हैं। पर यहाँ जो चर्चा की गयी है वह असाधारण विशेषताओं और विशेषतः आदर्श और प्रेरणादायक विशेषताओंको दृष्टिमें रखकर ही उपर्युक्त बातें कही गयी हैं।

वर्तमान युगमें भारतने अनेक विशिष्ट व्यक्तियोंको जन्म दिया, उनमें महात्मा गांधीका नाम सबसे पहले लिया जा सकता है। गांधीजी एक साधारण परिवारमें जन्मे थे और प्राथमिक जीवन भी ऐसा असाधारण नहीं था, पर क्रमशः उन्होंने अपने जीवनमें आगे चढ़कर ऐसे प्रयोग किये, जिनके कारण उनकी ह्यति भारततक ही सीमित न रहकर विश्वके कोने-कोनेमें पहुँच गयी। उनके स्वर्गवासका कितना गहरा असर विश्वपर पड़ा था, यह उनके स्वर्गवासके कुछ दिनोंके बीच जो वातावरण बना था, उससे भलीभाँति स्पष्ट है। सम्भवतः आजतक इतना शोक विश्वके किसी भी व्यक्तिके पीछे नहीं मनाया गया।

गांधीजीका जीवन, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा था, विचित्र प्रकारके प्रयोगोंसे भरपूर था। भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राममें उन्होंने जो प्रयोग किये थे, सर्वथा अद्भुत और अभूतपूर्व थे। किसीकी कल्पनामें ही यह नहीं

आता था कि किस समय गांधीजी क्या नया प्रयोग प्रारम्भ कर देंगे। उनकी सूझ-बूझ गजबकी थी और अन्तःप्रेरणासे जिस समय जो बात उन्हें सूझी, उसका प्रयोग वे बड़ी दृढ़ता और तत्परतासे करते थे। साथ ही उनकी यह भी विशेषता थी कि ऐसे अद्भुत प्रयोगोंमें भी लाखों व्यक्तियोंको वे अपना साथी बना लेते थे। उनकी वाणी और वर्तनकी एकताका बड़ा गहरा असर होता था।

विशेषताओंके भंडार

वैसे तो वे अनेक विशेषताओंके भंडार थे और अपनी-अपनी दृष्टिसे लोगोंने उनके सम्बन्धमें काफी प्रकाश डाला है। पर मुझे उनकी एक ऐसी विशेषताने सबसे अधिक प्रभावित किया है, जिसके सम्बन्धमें अभीतक विशेष चर्चा मेरी जानकारीमें तो किसीने नहीं की और यदि किसीने की होगी तो बहुत ही साधारण रूपमें। मेरी दृष्टिमें वह सबसे अधिक असाधारण और अभूतपूर्व विशेषता है।

आत्मोन्नति और विश्व-कल्याणके लिये अनेक महा-पुरुषोंने अपने-अपने ढंगसे साधना की है। अपने दोषोंके सुधार और गुणोंके विकासका निरन्तर प्रयत्न किया है, साथ ही अन्य प्राणियोंको भी आत्मसुधारका मार्ग बतलाया है; क्योंकि गुणोंका विकास दोषोंके परिहारके बिना सम्भव नहीं। अतः प्रत्येक व्यक्तिको अपने दोषोंके सुधारका प्रयत्न करना आवश्यक होता है। संतोंके द्वारा दूसरोंके लिये भी दोषोंके सुधारकी प्रेरणा निरन्तर दी जाती रही है। महापुरुषोंके उपदेशोंने पापी-से-पापी व्यक्तिका भी उद्धार बहुत जल्दी ही कर दिया, इसी-लिये उन्हें 'पतितोद्धारक' कहा गया है।

अपने और पराये दोषोंको सुधारनेके अनेक मार्ग हैं। उनमें सबसे पहला मार्ग है—आत्मचिन्तनका। जब-तक व्यक्ति आत्मनिरीक्षण नहीं करता, तबतक उसे अपने दोष ठीकसे मालूम नहीं देते और दूसरे व्यक्ति यदि वे दोष उसे बतलाते हैं तो वह उनका उपकार

माननेकी अपेक्षा उनके प्रति द्वेष या विद्रोह-सा कर बैठता है, उनसे लड़ना-झगड़ना भी प्रारम्भ कर देता है। पर जब किसी व्यक्तिको अपने दोष अखरने लगते हैं, तो उनको जल्दी-से-जल्दी हटानेका विचार और प्रयत्न होता है। यद्यपि दीर्घकालीन अभ्यासके कारण सभी व्यक्ति इस प्रयत्नमें सफल नहीं हो पाते, कोई पूर्ण सफल होते हैं तो कोई थोड़ी-सी ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं और कई-कई असफल भी रह जाते हैं। इसी तरह दूसरोंको सुधारनेके प्रयत्नका भी ऐसा ही परिणाम होता है। महापुरुषोंने अपने अनुभवसे कहा है कि सबसे पहले अपने-आपको सुधारो और उसके बाद ही दूसरोंको सुधारनेका प्रयत्न करो; क्योंकि स्वयं सुधरे बिना दूसरोंपर प्रभाव नहीं पड़ता; अतः इच्छित परिणाम नहीं मिल सकता।

नये मार्ग

जगत्के जीवोंके उद्धारका प्रयत्न अपने-अपने ढंगसे अनेक महापुरुषों और संतोंने किया है। उन्होंने नरम और गरम शब्दोंमें उपदेश देकर दूसरे व्यक्तियोंकी आत्मा-को झंकृत करनेका प्रयास किया है। इसी तरह राजाओं आदिने दण्ड-नीतिद्वारा अनीति और दुराचार-से लोगोंको विरत करनेका अपने ढंगसे प्रयत्न किया है और इसका किसी हदतक अच्छा असर भी हुआ। संतोंने मानवहृदयको छूनेका प्रयत्न किया। शास्त्रोंने शारीरिक दण्ड देकर गलत रास्ते जाते जनसमुदायको बचानेका प्रयत्न किया। गांधीजीने इस सम्बन्धमें एक नया मार्ग कभी-कभी अपनाया। जिसे अबतक हमारी जानकारीमें किसीने नहीं अपनाया था। गांधीजीने यह माना कि मेरे साथियोंमेंसे यदि कोई दोष करता है या गलत काम करता है तो उसमें मेरा भी कुछ दोष है। अतः उसको सुधारनेके लिये मुझे भी कुछ दण्ड-ग्रहण या प्रायश्चित्त करना चाहिये। मुझमें ऐसी त्रुटि कहाँ और किस रूपमें है? इसके लिये मुझे अन्तर्निरीक्षण करना चाहिये, जिस कमीके कारण मेरा मनचाहा प्रभाव

दूसरेपर नहीं पड़ सका और मेरे सम्पर्कमें रहकर भी उसे उस दोषके करनेमें संकोच न हुआ अर्थात् उसकी आत्माने उसको करते हुए नहीं रोका। आवेशके कारण वह वैसा कर बैठा ऐसा सोचकर उसके दोषोंका जिम्मेवार किसी भी अंशमें अपनेको मानते हुए गांधीजीने कई बार ऐसे प्रयोग किये जिससे आत्मविशुद्धिके साथ दोषीका भी सुधार हो गया।

गांधीजीकी अहिंसाकी सूक्ष्म दृष्टिने यह विवेक किया कि किसीको अपनी बात जबरदस्तीसे मनवाना भी हिंसा है। हम अपनी बातको ठीक तौरसे दूसरेको समझानेका प्रयत्न करें, पर यदि वह बात उसके हृदयको न छूए तो उसे वैसा करनेके लिये बाध्य न किया जाय। दूसरेकी बातको ध्यानसे सुना जाय, उसमें कुछ तथ्य हो तो उसपर गम्भीरतासे विचार किया जाय और अपने आपमें इतना धीरज रक्खा जाय कि जिससे अपनी बात दूसरा न माने तो उसपर रोष न करके शान्तिके साथ अपनी बातको और अच्छे ढंगसे उसे समझाकर अपने अनुकूल बनानेका प्रयत्न बराबर जारी रक्खा जा सके। हरिजनोद्धार और छूआछूत-

परिहारके विरोधमें उन्होंने लंबे उपवास किये। उसी तरह अन्य प्रसंगोंपर भी अपनी जानको जोखिममें डाल दिया। उस समय भी अपनी यही नीति रही कि 'दूसरोंको अपनी बात दबाव देकर मनवाना भी नहीं चाहता; पर अपनी आत्माकी कमजोरीको दूर करनेके लिये ही उपवास अधिक किये जाते हैं, अपनी माँगको जबरदस्ती मनवानेके लिये नहीं।' उनकी यह प्रणाली वास्तवमें ही अद्भुत एवं मौलिक थी और उसका असर दूसरोंपर अपने-आप पड़ता था। अपने सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंमेंसे किसीने कोई अनुचित एवं दोषपूर्ण काम किया तो गाँधीजीने अपनेको दण्डका भागी बनाया। उसपर अपने प्रभावकी कमी देख इसके कारणकी गहराईको टटोला। इससे अपनी शक्तिका विकास हुआ और दूसरेका स्वतः सुधार हो गया। ऐसे अद्भुत प्रयोगका उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। वास्तवमें गाँधीजीका यह एक नया प्रयोग है। इसमें आत्मनिरीक्षण एवं आत्म-शुद्धिकी प्रधानता भी थी, पर साथ ही दोषीके हृदयको झकझोर देनेवाली और आत्मनिरीक्षण तथा रोष-परिहारकी प्रबल प्रेरणा देनेवाली सुधारकी यह अद्भुत प्रणाली थी।

नाथ देखि पद-कमल तुम्हारे

अब और क्या चाहिये? तुम्हारे श्रीचरणोंकी विलक्षण, अनिर्वचनीय छटा निहारकर भी क्या और कुछ करने-पानेको शेष रह गया है—तुम्हीं बताओ मेरे चारुचरण!

जिन चरणोंके कोमल, अरुणिम तलवोंका अवलोकन कर पानीमें रहकर भी पानीसे अलित अरुणारविन्द स्वयं पानी-पानी हुआ जाता है। जिन चरणोंके साँचेमें ढले द्युतिमान् नखोंके तेजसे उनकी दीप्तिके समक्ष कोटि-कोटि सूर्य निस्तेज एवं निष्प्रभ हुए जाते हैं; जिन चरणोंके कान्त कलेवरकी कान्ति एवं शोभा अनेकानेक शशाङ्कोंको सुलज्जित कर रही है—श्रीचिहीन कर रही है; जिन चरणोंकी दसों अंगुलियोंसे साक्षात् धर्म मनुस्मृति-वर्णित अपने दस रूपोंमें सहज अवतरित हो रहा है; जिन चरणोंकी पावनता पुण्यतोया गङ्गा बनकर जन-जनको पावन कर रही है—पार कर रही है; जिन चरणोंकी चमत्कारिता बलि-सहस्र सम्राट्को बाँधकर धर देती है और फिर जिनकी चपलता बलिपर बलि-बलि जाकर स्वयं उसके द्वारपर बाँधकर रहने लगती है; जिन चरणोंका धूलि-स्पर्श अहिल्योद्धारके रूपमें निर्मम पाप्राणमेंसे ममतामयी नारीको साकार कर देता है और जिन चरणोंकी आशुतोषतासे भस्मीभूत रति-प्रति सहज नवजीवन प्राप्त कर लेता है—वह भी अतनु होकर और भी व्यापक रूपमें। अधिक क्या, संक्षिप्ततः जिन चरणोंमें सब होता है, जिनसे सब होता है, उनके दर्शन प्राप्त कर फिर करना-पाना क्या शेष रह सकता है? कुछ रह सकता है, तो उसका तुम्हें ही ज्ञान होगा सर्वेश्वर मेरे! मेरे जाननेमें तो मुझे अब करना-पाना कुछ रहा नहीं।

मैं तो अब.....वह भी तुम चाहो तो, एकमात्र तुम्हारे चरण-कमलोंमें उनका नित्य सत् किंतु विनीत मधुकर बना गुन-गुन भले ही करता रह सकता हूँ—वह भी (अपना तो अपनेमें कुछ रहा ही नहीं) संत तुलसीके अमृत स्वरोंमें—

नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे ॥—हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि'

दक्षिण भारतकी तीर्थ-यात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, भीमती रत्नकुमारीदेवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ १३२० से आगे]

विभिन्न मतावलम्बी व्यक्तियोंमें जव-जव भी संवर्ष हुआ है, चाहे वह धर्मके नामपर अथवा किसी अन्य बातपर; उसमें प्रधान रूपसे यदि हम देखें तो यह संवर्ष कर्ताओंकी द्वेष-बुद्धिके कारण होता है। धर्म या मजहब चाहे वह वैदिक-धर्म हो, जैनधर्म हो, पारसीधर्म हो, बौद्धधर्म हो, ईसाईधर्म हो, इस्लाम हो, सिक्खधर्म हो अथवा अन्य कोई। यही नहीं, किसी भी व्यक्ति, समाज अथवा देशका ही नहीं, सब धर्मोंको मिलाकर यदि सबका निचोड़ कोई विश्वधर्म भी बने तो वह भी वही होगा जो पहला है और पहला भी वही होगा जो अन्य धर्म और अन्तिम हैं। पहला अथवा उसके बादके अथवा अन्तिम कोई भी धर्म एक-दूसरेसे भिन्न, विलग अथवा विलक्षण हो ही नहीं सकता। धर्म क्या है? एक आचार है जो पूर्वकालमें हमारे गुणातीत स्थितप्रज्ञ पुरुषोंने मानवजीवनके सुव्यवस्थित संचालनके लिये निर्धारित किया था। जिस प्रकार अच्छाईका अर्थ केवल अच्छाई है, उसमें बुराईका कोई साक्षात् नहीं हो सकता, उसी प्रकार मानवधर्म एक अपरिवर्तनीय रूपमें, एक अनादि शृङ्खलाके रूपमें सतत प्रवहमान रहता है। इसे एक नियम भी कह सकते हैं जो व्यक्तिके जीवनके साथ उसकी मृत्युतक, प्रारम्भसे अन्ततक, सृष्टिकालसे संहारतक यानी अनादिकालसे अनन्तकालतक एक सतहपर, एक स्तरपर, एक जगहपर अपने एक मुकामपर कायम रहकर मानवका पथ निर्दिष्ट करता रहता है। इसे हम सत्यकी संज्ञा भी दे सकते हैं। जो सत्य है, वही धर्म है; जो मिथ्या है, वह अधर्म है। इसीलिये हमारे महापुरुषों, तत्त्ववेत्ताओं, साधु-संतों और भक्तों सदा ही सत्यकी खोज की और उसीका अनुसरण किया, असत्य और मिथ्याका नहीं। दूसरे शब्दोंमें धर्म सत्यका सात्विक स्वरूप है, असत्य उसका तामसी रूप। इसी सात्विक और तामसी स्वरूपके दो रूप बने सदाचार और अनाचार। यदि सदाचारमें एकता है, एक-रूपता है और स्थायित्व है तो अनाचारमें विभिन्नता, विविधता और क्षणभङ्गुरता। इसीलिये सत्य, जिसे ईश्वरका स्वरूप कहा गया है, शाश्वत है, अनादि है, अजन्मा है और स्थायी है, जब कि असत्य, जो अज्ञानका स्वरूप है नाशवान् और क्षण-

भङ्गुर है। स्पष्ट है असत्यका अनुसरण अस्थायित्व और अस्थिरताका आश्रयदाता है जब कि सत्यानुसरण स्थायी और स्थिर सुखका देनेवाला है। इसीलिये हमारे पूर्वजोंने मानव-कल्याणके लिये इसी सत्-पथरूपी धर्मका अनुसरण करनेको कहा है।

धर्मकी हमारे यहाँ न जाने कितने ग्रन्थोंमें कितनी व्याख्याएँ की गयी हैं। 'धर्म' शब्द 'धृ' (धारण करना) धातुमें 'मय' प्रत्यय लगानेसे बनता है। अर्थ हुआ जो धारण करे अर्थात् 'धारयति इति धर्मः।' अतः धर्म उन सिद्धान्तोंका एकीकारण है, जिनसे मानव और मानव-समाज अपने अस्तित्वको धारण करता है। यह अस्तित्व तभी टिक सकता है, जब मनुष्य और उसका समाज सन्मार्गपर चले। इस सन्मार्गकी भी हमारे यहाँ न जाने कहाँ-कहाँ कितनी व्याख्या की गयी है। वैशेषिकदर्शनके प्रणेता कणाद कहते हैं—'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' अर्थात् 'जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस् सिद्ध हो, वह धर्म है।' अभ्युदयसे लौकिक और निःश्रेयस्से पारलौकिक सिद्धिकी उपलब्धि मानी जाती है।

एक अन्य दृष्टिसे हमारा अन्तर्वर्ती तत्त्व जिसे 'सत्य' कहा गया है, जिसकी विवेचना हम पीछे कर चुके हैं, जब व्यवहारमें मूर्तरूप धारण कर बाहर आता है, तब 'धर्म' कहलाता है।

हमारा निश्चल, नम्र और उदार धार्मिक आचरण कैसा हो, इस विषयमें उपनिषदोंमें इस प्रकार व्याख्या की गयी है—

'सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः ।'...
सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूतै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ।

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । ग्रान्थनवद्यानि कर्माणि तानि

सेवितव्यानि नो इतराणि । यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ॥

श्रद्धया देयम् । अश्रद्धयाऽदेयम् । श्रिया देयम् । हिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् ॥ अथ यदि ते कर्म-विचिकित्सा वा वृत्तिविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलक्ष्णा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तेषु वर्तेन् । तथा तेषु वर्तेथाः—एष आदेशः । एष उपदेशः ।

सदा सत्य बोलना । धर्मका आचरण करना । स्वाभ्यासे कभी न चूकना । कभी भूलकर भी सत्यसे नहीं ढिगना । धर्मसे नहीं ढिगना । दूसरेकी भलाई करनेमें एवं कार्यमें दक्षता प्राप्त करनेमें कभी न चूकना । अपने उत्कर्षकी उपेक्षा न करना, पढ़ने और पढ़ानेमें उपेक्षा न करना । देवताओंके तथा पितरोंके सेवाकार्यसे कभी न चूकना ।

माताको देवता मानना, पिताको देवता मानना, गुरुको देवता मानना, अतिथिको देवता मानना । ऐसे कर्मोंको, जो निर्दोष हों—जिनकी कोई निन्दा न करे, करना । उन कर्मोंको कभी न करना जो दोषयुक्त हों, जिनकी लोग निन्दा करें । जिन्हें अच्छा कहा जाता है, संसारमें जिनकी प्रशंसा होती है ऐसे आचरण-व्यवहारका अनुकरण करना । किसी निन्दित और अप्रशंसित आचरण-व्यवहारका अनुसरण कदापि न करना ।

किसीको यदि कुछ देना तो श्रद्धासे देना । बिना श्रद्धाके नहीं देना । आर्थिक स्थितिके अनुसार देना । लज्जासे भी देना, भगवान्के भयसे देना, प्रसन्नतासे देना, विनम्रतासे देना, विवेकपूर्वक प्रेमसे देना । कहीं कदाचित् कर्तव्यनिर्णयमें, सदाचरणके सम्बन्धमें कोई शङ्का हो जाय तो वहाँ जो उत्तम विचारवाले, उचित परामर्श देनेमें कुशल, सत्कर्म तथा सदाचारमें संलग्न स्निग्ध स्वभाववाले धर्माचरणके अभिलाषी विद्वान् ब्राह्मण हों वे जिस प्रकारका कर्माचरणका वर्णन करते हों, वैसा ही बर्ताव करना चाहिये ।

इस दृष्टिसे हम देखें तो धर्म मानवताको एकत्र करता है, अधर्म मानवताको विभक्त करता है । अतः जो समाजको अपने-में धारण करे, एक सूत्रमें पिरोये रखे, उसे विशृङ्खल-विकीर्ण होनेसे बचाये, वही धर्म है । ऐसा मानवतावादी भारतीय धर्म ही हमारे राष्ट्रका आचरण है, जिसका हमारे वेद-उपनिषदों, इतिहास-पुराणों, ऋषि-मुनियों, संतों-भक्तों और

विचारकों तथा समाजसुधारकों—सभीने समय-समयपर सदा शंखनाद किया है । यही नहीं, हमारे इन विज्ञ पुरुषोंने अपने इस आचार, अपने इस धर्मके हितार्थ, उसकी रक्षार्थ यहाँतक कह दिया है—‘तन दे, धन दे, लाज दे, एक धर्मके काज ।’

फिर यह धर्म जो अपने विराटरूपमें और सूक्ष्मरूपमें समान है, समदर्शी और सर्वहितकारी है, हम देखते हैं इसीके नामपर झगड़े होते हैं । लोग अपना-अपना झंडा लेकर अपने-अपने धर्मका प्रचार करते हैं, संगठन और सम्प्रदाय बनाकर एक-दूसरेसे लड़ते हैं । आखिर क्यों ?

संस्कृतकी इस उक्ति—‘भिन्नरुचिर्हि लोकः’—के अनुसार हर व्यक्ति अपनी रुचि, अपनी मतिके अनुरूप, जिसे जो ठीक लगता है, जिसे जो उचित प्रतीत होता है, वही करता है । यह एक सीमातक ठीक भी है । इतनेसे ही मनुष्यको संतोष कहाँ ? वह तो यह भी चाहता है कि वह जो करता है, दूसरे भी वही करें । दूसरोंसे अपनी कृतिके अनुकरण और अपने आदरकी मनुष्यकी यह अभिलाषा, जो उसकी एक अहंतापूर्ण महत्वाकांक्षा बन जाती है, ही हमारे सारे वाद-विवादों और लड़ाई-झगड़ोंकी जड़ है । अपनी बात अथवा विचार दूसरेपर बलात् लादनेकी यह प्रवृत्ति मानव-स्वभावका वह दूषित पक्ष है जो अनाचारमें आता है । यदि आचार और अनाचारके इस अन्तरको हम पहचान जायें और जो हम करते हैं तथा जो हम सोचते हैं वह इसलिये न होकर कि दूसरे भी वैसा ही करें और वैसा ही सोचें, वरं इस दृष्टिसे कि हम जो करते हैं तथा हम जो सोचते हैं, हमारे इस विचार और कृतिमें कहीं कोई असामञ्जस्य, असंगति और अज्ञान तो नहीं, साथ ही दूसरोंकी भावनाओं और ‘भिन्नरुचिर्हि लोकः’की उक्तिके अनुसार हमारा यह आचार, हमारे ये विचार कहीं किसीके क्लेश या हानिके कारण तो नहीं बन रहे ? यदि हम अपने विचारों और कृतियोंके सामञ्जस्यके साथ दूसरोंके विचारों और उनकी भावनाओंका समन्वय कर सकें तो निःसंदेह हमारा हर विचार, हमारे हर कृति दूसरोंका मार्ग-दर्शन करेगी । यही नहीं, हमारे विचार, हमारी कृति और हमारे आचरणके अनुकरणके साथ हम स्वयं एक अनुकरणीय व्यक्ति बन जायेंगे और इस प्रकार आदमी-आदमीके बीचका यह अन्तर्-यह विषमता और विषमताजन्य सारी आशयोंका अन्त

कर समता, सौहार्द और सौजन्यताकी प्रवाहमयी सरितापर ममतारूपी पुलका निर्माण कर हम अपने समाजको पार उतार सकेंगे।

कांचीपुरम्में शिवकांची और विष्णुकांचीरूपी दो पुरियाँमें भगवान् शिव और भगवान् विष्णुके इन देव-मन्दिरोंका निर्माण हमारे इस धर्मका एक साकार स्वरूप है, जिसमें होलीपर भगवान् शिव तथा वैशाखमें भगवान् विष्णुके द्वारा एक दूसरेकी मेहमानी और उत्सव आदि जो हमारी संस्कृतिके विभिन्न रूप हैं,—के द्वारा समता, ममता, सहिष्णुता और समादरपूर्ण मैत्री भावनाओंसे संस्कृतिका वह सेतु सदा बना रहता है जिसपर मानव-समाजका अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूपी रथ अधिभूतके एक कूलसे अध्यात्मके दूसरे किनारेतक सम्पर्क बनाये रखनेमें समर्थ होता है। कांचीपुरम्की ये दो पुरियाँ, जिनमें 'शैव' और 'वैष्णवों'के इष्ट शिव और विष्णु विराज रहे हैं,—हमारे आध्यात्मिक और आधिभौतिक जीवनके दो ऐसे प्रतीक हैं, जिनके सहयोग—सम्मिलनके बिना मानवजीवनरूपी हमारा रथ एकाकी होकर अधोगति-को प्राप्त होगा।

भगवान् शिव और भगवान् विष्णुके इस सहयोग, समादर और सहपूजापर भगवान् रामके द्वारा रामेश्वरम्में शिवलिङ्ग-स्थापनाके समय जो पुनीत विचार प्रकट किये गये, उनका गोस्वामी तुलसीदासजीने सुन्दर वर्णन किया है—

सिवद्रोही मम भगत कहावा।

सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥

संकर बिमुख भगति चह मोरी।

सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥

संकर प्रिय मम द्रोही सिवद्रोही मम दास।

ते नर करहि कलप भरि घोर नरक मुहुँ बास ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्वैतकी इस दुविधाको हमारे आदिपुरुष और अवतारी भगवान् रामके श्री-मुखसे मिटाकर गोस्वामी तुलसीदासजीने मानव-धर्म और उसकी संस्कृतिकी एकनिष्ठ सेवा की है। श्रीरामके मुखसे निकले ये उद्गार न केवल प्रभु-भक्तिके लिये हैं वरं जैसा कि रामायणके अन्य दोहे और चौपाइयोंकी तरह, जो मानवजीवनके विविध पक्षोंको प्रभावित करते हैं, इनका भी गहरा सम्बन्ध है।

संसारमें रहकर कोई भी संसारी अधिभूतसे आँखें मूँद केवल अध्यात्मवादी नहीं बन सकता और न कोई अध्यात्मकी उपेक्षा कर केवल अधिभूतपर ही अपनी आँखें गड़ा सुखी हो सकता है। अध्यात्मकी उपेक्षाकर केवल अधिभूतपर निर्भर रहनेकी स्थितिमें 'साक्षरो विपरीतत्वे राक्षसो भवति ध्रुवम्' की उक्तिके अनुसार साक्षर मानवके राक्षस (दानव) बननेकी सम्भावना हर क्षण बनी रहती है, साथ ही निरी आध्यात्मिकता हमें संसारविमुख और अकर्मण्य बना देती है। अतः उचित यही है कि हमें अध्यात्मकी नींवपर ही अपने अधिभूतके भवनका निर्माण करना चाहिये। अर्थ और कामकी उपेक्षा न करते हुए धर्मके द्वारा उन्हें नियन्त्रितकर पवित्र साधन और साध्यके रूपमें हमारे जीवनका लक्ष्य होना चाहिये 'मोक्ष'। भगवद्गीता आसक्तिरहित इस पवित्र कर्मयोगी जीवनका हमें यही लक्ष्य बताती है। न हम जीते-जी जीवनकी उपेक्षा कर सकते हैं और न मृत्युसे आँखें मूँद सकते हैं। अतएव हमें जीवनके हर क्षेत्रमें अपने अधिभूतके आराध्य विष्णु और अध्यात्मके आराध्य शिवकी समान उपासना करनी होगी। तभी हमारा जीवन सफल और सार्थक होगा। यदि हमारे अधिभूतका आधार, भगवान् श्रीरामके कथनानुसार 'संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास' की भाँति परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरेका पूरक दोनों ही देवोंका पूजक रहा तो भगवान्के कथनानुसार ही—

'होइ अकाम जो छल तजि सेइहि।

भगति मोरि तेहि संकर देइहि ॥'

हमें अपने इष्टकी प्राप्ति हो जायगी।

गीत

श्रीविष्णु-शिवकाञ्ची

यहीं विष्णु वैकुण्ठपुरी है,

श्रीशिवका है यह कैलास।

सत्ता एक, भिन्न विग्रह धर,

काञ्चीपुरमें उभय निवास ॥

पाकर इनकी कृपाकोरको,

इस पुरकी पावन संतान।

मानवताके मूल्य बढ़ाती,

सुचिर कालसे ज्ञान निधान ॥

दाक्षिणात्य नरपति थे, पल्लव,

पल्लव, पाण्ड्य, चालुक्य महान्।

शिल्पोंके सौष्ठवका करते
दोनोंको निज अर्थ प्रदान ॥

भद्रा, भक्ति सकर्मक चिन्तन,
युग-युगसे इसका अभिमान ।
परस पुरी, जन वनता मन्दिर,
आ जाते उरमें भगवान् ॥
शिव करते कल्याण भक्ता,
बरदनाथ करते जन-प्राण ।

बौद्धिक मुक्ति, मुक्ति लोकोत्तर,
देख उभयको पाते प्राण ॥

इस प्रकार अध्यात्म और अधिभूतके संगमस्थल, काशी-पुरम्में जो अनेक दृष्टियोंसे उत्तरके वृन्दावनकी भाँति दक्षिणकी विलक्षण देवभूमि बना हुआ है । भारतीय धर्म और उसकी प्रवृत्तियोंके प्रत्यक्ष दर्शन कर भगवान् शिव और उनके आराध्य भगवान् विष्णुके इन देव-मन्दिरोंमें अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित कर हम तेरह सितम्बरके प्रातःकाल मोटरबसद्वारा पक्षीतीर्थके लिये चल पड़े । (क्रमशः)

रीवाँके गोभक्त नरेश

(लेखिका—श्रीमती शकुन्तला अग्निहोत्री)

रीवाँ राज्यके बाघेलवंशीय नरेशोंकी राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रोंमें अपनी अलग एक परम्परा है । यहाँके नरेशोंका इतिहास बड़ा ही महत्त्वपूर्ण रहा है । महाराज रघुराजसिंहजी तक इस भूभागका शासन-प्रबन्ध श्रुति और स्मृतियोंके आधारपर होता था । यहाँके नरेश क्षत्रिय होते हुए भी बड़े ही ब्रह्मण्य और गोभक्त हुए हैं ।

महाराज रघुराजसिंहजी (सन् १८५४—१८८०) की धार्मिकताके उदाहरण इस देशके समस्त भूभागमें अद्यावधि वर्तमान हैं । इन्होंने दो बार जगन्नाथपुरीमें, एक बार काशीमें और एक बार मथुरामें सुवर्णका तुलादान किया था । भारतके अनेक तीर्थ-स्थानोंमें इन्होंने मन्दिरोंका निर्माण कराकर सदावर्तकी परम्परा स्थापित की थी । उत्तरमें बद्रीनारायणसे लेकर दक्षिण-में रामेश्वरम् तक तथा पूर्वमें जगन्नाथपुरीसे लेकर पश्चिम द्वारकापुरीतक महाराज रघुराजसिंहजीके धार्मिक स्थानोंकी स्मृतियाँ आज भी संजीवित हैं । महाराज रघुराजसिंहजी-ने द्वारकाधीशकी यात्राके समय पुष्करक्षेत्रमें इक्कीस

हाथियोंका भी दान किया था । ये अपने समयके बहुत बड़े धार्मिक तथा दानी नरेश थे । इसमें संदेह नहीं ।

गोरक्षार्थ इन्होंने अपने राज्यभरमें उत्तम व्यवस्था कर दी थी । राज्यकी ओरसे गोचरभूमि निःशुल्क दी जाती थी । तमाम अयोग्य और बूढ़ी गायोंके लिये इन्होंने राजधानीके एक कोनेमें गोघर (गोशाला) का भी निर्माण कराया था, जिसमें हजारोंकी संख्यामें गायें पाली जाती थीं और राज्यकी ओरसे उनके भरण-पोषणका उत्तम प्रबन्ध किया जाता था । मरनेपर गायोंको बोरों नमकके साथ गाड़ दिया जाता था । महाराज रघुराजसिंहजीकी मृत्युके समय गोघरमें सात सौ बत्तीस गायें थीं जो ब्राह्मणोंको दानमें दे दी गयी थीं । इसी प्रकार इनकी दूसरी गोशाला गोविन्दगढ़में थी । इसमें दुधारू गायें पाली जाती थीं और उनका दूध निरीह बच्चोंके पोषणके लिये बाँट दिया जाया करता था । महाराज रघुराजसिंहजी देवारावनके पहले गोपूजा किया करते थे और जबतक अपने भोजनमेंसे गौ और ब्राह्मणोंको तृप्त नहीं कर लेते थे; तबतक भोजन नहीं करते थे । गो-दूध ही महाराजका विशेष आहार था । वर्षाके चार

संख्या १२]

महीनोंमें तो वे गोदुग्धपर ही रहा करते थे। ब्राह्मणोंको जो गायें दानमें दी जाती थीं, उन्हें सब प्रकारसे अलंकृत किया जाता था और पूजनके अनन्तर ही उनके दानकी विधि थी। इतना ही नहीं, जिस ब्राह्मणको गाय दानमें दी जाती थी, उसे राज्यकी ओरसे उस समय एक बीघा गोचरभूमि भी दी जाती थी। शय्या त्यागते ही गोदर्शन ही उनकी प्रधान दैनिक कृति थी। इस तरह महाराज रघुराजसिंहजी अपने समयके बहुत बड़े गोभक्त नरेश थे।

इन्हीं महाराज रघुराजसिंहजीके पुत्र महाराज बेंकटरमणसिंहजी (सन् १८८०—१९१८) हुए। ये भी अपने पिताके अनुरूप ही गो-ब्राह्मण-भक्त नरेश थे। इनके समयमें रीवाँका गोघर महाराज रघुराजसिंहजीकी मृत्युके अनन्तर समाप्त हो गया। गोघरके कारण ही रीवाँका वह भाग घोघर मोहल्लेके नामसे प्रख्यात है। महाराज बेंकटरमणसिंहजीने गोविन्दगढ़की गोशालाको अधिक विकसित किया। इनके समयमें इस गोशालामें तेरह सौ गायोंका झुंड था, जिनका दूध निरीह बच्चोंमें प्रतिदिन बाँटा जाता था। राज्यके दक्षिणी भागमें भी बान्धवगढ़ दुर्गके पास ही महाराज बेंकटरमणसिंहजीने एक बहुत बड़ी गोशालाका निर्माण कराया था। गोशालामें गाय देनेवाले व्यक्तिको राज्यकी ओरसे अच्छा पुरस्कार भी दिया जाता था।

२३ नवम्बर १९१५ को जिस समय महाराज बेंकटरमणसिंह हरिहर क्षेत्र गये हुए थे और उनका शिविर भी वहीं था, रातको उन्हें नालेके उस पार कसाईखानेका पता चला। महाराज बेंकटरमणसिंहजी रातको अपने सरदारोंके साथ एजेंट साहबसे मिले और मेलेसे कसाईखाना उठा देनेके लिये कहा। मुसल्मान कसाईयोंके बिगड़नेसे मेलेमें सनसनी फैल

गयी, जिससे एजेंट साहब भी अपने कर्तव्यका निर्णय नहीं कर सके।

महाराज बेंकटरमणसिंह एक बहुत बड़े सैनिक नरेश भी थे, वे जहाँ कहीं जाते अपने चुने-चुनाये सैनिकोंके साथ ही जाते। एजेंट साहबकी बातोंसे निराश हो महाराजने प्रातःकाल ही मेलेसे कसाईखाना उठा देनेका प्रण किया। महाराजके शिविरके सभी सैनिक सरदार प्रातःकालहीसे सब प्रकारसे उद्यत हो गये। जैसे ही कसाईखाना खुल और गायोंको वधस्थलमें ले जानेकी तैयारी हुई, महाराज बेंकटरमणजीने अपने घोड़सवार सैनिकोंके साथ कसाईखानेको घेर लिया। कसाईयोंको वधके लिये लायी गयी समस्त गायें महाराजके हाथों सौंप देनेके लिये कहा गया। कसाईयोंने इसका विरोध किया, जिससे महाराजके सैनिकोंने समस्त एक सौ पचीस गायोंको अपने अधिकारमें ले लिया और कसाईखानेको अस्त-व्यस्त कर दिया। महाराजकी दबंगता और बहादुरीके आगे अंग्रेज अधिकारी भी कुछ न कर सके। महाराजने पैंतीस रुपये प्रति गायके हिसाबसे समस्त गायोंकी कीमत उन कसाईयोंको देकर गायोंको अपनी गोशाला रीवाँ ले जानेकी व्यवस्था की और इस तरह हरिहरक्षेत्रका कसाईखाना बंद हो गया।

२६ नवम्बर १९१५ को महाराज बेंकटरमणसिंहजी अपनी राजधानी रीवाँ आये। इस महान् जीवन-यज्ञके उपलक्षमें राज्यभरमें उत्सव मनाया गया। महाराज अपने जीवनपर्यन्त सदैव गोपालनमें तत्पर रहे; किंतु इनके मरते ही इनके पुत्र गुलबर्गसिंहजीके अल्पवयस्क होनेके कारण राज्यका शासनिक भार अंग्रेजोंने अपने हाथोंमें ले लिया था, जिससे राज्यकी गोशाला तोड़ दी गयी और गायें बेच दी गयीं।

श्रीभगवन्नाम-जप

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम् ।

पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम् ॥

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

नाम-जपका नियम लिया है, इसके लिये हम उनके हृदय से कृतज्ञ हैं ।

(७) स्थानोंका नाम दर्ज करनेमें यथासाध्य सावधानी रखी गयी है । इसपर भी भूल तो हुई ही होगी, कई स्थानोंके नाम छूटे होंगे । कुछ नामोंके ठीक लिखनेमें भूल हुई होगी । इन सबके लिये भी हम क्षमा-प्रार्थना करते हैं ।

स्थानोंके नाम इस प्रकार हैं—

अकलकोट, अकलूज, अकोड़ा, अचलग्राम, अजयपुरा, अजमेर, अटका, अठेहा, अनचगढ़, अपराखेड़ा, अम्बालपुरम्, अम्बाला कैंट, अमझोरा, अमरथ, अमरनगर, अमखाड़ा, अमलनेर, अमात, अमादा, अमाहा, अमृतसर, अमिलिया अयोध्या, अरई, अरनतंगी, अरसारा, अरंगी, अल्मोड़ा, अलामुर, अलीगढ़, अस्तोली, असोथर, अहमदनगर, आजूआ, आगरा, आनन्दताण्डवपुरम्, आमी, आरा, आलीगंज, आलंद, आवगिला, आयर, आँवली, इचौली, इटकी-अंतरगाँव, इटावा, इटाँजा, इलाहाबाद, इसकिल, ईडर, ईसरदा, ईसागढ़, उकलाना मंडी, उज्जैन, उटकमण्ड, उडुपि, उडियानपुर, उतरी, उदयपुरा, उनाववालाजी, उमधा, उमरिया, उमह्ला, उस्का-बाजार, ऊना, ऊँझा, ए० पी० ओ० ५६, ए० पी० ओ० ९९, ऐरारवैरा, ऐंचर, ओड़गी, ओरछा, अंजन-सिंगी, क्योटगामा, ककढियाँ, ककवारा, कछुआ, कजरा, कझपा, कटघरवा, कटरा सुलेमपुर, कठवल, कठाणू, कठेला, कडकेवाड़ी, कड़वीथा, कन्नौज, कन्नौद, कन्हौली गजपति, कनकी, कन्नौद, कपूरसिंह, कमासिनु, कर्नल-गंज, करगीरोड, करमछेडु, करमाटार, करवाड़, करांटी, करली, करोम, करौली, कलकत्ता, कवठा, कवलस, काकरोली, काकिनाडा, कागजनगर, कागुपाड़, कान्हाचट्टी, कानपुर, काम्पवन, कामा, कामोल, कालकाजी, कालपी, कालापहार, कालिम्योग, कांकेर, काँगाड़ा, काचरापाड़ा, काँटा, किछा, कुकुरमूड़ा, कुडा, कुठेड़ापाध्या, कुटेच, कुन्दनगंज, कुम्हेर, कुमारखण्ड, कुरनूल, कुलगाड़ी, कुलवारा, कुसुमखोर, कुसुम्मी, कैकलूर, कैथा, कैथौली, कैमा, कैलगढ़, कोइम्बतूर, कोचीन, कोटपल्ली, कोटला, कोटफतही, कोटा, कोटायम, कोड़िया, कोना, कोरोराधपुर, कोलकुलपल्ली, कोसली, कौडाली, कंकरखेरा, खड़ेर टिकतपुरा, खपटिहाकलां, खरदा, खरनोटा, खरसोमा, खरिहार, खरी, खरोसा, खलपुरावाला, खलारी, खानचौद

‘मधुरोंमें भी मधुर, मङ्गलोंमें भी मङ्गल और पावनों (पवित्र करनेवालों) में भी पावन केवल हरिनाम ही है । हरिनाम, हरिनाम, केवल हरिनाम ही कलियुगमें गति है; अन्यथा गति नहीं है, गति नहीं है, गति नहीं है ।’

यह बड़े आनन्दकी बात है कि ‘कल्याण’ में प्रकाशित प्रार्थनाके अनुसार भगवत्प्रेमी पाठकपाठिकाओंने बड़े उत्साह तथा लगनके साथ स्वयं नाम-जप करके तथा दूसरोंसे करवाकर महान् पुण्यका सम्पादन किया है और हमपर बड़ी कृपा की है । इस सत्कार्यके लिये उन्हें भगवान्की कृपा तो प्राप्त होगी ही, हम भी उनके ऋणी हैं । साथ ही हम उन्हें बधाई देते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वे भविष्यमें इससे भी अधिक उत्साहसे नाम-जप करें-करावें । कल्याणकी प्रार्थनापर इस वर्ष जो जप हुआ है, उसका विवरण निम्नलिखित है—

(१) इस वर्ष १७७ स्थानोंसे मिली सूचनाएँ दर्ज हुई हैं और पूरे सोलह नामोंके ३३,२९,७१,००० (तैंतीस करोड़ उनतीस लाख एकहत्तर हजार) मन्त्रोंका जप हुआ है । इन मन्त्रोंकी नाम-संख्या होती है— ५, ३२, ७५, ३६,००० (पाँच अरब, बत्तीस करोड़, पचहत्तर लाख, छत्तीस हजार) । ‘कल्याण’के प्रेमियोंने भगवन्नामका इतना जप करके अपना तथा विश्वका बड़ा ही कल्याण किया है ।

(२) इस वर्ष भी केवल भारतवर्षमें ही नहीं, बाहर विदेशोंमें भी जप हुआ है ।

(३) उपर्युक्त संख्या केवल सोलह नामके महामन्त्रकी है । भगवान्के अन्यान्य नामोंका जो जप हुआ है, वह इससे पृथक् है ।

(४) बहुतसे भाई-बहिनोंने जप अधिक किया है, सूचना कम भेजी है और कुछ नाम-प्रेमियोंने तो केवल जप करनेकी सूचना भर दी है, जपकी संख्या लिखी ही नहीं है ।

(५) कुछ भाई-बहिनोंने केवल जप-संख्या ही नहीं लिखी है, उत्साहवश नाम भी लिखकर भेजे हैं । पर लिखित नामोंको प्रकाशित करनेकी सुविधा नहीं है, इसके लिये क्षमा-प्रार्थना है ।

(६) बहुतसे भाई-बहिनोंने प्रतिवर्षकी भाँति आजीवन

खातोली, खामगाँव, खारतलेगाँव, खासपही, खुरवरी,
खुर्जा, खुरई, खोरी, खुसरपुर, खुशनामपुर, खूखूतारा,
खूनी, खूनखेड़ा, खेरागढ़, खेलसर, ग्वालियर, गटंगा,
गढ़वा, गढ़ा, गढ़ीअर्जुनपुरा, गढग, गदाखेड़ा, गया,
गरवा, गरीका, गाजीपुर, गाडरवारा, गाँधीनगर,
गुजरेभूमरथा, गुजरा, गुठनीसारण, गुडेवल्लूर, गुडकांडे,
गुडगाँव, गुम्ही, गुलजारवाग, गुलबर्गा, गेन्डोली,
गोइन्दी, गोकलपुर, गोगुन्दा, गोगौथान, गोटाटीआ,
गोटाडोल, गोटेगाँव, गोडिहारी, गोधरा, गोण्डा, गोनौन,
गोपालपुर, गोमो, गोरंगचोड़, गोरेगाँव, गोला,
गोविन्दनगर, गोसी अमनौर, गोहरा, गौरनपुरवा, गंगरी,
गंगरार, गंगापुर, गंगामौथान, गंगावली, गंगासर, घनोरा,
घाटकीपर, घाटकोपर, घुरौंडा, घौडावाली, चक्रशता,
चकली, चक्रौंध, चक्रौंधा, चण्डीगढ़, चण्डेसर, चण्डौत,
चन्दनपुरा, चन्दनपुरा खुरई, चन्दा, चनपटिया, चनौद,
चनावनवान, चम्पानगर, चनोली, चलदिगान हल्मी,
चाण्डोल, चान्दपुरा, चान्दूर, चान्ना, चापोरा, चिंचौली
तालुका, चितरंजन, चितलदुर्ग, चिनेगाँव, चिमनीमहा,
चिरैली, चिलरा, चिलवरिया, चित्रकोट, चीमुर, चुनार,
चेचट, चेरिया वारियारपुर, चोकड़ी, चोड़ई,
चोढ़ली, चोहटन, चौपटिया, चौसा, चौहट्टा,
चंदिआ, चंदेरी, छतरपुर, छपरा, छतापुर, छोटा
मिर्जापुर, छोलापुर, ज्वालाचन्दी, जगतनगर,
जगतपुर, जगदीशपुर, जगदीशपुर अईहारी,
जगाधरी, जवलपुर, जम्बोडी, जमालीपुर, जमुआँव,
जमुनावृज, जयपुर, जरगाँवा, जरिगुम्मा, जरलगाँव,
जसवाड़ी, जहानाबाद, जहाँगीरगंज, जहाँगीराबाद, जागपुर,
जामठी, जापजपट्टी, जासमई, जीराबाद, जुगराजपुर,
जुवाद, जेवलपुर, जैतहरी, जोधपुर, जोरहट, जोरावर डीह,
जौड़िया, जौनपुर, जौरासी-वाहेली, झगराखाड़,
झमियाँ वाली, झाड़सुगुड़ा, झालरा पाटन, झाँसड़ी,
झाँसी, झीलीवाट, झुमरीतलैया, टावलामाधो, टिकरी,
टिकैतगंज, टिमरनी, टिकर, टीहरासुजानपुर, टेहरका,
ठठिया, ठीकहाँ भवानीपुर, डगावा शंकर, डलमऊ,
डल्लापुर, डल्लिराझरा, डोंगेरू, डालमिया नगर,
डिकौली, डिंडिगुल, डीकैन, डीह, डीही, डुमरिया
खुरई, डूंगरपुर, डूंगरा, डेंगपदर, डेम, डोम्हाटोल,
ढावलामाधोसिंह, त्यागराजनगर, तरुतपुरा, तरसौर,
तलुडीह, तलाव, तली, तलेन, तागा, ताजगंज, तामसी,
तिगिरिया, तियरा, तिरको, तिलकपुर, तुगड़ी, तुनिहा,

तुलसीपुरग्राण्ट, थातीधनारी, थादला, दड़माड़, दन्तेवाड़ा,
दवथुआ, दरियागंज, दलपारा खरियार, दसनावल,
दहिदबुक, दहीडा, दहौरा, दालकी, दाड़ी, दामोदरपुर
मठ, दिल्ली, दिलभी, दुर्गाडीह, दुर्गावती, दुमका,
दूदू, देऊलगाँव साकरशा, देवगढ़, देवजरा, देवनगर,
देवपारा, देवदास, देहरादून, दोन, दोमोहानी, दोलंगी,
धनगाँव, धनाड़ा, धनौड़ा, धमनापक, धरण, धर्मतरिया,
धमौली, धामडगाँव, धर्मारण्य-पीपरगाँव, (सुल्तानपुर)
तथा आसपासके ११२५ स्थान, धारवाड़, धारपुर,
धुआँवै, धुधड़का, धोलपुर, धोलपुरा, नई दिल्ली,
नई सराय, नखाड़ा, नखाना, नगला उदैया, नगीना,
नजीबाबाद, नथुवाखाना, नन्दग्राम, नन्दयाल, नन्दुरवार,
नवावगंज, नयापारा, नरसिंहगढ़, नरगाँव, नवरंगपुर,
नवसारी, नवार, नवीनकोपेश्वर, नसकण्डा, नागपुर,
नागरकोवल, नागौर, नानीपेट, नानी वावड़ी, नामदेवपुर,
नारदीगंज, नारनौल, नारायणगढ़, नारायणनगर,
नारायणपुर, नारी, नालाकुन्ता, नासिकरोड, नासीरुद्दीनपुर,
निजामाबाद, निरसाचट्टी, निहरी, नीमसराय, नीमोल,
नेडुनूर, नेम्मिकुस, नैनी, नैनाटिककर, नैनोली, नैमिषारण्य,
नोहर, नौगाँव, नौरोजाबाद, नौशहरा, पड़रिया, पड़वा,
पचैण्डाकला, पटना, पाठकोट, पतरवौली, पतुलकी,
पदमावतीपुर, परगी, परतेवा, परासन, प्रसन्ननगर,
प्रतापनगर, प्रतापगढ़, पनहास, पन्नावतीपुर, पथरी,
परली दौड़ानाथ, परसदा, परसपुर, परशुरामचक्र,
पल्टनवाजार, पलीसोहा, पवारखेड़ाफार्म, पसगाँव, प्रागपुरा,
पाउणी, पाथर्डी, पाटणवाव, पाण्डेगाँव, पाण्डे टोल,
पानीपत, पालगंज, पाली, पावशी-बुडाला, पिलवासिनि,
पिण्डावल, पिपरखेडे, पीपरतराई, पीपलखा, पीपलवाड़ा,
पीपली, पिपलानी, पुखराया, पून्यापुरा, पूर्वीनिवाणगंज,
पुरवा, पुदाकोलाई, पुरी, पुरौटी, पुवापां, पूना, पेंची,
पेम्डरा, पैडगुमल, पोटा, पंडार, पंडावल, फड़केवाड़ी,
फतेहगढ़ चूरिया, फतेहपुर जशोदा, फतेहपुर सीकरी, फरह,
फरहदा, फलोदी, फार्ग, फाखीसगंज, फिरोजाबाद, फुगाना,
फुलवरिया, फुलोत, फैजपुर, फैजाबाद, व्यावर, बरवतगढ़,
बगहा, बगासपुर, बजवज, बड़गाँव, बडेत, बड़ौत,
बजरंगपुरा, बजिराबाद, बड़वानी, बड़ेपल्ली, बण्डा,
बदनावर, बन्धा, बनवन, बनीपरा, बवाई, बमकोई,
बमनोरकला, बम्बई, ब्रह्मपुर, ब्रह्मावली, बरुधन, बरेलीकैन्ट,
बलरामपुर, बलसाड, बल्लीमाडा, बल्लीपुर, बसोवाई,
बसंथी, बहराइच, बहादुरपुर, बहिगा, बहियारी, बाँकीहमीरपुर

बांगरोद, बादनवाड़ा, बाँसी, बाकरपुर, बाबरियाशेरी,
 धारडोली, धारावंकी, धारो, धारेपाहा, धारू, धाल्नेन,
 बाल्मीकिनगर, बालापुर, बावला, बाँसडीह, बिलवाँ,
 बिजनवारी, बिजोलिया, बिरहा, बिरुलवाजार, बिलरवी,
 बिलन्दा, बिलासपुर, बिबंदा, बीकानेर, बीकौरीपनवासा,
 बीड़, बीनागंज, बेककोक, बैगाबाद, बेटमा, बेदनाल-
 सकरीपुर, बेतिया, बेरसुर, बेरसिया, बेलमंडई, बेलरगोदी,
 बेलही, बेलपुर, बेसरिया, बैजापुर, बैजुआखास, बैभाडीह,
 बैसाडीह, बोकरन्दा, बोटे, बोडा, बोहानी, बंगलोर, बंडोल,
 बंदेसर, भट्टपुरा, भटगामा, भटिन्डा, भटोतर चकला,
 भद्रपुरा, भदेवाँ, भरोसा, भवदेवपुर, भवनाथपुर, भाट
 पचलाना, भागलपुर, भाणा, भानटेकठी, भिखी, भिंगार,
 भीकनगाँव, भीमड़ावांस, भीर, भुंडगाँव, भुरका, भुरपार,
 भुवनेश्वर, भुसावल, भेण्डटा, भैंसा, भैंसाडीह, भोपाल, भंडारा,
 भउगंज, भखाही, भगरदरा, भजरवाली, भझोली, भठकेरी,
 भदन, भण्डाना, भथुरा, भदविलागाम, भद्रास, भदीना, भदुरा
 रानीगंज, भधवापुर, भधुवनीकला, भनकरा, भनीमाजरा,
 भलकापुर, भलगगाँव, भलारा, भलाड, भलाहरा, भलेगाँव,
 भसकनवा, भसही, भस्तीचक, भहदेवा, भहनार, भहमदपुर,
 भहराजपुर, भहरौनी, भहादेवपुर, भहराजगंज, भहराजपुर,
 भहारानीपेट, भहुआ, भहुतरी, भहोली, भाउण्टरोड,
 भांड्या, भाकडोन, भाटे, भातौल, भाधवनगर, भाधोपाली,
 भानगाँऊ, भांडया, भानपुर नगरिया, भाना, भांडुगा,
 भानिकपुर मगइया, भायूरम, भारुति, भालीनगर, भिकनगाँव,
 भियाडा, भिर्जापुर, भिश्रीपुर, भुजपफरनगर, भुडी,
 भुधोल, भुवारकशाह, भुर्जी, भुरादपुर, भुरादाबाद, भुंडला,
 भुहम्मदाबाद गोहना, भूदी, भेघननगर, भेघौल, भेदनीपुर,
 भेरठ, भेरठकैन्ट, भेल्लेमपुरी, भेहदावल, भैनापारा, भैसूर,
 भोडासा, भोदीनगर, भोधिया, भोविया, भोधाखोड़ा, भोर्वी,
 भोर, भोरम, भोररा केवडी, भोहम्मदाबाद, भोहाली, भोकासा,
 भौथान, भौदह चतुर, भंगरुल, भगलाध, भगलावरपेटा,
 भंडईखुर्द, भंडला, भकलखी, भकुतपुरा, भेम्मिगमूर,
 भेल्लाकोन्डा, भेवला, भगजा, भतनगढ़, भतलाम, भति, भहमतपुर,
 भहावली उवारी, भजकोट, भजगढ़, भजपुर, भजपुर फार्म,
 भजनन्द गाँव, भजवाटि, भजुला, भतोवढ़, भधाउर,
 भानीखेत, भानापुर, भानावाग, भामेश्वर, भामगढ़, भामतीर्थ,
 भामपुर अहिरोली, भामपुर कसिहा, भामपुर तरोहा,
 भामपुर बुरौहर, भामविलासनगर, भायगढ़, भायचुर

भायपुर, भायतगीव, भायतगाँव, भायवरेली, भायचोटी,
 भिनाक, भिवालसर, भिगनोट, भद्रपुरा, भूपसागर,
 भूसे, भैंका, भोलोटपार, भोहिणी, भंगवासा, भक्कावली,
 भखनऊ, भत्ता, भदनियां, भमगड़ा, भमुनहा, भरकर,
 भश्कर, भसिया, भक्षमणगढ़, भजगीगढ़, भालागुडा,
 भालमनपुर, भालसलग्राम, भालापुर, भेसवा, भोनावला,
 भोहना पश्चिम, भोहागीर, भौकहा, भधैया, भर्धा, भस्तेज,
 बरहट, बरौधा, बल्लभनगर, बसन्तपुर, वाराणसी,
 वासी, वाशीम, विजवार, विद्यारण्यपुर, विदर, विराटनगर,
 विरावास, विलखी, विलासपुर, विलासणी, विल्विक्रम,
 विसनगर, विसम्भरपुर, विष्णुगढ़, विष्णुपुरवृत्त,
 विष्णुपुरा, वीरवाला, वेतिया, वेहट, वैजापुर, वैनी,
 श्रीनिवासपुर तातूका, श्रीपुरा, श्रीरामपुर, श्रीवैकुण्ठम,
 शीतलपुर सियरहा, शरफुद्दीनपुर, शहजेल, शहपुरा, शाजापुर,
 शाहगढ़, शाहपुर, शाहीपुर, शांकरी, शिउरा, शिर—
 कासार, शिवाजी नगर, शिलांग, शिवगंज, शिवली, शिलकोट,
 शूकर वस्ती, शेखपुर, शेखोपुर, शोलापुर, सकराली,
 सकरी, सखेड़ी, सन्नजनपुर, सठिया, सड़रा, सणसोली,
 सत्वास, सतवरिया, सतरगंज, सतरा, सन्दीला, सनावड़ा,
 सनोली, सवलपुर, सवलगढ़, सम्बलपुर, सतरी, सम्बलपुर,
 समसेर, सवालडी कोलियरी, सरसपुर, सराठा, सराना,
 सरायभावसिंह, सरिया, सरेया, सरोजनीनगर, सलकिया,
 सली, सहडौल, सहारनपुर, सहिया, सांरखानी, सांगली,
 सागर, सातारा, साथनीपुरा, सावरमती, सावरी, सायना,
 सारन, सलेम, सिकन्दरपुर, सिराग, सीगौन, सीतापुर,
 सीतामऊ, सीतारामपुर, सिकन्दराबाद, सिकन्दर, सिंघोला,
 सिंघीवाली, सिद्धशुकतार, सिमरौली, सिरपुर, सिरजगाँव
 वंड, सिरपुर, सिरसा, सिवहारा, सीधकाला, सीवन,
 सिवनी, सिहोरा, सुधातला, सुचित्रागंज, सुजानगढ़,
 सुन्दरपुर, सुरजावली, सुरेशपुर, सुल्तानगंज, सुल्ह पंजाब,
 सुरजपुर, सुलिया, सेलीहाट, सेवला, सोडपुर, सोंद, सोनरे,
 सोनावला, सोरों, सोव गाँव, सौरिख, संगेम, हजारीवाग,
 हनामकुण्डा, हमनाबाद, हरिकिशुनपुर, हरगाँव, हरदा,
 हरदिया, हरसेर, हरिभाषा, हरिहरपुर, हरिहरापुर, हल्लिवेड़,
 हसनगंज, हसनपुर, हसुवा, हाँफा, हाँजीपुर, हाथीवधा,
 हातीसर, हिंगणवाट, हिंगणा, हिवार, हिमगिररोड,
 हिरेकुंवी, हिरेकेरूर, हिसार, हिलौधा, हरिमा,
 हैदरनगर, हैदराबाद, होसाडीव, होस्पेट, होलीपुरा ।

प्रभू—पुनर्जन्मकी एक घटना

(लेखिका—श्रीमती उर्मिला वर्मा)

वर्षाकी काली भीगी रातमें जब घन-गर्जन हो रहा हो, स्वभावतः ही प्रत्येक व्यक्तिको अपने प्रियजनोंकी चिन्ता व्याप्त हो उठती है। इसी प्रकारकी चिन्तासे व्याकुल हो उठा साढ़े तीन वर्षका एक बालक प्रभू। अपनी माँके समीप सोते-सोते एकाएक उसे चिन्ता व्याप्त होगयी। 'हा ! मेरे बच्चे पता नहीं किस दशामें होंगे।' बोल उठा प्रभू और उसके इन शब्दोंने माँको भी चौंका दिया। प्रभूने और आगे भी कुछ कहा, जिसका सार यह था कि उसके भी बच्चे हैं। माँने सुना, पर प्रभूको चुपचाप सो जानेका आदेश दिया और वह स्वयं भी सो गयी।

परंतु अपने पूर्वजन्मका घर, बच्चे तथा माँ निरन्तर प्रभूको याद आते रहे। एक दिन उसकी माँ जब मकखन निकाल रही थी, प्रभूने कहा—'माँ ! तुम तो मुझे बहुत कम मकखन देती हो, मेरी माँ तो मुझे मकखनके बहुत बड़े डुकड़े दिया करती थीं।'।

'तो कहाँ हैं तुम्हारी माँ।'।

'मेरी माँ ! वह तो हतोरीमें रहती है और मेरा वास्तविक नाम तो हरवंश है।'।

इतनी बातें जाननेके बाद प्रभूके माँ-बापकी जिज्ञासा इस विषयमें बढ़ी और उन्होंने उसके पिछले जन्मके विषयमें प्रभूसे और बातें जाननेका प्रयत्न किया। पूछनेपर प्रभूने बताया कि वह तो हतोरीका एक ब्राह्मण मुधेका लड़का है। उसके स्वयंके दो लड़के घूरे तथा श्यामलाल और दो लड़कियाँ कोकिला और मोती हैं। उसका अपना मकान था। उसने जहाँ अपनी दोनों लड़कियोंका विवाह किया था, उन सज्जनोंके नाम भी बताये। एक लड़कीके विवाहमें उसने रुपये लिये थे, पर दूसरीका विवाह बिना रुपये लिये ही कर दिया था।

उपर्युक्त घटना घटित हुई थी अनेकों वर्ष पूर्व १९२३ में भरतपुर (राजस्थान) के समीपवर्ती गाँव हतोरीमें। भरतपुरके महाराजा किशनसिंह महाराजने इस घटनाके विषयमें सुना अपने ए०डी०सी० श्रीभगवतसिंहसे। महाराजको स्वयं इस विषयमें बड़ी जिज्ञासा हुई।

उन्होंने अपने ए०डी०सी० को आज्ञा दी कि बालक

प्रभू उनके सम्मुख उपस्थित किया जाय। अगले ही दिन बच्चा उनके सम्मुख उपस्थित किया गया। बालक राजदरबारका वैभव देखकर चकित हो रहा था। उसे खेलनेको खिलौने दिये गये, जिससे वह अपनी अकुलाहट भूलकर सहज स्वाभाविक मनःस्थितिमें आ जाय। तब महाराजा साहबने प्रश्न किया—'तुम्हारा नाम क्या है, किस गाँवके रहनेवाले हो?' इस प्रश्नने बालकको फिर दो राहोंपर लाकर खड़ा कर दिया—

'किस जन्मका नाम और पता पूछ रहे हो अन्नदाता ! इस जन्मका या पिछले जन्मका ?'

महाराजने कहा—'मुझे दोनों ही जन्मोंके विषयमें बताओ।' बड़ी विनयपूर्वक बच्चेने कहा—'महाराज ! पिछले जन्ममें तो मेरा नाम हरवंश था तथा गाँव मेरा हतोरी था। इस जन्ममें मेरा नाम प्रभू है और मैं सलीमपुर गाँवमें रहता हूँ।'।

बालक फिर खिलौनेमें उलझ गया। कुछ देर पश्चात् महाराजने अपने ए०डी०सी० को बुलाया और प्रभूसे उनके विषयमें पूछा। बच्चेने तुरंत ही उन्हें पहचान लिया और बोला—'अरे छोरे ! मैं तो तेरा पुरोहित हरवंश हूँ।'।

तत्पश्चात् महाराजने हतोरी गाँवके वारेमें बालकसे पूछ-ताछ की। बालकने गाँव तथा अपने घरका जो वर्णन दिया वह पता लगानेपर सब सही निकला। महाराज इस बीच अपने निजी गाड़ी-सवारको भी बुला लिया और बताया कि नाथीलाल कोचवान उसके भाईका लड़का था।

इन बातोंने महाराजकी जिज्ञासा जाग्रत कर दी तथा पर्याप्त मनोरंजन भी किया। उन्होंने इस केसकी पूरी छान-बीन करनेका आदेश रावबहादुर डा० श्यामसुन्दरलालजीको दिया।

बच्चेको जब हतोरी ले जाया गया, तब उसने वहाँके सभी जाने-माने सज्जनोंको पहचान लिया था। जो बातें बच्चेने बतायी थीं वे लगभग सभी सही निकली थीं। तत्पश्चात् जब बच्चेसे हतोरीमें अपने मकानका पता लगानेको कहा गया तो बिना किसी अन्यकी सहायताके बच्चेने सारे रास्तेका पता लगा लिया और मकानपर पहुँच गया था। यद्यपि उस हवेलीमें अन्य भी कई घर थे, पर प्रभूने अपने

पुराने सकानका ही निश्चयरूपसे पता लगा लिया था। पास-पड़ोसके रहनेवालोंको भी पहचान लिया और नाम भी बताया।

उसी समय एक अन्य गोविन्द ब्राह्मण वहाँ खड़ा था, प्रभूने तुरंत उसे पहचानकर कहा—‘अरे गोविन्द ! याद नहीं तुम्हें—हम दोनोंका सकानके बारेमें झगड़ा हो गया था, तू अपनी तलवार निकाल लाया था और मैंने वह तलवार छीनकर फेंक दी थी।’ उसी समय गोविन्दका भाई शिवनारायण वहाँ आ पहुँचा और उसने इस बातकी पुष्टि की।

बालक प्रभूने एक ऐसा स्थान भी वहाँ बताया, जहाँ उसने अपने यजमानसे मिले पाँच रुपये गाड़े थे। उस स्थानके खोदे जानेपर वे पाँच रुपये भी प्राप्त हो गये थे।

(हरवंश) प्रभूने यह भी बताया था कि गाँवमें उसने कूँसे निकालकर एक व्यक्तिके प्राण भी बचाये थे। पता लगानेपर यह घटना भी सही निकली थी।

इस केसमें एक अद्भुत बात यह रही कि बालक प्रभूने एक जन्मका ही नहीं, वरं एक साथ दो पिछले जन्मोंका वृत्तान्त बताया। बालक प्रभू अक्सर अपने घुटनोंमें दर्दकी चर्चा किया करता था। माँने जब पूछा तो उसने बताया कि

प्रभूके रूपमें जन्म लेनेसे पूर्व वह एक हिरनके रूपमें भी जन्म ले चुका था। किसी शिकारीद्वारा गोली उसके घुटनेमें लगी थी, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी थी। इसी कारण अब भी अक्सर उसके घुटनोंमें दर्द हो जाता था।

उपर्युक्त घटनाकी छान-बीन कई वर्ष पूर्व हो चुकी थी। जयपुरकी पैरासाइकोलॉजी इन्स्टीट्यूटको जब इस विषयमें पता लगा तो डा० बनर्जीने अपने अन्य सहकारियोंके साथ वैज्ञानिक रूपसे इस घटनाकी छान-बीन तथा उन लोगोंसे मिलकर पूरे केसका अध्ययन किया। यह अध्ययन एक पुस्तक-रूपमें संकलित है जिसे विश्वविद्यालयके पैरासाइकोलॉजी विभागने प्रकाशित किया है।

परामनोविज्ञान विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर वैज्ञानिक रीतिसे ऐसे वृत्तान्तोंके शोधमें संलग्न है। अतएव इस प्रकारकी घटनाओंके सम्बन्धमें यदि कोई जानकारी देना चाहे तो विभाग उसका स्वागत करता है। पत्रव्यवहार नीचे लिखे पतेपर किया जा सकता है—

प्रो० हेमेन्द्रनाथ बनर्जी, संचालक परामनोविज्ञान विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

गोमाताकी कृपा

घटना हमारे यहाँ श्रीरामपूर मिलकी है। पाँच साल पूर्व हमने श्रीरामपूर (अहमदनगर)में श्रीलक्ष्मी इंडस्ट्रीज-के नामसे श्रीरघुनाथदास धूतकम्पनीकी भागीदारीमें ऑयल मिल शुरू की। प्रारम्भमें दो सालतक कभी मशीनरी टूट गयी, कभी कुछ नुकसान हो गया—बड़ी तकलीफ रही। लाख कोशिश करनेपर भी हम सँभल नहीं सके।

एक दिन देखा गया—मिलके दरवाजेके सामने एक गाय पड़ी हुई है। कसाई उसे ले जानेके लिये बहुत प्रयत्न कर रहा है—मारपीट कर रहा है, तब भी गाय जरा भी हिलती नहीं। देखनेवालोंकी आँखोंमें आँसू आ गये। मिलके मजदूरोंने उपर्युक्त घटना देखकर मैनेजरको सूचना दी। मैनेजरने आकर कसाईके द्वारा छत्तीस रुपयेमें लायी हुई अच्छी दृष्ट-पुष्ट गौको पाँच रुपये मुनाफा—(कुल इकतालीस रुपये) देकर छुड़ा लिया। जो गौ कसाईके प्रयत्न करनेपर भी जरा भी नहीं हिलती थी। कसाईके छोड़ते ही वह सीधे मिलमें चली गयी।

तबसे वह गौ मिलमें ही पाली-पोसी जाने लगी। उस गौके मिलमें आनेके बादसे ही मिलकी हालत दिनों-दिन सुधरती गयी। जिस मिलके चलनेमें वरावर अड़चन आ रही थी, आज वही मिल गोमाताकी कृपासे बहुत अच्छी तरह चल रही है। वह तीन अच्छी नस्लके बछड़े दे चुकी है और प्रतिदिन पाँच लीटर दूध देती है। छोटा बच्चा भी उसके पास चला जाता है तो वह उसे जरा भी नहीं छूती। पर किसी दूसरे जानवरको कभी पास नहीं आने देती। भगवान्ने ऐसी कल्याणमयी गोमाताको मिलके दरवाजेपर पहुँचाया, इसके लिये हम उनके बड़े कृतज्ञ हैं।

—मदनलाल बुब

उदात्त सङ्गीत

(३) (कृतिकी सद्गति)

(रचयिता—डॉ० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र)

निर्धन हो या लखपती, असल कँगाल वही
जो व्यग्र अभावोंकी पीड़ामें रहता है ।
प्राकृत अभाव मिट जाते हैं प्राकृत श्रमसे
जब क्यों संस्कृत अभाव रच उसमें दहता है ? ॥ १ ॥
कृत्रिम संस्कृतिके आडम्बरमें सुख भी हो
पर वह विलास है, तृप्ति नहीं जिसने सीखी ।
कुछ लोग कुछ दिनों कलाकन्द चाहे चख लें
संतुष्टि दाल रोटीहीमें जगको दीखी ॥ २ ॥
तन है तो होंगे रोग, न पर न्योतो उनको,
आ जायें तो हिम्मतसे उनको दूर करो ।
समझो कि निरुजता ही है प्राकृत नियम सदा
दमको वेदम होनेको मत मजबूर करो ॥ ३ ॥
माना कि विषमताएँ दुनियाको घेरे हैं
उस घेरेको भी घेर, धैर्यसे बड़े चलो ।
उल्लास भरा है तो मंजिल तय ही होगी
मंजिलको भी सोपान बनाकर चढ़े चलो ॥ ४ ॥
निश्चय समझो जो कभी तुम्हारा बाधक था
वह देख तुम्हारा तेज स्वयं साधक होगा ।
तुम अपने आदर्शोंके आराधक हो लो
पथ स्वयं तुम्हारे पदका आराधक होगा ॥ ५ ॥
तुम हो अकाल, तन काल-कवल है; सही बात,
पर काल अकाल पहुँच आये यह तो न करो ।
तन जला रहे क्यों चिन्ताओंकी भट्टीमें
बेमौत मौतके पहिले ही तो यों न मरो ॥ ६ ॥
किसको न बुढ़ापा आता है इस जीवनमें
पर वह क्या, जिसकी यौवनमें झुक जाय कमर ।
जो होना है जब होगा तब होगा लेकिन
पहिले ही ध्वस्त हुए क्यों मान लेते भय पर ॥ ७ ॥

सच है हर मानवके पीछे है पेट लगा
पर उसकी सीमा तो बीते भर है केवल ।
फिर लाद रहे हो भार पीठपर क्यों इतना
जो पेट पकड़कर तुम्हें, रुदन हित करे विकल ॥ ८ ॥
श्रमकी महिमा है खूब, पसीना यमुना है,
पर उस यमुनाका इष्ट, शान्तिकी गंगा है ।
जिस मनके स्थलमें शान्ति और श्रमका संगम
वह ही प्रयाग-सा पावन मोहक चंगा है ॥ ९ ॥
वह कृपा वृथा जो क्रिया-प्रेरणा दे न हमें
वह क्रिया वृथा जिसमें न शान्तिके तत्त्व रहें ।
तड़पानेको हैं यहाँ विषम परिवेश बहुत
रम जानेको है इष्ट कि समता-सत्त्व रहें ॥ १० ॥
विषमावस्थामें भी समताके सत्त्व मधुर
कर्कश तारोंपर मधुर रागिनीसे भाते ।
स्वर उन मस्तोंकी मस्त रागिनीके सुन लो
जो समपर आकर कल्याणी धुनमें गाते ॥ ११ ॥
दुनियाके संघर्षोंसे लोहा लेनेका
वे ध्वनियाँ तुमको सोने-सा साहस देंगी ।
जिससे जीवनकी कालिख हीरा बन चमके
उस दिव्य किरणके कोश तुम्हें वरबस देंगी ॥ १२ ॥
नैतिकतासे, विवेकसे, जो करणीय जचे
वह करो, क्रियाके बिना न जीवन-चक्र चला ।
पर जो करना है उसमें यदि मन रमा नहीं
फिर तो अपने पथका है पुनर्विचार भला ॥ १३ ॥
दुनियाकी मर्जी है माने या मत माने
कृतिकी सद्गति मैंने मस्तीमें मानी है ।
जिसमें न सरसता है, तरंग है, वह सरिता
सूखी सिकताकी केवल करुण कहानी है ॥ १४ ॥

मैं भगवदिच्छासे ही 'गोरक्षा महाभियान समिति' में सम्मिलित हुआ

सम्मान्य महोदय ! सादर प्रणाम ।

आपका आवश्यक और मेरे हितकी दृष्टिसे लिखा हुआ आत्मीयतापूर्ण पत्र मिला । आपकी इस सद्भावना और प्रीतिके लिये कृतज्ञ हूँ । आपके प्रश्न तो बहुत लंबे हैं । अतः प्रश्न न लिखकर संक्षेपमें उत्तर लिख दे रहा हूँ । क्षमा कीजियेगा । मैं नहीं जानता कि मेरे इन उत्तरोंसे आपका संतोष होगा या नहीं, पर मेरे मनकी बात इस पत्रके द्वारा किसी अंशमें प्रकट कर सकूँगा ।

मेरा किसी भी राजनीतिक दलसे कोई सम्बन्ध नहीं । चुनावमें मैं स्वयं तो खड़ा होता ही नहीं । किसीका समर्थन-विरोध भी नहीं करता । अवश्य ही यह चाहता हूँ और आप भी यह चाहते होंगे कि योग्यसे योग्य, सच्चे, ईमानदार, विचारशील, बुद्धिमान् और कर्तव्यपरायण तथा ईश्वरसे डरनेवाले लोग संसद् और विधानपरिषद् आदिमें जायँ, चाहे वे किसी भी दलके हों या निर्दलीय स्वतन्त्र हों, जिससे देशको न्याय और सत्यकी उपलब्धि हो सके और देश वास्तवमें ही विनाशसे बचे ।

वर्षोंसे मेरा राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है । यद्यपि हिंदू-धर्मके अनुसार हिंदू राजनीतिको धर्मसे रहित नहीं मानता । हमारे यहाँ तो मूत्र-पुरीषोत्सर्ग तक धर्मके अन्तर्गत है ! गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टि तक और मृत्युके बाद भी हमारी प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक विचारका धर्मसे सम्बन्ध है । धर्महीन राजनीति तो असुरोंकी होती है । राजनीतिसे अलग रहनेका मेरा अर्थ इतना ही है कि मैं वर्तमान किसी भी 'पोलिटिकल पार्टी' से कोई सम्बन्ध नहीं रखता ।

मेरा किसी भी राजनीतिक दलसे राजनीतिके नाते कोई सम्बन्ध नहीं है । यों सभी अपने हैं । मुझे प्रेम करनेवाले मित्रोंमें कांग्रेसी भी हैं; जनसंघी, हिंदू महासभाई, रामराज्य-परिषदी तथा स्वतन्त्र दलके भी हैं एवं समाजवादी, प्रजा-समाजवादी, साम्यवादी और विप्लववादी भी हैं । वे सभी मुझे अपना समझते हैं ।

यदि देश और विश्वको जल्दी ही प्रलयका शिकार नहीं होना है तो गोहत्या बंद होगी ही । और सारे विश्वमें जहाँ-जहाँ गोहत्या होती है, बंद होनी ही चाहिये । इस आन्दोलनके फलस्वरूप भी गोहत्या बंद होनी चाहिये; क्योंकि यह विश्वकी रक्षाके लिये आवश्यक है । परंतु मुझे

इस आन्दोलनके फलकी कोई चिन्ता नहीं है, न उसमें आसक्ति है । भगवान् जब जिस प्रकारकी बुद्धि दें, किसीका भी बुरा न चाहते हुए भगवत्पूजाके भावसे सावधानीके साथ उस बुद्धिके अनुसार कार्य करना चाहिये । न तो कार्यके पूर्ण होनेमें आसक्ति होनी चाहिये और न कार्यके अनुकूल फलमें आसक्ति होनी चाहिये । घरमें आग न लगे, सावधानी रखनी चाहिये । आग लग जाय तो बुझानेका प्रयत्न करना चाहिये । वस, अपना काम हो गया । घर जलना होगा तो जलेगा ही, इसके लिये चिन्ताकी आवश्यकता नहीं ।

असलमें साधक मनुष्यको कर्मासक्ति तथा कर्म-फलासक्ति न रखते हुए जैसे नाट्यमञ्चपर कुशल अभिनेता अपने स्वांगके अनुसार अपना अभिनय नाटकके स्वामीकी प्रसन्नताके लिये कुशलताके साथ करता है, वैसे ही,— भगवत्प्रीत्यर्थ अपने कर्तव्यका सम्पादन करना चाहिये ।

मुसल्मान-ईसाइयोंसे मेरा तनिक भी द्वेष नहीं । कई मुसल्मान भाई-बहिन ऐसे हैं जो मुझे अपने सगे भाईसे बढ़कर प्यार करते हैं । बहुत-से ईसाई मेरे मित्र हैं । वस्तुतः मनुष्य ही नहीं, चेतन पशु-पक्षी-तिर्यक् जीव ही नहीं—जड़ पृथ्वी, जल-अग्नि, वायु-आकाश, समुद्र-नदी, वृक्ष-लता, गिरि-पर्वत, दिशा-विदिशा सभीको मैं भगवत्स्वरूप मानना और देखना चाहता हूँ ।

आप आध्यात्मिक दृष्टिसे पूछ रहे हैं, इसलिये मैं भी चेष्टा करता हूँ कि उसी दृष्टिसे उत्तर लिखूँ । भगवान्की दृष्टिसे चराचर अनन्त विश्व केवल भगवान्की ही अभिव्यक्ति है । जड़-चेतन सभीके रूपमें भगवान् प्रकट हैं । सबमें भगवान्का दर्शन करते हुए यथायोग्य अपने कर्मके द्वारा भगवान्की पूजा करनी चाहिये और पूजा करनेवाले तथा पूज्यमें भी कोई भेद नहीं रहना चाहिये । भक्तकी दृष्टिसे इतना भेद अवश्य रहेगा कि भक्त पूजा करनेवाला है और अखिल विश्वके रूपमें भगवान् उसके पूज्य हैं । किसीसे वैर-विरोध और द्रोह-हिंसाका तो कोई प्रश्न ही नहीं । पूजामें त्रुटि न आने पाये, यह ध्यान अवश्य रहेगा ।

आत्माकी दृष्टिसे सब आत्मा है । जैसे एक ही शरीरके सारे अङ्ग—पैरसे लेकर मस्तकतक सब हमी हैं । कहीं भी चोट लगे, हमें लगती है, उसी प्रकार समष्टि आत्मा ही समष्टि

जगत् है। इस अवस्थामें किसीका बुरा चाहना और करना बन ही नहीं सकता।

सत्य है, मुझे एकान्त अच्छा लगता है। मैं प्रतिदिन अधिक-से-अधिक समय दरवाजा बंद किये अकेला रहता हूँ। मैं अकेलेमें क्या करता हूँ—इसे तो भगवान् ही जानते हैं। चेष्टा करता हूँ कि लोकालयमें भी ठीक वैसा ही अनुभव करूँ, पर कर नहीं पाता। यह मेरी कमजोरी है।

ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन करते हुए कहा—
तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥

(श्रीमद्भागवत १०।१४।३६)

‘श्रीकृष्ण ! जबतक मनुष्य तुम्हारा जन नहीं हो जाता, तभीतक राग-द्वेष आदि चोर उसके पीछे लगे रहते हैं, तभीतक घर कैदखाना बना रहता है और तभीतक पैरमें मोहको बेड़ियाँ जकड़ी रहती हैं।’ अतएव मेरे लिये कारागार और घरमें कोई अन्तर नहीं है। मुझे न जेल जानेकी इच्छा है, न जेलका डर है; न मैं ऐसा कोई दूषित कर्म करना चाहता हूँ, जिससे जेल जाना पड़े। सत्कर्म करते शरीरको जेलमें रहना पड़े तो कोई आपत्ति भी नहीं है। मैं उससे वचना भी नहीं चाहता। मोह-ममता है तो घर भी जेलखाना है। द्वन्द्व-समता है तो कहीं भी बन्धन नहीं है। सदा सर्वत्र भगवान् हैं और सदा सर्वत्र भगवान्में निवास है।

इस आन्दोलनमें सम्मिलित होनेके कारणोंमें प्रधान कारण तो है भगवदिच्छा। मैंने स्वयं इच्छा भी नहीं की थी और प्रयत्न भी नहीं किया। अनायास ही इस प्रकारके कारण बनते गये कि जिससे मैं इसमें सम्मिलित हो गया और अब इसमें सम्मिलित होना मुझे कर्त्तव्य भी जान पड़ता है। अनशनकी बात मैंने किसीसे कही नहीं, पर जिन महात्माओंका सात्विक विश्वास है, उनको रोकनेवाला मैं कौन होता हूँ। मैंने किसीको रोका भी नहीं। अपने यहाँ लोकोपकारार्थ प्राणदान करनेका, सर्वस्व-त्यागका विधान है और वह परम पवित्र है। वह आत्महत्या नहीं, तपस्या है और यथाधिकार कर्त्तव्य है। पर मैं वृद्ध, शरीरसे अस्वस्थ—मैंने अनशनका न कभी विचार किया और न अब भी मेरा विचार है।

यह बात लोग कह सकते हैं और लोगोंके द्वारा कही भी गयी है कि प्रदर्शनकारी लोग गायको बचानेका नाम लेकर गये थे और उन्होंने मनुष्योंकी हत्या करवा दी। मनुष्योंकी

हत्याएँ हुई ही, यह सत्य है। और प्रत्येक वस्तुको आदमी अपनी-अपनी आँखसे देखता भी है; पर भ्रम भी होता है। यह भ्रम ही तो है कि हमलोग भगवद्रूप जगत्को भगवान्-से भिन्न मान रहे हैं। इतना बड़ा भ्रम जब रह सकता है तब प्रदर्शनकारियोंको मनुष्योंकी हत्या करनेमें कारण समझनेका भ्रम होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं; पर सत्य कुछ और ही है। मैं स्वयं ७ ता०को प्रदर्शनमें था। मैंने देखा है, सुना है, समझा है और उसके आधारपर निर्भ्रान्त रूपसे कह सकता हूँ कि मनुष्योंकी हत्या करनेका आरोप प्रदर्शनके संचालकोंपर लगाना मिथ्या तो है ही, सर्वथा पाप है। मनुष्योंकी हत्या हुई, कुछ मकानोंके अंश भी जले और टूटे-फूटे, कुछ मोटरें भी जलीं, पर यह काम किसके द्वारा हुआ, इसको वास्तवमें भगवान् ही जानते हैं। पर हुआ यह उन्हीं आसुरी सम्पदाके आश्रयी दुष्कृत लोगोंके द्वारा, उन्हीं मूर्खोंके द्वारा जो अपना भविष्य नहीं सोचते और दूसरोंके अमङ्गलमें ही जिनको सुख मिलता है। वे कोई हों, भगवान् उनको सुबुद्धि दें, उनपर दया करें।

आपके कई प्रश्न मैं छोड़ देता हूँ और अन्तिम प्रश्नका उत्तर यह है कि मेरी समझसे इस हिंसा-काण्डको लेकर आन्दोलनके बंद करनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इस आन्दोलनके संचालक विशुद्ध शान्ति और अहिंसाको चाहनेवाले रहें; अहिंसा, प्रेम, शान्ति और आत्मभावनाको और भी बढ़ावें, सबका मङ्गल चाहें, मङ्गल करें और समस्त देशवासियोंका आवाहन करें कि लोग मनसे, तनसे, धनसे—जो जिस योग्य हों, इस महान् पुण्यकार्यमें योग दें। भगवान् हमारे वर्तमान शासकोंको भी सुबुद्धि प्रदान करें, जिससे उनके अंदर भी सौहार्द प्रकट हो, वे करोड़ों देशवासियोंकी अन्तर्व्यथा समझकर उसे मिटानेके लिये शीघ्र-से-शीघ्र सम्पूर्ण गोवंशकी हत्याको कानूनन बंद कर दें। आवश्यक हो तो विधानमें भी संशोधन किया जाय। साथ ही गोपालन और गोसंवर्द्धनकी व्यवस्था भी की जाय। भगवान्की कृपा, भगवान्के मङ्गलविधान, सबमें एक भगवान् विद्यमान हैं—इस बातपर विश्वास रखते हुए, जबतक गोहत्या सम्पूर्णतया बंद न हो, शान्तिपूर्ण वैध साधनोंके द्वारा आन्दोलनका क्रम जारी रहना चाहिये और समस्त देशमें इसका विस्तार होना चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

गोहत्या-निरोध

देशके लोगोंको यह आशा थी कि गोपाष्टमी (२० नवम्बर) से पहले-पहले भारत-सरकारकी ओरसे सर्वथा गोहत्या-बंदीकी घोषणा हो जायगी। सम्मान्या श्रीइन्दिराजी और सम्मान्य श्रीनन्दाजीसे मिलनेवाले लोगोंको जो कुछ कहा गया था, उसे प्रतिज्ञा नहीं तो, इतना तो समझा ही गया था कि यह सच्चा आश्वासन है और इसका सुपरिणाम होगा तथा संत-महात्माओंको आमरण अनशन व्रत नहीं करना पड़ेगा; परंतु होता वही है जो विधाताके विधानके अनुसार होना है। हमारे शासनपदारूढ महानुभावोंका मन नहीं बदला और परिणामस्वरूप आज हमारे श्रेष्ठ शंकराचार्य, संत प्रभुदत्तजी तथा अन्यान्य साधु-महात्मा बंदीकी स्थितिमें अनशन कर रहे हैं। दिल्लीमें श्रीरामचन्द्र शर्मा 'वीर' और ज्ञानवापी वाराणसीमें अनशन कर रहे श्रीरामलखनसिंहजी मरणासन्न हैं। इसमें जिन लोगोंको उनकी बुद्धिने निमित्त बनाया है, भगवान् उनपर कृपा करें; उनकी बुद्धिको शुद्ध करें।

जब मनुष्यकी बुद्धि तमसाच्छन्न होती है तब उसका सारा निर्णय विपरीत हुआ करता है—

‘सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।’

—यही आसुरभाव है। इसीसे आज हमारे देशके

भारत-सरकारकी मांस-उत्पादनकी पंचवर्षीय योजना

समय	गोमांसका उत्पादन मनोंमें	अन्य सभी प्रकारके पशुओंके मांसका उत्पादन मनोंमें	मांसका कुल जोड़
१९६१ से १९६६ तक	१,१८,७५,०००	२,१५,३७,५००	३,३४,१२,५००
१९६७ से १९७१ तक	३,९३,७५,०००	२,५६,७५,०००	६,५०,५०,०००
१९७२ से १९७६ तक	६,९५,६२,५००	३,२४,६२,५००	१०,२०,२५,०००
१९७७ से १९८१ तक	७,१२,५०,०००	४,४२,७५,०००	११,५५,२५,०००

इस योजनाके अनुसार १९६७ से १९८१ तक १५ वर्षोंमें पाँच करोड़, तिरानवे लाख, पचहत्तर हजार (५,९३,७५,०००) मन गोमांसका उत्पादन बढ़ना चाहिये। यदि यह योजना सत्य है (भगवान् करें—सर्वथा असत्य हो) तो लोगोंका यह समझना अयुक्त नहीं कहा जा सकता कि गोमांसके व्यापारकी वृद्धिके लिये ही सरकार गोवंशकी हत्या सर्वथा बंद करनेमें आनाकानी कर रही है !

गण्य-मान्य शासक महानुभाव, हमारे अर्थशास्त्री कहलानेवाले लोग घोर हिंसाके कसाई-व्यापारसे देशके संरक्षण और संवर्धनकी बात सोच रहे हैं। मुझे पता नहीं, कहाँ तक सत्य है, पर यदि सत्य है, तो भयानक हैं। देशमें विभिन्न स्थानोंपर करोड़ों रुपये लगाकर मछली-मुर्गा-उत्पादन केन्द्र बनाये जा रहे हैं। यह भी निश्चय किया गया बताते हैं कि चतुर्थ विकास (विनाश ?) योजनामें ४ बड़े कसाईखाने, २५ मध्यम और १२८ छोटे कसाईखाने बनाये जायेंगे और २० मांसके बाजारोंका नवीनीकरण होगा। इसके निमित्त १०,७४ करोड़ रुपयेकी धनराशि निर्धारित की गयी है।

पिछले दिनों समाचार छपा था कि सरकार वत्तीस (३२) करोड़ रुपये लगाकर गोपालकी लीलाभूमि मथुराके समीप हजरतपुर (आगरा जिला) में एक बृहत् यांत्रिक कसाईखाना बनाने जा रही है जिसमें कम-से-कम पाँच हजार पशु प्रतिदिन काटे जायेंगे और उनके मांस आदिका व्यापार होगा। लगभग ४०० मन (१५ टन) सूखा मांस तैयार होगा। इस कसाईखानेमें देशके अधिक पशुओंका संहार हो जाना सम्भव है।

कुछ वर्षों पूर्व मांस-उत्पादनकी सरकारी योजनाका एक विवरण छपा था, वह यदि सत्य है तो बड़ा ही भयानक है। वह निम्नलिखित है—

इस प्रकारकी घोर हिंसाकी योजना बनानेवाले हिंसाप्रवण मनुष्योंको अगले जन्मोंमें क्या बनना-भुगतना पड़ेगा—तो तो भगवान् ही जानते हैं !

ऋषि-मुनियोंकी तपोभूमि, भगवान्की लीलाभूमि और संतों-भक्तोंकी साधन-भूमि आज उसी पवित्र भूमिके तमोऽभिभूत निवासियोंके द्वारा मोहवश अत्यन्त विशाल

‘वधभूमि’—‘निरीह-प्राणि-हत्या-भूमि’के रूपमें परिणत होने जा रही है ! भगवान् ही रक्षा करें ।

पशुओंमें गौ सबसे अधिक पवित्र है, वह हमारी पूजनीया माता है और वही आज हजारोंकी संख्यामें हम भारतीयों-के हाथोंसे ही प्रतिदिन निर्दयताके साथ काटी जा रही है एवं उसके काटनेका विरोध करनेवाले, न काटनेका कानून बनानेकी प्रार्थना करनेवाले संत-महात्मातकको उपद्रवी, शान्ति-भङ्गकारी बताकर कारागारमें बंद किया जा रहा है । उनपर लाठी, गैस, गोली चलायी जा रही है ! कैसा भीषण दुर्दैव है ! कितना घोर दुर्भाग्य है !

गोरक्षाका आन्दोलन नया नहीं है । बहुत पुराना है । सदियोंसे चला आ रहा है; पर अबतक वह विदेशी शासनमें होता रहा है और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों तथा दलोंद्वारा चलाया जाता रहा है । दुर्भाग्य है कि आज ‘स्वराज्य’में भी उसे चलाना पड़ा, पर यह संतोषकी बात है कि यह वर्तमान आन्दोलन सर्वदलीय और सार्वदेशिक है । इसमें विभिन्न सम्प्रदायों और मतोंके सभी लोग सम्मिलित हैं और सभी एक स्वरसे गोवंशकी हत्या कानूनके द्वारा सर्वथा बंद करानेकी सरकारसे माँग कर रहे हैं । इसमें कांग्रेसी हैं, निर्धर्मी हैं, सनातनधर्मी हैं, आर्यसमाजी हैं, हिंदूसभाई हैं, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके उत्साही लोग हैं, सिख हैं, चारों वर्णों और आश्रमोंके एवं वर्णोत्तर वर्गके लोग हैं । इसमें महान् शंकराचार्य हैं, महामण्डलेश्वर हैं, रामानुजसम्प्रदायके आचार्य हैं, निम्बार्क-सम्प्रदायके आचार्य हैं, बल्लभसम्प्रदायके आचार्य हैं । मान्य जैनाचार्य हैं, नामधारी सिख महानुभाव हैं और भी बहुते गण्य-मान्य आचार्य हैं—और इन सभीके अनुयायी लोग हैं । बड़े-बड़े विद्वान् पण्डित, त्यागी, विरक्त महात्मा और आदरणीय लोकनायकगण हैं । मुसल्मान और ईसाई भी हैं । यों सभी श्रेणियोंके नर-नारियोंका यह संगठन है । सो भी केवल कागजोंमें नहीं । विगत ७ नवम्बर-को दिल्लीमें इसका मूर्तिमान् विशाल स्वरूप प्रत्यक्ष था । विभिन्न प्रान्तीय विभिन्न वेश-भूषासम्पन्न नर-सरिताएँ उमड़ी आ रही थीं—पर उनकी धारा थी प्रशान्त, मधुमयी; अवश्य ही वेगवती थी । धारामें ओज था, उत्साह था; पर सात्विकी सुधा-धारणसे ओतप्रोत थी । लेकिन दुर्भाग्य ! कुछ लोगोंके मतोंमें पैशाची—राक्षसी अवाञ्छनीय भावनाएँ खेल रही थीं । सरकारी अधिकारी और हमारी पुलिसके लोग भी (जिनका एक अंश जुलूसके साथ बड़े प्रेमसे सहयोग

देता आ रहा था) विकृतबुद्धि हो गये । अधिकारियोंने बुद्धिका संतुलन खोकर (‘बुद्धिनाशात् प्रणश्यति’के अनुसार) विनाशका पथ उन्मुक्त कर दिया । विना ही सूचना दिये शान्त-शिष्ट लोगोंपर तथा निरीह निर्दोष नर-नारियोंपर लाठियाँ चलायीं, अश्रुगैसके गोले बरसाये और अकारण ही बेगुमार गोलियाँ बरसाकर क्रूर हत्याएँ की गयीं । अपनी इस बड़ी भूलको स्वीकार करना तो उस मनोवृत्तिमें सम्भव नहीं था; पर सबसे अधिक वृणित अपराध यह किया गया कि सारी तोड़-फोड़ तथा अग्निकाण्ड आदि उपद्रवोंका दोष मढ़ा गया सबमें एक आत्मा देखनेवाले साधु-संतोंके सिर ! त्यागपूर्ण अहिंसक स्वयंसेवकोंके सिर ! गोहत्या-निरोधकी निर्दोष, न्यायसङ्गत, वैध और शान्त प्रार्थना करनेवाले शान्तिप्रिय जनसमूहके सिर !

कितना दुर्भाग्य है !—उस दिन जिम्मेवार कहलानेवाले लोगोंके द्वारा यहाँतक कहा गया कि ‘यह सब पूर्व योजनाके अनुसार हुआ ।’ विधिकी विडम्बना—किससे क्या कहा जाय ? यह सीधी-सी बात भी नहीं सोची गयी कि दस लाख आदमियोंका यदि पूर्वनियोजित मार-काट और लूट-पाटके लिये धावा होता तो क्या वे निहत्थे आते ? क्या वे पचास हजारसे अधिक स्त्रियोंको साथ लेकर मैदानमें आते ? क्या दुधमुँहे शिशुओंको गोदमें उठाये तरुणी देवियाँ और लाठी टेकती बूढ़ी दादियाँ साथ आतीं ? पुराने इतिहासके अनुसार स्त्रियोंके वेशमें पालकियोंके अंदर क्या कुछ लोग भी हथियारबंद न होते ? पर योजनाकी बात तो दूर रही, ऐसी कोई कल्पनातक नहीं थी । केवल शान्त-शिष्ट प्रभावशाली प्रदर्शनका आयोजन था—लोकमतको प्रत्यक्ष दिखानेके लिये ! वस्तुतः इन सारे उपद्रवोंसे प्रदर्शनके आयोजकोंका किसी प्रकारका भी तनिक भी सम्बन्ध नहीं था ।

अभी उसी दिन दिल्लीकी एक सभामें भूतपूर्व गृहमन्त्री सम्मान्य श्रीगुलजारीलालजी नन्दाने सात नवम्बरको हुई घटनाओंकी चर्चा करते हुए कहा कि मैं यह माननेके लिये कदापि तैयार नहीं हूँ कि इन घटनाओंके पीछे गोहत्याविरोधी प्रदर्शनके आयोजकोंका तनिक भी हाथ था । हमारे महान् धर्माचार्योंके हृदयमें हिंसा और तोड़-फोड़की बात हो ही नहीं सकती । वे तो यह मानते हैं कि गोमाताकी रक्षाके लिये हुए पुनीत कार्यक्रममें बाधा पड़नेका

कारण यही हो सकता है कि इसमें कोई आध्यात्मिक कमी होगी।' ('आज, वाराणसी २२।११।६६')

गत ७ नवम्बरको तो सम्मान्य श्रीनन्दाजी स्वयं गृहमन्त्री थे। इनसे अधिक जानकार और जिम्मेवार महानुभाव और कौन होगा ? अतएव इन्होंने जो कुछ कहा है, उसपर किसी भी ईमानदार तथा समझदार पुरुषको संदेह करनेका कोई कारण नहीं है। वास्तवमें इन्होंने सत्यका प्रत्यक्ष किया, सत्यका अनुभव किया और सत्य ही कहा है।

समितिके सदस्य प्रदर्शनके आयोजनसे पहलेसे ही सावधान थे। इसलिये प्रदर्शनके पूर्वदिन ही समितिकी बैठकमें और पब्लिक मीटिंगमें भी सारी बातें समझा दी गयी थीं। नारेतक निश्चित करके छाप दिये गये थे। किसीके मनमें जरा भी अनुमान भी नहीं था कि इस प्रदर्शनमें प्रदर्शनकारियोंकी ओरसे कहीं भी शान्ति भङ्ग होगी। और भगवान्की कृपासे प्रदर्शनकी शोभायात्रामें कहीं शान्तिभङ्ग हुई भी नहीं। शोभायात्राका अगला भाग संसद्भवनके समीप मञ्चतक पहुँच गया। लोग शान्तिपूर्वक बैठ गये। सभाका कार्य प्रारम्भ हो गया। गोवर्धनपीठाधीश्वर श्रद्धेय जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी, ज्योतिषीठाधीश्वर श्रद्धेय जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य तथा स्वामीजी श्रीकरपात्रीजी महाराजके सुन्दर प्रवचन हुए। उन्होंने सबको शान्त रहनेका आदेश दिया और कहा कि शासकोंमें जो लोग हैं, वे सब हमारे ही घर-परिवारके हैं—हमारे अपने ही हैं। हम उनसे लड़ने नहीं आये हैं। हम उन सबका मङ्गल चाहते हैं। हमारा कोई भी राजनीतिक उद्देश्य नहीं है। हम तो सबके कल्याणके लिये केवल गोहत्या सर्वथा बंद कर देनेकी वैध माँग करने आये हैं। इतने बड़े जनसमूहके आनेका प्रयोजन यही है कि लोकतान्त्रिक सरकार यह जान सके कि लोकमानस क्या चाहता है ? सभी लोग हृदयसे गोहत्याका सर्वथा बंद हो जाना चाहते हैं।' इसके बाद संत श्रीप्रभुदत्तजी आये। वे बोलनेवाले ही थे कि संसद्-सदस्य स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दजी आ गये। वे कुछ बोले। इससे कुछ लोगोंमें उत्तेजना हुई; परन्तु संसद्-सदस्य श्रीप्रकाशवीरजी शास्त्रीके भाषणसे शान्त हो गयी। लोग व्याख्यान सुनने लगे। इसके बाद संसद्-सदस्य श्रीअटलविहारीजी बाजपेयीने बोलना आरम्भ किया—इसी समय ध्वनियन्त्र

(माइक) का तार काट दिया गया। पीछेसे लाठी-चार्जका हल्ला आया और मञ्चपर बैठे शान्त शिष्ट लोगोंपर बिना ही सूचनाके अनवरत अश्रुगैसके गोले गिरने लगे। मेरे सिरके बायीं तरफ एक गोला हल्का-सा स्पर्श करके नीचे गिरा—फूटते ही धूआँ फैला। इतनेमें तो फटाफटकी आवाजके साथ सर्वत्र वह बेचैनी पैदा करने-वाला धूआँ छा गया। आँखें बंद हो गयीं। मुझे इसके पहलेका कभी इस अश्रुगैसके धूँएँका अनुभव नहीं था। मैं लेटा नहीं, खड़ा हो गया। कुछ ही देरमें मेरे एक साथीने मञ्चपर आकर मुझसे उल्टे लेट जाने और मुँहपर कपड़ा रखकर श्वास लेनेको कहा—मैंने ऐसा ही किया। कुछ देर बाद हम उठे और नीचे उतरकर किसी तरह बगलके मकानके अंदरसे होते हुए सुरक्षित स्थानपर पहुँचे। शोभायात्राके लोग आश्चर्यचकित और भयभीत थे कि यह क्या हो गया। बाहरसे लोग बड़ी आशा लगाकर आये थे कि हमारी सरकार है, जनतान्त्रिक है। हमारी आवाजका आदर करेगी। विशाल जनताकी प्रार्थनाका स्वागत करेगी। पर जिस तरहसे आगन्तुकोंका स्वागत हुआ, उसको वे जीवनभर याद रखेंगे। मेरे पास बहुत-से पत्र आये हैं। एक पत्र उनमें जोधपुरका था। उसके कुछ अंश इस प्रकार है—

‘जोधपुरसे बड़े उमंगसे ५२५ गो-भक्तोंकी स्पेशल ट्रेन (८ डिब्बे) लेकर दिल्ली ता० ६ को पहुँचे। भक्तोंका श्रीस्वामी गंगेश्वरानन्दजीके क्षेत्रसे महाप्रसादका इंतजाम हुआ। प्रदर्शनका जत्था शान्तिपूर्वक १० बजे खाना होकर आरामसे शान्तिके साथ पटेलकी मूर्तितक पहुँचा। जोधपुरके जत्थेमें करीब २०० महिलाएँ थीं। हमें उम्मीद थी कि हमारी सरकार दयालु है, जरूर आज ही गोवध-बंदीका ऐलान कर देगी। परन्तु दुर्भाग्य ! हमारा जत्था १-१॥ मील संतोंके मञ्चसे अभी दूर था, जो गो-कुम्भदर्शनार्थ—संतोंके दर्शन हेतु पहुँचा था। दर्शन तो दूर रहे—हमें लाठी, अश्रुगैस और गोलीका शिकार होना पड़ा। कर्फ्यू लग जानेसे भागते-दौड़ते पंडालमें पहुँचे तो ६ बजेसे पहले ही खाली करके चले जानेका आदेश मिल गया ! शहरमें भागते-दौड़ते जिस रास्ते जायँ, पुलिस कर्फ्यू-कर्फ्यू कर रही थी। दो-तीन मीलका उलटा चक्कर काटकर रातको ७॥८ बजे हम मीलका उलटा चक्कर काटकर रातको ७॥८ बजे हम सरायपर पहुँचे। हमें स्वप्नमें भी यह आशा नहीं थी कि

सरकार प्रदर्शनका इस रूपमें स्वागत करेगी। एक गो-भक्त प्रेमी जोधपुरके गोलीसे शहीद हो गये; उनकी लाशतक नहीं मिली। पूछनेपर मालूम हुआ—विजलीसे जला दी। भगवान् देशके इन कर्णधारोंको सुमति दें कि वे अब भी गोवध बंद कर दें या भगवान् स्वयं पधारकर संतोंकी रक्षा करें.....।

“दीन दयाल विरद संभारी। हरहु नाथ गो-संकट भारी ॥”

आपका.....

कितना सरल हृदयका पत्र है। कैसी सुन्दर भावना लेकर लोग आये थे और कितनी कैसी दुर्भावना लेकर गये! यह तो ५२५ आदमियोंकी एक ट्रेनवालोंका एक पत्र है। सभीकी ऐसी ही न्यूनाधिक दुर्दशा हुई है। लाखों नर-नारियोंकी यह भयानक मनोवेदना क्या कुछ भी अर्थ नहीं रखती?

सर्वदलीय गोहत्या-महाभियान-समितिके सदस्यों, गोहत्या-विरोधी प्रचारकों तथा प्रदर्शन आदिके आयोजकोंको हिंसायुक्त उपद्रवों, आगजनी तथा सार्वजनिक सम्पत्ति-नाशके लिये बहुत बड़ा दुःख है। निर्दोष जनताके लोग मारे गये तथा घायल हुए—इसका बहुत दुःख है तथा भ्रम-प्रमादवश, शासनकी दुर्बलता एवं बुद्धि-विपरीततावश एवं कुछ शरारती लोगोंकी बुरी नीयतके फलस्वरूप उत्पन्न हुई अव्यवस्थाके कारण भारतकी जो विदेशोंमें बदनामी हुई, इसका भी कम दुःख नहीं है। उस समय यदि अधिकारियोंकी बुद्धि ठीक रहती, सम्मान्य श्रीनन्दाजीके कथनानुसार पहले ही दिन उपद्रवी तत्व पकड़ लिये जाते एवं ७ तारीखको मञ्चके बगलमें हल्ला मचानेवाले दस-पाँच लोगोंको चुपकेसे अलग कर दिया जाता। असंतुलित बुद्धिसे लाठी, गैस, गोलीका अंधाधुंध क्रूर प्रयोग न किया जाता तो ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण काण्ड होता ही नहीं, न मिथ्या प्रचारकी और एक झूठकी सत्य बनानेके लिये बार-बार मिथ्या गढ़नेकी चेष्टा करनी पड़ती, न यह कहनेकी आवश्यकता पड़ती कि दस लाख आदमी सरकारके विरोधमें एक साथ आये थे और न अकारण ही निर्दोष साधु-महात्माओंके सिर मिथ्या दोष मढ़नेका पाप करना पड़ता। गोली चलाकर निरीह मानव-हत्याका महापाप तो किया ही गया। लाखों-लाखों जनताके मनोमें संदेह, भय, अरक्षा, अविश्वास, विरोध तथा हिंसा-प्रतिहिंसाके दूषित भावोंका निर्माण कर दिया गया और लाखों नर-नारियोंके हृदयोंको दीर्घकालके लिये सशंकित, उद्बलित और भीषण क्षतयुक्त कर दिया गया।

अब क्रमशः सच्ची स्थिति सामने आनेसे मिथ्या प्रचारकोंकी बोली बंद हुई जा रही है। पर इस भयानक दुर्घटनाकी निष्पक्ष न्यायाधीशोंके द्वारा सार्वजनिक रूपसे सच्ची जाँच होनी चाहिये एवं सच्ची स्थिति जनताके तथा जगत्के सामने आनी चाहिये। अन्तर्यामी भगवान् तो सब जानते ही हैं। सरकार जाँच कराना सर्वथा अस्वीकार कर दे तो जनताकी ओरसे सत्यका उद्घाटन करानेके लिये सुयोग्य निष्पक्ष पुरुषोंकी जाँच-कमेटी बैठानी चाहिये।

सरकारने गो-वधबंदीकी घोषणा न की तो गोपाष्टमीसे कई संत-महात्मा, आचार्य आमरण अनशन व्रत करनेवाले थे। समाचार मिला है कि संत श्रीप्रमुदत्तजी ब्रह्मचारीको व्रत आरम्भ करनेसे पूर्व ही रात्रिको नजरबंदी कानूनमें दो बजे पकड़ लिया गया और अब उन्होंने मथुरा कारागारमें अनशन व्रत आरम्भ कर दिया है। गोवर्धनपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्यस्वामीजी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजीने गोपाष्टमी २० नवम्बर मध्याह्नते शास्त्रीय पराक-व्रत* आरम्भ कर दिया था। वे भी

* यथात्मनोऽप्रमत्तस्य

द्वादशाहमभोजनम्।

पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापपनोदनः ॥

(मनु० ११।२१५)

‘संयतेन्द्रिय और सावधान (समाहितचित्त) होकर बारह दिनोंतक उपवास करना ‘पराक’ नामक कृच्छ्रव्रत है।’

पराकेण विशुद्धिः स्याद् भगवान्विरचवीत्।

द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥

(अत्रि० १७३, १२७)

‘पराक व्रतसे विशुद्धि होनेकी बात भगवान् अत्रिने कही है। बारह दिनोंका उपवास ‘पराक’ कहलाता है।’

पराक व्रत शास्त्रीय है। इसका उल्लेख ‘बृहद्विष्णुधर्मसूत्र (३७।३५, ४७।१८), याशवल्यस्मृति (३।२६५), बौधायन (२, २, २४-२६), वसिष्ठ० (२३।४३), आपस्तम्ब० (३।२), अंगिरा० (२७), लघुहारीत० (२५), संवर्त० (१५७), औशनश (९), बृद्धपाराशर (१०।११०), बृहस्पतिस्मृति (१९३, २१३, २८६), प्रजापति० (१४), उशना (९।१५), बृद्धहारीत (९।२९४, ३१३), देवल (८, ९-२०), लघुशंख (३४) तथा शङ्ख (१९।५) आदिमें भी है। पञ्चपुराणादिमें भी उल्लेख है।

जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य यही धर्मसम्मत ‘पराक’ व्रत कर रहे हैं। बारह दिन पूरे होनेपर भगवान् चन्द्रमौलीश्वरकी विशिष्ट पूजाके पश्चात् तेरहवें दिनसे दूसरा ‘पराक’ व्रत प्रारम्भ हो जायगा। इस प्रकार उनकी यह व्रतपरम्परा तबतक चलती रहेगी, जबतक धर्मप्राण भारतसे गोहत्याका कलङ्क दूर नहीं हो जायगा। श्रीशङ्कराचार्यजीका यही निश्चय बतलाया गया है।

गत २२ को प्रातःकाल पकड़ लिये गये और उन्हें तुरंत ही हवाईजहाजद्वारा मद्रास और वहाँसे पाण्डिचेरी भेजकर नजरबंद कर दिया गया। मानो उनका एक दिन भी दिल्लीमें रहना सरकारके लिये महाप्रलयकी सृष्टि कर देता ! कहाँतक कितना सत्य है मुझे पता नहीं—पर समाचार-पत्रोंमें छपा है कि उन्हें पकड़नेके लिये सरकारी अधिकारियोंके साथ सैकड़ों सशस्त्र पुलिसके जवान गये थे। पता नहीं—श्रीशङ्कराचार्यजी ऐसे कौनसे महान् आततायी चोर, डाकू, या प्रबल सैन्य-शक्तिसम्पन्न शत्रु थे, जिनके लिये इतनी सावधानी बरतनी पड़ी।

श्रीज्योतिषपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य श्रीकृष्ण-बोधश्रमजी महाराजने कहा है कि 'सरकारने धार्मिक जगत्के एक धर्माचार्यके विशुद्ध धार्मिक व्रतको विध्वंसकर और उन्हें गिरफ्तार कर घोर पापपूर्ण कार्य किया है।'

स्वयं पुरीके श्रीशङ्कराचार्यजीने कहा कि 'मैं गोमाताकी रक्षाके लिये विशुद्ध धार्मिक व्रत कर रहा था। कांग्रेसी शासनने मुझे बंदी बनाकर स्पष्टतया इस धार्मिक अनुष्ठानमें बाधा डाली है।'

वस्तुतः आजतक किसी भी शासकने करोड़ों हिंदुओंके श्रद्धाभाजन जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्यको इस प्रकार पकड़नेका साहस नहीं किया था। पूजा-पाठमें लगे हुए शास्त्रीय पराक्रमके व्रती श्रीशङ्कराचार्यको यों चोर-डकैतोंको पकड़नेकी भाँति धर्मस्थानमें घुसकर उसे अपवित्र करते हुए गिरफ्तार करना हिंदुओंके धार्मिक अधिकारमें हस्तक्षेप करना और करोड़ों धर्मप्राण हिंदू नर-नारियोंके हृदयपर भारी आव्रत पहुँचाना है। सरकारको अपनी यह भूल शीघ्र सुधारनी चाहिये।

समाचारपत्रोंमें यह भी छपा है कि श्रीशङ्कराचार्यकी पीठपर मर्यादाके अनुसार अन्य कोई व्यक्ति नहीं बैठ सकता किंतु हमारे इन जगद्गुरु शङ्कराचार्यजीके पास कई पुलिसवाले बैठ गये, मानो किसी अपराधीको घेरे हों। सशस्त्र सिपाहियोंके पहरमें इन्हें ले जाया गया (वीर अर्जुन २६।११।६६)।

संसद्-सदस्य श्रीप्रकाशवीरजी शास्त्रीने कहा है कि जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य पुरीको पाण्डिचेरीकी उस बस्तीमें नजरबंद बनाया गया है जिसमें १२ गोमांसकी दुकानें हैं और शराबियोंके अड्डे हैं। (वीर अर्जुन २६।११।६६)

यदि उपर्युक्त सारी बातें सत्य हैं तो धर्मप्राण हिंदूके

हृदयको हिला देनेवाली हैं—भगवान् सबको सुबुद्धि दें, सबका कल्याण करें !

श्रीशङ्कराचार्य तथा अन्यान्य महात्माओंको बाहर रहने दिया जाता तो इनसे सबको अहिंसाका—प्रेम-शान्तिका संदेश मिलता। पर इस समय तो सारा कार्य ही विपरीत बुद्धिसे हो रहा है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित महानुभावोंके अनशन-व्रत आरम्भ करनेके समाचार और मिले हैं—

(१) गुजरातके प्रसिद्ध संत शम्भुमहाराज, कामनाथ महादेव-मन्दिर (अहमदाबाद)।

(२) नाथपंथी स्वामीजी श्रीशङ्करनाथजी पूना।

(३) मौनी बाबा (जो पहले २९ दिन अनशन कर चुके हैं), सुमुखभवन, वाराणसी।

(४) न्यस्तदण्ड स्वामीजी श्रीदयानन्दजी सरस्वती, कृष्णाश्रम, वृन्दावन।

(५) श्रीप्रभुदत्तजीके संकीर्तनभवन वृन्दावनमें १२ पुरुष तथा दो महिलाएँ।

(६) महन्त श्रीपुरुषोत्तमदासजी, उखरला (भावनगर)।

(७) एकान्तवासी मौनी महात्मा श्रीजगदीश्वरानन्दजी तथा उनके सेवक तपस्वी श्रीनारायण भाई, गौतमेश्वरगिरि, सिहोर (सौराष्ट्र)।

(८) ब्रह्मचारी शङ्करस्वरूपजी, (पूज्य श्रीहरिबाबाजीके गोंधवाले), सनातनधर्म मन्दिर, बहजोई, मुरादाबाद।

(९) राजस्थान पुष्करके श्रीरामानुजाचार्य वयोवृद्ध स्वामीजी श्रीवीरराववाचार्यजी महाराज, ऋषिकेश।

(१०) व्याकरणाचार्य पं० श्रीसुदर्शनाचार्यजी, कामेश्वरनाथकी वारहद्वारी, आगरा।

(११) विन्ध्याचलके श्रीराजारामजी शर्मा तथा श्रीरामनाथजी दुवे, मिर्जापुर।

(१२) साधु लक्ष्मणानन्दजी, गौरीशङ्कर पार्क, कटक।

(१३) श्रीरामजीदासजी, स्मारकसदन, अयोध्या।

और भी कई महानुभावोंने व्रत आरम्भ किया होगा। सरकार इस समय दमनके द्वारा इस शान्तिपूर्ण पवित्र जन-आन्दोलनको कुचल देना चाहती है; पर लोगोंके मनमें जो क्षोभ उत्पन्न कर दिया गया है, वह सहज ही दूर नहीं होगा। वह अब देशव्यापी हो गया है। गोहत्यानिरोध भारतकी करोड़ों जनताके हृदयकी माँग है। अभी

गोपाष्टमीके दिन देशभरमें हजारों-हजारों स्थानोंमें करोड़ों नर-नारियोंने प्रतीक रूपमें एक दिनका अनशन रक्खा। अहमदाबादमें मुसलमानोंने भी अनशन किया। बहुत-से बड़े-बड़े स्थानोंमें हड़ताल रही। सभाएँ हुई। श्रीप्रभुदत्तजीकी और श्रीशङ्कराचार्यजीकी गिरफ्तारीपर सारे बड़े-बड़े बाजार बंद हो गये। देशभरमें हड़तालें हुई, सभाएँ हुई। लोगोंमें एक नया जोश आ गया। देशभरके प्रत्येक प्रान्तमें गाँव-गाँवमें लाखों-करोड़ों नर-नारी, बालक-वृद्ध, साधु-गृहस्थ, जो आन्दोलनमें शरीरसे साथ नहीं दे सकते, बड़ी श्रद्धाके साथ गोरक्षाके पवित्र उद्देश्यसे अपने-अपने विश्वासके अनुसार देवाराधन—भगवदाराधनमें लगे हैं और भगवान्से—देवसे प्रार्थना करते हैं कि जिसमें श्रीप्र-से-शीघ्र भारतभूमिसे गोहत्याका पाप मिट जाय। उनके हृदयकी यह सद्भावना और प्रार्थना क्या व्यर्थ जायगी ?

श्रीजयप्रकाशनारायणजीने गोहत्या-बंदीकी माँगका समर्थन किया है। शिमलाकी एक सार्वजनिक सभामें कहा है कि 'मैं गोहत्यापर रोक लगाये जानेके पक्षमें हूँ, पर ऐसे प्रदर्शनोंसे विरुद्ध हूँ, जिनसे राष्ट्रीय सम्पत्तिको क्षति पहुँचती हो।'

सो हिंसक प्रदर्शनोंके तो हम सभी विरुद्ध हैं। पर विगत ता० ७ का प्रदर्शन तो सर्वथा अहिंसा तथा शान्तिसे पूर्ण था। उसपर तो जान-बूझकर यह दोष लादा गया था।

अब तो गोहत्या-निषेधके लिये गोभक्त कांग्रेसी भी कांग्रेससे त्यागपत्र देने लगे हैं। अहमदाबादका समाचार है कि गोहत्या-निषेध-कार्यमें अपना पूरा समय लगा सकें, इसके लिये कांग्रेसके तीस वर्षोंसे पुराने प्रमुख नेता श्री-वलदेवभाई ठक्करने साथियोंसहित कांग्रेससे त्यागपत्र दे दिया है। इस प्रश्नको लेकर और भी कई कांग्रेसी अपनी पार्टीसे त्यागपत्र देनेवाले हैं।

आन्ध्रके विधान-सभाके दो सदस्योंने त्यागपत्र दे दिया है।

अब तो जनताकी इस एकस्वरकी इस पवित्र माँगको पूरा कर देनेमें ही सबका हित है। भयके द्वारा, क्रूर व्यवहारके द्वारा, दमनके द्वारा इसे दबा देनेकी नीतिका परिणाम शुभ नहीं हो सकता। बुद्धिमानी इसीमें थी कि अबतक जनताकी माँगका उचित आदरकर गोवंशकी हत्या सर्वथा बंद कर दी गयी होती। यह कहा गया था कि गोहत्याविरोधियोंको अपने पक्षमें जनमत तैयार करना

चाहिये। सो जनमतके इस पक्षमें होनेका इससे अधिक और क्या प्रमाण होगा कि दस लाखसे अधिक नर-नारी एक दिन एक स्थानपर स्वयं उपस्थित होकर अपना प्रत्यक्ष मत देते हैं। पर दुःखकी बात तो यह है कि इस प्रकारके विशाल शान्त जन-प्रदर्शनका स्वागत गोलियोंसे किया गया। अब भी शासनपदारूढ़ महानुभावोंसे प्रार्थना है कि वे अपनी बुद्धिका संतुलन ठीक करके यथार्थ निर्णय करें और आग्रह छोड़कर गोवंशकी हत्या सर्वथा बंद करनेकी तुरंत घोषणा करके विशाल जनसमूहके हार्दिक क्षोभको शान्त करके उसे अपना बना लें।

संतोषका विषय है कि दिल्ली हाईकोर्टके फैसलेके अनुसार १०७।१५१ में बेकानूनी तौरपर पकड़े हुए सम्भ्रान्त लोगोंको छोड़ दिया गया है। अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियाँ की गयीं। ऐसे लोगोंको, जो समाजमें प्रसिद्ध शान्तिप्रिय, सदाचारी तथा सेवापरायण मान्य पुरुष हैं, असदाचारी या अशान्ति फैलानेवाले मानकर पकड़ना एक प्रकारका बड़ा दोष है, पर उस समय कोई विचार नहीं किया गया। आखिर, हाईकोर्टके कड़े फैसलेके अनुसार उन सबको छोड़ना पड़ा। सच्ची बात तो यह है कि पकड़ने-पकड़ानेवालोंमें भी इन पकड़े गये लोगोंसे अधिक शान्तिप्रिय, सदाचारी लोग बहुत थोड़े ही होंगे।

यह भी बड़े संतोषकी बात है कि ७ तारीखके बादसे अबतक शान्तिपूर्ण अहिंसामय सत्याग्रह चालू है। दूसरे ही दिन श्रीकरपात्रीजी महाराजने सत्याग्रह किया। फिर हिंदू-सभाके आचार्य श्रीरामसिंहजी गये। इस प्रकार प्रतिदिन ही लगातार सत्याग्रहियोंके जत्थे जा रहे हैं। अबतक हजारों सत्याग्रही पकड़े जा चुके हैं। आर्यसमाजके बड़े-बड़े मान्य विद्वान् पुरुष सत्याग्रह कर रहे हैं। धर्मसंघ, हिंदूसभा तथा साधु-समाजके लोग एवं महिलाएँ भी जेल जा रही हैं। दिल्लीमें टिके हुए साधुओंको तो पुलिसने बुरी तरह बाहर निकाल दिया, पर प्रतिदिन ही बाहरसे नये-नये जत्थे आ रहे हैं और लगातार आते रहेंगे, ऐसी आशा है। सम्पूर्ण देशमें गोवंशकी हत्यापर पूर्ण प्रतिबन्ध लगानेके लिये चलनेवाले आन्दोलनमें उत्तरोत्तर तीव्रता आ रही है। सहस्रों-सहस्रों व्यक्ति गोरक्षार्थ सत्याग्रह तथा सर्वविध त्याग करनेको प्रस्तुत हैं।

गोहत्यानिवारणका आन्दोलन चलानेवाले सभी महा-नुभावोंसे मेरी यह विनीत प्रार्थना है कि वे सर्वथा शान्तिमय

अहिंसामय साधनोंके द्वारा, अपने त्याग तथा बलिदानके द्वारा तथा सर्वोपरि सर्वात्मस्वरूप भगवान्की आराधनाके द्वारा ऐसे साधन काममें लावें, जिससे सरकारी अधिकारियोंको, जनताको, गोरक्षार्थ कार्यकर्त्ताओंको—सबको सद्बुद्धि प्राप्त हो, सब सबका हित चाहें और करें, जिससे गोवंशकी हत्या सदाके लिये सर्वथा निर्मूल हो जाय। किसी भी प्रकारके भयसे, प्रलोभनसे, आतङ्कसे, कष्टसे डरें नहीं। डरें पापसे, डरें बुरे आचरणोंसे, डरें पर-अहितसे और डरें द्वेष तथा हिंसासे—कारागार, कष्ट और मृत्युसे नहीं। कष्ट शारीरिक और मानसिक आते ही रहते हैं, मृत्यु भी सबकी होती ही है। भगवान्की पूजाकी भावनासे (स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य—), गोमाताकी रक्षाके लिये, धर्मपालनके लिये, लोककल्याणके लिये कष्ट सहन करना, त्याग करना और मरना तो विशेष गौरवकी बात है। हाँ, यह ध्यान रखें—किसीको मारें नहीं, स्वयं मरनेको प्रस्तुत रहें। द्वेष-हिंसावश नहीं, दुःखोंसे घबराकर मूर्खता या आवेशके कारण आत्महत्याके रूपमें नहीं, विशुद्ध भगवत्-सेवाकी पवित्र भावनासे लोककल्याणमयी गोमाताके रक्षार्थ सात्त्विक सुखमयी तपस्याके रूपमें !

यह सत्य है कि कानूनके द्वारा गोहत्या बंद होनेपर भी जबतक गोपालन तथा गोसंवर्धन नहीं होगा, तबतक पूरी गोरक्षा नहीं होगी। अतएव गोपालन तथा गोसंवर्धनका कार्य भी साथ-साथ करना पड़ेगा। अनुत्पादक गाय-बैलोंके गोबर-गोमूत्रके द्वारा खाद तथा गैस बनाकर आय बढ़ानी होगी। गत १९६१ की पशुगणनाके अनुसार अनुत्पादक पशुओंकी संख्या केवल २६, ५०, ७३५ थी, जो कुल गोवंश-संख्या १५, ८६, ५०, ६२४ की केवल २ प्रतिशतसे भी कम है। विशेषज्ञोंके मतानुसार ३६ रु०के हिसाबसे प्रत्येक पशुके भरण-पोषणपर वर्षभरमें ९,५४,२६,४६० रुपये खर्च होते हैं, जब कि इनके गोबर-गोमूत्रका मूल्य १२,७२,३५,२८० रुपये होते हैं। इसके अनुसार अनुत्पादक पशुओंसे आर्थिक हानि तो होती ही नहीं, उल्टे ३,१८,०८,८२० रुपयेकी आमदनी होती है। पर इसके लिये स्थान-स्थानपर गोसदन खोलने पड़ेंगे, गोचरभूमि छोड़नी पड़ेगी और गोबरका जलाना तथा गोमूत्रका व्यर्थ नष्ट होना रोककर उससे खाद तथा गैस बनानी पड़ेगी। सरकार चाहे तो स्वयं इस कार्यको कर सकती है। यह कहना

सर्वथा बेसमझी है कि गोहत्या बंद हो जायगी तो मनुष्य भूखों मर जायगा। भला, मनुष्यके द्वारा खाया जानेवाला अन्न किस गायको दिया जाता है ? वह तो घास-फूस, छिलके, चोकर आदि खाकर अपना पेट भर लेती है।

इसीके साथ-साथ गौओंकी नस्लसुधारका कार्य भी सर्वत्र करना होगा, जिससे गोपालनमें बड़ी सहायता मिलेगी। गौ सुपुष्ट तथा नीरोग रहें, उनका दूध उत्तरोत्तर बढ़े और अच्छे-से-अच्छे खेतीके लिये उपयोगी बैल पैदा हों तो गौका आर्थिक महत्व और बढ़ जायगा। इस समय खेतीके लिये लगभग तीन-चार करोड़ बैलोंकी कमी है। गोपालन, गो-संवर्धनसे इनकी पूर्ति हो जायगी तो कृषिका उत्पादन भी बढ़ जायगा। पर यह सब होगा गोवंशकी हत्या पूर्णरूपसे बंद होनेपर ही। गौएँ कसाईके छूरेसे बचेंगी तभी उसका पालन-संवर्धन भी हो सकेगा। आज तो बड़े-बड़े नये-नये यान्त्रिक कसाईखाने खोलकर गोमांस तथा चमड़ेके उत्पादनका कसाई-व्यापार करनेकी योजना है, जिससे 'डालर' मिले। इस मनोवृत्तिको छोड़े बिना गोरक्षा कैसे होगी ? इसीलिये गोहत्या-निवारण चाहनेवाले लोग सरकारसे प्रार्थना करके उसका मन बदलना चाहते हैं, जिससे वह गोवंशकी हत्या कानूनके द्वारा तुरंत बंद करके गोपालन और गोसंवर्धन स्वयं करे। गोसदन खोले, गोचरभूमि छोड़े तथा नस्लसुधारका कार्य करे तथा जनताको भी इसके लिये सहायता-सहयोग दे। जनताका भी यह पुनीत कर्तव्य है कि वह भी गोपालन, गोरक्षण तथा गोसंवर्धनका कार्य तन-मन-धन लगाकर अवश्य करे। इस दिशामें स्वर्गीय स्वनामधन्य सेठ श्रीजमनालालजीके द्वारा प्रस्थापित वर्धाका 'गोसेवामण्डल' भाई राधाकृष्णजी बजाजकी देख-रेखमें आदर्श तथा अनुकरणके योग्य कार्य कर रहा है। उससे इस कार्यमें उचित सहायता तथा शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

मैं अन्तमें भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि वे कृपा करके, सरकारके पदारूढ महानुभावोंको, जो सर्वथा अपने ही हैं, तथा जनताको ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करें, जिससे वे अपने अपने कर्तव्यको ठीक-ठीक समझें और पवित्र भावसे अपने अपने क्षेत्र तथा अधिकारानुसार ऐसा पवित्र कार्य करें, जिससे अपने-अपने क्षेत्र तथा अधिकारानुसार ऐसा पवित्र कार्य करें, जिससे परस्परमें सौहार्द तथा प्रेमकी वृद्धिके साथ ही भारतवर्षकी पवित्र भूमि गोवंशकी वृंशस हत्याके महान् पापसे सदाके लिये सर्वथा मुक्त हो जाय !

(२६ । ११ । ६६)

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

पढ़ो, समझो और करो

(१)

संधारा—आमरण अनशन तपस्या

[सत्य घटना]

धार नगरीका वह काष्ठ-पाट

गौतम, गौंधी एवं महावीरकी पावन भूमिवाला भारत एक धर्मप्राग देश है। इस भूमिमें एक नहीं, अनेक नररत्न पैदा हुए हैं जिनके त्याग एवं तपके आगे पूर्व क्या पश्चिम तक आज भी नतमस्तक है।

एक ऐसे ही पूज्य संतकी जीवन-घटनाका यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ, जिन्होंने धर्मके लिये अपने आपको खपा दिया।

घटना प्रायः पुरानी है। उज्जैन म० प्र० में जैन-सम्प्रदायके पूज्य श्रीधर्मदासजी महाराज विराज रहे थे।

उधर पास ही उनके एक शिष्यने संधारा कर रक्खा था। जैन-धर्ममें एक क्रिया है कि जब मानवको अपना अन्त सन्निकट दीखता है तो वह जीवनभरके लिये आहार-पानीका त्याग कर देता है। त्यागकी जैन-धर्ममें प्रसुखता है एवं इन्हीं पूर्ण भावनाओंसे स्वेच्छासे यह जो क्रिया की जाती है, इसे संधारा अर्थात् आमरण अनशन कहा जाता है। यह धर्मसम्मत तपस्या है।

स्पष्ट है अत्यधिक सहिष्णु, त्यागी, दृढ़ मनोवली एवं अमूल्य जीवनके प्रति निर्मोही महामानव ही यह कठोर क्रिया कर सकता है, जिस क्रियाकी कल्पनामात्रसे मानव हिल जाता है उस क्रियाको मूर्तरूप देनेवाला मानव नहीं, महामानव ही हो सकता है।

शिष्यका आमरण अनशन चल रहा था। जैन-समाज एवं अन्य मानवसमाज शिष्यके त्यागकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहा था। त्यागके सामने मानवता नतमस्तक थी। अनुपम उल्लेख त्याग जो था।

संधारा चल रहा था कि भावनाओंमें मोड़ आया। उच्च भावनापर जीवनके मोहने प्रहार किया। शिष्यका मनोबल क्षीण हुआ। जीवनकी लालसाने शिष्यको अनुपम तोषमय कष्टकी सीढ़ीसे पीछे धक्का दिया। एवं शिष्यने संधारा पूर्ण करनेसे असमर्थता एवं विवशता प्रकट कर दी। इस आकस्मिक एवं अप्रत्याशित घटनाने जैन-समाजमें

तहलका मचा दिया। यह संदेश उज्जैनमें विराजित उक्त मुनि श्रीधर्मदासजी महाराजके पास पहुँचा एवं जीवनके प्रति निर्मोही उस महामानवने धार यह संदेश भिजवाया 'मुनिजी-को कह दें कि वे संधारा छोड़नेका विचार न करें, मैं शीघ्र धार आ रहा हूँ।'।

शिष्यके पास उक्त संदेश पहुँचाया गया एवं जैन साधुओंके चूँकि किसी भी प्रकारकी सवारीका त्याग होता है, पूज्य श्रीधर्मदासजी महाराजने पैदल ही तीव्र गतिसे उज्जैनसे धारके लिये प्रस्थान कर दिया। इस पैदल विहारमें एवं शीघ्रगतिशील धार पहुँचनेके लक्ष्यमें, स्वयंको विस्मृत करनेवाला यह संत अपनी तेज तृष्णाको शान्त करनेके लिये जल भी ग्रहण नहीं कर सका। त्यागी गुरु संत शिष्यके सामने था। गुरुकी वाणी जीवनके मोही शिष्यको सन्मार्गपर न ला सकी।

संत परीशान थे; किंतु शान्त थे। उनके मानसमें विचारोंकी कड़ियाँ वन रही थीं, बिगड़ रही थीं। मोही शिष्यका व्रत-भंग रह-रहकर उन्हें सता रहा था। विचारोंकी इस बेलामें एक अज्ञात प्रबल शक्तिसम्पन्न विचारने द्रुतगतिसे मनमें प्रवेश किया एवं महामानव शान्त हो गया। अत्यधिक सौम्यता उसके देदीप्यमान चेहरेपर आ गयी। वह महामानव, उच्चतम विचारोंका धनी वह संत, जीवनके प्रति निर्मोही वह साधु आगे बढ़ा एवं जीवनदानकी अज्ञात याचना करनेवाले उस शिष्यको समभावसे जीवनदान देते हुए उसे पाटसे उतरनेका आदेश दिया एवं स्वयं उस पाटपर विराजमान होकर उसने शिष्यके स्थानपर स्वयं आमरण अनशनकी घोषणा कर दी।

इस वज्रघोषणाने तहलका मचा दिया एवं जनसमुदाय सन्नटेमें आ गया। मुनिराजने धर्मके लिये, शिष्यके लिये स्वयंको महाप्रयाणके मार्गपर चढ़ा दिया।

पूज्यश्रीने अन्न-जलका त्याग कर दिया था। वे पाटपर आसीन थे। श्रद्धालु भक्तोंका ताँता बँध रहा था एवं पूज्य-श्री समभावसे आगे बढ़ रहे थे—जीवनसे मरणकी ओर, अँधेरेसे प्रकाशकी ओर।

यह क्रम चलता रहा एवं स्वामीजीको अन्न-जल ग्रहण किये ९ दिन ९ रातें हो गयीं। इस नररत्न महामानवके

दर्शनार्थ देशके कोने-कोनेसे जनता उमड़ पड़ी। आगन्तुओं-का सब प्रकारका प्रबन्ध धार-नरेशकी ओरसे हो रहा था। दसवें दिन पूज्यश्री इस संसारसे चल दिये। जो इस नश्वर संसारमें आया, वह अवश्य जायगा, किंतु आने-जानेमें अन्तर है। किसे मालूम था इस महामानवने उज्जैनसे धार जानेको नहीं, प्रत्युत जीवनसे तपोमय मरणको जानेके लिये उज्जैनसे धारको प्रस्थान किया था।

धारमें आज भी वह पाठ, जिसपर बैठकर इस महामानवने हँसते-हँसते स्वेच्छासे प्राण विसर्जन किये थे, मौजूद है।

मात्र १० दिनके उस महामानवके सम्पर्कसे वह पाठ धन्य हो गया एवं आज तीन सौ सालसे अधिक समय व्यतीत हो जानेपर भी दर्शक धारमें मुनिके बाद उसके दर्शन किये बिना नहीं जाते।

उक्त त्यागी संतके सम्प्रदायके पूज्य आचार्य नानालालजी महाराज आज अपने उपदेशोंसे शुद्ध मानवताका कल्याण कर रहे हैं।

ऐसे धीर-वीर, कर्मठ, त्यागी संतोंकी सेवामें शतः-शतः नमन—

—राजेन्द्रप्रसाद जैन, एडवोकेट, भवानीमंडी (राजस्थान)

(२)

आदर्श व्यवहार

कुछ ही दिनों पहलेकी बात है। एक दिन चार सौ रुपयेका एक बीमापत्र बम्बईसे मेजा हुआ मिला। रजिस्ट्रीके लिफाफेपर भेजनेवालेका नाम पढ़ा पर मैं पहचान नहीं पाया। लिफाफा खोलनेपर देखा उसमें चार सौके चार नोट थे, साथ एक पत्र था। पत्रका आशय था—‘मेरे पिताजी श्री.....ने संवत् १९९५ (सन् १९३८)में आपसे चार सौ रुपये लिये थे। उस समय उनका हाथ तंग था। अब मैं कमाने लगा हूँ। पिताजीने कहा है—रुपये भेज दो। इसलिये भेज रहा हूँ। आप अवश्य रख लीजियेगा।’

मुझे न उन सज्जनकी स्मृति थी, न रुपये देनेकी। मैंने उनको पत्र लिखा कि ‘मुझे कुछ भी याद नहीं है, न मेरे पास कोई हिसाब है। मैं रुपये कैसे लूँ। अतः रुपये लौटानेका विचार है।’ इसके उत्तर उन भाईका पत्र आया—‘उन्होंने लिखा ‘आप देनेवाले हैं अतः आपको याद नहीं है, परंतु रुपये लेनेवालेको तो याद रहता है।’

ईश्वर कभी वापस लौटाने योग्य बनाता है, तभी लौटाये जाते हैं। आप रुपये अवश्य स्वीकार कर लीजिये। वापस कदापि न भेजिये। नहीं तो, हमें बहुत दुःख होगा। रुपये हमारे लिये हुए हैं।.....संवत् १९९५को बहुत समय बीत गया। आपको स्मरण नहीं है; क्योंकि आपसे बहुत लोगोंको लाभ मिलता रहता है।’

साथ ही इन भाईके पिताजी श्री.....का पत्र राजस्थानसे आया—‘उन्होंने भी बड़ी नम्रतासे लिखा—‘संवत् १९९५ कार्तिक मासमें मैंने रुपये आपसे लिये थे। आप भूल गये हैं, पर मैं कैसे भूलता ? अवतक दे नहीं सका सो दूसरी बात है। रुपये आपकी सेवामें भेजे हैं उन्हें वापस न भेजियेगा। अवश्य रख लीजियेगा। जरा भी शक्का न कीजियेगा। मैं आपसे लिये हुए रुपये ही आपको लौटा रहा हूँ। केवल असली रुपयेमात्र भेजे हैं—व्याज थोड़े ही भेजा है। आप कदाचित् लौटा देंगे तो मेरी आत्माको बड़ा ही दुःख होगा। मेरे मनको शान्ति नहीं मिलेगी.....’

इसके बाद पत्रमें और भी बहुत नम्रताके शब्द लिखे थे। मैं इन वृद्ध सज्जनको क्या लिखता जो २८ वर्षोंके बाद इतने विनयपूर्ण आग्रहके साथ रुपये लौटा रहे हैं; मैंने लिख दिया—‘रुपयेकी बात मुझे जरा भी याद नहीं है। पर मैंने आपके आज्ञानुसार रुपये इसलिये रख लिये हैं कि जिससे आपको दुःख न हो और मनको शान्ति मिले। आपका यह कार्य अनुकरणीय है, सराहनीय है और आजके युगमें तो सबके लिये आदर्श है। यही अपनी हिंदू-संस्कृति है। रुपये मैंने रख लिये हैं और किसी अभावग्रस्त भाईकी सेवामें लगा दिये गये हैं। आपकी सद्भावनाके लिये धन्यवाद—मैं बम्बई पत्र नहीं लिख रहा हूँ। आप लिख दीजियेगा।’

इस समय भी ऐसे आदर्श मानव हैं।—एक कोई (३)

लोभवश पराया हक मारनेका फल—तत्काल

करीब ढाई महीने पहलेकी बात है। कलकत्तेके सत्यनारायण पार्कके पास मैं फल खरीद रहा था। मेरी जेबमें चार दसके और शेष दो तथा एकके नोट तथा कुछ खुरा पैसे थे। एक दर्जन मौसखी, कुछ अंगूर, सेब आदि लिये। अनारके दाम पाँच रुपये कीलो थे। इसलिये सिर्फ एक

संख्या १२]

पाव अनार मैंने खरीदी। छोटे नोट पूरे हो चुके थे। इसलिये मैंने उसको दसका एक नोट दिया। उसको सवा रुपया लेना था पर भूलसे उसने दस आने काटकर शेष नौ रुपये छः आने मुझे लौटा दिये। मैंने जानते हुए भी लोभ-वश चुपचाप पैसे जेबमें रख लिये और जल्दीसे मैं वहाँसे चल पड़ा। दस आनेके लाभसे प्रसन्न होता हुआ मैं घर पहुँच गया। फलकी थैली अपनी बहनको दे दी। बहनने मुझे एक दस रुपयेका नोट दिया, जिसको मैंने जेबमें बचे हुए तीस रुपयेके तीन नोटोंके साथ ही रख लिया। मेरी जेबमें दस-दसके चार नोट फिर हो गये।

शामकी ट्रेनसे हमें मालदा जाना था। सियालदह स्टेशनपर बहनके साथ मैं ८॥ वजे पहुँचा। मालदाकी टिकटकी कीमत दस रुपये साठ पैसे हैं। मुझे ढाई टिकटें लेनी थीं। मैंने बिना ही हिसाब किये जेबसे चारों नोट निकालकर बिना ही गिने टिकट देनेवाले बाबूको दे दिये। एक मिनट बाद ही मुझे ख्याल आया कि बाबूको तीन नोट देने थे और मैंने चार दे दिये हैं। मैंने बाबूसे कहा—‘बाबूजी! मैंने आपको दस-दसके चार नोट दिये हैं।’ बाबूने गिनकर कहा—‘नहीं भाई! यहाँ तो तीन ही नोट हैं। काफी देर झंझट होता रहा, पर काम कुछ भी नहीं सधा। इधर ट्रेनका समय हो चुका था। बहन और एक बच्ची मेरे साथ थीं। चुपचाप बाबूसे २॥ टिकट और बाकी तीन रुपये पचास पैसे लिये और मुझाँघे मन गाड़ीकी तरफ चला। गाड़ीमें अच्छी जगह मिल गयी और सब आरामसे सो गये। परंतु मेरी तो नींद उड़ गयी थी। बार-बार मुझे अनारवालेका स्मरण हो रहा था। उस बेचारे गरीबके दस आने मैंने लोभवश मारकर ले लिये इससे मुझे दस रुपये खोने पड़े। सच है, लोभ-लालचमें दूसरेका हक जितना मारा जाता है, उससे कहीं अधिक अपना चला जाता है।

—अनिरुद्धकुमार महेश्वरी

(४)

नींवका पत्थर

समीपके गाँवमें मैं अपने एक मित्रके यहाँ गया था। उनके आँगनमें एक नीमका पेड़ था। उसीके नीचे खटियापर हमलोग बैठे थे। इतनेमें मेरे उन मित्रने एक सजनकी ओर नजर फिराते हुए कहा—‘आइये ठाकुर साहेब!’ ठाकुरकी ऊँचाई लगभग पौने पाँच फुट थी। उम्र लगभग सत्तर वर्ष, खादीकी धोती और कुर्ता पहने, पैरमें अहिंसक जूते और हाथमें लाठी।

मित्रने उनसे पूछा—‘कहिये, ठाकुर साहेब! ठाकुरानीकी क्या खबर है?’

ठाकुरने बड़ी गम्भीरताके साथ कहा—‘ऐसा लगता है कि अब तो वह तलाक देनेकी तैयारीमें हैं।’

मुझको बड़ी अजब बात लगी। मैंने पूछा—‘आपको ऐसा क्यों लग रहा है?’

उन्होंने कहा—‘गुस्से होकर वह पीहर चली गयी है। उसके माँ-बाप अब उसे भेजते ही नहीं।’

वह सुनकर मेरा आश्चर्य बढ़ गया। इतनेमें ठाकुर साहेब जानेके लिये उठ खड़े हुए।

मैंने अपने मित्रसे उनके विषयमें पूछा। तब मित्रने उत्तरमें बतलाया कि ‘उनका नाम बाबू भगवानसिंह है, परंतु गाँवके लोग उन्हें भगेड़सिंह कहते हैं।’

‘परंतु मैंने तो सुन रक्खा था कि इन्होंने व्याह-शादी की ही नहीं थी, फिर आप ठाकुरानीकी कैसी बात कर रहे थे?’

मित्रने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा—‘अरे भाई! इनकी पत्नी तो स्वराज्य हैं। १९५०के आस-पास ये कहते थे कि ‘ठाकुरानी पीहर गयी हैं’ अब कहते हैं कि ‘वह तलाक देनेवाली हैं।’ उसके बाद मित्रने कहा कि ‘१९२१ में ये जब जेलसे छूटकर बाहर आये और जब इनके पिता इनका विवाह करनेकी व्यवस्था करने लगे—तब इन्होंने हँसकर कहा था कि ‘पिताजी! मेरा विवाह तो स्वराज्य-सुन्दरीके साथ हो गया है।’

ठाकुर भगवानसिंह दो किताब तक पढ़े थे। तो भी रामायण और गीता इन्हें याद है। देशकी स्वतन्त्रताके लिये १९२१ से १९४७ तक जितने आन्दोलन हुए, उन सबमें उन्होंने सक्रिय भाग लिया था। इनके पास दस बीघा जमीन थी, उसे हिस्सेमें खेतीके लिये दे रक्खा था। स्वतन्त्रताके बाद आठ बीघा तो हिस्सेदारोंने ले ली। अब दो बीघा इनके पास है। उसीसे अपना गुजराना चलाते हैं।

मित्रके घरसे लौटते समयमें ठाकुर भगवानसिंहसे मिल। खूब प्रेमसे ठाकुर साहेबने मुझको अपनी चारपाईपर बैठाया।

ठाकुर साहेबसे मैंने पूछा—‘आपने अपनी जमीन खेतीके हिस्सेदारोंको क्यों लेने दी? आपकी तो बड़े-बड़े लोगोंके साथ पहचान है।’

उन्होंने उत्तर दिया—‘जीवनभर मैं उनकी स्वतन्त्रताके लिये लड़ता रहा हूँ, अब वे लोग आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर रहे हैं, तब मैं ही उनके लिये बाधारूप क्यों बनूँ?’

‘अच्छा तो अब आप राजनीतिक सम्मेलनोंमें भाग क्यों नहीं लेते?’

उन्होंने कहा—‘मैं तो देशका स्वयंसेवक था। सामाजिक चन्द्रमाको राजनीतिक राहुने ग्रस लिया था, इसलिये मैं सिपाही बना था। स्वतन्त्रता मिलनेके बाद मुझे लगा कि मेरा काम पूरा हो गया है और अब देशको सुयोग्य कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता है। इस कामके लिये मैं निरूपयोगी हूँ। यों समझकर मैंने अपने-आपको वहाँसे हटा लिया है।’

‘आजके नये नेताओंके विषयमें आप क्या मानते हैं?’

एक लंबी साँस खींचकर वे बोले—‘१९४२ अथवा उसके बादके नेताओंमें योग्यता और आचरण—दोनोंकी कमी है। यह बड़े दुःखकी बात है। हमलोगोंमें योग्यता कम थी यह सच्ची बात है, परंतु आचरण कभी हल्का नहीं था।’ कुछ देर रुककर वे कहने लगे—‘परंतु गाँधीजीकी योग्यता हमारे हृदयके तारोंको सर्वदा झनझनाती रहती और हम उसे समझने तथा आचरणमें लानेके लिये प्रयत्न भी करते।’

अन्तमें मैंने पूछा—‘आप इन बुराइयोंके सामने पत्थर बनकर खड़े क्यों नहीं हो जाते?’

मेरा यह प्रश्न सुनते ही वे बोले—‘राम राम ! नींवका पत्थर कहीं रास्ता रोक सकता है ? ये लोग अपने कर्मोंमें भले ही डूब जायँ, हम तो अपनी जगहपर ही अचल रहेंगे।’

अखण्ड आनन्द

—अरविन्द पाण्डेय

(५)

बिच्छूका जहर उतारनेकी सीधी सहज रामबाण दवा

प्रायः सभी पसारियोंकी दुकानोंमें पायी जानेवाली ‘फिटकरी’ में बिच्छूका जहर उतारनेके चमत्कारपूर्ण गुण भरे हैं। पर हम इसका उपयोग जानते नहीं हैं, इसलिये करते नहीं हैं और इसीसे उसके लाभसे वञ्चित रहते हैं। मैं यहाँ ‘फिटकरी’ के एक विलक्षण गुणका उल्लेख कर रहा हूँ। इसके प्रयोगसे कैसा भी जहरीला बिच्छूका काटा हुआ क्यों न हो सिर्फ दो मिनटसे भी कम समयमें जहर उतर जाता है। जिस किसीको भी बिच्छू काटे, नीचे लिखे अनुसार ‘फिटकरी’ को उपयोगमें लावे।

पहले ‘फिटकरी’को एक साफ पत्थरपर घिस लें (थोड़ा पानी डालकर घिसे) फिर जहाँ बिच्छू काटा हो वहाँपर लगाकर आगसे सेंक दे (जहाँ तक हो, कंडेकी आग ही उपयोगमें लावे। इससे और भी जल्दी जहर उतर जाता है)।

एक आनेकी ‘फिटकरी’ घरमें लाकर सुरक्षित रखे और जब भी जरूरत हो ऊपर लिखे अनुसार उपयोगमें लावे। इस प्रकार एक आनेकी ‘फिटकरी’ वर्षोंतक काम दे सकती है। पर यह काम लोभ-लालचवश न करे। विशुद्ध सेवा भावसे ही करे। मेरा यह वर्षोंका अनुभव है। यह बिच्छू उतारनेकी एक रामबाण ओषधि है। सैकड़ों बिच्छू काटे व्यक्तियोंपर इसका परीक्षण कर चुका हूँ। अतः ‘फिटकरी’ थोड़ी-बहुत मात्रामें हमेशा ही अपने घरपर रखनी चाहिये।

—मंगलसिंह चावले ‘उपना’

पो० उकवा त० वैहर जि० बालाघाट

(६)

विषकाँटेकी अनुभूत दवा

आपकी सेवामें मैं ‘विष काँटे’की चिकित्सा भेज रहा हूँ। इसका सैकड़ों विषकाँटेके पीड़ितोंपर प्रयोग किया जा चुका है। रामबाण ओषधि सिद्ध हुई है। ‘विषकाँटा’को सड़ा हुआ फोड़ा, घाव, जहर या ‘सेटिल’ भी कहते हैं। यह शरीरके किसी भी भागमें हो सकता है, खासकर अँगुलियों-अँगूठोंमें होता है। कोई घाव या फोड़ा, जिसकी चिकित्सा न कराकर लापरवाही वरती जाती है, जिससे गंदगी फैलकर सड़ान हो जाती है, चमड़ी हरी या काली-नीली पड़ जाती है और अंदर एक मांसकी ग्रन्थि-सी बन जाती है। यह तो हैं कारण और लक्षण।

दवा-प्रयोग

आधा तोला साधारण नमकको खूब बारीक पीस लें आधा तोला शुद्ध शहद (पुराना हो तो और भी अच्छा) (बराबर भाग) मिलाकर कोमल पीपलके (नये) पत्तेपर लगाकर पट्टी बाँध दे चार दिनोंतक चार पट्टीमें। ‘विष काँटे’की यह अचूक दवा है। स्नानके बाद भगवान्का स्मरण करके पट्टी बाँधे। कोई सज्जन पट्टी बनाकर पहले नहीं रखें; यह उसी समय बनायी जाती है जब पट्टी चढ़ानी हो।

—मदनलाल कावरा

श्रीहरिः

कल्याण

[भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचारसम्बन्धी सचित्र मासिकपत्र]

वर्ष ४०

[साधारण अङ्क संख्या २ से १२ तककी विषय-सूची। विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसीके आरम्भमें देखनी चाहिये; वह इसमें सम्मिलित नहीं है]

सं० २०२२-२०२३

सन् १९६६ ई०

की

निबन्ध, कविता

तथा

चित्र-सूची



सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार] * [प्रकाशक—मोतीलाल जालान

कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

वार्षिक मूल्य रु० ७.५० (सात रुपये पचास पैसे) } आजीवन ग्राहक-शुल्क १०० रु०
विदेशोंके लिये १० रु० [१५ शिलिंग] } प्रतिसंख्या ४५ पैसे (पैंतालीस पैसे)

- समसामयिक चिन्तन (प्रो० श्रीकृपानारायण-
जी मिश्र, एम्० ए०, शास्त्री, साहित्यरत्न) १८९
- ७५-धामो उलझते ही गये (श्रीरामनाथजी 'सुमन') ७९७
- ७६-धार्मिक भावनाके प्रचारकी आवश्यकता
(श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन) ... १०६९
- ७७-धार्मिक स्वाधीनताके लिये प्राणोत्सर्ग करने-
वाले हुतात्मा—महात्मा गौरीनाथ
(श्रीशिवकुमारजी गोयल) ... १००१
- ७८-नम्रताकी मूर्ति श्रीहनुमान्जी (श्री स०
ना० पाण्डे महोदय) ... १००८
- ७९-नाथ देखि पदकमल तुम्हारे (श्री-
हरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि') ... १३८०
- ८०-पढ़ना और है, गुनना और (श्रीकृष्णदत्तजी
भट्ट) ... ११०७
- ८१-पढ़ो, समझो और करो ... ७५९
- ८२-पतनोन्मुख जगत् ... १२०३
- ८३-पति-पत्नी (तथा सव) के लिये हितकर
अठारह अमृत-संदेश. ... १०६१
- ८४-पुण्यश्लोक वै० आचार्य श्रीराघवाचार्यजी
महाराज (श्रीश्रीकान्तजी शास्त्री,
एम्० ए०) ... ११९७
- ८५-पुण्य-स्मरण (श्री 'माधव') ... ११११
- ८६-पुराणोक्त धर्म (प्रो० डा० श्रीबालकृष्ण
मोरेश्वर कानिटकर एम्० ए०, पी-एच्० डी०,
एल्-एल्० बी०) ... ७१९
- ८७-पुरुषोत्तममास (श्रीपरमहंसजी महाराज,
श्रीरामकुटिया) ... १११९
- ८८-पुष्टिमार्ग और धर्म (बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र-
जी शास्त्री, साहित्यरत्न) ... ७३१
- ८९-पूर्णपरात्पर भगवान् श्रीकृष्णका आविर्भाव
(श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके मङ्गल-महोत्सवपर
हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन) ... १२२५
- ९०-प्रतीकोपासना (संत श्रीविनोबाजी) ... ८९५
- ९१-प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय (ब्रह्मलीन श्रद्धेय
श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका एक पुराना
लेख) ... ८३७
- ९२-प्रभु-कृपासे घोर अनर्थसे रक्षा (प्रसिद्ध नेत्र-
चिकित्सक डा० श्रीपुरुषोत्तम गिरिभर) ... ८१४
- ९३-प्रभू—पुनर्जन्मकी एक घटना (श्रीमती
उर्मिला वर्मा) ... १३८९
- ९४-प्रीति (संकल्पिता—श्री 'माधव') ... ११५४
- ९५-फलित प्रार्थना (श्रीरामपुनीतजी श्रीवास्तव
एम्० ए०) ... १००२
- ९६-वस, तनिक-सी देर हो गयी थी ! (डा०
श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०,
पी-एच्० डी०) ... १२५३
- ९७-बालिद्वीपकी उपासना (डा० लोकेशचन्द्र,
एम्० ए०, डी० लिट्०; डा० शारदा रानी,
एम्० ए०, डी० लिट्०) ... १३२१
- ९८-ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके
अमृतोपदेश (पुराने लेखोंसे संकलित) ... ९५९
- ९९-ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके
कुछ अमृतोपदेश (संक०, प्रेषक—
श्रीशालिग्रामजी) ... ८९७
- १००-भक्त घोड़ी (श्रीराजेन्द्रजी गोस्वामी-
'मोहन') ... ९४६
- १०१-भक्तिमार्ग—इन्द्रियनिग्रहका सरलतम मार्ग
है (श्रीअगरचन्द्रजी नाहटा) ... १२३८
- १०२-भगवत्कृपा ... ९५०
- १०३-भगवत्प्राप्ति (अनन्तश्रीविभूषित स्वामीजी
श्रीकरपात्रीजी महाराज) ... ७६७
- १०४-(श्री) भगवन्नाम-जपके लिये प्रार्थना
(चिम्मनलाल गोस्वामी एम्० ए०, शास्त्री) १२७०
- १०५-भगवन्नाम-महिमा (सद्गुरु श्रीबाबाजी
महाराज; अनुवादक—श्रीविष्णुसावलराम कर्पे) १०६५
- १०६-भारतीय प्राचीन शास्त्रके महान् पण्डित डा०
श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल ... १२००
- १०७-भ्रम अनादि और सान्त है (ब्रह्मलीन
श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका पुराना
लेख) ... ७६८
- १०८-भ्रष्टाचार और नैतिकता (श्रीबैजनाथजी
शर्मा, एम्० ए०, एम्० एड्०, सा० रत्न) १३७१
- १०९-मधुर ७१६, ८४९, ९२९, १००७, १०२६, ११३४,
११९९, ...
- ११०-मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः
(श्रीम० त्रि० भट्ट) ... ९६६
- १११-मनके ये राक्षस भी मृत्युका कारण बन
सकते हैं (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र,
एम्० ए०, पी-एच्० डी०) ... ८५८
- ११२-मनन-माला (ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई
व्यास) ... ८९९
- ९६३, १०३३, १०८९

- ११३-मनुष्यका स्थायी धन (पं० श्रीकालजी-
रामजी शुक्ल, एम० ए०) ... १०४०
- ११४-मनुष्यके भीतरसे ईश्वरकी झलकियाँ
(डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०,
पी-एच० डी०) ... १०३६
- ११५-मनुष्य जितना अधिक काममें व्यस्त रहता
है, उतना ही अधिक जीवित और स्वस्थ
रहता है ! (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम०
एम०, पी-एच० डी०) ... ११७०
- ११६-मनुष्यमात्रसे सविनय प्रार्थना—हमारे रामके
आमरण अनशनकी सूचना (परम श्रद्धेय
आचार्य अनन्तश्री स्वामीजी श्रीवीरराववा-
चार्यजी महाराजका वक्तव्य) ... १३३४
- ११७-मन्त्र—एक अतीन्द्रिय विज्ञान (श्रीगोविन्द-
जी शास्त्री) ... ८५१
- ११८-महर्षि गौतम और उनका धर्मशास्त्र
(पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ... ९९२
- ११९-महात्मा गांधीकी एक अद्भुत विशेषता
(श्रीअगरचन्दजी नाहय) ... १३७८
- १२०-महाराज पृथु (पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा) ... १०७३
- १२१-मा रुधः कस्यस्विद्वनम् (श्रीसुरेशचन्द्रजी-
वेदालंकार, एम० ए०, एल्० टी०) ... १३०६
- १२२-मानवता जय दानवता बन जाती है
(श्रीदुर्गेश) ... १२६४
- १२३-मृत्युसे न डरें ! (डा० श्रीरामचरणजी
महेन्द्र, एम० ए०, पी-एच० डी०) ... ७८८
- १२४-मैत्रो ब्राह्मण उच्यते (पं० श्रीजानकी-
नाथजी शर्मा) ... ८४३
- १२५-मैं भगवदिच्छासे ही 'गोरक्षा-महाभियान-
समिति' में सम्मिलित हुआ (हनुमानप्रसाद
पोद्दार) ... १३९२
- १२६-यह मृत्युलोक (श्रीपरमहंसजी महाराज,
श्रीरामकुटिया) ... ९९५
- १२७-सस्वरूप श्रीकृष्ण और भावस्वरूपा गोपाङ्गना-
समन्वित श्रीराधाजीका तत्त्व-महत्त्व
(श्रीराधाष्टमी-महोत्सवपर गोरखपुरमें
हनुमानप्रसाद पोद्दारका प्रवचन) ... १२९२
- १२८-रामवाद भारतीय संस्कृतिकी अद्भुत
अनुभूति (श्रीजगतनारायणजी निगम) ... ८१०
- १२९-राष्ट्रीय एकताके लिये गोरक्षा अनिवार्य है
(श्रीमधुसूदनजी वाजपेयी) ... १२६३
- १३०-रीवाँके गोभक्त नरेश (श्रीमती शकुन्तला
अग्निहोत्री) ... ७३८४
- १३१-वर्तमान समयका बड़ा पाप—मिलावट
करना (श्रीताराचन्द्रजी पांड्या) ... ८६६
- १३२-वर्तमान स्वराज्यके अनुभव (श्रीकस्तूरमलजी
वाँडिया) ... १३६३
- १३३-(श्रीमद्) वल्लभाचार्यजीकी धर्मभावना
(संकलनकर्ता—श्रीगोपालदासजी झालानी) ... ७२९
- १३४-वाणी और भक्ति (संत श्रीविनोबाभावे) ... ९६१
- १३५-विद्यार्थी-धर्म ही जीवनकी आधार-शिला है
(श्रीसुदामाप्रसादजी त्रिपाठी 'दीन', शास्त्री,
एम० डी० एच०) ... ११२६
- १३६-वेद और यज्ञ (याज्ञिकसम्राट् पं०
श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य) ... ८४१
- १३७-वैज्ञानिक और भक्त (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी
जैन) ... ७५६
- १३८-वैज्ञानिकका ईश्वराविष्कार (आत्मलीन
आचार्य श्रीअक्षयकुमार बन्धोपाध्याय) ... ८३४
- १३९-शिक्षकका धर्म और उसके आदर्श
(अध्यापक श्रीमानिकलालजी 'दोषी') ... ११२५
- १४०-शुभ्रोपासना (स्वामीजी श्रीशारदानन्दजी) ... ११२१
- १४१-श्रद्धाञ्जलि (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ... ११४८
- १४२-श्रद्धाका स्वरूप (ब्रह्मलीन श्रद्धेय
श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृत-वचन) ... १३४३
- १४३-श्रीकृष्णतत्त्व (पं० श्रीगोपालभट्टजी एम० ए०) ... १३४४
- १४४-श्रीधामपुरीके बड़े बाबा (श्रीब्रजगोपाल-
दासजी अग्रवाल, एम० ए०) ... १३५४
- १४५-श्रीभगवन्नाम-जप ... १३८६
- १४६-संत जैमलदासजी और उनके पद (डा०
शालिग्रामजी गुप्त) ... ८७६
- १४७-संततिनिरोध (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन) ... ८१२
- १४८-संत-वाणी (संकलनकर्ता और प्रेषक—
श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका) ... ११६१
- १४९-संत श्रीजयमलदासजी (सिंहस्थल रामस्नेही-
सम्प्रदायाचार्य-प्रधानपीठाधीश्वर श्री १००८
श्रीभगवद्दासजी शास्त्री) ... १०१३
- १५०-संतों—महापुरुषोंकी महिमा (ब्रह्मलीन
पूज्यपाद अनन्त श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके
संकलित कुल वचनामृत; संकलनकर्ता और
प्रेषक—श्रीशालिग्रामजी) ... १०२३
- १५१-संयुक्त परिवार जो वियुक्त होते जा रहे हैं
(श्रीकृष्णकुमारजी त्रिवेदी, एम० एस्-सी०,
साहित्यरत्न) ... १२६२
- १५२-संस्कारी कुत्ते (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ... ८७९

१७२-हरेनामैव केवलम् (प्रो० श्रीवाँकेविहारी जी झा,
एम्० ए०, साहित्याचार्य) ... ११०१

१७३-हिंदू वेष-भूषा और हिंदी भाषाको अपनानेमें
गर्वका अनुभव करें ! (डाक्टर, श्रीराम-
चरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्०
डी०) ... १३१२

१७४-हिंदू-धर्मकी अग्नि-परीक्षा (श्रीसुन्दरलालजी
बोहरा) ... १००३

१-अर्चावतार	८९६
२-अन्ध-परानुकरणता	१३१६
३-आजकी दुर्दशा और उसके नाशका उपाय	८८३
४-उदात्त संगीत (डॉ० श्रीवलदेवप्रसादजी मिश्र, एम्० ए० पी० एच० डी०) ७५८, ८२१, १०१७, ११८३	१३९१
५-उद्बोधन (डा० श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम')	८३३
६-ए रे ! नर चेत !! (श्रीमस्वनलालजी पाराशर, एम्० ए०)	९८८
७-कालियपर कन्दैयाकी क्रीडा	११४९
८-(श्री) कृष्ण (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री, साहित्याचार्य 'राम')	१३०३
९-केवल आशा तुम्हारी ही है (श्रीशिवशंकरलालजी त्रिवेदी, बी० ए०, एल्० टी०)	१२२४
१०-कैसे वचन बोलें	९६२
११-कौशल्याका आनन्द	९५७
१२-गोधनके साथ गोवर्धनसे उतरते हुए	८९३
१३-गोरक्षामें सबकी रक्षा (श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम')	१३२०
१४-गोवध सर्वथा बंद हो	१३११
१५-जीवनका सार—धर्म (श्रीभगवतनारायणजी भार्गव)	११००
१६-जीवन सफल कैसे हो ?	८१३
१७-जीवन धन्य हो जाय	१३५७
१८-तुम ही तुम	९२८
१९-दोनों हाथ समेटी तेरी देन (श्रीबालकृष्णजी बलदुवा)	१११८
२०-धनकी आसक्तिसे पतन	१०९१
२१-ध्यानमय भगवान् शिव	७६५
२२-नटराजका ताण्डव-नृत्य	१०८५
२३-नाटकके अभिनेताकी भौति ममता-आसक्ति न रखकर उचित कार्य करो	१२५२
२४-निष्पाप मन (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीहरि- शंकरजी शर्मा, डी० लिट्०)	७५३
२५-परम आदर्श राम	८११

२६-परम धर्म	...	७३०
२७-परम सुहृद् भगवान्	...	११०६
२८-प्रार्थना	...	१२८४
२९-प्रियतमके प्रति (श्रीशिवशंकरलालजी त्रिवेदी बी० ए०, एल० टी०)	...	१३७३
३०-बुद्धि नष्ट हो गयी	...	१३७०
३१-महिषमर्दिनी दशभुजा दुर्गा	...	१०२१
३२-मित्र	...	८४४
३३-(श्री) राधा (पाण्डेय पं० श्रीरामनारायण- दत्तजी शास्त्री, साहित्याचार्य 'राम')	...	१३०३
३४-(श्री) राधा और गोपीजनका स्वरूप	...	१३०३
३५-(श्री) राधा-गोविन्द-युगल	...	१२७७
३६-वनके विचित्र बटोही	...	८२९
३७-वन-वैभव (विद्यावाचस्पति पद्मश्री डॉ० हरिशंकरजी शर्मा, डी० लिट्०)	...	११६८
३८-विशुद्ध प्रेमैकलभ्य	...	८४८
३९-वृषभानुद्वारपर भीड़	...	१३०२
४०-वैष्णवश्रेष्ठ कौन है ?	...	१०३५
४१-शरणागत होकर भगवान्को भजो	...	१३५३
४२-सच्चा शिक्षित विद्वान् कौन है ?	...	१११०
४३-सच्चा स्वतन्त्र, विजयी और बलवान् वीर कौन है ?	...	८५०
४४-सबका सदा परम कल्याण चाहो	...	९७३
४५-सबमें भगवान् देखकर सबका सम्मान-हित करो	...	७९०
४६-सबमें भगवान् समझकर सबकी सेवा करो	...	७३८
४७-सबसे न्यारा प्यार तुम्हारा (प्रो० श्रीभवदेवजी झा, एम० ए०-द्वय)	...	१०१२
४८-सभीमें भरे तुम्हीं भगवान्	...	११९८
४९-सर्वत्र सब तुम्हीं हो	...	८००
५०-सौन्दर्य-शौर्य-निधि भगवान् श्रीराम	...	७०१
५१-हे मनमोहन ! टेक निभा दो (श्रीदानविहारी- लालजी शर्मा 'शरण')	...	८७२

संकलित

१-अधर्मसे समूल नाश (मनुस्मृति ४ । १७०- १७२)	...	७३५
२-श्रीकृष्णकी अद्भुत प्राप्ति (महाकवि रसखान)	...	११५४
३-चित्तचोर (श्रीहितहरिवंशजी महाप्रभु)	...	१०७२
४-दर्शनमें ही सुख है (श्रीसूरदासजी)	...	१०६८
५-नाचत मुदित मोर (गीतावली-श्रीतुलसी- दासजी)	...	१३४१

६-विश्वामित्रके साथ श्रीराम-लक्ष्मण (गीतावली— श्रीतुलसीदासजी)	...	१२१३
--	-----	------

कहानी विश्व

१-आत्मदान (श्री 'चक्र')	...	७८४
२-गौ—लोकमाता (श्री 'चक्र')	...	१३०९
३-ग्रह-शान्ति (श्री 'चक्र')	...	११७७
४-तितिक्षा (श्री 'चक्र')	...	९९७
५-दम-सम्पन्न [दान्त] (श्री 'चक्र')	...	९०७
६-धर्मका प्रयोजन (श्री 'चक्र')	...	१३४७
७-भक्तवत्सल [पुराण-कथा] (श्री 'चक्र')	...	८४५
८-भावी (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)	...	८०१
९-मन्त्र-सिद्धि (श्री 'चक्र')	...	१२३४
१०-मोह (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)	...	१३७४
११-यमराजका न्याय (श्रीनरेन्द्रनारायणलालजी)	...	११०४
१२-विराग (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)	...	९४१
१३-शम-सम्पन्न [दान्त] (श्री 'चक्र')	...	७२५
१४-शौर्य (श्री 'चक्र')	...	१०४२
१५-सदुपयोग (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)	...	११३५
१६-समता (श्री 'चक्र')	...	१०९५

चित्र-सूची

(रंगीन)

१-कालिय-दमन	...	११४९
२-गोधनके साथ गोवर्धनसे उतरना	...	८९३
३-ध्यानमय भगवान् शिव	...	७६५
४-नटराजका ताण्डव-नृत्य	...	१०८५
५-भरत-शत्रुघ्नके साथ माता कौसल्या आनन्दमग्न	...	९५७
६-महिषमर्दिनी दशभुजा दुर्गा	...	१०२१
७-रामदर्शनसे मुदित मोर	...	१३४१
८-(श्री) राधा-गोविन्द-युगल	...	१२७७
९-वनके विचित्र बटोही	...	८२९
१०-विश्वामित्रके साथ श्रीराम-लक्ष्मण	...	१२१३
११-सौन्दर्य-शौर्य-निधि भगवान् श्रीराम	...	७०१

रेखाचित्र

१-अभयदाता श्रीकृष्ण	...	२रे अङ्कका मुखपृष्ठ
२-(श्री) गोवर्धनधर	...	६ठें अङ्कका मुखपृष्ठ
३-गौरीकी गोदमें गणपति	...	७वें अङ्कका मुखपृष्ठ
४-(श्री) गौरीशंकर	...	८वें अङ्कका मुखपृष्ठ
५-देवी उमा	...	१०वें अङ्कका मुखपृष्ठ
६-पुजारिन	...	५वें अङ्कका मुखपृष्ठ

७-बाल-माधुरी	... १०-मोहन और मुरलीपर मुग्ध गौ
८-भगवान् नारायण	... ११-वीणापाणि सरस्वती
९-मयूरवाहन कार्तिकेय	... ४थे अङ्कका मुखपृष्ठ
	... ३रे अङ्कका मुखपृष्ठ

श्रीगीता-जयन्ती-महोत्सव

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च । निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः । मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

(गीता १२ । १३-१४)

भक्तके लक्षण बतलते हुए भगवान् कहते हैं—‘जो पुरुष सब प्राणियोंमें द्वेषभावसे रहित, सभीका स्वार्थ-रहित मित्र और हेतुरहित दयालु, ममता और अहंकारसे रहित, सुख-दुःखकी प्राप्तिमें सम, क्षमाशील (अपराध करनेवालेका भी कल्याण करनेवाला), भगवान्में लगे हुए मनवाला, सदा संतुष्ट, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें रखनेवाला, दृढनिश्चयी और मुझ भगवान्में अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला है, वह मेरा भक्त मुझको प्रिय है ।’

आजके अधिकांश मनुष्योंका चरित्र और जीवन इससे सर्वथा विपरीत है—जब कि उस समय संग्राम-परायण अर्जुनमें भी ये बातें थीं । इसीसे भगवान्ने उनको भक्त मानकर कहा था कि तुम ‘मेरे भक्त हो’—‘मे भक्तोऽसि’ । पर जबतक हमलोगोंके चरित्र—जीवन उच्चस्तरके नहीं होंगे, तबतक बाहरी उच्चस्तरका कोई मूल्य नहीं है, बल्कि केवल भौतिक उच्चस्तर तो असुरोंमें होता है । इस चरित्रगत आध्यात्मिक उच्चताके लिये श्रीमद्भगवद्गीताकी शिक्षाका जीवनमें उतारना आवश्यक है । इसके लिये गीताका प्रचार-प्रसार प्रयोजनीय है । यह गीता भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको रणक्षेत्रमें जिस दिन सुनायी थी, उसी महत्त्वपूर्ण दिवसको ‘गीता-जयन्ती’के नामसे मनाया जा रहा है ।

इस वर्ष श्रीगीता-जयन्तीका वह महापर्वदिवस मार्गशीर्ष शुक्ल ११ शुक्रवार, दिनाङ्क २३ दिसम्बर १९६६ को है—इस पर्वपर जनतामें गीताप्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये । आजके किर्कटव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है । इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद और उनसे दिव्य शक्ति प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य करने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थका पूजन ।

(२) गीताके महान् वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासका पूजन ।

(३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक परायण ।

(४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके लिये, गीता-प्रचारके लिये समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्यपरायण बनानेकी महान् शिक्षाके परम पुण्यदिवसका स्मृति-महोत्सव मनानेके लिये सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन, भगवन्नाम-संकीर्तन आदि ।

(५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीतापाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण ।

(६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीताकथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्का विशेषरूपसे पूजन ।

(७) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो, वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा ।

(८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदय, गीतासम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करें ।

पूज्यपाद अनन्तश्री देवरहवा बाबाका संदेश

- (१) यदि अपने राष्ट्रको अन्य राष्ट्रोंकी तुलनामें शक्तिशाली बनाना हो तो सम्पूर्ण भारतमें गोहत्या तुरंत बंद करनी चाहिये।
- (२) यदि भारतकी कृषि-उत्पादन, अन्नसंकट इत्यादि समस्याओंको सदाके लिये हल करना हो तो सम्पूर्ण भारतमें गोहत्या तुरंत बंद होनी चाहिये।
- (३) भारतकी आधुनिक स्थितिमें यह महान् कार्य बिना कानूनके नहीं हो सकता। इसलिये गोहत्या बंद करनेके लिये भारत-सरकारको तुरंत कानून बनाकर पास करना चाहिये।

गोहत्यानिरोध-सम्बन्धी—

- (१) जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजीको पुरी ले जाकर गत २७ तारीखको छोड़ दिया गया। सरकारकी इस बुद्धिमानीके लिये उसे बधाई। पर अनशनकी अवस्थामें इतनी लंबी यात्रा करवाना उनके जीवनके प्रति उपेक्षा करना है। अस्तु, अब संत श्रीप्रभुदत्तजीको भी इसी प्रकार तुरंत छोड़ देना चाहिये।
- (२) ब्रह्मचारी ऋषिस्वरूपजीकी अनशन करते गोमाताके रक्षार्थ बलि लग गयी। वे धन्य हो गये। पर सरकारकी हृदयहीनता भी प्रत्यक्ष हो गयी।
- (३) अब सरकारसे यह प्रार्थना है कि वह तुरंत बुद्धिमानी तथा उदारताके साथ विचार करके सम्पूर्ण भारतमें सर्वथा गोवंशकी हत्यापर राष्ट्रपतिके द्वारा प्रतिबन्ध लगा दे—यह व्यवस्था करनी ही चाहिये। संविधानमें उचित संशोधन करना चाहिये तथा गौको राष्ट्रीय पशु मान लेना चाहिये।

श्रीमद्भगवद्गीता (तत्त्वविवेचनीटीकासहित)

टीकाकार—ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आठवाँ संस्करण समाप्त हुए बहुत दिन हो गये। ग्राहकोंकी बड़ी माँग थी, साथ ही प्रेमभरा उल्लाहना भी था। परिस्थितिवश हम लाचार थे। भगवान्की कृपासे अब २५,००० प्रतियोंका नवाँ संस्करण तैयार हो गया है, जिन्हें लेनी हो वे स्थानीय विक्रेताओंसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। न मिलनेपर यहाँ आर्डर भेजनेकी कृपा करें। आकार डबल क्राउन आठपेजी, पृष्ठ-संख्या ६८४; चार सुन्दर बहुरंगे चित्र, मूल्य रु० ४.०० डाकखर्च रु० २.१०।

श्रीमद्भगवद्गीता-जैसे विश्वमान्य सार्वभौम ग्रन्थके गूढतम तत्त्वज्ञानको सरल हिंदी भाषामें २५१५ प्रश्न और उनके उत्तरके रूपमें सर्वसाधारणके लिये सुलभ बनानेवाली यह टीका है।

गीता-दैनन्दिनी सन् १९६७ ई० (दूसरा संस्करण)

आकार २२ × २९ बत्तीस पेजी, पृष्ठ ४१६, मूल्य साधारण जिल्द ७५ पैसे, हाथ कर्वेके कपड़ेकी जिल्द ९० पैसे, डाकखर्च ८० पैसे अलग।

डेढ़ लाख प्रतियोंका प्रथम संस्करण अति शीघ्र बिक गया। अतः ग्राहकोंकी माँगके अनुसार यह दूसरा संस्करण छपा गया है।

गीता-दैनन्दिनीके विक्रेताओंको विशेष रियायत मिलती है, अतः यहाँ आर्डर देनेसे पहले अपने यहाँके पुस्तक-विक्रेतासे प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। इससे आप भारी डाकखर्चसे बच सकते हैं।

पूर्ण परात्पर भगवान् श्रीकृष्णका आविर्भाव

(श्रीकृष्णजन्माष्टमी सं० २०२३के महोत्सवपर श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका प्रवचन) आकार २० × ३०, सोलहपेजी, पृष्ठ १६, मूल्य आठ पैसे, डाक-खर्च पाँच पैसे अलग।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

सम्मान्य ग्राहकों और पाठकोंको सूचना तथा प्रार्थना

(१) इस अङ्कमें भगवत्कृपासे 'कल्याण' का ४०वाँ वर्ष पूरा हो गया है। अब अगला इकतालीसवाँ वर्षका प्रथम अङ्क 'श्रीरामवचनामृताङ्क' नामक विशेषाङ्क होगा। इसमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके तत्त्व महत्त्वके साथ ही मातृ-पितृभक्ति, भ्रातृ-प्रेम, पत्नी-प्रेम, मैत्री, परमात्मतत्त्व, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, सदाचार, नीति राजनीति आदि विविध विषयोंपर उनके द्वारा कथित चुने हुए वचनोंका मूलसहित अनुवाद रहेगा। साथ उससे सम्बन्ध रखनेवाले कथा-प्रसङ्ग भी रहेंगे। संस्कृत, हिंदी तथा विभिन्न भाषाओंके ग्रन्थोंसे श्रीरामवचनोंका यह सुन्दर संकलन किया गया है। सुन्दर रंगीन तथा सादे चित्र भी पर्याप्त संख्यामें रहेंगे। यह अङ्क भक्त, साधक, ज्ञानी, गृहस्थ, विरक्त, राजनीतिज्ञ, समाजसेवी, महिलाएँ—सभीके लिये अत्यन्त उपयोगी होगा।

(२) खर्च उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। इस साल भी बहुत बढ़ा है। गत वर्ष घाटा था ही लोगोंने सुझाव दिया कि 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य रु० १०.०० कर दिया जाय। पर इतना बढ़ाना उचित नहीं जँचा, यद्यपि वर्तमान महँगीकी दृष्टिसे दस रुपये अधिक नहीं हैं। अन्तमें केवल एक रुपया बढ़ाकर वार्षिक मूल्य रु० ८.५० (आठ रुपये पचास पैसे) रक्खा गया है, जो वास्तवमें कम ही है। अतः आप वार्षिक मूल्य मनी-आर्डरसे तुरंत भेजकर ग्राहक बन जाइये। मनीआर्डर फार्म गताङ्कमें भेजा जा चुका है। रुपये भेजते समय मनीआर्डरमें अपना नाम, पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ-साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखना कृपया न भूलें।

(३) ग्राहक-संख्या न लिखनेसे आपका शुभ नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है। इससे विशेषाङ्ककी एक प्रति नये नम्बरोंसे तथा एक प्रति पुराने नम्बरोंसे वी० पी० द्वारा जा सकती है। यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें। सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा पाठिका-ग्राहिका देवियोंसे यह भी निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण'के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें। इससे भगवान्की सेवा होगी।

(४) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर अवश्य सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ 'कल्याण'-कार्यालयको हानि न सहनी पड़े।

(५) किसी कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो केवल 'विशेषाङ्क' और उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका ही मूल्य रु० ८.५० (आठ रुपये पचास पैसे) है।

(६) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनता है और बहुत विलम्बसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य रु० १०.०० (दस रुपये) है।

(७) 'कल्याण'के आजीवन ग्राहक बनानेकी योजना बंद कर दी गयी है, अतएव आजीवन ग्राहकके लिये रुपये कोई महानुभाव न भेजें।

94
श्रीसर्वे
तत्त्व
नीति
तत्त्व
भक्त
ही
नहीं
मूल्य
नी-
मय
नेकी

सते
भी
प ।
यता
भी
गीव्र

कर

इह
ल्य

र ।

के

१०

Comped
1999-2000

